Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

VOL. 9

1934

C. K. Y. LIB.
HARIDWAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110324

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110324
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110324

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण आश्विन सं० १९९१ की

विषय-सूची

70147

	पृष्ठ-संख्या
१–विनय [कविता] (श्रीसूरदासजी)	७०५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश	७०६
३–कर्मयोग-रहस्य (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७०८
४–कल्याण ('शिव')	७१२
५–ब्रह्मानन्द (कृष्णवियोगी योगिराज परमहंस श्रीब्रह्मानन्दजी)	७१६
६–परमहंस श्रीस्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूतके उपदेश (प्रेषक–श्रीरामसरनदासजी)	७१८
७–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)	७२१
८–प्रेमियोंकी चाह [कविता] (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)	७२८
९–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)	७२९
१०–गोविन्द-गुण-गान [कविता] (साह मोहनराज)	७३४
११–श्रीमानस-शङ्का-समाधान (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)	७३४
१२–ज्ञानगुदड़ी [कविता]	७३९
१३–श्रीरूपकलाजीका वचनामृत-सार (श्रीराघवेन्द्र देव नारायण बी० ए० द्वारा सङ्कलित)	७४०
१४–विश्वास [कविता] (रहीमजी)	७४१
१५–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)	७४२
१६–एक राजाकी दो रानियाँ (बहिन श्रीजयदेवीजी)	७४८
१७–झाँकी [कविता] (पजनेश)	७५१
१८–मृत्यु क्या है ? (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)	७५२
१९–गोरखपुरके मौनीबाबा (म० श्रीबालकराम विनायकजी)	७५६
२०–शक्ति-तत्त्व (पं० श्रीगिरिजाशङ्करजी त्रिपाठी, व्याकरण-न्यायाचार्य)	७५९
२१–मातृ-आरती [कविता] (प्रेषक—श्रीकालीचरणजी विशारद)	७६२
२२–भक्त-गाथा	७६३
२३–तन्त्र (श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)	७६७
२४–दया-भिक्षा [कविता] (पं० श्रीसूर्यनारायणजी मिश्र 'सूरज')	७७०
२५–सूर-साहित्यमें भ्रमर-गीत (श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न)	७७१
२६–मौतका सन्देश [कविता] (श्रीसुन्दरदासजी)	७८०
२७–श्रीरामसहस्रनाम [कविता] (श्रीरामचरणाचार्यजी लिखित ९५० वर्ष प्राचीन प्रतिसे)	७८१
२८–विवेक-वाटिका	७८४

भूल-सुधार

श्रीशक्ति-अङ्क पृष्ठ ६५६ में श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्रीलक्ष्मीजी और श्रीसरस्वतीजी नामक चित्र छपा है। वह चित्र श्रीयुत गोपालमलजी पुरुषोत्तमदासजीके बनवाये हुए मन्दिरकी मूर्तियोंका है।

श्रीगीता-परीक्षा-समिति

श्रीगीता-परीक्षा-समिति, गोरखपुरद्वारा सञ्चालित श्रीगीताकी परीक्षाएँ कार्तिक शुक्ल ९ से न होकर कार्तिक शुक्ल १२ रविवार तदनुसार ता० १८-११-१९३४ ई० से होंगी।

संयोजक–
राघवदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम

(१) यह हर एक महीनेकी कृष्णा एकादशीके लगभग प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांकसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≋) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अङ्कसे १२ वें अङ्कतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क-तक नहीं बनाये जाते। कल्याणका वर्ष श्रावणसे आरम्भ होकर आषाढ़में समाप्त होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहलेतक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले-पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेप-रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डरद्वारा भेजना चाहिये क्योंकि वी० पी०के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी-कभी तो डेढ़-दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलनेतक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। खर्च दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधाका है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजना चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि **'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे भेजने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, आश्विन १९९१, अक्टूबर १९३४ | संख्या ३ पूर्ण संख्या ९९

माधव जू ! जो जनतें बिगरै ।
तउ कृपालु करुनामय केसव प्रभु नहिं जीय धरै ॥
जैसे जननि-जठर-अंतरगत सुत अपराध करै ।
तउ पुनि जतन करै अरु पोसै, निकसे अंक भरै ॥
जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटत कर कुठार पकरै ।
तऊ सुभाय सुगंध सुसीतल रिपु-तन-ताप हरै ॥
करुना-करन दयालु दयानिधि निज भय दीन डरै ।
इहि कलिकाल-ब्याल मुख ग्रासित 'सूर' सरन उबरै ॥

—श्रीसूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्रश्न—सत्संग पुरुषार्थसे मिलता है या भाग्यसे ?

उत्तर—भक्तोंका यही सिद्धान्त है कि सत्संग भगवत्कृपासे मिलता है। पुरुषार्थवादी कहते हैं कि वह पुरुषार्थसे मिलता है किन्तु इसमें भगवत्कृपा ही प्रधान है।

प्र०—यदि भगवत्कृपासे सत्संग मिलता है तो फिर पुरुषार्थ क्यों करना चाहिये ?

उ०—प्रभुकृपासे हमें कोई खजाना मिल जाय तो उसकी रक्षा करनेके लिये भी कुछ परिश्रम करनेकी आवश्यकता है, यह पुरुषार्थ भी भगवत्कृपासे ही होता है। भक्त तो भगवत्कृपाको छोड़ पुरुषार्थको कोई चीज़ मानता ही नहीं। सत्संगमें जानेके लिये पुरुषार्थकी आवश्यकता है पर पुरुषार्थ वही करेगा कि जिसमें कृपाका अङ्कुर होगा। बिना कृपाके सत्संगमें कोई पैर भी नहीं रक्खेगा।

प्र०—सत्संग मिलनेके लिये क्या उपाय करना चाहिये ?

उ०—प्रभुसे या भक्तसे प्रार्थना करनी चाहिये। भक्त और भगवान् एक ही हैं।

प्र०—सत्संगमें प्रीति कैसे बढ़े ?

उ०—प्रतिदिन सत्संग करनेसे सत्संगमें प्रीति बढ़ती है। एक दिन गये और चार दिन नहीं गये इससे प्रीति नहीं बढ़ती।

प्र०—सत्संग करनेपर भी सत्संगके परायण क्यों नहीं होते ?

उ०—सत्संग नियमपूर्वक नित्यप्रति निरन्तर नहीं करते। जो वैसा करते हैं वे परायण हो जाते हैं।

प्र०—सत्संग महात्माकी परीक्षाके लिये भी करनेसे लाभ है या नहीं ?

उ०—परीक्षाके लिये करनेमें भी लाभ है क्योंकि वह सत्संगमें जाता है और महात्मा भी उसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करं सकते हैं कि इनकी भी आपमें प्रीति हो। नहीं तो सत्संगकी महिमा भी क्या रहेगी ?

प्र०—सत्संग दम्भ या मानवृद्धिके लिये करनेसे भी लाभ होता है या नहीं ?

उ०—लाभ ही है, पहले-पहले यह सब नकली होता है पीछे धीरे-धीरे सब दोष दूर हो जाते हैं। नकल पहले होती है पीछे असली हो जाती है। परन्तु दम्भ और मानवृद्धिकी इच्छाको त्यागकर ही सत्संग करना चाहिये।

प्र०—सत्संग किनका करना चाहिये ?

उ०—जो सत्पुरुष भगवत्‌के गुणानुवाद तो करता है किन्तु वह स्वयं कामी, क्रोधी अथवा लोभी है, मेरा पहले यह विचार था कि ऐसे लोगोंका संग न करें किन्तु एक महात्माने मुझसे कहा, 'हलवाईकी मिठाई खानेवाला उसके गुण-दोष नहीं देखता' परन्तु यह बात ऊँची कोटिके लिये है, साधारण साधकके लिये नहीं है, अतएव साधकके लिये तो सर्व सद्‌गुणसम्पन्न भगवद्भक्तका ही संग करना लाभप्रद है, नहीं तो दोष देखकर उसकी सत्संगसे अरुचि हो जायगी, या वह दोषोंका अनुकरण करने लगेगा।

प्र०—सत्संगसे बढ़कर भी कोई सुलभ और सर्वोत्तम साधन है क्या ?

उ०—सब साधनोंका सर्वोच्च मूलकारण सत्संग है। यह बीजरूप है। और सब शाखा-प्रशाखा हैं। सत्संग सबसे बढ़कर सुलभ साधन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—सत्संगके अभावमें सत्-शास्त्र-विचार करनेके लिये प्रधान-प्रधान कौन-से ग्रन्थ हैं ?

उ०—प्रधान ग्रन्थोंमें मैंने तो चार ग्रन्थ मान रक्खे हैं। उपनिषद्, गीता, रामायण और भागवत। विनय-पत्रिका रामायणमें आ जाती है। वैसे तो सब ग्रन्थ उत्तम हैं।

प्र०—सत्-शास्त्र-विचारसे भी सत्संगके समान ही लाभ हो सकता है या नहीं ?

उ०—जो सत्-शास्त्रका विचार कर लेगा, वही सत्संगसे अधिक लाभ उठावेगा। यद्यपि सत्-शास्त्र-विचारसे सत्संगका महत्त्व बहुत अधिक है किन्तु सत्संगके साथ-साथ सत्-शास्त्र-विचार भी करना चाहिये। जो अद्वैतवादी हैं उनके लिये भी उपनिषदोंमें और श्रीमद्भागवतमें सब सामग्री मिल जाती है।

प्र०—मनुष्य-जीवनका क्या लक्ष्य होना चाहिये ?

उ०—मननशीलको मनुष्य कहते हैं, उसके दो लक्ष्य होने चाहिये, एक ईश्वरप्रेम और दूसरा शास्त्रोक्त शुद्ध व्यवहार।

प्र०—लक्ष्य-प्राप्तिके लिये गुरुकी भी आवश्यकता है या नहीं ?

उ०—सद्गुरुकी आवश्यकता जरूर है। यदि लौकिक गुरुमें पूर्ण श्रद्धा न हो तो वसिष्ठ आदिको गुरु मानना चाहिये। उनमें विश्वास होनेसे वे स्वप्नमें उपदेश दे देंगे परन्तु यह कठिन है इसलिये लौकिक गुरु करनेकी आवश्यकता है।

प्र०—सद्गुरुके लक्षण बतलानेकी कृपा कीजिये।

उ०—जिसका नाम सुननेसे, जिसके दर्शन करनेसे, जिसके वचन सुननेसे भगवत्स्मृति हो और विलक्षण आनन्द हो, उसको गुरु समझना चाहिये। दूसरा लक्षण है, जो कामिनी-काञ्चनका त्यागी हो और दैवीसम्पत्तिसे युक्त हो। इनमें पहला लक्षण मुख्य है। गुरुको समझनेकी तो शिष्यमें सामर्थ्य नहीं है इसलिये जहाँतक बन पड़े उपर्युक्त लक्षणोंवालेको ही गुरु मानना चाहिये। यदि एकसे काम न बने तो दूसरा गुरु भी कर सकते हैं।

प्र०—शिष्यके लक्षण कौन-से हैं ?

उ०—शिष्यमें पहला लक्षण यह होना चाहिये कि वह अमानी हो और श्रद्धालु हो। जबतक अमानी न होगा तबतक शिष्य हो ही नहीं सकता। मत्सररहित हो, गुरुमें दृढ़ प्रेमी हो, जल्दबाज न हो और सत्यवादी हो। कम-से-कम वह श्रद्धालु और अमानी तो अवश्य होना चाहिये।

प्र०—वैराग्य किसे कहते हैं ?

उ०—विषय पासमें रहनेपर भी उसमें राग न हो। इन्द्रियोंके समीप विषय रहनेपर भी उनके भोगमें अरुचि होनेको वैराग्य कहते हैं, वैराग्य घरमें रहनेपर भी हो सकता है।

प्र०—त्याग किसे कहते हैं ?

उ०—वस्तुको स्वरूपसे त्याग देनेको त्याग कहते हैं।

प्र०—क्या त्यागके बिना भी वैराग्य हो सकता है ?

उ०—हो सकता है, कैसे ?—प्रेम होनेसे।

प्र०—भगवत्प्रेमके लिये वैराग्यकी आवश्यकता है या नहीं ?

उ०—भगवत्प्रेम होनेसे वैराग्य होगा और वैराग्य होनेसे प्रेम होगा। इनका परस्पर अन्योन्यसम्बन्ध है, अविनाभावी सम्बन्ध है अर्थात् वैराग्यके बिना प्रेम नहीं होता और प्रेमके बिना वैराग्य नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोग-रहस्य

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

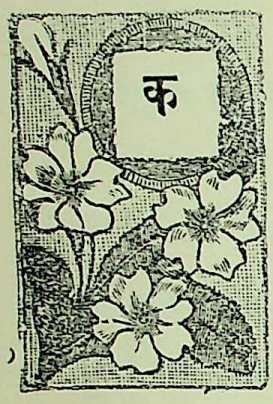

कर्मयोगका रहस्य बड़ा ही गहन है। इसका वास्तविक तत्त्व या तो श्रीपरमेश्वर जानते हैं या वे महापुरुष भी जानते हैं जिन्होंने कर्मयोगद्वारा परमेश्वर (परमात्मा) को प्राप्त कर लिया है। मुझ-जैसे व्यक्तिके लिये तो इस रहस्यका व्यक्त करना अत्यन्त ही कठिन है, क्योंकि कर्मयोगके रहस्यको वास्तवमें मैं अच्छी प्रकार जानता ही नहीं। इसके अतिरिक्त यत्किञ्चित्—जितना कुछ जानता हूँ उतना कह नहीं सकता और जितना कहता हूँ उतना स्वयं काममें नहीं ला सकता, तथापि मित्रोंके अनुरोध करनेपर अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कर्मयोगके रहस्यका कुछ अंश प्रश्नोत्तरके रूपमें व्यक्त करनेका प्रयत्न करता हूँ। श्रीभगवान् कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥
(गीता २। ४०)

'इस निष्काम कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है (और) उलटा फलरूप दोष (भी) नहीं होता है (इसलिये) इस (निष्काम कर्मयोगरूप) धर्मका थोड़ा भी (साधन) जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उद्धार कर देता है।'

प्रश्न—निष्काम कर्मयोगके आरम्भका नाश नहीं होता इसका क्या अभिप्राय है ? क्या एक बार प्रारम्भ होनेपर यह चालू ही रहता है, या जितना बन गया, उसका नाश नहीं होता ?

उत्तर—पूर्वसञ्चित पाप, अहंता-ममता और आसक्ति आदि अवगुणोंके कारण तथा विषय-भोगोंका एवं प्रमादी विषयी पुरुषोंका संग होनेसे मार्गमें रुकावट तो हो जाती है, किन्तु निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका जितना पालन हो जाता है उसका नाश नहीं होता। क्योंकि फल और आसक्तिको त्यागकर भगवदाज्ञानुसार समत्वभावसे किये हुए साधनके नाश होनेका कोई भी कारण नहीं है। फलकी इच्छासे किया हुआ कर्म ही फलको देकर समाप्त होता है।

प्र०—प्रत्यवाय यानी उलटे फलरूप दोषका भागी नहीं होता इसका क्या अभिप्राय है ?

उ०—मनुष्य जैसे अपना उपकार करनेवालेकी सेवा न करनेसे दोषका भागी होता है, तथा जैसे देव, पितर, राजा, मनुष्यादिकी सेवा किसी कामनासे करता है और उसमें किसी कारणवश त्रुटि हो जानेपर उनके रुष्ट होनेसे उसका अनिष्ट भी हो सकता है किन्तु निष्काम कर्मयोगके पालनमें त्रुटि रहनेपर भी उसका उलटा फल यानी कर्त्ताका अनिष्ट नहीं होता तथा नहीं पालन करनेसे वह दोषका भागी भी नहीं होता।

प्र०—कोई-कोई प्रत्यवाय शब्दका विघ्न अर्थ करते हैं, क्या यह भी बन सकता है ?

उ०—'विघ्न' अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। निष्काम कर्मयोगरूप धर्मके पालनमें विघ्न-बाधाएँ तो आ सकती हैं, किन्तु उसका परिणाम बुरा नहीं होता।
(गीता ६। ४०—४२)

प्र०—यहाँ 'अपि' शब्द किस बातका द्योतक है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ०—जब कि इस निष्काम कर्मयोगका थोड़ा साधन भी महान् भयसे उद्धार करनेवाला है तब इसका पूर्ण साधन महान् भयसे मुक्त कर देता है, इसमें तो कहना ही क्या है।

प्र०—इस निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी पालन महान् भयसे कैसे उद्धार करता है?

उ०—निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी पालन संस्कारके बलसे क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर अन्तमें साधकको मुक्त कर देता है।

प्र०—जब कि यह निष्काम कर्मयोगका थोड़ा साधन वृद्धिको प्राप्त होकर ही महान् भयसे उद्धार करता है तब फिर थोड़ेका क्या महत्त्व रहा?

उ०—निष्कामभावका परिणाम संसारसे उद्धार करना है। अतः वह अपने परिणामको सिद्ध किये बिना न तो नष्ट होता है और न उसका कोई दूसरा फल ही हो सकता है, अन्तमें साधकको पूर्ण निष्कामी बनाकर उसका उद्धार कर ही देता है, यही इसका महत्त्व है।

प्र०—जो लोग धार्मिक संस्थाओंमें स्वार्थ त्यागकर बिना वेतन लिये या स्वल्प वेतन लेकर तन-मनसे काम करनेवाले हैं, उनका कर्म स्वार्थरहित होनेके कारण उसे तो निष्काम कर्मयोग ही मानना चाहिये, किन्तु निष्काम कर्मयोगके पालन करनेसे जितना लाभ बतलाया जाता है उतना लाभ देखनेमें नहीं आता, इसका क्या कारण है?

उ०—निष्काम कर्मयोगसे जितना लाभ होना चाहिये उतना लाभ अपने साधनसे होता नजर नहीं आता, इस प्रकार वे सेवा करनेवाले भाई भी कहते हैं, अतः सम्भव है कि निष्काम कर्मयोगके रहस्यको न जाननेके कारण उनमें वास्तविक त्यागकी कमी है, इसीलिये वे पूरा लाभ नहीं उठा सकते, नहीं तो उन लोगोंको निष्काम कर्मयोगके साधनका जितना लाभ गीतादि शास्त्रोंमें बतलाया है, उसके अनुसार लाभ उन्हें अवश्यमेव मिलता।

प्र०—जो कञ्चन, कामिनी और शरीरके आरामको त्यागकर धार्मिक संस्थाकी तन-मनसे सेवा करते हैं उनके त्यागमें फिर और किस बातकी कमी रही?

उ०—केवल कञ्चन-कामिनीके बाहरी त्यागसे ही मनुष्य सर्वत्यागी नहीं होता। वास्तवमें कञ्चन-कामिनीका बाहरी त्याग निष्काम कर्मयोगके साधनमें उतना आवश्यक भी नहीं है, उसमें तो भावकी ही प्रधानता है। अतः इसमें स्त्री, पुत्र और धनादिसे मिलनेवाले विषयभोगरूप सुख त्यागके साथ-साथ मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं राग, द्वेष, अहंता, ममता आदिके त्यागकी भी बड़ी आवश्यकता है। जबतक इन सबका त्याग नहीं होता तबतक साधकको पूरा लाभ नहीं मिल सकता।

प्र०—निष्काम कर्मयोगके अनुसार क्या इन लोगोंका थोड़ा भी साधन नहीं होता?

उ०—जो जितना त्याग करता है उतने अंशमें उसका साधन अवश्य होता है तथा लाभ भी उसके अनुसार उसे अवश्य ही मिलना चाहिये।

प्र०—जब कि कर्मयोगका थोड़ा भी साधन महान् भयसे तार देता है तो फिर अधिक न भी हो तो क्या आपत्ति है? क्योंकि उद्धार तो उसका हो ही जायगा।

उ०—उद्धार तो होगा किन्तु समयका नियम नहीं। न मालूम इस जन्ममें हो या जन्मान्तरमें, क्योंकि वह थोड़ा-सा साधन क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर ही उद्धार करेगा। अतएव साधनकी कमीको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिटानेके लिये शीघ्र कल्याण चाहनेवाले मनुष्य-को तो तत्पर होकर ही प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये ।

प्र०—कर्मयोगके थोड़े साधनसे यहाँ क्या अभिप्राय है ?

उ०—प्रथम तो कर्मयोगका स्वरूप समझना चाहिये । शास्त्रविहित उत्तम क्रियाका नाम कर्म है, उसमें आसक्ति और स्वार्थके सर्वथा त्यागपूर्वक समत्व-भावका यानी निष्कामभावका नाम योग है। यह निष्कामभाव ही इसका स्वरूप, प्राण और रहस्य है । इसलिये जिस कर्ममें निष्कामभाव है उसी-की 'कर्मयोग' संज्ञा है । जिन शास्त्रोक्त उत्तम क्रियाओंमें निष्कामभाव नहीं है उनकी 'कर्म' संज्ञा है किन्तु 'कर्मयोग' नहीं । इसलिये सकामभावसे आजीवन किये हुए यज्ञ, दान, तप आदि ऊँचे-से-ऊँचे अनेकों कर्म भी क्षणभङ्गुर फल देनेवाले होनेके कारण महत्त्वके नहीं हैं, परन्तु निष्काम-भावसे अल्प मात्रामें किये हुए शास्त्रविहित कृषि, वाणिज्य, नौकरी और शिल्पक्रिया आदि साधारण कर्म भी परम कल्याणदायक होनेके कारण महान् हैं । अतएव जिसका नाम निष्काम कर्मयोग है उसका थोड़ा भी पालन यानी अल्प मात्रामें किया हुआ भी वह साधन क्रमसे वृद्धि-को प्राप्त होकर महान् भयसे मुक्त कर देता है किन्तु सकामभावसे किये हुए शास्त्रविहित बहुत-से कर्म भी जन्ममरणरूप महान् भयसे मुक्त नहीं कर सकते ।

प्र०—निष्काम कर्मयोगका स्वरूप विस्तारपूर्वक बतलाइये!

उ०—शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंमें फल और आसक्ति-को त्यागकर भगवदाज्ञानुसार समत्वबुद्धिसे केवल भगवत्-अर्थ या भगवत्-अर्पण कर्म करनेका नाम निष्काम कर्मयोग है । इसीको समत्वयोग, बुद्धि-योग, कर्मयोग, तदर्थकर्म, मदर्थकर्म, मत्कर्म इत्यादि नामोंसे कहा है ।

प्र०—कर्मोंमें फलके त्यागका क्या स्वरूप है ?

उ०—स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्ग आदि सांसारिक सुखदायक सम्पूर्ण पदार्थों-की इच्छा या कामनाका सर्वथा त्याग ही कर्मोंके फलका त्याग है ।

प्र०—कर्मोंमें आसक्तिका त्याग किसे कहते हैं ?

उ०—मन और इन्द्रियोंके अनुकूल सांसारिक सुख-दायक पदार्थों और कर्मोंमें चित्तको आकर्षण करनेवाली जो स्नेहरूपा वृत्ति है; 'राग', 'रस', 'सङ्ग' आदि जिसके नाम हैं उसके सर्वथा त्यागका नाम कर्मोंमें आसक्तिका त्याग है ।

प्र०—भगवत्-आज्ञासे यहाँ क्या अभिप्राय है ?

उ०—श्रुति, स्मृति, गीतादि सत्-शास्त्र तथा महा-पुरुषोंकी आज्ञा ही भगवत्-आज्ञा है ।

प्र०—समत्वबुद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश, जीवन-मरण आदि इष्ट-अनिष्टकी प्राप्ति-में सदा-सर्वदा सम रहना समत्वबुद्धि है ।

प्र०—भगवत्-अर्थ और भगवत्-अर्पण कर्ममें क्या भेद है ?

उ०—फलमें कोई भेद नहीं । फल तो सबका ही परम-श्रेय है । यानी परमेश्वरकी प्राप्ति है, साधनकी प्रणालीमें कुछ भेद है ।

(क) भगवत्-अर्थ कर्म

स्वयं भगवत्‌की पूजा-सेवारूप कर्मोंको या भगवत्-आज्ञानुसार शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंको भगवत्-प्रेम, प्रसन्नता या प्राप्तिके लिये कर्तव्य समझकर केवल भगवान्‌की आज्ञापालनके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना यानी कर्म करनेके पूर्व ही इन सब उद्देश्योंमेंसे किसी भी उद्देश्यको रखकर कर्मोंका करना भगवत्-अर्थ कर्म है। (गीता १२।१०)

(ख) भगवत्-अर्पण कर्म

शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंको तथा मन, वाणी, शरीरसहित अपने-आपको प्रभुकी वस्तु समझकर प्रभुके समर्पण कर देना यानी कर्मोंके करनेमें अपने-आपको सर्वथा भगवान्‌के परतन्त्र समझकर कठपुतलीकी भाँति स्वामीके हाथमें सौंप देना। कठपुतलियोंका तो जड़ होनेके कारण स्वयं नटके अधीन होकर रहना नहीं है, नट ही उनको अपने अधीन रखता है, किन्तु इसका तो स्वयं स्वामीके अधीन होकर रहना है। इसलिये इसमें यह और विशेषता है। इसके सिवा पद-पदपर स्वामीकी दयाका दर्शन करते हुए क्षण-क्षणमें मुग्ध होते रहना और सर्वस्व स्वामीका ही समझते हुए कर्तापनके अभिमानसे रहित रहकर निमित्तमात्र बनकर प्रभुकी आज्ञानुसार कर्मोंका करना सर्वोत्तम भगवत्-अर्पण कर्म है। (गीता ९।२७-२८)

प्र०—क्या निष्काम कर्मयोगका यह साधन कष्टसाध्य है?

उ०—वास्तवमें कष्टसाध्य नहीं है, हाँ, जो कष्ट-साध्य मानते हैं उनके लिये कष्टसाध्य है और जो सुखसाध्य मानते हैं उनके लिये सुखसाध्य है।

प्र०—यदि ऐसा है तो साधकको सुखसाध्य ही मानना चाहिये। किन्तु जो कञ्चन, कामिनी, कुटुम्ब और शरीरके आरामको छोड़कर साधन करते हैं उनको भी यह कष्टसाध्य क्यों प्रतीत होता है?

उ०—मनकी चञ्चलता, तथा मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदिकी इच्छा एवं राग, द्वेष, ममता, अहङ्कार और अज्ञान आदि दोषोंके कारण, तथा श्रद्धा और प्रेमकी कमीके एवं इसके रहस्य और प्रभावको न जाननेके कारण यह कष्टसाध्य प्रतीत हो सकता है।

प्र०—इस साधनमें रुकावट डालनेवाले दोषोंमें भी विशेष दोष कौन-कौनसे हैं?

उ०—श्रद्धा और प्रेमकी कमी, मान और बड़ाईकी इच्छा, मनकी चञ्चलता, अज्ञान, आसक्ति और अहङ्कार प्रभृति विशेष दोष हैं।

प्र०—इन सबके नाशके लिये साधकको क्या करना चाहिये?

उ०—विवेक और वैराग्यद्वारा सारे विषयभोगोंसे मनको हटाकर भगवान्‌की शरण रहते हुए, श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्काम कर्मयोगके साधनके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार चेष्टा करनेसे सम्पूर्ण दुःख और दोषोंका नाश होकर परम आनन्द और परम शान्तिकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है।

प्र०—'प्राणपर्यन्त चेष्टा' करना किसे कहते हैं?

उ०—कञ्चन, कामिनी, भोग और आरामकी तो बात ही क्या है, निष्काम कर्मयोगरूप धर्मके थोड़े-से भी पालनके मुकाबलेमें मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और अपने प्राणोंको भी तुच्छ समझना एवं परम तत्पर होकर उसके पालनके लिये सदा-सर्वदा प्रयत्न करनेको प्राणपर्यन्त चेष्टा करना कहते हैं।

प्र०—इस प्रकारकी चेष्टा तत्परतासे न होनेमें क्या कारण है?

उ०—इसके प्रभाव और रहस्यको तत्त्वसे न समझना।

प्र०—प्रभाव और रहस्यको तत्त्वसे जाननेके लिये क्या करना चाहिये?

उ०—इसके प्रभाव और रहस्यको बतलानेवाले गीतादि शास्त्रोंका मनन एवं इसके तत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंका सङ्ग करके उनके बतलाये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गके अनुसार कटिबद्ध होकर चेष्टा करनेसे इसके प्रभाव और रहस्यको मनुष्य तत्त्वसे जान सकता है।

जो इस निष्काम कर्मयोगके रहस्य और प्रभावको तत्त्वसे जान जाता है वह फिर इसको छोड़ नहीं सकता। तथा साधन करते-करते अहंता, ममता और आसक्ति आदि सारे दोषोंसे मुक्त हो जाता है, और उसका सारे संसारमें सदा-सर्वदा समभाव हो जाता है। इस प्रकार जिसकी समतामें निश्चल-स्थिर स्थिति है उसकी परमात्मामें ही स्थिति है क्योंकि परमात्मा सम है। इसलिये वह सारे दुःख, पाप और क्लेशोंसे छूटकर परम आनन्द और परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति जिसकी अन्तकालमें भी हो जाती है, वह भी जन्म-मृत्युके महान् भयसे छूटकर विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

(गीता २। ७२)

कल्याण

दृढ़ निश्चय करो कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं नाम नहीं हूँ। ये नाम-रूप मुझमें आरोपित हैं। इनसे मेरा वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं है। शरीरके नाशसे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ता, नामके अयशसे मेरा अयश नहीं होता। मैं अमर हूँ, अजर हूँ, निष्कलङ्क हूँ, शुद्ध हूँ, सनातन हूँ, सदा एकरस हूँ, कभी घटने-बढ़नेवाला नहीं हूँ। शरीरके उपजनेसे मैं उपजता नहीं, शरीरके नष्ट होनेपर मैं नष्ट नहीं होता। मैं नित्य हूँ, असङ्ग हूँ, अव्यय हूँ, अज हूँ। मेरे स्वरूपमें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता।

× × ×

जो कुछ परिवर्तन होता है, सब नाम-रूपमें होता है। नाम-रूपसे आत्मा सर्वथा पृथक् है। माताके गर्भमें जब जीवात्मा आया, उस समय उसका यह स्थूल शरीर (रूप) नहीं था, परन्तु जीवात्मा था, मरनेके बाद शरीर नष्ट हो जायगा, परन्तु जीवात्मा रहेगा, अतएव यह सिद्ध हुआ कि शरीर जीवात्मा नहीं है। इसी प्रकार माताके गर्भमें जीवका कोई नाम नहीं था। लोग कहते थे बच्चा होनेवाला है। यह भी पता नहीं था कि गर्भमें लड़की है या लड़का। जन्म होनेपर कहा गया, लड़का हुआ! कुछ समय बाद एक नाम रक्खा गया। माता-पिताको वह नाम नहीं रुचा, उन्होंने दूसरा सुन्दर नाम रख लिया। बड़े होनेपर वह नाम भी बदल दिया गया। इससे यह सिद्ध हो गया नाम भी जीवात्मा नहीं है।

× × ×

नाम-रूप दोनों ही कल्पित हैं—आरोपित हैं। परन्तु जीव इन्हींको अपना स्वरूप समझकर इनके लाभ-हानिमें अपनी लाभ-हानि समझता है और दिन-रात इन्हींकी सेवामें लगा रहता है। शरीरको आराम मिले, नामका नाम (कीर्ति) हो। बस, इसीके पीछे छोटे-बड़े सब पागल हैं। यह मोह है, अज्ञान है, उन्माद है, माया है। इससे अपनेको छुड़ाओ, अपने स्वरूपको सँभालो। याद रक्खो, जबतक इस नाम-रूपको अपना स्वरूप समझे हुए हो तभीतक जगत्के सुख-दुःख तुम्हें सताते हैं। जिस दिन जिस क्षण नाम-रूपको मिथ्या प्रकृतिकी चीज मान लोगे और अपनेको उनसे परे समझ लोगे, उसी क्षण प्रकृति-जन्य सुख-दुःखसे छूट जाओगे। सारा कार्य प्रकृतिमें हो रहा है, आत्मा निर्लेप है। आत्मा तुम्हारा स्वरूप है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो, शरीरके बीमार होनेपर तुम बीमार नहीं होते, शरीरके स्वस्थ होनेपर तुम स्वस्थ नहीं होते, शरीरके मोटे होनेपर तुम मोटे नहीं होते, शरीरके दुबले हो जानेपर तुम दुबले नहीं होते। तुम निःसङ्ग हो, सदा सम हो, तुम्हारे अन्दर ये द्वन्द्व हैं ही नहीं। सारे द्वन्द्व प्रकृतिमें हैं। परन्तु हाँ, जबतक तुम प्रकृतिमें स्थित हो तबतक प्रकृतिके सारे विकार तुम्हें अपने अन्दर भासते हैं, तुम प्रकृतिके रोगोंसे भरे हो—महान् रोगी हो, शरीरके मोटे-ताजे और पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी सर्वथा अस्वस्थ हो, तुम्हारी असली स्वस्थता—स्व (आत्मा) में स्थित होनेमें है। जो आत्मामें स्थित है, वही स्वस्थ है और जो प्रकृतिमें स्थित है, वही अस्वस्थ है।

× × ×

इसी प्रकार तुम्हारे नामका खूब यश फैलनेमें तुम्हारा कोई यश नहीं होता, नामकी बदनामीमें तुम्हारी कोई बदनामी नहीं होती। नामके अपमानमें तुम्हारा अपमान नहीं, और नामके सम्मानमें तुम्हारा सम्मान नहीं। तुम नामसे अलग हो। परन्तु जबतक नामको अपना स्वरूप समझते रहोगे, तबतक नामकी बदनामीमें तुमको महान् दुःख होगा और नामके नाम होनेमें सुख होगा। यही कारण है कि तुम आज नामका नाम कमानेमें अमूल्य जीवन खो रहे हो। नामका नाम हो भी गया तो वह किस कामका? कितने दिन ठहरेगा और तुम्हें उससे क्या लाभ हुआ? नामके नामसे बन्धन और भी दृढ़ होगा, तुम आत्मामें स्थित होकर स्वस्थ होनेकी अवस्थासे और भी दूर हट जाओगे।

× × ×

अतएव नाम-रूपका मोह छोड़कर—शरीरके आराम और नामके नामकी परवा छोड़कर अपने स्वरूपको सम्हालो। तुम सदा मुक्त हो, बन्धन तुम्हारे समीप भी नहीं आ सकता। सुख-दुःखके द्वन्द्व तुम्हारी कल्पनामें भी नहीं रह सकते। तुम आनन्दरूप हो, तुम सत् हो और तुम चेतन हो। तुम स्वयं शान्तिके खजाने हो, तुम पूर्ण हो, तुम अखण्ड हो, तुम अनन्त हो, तुम कूटस्थ हो, तुम ध्रुव हो और तुम एक सनातन हो।

× × ×

सारे संसारकी उत्पत्ति भगवान्‌से हुई है और भगवान् ही सारे जगत्‌में परिपूर्ण हैं। मनुष्य अपने-अपने कर्मोंद्वारा इन भगवान्‌की पूजा करके परम-सिद्धिरूप भगवान्‌को सहज ही प्राप्त कर सकता है। जो जिस कार्यको करता हो, जिसका जो स्वाभाविक कर्म हो, उसीको करे; न तो सबके कर्म एक-से हो सकते हैं और न एक-सा बनानेकी व्यर्थ चेष्टा ही करनी चाहिये। नाटकमें सभी पात्र एक ही पात्रका पार्ट करना चाहें तो खेल ही बिगड़ जाय। अपनी-अपनी जगह सभीकी जरूरत है और सभीका महत्त्व है। राजा और मजदूर दोनोंकी ही आवश्यकता है और दोनों ही अपना-अपना महत्त्व रखते हैं। इस-लिये कर्म न बदलो, मनके भावको बदल डालो। कर्म-का छोटा-बड़ापन बाहरी है। महत्त्व तो हृदयके भावका है। ऊँच-नीचका भाव रखकर राग-द्वेषपूर्वक पराये अहितके लिये लोकदृष्टिमें शुभकर्म करनेवाला नरकगामी हो सकता है, शास्त्रविधिके अनुसार किसी फलकी इच्छासे यज्ञ, दान, तप आदि सत्कर्म करनेवाला ऐश्वर्य और स्वर्गादि विनाशी फलों और भोगोंको प्राप्त कर सकता है, और स्वार्थको सर्वथा छोड़कर निष्काम भावसे श्रीभगवान्‌की प्रीतिके लिये भगवदाज्ञानुसार साधारण स्वकर्म करता हुआ ही मनुष्य परमसिद्धिरूप परमात्माको पा सकता है। मनुष्य इस प्रकार अपने प्रत्येक कर्मको मुक्ति या भगवत्प्राप्तिका साधन बना सकता है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव मनसे दम्भ, दर्प, अभिमान, मान, बड़ाई, काम, क्रोध, वैर, लोभ, असत्य, हिंसा आदि दोषों और दुर्गुणोंको निकालकर अथवा यथाशक्ति इन दोषों-का दमन करते हुए केवल भगवत्-प्रीत्यर्थ, भगवान्‌की आज्ञा समझकर और भगवान्‌की सेवाके भावसे अपने-अपने कार्योंको करो। हर एक कर्मसे भगवान्‌की पूजा करो; याद रक्खो—जिस कर्ममें काम, क्रोध, लोभ आदि नहीं हैं, जिसमें भगवान्‌को छोड़कर अन्य किसी भी फलकी आकांक्षा नहीं है, जो कर्म कर्मकी अथवा फलकी आसक्तिसे नहीं, किन्तु भगवान्‌के दिये हुए खाँगका खेल अच्छी तरह खेलनेकी इच्छासे निरन्तर भगवत्-स्मरण करते हुए भगवत्प्रीत्यर्थ सात्त्विक उत्साहपूर्वक किया जाता है उसी विशुद्ध कर्मसे भगवान्‌की पूजा होती है। यह पूजा अपने किसी भी उपर्युक्त दोषोंसे रहित विहित स्वकर्मके द्वारा प्रत्येक स्त्री-पुरुष सहज ही कर सकता है। केवल मनके भावको बदलकर कर्मका प्रवाह भगवान्‌की ओर मोड़ देनेकी जरूरत है। फिर प्रत्येक कर्म तुम्हारी मुक्तिका साधन बन जायगा और अपने सहज कर्मोंको करते हुए भी तुम भगवान्‌को प्राप्त कर जीवनको सफल कर सकोगे।

× × ×

यदि तुम व्यापारी या दूकानदार हो तो यह समझो कि मेरा यह व्यापार धन कमानेके लिये नहीं है, श्रीभगवान्‌की पूजा करनेके लिये है। लोभवृत्तिसे नहीं, जिन-जिनके साथ तुम्हारा व्यवहार हो उन्हें लाभ पहुँचाते हुए अपनी आजीविका चलानेमात्रके लिये व्यापार करो। याद रक्खो—व्यापारमें पाप लोभसे ही होता है। लोभ छोड़ दोगे तो किसी प्रकारसे भी दूसरेका हक मारनेकी चेष्टा नहीं होगी। वस्तुओंका तौल-माप, गिनतीमें ज्यादा लेना और कम देना, बढ़िया-के बदले घटिया देना और घटियाके बदले बढ़िया लेना, आढ़त-दलाली वगैरहमें शर्तसे ज्यादा लेना आदि व्यापारिक चोरियाँ लोभसे ही होती हैं। परन्तु केवल लोभ ही नहीं छोड़ना है, दूसरोंके हितकी भी चेष्टा करना है। जैसे लोभी मनुष्य अपनी दूकानपर किसी ग्राहकके आनेपर उसका बनावटी आदर-सत्कार करके उसे ठगनेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही तुम्हें कपट छोड़कर ग्राहकको प्रेमके साथ सरल भाषामें सच्ची बात समझाकर उसका हित देखना चाहिये। यह समझना चाहिये कि इस ग्राहकके रूपमें साक्षात् परमात्मा ही आ गये हैं, इनकी जो कुछ सेवा मुझसे बन पड़े वही थोड़ी है। यों समझकर व्यापार करोगे तो तुम श्री-भगवान्‌के कृपापात्र बन जाओगे। और वह व्यापार ही तुम्हारे लिये भगवत्प्राप्तिका साधन बन जायगा।

× × ×

यदि तुम दलाल हो तो दो व्यापारियोंको झूठी-सच्ची बातें समझाकर अपनी दलालीके लोभसे किसीको ठगाओ मत! दोनोंके रूपमें ईश्वरके दर्शन कर सत्य और सरल वाणीसे दोनोंकी सेवा करनेकी चेष्टा करो। याद रक्खो, अभी नहीं तो आगे चलकर तुम्हारी इस वृत्तिका लोगोंपर बहुत प्रभाव पड़ेगा। यदि न भी पड़े कोई हर्ज नहीं, तुम्हारी मुक्तिका साधन तो बन ही जायगा।

× × ×

यदि तुम राजा या जमींदार हो तो जिस किसी प्रकारसे कर या लगान आदि वसूल करके उसे मौज-शौकमें या अपनेसे ऊँचे शासकोंको खुश करनेमें खर्च करना छोड़ दो। अपनी प्रजाको—किसानोंको अपने ही परिवारके लोग समझकर उनके सुख-दुःखका खयाल करो, दुःखमें उन्हें न सताओ, अपने खर्चमें कमी करके भी अनुचित लगान माफ कर दो; याद रक्खो, तुम्हारे या तुम्हारे किसी कर्मचारीके द्वारा गरीब प्रजाके किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमीपर कोई जुल्म न होने पावे, गरीबोंका, स्त्रियोंका सम्मान और आदर करो, तथा उनके बच्चोंपर अपने बच्चों-जैसा ही प्यार करो; उनके आशीर्वादसे तुम फलो-फूलोगे—तुम्हें भगवत्प्राप्ति करनी हो तो जमींदारीके द्वारा ही उसे भी कर सकते हो, उसका तरीका यह है कि प्रजाके स्त्री-पुरुषोंको अपने अन्नदाता श्रीभगवान्‌का स्वरूप समझो, और अपने राजा या जमींदारके स्वाँगके अनुसार—जो भगवान्‌का ही दिया हुआ है—उनसे न्याय तथा सहजमें ही प्राप्त होने योग्य करको उन्हें सुख पहुँचानेकी नीयतसे—उन्हींके पूजार्थ वसूल करो, तदनन्तर मेहनतानेके रूपमें उसमेंसे कुछ अंश अपने खर्चके लिये रखकर शेष सब उन्हींकी सेवामें लगा दो। तुम्हें राजा या जमींदारका स्वाँग इसीलिये दिया गया है कि तुम प्रजाका धन उनसे लेकर व्यवस्थापूर्वक उन्हींके हितके लिये खर्च करो, उनकी सँभाल, रक्षा और सेवाका काम तुम्हारे जिम्मे है। उन्हें सताकर मौज उड़ानेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। इससे तो उनके साथ ही तुम्हारा दुःख भी बढ़ेगा ही। यदि तुम उन्हें भगवान्‌का स्वरूप समझकर अपनी योग्यताके अनुसार भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही भगवदाज्ञानुसार उनपर शासन करोगे तो उसीके द्वारा तुम्हें भगवत्प्राप्ति हो जायगी।

× × ×

तुम हाकिम हो तो अपने स्वाँगके अनुसार दयापूर्ण न्याय करो, तुम्हारे इजलासमें कोई भी मुक़दमा आवे तो उसे ध्यानसे सुनो, रिश्वत खाकर या अन्य किसी भी कारणसे पक्षपात और अन्याय न करो। प्रत्येक न्याय चाहनेवालेको भगवान्‌का स्वरूप समझकर न्यायरूप सामग्रीसे उसकी पूजा करो, उसे न्यायप्राप्तिमें जहाँतक हो सहूलियत कर दो। और सेवाके भावसे ही अपनेको मैजिस्ट्रेट या जज समझो, अफसर नहीं। तुम्हारी इसी निष्काम सेवासे तुमपर भगवान्‌की कृपा होगी और तुम भगवत्प्राप्ति कर सकोगे। तुम वकील हो तो पैसेके लोभसे कभी अन्यायका पैसा मत लो, झूठी गवाहियाँ न बनाओ, किसीको तंग करनेकी नीयत न रक्खो। प्रत्येक मवक्किलको भगवान्‌का स्वरूप समझकर भगवत्सेवाके भावसे उचित मेहनताना लेकर उनका न्यायपक्ष ग्रहण करो। तुम चाहो तो भगवान्‌की बड़ी सेवा कर सकते हो। और उसी सेवासे तुम्हें भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

× × ×

तुम डाक्टर या वैद्य हो तो रोगीको भगवान्‌का स्वरूप समझकर उसके लिये सेवाके भावसे ही उचित पारिश्रमिक लेकर औषधकी व्यवस्था करो; लोभवश रोगीको सताओ नहीं। गरीबोंका सदा ध्यान रक्खो। तुम अपनी निःस्वार्थ सेवासे भगवान्‌के बड़े प्यारे बन सकते हो और भगवान्‌की प्राप्ति कर सकते हो।

× × ×

तुम पुलिस अफसर हो तो अपनेको जनतारूप भगवान्‌का सेवक समझो, किसीको न गाली दो, न सताओ; लोभ, घमण्ड, अभिमान या द्वेषवश किसीको कभी भूलकर भी व्यर्थ तंग न करो। सेवाके भावसे ही सारे कार्य करो। तुम अपना सुधार करके इस प्रकार भगवत्सेवामें लग जाओ तो अपने इसी पुलिसके कामसे तुम्हें भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

× × ×

तुम नेता या उपदेशक हो तो अपनी पूजा-प्रतिष्ठा न चाहो—सच्चे अनुभवयुक्त मार्गपर लोगोंको लगाओ, दलबन्दी न करो, सम्प्रदाय न बनाओ। सबका हित हो, वही कार्य अभिमान, लोभ और मान-बड़ाईकी इच्छा छोड़कर करो—तुम्हारी इसी सेवासे भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें अपना पद दे देंगे।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम मालिक हो तो नौकरोंको सताओ मत, अभिमानवश अपनेको बड़ा न समझो, अपने स्वाँगके अनुसार नौकरोंसे काम लो परन्तु मन-ही-मन उन्हें भगवान्‌का स्वरूप समझकर उनके हितरूपी सेवा करनेकी चेष्टा करते रहो। मनसे किसीका तिरस्कार न करो। लोभवश किसीकी न्याय्य आजीविकाको न काटो। उनके भलेमें लगे रहो। इसीसे तुमपर भगवान् कृपा करेंगे और तुम्हें अपना परमपद प्रदान करेंगे।

× × ×

इसी प्रकार और भी सब लोगोंको अपने-अपने कर्मोंद्वारा भगवान्‌की निष्काम पूजा करनी चाहिये।

'शिव'

ब्रह्मानन्द

(लेखक—कृष्णवियोगी योगिराज परमहंस श्रीब्रह्मानन्दजी)

यह लेख उन प्रेमीजनोंके लिये है जो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द प्यारेको पूर्णब्रह्म, सच्चिदानन्द, अद्वितीय, अविनाशी, अजन्मा, स्वयंप्रकाश जानकर हरिकीर्तन करते हैं।

(क) संसार—ब्रह्माण्ड जगत्‌का विस्तार पचास करोड़ योजनका है। यह योगमायाका रचा हुआ, जड़, परतन्त्र, एक दिनकी मिकदारवाला है।

(ख) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सत्-चित्-आनन्दकन्द, अविनाशी, स्वयंप्रकाश, अद्वितीय, अव्यक्त, एक, अजन्मा, स्वयं प्रकट होकर लीला करनेवाले, नित्य चेतन, गुणसे अतीत, निर्गुण, स्वतन्त्र, सदा रहनेवाले, योगसे योगियोंको मिलनेवाले हर समय मौजूद हैं।

(ग) जीवात्मा व्यक्त, शरीरधारी, अनेक, अविनाशी, परतन्त्र, अपने काम करनेमें स्वतन्त्र, भोगनेमें परतन्त्र, गुणोंमें बँधा हुआ, भगवान्‌का अंश, चेतन तत्त्व और अल्पज्ञ है।

यह संसार एक स्वप्नके समान है। जब अपने अन्तःकरणमें स्वयंज्योतिस्वरूप गोपालको रख ले उस वक्त यह जगत् एक स्वप्न-जैसा मालूम होने लगता है। यहाँ हर कोई चन्द दिनोंका मेहमान है, इसमें भूलकर भी न फँसना चाहिये। इस गहरे दलदलमें न धँसना चाहिये। यदि चित्तको आनन्द देनेवाली कोई वस्तु है, तो वह श्रीकृष्णनाम ही है। मुझे दिनरात काम है, मैं संसारी धन्धोंमें पड़ना नहीं चाहता, मुझको लेखकी आज्ञा नहीं है क्योंकि किसी समय आनन्दकन्द अपने आनन्दसे नहीं छोड़ते इस कारण लिखनेकी फुरसत कभी नहीं मिलती। किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके एक प्रेमी भक्तने मजबूर किया; उनके प्रेमको देखकर आनन्दकन्द प्यारेसे आज्ञा लेकर यह लेख उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके अर्पण किया जाता है। बार-बार विचार करो; हर समय याद रक्खो—

यह पाञ्चभौतिक शरीर एक दिन प्राणवायुसे रहित होकर जड़ हो जावेगा फिर जीवको हरि-शरण-के बिना चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगाते हुए इस ब्रह्माण्डमें भटकना पड़ेगा, महान् दुःख-सुख भोगने पड़ेंगे, इस कारण मनुष्यजन्मको सर्वोपरि समझकर अपने हाथों अपना भला करो! विचारसे संसारको मिथ्या जानकर विषयविरक्त हो सको तो उत्तम है। प्रत्येक अमोलक श्वासको हरि-स्मरणमें खर्च कर दो! मौतको याद रखनेसे मन हरि-स्मरणमें लग जाता है।

वाए नादानी कि वक्ते मरके वह साबित हुआ।
ख्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया वक्त फिर हाथ आता नहीं—
सदा दौर दौरा दिखाता नहीं!

प्रेम-भक्ति

श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति उपदेश देनेसे नहीं होती, यह वह वस्तु है जो मनमें पैदा होकर वहीं फलती-फूलती है, और फिर बाहर निकलकर श्रीकृष्णरूपी पालनेमें झूलती है—

कृष्ण कृष्ण रटते रहो—बिना प्रेम क्या होता।
वही कृष्णको पाता है—जो सब उसपर है खोता॥
प्रेमका उसके पार नहीं है—प्रेमीसे वह करता यारी।
भक्तोंकी वह पूजा करता—ऐसा है वह प्रेम-पुजारी॥

परोक्षज्ञानद्वारा जब कृष्ण-वियोगी अपने अन्तःकरणमें आनन्दकन्दको धारण करता है तब भगवान् आनन्दकन्द अपने अपरोक्ष स्वरूपका दरवाजा खोलनेके लिये तत्त्वज्ञान-दीपक प्रकाशित करते हैं। परन्तु अन्तर्यामीरूपसे तो हर समय अपने मिलनेकी प्रेरणा करते रहते हैं।

जब कृष्ण-वियोगी श्रीकृष्णकी पहचान करता है तो पागल हो जाता है, परन्तु आनन्दकन्द, योगक्षेम प्राप्त कराके उसको स्वेच्छाचारी कर देते हैं और आप भी हर समय उसकी खबरगीरी रखते हैं, जिससे कोई विघ्न उसपर कारगर नहीं होता! इस शरीरको पाखण्डियोंने बहुत दुःख दिया परन्तु भगवान्ने हर जगह हमको आगाह कर दिया, अर्थात् बचा लिया।

दर्शनी योगीको चाहिये कि योगक्षेम प्राप्त करके सदाके लिये छुट्टी पा लेवे! क्योंकि जबतक प्रभु-साक्षात्कार नहीं होता, तभीतक संसारका विषय-भोग संसारचक्रमें डालता है, साक्षात्कार होनेपर सदाके लिये आनन्दस्वरूप प्यारेसे मिलते रहो! जीवन्मुक्त हो जाओ, रमण करते रहो, हँसते-खेलते रहो, मगर भगवान्की आज्ञाके अनुसार काम करते रहो! आज्ञाके भंगसे भगवान् आनन्दकन्द योगीको भी परेशान करते हैं, जिस प्रकार गोपियोंको किया था।

प्रेम (इश्क़) दो हैं—मजाज़ी और हक़ीक़ी। लेकिन हक़ीक़ी प्रेमके सामने मजाज़ीकी कोई कदर नहीं।

अदालत इश्क़में अरज़ी सनम तुमपर लगायेंगे।
जलाकर ख़ाक कर डाला यही दावा लिखायेंगे॥
न लेंगे माल मनकूला न लेंगे गैर मनकूला।
फ़क़त एक आपकी कुर्की अदालतसे करायेंगे॥

मगर आनन्दकन्द नटवर और भी पास आकर उसको अपने आनन्दस्वरूपमें पागल बनानेके लिये खूब खेल दिखलाते हैं।

रूप

है सख-सा क़द गुंचा हैं दहन, गुलेज़ार हैं जिनके गुल खंदाँ।
हैं माहेतवाँ और बादेफशाँ—दुरफ़िशाँ पुरफ़िशाँ व सरफ़िशाँ॥

तड़प जाता है दिल पहलूमें लेना साँस मुशकिल है।
लटक तिरछी नज़र पड़ती है जब बाँकेबिहारीकी।
न मुझको ताब कहनेकी, न ताकत बयाँ करनेकी॥

परम रहस्य

आनन्दकन्दके नासिकाग्रबिन्दुका मोती तो अजीब ही बहार दिखला देता है, वह तो प्राणप्रीतमको बस एक ही कर देता है, न मालूम शरीर क्यों बैठा रहता है; नहीं, नहीं, वह भी तो मस्त होकर गिर पड़ता है, उसको अपनी ही सुध-बुध नहीं रहती, फिर भला बैठना कैसे?

सच है प्रेमियोंका यही हाल होता है!

जिसका दिल नंदनंदनसे लगा हो उसको कब आती है नींद।
करवटें लेते ही लेते साफ़ उड़ जाती है नींद॥

योगीको चाहिये कि आसनजित् होकर निद्राजित् हो जावे, फिर रजोगुण और तमोगुण दोनों भाग जाते हैं।

आजकल कलियुगमें संसार और साधु दोनोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिको प्रकृतिने घेर लिया है जिससे वे सिवा दम्भ-पाखण्डके प्रायः दूसरा काम ही नहीं करते।

नारि मुई गृह संपति नासी। मूँड मुँडाय भये संन्यासी॥
भूखे मरें गृहस्थ बेचारे। मालपुअन पै हाथ हमारे॥

अब तो आरामसे गुजरती है,
आकबतकी खबर खुदा जाने।

संसारके जीवोंने भगवान्‌को केवल निराकार समझ रक्खा है। जिसकी वजहसे मनमानी पाखण्ड-की रचना करके संसार और जीव दोनोंको भवसागरमें ही बारम्बार डाला जा रहा है। इस कारणसे तीनों तापोंसे संसारी जीव तपकर विद्याहीन, बुद्धिहीन, आत्महीन, दीन और धनहीन होते चले जा रहे हैं।

हमको तो ऐसी मोहिनी मूरतिने अपने वशमें कर रक्खा है वरना हम आजतक किसीके काबूमें नहीं आये! इस वजहसे हमारे मालूम होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भगवान्‌का प्रेम—अनन्य-प्रेम सारे कुटुम्ब, परिवार, हशमत, दौलत, इज्जत, शान-शौकतको लात मारकर होता है! दम्भ-पाखण्डसे नहीं!

परमहंस श्रीस्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूतके उपदेश

(प्रेषक—श्रीरामसरनदासजी)

(१) जैसे मूली खानेवाले मनुष्यको मूलीकी डकार आया करती है इसी प्रकार विषयी मनुष्यको निरन्तर विषय-चिन्तन करते रहनेसे विषय-संस्कारोंका उद्‌गार उठा करता है। श्रीभगवन्नाम तथा श्री-भगवद्रूपमाधुर्यके ध्यान बिना विषय-संस्कार दूर नहीं हो सकता तथा मनुष्य-शरीर पवित्र नहीं हो सकता। अतएव मनुष्यमात्रको चाहिये कि श्रीभगवद्‌ध्यान और श्रीहरिनाम-संकीर्तनका नियमितरूपसे सेवन करे। बस, जीवोंके काम-क्रोधादि विषयतृष्णारूप हृद्रोगोंको दूर करनेके लिये यही औषध है। इसी सम्बन्धमें प्रातःस्मरणीय श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

जानिय तबहि जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेक मोह भ्रम भागा।
तब रघुबीर चरन अनुरागा॥

(२) श्रीकृष्ण-प्रेममें पागल हो जाओ और संसार तथा सांसारिक भोगोंसे उदासीन रहो। श्रीकृष्ण भजो। यही सार है, यही त्रिकालमें सत्य है।

(३) जब अन्तिम समयमें कफसे कण्ठ रुक जाता है तब श्रीकृष्णनामका मुखसे उच्चारण नहीं हो सकता। इसलिये बाल्यावस्थासे ही श्रीकृष्णनाम रटन करना चाहिये जिससे कि प्राण निकलनेके समय जीवनभरके अभ्यासके कारण स्वाभाविक ही कण्ठसे श्रीकृष्णनाम निकले।

(४) श्रीकृष्ण अनादि सनातन धर्मवृक्ष हैं, जिसमें भक्तविहग-कुल निरन्तर निश्चिन्ततासे बैठे हुए श्रीकृष्णकीर्तन करते हैं और उस वृक्षका प्रेमामृत-रूप फल खाते हुए आनन्दमें मस्त रहते हैं। उनको नास्तिक उल्लुओंकी कोई परवा नहीं है।

(५) पापी मनुष्य मनमें यह विचार कर सकता है कि 'मैं बेधड़क पाप करता रहूँ, मुझे दण्ड देनेवाला कौन है।' परन्तु यह उसकी भूल है, क्योंकि यमपुरमें सबको अपने-अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। श्रीमद्भागवतमें भी नरकका वर्णन करते हुए कहा गया है कि जो स्त्री वा पुरुष परपुरुष अथवा परायी स्त्रीसे व्यभिचार करते हैं वे यहाँ तो लोगोंकी आँखोंमें धूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल सकते हैं, परन्तु विश्वकर्ता श्रीकृष्णसे नहीं छिपा सकते। उन स्त्री या पुरुषोंको नरकमें अग्निसे तपाकर लाल किये हुए लौहनिर्मित पुरुष अथवा लौहनिर्मित स्त्रीसे बाँध दिया जाता है। यौवनके मदमें मत्त होकर जीव विचारता है कि मेरा यह रूप, रंग, देह सदा विषय भोग करनेके लिये ऐसा ही बना रहेगा। इसी मोहको दूर करनेके लिये पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यजी महाराजने कहा है—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातन्तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते॥

(६) श्रीकृष्णनाम नित्य है, श्रीकृष्णधाम नित्य है और श्रीकृष्णरूप नित्य है।

(७) ऐ सांसारिक मनुष्यो! तुम्हारा असली आनन्द तुम्हारे हृदयकमलमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णमें ही है। तुम उस आनन्दको भूलकर क्यों श्वानकी नाईं विषयरूप रुधिर तथा मांसशून्य सूखी हड्डियोंको चबा-चबाकर अपने मुँहसे खून निकालनेमें आनन्द मानते हो। देखो, देखो श्रीकृष्णभगवान् मृदु मुस्कराते हुए तुमको दुष्कर्मोंसे निवृत्त करनेके लिये अँगुली उठाकर चेतावनी दे रहे हैं, वे कह रहे हैं, रे जीव! क्यों इस झूठे आनन्दमें सुख मान रहा है। अरे! तेरे असली आनन्दका खजाना तो मैं ही हूँ।

(८) श्रीकृष्ण-कीर्तन करो, श्रीकृष्ण-भजन करो, श्रीकृष्ण-भक्तोंका संग करो, दुष्ट मनुष्योंका संग सर्वथा त्याग दो।

(९) जैसे कामी मनुष्यसे स्त्रीके बिना नहीं रहा जाता, लोभी मनुष्यसे दाम बिना नहीं रहा जाता, वैसे ही श्रीकृष्णप्रेमियोंका यह व्यसन है कि उनसे श्रीकृष्ण-कीर्तन बिना नहीं रहा जाता।

(१०) रोगी हो, भोगी हो, सुखी हो चाहे दुखी हो, इस संसारमें श्रीकृष्ण-भजन, श्रीकृष्ण-कीर्तन बिना किसीका निस्तार नहीं है।

(११) श्रीकृष्ण-कीर्तनमें आबालवृद्धवनितादि सबका अधिकार है। कलिपावनावतार राधाद्युति सुवलितपुरट सुन्दर प्रेम और महाभावकी मूर्ति श्रीगौराङ्गदेवने कलिहत जीवोंकी दुर्दशा देखकर आपामर निखिल जीवोंका उद्धार करनेके लिये श्रीनवद्वीपधाममें अवतीर्ण होकर अयाचितरूपसे घर-घरमें श्रीहरिनाम-प्रेम वितरण किया। उस समय श्रीकृष्ण-कीर्तनका इतना प्रचार था कि नवद्वीपके नागरिकगण सब अपने-अपने घरोंको सायंकालके समय मंगल कलश, केलोंके खम्भ, तथा बन्दनवार आदिसे सजाकर सुन्दर घृतदीप जलाकर लाखों मनुष्योंके साथ नगर-संकीर्तनमें पाखण्डियोंका दलन करते हुए प्रेमोन्मत्त श्रीश्रीगौर-निताईकी अभ्यर्थना करते थे। समस्त नगर 'श्रीहरि बोल, श्रीहरि बोल' की पवित्र ध्वनिसे गूँज उठता था। पाखण्डियोंका हृदय दहल जाता था। ऐसे श्रीश्रीहरि-नाम-संकीर्तनके जीवनदाता श्रीमान् महाप्रभु गौराङ्ग-देवकी शरणमें श्रीकृष्ण-कीर्तनप्रेमियोंको अवश्य आना चाहिये। जिनकी कृपासे उनमें भी वही शक्ति, वही बल, वही तेज, वही प्रभाव और वही श्रीकृष्ण-प्रेम हो, जिससे कि वे श्रीहरिनामविरोधी नास्तिकोंके बकवादकी परवा न करते हुए निरन्तर स्वयं श्रीकृष्ण-कीर्तन करें और दूसरोंसे करावें तथा प्रचार करें।

(१२) जगत् ध्वन्यात्मक है, ध्वनिसे ही जगत्की उत्पत्ति है, 'ॐ' प्रणव ही अनाहत ध्वनि है। अनाहत ध्वनि प्रेमी भक्तोंके मधुरकण्ठसे राम, कृष्ण, शिव आदि श्रीभगवन्नाम अर्थात् संकीर्तनरूपसे उच्चारित होता है, आकाशमें ध्वनि वायुमण्डलाकारसे अणु-परमाणुओंमें आघात प्राप्त होकर स्वरूपाकार उत्पन्न करता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका भी यही मत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनि यदि करुणारससे भरी हुई हो तो स्वरूपाकार भी करुण होता है। यदि ध्वनि रुद्ररसात्मक हो तो स्वरूपाकार रौद्र होता है। जब प्रेमाश्रुओंसे नयन भरकर भक्त श्रीकृष्णकीर्तन करते हैं तब करुणावतार श्रीकृष्ण संकीर्तनध्वनिसे तथा भक्तके प्रेमसे प्रसन्न होकर भक्तके कण्ठोच्चारित ध्वनिसे स्वरूपाकार बननेमें जो कुछ त्रुटि रह जाती है उसे पूर्ण करके कृपया अपनी माधुरी मूरतिका दर्शन देकर भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। इसीलिये कीर्तन-मण्डलमें भक्तोंको श्रीहरिके दर्शन होते हैं। बस, संकीर्तनका यही असली रहस्य है।

(१३) जैसे शान्त सरोवरके जलमें तटस्थ वृक्षके असत्य प्रतिबिम्ब सत्य वृक्षावलियों-से सुन्दर दीखते हैं और जैसे आडम्बरशून्या स्वल्पाभरणा सती रमणीके सौन्दर्यसे वारविलासिनी पूर्णाभरणा वेश्याकी कपट-शोभा अधिक चमकीली मालूम होती है, एवं जैसे शुद्ध राग-रागिनियोंके शास्त्रविहित आलापकी अपेक्षा अशास्त्रीय विकृत एक रागिनीकी तान दूसरी रागिनीमें युक्त करके गजल तथा ठुमरी आदिकी नकली तानें अज्ञ साधारण मनुष्योंको अधिक प्रिय मालूम होती हैं इसी प्रकार इस संसारमें अज्ञ जीवोंको झूठी मायाका विस्तार मणि-माणिक्यखचित सुन्दर महल, अप्सरा, विनिन्दिता स्त्री, नवनीतसुकोमल बालक, दुग्धफेनवत् शय्या इत्यादि झूठे विषय-भोगोंकी चमक सत्य प्रेमस्वरूप श्रीश्यामसुन्दरकी माधुरी मूरतिसे भी अधिक प्रिय मालूम होती है, बस, इस प्रकार असत्यको सत्य मानना ही माया है। श्रीकृष्ण-भजन-कीर्तन बिना इस माया-सागरके पार कोई नहीं जा सकता। स्वयं परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने मुखारविन्दसे मोहग्रस्त अर्जुनको समझाते हुए कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७। १४)

'यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है परन्तु जो पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

(१४) *प्रश्न*—श्रीकृष्णकीर्तन क्यों करना चाहिये?

उत्तर—श्रीकृष्ण-कीर्तन इसलिये करना चाहिये कि कीर्तन करनेसे मन निर्मल और पवित्र हो जाता है, कुवासना दूर चली जाती है, ऊँचे स्वरसे संकीर्तन करनेसे हृदयपर गहरी छाप पड़ जाती है और जैसे वृक्षोंमें आकर बसे हुए पक्षी ताली बजा-बजाकर आवाज करनेसे उड़ जाते हैं वैसे ही ऊँचे स्वरसे ताली बजा-बजाकर श्रीकृष्ण-कीर्तन करनेसे देहरूपी वृक्षपर बैठे हुए पापरूपी पक्षी उड़ जाते हैं। पाप दूर होनेसे ही उच्चः हरिध्वनि वायुमण्डलमें आघात-प्रतिघात-द्वारा नामी श्रीभगवत्स्वरूपको प्रकट कर दिखाती है।

(१५) प्र०—कीर्तन नित्यप्रति क्यों करना चाहिये?

उ०—जिस प्रकार एक दिन दातुन करनेसे सदाके लिये मुख साफ नहीं रहता तथा एक दिनके स्नान करनेसे सदाके लिये शरीरका मैल दूर नहीं होता इसी प्रकार एक रोजके श्रीश्रीकृष्ण-कीर्तन करनेसे सदाके लिये पाप, विषयतृष्णा, भोग, विलास इत्यादि मनो-मालिन्य दूर नहीं होते। इसलिये प्रतिदिन श्रीकृष्ण-कीर्तन करना चाहिये, जिससे कि प्रतिदिन किये हुए पाप नष्ट होते रहें।

(१६) प्र०—भक्त किसे कहते हैं?

उ०—जिनके दर्शन करनेमात्रसे अपने-आप ही श्रीकृष्ण-नाम मुखसे निकलने लगे तथा श्रीकृष्ण-ध्यान होने लगे, वही श्रीकृष्णका भक्त है।

(१७) प्र०—श्रीकृष्णभगवान्‌के दर्शन किस प्रकार होते हैं?

उ०—जब भक्त सब कुछ भूलकर श्रीकृष्ण-भगवान्‌का नाम रो-रोकर आर्तस्वरसे लेते हैं तब श्रीकृष्णभगवान् भक्तको दर्शन देते हैं।

(१८) प्र०—महात्माओंके दर्शनसे क्या लाभ है?

उ०—महात्माओंके दर्शनमात्रसे ही लोग पवित्र हो जाते हैं और अपने किये हुए पापोंके लिये पश्चात्ताप करने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[भाग ८ पृ० १४०२ से आगे]

प्रेम-भक्तिके लक्षण और उदाहरण

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥१५॥

१५–अब नाना मतोंके अनुसार उस भक्तिके लक्षण कहते हैं ।

विभिन्न आचार्योंने भक्तिका स्वरूप भिन्न-भिन्न रूपसे बतलाया है, पहले उनका वर्णन करके देवर्षि नारदजी अपना मत दिखलाना चाहते हैं ।

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ॥१६॥

१६–पराशरनन्दन श्रीव्यासजीके मतानुसार भगवान्‌की पूजा आदिमें अनुराग होना भक्ति है।

अपने तन, मन, धनको भगवान्‌की पूजन-सामग्री समझना और परम श्रद्धापूर्वक यथाविधि तीनोंके द्वारा भगवान्‌की प्रतिमाकी अथवा विश्वरूप भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये । भगवत्-पूजामें मन लगनेसे संसारके बन्धनकारक विषयोंसे मन अपने आप ही हट जाता है । बाह्य और मानस दोनों ही प्रकारसे भगवान्‌की पूजा होनी चाहिये । भगवत्‌की पूजासे भगवान्‌का परमपद प्राप्त होता है—

श्रीविष्णोरर्चनं ये तु प्रकुर्वन्ति नरा भुवि ।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम् ॥
(विष्णुरहस्य)

'इस धरातलमें जो लोग भगवान्‌की पूजा करते हैं वे सनातन आनन्दमय परमपदको प्राप्त होते हैं ।'

कथादिष्विति गर्गः ॥१७॥

१७–श्रीगर्गाचार्यके मतसे भगवान्‌की कथा आदिमें अनुराग होना ही भक्ति है ।

श्रीभगवान्‌की दिव्य लीला, महिमा, उनके गुण और नामोंके कीर्तन तथा श्रवणमें मन लगाना निस्सन्देह भक्तिका प्रधान लक्षण है । संसारमें अधिकांश मनुष्य तो ऐसे हैं जिन्हें भगवान् और भगवान्‌की कथासे कोई मतलब ही नहीं है । दिन-रात विषय-चर्चामें ही उनका जीवन बीतता है । न तो वे कभी भगवान्‌का गुणगान करते हैं और न उन्हें भगवच्चर्चा सुहाती है । 'स्रवन न रामकथा अनुरागी ।' इस अवस्थामें जिन मनुष्योंका मन भगवान्‌के गुणानुवाद सुनने और कहनेमें लगा रहता है वे अवश्य ही भक्त हैं । सूत्रकार आचार्य श्रीनारदजीने स्वयं महर्षि वेदव्याससे कहा है कि—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥
(श्रीमद्भा० १ । ५ । २२)

'विद्वानोंने यही निरूपित किया है कि भगवान्‌का गुणानुवाद-कीर्त्तन तप, वेदाध्ययन, यज्ञ, मन्त्र, ज्ञान और दान आदि सबका फल देनेवाला है ।' और तप आदिका फल भी भगवत्-कीर्तन ही है । श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

राम कथा सुंदर करतारी । कलिमलबिहँग उड़ावनहारी ॥
भवसागर चह पार जो जावा । रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी कल्याणकारिणी हरिकथाको जो कान नहीं सुनते वे कान साँपकी बाँबीके समान हैं और जो जीभ गान नहीं करती वह मेंढककी जीभके समान केवल टर्र-टर्र करनेवाली है ।

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना । स्रवनरंध्र अहिभवन समाना॥
जो नहिं करइ रामगुनगाना । जीह सो दादुरजीह समाना ॥

अतएव श्रीहरिकथामें यथार्थ अनुराग होना भक्ति है और इस भक्तिसे भगवान्‌की प्राप्ति निश्चय ही हो जाती है ।

आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ॥१८॥

१८–शाण्डिल्य ऋषिके मतमें आत्मरतिके अविरोधी विषयमें अनुराग होना ही भक्ति है ।

अविच्छिन्नरूपसे शुद्ध आत्मस्वरूपमें रत रहना ही आत्मरति है; इस आत्मरतिमें नित्य स्थित रहनेको ही अव्यक्तोपासक महानुभाव भक्ति कहते हैं । श्रीशङ्कराचार्यजीने कहा है—

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥

आत्मस्वरूपसे प्रत्येक प्राणीमें श्रीभगवान् ही विराजमान हैं अतः उन सर्वात्मामें रति होना वस्तुतः भगवान्‌की भक्ति ही है । और ऐसी भक्ति करनेवालेको मुक्ति प्राप्त होनेमें कोई सन्देह नहीं ।

नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥१९॥

१९–परन्तु देवर्षि नारदके मतसे अपने सब कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना और भगवान्‌का थोड़ा-सा भी विस्मरण होनेमें परम व्याकुल होना ही भक्ति है ।

नारदजीको महर्षि व्यास, गर्ग और शाण्डिल्य-कथित भक्तिके लक्षणोंसे कोई विरोध नहीं है । भगवान्‌की पूजा करना, भगवान्‌के गुणगान करना और सर्वात्मरूप भगवान्‌में प्रेम करना उचित और आवश्यक है । व्यासजीको तो भगवद्‌गुणगानमें श्रीनारदने ही लगाया था । अतः इन लक्षणोंका खण्डन करने या इन्हें तुच्छ बतलानेके लिये नहीं, परन्तु इन्हींको और भी पुष्ट करनेके लिये नारदजी इन सभी लक्षणोंसे युक्त एक सर्वाङ्गपूर्ण भक्तिका लक्षण निर्देश करते हुए कहते हैं कि अपने समस्त कर्म, (वैदिक और लौकिक) भगवान्‌में अर्पण करके प्रियतम भगवान्‌का अखण्ड स्मरण करना और पलभरके लिये भी उनका यदि विस्मरण हो जाय (प्रियतमको भूला जाय) तो परम व्याकुल हो जाना यही सर्वलक्षण-सम्पन्न भक्ति है । इसमें पूजा-कथामें अनुराग और विश्वात्मा भगवान्‌में रति तो रहती ही है । भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें सब प्रकारके योगियोंमें इन्हीं लक्षणोंसे युक्त भक्ति-योगीको सर्वोत्तम बतलाया है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥
(६ । ४६-४७)

'तपस्वियोंसे, शास्त्र-ज्ञानियोंसे और सकाम कर्मियोंसे भी योगी श्रेष्ठ है अतएव हे अर्जुन ! तू योगी बन । परन्तु सम्पूर्ण योगियोंमें भी वह भक्ति-योगी मेरे मतमें परम श्रेष्ठ है जो मुझमें श्रद्धावान् है और अन्तरात्माको मुझमें लगाकर निरन्तर मुझे भजता है ।'

भगवान्‌ने फिर आज्ञा की है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
(गीता ८ । ७)

'इसलिये हे अर्जुन ! तू सब समय (बिना विराम) मेरा स्मरण कर और (स्मरण करता हुआ ही मेरे लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही) युद्ध कर । इस प्रकार मुझमें ही मन-बुद्धि अर्पण करके तू निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

मानापमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुःख आदिकी परवा न करके आसक्ति और फलकी इच्छा छोड़कर, शरीर और संसारमें अपने लिये अहंता-ममतासे रहित होकर एकमात्र परम प्रियतम श्रीभगवान्‌को ही परम आश्रय, परम गति, परम सुहृद् समझकर अनन्य-भावसे, अत्यन्त श्रद्धाके साथ, प्रेमपूर्वक निरन्तर तैल-धारावत् उनके नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते हुए परमानन्दमें मग्न रहना और इस प्रकार चिन्तनपरायण रहते हुए ही केवल उन परम प्रियतम भगवान्‌के लिये उनकी रुचि तथा इच्छाके अनुसार उन्हींके प्रीत्यर्थ उन्हींको सुख पहुँचानेके दृढ़ और परम स्वार्थसे प्रेरित होकर सर्वथा निःस्वार्थ-भावसे समस्त दैहिक, वाचसिक और मानसिक कर्मोंका आचरण करना । यदि किसी कारणवश क्षणभरके लिये भी उनका चिन्तन-स्मरण छूट जाय तो जलसे निकाली हुई मछलीसे भी अनन्त गुणा अधिक व्याकुलताका अनुभव करना, यही सर्वोच्च भक्ति है ।

ऐसा पूर्ण समर्पणकारी प्रेमी भक्त त्रैलोक्यके राज्य-सुखकी तो बात ही क्या है, अपुनरावर्त्ती मोक्षके लिये भी, किसी भी हालतमें अपने प्रियतम भगवान्‌का स्मरण छोड़ना नहीं चाहता । भगवान् ऐसे भक्तकी प्रशंसा करते हुए भक्त उद्धवसे कहते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः ।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥
निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्-
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । १५—१७)

'हे उद्धव ! इस प्रकारके तुम भक्त मुझको जैसे प्रिय हो, वैसे प्रिय ब्रह्मा, शङ्कर, बलराम, लक्ष्मी और अपनी आत्मा भी नहीं है । ऐसे किसी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले, शान्त चित्त, निर्वैर, सर्वत्र सम-भावसे मुझको देखनेवाले और निरन्तर मेरा मनन करनेवाले प्रेमी भक्तोंकी चरणरजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं सदा-सर्वदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ । मुझमें चित्तको अनुरक्त कर रखनेवाले, सर्वस्व मुझको अर्पण करके अकिञ्चन बने हुए ऐसे शान्त, और मेरे नाते सब जीवोंके प्रति स्नेह करनेवाले महात्मा जिस परमसुखका अनुभव करते हैं, उस निरपेक्ष परमानन्दको दूसरे लोग नहीं जानते ।' बस, श्रीनारदजीके मतसे यही भक्ति है, ऐसा भक्त समस्त आचरण श्रीभगवान्‌के अर्पण करके अनवच्छिन्नरूपसे भगवत्स्मरण करता रहता है; और कहीं तनिक भी भूल जानेपर परम व्याकुल हो जाता है ।

अस्त्येवमेवम् ॥२०॥

२०—ठीक ऐसा ही है ।

देवर्षि नारद पिछले सूत्रमें बतलाये हुए सिद्धान्तकी दृढ़ताके लिये कहते हैं कि वस्तुतः भक्तिका यही स्वरूप है !

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥२१॥

२१—जैसे व्रजगोपियोंकी (भक्ति) ।

भक्तिका लक्षण बतलाकर अब देवर्षि उदाहरणमें प्रेमिकाशिरोमणि प्रातःस्मरणीया श्रीगोपिकाओंका नाम लेते हैं । वस्तुतः गोपियोंकी ऐसी ही महिमा है, जगत्‌में ऐसा कौन है जो गोपियोंके प्रेमके तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बखान कर सके? उनका तन, मन, धन, लोक, परलोक सब श्रीकृष्णके अर्पित था, वे दिन-रात श्रीकृष्णका ही चिन्तन करतीं, गद्गद वाणीसे निरन्तर श्रीकृष्णका ही गुणगान करतीं और सर्वत्र सर्वदा श्रीकृष्णको ही देखा करती थीं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन्दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥
(श्रीमद्भा० १०। ३२। २२)

'हे गोपिकाओ! तुमने मेरे लिये दुस्तर गृहश्रृङ्खलाओंको तोड़कर मेरा भजन किया है। तुम्हारा यह कार्य सर्वथा निर्दोष है। मैं देवताओंकी आयुपर्यन्त भी तुम्हारे इस उपकारका बदला नहीं चुका सकता। तुम अपनी उदारतासे ही मुझे ऋणमुक्त करना।'

उद्धवको सन्देशा देकर भेजते समय भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमाश्रु बहाते हुए गद्गद वाणीसे कहा—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम्॥
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथञ्चन।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥
(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४-६)

'हे उद्धव! गोपियोंने अपना मन मुझको समर्पण कर दिया है, मैं ही उनका प्राण हूँ, मेरे लिये उन्होंने अपने देहके सारे व्यवहार छोड़ दिये हैं। जो लोग मेरे लिये समस्त लौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनको मैं सुख पहुँचाता हूँ। वे गोपियाँ मुझको प्रियसे अति प्रिय समझती हैं, मेरे दूर रहनेपर मुझे स्मरण करके वे दारुण विरहवेदनासे व्याकुल होकर अपने देहकी सुधि भूल जाती हैं। मेरे बिना वे बड़ी ही कठिनतासे प्राण धारण कर रही हैं, मेरे पुनः व्रज जानेके सन्देशके आधारपर ही वे जी रही हैं। मैं उन गोपियोंकी आत्मा हूँ और वे मेरी हैं।'

उद्धवने व्रजमें आकर जब प्रेममयी गोपियोंकी दशा देखी, उन्हें सब ओर बाहर-भीतर श्रीकृष्णके दर्शन करते पाया और जब उनके मुखसे सुना—

[१]

नाहिंन रह्यो हियमहँ ठौर।
नंद-नंदन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत चितवत दिवस जागत, स्वपन सोवत रात।
हृदयतें वह श्याम मूरति छिन न इत उत जात॥
कहत कथा अनेक ऊधो! लोक-लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समात॥
श्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
'सूर' ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास॥

[२]

ऊधो! जोग जोग हम नाहीं।
अबला ग्यान सार कहा जानैं कैसे ध्यान धराहीं॥
ते ये मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं।
ऐसी कथा कपटकी मधुकर हमतें सुनी न जाहीं॥
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु ये दुख कौन समाहीं।
चंदन तजि अँग भसम बतावत बिरह अनल अति दाहीं॥
जोगी भरमत जेहि लगि भूले, सो तो है हम पाहीं।
'सूरदास' सो न्यारो न पल छिन ज्यों घटतें परिछाहीं॥

गोपियोंने कहा—'उद्धवजी! योग उन्हें जाकर सिखाओ, जहाँ श्यामसुन्दरका वियोग हो। यहाँ तो देखो, सदा ही संयोग है, हमारा प्यारा श्याम सदा-सर्वदा हमारे साथ ही रहता है।' तब उद्धवकी आँखें खुलीं, वह गोपियोंके शुद्ध प्रेमके प्रबल प्रवाहमें बह गये—

सुनि गोपीके बैन, नेम ऊधोके भूले।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनमें फूले॥
खिन गोपिनके पग परै, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंटहीं, ऊधो छाके प्रेम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने भक्तिप्रणत चित्तसे कहा—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥
नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदयाद्व्रजबल्लवीनाम् ॥
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥
(श्रीमद्भा० १०। ४७। ५९, ६१-६२)

'जगत्में ये गोपललनाएँ ही समस्त देहधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनका चित्त विश्वात्मा भगवान् श्रीगोविन्दमें लगा हुआ है, जिनकी भवभयसे भीत हुए मुनिगण तथा हमलोग सभी इच्छा करते हैं। सत्य है, जो श्रीअनन्तकी लीला-कथाओंके रसिक हैं उन्हें ब्राह्मणोंके तीनों जन्मों (जन्म, यज्ञोपवीत और यज्ञदीक्षा) की क्या आवश्यकता है ? रासलीलाके समय भगवान् श्रीहरिके भुजदण्डको कण्ठहार बनाकर पूर्णकाम हुई इन व्रजबालाओंको श्रीहरिका जो प्रसाद प्राप्त हुआ है, वैसा निरन्तर हृदयमें रहनेवाली श्रीलक्ष्मीजी और कमलकी-सी कान्ति और सुगन्धिसे युक्त सुरसुन्दरियोंको भी नहीं मिला; फिर अन्योंकी तो बात ही क्या है ? इन महाभागा गोपियोंने कभी नहीं छोड़े जा सकनेवाले बन्धुओंको और आर्यधर्मको त्यागकर श्रुति जिसकी खोज करती है, उस मुकुन्दपदवीका अनुसरण किया है। अहो ! क्या ही उत्तम हो, यदि मैं आगामी जन्ममें इस वृन्दावनकी कोई लता, ओषधि या झाड़ियोंमेंसे होऊँ, जिनपर इन गोपियोंकी चरणधूलि पड़ती है।' मथुराकी कुलाङ्गनाओंने गोपियोंकी दशाका वर्णन करके उनके जीवनको धन्य बताते हुए कहा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(श्रीमद्भा० १०। ४४। १५)

'जो गोपियाँ गायोंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें झाड़ू देते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरे गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णके गुणगान किया करती हैं, उन श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपरमणियोंको धन्य है !'

इन गोपियोंकी जितनी भी महिमा गायी जाय, उतनी ही थोड़ी है। सर्वत्यागी व्रजवासी भक्तोंने तो गोपीपदपङ्कजपराग ही बनना चाहा है। सत्य ही कहा है—

गोपी प्रेमकी धुजा।
जिन घनस्याम किये बस अपने उरधरि स्याम भुजा ॥

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव-सदृश महान् त्यागी महापुरुषोंने तो गोपियोंको प्रेममार्गका गुरु माना है। महान् भक्त श्रीनागरीदासजी कहते हैं—

जयति ललितादि देवीय व्रजस्तुतिरिचा,
कृष्ण प्रिय केलि आधीर अंगी।
जुगल-रस-मत्त आनंदमय रूपनिधि,
सकल सुख समयकी छाँह संगी ॥
गौरमुख हिमकरनकी जु किरनावली,
स्रवत मधु गान हिय पिय तरंगी।
'नागरी' सकल संकेत आकारिनी,
गनत गुनगननि मति होति पंगी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्रजभक्तने कहा है—

ये हरिरस ओपी गोपी सब तियतें न्यारी।
कमल नयन गोविंदचंदकी प्रानपियारी॥
निर्मत्सर जे संत तिनहिं चूड़ामनि गोपी।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी॥
जे ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावें।
क्यों नहिं परमानंद प्रेमभगती सुख पावें॥

गोपियोंकी महिमा तभी कुछ समझमें आ सकती है, जब साधक परम वैराग्य धारणकर प्रेमपथपर कुछ अग्रसर होता है।

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ॥२२॥

२२—इस अवस्थामें भी (गोपियोंमें) माहात्म्यज्ञानकी विस्मृतिका अपवाद नहीं।

अर्थात् गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णके प्रभाव, रहस्य और गुणोंको जानती थीं। कुछ लोगोंका कहना है कि प्रेममें माहात्म्यज्ञान नहीं रहता। माहात्म्यज्ञान होगा तो प्रेम नहीं रहेगा, परन्तु गोपियोंमें ऐसी बात नहीं थी। गोपियाँ श्रीकृष्णको साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् जानती हुई ही अपना प्रियतम समझती थीं। लौकिक प्रेम और भगवत्प्रेममें यही खास भेद है। भगवत्प्रेममें वस्तुतः ऐसा ही होता है। जो लोग कहते हैं कि गोपियाँ श्रीकृष्णको भगवान् नहीं जानती थीं, वे श्रीमद्भागवतके नीचे लिखे श्लोकोंका मनन करें—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥
यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः॥
श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम्।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
स्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः॥
(१०। २९। ३१-३२, ३६-३७)
व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता।
(१०। २९। ४१)
न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥
(१०। ३१। ४)

'हे विभो! आप ऐसे कठोर शब्द (वापस जानेकी बात) न कहिये। हम अन्य सम्पूर्ण विषयोंको छोड़कर एकमात्र आपके ही चरणकमलोंमें अनुराग रखती हैं। हे स्वच्छन्द! जिस प्रकार आदिपुरुष श्रीनारायण मुमुक्षुओंको भजते हैं, (उनकी इच्छानुसार उन्हें स्वीकार करते हैं) उसी प्रकार आप हमें अङ्गीकार कीजिये, त्यागिये नहीं। हे हरि! आप धर्मको जाननेवाले हैं (फिर आप कैसे कहते हैं कि तुमलोग लौट जाओ, आपकी शरण आनेपर भी क्या कोई कभी वापस लौटता है?) आपने जो कहा कि पति, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है सो ये उपदेशके सारे पदार्थ आप ईश्वरमें ही आ जाते हैं क्योंकि समस्त देहधारियोंके बन्धु और आत्मा तो आप ही हैं। हे कमललोचन! जिस समय श्रीलक्ष्मीजीको (श्रीविष्णुरूपमें) कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी आनन्दित करनेवाले आपके चरणकमलोंको हमने स्पर्श किया था और आपने हमें आनन्दित किया था, तभीसे हे वनवासी तपस्वियोंके प्रिय ! हमारे लिये अन्यत्र कहीं ठहरना असम्भव हो गया है। जिनकी कृपादृष्टि पानेके लिये देवगण अत्यन्त प्रयास करते हैं, वे लक्ष्मीजी बिना किसी प्रतिद्वन्द्वीके आपके वक्षःस्थलमें स्थान पाकर भी तुलसी तथा अन्य भक्तोंसे सेवित आपके चरणरजकी इच्छा करती हैं, हम भी निस्सन्देह आपकी उसी चरणरजकी ही शरणमें आयी हैं। क्योंकि देवताओंकी रक्षा करनेवाले आप आदिपुरुष परमात्मा ही व्रजमण्डलका भय और दुःख दूर करनेके लिये प्रकट होकर अवतीर्ण हुए हैं। यह निश्चय है कि आप केवल यशोदाके ही पुत्र नहीं हैं वरं समस्त देहधारियोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं। हे सखे ! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही आपने सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेके लिये यदुकुलमें अवतार लिया है।'

ऐसे अनेकों प्रमाणोंसे तथा युक्तियोंसे यह सर्वथा सिद्ध है कि गोपियोंने श्रीकृष्णको साक्षात् सच्चिदानन्द-घन भगवान् समझकर ही उन्हें आत्मसमर्पण किया था।

तद्विहीनं जाराणामिव ॥ २३ ॥

२३–उसके बिना (भगवान्‌को भगवान् जाने बिना किया जानेवाला ऐसा प्रेम) जारोंके (प्रेमके) समान है।

माहात्म्यज्ञान बिना स्त्रियोंके द्वारा किसी पुरुष-के प्रति किया जानेवाला ऐसा प्रेम, जारोंका-सा प्रेम होता है। जिस प्रेममें सर्वार्पण है, जिसमें लौकिक स्वार्थका तनिक-सा गन्ध भी नहीं है, ऐसा प्रेम केवल भगवान्‌के प्रति ही हो सकता है। यद्यपि जाने-अनजाने किसी प्रकार भी भगवान्‌के प्रति किया हुआ प्रेम निष्फल नहीं होता, परन्तु जानकर होनेवाले प्रेममें विशेषता होती है। भगवान् हमारे प्रियतम हैं, इस कल्पनामें ही कितना अपार आनन्द है। फिर जिन-को वे भगवान् परम प्रियतमरूपमें प्राप्त हो जायँ उनके सुखका तो कहना ही क्या है ? गोपियाँ इसी परम पवित्र दिव्य सुखकी भागिनी थीं। इसीसे जीवन्मुक्त महात्मा शुकदेव मुनिने, मृत्युके लिये तैयार हुए राजा परीक्षितको यह पवित्र प्रेमलीला सुनायी थी। अतएव यह प्रेम भगवत्-माहात्म्यके ज्ञानसे युक्त परमपवित्र था।

नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम् ॥२४॥

२४–उसमें (जारके प्रेममें) प्रियतमके सुखसे सुखी होना नहीं है।

व्यभिचारी मनुष्य कामवश होकर केवल अपने सुखके लिये, अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये प्रीति किया करते हैं, वे अपने प्रेमास्पदके सुखसे सुखी नहीं होते। गोपियोंके प्रेममें यह भाव नहीं था। लौकिक कामजनित प्रीतिमें प्रेमास्पद पुरुष जार होता है और उसके अंग-संगकी इच्छा होती है। यहाँ प्रेमा-स्पद साक्षात् विश्वात्मा भगवान् थे और गोपियोंके मनोंमें अंग-संगकी कामना नहीं थी। गोपियाँ केवल श्रीकृष्ण-सुखकी अभिलाषिणी थीं। उन्होंने अपना तन, मन, रूप, यौवन, धन, प्राण, बुद्धि आदि सम्पूर्ण वस्तुओंको प्रियतम श्रीकृष्णकी पूजनसामग्री बना दिया था। अपना सर्वस्व देकर वे श्रीकृष्णको सुख पहुँचाना चाहती थीं। जिस बातमें श्रीकृष्णकी प्रसन्नता होती, वही उनका धर्म था। इसीमें उन्हें परम सुखकी अनुभूति होती थी। इसके अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मनमें अन्य प्रकारसे होनेवाले सुखकी कामना तो दूर रही कल्पना भी नहीं थी। यही तो काम और प्रेमका अन्तर है। काम चाहता है दूसरेके द्वारा अपने सुखी होना, और प्रेम चाहता है अपने द्वारा प्रियतमको सुखी करना और उसे सुखी देखकर ही सुखी होना। श्रीचैतन्यचरितामृतमें गोपियोंके प्रेम-का वर्णन करते हुए बहुत सुन्दर कहा गया है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति-इच्छा तार नाम काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति-इच्छा धरे प्रेम नाम॥
कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल।
कृष्ण-सुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल॥
आत्म-सुख-दुःख गोपी ना करे विचार।
कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार॥
लोक धर्म, वेद धर्म, देह धर्म कर्म।
लज्जा, धैर्य, देह सुख, आत्म सुख मर्म॥
सर्व त्याग करये करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण सुख हेतु करे प्रेमेर सेवन॥
इहाके कहिये कृष्णे दृढ़ अनुराग।
स्वच्छ धौत वस्त्र जैछे नाहि कोन दाग॥
अतएव काम प्रेमे बहुत अंतर।
काम अंधतम प्रेम निर्मल भास्कर॥
अतएव गोपीगणे नाहि काम गंध!
कृष्ण सुख हेतु मात्र कृष्णेर संबंध॥

भगवान् श्रीकृष्णको सर्वस्व अर्पण, पलभरके लिये भूल जानेमें परम व्याकुलता, श्रीकृष्णके प्रभाव और माहात्म्यका सम्यक् ज्ञान और श्रीकृष्णके सुखमें ही सुखी होना, यही चार बातें गोपी-प्रेममें मुख्य हैं।

यह गोपी-प्रेम परम पवित्र और अलौकिक है। इसमें जो पाप या व्यभिचार देखते हैं, उनपर श्री-कृष्ण दया करें। (क्रमशः)

प्रेमियोंकी चाह

गिरि कीजै गोबरधन, मयूर नवकुंजनकौ,
पसु कीजै महाराज नंदके बगरकौ।
नर कीजै तौन जौन 'राधे-राधे' नाम रटै,
तरु कीजै बर कूल कालिंदी-कगरकौ॥
इतनेपै जोई कछु कीजिये कुँवर कान्ह!
राखिये न आन फेरि 'हठी' के झगरकौ।
गोपी-पद-पंकज-पराग कीजै, महाराज!
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगरकौ॥

—हठीजी

बोल्यो करै नूपुर स्रवननके निकट सदा,
पद-तल माहिं मन मेरो बिहर्‌यौ करै।
बाज्यो करै बंसीधुनि पूरि रोम-रोम मुख,
मन मुसुकानि मंद मनहिं हर्‌यौ करै॥
'हरीचंद' चलनि मुरनि बतरानि चित्त,
छाई रहै छबि जुग दृगनि भर्‌यौ करै।
प्रानहूँतें प्यारो रहै प्यारो तू सदाई प्यारे!
पीत-पट सदा हीय बीच फहर्‌यौ करै॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(भाग ८ पृ० १३२६ से आगे)

[मणि १०]

याज्ञवल्क्य तथा गार्गीका संवाद

गार्गी—हे याज्ञवल्क्य ! जो पदार्थ कार्यरूप है, वह अपने कारणमें रहता है और बाहर तथा भीतर कारणसे व्याप्त होता है। जैसे पटरूप कार्य तन्तुरूप कारणमें रहता है और बाहर-भीतर कारणरूप तन्तुओंसे व्याप्त होता है। यह बात सब लोगोंके अनुभवसिद्ध है। इसी प्रकार मनुष्य-लोकमें रहनेवाले स्थावरजङ्गमरूप पार्थिव पदार्थ कार्यरूप होनेसे कारणरूप जलमें रहते हैं और भीतर-बाहर कारणरूप जलसे व्याप्त हैं। यदि पार्थिव पदार्थ जलसे व्याप्त न हों तो वे रेतके समान बिखर जाने चाहिये किन्तु घटपटादि पदार्थ बिखरते नहीं हैं, इससे ऐसा सिद्ध होता है कि घटपटादि पार्थिव पदार्थ कारणरूप जलसे व्याप्त हैं। ऐसा कहनेसे यह अनुमान होता है कि जैसे कार्यरूप होनेसे पट तन्तुओंसे व्याप्त है इसी प्रकार स्थावरजङ्गम पार्थिव पदार्थ कारणरूप जलसे व्याप्त हैं, इसलिये हे याज्ञवल्क्य ! पृथिवीके समान जल भी कार्यरूप है, इसलिये जल भी किसी एक अपने कारणमें ओतप्रोत होगा। जलका कारणरूप क्या है कि जिसमें जल ओतप्रोत है ?

इस प्रकार जब गार्गीने प्रश्न किया तो याज्ञवल्क्य इस प्रकार कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे गार्गी ! जल वायुरूप कारणमें ओतप्रोत है।

हे डोरूशङ्कर ! यद्यपि वेदान्तमतके अनुसार जलका उपादान कारण तेज है और तेजका उपादान कारण वायु है, इसलिये वायुको जलका कारणरूप कहना सम्भव नहीं है तो भी लोकमें अग्निरूप तेजकी काष्ठरूप ईंधनमें ही उपलब्धि होती है, काष्ठरूप ईंधनके बिना अन्य किसी पदार्थमें अग्निरूप तेजकी उपलब्धि नहीं होती। और काष्ठमें रहे हुए धूमसे रहित अग्निमें जलका विरोधीपना प्रत्यक्ष दिखायी देता है, इसलिये जलके विरोधी अग्निमें जलकी उपादानताका कारण सम्भव नहीं है किन्तु काष्ठरूप ईंधनसे रहित अग्निमें जलकी कारणता शास्त्रके प्रमाण बिना अन्य किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होती, वह शास्त्रप्रमाणसे ही सिद्ध होती है। यद्यपि गीले ईंधनवाले अग्निमें धूमके सम्बन्धद्वारा जलकी कारणता प्रत्यक्ष-प्रमाणसे सिद्ध है तो भी उस स्थलमें जलकी कारणता अग्निमें है अथवा गीले ईंधनमें रहे हुए जलमें है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये अग्निको छोड़कर वायुमें जलकी कारणता कही है, भाव यह है कि जैसे पुत्रका कारण पिता, पुत्रके पुत्रका भी कारण होता है, इसी प्रकार तेजका कारणरूप वायु तेजके कार्यरूप जलका भी कारण हो सकता है, इसलिये उसमें कुछ भी विरोध नहीं है। हे वत्स ! इस प्रकार जब याज्ञवल्क्यने कहा तब गार्गीने फिर उनसे प्रश्न किये और याज्ञवल्क्यने उनके उत्तर दिये। प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

'हे याज्ञवल्क्य ! यह वायु किस कारणमें ओतप्रोत है ?'

'हे गार्गी ! वायु अन्तरिक्षलोकमें ओतप्रोत है।'
'अन्तरिक्षलोक किस कारणमें ओतप्रोत है ?'
'अन्तरिक्षलोक गन्धर्वलोकमें ओतप्रोत है।'
'यह गन्धर्वलोक किस कारणमें ओतप्रोत है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गन्धर्वलोक सूर्यलोकमें ओतप्रोत है।'
'सूर्यलोक किसमें ओतप्रोत है?'
'सूर्यलोक चन्द्रलोकमें ओतप्रोत है।'
'चन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है?'
'चन्द्रलोक नक्षत्रलोकमें ओतप्रोत है।'
'नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत है?'
'नक्षत्रलोक देवलोकमें ओतप्रोत है।'
'देवलोक किसमें ओतप्रोत है?'
'देवलोक इन्द्रलोकमें ओतप्रोत है।'
'इन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है?'
'इन्द्रलोक प्रजापतिलोकमें ओतप्रोत है।'
'प्रजापतिलोक किसमें ओतप्रोत है?'
'प्रजापतिलोक ब्रह्ममें ओतप्रोत है।'

अन्तरिक्षादि शब्दोंका वर्णन

अवकाशरूपसे सब लोकोंमें प्रसिद्ध स्थूल आकाशको अन्तरिक्ष कहते हैं। गन्धर्वलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक, देवलोक तथा इन्द्रलोक—ये छः प्रकारके शब्द आकाशादि पञ्चभूतोंके उत्तरोत्तर सूक्ष्म अवस्थाके वाचक हैं। भाव यह है कि अन्तरिक्षलोकके आरम्भक आकाशादि पञ्चभूतोंसे अन्तरिक्षलोक सब दिशाओंसे परिवेष्टन किया हुआ स्थित है और अन्तरिक्षलोकके आरम्भक पञ्चभूतोंकी अपेक्षा सूक्ष्मरूप है। इसी प्रकार गन्धर्वलोकको सब तरफसे घेरे हुए सूर्यके आरम्भकरूप जो पञ्चभूत हैं, वे गन्धर्वलोकके आरम्भक भूतोंसे सूक्ष्म हैं, इस प्रकार इन्द्रलोकतक आकाशादि पञ्चभूतोंकी सूक्ष्मता जान लेनी चाहिये। इसमें विलक्षणता इतनी है कि गन्धर्वलोकसे लेकर इन्द्रलोकतक छः प्रकारके भूतोंकी अवस्था पूर्व-पूर्व अवस्थाकी अपेक्षासे सूक्ष्म हैं और उत्तरोत्तर अवस्थाओंकी अपेक्षासे स्थूल हैं। जैसे गन्धर्वलोककी अपेक्षासे सूर्यलोक सूक्ष्म है और चन्द्रमाकी अपेक्षासे सूर्यलोक स्थूल है, इसी प्रकार चन्द्रलोक भी सूर्यलोककी अपेक्षासे सूक्ष्म है और नक्षत्रलोककी अपेक्षासे स्थूल है, इस प्रकार इन्द्रलोकतक स्थूलता तथा सूक्ष्मता जान लेनी चाहिये।

इन्द्रादि लोकनिरूपण

सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च आत्मरूपसे देखे, इसको इन्द्र कहते हैं, इस प्रकारका इन्द्र शब्दका अर्थ विराट् पुरुषमें ही घटता है क्योंकि यह सब विश्व विराट् पुरुषके शरीरमें स्थित है, इसलिये विश्वको आत्मारूपसे विराट् पुरुष देखता है। अतएव इन्द्र शब्दसे विराट् पुरुषका ग्रहण करना चाहिये, ब्रह्माण्डरूप कढ़ाईके अन्दर तथा बाहर व्यापक सूत्रात्माको पारिक्षित पुरुष प्राप्त होता है, इसलिये प्रजापति शब्दसे सूत्रात्मा ग्रहण करना चाहिये। मायारूप अज्ञान शब्दका अर्थ सबका कारणरूप अव्याकृत है। यह अव्याकृत सूत्रात्माकी स्थितिका आधाररूप है, इसलिये ब्रह्मलोक शब्दसे अव्याकृतका ग्रहण करना चाहिये। यह अव्याकृत समष्टिरूपसे एक प्रकारका है तथा व्यष्टिरूपसे अनेक प्रकारका है।

याज्ञवल्क्यका इस प्रकारका उत्तर सुनकर गार्गीने अपने मनमें विचार नहीं किया कि सर्व जगत्का कारणरूप अव्याकृत यद्यपि शुद्ध आत्माके आश्रित रहता है तो भी वह अव्याकृत जलादिके समान अनुमानप्रमाणसे जाननेमें नहीं आता क्योंकि जो कार्य होता है, वह कारणसे व्याप्त होता है, जैसे कि तन्तुरूप कारणसे पटरूप कार्य व्याप्त है। जो-जो कार्य होता है, वह-वह कारणसे व्याप्त होता है, ऐसा ज्ञान अनुमानप्रमाणकी प्रवृत्तिका कारण है। अनुमानसे पूर्व इस प्रकारका व्याप्तिज्ञान तथा कार्यत्वरूप हेतुका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। व्याप्तिज्ञान बिना तथा हेतुज्ञान बिना अनुमानप्रमाणसे किसी अर्थकी सिद्धि नहीं होती, और अव्याकृत तथा आश्रयरूप आत्माके ज्ञानमें पूर्वोक्त व्याप्तिके ज्ञानका तथा कार्यत्वरूप हेतुके ज्ञानका कुछ भी उपयोग नहीं है क्योंकि अज्ञान मायारूप अव्याकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनादि है, इसलिये अव्याकृतमें कार्यपना सम्भव नहीं है। और शुद्ध आत्मामें कार्यपना तथा कारणपना दोनों ही सम्भव नहीं हैं। अतएव अव्याकृतका आश्रयरूप आत्मा अनुमानप्रमाणका विषय नहीं है। सम्यक् विचारसे देखा जाय तो सूत्रात्मा भी अनुमानका विषय नहीं है क्योंकि लोकप्रसिद्ध दृष्टान्तको लेकर अनुमानकी प्रवृत्ति होती है, लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त विना किसी अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती, और सूत्रात्माकी सिद्धिमें लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त है नहीं, इसी कारण ब्रह्माण्डके बाहर सूत्रात्मा है, इस प्रकारकी प्रक्रिया किसी भी नैयायिकने मानी नहीं है। इसलिये सूत्रात्मा तथा अव्याकृतका आश्रयरूप शुद्ध आत्मा अनुमानरूप तर्कका विषय नहीं है, इस प्रकारके विचार विना गार्गी आग्रहसे याज्ञवल्क्यसे पूछने लगी—

'हे याज्ञवल्क्य ! अव्याकृतरूप ब्रह्मलोक किस कारणमें ओतप्रोत है ?'

हे वत्स ! केवल शास्त्रप्रमाणसे जानने योग्य आत्माके वास्तव स्वरूपको जब गार्गीने अपनी मूर्खतासे अनुमानप्रमाणकी रीतिसे पूछा तब मुनि कहने लगे—

'हे गार्गी ! यह आनन्दस्वरूप आत्मा केवल शास्त्रके प्रमाणसे जानने योग्य है, इसलिये शास्त्रके प्रमाणसे ही तुझे आत्माका स्वरूप मुझसे पूछना योग्य है किन्तु मर्यादाको त्यागकर अनुमानकी रीतिसे आत्माके सम्बन्धमें तेरा प्रश्न करना व्यर्थ है क्योंकि सबका अधिष्ठानरूप आत्मा किसी अनुमानका विषय नहीं है, इसलिये सबके अधिष्ठानरूप आत्माको अनुमानप्रमाणसे कभी न पूछना चाहिये। यदि तू विचारसे रहित होकर दुराग्रहसे अतिप्रश्न करेगी तो तेरा मस्तक भूमिपर गिर जायगा क्योंकि जो पुरुष परम उत्कृष्ट पदार्थको निकृष्ट पदार्थके समान देखता है उसको परम अनर्थकी प्राप्ति होती है। जैसे यदि कोई ऐसा कहे कि अर्जुनके हाथमें स्थित पाशुपत अस्त्र अन्य तीरके समान होने योग्य है क्योंकि वह अस्त्रत्व-धर्मवाला है तो ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि इस प्रकारके अनुमानप्रमाणसे पाशुपत अस्त्र अन्य शरके समान नहीं हो सकता। यदि कोई पुरुष दुराग्रहसे पाशुपत अस्त्रको अन्य शरके समान कहे तो वह पाशुपत अस्त्र उस विपरीतदर्शी पुरुषके सिरको काटकर भूमिपर डाल देता है। जैसे अथर्वणवेदसे उत्पन्न हुए मारणमन्त्र अति क्रोधवाले दुर्वासा ऋषिके हृदयमें रहे हुए हों तो भी वे प्राकृत मन्त्रोंके समान नहीं हो सकते, फिर भी यदि कोई दुराग्रहसे उन मन्त्रोंको प्राकृत मन्त्रोंके समान कहे तो वे अथर्वणवेदके मन्त्र उस विपरीतदर्शी पुरुषके सिरको गिरा देते हैं, इसी प्रकार अनुमानके अविषयरूप आत्माको जलादिके समान अनुमानका विषय मानकर यदि तू आत्मा सम्बन्धी अतिप्रश्न करेगी तो तेरा सिर भूमिपर गिर जायगा।

इस प्रकारके मुनिके वचन सुनकर गार्गी अत्यन्त भयको प्राप्त हुई और अरुण ऋषिके पुत्र उद्दालक नामके ऋषिके मुखकी तरफ देखकर प्रश्न करनेसे निवृत्त हुई। पश्चात् उद्दालक अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर पूर्वमें अग्निदेवके उपदेश किये हुए अत्यन्त गुह्य अर्थको पूछनेके लिये प्रथम अपनी विद्याकी उत्कृष्टता जनानेके लिये अपना पूर्वका वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगे—

याज्ञवल्क्य तथा उद्दालकका संवाद

उद्दालक—पूर्व ब्रह्मचर्य-आश्रममें हम बहुत-से ब्रह्मचारी वेदका अध्ययन करनेके लिये भद्रदेशमें पतञ्चल नामके ब्राह्मणके घरमें रहते थे। एक समय पतञ्चल ब्राह्मणकी स्त्रीके शरीरमें पिशाचके समान अग्निदेवने प्रवेश किया, पश्चात् गुरु पतञ्चल-सहित हम सब ब्रह्मचारी अग्निदेवसे पूछने लगे कि आप कौन हैं ? तब अग्निदेवने कहा कि हे ब्राह्मणो ! अथर्वण मेरा गोत्र है, कबन्ध मेरा नाम है, तुम सब ब्राह्मणोंके उपकारके लिये मैंने इस स्त्रीके शरीरमें प्रवेश किया है। इस प्रकारके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचन कहकर फिर हम शिष्योंसहित गुरुसे अग्निदेवने कहा कि 'हे पतञ्चल ! जैसे मालाके पुष्पोंको सूत्र धारण करता है, इसी प्रकार सर्व भूतभौतिक प्रपञ्च जिस सूत्रसे बँधा है, क्या तू उस सूत्रको जानता है ?' जब इस प्रकारका प्रश्न अग्निदेवने गुरुसे किया तो हमारे गुरु कहने लगे कि 'हे अग्नि ! सर्व जगत्को जो सूत्र धारण किये है, उस सूत्रको हम नहीं जानते ।' जब इस प्रकार हमारे गुरुने उत्तर दिया तो अग्निदेवने फिर गुरुसे पूछा कि 'हे पतञ्चल ! जो सर्व जगत्का प्रेरक अन्तर्यामी है, क्या तू उसको जानता है ?' जब इस प्रकारका दूसरा प्रश्न अग्निदेवने गुरुसे पूछा तो वे कहने लगे कि 'हे अग्निदेव ! अन्तर्यामीके स्वरूपको मैं भी नहीं जानता ।' जब पतञ्चलने अग्निदेवसे सूत्रका तथा अन्तर्यामीका स्वरूप नहीं कहा तो अग्निदेव कृपा करके हमारे गुरुसे कहने लगे कि 'हे पतञ्चल ! मैंने तुमसे जिस सूत्र तथा अन्तर्यामीका स्वरूप पूछा है, उस सूत्र तथा अन्तर्यामीको जो पुरुष जानता है, वह पुरुष सर्वज्ञभावको प्राप्त होता है, भाव यह है कि वह पुरुष परमात्माको, भूतादि सात लोकोंको, सर्व देवोंको, सर्व प्राणियोंको, पञ्चभूतोंको तथा आत्मा इत्यादि सर्व पदार्थोंको जानता है । इस प्रकार सूत्र तथा अन्तर्यामीके ज्ञानकी उत्कृष्टता कहकर अग्निने हम सब ब्राह्मणोंको सूत्र तथा अन्तर्यामीका स्वरूप बताया । अग्निके उपदेशसे हमने सूत्रका तथा अन्तर्यामीका स्वरूप भली प्रकार जाना है, सूत्रका तथा अन्तर्यामीका स्वरूप जाने बिना ही यदि तुम सब ब्राह्मणोंकी गायें अपने घर ले गये होगे तो शीघ्र ही तुम्हारा सिर पृथिवीपर गिर जायगा । क्या तुम इन दोनोंका स्वरूप जानते हो ?'

याज्ञवल्क्य—हे उद्दालक ! पूर्वमें अग्निने तुमको जिस सूत्र तथा अन्तर्यामीका स्वरूप बताया था, उस सूत्र तथा अन्तर्यामीको मैं भली प्रकार जानता हूँ ।

उद्दालक—(क्रोधयुक्त होकर) हे याज्ञवल्क्य ! जैसे अज्ञानी पामर पुरुष ऐसा कहता है कि मैं सर्व अर्थ जानता हूँ, इसी प्रकार तुम भी 'मैं सूत्रको, अन्तर्यामीको जानता हूँ' ऐसा कहते हो, किन्तु उनके स्वरूपका निरूपण नहीं करते ! इससे ऐसा जाननेमें आता है कि तुमको सूत्रका तथा अन्तर्यामीका स्वरूप मालूम नहीं है । क्योंकि जिस पुरुषको जिस पदार्थका ज्ञान होता है, वह ऐसा नहीं कहता कि मैं अमुक वस्तुको जानता हूँ, किन्तु उस वस्तुके स्वरूपका वर्णन करने लगता है, इसलिये यदि तुम सूत्रका और अन्तर्यामीका स्वरूप जानते हो तो कहो, यदि तुम उनका स्वरूप नहीं जानते तो 'मैं उनका स्वरूप जानता हूँ' ऐसी व्यर्थ गर्जना मत करो !

हे वत्स ! जब इस प्रकार उद्दालकने कहा तो याज्ञवल्क्य कहने लगे—

सूत्रात्मा तथा अन्तर्यामीका स्वरूप

याज्ञवल्क्य—हे उद्दालक ! सर्व जगत्के बन्धनका कारणरूप जो सूत्र तूने पूछा है, वह सूत्र प्राणरूप वायु है । क्योंकि जैसे तन्तु पटको धारण करते हैं, इसी प्रकार यह प्राणरूप वायु इस लोकको, अन्य लोकोंको तथा सर्व भूतप्राणियोंको धारण करता है । इसी कारणसे मरणकालमें जब प्राणका लोकान्तरमें निर्गमन होता है तब हस्तपादादि सर्व अवयव शिथिल हो जाते हैं, जैसे कि सूत्र निकल जानेसे मालाके पुष्प शिथिल हो जाते हैं, इसी प्रकार प्राणके निकल जानेसे सब अवयव ढीले हो जाते हैं । इस प्रकार लोकप्रसिद्ध युक्तिसे भी प्राणको सूत्ररूपता सम्भव है, यहाँ प्राणवायु शब्दसे समष्टि-व्यष्टिरूप सूक्ष्म शरीरका ग्रहण है ।

जब मुनिने इस प्रकार सूत्रात्माका स्वरूप कहा तो उद्दालक उनके वचन मानकर फिर इस प्रकार प्रश्न करने लगा—

उद्दालक—हे याज्ञवल्क्य ! पूर्वमें अग्निने मुझसे जिस सूत्रका स्वरूप कहा था, वही स्वरूप तुमने मुझसे कहा, इसलिये सूत्रके स्वरूपके सम्बन्धमें मैं तुमसे प्रश्न नहीं करता, किन्तु अन्तर्यामीका स्वरूप मुझसे कहो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य—हे उद्दालक ! जिस सर्वज्ञ परमात्मा-देवको पृथिवी, जल, अग्नि, भुवर्लोक, वायु, स्वर्ग, आदित्य, दिशा, चन्द्र, तारा, आकाश, अन्धकार, तथा तेज—इन बारह अधिदेवोंमें श्रुतिने निरूपण किया है, जिस परमात्माको स्थावरजङ्गमरूप सर्व अधिभूतोंमें श्रुतिने कहा है, जिस सर्वज्ञ परमात्माको प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वक्, बुद्धि, उपस्थ इन्द्रिय—इन आठ प्रकारके अध्यात्ममें श्रुतिने प्रतिपादन किया है, जो परमात्मा पृथिवी आदि इक्कीस स्थानोंमें रहकर भी पृथिवी आदि स्थानोंसे भिन्न होकर स्थित है; जैसे गृहवाला पुरुष अपने गृहसे भिन्न होता है, इसी प्रकार जो परमात्मा पृथिवी आदिसे भिन्न है, और जो देव पृथिवी आदिके भीतर रहता है तो भी पृथिवी आदि जिस परमात्माको नहीं जानते, जो परमात्मा पृथिवी आदिको नियमसे अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त करनेके लिये किसी अन्य शरीरको ग्रहण नहीं करता किन्तु जैसे अस्मदादि जीवोंके शुक्रशोणित-विकाररूप ये ही शरीर हैं, इसी प्रकार जिस परमात्माके पृथिवी आदि ही शरीर हैं, जैसे राजा अपने चाकरोंको अनेक प्रकारके व्यापारोंमें नियमसे प्रवृत्त करता है, इसी प्रकार जो परमात्मा पृथिवी आदिके अभिमानी चेतनरूप लिङ्गशरीरों-को अपने-अपने व्यापारमें नियमसे प्रवृत्त करता है, वह मायाका अधिपति परमात्मा अन्तर्यामी है। इसलिये हे उद्दालक ! जिस अन्तर्यामीका स्वरूप तूने मुझसे पूछा है, वह अन्तर्यामी तेरा, मेरा तथा सर्व जीवोंका आत्मारूप है, यह अन्तर्यामी जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शोक, मोह—इन छः ऊर्मियोंसे रहित है।

इस प्रकार मुनिने उद्दालकको पृथिवी आदिमें इक्कीस बार अन्तर्यामीके स्वरूपका उपदेश किया। तात्पर्य यह है कि जो पृथिवी आदिमें पृथिवी आदिसे भिन्न, पृथिवी आदिसे अज्ञात तथा पृथिवी आदिका शरीररूप है और पृथिवी आदिको अपने कार्यमें प्रवृत्त करता है, वह परमात्मा तेरा अन्तर्यामी तथा अमृतरूप है। इस प्रकार याज्ञ-वल्क्यने पृथिवी आदिमें इक्कीस बार अन्तर्यामीका स्वरूप कहा।

पश्चात् 'नेति-नेति' इस श्रुतिको अङ्गीकार करके सर्व धर्मोंको निषेध करनेवाले अदृष्टत्व आदि आत्माके धर्मोंको कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे उद्दालक ! यह अन्तर्यामी परमात्मा पुरुषके नेत्रोंसे दिखायी नहीं दे सकता, श्रोत्रसे सुनायी नहीं दे सकता और मनसे चिन्तन नहीं किया जा सकता, उसका निश्चय शुद्ध बुद्धि-से ही हो सकता है। इस प्रकार किसी भी इन्द्रिय-से परमात्मा जाननेमें नहीं आ सकता। इसलिये परमात्मा अदृष्टत्वादि तथा अश्रुतत्वादि धर्मवाला है। यह अन्तर्यामी आत्मा दृष्टि, श्रुति, मति तथा विज्ञाति—इस प्रकारकी बुद्धिकी वृत्तियोंको प्रकाश करता है, इसलिये अन्तर्यामी आत्माको द्रष्टा, श्रोता, मन्ता तथा विज्ञाता इत्यादि नामोंसे श्रुति निरूपण करती है। यह परमात्मा नेत्रादि इन्द्रियोंको, बुद्धि आदिको और बाह्य तथा आन्तर सर्व व्यापारोंको जानता है किन्तु नेत्रादि इन्द्रियाँ अन्तर्यामी परमात्माको जान नहीं सकतीं इसलिये अन्तर्यामी आत्माके सिवा कोई भी पदार्थ द्रष्टा, श्रोता, मन्ता तथा विज्ञाता नहीं है किन्तु अन्तर्यामी आत्मा ही द्रष्टा, श्रोता, मन्ता तथा विज्ञाता है। इसलिये हे उद्दालक ! यह अन्तर्यामी परमात्मा ही तेरा आत्मा है। अन्तर्यामीके सिवा अन्य कोई आत्मा नहीं है क्योंकि जो पदार्थ चैतन्य आत्मासे भिन्न होता है, वह पदार्थ जड होता है। जो पदार्थ जड होता है, वह घटादिके समान उत्पत्ति तथा नाशवाला होता है।

हे डोरूशङ्कर ! जब इस प्रकारका उत्तर मुनि-ने दिया तो उद्दालकने फिर प्रश्न नहीं किया। पश्चात् वचकनु ऋषिकी पुत्री गार्गी नामकी स्त्री सब ब्राह्मणोंसे कहने लगी— (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोविन्द-गुण-गान

गीता-तत्त्व-ज्ञाता जग-त्राता बलदेव-भ्राता,
चारि-फल-दाता हैं चरित्र ब्रजचंदके।

बृंदाबन-चारी त्यौं ही बृंदा-मनहारी भले,
बंदनीय इंद्रादिक बृंदारक-बृंदके॥

सुखमा-समंद त्यौं अमंद सुखकंद स्याम,
मोसे मतिमंदके हरैया भव-फंदके।

भरन अनंद त्यौं हरन दुख-द्वंदहूके,
बंदौं पद-कंज नंद-नंदन गोबिंदके॥

—साह मोहनराज

श्रीमानस-शङ्का-समाधान

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

किसी सज्जनने निम्नलिखित शङ्काएँ 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ भेजी हैं, इनका समाधान मानस-प्रेमियोंके विनोदार्थ यहाँ किया जा रहा है।

पहली शङ्का

संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही ममदास।
ते नर करहिं कल्पभरि, घोर नरकमहँ बास॥

यहाँ शङ्का उठती है कि जो मनुष्य शिवजीका भक्त है, और रामचन्द्रजीसे द्रोह-भाव रखता है, (जैसे रावण)—तो वह कैसे घोर नरकमें वास कर सकता है? पुनः जो रामचन्द्रजीका परमभक्त है, वह शिवजीसे द्रोहभाव ही क्यों न रखता हो, वह कदापि नरकगामी नहीं हो सकता। क्योंकि जो मनसा, वाचा, कर्मणा अपने इष्टमें सच्चा प्रेम करता है, वह मुक्त हो जाता है। यदि कोई भक्त नरकगामी होता है, तो कहना पड़ेगा कि अपने इष्टका वह सच्चा प्रेमी नहीं था और न इष्टकी कृपा ही उसके ऊपर हुई थी। श्रीरामचन्द्रजीका वचन है—'प्रानते अधिक भक्त प्रिय मोरे।' और शङ्करजी औढरदानी प्रसिद्ध ही हैं, जरा-सी भक्तिसे त्रिलोकका राज्य सौंप दे सकते हैं, मुक्ति तो साधारण वस्तु है।

समाधान

उपर्युक्त शङ्काको अच्छी तरहसे समझनेके लिये प्रसङ्गको पूरा-पूरा उद्धृत करना आवश्यक है। इससे पाठकोंको इसके भावको ठीक-ठीक जाननेमें सहायता मिल सकती है—

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहिं न दूजा॥
सिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥
संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही ममदास।
ते नर करहिं कल्पभरि, घोर नरकमहँ बास॥
जे रामेश्वर दरसन करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहिं। सो सायुज्य मुकुति नर पाइहिं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि
मम कृत सेतु जो दरसन करिहहिं। सो बिनु श्रम भवसागर तरिहहिं
रामबचन सबके मन भाये। मुनिवर निज निज आश्रम आये॥
गिरिजा रघुपतिकै यह रीती। संतत करहिं प्रणतपर प्रीती॥
बाँधेउ सेतु नील नल नागर। रामकृपा जस भयउ उजागर॥
बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। भये उपल बोहित सम तेई॥
महिमा यह न जलधिकै बरनी। पाहन गुन न कपिनकै करनी॥
श्रीरघुबीर प्रतापतें, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥

उपर्युक्त शङ्कामें यह विचार प्रकट किया गया है कि 'जो मनुष्य शिवजीका भक्त है और रामजीसे द्रोह-भाव रखता है, अथवा जो रामचन्द्रजीका परमभक्त है और शङ्करजीसे द्वेषभाव रखता है, वह कदापि नरकगामी नहीं हो सकता।' परन्तु यह बात सम्भव नहीं है, क्योंकि श्रीमुखके वचनोंसे ही यह सिद्ध हो रहा है कि—

सिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा॥

यहाँ 'कहावा' शब्दद्वारा स्पष्ट अभिप्राय बोध हो रहा है कि शिवजीसे द्रोह करनेवाला मेरा कहनेमात्र-का भक्त है, वह मेरा यथार्थ दास नहीं है। ऐसा आदमी अपनेको झूठे ही रामदास कहता है। जैसे—

बंचक भगत कहाइ रामके। किंकर कंचन कोह कामके॥

अतएव 'सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा।' सारांश यह है कि शिवजीसे द्रोह करनेवाला आदमी स्वप्नमें भी मुझे प्राप्त न होगा, क्योंकि मेरी प्राप्ति मेरे भक्तोंको ही होती है, और—

संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

अर्थात् जो शिवजीसे द्रोह करके मेरी भक्तिकी इच्छा करता है वह मूढ़ तुच्छ बुद्धिवाला उलटे नरक-गामी होता है। क्योंकि श्रीरामभक्तिके भण्डारी और दाता तो शिवजी ही हैं। अतः उनसे द्रोह करके श्रीराम-भक्तिको पाना भी असम्भव ही है। जैसे—

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

तथा—

सिव पद कमल जिनहिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। रामभगतकर लच्छन एहू॥

इसी सिद्धान्तका निष्कर्ष प्रस्तुत प्रसङ्गमें इस प्रकार वर्णित हुआ है—

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥

इसी प्रकार जो शिवजीका भक्त बननेकी इच्छा करता हुआ श्रीरामजीसे द्रोहभाव रक्खेगा, उसे अपने इष्टसे द्रोह करनेके कारण शिवजी स्वयं रुष्ट होकर नरक भेज देंगे। इसके प्रमाणमें उत्तरकाण्डमें भुशुण्डिजीका चरित्र देखना चाहिये। जब उन्हें श्री-गुरुदेवद्वारा शिक्षा मिलती है कि—

सिव सेवाकर फल सुत सोई। अबिरल भगति रामपद होई॥
रामहिं भजहिं तात सिव धाता। नरपाँवर कर केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी॥

—और इस शिक्षाके न माननेसे अवज्ञाके फल-स्वरूप स्वयं शिवजीने उन्हें अधोगतिका दण्ड दिया है। भुशुण्डिजीसे बढ़कर शिवजीका अनन्य भक्त दूसरा कौन होगा, परन्तु अपने इष्टका अनादर कोई सच्चा सेवक नहीं कर सकता, और रामभक्तशिरोमणि जिस शिवजीने श्रीसीतामाताका वेष धारण करनेके कारण सती-जैसी अपनी अनन्य प्रियाका त्याग कर दिया था—

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
प्रन करि रघुपति भगति दृढ़ाई। सिव सम को रामहिं प्रिय भाई॥
सिय बेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरी।

जिस शिवजीने सतीके तनिक चूकपर यह प्रण कर दिया कि—

जो अब करौं सती सन प्रीती। मिटै भगति पथ होइ अनीती॥

वह शिवजी साधारण मनुष्यको रामद्रोही जान-कर—अपने इष्टके अपराधीको ('सो मम इष्टदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुबीरा' के अनुसार) अपना भक्त मानेंगे या उसे घोर नरकमें डालेंगे ? अतः रामका द्रोही होते हुए भी शिवभक्त होना असम्भव है। तात्पर्य यह है कि 'प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी' तथा 'सेवक स्वामि सखा सिय-पीके' अनुसार श्रीरामजी और श्रीशिवजीमें अन्योन्य अखण्ड प्रीतिका सम्बन्ध है, अतः जो मनुष्य इन दोनोंमें एकका द्रोही होगा, वह दूसरेका भी द्रोही हो जायगा। इसलिये उसे भक्त न कहकर अभक्त ही कहना अधिक सङ्गत होगा। और भक्त तो देव-द्रोह क्यों, संसारके किसी भी प्राणीसे द्रोह नहीं करता—

निज प्रभुमय देखहिं जगत, कासन करहिं बिरोध।

पुनः जहाँ अनन्य भक्तका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है कि—

सो अनन्य जाके असि, मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूपरासि भगवंत॥

वहाँ अपने सेव्यके परम प्रियतमसे ही द्वेष करनेवाला नरकगामी न हो तो फिर उसका और कहाँ ठिकाना लग सकता है ? जब—

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई॥

अर्थात् 'चौदहों भुवनोंका एक मालिक हो जानेपर भी जगत्के प्राणियोंसे द्वेष करनेसे पतन होता है।' तब भगवान् राम और शङ्करसे द्रोह करनेपर यदि कल्पभर नरकमें वास करना पड़े तो इसमें अत्युक्ति क्या होगी ? नरकसे बचनेका उपाय तो श्रीरघुनाथजी तथा श्रीशिवजीकी भक्ति ही है, अतः जो मनुष्य भगवत् और भागवत दोनोंकी भक्तिसे विमुख हुआ है अथवा इनसे द्रोह किया है, उसे महानरक मिले, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसीलिये श्रीमुखसे भगवान्ने कहा है—

संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही ममदास।
ते नर करहिं कल्पभरि, घोर नरकमहँ बास॥

अर्थात् जो अपनेको शिवजीका प्रिय दास मानकर मुझसे द्रोह मानता है, अथवा मेरा दास बनकर शिवजीसे द्रोह मानता है वह वस्तुतः न मेरा ही भक्त है और न शिवजीका ही; बल्कि वह हम दोनोंका द्रोही है। अतः इस द्रोहके प्रायश्चित्तस्वरूप उसे कल्पभर घोर नरकमें वास करना पड़ेगा।

इस शङ्कामें उदाहरणस्वरूप रावणका नाम पेश किया गया है। परन्तु वह भी जबतक श्रीरामजीसे द्रोह बिना किये श्रीशिवजीकी तपस्या करता रहा तबतक भगवान् शिव अनुकूल होकर उसे सुख-सम्पत्ति प्रदान करते रहे। जैसा—

सादर सिवकहँ सीस चढ़ाये। एक एकके कोटिन पाये॥
जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दस माथ।

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है। परन्तु जब उसने श्रीरामचन्द्रजीसे द्रोह आरम्भ किया, रामभक्तों, देवता, गौ और ब्राह्मणोंको दुःख देने लगा तब वही शिवजी उस रावणके विनाशमें तत्पर हुए। जब पृथिवीने दुःखित होकर देवताओंके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर रावणके नाशके लिये पुकार मचायी तब श्रीशिवजीने उनके साथ होकर भगवान्की स्तुति करनेके लिये कहा। जैसे—

तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन इक कहेऊँ॥
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमतें प्रगट होहिं मैं जाना॥
मोर बचन सबके मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥

तथा जब श्रीरामचन्द्रजी अवतार लेकर रावणका विध्वंस करने लगे तब श्रीशिवजी हर्षसे फूले न समाये और अपने उसी सेवक रामद्रोहीका नाश अपनी आँखों देखकर प्रसन्न हो उठे। जैसे—

हमहूँ उमा रहे तेहि संगा। देखत राम चरित रन रंगा॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके द्रोहीसे श्रीशिवजी भी रुष्ट हो जाते हैं। अब यदि यह शङ्का की जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ऐसे अपचारी रावणको नरक क्यों नहीं प्राप्त हुआ ? तो इसका कारण श्रीरामजीके हाथोंसे उसकी मृत्यु होना है। शिवजीकी भक्तिसे उसे मोक्ष नहीं मिला। केवल रावण ही नहीं, श्रीरामजीके हाथों जितने जीव मारे गये हैं, सभी मुक्त हो गये हैं। जैसे, 'कीन्हें मुकुत निसाचर झारी ॥' बालिने कौन-सी शिवभक्ति की थी जो, 'राम बालि निज धाम पठावा।' मृगोंने शिवजीकी कौन-सी तपस्या की थी जो—

जे मृग राम बानके मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥

भला जो शिवजी रावणको 'सुर महिसुर हरिजन अरु गाई' का हिंसक तथा श्रीरामजीका विरोधी मानकर उसके सत्यानाशमें तत्पर होते हैं वही उसे मुक्ति देनेकी चेष्टा करें, यह सर्वथा असम्भव है। बल्कि श्रीरामजी अपने द्रोहीको भी मुक्ति देते हैं यह बात स्वयं शिवजी कहते हैं—

उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव मोहिं सुमिरत निसिचर देहिं परमगति यह जिय जानी। को कृपालु अस कहहु भवानी॥

अर्थात् 'हे पार्वति ! श्रीरामजीका कोमल चित्त करुणाकी खानि है, वह जब हृदयमें विचारते हैं कि निशाचर मुझे वैरभावहीसे सही, स्मरण तो करते हैं; तो उनको परमगति प्रदान करते हैं। हे भवानी ! ऐसा कृपालु स्वामी दूसरा और कौन हो सकता है ?' अतएव रावणके उदाहरणसे इस प्रसंगमें दोष नहीं आता, बल्कि श्रीमुखके वचनोंसे यही प्रमाणित होता है कि श्रीरामद्रोहीपर स्वप्नमें भी श्रीशिवजीकी कृपा नहीं होती है। हाँ शङ्का करनेवाले महाशयका यह विचार यथार्थ ही है कि 'जो मनसा, वाचा, कर्मणा अपने इष्टमें सच्चा प्रेम रखता है, वह अवश्य ही मोक्षको प्राप्त होगा, नरकको नहीं। और यदि वह नरकगामी हुआ तो कहना होगा कि वह अपने इष्टका सच्चा भक्त नहीं था और न उसके इष्टकी ही उसपर कृपा थी।'

परन्तु शङ्का करनेवाले महाशयकी यह बात कि 'त्रिलोकीका राज्य सौंप सकते हैं मुक्तिदान तो साधारण बात है' अर्थात् मुक्तिसे लोकराज्यको बढ़कर मानना निगमागमपुराणादि किसीसे सम्मत नहीं है।

दूसरी शङ्का

मम कृत सेतु जो दरसन करिहहिं।

इस चौपाईसे श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि मेरे बनाये हुए सेतुका जो दर्शन करेंगे·····। यहाँ शङ्का यह होती है कि सेतु तो नल, नील, अङ्गद, हनुमानादिने बनाया था, श्रीरामचन्द्रजी तो सेतु बाँधते समय अलग थे, उन्होंने न कोई युक्ति बतलायी और न किसी प्रकार-की सहायता दी। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि श्रीरामचन्द्रजीने सेतु बँधवाया ?

इसका समाधान यह है कि संसारमें सेतु, घाट, मन्दिर, तालाब आदि जितने कृत्य हैं सब उनके बनाये राजगीर और मजदूरोंके नहीं कहलाते हैं बल्कि उनके मालिकके ही नामसे विख्यात होते हैं। अतः इस शङ्काके समाधानमें अधिक विस्तार करना पाठकों-के समयको व्यर्थ नष्ट करना है। हाँ, शङ्का करनेवाले महाशयके सन्तोषके लिये श्रीमानसके ही कुछ पद प्रमाणमें यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

सुनतहिं बचन बिनीत अति, कह कृपालु मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटक, तात सो कहहु उपाइ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने जब समुद्रसे कपि-सेनाके उतारनेका उपाय पूछा तो समुद्रने उत्तर दिया—

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाई ऋषि आसिष पाई॥
तिन्हके परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तिहारे॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई॥
यहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय। जेहि यह सुयश लोक तिहुँ गाइय
निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहिं यह मत भायऊ

समुद्रके इस विनयको सुनकर श्रीरामजीने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रियोंको बुलवाकर आज्ञा दी कि शीघ्र ही सेतु तैयार कराया जाय जिससे सेना पार उतरे—

सिंधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलंब केहि काम, करहु सेतु उतरइ कटक ॥

अतएव श्रीरामजीकी आज्ञासे जामवन्तने नल-नीलको बुलवा कर सेतु बाँधने तथा समस्त बन्दरोंको पर्वत लानेमें लगाया। इस प्रकार जो कार्य हुआ वह श्रीरामचन्द्रजीका काम न कहलाकर नल-नीलका कैसे कहला सकता है? इसके अनेक प्रमाण मानसमें प्राप्त हैं—

राम भालु कपि कटक बटोरा। सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
जेहि बारीस बँधायउ हेला। उतरे कपिदल सहित सुबेला ॥

तीसरी शङ्का

श्रीरघुबीर प्रतापतें, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥

यहाँ यह शङ्का होती है कि समुद्रमें पाषाण तरते तो मुनिके शापसे थे, और नल-नीलके हाथों यह काम होता था फिर इसमें रामचन्द्रजीका क्या प्रताप था? इसे ऋषिका प्रताप यदि कहें तो यह बात ठीक भी हो सकती है। क्योंकि नल-नीलका तो इसमें कोई प्रभुत्व नहीं था फिर रामचन्द्रजीका प्रताप तो कैसे कहा जा सकता है?

इसका समाधान यह है कि इसमें श्रीरामचन्द्रजीका ही प्रताप प्रमुखरूपसे था। पहले समुद्रकी ही प्रार्थना देखिये—

तिन्हके परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तिहारे॥

यहाँ श्रीरामप्रतापका ही अवलम्ब माना गया है, साथ ही अपने लिये भी समुद्रने प्रभु-प्रभुताईका ही आश्रय लिया है—

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई ॥

श्रीहनुमान्‌जीकी उक्तिमें भी श्रीरामजीके प्रतापका ही उल्लेख पाया जाता है—

प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥

श्रीजामवन्त भी नल-नीलसे यही बात कह रहे हैं—

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहिं सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिरि मनमाँही। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ॥

यही क्यों, सारा दल ही कार्य प्रारम्भ करते समय श्रीरघुवीरके प्रतापको ही स्मरण कर रहा है—

सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥

अतएव यह अघटितघटना श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे ही घटित हुई है और इसी कारण यहाँ स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि—

महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिनकै करनी ॥
श्रीरघुबीर प्रतापतें, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥

अतिरिक्त इसके—

तिन्हके परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तिहारे ॥

इस पदसे ऋषिके शापको कारण मानकर जो शङ्का की गयी है उसके साथ यह भी विचारणीय विषय है कि केवल पर्वतोंके तरनेसे ही तो सेतुका निर्माण होना सम्भव नहीं है, पर्वतोंका स्थिर होना भी तो आवश्यक है। परन्तु नल-नीलको पर्वतोंके स्थिर करनेका तो शाप नहीं मिला था? इसमें भी श्रीरामजीका गुप्त प्रताप निहित है। इस विषयमें यह एक कथा चली आती है कि जब नल-नीलके स्पर्श किये हुए पर्वत समुद्रमें तैरते हुए लहरोंसे यत्र-तत्र फैलने लगे तब इस बातकी चिन्ता हुई कि ये पहाड़ एक-दूसरेसे जुटकर कैसे स्थिर हो सकेंगे? दयासागर प्रभुने विचारा कि हमारे सेवकोंपर भारी चिन्ता आ पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे मुस्कराते हुए जामवन्तके समीप आकर पूछने लगे कि 'भला नल-नीलके हाथोंमें ऐसी कौन-सी खूबी है जो इनके छुए पर्वत समुद्रपर तैरने लगते हैं ?' नल और नीलने इस प्रकार अपनी कथा सुनायी—'हे स्वामी ! बाल्यकालमें हमलोग जिस अरण्यमें रहते थे वहाँ एक बड़े ही तपोनिष्ठ ऋषि रहते थे। वह श्रीरामनामके अनन्य जापक थे, ऋषिकी हमारे ऊपर बड़ी कृपा थी। एक दिन हमलोगोंने उनकी शालग्रामकी मूर्ति लेकर आश्रमके पास ही जलाशयमें डुबो दिया। ऋषिको उसे ढूँढ़नेमें बड़ा समय लगा, मूर्ति मिलनेके बाद उन्होंने यह शाप दे दिया कि 'जाओ, आजसे तुम्हारे स्पर्श किये हुए पत्थर डूबेंगे ही नहीं।' परन्तु हे प्रभु ! यह सब आपकी ही प्रभुता है।' श्रीरामचन्द्रजीने हँसते हुए कहा कि 'लोग यों ही स्तुति-वचन बना लेते हैं, यदि मेरे हाथका भी एक पत्थर न डूबे तो मैं समझूँ कि इसमें मेरा ही प्रताप है।' ऐसा कहकर भगवान्‌ने एक पत्थरका टुकड़ा समुद्रमें फेंका और वह डूब गया। इसपर जामवन्तने कहा—'हे प्रभु ! आपने अपने हाथोंसे जिसे फेंक दिया उसे तो डूबना ही चाहिये। आपकी भुजाके आश्रयसे तो उद्धार होता है। उससे च्युत होनेवाला तो जरूर ही डूब जायगा।' श्रीरामचन्द्रजी मुस्कराते हुए लौट गये। इसपर जामवन्तने नल-नीलको बुलाकर कहा कि 'भाइयो ! पर्वतोंको जोड़कर स्थिर करनेका मसाला भी मिल गया। अब ऐसा उपाय करो कि एक पर्वतपर 'रा' लिखो और दूसरेपर 'म'—फिर प्रेमपूर्वक रामनामका उच्चारण कर दोनोंको मिला दो। यह दोनों अक्षर 'ब्रह्मजीव इव सहज सँघाती' हैं। दोनों पर्वतोंको अखण्डरूपसे जुटा देंगे।' अतः ऐसा ही किया गया, अटल सेतु बनकर तैयार हो गया। इस प्रकार सेतुबन्धमें रामप्रतापका ही सारा खेल है। इसी भावको लेकर विनय-पत्रिकामें कहा है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषानन करि कपि-कटक तरो॥

अतएव श्रीरघुवीरप्रतापसे ही 'पाषान सिन्धु तरे', इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। श्रीरामजीके प्रतापसे ही ऋषिमें यह सामर्थ्य प्राप्त थी कि उनके आशीर्वादसे नल-नीलके हाथोंमें यह विशेषता आयी। अन्तमें पर्वतोंके जुटाने और स्थिर करनेमें श्रीरघुवीरप्रतापहीसे कार्य सम्पन्न हुआ। समुद्रने भी श्रीरघुवीरप्रतापसे ही सम्मुख आकर सिन्धु बाँधनेकी सम्मति दी, बानर-भालु श्रीरामके ही प्रतापसे पर्वतोंको गेंदके समान उखाड़ लाये। सारांश यह है कि सेतुबन्धमें जो कुछ हुआ श्रीरघुवीरप्रतापहीसे हुआ। इसमें तनिक भी शङ्काका स्थान नहीं है कि—

श्रीरघुबीर प्रतापतें, सिंधु तरे पाषान।

सियावर रामचन्द्रकी जय !

ज्ञानगुदड़ी

जिसको तू कहे अर्थ वह है अनर्थमूल भूलसे भी व्यर्थ ऐसे फंदमें न फँसना।
संग्रहमें रक्षणमें व्ययमें सदा ही यहाँ भीतर है रोना, मूढ बाहरसे हँसना॥
यह पाया वह पाऊँ इतना बढ़ाऊँ और दुस्तर मनोरथनदीका कहीं तट ना।
चातक-से तोषहीन आशासे उपरिमुख मथियोंकी अमिट है दीन शब्द रटना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरूपकलाजीका वचनामृत-सार

(श्रीराघवेन्द्र देव नारायण बी० ए० द्वारा सङ्कलित)

जय जय जय जानकि जानकिवर ।
क्षमासीवँ, समरथ, करुणाकर ॥
चन्द्रकला, गिरिजा, गिरा, हनुमत श्रीसियराम ।
चरण बंदि चाहौं सदा, राम-भक्ति निःकाम ॥

सर्वशक्तिमान्, परमकृपालु क्षमामन्दिर श्रीभगवत-को सभी देशकालमें स्मरण करो और श्रीनाम जपो । सुरति श्रीभगवतपर रक्खे रहो और हाथोंसे काम किये जाओ । श्रीहरिसे विनय, कर्तव्य-परायणता, उद्योग और सद्भाव ये सिद्धिके लक्षण हैं । दम्भ बहुत बुरा है । ढाल बनो तो बनो पर तलवार न बनो । जिह्वासे सावधान रहो; अर्थात् कब, कहाँ, क्या, कितना, कैसा और कैसे बोलना और खाना चाहिये इससे सचेत रहो । अभिमान, आलस, वैर, फूट और डाहके निकट न जाओ । सत्यवादी, सत्य-व्यवहारी, यशस्वी, दृढ़प्रतिज्ञ, दयाशील, शुचि, निर्मल, धीर, विनीत और उपकारी होओ । बहुत सोच-समझ-कर कोई प्रतिज्ञा करो । उसके सोचसे क्या जो जा ही चुका । मन-चित्तको बुद्धिके आधीन रखो । विराग तथा शान्तिके सुखको जानो । अभ्यास और योगके बलको समझो । प्रेमकी प्रभुता तथा महिमाको विचारो । किसीके साथ ऐसा व्यवहार न करो कि जैसा तुम नहीं चाहते कि कोई तुम्हारे प्रति करे । कर्तव्यपालन करनेमें ठीक परिश्रम करनेसे न चूको । जो कार्य अभी-अभी कर सकते हो उसे दूसरे समय-पर नहीं उठा रक्खो । विचारका सदा अभ्यास करो । प्रतिदिन रात्रिको बीते हुए तथा अगले दिनके कार्योंका मनन-चिन्तन करते हुए श्रीभगवतसे प्रार्थना करो । कुमार्गकी ओर झुकनेसे वा अनुचित वस्तुके लालचसे बहुत बचो । दुःखकी जड़ पाप है और विषयासक्तिका फल नास्तिकता है । अनात्मा, आत्मा, धर्मात्मा, महात्मा, परमात्माकी पहचान सविवेक करो । मृत्युको मत भूलो, वह अवश्य पहुँचती है, काल अचानक (अकस्मात्) आ पड़ता है । इन्द्रियोंके विषयोंको हितकर न मानो । समयकी महिमा मत भूलो । समझनेवाला अन्तःकरण ही है; और समझ लिये जानेके योग्य भी अन्तःकरण ही है । बढ़ते-बढ़ते चले चलो । श्रीभगवद्भक्तोंसे सादर सप्रेम मिलो ।

'तुलसी' इस संसारमें, सबसे मिलिये धाय ।
क्या जाने किस भेषमें, नारायण मिल जाय ॥

अन्तःकरणमें श्रीभगवत; श्रीभगवतमें मन-चित्त-बुद्धि । प्रेम ! प्रेम !! प्रेम !!!

जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रय सूल ।
सो कृपालु मोहि तोहिंपर, रहैं सदा अनुकूल ॥

प्रियप्रेमी ! श्रीगुरुमन्त्रका जाप नित्य करो । श्रीरामचरितमानस तथा श्रीभक्तमालका थोड़ा पाठ भी जरूर करो ।

जय श्रीजानकि जानकिकंत । श्रीआचार्य्य, श्रीहनुमंत ॥
देह कहीं, सियपद महँ देहीं । मन तहँ जहँ सियपिय बैदेहीं ॥
जीह सुरति श्रीसिय पिय नाम । अष्टयाम श्रीसीताराम ॥

बिसाल यार चूँ ख़ाही, करीने नामश बाश ।

अर्थात् प्रीतमसे जो भेंट चाहता है तो उसके नामके निकट रह ।

बदीदार मर्दुम शुदन ऐब नीस्त ।
व लेकिन न चंदाके गोयंद बस ॥

अर्थात् किसीसे भेंट करना ऐब नहीं है किन्तु इतनी न होनी चाहिये कि ऊब जाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहेच चीज़ तोरा निस्त हाजत ए हाफ़िज़ ।
दोआये नीम शबो दर्द सुबह गाहत बस ॥
हर गंज सेआदतके खुदा दाद व हाफ़िज़ ।
अज़ यमन दोआये शबो दर्देसहरी बूद ॥

अर्थात् ऐ हाफ़िज़ ! तुझे किसी चीज़की जरूरत नहीं है सिवा आधीरातकी प्रार्थना और प्रभातका भजन । सम्पत्तिकी जो पूँजी हाफ़िज़को परमात्मासे मिली है वह आधीरातकी प्रार्थना एवं प्रभातके भजनका फल है ।

खुर्दन बराय ज़ीस्त ओ ज़िक कर्दन अस्त ।
तू मुश्किदके ज़ीस्तन अज़ बहर खुर्दन अस्त ॥

अर्थात् खाना जीने और भजनके लिये है । तू समझता है कि जिन्दगी खानेके लिये है ।

वाहेच ज़न दर खिलवत मनशीं, गर्चे तोरा ऊमादर बाशद व तू ऊ रा कुरान मी खान ।

अर्थात् किसी स्त्रीके साथ एकान्तमें न बैठ, यदि वह तेरी माँ भी हो और तू उसे कुरान क्यों न पढ़ाता हो ।

श्रीरामचरितमानस और भक्तमालका आदर और अभ्यास कीजिये और समय मिले तो बिनय-पत्रिकाका भी ।

राम राम रटु, रामराम जपु, राम राम रसु जीहा ।
राम नाम नव-नेह मेहको, मन हठि होहिं पपीहा ॥
सीताराम रटे अघ जाई । गूढ़ा तत्त्व सो प्रगट लखाई ॥
सीताराम सुज्ञान विरागा । सीताराम धर्मकृत जागा ॥
सीताराम सुकर्म बिचारो । सीताराम नाम उर धारो ॥
सीताराम सनेह सगाई । सीताराम रटो लय लाई ॥
सीताराम नाम व्रत नेमा । सीताराम परम गति छेमा ॥
सीताराम नाम संतोषा । सीताराम सुधारन कोषा ॥
सीताराम रटे सुख होई । सीताराम प्रकट नहिं गोई ॥
सीताराम नाम धन नीको । अमर सकल धन गाहक जीको ॥
सीताराम रसायन जानो । सीताराम नाम रति मानो ॥
सीताराम अजीवन मूरी । नाम रटै नाशै भय भूरी ॥
सीताराम रटै सो जीवै । सियाराम रटि पावत पीवै ॥
सीताराम सुअमृतधारा । हरैं सकल कलि कलुष विकारा ॥
सीताराम नाम प्रिय मीता । बिनु कारण हित परम पुनीता ॥
सीताराम रटै भय भाजै । सीताराम सुनत यह लाजै ॥
सीताराम नाम जनरंजन । सीताराम सकल दुखभंजन ॥
सीयराममय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुगपानी ॥
रामकथा सुंदर करतारी । संसय-बिहँग उड़ावनिहारी ॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगतसिरोमनि भे प्रहलादू ॥
नाम प्रसाद संभु अबिनासी । साजु अमंगल मंगलरासी ॥
जो नहिं करै रामगुनगाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ॥

विश्वास

(१)

अमरबेलि बिनु मूलके, प्रतिपालत है ताहि ।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥

(२)

रन बन ब्याधि बिपत्तिमैं, 'रहिमन' मरउ न रोइ ।
जो रच्छक जननी-जठर, सो हरि गए न सोइ ॥

(३)

काम न काहू आवही, मोल 'रहीम' न लेइ ।
बाजू टूटे बाजके, साहेब चारा देइ ॥

—रहीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[वर्ष ८ पृष्ठ १०१४ से आगे]

भगवान् श्रीरामचन्द्रने सेनापति सुग्रीवके नैतिक कथनका नीतिकी दलीलोंसे ही जिस समय खण्डन कर दिया तब वह—

सहलक्ष्मणः उत्थाय प्रणतः वाक्यमब्रवीत् ।

'लक्ष्मणको साथ लेकर उठे और प्रणाम करके कहने लगे ।'

श्रीरामचन्द्रमें असामान्य स्नेहके कारण अनिष्टकी शङ्कासे सुग्रीवने दो-दो बार विभीषणके स्वीकारका विरोध किया । धर्मकी, नीतिकी, स्नेहकी प्रायः सभी मर्यादाओंसे श्रीरामचन्द्रको विवश करना चाहा जिससे वे किसी तरह भी विभीषणको बैरंग लौटा दें । ऐसा न हो कि वे इसे अपने दलमें मिला लें और यह (हमलोगोंकी तो कोई चिन्ता नहीं परन्तु) स्वयं भगवान्का ही कहीं अनिष्ट कर बैठे । भगवान्ने भी दोनों बार इनका अच्छी रीतिसे समाधान कर दिया । स्नेहकी और धर्मकी दोनों रीतियोंसे सुग्रीवको अच्छी तरह हटा दिया । सेनापतिके पदपर होनेके कारण राजनीतिके अनुसार भी जो-जो बाधाएँ उन्होंने उपस्थित की थीं उनका भी राजनीतिसे ही आपने अच्छी तरह खण्डन कर दिया । किन्तु स्नेह नहीं मानता था । श्रीराममें जो उनकी असामान्य प्रीति थी उसके कारण पद-पदपर उन्हें अनिष्टका भय लगा रहता था । इसीलिये श्रीरामके कथनसे वे निरस्त न हो सके । अतः तीसरी बार खड़े होकर वे फिर विभीषणके संग्रहमें घोर विरोध उपस्थित करते हैं ।

ठीक है । यह मान लिया जा सकता है कि शरणागतवत्सल श्रीरामने विभीषणके स्वीकारमें जितनी बार अपना आग्रह प्रकाशित किया उतनी ही बार सुग्रीवने अति स्नेहके कारण विरोध उपस्थित किया । किन्तु यह समझमें नहीं आया कि वे अबके तीसरी बार विभीषणके विरोधमें अपनी वक्तृता उपस्थित करते हुए लक्ष्मणको साथ लेकर यकायक उठकर खड़े क्यों हो गये । क्या अपनी असम्मति यहाँतक दिखाना चाहते थे कि—'लीजिये मेरा और लक्ष्मणका तो इसी घड़ी प्रणाम है । हम तो अब चरण-सेवामें नहीं रह सकते ।'

नहीं, ऐसा नहीं, इसका दूसरा तात्पर्य है जो शरणागतिमें अत्यन्त आवश्यक है । 'प्रणतः' के साथ महर्षिने एक विशेषण यहाँ और दिया है 'महाप्राज्ञः' अत्यन्त बुद्धिमान् । जो बुद्धिमान् होते हैं वे ऐसी 'हठकारिता' नहीं किया करते । यहाँ तो वे अपनी महाप्राज्ञताका परिचय दूसरे ही प्रकारसे दे रहे हैं । सुनिये—

सुग्रीवने देख लिया कि श्रीरामचन्द्रके आगे राजनीतिकी दलीलें एक भी नहीं चलतीं । वे एकके उत्तरमें इतनी युक्तियाँ उपस्थित करते हैं कि जिनका समाधान होना कठिन है । स्नेह और धर्मकी दुहाई भी काम नहीं आयी । श्रीरामचन्द्रने 'मित्रभावेन सम्प्राप्तम्' इस एक ही पद्यमें, एक स्नेह और धर्म ही क्या, सभीको गौण मानते हुए स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'शरणागतभावसे चाहे कैसा भी दोषी मेरे पास आ जाय, मैं किसी प्रकार भी उसको नहीं छोड़ सकता । शरणागतको अभय देना मेरा 'व्रत' है ।' कहिये, अब इसका क्या उत्तर दिया जाय ? शरणागतिरूप एक ही गुणके कारण प्रपन्नके अनेकानेक प्रबल-से-प्रबल दोषोंतकको भगवान् नहीं देखते । फिर राजनीतिके द्वारा दिखाये हुए दोषोंकी क्या बात ? बानरसेनाके स्वामी किष्किन्धाधिपति सुग्रीव और कोसलनरेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रमें विभीषणके स्वीकार विषयको लेकर परस्पर विनोदमय एक बड़ा भारी वाग्युद्ध चल रहा था । सुग्रीव अपनी विजयके लिये एक-से-एक बढ़कर युक्तिरूपी शस्त्रोंका प्रयोग कर रहे थे । भगवान् भी उन शस्त्रोंका तत्काल ही प्रतीकार कर देते थे । सुग्रीव तत्क्षण ही फिर उससे बढ़कर शस्त्र काममें लाते थे । किन्तु इस बार सुग्रीवके जवाबमें भगवान्ने जो शस्त्र काममें लिया है उसका कोई जवाब ही नहीं । और सब शस्त्र-अस्त्रोंकी काट हो जाती है किन्तु जिस समय ब्रह्मास्त्र छोड़ा जाता है फिर उसका कोई प्रतीकार नहीं । मारुतिपर मेघनाद अपने सब शस्त्र और अस्त्र छोड़ता रहा, अतुलपराक्रम हनुमान् भी उनका तत्काल ही प्रतीकार करते रहे । किन्तु जब उसने ब्रह्मास्त्र छोड़ा, तब हनुमान्ने देखा अब इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान नहीं। इच्छासे हो या अनिच्छासे, अब तो इसके वशीभूत होनेके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं।

पुत्रवधका अपराध करके भागते हुए अश्वत्थामाने अर्जुनपर अनेकानेक शस्त्रास्त्र छोड़े, अर्जुनने सबको काट डाला। किन्तु जिस समय ब्रह्मास्त्र छोड़ा, त्रिभुवन संतप्त हो उठा। अर्जुन घबरा गया। भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि अश्वत्थामाने इस समय ब्रह्मास्त्र चलाया है। इसका दूसरा प्रतीकार है ही नहीं। हाँ, इसका यदि कोई सामना कर सकता है तो यही। अर्थात् ब्रह्मास्त्रका जवाब ब्रह्मास्त्र ही है। बस, अर्जुनको ब्रह्मास्त्र चलाना पड़ा।

यहाँ भी यही बात है। परिषदप्रवर सुग्रीवने देखा कि विभीषणके मैं जितने-जितने दोष दिखाता हूँ 'शरणागति' के आगे भगवान् उन्हें एकको भी नहीं ठहरने देते। भगवान्‌के इस दरबारमें 'शरणागति' का मुकाबिला करनेवाला कोई नहीं। स्वयं भगवान् जब श्रीमुखसे आज्ञा कर रहे हैं कि 'शरणागतको सम्मुख देखकर स्वयं मैं ही विह्वल हो जाता हूँ। बहुमानपूर्वक उसे छातीसे लगानेकी मेरी इच्छा हो उठती है। उसके दोषोंकी ओर दृष्टि ही किसकी जाती है।' अब दूसरा उपाय ही क्या रहा? शरणागतिका प्रतीकार यदि कोई है तो शरणागति ही। किन्तु इधर विभीषणकी शरणागतिपर स्वयं कोसलेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्र डटे हुए हैं। इसलिये शरणागतिके उत्तरमें यदि एक शरणागतिका आश्रय भी लिया जाय तो भी काम न चलेगा। समान बल होनेके कारण दोनों शरणागति शायद बराबर डट जायँ। इसलिये दूने गोले-बारूद बिना काम नहीं चलनेका। इसलिये अब तो एक शरणागतिके उत्तरमें दो शरणागति सम्मुख रक्खी जायँ, देखें भगवान् फिर इनका तिरस्कार कैसे करते हैं? इसीलिये भगवान्‌के परमश्रेष्ठ, अनुगत, लघुभ्राता श्रीलक्ष्मणको साथ लेकर सुग्रीव उठ खड़े हुए और भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया कि—'हम दो सेवक भी आपकी शरण आये हैं। हमारी प्रार्थना भी सुनी जाय कि शत्रुपक्षीय विभीषणको आप कथमपि स्वीकार न करें।' देखें भगवान् इसकी अवहेलना कैसे कर सकते हैं? इसी आशयको लेकर महर्षिने कहा है—

महाप्राज्ञः सहलक्ष्मणः उत्थाय, प्रणतः वाक्यमब्रवीत्।

'बुद्धिमान् सुग्रीव लक्ष्मणको साथ लेकर उठे और प्रणाम करके वाक्य बोले।'

सुग्रीवने फिर भी यही कहा कि 'यह निशाचर अवश्य ही रावणका भेजा हुआ है। यदि इसका विश्वास किया जायगा तो अवश्य यह आपके साथ दगा करेगा। शायद आप अपने क्लेशोंकी परवा न भी करते हों, किन्तु आपकी भक्तवत्सलता जगत्प्रसिद्ध है। आप स्वयं चाहे दुःख पा लें परन्तु अपने आश्रितका दुःख आप कभी नहीं देख सकते। इसलिये आप चाहे अपने साथ विश्वासघात होनेकी अधिक परवा न भी करें तो भी हमलोगोंका तो कुछ अनुरोध आप रखेंगे ही। इसलिये कहते हैं—

'विश्वस्ते मयि वाऽनघ लक्ष्मणे वा महाबाहो' (प्रहर्तुमागतः) 'विश्वासी मुझपर अथवा श्रीलक्ष्मणपर प्रहार करनेकी नीयतसे यह आया है।' यह जगत्प्रसिद्ध क्रूरकर्मा रावणका भ्राता है, इसे कैद कर लेना चाहिये। यही इस समय उचित है। यह कहकर वाक्यकुशल सुग्रीव चुप हो गये।

तीन बार हो चुका। श्रीराममें अलौकिक स्नेहके कारण अनिष्टकी शङ्कासे सुग्रीव विभीषणका स्वीकार कथमपि नहीं चाहते। इसलिये वह बार-बार विरोध करते हैं। इधर श्रीरामचन्द्रजी अपनी भक्तवत्सलतापर, अपने दीनोद्धरणव्रतपर डटे हुए हैं। वह भी सुग्रीवके कथनको कदापि स्वीकार करना नहीं चाहते। किन्तु तीसरी बार भी विभीषणके स्वीकारमें जब सुग्रीवने विरोध ही किया तब—

रामः तद्वाक्यं श्रुत्वा विमृश्य च शुभतरं वाक्यमुवाच।

'श्रीराम उस वाक्यको सुनकर और कुछ सोच-विचारकर अत्यन्त शुभ वचन बोले।'

सभी टीकाकारोंने विचारनेका यहाँ यही तात्पर्य निकाला है कि—'सुग्रीव जो बार-बार विभीषणके स्वीकारमें विरोध करते हैं उसका यही कारण है कि इनका मुझमें अत्यन्त प्रेम है। बस, प्रेमहीके कारण वह अस्थानमें भी अनिष्टकी शङ्का करके ऐसा हठ कर रहे हैं' यही श्रीरामचन्द्रने विचार किया। किन्तु मेरे विचारसे शरणागति-प्रसङ्गके अनुसार इसका दूसरा ही तात्पर्य मालूम होता है। सुग्रीवने राजनीतिके अनुसार, धर्मकी दृष्टिसे तथा अवसरको देखते हुए भी विभीषणके स्वीकारका दो बार विरोध किया। भगवान् रामचन्द्रने भी दोनों ही बार राजनीति और धार्मिक मर्यादासे भी विभीषणके स्वीकारका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थन किया। सुग्रीवको अच्छी तरह समझा दिया कि यह हमारी कोई हानि नहीं कर सकता। जब यह शरणार्थी होकर आया है तब अवश्य इसपर कोई आपत्ति ही आयी है। आपत्तिग्रस्त होकर, 'तुम्हारा हूँ' कहकर, जो कोई मेरे पास आता है उसको अभय देना यह मेरा दृढ़व्रत है। अतएव इससे भय करनेका कोई कारण नहीं। यहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रने व्यङ्ग्यमर्यादासे सुग्रीवको सूचित कर दिया कि दीनोंके उद्धारके लिये, दुष्टोंसे सताये हुओंको अभय देनेके लिये सर्वशक्तिमान् मेरा अवतार भूमण्डलमें हुआ है। अतएव मुझे अभयदीक्षाव्रतसे हटना कदापि उचित नहीं है। ठीक ही है, जब सर्वशक्तिमान् भगवान्ने ही अवतार लिया है तब उन्हें भय उत्पन्न करनेवाला है ही कौन? किन्तु दोनों ही बार भगवान्की इस अन्तर्हित शक्तिको सुग्रीव नहीं समझ सके। सप्ततालभेदनादि असामान्य कार्य देखकर भी भगवान्की मायामें विमुग्ध हो पड़े। उन्हें एक अनुपम वीरमात्र समझने लगे। इसीलिये—'निशाचर विभीषण प्राणश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रका कोई अनिष्ट न कर बैठे' इस शङ्कासे अति विह्वल होकर वे श्रीरामचन्द्रसे दैन्यपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि 'इसको किसी तरह भी अपने दलमें मत मिलाइये। यह निश्चित ही अनिष्ट करनेकी बुद्धिसे यहाँ आया है।'

जब दो-दो बार हो चुका, व्यङ्ग्यमर्यादासे भगवान्ने सूचित भी कर दिया, तो भी भगवान्की उस अपरिमित शक्तिको सुग्रीव नहीं समझ सके। तब 'रामः विमृश्य', भगवान्ने सोचा कि अब साफ कहे बिना काम नहीं चलेगा। अपनी अपरिमेय शक्ति, अपना ऐश्वर्य, सूचित किये बिना सुग्रीवको भरोसा नहीं आवेगा। उसको मेरे सामर्थ्यपर अभी सन्देह है। चाहता तो नहीं था कि मैं अपना ईश्वरभाव प्रकट करूँ, परन्तु अब कहे बिना शरणागत विभीषणके स्वीकारमें व्यर्थ विलम्ब हो रहा है। यह सब बातें विवश होकर भगवान्को सोचनी पड़ीं इसीलिये महर्षिने कहा है कि—'विमृश्य'—'विचार करके।'

गीताके भगवान्ने भी शरणागतिके अधिकारी अर्जुनको जिस समय अपना सर्वसामर्थ्य, अनन्तवीर्य, अपनी विभूतियाँ अपने मुखसे कहीं उस समय उसने मान तो लिया परन्तु कुछ सन्देहरेखा हृदयमें रही। भगवान्के विभूतियोगको सुनकर उसने कहा कि—'एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर' 'हे सर्वसमर्थ! आपने अपने स्वरूपको जैसा बतलाया वह ऐसा ही है।' अर्जुन मुखसे कह तो गये परन्तु भगवान्ने देखा कि इसके हृदयमें अभी कुछ 'किन्तु' बाकी है। आखिर अर्जुनका वह भाव इस प्रार्थनासे प्रकट हो ही गया कि—

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥

'अर्थात् हे भगवन्! मैं आपका वह सर्वशक्तियुक्त रूप देखना चाहता हूँ।' अस्तु भगवान्को वहाँ विश्वरूप दिखाना पड़ा।

भगवान्ने देखा कि कुछ वैसा ही अवसर यहाँ भी आया हुआ है। 'द्विर्बद्धं' ही काफ़ी होता है, किन्तु यहाँ तीन-तीन बार अच्छी तरह समझा देनेपर भी सुग्रीवको अभी मेरे सामर्थ्यके विषयमें सन्देह बना हुआ है। अब साफ़-साफ़ अपने मुखसे ही कहे बिना काम नहीं चलेगा। बस, यही विचार भगवान्को इस समय करना पड़ा, इसीलिये महर्षि यहाँ कहते हैं—'विमृश्य'।

अपना दिव्य प्रभाव प्रकट करनेमें कुछ सोच-विचार करके आप बोले—'यह जातिसे राक्षस हो और उसपर भी प्रकृतिसे यह चाहे दुष्ट हो या अदुष्ट, किन्तु यह क्या मेरा कुछ भी अनिष्ट करनेका सामर्थ्य रखता है? मैं पिशाच, दैत्य, यक्ष, एक यही राक्षस क्या पृथिवीभरके सब राक्षस मिलकर चले आवें तो भी एक अङ्गुलिके अग्रभागसे सबको नष्ट कर सकता हूँ।'

अविकत्थन, दक्षिणनायकोंके मुकुटमणि मर्यादापुरुषोत्तम जो श्रीरामचन्द्र विनयमार्गका आदर्श स्थापित करते हुए सदा अपनेको अकिञ्चित्कर कहते आये हैं। कुठार लेकर मारनेवालेके आगे भी मस्तक नवाकर कहते हैं—

.....कर कुठार आगे यह सीसा॥
जिहिं रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानि आपन अनुगामी॥

वही अपने मुखसे गर्विष्ठ वाणी कैसे कहते हैं? इसका कारण यही है कि किसी तरह सुग्रीवादिको विश्वास हो, इसके लिये भगवान् अपना दिव्यभाव स्पष्ट अपने मुखसे कह देना चाहते हैं। तुम एक इस राक्षससे ही डर रहे हो, मैं राक्षस ही क्या दानव, पिशाच, यक्ष आदि सम्पूर्ण देवयोनियोंको केवल एक अङ्गुलिके इशारेसे ही मार सकता हूँ। तुम्हें यह गर्व होगा कि 'मेरी सहायताके बिना रामका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई कार्य नहीं हो सकता। क्योंकि लङ्काविजय अकेले आपसे न हो सका तभी तो वानरसमूहका सेनापति बनाकर मुझे साथ लाये हैं।' यह अभिमान मत रखना। अपने आश्रित वानरसमूहके साथ तुम अलग बैठे-बैठे देखो, मैं अकेला इन सबको इशारेमात्रसे मार सकता हूँ। इसी व्यङ्ग्यको सूचित करनेके लिये यहाँ सम्बोधन दिया है—'हरिगणेश्वर!' हे वानरसेनाके स्वामी! तुम्हारी किसी तरहकी सहायताके बिना अकेला मैं ही यावन्मात्र दैत्य, राक्षसादिको मार सकता हूँ।

यहाँ स्पष्ट ही मुखसे कह दिया कि मैं देवकार्यके लिये भूमण्डलपर आया हूँ, अब राक्षस ही क्या दैत्यादि सभी विरुद्ध हो जायँ तो भी मुझे उनका नाश करना पड़ेगा। 'ठीक है, जब आपका यह अलौकिक सामर्थ्य है तब फिर हमलोगोंकी क्या जरूरत है, और वानरसैन्यका ही फिर क्या होगा?' यह शङ्का न हो, इसलिये आपने अपने वाक्यमें कहा है—'इच्छन्' 'यदि मैं चाहूँ तो।' यदि मैं चाहूँ तो सङ्कल्पमात्रसे नष्ट कर दूँ किन्तु मनुष्य और देवयोनिमात्रसे तुम अवध्य हो, यह वर रावणको दिया जा चुका है। इसलिये मैं अपने दिव्यभावको छिपाकर मनुष्यलीला करता हुआ ही रावणका दमन करना चाहता हूँ। इसीलिये मैं अपनी दिव्यशक्तिसे काम नहीं लेता। इसी आशयसे यहाँ 'हन्याम्' यह हेतुहेतुमद्भावमें 'लिङ्' कहा है। 'यदि मैं चाहता तो एक अङ्गुलिके अग्रसे मार देता, किन्तु यह नहीं चाहता।'

शरणागतरक्षणमें विलम्ब न हो इसलिये सुग्रीवादिके विश्वासके लिये श्रीरामचन्द्र पूर्वोक्त वाक्य कह तो गये किन्तु यह गर्वोद्धत मार्ग आपको हृदयसे सम्मत नहीं। आप तो अपने अधीनोंसे भी समानताका बर्ताव करनेवाले हैं। इसीलिये पूर्वोक्त वाक्यको मन्द करनेके लिये कहते हैं—शरणागतकी रक्षा करना केवल मेरा ही धर्म नहीं अपितु विश्वभर इसे मानता है। और तो क्या, पशु-पक्षी भी अपने शरणागतको आश्रय देते हैं। इसी आशयसे आप आगे कहते हैं—

श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः॥
स हि तं प्रतिजग्राह भार्याहर्तारमागतम्।
कपोतो वानरश्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः॥

'यह आख्यायिका प्रसिद्ध है कि वृक्षरूप अपने घरमें आश्रयके लिये आये हुए अपकारक व्याधको भी कपोत सदृश पक्षीने केवल आश्रय ही नहीं दिया, अपने शरीरके मांसतकसे उसका आतिथ्य किया। व्याध केवल जातिमात्रसे ही अपकारकर्ता नहीं था, उसने कपोतकी प्रिय पत्नीतकको जालमें बाँध लिया था। किन्तु वह भी जिस समय उसके आश्रयमें शरणार्थी होकर आया, बड़ी भक्तिसे उसको ग्रहण किया था। फिर मेरे सदृश क्षत्रियवंशजात मनुष्यका क्या यह धर्म नहीं है?'

यहाँ 'कपोतेन' से दिखाया कि वह तिर्यग्योनि होनेसे धर्माधिकारशून्य था। वह यदि ऐसा न करता तो भी उसे कोई दोषी नहीं कहता किन्तु तो भी वह शरणार्थीपर इतना आतिथेय हुआ। भला फिर हम मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है? 'कपोतेन' इस एकवचनसे सूचित करते हैं कि वह अकेला था तो भी आतिथ्यसे विमुख न हुआ। हम तो बहुत-से ही नहीं, असंख्य सेनाको साथ लेकर आये हैं। उसने भार्याहरणके कारण घोर अपराधीके साथ भी यह सलूक किया था, यहाँ तो स्वयं विभीषण हमारा अपकारी भी नहीं। इस श्लोकमें 'शरण' पर भी महर्षिकी कुछ ध्वनि है। आप कहते हैं कपोत तिर्यग्योनि पक्षी था। वह शरणागतधर्मका स्वाध्याय भी नहीं कर चुका था। न वह 'शरण' का वास्तविक अर्थ ही जानता था। अपने घरमें आश्रयके लिये यदि कोई आवे तो उसे अपनी तरह समझकर उसको आराम देना वह तो इतनामात्र समझता था। अर्थात् 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इस दो शरण शब्दार्थोंमें केवल घरमात्रपर यदि उसे सङ्केताग्रह हो तो हो सकता है। वह भी परम्परासे, क्योंकि—

सोऽञ्जलिं शिरसा बद्ध्वा वाक्यमाह वनस्पतिम्।
शरणं हि गतोऽस्म्यद्य देवतामिह वासिनीम्॥

यों व्याधने वृक्षके प्रति ही आश्रयका वाक्य कहा था न कि कपोतके प्रति। यहाँ विभीषण तो बड़े ऊँचे स्वरसे पुकार चुका है कि—'राघवं शरणं गतः।' यहाँ स्पष्ट ही झलक रहा है कि वह मुझे रघुवंशी समझकर, मैं आश्रयदानमें समर्थ हूँ, यह दृढ़ विश्वास रखकर आया है। सो भी प्रत्यक्ष 'शरणागति' बुद्धिसे, क्योंकि 'राघवं शरणं गतः' में रक्षक अर्थ ही आपाततः अच्छा बैठता है। फिर कपोत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदृश पक्षी तो यहाँतक उसकी अभ्यर्थना करता है कि उसके शीतनिवारणके लिये अग्नि लाकर भी उसको सुख देता है। और हम तो केवल शरणार्थीकी ही नहीं, उसके दूर-दूरतकके सम्बन्धी, साथी, सँगातीकी भी क्या अच्छी पूजा कर रहे हैं जो कहते हैं—

वध्यतामेष तीक्ष्णेन दण्डेन सचिवैः सह ॥

'कपोतने केवल सत्कार ही नहीं, 'स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः' अपने शरीरके मांसतकको हाजिर करके भोजनके लिये प्रार्थना की।' बाहरके कुछ आहार सामने रख दिये हों, अथवा अपना ही कुछ दूसरा सामान अर्पण किया हो, किंवा अपने शरीरका कुछ ही हिस्सा उसे भोजनके लिये दिया हो, सो नहीं। महर्षि कहते हैं—'स्वैश्च मांसैः' 'अपने सम्पूर्ण शरीरके मांसोंसे।' जिस शरीरपर अज्ञोंको तो 'आत्मा'-बुद्धितक है। भला, अज्ञ ही क्यों, विज्ञतक 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' 'यह शरीर ही धर्मसिद्धिका उपाय है' कहकर उसको इतना गौरव देते हैं, उस शरीरतकको अतिथिके लिये दे देना क्या शरभङ्ग ऋषिकी तरह बड़ी भारी तपस्या नहीं है?

दूसरे श्लोकमें 'सः' पदसे कहते हैं कि 'वह-कपोत' जो पक्षी है, जिसे ईश्वरकी कृपासे हमारी तरह धर्मानुष्ठान-योग्य जाति नहीं मिली है। 'तम्' पदसे कहते हैं कि 'उस-व्याधको' जो जाति और स्वभावसे दोनों तरह तिरस्करणीय था। बल्कि 'पक्षिणां कालसम्मितः' बेचारे पक्षियोंके लिये तो प्रत्यक्ष यमराज था। उसका भी उसने कितना आदर किया था! फिर वह तो यदृच्छया घूमता-फिरता हुआ, आसरा मिलनेकी आशासे इधर आ निकला था। यहाँ तो विभीषण लङ्कासे चलकर इसीके लिये दौड़ा आया है। फिर वह व्याध तो हृदयमें अनुताप भी नहीं लाया था, आनुकूल्यके वाक्य भी नहीं बोलता था, प्रत्युत बेचारे उसी कपोतकी भार्यातकका हरण करके उसको प्रत्यक्ष प्राणान्तक दुःखतक पहुँचाया था। विभीषणमें तो वह बात नहीं।

पाठक महोदय! जरा ध्यान दीजिये। भगवान् श्रीरामचन्द्र कितनी बड़ी गम्भीर बात कह रहे हैं। वह भार्याहर्ता व्याध और कपोतकी ही बात नहीं कहते, वह ध्वनिसे कह रहे हैं कि यदि सीताहरणका घोरापराधी रावणतक भी आवे तो भी 'शरणागति' धर्मकी तरफ देखते हुए हमें उसको भी आश्रय देना चाहिये। आश्रय ही नहीं, अपनी हानितक करके भी उसे सुखी करना चाहिये। कहिये, इस शरणागतवत्सलताकी भी कोई सीमा है? भगवान् श्रीरामचन्द्रका यह केवल हृदयगत विचारमात्र ही न था। वास्तवमें यदि अपने कर्तव्यपर पश्चात्ताप करके, अथवा श्रीरामचन्द्र सदृश पराक्रमीके आगे अब मेरे प्राणोंकी खैर नहीं, इस प्राणभयके कारण ही यदि रावण श्रीरामके पास आ जाता तो कोसलनरेन्द्र रघुवंशभूषण श्रीरामचन्द्र उसके सब अपराधोंको क्षमा करके अवश्यावश्य आश्रय देते, इसमें सन्देह नहीं। आगे चलकर स्वयं आज्ञा करेंगे ही—

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥

कहिये, त्रिलोकी ही नहीं, चतुर्दश भुवनोंमें भी ऐसी उदारताका कोई दूसरा दृष्टान्त मिलेगा?

यहाँ 'वानरश्रेष्ठ' यह सम्बोधन भी कुछ दूसरी ही बात ध्वनित करना चाहता है। साहित्यवाले चाहे इसे 'गूढव्यङ्ग्य' भले ही कह दें, परन्तु श्रीरामचन्द्रकी लोकातिशायिनी उदारताको समझते हुए महर्षि इसे गूढ़ नहीं मानते। वह इस सम्बोधनसे एक वानरकी श्रेष्ठताका दृष्टान्त ध्वनित करते हैं। कथा यों है—

'कोई वानर किसी वृक्षमें स्थान बनाकर रहता था। दैवात् वह एक दिन क्या देखता है कि एक व्याध सिंहसे डरकर उसी वृक्षके पास दौड़ा आ रहा है। पीछे-पीछे सिंह भी चला आ रहा है। दयालुहृदय वानरको बड़ी दया आयी कि मेरे देखते-देखते, मेरे घरके ही नीचे यह मारा जाय, यह मेरे लिये बड़ा अनुचित है। अतएव वानरने बहुत जल्द उसे अपने वृक्षपर बुला लिया और आराम-के साथ उसको आश्रय दे दिया। सिंह इस व्याधके अपकारों-से झल्लाया हुआ था। उसने व्याधका पीछा न छोड़ा। उसकी आशामें वह वृक्षके नीचे बैठ गया। मनमें झुँझलाता था कि वृक्षपर कैसे पहुँचूँ और इसे किस तरह खाऊँ! जब यह उतरेगा तभी सँभालूँगा इस बुद्धिसे वह उसीके नीचे बैठ गया। व्याधको वृक्षपर आश्रय देकर प्रसन्नचित्त उदार वानर तो सो गया किन्तु सिंहसे डरे हुए व्याधको नींद कहाँ! वानरके सो जानेपर सिंहने भेदनीति चलायी और वह व्याधसे बोला कि यदि तू इस सोते हुए बन्दरको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे डाल दे तो मैं इसे खा लूँ। तेरा पीछा छोड़ दूँ। सत्य है—रात-दिन पापकर्म करनेवालोंमें दया कहाँ? व्याधने अपने बचनेके लोभमें आकर अपने शरणदाता, सोते हुए उस वानरको पेड़परसे ढकेल दिया। बन्दर नीचे पड़ते ही जग उठा। किन्तु सिंहने उसे नहीं छुआ। उसने कहा कि भाई! मेरा तेरे साथ कोई वैर नहीं। तू दयालु है, जिसने सब पशुओंको अकारण मारनेवाले इस जातिवैरीको भी शरणागत समझकर आश्रय दिया। किन्तु इसकी नीचता देख। यह अपने शरणदाताका भी सँगाती न हुआ। अब मैं तुझे छोड़ता हूँ। तू अपने जातिवैरी और प्रत्यक्ष दगा करनेवाले इस शत्रुको नीचे गिरा दे। मेरा वृक्षपर चढ़नेका बस नहीं। तू इस संकटमें पड़े हुए तेरे और मेरे ही क्या जीवमात्रके निःशस्त्र वैरीको ऊपर जाकर बेखटके नीचे गिरा दे।

'दयालु और उदारहृदय वानरसे यह क्रूरकर्म न बन सका। सिंह वानरके मनकी बात समझ गया। उसने झपटकर वानरको पकड़ लिया और कहा कि यदि तू ऊपर जाकर इसे गिरा दे तब तो छोड़ता हूँ, अन्यथा अभी तुझे मारे डालता हूँ। वानर दयालु तो था, किन्तु निर्बुद्धि थोड़े ही था। उसने सोचा कि यदि मैं अपने प्राण दे भी दूँ तो भी विशेष पुण्यका काम नहीं। मुझे मारकर सिंह फिर बेचारे व्याधके पीछे पड़ेगा, किन्तु यदि मैं जीवित रहूँगा तो मेरे आगे मेरे शरणागतको कोई सताये—यह नहीं हो सकता। अतएव किसी तरह अपने प्राण बचाने चाहिये। उसने कहा, अच्छी बात है, यदि इसके प्राणोंके साथ ही मेरे प्राणोंका बदला है तो मैं अभी इसको गिराता हूँ। यों कहकर वह वृक्षपर चढ़ गया। किन्तु शरणागतधर्मज्ञ उस वानरने उस व्याधसे कुछ न कहा। बल्कि बदला लेनेकी शङ्कासे डरे हुए उस किरातको धैर्य दिया कि मैं प्राण जानेपर भी तुम्हारा अनिष्ट नहीं करूँगा। तुम मेरे शरणागत हो।'

आहा! जब साधारण वानरतक अपने हृदयमें इस तरहका उदार भाव रखता है तब तुम तो सब वानरोंके सेनापति हो, सबमें श्रेष्ठ हो। तुम्हारी उदारताका क्या कहना है! भला जब तुम्हीं इतने ऊँचे विचार रखते हो तो फिर रघुवंशी मुझे ही शरणागतको त्याग करनेकी सलाह तुमसे दी जा सकेगी? जिन रघुवंशियोंने शरणागत-रक्षाका झण्डा दुनियाभरमें फहरा रखा है। महाराज दशरथने कहा था कि—

षष्टिवर्षसहस्राणि लोकस्य चरता हितम्।
पाण्डुरस्यातपत्रस्य छायायां जरितं मया॥

'साठ हजार वर्षपर्यन्त लोगोंका निरन्तर हित करते हुए इस निष्कलङ्क शुभ्र राजछत्रकी छायामें मुझे भी आज सफेदी आ गयी है—मैं बूढ़ा हो गया हूँ।' आह! उन्हीं दशरथका पुत्र मैं हूँ। 'रामो विग्रहवान् धर्मः' 'श्रीराम मूर्तिमान् धर्म हैं' यह दुनियाभरमें प्रसिद्ध हो रहा है।

मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः।

'वह रामचन्द्र लोकमर्यादाओंकी स्वयं रक्षा करते हैं तथा दूसरोंसे उनका पालन कराते हैं' यह सब लोग कहा करते हैं। अब यदि मैं ही शरणागतकी उपेक्षा करूँगा तो फिर लोग मुझे क्या कहेंगे? मैं स्वयं दूसरोंसे अनुरोध करनेवाला हूँ कि—

सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः।

'यह धर्मकी पैज सब राजाओंके द्वारा समानतया रक्षणीय है।' मैं स्वयं शरणागतका त्याग करके भला इन अक्षरोंके बोलनेका अधिकारी रह जाऊँगा? ठीक है। आप कपोतके दृष्टान्तसे विभीषणका स्वीकार करेंगे यह तो समझमें आ गया किन्तु धर्मज्ञ और विवेकी होकर आप तिर्यग्योनि कपोतका अनुकरण करें यह कहाँतक ठीक है? कपोतने अज्ञानसे ही ऐसा आचरण किया होगा तो? इसमें शास्त्रकी सम्मति कहाँ है? ऐसी आशङ्का न हो, इसलिये कण्डु मुनिकी गाथा चतुःश्लोकीको प्रमाणरूपसे उपस्थित करते हुए आप कहते हैं—

'धर्मिष्ठ और सत्यवादी महर्षि कण्डुने कहा है कि—जो दीन होकर अपने पास शरणकी याचना करता है वह चाहे शत्रु ही क्यों न हो दयारक्षाके अनुरोधसे उसका अहित कभी न करे। वह चाहे पीड़ित हो, चाहे गर्विष्ठ हो, वैरी भी यदि शरण आवे तो अपने प्राणोंका भी त्याग करके उसकी रक्षा करनी चाहिये। जिसके पास शरणार्थी शरण जाता है और वह शरण्यभयसे, मोहसे किंवा कामसे यदि अपनी शक्तिभर उसकी रक्षा न करे तो उसको नारकीयोंसे भी अधिक पाप होता है। जिस शरण्यके देखते-देखते शरणागतका अनिष्ट होता है वह शरणागत उस शरण्यके सम्पूर्ण पुण्योंको क्षय करके वहाँसे जाता है। यों शरणागतके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागमें महान् दोष है। यहाँ तो अपकीर्ति और बलवीर्यादि-का नाश होता है तथा आगे नरककी प्राप्ति होती है। अतएव मैं कण्डुके वचनका पालन अवश्य करूँगा, जो केवल धर्मानुकूल ही नहीं, यहाँ यश और आगे स्वर्गको देनेवाला है।' (यु० का० सर्ग १८ श्लो० २७—३२)

अथवा इसमें शास्त्रसम्मति आदिके खोजनेकी जरूरत ही क्या है ? आरम्भसे ही मेरे हृदयका यह सङ्कल्प हो गया है कि आश्रयके लिये जो मेरे पास आ जाता है उसको मैं सब सङ्कटोंसे निर्मुक्त कर देता हूँ। बस, इसी अपनी दयालुताकी दीक्षाको दुनियाभरमें घोषित करनेके लिये श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

शरणागतिसिद्धान्तका यह अन्तिम निर्णय है। विभीषणको शरणमें लेनेके लिये अनेक उपपत्तियाँ दी गयी हैं और दी जा सकती हैं किन्तु यह उपपत्ति सर्वोपरि है। इसका उत्तर नहीं। अथवा यों कहिये कि सम्पूर्ण शरणा-गतिका यही निचोड़ निकलता है। आर्त विभीषणने 'निवेदयत मां क्षिप्रम्' के द्वारा जो अपनी शरणागतिकी अर्जी बड़ी आशासे श्रीरामदरबारमें भेजी थी उसपर इसी श्लोकमें चरम विचार है। अर्थात् 'निवेदयत मां क्षिप्रम्' श्लोकसे शरणागतिका बयानदावा, फिर विभीषणकी शरणा-गतिपर अङ्गद, शरभ, जामवन्त प्रभृति जूरियोंकी बहस, इसके पीछे 'मित्रभावेन सम्प्राप्तम्' इस श्लोकके द्वारा सच्चे न्यायालयके हाकिम श्रीरामने दलीलें देकर अपनी इच्छा प्रकट की है। इसके अनन्तर खूब बहस-मुबाहिसा होनेके बाद 'सकृदेव प्रपन्नाय' इस पद्यमें श्रीरामने शरणागतिपर अन्तिम फैसला दे दिया है। अतएव इस श्लोकका महत्त्व सहज ही सबकी समझमें आ सकता है। इस श्लोकको शरणागतिका सार समझकर विशेष लक्ष्य होना आवश्यक है। इस श्लोकका अर्थ प्रसङ्गानुसार यद्यपि पहले भी आ चुका है परन्तु प्रसङ्गसङ्गतिके लिये यहाँ फिरसे लिखकर विशेष विचार किया जायगा। (क्रमशः)

एक राजाकी दो रानियाँ

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

एक राजाके दो रानियाँ थीं। दोनों अपनी-अपनी मतिके अनुसार राजाकी सेवा-शुश्रूषा किया करती थीं। दोनों ऐसी सेवा करती थीं जिससे राजाका कल्याण हो। परन्तु दोनोंकी सेवाएँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी थीं। एक-की सेवा संसार-मार्गकी थी, दूसरीकी सेवा परमार्थ-मार्गकी थी।

पहली नित्य राजाके लिये इस लोक तथा परलोकके सुख-साधनमें संलग्न रहती थी। कभी दानमें राजाकी रुचि कराती, कभी यज्ञमें रुचि कराती, कभी व्रत, तप इत्यादिमें रुचि कराती थी और इस प्रकार परलोक-साधनमें राजाका मन प्रवृत्त करती रहती थी। साथ ही इस लोकमें भी वह राजाको अनेक प्रकारके व्यंजन और षट्रस भोजन बना-बनाकर नित्य भोजन कराया करती। राजाके शरीर, वस्त्र, गृह इत्यादि सभीको स्वच्छ और पवित्र रखती थी। कभी अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंका उबटन बनाकर राजाके शरीरमें लगाती। कभी सुगन्धित पान, इलायची आदि देती। कभी इत्र, तेल, माला इत्यादिसे राजाको भली प्रकार सजाती। कभी खेल-तमाशोंमें राजाका मन लगाती। कभी परलोकमें सुख-प्राप्तिकी इच्छासे राजाको परोपकार करनेका आग्रह करती। कभी रसीले उपन्यास, जो हरिकथासे शून्य हैं, राजाको पढ़कर सुनाया करती। इस प्रकार अनेक उपायोंसे वह राजाके मनको प्रसन्न करती और उसे ईश्वर-भजनमें नहीं लगने देती थी। इस प्रकार इस रानीके सर्व प्रकारकी सेवा करनेपर भी राजाका मन शान्त नहीं होता था। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयासक्तिके कारण राजाको हर समय एक-न-एक चिन्ता सताती ही रहती थी। वह जितने भोग भोगता था, उतनी ही उसकी तृष्णा अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। जैसे अग्निमें जितना ही घी डालो, वह उतनी ही अधिकाधिक प्रज्वलित होती है। राजा ज्यों-ज्यों भोग भोगता त्यों-ही-त्यों उसके पुण्य क्षीण होते जाते और उसके शरीरमें रोगोंकी उत्पत्ति होती जाती, जिससे वह कभी स्वस्थ नहीं रहता था। श्रुति-माताका यह वचन सत्य है कि भोग भोगनेसे पुण्य घटते हैं और दुःख भोगनेसे पाप कटते हैं। क्योंकि ईश्वरने यह मनुष्य-शरीर तप करनेके लिये ही दिया है, भोग भोगनेके लिये नहीं। भोग भोगनेके लिये तो और अनेक योनियाँ हैं। परन्तु रानीको इस श्रुति-वाक्यपर तनिक भी विश्वास नहीं था। वह तो भोग-को ही मुख्य मानती थी, इसलिये राजाको भोगोंमें ही फँसाये रखती थी। क्योंकि उसका नाम विलासिनी था, उसको हर समय विलासमें प्रवृत्त रहना ही अच्छा लगता था। वह राजाको हर समय विलास-सामग्रियों-में फँसाये रखती थी। यदि दूसरीके शुभगुण देखकर यह पहली रानी अपने गुणोंको त्याग देती तो इस लोकमें सत्कीर्ति और अन्तमें परमपदकी अधिकारिणी होती; परन्तु ऐसा करना उसके लिये असम्भव था।

दूसरी, जिसका नाम शान्ति था, हर समय राजा-को शान्त पदका उपदेश करती थी। वह भोगोंकी असारता बता-बताकर राजाके मनमें उन भोगोंके प्रति वैराग्य पैदा करती; दृष्ट-अदृष्ट अर्थात् इस लोक-में जो दीखनेवाले और परलोकमें सुने जानेवाले समस्त भोगोंकी अनित्यता, क्षणभंगुरता बताकर उनमें दोष दिखाती और इस प्रकार राजाके मनको भोगोंसे विरक्त करती। वह कहा करती कि हे स्वामिन्! अकृत परमात्मा कभी कर्मोंसे प्राप्त नहीं हो सकता और उस परमात्मदेवको प्राप्त किये बिना कभी तुम्हें शान्ति और सुख भी नहीं मिल सकता। इसलिये कुछ समय ईश्वर-भजन किया करो, बिना ईश्वर-भजन-के नितान्त भोग भोगनेसे कभी शान्ति नहीं प्राप्त होगी और शान्ति प्राप्त किये बिना कभी आपकी यह आधि-व्याधि नहीं छूट सकती! अपना अमूल्य सुरदुर्लभ मनुष्य-जीवन क्यों वृथा खो रहे हो? जिसने इस उत्तम पदार्थको प्राप्तकर इसकी असली कीमत न जानी, उससे अधिक मूर्ख और कौन होगा? श्रीमद्भागवतका वचन है कि मोक्षके द्वाररूप इस सुरदुर्लभ मनुष्य शरीरको प्राप्तकर जो भोगोंमें आसक्त होता है, वह पापी, आत्मासे द्रोह करनेवाला, निश्चय ही ठगा गया। इस कारण हे राजन्! आप भी आत्माको जानकर अपने जन्मको सार्थक कर लीजिये! यह मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता, अबकी बार जो यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है, वह अनेक जन्मों-के सञ्चित पुण्यकर्मोंका फल है। यह सारा संसार असार है, ईश्वर-भजन ही सार है। श्रेष्ठ पुरुष असारको त्यागकर सारको ही ग्रहण करते हैं। हे स्वामिन्! आपको भी असारका त्याग और सारका ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि सार ही सुखरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निष्कल, निर्जन, अव्यय, अविनाशी और सनातनदेव है। अज्ञानीजन दुःखमें सुख-बुद्धि कर उसके भोगनेमें आसक्त होते हैं और बार-बार दुःखमय जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं। परन्तु ज्ञानीजन तो यथार्थ आत्मस्वरूपी सुखमें सुख-बुद्धि करके आप सुखी होते हैं और अपने आचार-विचारसे औरोंको सुखी बनाते हैं। इस प्रकार यह शान्तारानी आप सुखी होकर शान्तिरसका रस लेती थी और राजाको उसी शान्तिरसको घोंट-घोंटकर पिलाती थी। राजा इस रानीकी सेवासे अति सन्तुष्ट और आनन्दित होता था। राजाका आनन्द दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाता था। वास्तवमें वही सच्ची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा है, और वही सेवा अपने प्रिय सम्बन्धियोंके प्रति सबको करनी चाहिये जिस सेवासे मनुष्यका आधि-व्याधियोंसे बेड़ा पार हो जाय। बहिनो ! वह सेवा नहीं है, जिससे विषयासक्ति बढ़कर सौगुनी चिन्ताएँ बढ़ें। इस बातका एक दृष्टान्त इस प्रकार है।

ऋषि याज्ञवल्क्यके दो भार्याएँ थीं—एक मैत्रेयी और दूसरी कात्यायनी। कात्यायनी भोगासक्त थी और मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी। जब ऋषि याज्ञवल्क्य अपना घरद्वार छोड़कर वनको जाने लगे तब उन्होंने मैत्रेयीसे कहा—'हे मैत्रेयि ! यह जो धनधाम है, उसे मैं तुम दोनोंमें बराबर बाँटे देता हूँ, जिससे मेरे पीछे तुम दोनोंमें कलह न हो।' इस प्रकार ऋषिकी वाणी सुनकर कात्यायनी प्रसन्न हो गयी; परन्तु मैत्रेयी तो परमानन्दको चाहनेवाली थी, उसने पूछा 'देव ! क्या इस धनसे मैं परम सुखी हो जाऊँगी ?'

याज्ञवल्क्य—नहीं प्रिये ! तुम इससे परम सुखी तो नहीं हो सकती, हाँ संसारकी दृष्टिसे सुखी अवश्य हो जाओगी। जैसे राजा-महाराजाओंका जीवन सुखी होता है, वैसे ही तुम्हारा जीवन भी सुखी होगा। तुम धनसे इस लोक तथा परलोकमें सुख-भोगोंको अवश्य प्राप्त कर लोगी। जिस तरह धनके बिना निर्धनोंको अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, उस तरह तुमको कभी स्वप्नमें भी कष्ट नहीं उठाने पड़ेंगे। दास और दासियाँ हर समय सेवाके लिये तत्पर रहेंगी। उनके द्वारा तुम अनेक प्रकारके सुख भोगोगी। किसी भोग्य वस्तुके लिये कभी, किसी कालमें तुम्हें चिन्तातुर नहीं होना पड़ेगा, क्योंकि सब तरहकी इच्छित वस्तुएँ धनके द्वारा ही प्राप्तव्य हैं। उसको मैंने तुम्हारे लिये सञ्चय कर रखा है। तुम इस धनके सहारे पृथिवीपर सुखी जीवन व्यतीत कर अन्तमें स्वर्ग-सुख भोगोगी, क्योंकि धनके द्वारा यज्ञादि कर्म करके मनुष्य इस लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और अन्तमें स्वर्गको जाता है। फिर वहाँ वह बहुत कालतक दिव्य भोगोंको भोगता है। अब तुमको मेरे वन जानेकी बात स्वीकार कर लेनी चाहिये और किसी प्रकार उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये।

याज्ञवल्क्यजीके इस वचनको सुनकर कात्यायनी तो सन्तुष्ट होकर कुछ न बोली, परन्तु मैत्रेयीको धनसे सन्तुष्टि न हुई और वह फिर इस प्रकार कहने लगी।

मैत्रेयी—हे प्रभो ! जब इस धनसे मैं परम सुखी ही नहीं होऊँगी, तब मैं इस धनको लेकर क्या करूँगी ? मुझे तो वह वस्तु दीजिये जिससे मैं परम सुखी बन सकूँ। मैं ऐसे धनको लेकर क्या करूँगी जिससे सम्पूर्ण दुःख ही दूर न हो। वही बारम्बार पीसना और वही बारम्बार खाना। जिस धनसे जन्म-मरणका यह दुःखद चक्र न छूटे, उस धनकी मुझे इच्छा नहीं। जिसे इस नश्वर धनकी चाह हो, उसे ही कृपाकर इसे दे दीजिये। मुझे तो परम सुख देनेवाला परम धन दीजिये।

इस प्रकार जब मैत्रेयी वह धन लेनेके लिये तैयार न हुई तब ऋषिने मैत्रेयीको मुमुक्षु जानकर, उसे एकान्तमें ले जाकर परमात्मतत्त्वका उपदेश दिया। उस उपदेशको प्राप्तकर मैत्रेयी परम सुखी हुई और अन्तमें परमगति अर्थात् मोक्षको प्राप्त हुई।

इन सबका सारांश इस प्रकार है—राजा है जीवात्मा और दोनों रानियाँ हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति। यही दोनों याज्ञवल्क्यकी पत्नियाँ भी हैं; प्रवृत्ति है कात्यायनी और निवृत्ति है मैत्रेयी। केवल याज्ञवल्क्य-की ही वा उस राजाकी ही ये दो नारियाँ हैं, ऐसा नहीं, प्रत्युत सब जीवोंकी दो-दो नारियाँ हैं। ये प्रवृत्ति और निवृत्ति नामकी पत्नियाँ बुद्धिकी वृत्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। प्रवृत्तिको कात्यायनी और निवृत्तिको मैत्रेयी कहते हैं। वेदमें इनके और भी बहुत-से नाम प्रसिद्ध हैं; जैसे, विद्या और अविद्या, परा और अपरा, विलासिनी और शान्ति इत्यादि। प्रवृत्ति संसार-मार्ग यानी जन्म-मरणके चक्करमें भटकानेवाली है और निवृत्ति संसार-मार्गसे छुड़ानेवाली है। ये दोनों पत्नियाँ जीवको अपनी-अपनी तरफ खींचती हैं। जो पुण्यहीन पामर जीव विलासिनीके कहनेके अनुसार चलता है और शान्तिका कहना नहीं मानता, यानी रातदिन संसार-की प्रवृत्तिमें रहता है, विषयोंसे मनको निवृत्त नहीं करना चाहता, वह मूढ़ कभी सुख नहीं पाता, वह बार-बार शूकर-कूकर योनियोंमें जन्म ले-लेकर मरता रहता है। क्योंकि यह प्रवृत्ति नारी भोगमयी, चटोरी, कामिनी, व्यभिचारिणी, विलासिनी और कर्कशा इत्यादि नामोंवाली है और यह अपने पतिको भी उसी मार्गपर चलाती है; कभी शोकमें, कभी भयमें, कभी लोभमें, कभी मोहमें पतिको बाँधे रखती है। इस कारण विलासिनीका पति कभी सुखशान्ति नहीं पाता; न वह विलासिनी ही कभी शान्ति पाती है क्योंकि वह दिनरात भोगोंके संग्रह और भोगमें ही संलग्न रहती है, पतिके रसका स्वाद लेना नहीं जानती। पतिसेवा तो वह करती है, परन्तु पतिमें सुख नहीं मानती। यह आप कूपमें गिरती है और अपने पतिको भी कूपमें डालती है। इसलिये चतुर मनुष्यको चाहिये कि इस प्रवृत्तिरूपी नारीके मुँह न लगे; सावधान रहे और अपने जीवनको नष्ट न करे।

जो चतुर मनुष्य निवृत्तिका स्वामी है, वह सदा आनन्द और शान्तिसे पूर्ण रहता है। वह सम्राट् पदपर स्थित होकर आनन्दके सागरमें गोते लगाता रहता है; उसे कभी शोक, मोह, भय इत्यादि नहीं सताते। वह शान्तिके साथ मिलकर अनुपम आनन्द-का रस लेता है। वह सब चिन्ताएँ छोड़कर जीते-जी परम आनन्द लाभ करता है और मृत्युके शीशपर पग धरकर संसारसागरसे पार हो जाता है। फिर वह ऐसे अनामय पदपर जा पहुँचता है जहाँ न जरा है न मृत्यु; न बाल्य है न यौवन; न शोक है न भय; न आधि है न व्याधि; न भूख है न प्यास; न मद है न मत्सर; न जाग्रत् है न स्वप्न और न सुषुप्ति; न हँसना है न रोना; न गाना है न बजाना; न ऊँचा है न नीचा; न शुक्ल है न पीत; केवल एक अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपमें विराजमान है। सबका सार यह है—

कुण्डलिया

लेते शरण प्रवृत्तिकी, डूबत हैं मँझधार।
ले जो शरण निवृत्तिकी, होता भवसे पार॥
होता भवसे पार, लौट नहिं जगमें आता।
जन्म-मरण भव काट, अंत अक्षय पद पाता॥
'जयदेवी' नर मूढ़, कर्ममें मन हैं देते।
पंडित तजि अभिमान, शरण भगवतकी लेते॥

झाँकी

चंद्रिकामैं मुकुट मुकुटमैं सुचंद्रिका है, चंद्रिका-मुकुट मिलि चंद्रिका अजोर की।
नगनमैं अंग-अंग नग-नग अंगनमैं, कबि 'पजनेस' लखै नजर करोरकी॥
तनु बिज्जु-दाम-मध्य बिज्जु तनु-मध्य, तनु, बिज्जु-दाम मिलि देह-दुति दुहुँ ओरकी।
तीन लोक झाँकी, ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी, झाँकी हम झाँकी बाँकी जुगलकिसोरकी॥

—पजनेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु क्या है ?

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

संसारमें मनुष्य जितना मृत्युसे डरता है उतना किसी भी अन्य वस्तुसे नहीं। यह शरीर जिससे हमारा इतना गहरा ममत्व है—एक दिन भस्म हो जायगा—यह चलता-फिरता मकान ढहकर मिट्टीमें मिल जायगा। इस कल्पनासे ही हम काँप उठते हैं। मरना कोई नहीं चाहता। मेरे अपने गाँवकी बात है—एक नीच जातिकी स्त्री थी। अस्सी वर्षके ऊपरकी होगी। उसका इस संसारमें कोई भी नहीं था। वह मृत्यु-शय्यापर कराह रही थी और अन्तिम साँस ले रही थी। मैं अपने एक मित्रके साथ उसे देखने गया। उसका कष्ट देखकर हमारा हृदय द्रवित हो गया; मैंने धीरेसे अपने मित्रसे कहा—अब तो भगवान् इसे उठा लें तभी अच्छा है, यह बेचारी बहुत दुःख भोग रही है। इतनेमें देखता क्या हूँ कि वह वृद्धा आँखें गुरेरकर मेरी ओर देख रही है, मानो निगल जायगी। मैं घबड़ा गया—यह सोचकर कि इस बेचारीके अन्तिम क्षण दुखी बनानेका कारण मैं हुआ। परन्तु मृत्यु तो द्वारपर आ चुकी थी। वह द्वार खटखटा चुकी थी, तुरत ही उस वृद्धाके मुखमें तुलसी-गङ्गाजल दिया गया और उसके कुछ ही क्षण अनन्तर 'भूमि-शय्या' देते-देते उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। घण्टे-दो-घण्टेके पश्चात् 'राम-नाम सत्य है, श्रीराम-नाम सत्य है' के करुण निनादके साथ लोग शवको लेकर गङ्गाजीकी ओर चले।

मृत्यु जीवनकी एक ध्रुव और निश्चित घटना है। 'आया है सो जायगा, राजा-रंक फकीर' एक ध्रुव सत्य है। जाना है अवश्य, 'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' भगवान्के वचन हैं। यह सब कुछ रह जायगा—केवल हम उठ जायँगे। अंग्रेजीमें मुहाविरा है As sure as death—मृत्युकी भाँति निश्चित। परन्तु मजाक तो यह है कि मौत रानी कब द्वार खटखटा देगी—इसका कुछ पता नहीं। हम आँख मूँदकर जीवनकी दौड़ दौड़ते जा रहे हैं कि मौतकी अगाध खाई आती है और हम धड़ामसे उसमें गिर जाते हैं, ऊपरवालोंको पता नहीं चलता कि जीवनका यह खिलाड़ी कहाँ छिप गया! बड़ी विचित्र है जीवन और मृत्युके बीचकी आँख-मिचौनी! गज़बका है यह चलता-फिरता अजायबघर!

मृत्यु टाली नहीं जा सकती। वह तो आकर बैठी है—और प्रतिपल जीवनको निगल जानेके लिये बाघिनकी तरह मुँह बाये खड़ी है। हम प्रतिक्षण मृत्युकी ओर द्रुत-गतिसे चले जा रहे हैं। यों कहा जाय तो ठीक होगा कि हमारा एक पग मृत्युकी खाईमें ही है। अब गिरे, तब गिरे और उस समय? उस समय यह महल-अटारी, सुख-भोग, राज-पाट, धन-दौलत! उफ़! इसकी तो तब चर्चा भी नहीं अच्छी लगती—मृत्युके बाद इनका अपने साथ क्या सम्बन्ध रह जाता है? फिर ये अपने किस कामके?

मृत्युके समयकी कल्पना कीजिये। चारों ओरसे अपने स्वजन घेरे हुए हैं। पत्नी सिरहाने बैठी रो रही है। लड़के पैताने खड़े हाय-हाय कर रहे हैं। अब अन्तिम साँस चल रही है। इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयी हैं। आँखें आधी खुलती हैं तो चारों ओर अन्धकार, हाहाकार और चीत्कार! जन्मभरके किये हुए पाप, अपराध, त्रुटियाँ और सन्ताप घेरे हुए हैं। कुछ कहते नहीं बनता, कुछ सुनते नहीं बनता! इस हाहाकारके बीच कोई अपना सच्चा साथी नहीं दीखता। ये सभी क्षणभरमें साथ छोड़ देनेवाले हैं—सामने भीषण अन्धकार है। उसमें साथ देनेवाला कोई 'अपना' नहीं है। क्या करें, कहाँ जायँ? हाय, जिन्हें मैंने प्राणोंसे भी प्रिय समझकर छातीसे चिपका रक्खा था वे आज साथ छोड़ रहे हैं! प्रभो! दीनबन्धो!

उसी अन्तिम क्षणको लेकर संसारके समग्र दर्शन, धर्म, मत, सिद्धान्त, जप, तप, पूजा, पाठ, नियम, व्रत आदि हैं। वह अन्तिम क्षण—जिसमें हम संसारसे कूच कर रहे हैं प्रभुमय हो, मङ्गलमय हो, आनन्दमय हो, बस इसीके लिये जीवनभरके जप-तप, पूजा-पाठ हैं। उसीके लिये जीवनभर अभ्यास करना है। जिस प्रकारकी भावना जीवनभर हमारी रहेगी वैसी ही मृत्यु हमारी होगी। बहुधा देखा जाता है कि कुछ लोगोंको मरते समय मुखसे 'राम-नाम' निकलना कठिन हो जाता है। वे मोहसे इतना अधिक घिर जाते हैं कि कुछ सूझता ही नहीं। अभी कुछ ही दिन पूर्वकी घटना है। मेरे गाँवके एक सम्पन्न व्यक्ति जीवनभर सूदपर रुपया चलाते रहे। उनका दिनभरका काम था बहीके पन्ने खोलकर रुपयोंपर सूद बैठाना और उन रुपयोंकी बढ़ती हुई संख्यापर गद्गद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना। रात भी उनकी इसी चिन्तामें बीतती थी। जीवनमें उनके तीन साथी थे—उनके आसामी, रुपया और उनकी प्यारी बही। कोई बाल-बच्चे नहीं थे। एक स्त्री थी, वह भी रात-दिन रुपयोंकी वृद्धिकी चिन्तामें सूखी जाती थी। हाँ, मेरा प्रयोजन तो यहाँ उनकी मृत्युकालकी घटनासे है।

सन्ध्याका समय था। वे मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए थे। चारों ओरसे उनके परिजन घेरे खड़े थे। अन्तिम क्षण उनकी आँखें खुलती हैं—कभी किसीपर दृष्टि जाती है, कभी किसीपर। हैंडनोटोंका पुलिन्दा सिरहाने पड़ा है। किसीपर अँगूठोंके छाप नहीं लिये गये हैं, किसीपर टिकट नहीं साटा गया·····बस, इसी हाय-हाय, चिन्ता-परेशानीमें उनके प्राण पयान कर गये। लोगोंने बड़ी चेष्टा की कि अन्तिम क्षण 'राम-नाम' उनके मुखसे निकल सके! परन्तु उस समय तो जो उन्हें 'राम-नाम' कहनेको कहता उसे वे अपना शत्रु समझ रहे थे, यह सोचकर कि यह व्यक्ति हमारे रुपये-पैसेको डकार जाना चाहता है! आखिर मर गये पर 'राम-नाम' नहीं निकला।

मृत्युका मुकाबला करनेके लिये ही जीवन है। जीवन ऐसा रहा जाय कि मरते समय एक विचित्र प्रसन्नता, एक अपूर्व आनन्दका अनुभव हो। उस समय यह संसार, इसका लुभावना रूप न रहे, स्वजन न रहें, पुत्र-कलत्र भी न रहें, घर-द्वार न रहे, कोई न रहे, कुछ न रहे—केवल प्रभु-ही-प्रभु रहें; हरि-ही-हरि रहें।

जब आवें आँखमें दम प्राणप्यारे। लगा हो ध्यान चरणोंमें तुम्हारे॥
कदमकी छाँह हो जमुनाका तट हो। अधर मुरली हो माथेपै मुकुट हो
खड़े हों आप इक बाँकी अदासे। मुकुट झोकोंमें हो मौजे हवासे॥
बराबरमें हों श्रीराधाकिशोरी। मधुर सुर बाँसरी बजती हो पूरी॥
गिरे गरदन ढुलककर पीत पटपर। खुली रह जायें ये आखें मुकुटपर॥
दुशालेकी एवजमें हो ब्रजकी धूल। पड़े उतरे हुए सिंगारके फूल॥
मिले जलनेको लकड़ी ब्रजके बनकी। बने अक्सीर यों फुँककर बदनकी
गर्ज इस तरह हो अंजाम मेरा। तुम्हारा नाम हो और काम मेरा॥
जुबाँ जबतक दहनमें हो न बेकार। पुकारा ही करै सिरकार सिरकार॥
भरोसा है मुकुटधारी तुम्हारा। तुम्हारा ही है बनवारी तुम्हारा॥
गर्ज हो जब कभी झगड़ा मेरा तै। कहें सब बोलो राधाकृष्णकी जै॥

बस, उस समय, प्राणविसर्जनकी उस अन्तिम बेलामें कोई, कुछ न रहे, हमारे प्राणोंको प्रभुजीका शीतल, मधुर, पावन स्पर्श अनुभव होता रहे। उस स्पर्शकी शीतलतामें हमारे रोम-रोम पुलकित हो उठें—होंठोंपर एक हल्की-सी मुसकान हो और उसी मुसकानमें·····!!

ऐसी मौत कौन नहीं मरना चाहेगा? मरनेमें यदि इतना आनन्द हो तो उसे पानेके लिये भला कौन न लुभा जाय? परन्तु है यह बहुत महँगा सौदा। जीवनके अन्तिम क्षण प्रभुके दर्शन और उनके मधुर स्पर्शको प्राणोंके भीतर पानेके लिये यह आवश्यक है कि जीवनभर प्रभुका ही स्मरण, चिन्तन, ध्यान, पूजन और कीर्त्तन हो। गीताजीमें भगवान्‌ने बहुत समझाकर विस्तारसे इसकी व्याख्या की है। भगवान्‌ने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि अन्तकालमें जो मुझे स्मरण करता हुआ प्राणविसर्जन करता है वह मुझमें ही आ मिलता है। कुछ लोग इस वचनसे यह लाभ उठा सकते थे कि चलो जबतक हाथ-पैर चलते हैं मौज कर लो, सुखोंको लूट लो—अन्तमें 'राम-नाम' का स्मरण कर लेंगे। परन्तु वैसा होना सम्भव नहीं है। जीवनभर जो विषयोंका सेवन करता रहेगा उसे अन्तिम क्षणमें विषय ही स्मरण रहेंगे और जीवनभर जो प्रभुका स्मरण करता रहेगा उसे अन्तिम क्षणमें प्रभु ही स्मरण आवेंगे। जीवनभर विषयोंका सेवन करनेवाला व्यक्ति यह आशा करे कि अन्तिम क्षण वह 'राम-नाम' ले सकेगा और प्रभुको स्मरण कर सकेगा—यह सर्वथा असम्भव ही समझना चाहिये, नहीं तो भगवान्‌को—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

—क्यों कहना पड़ता?

मृत्यु एक ही साथ बहुत ही भीषण और बहुत ही मधुर है। भीषण उन लोगोंके लिये है जो संसारकी ममता, मोह, आसक्तिमें उलझे पड़े हैं; मधुर उन लोगोंके लिये है जो रात-दिन अपना जीवन प्रभुमय व्यतीत करते हैं। प्रभुमय जीवनकी मृत्यु भी प्रभुमय होती है। मरते समय भक्त अपने जीवनका पुष्प हाथोंमें लेकर प्रभुके चरणोंमें चढ़ाकर विनीतभावसे कहता है—'श्रीकृष्णार्पणमस्तु' वह उस क्षण प्रफुल्ल रहता है। उसे न कोई चिन्ता है, न भय; उसे न आसक्ति है, न शोक, न मोह, न ग्लानि।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

मृत्युको सन्तों और भक्तोंने एक अपूर्व कुतूहल-दृष्टिसे देखा है। मृत्युको लेकर एक ओर तो संसारसे वैराग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित हुआ दूसरी ओर इसे 'साजन'के देशका निमन्त्रण माना गया। मृत्युसे संसारकी अनित्यता और क्षणभङ्गुरता ही नहीं प्रमाणित हुई—जन्म-जन्मसे हम अपने 'प्राणधन' को खोजते आ रहे हैं—और हमारी खोज मृत्युको भी लाँघकर चलती रहेगी—यह भी प्रमाणित हुआ। कबीरने मृत्युको साजनके देशका निमन्त्रण माना है। प्रीतमकी बुलाहट है 'मिलन-मन्दिर' में। मृत्यु उस मिलन-मन्दिरका द्वार है, इसे पारकर 'शीश-महल' में साईंकी सेजपर पौढ़नेको मिलेगा। इस सम्बन्धमें कबीरका—

करले सिंगार चतुर अलबेली साजनके घर जाना होगा।

सहज ही स्मरण हो आता है। कबीरने तो 'अलबेली' को न्हाने-धोने, माँगमें सिन्दूर लगाकर नयी लाल साड़ी पहिननेकी सलाह दी है क्योंकि उनके विचारसे यह 'मिलन' परम मिलन होगा और पुनः वहाँसे लौटना न होगा।

न्हाले, धोले, सीस गुँथाले, फिर वहाँसे नहिं आना होगा॥

मृत्युके सम्बन्धमें जहाँ इतनी सुन्दर और मधुर भावना है वहाँ यों भी है—

हमकाँ ओढ़ावै चदरिया, चलती बिरियाँ॥
प्रान राम जब निकसन लागे,
उलट गई दोउ नैन पुतरिया।
भीतरसे बाहर जब लावै,
छूटि गई सब महल अटरिया॥
चारि जने मिलि खाट उठाइनि,
रोवत लै चले डगर डगरिया।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो,
संग चली वह सूखी लकरिया॥
हमकाँ ओढ़ावै चदरिया, चलती बिरियाँ॥

उपनिषदोंमें मृत्युको जीतनेकी विधि बहुत विस्तारसे बतलायी हुई है। हमारे क्रान्तदर्शी महर्षियोंने जीवनमें ही मृत्युको पी लिया और मृत्युके 'उस पार' के देशको देखा था। उन्होंने आँखें बन्दकर अपनी आत्माकी ज्योतिमें इस जगत्के नाम और रूपका लोप कर दिया था। उनके लिये यह विश्व भी एक कविता थी, भगवान्का मधुर संगीत था। आँखें खोलकर जब वे संसारकी ओर देखते तो यह संसार जो हमलोगोंके लिये इतना विकराल प्रतीत होता है उनके लिये ब्रह्ममय था। ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अणु-अणुमें 'वह' ओत-प्रोत है। कोई स्थान नहीं जहाँ परमात्मा न हो। आँखें खोलकर जब वे 'हरिरेव जगज्जगदेव हरिः' का साक्षात्कार करते और उस विराट्-ज्योतिमें अपनी आत्माकी ज्योतिको एक कर देते तो द्वैत नामको कोई वस्तु रह नहीं जाती। वे 'तस्यैव भासा सर्वमिदं विभाति' की दिव्य अनुभूतिमें निरन्तर जागते रहते। जिसने संसारके इन बनते-मिटते चित्रोंमें अविच्छिन्नरूपसे प्रभुका साक्षात्कार कर लिया उसके लिये मृत्यु कैसी?

मृत्युके सम्बन्धमें एक भारी भ्रम काम कर रहा है। हममेंसे प्रायः सभी यह समझते हैं कि मृत्यु जीवनकी इति है। जो वैसा सोचते-समझते हैं वे जीवनके वास्तविक अर्थसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जीवनकी गंगा तो प्रभुसे निकलकर प्रभुमें ही मिलेगी। मृत्यु जन्मका उलटा हो सकती है, जीवनका नहीं। सुख-दुःख, पुण्य-पाप, दिन-रात, आशा-निराशाकी जैसी जोड़ी है वैसी ही जन्म-मृत्युकी, न कि जीवन-मृत्युकी। जीवनका प्रवाह तो एक है, सनातन है, दिव्य है। वह कई योनियोंमेंसे होता हुआ, पूर्ण होनेके लिये व्याकुल होता हुआ चलता जा रहा है। इसकी गति तो तबतक रुक नहीं सकती जबतक स्वयं अनन्त न हो जाय। एक ही जीवन-क्रममें कई जन्मोंकी शृंखला लगी है। जो जनमता है सो मरता है अवश्य, परन्तु मृत्युको चीरकर भी तो जीवनका प्रवाह चलता रहता है। जीवन और जन्म दो चीज हैं।

ठीक इसी भावको एक आत्मदर्शी अंग्रेज कविने बहुत सुन्दर शब्दोंमें रखा है—

Birth is not the beginning of life,
Nor is death its ending,
Birth and death begin and end
Only a single chapter in life story.

इसका सरल भावार्थ यह है कि जन्म ही जीवनका आरम्भ नहीं है, न मृत्यु ही इसका अन्त है। जन्म और मृत्यु तो बस जीवनके एक अध्यायका अथ और इति है।

यह नन्हा-सा जीवन जो हम अपने इस जन्म और इस मृत्युके बीच देख रहे हैं हमारे अमर सनातन जीवनका एक अंश है। नदीकी धारा बहती है। बीचमें पुल आ जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी एक हल्की-सी पतली छाया-रेखा नदीकी धारापर पड़ जाती है। परन्तु धारा तो उस क्षीण रेखाकी चिन्ता नहीं करती। वह तो अनवरतरूपसे बहती ही चली जाती है और तबतक बहती चली जायगी जबतक यह समुद्रमें अपना नाम-रूप गँवाकर एक न हो जाय। नदी तो समुद्रमें लय होकर ही शान्त होगी। बीचमें तो वह रुकनेको नहीं। इसी प्रकार यह जीवनकी धारा भी प्रभुके अनन्त प्रेममें ही जा मिटेगी। इसे जन्म और मृत्युके कितने द्वार लाँघकर छोटे-छोटे जीवनोंके कई समतलको चीरकर बहते रहना है। ऐसा समझ चुकनेपर फिर अमर जीवनके इन छोटे-छोटे अध्यायोंके अथ-इतिसे घबड़ानेकी कोई बात नहीं।

करना तो बस एक ही काम है—और वह यह है कि हमारे अमर अनन्त जीवनका यह छोटा-सा अध्याय जो हमारे सामनेसे चल रहा है किसी प्रकार दूषित और कलङ्कित न होने पावे। यह अध्याय जितना ही सुन्दर होगा उतना ही विकास अगले अध्यायमें निश्चित है। प्रेम ही प्रभुकी सच्ची प्रार्थना है। यावत् चर-अचरमें प्रभुका साक्षात्कार करते हुए समस्त वसुन्धराके लिये प्रेम रखना ही जीवनका सच्चा सदुपयोग है। जो कुछ हम देख रहे हैं, जो कुछ सुन रहे हैं—स्पर्श कर रहे हैं सभी प्रभुके माधुर्य और सौन्दर्यसे ओत-प्रोत हैं। प्रभुके अतिरिक्त कुछ है नहीं, इस प्रकार अखिल चराचरमें अपने 'हरि' का साक्षात्कार करते हुए हम प्रत्येक पल ऐसा ही आचरण करें जैसा हम अपने 'प्राणोंके प्राण' और जीवनके सर्वस्वके साथ कर सकते हैं।

He prayeth best who loveth best,
Both man, and bird and beast,
He prayeth well who loveth well,
All things both great and small
Coleridge.

यों तो बाहरसे संसार पाप, घृणा, द्वेष, कलह, वैर, संहार आदिसे जल रहा है। परन्तु पर्दा हटाकर 'जल्वए इश्क़' की एक झाँकी जिसने कर ली उसके लिये तो 'नेह नानास्ति किञ्चन' का अनुभव सहज ही हो जायगा। जगत्के इस आवरणके भीतरका जो मधुर अभिनय है उसे देखनेके लिये कितने हैं जो आगे आकर प्राणोंकी भेंट चढ़ानेके लिये तैयार हैं ? एक बार भी, एक क्षणके लिये भी जिसने अपनी आत्माकी ज्योतिकी तद्रूपता विश्वात्माकी समग्र विराट् ज्योतिमें स्थापित कर ली उसके लिये क्या जीवन और क्या मृत्यु ? चेतन और अचेतनकी समष्टिमें भी तो हमारी आत्मा ही विश्वरूपमें प्रतिभासित हो रही है—मेरा अहं ही सर्वत्र व्याप्त है फिर मृत्यु कैसी; आना कैसा और जाना कहाँ ?

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यह बात सच है कि अमर जीवनके इस समग्र रूपको ठीक-ठीक देख पाना बहुत कठिन है हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियोंने इसे अवश्य देखा था। इस बनने-मिटनेवाली कायाको ललकारकर कबीरने कहा है—

प्राण कहे सुनु काया मेरी तुम हम मिलन न होय।
तुम सम मीत बहुत हम कीना संग न लीना कोय॥

रविबाबूने भी अपनी एक कवितामें इस अमर अनन्त जीवनका साक्षात्कार करते हुए लिखा है—'आज वही बात याद आ रही है, युग-युगान्तरसे स्खलित होकर चुपचाप रूपसे रूपमें, प्राणसे प्राणमें संक्रमित होता हुआ चला आ रहा हूँ। आधीरात हो या प्रातःकाल, जब जो कुछ हाथमें आया—सब कुछ लुटाता आया हूँ। दानसे दानको, गानसे गानको।' इस प्रकार मृत्यु जीवनको पूर्ण करती हुई आती है और नया जीवन दे जाती है।

इस सम्बन्धमें आत्मदर्शी अंग्रेज कवि ब्राउनिंग (Browning) की 'The best is yet to be' वाली कविता विश्व-साहित्यमें अमर है। उसमें कविने बड़े ही भावपूर्ण ज़ोरदार शब्दोंमें यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि प्रतिपल हमारा विकास होता जा रहा है। प्रतिक्षण हमारा जीवन सुन्दर-सुन्दरतर होता जा रहा है। हमारे जीवनका जो डिजाइन ईश्वरके हाथमें है उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। जो कुछ हम देख रहे हैं वह हमारे अमर जीवनकी अधूरी, अस्पष्ट और धुँधली छाया है। बुढ़ापा अभी निकलनेवाली कलीका उपक्रम है।

इसीलिये कविने हर्ष और उत्फुल्लताके साथ जीवनके प्रत्येक कष्ट और कठिनाईका स्वागत किया है। कष्टों और कठिनाइयोंसे तो जीवन चमक उठता है और उनके कारण हम कर्म-पथमें और भी उत्साह और उल्लाससे बढ़ते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Then welcome each rebuff
That turns earth's smoothness rough
And makes not sit, nor stand but go.

'सारे कष्टों और कठिनाइयोंको स्वागत ! इसने जीवनके समतलको उभड़-खाबड़ बना दिया है और इसीकी प्रेरणा न हमें बैठने देती है,न खड़े होने; इसके कारण हम सतत चलते ही रहते हैं।' जीवनकी अमर धाराको ठीक-ठीक हृदयमें उतारकर संसारकी ओर निहारनेपर इसके सभी शूल फूलके समान दीखेंगे।

परन्तु जो अमर जीवनकी अनन्त धाराकी कल्पना भी नहीं कर सकते उनके लिये ? वे भी मृत्युकी इस भीषणताको तो मिटा सकते हैं। भगवान्‌ने 'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्' कहा है। मृत्युरूपमें भी भगवान्‌के ही दर्शन होते हैं। 'प्राणनाथ' चाहे जिस रूपमें आवें प्राणोंको प्रिय ही होगा। इसी भावको लेकर एक तुकबन्दी लिखी गयी थी—

आज है कूच, बिदाई आज।
आज बुलाहट है अपनेमें मुझे मिला लेनेको।
प्राणोंके धब्बे हिरदयके दाग मिटा देनेको॥
पाप और त्रुटियोंकी मेरी सुंदर अनत कमाई।
आओ चलें आज प्रियतमसे मिलनेकी बेला आई॥
वहाँ चिरमंगलमय साम्राज।
आज है कूच, बिदाई आज॥
जाता हूँ पियकी नगरी, हाँ मेरा आज प्रयाण।
चिरसुंदर अमरत्व जहाँ है, चिरसुंदर कल्याण॥
आज समीकी आँख बचाकर जाने दो, जाने दो।
अंतिम बार प्रलयके गायन गाने दो, गाने दो॥
प्रलयमें सृष्टि छबीली आज।
आज है कूच, बिदाई आज॥

गोरखपुरके मौनीबाबा

(लेखक—म० श्रीबालकराम विनायकजी)

संवत् १८१२ में पश्चिमसे अथवा उत्तराखण्डसे श्रीअयोध्याजी होते हुए दो सिद्ध पुरुष गोरखपुरमें आये। बेतियाके अहातेमें दोनों महानुभाव ठहरे। उनमेंसे एक मौनी थे और दूसरे परमहंस। कुछ ही दिनोंके बाद परमहंसजी चले गये और बरहजमें पहुँचकर पुण्यसलिला श्रीसरयूतटपर भजन करने लगे।* परन्तु मौनीजी वहीं रह गये। उस समय उनकी अवस्था साठ-पैंसठ वर्षकी रही होगी। डीलडौल बहुत लम्बा था। मुखमण्डल ज्योतिर्मय था। केवल एक कौपीन धारण करते थे। मौनी थे ही, किसीसे कुछ बोलते नहीं थे। एक वृक्षके नीचे उनका मृगचर्म बिछा हुआ था, उसीपर वे ध्यानमग्न बैठे रहते। क्या खाते-पीते थे किसीको मालूम नहीं। बड़े प्रातःकाल कहींसे स्नान करके कमण्डलुमें जल लिये हुए बहुधा दिखायी देते थे। कब वे स्नानको गये, कहाँ गये, कोई नहीं जान सका। एक दिन बड़े आश्चर्यसे लोगोंने देखा कि पृथ्वीसे एक हाथ ऊँचा उनका आसन उठा हुआ है और वे अधरमें स्थित हैं। इस दशामें वे ग्यारह दिनोंतक रहे। दर्शन करनेवालोंकी सदा भीड़ लगी रहती थी। उन दर्शकोंमें नगरके सुप्रतिष्ठित व्यक्ति भी होते। मथुराप्रसाद खज़ानची, लाला ढुनमुनदास, किशुनजी, छोटे काज़ीपुरके भक्तजी, बैजूबाबू, शाह सब्ज़पोश, मियाँ साहब, बाबा गम्भीरनाथ, भैरवप्रसाद वकील, गोविन्दरामदास वकील आदि सभी गण्यमान्य व्यक्ति इस योगसिद्धिको देखकर चकित हो गये। पं० नकछेदराम (महामहोपाध्याय पं० उमादत्त) के पिता पं० हरिदत्तजी तो वहाँ नित्य जाते थे। जब

* परमहंस श्रीराघवदासजीके गुरु महाराज श्रीस्वामी अनन्तप्रभुजी परमहंस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधि खुली तब भी उक्त पण्डितजी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने संस्कृत भाषामें एक ओजस्विनी कविता पढ़ी जो शिवसमाधिपरक स्तवनके रूपमें थी। उसे सुनकर मौनी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। एक दृष्टिसे—कृपाभरी दृष्टिसे देखकर उन्हें कृतार्थ कर दिया। उसी वर्ष शास्त्रीजीकी धर्मपत्नीने एक ऐसा प्रतिभाशाली पुत्र प्रसव किया जो विख्यात विद्वान् और 'सनातनधर्मोद्धार' नामक उत्कृष्ट ग्रन्थका कर्ता हुआ।

मौनीजी दर्शकोंकी भीड़से ऊब गये। उस अहाते-में स्थित एक खपरैल मकानमें घुस गये और पल्ले बन्द करके उसीमें रहने लगे। किसी समय भी किसीको दर्शन नहीं होते थे। श्रद्धालु जनताने उस भूमिको परिष्कृत किया। जहाँ मौनीबाबाने ग्यारह दिनोंकी समाधि ली थी। वहाँपर बैठनेसे आप-से-आप सबका चित्त शान्त एवं सावधान हो जाता था। लोगोंकी मनोकामनाएँ भी पूर्ण हुआ करती थीं। अधिकतर कचहरीके मुकद्दमेबाज़ लोग उस अहातेमें ठहरा करते थे। नगरके बाहर और कचहरीके समीप होनेसे वह स्थान उनके ठहरनेके लिये उपयुक्त भी था। स्वर्गीय पं० रामरेखा ओझा अपने मुकद्दमातकी पैरवीके लिये बहुधा वहाँ ठहरा करते थे। तन्त्र-मन्त्र-विद्यासे उनका बड़ा प्रेम था और उन्होंने अपने जीवनका अधिकांश समय इसके अनुसन्धानमें बिताया था। परन्तु उनका कोई भी अनुष्ठान सफल नहीं होता था। उक्त स्थानके प्रभावसे प्रभावान्वित होकर उन्होंने वहाँ एक अनुष्ठान आरम्भ किया। वह बगला-मुखी भवानीको प्रत्यक्ष करके यह वर प्राप्त करना चाहते थे कि जो कुछ उनके मुँहसे शाप अथवा आशीर्वादके रूपमें निकले सत्य हो। पहले भी वह कई बार इसके लिये असफल अनुष्ठान कर चुके थे। अबके उनका अनुष्ठान सफल हुआ। पहले उन्हें मौनीबाबाने दर्शन दिया अनन्तर बगलामुखी भवानीने। उन्हें वर भी प्राप्त हुआ। परन्तु उन्होंने उस वरका दुरुपयोग कभी नहीं किया। क्योंकि मौनीबाबाके उपदेशसे उन्होंने क्रोधको सदाके लिये त्याग दिया था। अस्तु, उन्हें किसीको शाप देनेकी नौबत नहीं आयी। हाँ, आशीर्वादसे उन्होंने बहुतोंका कल्याण किया।

उक्त ओझाजी कहते थे कि उनके ससुरालमें एक कन्या पैदा हुई थी जिसका बायाँ पैर फिरा हुआ था। इसी कारण उसका विवाह रुका हुआ था। उन्होंने एक दिन मौनीबाबासे इसकी चर्चा की। बाबाने आशीर्वाद दिया और उस कन्याका फिरा हुआ पैर आप-से-आप एक बारगी ठीक हो गया।

अघटित घटना घट गई, रेखा कर्म बिलान।
बिधि कुअंककी कुटिलता, टारत संत सुजान॥

करीमखाँ वकीलके कुटुम्बमें किसी प्रसूताको मर्म-स्पर्शिनी पीड़ा हुई। किसी भी उपचारसे दर्दमें कमी नहीं हुई, बेचैनी बढ़ती ही गयी और अन्तिम अवस्था आ पहुँची। सब लोग उसके जीवनसे निराश हो गये। उसी अवस्थामें मर्मान्तक वेदनासे पीड़ित होकर उस स्त्रीने कहा—'मौनीबाबा! खबर लो, मैं मरी जाती हूँ।' वह उसी समय अच्छी हो गयी।

डिस्ट्रिक्ट अस्पतालके हेड क्लार्क कालीचरण बाबू-के पुत्र उमाचरण जब गोदमें पल रहे थे तब उस बच्चेके सिरमें एक फोड़ा हो गया। अस्पतालकी दवा, मरहमपट्टी, होशियार डाक्टरोंके ऑपरेशन सब व्यर्थ सिद्ध हुए। कालीचरण बाबू भक्त थे, नम्र स्वभावके थे और सन्तोंमें श्रद्धा रखते थे। एक दिन बच्चेको लेकर आश्रमपर गये। दोहाई दी। धरने पड़े। सन्ध्या समय एक विद्यार्थीने कहा—'बच्चेको घर ले जाओ, घाव अच्छा हो जायगा।' रास्तेहीमें फोड़ा आप-से-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप फूटा और पिचकारीसे फेंके हुए जलकी तरह सब मवाद निकल गया। घाव दो-तीन दिनोंमें सूख-कर अच्छा हो गया।

दुआमें तासीर हो तो ऐसी कि ज़ख्म बह जाय घाव पुर हो।
जो संग-रेज़ा भी हाथ आवै तो जेबमें जाते जाते दुर हो॥

सोनबरसाके पण्डित कमलेश्वरीप्रसाद त्रिपाठीके कोई सम्बन्धी किसी गुरुतर अभियोगमें फँस गये थे। मुकदमेकी रुयदादसे उनके छूटनेकी आशा नहीं थी। परन्तु मौनीबाबाकी कृपासे बेदाग छूट गये।

इस प्रकारके सैकड़ों चरित्र हैं, जिनसे 'परोपकाराय सतां विभूतयः' की सिद्धि होती है और जिनकी स्मृति अब भी बनी हुई है।

एक बार मझौलीकी रानी साहिबा दर्शनके लिये आयीं। परन्तु सम्पूर्ण कुटी खोज डालनेपर भी महात्मा-के दर्शन नहीं हुए। जब निराश होकर रानी चली गयीं, तब बाबा कुटीमें प्रकट होकर एक विद्यार्थीको संस्कृत पढ़ाने लगे। उनको लड़कोंसे बड़ा प्रेम था। उन्हींको दर्शन देते थे, पढ़ाते थे और ताजे फल भी देते थे। मिशन स्कूल (अब सेण्ट ऐण्ड्रूज़ कॉलेज) के लड़के दोपहरकी छुट्टीमें वहाँ झुण्ड-के-झुण्ड पहुँचते थे और उन्हें फल मिलता था।

काशीजीके स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजीने मौनी-बाबाके पास निजशिष्यद्वारा 'श्रीचक्र' भेजा था। उसपरसे कुछ मातृकाएँ और अङ्क मिट गये थे। बीज भी लुप्त थे। स्वामीजीने उनके स्पष्टीकरणके हेतुसे भेजा था। मौनीबाबाने उस चक्रको पढ़कर बीज और अङ्क सहित मन्त्रको शुद्ध लिखवाकर भेज दिया जिसे पाकर उक्त स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और कृतज्ञता प्रकट की।

भठवाके तिवारीजी (जिनको एक बार बाबाके दर्शन प्राप्त हो चुके थे) प्रयागजी मकर नहाने गये थे। अत्यन्त प्रातःकाल स्नान करते हुए उन्होंने मौनीबाबाको देखा। पहचानकर चरणस्पर्श करनेके लिये ज्यों ही बढ़े कि बाबा अदृश्य हो गये। तब उन्होंने जाना कि बाबा सिद्धिबलसे नित्य त्रिवेणीमें स्नान करते हैं। लौटनेपर उन्होंने यह वृत्तान्त गोरखपुरमें प्रसिद्ध किया।

अस्तु, मौनीबाबा एक असाधारण सिद्ध पुरुष थे और साथ-ही-साथ उच्च कोटिके विद्वान् भी। ये दोनों बातें एकत्र नहीं दिखायी देतीं। बहुत दिनोंतक सबको सुखी देखकर, अतुल उपकार करके सन् १८९३ ई० की २३ जुलाईको बाबा यकायक भौतिक शरीर त्यागकर परधामको पधार गये। उनकी अरथी-के साथ हजारों आदमी थे, स्कूल और पाठशालाओंके छात्रोंकी संख्या भी पर्याप्त थी। रास्तीके किनारे फोटो लिया गया और अन्तिम दर्शनसे जनता कृतार्थ हुई।

अब भी बेतियाके अहातेमें मौनीबाबाकी कुटी वर्तमान है, जो प्रेमियोंकी श्रद्धा, वन्दना और आराधना-का केन्द्र है। इस निबन्धके लेखकके पास बाबाकी लिखवायी हुई दो पुस्तकें हैं। एकका नाम है, 'प्रसङ्ग-पारिजात'। यह पैशाची भाषामें है। मन्त्रस्वरूप और अनुष्ठेय है। उसका हिन्दी अनुवाद भी उन्हींका लिखाया हुआ है। दूसरी पुस्तकका नाम है 'मानस-तन्त्र'। इसमें श्रीरामचरितमानसके कतिपय चौपाइयोंके तान्त्रिक प्रयोग, लौकिक एवं पारमार्थिक कार्योंके लिये बतलाये गये हैं, जो सबके कामके हैं। परन्तु इन दोनों पुस्तकोंके प्रकाशनके सम्बन्धमें उनकी निषेध आज्ञा है।

काहूसों न रोष तोष काहूसों न राग द्वेष,
काहूसों न बैर भाव काहूसों न घात है।
काहूसों न बकबाद काहूसों नहीं बिषाद,
काहूसों न संग न तौ काहू पच्छपात है॥
काहूसों न दुष्ट बैन काहूसों न लेन देन
ब्रह्मको बिचार कछू और न सुहात है।
'सुंदर' कहत सोई ईसनको महाईस,
सोई गुरुदेव जाके दूसरी न बात है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीगिरिजादत्तजी त्रिपाठी, व्याकरण-न्यायाचार्य)

शब्दार्थभाविभुवनं सृजतीन्दुरूपा
यावद्बिभर्त्ति पुनरर्कतनुः स्वशक्त्या।
वह्न्यात्मिका हरति तत् सकलं युगान्ते
तां शारदां मनसि जातु न विस्मरामि॥

किसी सूक्ष्म अथवा अदृश्य वस्तुका ज्ञान मनुष्य अनुमान अथवा स्थूल वस्तुके द्वारा प्राप्त करता है। इसीको यों भी कहते हैं कि किसी स्थूल कार्यको देखकर उसके कारणकी खोज की जाती है। बात दोनों एक ही है पर कहनेके ढंगमें अन्तर है क्योंकि अनुमानका निर्माण भी प्रत्यक्षकी ही भित्तिपर होता है, और प्रत्यक्ष ज्ञान तो किसी स्थूल पदार्थहीका होता है।

इस दृश्यमान संसारको देखकर इस कार्यके कर्ता, उसकी निर्माण-सामग्री आदिके जाननेके कौतूहलने विचारशील मनुष्योंको विचलित कर दिया है। वे इसकी खोजमें तन-मनसे निरत हुए और अगाध समुद्रमें गोता लगाकर कुछने तो मोती चुना और कुछको केवल सीपी ही हाथ लगी। सीपी पानेवाले तो वे सज्जन हैं जिन्होंने इसे जड़ माना, पर कुछ भाग्यशाली पुरुषोंने उसी सीपीके भीतर उज्ज्वल मोतीको पाया, अर्थात् उस जड़के पीछे उस चेतनताके दर्शन किये जिससे उस जड़में भी कार्य करनेकी शक्ति उत्पन्न हो गयी, और उस चेतनताको उन्होंने 'पराशक्ति' के नामसे पुकारा। उनका कहना है कि त्रिगुणात्मक संसारकी सृष्टि किसी शक्तिके द्वारा हुई, क्योंकि सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण सम अथवा विषम दोनों अवस्थाओंमें जड़ ही हैं और जड़से इस उभयात्मक जगत्की उत्पत्ति कठिन ही नहीं वरं असम्भव भी है। इस त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अतिरिक्त एक दूसरे पुरुषकी अवस्था भी इसी प्रकार दयनीय है। क्योंकि वह यद्यपि चेतन है पर शक्तिहीन है, अर्थात् द्रष्टा-भोक्ता होते हुए भी वह कर्ता नहीं है। ऐसी स्थितिमें इन दोनोंके रहते हुए भी कोई ऐसा तत्त्व है जिससे यह कार्य होता है। उस पदार्थको, जो इन दोनोंको मिलाकर कार्य करता है, शक्ति कहते हैं।

इसके अतिरिक्त सर्वशक्तिमान् एक परमेश्वरकी कल्पना कर लेनेपर भी इसे माने बिना पिण्ड नहीं छूटता। क्योंकि शक्तिमान् शब्दका अर्थ है 'शक्तिः अस्यास्तीति शक्तिमान्', अर्थात् जिसमें शक्ति हो वही शक्तिमान् कहा जा सकता है। इस व्युत्पत्तिके द्वारा भी शक्ति एक दूसरी और प्रधान चीज सिद्ध हो जाती है। अर्थात् ईश्वर नामक पदार्थ भी इस शक्तिकी ही सहायतासे कुछ कर-धर सकता है। तात्पर्य यह कि इस संसारका कर्ता न तो जड़ प्रकृति है न चेतन पुरुष, न इन दोनोंका सम्मेलन; अपितु इनके भीतर काष्ठगत अग्निकी नाईं अन्तर्निहित जो प्रधान सत्ता है वही है। इस शक्तिका ज्ञान हमें उस शून्यावस्थासे लेकर इस बृहत् प्रपञ्चके प्रत्येक कण-कणमें भी होता है। इस संसारका प्रत्येक परमाणु उस अदृश्य सत्ताका परिचय मूकभाषामें दे रहा है।

विश्व-सृष्टिके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है लेकिन हम यहाँ उस मतका उल्लेख करते हैं जहाँ सबोंका पर्यवसान है। यह संसार प्राकृतिक कहा जाता है—अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न है। वह प्रकृति सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणात्मक है, उसीसे महदादिक्रमसे जगत् उत्पन्न होता है। उसकी व्यवस्था यह है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारः, अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राणि, उभयमिन्द्रियं पञ्चभूतानि।

इस प्रक्रियामें सबोंका मतैक्य है। इस प्रकार विचार करनेपर हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि इस सृष्टिके आदिमें मूलप्रकृति निरन्तर काम करती है। अब देखना है कि संसारके पालन करनेमें किसका हाथ है। सांसारिक जीवोंके कल्याणार्थ जितनी चीजें इस विश्वमें दी गयी हैं उन सबमें प्रधानरूपसे जो तत्त्व सन्निहित है वही शक्ति है। हम उस शक्तिका दर्शन अनेक रूपमें करते हैं। पुष्पमें परागरूपसे, जलमें तरलतारूपसे, अग्निमें दाहकतारूपसे, आकाशमें व्यापकतारूपसे, काले मेघखण्डोंमें जीवन-प्रदायिनी शक्तिरूपसे, हरे-भरे वनविटपोंमें मोहकतारूपसे उस शक्तिका अनुभव हमें होता है। इस संसारके विनाशमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी किसी ऐसी ही शक्तिका हाथ है जिसे हमारी स्थूल-दृष्टियाँ नहीं देख सकतीं लेकिन ज्ञानदृष्टिसे उसका पता चलता है। क्या कारण है कि अकस्मात् किसी पदार्थका नाश हो जाता है? क्षणभर पहले जो चीज अपने पूर्वरूपमें विद्यमान थी एक क्षणके बाद वह क्या-से-क्या हो जाती है। इसी प्रकारके विषम कौतूहलोंको देखकर यह कहना पड़ता है कि कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो इन सब कामोंको कराती है। इसी अर्थकी पुष्टि योगवासिष्ठसे भी होती है। यथा—

समस्तशक्तिखचितं ब्रह्म सर्वेश्वरं सदा।
ययैव शक्त्या स्फुरति प्राप्तां तामेव पश्यति॥
स्पन्दशक्तिस्तदिच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा।
साकारस्य नरस्येच्छा तथा वै कल्पना पुरम्॥
सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा परमेश्वरी।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा॥
ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जडः।
नित्याप्रबुद्धात्पुरुषाद्ब्रह्मणः प्रकृतिस्तथा॥

अर्थात् 'सर्वेश्वर ब्रह्म सदा सर्वशक्तिसम्पन्न है। जिस शक्तिके द्वारा वह प्रकाशमान होता है उसे उसी तरह प्रकाशित हुआ देखता है। जिस प्रकार साकार मनुष्यकी इच्छा काल्पनिक नगरका निर्माण करती है उसी प्रकार स्पन्दशक्तिविशिष्ट शिवकी इच्छा ही इस जगत्का निर्माण करती है। हे राम! वह अकृत्रिम परमेश्वरकी स्पन्दशक्ति शिवेच्छा, प्रकृति, जगन्माया नामोंसे प्रसिद्ध है। जिस प्रकार चेतन मकड़ीसे जड़ जालेकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार नित्यज्ञानरूप चेतन ब्रह्मसे जड़ प्रकृतिकी उत्पत्ति होती है।' जिस प्रकार वायु और उसकी गति, अग्नि तथा उसकी उष्णता एक ही हैं उसी प्रकार चिन्मात्र ब्रह्म तथा उसकी शक्ति एक ही हैं।

वेदान्तदर्शनमें शक्तिके भेद तथा स्वरूप इस प्रकार पाये जाते हैं। शक्ति दो प्रकारकी होती है—(१) ज्ञानशक्ति (२) क्रियाशक्ति। ज्ञानशक्तिका यह स्वरूप है—

अस्ति, प्रकाशते इति व्यवहारकारणं ज्ञानशक्तिः।

अर्थात् 'ब्रह्मकी सत्ता है और वह प्रकाशमान है इस व्यवहारके कारणको ज्ञानशक्ति कहते हैं।' इस शक्तिमें वह सामर्थ्य निहित है जो ज्ञानको उत्पन्न करे। इसमें रजोगुण और तमोगुणसे सत्त्वगुण अभिभूत नहीं रहता और उसी सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है। इस बातकी पुष्टि गीता भी करती है। 'सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्।' क्रियाशक्ति उसे कहते हैं जो क्रियाको उत्पन्न करे। जब सत्त्वगुणसे रजोगुण और तमोगुण अभिभूत नहीं होते तब ये ही रजोगुण और तमोगुण क्रियाशक्ति कहे जाते हैं।

क्रियाशक्तिके भी दो भेद हैं—(१) आवरणशक्ति (२) विक्षेपशक्ति। आवरणशक्तिका स्वरूप यह है—

नास्ति, न प्रकाशते इति व्यवहारकारणम् आवरणशक्तिः।

अर्थात् 'ब्रह्म नहीं है और भासता नहीं है ये व्यवहार जिसके कारण होते हैं उसे आवरणशक्ति कहते हैं।' संसारी पुरुष इसी आवरणशक्तिसे प्रभावित होकर यह व्यवहार करता है कि कूटस्थ निर्विकार सच्चिदानन्द ब्रह्म नहीं है। इस प्रकारके व्यवहारोंका कारण यह है कि उस व्यवहर्ताके हृदयमें तमोगुणका प्राबल्य है और वह सत्त्वगुण अथवा रजोगुणसे दबा हुआ नहीं है। आवरणशक्तिके भी दो भेद हैं—(१) असत्त्वापादक (२) अभानापादक। जिस शक्तिके द्वारा वस्तुगत अभावकी प्रतीति होती है वह असत्त्वापादक आवरणशक्ति कही जाती है। और जो शक्ति वस्तुकी प्रकाशमानताको निषेध कराती है उसे अभानापादक आवरणशक्ति कहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि एक शक्तिसे वस्तुके अस्तित्वका अज्ञान और दूसरीसे वस्तुके स्वरूपका अज्ञान बोधित होता है। विक्षेपशक्ति आकाशादि प्रपञ्चको उत्पन्न करती है। जब रजोगुण सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे अभिभूत नहीं रहता तब वही रजोगुण विक्षेपशक्ति कहलाता है। श्रुतियोंमें यह वाक्य उपलब्ध होता है—

विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादिब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।

सारांश यह कि आवरणजनक शक्ति आवरणशक्ति और विक्षेपजनक शक्ति विक्षेपशक्ति कही जाती है।

इन्हीं दार्शनिक विचारोंकी पुष्टि पुराण तथा तन्त्र-ग्रन्थोंसे भी होती है। मार्कण्डेयपुराणमें यह वचन मिलता है—

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥

अर्थात् 'यद्यपि वह शक्ति नित्य है तथापि देवताओंके कार्यके लिये आविर्भूत होनेके कारण उत्पन्न कही जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ।' और तन्त्रशास्त्रोंमें शक्तिका स्वरूप तथा उससे विश्वकी उत्पत्ति अनेक प्रकारोंसे वर्णित है। राघवभट्टने प्रयोगसारमें लिखा है—

तस्माद्विनिर्गता नित्या सर्वगा विश्वसम्भवा ।

उस शिवसे वह नित्यशक्ति आविर्भूत हुई जो निखिल विश्वका कारण है। वायवीयतन्त्रमें यह वाक्य उपलब्ध होता है—

शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्त्वैकतां गता ।
ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिव ।

अर्थात् 'जिस प्रकार तिलसे तैल पैदा होता है उसी प्रकार सृष्टिके आदिमें परा शक्तिसे संसार उत्पन्न हुआ है और उस शक्ति और शिवमें कोई भेद नहीं है।' सृष्टिके सम्बन्धमें कुब्जिकातन्त्रमें लिखा है—

आसीद् विन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्तिसमुद्भवः ।
नादरूपा महेशानि ! चिद्रूपा परमा कला ॥
नादाच्चैव समुत्पन्ना अर्धविन्दुर्महेश्वरि ।
सार्द्धत्रितयविन्दुभ्यो भुजङ्गी कुलकुण्डली ॥
त्रिगुणा सगुणा देवि ब्रह्मरूपा सनातनी ।
चैतन्यरूपिणी देवी सर्वभूतप्रकाशिनी ॥
आनन्दरूपिणी देवी ब्रह्मानन्दप्रकाशिनी ।

इस प्रकार सबसे पहले सगुण शिवसे विन्दुकी उत्पत्ति बतायी गयी, उसी शक्तिके नाद और विन्दु अवस्था और रूप हैं जिनसे सृष्टि होती है। प्रयोगसारमें यह बात मिलती है—

नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी ।
शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता ॥

विन्दुके तीन भेद शारदातिलकमें बताये गये हैं—शिवमय, शक्तिमय तथा उभयमय ।

विन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ।
विन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः ॥
समन्वयः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः ।

अर्थात् 'विन्दु, नाद और बीज—ये तीन भेद हैं जिनमें विन्दु शिवरूप है, बीज शक्तिरूप है और नाद इन दोनोंका मिश्रण है। यही बात क्रियासारमें भी मिलती है। यथा—

विन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् ।
तयोर्योगे भवेन्नादस्ताभ्यो जातास्त्रिशक्तयः ॥

शक्तित्रयका स्वरूप उसी जगह इस प्रकार वर्णित है—

रौद्री विन्दोस्ततो नादाज्ज्येष्ठा बीजादजायत ।
वामा ताभ्यः समुत्पन्ना रुद्रब्रह्मरमाधिपाः ॥

कहनेका सारांश यह कि विन्दुरूप शिवसे तथा बीजरूप शक्तिसे नाद उत्पन्न हुआ और इसी परम्परासे तीन शक्तियाँ—ज्ञान, क्रिया तथा इच्छाशक्तियाँ उत्पन्न हुईं। वे ही ज्ञान, इच्छा और क्रियाशक्तियाँ अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्यरूपसे ख्यात हैं जिनके द्वारा निखिल क्रियाओंका सञ्चालन होता है। इन तीन शक्तियोंका विभाग भी बहुत समुचित ढङ्गसे किया गया है। विभाग इस प्रकार योगिनीतन्त्रमें वर्णित है—

इच्छा तु विष्णवे दत्ता क्रियाशक्तिस्तु ब्रह्मणे ।
मह्यं दत्ता ज्ञानशक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥

अर्थात् 'विष्णुने इच्छाको अपनाया, ब्रह्माके हिस्से क्रियाशक्ति पड़ी और ज्ञानशक्ति शिवको दी गयी।' विश्वकी निखिल विभूतियाँ इन्हीं शक्तियोंका परिणाम हैं जो विभिन्न परिस्थितियोंमें नानारूपसे दिखायी पड़ती हैं। जिस प्रकार एक सूर्यसे सहस्रों किरण-रश्मियाँ फूटती हैं, जिस प्रकार एक सुधाधरसे सुधाकी धारा अनेक प्रवाहोंमें प्रवाहित होती है, जिस प्रकार एक विद्युत्से अगणित तेजप्रवाह उत्पन्न होते हैं, जिस प्रकार अग्निसे अगणित स्फुलिङ्गें पैदा होती हैं और जिस प्रकार एक छोटी-सी मकड़ीके शरीरसे करोड़ों तन्तुओंका जाल निकलता है उसी प्रकार उस जगन्माया प्रकृतिसे चराचर अखिल सृष्टिकी रचना होती है। उसीके चलाये नियमोंसे इसका नियन्त्रण होता है। वही आदिशक्ति जब अपने ऊपरी आवरणको छोड़कर निजस्वरूपमें प्रकट होती है तो उसके दो स्वरूप भासित होते हैं—शिव और शक्ति। इस बातकी पुष्टि निर्वाणतन्त्र भी करता है—

सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी ।
मायादलकलमुत्सृज्य द्विधा भिन्ना जगन्मयी ॥
द्विधा भिन्ना विभागेन जायते सृष्टिकल्पना ।
प्रथमे जायते पुत्रो ब्रह्मसंज्ञो हि पार्वति ॥

यहाँ एक विचारणीय विषय यह है कि पूर्वोक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तान्त्रिक श्लोकोंमें जो 'नाद' और 'बिन्दु' पद आये हैं उनका क्या तात्पर्य है ? बिन्दु वह है जो शक्तिप्रधान त्रिगुणात्मक प्रकृति सांख्योंके यहाँ प्रसिद्ध है। कहनेका भाव यह कि ब्रह्मके दो भेद हैं—(१) मायारहित निर्गुण और (२) मायाविशिष्ट सगुण । जो सिद्धान्त सगुण ब्रह्मको जगत्का उपादान कारण मानता है उसके मतमें बिन्दु पदसे ब्रह्म लिया जाता है। और जिस सम्प्रदायमें प्रकृति ही जगत्का उपादान कारण है उस मतमें प्रकृति ही बिन्दु पदसे ली जाती है। और उसी बिन्दुपदवाच्य प्रकृतिसे नाद (शब्द) उत्पन्न हुआ, तदनन्तर सृष्टि।

भगवान् विष्णु अनेक नामोंसे विख्यात महामायाकी भक्तिके लिये आदेश देते हैं—

त्वं भूतिः सन्ततिः कीर्तिः क्षान्तिर्द्यौः पृथिवी धृतिः।
लज्जा पुष्टिरुषा या च काचिदन्या त्वमेव सा॥
ये त्वामार्येति दुर्गेति बेदगर्भेऽम्बिकेति च।
भद्रेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमङ्करीति च॥
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः।
तेषां हि प्रार्थितं सर्वं मत्प्रसादाद् भविष्यति॥

(विष्णुपुराण)

ऋषियोंके भगवतीके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर कूर्मावतार विष्णु देवीका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा।
व्योमसंज्ञा पराकाष्ठा सेयं हैमवती मता॥
शिवा सर्वगतानन्ता गुणातीतातिनिष्कला।
.....
एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः।
परावरेण रूपेण क्रीडते.....
चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः।
शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः॥
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः।

(कूर्मपुराण)

हिमवान्के प्रश्न करनेपर देवी अपने स्वरूपका वर्णन करती हैं—

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम्।
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः॥
अहं हि सर्वभावानामात्मा सर्वात्मना शिवा।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका॥
अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम्॥

(कूर्मपुराण)

इस प्रकार दर्शन, तन्त्रशास्त्र तथा पुराणोंके देखनेसे यह निश्चित होता है कि वही पराशक्ति अनेक रूपोंसे इस संसारमें व्याप्त है। उसीकी महिमाका प्रत्यक्ष हम सभी जगह करते हैं और उसीकी सच्ची भक्तिसे मनुष्य संसार-सागरको आसानीसे पार कर सकता है।

मातृ-आरती

(प्रेषक—श्रीकालीचरणजी विशारद)

आरति कीजै शैलसुताकी। आरति० ॥

जगदंबाकी आरति कीजै।
मोद, स्नेह, सुख सुंदर लीजै।
जिनके नाम लेत दृग भींजै।
ऐसी वह माता वसुधाकी॥
आरति कीजै शैलसुताकी॥

पापविनाशिनि, कलिमलहारिणि।
दयामयी भवसागरतारिणि।
शस्त्रधारिणी, शैलविहारिणि।
बुद्धिराशि गणपतिमाताकी॥
आरति कीजै शैलसुताकी॥

सिंहवाहिनी, मातु भवानी।
गौरव गान करें जगप्रानी।
शिवके हृदयासनकी रानी।
करें आरती मिल-जुल ताकी॥
आरति कीजै शैलसुताकी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा

गोदा-अम्बा

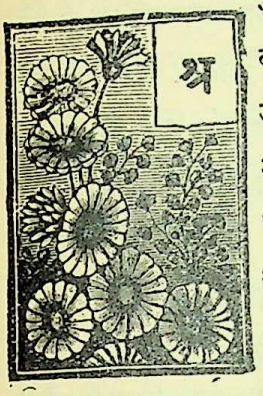

श्रद्धा और विश्वासके साथ भगवान्‌को जो जैसे भजता है भगवान् भी उसको उसी भावसे भजते हैं। सीता और राधाके जो प्राणाधार पति थे, कौसल्या और यशोदाके जो लाड़ले लाल थे, सुग्रीव और अर्जुनके जो सखा थे, रावण और शिशुपालके जो शत्रु थे वे ही भगवान् इस कलिकालमें भी सूर, तुलसी, मीरा तथा नन्ददास आदि भक्तोंके सामने प्रत्यक्षरूपमें प्रकट हुए और उन्हें अपनी लीलाएँ दिखलायीं। भगवान् सर्वत्र और सर्वदा विभु—व्यापक तो हैं ही परन्तु जहाँ प्रेम है वहाँ वे भक्तके इच्छित स्वरूपमें साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। 'प्रेमतें प्रगट होहिं मैं जाना॥' हमारा यह दृढ़ विश्वास है और हम डंकेकी चोट यह कह सकते हैं कि आज भी हम अनन्य प्रेम, अखण्ड विश्वास और अविचल श्रद्धाद्वारा परमात्माको प्रकट साक्षात् रूपमें देख सकते हैं, उनसे रू-बरू दो-दो बातें कर सकते हैं और अपने जीवनको कृतकृत्य कर सकते हैं। आवश्यकता है दृढ़ विश्वास और अटल प्रेमकी। अस्तु।

आज हम अपने पाठकोंको एक ऐसी ही भक्तिमती देवीका दिव्य चरित सुनाते हैं जिसने प्रभुको पतिके रूपमें भजा और जिसे हरिने अपनी पत्नीके रूपमें अङ्गीकार कर लिया। प्राचीन कालमें दक्षिण-भारतमें कावेरीतटपर स्थित एक गाँवमें विष्णुचित्त नामक एक परम वैष्णव भक्त रहते थे। वे बड़े ही आस्तिक और धर्मिष्ठ पुरुष थे। अहर्निश वे भगवद्भजन, हरिकीर्तन और नामजपमें निरत रहते। उन्हें भगवान्‌के सिवा और कुछ सुहाता ही न था। बड़ा ही रम्य उनका एक तुलसीका बाग था। वे नित्य प्रातःकाल तुलसीके थालोंमें जल ढालते और तुलसीदलकी ही माला बनाकर भगवान्‌का शृंगार करते। एक समय प्रातःकाल जब वे घड़ेमें जल भरकर आलवालमें ढालने गये कि वहाँ उन्हें एक परम-मनोहर शिशुकन्या दिखलायी दी। भक्तोंका हृदय सहज स्नेहमय और दयापूर्ण होता है। उस छोटी लड़कीको देखकर उनका हृदय स्नेहसे भर आया और वे उसे उठाकर घर ले आये।

रातमें उन्हें स्वप्नमें भगवान्‌ने उस कन्याका सारा हाल बता दिया—'वाराहावतारमें मैंने पृथ्वीका उद्धार किया था तब पृथ्वीने मुझसे पूछा कि आपको किस प्रकारकी पूजा परम प्रिय है?' उस समय मैंने बतलाया था कि 'मुझे नामकीर्तन तथा पत्र-पुष्प-फल-तोयकी पूजा सर्वप्रिय है। मुझे प्राप्त करनेके लिये भक्त मेरे नाम और लीलाका कीर्तन करे और प्रेम-भक्तिके साथ मेरी पूजा-अर्चा करे। मेरी उसी बातको हृदयमें धारणकर पृथ्वी इस कन्याके रूपमें प्रकट हुई है और तुम्हारे घरमें बसना चाहती है यदि तुम इस कन्याकी सेवा करते रहोगे तो अवश्य ही परमपदको प्राप्त होगे।' ब्राह्मण-ब्राह्मणी इस कन्याको पाकर परम प्रसन्न हुए और यथासमय उसका जातकर्म कराया। उसका नाम गोदा रक्खा गया।

समय पाकर कन्या सयानी हुई। वह बड़े ही प्रेमसे पुष्पोंके हार गूँथती और भगवान्‌को चढ़ाती। सदा प्रेमरसमें सराबोर हुई हरिके नाम और लीलाओंका गान करती। कन्याकी बनायी हुई मालाको लेकर विष्णुचित्त ब्राह्मण श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरमें जाते और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हाथों माला चढ़ा आते। एक बार गोदाने तुलसीकी बड़ी ही मनोहर माला बनायी। माला बहुत ही सुन्दर थी, उसने यह देखनेके लिये कि देखें गलेमें यह कैसी सजती है, अपने ही गलेमें उसे पहन लिया। तदनन्तर वह दर्पणमें अपना मुख देख ही रही थी कि विष्णुचित्त आ गये। गोदाकी मालाको उच्छिष्ट होते देख उन्होंने दूसरी माला बना ली और उसे श्रीरङ्गनाथजीको पहिना दिया। परन्तु भगवान् तो समर्पण और प्रेमके भूखे हैं। उन्हें तो गोदाकी उच्छिष्ट माला ही चाहिये थी। गोदा वही वनमाला पहिने हुए भगवान् श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरमें गयी और भगवान्के चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए उसने सर्वात्म-भावसे अपनेको समर्पण कर दिया। समर्पण जब सम्पूर्ण होता है तो 'देवता' को स्वीकार होता ही है। आवश्यकता इस बातकी है कि हृदयको प्रभुके चरणोंमें चढ़ाते समय वह सर्वथा शून्य, सर्वथा निरावरण रहे! गोदाका मधुर और सम्पूर्ण समर्पण भला भगवान्को अङ्गीकार क्यों न हो?

हृदय जब हरिके चरणोंमें चढ़ा दिया जाता है तो फिर संसारकी कोई भी चर्चा नहीं सुहाती। भगवान्ने उद्धवसे कहा है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१४)

'जिसने अपने चित्तको मुझमें ही लगा दिया है वह मुझको छोड़कर ब्रह्मपद, इन्द्रपद, चक्रवर्त्ती राज्य, सारी पृथ्वीका या पाताललोकका राज्य, योगकी सिद्धियाँ अथवा मोक्ष आदि किसीकी भी कामना नहीं करता।'

गोदा भी अहर्निश प्रभुके प्रेममें माती फिरती। एक दिन उसने अपने धर्मपितासे बड़े ही अनुनय-विनयके साथ दिव्य धर्मों तथा तीर्थस्थानोंके विषयमें पूछा। विष्णुचित्तका चित्त प्रभुके चरणोंका अनुरागी था ही। वे बहुत प्रेम और श्रद्धाभरे शब्दोंमें अपनी बेटीसे कहने लगे—'भगवान् तो सर्वत्र ही समरूपसे विराजमान हैं, उनका कभी कहीं भी अभाव नहीं परन्तु खास-खास स्थानोंमें वे खास रूपोंमें विराजते हैं, उन्हींमेंसे कुछ ये हैं। श्रीवैकुण्ठधाममें भगवान् वासुदेव निवास करते हैं। आमोदलोकमें सङ्कर्षण और बलराम रहते हैं। प्रमोदलोकमें प्रद्युम्न और अनिरुद्धका निवास है। श्वेतद्वीपमें क्षीरशायी भगवान् विष्णु निवास करते हैं। बदरीवनमें नर-नारायण रहते हैं। नीमसारमें भगवान् हरिका स्थान है। मुक्तिनाथमें भगवान् सालग्राम तथा साकेत—अयोध्यापुरीमें अपने भाइयोंके सहित मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रहते हैं। मथुरामें भगवान् यदुनाथका निवास है और वे अपने प्रपन्न भक्तोंके भवबन्धनको छिन्न-भिन्न कर देते हैं। काशीपुरीमें स्वयं भगवान् विश्वनाथ विराजते हैं जो 'रामनाम' का तारक मंत्र देकर सभीको मोक्षका अधिकारी बना देते हैं। बरसाने-नन्दगाँवमें नन्द-नन्दन बसते हैं और वे ही दयामय प्रभु वृन्दावन-विहारी आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके नामसे वृन्दावनमें निवास करते हैं। कालीदहमें गोविन्दका निवास है और उन्हें ही गोवर्द्धनधारी गिरिधरलाल कहते हैं। हरिद्वारमें भगवान् यदुपति और प्रयागमें भगवान् वेणीमाधव हैं। गयामें गदाधर और गङ्गासागरमें कपिलमुनिका वास है। चित्रकूटमें जगज्जननी सीता और लक्ष्मणके साथ महाराज श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं, पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठलस्वामी हैं। और दक्षिणमें कावेरीके तटपर भगवान् श्रीरङ्गनाथका वास है।'

भगवान् श्रीरङ्गनाथका नाम सुनते ही गोदाको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमाञ्च हो आया और उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा छूट पड़ी। उसने विह्वल होकर अपने इष्टदेवके सम्बन्धमें अधिक जाननेकी इच्छा प्रकट की। तब विष्णुचित्त सुनाने लगे—'इक्ष्वाकुके यज्ञकी पूर्तिके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णु वहाँ प्रकट हुए। भगवान्‌का साक्षात्कार हो जानेपर इक्ष्वाकु कृतार्थ हो गये और ब्रह्माकी आज्ञासे वे सरयूके तटपर अयोध्यामें तपस्या करने लगे। तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने इक्ष्वाकुसे वर माँगनेके लिये कहा। इक्ष्वाकुने यही वर माँगा कि 'भगवान् विष्णुका यहीं अवधमें अवतार हो और वे श्रीरङ्गनाथजीके रूपमें उनके कुलदेव रहें।' ब्रह्माने उन्हें मुँहमाँगा वरदान दे दिया।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब लङ्काको जीतकर अयोध्या आये तो उनके साथ विभीषण भी पधारे थे। वे जब लङ्का जाने लगे तो उन्होंने भगवान्‌से कहा कि आपका वियोग मेरे लिये सर्वथा असह्य है अतएव मुझे कोई ऐसी वस्तु दीजिये जिससे मेरे हृदयको धीरज हो। विभीषणके अटल प्रेमको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें श्रीरङ्गनाथजीकी प्रतिमा दी। जब विभीषण कावेरीतटपर आये तो वे किसी दूसरे यज्ञ-अनुष्ठानमें संलग्न हो गये। फिर भगवान् श्रीरङ्गनाथजीने लङ्का जाना अस्वीकार कर दिया और विभीषणने वहीं भगवान्‌की मूर्ति स्थापित की। विभीषण भगवान्‌की पूजा-अर्चाके लिये नित्य लंकासे यहाँ आया करते थे।

भगवान् श्रीरङ्गनाथका वर्णन सुनकर गोदाकी उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गयी। उसने पितासे भगवान्‌की प्राप्तिका साधन पूछा। अब गोदाके लिये एक क्षणका वियोग भी असह्य था—

गदगद बानी कंठमें, आँसू टपकैं नैन।
वह तो बिरहिन रामकी, तलफति है दिनरैन॥
वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।
अगिन बरै, हियरा जरै, भये कलेजे छेद॥
जाप करै तो पीवका, ध्यान करै तो पीव!
जिव बिरहिन का पीव है, पिव बिरहिनका जीव॥

अब तो जिस प्रकार हरि मिलें वही बात गोदाको प्रिय थी। उसने मार्गशीर्षका व्रत किया। एक रातमें वह देखती है कि प्रभुजी स्वप्नमें उससे मिलने आये हैं। इस आनन्दका क्या कहना? वह उठी और भगवान्‌को अँकवारमें बाँधने चली ही थी कि वह छलिया खिसक गया····!! 'उसे' तो तरसानेमें ही आनन्द आता है।

गोदाकी विरहव्यथा बढ़ती ही गयी। उसके प्राण रातदिन जीवनधनमें अटके रहते थे। वह उसीका नाम जपती, उसीका कीर्तन करती और उसीकी धुनमें डूबी रहती। उसकी आँखोंमें, हृदयमें, प्राणमें, रोम-रोममें श्रीरङ्गनाथजी ही छाये हुए थे। वह रोती और दहाड़ मारकर छाती पीटती—'प्रियतम! स्वप्नमें आकर तुमने मिलनेका जो उपक्रम किया है उससे तो मेरे भीतरकी विरहाग्नि और भी धधक उठी है। यों तड़पानेमें तुम्हें कौन-सा रस मिलता है। हाय! एक क्षण भी तुम्हारे बिना रहा नहीं जाता। देव! मेरे जीवनधन! यदि मेरे प्राणोंकी इस आकुल तड़पसे तुम्हारा कठोर हृदय तनिक भी पसीजे तो अभी आकर मुझे अपने चरणोंमें स्वीकार कर लो! प्रभो! ओ मेरे प्राणाधार! सीताकी सुध लेनेके लिये तुमने समुद्रमें पुल बँधवाया और रावणको मारकर उसे अयोध्या लौटा लाये। शिशुपालका वध करके रुक्मिणीको अपनी शरणमें ले लिया। द्रौपदी, गज, गणिका और गोपियोंकी टेर सुन ली परन्तु मेरी ही बार इतना विलम्ब क्यों कर रहे हो? मैं जानती हूँ कि मैं अपराधिनी हूँ परन्तु जैसी भी हूँ तुम्हारी हूँ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हीं मेरे प्राणवल्लभ, हृदयेश्वर, जीवनसर्वस्व और अवलम्ब हो ! तुम्हें छोड़कर किसकी शरणमें जाऊँ ? जिस प्रकार चकोर चन्द्रमाको और चातक घनश्याम-को चाहता है वैसे ही मेरा हृदय तुम्हें देखनेके लिये व्याकुल है—

देख्यो एक बार हूँ न नैन भरि तुम्हें, यातें
जौन-जौन लोक जैहें तहीं पछितायँगी ।
बिना प्रान-धारे भये दरस तुम्हारे हाय
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रह जायँगी ॥

× × ×

गोदाकी अवस्था बढ़ चली और अब उसके स्वयंवरका समय आया । विष्णुचित्त अपनी कन्याको लेकर कुरका नगर गये । विवाहकी सब तैयारी हो रही थी परन्तु गोदाके मनमें तो हरि बसे हुए थे और उसका हृदय प्रभुके लिये हाय-हाय कर रहा था । भगवान् भक्तवत्सल हैं । 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'—उनका व्रत है । इस समय तो गोदाकी अवस्था ठीक वही थी जैसी मीराकी अथवा गोपियों-की थी—

नाहिंन रह्यो हियमें ठौर ।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और ॥
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात ।
हृदयतें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात ॥
कहत कथा अनेक ऊधो ! लोक लाज दिखात ।
कहा करौं तन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समात ॥
स्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदुहास ।
'सूर' ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास ॥

स्वयंवरका मण्डप सजा हुआ था । भक्तकल्पतरु भगवान् श्रीरंगनाथजी स्वयं भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये पधारे और उनके साथ सभी देवता अपने वसन-भूषणोंसे सजकर आये । जयमाला लेकर गोदा सभामण्डपमें पधारी । गोदाका मन तो श्रीरंग-नाथके प्रेमरसमें छका हुआ था । उसके हृदयमें प्रभुजीकी मोहिनी मूर्ति बसी हुई थी । उसने जयमाल अपने प्राणाधारके गलेमें डाल दी । देवताओंने आनन्ददुन्दुभी बजायी और आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी । सुर, किन्नर, गन्धर्व आकाशमें मधुरस्वरसे गीत गाने लगे । सूर्य और चन्द्रमा चँवर डुलाने लगे और पवनदेव पंखा करने लगे । देवर्षि, महर्षि जय-जयकार करने लगे । ब्रह्मा वेद पढ़ने लगे । नगरकी शोभा कैसे कही जाय ? भगवान्‌ने विश्वकर्माको आज्ञा दी कि नये सिरेसे इस नगरको बसाया और सजाया जाय । बात-की-बातमें सब तैयार हो गया ।

स्वयंवरके बाद विवाहका मंगलकार्य बड़ी धूम-धामसे सम्पन्न हुआ । श्रीरंगनाथने गोदाका पाणि-ग्रहण किया और उनके चारों ओर सात बार भाँवरी की । दोनोंकी आरती उतारी गयी । विवाह सम्पन्न हो चुकनेपर सभी देवता अपने-अपने वाहनोंपर सिधारे तथा भगवान् श्रीरंगनाथजी गोदाको लेकर अमरधामको पधार गये !

लोगोंको इस कथामें आश्चर्य या शंका करनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं है । 'हौं भक्तनके भक्त हमारे' प्रभुकी प्रतिज्ञा है । सर्वात्मसमर्पण और अखण्ड प्रेमसे सब कुछ साध्य है । हम संसारी जीवोंके लिये जो असम्भव प्रतीत होता है वह भगवान् और उनके भक्तोंके लिये बहुत साधारण बात है क्योंकि—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gurukul Library Kangri

तन्त्र

(लेखक—श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

प्रकृति और ब्रह्म भिन्न वस्तु नहीं है, ब्रह्मकी व्यक्तावस्था ही प्रकृति है

तन्त्रकी प्रकृति जड़ नहीं है, यह पहले कहा जा चुका है। एक ब्रह्मके अतिरिक्त जब दूसरा पदार्थ विद्यमान ही नहीं है तब 'प्रकृति' कोई आगन्तुक शक्ति नहीं है। श्रुति कहती है—'नेह नानास्ति किञ्चन'—ब्रह्ममें नानात्व नहीं है। किन्तु 'यो देवो एको बहुधा शक्तियोगात्' इत्यादि। यह बहुशक्ति कहाँसे आती? वह ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। उसकी अनन्त शक्ति उसमें सर्वदा विद्यमान रहती है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

'जो असत् है वह अनात्मधर्म होनेके कारण सदा ही अविद्यमान है, और जो सत् आत्मा है उसकी अविद्यमानता कभी नहीं होती।' परन्तु ये शक्तियाँ उस प्रकारसे असत् पदार्थ नहीं हैं। श्रुति कहती है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

'इस ब्रह्मकी बहुतेरी श्रेष्ठ शक्तियाँ हैं, यह बात सुनी जाती है।' वह सारी शक्तियाँ हैं—

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

इसलिये शक्ति उसमें नहीं है, अथवा शक्ति कोई पृथक् वस्तु है, यह बात ठीक नहीं है। उसे हम देख सकें चाहे न देख सकें, परन्तु उसकी अनेक शक्ति और क्रियाओंका निदर्शन हमें सर्वदा प्राप्त होता है। उसीकी शक्तिसे यह अखिल विश्व सदा परिव्याप्त रहता है।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥

(देवीभागवत)

'जगत्में नित्य या अनित्य जो कोई भी वस्तु जिस किसी स्थानमें है, उनके समुदायमें जो शक्ति है वह तुम्हीं हो, तब फिर तुम्हारा स्तवन करके तुम्हारी महिमाका कैसे वर्णन किया जायगा?

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानाञ्चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

'जो प्राणिमात्रमें क्षित्यादि पञ्चभूत, ज्ञानकर्मात्मिका एकादश इन्द्रियाँ तथा इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री सूर्यादि देवताओंकी अधिष्ठात्री है, उस विश्वव्यापिका ब्राह्मी शक्तिरूपी देवीको नमस्कार! जो देवी कूटस्थ चैतन्यरूपमें इस सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त होकर अवस्थित है, उसको नमस्कार!

इस शक्तिको अस्वीकार करके शक्तिमान्को स्वीकार करना अथवा शून्यको स्वीकार करना एक ही बात है। जगदादिरूपमें, जीवरूपमें तथा अत्यन्त सूक्ष्मभावमें उसकी शक्तिका प्रकाश तो नित्य विद्यमान है ही—परन्तु समय-समयपर जडातीत नित्या चिन्मयी शक्तिका प्रत्यक्ष प्रकाश होता है, जीव बड़े ही भाग्यसे उस शक्तिका दर्शन कर जीवनको धन्य कर सकता है।

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम॥

'वह देवी नित्या अर्थात् उत्पत्तिनाशरहिता है; यह जगत् ही उसकी मूर्ति है, वही चिन्मयीरूपसे समस्त जगत्को व्याप्त किये हुए है। तथापि उसके अनेकों प्रकारके आविर्भावके विषयमें मुझसे सुनो।

भोगवासनाद्वारा चित्तके मलिन होनेके कारण इस स्थूल भूतादिके आड़में दीनजननी जगन्माताकी जो नित्य विद्यमान चिन्मयी सत्ता है, उसे हम देख नहीं पाते। प्रह्लादके समान जो समस्त ऐश्वर्य-मानादिकी उपेक्षा कर अन्य किसी भी पार्थिव आश्रयका अवलम्बन बिना लिये एकमात्र उनकी ओर देखते हुए हृदय विदीर्ण कर रो सकते हैं, प्रह्लादको जैसे उन्होंने स्तम्भ फाड़कर दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था उसी प्रकार दीन आर्त्त भक्तकी वह रक्षा करती है, कभी उपेक्षा नहीं कर सकती। वह कहाँ है, कहाँ नहीं है—यह सारी बातें विवेचनीय नहीं हैं। यदि मर्मभेद करके उसे हम पुकार सकें, यदि शास्त्रादेशसम्मत साधनप्रणाली-का अवलम्बन कर अकपटभावसे हम परिश्रम कर सकें तो हमारी माँ, जो सर्वव्यापिनी है, सब जगहसे हमारी चित्तकी आकुलताको आकृष्ट कर इस धरणीकी धूलके प्रत्येक अणुसे अपनेको प्रकाशित कर सकती है। हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि जो सर्वत्र व्याप्त है उसे न देखकर न मालूम हम कितनी ही अविश्वासकी बातें करते हैं! विद्युत्-विकासके समान उसके अस्तित्वका हम समय-समयपर पता नहीं पाते हैं, ऐसी बात नहीं; परन्तु हमारा चित्त विषयोंसे निवृत्त नहीं हुआ है, इसी कारण वह परिशुद्ध नहीं है। यदि किसी प्रकारसे यह जीवप्रकृति शुद्ध हो जाय तो मेघाडम्बरहीन अनन्त नीलाकाशमें जिस प्रकार चन्द्रमण्डल-की स्निग्ध कौमुदी छिटक पड़ती है, उसी प्रकार हमलोगों-के शुद्ध अचञ्चल चित्तमें जगज्जननीके नित्य चिन्मयी-रूपकी प्रतिछवि प्रतिबिम्बित हो सकती है।

वस्तुतः इतना बड़ा मनुष्यजीवन हम किसलिये नष्ट कर रहे हैं? हम एक बार भी तो प्राण भरकर उसे नहीं पुकारते। तुम हमारी सर्वस्व हो, तुम हमारी सर्वश्रेष्ठ निधि हो, ऐसा उसके लिये एक बार भी तो नहीं विचार करते—फिर हमारे नेत्रोंके सामने धूल-ही-धूल न दीखे तो और क्या दीखे? ऐसे नेत्रोंके सामने क्या जगन्माताका चिन्मयी भाव आ सकता है? परन्तु वास्तवमें यह धूल—माटी भी मिट्टी नहीं है, वह हमारी माँ है—

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।

माँ! तुम्हीं तो महीरूपमें विराजमान हो, एकमात्र तुम्हीं तो जगत्की आधारभूता हो!

परन्तु शक्तिका इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन बड़े भाग्यसे ही जीव कर सकता है। हम जो सम्मोहित होकर शुद्ध चैतन्यको भूल गये हैं, इसीसे शोकार्त्त जीवोंका हाहाकार आज जगत्को विदीर्ण कर रहा है। चैतन्यमें लक्ष्य न होनेके कारण ही प्राण स्पन्दित होकर मनको सचञ्चल कर रहे हैं और मनका यह चाञ्चल्यविक्षेप आज समस्त जगत्-को नृत्यशीला बालिकाके समान बोध होता है। इस चित्स्वरूपमें लक्ष्य रख सकनेसे ही हम स्थिर होकर निविष्ट चित्तसे उस चिन्मयी माताको स्पर्श कर सकेंगे। इसीलिये आज सब काम छोड़कर हमको उसे प्रसन्न करनेके कार्यमें लगना चाहिये। उसके प्रसन्न होकर हमारे ऊपर कृपादृष्टि किये बिना मेरा मोहबन्धन नहीं छूटेगा—'त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः' तुम्हारे प्रसन्न होनेपर ही संसारमें मुक्तिपथ दिखलायी देता है।

निर्गुण ब्रह्मके सगुणरूपमें आनेपर ही उसकी कृपा समझमें आती है, उसकी प्रसन्नताका ज्ञान होता है। इसी-लिये शास्त्रोंमें गुणमयी ब्रह्ममूर्तिकी उपासनाका आदेश है। यह मूर्ति किसीके द्वारा कल्पित नहीं है—'साधकानां हितार्थाय' ब्रह्म स्वयमेव अपनी रूपकल्पना करते हैं। यही अरूपका रूप है, 'रूप' होनेपर भी वह शुद्ध चिन्मात्र हैं। सगुणभावमें शक्ति सुप्रकट रहती है, निर्गुण अवस्थामें ब्रह्मशक्ति ब्रह्ममें तल्लीन रहती है, उसका स्फुरण नहीं होता। बहुतेरे शक्तिकी इस सुप्तावस्था निर्गुणभावको ही अधिक उच्चतर अवस्था बतलाते हैं। यही भाव सर्वोच्च भाव है या नहीं, इस विषयमें हम कुछ भी नहीं कह सकते। परन्तु इस अवस्थामें जब शक्ति तल्लीन रहती है, तब सृष्ट्यादि कार्य नहीं होते हैं, अतः त्रिगुण या तज्जनित त्रिताप भी वहाँ अविद्यमान रहते हैं। यह अवस्था नित्य त्रितापसन्तप्त व्यक्तिके लिये अत्यन्त लोभनीय होगी, इसमें तो सन्देह ही क्या है? परन्तु उसका प्रत्यक्ष भाव भी कम लोभनीय नहीं है। परमब्रह्म तो अवाङ्मनसगोचर है, परन्तु उसकी चिच्छक्ति भी सर्वदा प्रकाशिता नहीं है। यह शक्ति जब भाग्यवश प्रकाशित होती है, तब जीवजगत् मुग्ध हो जाता है। हाथ जोड़कर, नतमस्तक हो देव-दानव, ऋषि-मुनि उसकी महिमा प्रकट करते हुए दिव्य स्तुतिसे स्तवन करते हैं। भारतवर्षमें इस प्रकार-के प्रकाशके दृष्टान्त इस घोर कलिकालमें भी अनेकों स्थलों-पर मिलते हैं। इसकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें नानाविध उपदेश और साधनाएँ वर्णित हैं। यह अप्रकट शक्ति समय-समयपर प्रकटित होती है, इसका उल्लेख शास्त्रोंमें अनेक स्थलोंमें हम देखते हैं। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत चण्डीमें लिखा है—

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥

यह जब देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये आविर्भूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है, तब नित्या होनेपर भी वह जगत्में 'उत्पन्न हुई' कहलाती है। वस्तुतः जब ब्रह्म ही उत्पत्तिविनाशरहित है, तब उसकी स्वकीया शक्तिकी ही नये रूपमें किस प्रकार उत्पत्ति हो सकती है ? परन्तु जब वह अव्यक्तरूपा रहती है, तब निराकारा रहती है, और भक्तके भक्तिस्रोतमें प्रदीप्त हो उठनेपर अथवा साधकके साधनफलदातृरूपमें प्रकाशित होनेपर उसका दिव्य रूप देखनेमें आता है।

इस परम तत्त्वके उपदेष्टा भी असाधारण मनस्वी हैं। श्रुति कहती है—

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।

विवेकहीन साधारण पुरुष यदि इस परम तत्त्वका उपदेश करे तो उससे यह परमार्थज्ञान परिस्फुट नहीं होता, क्योंकि इसका अनेकों प्रकारसे चिन्तन होता है।

बाह्य युक्तितर्कद्वारा भगवत्-अस्तित्वका निरूपण करने जाना केवल अनर्गल वाग्विलासमात्र है, उससे कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार 'न' कहा जाता है, उसी प्रकार 'हाँ' भी कहा जाता है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।

जो उसे अपना जीवनसर्वस्व समझकर सब छोड़कर एकमात्र उसे ही वरण कर लेता है, वही उसे पाता है। शास्त्र आदेश करते हैं—'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि।' श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योगादि अभ्यासोंके द्वारा उसे अवगत करो।

इस श्रद्धा-भक्तिद्वारा ब्रह्मकी शक्ति ही अवगत होती है। ब्रह्म निर्गुण है, उसकी केवल सत्तारूपता ही बोधका विषय है। परन्तु जब वह प्रकृतिको ग्रहण करता है अर्थात् उसके भीतर जो इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति है वह जब किसी इच्छावश नहीं, स्वतः ही स्फुटनोन्मुख होती है तभी मानो ब्रह्म प्रकृतिको ग्रहण करता है। किन्तु वह शक्ति उसके अपने भीतर ही वर्तमान रहती है, कहीं अन्यत्रसे उसे लाना नहीं पड़ता।

प्रकृतिके साथ ब्रह्मका अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् प्रकृतिके बिना ब्रह्म नहीं रहता तथा ब्रह्मके बिना प्रकृति भी नहीं रह सकती। प्रकृतिका आश्रय ब्रह्म है और ब्रह्मकी अघटनघटनापटीयसी शक्ति ही प्रकृति है। तिलमें तेलकी तरह प्रकृति ब्रह्ममें सदा अनुलिप्त, अभेद्य सम्बन्धमें जड़ित रहती है। यह प्रकृति जब उसमें तल्लीन रहती तब ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। तब वह केवल चिन्मात्र, मनबुद्धिसे अतीत, समाधिबोधगम्य मात्र होता है। जब उसमें प्रकृति जाग उठती है तब वह केवल बोधमात्र या शून्यमात्र नहीं रहता, तब वह जडातीत होते हुए भी जडके मध्यमें आकर प्रकाशित होता है। इस प्रकट भावको ही भगवत्कृपा या अनुग्रह कहा जाता है। उस समय मानो चैतन्य और कर्तृत्व दोनों उसमें एक साथ दृष्ट होते हैं। इसीलिये कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्मको (पुरुषको) केवल चैतन्यमात्र कहा गया है और उसमें कर्तृत्व-भोक्तृत्वको अस्वीकार किया गया है परन्तु पुरुष प्रकृतियुक्त होनेपर ही सगुण ब्रह्मके नामसे कीर्तित होता है, उस समय उसमें चैतन्य और कर्तृत्व दोनों वर्तमान रहते हैं। किन्तु इस अवस्थाका अभाव होनेपर फिर उसका ईश्वरत्व नहीं रह जाता। ईश्वरत्वके स्थायी भावमें प्रकृति-पुरुषयुक्त भाव ही अनादि हैं, यही तन्त्र स्वीकार करते हैं। इस अवस्थाकी कभी किसी कालमें विच्युति नहीं होती। परन्तु निर्विकल्प समाधिकी अवस्थामें जो भाव रहता है उसे निर्गुण भाव कहनेपर भी उस समय उसमें ईशित्व नहीं है, ऐसी बात नहीं है, अवश्य ही वह तल्लीनरूपमें रहता है।

तुरीय ब्रह्म ही निर्गुण ब्रह्म है, मूलप्रकृति उसमें स्वतः विद्यमान रहनेपर भी तुरीयावस्थामें प्रकृति उसमें तल्लीन रहती है—कृष्णमें राधा अपने आपको विलीन कर देती है—उसका तब कोई कार्य नहीं रह जाता। फिर निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म जब मायाको अङ्गीकार कर सगुण ब्रह्म या महेश्वर बनता है, तभी उसमें सृष्टिकी इच्छाका उदय होता है। तब—

स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्।

उसी ईक्षणसे प्रकृतिमें प्राणका स्पन्दन होता है और उस स्पन्दनसे सृष्टिके मूल पञ्चतत्त्व उत्पन्न होते हैं—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।'

(तैत्तिरीय०)

यह प्रकृति ही मानो ब्रह्मका अधिष्ठान है। यह हमारा शरीर जिस प्रकार हमारे आत्माका अधिष्ठान है, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहके बिना आत्मा रहता ही नहीं, यह बात नहीं है, परन्तु उस समय उसका प्रकाश नहीं रहता, जिस प्रकार इस प्रकाशका क्षेत्र देह है उसी प्रकार प्रकृति ही ब्रह्मका अधिष्ठान या लीलाभूमि है। तुरीय ब्रह्मके साथ इस मूल प्रकृतिका साक्षात् सम्बन्ध है। वह जिस प्रकार चेतन स्वभाववाला है वैसे ही प्रकृति भी चेतन स्वभाववाली है। यह उससे कोई पृथक् सत्ता नहीं है। यही उसकी—'मम योनिर्महद्ब्रह्म'—यही उसकी जीवभूता, प्राणरूपा परमा प्रकृति है, यह उसके साथ नित्ययुक्ता, अच्छेद्यभावसे मिलती है।

प्रकृतिके ब्रह्ममें लीन होनेका अर्थ यह है कि उस समय ब्रह्मकी लीलाशक्ति ब्रह्ममें संकुचित हो जाती है, अर्थात् तब उसकी प्रकाशशक्ति या लीला रह नहीं जाती। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंके द्वारा ही तो विश्वका खेल होता है, गुणत्रयके न रहनेपर फिर विश्वका खेल ही कहाँ होगा ? मूलप्रकृति इस गुणत्रयकी जननी अर्थात् गुणत्रयका निद्रास्थान है। गुणक्षोभ होनेपर अर्थात् ब्रह्मकी सृष्टि करनेकी इच्छा होनेपर उसकी प्रकृतिमें चाञ्चल्य समुत्थित होता है, इस चाञ्चल्यसे ही त्रिगुणोंकी उत्पत्ति होती है। तब तामसिक अंशसे महेश्वर और महाकाली, राजसिक अंशसे ब्रह्मा और महासरस्वती, तथा सात्त्विक अंशसे विष्णु और महालक्ष्मी प्रकट होते हैं।

ब्रह्मके साथ इनका पारस्परिक सम्बन्ध है। उपनिषदोंके साथ इनका क्रम मिलाकर देखिये।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥

चक्षु, कर्ण आदि स्थूल इन्द्रियोंसे शब्द, स्पर्श, रूप आदि श्रेष्ठ अर्थात् सूक्ष्म हैं, इन्द्रियविषयसे विषयको ग्रहण करनेवाली शक्ति मन श्रेष्ठ अर्थात् सूक्ष्म है, मनसे निश्चयात्मिका वृत्ति वा विचारशक्ति—बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे महान् आत्मा अर्थात् समष्टि जीवात्मा या हिरण्यगर्भ श्रेष्ठ है, हिरण्यगर्भसे अव्यक्त प्रकृति श्रेष्ठ है, प्रकृतिसे परब्रह्म या पुरुष श्रेष्ठ है। उससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। वही काष्ठा या अन्तिम सीमा है और वही श्रेष्ठ गति है, क्योंकि वहाँसे फिर पुनरावृत्ति नहीं होती।

इससे समझा जा सकता है कि शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मक सूक्ष्म भूतादि वा तन्मात्रा जो जगत्के साक्षात् प्रकाशक हैं, स्थूल जगदादि जाग्रत्भावसे श्रेष्ठ हैं, उनसे सङ्कल्पात्मक मन (सृष्टिकी उन्मुखता या चाञ्चल्य, स्वप्नावस्था या सूक्ष्मशरीर) सूक्ष्म है; पुनः इस अवस्थासे सूक्ष्म सङ्कल्पका कारणभूत बीजरूप कारणशरीर या सुषुप्तावस्था श्रेष्ठ है। उससे भी सूक्ष्म समष्टि जीवात्मा या हिरण्यगर्भ है, एवं हिरण्यगर्भसे सूक्ष्म उसका कारण अव्यक्त प्रकृति श्रेष्ठ है, तथा प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ आत्मा है। प्रलयकालमें प्रकृति ब्रह्ममें लीन हो जाती है, परन्तु उससे जीवको मुक्ति नहीं मिल जाती। प्रकृतिके उत्थानके साथ जीवको पुनः जगत्में आना पड़ता है। परन्तु ब्रह्म अन्तिम सीमा या अवधि है, वहाँ जो पहुँच जाता है, उसकी फिर पुनरावृत्ति नहीं होती।

(क्रमशः)

दया-भिक्षा

उमापति शंकर दया करो।
राग-द्वेषकी परम कृपासों, भटकत दिन सिगरो।
भ्रमजंजाल मोह तृष्णाको, छूटत नहिं झगरो॥
अगम अपार धार भव-सरि महँ, व्याकुल जीव परो।
'सूरज' प्रभु-अनुराग-शक्ति दे, बाधा विघ्न हरो॥

सूर्यनारायण मिश्र 'सूरज'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर-साहित्यमें भ्रमर-गीत

(लेखक—श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न)

अपने अलौकिक प्रेमका अमृत पिलाकर, रासके दिव्य रससे गोपियोंके हृदयको पागल बनाकर, अपनी बाल-सुलभ निर्दोष केलि-क्रीड़ाओंसे उनको अनुप्राणित कर नटनागर मथुरा चले गये। विरहकी मारी गोपियाँ अपने हृदयधनको न पाकर अस्त-व्यस्त स्थितिमें वन-वन मारी फिरती हैं, उन्हें कहीं कुछ सुहाता नहीं। मधुवन, यमुना, करीलकुञ्ज, वंशीवट मानो काट खा रहे हैं। जो कुछ सामने आता है श्यामकी स्मृति लिये। झल्ला उठता है गोपियोंका विह्वल हृदय। वे पूछती हैं—अरे मधुवन! तुम्हें लज्जा नहीं लगती कि अब भी, जब श्यामसुन्दरके विरहानलमें समस्त व्रज झुलस रहा है, तुम हरेभरे बने हो?

मधुबन तुम कस रहत हरे?
बिरह-बियोग स्याम सुंदरके ठाढ़े क्यों न जरे?

श्यामकी प्यारी गौओंने चरना छोड़ दिया है। तोता और मैना चुपचाप मुँह लटकाये उदास बैठे हैं। चारों ओर विरहानल धाँय-धाँय जल रहा और उसमें समस्त व्रज झुलस रहा है। आँसुओंका समुद्र उमड़ पड़ा है तथा आहोंकी उत्तप्त भीषण आँधी चल रही है। इसी क्षुब्ध स्थितिमें जब समस्त व्रजवासी विरहसे व्याकुल हो रहे हैं, गोपियोंके प्राण अब-तब हो रहे हैं—उद्धवजी ब्रह्मज्ञान, अद्वैतवाद और योगकी गठरी लादे गोपियोंको समझाने-बुझाने पहुँचते हैं। प्रेमानल और भी प्रबल हो उठता है और उसमें सब कुछ जलकर केवल सर्वत्र एक श्याम ही रह जाते हैं। इसी विरह-जन्य प्रेमकी कातरताको भक्तप्रवर सूरदासजीने भ्रमर-गीतमें अङ्कित किया है। भ्रमर-गीत सूरदासके काव्यका एक अति सुन्दर अंश है, यह उद्धव-गोपी-संवाद है। मथुरा पहुँचकर श्रीकृष्ण समझ गये कि उनका अब गोकुल लौटना असम्भव है, पर यह भी जानते थे कि व्रजमें माता यशोदा और गोपियाँ उनके लिये कैसी कातर हो रही हैं। उन्हें सान्त्वना देनेके उद्देश्यसे उन्होंने अपने भक्त प्रिय-सुहृद् उद्धवको व्रज भेजा। श्रीकृष्णने उद्धवजीसे यह कह दिया कि तुम व्रजमें पहुँचकर गोपियोंसे कहो कि अब तुम्हें श्रीकृष्णका दर्शन मिलना सम्भव नहीं। अतएव तुमलोग अबसे योगमार्गका अवलम्बन कर निर्गुणरूपमें और निष्कामभावसे उनकी (भगवान्‌की) उपासना करो। यह उपदेश गोपियोंको हृदयग्राही न हुआ। वे श्रीकृष्णको साक्षात् देखना चाहती थीं। निर्गुण उपासनाकी बात सुनकर उन्होंने उसे हँसीमें उड़ा दिया। उद्धवके साथ गोपियोंकी बातचीत अति सरस है। मेरे विचारमें भ्रमर-गीत ही सूरदासकी सबसे मधुर रचना है। गोपियोंकी युक्तियाँ अति मनोहर हैं।

जिस समय उद्धव व्रजमें उपस्थित होकर गोपियोंको उपदेश दे रहे थे, उस समय एक भ्रमर मथुराकी ओरसे उड़कर श्रीराधाके चरणकमलपर आ बैठा। उद्धवकी उक्तियोंके उत्तरमें गोपियोंको जो कुछ कहनेको था उन्होंने वह प्रायः उस भ्रमरको सम्बोधन कर कहा था। उद्धव श्रीकृष्णके सखा थे, और उनकी आकृति तथा वर्ण श्रीकृष्णकी आकृति तथा वर्णके सदृश थे। उनके वसनभूषणमें भी श्रीकृष्णका सादृश्य था। इस कारण गोपियोंने उनके साथ बहुत हास-परिहास किया था। इस भ्रमर-गीतमें सूरदासने अपनी धीर विनोदप्रियताका परिचय दिया है। तदतिरिक्त उन्होंने हास्यरसका आश्रय लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपियोंके मुखसे अद्वैतवादका खण्डन कराया है। गोपियोंने परिहासमें श्रीकृष्णको भी नहीं छोड़ा। गोपियोंकी उक्तियाँ भ्रमरको सम्बोधन कर कही गयी थीं, इस हेतु इन पदोंका नाम है 'भ्रमर-गीत'।

उद्धवका व्रजमें आगमन होते ही गोपियोंने उनसे कहा—

कहो कहाँते आये हौ।
जानति हौं अनुमान मनों तुम, गोकुलनाथ पठाये हौ।
वैसेइ बरन बसन पुनि वैसेइ, तनभूसन सजि लाये हौ॥
सरबसु लै तब संग सिधारे, अब का पर पहिराये हौ।
सुनहु मधुप एकै मन सबको, सो तो वहाँ लै छाये हौ॥
अब यह कौन सयानप ब्रजपर, का कारन उठि धाये हौ।
'सूर' जहाँलौं स्याम गात हैं, जानि भले करि पाये हौ॥

'कहो, कहाँसे आये हो। अनुमानसे जान पड़ता है कि यदुनाथने तुमको भेजा है। वही रंग, वही वसन, देह भी उसी प्रकार भूषणोंसे सज्जित कर लाये हो। तुम हमारा सर्वस्व लेकर चले गये, अब किसपर तुमने लक्ष्य किया है? हे मधुप! सुनो, हम सबका एकमात्र मन है, उसे तो तुमने मथुरा ले जाकर छिपा रक्खा है। अब यह कैसी तुम्हारी चतुराई है? अब व्रजकी सुध क्यों की? जितने काले रंगके मनुष्य हमारे देखनेमें आये हैं, उनका अच्छा ही परिचय मिला है?'

ऊपरके पदका शेषांश श्रीकृष्णको लक्ष्य करके कहा गया है। गोपियोंने कृष्णवर्ण मनुष्योंके रंगके सम्बन्धमें नाना स्थलमें हँसी उड़ायी है। यथा—

बिलग जनि मानहु ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजरकी कोठरि, जे आवहिं ते कारे॥
तुम कारे सुफलक-सुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छबि उपजत, कमल नैन मनिआरे॥
मानहुँ नील माठतें काढ़े, जमुना लेत पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी, 'सूर' स्याम गुन न्यारे॥

'कुछ बुरा न मानना, सखा ऊधो! क्या तुम्हारी मथुरा काजलकी कोठरी ही है कि जो कोई वहाँसे आता है वही काला है? तुम काले हो, अक्रूर काले और यह मधुप भ्रमर काला है। उनमें अधिक शोभा उत्पन्न करते हैं सुहावने कमलनयन (श्रीकृष्ण)। मानो नील रंगसे भरे हुए मटकेसे निकालकर उन्हें यमुनामें धो लिया गया है। इसी हेतु कदाचित् यमुनाजी भी कृष्ण-सलिला हो गयी हों? कालेका गुण ही विलक्षण है।'

कारो नाम रूप पुनि कारो, कारे अँग सखा सब गात।
जो पै भले होत कहुँ कारो, तो कत बदलि सुता लै जात॥

'श्रीकृष्णका नाम काला, रूप काला, उनके सखाओंके सब अंग काले। यदि काला रंग अच्छा ही होता तो वसुदेवजी श्रीकृष्णके साथ यशोदाकी कन्याको क्यों बदलकर ले जाते?'

घरी पहर सबको बिलमावत, जेते आवत कारे।

'जितने काले (मथुरासे) आते हैं, वे घड़ी-पहर, मीठी-मीठी बातें करके सबको बिलमा लेते हैं और अन्तमें धोखा देकर भाग जाते हैं।'

ज्यों कोइल सुत काग जियावत, भाव भगति भोजनहिं खवाय।
कुहुकुहाय आये बसंत ऋतु, अंत मिले कुल अपने जाय॥

'जैसे कौए कोकिलके बच्चोंको पालते हैं। बड़े ही यत्न और ममतासे उनका पालन-पोषण करते हैं, परन्तु जब वसन्त ऋतु आती है तब वे कुहु-ध्वनि करते हुए अपनी जातिमें जाकर मिल जाते हैं।

ऊधो! ऐसो काम न कीजै।
एक रंग कारे तुम दोउ, धोय सेत क्यों कीजै॥

'ऊधो! कदापि ऐसा काम न करो। तुम दोनों रंगमें समान हो, उसे धोकर धौला क्योंकर करोगे?'

व्रजमें पहुँचकर उद्धव गोपियोंसे कहने लगे—

गोपी सुनहु हरि-संदेस।
मातपितुके बंदि छोरे, वासुदेव कुमार।
राज्य दीन्हों उग्रसेनहिं, चमर निज कर ढार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह्यो तुमको ब्रह्म ध्यावौ, छाँड़ि विषै विकार ।
'सूर' पाती दई लिख मोहिं, पढ़ो गोपकुमारि ॥

'हे गोपीगण ! हरिका समाचार सुनो । श्रीकृष्णने, जो वसुदेवके पुत्र हैं, अपने पिता-माताको बन्धनसे मुक्त किया है, और मातामह उग्रसेनको (फिरसे) राज्य देकर स्वयं उनपर चँवर डुला रहे हैं। उन्होंने तुमसे कहा है कि संसारका मोह त्यागकर ब्रह्मका ध्यान करो । उन्होंने पत्र लिखकर मेरे हाथ दिया है। हे गोपकुमारीगण ! तुम सब उसे पढ़ देखो ।'

सुनहु गोपी हरिको संदेस ।
करि समाधि अंतर्गति ध्यावहु, यह उनको उपदेस ॥
वै अबिगति अबिनासी पूरन, सब घट रहै समाइ ।
निगुन ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ ॥
सगुन रूप तजि निर्गुन ध्यावौ, इक चित इक मन लाइ ।
यह उपाव करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ॥
दुसह सँदेश सुनत माधोको, गोपीजन बिलखानी ।
'सूर' बिरहकी कौन चलावै, बूड़त मन बिनु पानी ॥

'गोपियो ! तुम हरिका सँदेशा सुनो। तुम समाधिके द्वारा हृदयमें उनका ध्यान करो, यही उनका उपदेश है । वह अविज्ञात, अविनाशी और घट-घटमें विद्यमान हैं । वेद-पुराणोंमें कहा गया है कि निर्गुण-का ज्ञान हुए बिना मुक्ति नहीं होती । अतएव सगुण-का ज्ञान त्यागकर एकचित्त तथा एकमन हो रज तथा तमोगुणरहित ब्रह्मकी उपासना करो । इस उपायसे तुम्हें विरहसे छुटकारा मिलेगा और तब ब्रह्म प्राप्त होगा । माधवकी यह दुसह वार्ता सुनकर गोपियाँ विलाप करने लगीं । अब विरह-भार-विशिष्ट मन-नौकाको कौन चलावेगा ? दर्शन-वारिके बिना मन-नौका तो सूखी नदीके गर्भमें ही डूबी जा रही है।'

एक गोपीने कहा, 'हे उद्धव ! हमारा मन उन्हींका अनुरागी है, हमें क्यों भुलानेकी चेष्टा करते हो ? श्रीकृष्ण यदि निर्गुण ही हैं, तो—

किन वै गवन कियो सकटनि चढ़ि, सुफलक-सुतके संग ।
किन वै रजक लुटाइ विविध पट, पहिरे अपने अंग ॥
किन हति चाप निदरि गज मारयो, किन वै मल मथि जाने ।
उग्रसेन वसुदेव देवकी, किन वै निगड़ हठि भाने ॥
तू का की है करत प्रशंसा, कौनै घोस पठायो ।
किन मातुल हति लयो जगत-जस, कौन मधुपुरी छायो ॥
माथे मोर मुकुट बन गुंजा, मुख मुरली धुनि बाजै ।
'सूरजदास' जसोदानंदन, गोकुल कहँ न बिराजै ॥

'शकटमें चढ़कर अक्रूरके साथ जो मथुरा गये थे, वह कौन हैं ? धोबीको लूटकर जिन्होंने अपने अङ्गोंपर नाना प्रकारके वस्त्र पहने थे, वह कौन हैं ? जिन्होंने धनुर्भङ्ग किया था और गजको पराजित कर मारा था, वह कौन हैं ? जिन्होंने मल्लोंका प्राणवध किया था, वह कौन हैं ? जिन्होंने वीरत्व प्रदर्शन कर उग्रसेन, वसुदेव तथा देवकीके पैरकी बेड़ियाँ तोड़ी थीं, वह कौन हैं ? तुम किसकी प्रशंसा कर रहे हो ? किसने तुमको व्रजमें भेजा है ? किसने मामाको मारकर जगत्में यश पाया है ? किसने मथुराकी रक्षा की थी । किसके मस्तकपर मयूर-पुच्छका मुकुट है और गलेमें घुँघुचीकी माला है ? किसके मुखसे मुरलीकी ध्वनि बजती है ? क्या यशोदानन्दन कभी गोकुलमें नहीं रहे थे ?'

श्रीकृष्णको ब्रह्म बतानेवाले उद्धवके मुँहको बन्द कर देनेवाले ये करारे उत्तर भी कैसे लाजवाब हैं ? अजी ! यदि कृष्ण निर्गुण और निर्विकल्प हैं तो क्या ये बातें जो उनके सम्बन्धमें हमने स्वयं देखी-सुनी हैं—झूठी हैं ? क्या जिस रूपमें हमने श्रीकृष्णको देखा है, प्यार किया है—वह सब भूल-भुलैया था ?

गोपियोंने कहा—

जोग गौरी ब्रज न बिकैहै ।
वह ब्योपार तिहारो ऊधो, ऐसोई फिर जैहै ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापै लै आये हो मधुकर, ताके उर न समैहै।
दाख छाँड़िकै कटुक निंबोरी, को आपन मुँह खैहै॥
मूरीके पातनके कोयना, को मुकुताहल दैहै।
'सूरदास' प्रभु गुनहिं छाँड़िकै, को निरगुन निरबैहै॥

'योगका धोखा व्रजमें न बिकेगा। उद्धव! तुम्हारा यह सौदा बस बिना बिके ही लौट जायगा। हे मधुकर! जिनके लिये यह लाये हो, उनके हृदयमें इसके लिये स्थान नहीं। दाख छोड़कर कौन स्वेच्छासे निबौली खायेगा? मूलीके पत्तोंके कोयनोंके बदलेमें कौन मुक्ता-फल देगा? सगुणको छोड़कर कौन निर्गुणके द्वारा अपना निर्वाह करेगा?'

राखो यह सब जोग अट-पटो, ऊधो पाइ परौं।
कहँ रसरीति कहाँ तनु सोधन, सुनि-सुनि लाज मरौं॥
चंदन छाँड़ि बिभूति बतावत, यह दुख क्यों न जरौं।
नासा कर गहि जोग सिखावत, बेसरि कहाँ धरौं॥
सगुन सरूप रहत उर अन्तर, निरगुन कहा करौं।
निसिदिन रसना रटत स्याम गुन, का करि जोग मरौं॥
मुद्रा न्यास अंग-अँग भूसन, पतिव्रतते न टरौं।
'सूरदास' यो ही ब्रत मेरे, हरि मिलि नहिं बिछुरौं॥

'उद्धव! हम तुम्हारे पैरों पड़ती हैं, योगकी यह सब उटपटांग बातें छोड़ दो। कहाँ मधुररसका कार्यक्रम और कहाँ देहशुद्धिका विधान—यह सुनकर हम लज्जासे मरी जाती हैं। चन्दन छोड़कर देहपर भस्म लगानेको कहते हो, इस दुःखसे क्यों न जल मरें? हाथसे नाक पकड़कर योग करनेको कहते हो तो बेसर कहाँ रक्खें? हृदयके अन्तर सगुण तथा सरूप रहते निर्गुणसे क्या करना है? जब हमारी जीभ दिन-रात श्यामके गुणोंकी व्याख्या कर रही है तब निर्गुण ब्रह्मका ध्यान कर क्यों मरें? हमारे प्रत्येक अङ्ग-पर आभूषण हैं; मुद्रा तथा न्यासके लिये उन्हें उतारना पड़ेगा; हम पातिव्रतसे विच्युत न हो सकेंगी। यही हमारी प्रतिज्ञा है; जब हरिको हमने (साकाररूपमें) पाया है, तब उनके (नयनाभिराम) रूपको हृदयसे हटा न सकेंगी।'

उलटी रीति तिहारी ऊधो, सुनै सु ऐसी को है।
अलप बयस अबला अहीरि सठ, तिनहिं जोग कत सोहै॥
बूचिहि खुभी आँधरिहि काजर, नकटी पहिरै बेसरि।
मुँड़ली पटिया पारि सँवारै, कोढ़ी अंगहिं केसरि॥
बहिरीसों पति मता करै तौ, तैसोइ उत्तर पावै।
सो गति होइ सबै ताकी जो, ग्वारिनि जोग सिखावै॥
सिखई कहत स्यामकी बतियाँ, तुमको नाहीं दोसु।
राज काज तुमतें न सरैगो, अपनी काया पोसु॥
जेते भूलि सबै मारगमैं, इहाँ आनि कहा कहते।
भली भई सुधि रही 'सूर' तौ, मोह-धार महँ बहते॥

'हे उद्धव! तुम्हारी बतायी रीति उलटी है। उसके अनुसार कौन चल सकती है? हे बहकानेवाले! जो तरुण अवस्थाकी सुकुमारी ग्वालिन है उसके लिये भला कैसे योग शोभा दे सकता है? जो कनकटी है वह कर्णफूल पहनेगी, जो अन्धी है वह काजल लगायेगी, जो नकटी है वह बेसर पहरेगी, जो मुँड़ली है वह माँग निकालकर केस सँवारेगी और जो कोढ़िन है वह अंगोंपर कुङ्कुम लेप करेगी—यह किस प्रकारसे सम्भव हो सकता है? यदि बहिरीके साथ उसका पति प्रेम-सम्भाषण करने लगे तो उसे उत्तर भी वैसा ही मिलता है। जो ग्वालिनको योग सिखाना चाहता है, उसकी भी दशा वैसी ही होती है। तुम्हारा कोई दोष नहीं। तुमने श्यामके पास जैसा सीखा है वैसा ही कहते हो। परन्तु तुमसे यह राज-काज नहीं चलनेका, तुम किसी दूसरे उपायसे अपनी कायाका पोषण करो। तुम रास्तेमें सब भूल गये हो, तुम यहाँ आकर कुछ-का-कुछ कहते हो। अच्छा हुआ कि अभीतक तुम्हें होश है, नहीं तो तुम मोहकी धारामें बह जाते।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमरी गति पति कमलनैन लौं, जोग सिखै ते राँडे।
कहौ मधुप! कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाँडे॥
काकी भूख गयी बयारि भखि, बिना दूध घृत माँड़े।
कहु पटपद! कैसे खैयतु है, हाथिनके सँग गाँड़े॥
जाकी कहूँ थाह नहिं पैये, अगम अपार अगाधै।
गिरिधरलाल छबीले मुखपर, इतै बाँध को बाँधै॥

'हमारी गति तथा हमारे पति तो कमलनयन हैं। योग सीखना तो राँड़ (विधवा) का काम है। (हमारे प्राणपति अजर-अमर हैं, हम कभी विधवा होनेकी ही नहीं।) हे मधुकर! तुम्हीं बताओ, एक म्यानमें दो तलवारें कैसे समा सकती हैं? दूध, घी, रोटी खाये बिना, केवल वायु-भक्षणसे किसकी भूख मिटी है? बताओ हाथीके साथ गैंडा कैसे खा सकता है? जिसकी सीमा ही नहीं मिलती—जो अज्ञेय, अपार तथा अथाह हैं—उन गिरिधरलालके सुन्दर मुखको इतने बन्धनोंके भीतर कौन आबद्ध करना चाहता है?'

हमको हरिकी कथा सुनाउ।
अपनी ज्ञान कथाको ऊधो, मथुरा ही लै जाउ॥
नागरि नारि भली समुझैंगी, तेरो बचन बनाउ।
पा लागौं ऐसी इन बातनि, उनहीं जाइ रिझाउ॥
सुनि पिय सखा स्यामसुंदरके, जो पै जिय सतिभाउ।
तो बारक आतुर इन नैननि, वह मुख आनि दिखाउ॥
जो कोउ कोटि जतन करै मधुकर, बिरहिन और सुभाउ।
तौ सुन 'सूर' मीनको जल बिनु, नाहिंन और उपाउ॥

'हमसे तो हरिकी बातें कहो। हे भ्रमर! यह अपना ज्ञानविषयक व्याख्यान मथुराको ले जाओ। वहाँकी नारियाँ तुम्हारी सजावटी बातें समझ सकेंगी। तुम्हारी इन सब बातोंको दण्डवत् करती हूँ, उन्हींको जाकर इनसे सन्तुष्ट करो। हे श्यामसुन्दरके प्रिय सखा! सुनो, यदि उनके साथ तुम्हारा इतना ही प्रेम है, तो हमारे इन आतुर नयनोंको वह मुख लाकर दिखाओ। हे मधुकर! यदि कोई मनुष्य करोड़ों चेष्टा करे, तो भी विरहिणियोंके स्वभावका परिवर्तन नहीं कर सकता। जलके बिना मछली एक पल भी जी सकती है? ठीक उसी प्रकार गोपियोंके लिये भी अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके बिना एक क्षणका जीवन दूभर है, असह्य है।'

नैननि नंदनंदन ध्यान।
तहाँ लै उपदेस दीजै, जहाँ निर्गुन ज्ञान॥
पानि पल्लव रेख गनि गनि, अवधि बिबिध बिधान।
इतै पर कहि कटुक बचननि, हते जैसे प्रान॥
चंद्र कोटि प्रकास मुख, अवतंस कोटिक भान।
कोटि मन्मथ वारि छबिपर, निरखि दीजत दान॥
भ्रकुटि कोटि कोदंड रुचि, अवलोकननि संधान।
कोटि वारिज वक्र नैन, कटाच्छ कोटिक बान॥
मनि कंठहार, उदार, उर, अतिसै बन्यो निर्मान।
संख चक्र गदा धरे कर, पदुम सुधा निधान॥
स्याम तनु पट पीतकी छबि, करै कौन बखान।
मनहुँ निरतत नील घनमें, तड़ित देती मान॥
रास-रसिक गुपाल मिलि मधु, अधर करती पान।
सूर ऐसे स्याम बिनु को, यहाँ रच्छक आन॥

'हमारे लोचन सदा नन्दनन्दनका ध्यान करते रहते हैं। जहाँके लोग निर्गुणका रहस्य समझ सकते हों, तुम्हारा यह उपदेश वहीं ले जाओ। श्यामने अपनी उँगलियोंकी रेखाओंसे गिन-गिनकर अपने लौटनेका समय नाना प्रकारसे निर्दिष्ट कर दिया था। उस समय तो वह लौटे ही नहीं, तिसपर कठिन सन्देशा भेजकर मानो हमारा प्राणवध कर रहे हैं। श्यामके मुखपर कोटि-कोटि चन्द्रोंकी दीप्ति है और उनके भूषणोंमें कोटि-कोटि सूर्योंकी चमक है। उनकी शोभापर कोटि मन्मथ निछावर किये जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रुकुटिमें कोटि इन्द्रधनुषकी सुन्दरता है। आँखकी चितवनी मानो शरनिक्षेप कर रही है। कोटि पद्मोंके सौन्दर्ययुक्त नयनोंके वङ्किम कटाक्ष मानो कोटि वाण हैं। उनके प्रशस्त वक्षःस्थलपर मणिमय कण्ठहार अनुपम शोभा देता है। करोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करते हुए वह सुधाकी निधि प्रतीत होते हैं। श्याम शरीरपर पीतवर्णके वस्त्रोंकी शोभाका वर्णन कौन कर सकता है? मानो नीलमेघपर लयके साथ बिजली नृत्य कर रही है—मानो वह रास-रसिक गोपालसे मिलकर अधर-सुधा पान कर रही है। ऐसे श्यामके बिना यहाँ हमारा दूसरा कौन रक्षक हो सकता है?'

ऊधो तुम ब्रजकी दसा बिचारो।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोग कथा बिस्तारो॥
जा कारण तुम पठये माधौ, सो सोचो जिय माहीं।
कितोक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं॥
तुम परबीन चतुर कहियत हौ, संतन निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेनको, फिरि फिरि कहा गहत हौ॥
वह मुसुकानि मनोहर चितवन, कैसे उरते टारौं।
जोग जुगति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं॥
जिहि उर कमल नैन जु बसत हैं, तिहिं निरगुन क्यों आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै॥

'उद्धव! तुम पहले व्रजकी दशापर तो विचार करो, पीछे अपनी इस सिद्धि और योगकी बातोंकी व्याख्या करना। जिस उद्देश्यसे माधवने तुम्हें यहाँ भेजा है उसके सम्बन्धमें तुम एक बार अपने मनमें विचार कर देखो। तुम प्रवीण तथा चतुर कहे जाते हो और साधुओंकी संगति करते हो। अतएव विरह और परमार्थमें कितना अन्तर है, क्या तुम नहीं जानते? जलमें डूबते हुए बार-बार फेनका सहारा क्यों लेते हो। (अब हमें नन्दनन्दनके मुखके ध्यानसे ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा)। तुम बार-बार हमें किसका आश्रय लेनेको कहते हो? कैसे हम श्यामकी मधुर मुसकान तथा मनोहर कटाक्षको हृदयसे हटावें। योग, युक्ति तथा श्रेष्ठ रत्नस्वरूप मुक्तिको हम श्यामकी मुरलीपर निछावर करती हैं? जिस हृदयमें कमलनयनका वास है, उसमें निर्गुणका आना कैसे सम्भव है? जिस भजनके द्वारा अन्य किसी वस्तुमें अनुराग उत्पन्न होता हो, उसे हम यमुनामें बहा देती हैं।'

काहेको रोकत मारग सूधो।
सुनहु मधुप निरगुन कंटकमय, राजपंथ क्यों रोंधो?
कै तुम सिखै पठाये कुबिजा, कही स्यामघनजी धौं।
वेद पुरान स्मृति सब ढूँढ़ौ, जुबतिन जोग कहूँ धौं॥
ताको कहा परेखो कीजै, जानत छाँछ न दूधौ।
सूर मूर गयो अक्रूर लै, ब्याज निबेरत ऊधौ॥

'सुनो मधुप! सरल पथ क्यों बन्द करते हो? कण्टकमय निर्गुणके द्वारा, सगुणका प्रशस्त निष्कण्टक राजपथ क्यों रोकते हो? क्या तुमको कुब्जाने सिखा भेजा है, वा श्यामघनने? वेद, पुराण तथा स्मृति-शास्त्र सब खोज देखो, कहीं युवतियोंके लिये भी योग-मार्गकी व्यवस्था है? जो मट्ठा तथा दूधका भेद नहीं जानता उसे विश्वास करनेसे क्या होगा? मूलधन तो ले गया अक्रूर, अब सूद उगाहनेको आये हैं उद्धव। परन्तु यहाँ तो दूसरेके लिये जगह ही नहीं रही'—

नाहिंन रह्यो मनमहँ ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे, आनिये उर और॥
चलत चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदयतें वह स्याम मूरति, छिन न इत उत जात॥
कहत कथा अनेक ऊधो, लोक लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समात॥
स्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

'हमारे मनमें स्थान ही नहीं है। नन्दनन्दन रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम दूसरेको हृदयमें कैसे स्थान दें ? रास्तेमें चलते हुए, दिनमें जागते हुए और रातको सोते हुए स्वप्नमें हम उन्हींको देखती हैं। एक क्षणके लिये भी हमारे हृदयसे श्याममूर्ति इधर-उधर नहीं होती। लोकलाज दिखाकर ऊधो ! तुम बहुत-सी बातें कहते हो। पर क्या करें, हमारा देह प्रेमसे पूर्ण है—घटके भीतर समुद्र नहीं समा सकता। देह जिनका श्याम वर्ण है, मुख जिनका पद्मके सदृश, हास्य जिनका मृदु तथा चाल जिनकी ललित है—उनके ऐसे रूपके लिये ही हमारे नयन प्याससे मर रहे हैं।'

सुनिहै कथा कौन निरगुनकी, रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृनकी ओट दुरावत॥

'तुम निर्गुणके विषयमें जो सब बनावटी बातें कहते हो, कौन उन्हें सुनेगा ? सगुण रूप सुमेरुके समान सामने ही प्रकट हो रहा है, उसे तुम तृणकी ओटमें छिपा रखना चाहते हो ?' [अर्थात् भगवान्‌की सगुण सत्ता चारों ओर लोकलोचनके सामने उद्भासित है, तुम उस ज्वलन्त सत्ताका अस्वीकार कर व्यर्थ एक अनिर्दिष्ट तथा अबोध पक्षका अवलम्बनकर वाग्जाल विस्तार कर रहे हो। यही गोपियोंकी सार युक्ति है।]

योग है जीवात्मा और परमात्माका संयोग। केवल समाधिकी अवस्थामें ही यह संयोग सम्भव है। समाधि है चित्त-वृत्तिका निरोध, अर्थात् विषयसे मनको हटाकर ऐसी अवस्थामें लाना कि वह सम्पूर्णतया बाह्य-ज्ञानशून्य हो जाय। चित्त-वृत्ति-निरोधकी अवस्था प्राप्त करनेके लिये कुछ क्रियाओंकी आवश्यकता है, जिनमें प्रारम्भिक हैं देह-शुद्धि, आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, धारणा इत्यादि। गुण तीन हैं—सत्त्व, रज और तम। जिनमें ये गुण नहीं हैं, वही निर्गुण है। निर्गुण परमात्मा विश्वब्रह्माण्डमें तथा सब जीवोंमें व्याप्त हैं। जो मनुष्य निर्गुण परमात्माके उपासक हैं, वे ज्ञान-मार्गावलम्बी कहे जाते हैं। जो याग-यज्ञादिके द्वारा भगवान्‌की उपासना करते हैं, वे कर्ममार्गावलम्बी हैं। पर कुछ मनुष्य प्रेमके द्वारा भगवान्‌को पाना चाहते हैं। वे भक्तिमार्गावलम्बी हैं। भक्तिमार्गावलम्बी कहते हैं कि सृष्टिके लिये परमात्माको सत्त्व, रज, तम गुणोंका अवलम्बन करना पड़ता है, अर्थात् वह सगुण हो जाते हैं, और अपने आपको दो भागोंमें विभक्त कर लेते हैं—पुरुष तथा प्रकृति। प्रकृति और पुरुष नाना प्रकारसे मिलित होकर इस विश्वमें प्रकट होते हैं—कभी सत्त्वगुण प्रबल होता है, कभी रजोगुण, कभी तमोगुण, कभी सत्त्व तथा रज दोनों, कभी रज तथा तम दोनों इत्यादि। जीवात्मा प्रकृतिके अन्तर्गत है। जीवात्मा और परमात्माके मिलनकी विभिन्न अवस्थाओंका वैष्णवगण श्रीकृष्ण और गोपियोंके विहारके नामसे वर्णन करते हैं।

जीव परमात्मासे विच्छिन्न हो गया है। उसे फिर परमात्मासे मिलनेकी आकांक्षा है। ज्ञानमार्गी लोग सम्पूर्ण मिलन चाहते हैं, जिसे वे मुक्ति कहते हैं। भक्तिमार्गावलम्बीगण अर्थात् वैष्णवगण, मुक्तिके पक्षपाती नहीं हैं। वे भगवान्‌को साकार मानते हैं और निर्गुण ब्रह्म उनको खटकता है। वे परमात्मामें लीन होना नहीं चाहते। अर्थात् अनन्त कालतक भगवान्‌के धाममें रहते हुए श्रीकृष्ण भगवान्‌के दर्शन तथा उनकी सेवा करनेके अभिलाषी हैं। यही है वैष्णवोंका मोक्ष।

सब कोई अन्तमें भगवान्‌से मिलना चाहते हैं। किन्तु मिलन होना सहज नहीं—जन्म-जन्मान्तर-व्यापी साधना आवश्यक है। तबतक जीव विरह-व्यथा अनुभव करता रहता है। अस्तु।

उद्धवजी व्रजमें पहुँचकर गोपियोंसे कहने लगे कि तुम साकार भगवान् (श्रीकृष्ण) की उपासना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ ज्ञानमार्गका अवलम्बनकर समाधिके द्वारा निर्गुण ब्रह्मका ध्यानकर मुक्ति पानेकी चेष्टा करो, क्योंकि ब्रह्मके निर्गुणत्वके ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती।* गोपियोंने इसके उत्तरमें कहा कि सगुण भावसे भी श्रीभगवान् प्राप्त हो सकते हैं। हम भी योग करती हैं—साकार कृष्ण—

हम तो ध्यान धरैं निसि बासर, औरहि नवै न सीस।
हियमें बसत निरंतर हमरे त्रिभुवनपति जगदीस॥

ऊधो, जोग तबहिंतें जान्यो।
जा दिनतें सुफलक-सुतके सँग रथ ब्रजनाथ पलान्यो॥
ता दिनतें सब छोह मोह गयो, सुत-पति हेतु भुलान्यो।
तजि माया संसार तर्क जिय, ब्रज बनिता बूज ठान्यो॥
नैन मूँदि मुख मौन रही धरि, तनु तप तेज सुखान्यो।
नँदनंदन मुरली मुखपर धरि, उहै ध्यान उर आन्यो॥
सोइ रूप जोगी जेहि भूले, जो तुम जोग बखान्यो।
ब्रह्माहू पचि मुए ध्यान करि अंत उनहिं पहिचान्यो॥
कहौ सुयोग कहा लै कीजै, निरगुन ही नहिं जान्यो।
'सूर' उहै निज रूप स्यामको, है मनमाँह समान्यो॥

'योग क्या है, यह बात तभीसे हमारी जानी हुई है जबसे ब्रजनाथ श्रीकृष्णने अक्रूरके साथ जानेके लिये रथ सजाया था। उस दिनसे हमारी सब स्नेह-ममता दूर हो गयी है—हम पति-पुत्रका प्रेम भूल गयी हैं। तभीसे ब्रजकी नारियोंने मनसे संसारकी चिन्ता हटाकर एकनिष्ठतासे मानो संन्यास ले लिया है। (योगमार्गकी प्रणालीके सदृश प्रणाली अपने-आप अनुष्ठित हो रही है।) आँखोंको बन्द करते तथा मुखमें मौन धारण करते हुए हमारी देहको विरहकी आगने सुखा डाला है। हम मुरली-वदन नन्दनन्दनके रूपको हृदयसे ध्यान कर रही हैं—वही रूप जिसे भूलकर योगिगण उस योगमें निमग्न हैं जिसकी प्रशंसा तुम कर रहे हो। किन्तु ब्रह्मा भी निर्गुणका ध्यान करते-करते हार गये थे, तब उन्हें साकार ब्रह्मके दर्शन मिले थे। जब हम निर्गुणका स्वरूप ही नहीं जानतीं तो कहो किसका अवलम्बनकर योग किया जाय। हमारा अन्तस्तल तो श्यामकी रूपमाधुरीसे भरा है।'

तब उद्धवजीकी आँखें खुलीं, वे बोले—

अब अति चकितवंत मन मेरो।
आयो हौं निरगुन उपदेसन, भयो सगुनको चेरो॥
मैं कछु ज्ञान कह्यौ गीताको, तुमहिं न पहरो नेरो।
अति अज्ञान जानि कै अपनो, दूत भयो उनकेरो॥
निज जन जानि इहाँ हरि पठयो, दीनों बोझ घनेरो।
'सूर' मधुप फिरि चले मधुपुरी, बोरि जोगको बेरो॥

'अब मेरा मन अतिशय विस्मित है। मैं यहाँ आया था निर्गुणका उपदेश देनेके लिये, किन्तु अब स्वयं हो गया सगुण-उपासक। मैंने तुम्हारे सामने कुछ गीताके* ज्ञानकी व्याख्या की है जो तुम्हें अच्छा नहीं लगा। मैं अपने-आपको अज्ञानी जानते हुए भी श्रीकृष्णका दूत बनकर आया था, और श्रीकृष्णने भी अपना भक्त जानकर मुझे यहाँ भेजा था, पर मेरे सिरपर बड़ा

* पूरन ब्रह्म ध्यावो, त्रिगुन मिथ्या भेष॥
मैं कहौं सो सत्य मानहु, त्रिगुन डारौ नास।
पंच त्रय गुन सकल देही, जगत ऐसो भास॥
ज्ञान बिनु नर मुक्ति नाहीं, यह विषय संसार।
रूप रेख न नाम कुल गुन, बरन और न सार॥
मातु पितु कोउ नाहिं नारी, जगत मिथ्या लाइ।
'सूर' सुख दुख नाहिं जाके, भजो ताको जाइ॥

* यहाँ सूरदासजीने कदाचित् भ्रम किया है। गीताका उपदेश भगवान्‌ने परिणत जीवनमें अर्जुनको दिया था। हाँ, यह हो सकता है कि गीतोक्त ज्ञानका कुछ उपदेश भगवान्‌ने पहले ही उद्धवको दिया हो। उद्धवजी पहले स्वयं अद्वैतमार्गी ज्ञानी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी बोझ लाद दिया था। अब मैं योगका बेड़ा डुबाकर मथुरा लौटता हूँ।'

गोपियोंको योगमार्गमें ले जाकर निर्गुणकी उपासनामें प्रवृत्त करना असम्भव देखकर उद्धवजी मथुरा लौट गये। पहले ईश्वरकी निर्गुण सत्ता तथा अद्वैतवादमें उनका अटल विश्वास था और अपने पाण्डित्यपर भी अभिमान था। उनका गर्व खर्व करनेके अभिप्रायसे श्रीकृष्णने उन्हें व्रजमें भेजा था। गोपियोंकी भक्तिका परिचय पाकर उनका भी मन विचलित हो गया, और वह ज्ञानमार्गसे भक्तिमार्गके श्रेष्ठत्वका अनुभव करने लगे। वह मथुरा लौटे और श्रीकृष्णके पास जाकर उन्होंने निवेदन किया—

कहाँलौ कहिये ब्रजकी बात।
सुनहु स्याम तुम बिन उन लोगन, जैसे दिवस बिहात॥
गोपी-ग्वाल गाय-गोसुत सब, मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमाहत, अंबुजगन बिनु पात॥
जो कोउ आवत देखि दूरतें, सब पूछति कुसलात।
चलन न देति प्रेम आतुर उर, कर चरनन लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावै, बायस बलिहिं न खात।
'सूरज' स्याम सँदेसनके डर, पथिक न वा मग जात॥

'व्रजकी दशाका वर्णन कहाँतक किया जाय? सुनो श्याम! तुम्हारे बिना वहाँके लोग कैसे समय काट रहे हैं। गोप, गोपी, गाय, बछड़े सभीका मुख म्लान है और देह बलशून्य। वे अत्यन्त कातर हैं, जैसे शिशिरमें बर्फके मारे कमलकी पँखुड़ियाँ। यदि गोपियाँ किसीको दूरसे आते देखती हैं, तो (वह मथुरासे आ रहा है इस अनुमानसे हृदयकी व्याकुलताके कारण) उसे रोकती हैं और उसके चरणोंसे लिपट जाती हैं। कोयल तथा पपीहा भी शान्तिसे वनमें बैठने नहीं पाते, न कौआ अपना खाद्य बलि खाता है। गोपियाँ मथुराका समाचार पूछेंगी, इस डरसे बटोहियोंने उस रास्तेसे जाना छोड़ दिया है।'

माधवजू, मैं उत अति सचु पायो।
अपनो जानि सँदेस ब्याज करि, ब्रजजन मिलन पठायो॥
छमा करौ तो करौं बीनती, जो उत लखि हौं आयो।
श्रीमुख ज्ञान-पंथ जो उचरयो, तिनपै कछु न सुहायो॥
सकल निगम सिद्धांत जनमकर, उन मोहिं सहज सुनायो।
नहिं स्रुति सेष महेस प्रजापति, जो रस गोपिन गायो॥
कटुक कथा लागी मोहिं अपनी, उहि रससिंधु समायो।
उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृषाहि बुझायो॥
तुम्हरी अकथ कथा तुम जानो, हमजन नाहिं बसायो।
'सूर' स्याम सुंदर यह सुनि-सुनि, नैनन नीर बहायो॥

'हे माधव! मैंने वहाँ (व्रजमें) बहुत सुख पाया। तुमने मुझे अपना मित्र समझकर समाचार लेनेके लिये व्रजके लोगोंके पास भेजा था। यदि क्षमा करो तो मैं वहाँ जाकर जो कुछ देख आया हूँ, निवेदन करूँ। श्रीमुखसे ज्ञानमार्गकी जो बातें बतायी गयी थीं, वह उन्हें तिलमात्र भी अच्छी नहीं लगीं। सारा जीवन वेद-चर्चा कर मैं जिस सिद्धान्तपर पहुँचा था, उसके बारेमें उन्होंने सहजहीमें खरी-खोटी सुनायीं। इतना ही नहीं, जिस रसकी उन्होंने व्याख्या की, न तो वह वेदमें है, न शेष, महेश तथा ब्रह्माको उसका पता चलता है। मेरी अपनी बातें ही मुझे बुरी लगीं—वे उनके रस-सिन्धुमें डूब गयीं। मैंने तुमको वहाँ दूसरे प्रकारसे देखा, मैं अपनी सब प्यास वहाँसे बुझा आया हूँ। तुम्हारी अविज्ञेय बातोंको तुम्हीं समझते हो, हम-जैसे लोगोंकी उनकी धारणा करनेकी शक्ति नहीं है। यह सुनकर श्यामसुन्दरके नेत्रोंसे वारि-धारा बहने लगी।'

श्रीकृष्णके मनमें व्रजकी स्मृति जागरूक होकर उन्हें मर्म-पीड़ा देने लगी। व्यथित हृदयसे वह बोले—

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदाबन गोकुल तन आवत, सघन तृननकी छाहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातसमय माता जसुमति, अरु नंद देखि सुख पावत ।
माखन रोटी दह्यो सजायो, अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वालबाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात ।
'सूरदास' धनि धनि ब्रजवासी, जिनसों हँसत ब्रजनाथ ॥

'उद्धव ! मुझसे व्रज भूला नहीं जाता । वृन्दावनसे गोकुलकी ओर आनेमें क्या ही सघन तृणकी छाया है ! प्रातःकालमें उठकर माता यशोमति तथा पिता नन्दको देखकर क्या ही सुख मिलता था ! माता मक्खन, रोटी और सजाव दही लाकर स्नेहके साथ खिलाती थीं । गोपियों तथा गोपबालकोंके साथ खेलनेमें सारा दिन हँसते हुए कट जाता था । सूरदास कहते हैं, धन्य हैं व्रजवासीगण जिनसे मिलकर व्रजनाथ हँसते थे ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तशिरोमणि सूरदासजीने 'भ्रमर-गीत' में प्रेमपरक साकार-उपासनाकी श्रेष्ठता एक बहुत ही विशदरूपमें तथा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंगसे निर्धारित की है । सूरदासके समय ज्ञानमार्गियोंके कुछ सम्प्रदाय भक्तिका तीव्र विरोध करते हुए 'अहं ब्रह्मास्मि' का प्रचार कर रहे थे । बहुतोंने यह देखकर कि भले ही बिना कुछ किये-दिये ब्रह्म हाथ लग रहा है, धड़ल्लेके साथ राम और कृष्णका ही नहीं अपितु समस्त कर्मकाण्ड तथा भक्तिका खण्डन प्रारम्भ कर दिया था । समाजमें पाखण्डका प्रचार बढ़ा, साथ ही जो-न-सो अनधिकारी पुरुष भी आँख मूँदकर आसन मारे ब्रह्म-चिन्तनका दिखौवा ध्यान करने लगा । बाह्य समाधि ही साधनाकी पहली सीढ़ी समझी जाने लगी और लोकधर्मसे पिण्ड छुड़ाकर 'विरक्त' बनना ही परम पुरुषार्थ समझा जाने लगा । ज्ञानके इन दिखौवे उपासकोंको ही लक्ष्यकर गोस्वामी तुलसीदासजीने डाँटा था—

हम लखि, हमहिं, हमार लखि, हम हमारके बीच ।
'तुलसी' अलखहिं का लखै, राजनाम जपु नीच ॥

सूरदासजीने इतने कड़े शब्दोंमें तो इन ज्ञानवादियोंका खण्डन नहीं किया परन्तु बड़े ही नम्र शब्दोंमें उन्हें विस्तारके साथ समझा दिया कि साधनाके क्षेत्रमें मनको कहीं टिकानेकी आवश्यकता है और यह मन शील, शक्ति और सौन्दर्यके परम निधान भगवान् श्रीकृष्णमें ही भलीभाँति जम सकता है । इससे दो बातें होंगी—एक तो मन संसारके विषयोंसे हटता जायगा और दूसरे भगवान्‌के चरणोंमें रमते-रमते अभ्यासद्वारा सर्वत्र श्रीकृष्ण-ही-कृष्ण दीखने लगेंगे । योगका चरम उद्देश्य भी यही है । सर्वत्र सर्वदा ब्रह्मकी अनन्यताका अनुभव करनेकी आवश्यकता है । 'भ्रमर-गीत' भक्तिकी सर्वोत्कृष्टता तथा विरहमें प्रेमातिरेकद्वारा भक्ति-विह्वलताके चित्रणमें विश्व-साहित्यमें अनुपम अनमोल ग्रन्थ है ।

मौतका सन्देश

संत सदा उपदेश बनावत केस सबै सिर श्वेत भये हैं ।
तू ममता अजहूँ नहिं छाँड़त मौतहु आय सँदेश दये हैं ॥
आजु कि काल चलै उठि मूरख तेरेहि देखत केते गये हैं ।
'सुंदर' क्यूँ नहिं राम सँभारत या जगमें कहु कौन रहे हैं ?

—सुन्दरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामसहस्रनाम

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम ।
श्रीराम राम नृपनन्दन राम राम ॥
श्रीराम राम जननन्दन राम राम ।
श्रीराम राम मुनिनन्दन राम राम ॥ १ ॥
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम विबुधाग्रज राम राम ॥
श्रीराम राम भुवनाग्रज राम राम ।
श्रीराम राम निखिलाग्रज राम राम ॥ २ ॥
श्रीराम राम सद्विग्रह राम राम ।
श्रीराम राम चिद्विग्रह राम राम ॥
श्रीराम राम हार्दद्रव राम राम ।
श्रीराम राम बोधद्रव राम राम ॥ ३ ॥
श्रीराम राम तनुनिर्गुण राम राम ।
श्रीराम राम ग्रहनिर्गुण राम राम ॥
श्रीराम राम गुणनिर्गुण राम राम ।
श्रीराम राम कृतनिर्गुण राम राम ॥ ४ ॥
श्रीराम राम सत्यात्मक राम राम ।
श्रीराम राम यज्ञात्मक राम राम ॥
श्रीराम राम धर्मात्मक राम राम ।
श्रीराम राम भक्त्यात्मक राम राम ॥ ५ ॥
श्रीराम राम सर्वेश्वर राम राम ।
श्रीराम राम सर्वोद्धर राम राम ॥
श्रीराम राम सर्वोत्पर राम राम ।
श्रीराम राम सर्वाकर राम राम ॥ ६ ॥
श्रीराम राम धर्माश्रय राम राम ।
श्रीराम राम देवाश्रय राम राम ॥
श्रीराम राम पद्माश्रय राम राम ।
श्रीराम राम विश्वाश्रय राम राम ॥ ७ ॥
श्रीराम राम कर्माश्रय राम राम ।
श्रीराम राम योगाश्रय राम राम ॥
श्रीराम राम भक्ताश्रय राम राम ।
श्रीराम राम तत्त्वाश्रय राम राम ॥ ८ ॥
श्रीराम राम धात्राश्रय राम राम ।
श्रीराम राम रुद्राश्रय राम राम ॥
श्रीराम राम विश्वाश्रय राम राम ।
श्रीराम राम ईशाश्रय राम राम ॥ ९ ॥
श्रीराम राम मायाश्रय राम राम ।
श्रीराम राम जीवाश्रय राम राम ॥
श्रीराम राम मुक्त्याश्रय राम राम ।
श्रीराम राम भक्त्याश्रय राम राम ॥ १० ॥
श्रीराम राम ध्यानाश्रय राम राम ।
श्रीराम राम प्रेमाश्रय राम राम ॥
श्रीराम राम पूर्णाश्रय राम राम ।
श्रीराम राम सर्वाश्रय राम राम ॥ ११ ॥
श्रीराम राम अर्थास्पद राम राम ।
श्रीराम राम धर्मास्पद राम राम ॥
श्रीराम राम कर्मास्पद राम राम ।
श्रीराम राम मोक्षास्पद राम राम ॥ १२ ॥
श्रीराम राम अंतर्वद राम राम ।
श्रीराम राम अंतर्हित राम राम ॥
श्रीराम राम सर्वान्तर राम राम ।
श्रीराम राम बाह्यान्तर राम राम ॥ १३ ॥
श्रीराम राम भवव्यापक राम राम ।
श्रीराम राम जनजापक राम राम ॥
श्रीराम राम जनपालक राम राम ।
श्रीराम राम खलघातक राम राम ॥ १४ ॥
श्रीराम राम दुरितान्तक राम राम ।
श्रीराम राम नरकान्तक राम राम ॥
श्रीराम राम दनुजान्तक राम राम ।
श्रीराम राम निधनान्तक राम राम ॥ १५ ॥
श्रीराम राम दीनोद्धर राम राम ।
श्रीराम राम धर्मोद्धर राम राम ॥
श्रीराम राम वेदोद्धर राम राम ।
श्रीराम राम लोकोद्धर राम राम ॥ १६ ॥
श्रीराम राम विश्वाकर राम राम ।
श्रीराम राम विश्वोद्धर राम राम ॥
श्रीराम राम विश्वेश्वर राम राम ।
श्रीराम राम विश्वम्भर राम राम ॥ १७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम राम अवतारिक राम राम ।
श्रीराम राम भवतारिक राम राम ॥
श्रीराम राम पणधारिक राम राम ।
श्रीराम राम शुभकारिक राम राम ॥ १८ ॥

श्रीराम राम धात्राग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रुद्राग्रज राम राम ॥
श्रीराम राम विश्वाग्रज राम राम ।
श्रीराम राम देवाग्रज राम राम ॥ १९ ॥

श्रीराम राम अतिथिप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम अतिदृक्प्रिय राम राम ॥
श्रीराम राम अतिदुर्गम राम राम ।
श्रीराम राम अतिसौगम राम राम ॥ २० ॥

श्रीराम राम रूपामृत राम राम ।
श्रीराम राम नामामृत राम राम ॥
श्रीराम राम लीलामृत राम राम ।
श्रीराम राम धर्मामृत राम राम ॥ २१ ॥

श्रीराम राम वचनामृत राम राम ।
श्रीराम राम चरितामृत राम राम ॥
श्रीराम राम करुणामृत राम राम ।
श्रीराम राम निखिलामृत राम राम ॥ २२ ॥

श्रीराम राम सुरभूषण राम राम ।
श्रीराम राम नृपभूषण राम राम ॥
श्रीराम राम जनभूषण राम राम ।
श्रीराम राम भवभूषण राम राम ॥ २३ ॥

श्रीराम राम सुकृतार्णव राम राम ।
श्रीराम राम निगमार्णव राम राम ॥
श्रीराम राम करुणार्णव राम राम ।
श्रीराम राम निखिलार्णव राम राम ॥ २४ ॥

श्रीराम राम सुरमण्डन राम राम ।
श्रीराम राम भवमण्डन राम राम ॥
श्रीराम राम नृपमण्डन राम राम ।
श्रीराम राम भवखण्डन राम राम ॥ २५ ॥

श्रीराम राम सुरमङ्गल राम राम ।
श्रीराम राम मुनिमङ्गल राम राम ॥
श्रीराम राम गणमङ्गल राम राम ।
श्रीराम राम भवमङ्गल राम राम ॥ २६ ॥

श्रीराम राम सुररञ्जन राम राम ।
श्रीराम राम जनरञ्जन राम राम ॥
श्रीराम राम मुनिरञ्जन राम राम ।
श्रीराम राम भवभञ्जन राम राम ॥ २७ ॥

श्रीराम राम सत्याकर राम राम ।
श्रीराम राम धर्माकर राम राम ॥
श्रीराम राम शान्त्याकर राम राम ।
श्रीराम राम शोभाकर राम राम ॥ २८ ॥

श्रीराम राम तनुमङ्गल राम राम ।
श्रीराम राम कृतमङ्गल राम राम ॥
श्रीराम राम गृहमङ्गल राम राम ।
श्रीराम राम जनमङ्गल राम राम ॥ २९ ॥

श्रीराम राम सुमुनिप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम सुकविप्रिय राम राम ॥
श्रीराम राम करुणाप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम कमलाप्रिय राम राम ॥ ३० ॥

श्रीराम राम ज्ञानास्पद राम राम ।
श्रीराम राम ध्यानास्पद राम राम ॥
श्रीराम राम भक्त्यास्पद राम राम ।
श्रीराम राम प्रेमास्पद राम राम ॥ ३१ ॥

श्रीराम राम शोभास्पद राम राम ।
श्रीराम राम भोगास्पद राम राम ॥
श्रीराम राम लीलास्पद राम राम ।
श्रीराम राम भावास्पद राम राम ॥ ३२ ॥

श्रीराम राम सुजनप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम रसिकप्रिय राम राम ॥
श्रीराम राम रसिकेश्वर राम राम ।
श्रीराम राम परमेश्वर राम राम ॥ ३३ ॥

श्रीराम राम रससुन्दर राम राम ।
श्रीराम राम रसमन्दिर राम राम ॥
श्रीराम राम रसविग्रह राम राम ।
श्रीराम राम रसनिग्रह राम राम ॥ ३४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम राम रसपावन राम राम ।
श्रीराम राम रसभावन राम राम ॥
श्रीराम राम रसधारण राम राम ।
श्रीराम राम रसकारण राम राम ॥ ३५ ॥
श्रीराम राम रसवर्धण राम राम ।
श्रीराम राम रसकर्षण राम राम ॥
श्रीराम राम रसरञ्जन राम राम ।
श्रीराम राम रसभञ्जन राम राम ॥ ३६ ॥
श्रीराम राम रससागर राम राम ।
श्रीराम राम रसनागर राम राम ॥
श्रीराम राम रसनायक राम राम ।
श्रीराम राम रसदायक राम राम ॥ ३७ ॥
श्रीराम राम सुखसागर राम राम ।
श्रीराम राम गुणसागर राम राम ॥
श्रीराम राम रुचिसागर राम राम ।
श्रीराम राम छबिसागर राम राम ॥ ३८ ॥
श्रीराम राम शोभाकर राम राम ।
श्रीराम राम शोभापर राम राम ॥
श्रीराम राम शोभावर राम राम ।
श्रीराम राम शोभाधर राम राम ॥ ३९ ॥
श्रीराम राम ऋषिरक्षक राम राम ।
श्रीराम राम गुणदक्षक राम राम ॥
श्रीराम राम मखकारक राम राम ।
श्रीराम राम जनतारक राम राम ॥ ४० ॥
श्रीराम राम मिथिलाप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम जनकप्रिय राम राम ॥
श्रीराम राम धृतकार्मुक राम राम ।
श्रीराम राम जितभार्गव राम राम ॥ ४१ ॥
श्रीराम राम लोकप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम सीताप्रिय राम राम ॥
श्रीराम राम लीलाप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम सौख्यप्रिय राम राम ॥ ४२ ॥
श्रीराम राम नृपवाग्धृत राम राम ।
श्रीराम राम सहलक्ष्मण राम राम ॥
श्रीराम राम गुरुमित्रक राम राम ।
श्रीराम राम सकलत्रक राम राम ॥ ४३ ॥
श्रीराम राम गंगागत राम राम ।
श्रीराम राम वन्यास्त्रक् राम राम ॥
श्रीराम राम चित्रादिव राम राम ।
श्रीराम राम नानादिव राम राम ॥ ४४ ॥
श्रीराम राम गोदाप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम गृध्रप्रिय राम राम ॥
श्रीराम राम हृद्बोधक राम राम ।
श्रीराम राम धैर्यधृत राम राम ॥ ४५ ॥
श्रीराम राम हतराक्षस राम राम ।
श्रीराम राम हतदूषण राम राम ॥
श्रीराम राम शबरीप्रिय राम राम ।
श्रीराम राम वानरप्रिय राम राम ॥ ४६ ॥
श्रीराम राम अनुजार्चित राम राम ।
श्रीराम राम हनुमद्युत राम राम ॥
श्रीराम राम सविभीषण राम राम ।
श्रीराम राम हतरावण राम राम ॥ ४७ ॥
श्रीराम राम सीताधृत राम राम ।
श्रीराम राम देवस्तुत राम राम ॥
श्रीराम राम यानस्थित राम राम ।
श्रीराम राम सर्वाहित राम राम ॥ ४८ ॥
श्रीराम राम वानरयुत राम राम ।
श्रीराम राम भरतस्वज राम राम ॥
श्रीराम राम निखिलस्वज राम राम ।
श्रीराम राम अखिलोत्सव राम राम ॥ ४९ ॥
श्रीराम राम शरणप्रद राम राम ।
श्रीराम राम परमार्थद राम राम ॥
श्रीराम राम अखिलार्थद राम राम ।
श्रीराम राम परभक्तिद राम राम ॥ ५० ॥
श्रीराम राम परमुक्तिद राम राम ।
श्रीराम राम पररूपक राम राम ॥
श्रीराम राम परतत्त्वक राम राम ।
श्रीराम राम परतःपर राम राम ॥ ५१ ॥

(श्रीरामचरणाचार्यजी लिखित ९५० वर्ष प्राचीन प्रतिसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-वाटिका

परमात्मदेवको जाननेसे सब बन्धनोंका नाश हो जाता है। क्लेशोंके क्षीण हो जानेसे जन्म-मृत्युका अभाव हो जाता है। इसका ध्यान करनेसे तीनों देहोंका भेदन हो जाता है और केवल आप्तकाम विश्वके ऐश्वर्यको प्राप्त होता है।

—उपनिषद्

* * *

दुःखसे जिसका मन घबराता नहीं, जिसको सुखकी चाह नहीं है, जो राग, भय और क्रोधसे रहित है, वह स्थितप्रज्ञ मुनि है।

—श्रीमद्भगवद्गीता

* * *

रक्त, मांस और हड्डियोंसे बने हुए यन्त्ररूप बहुतेरे मनुष्य केवल खा-पीकर जगत्के पदार्थोंको बिगाड़ रहे हैं, उनमें बुद्धिमान् मनुष्य बहुत ही दुर्लभ है। जो मोहके वश हुए बार-बार जन्म, मृत्यु और जरारूप दुःखोंवाले संसारमें ही पड़ा करते हैं, कुछ भी विचार नहीं करते, उन्हें पशु ही समझना चाहिये।

—योगवासिष्ठ

* * *

जो अपने लिये या किसी दूसरेके लिये पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहते, और न अधर्मसे ही अपनी उन्नति चाहते हैं वे ही पुरुष सदाचारी, प्रज्ञावान् और धार्मिक हैं।

—भगवान् बुद्ध

* * *

गौ अपने गलेमें पड़ी हुई मालाके रहने या गिरनेकी तरफ जिस प्रकार कुछ भी ध्यान नहीं देती इसी प्रकार प्रारब्धकी डोरीमें पिरोया हुआ यह शरीर रहे या जाय, जिसके चित्तकी वृत्ति आनन्दरूप ब्रह्ममें लीन हो गयी है, वह पुरुष फिर उसकी ओर देखता ही नहीं।

—श्रीशङ्कराचार्य

* * *

भगवान्के रूपका ध्यान करो, भगवन्नामोंका संकीर्तन करो, भगवान्के गुणानुवादका गायन करो, भगवान्की लीलाओंका परस्पर कथन और श्रवण करो।

—श्रीचैतन्य महाप्रभु

* * *

हे भगवन्! मेरे जीवनके शेष दिन किसी पवित्र वनमें 'शिव, शिव, शिव,' जपते हुए बीतें। साँप और फूलोंका हार, बलवान् वैरी और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थरकी शिला, रत्न और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनी—इन सबमें मेरी समदृष्टि हो जाय।

—भर्तृहरि

* * *

भगवान् श्रीराम जिसकी ओर कृपाकी नज़रसे देखते हैं उसके लिये जहर अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समुद्र गौका खुर डूबे इतना जल हो जाता है, अग्नि शीतल हो जाती है और भारी सुमेरु पहाड़ रजके समान हो जाता है।

—तुलसीदासजी

* * *

प्रेम-प्रेम तो सब कहते हैं परन्तु प्रेमको कोई नहीं पहचानता, जिसमें आठों पहर भीगा रहे, वही प्रेम है। लौ तभी लगी समझो जब कि वह कभी न छूटे, जिन्दगी-भर लौ लगी रहे और मरनेपर प्यारेमें ही समा जाय।

—कबीरदासजी

* * *

प्राणी जबसे जन्म लेता है तभीसे उसकी उम्र घटने लगती है; बचपन, जवानी, बुढ़ापा यों देखते-देखते जिस तरह तेल घट जानेसे दीपक बुझ जाता है उसी तरह उसका जीवन बुझ जाता है अर्थात् वह मर जाता है।

—सुन्दरदासजी

* * *

ईर्ष्या, लोभ, क्रोध और अप्रिय किंवा कटुवचन—इनसे सदा अलग रहो; धर्मप्राप्तिका यही मार्ग है।

—तिरुवल्लुवर

* * *

तिनकेके समान हलका बननेसे, वृक्षके समान सहिष्णु बननेसे, मान छोड़कर दूसरोंको मान देनेसे, इष्टकी महिमा समझनेसे तथा अभिमानका त्याग करनेसे साधना शीघ्र सफल होती है। इस प्रकारकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सत्सङ्ग, धर्मग्रन्थ और भक्तचरित्रका अभ्यास, गुरु-आज्ञाका पालन तथा पिता-माता आदि गुरुजनोंकी तथा भक्तोंकी सेवा-पूजा करना बहुत आवश्यक है।

—विजयकृष्ण गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप गयी

गीता-डायरी सन् १९३५ की

छप गयी

मूल्य साधारण जिल्द ।), कपड़ेकी जिल्द ।-)

पिछले कई वर्षोंमें डायरीके दो-दो, तीन-तीन संस्करण निकालने पड़े और इसपर भी अन्तमें कई सज्जनोंको निराश होना पड़ा, यही इसकी उपयोगिताका सबसे बड़ा प्रमाण है। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला तिथियोंके साथ-साथ संक्षेपसे त्योहार भी छापे जाते हैं। गीता १८ अध्याय सम्पूर्ण तो रहती ही है। आरम्भके ३२ पेजोंमें अति उपयोगी विषय रहते हैं, जिनमें इस बार कुछ परिवर्तन किया गया है। अन्तमें याददाश्तके सादे पन्ने हैं। सबके लिये एक उपयोगी सुन्दर डायरी है। अनेक विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने इसकी जीसे प्रशंसा की है। केवल १५००० छापी गयी है, जिन्हें आवश्यकता हो, आर्डर देनेकी शीघ्रता करें।

कल्याणके ग्राहकोंको सुविधा

६ सजिल्द डायरियोंके दाम १।।।=), पैकिंग)।।, डाकखर्च ।।=) कुल रु० २।।-)।। होते हैं, जिनके बदले २=) लिये जायँगे। ७ अजिल्द डायरियोंके दाम १।।।), पै० -), डाकखर्च ।।=) कुल रु० २।।) होते हैं, जिनके बदले २-) लिये जायँगे। यह रियायत मनीआर्डरसे पेशगी रुपये भेजनेवालोंके साथ ही होगी। रियायती मूल्यमें वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

एक अजिल्द डायरीके लिये रजिस्ट्री और डाकखर्चसहित ।।-) और एक सजिल्दके लिये ।।=) तथा दो अजिल्दके लिये ।।।=) और दो सजिल्दके लिये १-) भेजना चाहिये। बिना रजिस्ट्री पैकेट खो जानेका डर है। १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

विशेष सूचना—मँगवानेसे पहले अपने बुकसेलरोंसे पूछिये। थोक मँगानेवाले बुकसेलर हमारी पुस्तकें प्रायः पुस्तकपर छपे हुए दामोंसे बेचा करते हैं। इसमें आपको और भी सुभीता होगा। भारी डाकखर्चकी बचत होगी, जो ऊपरी सुविधासे भी अधिक लाभ होगा, क्योंकि हमारी पुस्तकोंका मूल्य कम और वजन अधिक होता है। इससे उनपर डाकखर्च अधिक पड़ता है।

बुकसेलरोंको सूचना

अजिल्द-सजिल्द कम-से-कम २५० डायरियाँ एक साथ लेनेवालोंका नाम, पता डायरीपर बिना किसी खर्चके छाप दिया जायगा। इससे उनको बेचनेमें मदद मिलेगी। कमीशन तो मिलेगा ही। बुकसेलर लोग कृपाकर शीघ्रता करें।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) के ग्राहक बनाइये

'कल्याण'का अंग्रेजी संस्करण गत जनवरी मासमें 'कल्याण-कल्पतरु' के नामसे निकलता है। इसके अब-तकके सभी अङ्कोंकी और खास करके उसके विशेषाङ्क 'God Number' की देशी-विदेशी सभी विद्वानोंने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की है और हृदयसे उसकी उन्नति चाही है। इसका वार्षिक चन्दा विशेषाङ्कसहित केवल ४।) है।

कल्याणके प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध है कि वे चेष्टा करके 'कल्याण-कल्पतरु' के ग्राहक बढ़ावें और अंग्रेजी-भाषा जाननेवाले लोगोंमें सदाचार और भगवत्-प्रेमके प्रचारमें सहायक बनें। तीन ग्राहक बना देनेवाले सज्जनों-को प्रति ग्राहक ।) आठ आना अर्थात् कुल १।) कमीशन दिया जायगा।

मैनेजर 'कल्याण' गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीशक्ति-अंक

बहुत दिनोंसे—महीनोंसे—तैयारी करते-करते 'श्रीशक्ति-अंक'की छपाईका काम प्रारम्भ किया गया। पिछले सब वर्षोंसे यह विशेषांक बड़ा होने तथा तिरंगे चित्रोंकी संख्यामें तो बहुत अधिक वृद्धि हो जानेके कारण काम बहुत बढ़ गया जो प्रेसकी कई अन्य अड़चनोंके कारण समयपर पूरा होनेकी बात तो दूर रही विशेषांक प्रकाशित हो जानेके एक महीने बादतक भी चलता रहा। कारण, कई चित्र एक बार थोड़े-थोड़े छाप दिये थे जो पीछे भी थोड़े-थोड़े ही जल्दी-जल्दी छापकर देने पड़ते रहे। इसके सिवा और भी कई अड़चनें आती रहीं और 'शक्ति-अंक' तैयार होकर ग्राहकोंकी सेवामें जल्दी पहुँचनेमें बाधा पड़ती रही।

क्षमा-प्रार्थना

पुराने और खास करके नये सम्मान्य ग्राहकोंने वार्षिक मूल्य पहलेसे भेज दिया था, वे एवं अन्य प्रेमी पाठकगण बड़ी उत्सुकतासे इसकी राह देखते रहे। कितने ही देरीके लिये प्रेमभरे उलहने भी देते रहे और उनका ऐसा करना उचित ही था पर हमें अपनी असमर्थताको देखकर उनसे नम्रतापूर्वक क्षमा ही चाहनी पड़ती थी एवं पड़ रही है। अभीतक भी सब प्रेमियोंकी सेवामें हम 'श्रीशक्ति-अंक' नहीं पहुँचा सके। यह अंक जितने छपे हैं शायद जल्दी समाप्त हो जायँ। आगे दुबारा छपने-न-छपनेकी बात भी कही नहीं जा सकती। अतः—

ग्राहक बननेवाले जल्दी करें

परमात्माकी कृपासे धार्मिक-साहित्यके और हिन्दीके लिये प्रचारका अच्छा अवसर मिला है। आपने कल्याणको अपनाया है यह हमारे लिये प्रसन्नताकी बात है।

दो-दो नये ग्राहक बना दें

अबतक जिन प्रेमी सज्जनोंने 'कल्याण'के ग्राहक बढ़ाकर कल्याणकी सेवा की है उनके हम कृतज्ञ हैं। उनकी सेवामें 'कल्याण' भी नवीन रूप और बढ़े हुए आकारमें उपस्थित होता रहा है। अर्थात् आपका ग्राहक बनानेका उद्योग एक प्रकार आपके लिये ही होता है। आपको और आपके मित्रोंको अच्छी सामग्री मिलती है। धार्मिक विचारोंका तो प्रचार होता ही है। जो सज्जन थोड़ा-सा प्रयत्न करके दो-दो, एक-एक नये ग्राहक बनायेंगे उनकी विशेष कृपा होगी।

निवेदक—
व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ श्रीहरिः ॐ

क्षमा-प्रार्थना

आश्विन और कार्तिकके अंक जानेमें देरी

वी० पी० के रुपये देरसे आनेके कारण आश्विनका अंक समयपर छपा हुआ रहनेपर भी भेजा नहीं जा सका, इसीसे कार्तिकके अंकमें भी देर हो गयी। पाठकगण इस अनिवार्य देरीके लिये कृपा करके क्षमा करें।

—मैनेजर

कल्याण कार्तिक सं० १९९१ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–निर्गुण ज्योतिका सगुण दर्शन [कविता] (श्रीनागरीदासजी) ७८५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ... ७८६
३–भगवान्‌के लिये काम कैसे किया जाय ? (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)... ... ७८९
४–कल्याण ('शिव') ७९१
५–स्वागत [कविता] (श्रीसत्याचरणजी 'सत्य' विशारद, एम० ए०, बी० टी०) ... ७९३
६–उपनिषद्-गाथा (छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर) ७९४
७–सत्पुरुषोंके लक्षण (महाभारत शान्तिपर्व) ... ७९९
८–श्रीरामाष्टक [कविता] (श्रीरामपदाम्बुजानुरागी 'बेकल') ... ८००
९–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ८०१
१०–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ... ८०७
११–हृदयकी प्यास (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) ८११
१२–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति(साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न) ८१४
१३–विश्वेश-शरण (बहिन श्रीजयदेवीजी) ... ८२०
१४–अभिलाषा [कविता] (श्रीव्रजभूषणजी गोस्वामी) ८२४
१५–कर्तव्य (श्रीनोखेलालजी शर्मा बी० ए०, काव्यतीर्थ) ८२५
१६–ईश्वरकी दीनबन्धुता [कविता] (श्रीरहीमजी) ८२५
१७–तन्त्र (पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल) ... ८२६
१८–कुटुम्बप्रेम, विश्वप्रेम और ईश्वरप्रेम (श्रीमती सावित्रीदेवीजी अग्निहोत्री) ... ८२९
१९–राम [कविता] (श्रीब्रह्मदत्तजी दीक्षित 'ललाम' बी० ए०, सी० टी०) ८३१
२०–विष्णुप्रियाजीको संन्यासी स्वामीके दर्शन (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) ८३२
२१–हिन्दी-साहित्यमें उपासनाका स्वरूप (श्री डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एम०ए०, डी०लिट्०) ८३६
२२–मांसाहारसे पाप (साधु तिरुवल्लुवर) ... ८४३
२३–भक्त-गाथा ८४४
२४–शैव और वैष्णवोंके झगड़ोंका मूल आधार क्या है ? (पं० श्रीमहेशानन्दजी ओझा न्यायसांख्य-योगवेदान्तशास्त्री) ८५२
२५–श्रीश्रीराधातत्त्व (श्रीशङ्कर दण्डिस्वामीजी शङ्करानन्दतीर्थजी) ८५६
२६–पतिव्रता-लक्षण [कविता] (श्रीपतिदासीजी) ८६३
२७–सन्तका स्वभाव [कविता] (महात्मा जय-गौरीशङ्कर सीताराम) ८६३
२८–विवेक-वाटिका ८६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखिये, इन बारह महीनोंमें कौन-कौन-सी पुस्तकें नयी निकली हैं-

श्रीश्रीविष्णुपुराण

मूल और हिन्दी-अनुवादसहित

(अनुवादक--श्रीमुनिलालजी)

सुन्दर ८ चित्र, साइज २२×२९, ८ पेजी कागज चिकना, पृष्ठ-संख्या ५४८, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द २।॥) मात्र। छपाई बहुत सुन्दर और साफ, ढङ्ग हमारे यहाँकी श्रीअध्यात्मरामायणवाला अर्थात् एक तरफ मूल श्लोक और उनके सामने हिन्दी-अनुवाद। पढ़नेमें बड़ी सुगमता, टाइप सुन्दर और बड़े।

यह ग्रन्थ महामुनि वेदव्यासजी लिखित अष्टादश पुराणोंमेंसे है। इसमें सविस्तार श्रीविष्णुभगवान्‌की लीलाओंका वर्णन है। सृष्टिका उत्पत्तिक्रम, देवता-दैत्योंका युद्ध, समुद्रमन्थन, ध्रुवचरित्र, प्रह्लादचरित्र इत्यादिके साथ ही भूगोलविद्या, सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था, कालचक्र, ज्योतिश्चक्र, शिशुमारचक्र इत्यादि विषयोंका भी प्रसङ्गानुसार बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन है। एक प्रति अवश्य मँगाकर लाभ उठाइये।

सचित्र, संक्षिप्त भक्तचरितमालाके

नये-नये पुष्प

(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा सम्पादित)

आदर्श भक्त

सात चित्र, पृष्ठ-सं० ११२, मू० केवल ।-)

राजा शिवि, राजा रन्तिदेव, राजा अम्बरीष, भीष्मपितामह, पाण्डव अर्जुन, विप्र सुदामा और चक्रिक भीलकी अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर सात कथाएँ, लड़के-लड़की, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने योग्य—खूब प्रचार करने योग्य पुस्तक है।

भक्त-चन्द्रिका

रंगीन ७ चित्र, पृष्ठ-संख्या ९६, मूल्य ।-)

इसमें सखूबाई, श्रीज्योतिपन्त, भक्त विट्ठलदासजी, दीनबन्धुदास, भक्त नारायणदास और बन्धु महान्तिकी सुन्दर भक्तिभावपूर्ण कथाएँ हैं। ये कथाएँ बहुत ही हृदयग्राही और सबके पढ़ने योग्य हैं।

भक्त-सप्तरत्न

सात रंगीन चित्र, पृष्ठ १०६, मूल्य ।-)

इसमें श्रीदामाजी पन्त, मणिदास माली, कूबा कुम्हार, परमेष्ठी दर्जी, रघु केवट, रामदास चमार और यवन भक्त सालबेगकी आनन्ददायक गाथाएँ हैं। इनके मधुर और पवित्र प्रेमरसको पानकर अपने तन, मन और वचनको प्रफुल्लित करनेकी कृपा करें। बहुत ही लाभदायक पुस्तक है। भगवान्‌की भक्ति करके छोटे भी बड़े, नीचे भी ऊँचे, माननीय और पूजनीय किस प्रकार बन जाते हैं यह इस पुस्तकमें पढ़िये।

भक्त-कुसुम

तिरंगे सुन्दर ६ चित्र, पृष्ठ ९१, मू० ।-)

भक्त जगन्नाथदास, हिम्मतदास, बालीग्रामदास, भक्त दक्षिणी तुलसीदास और हरिनारायणदासजीकी सुन्दर-सुन्दर प्रेमपूर्ण वार्ताओंका यह संग्रह पढ़कर सबको आनन्द होगा। भगवान्‌की भक्तिका कितना प्रभाव है; भगवान् भक्तकी मनचाही बात किस प्रकार पूर्णकर उनको सुख पहुँचाते हैं यह पढ़कर सुखी होइये।

प्रेमी भक्त

एण्टिक कागज, पृष्ठ १०३, चित्र रंगीन ३, दोरंगा १, सादा ३, सुन्दर टाइटल, अच्छी छपाई, मूल्य ।-) पाँच आनामात्र।

इसमें भक्त बिल्वमंगल, भक्त जयदेव, श्रीरूप-सनातन, भक्त यवन हरिदास, भक्त रघुनाथदासकी आदर्श प्रेम और आनन्दभरी कथाएँ हैं। अनेक सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे पुस्तककी शोभा और भी बढ़ गयी है। यह पुस्तक सबके पढ़ने योग्य और मनन करने योग्य है।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ

इसमें साध्वी रानी एलिज़ाबेथ, साध्वी कैथेरिन, साध्वी गेयों और साध्वी लुइसाकी जीवनियाँ हैं। पृष्ठ सं० ९२, तीन चित्र, मूल्य ।)

व्रजकी झाँकी

(ले०—गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी)

चित्र-संख्या ५०, कागज चिकना आइवेरी, कुल पृष्ठ ९०, मूल्य ।) मात्र ।

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि श्रीव्रजके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानोंका इसमें वर्णन है। एक ही सालमें दूसरा संस्करण छापना पड़ा यही इसकी विशेषताका बड़ा प्रमाण है।

श्रीबदरी-केदारकी झाँकी

(लेखक—श्रीमहावीरप्रसादजी मालवीय वैद्य "वीर")

इसमें हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, व्यासघाट, देवप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी, त्रियुगीनारायण, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, ऊखीमठ, तुङ्गनाथ, गरुडगंगा, जोशीमठ, विष्णुप्रयाग, बदरीनाथ, नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग, आदिबदरी, यमुनोत्री, गङ्गोत्री इत्यादि उत्तराखण्डके तीर्थोंका सानुभव वर्णन है।

यात्रामें होनेवाली कठिनाइयाँ, यात्रामें आवश्यक वस्तुएँ, चट्टियोंकी संक्षिप्त सूची, प्राचीन स्थानोंका ऐतिहासिक वर्णन, प्रधान-प्रधान स्थानोंका अन्तर इत्यादि सामग्रियोंसे पुस्तक यात्रियोंके लिये बहुत उपयोगी हो गयी है।

१ रंगीन, ४ सादे चित्र, उत्तराखण्डका नकशा, पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य ।) मात्र ।

श्रीवेणीमाधवदासविरचित

मूल गोसाईं-चरित

(गोस्वामी तुलसीदासजीका जीवन-चरित)

श्रीगोसाईंजी महाराजके सम्बन्धमें कुछ भी लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। हिन्दी-संसारमें ऐसा कौन होगा जो उनसे अपरिचित हो। यह जीवन-चरित पद्यमें उन्हींके शिष्य श्रीवेणीमाधवदासजीद्वारा विरचित है और बहुत प्रामाणिक माना जाता है।

३६ पृष्ठ, श्रीगोसाईंजीका चित्र, मूल्य केवल -)। सवा आना।

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ३)

(सचित्र)

पृष्ठ ३८४, चित्र ११ सम्पूर्ण रंगीन, मू० १) सजिल्द १।), छपाई सुन्दर, कागज एण्टिक।

त्याग, वैराग्य और प्रेमके समुद्र श्रीचैतन्यदेवकी जीवनी भक्तोंको आनन्द देनेवाली है। गौरहरिकी संन्यास-दीक्षा, पुरी-गमन, श्रीजगन्नाथजीके दर्शन, आचार्य सार्वभौमसे भेंट, दक्षिणयात्रा, कुष्ठी-उद्धार, दक्षिणके तीर्थोंका भ्रमण, तीर्थरामको प्रेमदान, वेश्या-उद्धार, डाकूका उद्धार, नीलाचलमें पुनरागमन, भक्तोंका अपूर्व सम्मिलन, रथ-यात्रा, महाराज प्रतापरुद्रको प्रेमदान, अमोघ-उद्धार, नित्यानन्दका नामवितरण आदि मनोहारी लीलाएँ इस खण्डमें वर्णित हैं। पढ़कर आनन्द लाभ कीजिये।

चौथा खण्ड प्रायः छप गया है। हिन्दीमें श्रीमहाप्रभुकी इतनी बड़ी जीवनी अभीतक कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुई। महाप्रभुकी लोकपावनी अपूर्व लीलाओंका अधिक क्या परिचय दिया जाय? एक बार पढ़नेसे ही पता लगेगा।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन-संग्रह पाँचवाँ भाग

(पत्र-पुष्प)

श्रीविष्णुभगवान् और श्रीकृष्णभगवान्‌के २ रंगीन चित्र, पृष्ठ १६०, चिकना कागज, मू० =) मात्र

यह श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके समय-समयपर बनाये भजन एवं कविताओंका संग्रह है। भावमय धार्मिक भजन आदिके द्वारा वृत्तियाँ सरलतासे भगवत्-चरणोंमें लगती हैं। यह सभीके पढ़ने योग्य है।

The Immanence of God.

By

Pandit Madan Mohan Malaviya.

Price 2 annas.

The above is a small tract of 48 pages printed on thick paper, contains beautiful ideas on the greatness and all-pervasiveness of God, presented in a simple lucid and homely style which is so characteristic of the revered author. The booklet is a masterly exposition of the Hindu conception of God, based on the Vedas, the Smṛtis and the Purānas and deals with the subject in all its bearings fully yet succinctly. It breathes throughout a spirit of unique tolerance and broadmindedness which is as notable feature of Sanātana Dharma and distinguished it from all the other religion of the world and has a stamp of the author's own personality imprinted on it. The book should reach the hands of all who are interested in the broadcasting of theistic ideas and the glorification of God.

गीता-डायरी सन् १९३५ की

केवल १५००० छपी है। लेनेवाले सज्जन जल्दी मँगवा लें। समाप्त हो जानेपर फिर छपेगी या नहीं यह अभी कहा नहीं जा सकता। इस डायरीमें एक पन्थ दो काज होते हैं। मू० ।) स० ।-)

कल्याणके ग्राहकोंको विशेष सुविधा दी जाती है।

(विवरण 'आश्विन' के टाइटलके तीसरे पेजमें देखिये)

कल्याण-भावना

(कविता)

(ले०—श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या)

इस नन्हीं-सी कवितामय पुस्तकका मूल्य)। है। भक्ति-भावपूर्ण पठनीय कविता है।

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर।

Subscribe

The Illustrated Monthly

The Kalyana-Kalpataru.

(English Edition of the 'Kalyan')

Editor—C. L. Goswami, M. A., Sastri.

Controlling Editor-Sjt. Hanumanprasad Poddar.

Annual subscription including Special issue the God-Number Rs 4/8, single copy God-Number Rs 2/8. Ordinary Number as 5.

As. -/8/- per subscriber will be paid to convassers securing at least three subscribers at a time.

The Manager,
The Kalyana-Kalpataru,
Gorakhpur.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

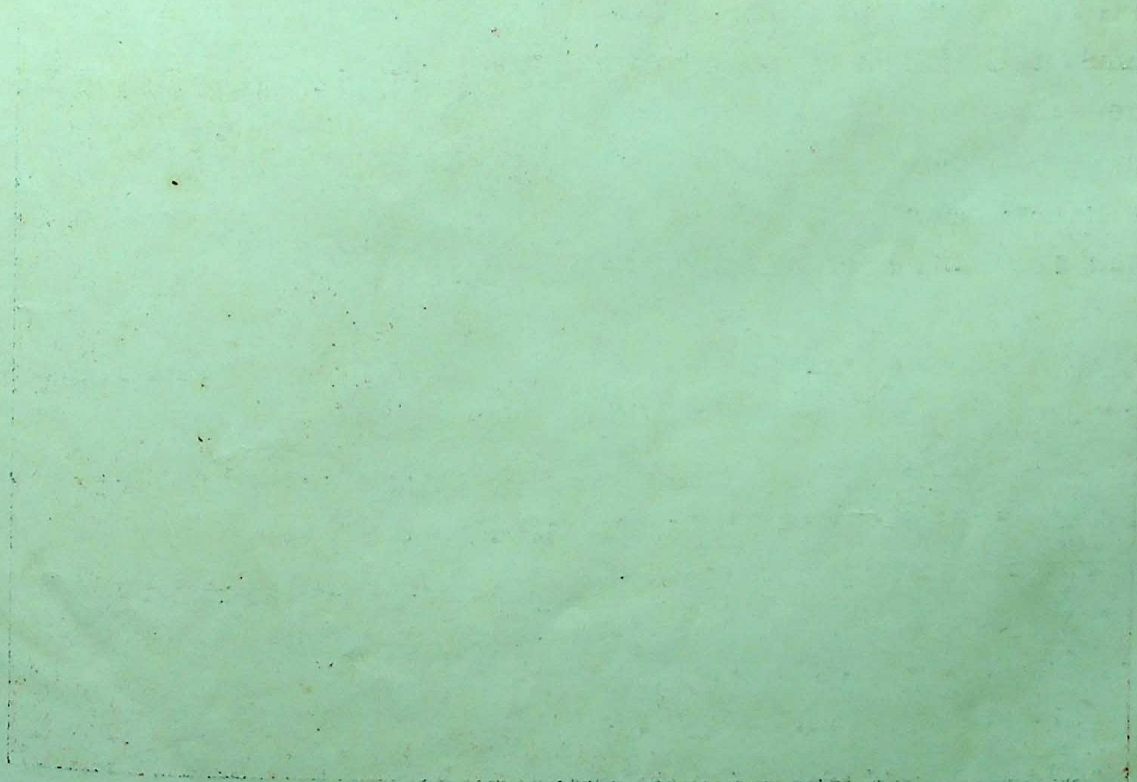

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gurukula Library Kangri

मत्स्यावतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

Gurukul Library Kangri

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानवरतमाराधनपरान्।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम्॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, कार्तिक १९९१, नवम्बर १९३४ | संख्या ४ पूर्ण संख्या १०८

निर्गुण ज्योतिका सगुण दर्शन

पूरन-सरद-ससि उदित प्रकासमान,
कैसी छबि छाई देखौ बिमल जुन्हाई है।
अवनि अकास गिरिकानन औ जलथल
ब्यापक भई सो जिय लागत सुहाई है॥
मुकता, कपूर-चूर, पारद, रजत आदि
उपमा ए उज्जल पै नागर न भाई है।
बृंदाबन-चंद्र चारु सगुन बिलोकिबेकौं
निरगुन ज्योति मानों कुंजनमें आई है॥

—नागरीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्रश्न—महापुरुष या महात्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनके अन्दर दैवीसम्पत्ति और भगवत्प्रेम पूर्णरूपसे हो, जिनकी दृष्टि बिना ही अवलम्बके स्थिर हो, जिनके प्राण बिना प्राणायामके ही स्थिर हों और जिनका मन बिना अवलम्बके स्थिर हो ।

प्र०—महापुरुषकी पहिचान कैसे होती है ?

उ०—महापुरुषोंकी पहिचान और भगवत्‌की पहिचान एक ही है । काम-क्रोधादियुक्त मनुष्य तो महापुरुष हो नहीं सकता, वैसा ईश्वर ही है । भगवान्‌की पूर्ण पहिचान होनेसे ही महापुरुषोंकी पहिचान होती है ।

प्र०—उनके पहिचाननेका सरल उपाय क्या है ?

उ०—मान, क्रोध और धनका त्याग ही मैंने मुख्य समझा है, इनका त्याग होनेसे कामादि विकार स्वतः नष्ट हो जायँगे । एक विरक्त महापुरुष होते हैं, दूसरे गृहस्थ महापुरुष होते हैं । गृहस्थ महापुरुष अन्यायोपार्जित धनके त्यागी होते हैं और विरक्त धनके सर्वथा त्यागी होते हैं । मान और क्रोधका त्याग दोनोंमें ही होता है ।

प्र०—भक्तोंमें काम-क्रोध रहते हैं या नहीं ?

उ०—लेशमात्र भी काम-क्रोध नहीं रहते । उनमें काम-क्रोधका अत्यन्ताभाव होता है पर दूसरे पुरुषोंको उनमें आभास दीख सकता है । उनमें काम-क्रोध क्यों नहीं होते ? इसीलिये नहीं होते कि वे सम्पूर्ण विश्वको भगवान्‌की लीला तथा भगवद्‌रूप देखते हैं । अथवा अपना आत्मरूप देखते हैं । दोनों प्रकारसे ही उनमें काम-क्रोधादि नहीं होते—

उमा जे राम-चरन-रत, बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं बिरोध ॥

प्र०—महापुरुषके समीप रहनेमात्रसे ही कल्याण हो जाता है या कुछ करना भी पड़ता है ?

उ०—जो महापुरुषोंके समीप रहेगा वह तो सभी साधन करेगा, उसमें क्या बाकी रहेगा ? क्योंकि उनके समीप रहनेवालेसे पापकर्म तो स्वतः ही छूट जायँगे, और निरन्तर सत्संगकी बातें सुननेसे उससे साधन भी कुछ-न-कुछ बनेंगे ही । महापुरुषोंका सत्संग एक प्रकारसे भजन ही है । जिस वासना (कामना) को लेकर उनके समीप रहेगा, उसीकी उसे प्राप्ति होगी । यदि वह महापुरुषमें सचमुच प्रेम करता है तो और कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं है । केवल उनमें जो प्रेम है वह प्रेम ही सब कुछ करा लेगा ।

प्र०—महापुरुषमें अपनी शक्तिके अनुसार विश्वास होनेपर भी उनके सङ्गसे जैसा लाभ होना चाहिये वैसा क्यों नहीं होता ?

उ०—श्रद्धाकी कमीके कारण लाभ नहीं होता ।

प्र०—श्रद्धा कैसे हो ?

उ०—निष्काम कर्म और भजन करनेसे महापुरुष और परमात्मामें श्रद्धा होगी ।

× × ×

प्र०—समयको किस प्रकार बिताना चाहिये ?

उ०—सबके लिये एक मत नहीं है, जो गुरुके पास रहनेवाले भक्त हैं उनको गुरुकी सेवामें अधिक समय लगाकर भजनमें कम समय लगाना चाहिये । और जो गुरुके समीप नहीं रहते उन्हें भजनमें अधिक समय लगाना चाहिये । यदि गुरु सेवा न कराते हों तो भजनमें ही अधिक समय लगाना चाहिये । गुरु गृहस्थ हों तो उनकी सेवा करनेकी जरूरत रहती है, यदि वे भी सेवा स्वीकृत न करें तो भजनमें ही अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय लगावे। विरक्त संन्यासीको धन नहीं देना चाहिये। धन देनेसे पाप लगता है। सबको अधिक समय भजनमें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

× × ×

प्र०—भगवान् तो हमें दीखते नहीं इसलिये उनकी शरण कैसे हों?

उ०—विराट्स्वरूप भगवान् तो हमें दीखते ही हैं, शक्ति, शान्ति और सौन्दर्य यह भगवान्का ही स्वरूप है।

× × ×

प्र०—सबका सर्वोच्च ध्येय क्या होना चाहिये?

उ०—'परमानन्दकी प्राप्ति और दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति' ही सबका ध्येय होना चाहिये। उनके साधन हैं—

१—निष्कामभावसे परोपकार—प्राणिमात्रकी सेवा।

२—भगवद्विग्रह और भगवद्भक्तोंकी सेवा।

३—भगवन्नाम-जप और ध्यान।

प्र०—नाम-जप, नाम-स्मरण और कीर्तनमें कौन श्रेष्ठ है?

उ०—एकान्त देशमें मालाद्वारा जप होता है, मानसिक जप या चिन्तनको स्मरण कहते हैं, समुदायमें उच्च स्वरसे जो किया जाता है उसे सङ्कीर्तन कहते हैं, अकेला उच्च स्वरसे नामोच्चारण करे उसे कीर्तन कहते हैं।

प्र०—वाणीद्वारा होनेवाले, उपांशु, और मानसिक जपमें कौन-सा श्रेष्ठ है?

उ०—साधारण जनताके लिये संकीर्तन लाभप्रद है, जो संयत चित्तवाले हैं उनके लिये जप लाभप्रद है। प्रारम्भमें उच्चारण करके जप करना श्रेष्ठ है फिर उपांशु और उसके बाद मानसिक जप श्रेष्ठ है। जैसे-जैसे मन समाहित होता जाय वैसे-वैसे मानसिक जप श्रेष्ठ लगने लगेगा।

प्रेम या भयके बिना वैराग्य नहीं है, भय इससे हो कि यह सब वस्तु भगवान्की है इसको मेरे काममें नहीं लगाना चाहिये—इसे अपना समझकर भोग करना पाप है। और जब भगवान्की तरफ मन लग जायगा तब विषयोंमें और विषयी लोगोंमें तुम्हारा मन नहीं लगेगा। भगवान्में प्रेम न होनेसे ही अन्य पदार्थोंमें मन जाता है। जबतक बड़प्पनका अभिमान रहेगा, तबतक प्रेम या वैराग्य नहीं हो सकता। क्रोध न करनेकी प्रतिज्ञा करनेसे क्रोधका त्याग हो सकेगा, यदि किसी दिन क्रोध आ जाय तो उस दिन उपवास करो।

× × ×

प्र०—तत्त्वज्ञान या भगवत्प्राप्तिके लिये क्या साधन करना चाहिये?

उ०—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, नशा, जूआ, झूठ, गाली, चुगली, असम्बन्ध प्रलाप, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, परधन लेनेका संकल्प, देहमें आत्मबुद्धि—इन सबका त्याग करना और दैवीसम्पत्तिका ग्रहण करना ये भगवत्प्राप्तिके साधारण उपाय हैं और ये दो असाधारण साधन हैं—

१—त्यागकी भावना और २—भगवत्स्मरण। स्मरणका अर्थ है जप। जपके लिये मैंने तीन मन्त्र चुने हैं—

१- **हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।**
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

२- **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**

३- **ॐ नमः शिवाय।**

जो जितना अधिक जप करेगा उसको उतनी ही अधिक शीघ्र सिद्धि होगी। सोलह नामके महामन्त्रकी कम-से-कम सोलह माला, द्वादशाक्षर मन्त्रकी कम-से-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम बारह माला और ॐ नमः शिवायकी कम-से-कम पचास माला नित्यप्रति फेरनी चाहिये। अधिक जितनी कर सके उत्तम है। जिस व्यक्तिको जिस मन्त्रमें प्रीति हो उसे उस एक ही मन्त्रका जप करना चाहिये। त्यागकी भावनाके लिये परद्रव्यका त्याग, पुरुषार्थसे यथावश्यक द्रव्योपार्जन, विषयोंमें आसक्तिका त्याग, यथालाभसन्तुष्ट, व्याजका व्याज न लगावे।

इन नियमोंके पालन किये बिना तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती और इससे भी शीघ्र प्राप्तिका उपाय है सद्गुरुकी प्राप्ति। सद्गुरु मिल जानेसे उसे शीघ्र-से-शीघ्र सिद्धि हो जाती है। सद्गुरु जो नियम बतलावें उन्हींका पालन करे।

× × ×

प्र०—साकार भगवान्‌के दर्शनके लिये क्या साधन करना चाहिये?

उ०—मेरे विश्वासके अनुसार गाढ़ ध्यान हुए बिना भगवद्दर्शन नहीं हो सकता।

प्र०—ध्यान होनेके लिये क्या उपाय है?

उ०—भूत और भविष्यके चिन्तनको छोड़कर एकान्त स्थानमें भगवत्स्वरूपका चिन्तन एकासनसे कम-से-कम दो घण्टा बैठकर नित्यप्रति नियमित रूपसे करे। भगवत्स्वरूपकी क्षण-क्षण स्मृति होती है उसे तो स्मरण कहते हैं और वह स्मृति अधिक देर ठहरनेको ही ध्यान कहते हैं। जैसे-जैसे भगवान्‌में आसक्ति होती जायगी वैसे-वैसे वृत्ति ठहरती जायगी। जपका नियम पहले बताया गया है उसी प्रकार करे। जप करते हुए ध्यान किया जाता है उसमें जप मुख्य है। और ध्यानकालमें केवल स्वरूपका ही चिन्तन करे। जहाँ जप और चिन्तन दोनों होगा वहाँ जप मुख्य रहेगा और चिन्तन गौण रहेगा। जिससे चिन्तन न हो सके उसे जप या स्तोत्रपाठ करना चाहिये। स्तोत्रपाठसे जप अधिक लाभप्रद है।

× × ×

प्र०—गोपिकाओंकी भाँति भगवान्‌में अनन्य प्रेम होनेके लिये क्या करना चाहिये?

उ०—एक इष्टदेवके सिवा कोई इष्ट न रहे ऐसी अनन्यता होनी चाहिये। अनन्य प्रेम-प्राप्तिके लिये प्रथम तो मूर्तिकी बाह्य सेवा-पूजा करे वल्लभकुलवालोंकी भाँति। उसके बाद मानसिक पूजा-सेवा करनी चाहिये, क्योंकि केवल बाह्य पूजासे प्रेमप्राप्ति नहीं हो सकती। बाह्य पूजासे मानसिक पूजा श्रेष्ठ है—और जप ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये। केवल बाह्य जपमें लगे रहनेसे ध्यान तथा आनन्द नहीं होता जिससे बहुत कालमें लाभ होता है इसलिये जपके साथ ध्यान, मानसिक पूजा और दैवीसम्पत्तिके गुणोंको धारण करना और अवगुणोंको छोड़ना अत्यन्त आवश्यक है।

× × ×

प्र०—श्रीशुकदेवजीकी भाँति तीव्र वैराग्य होनेके लिये क्या करना चाहिये?

उ०—निष्काम भगवत्प्रेम या ध्यान ही तीव्र वैराग्यका साधन है। बिना प्रेमके जो बाह्य त्याग करते हैं वह मूल्यवान् नहीं है, उसमें धोखा हो सकता है।

× × ×

प्र०—विधवा स्त्रीको भगवत्प्राप्तिके लिये क्या करना चाहिये?

उ०—भगवान्‌को सर्वस्व समझकर उनमें प्रेम करना और शास्त्रोक्त वैधव्यधर्मका पालन करते हुए जीवन-निर्वाह करना यह विधवा स्त्रीका धर्म है। स्त्रियोंके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेव्य-सेवक-भाव ही उत्तम है । यह सबके लिये उत्तम है किन्तु स्त्रियोंके लिये तो इसके सिवा कोई भी भाव उपयोगी नहीं है । और भावोंमें पतनकी सम्भावना है । इस भावमें भय रहता है इसलिये इसमें पतनकी सम्भावना नहीं है । यह स्वामी-सेवक-भाव ही सबके लिये सर्वोत्तम है ।

भगवान्‌के लिये काम कैसे किया जाय ?

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्र०—प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌का काम समझकर भगवान्‌को याद रखते हुए किसीसे भी रागद्वेष न करके अपने कर्त्तव्यका पालन किस प्रकार किया जा सकता है ?

उ०—सब कुछ परमेश्वरका ही है, परमेश्वर ही खेल कर रहे हैं, परमेश्वर बाजीगर हैं, मैं उनका झमूरा हूँ, यों समझकर सब कुछ ईश्वरकी लीला समझते हुए, परमेश्वरकी आज्ञानुसार आसक्ति और फलकी इच्छा छोड़कर, परमेश्वरकी सेवाके लिये उन्हींकी प्रेरणा तथा शक्तिसे प्रेरित होकर कार्य करता रहे । यह समझकर बार-बार गद्गद होता रहे कि अहा ! मुझपर परमेश्वरकी कितनी अपार दया है कि मुझ-जैसे तुच्छको साथ लेकर भगवान् अपनी लीला कर रहे हैं । भगवान्‌के प्रेम, दया, प्रभाव, स्वरूप और तत्त्वपर बारम्बार विचार करता हुआ मुग्ध होता रहे ।

(प्रेम) भगवान्‌के समान कोई प्रेमी नहीं है, वे प्रेमका इतना महत्त्व जानते हैं कि असंख्य ब्रह्माण्डके महेश्वर होते हुए भी अपनेको प्रेमीके हाथ बेच डालते हैं ।

(दया) मैं कैसा नीच हूँ, कैसा निकृष्ट और महा-पामर हूँ, परन्तु उस परम प्रभुकी मुझपर कितनी अपार दया है कि वे मुझको साथ लेकर लीला कर रहे हैं । प्रभुने सब पाप-तापोंसे बचाकर मुझे ऐसा बना लिया है ।

(प्रभाव) प्रभुके प्रभावका कौन वर्णन कर सकता है, वे चाहें तो करोड़ों ब्रह्माण्डोंको एक पलमें उत्पन्न कर सकते हैं ।

(स्वरूप) सारे संसारका सौन्दर्य मेरे प्रभुके एक रोमके समान भी नहीं है । वे आनन्द-मूर्ति हैं । उनका दर्शन परम सुखमय है । वे चेतनमय महाप्रभु हैं । जैसे तारों-में बिजली अनेक प्रकारसे कार्य कर रही है, वैसे ही प्रभुकी शक्ति सब कुछ कर रही है । वे विज्ञानानन्दघन परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं । वही विज्ञाना-नन्दघन प्रभु श्रीराम-कृष्णके रूपमें अवतार लेते हैं ।

(रहस्य) उनका रहस्य कौन जान सकता है ? वे सबमें समाये हैं परन्तु कोई उन्हें नहीं पकड़ पाता । भेदका नाम ही रहस्य है । भगवान् श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए, उस रूपमें बहुत लोगोंने उन्हें भगवान् नहीं समझा । कोई ग्वालबालक समझता था तो कोई वसुदेव-पुत्र । जो महात्मा पुरुष उनको भगवान्‌के रूपमें जान गये, उन्हींपर उनका रहस्य प्रकट हुआ । प्रभुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहस्यको जान लेनेपर चिन्ता, दुःख और शोकका तो कहीं नाम-निशान ही नहीं रहता। प्रभु सब जगह विराजमान है, इस रहस्यको जानना चाहिये। अर्जुन भगवान्‌के रहस्यको कुछ जानते थे और उनसे रथ हँकवाते थे परन्तु वे भी भगवान्‌के विश्वरूपको देखकर भय और हर्षके मिश्रित भावोंमें डूब गये। तब भगवान्‌ने कहा 'भय मत कर!' जबतक अर्जुनको भय हुआ तबतक उन्होंने भगवान्‌के पूरे रहस्यको नहीं समझा। पहचानना तो वस्तुतः यथार्थमें प्रह्लादका था। जो भगवान् नृसिंहदेवको विकराल रूपमें देखकर भी बेधड़क उनके पास चले गये। प्रह्लादको किञ्चित् भी भय नहीं हुआ। इसी प्रकार परमात्माके रहस्यको जाननेवाला सर्वदा सर्वत्र निर्भय हो जाता है।

प्र०—जीवमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह प्रभुके रहस्यको जान सके। जब प्रभु जनाते हैं तभी जान सकता है। प्रह्लादको प्रभुने जनाया तभी तो वे भगवान्‌को जान सके। वे हमलोगोंको अपना रहस्य किस उपायसे जना सकते हैं?

उ०—इसके लिये प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये। वे कृपा करके जना सकते हैं। परन्तु यह नियम है कि पात्र होनेसे प्रभु अपनेको जना देते हैं। भगवान्‌की दयापर दृढ़ विश्वास करना चाहिये। भक्तशिरोमणि भरतजीने भी कहा था—

जो करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प शत कोरी॥
जन-अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे मन भरोस दृढ़ सोई। मिलिहैं राम सकुन शुभ होई॥

ऐसा दृढ़ भरोसा रखनेवालेकी प्रभु सम्हाल करते हैं। अतएव प्रभुसे सच्चे दिलसे ऐसी कातर-प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! मैं अति नीच हूँ, किसी प्रकार भी पात्र नहीं हूँ। गोपियोंकी भाँति जिसमें प्रेम-का बल है, उसके हाथ तो आप स्वयं ही बिक जाते हैं। हे प्रभो! मेरे पास प्रेमका बल होता तो फिर रोने और प्रार्थना करनेकी क्या जरूरत थी। मैं जब अपने अवगुणोंकी तथा बलकी ओर देखता हूँ तो मनमें कायरता और निराशा छा जाती है परन्तु हे नाथ! आपकी दया तो अपार है, आप दयासिन्धु हैं, पतित-पावन हैं, मुझे वह बल दीजिये जिससे मैं आपके रहस्यको जान जाऊँ।'

कामको प्रभुका काम समझना चाहिये। हम लीलामयके साथ काम कर रहे हैं। इससे प्रभुकी इच्छाके अनुसार ही चलना चाहिये। यदि आसक्ति या स्वभावदोषके कारण उनकी आज्ञाका कहीं उल्लंघन हो जाय तो पुनः वैसा न होनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

अपनी समझसे कोई अनुचित कार्य नहीं करना चाहिये। हमलोग किसीकी भलाईके लिये कोई कार्य कर रहे हैं और कदाचित् उससे उसकी कोई हानि हो जाय तो इसके लिये शोक करनेकी जरूरत नहीं है। कोई भी काम दैव-इच्छासे हो जाय उसमें चिन्ता या पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये। हमको अपने कृत्यकी भूलके लिये ही पश्चात्ताप करना उचित है।

हमको सूचना मिली कि यहाँ बहुत जल्दी बाढ़ आनेवाली है, हट जाना चाहिये। इस बातको जान-कर भी हम नहीं हटे और हमारा सब कुछ बह गया तो हमें पश्चात्ताप करना चाहिये। क्योंकि भगवान्‌ने हमको सचेत कर दिया था और हमने उसको माननें में अवहेलना की। परन्तु यदि अचानक बाढ़ आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब डूब जाय तो चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वहाँ हमारी भूल नहीं हुई है।

एक जगह बाढ़ आयी, बीज बह गये। हमलोगोंने बोनेके लिये किसानोंको बीज दिये, फिर बाढ़ आयी, और वे बीज भी बह गये। इसपर हमलोगोंको न तो शोक करना चाहिये और न यह विचार करना चाहिये कि बीज तो बह ही रहा है, व्यर्थ देकर क्यों नष्ट करें। हमलोगोंको तो स्वामीकी यही आज्ञा है कि बीज जहाँतक बने, उन्हें देते रहो। अतः हमको तो प्रभुकी आज्ञानुसार ही करना चाहिये। उसमें कोई कसर नहीं रखनी चाहिये। प्रभु अपनी इच्छानुसार करें। सेवकको तो प्रभुका काम करके हर्षित होना चाहिये और मुस्तैदीसे अपने कर्त्तव्यपथपर डटे रहना चाहिये।

रोगी कुपथ्य कर ही लिया करते हैं। इसमें अपना क्या वश है। कुपथ्य करनेपर सद्वैद्य रोगीको धमका तो देता है परन्तु नाराज नहीं होता। वह समझता है कि मेरी पाँच बातोंमेंसे तीन तो इसने मान लीं। दोके लिये फिर चेष्टा करेंगे। वैद्य बारम्बार चेष्टा करता है, जिससे वह कुपथ्य न करे। परन्तु चेष्टा करनेपर भी उसका हित न हो तो वैद्यको उकतानेकी जरूरत नहीं है। न क्रोध ही करनेकी आवश्यकता है। फलको भगवान्‌की इच्छापर छोड़ देना चाहिये। और बिना उकताये प्रभुकी लीलामें उनकी इच्छानुसार लगे रहना चाहिये।

कल्याण

याद रक्खो, एक दिन मृत्यु अवश्य होगी और कब होगी, इसका तुम्हें कुछ भी पता नहीं, अभी होश-हवास-दुरुस्त बैठे हो, शायद अगली ही मिनट तुम्हारी मृत्युका काल हो। उस समय तुम्हारे सारे काम ज्यों-के-त्यों धरे रह जायँगे। अभी कामसे तुम्हें पलभरको फुरसत नहीं मिलती, उस समय आप ही सदाके लिये फुरसत मिल जायगी। अभी शरीरके आरामके लिये तुम बड़े सुन्दर महलोंमें मुलायम गद्दोंपर सोते-बैठते हो, उस समय निर्जन वनमें, सियार, कुत्ते और गीधोंसे घिरे हुए डरावने मरघटमें खुली जमीनपर तुम्हारा यह सोने-सा शरीर जलकर खाक हो जायगा। सारे अरमान मन-के-मनमें रह जायँगे, सारी शेखी चूर हो जायगी, सारी हेकड़ी काफ़ूर हो जायगी, तुम्हारी मदभरी, गर्वभरी और रीसभरी आँखें सदाके लिये मुँद जायँगी।

× × ×

कैसे निश्चिन्त-से होकर भोगोंमें भटक रहे हो? चेतो, शीघ्र चेतो, फिर पछतानेसे कुछ भी नहीं होगा; इस शरीरसे छूटकर जब तुम परलोकमें जाओगे और वहाँ तुम्हारे यहाँके कमाये हुए कर्मोंका भीषण फल सामने आवेगा, तब काँप उठोगे। यहाँके मौजमजोंमें जिस सुखका अनुभव करते हो, वहाँ उस एक-एक मौजके बदलेमें जो भयानक दण्ड मिलेगा, उसे सुनकर मूर्च्छित होने लगोगे। परन्तु बाध्य होकर मौजका बदला भोगना ही पड़ेगा। इससे अभी चेत जाओ। शरीर, मन, वचनसे किसी जीवका अहित न करो, किसीके जीको मत दुखाओ, सबका भला चाहो, भला करो; अपना अहित करके भी दूसरोंका हित करो, निश्चय रक्खो, तुम्हारा अहित कभी नहीं होगा। धोखेसे अभी तुम्हें दीखनेवाला अपना अहित परम हितके रूपमें परिणत हो जायगा। सबको परमात्माका स्वरूप समझकर सबकी अहैतुकी सेवा करो; परम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपालु परमात्माका मन, वाणी और शरीरसे भजन करो; मनसे उनका ध्यान करो, वाणीसे उनका गुण-गान करो और शरीरसे—सर्वत्र सबमें उन्हें विराजित देखकर सबकी आदर, प्रेम और उछाहके साथ सेवा करो !

× × ×

विषयोंसे मनको हटाकर भगवान्‌में लगाते रहो, विषयोंको विष समझो और भगवान्‌को दिव्य अमृत ! भगवान्‌के लिये भगवत्-पूजाके भावसे विषयोंका ग्रहण करना दूषित नहीं है परन्तु कभी भोगबुद्धिसे विषयोंको न चाहो, न भोगो, न उनमें प्रीति करो; श्रीभगवान्‌को प्राप्त करनेकी जितनी साधनाएँ हैं, सबमें वैराग्य और भजन प्रधान है। जिसके हृदयमें वैराग्य है, वह बड़े-से-बड़ा त्याग सहज ही कर सकता है। त्यागसे सारे सद्‌गुण आप ही आ जाते हैं। परन्तु वैराग्यके साथ भजनकी आवश्यकता है। संसारके भोगोंसे हटाये हुए मनको साथ-ही-साथ भगवान्‌में लगानेका भी प्रयत्न करना चाहिये !

× × ×

धन, स्त्री और मान इन तीनोंका मोह छोड़नेकी चेष्टा करो, धनका महत्त्व हृदयसे निकाल दो, दान और सत्कार्यके लिये भी धन-संग्रहकी चेष्टा मत करो। न सत्कार्यकी प्रवृत्तिके लिये ही किसी धनवान्‌से धन माँगकर धनको महत्त्व प्रदान करो। अपने लोभरहित न्यायोपार्जित धनसे यथायोग्य सत्कार्य करो, उस माता लक्ष्मीको भगवान्‌की गृहिणी समझकर भगवान्‌के चरणोंमें भेंट कर दो, तुम तो माँका दिया हुआ प्रसादमात्र ग्रहण करो। माँ लक्ष्मीको कभी भोग्या मत समझो। तुम किसी सत्कार्यमें लगे हो तो जहाँतक हो—बिना माँगे मिल जाय, उसी धनसे सत्कार्य करो। धनमें तुच्छ-बुद्धि करो और उसकी आवश्यकता-को यथासाध्य घटाते रहो। जिससे तुम्हें किसीसे कभी कुछ भी माँगना न पड़े।

× × ×

स्त्रीजातिका अपमान न करो, स्त्रीजातिसे कभी घृणा न करो, परन्तु उसे भोग्यवस्तु समझकर उसका अमर्यादित संग भी न करो। तुम कहोगे, हम भोग्य वस्तु नहीं समझते, देवी समझते हैं। बहुत अच्छी बात है। परन्तु मन बड़ा दुष्ट है। बड़े-बड़े तपस्वी और संयमी पुरुष संगसे विचलित हो जाते हैं। अतएव झूठे अभिमानको छोड़ दो। अपनी कमजोरियों-पर खयाल करके स्त्रियोंसे अलग रहो। धनसे स्त्रीका त्याग कठिन है और स्त्रीकी अपेक्षा मानका। स्त्रीका त्याग केवल अलग रहनेमें ही नहीं है। भोग्यबुद्धिसे स्त्रीका चिन्तन, दर्शन—उसके चित्रका दर्शन भी विकार उत्पन्न करनेवाला होता है। भोग्यबुद्धि अन्दर छिपी रहती है। मनको बहुत टटोलकर देखो—अपना दोष पहचाननेकी इच्छासे गहरी अन्तर्दृष्टि करो, तुम्हें पता लगेगा, स्त्रीके रूपपर, उसके वेशभूषापर, उसके शब्दोंपर, उसके हावभावपर तुम्हारे मनमें आसक्ति है। इसी प्रकार स्त्रियोंको भी पुरुषोंसे बचना चाहिये। गुरुभावसे भी एकान्तमें परपुरुषसे कभी नहीं मिलना चाहिये। इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं। साधन करते-करते संयमसे निकल भागती हैं। फिर स्वच्छन्द छोड़नेपर तो कहना ही क्या है ?

× × ×

मान-बड़ाई बड़ी मीठी छुरी है। विषभरा सोनेका घड़ा है। इससे खूब सावधानीसे बचो। बहुत बार मनुष्य मानका त्याग भी मानके लिये ही करता है। अपमानको भी मानकी कामनासे सिर चढ़ाता है। सावधान ! मनके धोखेमें मत आओ। सच्चे अमानी बनो ! मनुष्य धन और स्त्रीको छोड़ देता है परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानका त्याग—और उसमें भी शारीरिक मानकी अपेक्षा—मौखिक बड़ाईका त्याग होना बड़ा कठिन है। कीर्तिकी कामनामें बहुत बड़े-बड़े सत्कार्य बड़े सस्ते बेच देने पड़ते हैं। कीर्तिका लोभ न करो—भगवान्‌का लोभ करो। यह निश्चय रक्खो—यदि तुम्हारा जीवन पवित्र है, तुम्हारे आचरण सर्वथा निर्दोष हैं, तुम्हारे मन-मन्दिरमें भगवान्‌का निवास है और तुम सदा तन-मन-वचनसे सर्वव्यापी सर्वाधार सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर भगवान्‌का प्रेमपूर्वक अहैतुक भजन करते हो तो चाहे संसारमें तुम्हें कोई न जाने, चाहे घरके लोग भी तुम्हारा मान न करें और चाहे विषयोंके तराजूपर तौलनेवाले विषयी पुरुष तुम्हें दरिद्र और अकिञ्चन समझकर, तुम्हारा अपमान ही करें—तुम्हारा इसमें कुछ भी नुकसान नहीं है, तुम सबसे ऊँचे धाम और सबसे बड़े नित्य और अमिश्रित आत्यन्तिक सुखको सदाके लिये प्राप्त हो जाओगे। इसके विपरीत, यदि तुम्हारे पास बहुत धन है, तुम बड़े परिवारवाले हो, राजा-महाराजा या हाकिम हो, बड़े गुरु या उपदेशक हो, तमाम दुनियाँमें तुम्हारा नाम जगमगा रहा है, परन्तु हृदय अपवित्र है, राग-द्वेषके वशमें हुए विषयसेवनमें लगे हुए हो, भगवान्‌को स्मरण करनेके लिये समय ही नहीं मिलता, तो क्या हुआ, तुम्हारा यहाँका यह मान-सम्मान सर्वथा निरर्थक और परलोकमें दुःखका हेतु है। याद रक्खो, तुम्हारी जिन्दगी बेकार ही नहीं है, तुम घोर नरकोंकी यात्राकी तैयारी कर रहे हो। अतएव मान छोड़कर दूसरोंको मान दो और सच्चे विनयी होकर भगवान्‌का भजन करो।

× × ×

जीवन बहुत थोड़ा है, यदि तुम्हारा यह विश्वास हो गया है, (और नहीं हुआ है तो महात्मा और सन्तोंकी वाणी और उनकी जीवनी अध्ययन करके करना चाहिये) कि भगवत्-प्राप्ति ही इस मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है तो आजसे—अभीसे ही उसकी प्राप्तिके लिये प्रणबद्ध होकर दृढ़ताके साथ लग जाना चाहिये। संसारका कोई भी प्रलोभन तुम्हारे मार्गमें बाधा न दे सके, ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके लिये सर्वशक्तिमान् परमात्मासे प्रार्थना करनी चाहिये। याद रक्खो—तुम उसी सर्वशक्तिमान्‌के सनातन अंश हो, तुममें वह शक्ति है, उसे भूले हुए हो, भगवत्-कृपासे—प्रार्थनाके बलसे तुम उस शक्तिको जान जाओगे, और जानते ही तुम उस शक्तिवाले बन जाओगे। उस शक्तिकी जागृतिकी पहली कसौटी है, विषयोंपर अनास्था और सर्वशक्तिमान् परमात्मापर अटल विश्वास। इस स्थितिको प्राप्त होनेपर तुम्हें कोई भी प्रलोभन नहीं रोक सकेगा। तुम विश्वविजयी होकर विश्वात्माको प्राप्त करोगे।

'शिव'

स्वागत

मानस तलपर खेल रही है जिसकी सुन्दर छाया।
है प्रतिबिम्बित रोम-रोममें जिसकी अनुपम माया॥
रूपराशिमें जिसकी रहता मन विभोर अलिदल-सा।
हृदय सिहर उठता प्रिय सुधिमें जिसकी चञ्चल जल-सा॥
स्वागत है उस इष्टदेवका चन्द्रज्योति-सा आना।
अभिलाषाओंके नर्तनमें नटवर-सा मिल जाना॥

—सत्याचरण 'सत्य' विशारद, एम० ए०, बी० टी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्-गाथा

(१)

अश्वपति और उद्दालकादिका संवाद

उपमन्युका पुत्र प्राचीनशाल, पुलुषका पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवका पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षका पुत्र जन और अश्वतराश्विका पुत्र बुडिल ये पाँचों महाशाल अर्थात् जिनकी शालामें असंख्य विद्यार्थी पढ़ते थे ऐसी महान् शालाओंवाले महान् श्रोत्रिय यानी वेदका पठन-पाठन करनेवाले थे। एक दिन ये एकत्र होकर 'वास्तवमें आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या है' इस विषयपर विचार करने लगे। परन्तु जब किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे तब किसी दूसरे ब्रह्मवेत्ता विद्वान्के पास जाकर उनसे पूछनेका निश्चयकर आपसमें कहने लगे कि 'वर्तमान समयमें अरुणके पुत्र उद्दालक आत्मरूप वैश्वानरको भलीभाँति जानते हैं, यदि सबकी राय हो तो हमको उनके पास चलना चाहिये।' सबकी राय हो गयी और वे उद्दालकके पास गये।

उद्दालकने उनको दूरसे देखते ही उनके आनेका प्रयोजन जान लिया और वे विचार करने लगे 'ये महाशाल और महान् श्रोत्रिय आते ही मुझसे पूछेंगे और मैं इनके प्रश्नोंका पूर्ण समाधान कर नहीं सकूँगा। इससे उत्तम यही है कि मैं इन्हें किसी दूसरेका नाम बतला दूँ।' ऐसा विचारकर उद्दालकने उनसे कहा—'हे भगवन्! मैं जानता हूँ आप मुझसे आत्माके विषयमें कुछ पूछने पधारे हैं परन्तु इस समय केकयके पुत्र प्रसिद्ध राजा अश्वपति इस आत्मरूप वैश्वानरको भलीभाँति जानते हैं, यदि आप सबकी अनुमति हो तो हम सब उनके पास चलें।' सर्वसम्मतिसे सब राजा अश्वपतिके पास गये।

अश्वपतिने उन छओं ऋषियों—अतिथियोंका अपने सेवकोंद्वारा यथायोग्य अलग-अलग भलीभाँति पूजन-सत्कार करवाया और दूसरे दिन प्रातःकाल राजा सोकर उठते ही उनके पास गये और बहुत-सा धन सामने रखकर विनयभावसे उसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना करने लगे। परन्तु वे तो धनकी इच्छासे वहाँ नहीं गये थे, इससे उन्होंने धनका स्पर्श भी नहीं किया और चुपचाप बैठे रहे। राजाने सोचा, शायद ये मुझे अधर्मी या दुराचारी समझते हैं, इसीलिये मेरा धन (दूषित समझकर) नहीं लेते। यह विचारकर राजा कहने लगे—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

"हे मुनियो! मेरे राज्यमें कोई चोर नहीं है, (क्योंकि किसीके पास किसी वस्तुका अभाव नहीं है कारण) मेरे देशमें ऐसा कोई धनी नहीं है जो कंजूस हो यानी यथायोग्य दान न करता हो। न मेरे देशमें कोई शराब पीता है, न कोई ऐसा द्विज है जो अग्निहोत्र न करता हो, न कोई ऐसा ही व्यक्ति है जो विद्वान् न हो; और न कोई व्यभिचारी पुरुष ही मेरे देशमें है, जब पुरुष ही व्यभिचारी नहीं है तो स्त्री तो व्यभिचारिणी होगी ही कहाँसे? * अतएव मेरा धन शुद्ध है, फिर आप इसे क्यों नहीं लेते।" मुनियोंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब राजाने सोचा, शायद धन थोड़ा समझकर मुनि न लेते हों, अतएव वे फिर कहने लगे—

'हे भगवन्! मैं एक यज्ञका आरम्भ कर रहा हूँ,

* राजाओंको इस आदर्शपर विचार करना चाहिये और इसीके अनुसार अपने राज्यके एक-एक पैसेको शुद्ध बनाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस यज्ञमें मैं एक-एक ऋत्विग्को जितना धन दूँगा, उतना ही आपमेंसे प्रत्येकको दूँगा। आप मेरे यहाँ ठहरिये और मेरा यज्ञ देखिये।'

राजाकी यह बात सुनकर उन्होंने कहा—'हे राजन्! मनुष्य जिस प्रयोजनसे जिसके पास जाता है, उसका वही प्रयोजन पूरा करना चाहिये। हमलोग आपके पास आत्मरूप वैश्वानरका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आये हैं, क्योंकि इस समय आप ही उसको भली-भाँति जानते हैं इसलिये आप हमें वही समझाइये। हमें धन नहीं चाहिये।' *

राजाने उनसे कहा—'हे मुनियो! कल प्रातःकाल मैं इसका उत्तर आपको दूँगा।' ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अभिमानका त्याग करना परम आवश्यक है, केवल मुँहसे माँगनेपर ज्ञान नहीं मिलता। वह अधिकारी-को ही मिलता है। राजाके उत्तरसे मुनि इस बात-को समझ गये और दूसरे दिन अभिमान त्यागकर सेवावृत्तिका परिचय देनेवाले समिध्को हाथोंमें लेकर दुपहरसे पहले ही विनयके साथ शिष्यभावसे राजाके पास पहुँचे और जाते ही उनके चरणोंमें प्रणाम करने लगे। राजाने उनके चरणोंमें प्रणाम नहीं करने दिया, क्योंकि वे ब्राह्मण थे और सद्गुरु मान, बड़ाई, पूजाकी इच्छा नहीं रखते। और राजाने उन्हें गुरुरूपसे नहीं, किन्तु दाताके रूपसे वैश्वानररूप ब्रह्मविद्याका उपदेश किया!

श्वेतकेतुको ज्ञानप्राप्ति

(२)

'तत्त्वमसि' का उपदेश

अरुणके पुत्र आरुणि उद्दालकके श्वेतकेतु नामक एक पुत्र था। वह बारह वर्षकी अवस्थातक केवल खेलकूदमें ही रहा। पिता सोचते रहे कि यह स्वयं ही विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा करे तो उत्तम है परन्तु उसने वैसी इच्छा नहीं की, तब पितासे नहीं रह गया। उन्होंने एक दिन उसे अपने पास बुलाकर कहा—'हे वत्स श्वेतकेतो! तू जा और सुयोग्य गुरुके समीप ब्रह्मचारी होकर रह। हे सौम्य! अपने वंशमें कोई भी ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जिसने वेदोंका त्याग किया हो और जो ब्राह्मणके गुण और आचारोंसे रहित होकर केवल नामधारी ब्राह्मण बनकर रहा हो। ऐसा करना योग्य नहीं है। सारांश, तुझे वेदोंका अध्ययन करके ब्रह्मको प्राप्त करना ही चाहिये।'

पिता आरुणिका मीठा उलाहना सुनकर श्वेतकेतु बारह वर्षकी अवस्थामें गुरुके घर गया और पूरे चौबीस वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें रहकर व्याकरणादि छः अङ्गोंसहित चारों वेदोंका पूर्ण अध्ययन करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर घर लौटा। उसने मन-ही-मन विचार किया कि 'मैं वेदका पूर्ण ज्ञाता हूँ, मेरे समान पण्डित और कोई नहीं है। मैं सर्वोपरि विद्वान् और बुद्धिमान् हूँ।' इस प्रकारके विचारोंसे उसके मनमें गर्व उत्पन्न हो गया, और वह उद्धत और विनयरहित होकर बिना ही प्रणाम किये पिताके सामने आकर बैठ गया। आरुणि ऋषि उसका नम्रतारहित औद्धत्य-पूर्ण आचरण देखकर इस बातको जान गये कि इसको वेदके अध्ययनसे बड़ा गर्व हो गया है, तो भी आरुणि ऋषिने उस अविनयी पुत्रपर क्रोध नहीं किया और वे बोले—'हे श्वेतकेतो! तू ऐसा क्या पढ़ आया है कि जिससे अपनेको सबसे बड़ा पण्डित समझता है और इतना अभिमानमें भर गया है। विद्याका स्वरूप तो विनयसे ही खिलता है। अभिमानी पुरुषके हृदयसे तो सारे गुण दूर चले जाते हैं और समस्त दोष अपने-आप उसमें आ जाते हैं। तूने अपने गुरुसे

* इसी प्रकार जिज्ञासु साधकको किसी भी प्रलोभनमें न फँसकर अपने लक्ष्यपर दृढ़ रहना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सीखा हो तो बता, कि ऐसी कौन-सी वस्तु है कि जिस एकके सुननेसे बिना सुनी हुई सब वस्तुएँ सुनी जाती हैं, जिस एकके विचारेसे सब बिना विचार की हुई वस्तुओंका विचार हो जाता है, जिस एकके ज्ञानसे नहीं जानी हुई सब वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है ?'

आरुणिके ऐसे वचन सुनते ही श्वेतकेतुका गर्व गल गया, उसने सोचा कि 'मैं तो ऐसी किसी वस्तुको नहीं जानता। मेरा अभिमान मिथ्या है।' वह नम्र होकर विनयके साथ पिताके चरणोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा—'भगवन्! जिस वस्तुके श्रवण, विचार और ज्ञानसे सम्पूर्ण वस्तुओंका श्रवण, विचार और ज्ञान हो जाता है, उस वस्तुको मैं नहीं जानता। आप उस वस्तुका उपदेश कीजिये।'

आरुणिने कहा—'हे सौम्य! जैसे कारणरूप मिट्टीके पिण्डका ज्ञान होनेसे मिट्टीके कार्यरूप घट, शराव आदि समस्त वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है और यह पता लग जाता है कि घट आदि कार्यरूप वस्तुएँ सत्य नहीं है केवल वाणीका विकार है, सत्य तो केवल मिट्टी ही है। हे सौम्य! जैसे कारणरूप सोनेके पिण्डका ज्ञान होनेसे सोनेके कड़े, कुण्डलादि सब कार्योंका ज्ञान हो जाता है और यह पता लग जाता है कि ये कड़े, कुण्डलादि सत्य नहीं है, केवल वाणीका विकार है, सत्य तो केवल सोना ही है। और जैसे नख काटनेकी नहरनी आदिमें रहे हुए लोहेका ज्ञान हो जानेसे लोहेके कार्य खड्ग, परशु आदिका ज्ञान हो जाता है और यह पता लग जाता है कि वास्तवमें ये सब सत्य नहीं है, एक लोहा ही सत्य है, बस इसी तरह वह ज्ञान होता है।'

पिता आरुणिके यह वचन सुनकर श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी! निश्चय ही मेरे विद्वान् गुरु इस वस्तुको नहीं जानते हैं, क्योंकि यदि वे जानते होते तो मुझे बतलाये बिना कभी नहीं रहते। अतएव हे भगवन्! अब आप ही मुझको उस वस्तुका उपदेश दीजिये जिस एकके जाननेसे सब वस्तुएँ जानी जाती हैं।' आरुणिने कहा, अच्छा सावधान होकर सुन—

'हे प्रियदर्शन! यह नाम, रूप और क्रियात्मरूप दृश्यमान जगत् उत्पन्न होनेसे पहले केवल एक अद्वितीय, सत् ही था। उस सत् ब्रह्मने संकल्प किया कि 'मैं एक बहुत हो जाऊँ' ऐसा संकल्प करके उसने पहले तेज उत्पन्न किया, फिर उससे जल उत्पन्न किया और तदनन्तर उससे अन्न उत्पन्न किया। इन्हीं तीन तत्त्वोंसे सब पदार्थ उत्पन्न हुए। जगत्में जितनी वस्तुएँ हैं, सब तेज, जल और अन्न इन तीनोंके मिश्रणसे ही बनी हैं। जहाँ प्रकाश या गरमी है वहाँ तेज तत्त्वकी प्रधानता है जहाँ द्रव या प्रवाहीभाव है वहाँ जलकी प्रधानता है और जहाँ कठोरता है वहाँ अन्न या पृथ्वीकी प्रधानता है। अग्निमें जो लाल, श्वेत और कृष्ण वर्ण है उसमें ललाई तेजकी, सफेदी जलकी और श्यामता पृथ्वीकी है। यही बात सूर्य, चन्द्रमा और बिजलीमें है। यदि अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और बिजलीमेंसे तेज, जल और पृथ्वीको निकाल लिया जाय तो अग्निमें अग्निपन, सूर्यमें सूर्यपन, चन्द्रमामें चन्द्रपन और विद्युत्में विद्युत्पन कुछ भी नहीं रह जायगा। इसी प्रकार सभी वस्तुओंमें समझना चाहिये। खाये हुए अन्नके भी तीन रूप हो जाते हैं। स्थूल भाग विष्ठा बन जाता है, मध्यम भाग मांस बनता है और सूक्ष्म भाग मनरूप हो जाता है। इसी तरह जलके स्थूल भागसे मूत्र बनता है, मध्यम भागसे रक्त बनता है और सूक्ष्म भाग प्राण बनता है। इसी प्रकार तैल, घृत आदि तैजस पदार्थोंके स्थूल भागसे हड्डी बनती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यम भाग मज्जारूप हो जाता है और सूक्ष्म भाग वाणीरूप होता है। अतएव मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजमय है अर्थात् मन अन्नसे बनता है, प्राण जलसे बनता है और वाणी तेजसे बनती है।'

इसपर श्वेतकेतुने कहा—'हे पिताजी! मुझको यह विषय और साफ करके समझाइये।' उद्दालक आरुणि बोले—हे सौम्य! जैसे दही मथनेसे उसका सूक्ष्म सार तत्त्व नवनीत ऊपर तैर आता है इसी प्रकार जो अन्न खाया जाता है, उसका सूक्ष्म सार अंश मन बनता है। जलका सूक्ष्म अंश प्राण और तेजका सूक्ष्म अंश वाक् बनता है। असलमें ये मन, प्राण और वाणी तथा इनके कारण अन्नादि कार्य-कारण परम्परासे मूलमें एक ही सत् वस्तु ठहरते हैं। सबका मूल कारण सत् है, वही परम आश्रय और अधिष्ठान है। सत्के कार्य नाना प्रकारकी आकृतियाँ सब वाणीके विकार हैं, नाममात्र हैं। यह सत् अणुकी भाँति सूक्ष्म है, समस्त जगत्का आत्मारूप है, जैसे सर्पमें रज्जु कल्पित है, इसी प्रकार जगत् इस 'सत्'में कल्पित है। हे श्वेतकेतो! वह 'सत्' वस्तु तू ही है। 'तत्त्वमसि'

हे सौम्य! जैसे शहदकी मक्खी अनेक प्रकारके वृक्षोंके रसको एकत्र करके उसको एकरस करके शहदके रूपमें परिणत करती है, शहदरूपको प्राप्त रस जैसे यह नहीं जानता कि मैं आमके पेड़का रस हूँ या मैं कटहरके वृक्षका रस हूँ, इसी प्रकार सुषुप्ति कालमें जीव 'सत्' वस्तुके साथ एकीभावको प्राप्त होकर यह नहीं जानते कि हम सत्में मिल गये हैं। सुषुप्तिसे जागकर पुनः वे अपने-अपने पहलेके बाघ, सिंह, वृक, शूकर, कीट, पतङ्ग और मच्छरके शरीरको प्राप्त हो जाते हैं। यह जो सूक्ष्म तत्त्व है यही आत्मा है, यह सत् है और हे श्वेतकेतो! वह तू ही है। 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! मुझको फिर समझाइये।' आरुणि बोले—'हे सौम्य! जैसे समुद्रके जलसे ही बादलोंके द्वारा पुष्ट हुई गंगा आदि नदियाँ अन्तमें समुद्रमें ही मिलकर अपने नामरूपको त्याग देती हैं, यह नहीं जानतीं कि 'मैं गंगा हूँ, मैं नर्मदा हूँ' और सर्वथा समुद्रभावको प्राप्त हो जाती हैं। और फिर मेघके द्वारा वृष्टिरूपसे समुद्रसे बाहर निकल आती हैं किन्तु यह नहीं जानतीं कि हम समुद्रसे निकली हैं। इसी प्रकार ये जीव भी 'सत्' मेंसे निकलकर सत्में ही लीन होते हैं और पुनः उसीसे निकलते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि हम 'सत्' से आये हैं। और यहाँ वही बाघ, सिंह, वृक, शूकर, कीट, पतंग या मच्छर जो-जो पहले होते हैं वे हो जाते हैं। यह जो सूक्ष्म तत्त्व सबका आत्मा है, यह सत् है, यही आत्मा है और हे श्वेतकेतो! यह सत् तू ही है—तत्त्वमसि!'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! मुझे फिरसे समझाइये।' उद्दालक आरुणिने 'तथास्तु' कहकर समझाना शुरू किया—

हे सौम्य! बड़े भारी वृक्षकी जड़पर कोई चोट करे तो वह एक ही चोटमें सूख नहीं जाता, वह जीता है और उस छेदमेंसे रस झरता है। वृक्षके बीचमें छेद करनेपर भी वह सूखता नहीं, छेदमेंसे रस झरता है, इसी प्रकार अग्रभागपर चोट करनेसे भी वह जीता है और उसमेंसे रस टपकता है। जबतक उसमें जीवात्मा व्याप्त रहता है तबतक वह मूलके द्वारा जल ग्रहण करता हुआ आनन्दसे रहता है। जब इस वृक्षकी शाखाओंमें एक शाखासे जीव निकल जाता है तब वह सूख जाती है, दूसरीसे निकलनेपर दूसरी, और तीसरीसे निकलनेपर तीसरी सूख जाती है। और जब सारे वृक्षको जीव त्याग देता है तब वह सब-का-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब सूख जाता है । इसी प्रकार यह शरीर भी जब जीवसे रहित होता है तभी मृत्युको प्राप्त होता है । जीव कभी मृत्युको प्राप्त नहीं होता, यह जीवरूप सूक्ष्म तत्त्व ही आत्मा है । यह सत् है, यही आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! 'वह सत् तू ही है ।' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन् ! मुझे फिर समझाइये ।' पिता आरुणिने कहा—'अच्छा, एक बड़का फल तोड़कर ला ! फिर तुझे समझाऊँगा ।' श्वेतकेतु फल ले आया । पिताने कहा—'इसे तोड़कर देख इसमें क्या है ?' श्वेतकेतुने फल तोड़कर कहा—'भगवन् ! इसमें छोटे-छोटे बीज हैं ।' ऋषि बोले, 'अच्छा, एक बीजको तोड़कर देख उसमें क्या है ?' 'श्वेतकेतुने बीजको फोड़कर कहा—'इसमें तो कुछ भी नहीं दीखता ।' तब पिता आरुणि बोले—'हे सौम्य ! तू इस बट-बीजके सूक्ष्म भावको नहीं देखता, इस अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वसे ही महान् बटका वृक्ष निकलता है । बस, जैसे यह अत्यन्त सूक्ष्म बट-बीज बड़े भारी बटके वृक्षका आधार है, इसी प्रकार सूक्ष्म सत् आत्मा इस समस्त स्थूल जगत्का आधार है । हे सौम्य ! मैं सत्य कहता हूँ, तू मेरे वचनमें श्रद्धा रख । यह जो सूक्ष्म तत्त्व आत्मा है वह सत् है और यही आत्मा है । हे श्वेतकेतो ! वह 'सत्' तू ही है ।' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन् ! मुझको पुनः दूसरे दृष्टान्तसे समझाइये ।' उद्दालकने एक नमककी डली श्वेतकेतुके हाथमें देकर कहा—'वत्स ! इस डलीको अभी जलके भरे लोटेमें डाल दे और फिर कल सबेरे उस लोटेको लेकर मेरे पास आना ।' श्वेतकेतुने ऐसा ही किया । दूसरे दिन प्रातःकाल जब श्वेतकेतु जलका लोटा लेकर पिताके पास गया, तब उन्होंने कहा—'हे सौम्य ! रातको जो नमककी डली लोटेमें डाली, उसको जलमेंसे ढूँढ़कर निकाल तो दे, मैं उसे देखूँ ।' श्वेतकेतुने देखा, पर नमककी डली उसे नहीं मिली, क्योंकि वह तो जलमें गलकर जलरूप हो गयी थी । तब आरुणिने कहा—'अच्छा, इसमेंसे इस तरफसे थोड़ा-सा जल चखकर बता तो कैसा है ?' श्वेतकेतुने आचमन करके कहा—'पिताजी ! जल खारा है ।' आरुणि बोले—'अच्छा, अब बीचमेंसे लेकर चखकर बता ।' श्वेतकेतुने चखकर कहा—'पिताजी ! यह भी खारा है ।' आरुणिने कहा—'अच्छा ! अब दूसरी ओरसे जरा-सा पीकर बता कैसा स्वाद है ?' श्वेतकेतुने पीकर कहा—'पिताजी ! इधरसे भी स्वाद खारा ही है ।' अन्तमें पिताने कहा—'अब सब ओरसे पीकर, फिर जलको फेंक दे और मेरे पास चला आ ।' श्वेतकेतुने वैसा ही किया और आकर पितासे कहा—'पिताजी ! मैंने जो नमक जलमें डाला था, यद्यपि मैं अपनी आँखोंसे उसको नहीं देख पाता परन्तु जीभके द्वारा मुझको उसका पता लग गया है, कि उसकी स्थिति उस जलमें सदा और सर्वत्र है ।' पिताने कहा—'हे सौम्य ! जैसे तू यहाँ उस प्रसिद्ध 'सत्' नमकको नेत्रोंसे नहीं देख सका तो भी वह विद्यमान है इसी प्रकार यह सूक्ष्म तत्त्व आत्मा है । वह सत् है और वही आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वह आत्मा तू ही है ।' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी ! मुझे फिर उपदेश कीजिये ।' तब मुनि उद्दालक बोले—'सुन ! जैसे आँखोंपर पट्टी बाँधकर किसी मनुष्यको बहुत दूरके गान्धार देशसे लाकर किसी जङ्गलमें निर्जन प्रदेशमें छोड़ दे और वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चारों दिशाओंकी ओर देख-देखकर सहायताके लिये पुकार करके कहे कि 'मुझको आँखोंपर पट्टी बाँधकर किसीने यहाँ लाकर छोड़ दिया है' और जैसे उसकी करुण पुकारको सुनकर कोई दयालु पुरुष दयावश उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखोंकी पट्टी खोल दे और उससे कह दे कि 'गान्धार देश इस दिशामें है, तू इस रास्तेसे चला जा, वहाँ पहुँच जायगा।' और वह बुद्धिमान् अधिकारी पुरुष एक गाँवसे दूसरे गाँव पूछपरछ करता हुआ आखिर अपने गान्धार देशको पहुँच जाता है। इसी प्रकार—अज्ञानकी पट्टी बाँधे हुए काम, क्रोध, लोभादि चोरोंके द्वारा संसाररूपी भयङ्कर वनमें छोड़ा हुआ जीव ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके दयापरवश हो बतलाये हुए मार्गसे चलकर अविद्याके फन्देसे छूटकर अपने मूल स्वरूप 'सत्' आत्माको प्राप्त हो जाता है। यह जो सूक्ष्म तत्त्व है, सो आत्मा है। वह सत् है, वही आत्मा है, हे श्वेतकेतो! वह सत् आत्मा तू ही है। 'तत्त्वमसि'

इस प्रकार पिता उद्दालक आरुणिके उपदेशसे श्वेतकेतु आत्माके अपरोक्ष ज्ञानको प्राप्त होकर कृतार्थ हो गया।

(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

सत्पुरुषोंके लक्षण

भीष्मपितामह धर्मराज युधिष्ठिरसे कहते हैं—

अब मैं उन पुरुषोंके लक्षण बतलाता हूँ जिनका संग करनेसे पुनर्जन्मका भय नहीं रहता अर्थात् जीव मुक्त हो जाता है। "वे पुरुष मांसाहार नहीं करते, प्रिय और अप्रियको समान मानते हैं, शिष्ट पुरुषोंका आचार उन्हें प्रिय लगता है, इन्द्रियाँ सदाके लिये उनके वशमें हो गयी हैं, वे सुख-दुःखको समान समझते हैं, सत्यके परायण रहते हैं, दान देनेवाले होते हैं, किसीका प्रतिग्रह नहीं लेते, दयालु होते हैं, पितर, देवता और अतिथियोंका सत्कार करते हैं, सबका भला करनेकी चेष्टा करते हैं, परोपकारी, वीर और धर्मका पालन करनेवाले होते हैं, प्राणिमात्रका हित करते हैं, काम पड़नेपर सर्वस्व दे डालते हैं, उन्हें अपने मार्गसे कोई भी नहीं डिगा सकता, उनका व्यवहार धर्ममय होता है, वे प्राचीन सत्पुरुषोंके किये हुए आचरणोंका खण्डन नहीं करते, किसीको त्रास नहीं देते, चञ्चलबुद्धि नहीं होते, भयानक नहीं होते, सन्मार्गपर स्थित रहते हैं, उनमें अहिंसाकी प्रतिष्ठा होती है, वे काम, क्रोध, ममता और अहंकारसे रहित होते हैं, मर्यादामें स्थिर रहते हैं, वे धन या कीर्तिके लिये धर्मका पालन नहीं करते, बल्कि स्नान-भोजनादि शारीरिक क्रियाओंके समान धर्मपालन उनका स्वाभाविक कार्य होता है, उनमें भय, क्रोध, चपलता और शोक नहीं होता, वे धर्मपालनका ढोंग नहीं करते, न कोई उनका कार्य गुप्त होता है। उनमें लोभ, मोह नहीं होता, वे सत्यवादी और सरल होते हैं, वे न लाभमें हर्षित होते हैं और न हानिमें व्यथित। सदा सत्त्वगुणमें स्थित और समदर्शी होते हैं, उन्हें लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय और जीवन-मृत्यु समान होते हैं, वे दृढ़ पराक्रमी, श्रेयकामी और सत्त्वमार्गपर स्थित होते हैं।" ऐसे सत्पुरुषोंकी प्रेम और श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिये और यदि कुछ सन्देह हो तो इन्हींसे पूछना चाहिये।

(महाभारत शान्तिपर्व)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामाष्टक

(१)

रघुनंदन कौशल्य चंद हरे, जय राम हरे सुखधाम हरे ।
जगदीश सच्चिदानंद हरे, जय राम हरे सुखधाम हरे ॥
अविनाशी, आनँदकंद हरे, लीलामय-ललित ललाम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(२)

दुःखभंजन, आरतपाल हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ।
जनरंजन, दीनदयाल हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥
करुणाकर, सहज-कृपाल हरे, गुण आगर गुण-गण-ग्राम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(३)

जगनायक, जगदाधार, प्रभो, जगत्रायक, जगदातार प्रभो ।
प्रियदर्शी, प्रेमागार प्रभो, कोमल, करुणा-भंडार प्रभो ॥
मुख मंजुल मंगलकार प्रभो, जय सुंदर-श्याम-निकाम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(४)

वह प्रेम मुझे दो प्रेमनिधे, जो बुद्धि, ज्ञान-गरिमा हर ले ।
अविचल श्रद्धासे, भक्तीसे, सरवस्व तुम्हें अरपण करके ॥
केवल तुमसे लौ लगी रहे, गुण-गान करूँ, निष्काम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(५)

वह हृदय मुझे दो हृदयेश्वर, तृणवत संसार तजे नश्वर ।
चरणोंमें तुम्हारे रत होकर, भज ले मन सुखद, सरस, सुंदर ॥
जनमन-मोहन पावन अघहर, मद-मत्सर-मोचन नाम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(६)

वह आँख मुझे दो जगतपते, जो 'सियाराममय' जगत लखे ।
प्रत्येक वस्तु जड, चेतनमें, वह रूप माधुरी दर्शन दे ॥
हर स्वाससे पुण्य नाम निकले, हर रोम-रोमसे राम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(७)

चरणोंका रामके स्मरण करूँ, चरणोंमें रामके रमण करूँ ।
चरणोंका रामके मनन करूँ, चरणोंकी रामके शरण गहूँ ॥
मन, वच, कायासे भजन करूँ, जय रविकुल-भूषण राम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

(८)

नैनोंमें रमो आभा बनकर, हिय आन बसो प्रतिभा बनकर ।
जिह्वापै रहो विद्या बनकर, इस दिलमें रहो इच्छा बनकर ॥
छा जाओ अटल श्रद्धा बनकर, 'बेकल' के प्राणाराम हरे ।
जय राम हरे, जय राम हरे, जय राम हरे, सुखधाम हरे ॥

श्रीरामपदाम्बुजानुरागी 'बेकल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

गार्गी–हे ब्राह्मणो ! आप सब मेरा वचन सुनिये, मुनि याज्ञवल्क्यजीसे मैं दो प्रश्न करती हूँ, यदि ये मेरे दोनों प्रश्नोंका उत्तर दे देंगे तो आप सब ब्राह्मणोंमेंसे कोई भी इनको जीत न सकेंगे। इसलिये आप सब ब्राह्मण मुझे प्रश्न करनेकी आज्ञा दीजिये।

डोरूशङ्कर–हे देवि ! ब्राह्मणोंकी आज्ञा विना ही गार्गीने प्रश्न क्यों नहीं किया ?

देवी–हे वत्स ! ब्राह्मणोंसे गार्गीने जो आज्ञा ली, उसका कारण यह था, कदाचित् कोई ब्राह्मण अपने मनमें प्रश्न आरम्भ करना चाहते हों और बीचमें मुझ स्त्रीके प्रश्नको सुनकर वह क्रोधित होकर मुझे शाप दे डालें, इसलिये ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मैं प्रश्न करूँ, ऐसा विचारकर बुद्धिमती गार्गी ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेने लगी। जब ब्राह्मणोंने प्रश्न करनेकी आज्ञा दे दी, तब गार्गी इस प्रकार कहने लगी—

गार्गी–हे याज्ञवल्क्य ! इस लोकमें जैसे आप प्रसिद्ध हैं, इसी प्रकार मैं गार्गी भी प्रसिद्ध हूँ, जैसे आप अधिक बुद्धिमान् हैं इसी प्रकार मैं गार्गी भी अधिक बुद्धिवाली हूँ। क्योंकि नीतिशास्त्रमें पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीमें बुद्धि, अविवेक, धैर्य, काम तथा क्रोध ये पाँच गुण अधिक कहे हैं। सब स्त्रियोंमें सरस्वतीके समान मैं तीक्ष्ण बुद्धिवाली हूँ।

याज्ञवल्क्य—हे गार्गि ! तेरी ऐसी कैसी बुद्धि है कि जिस बुद्धिके कारण तू अपनेको सबसे अधिक बुद्धिवाली मानती है ?

गार्गी–हे याज्ञवल्क्य ! सब जगत्में आत्मबुद्धि ही मेरी अधिकताका कारण है, इसलिये मैं सब जगत्को पुरुषभावसे रहित मानती हूँ। एक अपनेको ही पुरुष मानती हूँ, क्योंकि जगत्में जितने स्त्री, पुरुष, नपुंसक हैं, उन सबको मैं आत्मरूपसे देखती हूँ, इससे सिद्ध होता है कि जिसको सर्वव्यापकरूप आत्माका ज्ञान है, वही पुरुष है। जिसको व्यापकरूप अद्वितीय आत्माका ज्ञान नहीं है, वह अज्ञानी जीव नपुंसक है अथवा स्त्रीरूप है।

अज्ञानीमें नपुंसकपना

हे याज्ञवल्क्य ! शक्तिहीनको लोकमें नपुंसक कहते हैं, इस प्रकारके नपुंसकका लक्षण अज्ञानी जीवमें ही घटता है क्योंकि अज्ञानी जीव अत्यन्त समीप तथा हृदयाकाशमें स्थित आनन्दस्वरूप आत्माके जाननेको समर्थ नहीं होता इसलिये अज्ञानी जीव नपुंसक है।

अज्ञानी जीवोंमें स्त्रीपना

हे याज्ञवल्क्य ! उच्च स्तनोंवाली मैं गार्गी स्त्री नहीं हूँ किन्तु जिस पुरुषको आनन्दस्वरूप आत्माका ज्ञान नहीं है, वह अज्ञानी पुरुष ही स्त्री है क्योंकि जैसे लोकप्रसिद्ध स्त्रीके अपनेसे भिन्न पति होता है और वह सर्वदा पतिके अधीन रहती है, कभी स्वतन्त्र नहीं होती, इसी प्रकार अज्ञानी जीवको भी अपनेसे भिन्न पति है, अज्ञानी जीवरूप स्त्री सर्वदा अपने पतिके अधीन रहता है, इसलिये अज्ञानी जीव स्त्री है। हे याज्ञवल्क्य ! स्त्रियोंमें भी अज्ञानी जीव वाराङ्गना स्त्रीके समान है क्योंकि जैसे वाराङ्गना स्त्रीके अनेक पति होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार अज्ञानी जीवरूप स्त्रीको भी काम,क्रोध, लोभ तथा मोहादि अनेक पति भोगते हैं, इसलिये सब अज्ञानी जीव वाराङ्गनाके समान हैं। और मुझमें काम-क्रोधादि नहीं हैं, इसलिये मैं ही पुरुष हूँ। जैसे लोकप्रसिद्ध स्त्री पुरुषके सम्बन्धसे गर्भ धारण करती है, इसी प्रकार अज्ञानी जीव भी कालरूप 'पुरुषके सम्बन्धसे सातवीं धातु वीर्य-रूप गर्भको धारण करता है, इसलिये अज्ञानी जीव स्त्री है।

गार्गीमें कामादिका अभाव

हे याज्ञवल्क्य ! मैं गार्गी पूर्ण यौवनावस्थामें हूँ और समस्त युवा पुरुषोंके मध्यमें स्थित हूँ तो भी मैं किंचित् भी कामादि विकारोंको प्राप्त नहीं होती। हे याज्ञवल्क्य ! जैसे एकान्त देशमें स्त्री नग्न होती है, इसी प्रकार इस सभाके मध्यमें मैं नग्न खड़ी हूँ, ये सब ब्राह्मण कामादि विकारके भयवाले हैं, इसलिये वे मेरी तरफ नहीं देखते। और मेरा देहाभिमान निवृत्त हो गया है, इसलिये सब ब्राह्मणोंको मैं नेत्रोंसे देखती हूँ, हाथोंसे स्पर्श करती हूँ, तो भी मुझमें किंचित् कामादि विकार नहीं है, इसलिये मैं स्त्री नहीं हूँ, अज्ञानी जीव ही स्त्री है।

याज्ञवल्क्य–हे गार्गि ! यद्यपि शास्त्रदृष्टिसे तुझमें स्त्रीपना नहीं है किन्तु लौकिकदृष्टिसे तो तुझमें स्त्रीपना है ही।

गार्गी–हे याज्ञवल्क्य ! लौकिकदृष्टिसे भी स्त्री शब्दका अर्थ जिसमें घटता हो, वही स्त्री है। मुझमें स्त्री शब्दका अर्थ नहीं घटता, इसलिये मैं स्त्री नहीं हो सकती। व्याकरणकी रीतिसे स्त्री शब्दका अर्थ इस प्रकार है—बुद्धिमान् उस प्राणीको स्त्री कहते हैं जिस प्राणीमें 'मैं वधूरूप हूँ, यौवनावस्थासे युक्त हूँ, सुन्दर स्तनवाली हूँ, इस लोकमें मेरे समान कोई सुन्दर स्त्री नहीं है, यह मेरा पति है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है, यह धन और अन्न मेरे घरमें है, मैं बाँझ हूँ, मैं अनेक कुटुम्बवाली हूँ' इत्यादि अहं-मम अभिमानसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके शब्दसमूह जिस अज्ञानी जीवमें रहते हैं, वह अज्ञानी जीव ही इस लोकमें स्त्री है। जो प्राणी आनन्दस्वरूप आत्माके ज्ञानसे पूर्ण है, उस प्राणीको श्रुति पुरुषरूप कहती है। आत्मज्ञानयुक्त प्राणी शरीरसे स्त्री हो, पुरुष हो अथवा नपुंसक हो, इससे ज्ञानमें किंचित् भी हानि नहीं पहुँचती। आत्मज्ञानवाला सर्वथा पुरुष है। जैसे एक नट अपनी मायासे स्त्रीको मोहनेवाले सुन्दर पुरुषका रूप धारण करता है, तथा क्षणमात्रमें वही नट पुरुषके धैर्यको नाश करनेवाली सुन्दर स्त्रीका रूप धारण कर लेता है और इसके बाद दूसरे ही क्षणमें नपुंसक रूप धारण करता है। किन्तु इन स्त्री आदि कल्पित रूपोंसे नटका अपना पूर्वस्वरूप अन्यथाभावको प्राप्त नहीं होता, इसी प्रकार एक ही आनन्दस्वरूप आत्मा अपनी मायासे कभी पुरुषशरीर, कभी स्त्रीशरीर और कभी नपुंसक-शरीर धारण करता है किन्तु इस कल्पित शरीर-रूप उपाधिसे आत्माके वास्तविक एकपनेकी निवृत्ति नहीं होती। जैसे एक ही पुरुष निद्राके दोषसे स्वप्नमें पुरुष, स्त्री, हाथी, घोड़ा इत्यादि अनेक रूपोंको प्राप्त होता है किन्तु इन कल्पित रूपों-से स्वप्नद्रष्टा पुरुषका वास्तविक स्वरूप निवृत्त नहीं होता, इसी प्रकार एक ही परमात्मा अपनी मायासे स्त्री, पुरुष, नपुंसक, हाथी, घोड़ा इत्यादि अनेक रूप धारण करता है। किन्तु इन रूपोंसे आत्माका वास्तविक स्वरूप निवृत्त नहीं होता। इसलिये हे याज्ञवल्क्य ! आत्मज्ञानरूपी पुरुषभावसे तथा सर्वज्ञतासे मैं गार्गी वाक्‌रूपी धनुषमें प्रश्नरूपी दो बाण धारण करके आपको मारने आयी हूँ, इसलिये यदि वादरूपी युद्धमें आपका सामर्थ्य हो तो धैर्य धारण करके मेरे साथ युद्धमें प्रवृत्त होइये। यदि आपमें वादरूपी युद्ध करनेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य न हो, तो मेरे सामने नम्रताभाव धारण कीजिये। इन दोनों बातोंमेंसे जो आपको अच्छी लगे, वही कीजिये! जैसे काशिराज दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन अकेला ही धनुष-बाण लेकर इन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिये स्वर्गमें गया था और जैसे जनक सुवर्ण, मणि तथा लोहमय तीक्ष्ण बाण हाथमें लेकर शत्रुओंको पीड़ा देनेके लिये युद्धमें शत्रुओंके सामने खड़ा रहा, इसी प्रकार धैर्य धारण करके मैं गार्गी प्रश्नरूपी बाणोंसे आपको मारनेके लिये आयी हूँ, इसलिये इन प्रश्नोंका उत्तर यदि आप जानते हों तो मुझसे कहिये।

जब इस प्रकारके वचन गार्गीने याज्ञवल्क्यसे कहे तो याज्ञवल्क्य कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे गार्गि! तुझे जो प्रश्न करने हों, निःशंक होकर कर! इस प्रकार मुनिके वचन सुनकर गार्गी कहने लगी—

गार्गी—हे याज्ञवल्क्य! जिस सूत्रात्माका स्वरूप शास्त्रवेत्ताओंने ब्रह्माण्डसे ऊपर अर्थात् कपालके ऊपर स्थित कहा है, जिस सूत्रात्माका स्वरूप ब्रह्माण्डके नीचे अर्थात् कपालके नीचेके भागमें स्थित कहा है, जिस सूत्रात्माका स्वरूप दो ब्रह्माण्डरूपी कपालोंके मध्यभागमें कहा है और जिस सूत्रात्माका स्वरूप शास्त्रवेत्ताओंने भूत, भविष्य तथा वर्तमानस्वरूपसे सर्वप्रपञ्चरूप कहा है वह सूत्रात्मा किसमें ओतप्रोत है?

डोरूशङ्कर—हे देवि! यह प्रश्न तो पहले गार्गीने किया था और मुनिने इस प्रश्नका उत्तर भी दिया था, अब वही प्रश्न गार्गीने फिर क्यों किया?

देवी—हे वत्स! पूर्वमें अनुमानरूपी तर्कको ग्रहण करके गार्गीने यह प्रश्न किया था और अब शास्त्रकी रीति ग्रहण करके गार्गीने प्रश्न किया है। इस प्रकारकी विलक्षणता जनानेके लिये पूर्वोत्तर प्रश्नोंमें शब्दोंका भेद गार्गीने रक्खा है।

जब इस प्रकारका प्रश्न गार्गीने किया तो मुनि कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे गार्गि! सूत्रात्मारूप कार्यका जो स्वरूप कहा है, वह सूत्रात्मारूप कार्य आवरण-विक्षेप शक्तिवाले अव्याकृतरूप आकाशमें ओत-प्रोत है।

इस प्रकारका उत्तर जब याज्ञवल्क्यने दिया तो गार्गी उनको नमस्कार करके कहने लगी—

गार्गी—हे मुने! प्रथम प्रश्नका उत्तर तो आपने मुझसे कहा, अब मैं दूसरा प्रश्न करती हूँ, आप सावधान होकर इस प्रश्नका उत्तर दीजिये।

जब गार्गीने इस प्रकार कहा तो याज्ञवल्क्य कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे गार्गि! तू निःशंक होकर प्रश्न कर!

मुनिके इस वचनको सुनकर प्रथम प्रश्नमें जिस सूत्रात्माका आधार पूछा था, वही प्रश्न गार्गी फिर पूछने लगी। मुनिने भी प्रथम प्रश्नके उत्तरमें सूत्रात्माके अव्याकृतरूप आकाशको जो आधार कहा था, वही आधार दूसरे प्रश्नके उत्तरमें कहा।

डोरूशङ्कर—हे देवि! प्रथम प्रश्नको दूसरी वार पूछनेमें गार्गीका क्या अभिप्राय था?

देवी—हे वत्स! जिस अभिप्रायको लेकर गार्गी-ने प्रथम प्रश्न दूसरी बार किया, उस अभिप्रायको तू सुन, जैसे घर केवल स्तम्भके आधारपर नहीं रहता किन्तु स्तम्भ तथा भीतके आधारपर रहता है, इसी प्रकार सूत्रात्मारूप कार्य भी अव्याकृत आकाशमें तथा अन्य किसी कारणमें रहता होगा। इस प्रकार-के अभिप्रायको लेकर गार्गी प्रथम प्रश्नको दूसरी बार पूछने लगी—

डोरूशङ्कर—हे देवि! तब मुनिने प्रथम प्रश्नका उत्तर ही दूसरी बार क्यों कहा?

देवी—हे वत्स! जिस अभिप्रायसे मुनिने प्रथम प्रश्नका उत्तर ही दूसरी बार कहा, वह अभिप्राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि सूत्रात्मारूप कार्य अव्याकृत आकाश-के सिवा किसी अन्यके आश्रय नहीं रहता। जैसे मेघ केवल भूताकाशके आश्रित होकर ही रहते हैं, इसी प्रकार सूत्रात्मारूप कार्य भी केवल अव्याकृत-रूप आकाशके आश्रय ही रहता है। इस अभिप्राय-से मुनिने प्रथम उत्तर ही फिर कहा, यह उत्तर सुनकर गार्गी पूछने लगी—

गार्गी—हे मुने! अव्याकृतरूप आकाश किसमें ओतप्रोत होकर रहता है?

देवी—हे वत्स! यह प्रश्न करनेमें गार्गीका यह अभिप्राय है कि अव्याकृतरूप आकाशका अधिष्ठान आत्मा मन तथा वाणीका अविषयरूप है इसलिये यदि आत्माके स्वरूपको मुनि न कहेंगे, तो अप्रतिभारूप निग्रहस्थानको प्राप्त होंगे। यदि मुनि मन तथा वाणीके अविषयरूप आत्माको कहेंगे, तो विप्रतिपत्तिरूप विग्रहस्थानको प्राप्त होंगे। दोनों प्रकारसे मुनिका पराजय होगा। कथन करनेयोग्य अर्थके अज्ञानको अप्रतिभा कहते हैं और विरुद्ध कथनको विप्रतिपत्ति कहते हैं और पराजयके कारणको निग्रहस्थान कहते हैं। इस प्रकारका जब गार्गीने प्रश्न किया तो मुनि कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे गार्गि! सब लोगोंकी बुद्धिके साक्षी तथा नित्य अपरोक्ष आत्मारूप अक्षरमें अव्याकृत आकाश ओतप्रोत होकर रहता है। यहाँ अव्याकृत आकाश शब्दसे मूलाज्ञानका ग्रहण है। यह मूलाज्ञान जीव तथा ईश्वरके आश्रित होकर नहीं रहता, किन्तु जीव तथा ईश्वर-विभागसे रहित शुद्ध चैतन्यके आश्रित होकर रहता है। यह शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है तथा उत्पत्ति-नाशसे रहित है। इसलिये शुद्ध आत्मा अक्षररूप है। आत्मारूप अक्षरके आश्रित अव्याकृत आकाश रहता है।

अक्षरात्माका स्वरूप

हे गार्गि! घट बिल्वफलकी अपेक्षासे स्थूल होता है और पर्वतकी अपेक्षासे सूक्ष्म होता है। इस प्रकार जितने स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ हैं, उन सबसे अक्षरात्मा विलक्षण है। और तृणके समान जितने छोटे पदार्थ हैं और तालवृक्षके समान जितने बड़े पदार्थ हैं, उन सब ह्रस्व-दीर्घ पदार्थोंसे अक्षरात्मा विलक्षण है। अग्निके समान जितने रक्त वर्णवाले पदार्थ हैं और जलके समान जितने द्रव पदार्थ हैं, उनसे भी अक्षरात्मा विलक्षण है। और भूमिकी छायासदृश जितने कृष्ण वर्णवाले पदार्थ हैं, उनसे भी अक्षरात्मा विलक्षण है। तमाल-वृक्षके समान श्याम तथा अन्धकारके समान नेत्रके विरोध करनेवाले जितने पदार्थ हैं, उनसे भी अक्षरात्मा विलक्षण है। यह अक्षरात्मा गतिसे रहित है, इसलिये गतिमान् वायुसे विलक्षण है। यह अक्षरात्मा छिद्रसे रहित है, इसलिये छिद्रवाले आकाशसे विलक्षण है। यह अक्षरात्मा अमूर्त तथा असंग है, इसलिये मूर्त-संगवान् पदार्थोंसे भी विलक्षण है। यह अक्षरात्मा मधुर आदि रसोंसे रहित है, इसलिये मधुर रसवाले जलसे भी विलक्षण है। यह अक्षरात्मा गन्धसे रहित है, इसलिये गन्धवाली पृथिवीसे भी विलक्षण है। इस अक्षरात्माका स्वरूप पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ नहीं हैं। इस अक्षरात्माका स्वरूप मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार ये चारों अन्तःकरण नहीं है। और इस अक्षरात्माका स्वरूप प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ये पाँच प्राण भी नहीं है। मोक्षपर्यन्त स्थितिवाला तथा दोनों लोकोंमें गमन करनेवाला सूक्ष्मशरीर भी अक्षरात्माका स्वरूप नहीं है। अद्वितीय आत्माका भेद करनेवाला अविद्यारूप कारणशरीर भी अक्षरात्माका स्वरूप नहीं है। यदि यह अक्षरात्मा केवल अन्दर ही हो, तो बाहरके पदार्थोंको कौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश करेगा? और यदि अक्षरात्मा केवल बाहर ही हो, तो अन्दरके पदार्थोंको कौन प्रकाश करेगा? आत्माके सिवा सब पदार्थ जडरूप हैं। इसलिये उनमें प्रकाश सम्भव नहीं है। यह अक्षरात्मा अपने प्रकाशरूपसे अन्दर तथा बाहर सब पदार्थोंको प्रकाशता है। इसलिये सबका साक्षी अक्षरात्मा अन्तर तथा बाह्यपनसे रहित है, यह अक्षरात्मा निर्विकारी तथा संगसे रहित है, इसलिये भोक्तापन और भोग्यपनसे रहित है, जैसे आकाश-में मेघोंका समूह तथा अन्धकार प्रतीत होता है और जैसे रज्जुमें सर्प-दण्डादि प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार इस अक्षरात्मामें यह सब जगत् प्रतीत होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे मेघादिसे आकाशका भेद नहीं होता और जैसे कल्पित सर्पादिसे रज्जुका भेद नहीं होता, इसी प्रकार कल्पित प्रपञ्चसे अधिष्ठानरूप अक्षरात्माका भेद नहीं होता। इसलिये अक्षरात्मा सब भेदोंसे रहित है। इस प्रकार सब उपाधियोंसे रहित अक्षरात्माका स्वरूप है। जिसने अक्षरात्माके स्वरूपका निश्चय नहीं किया है, उसको माया-विशिष्ट अन्तर्यामीको जतलानेवाले लिङ्ग देखने चाहिये। जो वस्तु अप्रत्यक्ष पदार्थको जतलावे उसको लिङ्ग कहते हैं। जैसे कि पर्वतमें अप्रत्यक्ष अग्निको धूमरूप लिङ्ग जतलाता है, जैसे चाकर नियमसे राजाकी आज्ञानुसार बर्तते हैं, इसी प्रकार ये सूर्य, चन्द्र आदि भी नियमसे जगत्के व्यवहारको चलाते हैं। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि कोई सर्वज्ञ परमात्मा सूर्य-चन्द्र आदिका अधिपति है जिसकी आज्ञासे सूर्य-चन्द्र आदि नियमानुसार बर्तते हैं। इसलिये सूर्य-चन्द्र आदिकी नियमपूर्वक प्रवृत्ति अन्तर्यामीका सूचन करती है। जो-जो पदार्थ गुरुत्वधर्मवाला होता है, उसका बिना आधारके नीचे पतन होता है। जैसे गुरुत्वधर्मवाले वस्त्रादि पुरुषरूप आधार बिना नीचे गिर जाते हैं, इसी प्रकार सब भूतप्राणियोंके भारको धारण करनेवाली पृथिवी तथा स्वर्ग ये दोनों गुरुत्वधर्मवाले हैं किन्तु उनका पतन नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि कोई सर्वज्ञ परमात्मा पृथिवी तथा स्वर्गको धारण करनेवाला है। इसलिये गुरुत्वधर्मवाली पृथिवी तथा स्वर्गकी स्थिति भी परमात्माको जतलाने-वाला लिङ्ग है। जैसे राजासे प्रेरणा किया हुआ कर्मचारी नियमयुक्त कार्य करता है, इसी प्रकार निमेषसे लेकर संवत्सरपर्यन्त जितने मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, मास तथा ऋतुरूप काल है, वह नियमसे सब प्राणियोंका हित तथा अहित करता रहता है और सब पदार्थोंके आयुष्यकी गणना करता है, इससे सिद्ध होता है कि कोई सर्वज्ञ परमात्मा कालको प्रेरणा करनेवाला है। इसलिये नियमपूर्वक कालकी प्रवृत्ति भी परमात्माकी सूचना देनेका लिङ्ग है। हिमालयपर्वतमेंसे निकली हुई अनेक गंगा आदि नदियोंका प्रवाह जिस-जिस दिशामें होता है, उस-उस दिशामें चलता ही रहता है, कदापि उसका अन्यथाभाव नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि कोई सर्वज्ञ परमात्मा गंगा आदि नदियोंको नियमसे चलाता है, इसलिये गंगा आदि नदियोंका प्रवाह अन्तर्यामी परमात्माका सूचन करनेवाला लिङ्ग है। शास्त्रकी रीतिके अनुसार दान करनेवाले धर्मात्माकी प्रामाणिक शिष्ट पुरुष स्तुति करते हैं और इस धर्मात्माको शिष्ट पुरुष आश्रय देते हैं। जो पुरुष प्रमादसे द्यूतादि व्यसनमें द्रव्य खर्च करता है, उस प्रमादी पुरुषकी प्रामाणिक शिष्ट पुरुष उपेक्षा तथा निन्दा करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि कोई कर्मके फलका देनेवाला सर्वज्ञ परमात्मा है। उसके भयसे प्रामाणिक पुरुष धर्मात्माको आश्रय देते हैं और उसकी स्तुति करते हैं। यदि सर्वज्ञ परमात्मा अंगीकार न किया जाय, तो जैसे प्रमादी पुरुषकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रामाणिक शिष्ट पुरुष उपेक्षा करते हैं तथा निन्दा करते हैं, इसी प्रकार धर्मात्मा पुरुषकी प्रामाणिक पुरुष उपेक्षा और निन्दा करें। इसलिये प्रामाणिक शिष्ट पुरुषोंका व्यवहार भी सर्वज्ञ परमात्माके जतलानेमें लिङ्गरूप है। यज्ञकर्ता पुरुषको देवता आश्रय देते हैं और श्राद्धादिकर्ता पुरुषको पितर आश्रय देते हैं, इसलिये सब कार्योंमें समर्थ देवोंका तथा पितरोंका जीवन मनुष्यके अधीन है। यह भी सर्वज्ञ परमात्माके जतलानेमें लिंगरूप है। इसलिये जिस अक्षर परमात्माके आश्रित अव्याकृत आकाश मैंने पूर्व कहा था, उस अक्षरात्माकी आज्ञामें सब जगत् वर्तता है। इस अक्षरात्माको न जानकर जो पुरुष, यज्ञ, दान, तप, होम इत्यादि अनेक कर्म दीर्घकालतक करता है, उस अज्ञानी जीवको यज्ञादि कर्म नाशवान् फलकी प्राप्ति करते हैं। भाव यह है कि जिस परमात्माने यह नियम किया है कि मेरे स्वरूपके ज्ञान बिना समस्त यज्ञादि कर्म नाशवान् फल उत्पन्न करें और मेरे ज्ञानसे अखण्ड फलकी प्राप्ति हो, उस परमात्मामें असंभावना करनी योग्य नहीं है। जैसे कृमिवाले श्वानको देखकर सब लोग शोक करते हैं, इसी प्रकार अधिकारी मनुष्य-शरीरको पाकर अक्षरात्माको जाने बिना जो पुरुष मर जाता है, वह कृपण है और सब लोगोंके शोकका विषयरूप है। जो पुरुष अक्षरात्माको जानकर शरीरका त्याग करता है, वही इस लोकमें कृतकृत्य है और वह पुरुष ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है।

डोरूशङ्कर–हे देवि! गार्गीको याज्ञवल्क्यने जिस प्रकार अक्षरात्माके ज्ञानका उपदेश किया, इसी प्रकार अक्षरात्माके ज्ञानके साधनोंका उपदेश क्यों नहीं किया?

देवी–हे वत्स! गुरुमुखसे वेदान्त शास्त्रका श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ये तीन अक्षरात्माके ज्ञानके साधन हैं। ये श्रवणादि साधन पूर्वमें कहोल ब्राह्मणसे मुनि कह चुके थे और गार्गीने भी साधनोंका श्रवण किया था। इसलिये मुनिने फिर गार्गीसे श्रवणादि साधन नहीं कहे। अथवा जैसे अन्धी वृद्धकुमारीसे जब इन्द्रने फल माँगनेको कहा तो उस वृद्धकुमारीने प्रथमसे ही यह वरदान माँगा कि मेरा लड़का सुवर्णके पात्रमें दूध पिये और मैं देखूँ। इस प्रकारके वचनसे उस अन्धी वृद्धकुमारीने पति, पुत्र, धन, नेत्र इत्यादि सभी पदार्थ माँग लिये। इसी प्रकार ब्रह्मसाक्षात्काररूप फलके कहनेसे मुनिने श्रवणादि सर्व साधनोंका निरूपण कर दिया।

डोरूशङ्कर–हे देवि! मायाविशिष्ट अन्तर्यामीका स्वरूप मुनिने पूर्वमें उद्दालकसे कहा था और गार्गी भी सुन चुकी थी, अब पूछे बिना ही मुनिने गार्गीसे अन्तर्यामीका स्वरूप फिर क्यों कहा?

देवी–हे वत्स! जिस अभिप्रायसे मुनिने अन्तर्यामीका स्वरूप फिर वर्णन किया, उस अभिप्रायको सुन। उद्दालक ब्राह्मणके दूसरे प्रश्नके विचारमें जिस अन्तर्यामीके स्वरूपका वर्णन किया, वह अन्तर्यामी अक्षरात्मासे भिन्न नहीं है किन्तु वह अन्तर्यामी अक्षरात्मारूप है। भाव यह है कि शुद्ध आत्माको अक्षर कहते हैं। यह शुद्ध आत्मा ही जब मायारूप उपाधिको अंगीकार करके जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय, नियमन तथा प्रवेश आदि कार्य करता है, तब उस अक्षरात्माको अन्तर्यामी कहते हैं, इसलिये अक्षरात्मासे अन्तर्यामी भिन्न नहीं है। यह अर्थबोधन करनेके लिये मुनिने अन्तर्यामीके स्वरूपका फिर निरूपण किया है।

याज्ञवल्क्य–हे गार्गि! यह अक्षरात्मा नेत्रादि सर्व दृश्यप्रपञ्चका साक्षीरूप है इसलिये अक्षरात्माको नेत्रादि दृश्यप्रपञ्च जान नहीं सकता। जैसे मृत्तिकासे घट भिन्न नहीं होता, इसी प्रकार द्रष्टा, श्रोता, मन्ता तथा विज्ञातारूप जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरात्मासे भिन्न नहीं है किन्तु यह जीव अक्षरात्मा-रूप है इसलिये स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चरूप विक्षेपका कारण तथा आत्माका आच्छादन करनेवाला अव्याकृत आकाश आत्मामें रहता है।

याज्ञवल्क्यरूपी मेघसे उत्पन्न हुए वाक्यरूप अमृत श्रद्धावान् पुरुषके कानोंके तापको हरण करनेवाले हैं, इसलिये अत्यन्त दुर्लभ हैं। ऐसे अमृतरूपी वचनोंको सुनकर गार्गी अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुई। कृपायुक्त होकर वह गार्गी सब ब्राह्मणोंसे कहने लगी—

गार्गी—हे ब्राह्मणो! आप सब ब्राह्मणोंकी सभामें मैं गार्गी पक्षपातसे रहित होकर एक वचन कहती हूँ, उसको आप सावधान होकर सुनिये। इस लोकमें यद्यपि मैंने अनेक प्रकारके पुरुष देखे हैं, तो भी याज्ञवल्क्यके समान मैंने कोई पुरुष नहीं देखा।

(क्रमशः)

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

यह भक्ति फलरूपा है

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।२५।

२५—वह (भक्ति) तो कर्म, ज्ञान और योग-से भी श्रेष्ठतर है।

कर्म, ज्ञान और योग तीनों ही भगवत्प्राप्तिके साधन हैं, परन्तु भक्ति इन तीनोंमें सबसे श्रेष्ठ है। उनमें वर्ण, आश्रम, अधिकार आदिका विचार है, साथ ही गिरनेका भय भी है, परन्तु सच्ची भक्तिमें भगवान्‌की पूरी सहायता रहनेके कारण कोई भी भय नहीं है। तथा इसमें स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभीका अधिकार है। गोसाईं तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

जे अस भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं॥
ते जड कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥
सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड करनी॥

उमा जोग जप दान तप, नाना ब्रत मख नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तस, जस निष्केवल प्रेम॥
पन्नगारि सुनु प्रेम सम, भजन न दूसर आन।
यह बिचारि मुनि पुनि-पुनि, करत राम-गुन-गान॥

स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। २०-२१)

जिस प्रकार मेरी दृढ़भक्ति मुझे वश करती है, उस प्रकार मुझको योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग वशमें नहीं कर सकते। सन्तोंका प्रिय आत्मारूप मैं केवल भक्तिके द्वारा वशमें हो सकता हूँ, मेरी भक्ति चाण्डाल आदिको भी पवित्रहृदय बनानेमें समर्थ है।

इसी प्रकार श्रीभगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
(६ । ४६-४७, ११ । ५३-५४)

योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है, सकाम कर्मियोंसे भी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन! तू योगी हो। सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मेरा भजन करता है, वह मेरे मतसे सर्वश्रेष्ठ—युक्ततम है। जैसा तुमने मुझको देखा है, ऐसा वेद, तप, दान, यज्ञ आदिसे मैं नहीं देखनेमें आता। हे परंतप अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा ही इस प्रकार मेरा देखा जाना, मुझे तत्त्वसे जानना और मुझमें प्रवेश पाना सम्भव है।

फलरूपत्वात् ॥ २६ ॥

२६—क्योंकि (भक्ति) फलरूपा है।

वस्तुतः यह भक्ति फलरूपा है। साधन नहीं है। जो भक्ति ज्ञानका साधन मानी जाती है, वह गौणी भक्ति साधारण उपासना है, प्रेमरूपा भक्ति नहीं है। प्रेमरूपा भक्ति तो समस्त साधनोंका फल है।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत नाना। संजम नेम ग्यान बिग्याना॥
भूतदया गुरु-द्विज-सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी॥

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च ॥ २७ ॥

२७—ईश्वरको भी अभिमानसे द्वेषभाव है और दैन्यसे प्रियभाव है।

कर्म, ज्ञान और योगके साधकोंको अपने बलका और साधनका अभिमान हो सकता है। भगवान्‌का तो नाम ही दर्पहारी है। यद्यपि वस्तुतः भगवान्‌का न किसीमें द्वेष है, न राग है। उनके लिये सभी समान हैं। वे सभीका उद्धार करते हैं। हाँ, उद्धारके साधन भिन्न-भिन्न हैं। अभिमानीका उद्धार उसे दण्ड देकर करते हैं और दीन सेवकका उसे प्रेमसे गले लगाकर। इसीसे भगवान्‌के क्रोधको भी वरके तुल्य बतलाया गया है। अभिमानीके प्रति भगवान् द्वेषीकी-सी लीला करते हैं और दीनके साथ प्रेमीकी-सी। इसीसे उनके नाम दीनबन्धु, अशरण-शरण और 'कङ्गालके धन' हैं। यथार्थमें तो अभिमानीके प्रति भी उनके हृदयमें प्रेम ही होता है, इसीलिये तो वे उसका अभिमान नष्ट करते हैं।

सुनहु रामकर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहि काऊ॥
संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना॥
तेहिते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवकपर ममता अति रूरी॥

इतना होनेपर भी दण्डमें द्वेष दीखता ही है, परन्तु दीन अमानी गरीबको तो आप हृदयसे लगा लेते हैं। उसका छोटे-से-छोटा काम करनेमें भी नहीं सकुचाते। भक्तजन तो स्वाभाविक ही अपनेको किंकर समझते हैं, वे कहते हैं—

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वथा।
पापपीनस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम॥

हे प्रभो! मुझ समस्त साधनोंसे हीन, मायाके सर्वथा पराधीन हुए पापोंसे लदे हुए दीनकी तो केवल तुम ही गति हो।

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतितपावन जग केहि अति दीन पियारे॥

यह दीनता उस अभावकी स्थितिका नाम नहीं है जिसमें मनुष्य धन, मान, वैभव आदिके अभावसे ग्रस्त होकर उनकी प्राप्तिके लिये व्याकुल रहा करता है। यह दीनता तो उस निरभिमानिता और अहङ्कार-शून्यताका नाम है जो बड़े-से-बड़े वैभवशाली सम्राट्‌को भी भगवत्कृपासे प्राप्त हो सकती है। इस दीनताका अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अभिमान और कर्तृत्व-अहंकारका नाश हो जाना। यह समझना कि मैं और मेरा कुछ भी नहीं है, जो कुछ है सो सब भगवान् है और सब भगवान्का है, सब कुछ उन्हींकी शक्ति और प्रेरणासे होता है, करने-करानेवाले वे ही हैं।

परन्तु भगवान्की प्यारी यह सच्ची दीनता सहज ही नहीं प्राप्त होती। अभिमानका सारा भूत उतरे बिना दीनता नहीं आती। वर्ण, जाति, धन, मान, विद्या, साधन, स्वास्थ्य आदिका अभिमान, और कर्तापनका अहंकार मनुष्यमें ऐसी दीनता उत्पन्न नहीं होने देता; ऊपरसे मनुष्य दम्भपूर्वक दीन बनता है, भगवान्के सामने अपनेको दीन कहता है, रोनेका स्वाँग भरता है, परन्तु उसकी दीनताकी परीक्षा तो तभी होती है, जब बड़े-से-बड़े सांसारिक पदार्थों और साधनोंकी प्राप्तिमें भी स्वाभाविक दीनता ज्यों-की-त्यों बनी रहे। जो सब लोगोंके सामने अपनेसे हीन स्थितिके दूसरे मनुष्योंद्वारा दीन और पापी कहा जाना केवल सह ही नहीं लेता, वरं उसे सत्य समझकर प्रसन्न होता है और प्रभु-प्राप्तिके लिये सदैव जिसका चित्त खिन्न रहा करता है, ऐसे ही खिन्न-दीन भगवान्को प्यारे होते हैं। सच्ची भक्तिमें अपने पुरुषार्थ या साधनका अभिमान आ ही नहीं सकता, इसीलिये भक्ति श्रेष्ठ है।

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥ २८ ॥

२८—उसका (भक्तिका) साधन ज्ञान ही है, किसीका (आचार्यका) यह मत है।

यद्यपि भक्तिमें इस ज्ञानकी तो परम आवश्यकता है कि मैं जिसकी भक्ति करता हूँ वे ही सबके स्वामी, सबके आधार, सबके महेश्वर, जगत्के उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले, मायाके पति, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वात्मा, निर्गुण, निर्विकार, निराकार, सगुण, साकार भगवान् हैं, उनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं, क्योंकि इतना ज्ञान भी यदि न होगा तो श्रद्धा नहीं होगी, श्रद्धा बिना प्रीति नहीं होगी और प्रीति बिना भक्ति दृढ़ नहीं होगी।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगेस जलकी चिकनाई॥

परन्तु इसमें अद्वैत ज्ञानके साधनकी आवश्यकता नहीं होती। केवल श्रद्धा और भावसे ही परमात्माकी भक्ति प्राप्त हो जाती है। गृध्रराज, गजेन्द्र, ध्रुव, शबरी आदिने केवल भगवान्की ऐसी ही भक्तिसे भगवान्को प्राप्त किया था।

अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥ २९ ॥

२९—दूसरे (आचार्यों) का मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक दूसरेके आश्रित हैं।

ऐसा भी होता है। गौणी भक्तिसे भगवान्के तत्त्वका ज्ञान होता है और तत्त्वके जाननेसे भगवान्में अत्यन्त प्रेम उत्पन्न होता है। परन्तु केवल भक्तिके प्रेमीजन इस मतकी परवा नहीं करते। क्योंकि वे इस बातको जानते हैं कि जब प्रेमस्वरूपा निर्मल भक्तिका पूर्ण उदय होता है तब किसीका ज्ञान अलग रह ही नहीं जाता। प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों एक हो जाते हैं। फिर किसका ज्ञान किसको होगा?

स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ॥३०॥

३०—ब्रह्मकुमारोंके (सनत्कुमारादि और नारदके) मतसे भक्ति स्वयं फलरूपा है।

अतएव यह भक्ति ही साधन है और भक्ति ही साध्य है। मूल भी वही और फल भी वही। भक्तगण भक्तिके लिये ही भक्ति करते हैं। क्योंकि भक्ति स्वयं फलरूपा है। वह न किसी साधनसे मिलती है और न कोई उससे श्रेष्ठ वस्तु है जिसकी प्राप्तिका वह साधन हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो स्वतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान-बिग्याना॥

राजगृहभोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ३१

३१–राजगृह और भोजनादिमें ऐसा ही देखा जाता है।

यह पूर्वकथित भक्तिकी फलरूपताको समझनेके लिये उदाहरण है।

न तेन राजपरितोषः क्षुधाशान्तिर्वा॥ ३२॥

३२–न उससे राजाकी प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी।

केवल राजमहलका वर्णन सुनने और जान लेनेसे काम नहीं चलता। राजा धर्मात्मा है, शक्तिशाली है, प्रजाहितैषी है, रूपगुणसम्पन्न है, यह बात भी जान ली, परन्तु इससे क्या हुआ, इस जाननेमात्रसे राजा प्रसन्न थोड़े ही हो गया। इसी प्रकार जान लिया कि हलुआ मीठा होता है, घी और शक्करसे बनता है, बड़ा स्वादिष्ट है, परन्तु इससे भूख तो नहीं मिटती। इसी प्रकार केवल शब्दज्ञानसे न तो भगवान्‌की प्रसन्नता होती है और न हमें शान्ति ही मिलती है। यद्यपि भगवान्‌के लिये सभी समान हैं, तथापि उनकी प्रसन्नता तो भक्तिसे ही मिलती है। वे स्वयं कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें सम हूँ, न कोई मेरा द्वेष्य है और न प्रिय है, परन्तु जो मुझको भक्तिपूर्वक भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।

तस्मात्सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः॥ ३३॥

३३–अतएव (संसारके बन्धनसे) मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवालेको भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिये।

भक्तिसे भवबन्धन तो अनायास कट ही जाता है, साक्षात् भगवान् उसके प्रेमास्पद बनकर उसके साथ दिव्य लीला करते हैं।

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआई॥

अन्यान्य बड़े-बड़े साधनोंसे भी सहजमें न मिलनेवाली अति दुर्लभ मुक्ति बिना ही माँगे बलात्कारसे आती है, परन्तु वह भक्त तो—

मुकुति निरादरि भगति लुभाने॥

मुक्तिकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। ऐसी सुलभ और सर्वोपरि स्थितिरूप भक्तिको छोड़कर दूसरे साधनको कोई क्यों करे? श्रद्धालु और बुद्धिमान् पुरुषोंको केवल भक्ति ही करनी चाहिये।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयकी प्यास

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

सौ-सौ जन्मोंसे तुम्हें देखता आ रहा हूँ परन्तु भर आँख देख न पाया। हृदयके मन्दिरमें तुम्हारी मनोहर मङ्गलमूर्ति विराज रही है परन्तु मैं अभागा अपने ही हृदयका द्वार खोलकर मिलन-मन्दिरमें प्रवेश न कर सका। तुम रू-बरू सामने खड़े हो पर मेरी आँखें नहीं उठतीं। कैसे कहूँ बड़ी विचित्र दशा, है, देखे बिना रहा भी नहीं जाता और देखते बनता भी नहीं।

मेरी यह प्यास मेरे जन्म-जन्मान्तरकी चिर-संगिनी है। जीवन और मृत्युको चीरती हुई मेरी यह प्यारी मीठी प्यास अनादि कालसे मेरे साथ चली आ रही है। इस प्याससे ही कारण मेरा यह जीवन और यह जगत् है। जिस प्रकार दूधमें घी और मधुमें मिठास है उसी प्रकार यह प्यास मेरे रोम-रोममें, अणु-अणुमें, प्राण-प्राणमें व्याप्त है। मेरा रोम-रोम तुम्हारी माधुरीमें आकण्ठ डूबनेके लिये व्याकुल है। साँसोंमें भी इसी प्यासकी विह्वलता धड़क रही है। कहाँ जाऊँ, कैसे करूँ ?

कैसी विचित्र पहेली है कि सब कुछ जानूँ पर अपने हृदयवल्लभको न जानूँ, सब कुछ देखूँ पर अपने प्राणनाथको न देख सकूँ। कितना दाढ़स बाँधकर आता हूँ—परन्तु तुम्हारे ऊपर दृष्टि पड़ी नहीं कि निगोड़ी आँखें झुक जाती हैं और घूँघट सरक आता है—मनकी मनमें ही रह जाती है। कई बार आँखोंको सिखलाता हूँ, चिताता हूँ.....परन्तु ये बेचारी स्वयं विवश हैं—इनका क्या दोष ? और अपने अपराधकी सजा भी तो इन्हींको अकेले भोगनी पड़ती है। सामने आ जानेपर तो ये हार खा जाती हैं और चूक जाती हैं—परन्तु बादमें जो बेचैनी, जो छटपटी होती है उसे देखकर तो इनपर दया ही आयेगी।

इस हृदयका मर्म तुम भी खूब जानते हो। प्राणोंकी बेचैनी उसकानेमें तुम्हें भी एक आनन्द आता है। सामने रहते हुए भी पर्देनशीं हो और पर्देके भीतर होते हुए भी सामने हो। देखते हुए भी तुम्हें नहीं देख पाता और नहीं देख पानेपर भी देख रहा हूँ। तुम न हाँ हो न ना हो। हाँ भी हो और ना भी हो। अपने आलिङ्गनके मधुपाशमें बाँधकर भी मैं तुम्हें छू तक नहीं पाया—और मेरी भावना-सीमासे परे होकर भी तुम मेरे आलिङ्गनमें बँधे हुए हो। अच्छी आँख-मिचौनी खेली !

इस लुक-छिपमें तुम्हारा पता कोई भी न दे सका। कलियोंसे जाकर मैंने पूछा—प्रिये ! तुम्हारी साधना बहुत कोमल और मधुमय है—तुम बता दोगी साँवरेका पता ?

कली बोली—अभी मैं साधनाकी बात क्या जानूँ ? अभी तो मैं स्वयं अपने हृदयके बन्द कपाटको खोल न सकी। अभी तो मेरी आँखोंपरकी पलकें गिरी हुई हैं—मैं चाहती हुई भी इन पलकोंको उठाकर अपने प्राणवल्लभको देख न पायी ! देखो इन कठोर डंठलोंसे मैं प्यारेको देखनेके लिये ही बाहर कढ़ आयी और संसारके सम्मुख मैंने अपना घूँघट खोला। पर वह निठुर न मिला, न मिला। हृदयकी इस कसमसाहटमें जब मैं तड़प उठती हूँ तो मेरी ये पंखुड़ियाँ अपना रोम-रोम फैलाकर प्राणप्यारेकी आशामें खिल उठती हैं। मेरी उस चिटखमें कितनी विवशता होती है—कैसे कहूँ। फूल तो मेरी व्यथाका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकासमात्र है । मेरा यह लघुजीवन और इसकी यह अनन्त अतृप्त लालसा ! अन्तिम कालतक भी मैं 'उन' का पथ देखा करती हूँ और जब हवाके कठोर झोंकेमें मेरी एक-एक पंखुड़ी पृथिवीपर गिरने लगती है तो मैं हृदयका मधु-कोष और सुगन्धकी धरोहर पवनको सौंपकर अन्तिम समय कहती हूँ—लो मेरा यह सर्वस्व—जब 'वे' मिलें तो उनके पाद-पद्मोंमें चढ़ा देना !

मैंने वायुसे पूछा—तुम्हारी साधना परम व्यापक और अनन्त है । तुम संसारकी एक छोरसे दूसरी छोरतक चक्कर काटती हो और अपनी साधनामें आकाश-पाताल एक किये हुई हो—तुम बता सकोगी मेरे प्राणवल्लभका पता ?

वायुकी विवशता बोल उठी—देखो तुम्हारी ही भाँति सारी दुनियाँ मेरे सम्बन्धमें भ्रममें है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैंने प्यारेकी खोजमें संसारका कोना-कोना छान डाला पर·····!! समुद्रके कोमल-कोमल ठण्डे-ठण्डे कण लेकर, पुष्पोंसे गन्ध लेकर मैं विकल रात-दिन खोज रही हूँ—और जब उषा अपना रोरीभरा थाल लेकर आरती करनेके लिये लाल रेशमी साड़ी पहनकर तथा माँगमें सिन्दूर भरकर आकाशसे धरातलपर उतरने लगती है उस समय मैं उसके चरणोंमें सिहर-सिहरकर धीरे-धीरे उन्मद मन्थरगतिसे बहती हूँ और उसके आँचलको हिला-डुला देती हूँ—इस आशामें कि समर्पणके इस स्वर्गीय समारोहमें मैं भी अपने प्राणोंकी भेंट अपने हृदयेश्वर-को चढ़ा सकूँ ! परन्तु उषा अपने नाथको आते देख सकुची-ठिठकी अदृश्यका घूँघट काढ़ लेती है और पर्देके भीतर चली जाती है—मैं पगली अपनी धुनमें फिर आकाश-पाताल छानती फिरती हूँ । मेरा सिहर-सिहर बहना देखकर संसार ठगा जाता है और यह अनुमान कर लेता है कि यह मिलनकी ही सिहरन है और उसी मधुर मङ्गल मिलनकी ही यह साँय-साँय है परन्तु उसे क्या पता कि मेरे हृदयके भीतर कैसी भट्ठी धधक रही है जो मुझे एक पलके लिये भी चैन नहीं लेने देती ।

तो फिर उषासे चल पूछूँ ! प्रभातका समय था—मैं समुद्रके तटपर खड़ा था । देखा मैंने आरती-का थाल सजाये, लाल कुंकुमकी बेंदी सिर दिये, लाल रेशमी साड़ी पहने, अधरोंमें मधु और आँखोंमें उन्मादभरी उषा धीरे-धीरे अरुणके आलिङ्गनके लिये आगे बढ़ी । उसने अपना घूँघट धीरेसे सरकाया और आँखोंको ऊपर उठा ही रही थी·····कि मैंने कहा—प्रिये ! मुझे भी इस समर्पण-समारोहमें सम्मिलित कर लो ! आज मैं भी अपना हृदय अपने 'देवता' के चरणोंमें चढ़ा दूँ !

उषाके कोमल अधरोंपर मुसकुराहट खिल उठी! कुछ सकुचायी-सी वह बोली—आह ! मेरी इस अतृप्त लालसाको तुम देख पाते ! संसार मेरे रूप-माधुर्यकी स्निग्धता तथा आँखोंके उन्मद अनुराग और अधरोंकी मधु मुसकानको देखकर यह समझ लेता है कि मेरा यह स्निग्ध कोमल समर्पण अवश्य सच्चा होगा और मैं अवश्य अपने 'प्राण' को देख सकी होगी—परन्तु मेरी पूजाकी थाली ज्यों-की-त्यों धरी रह जाती है—मैं उसमेंसे कुंकुम उठाकर ज्यों ही अपने हरिके मस्तकपर लगा देना चाहती हूँ कि·····!! मेरा यह रूप-सम्भार व्यर्थ गया ! मैं अभागिन अपने जीवनके सर्वस्वको सामने होते हुए भी देख नहीं पाती ! मेरे रूपमें जो कुछ तुम देख रहे हो वह है 'उस' से पहली भेंटकी स्मृति ! आँखोंमें राग और अधरोंमें मुसकान बनाये मैं अनन्त कालतक इसी बधूरूपमें 'उसे' खोजती रहूँगी—यही मेरा व्रत है । हृदयकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचैनी जो शान्ति नहीं लेने देगी ! मेरे भीतरकी ज्वाला और उत्कट प्यासको तुम जान पाते !!

समुद्र मानो समाधिमें मग्न था। मैंने सोचा—इस अनन्त सागरके अथाह हृदयमें हरिकी झाँकी अवश्य उतरी होगी। इसने अपना विशाल हृदय अनावृत करके फैला दिया है—इसमें प्रभुजीकी रूप-आभा अवश्य छिटकी होगी। रात-दिन असंख्य नदियाँ आकर अपना सर्वस्व इसके चरणोंमें उँड़ेलकर इसके तलवोंको गुदगुदाती हैं परन्तु यह निःस्पृह साधक अपने देवताके ध्यानमें इतना निमग्न है कि इसे पता ही नहीं कि कहाँ क्या हो रहा है। किसी प्रकारकी भी ऐहिक प्राप्तिमें यह अपने हृदयको आन्दोलित नहीं होने देता। इसका ध्यान कितना अटल और अखण्ड है। इसकी साधना कितनी अगाध और अगम्य है। अपने प्राणनाथकी रूप-माधुरी पीनेमें यह इतना व्यस्त है कि अपनी साधनाकी अनन्यतामें संसारसे आँखें मूँद ली हैं।

मैंने उसकी समाधि भङ्ग करते हुए पूछा—मुझे भी 'प्राणप्यारे' के ध्यानमें डूबना सिखला दोगे ?

समुद्रके विषादमय वचन थे—कैसी समाधि और कैसा डूबना ? मैंने तो उसे ही देखनेके लिये अपना हृदय खोलकर उसके चरणोंमें बिछा दिया है। प्रातःकाल अरुणांशुकवसना उषा आती है, आरतीका थाल सजाये, रूप-लावण्यसे भरी हुई—और मेरे हृदयपर एक क्षणके लिये अपनी श्री छिटकाकर चल देती है। मैं उससे पूछता ही रह जाता हूँ और पता नहीं वह कहाँ सकुचाती हुई छिप जाती है। रजनी तारोंका गजरा पहने हुए प्राणनाथकी खोजमें—अभिसार करती है—और मेरे हृदयपरसे होती हुई चली जाती है। मैं उससे 'प्राणनाथ'के देशका पता पूछता ही रह जाता हूँ पर कौन किसकी सुनता है। सूर्य उगता है, मेरे हृदयपर तपता है और सन्ध्या होते समय जब अस्ताचलको जाने लगता है तो मैं पूछता हूँ—'मुझे भी प्रभुके चरण-प्रान्तमें लिये चलो।' सूर्य जाते-जाते कह जाता है—'मेरी खोज भी जारी है।' मैं गङ्गा-यमुनासे पूछता हूँ कि जिस देशसे आयी हो—जहाँसे निकली हो उसका कुछ हाल बतलाओ। वह सकुचायी हुई आकर मेरी गोदमें लय हो जाती हैं और कुछ पता नहीं बतलातीं।

और अपनी व्यथा ? अपनी व्यथा मैं क्या कहूँ और कैसे कहूँ ? मेरे भीतरका बड़वानल—प्रभुको पानेकी मेरी उत्कट लालसा अहर्निश—प्रतिपल मेरे हृदयमें आन्दोलन खड़ा किये रहती है। बाहर-बाहरसे मेरा रूप जितना ही गम्भीर और समाधिस्थ मालूम होता है, भीतरमें उतनी ही बड़ी बेचैनी है। जिससे पूछता हूँ वही यह कहता है कि मेरी खोज अभी जारी है। अथाह जलको रखते हुए भी मेरे भीतरकी ज्वाला—मेरे हृदयकी प्यास न बुझी, न बुझी ! कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? किसे अपनी व्यथा सुनाऊँ ? कैसे अपने हृदयकी प्यास बुझाऊँ ?

समुद्रके ये वचन सुनकर मैं सहम गया। तो क्या खोजना ही खोजना है ? इस पथमें खोजनेहीका नाम प्राप्ति है ? खोजो और फिर खोजो—खोजते जाओ—जन्म-जन्मान्तरमें खोजका यह मधुर प्रवाह न रुके। और इस पथका सम्बल है हृदयकी यह मीठी-मीठी प्यारी-प्यारी प्यास !

प्रभु ! मेरे दयामय प्रभु ! यह प्यास, यह तड़प बनी रहे, हृदयकी यह मधुर वेदना बनी रहे, प्राणोंकी यह अमर विकलता बनी रहे; और कभी-कभी मेरे नाथ ! प्यासकी इस अमर ज्वालामें अपने रूपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोक फेंककर, मेरी विकलतामें अपने वरद करोंकी छाया डालकर इसे उसकाते रहना, इसे प्रज्वलित किये रहना। यह इतनी धधके कि बस यही यह रह जाय और इसमें समस्त विश्व भस्म हो जाय। प्यासकी इस महावह्निमें ही मेरा सर्वस्व मेरे 'सर्वस्व' के चरणोंमें श्रीकृष्णार्पण हो जाय !

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[गतांकसे आगे]

सकृदेव० इस श्लोकके पदोंका अन्वय अनेक प्रकारसे होता है अतएव अर्थमें भी बहुत कुछ भेद हो सकता है। किन्तु सामान्यतया इसका अन्वय और अर्थ रामायण-शिरोमणि टीकाने यह किया है कि—'सकृत्—एक बार भी 'तवास्मीति याचते' मैं तुम्हारा हूँ यह कहते हुए 'प्रपन्नाय' शरणागतके लिये मैं 'सर्वभूतेभ्यः अभयं ददामि' भय-कारणीभूत सर्वप्राणियोंसे अभय दे देता हूँ, 'एतत् मम व्रतम्' यह मेरा निर्हेतुक संकल्प अथवा स्वभाव है।'

यहाँ पहले 'ददामि' इस वर्तमानार्थक 'लट्' के तटको ही देखकर विचारकी गाड़ी अटक जाती है। भगवान् यहाँ अपने व्रत या संकल्पको समझा रहे हैं। व्रत और संकल्प पहलेसे निश्चित किया जाता है। उस समय अभयदानका याचक सम्मुख नहीं रहता। ऐसी हालतमें या तो वहाँ भविष्यत् अर्थका 'लृट्' प्रयोग करके 'अभय दान दूँगा' यह बोलना होता है, अथवा 'दद्याम्' यह 'लिङ्' उचित होता है। फिर यह 'ददामि' क्यों ? ठीक है। 'ददामि' इस दानकालिक वर्तमानतासे आप सूचित करते हैं कि अभयदान देना मेरा नित्य सत् स्वाभाविक धर्म है जो सदा वर्तमान रहता है। इसीलिये 'एतन्मम व्रतम्' अर्थात् नित्यपरिगृहीत और नित्य ही मुझमें रहनेवाला यह मेरा धर्म हो गया है। शास्त्रीय झपट्टेसे बचाकर खुलासा अर्थ समझिये कि भगवान्का अभयदान दो प्रकारका है—एक तात्कालिक (वर्तमानकालिक), दूसरा आत्यन्तिक। वर्तमान-कालिक अभयदान वह होता है कि किसी डरसे भागकर शरणार्थी भगवान्के पास आता है, भगवान् उस वर्तमान भयसे उसे अभय दे देते हैं। और संसारमें आने-जानेके भयसे बचा देना आत्यन्तिक अभयदान है। भगवान् अपने शरणागतके लिये इन दोनों तरहके अभयदानकी प्रतिज्ञा करते हैं। विभीषणको भगवान् तात्कालिक अभयदान तो यह देते हैं कि उसे रावणके भयसे बचा लेते हैं, और आत्यन्तिक यह देते हैं कि फिर दुनियाके यावन्मात्र भय ही उसके पास न फटकने पावें ऐसा 'अपवर्ग' उसे दे देते हैं। इसी आशय-से सदा वर्तमानताकी सूचना करते हुए आपने यहाँ कहा है कि—'अभयं ददामि।'

कितने ही साम्प्रदायिक इस तरहकी 'शरणागति' में ऊपर कहे हुए दोनों प्रकारके अभयदान एक साथ देना नहीं मानते। वह अर्थ करते हैं कि—'प्रपन्नाय आत्यन्तिक-मभयं ददामि, तवास्मीति याचते च तात्कालिकमभयं ददामि।' उनकी उपपत्ति है कि यहाँ दो अर्थोंका समुच्चय करनेवाला 'च' कहनेसे यह दो कोटि अलग-अलग सिद्ध होती हैं। 'मैं तुम्हारा हूँ यह कहनेवाले 'प्रपन्नाय' शरणा-गतको मैं अभय दे देता हूँ' यदि यही अर्थ होता तो फिर बीचमें 'च' की डाट देनेकी क्या ज़रूरत थी ? अतएव स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवान् 'प्रपन्नाय' और 'तवा-स्मीति याचते' में दो कोटि पृथक्-पृथक् मानते हुए इन दोनोंका समुच्चय करनेके लिये बीचमें 'च' (संयोजक अव्यय) डालते हैं।

अब उनके मतानुसार 'प्रपन्न' का अर्थ समझना बाकी रहा। 'पद्' धातुका गति अर्थ है। गत्यर्थक धातुओंको ज्ञानार्थक भी माना गया है। अतः 'पत्ति' का प्रतिपत्ति अर्थात् ज्ञान अर्थ हुआ। फिर 'पत्ति' के साथ यहाँ 'प्र' और जोड़ा गया है। 'प्र' का अर्थ होता है 'प्रकर्ष'। प्रतिपत्तिमें प्रकर्ष है उसकी निरन्तरता। अर्थात् 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंसे जो भक्त अपनी आत्मामें ही भगवान्का अध्यास कर लेता है ऐसी 'प्रपत्ति' करनेवाले ब्रह्मज्ञानीके लिये भगवान् आत्यन्तिक अभय देते हैं। भगवान्ने गीतामें कहा भी है कि 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् भक्त जिस तरह भगवान्‌में अभेदकी भावना करता है उस तरह भगवान् भी उसको अपनेसे अभिन्न समझते हैं। उनके मतसे यही 'प्रपन्न' का यहाँ अर्थ है और वही भगवान्‌के आत्यन्तिक अभयदानका पात्र है।

दूसरी कोटि है 'तवास्मीति च याचते।' जिस भक्तका अभी औपाधिक ज्ञान नष्ट नहीं हुआ है, 'मैं सेवक हूँ आप मेरे सेव्य हैं', 'मैं शिष्य हूँ आप गुरु हैं', 'मैं रक्षा करनेका पात्र हूँ आप रक्षक हैं' इस तरहकी उपासना करता हुआ जो भगवान्‌का आश्रय लेता है उसे भगवान् तात्कालिक अभय अर्थात् जिससे उसे डर हुआ है उससे अभय दे देते हैं। तात्पर्य यहाँ यह है कि उस अधिकारीकी 'मैं और दूसरा' यह द्वैतभावना नष्ट नहीं हुई है। 'द्वितीयाद्धि भयं भवति' इस न्यायसे भय दूसरेसे ही होता है। और भगवान्‌को शरणागतिके कारण रक्षा करना आवश्यक हुआ। अतः—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

'जो भक्त मेरा जिस भावनासे आश्रय लेते हैं मैं उसी तरह उनसे पेश आता हूँ', इस कथनके अनुसार यहाँ भक्त 'मैं और दूसरा' यह अध्यास रखता हुआ अभयके लिये भगवान्‌का आश्रय करता है अतएव भगवान् भी 'सर्वभूतेभ्यः' द्वितीयत्वेन अध्यस्त सब प्राणिमात्रसे उसे भय न हो यह अभयदान दे देते हैं।

ठीक है। प्रमाणोंका जाल डालकर बालकी खाल यहाँ जरूर खींची गयी है किन्तु जिस प्रकरणमें यह कहा गया है उसके अर्थसे बहुत खींचातानी करनेपर भी यह पद्य नहीं जुड़ेगा। आखिर खींचातानीमें बेचारे बालकी खाल ठहरने ही कहाँ लगी थी। साफ़ बात तो यह है कि भगवान् विभीषणकी शरणागतिके प्रसङ्गमें 'संकल्प' वाक्य आज्ञा करते हैं। अब आप ही देख लीजिये प्रधान प्रसङ्ग शरणागतिका है या ब्रह्मज्ञानीको मुक्ति देनेका? फिर शरणागतिरूप सरस हरिभजनके समय 'तत्त्वमसि' का 'कपास[1] ओटना' कैसे जुड़ सकेगा? अतएव इस पद्यके अर्थको फिरसे सँभालना होगा।

आइये, पहले प्रसङ्गकी संगति मिला लीजिये। 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' के अनुसार किसी बातको दो बार दृढ़ कर देना ही काफ़ी होता है किन्तु जब तीन-तीन बार सुग्रीवने विभीषणको आश्रय देनेका घोर विरोध किया तब तीसरी बार अनिच्छा होनेपर भी भगवान् श्रीरामने अपना दिव्य प्रभाव प्रकट किया और सुग्रीवको विश्वास दिलाया कि विभीषण और रावण तो क्या यावन्मात्र दिव्य योनितक मेरे अनिष्ट करनेकी शक्ति नहीं रखते। अतः भयके कारण तो इसका त्याग करना ठीक नहीं। दूसरे—शरण आयेकी रक्षा करना यह धर्म सदासे चला आया है। पशु-पक्षीतक इस आवश्यक कर्तव्यके कायल हैं। इसमें आर्ष वचन प्रमाणमें भी दिये। सब कुछ कहकर अन्तमें शरणागतकी रक्षाके विषयमें अपने चरम निश्चयरूपसे भगवान् कहते हैं—'सकृदेव प्रपन्नाय०'।

इसे और भी विशद करके कहना अच्छा होगा। शरणागतकी रक्षाको भगवान् धर्म ही नहीं परम धर्म बतलाते हैं किन्तु इसमें प्रमाण दिये बिना प्रधान प्रतिवादी वानरश्रेष्ठ केवल सुग्रीव ही नहीं, नरश्रेष्ठ और भी कई शास्त्रार्थी जीव माननेको तैयार नहीं। धर्मप्रमाणोंको महर्षि याज्ञवल्क्य गिनाते हैं—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥

'श्रुति, स्मृति, शिष्टाचार, अपने आत्माके लिये हितकारक और सच्चे संकल्पसे उत्पन्न हुआ आत्ममनोरथ—यह पाँच धर्मके मूल हैं।' भगवान् श्रीरामचन्द्र शरणागतरक्षारूप इस परम धर्ममें इन पाँचों प्रमाणोंको उपस्थित कर रहे हैं। 'तस्मादपि वध्यं प्रपन्नं न प्रतिप्रयच्छन्ति' इत्यादि श्रुति-प्रमाण दिये। फिर—

ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा।
शृणु गाथा पुरा गीता·····॥

—इत्यादि आर्ष गाथारूप स्मृतिप्रमाण दिया। शरणागत-रक्षा सदासे चली आयी, कपोतादि तक उसका पालन करते हैं, यों पारम्परिक शिष्टाचार दिखलाया। 'क्रूरस्वभाव भाईसे सताये हुए विभीषणको यदि आश्रय दिया जायगा तो उपकृत हुआ वह हमारी सहायता ही करेगा, अनिष्ट नहीं।' यों स्वप्रियत्व साधन किया। इस प्रकार शरणागतरक्षामें चार प्रमाण तो अबतक दिये जा चुके हैं। अब पाँचवाँ प्रमाण रहा 'सम्यक्संकल्पजः कामः।' उसीके लिये 'सकृदेव प्रपन्नाय' इस श्लोकसे भगवान् अपना सार्वदिक सत्यसंकल्प प्रमाणत्वेन उपस्थित कर रहे हैं। अर्थात् मेरे सच्चे अन्तःकरणका

[1] 'आये थे हरिभजनको ओटन लगे कपास।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदासे यह दृढ़ संकल्प रहता आया है कि प्रपन्न (शरणागत) को यावन्मात्र भयकारणोंसे अभयदान दूँ। मैं इसको अपना एक आवश्यक व्रत समझता हूँ। अब कहिये—पाँचों प्रमाणोंने मिलकर जब पूरा 'पञ्च-फैसला' कर दिया तब शरणागतरक्षाको धर्म ही नहीं, परम धर्म माननेमें आपत्ति किस तरह हो सकती है ? अस्तु, यह तो हुई प्रसङ्गसङ्गति। अब अर्थपर आइये—

आपको यदि 'तवास्मीति' से 'तत्त्वमसि' का ही तत्त्व निकालना है तो पद्यका अर्थ यों करना होगा। सुनिये—यहाँ 'प्रपन्नाय'से उपाय कथन है और 'तवास्मीति याचते' से फलविशेषकी प्रार्थना है। अर्थ यह हुआ कि प्रपन्न होकर यानी भजनादि उपाय करता हुआ जो 'तवास्मि' अर्थात् मैं आपका ही एक अंश हूँ, यों तच्छेषवृत्तिलक्षण-रूप सायुज्यादि फल माँगता है। भगवान् कहते हैं उसको मैं 'सर्वभूतेभ्यो भयहेतुतया शङ्कितेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः' 'जिन-जिनसे भयकी शंका हो सकती है उन-उन सब प्राणियोंसे, 'अभयं ददामि' अभय दे देता हूँ। अभयका अर्थ है भय-का आत्यन्तिक अभाव, अर्थात् मोक्ष। 'अथ सोऽभयं-गतो भवति' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन' 'जो ब्रह्मानन्दका आस्वादन कर लेता है उसे फिर किसीसे भी भय नहीं रहता' इत्यादि स्थलोंमें भयाभावसे स्पष्ट ही मोक्षका अर्थ है। क्योंकि जिस अभयको ब्रह्मविद्याके अनन्तर मिलनेवाला फल बताया जा रहा है वह 'मोक्ष' के सिवा और क्या हो सकता है ?

सच पूछिये तो यह अर्थ भी शरणागतिप्रसङ्गसे कुछ दूर हट जाता है। अतएव प्रसङ्गानुगत अर्थ करना उचित होगा—'सकृदेव'का अर्थ है केवल एक बार ही। 'प्रपन्नाय' का अर्थ करते हुए पूर्वोक्तपक्षमें जिस तरह 'पद्' धातुका ज्ञान अर्थ माना गया है उसी तरह यहाँ भी वही अर्थ है। अतएव प्रकृष्ट ज्ञानसे प्रयोजन हुआ 'मानसी' प्रपत्ति, और 'तव अस्मि इति याचते' से, मैं तुम्हारा हूँ इस याचनासे 'वाचिकी' प्रपत्ति दिखलायी है। खुलासा अर्थ यह हुआ कि जो एक बार भी 'मानसी' शरणागति अर्थात् मनके द्वारा ही भगवान्का आश्रय लेता है अथवा 'मैं तुम्हारा हूँ' यों कहकर 'वाचिकी' प्रपत्ति अङ्गीकार करता है उन दोनोंको ही मैं सर्वप्राणिमात्रसे अभय दे देता हूँ, यह मेरा व्रत है।

स्वतन्त्र दो कोटि न मानकर शरणागतिमें ही दो कोटि मानी गयी हैं। अर्थात् एक मानसी प्रपत्ति और दूसरी वाचिकी। 'प्रपन्नाय' अर्थात् मानस प्रपत्ति स्वीकार करनेवालेको 'च' (और) 'तवास्मीति याचते' मैं तुम्हारा हूँ कहकर वाचिक प्रपत्ति स्वीकार करनेवाले दोनोंको ही मैं अभय देता हूँ। इस प्रकार अर्थ करनेसे 'च' के लिये जो पञ्चायत खड़ी हुई थी वह भी शान्त हो जाती है। भगवान् कहते हैं कि जो मनुष्य दोनोंमेंसे किसी भी प्रकार-की 'प्रपत्ति' स्वीकार करता है उसे मैं सब प्रकारके भयोंसे छुड़ा देता हूँ।

गजेन्द्रका बल जिस समय जलमें न चल सका और प्रबल ग्राह उसे अतल जलमें खींचे ले जाने लगा उस समय आत्मरक्षाका उसको कोई उपाय न दीखा। तिल-मात्र सूँड़ बाहर रह गयी थी, अतएव वह मन-ही-मन भगवान्के शरणागत होता है कि हे भगवन् ! अब आप ही सहायक हैं। शरणागतवत्सल भगवान् शीघ्रताके कारण गरुड़को भी पीछे छोड़कर तत्काल वहाँ पधारते हैं और गजेन्द्रका उद्धार करते हैं।

कितने ही यहाँ यह शंका कर सकते हैं कि यहाँ केवल मानस प्रपत्ति ही नहीं, वाचिक प्रपत्ति और भगवान्की सेवामें उपायन निवेदन करना भी तो वर्णित है। स्पष्ट ही तो कहा है—

उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते।

—सूँड़से एक कमल ऊँचा करके वह बड़े कष्टसे बोला—'हे जगत्के स्वामी नारायण ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' किन्तु भगवान् तो—

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।

—जिस समय उसने मनमें ही भगवान्का स्मरण किया था उसी समय वैकुण्ठसे रवाना हो गये थे। तभी तो इतनी शीघ्रतासे पहुँच सके। अस्तु यदि यह शुद्ध मानस प्रपत्ति नहीं मानी जाती हो तो और लीजिये।

कालियने भगवान्को साधारण मनुष्यमात्र समझकर उनसे गर्व किया, उनकी आज्ञानुसार वह श्रीयमुनाको छोड़कर बाहर न गया। बस, तत्काल ही भगवान्ने उसके फणोंपर चढ़कर वह ठोकर दी कि अक्ल ठिकाने आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। प्रकाशमें वह नाच था, किन्तु कालियके लिये प्रलय-ताण्डवसे कम न था। श्रीशुक कहते हैं—वह यावन्मात्र ताण्डवोंसे विचित्र ताण्डव था, जिसकी कि एक-एक ठोकर-में कालियसदृश क्रूरकर्माको भी काल सम्मुख दिखायी देने लगा, वह नाच क्या सामान्य था? प्रसिद्ध है गँवारकी अकूल सिरमें होती है। जैसे ही मस्तककी मरम्मत हुई कि घबरा उठा—

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो
रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
नारायणं तमरणं मनसा जगाम॥

भगवान्‌के उस विचित्र ताण्डवसे उसके फणोंकी एक-एक नस ढीली और चूरमूर हो गयी। मुखसे रक्त बहने लगा। फण ही नहीं उसका प्रत्येक अङ्ग टूटा जा रहा था। उस समय वह चराचरनायक उन्हीं भगवान् नारायण-की शरण गया। किस प्रकार? 'मनसा जगाम—मनके द्वारा।' ठोकरपर ठोकरोंके कारण मुखसे 'चूँ' करनेका अवकाश न था फिर प्रणामादिकी तो कथा ही क्या है? अतएव 'मनसा अरणं (शरणम्) जगाम' स्पष्ट ही तो मानस शरणागति है। फल भी उसका प्रत्यक्ष देख लीजिये। भगवान्‌ने तत्काल उसे अभय दे दिया। आपने कहा कि—'तुम जिसके डरसे रमणक द्वीप छोड़कर यहाँ छिपे हो उस गरुड़से अब तुमको भय नहीं। तुमपर मेरे चरणोंकी छाप पड़ चुकी, अब तुमको वह नहीं खा सकता।'

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः।
यन्नयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पदलाञ्छितम्॥

यहाँ भी कदाचित् शंकाका अवसर मिल सकता है कि कालियने आगे चलकर वाचिक स्तुति भी तो की थी। नागपत्नियोंकी स्तुति तो प्रत्यक्ष है ही, तो और लीजिये—

जिस समय भगवान् राम-कृष्ण गोचारणके लिये वनमें पधारे और गोपोंने आपसे क्षुधाकी शिकायत की कि हमें भूख सता रही है उस समय श्रीरामने आज्ञा की कि समीपमें ही ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं; वहाँ यज्ञवाटमें जाकर मेरे आनेकी सूचना करो, वह अवश्य तुमको यथोचित भोजन देंगे। परन्तु कर्माभिमानी उन ब्राह्मणोंने गोपोंकी प्रार्थनापर कान न दिया। इधर गोप तो 'दण्डवत्पतिता भुवि' भूमिमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके अन्नके लिये प्रार्थना कर रहे हैं उधर वे 'बालिशा वृद्धमानिनः' मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा माननेवालोंने जब 'हाँ' 'ना' का कुछ जवाब न दिया—

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप।

—तब निराश होकर वे लौट आये। श्रीकृष्णने गोपोंको दुबारा फिर भेजा कि जाओ अबके ब्राह्मणपत्नियोंके पास जाओ, और मेरा नाम लेकर भोजनके लिये कहो। स्त्रियोंने जैसे ही भगवान्‌का आगमन सुना कि विविध प्रकारकी भोज्यसामग्री पात्रोंमें लेकर 'प्रियम् अभिसस्रुः' अपने प्राणप्रिय भगवान्‌के अभिमुख चलीं। क्योंकि 'नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः' सदा भगवान्‌के दर्शनकी उन्हें प्रबल उत्कण्ठा लगी रहती थी। उनके जानेके समयकी श्रीशुकदेवजीने उपमा दी है—'समुद्रमिव निम्नगाः' नदियाँ जिस तरह समुद्रके अभिमुख जाती हैं। समुद्रकी तरफ नदियोंका जाना स्वाभाविक है और वह रोका भी नहीं जा सकता। क्योंकि 'निम्नगाः' ढलावकी तरफ जाते हुए जलप्रवाहको रोकनेकी किसकी ताकत है? उनको उनके पति-भ्रातादि सम्बन्धियोंने रोका भी था किन्तु 'भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः', बहुत समयसे गुणानुवाद सुनते रहनेके कारण उनका अन्तःकरण उनके पास न रहकर भगवान्‌में बस चुका था। अतएव वे भगवान्‌की शरणमें गयीं और बोलीं—आपके शरण आनेमें बाधक हुए ऐसे समस्त बान्धवोंको 'अतिलङ्घ्य' उल्लंघन करके आपके चरणोंसे प्रसादी की हुई तुलसीमालाको अपने केशपाशोंमें धारण करनेके लिये 'तव पादमूलं प्राप्ताः' आपके चरणोंकी शरण हम आयी हैं। यों प्रत्यक्षरूपसे शरणागत होती हैं।

किन्तु उनमेंसे किसी स्त्रीको उसके पतिने मकानमें बन्द कर दिया और भगवान्‌के पास जानेसे रोक दिया। वह भगवान्‌के गुण सुन-सुनकर, उनकी अलौकिक रूप-माधुरीका हृदयमें ध्यान कर-करके उनमें पहलेहीसे एकान्त अनुरक्त हो चुकी थी। इस समय प्रत्यक्ष शरण जानेसे जैसे ही वह रोकी गयी, वैसे ही उसने अपने हृदयमें स्थित भगवान्‌की मानसिक शरणागति स्वीकार की। अपने अन्तःकरणमें ही भगवान्‌को आत्मनिवेदन कर दिया कि 'हे भगवन्! मैं इस भौतिक शरीरद्वारा आपकी शरण आनेमें असमर्थ हूँ। किन्तु अब आपके सिवा मेरी कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति नहीं। मैं आपके शरण हूँ।' बस, भगवान्‌ने उसकी 'मानस प्रपत्ति' स्वीकार करके उसे अपनी शरणमें ले लिया और सदाके लिये अभय दे दिया—

हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम्॥

एक ही नहीं मानस प्रपत्तिके ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ भगवान्‌ने अपने शरणागतको अभय दिया है।

वाचिक शरणागति तो स्थान-स्थानपर देखी जाती है। प्रायः प्रत्येक भक्तने ही भगवान्‌की स्तुति करके शरण याचना की है। किन्तु उन सबमें कुछ-कुछ मनका भी सम्बन्ध है परन्तु वाणीमात्र सुनकर जिसको भगवान्‌ने शरणमें लिया हो उनमें सर्वतः प्रधान अजामिल है। शरणागति कैसी, केवल अपना नाममात्र सुनकर भगवान्‌ने उसे अभय दे दिया है। वह घोर पापी था। 'नष्ट सदाचारः' दुनियामें अच्छे आचरण जो कुछ भी हो सकते हैं उसके यहाँ सब आकर नष्ट हो चुके थे। वृद्ध माता-पिता, और साध्वी स्त्रीको उसने परित्याग कर दिया था। शूद्राको स्त्री बनाकर नीच कर्तव्योंसे वह अपनी आयु बिताता था। सो भी थोड़ी-बहुत नहीं, अपने जीवनके अट्ठासी वर्ष खो चुका था। पुत्र-कलत्रादिमें ऐसा लीन था कि रात्रि-दिन उनकी ही भावना करते बीतता था। इस ढलते दिनमें जैसे ही उसकी आँखें मिचने लगीं, नरकोंमें ले जानेके लिये यमदूतोंने उसे पकड़ा। उनकी भयङ्कर आकृति देखकर वह एकदम घबरा गया। और तो कुछ न बना वह अपने उस बालक पुत्रको पुकार उठा—'नारायण'। बस, शरणागति पीछे होगी, अपना नाममात्र सुनकर ही भगवान्‌ने उसको समस्त भयोंसे छुड़ा दिया। भगवान्‌के पार्षद प्रत्यक्ष वहाँ आते हैं और उसको यमपाशसे छुड़ाकर सर्वदाके लिये अभय दे देते हैं। इसी लिये भगवान् श्रीरामचन्द्र यहाँ आज्ञा करते हैं कि जो मन अथवा वचनके द्वारा एक बार भी मेरे अभिमुख हो जाता है उसे सर्वथा मैं अभय कर देता हूँ।

वाह वा! यह तो बड़े सुभीतेका अर्थ बतलाया पण्डितजी! यज्ञ-यागादिके बड़े लम्बे-चौड़े झगड़ोंसे बचा दिया। रात-दिनके अग्निहोत्रसे शरीर काला पड़ जाता है परन्तु तो भी जरा-सा कर्मवैगुण्य होते ही सब किया-कराया चौपट हो जाता है। इतने दिनका परिश्रम बरबाद होकर फिर वही पहला दिन सामने आ जाता है। यही क्यों, तीर्थ, व्रत, नियम, उपवास आदिमें क्या कम परिश्रम है? एक दिनके उपवासमें ही लोगोंको दिनमें तारामण्डल दीखने लगता है। फिर महीनों 'अब्भक्षो वायुभक्षः' रहना क्या सहज है? पुण्याहवाचनके समय 'अवनिकृतजानुमण्डलः' भूमिमें घुटना टेककर थोड़ी-सी देर कर्मकाण्डका छोटा-सा नियम पालन करना पड़ता है। सो भी मस्तकपर कलश चढ़ाते हैं, प्रणाम करते हैं उतनी-सी देर। इतनी ही देरमें लोगोंको बाँयटे-से आने लगते हैं, फिर भला जो ध्यान-आसनादिकी अनेक मुद्राएँ निरन्तर साधन किया करते हैं उनके काठिन्यको तो सोचिये। यह हुआ कर्ममार्गका विचार। अब आइये ज्ञानमार्गमें। दुनियाके यावन्मात्र पदार्थोंसे निर्वेद- (विरक्ति) होकर 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' जहाँ वाणी और मन-तककी पहुँच नहीं, बेचारे चक्षुरादि इन्द्रियोंकी तो कथा ही क्या, उस ब्रह्मकी भावनामें लीन हो जाना क्या यों ही है? लोग आजन्म 'तत्त्वमसि' की एकवाक्यता करते रहे हैं परन्तु परिणाममें जाकर सब निस्तत्त्व रह गया है। यों तो मुखसे 'सोऽहम्' का चाहे पुरश्चरण ही करते रहें परन्तु वास्तवमें ब्रह्ममय हो जाना क्या सबके भाग्यमें है? ब्रह्मरूप हो जानेकी बात तो जाने दीजिये, परन्तु देह और आत्मा पृथक्-पृथक् हैं इसको सच्ची तरहसे अमलमें लाना ही कहिये कितनोंसे बन पड़ता है? परन्तु आपने तो बड़ा सीधा रास्ता निकाल दिया। या तो मनमें भगवान्‌का ध्यान कर लिया या मुखसे कह दिया कि मैं तुम्हारा हूँ। बस, सारे झंझटोंसे बच जायँगे। हम लाख भी दोष करें, भगवान् फिर उधर दृष्टि ही न देंगे। हमको निर्भय कर देंगे।

ठीक है। आपने यज्ञ-यागादि, तपस्या, ब्रह्मज्ञान आदि सबसे भगवान्‌की शरणागतिको सरल समझ लिया, और सन्तोष भी कर लिया, यह बहुत अच्छा हुआ। परन्तु जरा मार्मिक विचार कीजिये तो आपको मालूम हो जायगा कि यह उन सबकी अपेक्षा कठिन है या सरल। शरणागति तो आगेकी बात है, भगवान्‌के अभिमुख हो जाना ही विरलोंके भाग्यमें होता है। जो प्रकृतिसे ही दैवजीव हैं और जिनपर भगवान्‌का अनुग्रह होता है वही दुनियामें रहते हुए भी उसे पीठ देकर भगवान्‌के अभिमुख होते हैं। भक्त बनायेसे नहीं बनता। 'ठोक-पीटकर वैद्यराज' चाहे बन जाय पर भगवदनुगृहीत भक्त हो जाना हाथकी बात नहीं। भगवान्‌की इच्छा और कृपाकी बात है। प्राक्तन अच्छे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारके बिना लाख सिखानेपर भी भगवान्‌की ओर आदमी सहजमें मुड़ नहीं सकता। भक्त उद्धवको बाल्यावस्थामें कौन तालीम देने बैठा था कि तुम भक्त बनो। परन्तु उनका मानसिक प्रवाह आरम्भसे ही भगवान्‌के अभिमुख था। और बालक रास्तेमें नाना तरहके खेल खेलते, परन्तु वह खेल भी भगवान्‌के ही करते। माँ कहती—'बेटा! बहुत देर हो गयी, अब कलेवा कर लो।' खेलमें मस्त हुए वह कहते—'वाह! तुम देखती नहीं, अभी ठाकुरजीको नहलाया है। शृङ्गार करके फिर कलेवा करूँगा।' अहा! धन्य है वह भाग्यवान् बालक, और वन्दनीय है उसकी जननी माता, जिसका पुत्र भगवान्‌की क्रीडामें अपने आपको भी भूल जाता है। बालक भगवान्‌की सेवाके खेलमें ऐसा लीन है कि दूसरी तरफ न उसकी दृष्टि है न चित्त। जब वह अपनेको ही भूला हुआ है तब कलेवा कैसा?

इसे आप भक्तिके गौरवके लिये बनायी हुई बात न समझें, बालकका स्वभाव ही है कि वह जिसमें लीन होता है फिर सबको भूल जाता है। रोते हुए, और तो क्या, शरीरमें जिसके कुछ वेदना हो ऐसे भी बालकको आप खिलौना देकर उसमें कैसा लीन कर देते हैं? बस, उद्धव भी अपने खेलमें एकदम तन्मय हैं। शृंगार कर लेनेके बाद फिर आगेकी सेवा शुरू हो जाती है, कलेवा भूल जाते हैं। घरके काम-काजमें लगी हुई बेचारी माता आकर देखती है—कलेवा पड़ा-पड़ा सूख रहा है। पुत्र-स्नेहसे विह्वल होनेके कारण उसकी आँखसे आँसू बहने लगता है, वह गद्‌गद होकर कहती है—'बेटा! दुपहर होता आया, अभीतक तैंने कुछ नहीं खाया। और बालक तो दो-दो, तीन-तीन बार खा-पी चुके।'

जो जन्मसे ही इस तरह भगवान्‌की तरफ लौ लगाये उत्पन्न होते हैं उन्हींको भगवान्‌की शरणागतिबुद्धि होती है। यह बात बिल्कुल, सोलहों आने सत्य है कि शरणागत हो जानेपर भगवान् उसके सब अपराध क्षमा कर देते हैं और उसको अभय (मोक्ष) दे देते हैं। किन्तु दुनियासे मुँह मुड़ जाना और भगवान्‌की तरफ मुख हो जाना यही तो कठिन है। यह क्यों, सब जानते हैं और नाना तरहकी समालोचनाएँ भी किया करते हैं कि कलियुगमें नाम-जपसे ही मुक्ति हो जाती है, परन्तु आप ही देख लीजिये, नाम-जपपर पूर्ण विश्वास करके इस सहज नुसखेसे कितने आदमी फायदा उठाते हैं! हमारे शरीरमें घोर रोग रहता है, उसके कारण हम बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाते हैं, परन्तु छोटा-सा उपाय हमसे नहीं हो पाता। पड़ोसीकी बतायी हुई साधारण-सी दवा लाकर न घोटी जाती है और न पीयी ही जाती है। रोगमें छटपटाते रहते हैं। बतलानेवालेने कहा है कि कौड़ियोंकी दवा है और हम भी जानते हैं कि बड़ी सीधी-सी बात है परन्तु फिर भी न हमसे दवा होती है, न रोग जाता है। बात यह है जब भगवत्कृपा होगी, तभी हमसे सीधे-से-सीधे उपाय भी बन आयँगे अन्यथा हम विचार ही करते रह जायँगे और समय निकल जायगा।

जन्मदरिद्रका दृष्टान्त सुना ही होगा—एक मनुष्य बड़ा दरिद्र था उसके कारण बहुत दुःख पाता था। घर और वंशका वह अच्छा था, परन्तु भीतर जो उसकी नाजुक दशा थी उसको वही जानता था। उसके उस दारुण दुःखको देखकर एक परमदयालु सिद्ध दयार्द्र हो पड़े। चुपचाप उसे बुलाकर अपनी झोलीसे पत्थरका एक टुकड़ा देकर कहा कि ले, इस पत्थरको ले जा, लोहेके लगा देना। वह सोना हो जायगा। तू इस उपायसे अपनी दरिद्रताका दुःख मिटा ले। किन्तु चार महीनेके बाद मैं जब लौटूँगा तो यह पत्थर लेता जाऊँगा।

यह घरमें आये और बड़े प्रसन्न हो रहे थे कि अब अपनी दरिद्रतासे छुटकारा पा गये! एक दिनमें ढेर-के-ढेर लोहेके इसे छुआ देंगे। बस, फिर क्या है जन्मभरके लिये छुट्टी हो गयी। आप प्रतिदिन लोहेका भाव पूछते रहे। अभी महँगा है, क्या जल्दी है, चार महीने पड़े हैं। एक दिनमें तो सोनेसे घर भरा जाता है। बस, रोज भाव पूछते-पूछते ही चार महीने बीत गये। यह सोच रहे थे कि आज चार महीने हुए हैं। क्या साधूजी अंग्रेजी टाइम थोड़े ही साधते हैं। दो-चार दिनमें आयेंगे तबतक लोहा लाकर दरिद्रताको दूर भगाये देते हैं। संयोगकी बात है ठीक चौथा महीना समाप्त होते ही उसी दिन साधु आये और उन्होंने कहा कि कहाँ है वह पत्थर? अब यह क्या कहते। घरमें सब कुछ ढूँढ-ढाँढनेपर भी उस समय छोटी-छोटी दो लोहेकी कीलें ही मिलीं जिन्हें उन्होंने पत्थरसे लगा पाया। बाकी फिर वैसे-के-वैसे ही।

आप देखिये, कितना सरल उपाय था। बस, लोहेपर पत्थर छुआ देना ही तो था। कीमिया करनेके लिये, इमीटेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनानेके लिये कितनी फूँका-फाँकी करनी पड़ती है, परन्तु इसमें तो हाथ हिला देने भरकी देर थी। किन्तु वह भी उस जन्मके भाग्यवान्‌से हुआ। सरल-से-सरल उपाय भी हुआ तो क्या गर्ज, उसका बन आना तो शर्त है। नामी हकीमकी अक्सीर दवा दामनकी दामनमें बँधी रह जाती है और हमारा दम निकल जाता है।

बस, यही खेल यहाँ होता है। हम भक्तिग्रन्थ खूब पढ़ लेते हैं। शास्त्रज्ञान खूब हो जाता है। हजारों बार हमारी आँखोंके नीचे होकर यह लेख निकल जाता है कि भगवान्‌की शरणागति हो जानेपर मनुष्यको कोई भय नहीं रहता, परन्तु इस शरणागतिके अभिमुख आजतक नहीं होते। तीर्थस्थानोंमें देखा है पास ही सिद्धपीठ देव-मन्दिर है परन्तु वहाँ नहीं जाया जाता। और हजार काम दूर-दूरके हमसे बन आते हैं परन्तु देवदर्शनके लिये नित्य विचार ही करते रहते हैं नहीं जा पाते।

असल बात यह है कि हम चाहे अपने मनमें चाहा करें, क्या होगा? जब भगवान् चाहेंगे तभी हम दुनियासे मुड़ेंगे और भगवान्‌के अभिमुख हो सकेंगे। और भगवान् भी तभी चाहते हैं जब हमारा दृढ़ अनुराग और सच्ची भावना देख लेते हैं, हमें उसका पात्र समझ लेते हैं। आप ही देख लीजिये कि जिस समय हम भगवान्‌की तरफ मुड़े और भगवान्‌ने हमें अङ्गीकार कर लिया, फिर क्या हमें कुछ अप्राप्य रह जायगा? एक पुरुषार्थ क्या, चतुर्वर्ग हमारे पीछे-पीछे चलेंगे। भगवान् हमारे वशीभूत हो जाते हैं। तब इतना बड़ा उच्च अधिकार देनेके लिये भगवान् क्या कुछ नहीं सोचें-समझेंगे? (क्रमशः)

विश्वेश-शरण

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

एक दिन कोकिला और श्यामा दोनों सबेरे तीन बजे उठकर प्रकृतिसे पर परमेश्वरका ध्यान करने लगीं, चार बजेसे पीछे श्यामाका ध्यान उचट गया, उसने बहुतेरा चाहा परन्तु फिर ध्यान न लगा। कोकिलाका भी ऐसा ही हुआ। तब श्यामा कोकिलासे कहने लगी—

श्यामा—बहिन! ध्यान तो इस समय लगता नहीं है और अभी रात्रि शेष है, यदि तू कहे तो मैं तुझसे एक प्रश्न करूँ?

कोकिला—कर बहिन, प्रश्न कर! मैं जानती हूँ कि तेरा प्रश्न संसार-सम्बन्धी तो होगा नहीं, ईश्वर-सम्बन्धी ही होगा। बोल, तेरा क्या प्रश्न है?

श्यामा—हे बहिन! संसार-समुद्रसे पार होनेका सुगम उपाय कौन-सा है? यह मैं तेरे मुखसे सुनना चाहती हूँ।

कोकिला—हे बहिन! संसार-समुद्रसे तरनेका सर्वोत्तम सुगम उपाय विश्वेशकी शरण है। जो बहिन-भाई विश्वेशकी शरण लेते हैं, वे निश्चय ही संसार-समुद्रसे सहज ही पार हो जाते हैं। विश्वेशकी शरण-में कठिनाई कुछ भी नहीं है और फल अक्षय है। न पैसा-धेला खर्च करना पड़ता है, न दूसरेकी सहायता लेनी पड़ती है, न आसन लगाना पड़ता है, न प्राणायाम करना पड़ता है, न प्रत्याहार, धारणा, ध्यान करना पड़ता है और न समाधि ही करनी पड़ती है। मनको रोकनेकी भी आवश्यकता नहीं है, ईश्वर-शरण होते ही ये सब बातें स्वयं सिद्ध हो जाती हैं।

श्यामा—बहिन! ईश्वर-शरण किसको कहते हैं?

कोकिला—कर्म और कर्मफलमें आसक्ति छोड़कर ईश्वरका प्रेमपूर्वक नित्य-निरन्तर स्मरण करते हुए समस्त क्रियाएँ केवल ईश्वरके प्रेमके लिये करना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीका नाम विश्वेश-शरण है। भगवान्‌ने गीतामें अर्जुनसे कहा है—'हे अर्जुन ! जो कुछ तू करता है, जो कुछ तू खाता है, जो कुछ तू होम करता है, जो कुछ तप करता है, यह सब मेरे अर्पण कर। यानी जो कुछ तू लौकिक, वैदिक क्रियाएँ करता है वह सब सिर्फ मेरी प्रीतिके लिये कर। ऐसा करनेसे तू सब कर्मोंके शुभ-अशुभ, सुख-दुःखरूप फलसे छूट जायगा और अभ्यासयोगसे युक्त मनवाला होकर मुझको ही प्राप्त होगा।' एक बार भाष्यकार भगवान् शङ्कर और उनके किसी शिष्यमें निम्नलिखित संवाद हुआ।

शिष्य–हे कल्याणमूर्ते ! मैं अपार संसारमें डूब रहा हूँ, उसमें क्या शरण है ? यानी मैं किसकी शरण लेकर संसार-समुद्रसे पार हो सकता हूँ। इस संसार-समुद्रमें अनादि कालका कर्मरूप जल भरा है; काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक भयानक जन्तु हैं, जो रात-दिन जीवको काटते रहते हैं, पाप-पुण्य-रूप लहरें उठ रही हैं, सुख और दुःख इन लहरोंके थपेड़े हैं। ये थपेड़े जीवको हर समय लगते रहते हैं। जैसे समुद्रका आजतक किसीने पार नहीं पाया, ऐसे ही यह संसार-समुद्र भी अपार है।

शङ्का–समुद्रके पार तो जहाज जाते ही हैं। फिर यह कैसे कहा जाता है कि समुद्रका पार नहीं है।

उत्तर–समुद्रके पार न तो आजतक कोई गया, न किसीने पार पाया। जहाज केवल एक टापूसे दूसरे टापूमें जाते हैं, और जा सकते हैं। इसलिये समुद्रका पार नहीं है। इसी प्रकार संसार-समुद्रका भी पार नहीं है।

शिष्य–इससे पार होनेका उपाय बताइये ?

गुरु–हे सौम्य ! संसार-समुद्रसे पार जानेके लिये विश्वेश परमात्माके चरण-कमलकी शरण ही उत्तम जहाज है। उस विश्वेशके चरण-कमलोंका अवलम्बन लेकर ही मनुष्य संसार-समुद्रसे पार हो सकता है। अब मैं तुझे विश्वेश शब्दका अर्थ समझाता हूँ, विश्व और ईश दो शब्दोंसे मिलकर बना हुआ यौगिक शब्द 'विश्वेश' है। इसके तीन अर्थ होते हैं—एक तो जो विश्वका ईश्वर है, वह विश्वेश्वर। दूसरा, जिस ईश्वरका विश्व है, वह विश्वेश्वर और तीसरा, जो विश्व है और ईश भी है, वह विश्वेश्वर।

शिष्य–श्रीमहाराज ! विश्वेशके प्रथम दो अर्थोंको तो मैं समझ गया, तीसरे अर्थको नहीं समझा। 'जो विश्व भी है और ईश भी है, वह विश्वेश है।' यह बात मेरी समझमें नहीं आयी; क्योंकि विश्व तो सबको प्रत्यक्ष दिखायी देता है, परन्तु विश्वेश तो दिखायी नहीं देता। नियममें रखनेवालेका नाम ईश्वर है, जो विश्वको नियममें रक्खे, वह ईश्वर—विश्वेश्वर है, यानी ईश्वर नियामक और विश्व नियम्य है। नियामक नियम्यसे भिन्न होता है। फिर नियामक ईश्वर और नियम्य विश्व एक कैसे हैं ?

गुरु–हे प्रियदर्शन ! जो सबमें प्रवेश कर जाय अथवा जिसमें सब प्रवेश कर जायँ, उसका नाम विश्व है। इस व्युत्पत्तिसे ब्रह्मका नाम विश्व है। क्योंकि ब्रह्म सब जगत्‌में व्यापक है और ब्रह्मसे सब जगत् व्याप्त है। इसलिये ब्रह्म और विश्व पर्याय हैं—एक ही वस्तुके दो नाम हैं।

विष्णुसहस्रनाममें व्यासजीने भगवान्‌का पहला नाम विश्व ही कहा है। विष्णुसहस्रनामके भाष्यमें मैंने विश्वेश शब्दका अर्थ विस्तारसे कहा है। विश्व और ब्रह्मकी एकता है, इसलिये 'जो विश्व है वही ईश्वर है', यह कथन युक्त ही है। नियामक और नियम्य अत्यन्त भिन्न हों, ऐसा नियम नहीं है। बल्कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त भिन्न दो पदार्थोंका नियामक और नियम्य भाव ही नहीं हो सकता। राजा अपने राज्यका ही नियामक होता है, अन्यका नहीं। पिता अपने ही पुत्रका नियामक होता है, दूसरेके पुत्रका नहीं। पृथिवी पृथिवीके बने हुए घटकी नियामक होती है, सुवर्ण सुवर्णके बने हुए आभूषणोंका नियामक होता है। अन्यका नहीं। यह वृत्तान्त तो व्यवहारका है। ईश्वर तो अपने स्वरूपसे कभी न बदलकर अज्ञानियों-को विश्वरूपसे दिखायी देता है। ईश्वर अधिष्ठान है। और ईश्वरके अज्ञानसे जगत् अध्यस्त है। अध्यस्तकी सत्ता अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती। इस कारणसे भी विश्व और ईश्वर एक ही हैं। 'अन्तर्यामी ब्राह्मण'में ईश्वरका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है कि जो पृथिवीके भीतर रहता है, पृथिवीमें रहकर पृथिवीको नियममें रखता है, पृथिवी जिसका शरीर है, पृथिवी जिसको नहीं जानती और जो पृथिवीको जानता है, वह सबका अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। जो जलके भीतर रहता है, जलके भीतर रहकर जलको नियममें रखता है, जल जिसका शरीर है, जल जिसको नहीं जानता और जो जलको जानता है, वह सबका अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। इस प्रकार आरम्भ करके अन्तमें कहा है कि जो सबके भीतर रहता है, सबके भीतर रहकर जो सबको नियममें रखता है, सब जिसका शरीर है, सब जिसको नहीं जानता और जो सबको जानता है वह अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।' हे शिष्य! ऐसे विश्वेशके चरण-कमलोंकी जो शरण लेते हैं अर्थात् शरीर, वाणी और मन तीनोंसे सब कर्म केवल विश्वेशकी प्रीतिके लिये करते हैं, वे अपार संसार-समुद्रसे पार होकर विश्वेशको ही प्राप्त हो जाते हैं।

श्यामा–हे बहिन! इस गुरु-शिष्यके संवादसे मेरी समझमें विश्वेशका स्वरूप आ गया, और मैं यह भी समझ गयी कि सब प्रकारसे आसक्तिरहित होकर सदा-सर्वदा प्रीतिसे ईश्वरका स्मरण करते हुए कायिक, वाचिक और मानसिक, लौकिक, वैदिक सब क्रियाएँ ईश्वरकी प्रीतिके लिये करना और अपना किसी प्रकार-का स्वार्थ न रखना इसीका नाम विश्वेश-शरण है। हे बहिन! विश्वेश-शरण लेनेवाले किसी भक्तकी कथा तेरे मुखसे मैं सुनना चाहती हूँ।

कोकिला–हे बहिन! प्राचीन कालमें अम्बरीष नामके एक राजा परम भक्त हो गये हैं। इनकी कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है, उसीको मैं संक्षेपमें तुझे सुनाती हूँ। यह राजा महान् भक्त होनेके साथ ही परम ज्ञानी और योगी भी थे। राज-पाटका सब काम ईश्वर-प्रीतिके लिये किया करते थे। न किसीसे राग करते थे, न द्वेष; शत्रु-मित्रको समान समझते थे। भगवान्का सगुण और निर्गुण स्वरूप हस्तामलकके समान इनको प्रत्यक्ष था। गीतामें श्रीभगवान्के वचन हैं, कि 'अनन्य चित्तसे जो भक्त मेरी भक्ति करते हैं, उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।' इस वचनके अनुसार भगवान्ने इनकी अनन्य शरणागतिसे प्रसन्न होकर इनकी रक्षाके लिये अपने सुदर्शन-चक्रको नियुक्त कर रक्खा था, जो कि रातमें, दिनमें, जंगलमें, बस्तीमें, जलमें, थलमें सर्वत्र सर्वदा इनके साथ रहकर इनकी रक्षा किया करता था, कभी इनसे पृथक् नहीं होता था।

एक बार द्वादशीके दिन दुर्वासा ऋषि मथुरामें राजाके पास आये। राजाने उनका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और भोजन करनेके लिये कहा। ऋषि राजाका निमन्त्रण स्वीकार कर यमुनाजीपर स्नान करने चले गये। दैवयोगसे उस दिन द्वादशी थोड़ी थी, राजा चिन्तामें पड़े, कि यदि व्रतका पारायण न करूँ तो शास्त्राज्ञाका भङ्ग होता है। और यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारायण कर लूँ तो निमन्त्रित ब्राह्मणको भोजन करानेसे पहले भोजन करनेका दोष लगता है। धर्म-संकटमें पड़े हुए राजाने ब्राह्मणोंसे सम्मति ली, तब ब्राह्मणोंने कहा कि जल पी लेना चाहिये, जल पीनेमें कोई दोष नहीं है। जल पी लेना भोजन और अभोजन दोनों ही है। ऐसा करनेसे व्रतका पारायण भी समयपर हो जायगा, और भोजन करनेका दोष भी नहीं लगेगा। राजाने ब्राह्मणोंकी इस सम्मतिसे जल-पान करके एकादशी-व्रतका द्वादशीमें पारायण कर लिया।

जब दुर्वासा ऋषि स्नान करके लौटे, और उन्होंने यह सुना कि राजाने जल पी लिया है तो उनके क्रोधका पारा बहुत ही चढ़ गया। आगबबूला होकर वह कहने लगे, कि यह राजा बड़ा अभिमानी है। भगवान्‌का भक्त बनता है और ब्राह्मणोंका अपमान करता है। मुझे निमन्त्रण दे दिया और मेरे आनेसे पहले ही इसने भोजन कर लिया। आज मैं इसे ऐसा दण्ड दूँगा, कि फिर यह कभी ब्राह्मणोंका अपमान नहीं करेगा।

ऐसा कहकर दुर्वासाजीने क्रोधसे अपनी जटाका एक केश उखाड़कर पृथिवीपर दे मारा, उससे एक कृत्या नामकी राक्षसी उत्पन्न हुई और वह ऋषिकी आज्ञासे राजाको भस्म करने दौड़ी। सबमें भगवान्‌को देखनेवाले भक्त राजाको कुछ भी भय न हुआ। वह हाथ जोड़े हुए जैसा खड़े थे वैसे ही खड़े रहे।

हे बहिन ! भगवान्‌के भक्त भगवत्‌के सिवा सब जगत्‌को वन्ध्याके पुत्रके समान मिथ्या समझते हैं और चराचर प्राणियोंमें एक सच्चिदानन्दघन अद्वितीय भगवान्‌को ही देखते हैं। इसलिये वे न किसीको भय देते हैं, न किसीसे भय खाते हैं। राजा कृत्याको भी भगवत्-स्वरूप देखते थे फिर वह उससे डरकर क्यों भागते ? न तो वह डरे और न भागे ही। कुलाचलके समान अचल खड़े रहे। इतनेमें ही सहस्रों सूर्यके समान प्रकाशवाला और प्रज्वलित अग्निके समान तेजवाला भगवान्‌का सुदर्शनचक्र प्रकट हुआ। और प्रकट होते ही पहले तो उसने कृत्याकी खासी आव-भगत की। अपने तेजसे उसे भस्म कर दिया और फिर वह दुर्वासाजीका सत्कार करनेके लिये दौड़ा। उसे देखते ही दुर्वासाजी अपने तपोबलको भूल गये। उसके तेजके सामने ठहर न सके, वहाँसे प्राण लेकर भागे। आगे-आगे दुर्वासाजी और पीछे-पीछे सुदर्शन। रसातल, पाताल, वरुणलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, जन और महर्लोक आदिमें जहाँ-जहाँ दुर्वासाजी गये वहीं-वहीं सुदर्शनचक्र उनके पीछे लगा हुआ उनको तपाता हुआ चला गया, न तो वह उन्हें भस्म करता था और न पीछा ही छोड़ता था। बेचारे दुर्वासाजी भागते-भागते थक गये, स्वास फूल गया। चोटीसे लेकर एड़ीतक पसीना बहने लगा। पैर लथड़ा गये, आखिर ब्रह्मलोकमें जाकर उन्होंने अपनी रक्षाके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की तब ब्रह्माजीने कहा—

हे ऋषि ! जिस परमेश्वरके एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, जिसकी आज्ञासे मैं एक ब्रह्माण्ड-मात्रका अधिपति हूँ, उस ईश्वरके भक्तके अपराधीकी हालतमें आपकी मैं रक्षा नहीं कर सकता। मैं क्या, कोई भी नहीं कर सकता। आप उसी देवके पास जाइये, वही आपकी रक्षा करेगा। मैं तो आपको अपने लोकमें क्षणभरके लिये ठहरा भी नहीं सकता, आप यहाँसे शीघ्र ही चले जाइये।

ब्रह्माजीसे सूखा उत्तर पाकर दुर्वासाजी वहाँसे चटपट भागकर शिवलोकमें पहुँचे और भगवान् श्री-शिवजीसे रक्षा करनेको कहने लगे। तब शिवजी बोले—

'हे दुर्वासा ! ब्रह्मा, मैं और इन्द्रादि सब देवता जिस देवके हाथके यन्त्र हैं, जिस देवको अपने भक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने प्यारे हैं, कि जो निर्गुण होकर भी उनकी रक्षा करनेके लिये सगुणरूप होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करता है, उस देवके भक्तके तुम अपराधी हो, अतः मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। तुम सर्वेश्वर भगवान्‌के पास जाकर प्रार्थना करो, वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।'

दुर्वासाजी शिवलोकसे चलकर भगवान्‌के पास पहुँचे और त्राहि-त्राहि कहकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब भगवान् इस प्रकार कहने लगे—

'हे सौम्य ! जिन भक्तोंकी समस्त क्रियाएँ केवल मेरी प्रीतिके लिये होती हैं, जिन भक्तोंने अपना सर्वस्व मुझे अर्पण कर दिया है, जो भक्त मेरे सिवा दूसरेको जानते ही नहीं उन भक्तोंके मैं पराधीन हूँ। मैं समर्थ हूँ, तो भी तुम्हारे किये हुए अपराधको क्षमा नहीं कर सकता। तुम राजा अम्बरीषकी शरणमें ही जाओ। वही तुम्हारे अपराधको क्षमा करेंगे।'

यह सुनकर दुर्वासाजी राजा अम्बरीषके पास जाकर त्राहि-त्राहि कहकर उसके चरणोंमें गिरने लगे, ऐसा देखकर अम्बरीषजीने सुदर्शनकी अनेक प्रकारसे स्तुति करके उसको शान्त किया। दुर्वासाजीको अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक भोजन करवाया। और उसके बाद स्वयं भोजन किया।

हे बहिन ! भगवान्‌की शरण लेना ही कल्याणका सच्चा मार्ग है। जो बहिन-भाई भगवान्‌की शरण लेते हैं, वे संसारसमुद्रसे अनायास ही पार हो जाते हैं। और जो हतभाग्य मनुष्य विश्वेशकी भक्ति छोड़कर स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि भोगोंमें आसक्त रहते हैं, वे जन्मते और मरते रहते हैं, और जहाँ जाते हैं वहीं दुःख ही उठाते हैं, शान्ति कभी नहीं पाते।

हे बहिन ! भगवत्-शरणमें जैसा सुख है, वैसा सुख चक्रवर्ती राजाको भी नहीं होता। चक्रवर्ती राजा तो सम्पूर्ण मनुष्यलोकके भोग प्राप्त करनेसे सुखी होता है परन्तु भगवत्-भक्त तो मनुष्यलोकसे लेकर ब्रह्मलोकतकके भोगोंकी इच्छा ही नहीं करता, इसलिये चक्रवर्ती राजासे भी भगवत्-भक्तका सुख अधिक है। किसीने सच कहा है कि जैसा सुख निःस्पृही भगवत्-भक्तको होता है, वैसा सुख किसी लोकमें किसीको नहीं है। सच कहा है—

विश्वेशके जो हों शरण, भवसे हुए वे पार हैं।
संसारमें आसक्त जो, वे डूबते मँझधार हैं॥
'देवी' शरण ले ईशकी, यदि शान्ति तुझको इष्ट है।
हरि-भक्त पाता शान्ति है, भव-भक्त पाता कष्ट है॥

अभिलाषा

(लेखक—श्रीव्रजभूषणजी गोस्वामी)

तरु भूषन फूल बनूँ, ब्रजभूषन ! माधवको लख फूला करूँ।
बन गोकुलकी कलनादिनि कोकिल आमकी डारपै झूला करूँ॥
कर कुंजन कुंजन गुंजन गुंजन भृंग ह्वै भृंगता भूला करूँ।
ब्रजबीथिनकी बन दूब हरी पद छूकर मोदसे ऊला करूँ॥
मधु काननको मैं मयूर बनूँ लखके घनश्यामको नाचा करूँ।
बन चातक मैं ब्रजभूमिहिको घनश्यामहिते नित याचा करूँ॥
यदि बिप्र बनूँ तो बनूँ ब्रजको जहाँ कृष्णकथा नित बाचा करूँ।
युगलेश्वर पायन-पायनदाज पड़ो रहके रज राचा करूँ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्त्तव्य

(लेखक—श्रीनोखेलालजी शर्मा बी० ए०, काव्यतीर्थ)

एक मनुष्यकी आत्मा भौतिक शरीर छोड़कर नियन्ताके सामने खड़ी हुई । नियन्ताने अपने मन्त्रीसे पूछा, 'कहो मन्त्रिन्! जो साधन इसे मिले थे उससे इसने सृष्टिकी कुछ भलाई की वा नहीं ?'

मन्त्रीने उत्तर दिया, 'देवाधिदेव ! यह अङ्गोंका विकल बनाया गया था ।' नियन्ताने कहा, 'यदि इसे अच्छे अङ्ग मिलें तो यह कुछ करेगा ?' मनुष्य बोल उठा, 'निश्चय सरकार ।'

× × × ×

बहुत काल पीछे वही आत्मा पुनः नियन्ताके सामने खड़ी हुई । नियन्ताने पूछा, 'क्यों मन्त्रिन् ! इसे आँखें तो अच्छी मिली थीं ।' मन्त्रीने उत्तर दिया, 'हाँ देव ! पर उसे इसने सुन्दर वस्तुएँ देखनेमें लगाया; सृष्टिकी भलाई कुछ न की । इसी प्रकार, इसे हाथ-पाँव आदि भी अच्छे मिले थे, पर उनसे इसने केवल अपना स्वार्थ साधा ।' मनुष्यके पास एक बहाना था, झट बोल उठा, 'सरकार मैं क्या करता, मैं बिल्कुल निर्धन था ।' नियन्ताने कुतूहलवश पुनः उसे धनके साथ इहलोक भेजा ।

× × × ×

बहुत दिन पीछे पुनः उसी प्रकार मनुष्यकी आत्मा भयभीत होकर नियन्ताके सामने खड़ी हुई । उसे अपनी पुरानी प्रतिज्ञा याद पड़ी जिससे वह बहुत व्याकुल हो रहा था । नियन्ताने उसके धनका उपयोग पूछा । मन्त्रीने कहा, 'दयामय ! अपने धनको इसने अधिकतः भोग-विलासमें लगाया और कुछ पृथिवीमें गाड़े रहा । अब मनुष्यको एक बहाना सूझ गया । वह बोला 'दीनानाथ ! धनके साथ बुद्धि न मिलनेसे मैं क्या करता !' नियन्ताने एक बार और बुद्धिके साथ उसे इहलोक भेजा ।

× × × ×

कालान्तरमें जब आत्मा पुनः उसी प्रकार वहाँ दाखिल हुई तो नियन्ताने उसकी बुद्धिका उपयोग पूछा । मन्त्रीने उत्तर दिया, 'देव ! इसे बहुत अच्छी विद्या-बुद्धि मिली थी । पर उसे इसने वेतन लेकर बेंच दिया । सृष्टिकी कोई भलाई न की । विद्या पाकर यह गर्वसे अपनेको बुद्धिमान् मानने लगा । साधारणतः यह तर्कशक्तिसे विपरीत कल्पना किया करता और उसीका पृष्ठपोषण करता । देव ! बुद्धिका इसने बड़ा ही दुरुपयोग किया है ।' मनुष्य अपनी भूलपर अवाक् था । उसके पास अब कोई बहाना नहीं था । उसे बहुत कठिन दण्ड मिलनेकी आज्ञा हुई । सभा मनुष्यकी भूलपर आश्चर्यचकित थी । स्वयं मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा न पाल सकनेका कारण ढूँढ़ न पाता था ।

नियन्ता दण्ड देकर भी हँस रहे थे ।

ईश्वरकी दीनबन्धुता

'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाँडति साथ ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथके नाथ ॥ १ ॥
संतत संपतिवानकाँ, सब कोऊ सब देइ ।
दीनबंधु बिन दीनकै, को 'रहीम' सुधि लेइ ॥ २ ॥
समय दसा कुल देखिकै, लोग करत सनमान ।
'रहिमन' दीन अनाथके, तुम बिन को भगवान ॥ ३ ॥
दीन लखै सब जगतकाँ, दीनहिं लखै न कोइ ।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबंधु-सम होइ ॥ ४ ॥

—रहीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्त्र

(लेखक—पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि ब्रह्मके साथ जब प्रकृतिका अविना या नित्य सम्बन्ध है तब प्रकृतिलीन जीवोंकी पुनरावृत्तिका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि जिन जीवोंको ज्ञानोत्पन्न नहीं होता वे प्रलयकालमें अपरा प्रकृतिमें प्रसुप्त हो जाते हैं, वह अपरा प्रकृति परमा प्रकृतिका ही एक अंश है। जिस प्रकार हम गम्भीर निद्राके समय जगत्को भूल जाते हैं, अपनेको भी भूल जाते हैं, परन्तु जाग करके फिर पूर्व-स्मृतिके अनुसार जगत्के कार्य सम्पादन करते हैं। पर जो ब्रह्मलीन हो गये हैं, वे फिर नहीं जगते, इस देहमें पुनः नहीं लौटते। क्योंकि ज्ञानके कारण उनका कर्म नष्ट हो जाता है, और कोई स्मृति नहीं होती, अतएव कर्मचेष्टा भी नहीं होती। इसीलिये उन्हें शरीर ग्रहण करके फिर कर्म-क्षेत्रमें विवश होकर लौटना नहीं पड़ता। हम जो प्रतिदिन निद्राके समय सब कुछ भूल जाते हैं, यह अज्ञान-लीन अवस्था है, ज्ञान-लीन नहीं।

प्रकृतिके गुणक्षोभसे जिस प्रकार सत्त्वादि समस्त गुण पृथक्-पृथक् रूपमें भासित हो उठते हैं, उसी प्रकार सर्व-प्रथम मूल प्रकृति भी शुद्ध और अशुद्ध भेदसे दो अंशोंमें विभक्त हो जाती है। शुद्ध अंशका नाम परा प्रकृति या विद्या है और अशुद्ध अंशका नाम अपरा प्रकृति या अज्ञान है। मूल प्रकृति ही महामाया या महाविद्या है। इस महा-मायासे उद्भूत विद्याशक्तियोंको भी महाविद्या कहा जाता है, क्योंकि उस चैतन्योपहित मूला प्रकृतिसे ये महाविद्याएँ अलग नहीं हैं। निर्गुण ब्रह्मके चैतन्यभावद्वारा परा प्रकृति-में उपहित होनेपर जो शक्ति उत्पन्न होती है वही सर्व-शक्तिमान् शिव या सर्वज्ञ ईश्वर हैं। इसी कारण महादेवी-को शिवकी शक्ति भी कहा जाता है तथा उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव-प्रसविनी भी कहते हैं।

यह शिव-शक्ति-सम्मिलित तत्त्व ही हिरण्यगर्भ या ईश्वर है सांख्यके मतसे भी प्रकृति और पुरुष यह दोनों मूलतत्त्व हैं। यद्यपि हिरण्यगर्भको सर्वविद् और सर्वकर्ता कहा गया है—'स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता'—तथापि वह जन्य ईश्वर है।

किन्तु तन्त्रमें इसे जन्य ईश्वर नहीं कहा गया है। ब्रह्मकी सिसृक्षासे उसमें स्थित शक्ति स्पन्दित होकर उस निर्गुण ब्रह्मके चैतन्यभाव और उसके साथ शक्तिके विकास (जो उसमें विलीन थी) से जो परम ऐश्वर्यमय शक्ति विकसित होती है वह न ब्रह्म ही है, न मूलप्रकृति ही; परन्तु ब्रह्म और प्रकृतिका सम्मिलन होकर (जिस प्रकार माता-पिताके सम्मिलनसे उत्पन्न पुत्र न वह माता है न पिता) जिस एक अद्भुतकर्मा शक्तिका विकास होता है वही इस जगत्-सृष्टिका मूल (Direct cause) है। इसीको उपलक्ष्यकर महा-निर्वाणतन्त्रमें कहा गया है—

नमः सर्वस्वरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः।
आद्यायै कालिकायै ते कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमो नमः॥
सृष्टेरादौ त्वमेवासीस्तमोरूपमगोचरम्।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं परब्रह्मसिसृक्षया॥
महत्तत्त्वादिभूतान्तं त्वया सृष्टमिदं जगत्।
निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम्॥

× × ×

सत्यं ज्ञानमनाद्यन्तं अवाङ्मनसगोचरम्॥
तस्येच्छामात्रमालम्ब्य त्वं महायोगिनी परा।
करोषि पासि हंस्यन्ते जगदेतच्चराचरम्॥
तव रूपं महाकालो जगत्संहारकारकः।
महासंहारसमये कालः सर्वं प्रसिद्धयति॥
कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।
महाकालस्य कलनात्त्वमाद्या कालिका परा॥
कालसंग्रसनात्काली सर्वेषामादिरूपिणी।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्याकालीति गीयसे॥
पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृतिः।
वाचातीतं मनोऽगम्यं त्वमेकैवावशिष्यसे॥
साकाराऽपि निराकारा मायया बहुरूपिणी।
त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टिके पूर्व एकमात्र तुम ही तमोरूपमें विद्यमान थी, तुम्हारा वह अव्यक्त रूप मन और वाणीकी पहुँचके परे है। पश्चात् परब्रह्मकी (अर्थात् मूल प्रकृतिके साथ तादात्म्यप्राप्त तुरीय ब्रह्मकी) सिसृक्षाके अनुसार तुम्हारे ही (अन्य रूपमें) तमोरूप शक्तिसे निखिल जगत्की सृष्टि होती है। महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चमहाभूतपर्यन्त यह समस्त जगत् तुम्हींसे सृष्ट होता है। सब कारणोंका कारण वह ब्रह्म तो केवल निमित्तमात्र है। वह ब्रह्म सत्त्वस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है, वह अनादि, अनन्त और मन-वाणीके अगोचर है। हे महायोगिनी! तुम उसकी इच्छामात्रका अवलम्बन कर इस चराचर जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करती हो। जगत्-संहारकारी महाकाल तुम्हारा ही रूपमात्र है। प्रलयकालमें यह महाकाल समस्त जगत्को ग्रास करेगा। सब प्राणियोंको कलन अर्थात् ग्रास करनेके कारण वह महाकाल नामसे प्रकीर्तित होता है। तुम उस महाकालका भी कलन अर्थात् ग्रास कर जाती हो, इसीलिये तुम्हारा नाम आद्याकालिका है। कालको ग्रास करनेके कारण तुम्हीं सबकी आदिभूता या कारणरूपा हो, इसीसे तुम्हें सब आद्याकाली कहते हैं। फिर महाप्रलयकालमें वाणी और मनसे अतीत तमोमय निराकार, अव्यक्त स्वरूप अवलम्बन करके एकमात्र तुम्हीं विद्यमान रहती हो। तुम मायाके द्वारा बहुत रूप ग्रहण करती हो, अतः तुम साकार होते हुए भी निराकारा हो। तुम सबकी आदि हो, परन्तु स्वयं अनादि हो। तुम्हीं सबकी सृष्टि करनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली हो।

इससे यह समझा जा सकता है कि मूल प्रकृतिसे उपहित ब्रह्म अथवा ब्रह्मके साथ अङ्गाङ्गीभावसे मिलित प्रकृति ही आद्याकाली हैं।

जीवके समष्टि अदृश्यसे उत्पन्न भोगकालके उपस्थित होनेसे ही आद्याशक्ति (प्रकृति) में गुणक्षोभ होता है, उस समय सर्वप्रथम तमोगुणका आविर्भाव होता है। चैतन्ययुक्त शक्ति जब इस तमोगुणमें अनुप्रविष्ट होती है तो उसे महाकाल कहते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर सत्त्वगुण रजोगुणमें और रजोगुण तमोगुणमें लय हो जाता है और तमोगुण प्रकृतिमें लीन हो जाता है। पुनः सृष्टिकालमें आद्याकाली महाकालीको प्रसवकर उसमें अनुप्रविष्ट हो जाती है, यही कालीकी विपरीतरतातुरा मूर्ति है। आद्याशक्ति यदि तमोगुणमें प्रविष्ट न हो तो जगत्की उत्पत्ति ही कैसे हो? स्त्री-पुरुषके सहयोगसे जिस प्रकार जीवोत्पत्ति होती है, महाकाल और आद्याशक्तिके सहयोगसे उसी प्रकार यह जगत् उत्पन्न होता है।

इस आद्याशक्तिको राधाशक्ति भी कहते हैं। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणके मतसे गोलोकके रासमण्डलमें राधिकाने एक डिम्ब प्रसव किया था, उस डिम्बसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उत्पन्न हुए। यह डिम्ब ही महत्तत्त्व है। महत्तत्त्व ही त्रिगुण भेदसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरका रूप धारण करता है। वैष्णवलोग इसी कारण राधाकी इतनी भक्ति, इतना सम्मान करते हैं; वस्तुतः इस राधाके बिना रास-रसलीला होनेका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। और इसके बिना जगत्-सृष्टिकी भी सम्भावना नहीं है। आद्याशक्तिके अनुप्रविष्ट न होनेसे महाकाल तो तमोभूत जडमात्र है, वह सृष्टिलीलाके लिये कुछ भी नहीं कर सकता। इसीलिये सुरसिक वैष्णव साधक कहते हैं—

राधासङ्गे यदा भाति तदा मदनमोहनः।
अन्यथा विश्वमोहोऽपि स्वयं मदनमोहितः॥

यह कृष्णवर्ण तमोगुण ही नवीन-नीरद श्यामसुन्दर हैं, यही महाकाल हैं। गीतामें लिखा है—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

इस प्रकार तत्त्वकी दृष्टिसे देखनेपर तन्त्रमतानुसार सच्चिदानन्द ब्रह्मयुक्त आद्याशक्तिसे नाद (महत्तत्त्व) की उत्पत्ति होती है, नादसे विन्दु (अहङ्कार-तत्त्व) की उत्पत्ति होती है। अहङ्कार सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारका है। इन तीन विन्दुओं (सात्त्विक, राजसिक और तामसिक अहङ्कार) की समष्टिका नाम ही परम विन्दु है। सात्त्विक विन्दुका नाम विन्दु, तामसिक विन्दुका नाम बीज और राजसिक विन्दुका नाम नाद है। इन विन्दु, बीज और नादमें विन्दु शिवस्वरूप या चिन्मय है, बीज शक्तिस्वरूप या प्रकृतिमय है, एवं नाद उभयात्मक या शिवशक्तिमय है।

विन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम्।
तयोर्योगेऽभवन्नादास्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन्दु शिवात्मक है, बीज शक्त्यात्मक हैं, एवं इन दोनोंके योगमें नाद है, अतः वह शिवशक्त्यात्मक है। इससे त्रिशक्ति अर्थात् ज्ञान, इच्छा और क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है। यह ज्ञान, इच्छा और क्रियाशक्ति ही क्रमशः रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु नामसे आख्यात हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीनोंकी समष्टि ही महत्तत्त्व या परमबिन्दु है। यही जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और लयके कर्ता अथवा ईश्वर हैं। यही सांख्योक्त—'स हि सर्वविद् सर्वकर्ता' है। वेदमें भी कहा गया है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे-
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

हिरण्यगर्भ सबसे पहले उत्पन्न होकर समस्त विश्वको उत्पन्न करते हैं और उसके पति या प्रभु बनते हैं। जबतक यह विश्व रहता है, वह तबतक इसके प्रभु बने रहते हैं। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् एवं सृष्टि, स्थिति और लयके कर्ता हैं। उन्हें कोई-कोई ब्रह्मा भी कहते हैं, परन्तु वस्तुतः वह त्रिशक्तिमय ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप अथवा सगुण ईश्वर हैं। वही योगदर्शनके 'पूर्वेषामपि गुरुः' हैं। अर्थात् कपिल, नारद, वशिष्ठादि श्रेष्ठतम और प्राचीनतम आचार्योंके भी वह गुरु हैं। इस ईश्वरके प्रणिधानसे निश्चय ही समाधि-सिद्धि या योगकी प्राप्ति होती है। योगदर्शनके भाष्यमें महर्षि व्यास कहते हैं—

प्रणिधानाद्भक्तिविशेषाद् आवर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति अभिध्यानमात्रेण—

प्रणिधान अर्थात् भक्तिविशेषसे उसको आत्मसमर्पण करनेपर ईश्वर अभिध्यानके द्वारा उस योगीके ऊपर अनुग्रह करते हैं।

इस उपास्य देवता या परमात्मशक्तिकी सात्त्विकादि गुणभेदसे उपासनाकी भिन्नता तन्त्रमें देखी जाती है। और उसी प्रकार साधक और साधनाकी भी तीन श्रेणियाँ मानी जाती हैं।

अधिकारी-भेदसे यह साधनकी भिन्नता हिन्दुओंकी विशेषता है। अन्यान्य धर्मावलम्बियोंके धर्मसाधनके उपाय और निष्ठाकी बात तत्तद् धर्मशास्त्रोंमें एक ही प्रकारकी बतलायी गयी हैं। सबके लिये एक ही नियम निश्चित किया गया है, परन्तु वस्तुतः हम सबकी मनुष्याकृति होनेपर भी हम सभी समान मनुष्य नहीं हैं। जिनको यथार्थ सूक्ष्म दृष्टि (Insight) प्राप्त है, वे इस बातको समझ सकते हैं। वर्तमान युगमें हमलोग 'सबका अधिकार समान है' इस प्रकारकी डींग हाँकते हैं, परन्तु वस्तुतः यह ठीक नहीं है। हम देखते हैं कि एक ही श्रेणीके पाँच छात्र एक ही शिक्षकके द्वारा शिक्षित होते हैं, तथापि उनमें बुद्धिका तारतम्य दिखलायी देता है। और उसीके अनुसार परीक्षामें कोई प्रथम होता है, कोई मध्यम, कोई सबसे निम्न रहता है; तथा कोई तो उत्तीर्ण ही नहीं हो पाता। अतः सिर्फ सीनाज़ोरीसे हम इस अधिकारकी भिन्नता अथवा भेदकी उपेक्षा नहीं कर सकते। गिलहरीके बिलमें सियार और बाघ नहीं रह सकते। प्राचीन कालके ऋषि इस बातको समझते थे, इसीलिये उन्होंने साधकोंकी योग्यताके अनुसार साधनाके स्तर और भेदोंको निश्चय किया था। तन्त्रमें लिखा है—जो ज्ञान-वैराग्ययुक्त पुरुष हैं वे ब्रह्मका स्वरूप इस प्रकार देखते हैं—

सत्तामात्रं निर्विशेषं अवाङ्मनसगोचरम्।
समाधियोगैस्तद्वेद्यं सर्वत्र समदृष्टिभिः॥
ततो विश्वं समुद्भूतं येन जातञ्च तिष्ठति।
यस्मिन्सर्वाणि लीयन्ते ज्ञेयं तद्ब्रह्मलक्षणैः॥

जिससे अखिल विश्व उत्पन्न हुआ है, और उत्पन्न होकर जिसमें अवस्थान करता है, फिर प्रलयकालमें जिसमें लयको प्राप्त होता है, वही ब्रह्म है। वह सत्तामात्र, निर्विशेष, वाणी और मनके अगोचर है, समदृष्टिसम्पन्न पुरुषको समाधियोग-द्वारा इस ब्रह्मस्वरूपका ज्ञान होता है।

बहिरन्तर्यथाकाशं सर्वेषामेव वस्तुनाम्।
तथैव भाति सद्रूपो ह्यात्मा साक्षीस्वरूपतः॥
(महानिर्वाण० १०। १८। १९)

जिस प्रकार सब वस्तुओंके भीतर और बाहर आकाश रहता है, उसी प्रकार सत्स्वरूप और साक्षीस्वरूप आत्मा स्वरूपतः सर्वत्र ही विद्यमान रहता है।

ज्ञानमात्मैव चिद्रूपो ज्ञेयमात्मैव चिन्मयः।
विज्ञाता स्वयमेवात्मा यो जानाति स आत्मवित्॥
(महानिर्वाणतन्त्र)

चिन्मय आत्मा ही ज्ञान है, चिन्मय ही ज्ञेय है, आत्मा ही स्वयं ज्ञाता है, जो इसे जानते हैं वही आत्मवित् हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं मायया कल्पितं जगत्।
सत्यमेकं परं ब्रह्म विदित्वैवं सुखी भवेत्॥
विहाय नामरूपाणि नित्ये ब्रह्मणि निश्चले।
परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्धनात्॥

ब्रह्मसे लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत् मायाकल्पित है, एकमात्र परब्रह्म ही सत्य है। यह जानकर मनुष्य सुखी हो जाता है। जो नामरूप परित्यागकर नित्य निश्चल ब्रह्मका याथार्थ्य निर्णय कर सकते हैं वही कर्मबन्धनसे मुक्त होते हैं।

ज्ञानं तत्त्वविचारेण निष्कामेनापि कर्मणा।
जायते क्षीणतमसां विदुषां निर्मलात्मनाम्॥

तत्त्वविचार एवं निष्काम कर्मानुष्ठानद्वारा तमोराशिके क्षय होनेपर तथा हृदयाकाशके निर्मल होनेपर तत्त्वज्ञानका उदय होता है। (क्रमशः)

कुटुम्बप्रेम, विश्वप्रेम और ईश्वरप्रेम

(लेखिका—श्रीमती सावित्रीदेवीजी अग्निहोत्री)

सहसा कोई व्यक्ति सबसे ऊपरकी सीढ़ीमें नहीं पहुँच सकता। बीचकी सीढ़ियोंको पार करनेके पश्चात् ही ऊपरकी सीढ़ी प्राप्त हो सकेगी। अथवा यों कहिये कि यदि अन्तिम सीढ़ीपर चढ़ना है तो पहली सीढ़ीका स्वागत करना अनिवार्य है। किन्तु हाँ, गति निरन्तर प्रचलित रहनी चाहिये, बीचहीमें जाकर बैठ जानेसे उच्च शिखर न प्राप्त हो सकेगा। सदैव यह स्मरण रहना चाहिये कि अन्तिम सीढ़ी चढ़नेके लिये ही प्रथम सीढ़ी चढ़ रहे हैं। पहली सीढ़ी साधन है और अन्तिम साध्य। अस्तु।

कुटुम्बप्रेम, विश्वप्रेम एवं ईश्वरप्रेम मनुष्यकी उत्तरोत्तर आत्मोन्नतिकी सीढ़ियाँ हैं। एक बालकको आरम्भमें वर्णमाला पढ़ाकर फिर क्रमशः अन्य पुस्तकें पढ़ाते हुए उसका ज्ञान विस्तृत किया जाता है। बस, यही वर्णमाला हम कुटुम्बप्रेमसे पढ़ना आरम्भ करते हैं। हमारे यहाँकी आश्रमप्रणाली भी यही शिक्षा देती है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ एवं संन्यास उत्तरोत्तर इसी उन्नतिके पथकी सीढ़ियाँ हैं, जिनमें आत्मज्ञान क्रमशः अपना संकुचित भाव छोड़कर निरन्तर विस्तृत होता हुआ अन्ततः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तपर पहुँच जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रममें व्यक्तिका क्षेत्र केवल अपनेहीतक परिमित रहता है। वह सारे कार्य अपने ही लिये करता है। वह अपने लिये पढ़ता है, अपने ज्ञानका भाण्डार बढ़ाता है, अपना स्वास्थ्य ठीक रखता है, अपनी इन्द्रियोंपर शासन रखता है, अपनी रक्षा करता है। यह सब एक प्रकारसे अपनी ही सेवा करता है, तब क्या इससे उसे स्वार्थी कहकर पुकारा जा सकता है? नहीं, इसीसे तो वह शिक्षा ग्रहण करता है कि आगे चलकर सारे कुटुम्बकी इसी प्रकार सेवा करूँगा। कुटुम्बकी सेवा करनेके लिये ही वह अपनी सेवा करना सीखता है, अथवा कुटुम्बप्रेमके लिये ही वह अपनेसे प्रेम करता है। फिर गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करते ही उसका वह छोटा-सा कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत हो जाता है। अपनेसे भी कहीं अधिक अब उसे वृद्ध माता-पिता, पत्नी और सन्तानरक्षाकी चिन्ता रहती है। वह उनकी सेवामें तत्पर अथवा प्रेमसे अग्रसर होकर ही धनोपार्जन करता है। इसके अतिरिक्त यदा-कदा आये हुए अतिथियोंकी सेवामें भी भाग लेता है। अब देखिये—क्रमशः सेवा और त्यागमें पहलेकी अपेक्षा वही व्यक्ति कितना अनुभवी हो गया। किन्तु नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तो आगे बढ़ना है। वानप्रस्थमें आकर वन्य पशु-पक्षी तथा वृक्ष इत्यादि भी उसके कुटुम्बके अन्तर्गत आ गये। अब वह इन सभीसे प्रेम करता है एवं त्यागभाव धारणकर सभीकी सेवामें निरन्तर तत्पर रहता है।

बस क्या मार्ग समाप्त हो गया, सीढ़ियाँ पार हो गयीं ? नहीं, अभी कुछ और मार्ग शेष है, थोड़ा और बढ़ना बाकी है। अब—संन्यास आश्रममें आकर—सारे विश्वको अपना समझना और अपनेको सारे विश्वमें मिला देनेकी आवश्यकता आती है। जब उससे प्रेम कर अपनेको भुलाकर उसकी सेवामें—उसके हितमें मनुष्य रत होता है तब जीवनके उद्देश्यकी सीमा समाप्त होती है। विचारपूर्वक देखनेसे ज्ञात होगा कि हमारे यहाँ सनातनसे चली आयी यह उपर्युक्त प्रणाली कितनी सुगमता एवं सरलतासे त्याग और सेवाका पाठ पढ़ाती है। किस प्रकार धीरे-धीरे ऊपरकी ओर चढ़ाती ले जाती है।

प्रेम, त्याग और सेवाका पाठ मनुष्य प्रथम अपने घरसे ही सीखता है, किन्तु उसका अन्त घरमें ही न हो जाना चाहिये। कुटुम्ब और विश्वमें अन्तर होते हुए भी कोई अन्तर नहीं है। ऐसे ही बहुत-से कुटुम्ब मिलकर वसुधाका वह एक बृहत् कुटुम्ब बना है अथवा उस बृहत्काय कुटुम्बके अन्तर्गत ही ये छोटे-छोटे अनेकों कुटुम्ब हैं। हाँ, कभी-कभी ऐसी विकट परिस्थिति आ जाती है जब कि कुटुम्बसेवा और विश्वसेवामें भेद-सा पड़ने लगता है। अर्थात् उस स्थितिमें एकहीकी सेवा हो सकती है, चाहे कुटुम्बसेवा कर ली जावे, चाहे विश्वसेवा ही। ऐसी दशामें उपयोगितावादका आश्रय लेकर समस्या हल की जा सकती है। उस समय यह देखना चाहिये कि अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंका अधिक-से-अधिक हित साधन हो सके। पर किन्हीं स्थितियोंमें यह बात भी समीचीन नहीं ठहरती। अतः सबसे उत्तम तो यह होगा कि हम निःस्वार्थभावसे सेवामें रत हो जावें। बदला पानेकी आशासे यदि कार्य न किया जावे तो अपने सगे-से-सगे सम्बन्धीकी सेवा भी विश्व-सेवाकी परिधिके अन्तर्गत आ जाती है। कुटुम्बसेवा और विश्वसेवामें बहुत अंशोंमें यही अन्तर रहता है न कि एकमें प्रतिफल पानेकी आशा रहती है दूसरेमें तनिक भी नहीं। तो बस, केवल मनोगत भावोंका ही तो अन्तर है न ? तब यदि प्रतिफल पानेकी आशासे विश्वसेवा भी की जावे तो वह संकुचित समझी जावेगी और यदि निःस्वार्थभावसे प्रतिफल पानेकी आशा न रखकर केवल कर्तव्य समझकर-कुटुम्बसेवा भी की जावे तो वह विस्तृत है। कोई भी व्यक्ति अकेला तो विश्वभरकी सेवा कर नहीं सकता, हाँ, उसके एक अंशको ही सहायता पहुँचा सकेगा। यदि कोई व्यक्ति हमारी किसी एक उँगलीके घावपर मरहम लगा रहा है तो वह हमारे समस्त शरीरकी ही सेवा कर रहा है। कारण ऐसे छोटे-छोटे अङ्ग मिलकर ही समस्त शरीरका निर्माण हुआ है। किन्तु हाँ, उस एक उँगलीको ही सर्वस्व न समझ लेना चाहिये यदि उँगलीका घाव इतना विषाक्त हो गया है कि अच्छा नहीं हो सकता और उसके—उँगलीके—द्वारा शरीरको लाभ पहुँचनेके स्थानपर हानि-ही-हानि है तो ऐसी दशामें उँगलीके हितका ममत्व छोड़कर शरीरके हितके लिये उँगलीको उस समय काट डालना भी श्रेयस्कर होगा। अस्तु।

× × × ×

यदि किसी मातासे प्रेम करना हो तो विवश हो प्रथम उसकी सन्तानसे प्रेम करना ही होगा। बिना उसकी सन्तानसे प्रेम किये माताका प्रेम पाना असम्भव है। सन्तानसे वैरभाव रखकर तो माताका प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदापि न मिल सकेगा। कुछ परिस्थितियोंमें सम्भव है सन्तानसे प्रेम करनेपर माताका वैरभाव तिरोहित हो जावे। बस, ईश्वरप्रेमपर भी यही बात घटित होती है। यदि ईश्वरका प्रेम पाना है—उसकी सेवा करनी है तो प्रथम उसकी दीन-दुःखी सन्तानसे प्रेम और उन्हींकी सेवा करनी चाहिये। कदाचित् वह अपनी सेवासे इतना अधिक प्रसन्न न होगा, जितनी अधिक प्रसन्नता उसे अपनी प्रिय सन्तानोंकी सेवासे मिलेगी। यदि ईश्वरके प्रति हृदयमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखकर कुटुम्बप्रेम और विश्वप्रेम किया जावे तो बड़ी ही सुगमतासे ईश्वरप्रेम प्राप्त होगा। इस कुटुम्बप्रेम और विश्वप्रेममें ही ईश्वरप्रेम अन्तर्निहित है। ईश्वरप्रेमके स्वच्छ, शुभ्र उच्च शिखरकी ये सीढ़ियाँ हैं।

और फिर हम इतने तुच्छ होकर उस सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी किस सेवामें भाग ले सकते हैं? उसके किस कार्यमें सहयोग दे सकते हैं? क्या उसके साथ चन्द्र-सूर्य बनवा सकते हैं? नहीं। हमारे हृदयकी दयालुता एवं निःस्वार्थता आँकनेके लिये ही तो उसने दीन-दुःखियोंकी सृष्टि की है। अतएव इन सबकी निःस्वार्थ सेवा और प्रेमके द्वारा ही हम उसके बहुत निकट पहुँच सकते हैं। इस प्रकार करते-करते क्रमशः मनुष्य भगवान्‌के बहुत समीप पहुँच जाता है। और संसारके समस्त प्राणी उसे आत्मरूप या ईश्वरस्वरूप दीखने लगते हैं। यों प्रतिक्षण समस्त विश्वको ब्रह्मरूप दीखनेवाले ब्रह्मविद् पुरुषको फिर कौन-सा मोह और कौन-सा शोक रह जाता है?

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

बस, यही परमोत्कृष्ट स्थिति है। हमें अन्तमें इसी स्थितिको प्राप्त करनेके लिये यत्नशील रहना चाहिये।

राम

(लेखक—श्रीब्रह्मदत्तजी दीक्षित 'ललाम' बी० ए०, सी० टी०)

"कहाँ है? प्रभुका धाम, 'ललाम'?"
"सभीमें रमते हैं श्रीराम।"
"कौन हँसता है फूलोंमें?
केलि करता है कूलोंमें?
चमकता कौन चाँदनीमें?
छिपा है कौन यामिनीमें?
उषा किसका करती शृंगार?
कर रही किसको संध्या प्यार?
खिलाती किसको सिंधु हिलोर?
कौन है सबके मनका चोर?"
वही भगवान, कभी घनश्याम,
कभी बन जाते हैं श्रीराम॥
'अनलहक़' कहते बन 'मंसूर'
तड़पते दर्शनको बन 'सूर'।
कभी चैतन्य कभी हैं बुद्ध,
कभी हैं चिदानंदघन शुद्ध॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुप्रियाजीको संन्यासी स्वामीके दर्शन

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥*
(सु० २० भां० ३६६ । १७)

मेरा अपना ऐसा विश्वास है और शास्त्रोंका भी यही सिद्धान्त है कि यह संसार एकान्तवासी तपस्वी महापुरुषोंके पुण्यसे तथा पतिव्रताओंके पातिव्रतके प्रभावसे ही स्थित है। शास्त्रोंका यही अभिमत है कि संसार धर्मपर ही स्थित है और पुरुषोंके लिये संसारी भोग्य पदार्थोंकी आसक्ति छोड़कर प्रभुसे प्रेम करना और स्त्रीके लिये मन, वचन, कर्मसे पातिव्रतधर्मका पालन करना यही परमधर्म बताया गया है। तपस्वीको मान-सम्मानकी पीछेसे इच्छा हो सकती है। भगवत्-भक्ति भी प्रसिद्धिके लिये की जा सकती है, किन्तु पतिव्रताको तो संसारसे कुछ मतलब ही नहीं। वह तो मालती कुसुमकी भाँति निर्जन प्रदेशमें विकसित होती है और अपने प्यारेको प्रसन्न करके अन्तमें मुरझाकर वहीं जीर्ण-शीर्ण हो जाती है, उसकी गुप्त सुगन्धि संसारमें व्याप्त होकर लोगों-का कल्याण अवश्य करती है, किन्तु इसे तो कोई परम विवेकी पुरुष ही समझ सकता है। सर्वसाधारण लोगोंको तो उसके अस्तित्वका भी पता नहीं। इसीलिये कहता हूँ, पातिव्रतधर्म, योग, यज्ञ, तप, पाठ-पूजा और अन्य सभी साधनोंसे परमश्रेष्ठ है। एक सच्ची पतिव्रता सम्पूर्ण संसारको हिला सकती है, किन्तु ऐसी पतिव्रता बहुत थोड़ी होती हैं।

पाठकवृन्द ! विष्णुप्रियाजीकी मनोव्यथाको समझें। इस अल्प वयसमें उन्हें अपने प्राणेश्वरकी असह्य विरह-वेदना सहनी पड़ रही है। उनके प्राणेश्वर भक्तोंके लिये भगवान् हैं। वे जीवोंका उद्धार भी करते हैं। असंख्य जीव उनकी कृपासे संसार-सागरसे पार हो गये। भक्तोंके लिये वे साक्षात् नारायण हैं। हुआ करें, उनके लिये तो वे उनके पति—हृदयरमण पति ही हैं। वे उनके पास स्थूल शरीरसे नहीं हैं तो न सही, उनके हृदयमें तो पतिकी मूर्ति सदा विराज-मान है, वे पतिको छोड़कर और किसीका चिन्तन ही नहीं करतीं ! अहा, धन्य है उनकी एकनिष्ठ पतिभक्तिको !

विष्णुप्रियाजीकी आन्तरिक इच्छा थी कि एक बार इस जीवनमें अपने आराध्यदेवके प्रत्यक्ष दर्शन और हो जायँ किन्तु वे अपनी इच्छाको प्रकट किस प्रकार करतीं और किसके सामने प्रकट करतीं ? यदि किसीसे कहतीं भी तो वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, किसीकी बात मानने ही क्यों लगे ? इसलिये अपने मनोगत भावोंको हृदयमें ही दबाकर वे अपने इष्टदेवके चरणोंमें ही मनसे प्रार्थना करने लगीं। वे प्रेमाकर्षणपर विश्वास रखती हुई कहने लगीं—'वे तो मेरे घटकी एक-एक बातको जाननेवाले हैं, मेरा यदि सच्चा प्रेम होगा, तो वे यहीं मुझे दर्शन देने आ जायँगे।' यही सोचकर वे चुपचाप बैठी रहीं। सचमुच प्रेममें बड़ा भारी आकर्षण है। हृदयमें लगन होनी चाहिये, प्यारेके प्रति पूर्ण विश्वास हो, हृदय

* सती स्त्रीका यही परमधर्म है कि (अग्निको साक्षी देकर एक बार) जिसने उसका पाणिग्रहण किया है, वह पति चाहे जीवित हो या मर गया हो, बस, उसीके साथ पतिलोकमें रहनेकी इच्छा करती हुई उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई भी आचरण न करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके लिये छटपटाता हो और स्नेह सच्चा हो तो फिर मिलनेमें सन्देह ही क्या है ?

जापर जाको सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥

मन कोई दस-बीस तो है ही नहीं। अग्निके समान सर्वत्र मन एक ही है। पात्र-भेदसे मन वैसा ही गन्दा और निर्मल बन जाता है। यदि दो मन निर्मल और पवित्र बन जायँ तो शरीर चाहे कहीं भी पड़े रहें, दोनोंके मनोगत भावोंको दोनों ही लाख कोसपर बैठे हुए भी समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। शान्तिपुरमें बैठे हुए प्रभुको भी विष्णुप्रियाजीका बेतारका तार मिल गया। प्रभु मानो उन्हींको कृतार्थ करने नवद्वीप जानेकी इच्छासे अद्वैताचार्यसे विदा लेकर विद्यानगरकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर प्रभु सार्वभौम भट्टाचार्यके भाई वाचस्पतिके घरपर ठहरे। लोगोंकी अपार भीड़ प्रभुके दर्शनोंके लिये आने लगी। जो भी सुनता वही नावसे, घड़ोंसे तथा हाथोंसे तैरकर गंगाजीको पार करके विद्यानगर प्रभुके दर्शनोंके लिये चल देता। उस समय दोनों घाटोंपर नरमुण्ड-ही-नरमुण्ड दिखायी देने लगे। प्रभुके वहाँ पहुँचनेसे एक प्रकारका मेला-सा लग गया। गंगाजीके झाउओंका जङ्गल मनुष्योंके पदाघातसे चूर्ण होकर सुन्दर राजपथ बन गया। लोग महाप्रभुकी जयजयकार करते हुए महान् कोलाहल करते और प्रभु-दर्शनोंकी अपनी आकुलताको प्रकट करते।

महाप्रभु इस भीड़-भाड़ और कोलाहलसे ऊबकर अपने दो-चार भक्तोंके साथ धीरेसे मनुष्यों-की दृष्टि बचाते हुए विद्यानगरसे कुलियाके लिये चले गये। प्रभुके दर्शन न पानेसे लोग वाचस्पति पण्डितको कोसने लगे। उन्हें भाँति-भाँतिकी उलटी-सीधी बातें सुनाने लगे। अन्तमें जब उन्हें पता चला कि प्रभु तो यहाँसे चुपके ही निकल गये, तब तो उनके दुःखका ठिकाना नहीं रहा, वे सभी प्रभुके विरहमें जोरोंसे रुदन करने लगे। इतनेमें ही एक ब्राह्मणने आकर समाचार दिया कि प्रभु तो कुलिया पहुँच गये। तब वाचस्पति उस अपार भीड़के अग्रणी बनकर कुलियाकी ही ओर चले। कुलिया पहुँचकर लोगोंने प्रभु-दर्शनोंकी अपनी व्यग्रता प्रकट की, तब प्रभुने छतपर चढ़कर अपने दर्शनोंसे लोगोंको कृतार्थ किया। बहुत-से लोग प्रभुके दर्शनोंसे अपनेको धन्य मानते हुए अपने-अपने स्थानोंको लौट गये, किन्तु जितने ही लोग जाते थे, उतने ही और भी बढ़ जाते थे, सायंकालतक यही दृश्य रहा।

प्रभुके ऐसे लोकव्यापी प्रभावको देखकर पहले जिन्होंने इनसे द्वेष किया था, वे सभी अपने पूर्व-कृत्योंपर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए प्रभुकी शरणमें आये और अपने-अपने अपराधोंके लिये उनसे क्षमा चाही। विरोधियोंके हृदय प्रभुके संन्यासको देखते ही नवनीतके समान कोमल हो गये थे। त्याग ही तो प्रेमका भूषण है, त्यागके बिना प्रेम प्रस्फुटित होता ही नहीं। संग्रही और परिग्रहीके जीवनमें प्रेम किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है, प्रभुके प्रेमके प्रभावसे उन पापकर्मवाले निन्दकोंके हृदयोंमें भी प्रेमकी तरंगें हिलोरें मारने लगीं। सबसे पहले तो विद्यानगरके परम भागवती पण्डित देवानन्दजी प्रभुके शरणापन्न हुए और उन्होंने अपने ही अपराधभञ्जनकी याचना नहीं की, किन्तु प्रभुसे यह वचन ले लिया कि यहाँ आकर जो कोई भी आपसे अपने पूर्वकृत अपराधोंके लिये क्षमायाचना करेगा, उसे आप कृपापूर्वक क्षमा-दान दे देंगे। महाप्रभुके विशाल हृदयमें किसीके पूर्वकृत अपराधोंका स्मरण ही नहीं था, वे महापुरुष थे। वे संसारी लोगोंके स्वभावसे विवश होकर कहे हुए वचनोंका बुरा ही क्यों मानने लगे। वे तो जानते थे—'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृतिके अनुसार ही सभी चेष्टाएँ करता है, इसलिये किसीकी कैसी भी बातका बुरा न मानना चाहिये, फिर भी उन्होंने देवानन्दजीकी प्रसन्नताके निमित्त अपराध-भञ्जनकी स्वीकृति दे दी। सभीने प्रभुके चरणोंमें आत्म-समर्पण किया और प्रभुने उन्हें गलेसे लगाया।

प्रभुके छोटे-बड़े सभी भक्त तथा भक्तोंकी स्त्रियाँ-बच्चे यहाँ कुलियामें आकर उनके दर्शन कर गये थे। शचीमाता शान्तिपुरमें ही मिल आयी थीं। कोई भी भक्त प्रभु-दर्शनोंसे वञ्चित नहीं रहा। महाप्रभु पाँच-सात दिन कुलियामें ठहरे। इतने दिनोंतक कुलियामें मेला-सा ही लगा रहा। इतनेपर भी एकान्तमें प्रभुका चिन्तन करती हुई विष्णुप्रियाजी अपने घरके भीतर ही बैठी रहीं। वे एक सती साध्वी कुल-वधूकी भाँति घरसे बाहर नहीं निकलीं, मानो उन्हींको अपने दर्शनोंसे कृतार्थ करनेके निमित्त प्रभुने नवद्वीप जानेकी इच्छा प्रकट की। भक्तोंके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। उसी समय नौका मँगायी गयी और प्रभु अपने दस-पाँच अन्तरङ्ग भक्तोंके साथ गंगा पार करके नवद्वीप घाटपर पहुँचे। घाटकी सीढ़ियोंपर चढ़कर प्रभु शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीजीकी कुटियापर पहुँचे। ब्रह्मचारीजी अपने भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए प्रभुके पैरोंमें लोट-पोट होने लगे। क्षणभरमें ही यह समाचार सम्पूर्ण नगरमें फैल गया। लोग चारों ओरसे आ-आकर प्रभुके दर्शनोंसे अपनेको कृतार्थ मानने लगे। समाचार पाते ही शचीमाता भी जैसे बैठी थीं, वैसे ही दौड़ी आयीं। प्रभुने माताकी चरण-वन्दना की। माता अपने अश्रुओंसे प्रभुके वस्त्रोंको भिगोने लगीं। प्रभु चुपचाप खड़े कुछ सोच रहे थे, किसीकी कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं हुई! तब प्रभु पैरोंमें खड़ाऊँ पहने धीरे-धीरे शचीमाताके साथ घरकी ओर चलने लगे। एक-एक करके उन्हें सभी बातें स्मरण होने लगीं। पाँच-छः वर्ष पूर्व जिस घाटपर स्नान करते थे, वह घाट इतने आदमियोंके रहनेपर भी सूना-सा प्रतीत हुआ। सभी पूर्वपरिचित वृक्ष हिल-हिलकर मानो प्रभुका स्वागत कर रहे हों। वे ही भवन, वे ही अट्टालिकाएँ, वे ही प्राचीन पथ, वे ही देवस्थान प्रभुकी स्मृतिको फिरसे नूतन बनाने लगे। महाप्रभु नीची निगाह किये हुए आगे-आगे जा रहे थे। पीछेसे लोगोंकी अपार भीड़ हरिध्वनि करती हुई आ रही थी। घरके सामने आकर प्रभु खड़े हो गये। विष्णुप्रियाजीका दिल धड़कने लगा। वे अपने प्रेमके इतने भारी वेगको सहन करनेमें समर्थ न हो सकीं। झरोखेमेंसे उन्होंने अपने जीवनसर्वस्वकी झाँकी की। सिर मुँड़े हुए और गेरुए वस्त्र धारण किये हुए प्रभुको विष्णुप्रियाजीने अभी सर्वप्रथम देखा है। उनके प्रकाशमान चेहरेको देखकर विष्णुप्रियाजी चित्रमें लिखी मूर्तिके ही समान बन गयीं। उनके नेत्रोंमेंसे निकलनेवाले निरन्तरके अश्रुकण ही उनकी सजीवताका समर्थन कर रहे थे।

विष्णुप्रियाजीकी इच्छा अपने प्राणेशके पादपद्मोंमें प्रणत होकर कुछ प्रार्थना करनेकी थी, किन्तु इतनी अपार भीड़में कुल-वधू बाहर कैसे जाय, यही सोचकर वे दुविधामें पड़ गयीं। फिर उन्होंने सोचा जब वे यहाँतक आये हैं, संन्यासी होकर भी उन्होंने इतनी अनुकम्पा की है, तब मुझे बाहर जानेमें अब क्या लाज? लोक-लाज सब इन्हींके चरणोंकी प्राप्तिके ही निमित्त तो है, जब ये चरण साक्षात् सम्मुख ही उपस्थित हैं, तब इनके स्पर्श-सुखसे अपनेको वञ्चित क्यों रक्खूँ? यह सोचकर विष्णुप्रियाजी जैसे बैठी थीं वैसे ही प्रभुके पादपद्मोंका स्पर्श करने चलीं।

उन्होंने वेणी बाँधना बन्द कर दिया था, शरीरके सभी अङ्गोंके आभूषण उतार दिये थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहार भी बहुत ही कम कर दिया था। नित्यके कम आहारसे उनका शरीर क्षीण हो गया था। वे निरन्तर प्रभुका ही ध्यान किया करती थीं। प्रभु-दर्शनोंकी लालसासे क्षीणकाय, मलिनवसना विष्णुप्रियाजी अपने सम्पूर्ण शरीरको सङ्कुचित बनाती हुई जल्दीसे प्रभुकी ओर चलीं। प्रभु दृष्टि उठाकर किसीकी ओर नहीं देखते थे, वे पृथिवी-की ही ओर खड़े-खड़े ताक रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा, मलिन वस्त्र पहने एक स्त्री उनके चरणोंमें आकर गिर पड़ी। स्त्री-स्पर्शसे भयभीत होकर प्रभु दो कदम पीछे हट गये। विष्णुप्रियाजी सुबकियाँ भर-भरकर धीरे-धीरे रुदन करने लगीं। प्रभुने भर्रायी हुई आवाजमें पूछा—'तुम कौन हो?'

हाय! रे वैराग्य! तेरी ऐसी कठोरताको बार-बार धिक्कार है, जो अपने शरीरका आधा अङ्ग कही जाती है, जिसके लिये स्वामीको छोड़कर दूसरा कोई है ही नहीं, उसीका निर्दयी स्वामी, उसके जीवनका सर्वस्व, उसका इष्टदेव उससे पूछता है—'तुम कौन हो?' आकाश! तू गिर क्यों नहीं पड़ता! पृथ्वी! तू फट क्यों नहीं जाती! विष्णुप्रियाजी चुप रहीं, सोचा, कोई दूसरा ही मेरा परिचय करा दे, किन्तु दूसरे किस-की हिम्मत थी? सभीकी वाणी बन्द हो गयी थी। इतनी भारी भीड़ उस समय बिल्कुल शान्त हो गयी थी, चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। विष्णुप्रियाजीने जब देखा कोई भी कुछ नहीं कहता, तब वे स्वयं ही धीरे-धीरे करुण-स्वरमें कहने लगीं—'मैं आपके चरणोंकी अत्यन्त ही क्षुद्र दासी हूँ।'

महाप्रभुको अब चेत हुआ, उन्होंने कुछ ठहर-कर कहा—'तुम क्या चाहती हो?'

अत्यन्त ही कातरवाणीमें उन्होंने कहा—'मैं आपकी कृपा चाहती हूँ।'

प्रभुने नीची दृष्टि किये हुए कहा—'विष्णुप्रिये! तुम अपने नामको सार्थक करो। संसारमें विष्णु-भक्ति ही सार है, उसीको प्राप्त करके इस जीवन-को सफल बनाओ।'

रोते-रोते विष्णुप्रियाजीने कहा—'आपके अतिरिक्त कोई दूसरे विष्णु हैं, इस बातको मैं नहीं जानती, और जाननेकी इच्छा भी नहीं है। मेरे तो विष्णु, कृष्ण, शिव जो भी कुछ हैं आप ही हैं। आपके चरणोंके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा आश्रय नहीं।'

इन हृदयविदारक वचनोंको सुनकर वहाँ खड़े हुए सभी स्त्री-पुरुषोंका हृदय फटने लगा। सभीके नेत्रोंसे जल-धारा बहने लगी। विष्णु-प्रियाजीने फिर कहा—'प्रभो! सुना है, आप जगत्का उद्धार करते हैं, फिर अभागिनी विष्णुप्रियाको जगत्से बाहर क्यों निकाल दिया गया है, इसके उद्धारकी बारी क्यों नहीं आती?'

प्रभुने कहा—'तुम्हारी क्या अभिलाषा है?' सुबकियाँ भरते हुए ठहर-ठहरकर विष्णुप्रियाजीने कहा—'मुझे जीवन-यापन करनेके लिये कुछ आधार मिलना चाहिये। आपके चरणोंमें यह कङ्गालिनी भिखारिणी उसीकी भीख माँगती है।'

थोड़ी देर सोचकर प्रभुने अपने पैरोंके दोनों खड़ाउओंको उतारते हुए कहा—'देवि! हम संन्यासियोंके पास तुम्हें देनेके लिये और है ही क्या? यह लो, तुम इन पादुकाओंके ही सहारे अपने जीवनको बिताओ।'

इतना सुनते ही विष्णुप्रियाजीने धूलिमें सने हुए अपने मस्तकको ऊपर उठाया और काँपती हुई उँगलियोंसे उन दोनों खड़ाउओंको सिरपर चढ़ाकर वे रुदन करने लगीं। उस समय जन-समूहमें हाहाकार मच गया, सभी चीत्कार मारकर रुदन करने लगे। प्रभु उसी समय माता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रणाम करके लौट पड़े। माता अपने प्यारे पुत्रको जाते देखकर मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ी, प्रभु पीछेकी ओर बिना देखे हुए ही जल्दीसे भीड़को चीरते हुए आगेको चलने लगे। बहुत-से भक्त जल्दीसे आगे चलकर लोगोंको हटाने लगे। इस प्रकार थोड़ी देर ही नवद्वीपमें ठहरकर प्रभु नावसे उस पार पहुँच गये और वृन्दावन जानेकी इच्छासे गङ्गाजीके किनारे-किनारे ही आगेकी ओर चलने लगे। सैकड़ों मनुष्य घर-बारकी कुछ भी परवा न करके उसी समय प्रभुके साथ-ही-साथ वृन्दावन जानेकी इच्छासे उनके पीछे-पीछे चलने लगे। इस प्रकार तुमुल हरिध्वनि करते हुए सागरके समान वह अपार भीड़ प्रभुके पथका अनुसरण करने लगी।*

हिन्दी-साहित्यमें उपासनाका स्वरूप

(लेखक—श्री डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, डी० लिट्०)

साहित्य और उपासना दोनोंके मूलमें एक ही तत्त्व काम करता है। घनीभूत भावनाका एक-मुख निकास साहित्य और उपासना दोनोंको जन्म देता है। यद्यपि साहित्यका क्षेत्र उपासनाके क्षेत्रसे बहुत विस्तृत है तथापि उसका एक अंश उपासनाके क्षेत्रसे घनिष्ठरूपसे सम्बद्ध है। बल्कि कहना चाहिये कि इस दृष्टिसे ये दोनों एक ही वस्तुके दो रूप हैं। मनःप्रवृत्तिके क्षेत्रमें जो उपासना है, अभिव्यञ्जनाके क्षेत्रमें वही साहित्य हो जाता है।

भगवान्‌के सन्निधानके इच्छुक महात्माओंकी वाणीने भाषाके साहित्यको अमर रत्न प्रदान किये हैं। हिन्दीपर भी उनका आभार और किसी भाषासे कम नहीं। इस जन-वाणीके साहित्यिक प्रसारका सबसे अधिक श्रेय सन्त-महात्माओंको ही है। परमात्मा शायद उसी भाषामें की हुई प्रार्थनाको सुनता है जिसमें हमारे हृदयकी वासनाएँ स्वभावतः प्रकट हो सकती हैं। जिस भाषामें भूखा बच्चा माँके पास जाकर 'भूख लगी है माँ' कहा करता है, वही उसकी आध्यात्मिक भाषा है। अतएव हमारे सन्त-महात्माओं-की भक्तिके अकृत्रिम स्रोतका उसीमें उमड़ पड़ना स्वाभाविक ही था; और यह भी स्वाभाविक है कि साम्प्रदायिक पद्धतियोंको छोड़कर हृदयके इन्हीं सरल उद्रेकोंमें हम उनकी उपासनाके विशुद्ध स्वरूपके दर्शनकी आशा करें।

परमात्मा परमार्थतः सगुण है अथवा निर्गुण, यह झगड़ा दर्शनशास्त्रकी सीमाको पारकर हमारे साहित्यमें भी पहुँच गया, परन्तु साधनाके मार्गमें इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। सूरदासने निर्गुण ज्ञानका उपदेश देनेवाले उद्धवकी गोपियोंके हाथों बुरी गत बनवायी। तुलसीदासने ज्ञानमार्गी लोमश ऋषिको ऐसा अज्ञानी बनाया कि भुशुण्डिके मुँहसे सगुणोपासनाकी बातें सुनकर वे आग-बबूला हो गये और उसे कौआ बननेका शाप देकर फिर अपनी मूर्खतापर जी भर पछताये। इसके विपरीत कबीर सगुणवादियोंकी हँसी उड़ाते थे—

गुणमयी मूर्ति सेइ सब भेख मिलि,
निर्गुण निजरूप विश्राम नाहीं।
अनेक जुग बंदगी विविध प्रकार की,
अंति गुणका गुण ही समाहीं॥

परन्तु जहाँ साधनाका निरूपण अभीष्ट हुआ,

* गीताप्रेससे शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड ४ से उद्धृत। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ दोनों पक्षवालोंने एक ही बात कही। जहाँ एक ओर सूरदास कहते हैं—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातैं 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

वहाँ दूसरी ओर भक्ति-भावके लिये जगह निकालनेके उद्देश्यसे कबीर भी कहते हैं—

संतो, धोखा कासों कहिये।
गुणमैं निर्गुण, निर्गुणमैं गुण है, 'बाट' छाँड़ि क्यों बहिये॥

जो कबीरदासके सिद्धान्त और उनकी साधनामें विरोध बताकर उनपर 'धोखे' का दोषारोपण कर रहे थे, उनको जवाब देना जरूरी था। क्योंकि कबीर जानते थे कि—

भाव भगति बिसवास बिनु, कटै न संसै-सूल।
कहै 'कबीर' हरि भगति बिनु, मुकति नहीं रे मूल॥

इसीसे वे पुरानी 'बाट' छोड़कर बहना नहीं चाहते थे।

शुष्क तत्त्व-चिन्तन, रूखे जप-तप, यज्ञ-यागमें मनुष्यके हृदयके लिये सरस आकर्षण नहीं होता। परलोकमें इनके करनेसे चाहे जितने सुखोंकी सम्भावना हो, परन्तु जबतक हमारे हृदयका संयोग अपने साधना-मार्गके साथ इसी जीवनमें न हो जाय तबतक हमारे लिये यह परलोक हमेशा पर-लोक रहेगा, अप्राप्य रहेगा। परिणामकी दृष्टिसे इन साधनोंका उपयोग इतना ही है कि ये मनको एकाग्र करनेमें सहायक होते हैं। परन्तु उसमें भी ये अकेले ही सफल हो सकते हैं, यह दृढ़ताके साथ नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः मन बलात्कारसे वशीभूत नहीं होता। बलात्कारसे केवल इतना ही हो सकता है कि मनकी प्रेरणासे इन्द्रियाँ जो काम करना चाहती हों, उनको करनेसे हम उन्हें रोक दें। परन्तु इससे आगे बढ़कर अगर हम यह भी चाहें कि मन ही विषयोंकी ओर न दौड़े तो अवश्य विफल-मनोरथ होंगे। असलमें अध्यात्म जबरदस्तीका सौदा नहीं है। भौतिक आवश्यकताओंको बिल्कुल कुचल ही डालनेसे अध्यात्म-सिद्धि नहीं हो जाती। ज्ञानमार्गकी दुरूहता-का मूल कारण यही जबरदस्ती, यही बलात्कार है। इस कठिनताको सरलतामें बदल देनेवाला मार्ग उपासनाका मार्ग है।

उपासनाके मूल सिद्धान्तको आजकलके मनो-वैज्ञानिकोंकी भाषामें सब्लिमेशन अथवा भूमिका-परिवर्तन कह सकते हैं। मन कदापि निष्क्रिय नहीं रह सकता। वह हमेशा किसी-न-किसी उधेड़-बुनमें लगा रहता है। उसकी प्रवर्तन शक्ति कभी मौन नहीं बैठी रह सकती। अगर उसे देवता बननेका अवकाश न मिला तो वह दानव बन जा सकता है। अङ्गरेजी कहावतके अनुसार ठाला मन शैतानका कारखाना है। मन हमको परमात्माकी ओरसे बहुत बड़ी देन है। उसमें अनन्त शक्ति निहित है।* प्रश्न उतना 'मन-मारण' का नहीं है जितना उसे सन्मार्गपर प्रवृत्त करके इस शक्तिके सदुपयोगका। मन मारकर भी क्या कोई किसी कामको सफलताके साथ कर सकता है? 'मन-मारण' से शास्त्रोंका अर्थ उसकी बुरी प्रवृत्तिको रोकना हो सकता है। पर उसे बुरे मार्गपर जानेसे रोकनेके पहले, उसके लिये ऐसा भला मार्ग भी तो खुला रहना चाहिये जिसपर वह आनन्दसे चल सके, जहाँ उसको कोड़ोंकी मारका डर न हो, दुनियाँमें सब कुछ भुलाकर जिसपर चलनेहीमें वह रम जाय! संसारमें स्त्री, धन, माया इत्यादिका त्याग देना यदि आवश्यक है तो साधन-पथमें भी तो उनकी

* मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।
परमातमको पाइये मनहीके परतीत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगह लेनेके लिये कोई वस्तु होनी चाहिये। तुलसीदासजीने जिस समय रामसे प्रार्थना की—

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

—उस समय उनके भीतरसे मनुष्यका हृदय पुकार रहा था। वासनाएँ स्वतः भली या बुरी नहीं होतीं। उनका भला या बुरा होना, उनके आलम्बनपर निर्भर है। जो वासना पुत्र-कलत्र-धन इत्यादिकी ओर आकृष्ट होकर मोह कहाती है और बन्धनका कारण होती है, वही भगवान्‌की ओर आकृष्ट होनेसे उपासना या भक्ति कहाती है और जीवकी मुक्तिका कारण हो जाती है। जो इन्द्रियाँ विषयासक्त होकर आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा डालती हैं, वे ही तल्लीनताकी अवस्थामें परमात्माकी ओर मुड़ जाती हैं और श्रवण, कीर्तन, परोपकार आदिद्वारा भगवत्प्राप्तिमें सहायक होती हैं—

जब लगि थो अँधियार घर, मूस थके सब चोर।
जब मंदिर दीपक बरयो, वहीं चोर धन मोर॥

—मलूक

मनुष्यके मनस्तत्त्वकी इस विशेषताने आध्यात्मिक साधना-पथमें इष्टदेवकी कल्पना करायी है। भक्तके चित्तकी इसी मृदुल भावनाका आलम्बन बननेके उद्देश्यसे 'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला, कौसल्या हितकारी' (तुलसी) और 'पारावार पूरन अपार परब्रह्म रासि जसुदाके कोरें* एक बार ही कुरै परीं (देव) यहाँतक कि 'नाजसरथि घर औतरि आवा····' नाजसवै लै गोद खिलावा' कहनेवाला वेदान्ती भी वेदान्त—वेदान्त भूलकर विवश होकर कह उठा—

महापुरुष देवाधिदेव, नरसिंह प्रगट कियो भगति भेव।
कहै 'कबीर' कोइ लहै न पार, प्रह्लाद उबारयो अनेक बार॥

सचमुच इन लोहेके चनोंको चबानेके लिये 'वेदान्त भी बेदाँत है।' इसीसे तो निर्गुण ब्रह्मके राज्यमें भी सर्वैश्वर्य-विभूति-सम्पन्न ईश्वरका प्रकटीकरण हुआ है! तत्त्वचिन्तक कुछ भी कहा करे, भक्त उपासकका दिल तो उछल-उछलकर यही कहता रहेगा—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभा-
त्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रा-
त्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'नेदं यदिदमुपासते' (केन० १। ५) कहनेभरसे तो काम चलता नहीं। हृदयके लिये तो सामग्री जुटानी ही पड़ती है।

सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन, मँद मुसकानी।
(मीरा)

ये बातें न होंगी तो दिल कैसे मानेगा?

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति।
(छान्दोग्य० ७। २२)

उद्धवने गोपियोंको तत्त्वचिन्तनका महत्त्व समझानेमें अपना दिमाग खपा दिया परन्तु क्या उनके मनमें उसकी बात जरा भी बैठी? उन्होंने सौ बातकी एक बात कहकर उसके सब तर्क वितर्कोंको बेकाम कर दिया—

ऊनो* कर्म कियो मातुल बधि, मदिरामत्त प्रमाद।
'सूरस्याम' एते अवगुनमें निर्गुनतें अति स्वाद॥

गुणोंके अवगुणोंकी अब कोई क्या शिकायत करेगा? इन गाँठोंमें लोक-हितैषणाका मधुर रस भरा हुआ है, भाई! इन्हींसे भक्तको अपने उद्धारकी आशा होती है। यहाँ तर्क-वितर्क सब 'कुतर्क' कहलाते हैं। सतीको जितना दुःख भोगना पड़ा वह सब इसलिये

* कोरे=क्रोडे, गोदमें।

* ऊनो=कम, तुच्छ, बुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जहाँ विश्वास करना चाहिये, वहाँ वह तर्क करने लगीं, दिलका काम दिमागसे लेने लगीं।

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सोकि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद॥

भला तर्कसे यह समस्या हल हो सकती है? परन्तु पार्वती जन्ममें जब उनकी तर्क-बुद्धि मिट गयी और उन्हें अनुभव हो गया कि 'सो फलु भली भाँति हम पावा॥' तब शिवजीके समझानेसे उनके दिलमें यह बात बैठते देर न लगी कि—

अगुन-अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥

—तुलसी

इष्टदेवकी सिद्धि तर्कसे नहीं प्रेमसे होती है। इष्टदेवकी भावनामें चञ्चल मनके आगे भगवान्‌का वह मञ्जुल मनोहर रूप रक्खा जाता है जिसे देखकर वह विवश होकर खुद ही भटकना छोड़ देता है। बाहरसे जोर-जबरकी जरूरत नहीं पड़ती। संसारका फिर उसके ऊपर कुछ असर नहीं रह जाता—

मो मन गिरिधर छबिपै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चालपै चलिकै, चिबुक चारु गढ़ि ठटक्यो॥
सजल स्याम-घन-बरन लीन ह्वै, फिर चित अनत न भटक्यो।
'कृष्णदास' किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥

इष्टदेव कर्ता, धर्ता, हर्ता सब कुछ होनेके पहले इष्ट है, हमारी रुचि, प्रेम और लालसापर अधिकार किये रहता है। वह हमारे हृदयमें सांसारिक प्रेमके लिये, मोहके लिये जगह नहीं रहने देता, मोहिनीके मानको ठुकरा देना और मानिनीसे हृदयको हटा लेना आसान बना देता है—

तोरि मानिनीतें हियो, फोरि मानिनी मान।
प्रेमदेवकी छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखान॥*

हमारे लिये वह पुत्र (वात्सल्यमें), सखा (सख्यभावमें), पति (माधुर्यभावमें), पत्नी (सूफी-माधुर्यमें) माता-पिता सब कुछ बन जाता है। जो उसका जैसे भजन करता है उसको वह वैसे ही मिलता है।

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

अगर ऐसा न होता तो भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा झूठी न हो जाती—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

भक्तको उससे डरनेका अवसर नहीं होता। वह इष्ट है, 'भय बिनु होइ न प्रीति'का अनुसरण नहीं करता। 'रीझि भजो कै खीजि', वह अपनी तरफका काम पूरा करेगा। तुलसीदास तो उनका 'पूतरा' नचानेतकको उतारू हो गये थे। भावुक भक्त उसमें और प्रेममें कोई अन्तर नहीं देखता; वे दोनों एक हैं। बल्कि कहना यह चाहिये कि भगवान् साक्षात् प्रेमस्वरूप हैं—

प्रेम हरीको रूप है, वे हरि प्रेमस्वरूप।
एक होय दोमैं लखै, ज्यों सूरजमैं धूप॥

—रसखान

उपासक केवल अपने इष्टदेवका सान्निध्य चाहता है। उसीके प्रेममें वह निमग्न रहता है। उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते कभी भी वह उसके मनसे

---

* इस रास्तेमें देश, जाति और सम्प्रदायका कोई भेद नहीं चलता। अनामीके भिन्न-भिन्न नामकरण कर देनेसे उसमें भेद थोड़े ही आ जावेगा। इस अनस्ति भेदभावके लिये लोग लड़ें तो मूर्खता छोड़कर उसे और क्या कहेंगे? लगभग चार सौ वर्ष पहले मनोहर कविने कहा था—

अचरज मोहिं हिंदू तुरक, बादि करत संग्राम।
इक दीपतिसों दीपियत, काबा कासीधाम॥

यह रास्ता सबके लिये खुला है जो चाहे उससे अपने जीवनको सरस बना ले। हिन्दू इसी रास्तेपर चलकर अपने जीवनमें वास्तविक मधुरिमा भरते हैं, मियाँ भी जब 'रसखान' होना चाहते हैं तो इसी मार्गपर चलते हैं—

प्रेमदेवकी छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर नहीं निकलता। वह उसे अपने हृदयमें छिपाना चाहता है—

दूरि न दौरि दुरयौ जो चहौ तो दुरौ किन मेरे अँधेरे हिये मैं॥

—पद्माकर

अपनी आँखोंमें बसाना चाहता है—

साँवरेलालको साँवरो रूप मैं नैननको कजरा करि राख्यौ॥

—देव

अपने सारे संसारका उसीमें पर्यवसान कर देना चाहता है—

आओ प्यारे मोहना, नयन झाँपि तोहि लेउँ।
ना मैं देखौं औरको, ना तोहिं देखन देउँ॥

—कबीर

शरीरसे वह सब काम करता रहता है, पर उसकी लगन नहीं छूटती—'जस नागरिको चित गागरिमैं' (रसखान)। उसे उसकी प्रेममयी स्मृति रात-दिन बनी रहती है। उसके मनन, उसके ध्यान और उसके दर्शनसे उसकी तृप्ति ही नहीं होती, जितना ही अधिक वह इस प्रेमामृतका पान करता है। उसके लिये उतनी ही अधिक तीव्र उसकी तृषा होती जाती है। वह चाहता है कि उसके रूपको देखनेके लिये रोम-रोम आँखें बन जायँ, उसकी वाणी सुननेके लिये शरीरपर जगह-जगह कान हो जायँ और उसकी बगल छोड़कर वह कहीं जावे ही नहीं—

श्रीहरिकी छबि देखिबेको अँखियाँ प्रति रोमहिंमैं करि देतो।
बैननके सुनिबे हित औन जितै तित ही करतो करि हेतो॥
मोढिग छाड़ि न काम कहूँ रहै, 'तोष' कहै लिखतो बिधि एतो।
तौ करतार इती करनी करिकै कलि मैं कल कीरति लेतो॥

उपास्यदेव ही नहीं बल्कि उनके सान्निध्य और संसर्गसे उनके क्रीड़ाके स्थल भी उसी प्रकारकी पूत और स्निग्ध भावनाओंसे घिर जाते हैं। उपास्यदेवके अभावमें वे ही उसकी कोमल कल्पनाओंके केन्द्र हो जाते हैं। उसे अपने उपास्यदेवका सम्पूर्ण वैभव स्मृतिरूपसे उनके चारों ओर विचित्र मण्डल बाँधे दिखायी देता है। उन स्थलोंमें वह अपने आपको उसी पुराने वातावरणमें घिरा पाता है, जिसने एक दिन उनको पावन कर चिरस्मरणीय बनाया था। अतएव वे भी उसके लिये उतने ही आकर्षक हो जाते हैं।

मानुस हौं तौ वही 'रसखान' बसौं सँग गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नंदकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरिको जो कियौ हरि छत्र पुरंदर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदि कूल कदंबकी डारन॥

रसखानका यह सवैया तो प्रसिद्ध ही है, भक्तवर हठीजीका यह कवित्त भी इस सम्बन्धमें कम प्रसिद्धि पाने योग्य नहीं है—

गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजनको,
पसु कीजै महाराज नंदके नगरको।
नर कौन? तौन जौन राधे-राधे नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदीके कगरको॥
इतने पै जोइ कुछ कीजिये कुँवर कान्ह,
राखिये न आन फेर 'हठी'के झगरको।
गोपी-पद-पंकज-रज कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुलके बगरको॥

तुलसीदासजीने उपासकका आदर्श स्वरूप उस तेजपुंज लघु वयस 'तापस'में दिखाया है जो प्रयागसे आगे बढ़कर वन जाते हुए रामके दर्शनोंके लिये उत्सुकताके साथ यमुनातटपर आया था। यह तपस्वी कौन था, इसपर वितर्क-तर्क करते हुए भिन्न-भिन्न विद्वानोंने विभिन्न मत दिये हैं, परन्तु हृदय उन्हींके मतको स्वीकार करता है जो उसमें स्वयं तुलसीदासका प्रतिरूप देखते हैं। वह चाहे जो रहा हो, पर आदर्श उपासक अवश्य था। रामको देखकर उसके प्रेमोल्लासकी इयत्ता न रही। उसके शरीरमें पुलक और आँखोंमें आँसू आ गये। उसकी दशाका वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो सकता। आँखरूपी दोनेसे वह रामके रूपामृतका पान कर रहा था। उसे वही आनन्द हो रहा था जो भूखेको अच्छा आहार मिलनेपर होता है।

सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि॥
पिअत नयन पुट रूप पियूषा। मुदित सु-असन पाइ जिमि भूखा॥

इष्टदेवकी प्रधान विशेषता उसकी प्रेम-वश्यता है। वह केवल हमें ही अपनी ओर आकृष्ट नहीं करता, स्वयं भी हमारी ओर आकृष्ट होता है। क्योंकि भक्त और भगवान्में कोई भेद नहीं है। इसीसे तुलसीदासने कहा है—'संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मतिमलिन कह दास तुलसी'। जिस समय उपरिलिखित 'तापस' ने आँखोंमें आँसू और तनमें पुलक लाकर रामको दण्डवत् प्रणाम किया, उस समय राम चुपचाप थोड़े ही रहे। उन्होंने उपास्यदेवके कर्तव्यका पूरा निर्वाह किया। उन्होंने भी पुलकित होकर उसे सप्रेम गले लगाया। उपासकको यदि भूखेका मधुर भोजन मिला तो उपास्यदेवको भी निर्धनका पारस पत्थर; प्रेम और परमार्थका मिलन हो गया—

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहु प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन कह सब कोऊ॥

इसी प्रणत-पालक प्रेमने गीतामें भगवान्से आश्वासन दिलाया है—ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ (९।२९) इसी स्वरमें स्वर मिलाते हुए सूरदासने भगवान्से कहलाया है—'हम भगतनके भगत हमारे।' भक्तके प्रेमके सूत्रके आगे परमात्मा अपने समस्त ऐश्वर्यको भूल जाता है और प्रेमके झीने तारमें ही बँध जाना सबसे बड़ा ऐश्वर्य समझता है—

या झीने-हित तारमैं, बल एतो अधिकाइ।
अखिल लोकको ईस हू, जासों बाँधो जाइ॥

—रसनिधि

इस 'झीने हित-तार' को यह बल उसीकी प्रेम-वश्यतासे मिला है। तभी तो—

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारदलौं सुक ब्यास रटैं पचि हारैं तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछियाभर छाछपै नाच नचावैं॥

—रसखान

सच्चे उपासकका प्रेम वह प्रेम नहीं जिसे करके 'सम्मन' की तरह पछताना पड़े—

निकट रहे आदर घटे, दूरि रहे दुख होय।
'सम्मन' या संसारमें, प्रीति करे जनि कोय॥

आध्यात्मिक प्रेममें यही तो विशेषता है कि वह सांसारिक प्रेमकी तरह क्षीण नहीं होता, उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। जितना ही भक्त भगवान्के 'निकट' पहुँचता है उतना ही उसका प्रीतिभाजन होता जाता है। उपासनाका अर्थ ही समीप बैठना है। इसलिये इस आसवका पान जिसने एक बार कर लिया उसकी लहर मिट नहीं सकती—

हरि रस पीया जानिए, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नहिं तन मनकी सार॥

—कबीर

इस मदिर आनन्दमें उपासक संसारके सब सुखोंको तृणवत् समझने लगता है। उसे किसी बातकी इच्छा ही नहीं रह जाती। उसकी सब कामनाएँ एकमुखी होकर उपास्यदेवमें लीन हो जाती हैं। उपासनासे मुक्ति तो अवश्य मिलती है, पर सच्चे उपासककी उपासना तल्लीनताकी उस चरम दशाको पहुँच जाती है जिसमें वह किसी साध्यका साधन न रहकर अपना उद्देश्य अपने आप हो जाती है। वैकुण्ठकी भी आकांक्षा उसमें नहीं रह जाती।

कहा करौं बैकुंठहि जाय?
जहँ नहिं नंद, जहाँ न जसोदा,
नहिं जहँ गोपी, ग्वाल न गाय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहँ नहिं जल जमुनाको निर्मल
और नहीं कदमनकी छाँय।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी
ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय॥

ब्रह्मानन्द भी उसके सामने तुच्छ लगने लगता है। रामको देखकर विदेहराजकी यही दशा हो गयी थी—

इन्हहिं विलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥

मोक्षतककी यह अनिच्छा ही उपासकको मोक्षपदकी योग्यता प्रदान करती है। जिस अनन्य भक्तिका शाण्डिल्यने—

अनन्यभक्त्या तद्बुद्धिर्बुद्धिलयादत्यन्तम्।
(९६)

इस सूत्रमें और गीताने—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥
(८।२२)

—इस श्लोकमें उल्लेख किया है, वह यही है। इसके प्राप्त हो जानेपर फिर उपासकको स्वयं अपनी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। 'पुरुष' अर्थात् भगवान् स्वयं उसके लिये चिन्तित रहते हैं। गीतामें भगवान्‌ने स्वयं ही आश्वासन दिया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

इसका वे सदैव पालन करते आये हैं। और भक्तके अपने तन-मनकी सुधि भूलकर मुक्तिसे विरत रहनेपर भी वह उसकी मुक्तिकी चिन्ता रखते हैं। स्वतः उसे अपनाकर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं।

परन्तु यह न समझना चाहिये कि परमात्माको कहीं बाहरसे दौड़कर आना पड़ता है। वह तो सर्वत्र व्यापक है, सबके हृदयमें वास करता है और अनन्य उपासकका हृदय तो उसका खास अपना घर है, निज-निवास है। निवास ढूँढ़ते हुए रामसे तुलसीदासके वाल्मीकिने कहा था—

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु उर, सो राउर निज गेह॥

कबीर कहते हैं—

सब घट मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोय।
भाग तिन्हींका हे सखी! जा घट परगट होय॥

हमारा हृदय ही क्षीरसागर है जिसमें शेषनागकी सेजपर भगवान् (चेतन तत्त्व) लेटे हुए हैं। जबतक भगवान् सोये रहते हैं विषय-वासनारूप सहस्र जिह्वाएँ फूत्कार करती हुई हमें त्रस्त करती रहती हैं। किन्तु ज्यों ही देवोत्थान होता है, त्यों ही शेषनाग (आधिभौतिकता) की ये सहस्र जिह्वाएँ स्वयं त्रस्त होकर सिमिट जाती हैं; और यह शेषनाग भी धन्य होकर पूजाका पात्र हो जाता है—

अरे अशेष! शेषकी गोदी तेरा बने बिछौना-सा।
आ मेरे आराध्य खिला लूँ तुझको आज खिलौना-सा॥

—एक भारतीय आत्मा

देवोत्थानके लिये किसी एकादशीविशेषकी आवश्यकता नहीं। अपनी सच्ची लगन और अनन्य उपासनासे हम जब चाहें तब अपनी देवोत्थानी एकादशी उपस्थित कर सकते हैं।

मुक्ति न चाहनेपर भी अपने ही हृदयस्थ ऐसे भगवान्‌से भागकर भक्त जा कहाँ सकता है। भगवान्‌से उसको और उससे भगवान्‌को छोड़ते बने तब न वह मुक्तिको छोड़े? और परमात्माके साथ शाश्वत समागम अथवा अद्वैत भावको छोड़कर, मुक्ति है क्या? भक्त तो परमात्माको क्या छोड़ेगा, परमात्मा भी भक्तको नहीं छोड़ सकता—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर ।
पाछे लागे हरि फिरें कहत 'कबीर ! कबीर !!' ॥

सूरदास भी कहते हैं—

भक्त बिरह कातर करुनामय डोलत पाछे लागे ।

इस करुणाकी भी कोई सीमा है ? बेचारे तुलसीदासको झोली-तूमड़ी भी न रखने दी । उनकी पहरेदारीपर ऐसे जा डटे कि उन्हें लुटा देनेके सिवा गरीबको और कोई उपाय ही न सूझा । इसीके बलपर तो रुनुकताके वास्तविक दृष्टिवाले अन्धे भक्तने हाथ छुड़ाकर भागते हुए भगवान्‌को ललकारकर कहा था—

बाँह छुड़ाये जात हो, निबल जानिकै मोहि ।
हिरदेसे जब जाहुगे, मरद बदौंगो तोहि ॥

इस प्रकार उपासनाकी आत्म-विस्मृति कर तल्लीनताके द्वारा उपासकको अयाचित ही वह मुक्ति सुलभ हो जाती है। जो जप-तप, ज्ञान-वैराग्य, योग-यागद्वारा भी दुर्लभ मानी गयी है । जप-तप आदि करके भी अगर लोग विफल हों तो जप-तपका क्या दोष ? उन्हें जानना चाहिये कि राम प्रेमसे प्रसन्न होते हैं, केवल उन बातोंसे नहीं जिनमें बनावट भी हो सकती है—

रामहिं केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु जो जाननिहारा ॥

सहस्रारमें ब्रह्मकी झलक पानेके लिये भी प्रेमाविष्ट जागर्तिकी आवश्यकता है—'पति सँग जागी सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीस' (कबीर) इसलिये मुक्ति तो प्रेमपूर्ण उपासनासे ही मिलेगी; जप, तप, योग इत्यादि तो उसके बाहरी लक्षण अथवा अधिक-से-अधिक सहायकमात्र हैं । उपासनाके बिना वे निःसत्त्व हो जाते हैं। उपासनाके सहयोगमें उनकी सार्थकता है, अन्यथा नहीं—

आसन दृढ़, आहार दृढ़, सुमति ग्यान दृढ़ होय ।
'तुलसी' बिना उपासना, बिनु दुलहेकी जोय ॥

बिना दुलहेकी दुलहिन ही क्या ?

मांसाहारसे पाप

१—जो दूसरेका मांस खाता है, उसके मनमें दयाका भाव कहाँसे आवेगा ?

२—जैसे खर्चीले आदमीके हाथमें धनका सञ्चय कभी नहीं रह सकता, इसी प्रकार मांसाहारीके मनमें दयाका सञ्चय नहीं रह सकता ।

३—जानवरोंकी हत्या करना निस्सन्देह बड़ी निष्ठुरता है और उनका मांस खाना तो निश्चित पाप है ।

४—मांस-भक्षण न करनेमें ही जीवन है । मांसाहार करोगे तो नरकका दरवाजा तुम्हारे छुटकारेके लिये कभी नहीं खुलेगा ।

५—अगर लोग खानेके लिये मांसकी इच्छा न करें तो मांस बेचनेवाला कोई भी न रहे ।

६—प्राणियोंको जो व्यथा और यन्त्रणा भोगनी पड़ती है, उसका सच्चा चित्र एक बार भी मनुष्यके मनमें खिंच जाय तो वह फिर किसी दिन मांस खानेकी इच्छा न करे ।

७—जो पुरुष माया या अज्ञानके बन्धनसे मुक्त हो गये हैं वे कभी मांस नहीं खाते ।

साधु तिरुवल्लुवर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा

भक्त श्रीनिवास आचार्य

श्रीगौराङ्गदेवके अनन्यभक्तोंमें श्रीनिवास आचार्य भी एक महाभक्त हो गये हैं। यही नहीं, इनका तो जन्म ही गौरभक्तिको लेकर हुआ था, जिन दिनों निमाई पण्डित अपनी विद्वत्ताके लिये सारे नवद्वीपमें पुज रहे थे उन्हीं दिनों नवद्वीपसे सात-आठ मील दूर चाकन्दी (जि० बर्दवान) ग्राममें इनके पिता श्रीगङ्गाधर भट्टाचार्य भी साहित्य और व्याकरणके असाधारण पण्डित समझे जाते थे। कहा तो यह जाता है कि 'विद्या ददाति विनयम्' परन्तु व्यवहार प्रायः इसके विपरीत देखा जाता है। परन्तु जैसे प्रत्येक नियममें अपवाद भी होते ही हैं। वैसे ही लड़ाकू पण्डितोंके पारस्परिक ईर्ष्याभावको कटु अनुभवके कारण 'नियम'का नाम भी यदि दे दिया जाय तो भी इसमें अपवाद नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बड़े-बड़े उदार पण्डित भी देखनेमें आते हैं। प्रसन्नताकी बात है, हमारे श्रीनिवासके पिता श्रीगङ्गाधर भट्टाचार्य भी ऐसे ही उदार पण्डित थे। जब कभी श्रीचैतन्यदेवकी गुणगरिमा उनके सुननेमें आती तो उसी समय गौराङ्गके प्रति उनके हृदयमें आदरभाव जागृत हो उठता। उनकी इच्छा होती कि नवद्वीप पहुँचकर निमाई पण्डितके दर्शन करूँ; पर उनका यह विचार उनके शिष्योंको पसन्द न आता। उनके गुरुदेव किसी पण्डितकी ख्याति सुनकर उसके दर्शनोंके लिये दौड़े जायँ इसमें उन्हें बड़ी हेठी मालूम पड़ती। इसीलिये गङ्गाधरजी मन मारकर रह जाते; पर कोई मन मारकर कबतक रह सकता है? चैतन्यचरणोंमें उनकी प्रीति दिन-दिन बढ़ती ही जाती थी! इतनेमें उन्हें संवाद मिला कि जबसे निमाई पण्डित गयासे लौटकर आये हैं तबसे अपना सारा पाण्डित्य भुलाकर भगवत्प्रेममें मतवाले हो बैठे हैं और अपने प्रेमभरे श्रीहरि-कीर्तनके द्वारा सारे नवद्वीपवासियोंको भी मतवाला बना रहे हैं। बस, अब तो गङ्गाधर पण्डित किसीके भी रोके न रुक सके और गौरदर्शनके लिये चल पड़े। रास्तेमें उन्हें पता चला कि महाप्रभु तो संन्यास ग्रहण करनेके अभिप्रायसे कटवामें श्रीकेशवभारतीके यहाँ गये हुए हैं। 'ओहो! ऐसे विद्वान् और प्रतिष्ठित पुरुष संन्यास लेने जा रहे हैं।' यह सोचकर उनके दिलका भक्तिभाव और भी वृद्धिंगत हुआ और उन्होंने कटवाका रास्ता पकड़ लिया। वहाँ उन्होंने अपनी आँखों देखा कि अपनी वृद्धा माता और नवयौवना पत्नीको भगवान्‌के भरोसे छोड़ निमाई पण्डित श्रीकेशवभारतीसे संन्यासदीक्षा लेकर संसारत्यागी और भगवदनुरागी बन रहे हैं। हजारों आदमियोंकी भीड़ जमा है जिनमेंसे अनेक कोमलहृदय नर-नारी आँखोंसे आँसू ढाल रहे हैं। सारा दृश्य देखकर गङ्गाधर पण्डित भी अपने आपको न सँभाल सके। फूट-फूटकर रो पड़े और रोते-रोते अचेत हो गये। चेतना होनेपर भी उनका आवेग निःशेष नहीं हुआ। श्रीकेशवभारतीने निमाई पण्डितका संन्यासका नाम रक्खा श्रीकृष्णचैतन्य। गङ्गाधर पण्डित मुखसे श्रीकृष्ण चैतन्य कहकर ढार मारकर रो पड़ते। अपनी ऐसी दशा लेकर वह चाकन्दी आये। गाँववाले उनके अन्दर इस चैतन्यभक्तिको देखकर उन्हें चैतन्यदासके नामसे पुकारने लगे।

चैतन्यदासका विवाह तो बहुत पहले ही हो चुका था; पर अबतक उनके कोई सन्तान नहीं हुई थी। उन्हें इसकी कोई चिन्ता भी न होती थी। उनकी पत्नी लक्ष्मीप्रियाकी अवस्था भी ढल चुकी थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु भगवान्‌की लीला विचित्र है, एक दिन अकस्मात् उनके अन्दर पुत्रदर्शनकी लालसा हो आयी। चैतन्यदेवके आशीर्वादपर उनका बड़ा भारी विश्वास था, इसलिये पत्नीसहित उन्होंने पुरीके लिये, जहाँ देश-देशान्तरमें परिभ्रमण करके श्रीचैतन्य निश्चितरूप-से रहने लग गये थे, प्रस्थान कर दिया। उनका आशीर्वाद लेकर वहाँसे वापस आये और भाग्यवश लक्ष्मीप्रियाके गर्भ भी रह गया। फलतः वैशाखी पूर्णिमाको शुभ मुहूर्तमें परम भागवत श्रीनिवासने जन्मग्रहण करके हित मित्रसहित सारे परिवारको आनन्दमें निमग्न कर दिया। इन्हीं श्रीनिवास महाशय-के सम्बन्धमें यत्किञ्चित् वर्णन यहाँ किया जाता है।

माता-पिताके आचार-विचारका सन्तानपर बड़ा प्रभाव पड़ता है; और उसमें भी विशेषरूप माताके आचार-विचारका। कहा जाता है, अमुक व्यक्तिके अन्दर तो माताके दूधके साथ-साथ ही अमुक विद्या प्रविष्ट हो चुकी थी। यह सर्वदा सत्य ही है। सर्व-प्रथम गुरुका कार्य करनेवाली माता ही होती है। श्रीनिवासकी माता लक्ष्मीप्रिया बड़ी धर्मपरायणा स्त्री थीं, वह अपने शिशुको स्तन्यपान कराती जातीं और इसके साथ-ही-साथ अपने बेटेके कानोंमें भगवान् और उनके भक्तोंका गुणानुवाद सुनाती जातीं, जिसका फल यह हुआ कि पहले-पहल बच्चेकी तोतली वाणीसे और कुछ न निकलकर भगवान् और उनके भक्तोंके नाम ही निकले। श्रीचैतन्य और उनके शिष्योंके नाम सदा उसकी जीभपर रहते। पिताके मुखसे भी श्रीनिवासको रात-दिन इसी प्रकारकी भक्तिपूर्ण चर्चा सुननेको मिलती, इस कारण आरम्भसे ही उनके भगवद्भक्तिके संस्कार बन गये। साथ ही योग्य गुरुके द्वारा अल्पकालमें ही उन्होंने खासी विद्या भी प्राप्त कर ली। असाधारण प्रतिभाके कारण कुछ ही वर्षोंमें श्रीनिवास व्याकरण, न्याय, काव्य, अलंकार आदिके अच्छे पण्डित हो गये। क्यों न हों, जब सौ विद्याओंकी विद्या भक्तिदेवी जन्मसे ही उनके हृदयमन्दिरमें प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। उनके आ जानेके बाद अन्य बाह्य विद्याएँ तो उनके पीछे-पीछे अपने आप दौड़ आती हैं।

अबतक श्रीनिवास युवावस्थाको प्राप्त हो चुके थे और भक्ति उनके अन्दर भलीभाँति जड़ जमा चुकी थी। अब विपरीत बयारके झकोरोंसे उसके उखड़ बगल होनेका डर जाता रहा था। अब चैतन्यदासको उसकी देख-रेख करनेकी कोई खास जरूरत नहीं रह गयी थी; और न जाने इसीलिये या क्या, चैतन्यदास इस लोकसे प्रयाण कर गये। मातासहित श्रीनिवासको इस घटनासे बड़ा शोक हुआ। इधर वह अपने नाना बलराम आचार्यकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो चुके थे, अतः पिताका श्राद्ध आदि संस्कार करके वह माताको लेकर अपने ननिहाल जाजिग्राममें चले गये और वहीं रहने लगे। जाजिग्रामवासियोंको इन्हें अपने मध्य पाकर बड़ा सुख मिला। एक तो इनमें अगाध पाण्डित्य और ऊपरसे उसमें भगवद्भक्तिका संयोग—अब और क्या चाहिये? कहावत है कि सोना और उसमें सुगन्ध; पर बेचारा सुगन्धयुक्त सोना इस भक्तिसमन्वित विद्या-की समानता क्या कर सकता है? वह तो उसके सामने अति तुच्छ पदार्थ है। अवश्य ही श्रेष्ठातिश्रेष्ठ वस्तुका बोध करानेमात्रके निमित्त इस तुच्छातितुच्छ वस्तुकी उपमासे भी काम लिया जा सकता है। कहनेका मतलब यह कि जाजिग्रामकी वैष्णवमण्डलीके बीच यह इस प्रकार शोभायमान हुए जिस प्रकार तारिका-मण्डलीके बीच चन्द्रमा।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीनिवासका जन्म ही एक तरहसे चैतन्यकी भक्ति लेकर हुआ था। अब तो वह एक बार उस पावनमूर्तिका दर्शन करके अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रोंको तृप्त करनेके लिये तरस उठे। कटवानिवासी श्रीनरहरि सरकार जो वैष्णवमण्डलीमें सरकार ठाकुर या साकार ठाकुरके नामसे प्रसिद्ध थे, उनसे तथा अन्य चैतन्यभक्तोंसे सलाह लेकर उन्होंने पुरीके लिये प्रस्थान किया; पर मार्गमें उन्हें यह संवाद मिला कि जिन गौरचन्द्रकी दर्शनोंकी लालसासे वह पुरी जा रहे हैं वह तो अदृश्य हो गये। यह दुःसंवाद पाते ही वह पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़े और बेहोश हो गये। एक बार होशमें आकर, सिर धुन-धुनकर विलाप करके बारम्बार बेहोश होने लगे। राहगीरोंको भी जब इनकी इस दशाका कारण मालूम होता तो वे भी आँसू बहाने लगते। इसी तरह दिन-का-दिन बीत गया और रात आ गयी। पर श्रीनिवासकी वेदना शान्त नहीं हुई बल्कि वह ऐसे बढ़ी जैसे रातमें फोड़े आदिका कष्ट बढ़ता है। अबतक चैतन्यके उन्होंने एक बार भी दर्शन नहीं किये थे—उसके बिना ही, उनका गुणगान सुन-सुनकर ही सन्तोष लाभ करते रहे थे; पर अब तो उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि चैतन्यचरणोंसे वञ्चित होकर जीवनधारण करना ही व्यर्थ है। जब उनकी व्याकुलता बहुत अधिक बढ़ गयी तब भगवान्‌ने निद्रादेवीको भेज दिया जिन्होंने उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया। श्रीनिवासको नींद आ गयी। इसी समय, स्वप्नमें श्रीचैतन्यदेवने दर्शन देकर उनसे कहा—'तुम सारा शोक त्यागकर अविलम्ब पुरी चले जाओ। वहाँ गदाधर आदि भक्तजन तुम्हारी राह देख रहे हैं।' आँख खुलनेपर श्रीनिवास-के व्यथित हृदयको इस स्वप्नसे भी बड़ी सान्त्वना प्राप्त हुई। सवेरा होते ही वह पुरीके लिये चल पड़े।

पुरी पहुँचनेपर श्रीनिवासने देखा कि नगरकी ईंट-ईंट गौरवियोगमें आँसू बहा रही है। पूछ-ताँछ-कर गदाधर पण्डितके आश्रममें पहुँचे तो देखा कि वे अचेत पड़े हैं और उनकी आँखोंसे आँसुओंका झरना झर रहा है। श्रीचैतन्यदेवका नाम लेकर श्रीनिवास उनके चरणोंमें लोट गये और अपने नेत्रोंके वारिप्रपातसे उन्हें भिगोने लगे। चैतन्यदेवका नाम कानमें पड़ते ही गदाधर पण्डितके मृतवत् शरीरमें चैतन्यका सञ्चार हुआ। शोकसन्तप्त हृदयमें शीतलता आ गयी। नव शक्ति पाकर निद्रासे जागे हुए व्यक्ति-की भाँति उठकर बैठ गये और पैर पलोटते हुए श्रीनिवासको उठाकर गलेसे लगा लिया। बोले—'भैया! तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, जिसने अमृतमय नामका उच्चारण करके मुझ मुर्दा पड़े हुएको जिन्दा करके उठाकर बैठा दिया। धन्य हो, बच्चा! तुम्हारा कल्याण हो।'

इसके पहले गदाधर पण्डितको भी श्रीनिवासके सम्बन्धमें एक स्वप्नादेश हो चुका था, इसलिये ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि यह वही सज्जन हैं त्यों ही उनका हृदय आनन्दसे गद्गद हो गया। उन्होंने उन्हें एक बार पुनः उठाकर गलेसे लगा लिया और कहा—'बेटा! मुझे महाप्रभु यह आज्ञा कर गये हैं कि मैं तुम्हें तुरन्त भागवत पढ़ाऊँ, और भागवत समाप्त करके तुम्हारे लिये वृन्दावन जानेका आदेश है। श्रीगौरकी आज्ञा है कि तुम वहाँ जाकर रूप और सनातनके रचे हुए भक्तिशास्त्रका अध्ययन करो और फिर समस्त गौड़ प्रदेशमें भक्तिकी भागीरथी प्रवाहित करो। हाँ, बेटा! मुझसे जो भागवत पढ़नेकी बात है उसमें कठिनाई यह है कि मेरे पास जो भागवतकी पोथी है, उसके जहाँ-तहाँ कितने ही अक्षर आँसू गिरनेसे मिट गये हैं। इसलिये एक काम करो, मैं सरकार ठाकुरके नाम एक चिट्ठी लिखे देता हूँ जिसे लेकर कल प्रातःकाल गौड़के लिये रवाना हो जाओ। वह तुम्हें भागवतकी नयी पुस्तक देंगे जिसे लेकर तुम जल्दी-से-जल्दी यहाँ आ जाओ। कारण, तुम देख ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हो, मैं भी मौतके रास्तेपर ही बैठा हूँ—न जाने कब चल बसूँ।'

गदाधर पण्डितके मुखसे श्रीगौरद्वारा निर्धारित अपने जीवनका समस्त कार्यक्रम सुनकर श्रीनिवासको बड़ी प्रसन्नता हुई। कल ही प्रातःकाल वापस जाना है, इस खयालसे श्रीगदाधरसे आज्ञा लेकर वह निकले और समुद्रस्नान तथा जगन्नाथदर्शनसे निवृत्त होकर, सार्वभौम आचार्य, राय रामानन्द प्रभृति भक्तजनोंके यहाँ गये और उनके दर्शन किये। वह भक्त हरिदासकी समाधिस्थलीपर भी पहुँचे और उनके नामानुराग आदिका स्मरणकर अपने आँसुओंसे उसे तर करके चले आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठे और गदाधर पण्डितके चरणोंमें मस्तक झुकाकर गौड़के लिये चल पड़े और यथासमय श्रीखण्ड नामक स्थानमें सरकार ठाकुरके पास पहुँचे और उन्हें गदाधर पण्डितकी चिट्ठी दी। बतलाया, श्रीगौरके बिना श्रीक्षेत्र कैसा श्रीहीन हो गया है। यद्यपि श्रीनिवासके आनेके पहले ही सरकार ठाकुरको गौरके तिरोधानका समाचार मिल चुका था और वह बहुत अधिक शोक प्रकाश कर चुके थे; पर श्रीनिवासके आते ही उनका शोक फिरसे नया हो गया। दोनों चैतन्यभक्त बहुत देरतक बिलख-बिलखकर रोये।

श्रीगदाधर पण्डितके आदेशानुसार वह सरकार ठाकुरसे भागवतकी पोथी लेकर शीघ्र ही पुरीके लिये चल पड़े; पर होनहारकी बात, रास्तेमें उन्हें यह दुःखद संवाद मिला कि पण्डित गदाधर भी अब इस लोकमें नहीं हैं। वास्तवमें गदाधर पण्डितने स्वप्नादेश-को न मानकर दूसरी भागवतकी पुस्तक न आनेतक श्रीनिवासको भागवत न पढ़ाकर बड़ी गलती की थी। उनका मृत्युकाल समीप था, इसीसे 'तुरन्त' पढ़ानेका आदेश था। अस्तु, गदाधरकी मृत्युके संवादने उन्हें जर्जर कर दिया। हृदय टूक-टूक हो गया। आँखोंसे जलस्रोत बह निकला। सारे शरीरको शोकने ऐसे ग्रस लिया जैसे चन्द्रमा या सूर्यको राहु ग्रसता है। खैर, येनकेनप्रकारेण अपने आपको सँभाला; पर अब पुरीकी ओर पैर नहीं बढ़े। पैर बढ़ाना व्यर्थ भी था, अतः वह गौड़को वापस लौटे; पर ठीक ठिकाने पहुँचनेके पूर्व रास्तेमें उन्हें खबर मिली कि श्रीगौरके परम अन्तरङ्ग श्रीनित्यानन्द तथा श्रीअद्वैताचार्य भी इस नश्वर शरीरको त्यागकर श्रीगौरके ही चरणोंमें जा विराजे हैं। बस, अब तो श्रीनिवासकी रही-सही हिम्मत भी टूट गयी। एक-एक करके उनके सारे अवलम्ब उनसे अलग कर दिये गये। सिरपर टूटकर गिरे हुए इस शोकके पहाड़से वह गर्द-बर्द हो गये। जमीनमें लोट-पोट होकर लगे छाती पीटने और सिरके बाल नोचने। महापुरुषोंका वियोग ऐसा ही दुःखदायी होता है।

इसी प्रकार रोते-धोते रात बीत गयी। सबेरा होते ही वह गौड़की ओर चले। श्रीखण्डमें पहुँचनेपर उन्होंने सारा हाल रो-रोकर सरकार ठाकुरसे कहा। सरकार ठाकुर भी कलेजेपर पत्थर रक्खे सारी गाथा सुनते जाते थे और बहते हुए आँसुओंको पोंछते जाते थे। गौराङ्गके बाद एक-एक करके उनके सब पार्षद भी विदा होते जाते हैं, इस बातका ध्यान कर-करके दोनों भक्तोंने खूब आँसू बहाये। इसके बाद कुछ दिन सरकार ठाकुरके ही यहाँ बिताकर, जी हलका होनेपर श्रीनिवास श्रीगौराङ्गकी जन्मभूमि तथा लीला-भूमियोंका दर्शन करनेको निकले। जब वह नवद्वीपमें पहुँचे तब उन्हें मालूम हुआ कि गौराङ्गके संन्यास लेनेके बादसे उनकी धर्मपत्नी श्रीविष्णुप्रिया कठोर ब्रह्मचर्य व्रतमें निरत हैं। वे किसी पुरुषका मुँह-तक नहीं देखतीं। सारे दिन हरिनामका जप करती रहती हैं; और सूर्यास्तके बाद थोड़े-से चावल बनाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने इष्टदेवको समर्पण कर पा लेती हैं। उनके दर्शनकी इन्हें बड़ी लालसा हुई। उधर श्रीविष्णुप्रियाको इनके नवद्वीप आनेके पहले ही यह स्वप्न हुआ था, मानों श्रीगौराङ्गदेव पधारे हैं और श्रीनिवासकी गुणावलीका बखान कर उनके नवद्वीप-आगमनकी सूचना दे रहे हैं। इसलिये ज्यों ही इन्हें इनके आनेका संवाद मिला उन्होंने इन्हें बुला भेजा। इन्होंने उनकी सेवामें पहुँच उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर कई दिन नवद्वीपमें वास करके श्रीविष्णुप्रियाकी आज्ञासे श्रीअद्वैताचार्यकी निवासभूमि शान्तिपुर और श्रीनित्यानन्दके प्रचारक्षेत्र खड़दहको भी देखने गये। फिर खानाकुल कृष्णनगरमें श्रीअभिराम गोस्वामीके घर पहुँचे। उन्होंने इनका भलीभाँति आतिथ्य-सत्कार करके इनसे कहा—'श्रीनिवास, तुम शीघ्र वृन्दावन पहुँचकर गोपाल भट्टसे दीक्षा लो। वहाँ रूप, सनातन और रघुनाथदासके दर्शन करो। इसके बाद श्रीचैतन्य कृपा करके तुम्हारे द्वारा अपना कार्य करा लेंगे। उनकी दयासे तुम्हारे द्वारा गौड़ प्रदेशमें भक्तिकी धारा बह निकलेगी।'

इसके बाद श्रीनिवास मातासे अनुमति लेकर वृन्दावनको चल पड़े और कटवा, जहाँ महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया था, नित्यानन्दकी जन्मभूमि एकचक्रा, गया, प्रयाग और अयोध्या आदि पुण्यस्थानोंके दर्शन करते हुए मथुरा पहुँच गये। वहाँ उन्हें दुःसंवाद मिला कि सनातन गोस्वामी भी प्रयाण कर चुके हैं। उनका यह घाव अभी ज्यों-का-त्यों बना हुआ था, इतनेमें वृन्दावन पहुँचते-न-पहुँचते उन्हें यह भी शोकसमाचार प्राप्त हुआ कि श्रीरघुनाथ और रूप गोस्वामी भी परलोक सिधार गये। इसी प्रकार लगातार एकके बाद एक चोट खाते-खाते उनका हृदय बिल्कुल जर्जर हो गया था। बुद्धि काम नहीं देती थी। भगवान्‌की क्या लीला है, समझमें नहीं आ रही थी। जैसे-तैसे गिरते-पड़ते वृन्दावनमें श्रीजीव गोस्वामीके आश्रममें पहुँचे। श्रीजीव गोस्वामी इन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'कल रातको मुझे तुम्हारे आगमनका स्वप्न हुआ है।' इसके बाद वह इन्हें गोपाल भट्टके यहाँ ले गये। 'आओ भाई! भले आये, मैं तो तुम्हारी बाट ही देख रहा था' कहकर गोपाल भट्टने श्रीचैतन्यके हाथका लिखा एक पत्र इन्हें थमाते हुए कहा—'इसमें महाप्रभुने तुम्हारे सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है।' अपने सम्बन्धमें श्रीचैतन्यके करकमलाङ्कित अक्षर देखते ही श्रीनिवास भावनिमग्न होकर जमीनपर गिर पड़े। सचेत होनेपर जीव गोस्वामी इन्हें अपने आश्रममें ले गये।

इसके बाद निश्चित शुभ मुहूर्तमें गोपाल भट्टके हाथों श्रीनिवासका दीक्षासंस्कार हुआ। अनन्तर जीव गोस्वामीके निकट इनका वैष्णव ग्रन्थोंका अध्ययन हुआ। श्रीगौरने श्रीनिवासके सम्बन्धमें जो भविष्यद्वाणी की थी, इससे जीव गोस्वामीको यह विश्वास तो पहले ही हो चुका था, कि यह कोई साधारण पुरुष नहीं होंगे; पर अध्ययनकालमें जब उन्हें इनकी अद्भुत प्रतिभाके दर्शन हुए तब तो उनके विश्वासका आधार और भी मजबूत हो गया। उन्होंने भक्तमण्डलीके सामने श्रीनिवासके सम्बन्धमें बोलते हुए कहा—'हम लोगोंके सर्वस्व श्रीगौराङ्गदेव अपनी लीला संवरण कर गये, उनके पीछे-पीछे एक-एक करके उनके पार्षद नित्यानन्द, अद्वैताचार्य और गदाधर पण्डित आदि सभी प्रयाण कर गये। श्रीरूप, सनातन तथा रघुनाथदास-जैसे भक्त-शिरोमणि भी आज हमारे बीच नहीं हैं। हम हतप्रभ हो गये हैं। और बंगालमें तो अब एक तरहसे सन्नाटा ही छा गया है। इसलिये इस बातकी सख़्त ज़रूरत है कि उस तुषारग्रस्त प्रदेशमें भगवत्तत्त्वका प्रकाश फैले। परन्तु कार्य महान् है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये किन्हीं महान् पुरुषसे ही इसका होना सम्भव है। हम जानते हैं, गौर गौर थे, नित्यानन्द और अद्वैत भी अपने-अपने क्षेत्रमें अद्वितीय थे, इसलिये क्षतिपूर्तिकी तो आशा नहीं की जा सकती; परन्तु इतनी आशा तो हमें करनी ही चाहिये कि इन लोगोंका बड़े यत्नसे लगाया हुआ जो भक्तिका महा उद्यान है वह इनके पीछे भी हरा-भरा रहे—सर्वथा उजाड़ न हो जाय। श्रीगौराङ्गदेवको श्रीनिवासाचार्यसे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। इसके प्रमाणस्वरूप उनके कर-कमलोंसे लिखा हुआ एक पत्र मेरे पास मौजूद है। निश्चय ही, श्रीनिवासाचार्य असाधारण पुरुष हैं। इनके अन्दर अद्भुत प्रतिभा है। पाण्डित्यकी भी कसर नहीं है। भक्तिभावका तो पूछना ही क्या है? श्री-चैतन्यदेवका आदेश और अपनी आँखों देखे इनके गुण—सबका विचार करनेके बाद मैंने यह स्थिर किया है कि यदि आप सर्व महानुभावोंकी सम्मति हो तो इन्हें श्रीरूप-सनातन विरचित तथा अन्यान्य भक्ति-ग्रन्थोंसे लैस करके गौड़के लिये रवाना कर दूँ। इनके साथ-साथ नरोत्तम और श्यामानन्दको भी भेजना अच्छा होगा। ये लोग इनके घनिष्ठ मित्र हैं, इसलिये कार्यक्षेत्रमें अच्छे सहयोगी सिद्ध होंगे।'

समस्त उपस्थित मण्डलीने बड़े हर्षके साथ इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। यात्राका विचार निश्चित हो जानेपर चुन-चुनकर उपयोगी ग्रन्थ इकट्ठे किये गये और फिर उन्हें बड़े यत्नसे मोमजामेमें लपेटकर एक मजबूत-से सन्दूकके अन्दर बन्द किया गया। फिर एक बैलगाड़ीपर लादकर उसे गौड़के लिये रवाना किया गया। रक्षाके लिये दस हथियारबन्द सिपाही भी भेजे गये। इस प्रकार नरोत्तमदास और श्यामानन्दके सहित श्रीनिवासाचार्य गौरपादका आदेश पालन करनेके निमित्त वृन्दावनसे विदा हुए। विदाईका दृश्य बड़ा कारुणिक था। विदा होनेवाले और विदा करनेवाले सभीके नेत्रोंमें आँसू थे।

श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द तीनों सत्संगी जीव थे। इसलिये रास्ता बड़े मजेसे तय हो रहा था। भगवच्चर्चा छिड़ जाती तो कोस-के-कोस निकल जाते, पता ही न लगता। चुप्पी सधती तो ऐसी सधती कि कई-कई घण्टेतक सन्नाटा ही छाये रह जाता। तीनों-के-तीनों साधक ध्यान और तत्त्वचिन्तन-में ऐसे निमग्न होते कि बाह्यचेतनाको सर्वथा खो बैठते। इसी प्रकार अनेक प्रदेशों और नगरोंको लाँघकर यात्री लोग गौड़देशकी सीमामें पहुँच गये और बाँकुड़ा जिलेके वनविष्णुपुर ग्राममें पड़ाव डाल दिया। पर यहाँ एक दुर्घटना हो गयी। रातको जब सब लोग सो रहे थे, डाकुओंका एक दल चढ़ आया और गाड़ीपर लदे हुए सन्दूकको धन-दौलतसे भरा हुआ समझकर गाड़ीसमेत उसे जंगलमें ले जा छिपाया। श्रीनिवासाचार्य आदि हाथ मलते रह गये। आखिर सबेरा होते ही उन्होंने वृन्दावनवासी सिपाहियोंको वापस किया और इस दुर्घटनाका सारा विवरण श्री-जीव गोस्वामीको लिख भेजा। नरोत्तम और श्यामानन्द-को भी अपने-अपने घर रवाना कर दिया और कहा—'भाई, मैं तो जबतक पुस्तकें न मिलेंगी, तबतक घर लौटकर जाऊँगा नहीं। तुमलोग जाओ।'

इस प्रकार सब साथियोंको जहाँ-तहाँ रवाना करके वह अन्यमनस्क होकर उसी विष्णुपुरके गली-कूचोंमें घूम-घूमकर दिन बिताने लगे। लोग इन्हें कोई यों ही ऐरा-गैरा समझकर इनकी ओर विशेष ध्यान न देते और इन्हें भी क्षुधासे अत्यधिक पीड़ित होने-पर किसी प्रकार कहींसे रूखा-सूखा अन्न प्राप्त करके पेटको भर लेनेके सिवा उन लोगोंसे क्या प्रयोजन था? ग्रन्थापहरणके कारण हक्के-बक्के-से हुए यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपचाप अकेले कभी किसी वृक्षके नीचे जा बैठते, कभी कहीं। पर कैसा ही घटाटोप क्यों न हो जाये, सूर्यका प्रकाश कबतक छिपा रह सकता है। इसी प्रकार हमारे श्रीनिवासाचार्य भी अधिक छिपे न रह सके। एक दिन विष्णुपुरके कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण-कुमारने बातों-ही-बातों यह भाँप लिया कि यह कोई असाधारण पुरुष हैं। वह इनपर लट्टू हो गये। एक दिन वह इन्हें वहाँके राजा हम्मीरकी सभामें भी ले गये। उस समय वहाँ भागवतकी कथा चल रही थी। यह मैले-कुचैले कपड़े पहने चुपचाप एक किनारे बैठ गये और भागवत सुनने लगे। कथा सुननेसे इन्हें मालूम हुआ कि कथावाचक महोदयका ज्ञान बहुत परिमित है, पर फिर भी वह पूरी हेकड़ीके साथ श्लोकोंके मनमाने अर्थ कर-करके उन्हें लोगोंके कानोंमें जबरदस्ती ठूँस रहे हैं। बस इनसे नहीं रहा गया। इन्होंने पण्डितजी महाराजकी भूल बतलाना शुरू कर दिया। पण्डितजीने इन्हें दीन-मलीन देखकर बिल्कुल साधारण आदमी समझा था, इसलिये एक बार उन्होंने इनके सामने पाण्डित्य बघार ही दिया; पर तर्कमें दो कदम और आगे बढ़नेपर उनके पैर उखड़ गये। उन्होंने समझ लिया कि अब इनके सामने अपनी विद्वत्ताको और अधिक खर्च न करनेमें ही शोभा है। इधर इस कुछ मिनटके तर्क-वितर्कमें ही इनकी प्रतिभाकी किरणें एक बार सर्च-लाइटकी तरह सारी सभामें फैल गयीं। राजा हम्मीर-को तो इनकी वाणीने इस प्रकार अपनी ओर खींच लिया जैसे चुम्बक लोहेको खींचता है। उसने प्रार्थना की—'महाराज! आप ही कुछ देर दया करके इस कथामृतका पान कराके हम सबको कृतकृत्य कीजिये।' सारी सभाका इस प्रकार भावपरिवर्तन देखकर और राजाज्ञा सुनकर पूर्व व्यास स्वयं ही उनके लिये स्थान खालीकर दूसरे आसनपर जा विराजे। श्रीनिवासाचार्यने बिना किसी रागद्वेषके भावके, सहज स्वभावसे, व्यासासनको सुशोभित करके कथारम्भ किया। फिर तो इन्होंने वह अमृतकी वर्षा की कि सारे श्रोता चित्रलिखित-से रहकर उसका पान करते-करते नहीं अघाते थे। राजा हम्मीरकी भी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लगी हुई थी। पूर्व वक्ताका सारा अभिमान गल गया और कथा समाप्त होनेपर उसने इन्हें विनीतभावसे प्रणाम करके क्षमा-याचना की। और राजा हम्मीरका तो इस कथाने मानों उद्धार ही कर दिया। अपने दुष्कर्ममय जीवनके प्रति उसे घोर घृणा हुई और हृदयमें भगवच्चरणारविन्दोंकी सेवा करनेका संकल्प हुआ। कथा तो वह बराबर ही सुनता था; पर उसी तरह जिस तरह राजे-महाराजे शौकके और बहुत-से काम किया करते हैं। विषया-नन्दके परे भी कोई आनन्द होता है और होता है तो वह कैसा होता है इसका यत्किञ्चित् आभास उसे आज मिला। उसने अपनी अश्रुधारासे श्रीनिवासके चरणोंको भिगोकर अपनी कृतकृत्यता प्रकट की। पीछे बातों-ही-बातों जब उसे यह पता चला कि हालमें विष्णुपुरमें जो गाड़ी लूटी गयी है, यह इन्हीं श्रीनिवासाचार्यकी थी, तब तो लज्जाके मारे वह पानी-पानी हो गया। क्योंकि यह राजा क्या था, डाकुओंका सरदार था। इसका जीवन बड़ा दुष्कृत्यपूर्ण था। इसीने धन-दौलतके लोभसे श्रीनिवासाचार्यकी गाड़ीको गायब किया था। पर जैसे भूल-भटककर शामतक ठिकाने पहुँच जानेवाला भूला नहीं समझा जाता। वैसे ही पापी-से-पापी होकर भी मनुष्य जब भगवान्‌की शरणमें पहुँच जाता है तो उसके उद्धारमें सन्देह नहीं रहता। भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाने हाथ जोड़कर अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी और कहा कि सप्तर्षि वाल्मीकिके उद्धारके लिये पधारे थे और मैं समझता हूँ आपने मेरे उद्धारके लिये दर्शन देनेकी कृपा की है। आजसे मेरा जीवन आपके चरणोंपर निछावर है।

इसके बाद राजा श्रीनिवासको एक बन्द कमरेमें ले गया और कहा —'देखिये यही न है आपका सन्दूक? देख लीजिये, आपकी एक चिटतक गायब नहीं होने दी गयी है।' श्रीनिवासने देखा उनके सारे-के-सारे ग्रन्थ ज्यों-के-त्यों मौजूद हैं। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा मालूम हुआ मानों प्राण मिल गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धाके साथ ग्रन्थोंके सन्दूकको प्रणाम किया। इसके बाद श्रीनिवास कुछ दिन यहीं राज-अतिथि होकर रहे। राजाने उनके लिये स्वतन्त्र स्थानकी व्यवस्था कर दी; और वह सदा वहीं उनकी सेवामें उपस्थित होकर भागवत सुना करता। उसने श्रीनिवासाचार्यसे मन्त्रदीक्षा भी ग्रहण कर ली।

वनविष्णुपुरसे चलकर श्रीनिवास जाजीग्राम पहुँचे। दीर्घकालके बाद अपने लालको आया देखकर माताकी हिलकी भर आयी। उसने बड़े प्रेमसे उसे पुचकारा और पास बैठाकर उसकी पीठपर हाथ फेरा। खबर पाकर गाँवके भी नेमी-प्रेमी जुट आये। सबने बड़े प्रेमके साथ अपने पथप्रदर्शकका स्वागत किया। श्रीनिवास अब वहीं रहकर अध्ययन तथा हरिनामसंकीर्तनमें रहकर जीवन बिताने लगे। बड़े-बड़े तार्किक उनके पास आते और परास्त होकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करते। रामचन्द्र कविराज तार्किकोंके शिरमौर समझे जाते थे, यह भी पूरे जोशखरोशमें भरकर आचार्यके पास वाद-विवाद करने आये। डटकर शास्त्रार्थ हुआ; पर अध्यात्म-प्रकाशके तो दूरसे दर्शन होते ही तर्कबुद्धिकी आँखमें चकाचौंध छा जाती है, अतः उससे युक्त आचार्यके सामने रामचन्द्र विवादमें कैसे ठहर सकते थे? इसके सिवा श्रीनिवास पाण्डित्यमें भी उन्नीस नहीं थे। जिन युक्तियोंको रामचन्द्र कविराज सर्वथा अखण्डनीय समझकर उपस्थित करते थे उन्हें आचार्य हँसते-हँसते ही उड़ा बगल करते थे। और विशेषता यह कि उनकी वाणी संहारका कार्य भी ऐसे हितचिन्तनके साथ कर रही थी जैसे डाक्टर घावकी चीरफाड़ करता है। वह कविराजकी भूल इस प्रकार सुझाते जिस प्रकार परम कारुणिक गुरुजन अपने शिष्योंकी भूल सुझाया करते हैं। फलतः रामचन्द्र कविराजने अपना सारा अभिमान त्यागकर श्रीआचार्यके चरणोंको प्रणाम किया और उनका शिष्यत्व भी अङ्गीकार किया। घोर तार्किक रामचन्द्रके भक्ति-पथके पथिक बनते ही मानों तार्किकोंका गढ़ टूट गया। अनेक दिग्गज विद्वानोंके भक्तिके झण्डेके नीचे आ जानेसे गौड़के गाँव-गाँव और घर-घरमें भगवन्नामका घोष सुनायी देने लगा। जल्दी ही इन्हें प्राणोंसे अधिक प्यार करनेवाली और स्वयं भगवद्भक्तिपरायणा इनकी माता प्रयाण कर गयीं, जिससे इन्हें महान् कष्ट हुआ; पर इससे इनके उद्दिष्ट कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ी। आगे चलकर सरकार ठाकुर तथा इनके गुरुदेवने विशेष आग्रह करके इनका विवाह भी करा दिया; पर गार्हस्थ्य जीवन बिताते हुए भी इनका भक्तिप्रचारका कार्य पूर्ववत् जारी रहा। वृन्दावनसे आनेके बाद यह दो बार पुनः उस पुण्यभूमिका दर्शन करने गये थे, पर वहाँ जानेपर दीक्षागुरु श्रीगोपाल भट्टके दर्शन इन्हें प्राप्त नहीं हो सके। वह तो इनके जानेके पूर्व ही इस लोकसे प्रस्थान कर चुके थे। और दूसरी बार तो वहाँ जाकर यह स्वयं भी वापस नहीं लौटे। अब उनका कार्य समाप्त हो चुका था। इसलिये अपना अन्तिम जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृन्दावनधाममें ही बितानेकी इनकी साध थी। वृन्दावनविहारीकी अनुकम्पासे उस पवित्र क्षेत्रमें ही हरिनाम लेते-लेते इन्होंने अपनी अन्तिम घड़ी व्यतीत की। श्रीनिवासके पिता चैतन्यदासको श्रीचैतन्यदेवने यह आशीर्वाद दिया था 'तुम्हारे जो पुत्र होगा उसके अन्दर मेरा प्रकाश रहेगा।' चैतन्यका वह चैतन्यमय प्रकाश असंख्य अन्धकारपूर्ण हृदयोंको प्रकाशित करके अन्तमें समस्त विश्वको व्याप्त करनेवाले महाप्रकाशमें जा मिला।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !!

शैव और वैष्णवोंके झगड़ोंका मूल आधार क्या है ?

(लेखक—पं० श्रीमहेशानन्दजी ओझा न्यायसांख्ययोगवेदान्तशास्त्री)

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः
कन्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपितनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स नस्तामसीं वृत्तिमीशः॥

भारतवर्षमें ही नहीं, किन्तु सभी देशोंमें बहुदेवतावादका थोड़ा-बहुत अंश सृष्टिके आदिकालसे ही स्थान पाये हुए है। इस विषयमें अनेक मत हमें श्रुति, स्मृति, इतिहास, दर्शन और पुराणोंमें गवेषणापूर्ण विवेचनाके साथ उपलब्ध होते हैं। जहाँपर जिस देवताका प्रकरण चला, वहाँपर उसे श्रुति-स्मृतियोंके प्रबल प्रमाणों, युक्तियों और अनुभवोंके प्रदर्शनसे पूर्णतया पुष्ट किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि साधारण बुद्धिवाले हम पाठकोंके कोमलकान्त हृदयपर बहुदेवतावादकी गहरी छाप पड़ जाती है। वैदिक सनातनकालसे आजतक मानववंशके अनेक अङ्ग हो गये और उनके होनेमें कोई रहस्य छिपा है। वह यह कि सब पदार्थोंमें ईश्वरतत्त्व बड़ा ही दुर्गम है। समस्त संसारके सब पन्थियोंने इसको भिन्न-भिन्न भाषाओंके पर्याय शब्दोंद्वारा यथामति व्यक्त किया है, एवं माना है। तब उन पर्यायवाचक शब्दोंके आधारपर अनेक सम्प्रदाय (फ़िरके) एवं पृथक्-पृथक् मार्गोंके द्वारा बहुत-सी उपासनाओंकी उत्पत्ति हुई है। पुण्यश्लोक ऋषियोंसे लेकर उन सभी सम्प्रदायों तथा उपासनाभेदों और अनेक पन्थोंके सम्मान्य आचार्य-प्रवरोंने किसी-न-किसी रूप और रीतिके बलपर ईश्वरोपासनाका आदेश जगत्‌को दिया। सभी प्रकारकी उपासनाओंका प्राप्य स्थान ईश्वर ही है, इसलिये उनका ऐसा मानना उचित भी है। साधारण मनुष्योंको बहुधा भ्रम हो जाता है कि ईश्वर अनेक हैं। कई लोग तो इतना कहते भी संकोच नहीं करते कि 'पुराण और दर्शनोंमें ईश्वरसम्बन्धी जो विवेचन मिलता है उसमें ऐक्य नहीं।' उपर्युक्त कथन ही इस बातकी पुष्टि करता है कि उन्होंने वेदादि शास्त्रोंका गूढ़ अध्ययन नहीं किया। वेदान्तशास्त्र-प्रतिपाद्य जगदादिकारण, सच्चिदानन्दस्वरूप, आनन्दघन, सर्वव्यापक, निर्गुण, महान्‌से भी महान्, छोटेसे भी छोटा, अदीर्घ, एक ही निष्क्रिय, निरवयव, परब्रह्म परमात्मा एक है, वही हमें पुराणोंमें त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें भासित होता है। इनके अतिरिक्त भी इन्द्र, अग्नि, वरुण-आदिमें भी ईश्वरबुद्धिका आदेश वेदभगवान् दर्शाता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋग्वेद २। ३। २२)

अर्थात् 'विप्र लोग एक ब्रह्मका ही अनेक नामोंसे बखान करते हैं। उसीको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गरुत्मान्, अग्नि, यम और मातरिश्वा कहते हैं।' व्यावहारिक सत्तामें ये देव सविशेष कार्योंको करनेवाले हैं, व्याकृत दशामें इन देवोंके गुणभेद होनेसे धर्मभेद भी है। किन्तु अव्याकृतरूपमें वह एक ही है। पुराण असंख्य रत्नोंके भण्डार हैं। त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिवका तथा अन्य इन्द्र, अग्नि आदि वेदवर्णित देवोंका पुराणोंमें वही स्थान है, जो वेदोंमें। जिन लोगोंको पुराणोंमें साम्प्रदायिकताका भाव प्रतीत होता है, वे बेचारे भूलते हैं। पुराणोंका गूढ़ अनुशीलन करनेवालेको उनमें साम्प्रदायिकताका भाव नहीं मालूम पड़ता। मैंने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख लिखनेसे पहले कई दिनोंतक शिवपुराणका अध्ययन किया, उसमें मुझे कहींपर साम्प्रदायिकता नहीं झलकी। सारे पुराणोंपर दृष्टि डालनेसे पता लगता है कि पुराणोंका चरम उद्देश्य अद्वैतवादसे है जो वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय है। किन्तु अधिकारीके भेदसे तथा सृष्टि, स्थिति और लयके क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपोंकी अवतारणा हुई है। पहले लिखा जा चुका है कि ईश्वर अत्यन्त दुःखगम वस्तु है, अनेक प्रकारसे बतलानेपर भी नहीं जाना जाता।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमः। (केन० १। ३)

बुद्धि और शास्त्रोंके बलसे भी इसका जानना कठिन है। 'न मेधया न बहुना श्रुतेन' (श्रुति)। देवताओंके लिये भी ईश्वरतत्त्व जान लेना सरल हो, यह बात नहीं—

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।

इस भागवतके वचनसे उपर्युक्त बात स्पष्ट दिखला दी गयी। मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि ईश्वरकी दुःखगमताको बतलानेके लिये ही अनेकानेक मतोंने ईश्वरतत्त्वको जकड़ रक्खा है। और उचित भी है। क्योंकि जो अत्यन्त दुर्बोध और सत्तात्मक वस्तु होती है उसमें अनेक प्रकारकी भाव-स्फूर्तियाँ उत्पन्न होकर मस्तिष्कको चक्करमें डाल देती हैं। सन्देह विशेषणोंमें हुआ करते हैं, वस्तुमें किसीको भी सन्देह नहीं हुआ करता।

वैष्णव लोग शेषशायी श्रीमन्नारायणको ही सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्दघन, सर्वपालक मानते हैं। शैवमतावलम्बी श्रीशिवको ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और लयका कारण, जगन्नियन्ता मानते हुए भिन्न पथसे उसकी उपासना करते हैं। और—

यस्मात्खलु इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्ब्रह्म।

—इस प्रकारके ब्रह्मके स्वरूप और तटस्थ लक्षणको उसीमें संगत करते हैं इसी भाँति अन्य गाणपत्य और शाक्तोंका भी एक ही आलाप है। इतना ही नहीं, अपितु श्रुतिस्मृतियोंमें जहाँ-जहाँ विष्णु, ब्रह्मा, शिव, दुर्गा, अग्नि, वायु, सूर्य आदि प्रधान देवताओंकी स्तुति की गयी है, यहाँ इनका ब्रह्मस्वरूप-जैसा रूप दिखलाकर वर्णित किया गया है। यथा नारायणके विषयमें—

'नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्, निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्।

यच्च किञ्चिद् जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥

(नारायणोपनिषद्)

श्रीशिवजीके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारका उल्लेख मिलता है—

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरो सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्।

(श्रुति)

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

(श्वेता० उप० ३। ११)

अर्थात् सबके मुख, शिर और गर्दन जिसके मुख, शिर, और ग्रीवा हैं, जो सबके अन्तःकरणमें विद्यमान है, सर्वव्यापक होनेके कारण तथा ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष इन छः भग संज्ञाओंसे सम्पन्न वह भगवान् शिव सर्वगत है। गन्धर्वराज पुष्पदन्तने तो सबका प्रतिपाद्य तथा सबका एक ही प्राप्य शिव भगवान्को कहकर बड़ी ही सुन्दर स्तुति की है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात् 'हे भगवन्! वेदत्रयी, सांख्यशास्त्र, योग, न्याय, पाशुपत्य और वैष्णव ये पाँचों भिन्न-भिन्न मार्गोंका वर्णन करते हैं तो सही, किन्तु अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भले-बुरे नाना मार्गोंपर चलनेवाले मनुष्यके परिणाममें गम्य एक तुम ही हो। जैसे सीधे वा टेढ़े मार्गमें बहती हुई नदियोंका गम्य येनकेन प्रकारेण समुद्र ही है।'

इसी प्रकारकी देवी, गणेश, सूर्य, चन्द्रमा, राम, कृष्ण आदि अनेक देवोंकी स्तुतिसे पुराण भरे पड़े हैं। कई भक्तोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-अपने उपास्यदेवकी भक्तिसे मनोवाञ्छित सिद्धियाँ भी प्रत्यक्ष प्राप्त हुई हैं। शिवभक्ति तो बिना फल दिये विरत ही नहीं होती। काशीविश्वनाथकी मनसे प्रार्थना करनेपर मनोरथसिद्धि होती है। यह बड़े-बड़े लोगोंका अकाट्य विश्वास है। हम पहले लिख आये हैं कि परब्रह्म परमेश्वर शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव, निराख्यात, निरञ्जन, निरीह तथा अनाद्यनन्त एक ही है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके साकार ईश्वर उससे पृथक् हों यह बात नहीं। सब मतोंके प्रवर्त्तक महापुरुषोंने अन्तमें ईश्वरैक्यका निःसंशय सिद्धान्त स्वीकार किया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌ने कई स्थलोंपर अपनेको 'अहं' शब्द-द्वारा परब्रह्मरूपसे बखान किया है। विभूतियोगाख्य १० वें तथा विश्वरूपदर्शनाख्य ११ वें अध्यायमें विराट् रूप दिखाकर उन्होंने बहुदेवतावादके मोहमें पड़े हुए अर्जुनका मोह दूर किया। और दसवें अध्यायके अन्तमें इतना भी कह दिया कि 'संसारमें जो भी वस्तु विभूतिवाली, ऊर्जस्वी और श्रीसम्पन्न है, वह मुझ परमेश्वरके अंशसे उत्पन्न हुई तू जान।'

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥
(गीता १०। ४१, ३९)

अर्जुनको उन्होंने बतलाया है कि 'सब भूतोंके प्ररोहका कारण मैं ही हूँ, वह स्थावरजङ्गममेंसे कोई नहीं, जो मेरे बिना उत्पन्न हुआ हो।'

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।
(गीता ७। ६)

क्योंकि—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता ७। ७)

'मुझसे पृथक् कोई दूसरा जगत्कारण नहीं। जिस प्रकार एक सूत्रमें असंख्य मणियाँ पिरोयी रहती हैं उसी प्रकार यह सब मुझमें पिरोया हुआ है।' भगवान् श्रीकृष्णजीने ऐक्यवादकी हद कर दी और स्पष्ट कह दिया—

लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥
(गीता ७। २२)

अर्थात् जो कोई दूसरे देवताकी उपासनाको भी करता है वह उसके फलस्वरूपमें मुझसे दिये हुए फलोंको ही प्राप्त करता है। यही श्रुतिका सिद्धान्त है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
(श्वेताश्वतर० ६। ११)

इस उपर्युक्त निवेदनसे स्पष्ट किया गया है कि परमेश्वर एक ही है और त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव—उससे अलग नहीं। इन सब उद्धरणोंके विवेचक विद्वान् किसी भी दुराग्रहके चङ्गुलमें नहीं फँसते और न उन्हें फँसना ही चाहिये। और न उन्हें किसीसे पक्षपात है। पक्षपातरहित होकर उनके लिये सब एक-सा है, सब कुछ उस परमेश्वरकी विभूति है—इस बातको भागवतमें बड़े अच्छे ढंगसे समझाया गया है—

एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च।
पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः॥
इति नाना प्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम्।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम्॥

अब एक और प्रबल प्रमाण देकर हम प्रकृतका अनुसरण करते हैं।

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवोऽक्षरः परमः स्वराट्। स इन्द्रः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तन्मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये॥
(कैवल्योपनिषद्)

इस उपनिषद्-वाक्यसे निर्विवाद सिद्ध है कि वह परब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, अक्षर, इन्द्र, काल, अग्नि तथा चन्द्रमा आदि है। उसीको जानकर साधक मृत्युका अतिक्रमण करता है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। जिस देवताके उपासक, उपासना या स्तुति करते हैं, वे अपने उपास्यदेवपर पूर्णब्रह्मकी ही भावना किये रहते हैं। और यही सात्त्विक उपासना है। शिवजीके अनन्य उपासक कुसुमदशन (पुष्पदन्त) गन्धर्वराजने शिवजीकी स्तुतिमें कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमुधरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विस्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

अर्थात् 'हे भगवन्! सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, आकाश, आत्मा आदि जड व चेतन जितने भी पदार्थ हैं वे सब तुम्हारे स्वरूप हैं। परिपक्व बुद्धिवाले इतनी ही वाक्शक्तिका प्रयोग कर सकते हैं आगे उनकी बुद्धिका बल नहीं चल सकता। सारा तात्पर्य यह है कि इस प्रकारका कोई पदार्थ हम नहीं जान पाते जो तुम्हारी व्यापकतासे शून्य हो।'

संसार त्रिगुणात्मक है। प्रत्येक पदार्थके अन्दर तीन गुण मौजूदा हालतमें रहते हैं। सत्त्व, रज, तम यदि न हों तो प्रकृतिद्वारा सृष्टिका होना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव हो जाय। यहाँ त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही माया है। और मायी महेश्वर है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।

अनेक लोक हैं उनकी सृष्टि भी तरह-तरहसे देखनेमें आती है। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज—यह चार प्रकारकी सृष्टि भौतिक है। और सब त्रिगुणात्मिका मायाका कार्य होनेसे 'कारणगुणा हि कार्यं संगच्छन्ते' इस नैयायिकोंके कथनानुसार सब सृष्टि तीनों गुणोंसे व्याप्त है।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥

(गीता १८ । ४०)

अर्थात् 'पृथिवी अथवा देवताओंके लोकोंमें भी ऐसा प्राणी प्राप्त नहीं हो सकता जो सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों प्रकृतिके गुणोंसे छूटा हुआ हो।' इस भगवान्के कथनानुसार सब गुणत्रयाक्रान्त है। हाँ, इन तीनों गुणोंमें न्यूनाधिकता जरूर है, कोई सत्त्वप्रधान है तो कोई रजःप्रधान। सांख्यदर्शनके अनुसार इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है। उस समय किसी प्रकारकी सृष्टि नहीं होती। जब इन गुणोंमें क्षोभ होता है तब प्रकृतिद्वारा महत्तत्त्वादिकी उत्पत्ति और उनसे आगे सृष्टिका क्रम बनता चला जाता है। वेदान्तके आचार्य भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यजीने ब्रह्मके सविशेष और निर्विशेष दो भेद किये हैं।

द्विरूपं हि ब्रह्म अवगम्यते, नामरूपभेदोपाधिविशिष्टम्, तद्विपरीतं सर्वोपाधिवर्जितं चेत्यादि ।

यह सविशेष ब्रह्म जब मायाकी उपाधि धरकर सृष्टि करनेका 'लोकानुसृजा इति' 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' इस प्रकारका सङ्कल्प करता है तब वह मायावच्छिन्न होकर परमेश्वर संज्ञावाला होता है, वही परमेश्वर मायामें रहनेवाले सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंके भेदसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि शब्दोंका वाच्य होता है। यह वेदान्तपरिभाषाकार श्रीधर्मराजाध्वरीन्द्रका मत है—

स च परमेश्वरः एकोऽपि सोपाधिभूतमायानिष्ठसत्त्व-रजस्तमोगुणभेदेन ब्रह्माविष्णुमहेश्वरादिशब्दवाच्यतां भजते।

उपनिषदोंमें भी इसका उल्लेख बाहुल्येन प्राप्त होता है।

अथ यो ह खलु वावास्य राजसोंऽशः असौ स योऽयं ब्रह्मा, अथ यो ह खलु वावास्य तामसोंऽशः असौ स योऽयं रुद्रः, अथ यो ह खलु वावास्य सात्त्विकोंऽशः असौ स योऽयं विष्णुरिति ।

इस प्रकार—

उदक्तसत्त्वगुणमायावच्छिन्न ईश्वरो विष्णुः, उदक्त-रजोगुणमायावच्छिन्न ईश्वरो ब्रह्मा, उदक्ततमोगुणमाया-वच्छिन्न ईश्वरो महेश्वरः ।

ये प्रत्येकके लक्षण हो गये। कूर्मपुराणमें भी कहा है—

रजोगुणमयं चान्यद्रूपं तस्यैव धीमतः ।
चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते ॥
सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
सत्त्वं गुणं समाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम् ॥
अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः ।
तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् ॥

शिव और विष्णुके अर्थसे भी यही बात प्रतीत होती है कि 'शेते विश्वं यस्मिन्निति शिवः', 'वेवेष्टीति विष्णुः'।

शिवपुराणमें इस प्रकारके कई श्लोक हैं जिनसे त्रिमूर्तिका ऐक्य सिद्ध होता है। जैसे सुवर्णके बने हुए कटक, कुण्डल आदि आभूषणोंमें नाममात्रका भेद दृष्टिगोचर होता है। सुवर्ण तो सबमें अनुस्यूत है। उसी प्रकार हरीश कहते हैं—मुझमें, ब्रह्मामें और शिवमें कोई भेद ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न तत्र परभेदो वै कर्त्तव्यश्च महामुने।
वस्तुतो ह्येकधा भिन्नं रूपं मे त्रिजगत्युत॥
सुवर्णस्य यथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति।
अलंकारे कृते देव नामभेदो न वस्तुतः॥

शिवपुराणमें त्रिमूर्तिमें भेद दृष्टिवालोंके लिये बन्धनकी व्यवस्था की गयी है।

अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
इत्यादि।

पञ्चमाध्यायमें—

आवयोरन्तरं नैव ह्यणुमात्रं विचारतः।

मुझमें और शिवमें विचारदृष्टिसे देखनेपर अणुके बराबर भी भेद नहीं है। शिवपुराणमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवको उपनिषद्सम्मत सत्त्व, रज और तमगुणोंसे बखान किया गया है।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च गुणास्त्रय उदाहृताः।
विष्णुः सत्त्वं रजो ब्रह्मा तमो रुद्र उदाहृतः॥

इन सब बातोंके होते हुए भी शैव और वैष्णवोंमें झगड़ा होना सिद्ध करता है कि इन साम्प्रदायिक झगड़ोंका मूल कारण केवल मोह ही है। जबतक ऐकात्म्य ज्ञानमार्तण्ड-से अज्ञानान्धकारका नाश नहीं होता तबतक सम्प्रदायोंमें सुख और शान्ति नहीं आ सकती। सम्प्रदायकी आड़में आकर हम ईश्वरको संकुचितादि दोषारोपणोंसे अनुदार बना लेते हैं। यह कितने अनर्थकी बात है—

अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं
द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।

श्रीश्रीराधातत्त्व

(लेखक—श्रीशङ्कर दण्डिस्वामीजी शङ्करानन्दतीर्थजी)

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(ब्रह्मसंहिता ४। ३७)

श्रीभगवान् श्यामसुन्दरके आठ पटरानियाँ थीं;—१ विदर्भराज भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी, २ ऋक्षराज जाम्बवान्‌की कन्या जाम्बवती, ३ यादव सत्राजित्‌की कुमारी सत्यभामा, ४ सूर्यतनया कालिन्दी, ५ काशिराज नग्नजित्‌की पुत्री सत्या, ६ उज्जैनकी राजपुत्री मित्रविन्दा, ७ गयराज ऋतुसुकृतकी कन्या भद्रा और ८ भद्रराजतनया लक्ष्मणा।

स्वेच्छाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण जब लीलाशेष करके परमधाम पधार गये और भगवान्‌के सारथि दारुकने जब यह समाचार पटरानियोंको सुनाया, तब एक कालिन्दीको छोड़कर शेष सभी रानियाँ श्रीकृष्ण-विरहसे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गयीं; केवल कालिन्दी धीर स्थिरभावसे बैठी रहीं, इनको देखने-पर यह जान पड़ता था मानों श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेसे इन्हें कुछ कष्ट ही नहीं हुआ। मूर्च्छासे जागनेपर रानियोंने कालिन्दीजीको इस प्रकार धीर स्थिर और पूर्ववत् आनन्दित देखकर उनसे पूछा—

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने।
वयं विरहदुःखार्त्तास्त्वं न कालिन्दि तद्वद॥

'बहिन! हमलोगोंकी तरह तुम भी प्राणनाथ श्री-कृष्णकी पत्नी हो। हम सब उनके विरहदुःखसे व्याकुल हैं, परन्तु तुमपर शोकका कोई चिह्न नहीं दीखता, इसका क्या कारण है सो बताओ।'

इसके उत्तरमें मुरलीधर-महिषी कालिन्दीजीने कहा—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहो मान्न संस्पृशेत्॥

'आत्माराम श्रीकृष्णचन्द्रकी आत्मा श्रीराधिका हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, मैं उन श्रीराधिकाजीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासी हूँ, इसीके प्रभावसे श्रीकृष्णसे मेरा कभी वियोग नहीं होता—विरह मुझे स्पर्श नहीं कर सकता।'

श्रीमद्भागवत रासपञ्चाध्यायीमें 'आत्माराम' शब्द बहुत जगह आया है। रासलीला-वर्णनमें पहले ही 'आत्माराम' आता है। 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' (१० । २९ । ४२) इसी श्लोकसे रासलीला-वर्णनका प्रारम्भ है। आत्मा शब्दकी व्याख्या वेदान्तमें प्रसिद्ध है। ब्रह्मा, परब्रह्म, आनन्द, रस, पुरुष, परमात्मा आदि विभिन्न शब्दोंद्वारा 'आत्मा' शब्द वेदान्तमें सूचित हुआ है। सूत्रकार भगवान् व्यासने तो ब्रह्मके सिवा किसी भी गौण अर्थमें आत्मा शब्दके प्रयोगको असम्भव बतलाया है। 'गौणश्चेन्नात्मशब्दात्।' (ब्रह्मसूत्र १ । १ । ६) श्रुति कहती है—

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

(कठ० १ । २ । २२)

'शुद्धचित्त पुरुष नश्वर शरीरमें स्थित स्थूल सूक्ष्म शरीरसे अतीत अपरिच्छिन्न सर्वव्यापी चिन्मय आत्माको जानकर शोकसे रहित हो जाता है।'

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः॥

(मुण्डक० २ । २ । ५)

'आत्माके सिवा अन्यान्य सब विषयोंका त्याग करके केवल आत्माको ही जानो। आत्मा ही अमृत—मोक्षप्राप्तिका उपाय है।'

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।

(माण्डूक्य० ६)

'आत्मा ही सारे विश्वका ईश्वर है, यही सर्वज्ञ है, यही अन्तर्यामी है, यही सबका उत्पत्तिस्थान है, यही सबकी सृष्टि और संहारका कारण है।'

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(श्वेताश्वतर० ३ । ८)

'एकमात्र आत्माको जाननेसे ही जन्ममृत्यु-प्रवाहरूप दुःखसागरसे पार हुआ जाता है अन्य कोई उपाय नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद्के मैत्रेयी ब्राह्मणमें आत्माका लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः॥

(बृहदारण्यक)

'पुत्र, मित्र, कलत्र, गृह, धन आदि जो कुछ भी विषय प्रियरूपमें प्रतीत होते हैं, वे सब उन विषयोंके लिये प्रिय नहीं लगते, आत्माके लिये ही प्रिय मालूम होते हैं। समस्त वस्तुओंसे अन्तरतम यह आत्मा पुत्र-कलत्रादि समस्त विषयोंसे प्रिय है। इसीलिये आत्मा ही देखने, सुनने और निदिध्यासन करने यानी साक्षात् करने योग्य है।'

यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः।

(बृहदारण्यक)

'जो वस्तु दूसरेकी सहायताके बिना ही स्वयं प्रकाशित होती है और जो सबके अन्तरमें विराजमान है, वही आत्मा है, वही ब्रह्म है।'

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।' (तैत्तिरीय भृगुवल्ली १)

'जिससे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिससे सब जीवित रहते हैं, और अन्तमें जिसमें प्रवेश करके प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं, उसे विशेष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपसे जाननेका प्रयत्न करो, वही ब्रह्म है ।' इसी उपनिषद्की भृगुवल्ली छठे अनुवाकमें कहा है—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्, आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।

'आनन्द ही ब्रह्म है यह निश्चयरूपसे जानो, आनन्दसे ही अखिल भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्दके द्वारा ही जीवित रहते हैं और आनन्दरूपमें ही प्रवेश करके लय हो जाते हैं ।'

इसीकी ब्रह्मानन्दवल्लीके सातवें अनुवाकमें कहा गया है—

रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।

'यह आनन्दमय आत्मा रसमय रससिन्धु है । इस रसरूप आत्माको प्राप्त होकर ही जीव आनन्दी होता है ।' सामवेदरहस्यमें कहा है—

स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान् । तद्रूपं रससंवलितमानन्दरसोऽयं पुराविदो वदन्ति । सर्वे आनन्दरसा यस्मात् प्रकटिता भवन्ति ।

'उस परात्पर पुरुषने अपने रमणके लिये अपने स्वरूपको प्रकट किया । वह प्रकटित रूप रस-संवलित है । ज्ञानी इसे आनन्दरस कहते हैं । इसीसे समस्त आनन्द और रसकी उत्पत्ति होती है ।'

यह रस-संवलित आनन्दरस ही आत्मा है । यही आत्मा आनन्दरसमें सर्वदा रमण करता है । और स्वयं ही नायकरूप धारण करके आराधनामें लगा रहता है । इसीलिये इसको 'राधा' नामसे कीर्तन करते हैं । इस आनन्दमय आत्माका संग प्राप्त होनेपर सब प्रकारकी काम-कामना निःशेषरूपसे नष्ट हो जाती है । इसीसे इसको 'राधा' कहते हैं ।

राध्नोति सकलान्कामान् तस्माद्राधेति कीर्तिता ।
(देवीभागवत)

श्रीमद्भागवतके माहात्म्य-वर्णनके प्रसङ्गमें श्रीस्कन्द-पुराणमें कहा गया है—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥
(१ । २२)

'श्रीराधिका श्रीकृष्णकी आत्मा हैं । श्रीकृष्ण अपनी आत्मा श्रीराधिकाके साथ रमण करते हैं । इस रहस्यके गूढ तत्त्वको जाननेवाले मुनिगण इसीलिये श्रीकृष्णको आत्माराम कहते हैं ।'

पद्मपुराणमें कथा आती है, एक समय भगवान् आदिनारायणने देवदेव महादेवसे वर माँगनेके लिये कहा, तब भगवान् उमापति बोले—

यद्रूपं ते कृपासिन्धो परमानन्ददायकम् ।
सर्वानन्दाश्रयं नित्यं मूर्तिमत्सर्वतोऽधिकम् ॥
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं यद्ब्रह्मेति विदुर्बुधाः ।
तदहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां परमेश्वर ॥
(पद्म० पाताल० ८२ । ५८-५९)

'हे कृपासिन्धो ! हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग आपके जिस रूपको निर्गुण, निष्क्रिय और शान्त बतलाते हैं, आपके उसी परमानन्ददायक, सर्वानन्दके आश्रय, नित्य, सर्वश्रेष्ठ मूर्तिमान् रूपको मैं देखना चाहता हूँ ।'

इसपर भगवान् श्रीआदिनारायण श्रीशिवजीको श्रीवृन्दावनमें आनेका आदेश देकर अन्तर्धान हो गये । देवाधिदेव तदनुसार श्रीवृन्दावन पहुँचे । वहाँ भगवान्ने उनको श्रीराधाकृष्णके रूपमें दर्शन देकर कहा—

यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम् ।
घनीभूतामलप्रेमसच्चिदानन्दविग्रहम् ॥
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम् ।
वदन्त्युपनिषत्सङ्घा इदमेव ममानघम् ॥
(पद्म० पाताल० ८२ । ६६-६७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आज आपने मेरे उस अलौकिक रूपके दर्शन किये हैं जो घनीभूत विशुद्ध प्रेम है और सच्चिदानन्द-विग्रह है। उपनिषद्समूह इसी मेरे स्वरूपको अरूप, निर्गुण, सर्वव्यापी, निष्क्रिय और परात्पर कहते हैं।'

देवीभागवतमें भगवान् श्रीनारायण देवर्षि नारदसे कहते हैं—

कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥
(९।५०।१७)

'श्रीराधिका श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी है अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रकी आत्मा है। श्रीकृष्ण सर्वदा श्रीराधिकाके साथ आनन्दलीला करते हैं, वह कभी रासेश्वरी श्रीराधिकाका त्याग नहीं करते—दोनों सदा अभिन्नात्मरूपसे साथ रहते हैं।'

भविष्यपुराणमें देवर्षि नारदके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं—

स नास्ति त्रिषु लोकेषु यस्य तिष्ठाम्यहं वशे।
विना राधां प्रियतमां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्॥

'प्रियतमा, प्राणोंकी अपेक्षा श्रेष्ठा (आत्मा) श्रीराधिकाके सिवा तीनों लोकोंमें मैं किसीके भी वशमें होकर नहीं रहता।'

अनया सह विच्छेदः क्षणमात्रं न विद्यते।

'परन्तु श्रीराधिकाके साथ क्षणमात्रके लिये भी मेरा विछोह नहीं होता।' ऋग्वेद उपनिषद्भागमें 'राधिकोपनिषद्' है—उसमें वर्णन है—

ॐ अथोद्ध्वमन्थिन ऋषयः सनकाद्या भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपसित्वोचुः देव कः परमो देवः का वा तच्छक्तयः तासु च का वरीयसी भवतीति सृष्टिहेतुभूता च केति। स होवाच। हे पुत्रकाः शृणुतेदं ह वा व गुह्याद्गुह्यतरमप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम्। स्निग्धाय ब्रह्मवादिने गुरुभक्ताय देयमन्यथा दातुर्महदघं भवतीति।

कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड्विधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपीगोपसेव्यो वृन्दाऽऽराधितो वृन्दावनाधिनाथः स एक एवेश्वरः। तस्य ह वै द्वे तनू-नारायणोऽखिलब्रह्माण्डाधिपतिरेकांशः प्रकृतेः प्राचीनो नित्यः, एवं हि तस्य शक्तयस्त्वनेकधा। आह्लादिनीसन्धिनीज्ञानेच्छाक्रियाद्या बहुविधाः शक्तयः। तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्गभूता राधा, कृष्णेनाराध्यते इति राधा। कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका गान्धर्वेति व्यपदिश्यत इति। अस्या एव कायव्यूहरूपा गोप्यो महिष्यः श्रीश्चेति। येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्। राधा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवी चेति विविक्ते वेदाः स्तुवन्ति यस्या गतिं ब्रह्मभागा वदन्ति। महिमास्याः स्वायुमानेनापि कालेन वक्तुं न चोत्सहे। सैव यस्य प्रसीदति तस्य करतलावकलितं परमं धामेति। एतामविज्ञाय यः कृष्णमाराधयितुमिच्छति स मूढतमो मूढतमश्चेति। अथैतानि नामानि गायन्ति श्रुतयः—

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी॥
वृन्दाराध्या रमाऽशेषगोपीमण्डलपूजिता।
सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा॥
वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
गान्धर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना।
भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधिविनाशिनी॥

इत्येतानि नामानि यः पठेत् स जीवन्मुक्तो भवति इत्याह हिरण्यगर्भो भगवानिति।

सन्धिनी तु धामभूषणशय्यादिमित्रभृत्यादिरूपेण परिणता मृत्युलोकावतरणकाले मातृपितृरूपेण चाऽऽसीदित्यनेकावतारकारणा। ज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिस्तु क्षेत्रशक्तिरिव । इच्छान्तर्भूता माया । सत्त्वरजस्तमोमयी बहिरङ्गा । जगत्कारणभूता सैवाविद्यारूपेण जीवबन्धनभूता । क्रियाशक्तिस्तु लीलाशक्तिरिव ।

य इमामुपनिषदमधीते सोऽव्रती व्रती भवति स वायुपूतो भवति स सर्वपूतो भवति राधाकृष्ण-प्रियो भवति । स यावच्चक्षुःपातं पङ्क्तीपुनाति ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्ऋग्वेदे ब्रह्मभागे परमरहस्ये राधिकोपनिषद् ।

एक दिन ऊर्द्ध्वरेता सनकादि महर्षियोंने भगवान् ब्रह्माकी स्तुति करके उनसे पूछा 'भगवन् ! सर्वप्रधान परम देव कौन हैं, उनकी शक्ति कौन-कौन-सी हैं, उनमें प्रधान शक्ति कौन-सी है ? और कौन-सी शक्ति सृष्टिकी कारण हैं ?' उत्तरमें ब्रह्माजीने कहा—पुत्रो ! सुनो; परन्तु यह अत्युत्तम गोपनीय रहस्य अप्रकाश्य है, तुम बिना बिचारे इसे सबपर प्रकट न करना । स्नेहपूर्ण हृदयवाले, ब्रह्मवादी अथवा गुरुभक्तको यह बतलाना चाहिये । ऐसे पुरुषोंके सिवा दूसरे किसीको बतलानेसे पाप होगा ।

भगवान् हरि श्रीकृष्ण ही परम देव हैं । वे षड ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं । अर्थात् उनमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य नित्य स्थित हैं । वे गोप-गोपियोंद्वारा सेव्य हैं, श्रीवृन्दाद्वारा आराधित हैं और वृन्दावनके अधिपति हैं । वे ही एकमात्र सर्वेश्वर हैं । उनके एक रूप नारायण हैं जो अखिल ब्रह्माण्डके अधीश्वर हैं, और एक रूप श्रीकृष्ण हैं वे प्रकृतिसे पुरातन और नित्य विद्यमान हैं । उनकी आह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि अनेकों शक्तियाँ हैं । उनमें आह्लादिनी सबसे प्रधान है । यह आह्लादिनी शक्ति ही परम अन्तरङ्गभूता श्रीराधिका हैं । श्रीकृष्ण सदा इनकी आराधना करते हैं और यह सर्वदा श्रीकृष्णकी आराधनामें लगी रहती हैं, इसीसे इनका नाम 'राधा' है । श्रीराधाजीको गान्धर्वी भी कहते हैं । इन्हींके देहसे गोपियाँ, श्रीकृष्णकी रानियाँ तथा लक्ष्मीदेवी आविर्भूत हुई हैं । रससागर आदि-नारायण श्रीमहाविष्णु ही लीला करनेके लिये श्रीराधा और श्रीकृष्ण इन दो रूपोंमें प्रकट हुए हैं । श्रीराधा भगवान् श्रीहरिकी सर्वेश्वरी, सम्पूर्ण सनातनी विद्या और प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी—आत्मा हैं । वेद एकान्तमें श्रीराधाकी ऐसी स्तुति करते हैं । ब्रह्मविद्गण इनके सम्बन्धमें ऐसा कहते हैं । मैं अपने सम्पूर्ण जीवनमें भी श्रीराधाकी महिमा कहकर उसे शेष करनेमें समर्थ नहीं हूँ । श्रीराधा जिनपर प्रसन्न हो जाती हैं, परमधाम उनके करतलगत हो जाता है अर्थात् वे सहज ही परमपदको पा जाते हैं । श्रीराधाकी अवज्ञा करके जो मनुष्य श्रीकृष्णकी आराधना करना चाहता है वह मूढतमोंमें भी मूढतम है । श्रुतिने श्रीराधाके निम्नलिखित नाम गाये हैं—

श्रीराधा, रासेश्वरी, रम्या, कृष्णमन्त्रकी अधिदेवता, सबकी आदि स्वरूपा, सबके द्वारा वन्दनीया, श्रीवृन्दावनविहारिणी, श्रीवृन्दाकी आराधिता, रमा, असंख्य गोपीमण्डलद्वारा पूजिता, सत्या, सत्यपरा, सत्यभामा, श्रीकृष्णवल्लभा, वृषभानुसुता, गोपी, मूलप्रकृति, ईश्वरी, गान्धर्वी, राधिका, रमणीया, रुक्मिणी, परमेश्वरी, परात्परतरा, पूर्णा, पूर्णचन्द्रनिभानना, भुक्तिमुक्तिप्रदा और सदा भवव्याधिविनाशिनी ।

इस नामावलीका पाठ करनेसे जीवन्मुक्ति मिलती है । भगवान् हिरण्यगर्भने ऐसा कहा ।

भगवान् श्रीकृष्णकी सन्धिनीशक्ति धाम, भूषण, शय्या आदि और मित्र तथा भृत्यादि रूपमें परिणत होती है । मर्त्यलोकमें अवतारके समय माता-पिताके रूपमें प्रकट होती है । यही शक्ति बहुत-से अवतारोंका कारण है । ज्ञानशक्ति ही क्षेत्रज्ञशक्ति है । मायाशक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छाशक्तिके अन्तर्गत है। मायाशक्ति सत्त्व-रज-तमो-गुणरूपा है और बहिरङ्गा है। यह मायाशक्ति ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेवाली है और यही अविद्यारूपसे जीवके बन्धनका कारण है। क्रियाशक्ति ही लीलाशक्ति है।

जो इस उपनिषद्का पाठ करते हैं वे अव्रती होनेपर भी व्रती हो जाते हैं, वे अग्निपूत, वायुपूत और सर्वपूत होते हैं। वे श्रीराधाकृष्णके प्रिय होते हैं। जितनी दूरतक उनकी दृष्टि पड़ती है, उतनी दूरतक सब कुछ पवित्र हो जाता है।

ॐ तत्सत् इति ऋग्वेदे ब्रह्मभागे परमरहस्ये
राधिकोपनिषद् समाप्ता।

ब्रह्मसंहितामें वर्णन है—

स्वरूपप्रेमवात्सल्यैर्हरेर्हरति या मनः।
हरा सा कथ्यते सद्भिः श्रीराधा वृषभानुजा॥
हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
अतो हरेत्यनेनैव राधेति परिकीर्तिता॥

स्वरूप-प्रेम-वात्सल्यद्वारा जो हरिके मनको हरण करती है, उस वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधारानी-को ही सत्पुरुष 'हरा' कहते हैं। वह भगवान् कृष्णके मनको आह्लादस्वरूपिणी होकर हरती है इसलिये 'हरे' शब्दसे 'राधा' का ही कथन होता है। हरा शब्दका सम्बोधनमें हरे रूप होता है।

वैदग्धीसारसर्वस्वमूर्तिलीलाधिदेवताम्।
श्रीराधां रमयन्नित्यं राम इत्यभिधीयते॥

वैदग्धीसारसर्वस्वमूर्तिलीलाधिदेवता श्रीराधाके साथ नित्य रमण करनेसे श्रीकृष्ण 'राम' कहलाते हैं।

श्रीरूप गोस्वामीपादने 'उज्ज्वल-नीलमणि' में कहा है—

तत्रापि सर्वथा श्रेष्ठे राधा चन्द्रावलीत्युभे।
तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका॥
महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिगरीयसी।
ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी॥

'श्रीराधा और चन्द्रावलि ये अन्य सब गोपियोंसे श्रेष्ठ हैं, इन दोनोंमें श्रीराधा सर्वतोभावसे श्रेष्ठ हैं। महाभावस्वरूपा, गुणोंमें अति श्रेष्ठा, श्रीकृष्णकी यह आह्लादिनी शक्ति उनकी अनन्त शक्तियोंमें सबसे उत्तम और प्रधान हैं।'

श्रीचैतन्यचरितामृतमें सनातनजीको शिक्षा देते हुए श्रीश्रीमहाप्रभु कहते हैं—

कृष्णके आह्लादे ताते नाम आह्लादिनी।
सेइ शक्तिद्वारे सुख आस्वादे आपनि॥
सुखरूप कृष्ण करे सुख आस्वादन।
भक्तगणे सुख दिते ह्लादिनी कारण॥
ह्लादिनीर सार अंश तार प्रेम नाम।
आनन्द-चिन्मय रस प्रेमेर आख्यान॥
प्रेमेर परम सार महाभाव जानि।
सेइ महाभावरूपा राधा ठाकुरानी॥

श्रीविष्णुपुराणमें कहा है—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥
(६।७।६१)

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा है—

कृष्णेर अनन्त शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति नाम॥
अंतरंगा, बहिरंगा, तटस्था कहि जारे।
अन्तरंगा स्वरूपशक्ति सबार ऊपरे॥

यह अन्तरङ्गा शक्ति श्रीराधा महारानी, सच्चिदा-नन्दघनविग्रह श्रीकृष्णरूप चेतन जलका विकसित पुष्प है। श्रीविष्णुपुराणमें अन्यत्र कहा है—

ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ॥
(१।१२।६८)

श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्ति श्रीराधारानी ह्लादिनी, सन्धिनी और संवित् शक्तिके नामसे त्रिधा लीला करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इनमें आनन्दस्वरूपिणी ह्लादिनीशक्ति भगवदानन्द विधानसे उनकी नित्यलीलामें नित्य नियुक्त हैं। सत्-स्वरूपा सन्धिनीशक्ति सृष्ट्यादि लीलाकार्यमें आनन्द-रत हैं और स्वरूपा ज्ञानस्वरूपिणी संवित्-शक्ति ज्ञानियोंकी अनुभूतिके रूपमें आविर्भूत होती हैं।

सच्चिदानंदमय हय ईश्वर स्वरूप।
तीन अंशे चिच्छक्ति हय तीन रूप॥
आनंदांशे ह्लादिनी सदंशे संधिनी।
चिदंशे संविद जारे कृष्ण ज्ञान मानि॥
(श्रीचैतन्य च० म० ६। १५८-१५९)

श्रीमद्भागवत १०। ३३। १७ में कहा है—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

बालक जैसे दर्पणके सामने अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, ठीक इसी प्रकार आत्माराम-रसविग्रह-रस-सिन्धु-रसिकशिरोमणि श्रीकृष्णने योगमायाकी सहायता-से अपनी ही ह्लादिनीशक्तिके विकसित रूप निज प्रतिबिम्बस्वरूपा गोपियोंके साथ रासलीलाका अभिनय किया था। जो भगवान्‌को पाकर केवल भगवान्‌को ही देखतीं, भगवान्‌का ही चिन्तन करतीं, भगवान्‌की ही बातें कहतीं और भगवान्‌की ही बातें सुनती थीं, भगवान्‌के सिवा और किसी भी वस्तुके लिये उनके मनमें किसी समय किसी प्रकारकी भी आसक्ति या उत्साह नहीं पैदा होता था; उन सब कृष्णसर्वस्वा, कृष्ण-गतप्राणा, कृष्णसुखविधानमें नित्य तत्परा ('कृष्ण-सुखैकतात्पर्यगोपीभाववर्यः') नित्यसिद्धा गोपियोंमें ('गोपायति आत्मानं परमात्मानं या सा गोपी') सर्वश्रेष्ठा प्रेम-सारभूत-महाभावस्वरूपिणी, रसराज-शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्रकी परम वाञ्छिता रासेश्वरी हैं श्रीराधा-रानीजी 'राधाया अकरोद्रते रतिर्मनःपूर्तिम्'[1] जो विहारकालमें श्रीराधाके रतिसुख उत्पन्न करके चित्त विनोदन करते हैं, 'रसानन्दो राधासरसवपुरालिङ्गन-सुखैः'[2] जो आनन्द-रस-तन्मय हैं एवं जो श्रीराधाके रसमय देहका आलिङ्गन कर परमानन्द लाभ करते हैं,—उन आनन्दघन रसविग्रह श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आत्मा हैं श्रीराधारानीजी।

इस प्रकार श्रुति-संहिता-पुराण आदि शास्त्रोंमें और ज्ञानश्रेष्ठ प्रेमश्रेष्ठ अवतारोंके उपदेशोंमें श्रीराधातत्त्वका वर्णन विस्तारसे पाया जाता है। अधिक क्या, श्रीराधा-तत्त्व श्रीकृष्णतत्त्वसे अभिन्न है। श्रीराधाकृष्ण एक तत्त्व है। रसास्वादनके लिये, रसविस्तारके लिये रससागर रसिक-चूडामणि 'रसो वै सः' दो रूपोंमें प्रकट हुए हैं। 'रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्।'

सच्चिदानन्दतत्त्व ही परब्रह्म है। सच्चिद्रूप श्रीकृष्ण हैं और आनन्दरूपिणी श्रीराधाजी हैं। दोनों मिलकर एक सच्चिदानन्दघन परमतत्त्व है—वही वेदान्तका—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
मूकास्वादनवदनिर्वचनीयं स्वयमेव तत्त्वं स्वयमेव बोध्यम्।

—परब्रह्म है। 'उत्सव'

१ भगवान् शंकराचार्यकृत आर्त्तत्राणनारायणाष्टादशकस्तोत्रम् १२।
२ भगवान् शंकराचार्यकृत जगन्नाथस्तोत्रम् ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिव्रता-लक्षण

मंगल वपु मंगल-करन, मंगल-फल-दातार ।
दासी सो श्रीपति चरन, बंदति बारंबार ॥१॥
तियको पति ही परम गुरु, अरु पति ही है देव ।
अस बिचारि मन बचकरम, दासी पतिहीं सेव ॥२॥
पति प्रसन्नता स्वर्ग है, नर्क पतिहिको क्रोध ।
याते राखु प्रसन्न पति, दासी जौ कछु बोध ॥३॥
तात मात सासू ससुर, अरु सुत सूर सचेत ।
दासी इनसे स्वल्प सुख, पति अपार सुख देत ॥४॥
और कृपाकरकी कृपा, जगहीमें रहि जाय ।
दासी श्रीपतिकी कृपा, दुहुँ पुर होत सहाय ॥५॥
लँगड़ो लुंजो आँधरो, मूढ़ ग्रसित-बहु-रोग ।
दासी कैसहु होय पति, पै पूजनके योग ॥६॥
दासी बरके नामसे, बर तरु पूजैं नारि ।
साक्षात बर नहिं भजहिं, तिन्ह सम कौन गँवारि ॥७॥
कुलगुरु द्विज सासू ससुर, अरु निज जेठ जिठान ।
दासी पति पूजित समुझि, करहु सदा सनमान ॥८॥
धन्य मातु पितु बन्धुवर, सास ससुर धन तौन ।
परम धन्य सो पति सदा, पतिव्रता गृह जौन ॥९॥
पृथ्वी जात पतालको, लखि कलि पाप-पहार ।
दासी धारे धीर धरि, पातिव्रत आधार ॥१०॥
नैहर सासुर सर्व सुख, सो सीता तृण जान ।
दासी बन गवनी हरषि, पतिपद प्रेम प्रमान ॥११॥
दासी दुख कारण प्रगट, यद्यपि कौशलनाथ ।
पै रानिन्ह सुतको तज्यो, तज्यो न पतिको साथ ॥१२॥
कुटिल तियनके सीखते, होत अवश हित हानि ।
दासी सुनि कुबरी वचन, कैकेई पछितानि ॥१३॥
पतिपर आयसु जनि करहु, अस परिणाम विचार ।
पति दासी मृगछाल-हित, सिय दुख सह्यो अपार ॥१४॥
दासी पतिते हठ किये, कैकेइहिं दुखभार ।
विधवापन सुतविमुखता, अपयश जगत अपार ॥१५॥
सती न मानी पति वचन, रामपरीक्षा लीन्ह ।
दासी सो अपराधबस, शंभु ताहि तजि दीन्ह ॥१६॥
दासी पति आदर बिना, कहूँ न तियको मान ।
नैहरहूँ निदरी गई, दक्षसुता जग जान ॥१७॥
दासी देवर सुतवधू, बेटी आदि अधीन ।
इनकहँ निदरि कुटुंबिनी, होहिं कुटुंबविहीन ॥१८॥
नभ रबि थल नर जलबरुन, निरखहिं वस्त्रविहीन ।
दासी नारि अधर्म लखि, चीरहरन हरि कीन्ह ॥१९॥
बड़हर नारि अनारपन, जामन सुमग अघाय ।
दासी निज बर त्यागिके, पीपर सेवैं जाय ॥२०॥
दासी सब निदरहिं सदा, पतिबंचक अनुमानि ।
रामहुँ परसेउ पाँवते, गौतमतियजिय जानि ॥२१॥
जो बिधवा राखन चहै, पातिव्रतको नेम ।
सुतहिं जानि पतिआत्मज, पालै बचन सप्रेम ॥२२॥
सूपनखा गइ रामपहँ, तजि बैधव्य बिचार ।
दासी कानरु नासिका, काटे राजकुमार ॥२३॥
पातिव्रतको मूल बस, दासी इतनों जान ।
पति जीवित वा मृतकको, जनि कीजै अपमान ॥२४॥

—श्रीपतिदासीजी

सन्तका स्वभाव

संतको मानहिंसे दुख होवे ॥
सब कुछ त्याग इकांते बिचरे, मान त्याग ना होवे ।
कोउ मंदिर कोउ किला बनावे, गली गली फिरि रोवे ॥
संतको मानहिंसे दुख होवे ॥
गृह बनाय ठाकुर थापन हित, सबकी थैली टोवे ।
दस साधू निज साथमें लेके, बीज मूढता बोवे ॥
संतको मानहिंसे दुख होवे ॥
हाथी घोड़े बृथा ठाटसे, सत्य ज्ञानको खोवे ।
'कवलवास' एक टुकड़ा लेकर, हाथ सीस धरि सोवे ॥
संतको मानहिंसे दुख होवे ॥

—महात्मा जयगौरीशंकर सीताराम

7617

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-चाटिका

जो एक प्रभु अपनी नियामक शक्तिके द्वारा सबको नियममें रखते हैं, जो एक होते हुए ही सब लोकोंकी उत्पत्ति और लय करनेमें समर्थ हैं, उस देवको जो लोग पहचान लेते हैं वे अमृतरूप हो जाते हैं। —उपनिषद्

* * *

जो मृत्युके समय भगवान्‌का स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह निस्सन्देह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है परन्तु अन्तकालमें स्मरण वही कर सकता है जिसने जीवनभर भगवत्-स्मरणका अभ्यास किया हो।

—श्रीमद्भगवद्गीता

* * *

सत्ययुगमें भगवान्‌के ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे, द्वापरमें सेवासे जो फल मिलता था, वही कलियुगमें केवल श्रीहरि-कीर्तनसे मिलता है। अतएव जो दिन-रात श्रीहरिका प्रेम-पूर्वक कीर्तन करते हुए ही घरका सारा काम करते हैं, वे भक्तगण धन्य हैं! —श्रीमद्भागवत

* * *

अहिंसा, इन्द्रियसंयम, दया, क्षमा, मनका निग्रह, ध्यान और सत्य इन सात पुष्पोंद्वारा की हुई पूजासे भगवान् जितने प्रसन्न होते हैं, उतने साधारण पुष्पोंसे नहीं होते, क्योंकि भगवान्‌को सामग्रियोंकी अपेक्षा भक्ति अधिक प्यारी है। भक्तको छोड़कर इन पुष्पोंसे भगवान्‌की पूजा दूसरा कौन करेगा। —पद्मपुराण

* * *

एक क्षणके लिये भी आयुका नाश होना बन्द नहीं होता, क्योंकि शरीर अनित्य है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको विचारना चाहिये कि नित्य वस्तु कौन-सी है। उस नित्य वस्तुको जान लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है।

—देवर्षि नारद

* * *

जो अलज्जाके काममें लज्जा करते हैं और लज्जाके काममें लज्जा नहीं करते, जो भयरहित काममें भय देखते हैं और भयके काममें निर्भय रहते हैं और जो अदोषमें दोषबुद्धि रखते हैं और दोषमें अदोष देखते हैं वे झूठी धारणावाले जीव दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। —धम्मपद

* * *

जब काल सुमेरु-जैसे पर्वतोंको जला देता है, बड़े-बड़े सागरोंको सुखा देता है, पृथिवीको नाश कर देता है तब हाथीके कानकी कोरके समान चञ्चल मनुष्य तो किस गिनतीमें है। —भर्तृहरि

* * *

काम-क्रोध बड़े ही क्रूर हैं, इनमें दयाका नाम नहीं, इन्हें काल ही समझो। ये ज्ञाननिधिके साँप, विषयकन्दरा-के बाघ और भजनमार्गके घातक हैं। ये जलमें नहीं, बिना ही जलके डुबो देते हैं, बिना ही आगके जला देते हैं और बिना ही शस्त्रके मार डालते हैं। —ज्ञानेश्वर

* * *

वे माता-पिता धन्य हैं, और वही पुत्र धन्य है जो जिस किसी प्रकारसे रामका भजन करता है। जिसके मुख-से धोखेसे भी रामका नाम निकलता है उसके पैरोंकी जूती मेरे तनके चमड़ेसे बने तो भी कम ही है। वह चाण्डाल भक्त अच्छा जो रात-दिन रामको भजता है। जिसमें हरिका नाम नहीं, वह ऊँचा कुल किस कामका? —तुलसीदासजी

* * *

मनरूपी पखेरू तभीतक विषयवासनाके आकाशमें उड़ता है, जबतक कि वह ज्ञानरूपी बाजकी झपेटमें नहीं आता। —कबीर साहेब

* * *

आवश्यकता चावलकी होती है, परन्तु चावल बोने-से वह उपजता नहीं। चावल पानेके लिये बोना पड़ता है धान! धानमें छिलका यद्यपि अनावश्यक है परन्तु छिलके बिना धान नहीं उगता। इसी प्रकार शास्त्रविहित आचारोंका पालन किये बिना कभी धर्मलाभ नहीं होता।

—रामकृष्ण परमहंस

* * *

जो वस्तु अनादि और अनन्त है, उसीमें सुख है; अन्तवान् वस्तुमें सुख नहीं है। अन्तवान् वस्तुका एक दिन अवश्य नाश होगा, इसलिये जो उसपर आसक्त होगा उसको दुखी होना ही पड़ेगा। —विजयकृष्ण गोस्वामी

* * *

जो बिना जड़की अमर-बेलको पालते हैं उन प्रभुको छोड़कर फिर दूसरे किसकी खोज करनी चाहिये। —रहीम

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहक बननेवालोंको शीघ्रता करनी चाहिये

श्रीशक्ति-अङ्क

श्रीशक्ति-अङ्ककी बहुत थोड़ी प्रतियाँ शेष बची हैं। अतः जो सज्जन ग्राहक बनना चाहें वे जरा जल्दी करेंगे तो उन्हें अभी श्रीशक्ति-अङ्क मिल जायगा। नहीं तो दुबारा छपनेतक राह देखनी पड़ेगी।

व्यवस्थापक—**कल्याण, गोरखपुर**

कल्याणके तीसरे वर्षकी फाइल

४०० से ऊपर लेख और कविताएँ, सुन्दर ७२ चित्र और ११२८ पृष्ठ, मूल्य अजिल्दका डाक-महसूल-सहित केवल ४॥), सजिल्द ४॥॥) । (इसमें प्रसिद्ध 'भक्तांक' भी शामिल है जो अलग नहीं मिलता।)

यह फाइल कितनी उपादेय है, कुछ लेखकोंके नाम देखनेसे ही इस बातका पता लग सकता है—

महात्मा श्रीगान्धीजी, श्रीअरविन्द घोष, काकाकालेलकर, आचार्य श्रीआनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव हिन्दू-युनिवर्सिटी, काशी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल, दीनबन्धु श्री सी० एफ० एण्ड्रूज महोदय, श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी, हरिभक्त श्रीयादवजी महाराज, बम्बई, जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज प्रतिवादी भयङ्कर मठ बम्बई, सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार, बाबा राघवदासजी, स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, चौधरी श्रीरघुनन्दन-प्रसादसिंहजी, श्रीअनिलवरणराय पाण्डोचेरी, भिक्षु श्रीगौरीशंकरजी, रा० व० अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए०, श्रीअच्युतमुनिजी महाराज, व्याख्यानवाचस्पति श्रीदीनदयालुजी शर्मा, वाणीभूषण पं० श्रीनन्दकिशोरजी शुक्ल, श्रीहरि-भाऊजी उपाध्याय सम्पादक 'त्यागभूमि', श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०, श्रीनलिनी-कान्त गुप्त पाण्डीचेरी आदि।

कल्याणके सातवें वर्षकी फाइल

(इसमें दुबारा छपा हुआ प्रसिद्ध 'ईश्वरांक' भी शामिल है जो अलग नहीं मिलता)

२९५ लेख, १३५ कविताएँ और १४४ सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित, पृष्ठ १४१८, मूल्य डाकव्ययसहित ४॥), सजिल्द (दो जिल्दोंमें) ५।-)

कल्याणके आठवें वर्षकी फाइल

(प्रसिद्ध श्रीशिवाङ्कसहित)

३५१ लेख, ११० कविताएँ और ३०२ सुन्दर चित्रोंसे विभूषित, पृष्ठ १४६६, मूल्य डाकव्ययसहित ४॥), सजिल्द (दो जिल्दोंमें) ५।-), अकेला श्रीशिवाङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृष्ठ ६६६, चित्र २८७, मूल्य ३), स० ३॥)

व्यवस्थापक—**कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

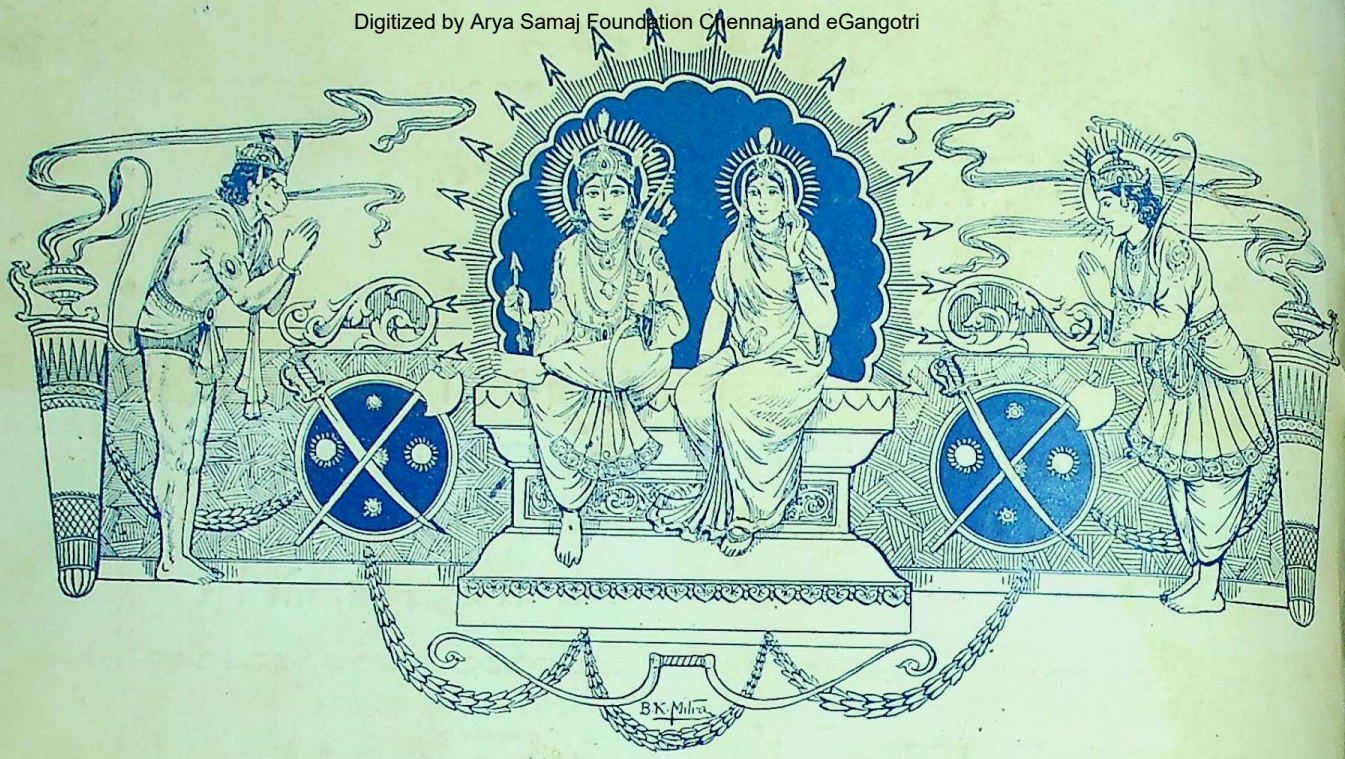

श्रीरामायणांक

अनेक प्रेमियोंके आग्रहसे 'रामायणांक' पुनः छप गया था। मूल्य वही २॥≋) ही रक्खा गया है। पृष्ठ पाँच सौसे ऊपर और सैकड़ों चित्र हैं। आपके संग्रहमें एक प्रति अवश्य रक्खें।

रामायणांकका गेटप, छपाई, सफाई, कागज और बाइण्डिग सब सुन्दर हैं।

रामायणांकमें श्रीरामजीकी लीलाओंके अनेक सुनहरी, बहुरंगे, सादे चित्र एवं अनेक पवित्र तीर्थ अयोध्या, प्रयाग, काशी, चित्रकूट, पञ्चवटी, रामेश्वर, जनकपुर, शृंगवेरपुर आदिके दर्शनीय चित्र हैं। रामायणकालीन भारतके कई भौगोलिक मानचित्र भी हैं।

रामायणांकमें अनेक महात्माओं, देशी-विदेशी विद्वानों और रामायणप्रेमियोंके लेख हैं।

रामायणांक—सुखमय जीवनका अमोघ साधन है।

आजतक कल्याणके सिवा इतने बड़े किसी भी सामयिक पत्रको दुबारा छपकर आपकी सेवा करनेका अवसर नहीं मिला। यदि आप इस बार इस अङ्कको न अपना सकेंगे तो समझ लीजिये कि एक उत्कृष्ट वस्तुसे वञ्चित रह जायँगे, क्योंकि इसके शीघ्र तीसरी बार छपनेकी आशा हम अभी आपको नहीं दिला सकते। अतः खरीदनेमें शीघ्रता करें।

कुछ सम्मतियाँ पढ़िये—

……सुन्दर, सस्ता और उपयोगी निकला है।……पढ़नेसे……अनेक ज्ञातव्य बातोंका पता चल जाता है। ……अङ्क संग्रहणीय है। भारत (इलाहाबाद)

लेख बड़े-बड़े विद्वानोंकी लेखनियोंसे लिखे गये हैं। कई लेख तो भारतसे भिन्न देशोंसे भी मँगवाये गये हैं। ……लेख प्रायः सब तथ्यपूर्ण एवं जानकारीसे भरे हुए हैं।……कई सहस्र रुपया व्यय करना पड़ा होगा फिर भी इसका मूल्य केवल २॥≋) रक्खा गया है……। अवश्य संग्रह करना चाहिये। आर्यमित्र (आगरा)

……विषयोंको व्यापकताकी दृष्टिसे तो रामायणपर यह अद्वितीय ग्रन्थ सिद्ध होगा। ……सच्ची लगनके बिना ऐसे गुरुतर कार्य सिद्ध नहीं होते। हमें विश्वास है कि पाठकगण इस……से पूरा लाभ उठायेंगे। प्रताप (कानपुर)

……'रामायणांक' हिन्दी-जगत्की एक स्थायी सम्पत्तिके रूपमें सदा आदर पाता रहेगा—……। अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ है, साथ ही 'कल्याण' नामको सार्थक करता है।……हमारी प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीसे अपील है कि वह इस विशेषांकको मँगवाकर अवश्य पढ़ें, इससे 'लोकलाहु परलोक निबाहू' दोनों साधनाएँ सफल होंगी। माधुरी (लखनऊ)

पता—**व्यवस्थापक, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* श्रीहरिः *

कल्याण मार्गशीर्ष सं० १९९१ की

विषय-सूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

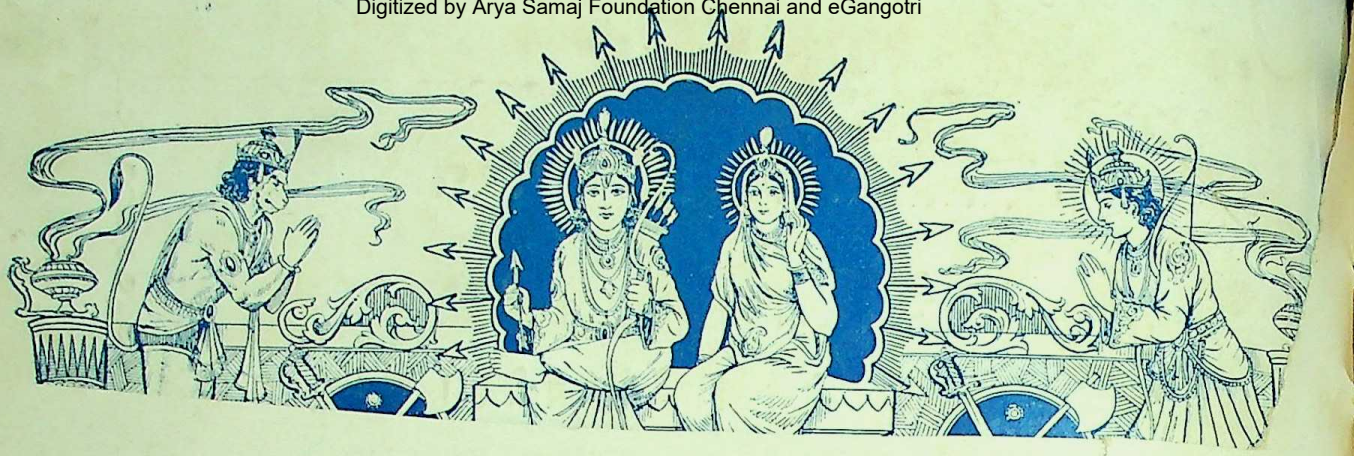

वार्षिक मूल्य
भारतमें ४≡)
विदेशमें ६॥=)
(१० शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ।)
विदेशमें ।≡)
(८ पैंस)

Edited by Hanumanprasad Poddar.
Printed and published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur. U.P. (India)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* श्रीहरिः *

कल्याण मार्गशीर्ष सं० १९९१ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–सेवककी कसौटी [कविता] (श्रीदादूजी महाराज) ८६५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ... ८६६
३–कल्याण ('शिव') ८६७
४–पुण्य और पाप (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८७०
५–चेतावनी [कविता] (श्रीविद्यावतीदेवीजी) ... ८७३
६–ब्रह्मविद्या और उसके साधन (स्वामी श्रीनित्यानन्दजी भारती) ८७४
७–रंगभूमिमें कलाधर कृष्ण [कविता] (श्रीविनायक राव भट्ट) ८८०
८–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ८८१
९–राम-भक्तकी शक्ति, अहल्या-उद्धार [कविता] (स्व० लाला श्रीभगवानदीनजी 'दीन') ... ८८७
१०–विवेक-वाटिका ८८८
११–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ... ८८९
१२–श्रीश्रीराधासहस्रनाम ८९९
१३–नाथ [कविता] (श्रीमधुरप्रसादजी कविरत्न) ९०४
१४–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न) ९०५

पृष्ठ-संख्या

१५–कल्याणकारी स्वप्न (एक सज्जन) ... ९११
१६–दिव्य पथ (श्रीब्रह्मदत्तजी शर्मा 'शिशु') ... ९१४
१७–श्रान्त पथिक [कविता] ('चातक') ... ९१७
१८–बद्ध और मुक्त (बहिन श्रीजयदेवीजी) ... ९१८
१९–आकांक्षा [कविता] (पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र) ९२१
२०–उपनिषद्-गाथा (छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर) ९२२
२१–तन्त्र (पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल) ... ९२५
२२–प्राचीन आचार ९२८
२३–भक्त-गाथा ९३१
२४–जायसीकी प्रेमानुभूति (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) ९३४
२५–शक्ति और ब्रह्मकी समानता अर्थात् जानकी-विजय (श्रीसूरजमलजी गट्टानी) ... ९३८
२६–श्रीकृष्ण-स्तुति [कविता] (लाल श्रीकण्ठनाथ-सिंहजी शर्मा 'ब्रजदेव') ९४२
२७–गीता-गुण-गान [कविता] (राय श्रीदेवीप्रसादजी 'पूर्ण') ९४३
२८–श्रीगीता-जयन्ती ९४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप गयी

गीता-डायरी सन् १९३५ की

छप गयी

मूल्य साधारण जिल्द ।), कपड़ेकी जिल्द ।-)

पिछले कई वर्षोंमें डायरीके दो-दो, तीन-तीन संस्करण निकालने पड़े और इसपर भी अन्तमें कई सज्जनोंको निराश होना पड़ा, यही इसकी उपयोगिताका सबसे बड़ा प्रमाण है। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला तिथियोंके साथ-साथ संक्षेपसे त्योहार भी छापे जाते हैं। गीता १८ अध्याय सम्पूर्ण तो रहती ही है। आरम्भके ३२ पेजोंमें अति उपयोगी विषय रहते हैं, जिनमें इस बार कुछ परिवर्तन किया गया है। अन्तमें याददाश्तके सादे पन्ने हैं। सबके लिये एक उपयोगी सुन्दर डायरी है। अनेक विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने इसकी जीसे प्रशंसा की है। केवल १५००० छापी गयी है, जिन्हें आवश्यकता हो, आर्डर देनेकी शीघ्रता करें।

कल्याणके ग्राहकोंको जो सुविधा दी जाती है उसका विवरण आश्विनके टाइटलके ३रे पेजमें देखिये।

श्रीमद्भगवद्गीता (मराठी-अनुवाद-सहित)

इसका कुछ परिचय यह है—

आकार डिमाई आठ पेजी, पृष्ठ ५७०, मोटा-चिकना कागज, भगवान्‌के ४ सुन्दर बहुरंगे चित्रोंमें एक नया चित्र बहुत ही सुन्दर है। हाथसे बुने हुए देशी कपड़ेकी सुन्दर जिल्द, मूल्य केवल १।) मात्र, डाकखर्च अलग, छपाई शुद्ध-सुन्दर, मूल श्लोक, पदच्छेद, अन्वय, सरल अर्थ और यत्र-तत्र टिप्पणियाँ, संक्षिप्त माहात्म्य, गीताकी महिमा, अध्यायोंके प्रधान विषयोंकी सूची, प्रत्येक श्लोकके विषयकी सूची, त्यागद्वारा भगवत्प्राप्ति नामक उपयोगी निबन्ध भी जोड़ दिया गया है। छपाईका ढंग बड़ा सुन्दर है। प्रत्येक मूल पदके सामने ही उसका मराठी अर्थ छपा है, इससे संस्कृतका अर्थ ठीक-ठीक समझमें आ सकता है। एक पुस्तक मँगानेवालोंको कमीशन काटकर मूल्य १-)॥, डाकखर्च ॥=), पैकिंग)॥ और मनीआर्डर फीस =) कुल १॥।=) होते हैं। कई सज्जनोंके साथ मिलकर अधिक पुस्तकें मँगवानेसे खर्च कम पड़ेगा।

किर्लोस्कर—मोठा टाईप व स्पष्ट छपाई यामुळें अगदीं नवख्या अभ्यासूला स्वतः च गीतेचा परिचय करून घेण्यास हें पुस्तक छान झालें आहे.····किमतीच्या मानानें पुस्तक फारच स्वस्त दिसतें.

नवाकाळ—····डेमी हें आकाराचें पुस्तक असूनहि किंमत सवा रुपया ही अगदीं माफक आहे. गीतेच्या अर्था कडे लक्ष मुखून पारायण करणारांना ही प्रत संग्राह्य वाटल्याशिवाय रहाणार नाहीं।

हमारा नया बड़ा सूचीपत्र छप गया है, जिन सज्जनोंको जरूरत हो वे लिखकर मँगवा लेनेकी कृपा करें।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

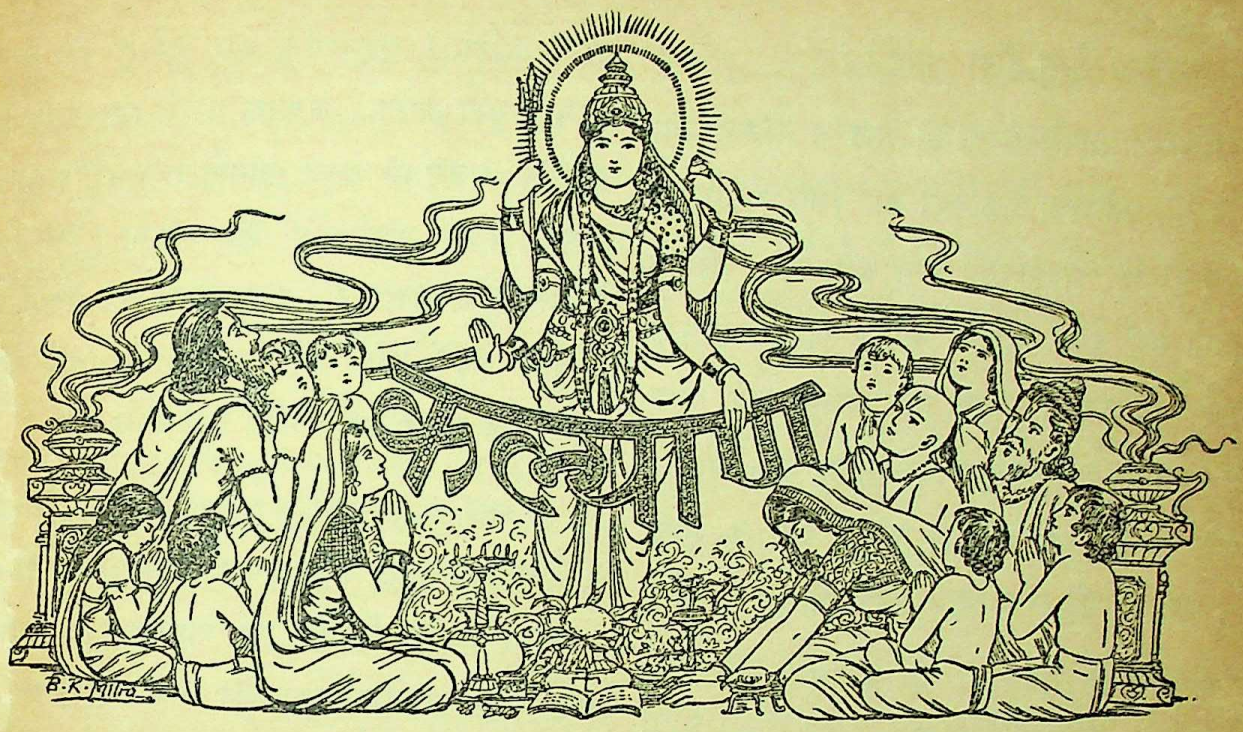

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानन्वरतमाराधनपरान्।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम्॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, मार्गशीर्ष १९९१, दिसम्बर १९३४ | संख्या ५ पूर्ण संख्या १०१

सेवककी कसौटी

तू साहब मैं सेवक तेरा। भावैं सिर दे सूली मेरा॥
भावैं करवत सिरपर सार। भावैं लेकर गरदन मार॥
भावैं चहुँ दिस आग लगाय। भावैं काल दसों दिस खाय॥
भावैं गिरवर गगन गिराय। भावैं दरिया माहिं डुबाय॥
भावैं कनक-कसौटी देय। 'दादू' सेवक कस-कस लेय॥

—दादूजी महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्रश्न—शिष्य कैसा होना चाहिये ?

उत्तर—जो पापसे डरता हो, झूठ न बोलता हो, हठी न हो, सात्त्विक प्रकृतिका हो, जिसे गुरुमें पूर्ण विश्वास हो और गुरुवाक्यमें परम श्रद्धा हो । शिष्यमें उद्दण्डता नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उद्दण्डको सद्गुरु स्वीकार नहीं करते । साधुके तीन लक्षण मुझे बहुत अच्छे लगते हैं—१—जीवनभर कामिनीका कभी स्वीकार न करे, २—कञ्चनका स्वीकार न करे और ३—रेलके लिये, खानेके लिये और वस्त्रके लिये भी कुछ न ले ।

भजनानन्दी गृहस्थको एकस्त्रीव्रती और शुद्ध आजीविका करनेवाला अवश्य होना चाहिये । उसको यह समझना चाहिये कि मुझे परमार्थके मार्गपर चलना है । अशुद्ध जीविकावाला परमार्थ-पथपर नहीं चल सकता ।

साधु यदि पैसा अपने पास रक्खेगा तो वह गृहस्थसे भी अधिक पतित होगा । अब तो मैं सब साधुओंसे मिलता हूँ, परन्तु पहले मुझे एक सन्तने कहा था कि पैसेवाले साधुओंका संग न करना ।

प्र०—गृहस्थ शिष्यको क्या करना चाहिये ?

उ०—गृहस्थमें रहते हुए पहले तो क्रोधका त्याग करना चाहिये । गृहस्थ हो या विरक्त, जहाँ क्रोध आया कि किया हुआ साधन नष्ट हुआ । सहनशक्ति होनी चाहिये । सहनशक्ति कम होनेसे ही भजनमें आनन्द नहीं आता । जबतक पापसे भय नहीं हुआ तबतक भजन भी प्रायः लोगदिखाऊ ही होता है । असली भजन उससे नहीं हो सकता । एक व्यक्ति वेदान्तका उपदेश तो बहुत देता था परन्तु जिस किसीसे रुपये लेता, उसे कभी वापस नहीं देता । ऐसे केवल कथन करनेवालोंसे कुछ लाभ नहीं ।

मैं चार बातें सबको बतलाता हूँ—१—सहनशक्ति, २—निरभिमानिता, ३—निरन्तर नामस्मरण और ४—'भगवान् अवश्य मिलेंगे' इस बातपर पूर्ण विश्वास । जहाँ इसमें सन्देह हुआ कि सब गया । इन चार बातोंमें जब तुम पास हो जाओगे तब समझ लो कि सब कुछ हो गया ।

जिस कार्यसे भगवच्चिन्तनमें कमी हो उसको कभी न करे । एक वक्त या दो वक्त भूखे रहनेसे यदि भजन बढ़ता हो तो वही करना चाहिये । जहाँतक हो खर्च कम करे, आवश्यकताओंको न बढ़ावे । विरक्तको तो माँगना ही नहीं चाहिये । साधु दाल-रोटी माँगकर खा ले या गृहस्थके घरमें जो मिले वही खाना चाहिये । साधुके लिये नयी चीज बनाना भी पाप है । साधु यदि कह दे कि मैं खीर खाऊँगा तो साधु और उसको खीर खिलानेवाला गृहस्थ दोनों गिरे ! इन बातोंपर विचार करो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

इस बातका मनमें निश्चय करो कि शरीरके नाशसे तुम्हारी मृत्यु नहीं होती, तुम शरीर नहीं हो, इस शरीरके पहले भी तुम थे और पीछे भी रहोगे। तुम आत्मा हो, तुम्हारा स्वरूप नित्य है। जो वस्तु नित्य होती है वही सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन होती है। इस नित्य सनातन, सर्वव्यापीस्वरूपमें न जन्म है, न मरण है; न विषमता है, न विषाद है; न राग है, न रोग है; न दोष है, न द्वेष है; न विकार है, न विनाश है। यह सत् है, चेतन है और आनन्दमय है।

× × ×

यही आनन्दमय सत्-चेतन-स्वरूप आत्मा सर्वगत है; संसारमें जितने जीव हैं सबमें यही निर्दोष और सम आत्मा स्थित है। इसलिये जिसकी दृष्टि इस आत्माकी ओर होगी, वह न किसीसे घृणा करेगा, न द्वेष; वह सबमें समान भावसे अपने आत्मस्वरूपको देखकर सबके प्रति आत्मवत् व्यवहार करेगा।

× × ×

आत्मवत् व्यवहारमें—अपने ही शरीरके दायें-बायें और ऊपर-नीचेके अंगोंके साथ और उनके द्वारा होनेवाले व्यवहारकी भाँति—क्रियामें भेद रहेगा। क्योंकि बाह्य व्यवहार सारे-के-सारे—प्रकृतिमें हैं, प्रकृतिमें भेद है ही। इस प्रकृति-भेदके कारण ही समस्त संसारमें विषमता नजर आ रही है। न सबका वर्ण एक-सा है, न बुद्धि एक-सी है, न ढाँचा एक-सा है, न शरीरकी ताकत एक-सी है, न चेहरा एक-सा है; कुछ-न-कुछ भेद अवश्य है। इस भेदमय संसारमें अभेद देखना ही तो आत्मबुद्धि है—शुद्ध ज्ञान है। ये सारे भेद विनाशी हैं, और वह अभेद अविनाशी है। अतएव जितने जीव सब अलग-अलग भिन्न-भिन्न रूपोंमें दीख पड़ते हैं, उन सबमें एक विभागरहित नित्य अविनाशी आत्माको देखो। और ऐसा देखते हुए ही यथायोग्य बर्ताव करो। तुम्हारे सब बर्ताव अन्तरसे सर्वथा निर्दोष हो जायँगे।

× × ×

एक ही विशाल वृक्षके बहुत-सी डालियाँ हैं, लाखों पत्ते हैं और हजारों फूल तथा फल लगे हैं। डालियों और पत्तोंकी अलग-अलग आवश्यकता भी है और सार्थकता भी; क्योंकि फूल तथा फल इन्हींसे मिलते हैं। निरे ठूँठसे फल-फूल नहीं मिलते। परन्तु कोई भी बुद्धिमान् पुरुष डालियों और पत्तोंके लिये ठूँठकी जड़को नहीं काटता, जड़ ही कट गयी तो डाली-पत्ते और फूल-फल फलेंगे ही किसके आधारपर? इसी प्रकार केवल जड़की रक्षा करके डाली-पत्तोंको काटनेसे भी काम नहीं चलेगा; इसी प्रकार मूलवृक्ष आत्मा, और उसके डाली-पत्तेस्वरूप विभिन्न बाह्य अंग हैं। अतएव न तो बाहरके व्यवहारमें विभिन्नता देखकर इस विभिन्नताको नाश करनेकी व्यर्थ चेष्टा करो। विभिन्नतामें ही फल है और इसीमें सौन्दर्य है। प्रकृतिका महान् सौन्दर्य हम वृक्षके चित्र-विचित्र शाखा-पत्र और रंग-बिरंगे मनमोहक पुष्प तथा रसीले स्वादु फलोंमें ही देख पाते हैं। इस रंग-बिरंगी रसीली व्यावहारिक सृष्टिको मिटाकर, विविध विचित्रताओं और नाना रंगोंसे रहित सदा एकरस और एकरङ्ग आत्माकी उपलब्धि सहज नहीं है। इस विचित्रता और अनेकतामें ही उस नित्य एकरसत्व और एकत्वका अनुभव करो—व्यावहारिक अनित्य भेदमें ही पारमार्थिक नित्य अभेदके दर्शन करो।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वगत एकरस निर्दोष अभेदमय आत्माको देखते हुए ही भेदमय व्यवहार करो। व्यवहारका भेद तुम्हारे मिटाये मिट नहीं सकता और आत्मामें तुम अभेद उत्पन्न कर नहीं सकते। अतएव व्यवहारमें आवश्यक भेद रक्खो—परन्तु आत्मदृष्टि रखते हुए ही; कहीं आत्माको भूलकर शरीर और शरीर-सम्बन्धी भेदोंको ही अपना असली स्वरूप मान लोगे तो राग-द्वेष और अपने-परायेके अज्ञान और पापमय झगड़ेमें पड़कर पतित हो जाओगे। तुम भारतवासी हो, हिन्दू हो, सनातनी हो, युक्तप्रान्तके हो, ब्राह्मण हो, गृहस्थ हो, पण्डित हो, परन्तु इन सबके पहले 'आत्मा' हो—इन सभी परवर्ती स्वरूपों-की पूरी रक्षा करो—सब मर्यादाओंका पालन करो, परन्तु वैसे ही, जैसे नाटकका पात्र नाट्य-मञ्च (स्टेज) पर अपने स्वाँगके अनुसार ही खेल खेलता है परन्तु अपने निज-स्वरूपको कभी नहीं भूलता। ये सब केवल तुम्हारे इसी शरीरके स्वाँग हैं, आत्मा तुम्हारा यथार्थ नित्य निजरूप है। तुम मरनेपर यूरोपमें जन्म ले सकते हो, अहिन्दू हो सकते हो परन्तु आत्मासे अनात्मा नहीं हो सकते। अवश्य ही नाटकके उसी पात्रकी उन्नति होती है, और वही खेलमें ऊँचे स्वाँगको पाता है, जो अपने स्वाँगके खेलको उसीके अनुसार ठीक-ठिकानेसे निबाहता है; दूसरेकी क्रिया भूलकर भी नहीं करना चाहता। यही वर्णाश्रमका रहस्य है। प्रत्येक उन्नतिकामी व्यक्तिको वर्णाश्रमकी इस मर्यादाका अवश्य पालन करना चाहिये। परन्तु इसीको असली रूप मानकर दूसरे स्वाँगोंसे—दूसरे देश, जाति, धर्म, प्रान्त, वर्ण, आश्रम और आजीविकाके कार्योंसे कभी न घृणा करो, न उन्हें अपनेसे नीचा समझो। अपने-अपने स्वरूपमें सभीकी आवश्यकता और सार्थकता है और सभी बड़े हैं। जैसे नीचा समझकर दूसरे किसीसे भी घृणा न करो, वैसे ही ऊँचा समझकर दूसरे किसीकी नकल या चाह भी न करो। एक ही नित्य अविनाशी सत् चेतन आनन्दमय आत्मामें यह प्रकृतिके विविध खेल हो रहे हैं! यही समझकर और इसीकी ओर दृष्टि रखकर नित्य आत्माका ध्यान करते हुए ही शरीरसे यथायोग्य व्यवहार करो।

× × ×

यह आत्मा परमात्माका ही सनातन अभिन्न अंश है, परमात्माका ही स्वरूप है। परन्तु जबतक इसकी स्थिति प्रकृतिमें है, तबतक यह जीवात्मा कहलाता है और तबतक इसे प्रकृतिजन्य गुणोंको भोगना तथा गुणोंके संगसे अच्छी-बुरी योनियोंमें जाना पड़ता है। असंग, अक्रिय, नित्य, आनन्दमय होनेपर भी इसे प्रकृतिस्थित होनेसे सुख-दुःखका भोग करना पड़ता है। इस प्रकृतिमेंसे 'अहं' को निकालकर उसे सत् और आनन्दमय सर्वगत अविनाशी एक आत्मामें स्थापित करो, और प्रकृतिजन्य गुणोंके फन्देसे छूटकर सुख-दुःखसे अतीत अनामय आनन्दमय ब्राह्मीस्थितिको प्राप्त हो जाओ।

× × ×

यह स्मरण रक्खो कि देहमें स्थित होनेसे जो सुख-दुःखभोगी जीवात्मा कहलाता है वही साक्षी-रूपसे द्रष्टा, अन्दरसे सच्ची आवाज देनेवाला होनेसे अनुमन्ता, धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता, नियामकरूपमें ईश्वर और निर्गुणरूपमें परमात्मा है। यह सभी स्वरूप एक ही कालमें एक ही भगवान्‌में हैं, सिर्फ कार्यभिन्नतासे स्वरूपभिन्नता है। यही उनकी अनिर्वचनीय लीला है।

× × ×

इसी समग्र परमात्माके मुख्यतः दो नित्य स्वरूप हैं—एक अव्यक्त, दूसरा व्यक्त। अव्यक्तमें दो भेद हैं एक अव्यक्त निर्गुण और दूसरा अव्यक्त सगुण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्यक्त निर्गुण उस स्थितिका नाम है, जिसमें शक्ति-की लीला बन्द है, शक्ति शक्तिमान्‌में विलीन है। इसीको विज्ञानानन्दघन ब्रह्म कहते हैं। अव्यक्त सगुण ही—सृष्टिकर्ता, सर्वव्यापी, सबका नियामक, विभु है, आत्मा, जीवात्मा, द्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, इसीके स्थिति-भेद हैं। शक्तिकी क्रिया होनेकी स्थितिमें ही—वह सगुण कहलाता है। वही परमात्मा नित्य दिव्य विग्रहरूपमें व्यक्त है—इसीके श्रीराम-कृष्णादि अवताररूप, विष्णु, शिव, देवी, ब्रह्मा, सूर्य आदि दिव्य स्वरूप हैं। इन सब स्वरूपोंको कदापि स्वरूपतः और तत्त्वतः अलग-अलग मत मानो। एकके ही अनेक अव्यक्त और व्यक्त लीला-वपु हैं। अपने इष्टरूपके अनन्य भक्त रहो। शेष सब रूपोंको या तो उसीमें विलीन करके सर्वत्र सर्वदा सर्वथा एक उसीको देखो सुनो। विलीन न कर सको तो सब रूपोंको अपने उस एक ही लीलामय इष्टदेवके विभिन्न स्वरूप समझो! यह निश्चय रक्खो—सर्वमय, सर्व-शक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वव्यापी, सर्वरूप भगवान्‌के किसी भी व्यक्त साकार रूपकी एकमात्र महेश्वरबुद्धिसे परम श्रद्धायुक्त होकर अनन्य उपासना करनेवाला भक्त, और नित्य निर्गुण विज्ञानानन्दघन परमात्माकी अभेदोपासना करनेवाला ज्ञानी दोनों अन्तमें एक ही भगवत्तत्त्वको प्राप्त होंगे। क्योंकि परमात्मा एक ही है। अवश्य ही लीलामय साकार रूपका अनन्य उपासक श्रेष्ठ योगवेत्ता पुरुष प्रेमके अलभ्य रसको विशेषरूपसे उपलब्ध करेगा।

× × ×

भगवान्‌के नित्यविग्रह श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि स्वरूपोंको कभी जन्मने और मरनेवाला समझकर इनकी अवहेलना न करो। इनका प्रादुर्भाव और तिरोभाव अथवा प्राकट्य और अन्तर्धान होता है, न कि जन्म-मरण। जो लोग इनके अज, अविनाशी, महेश्वररूप परम पुरुषोत्तम भावको न जानकर इन्हें जन्मने-मरनेवाले मनुष्य समझते हैं, उनकी बातोंपर विश्वास कभी न करो। और परम श्रद्धाके साथ इन दिव्य स्वरूपोंका अपनी-अपनी रुचिके अनुसार ध्यान-भजन करते रहो। यह भगवान्‌की योगमायाका बड़ा प्रभाव है। योगमायाका पर्दा डालकर प्रकट होनेके कारण ही तो हम मूढ़ लोग अज और अविनाशी भगवान्‌को न पहचानकर श्रीराम-कृष्णरूपको मायाबद्ध मानवरूप कहते हैं। याद रक्खो—भगवान्‌की इस दुरत्यय योगमायासे वही पुरुष बचकर पार जा सकता है जो इस योगमायाके अधिपति भगवान्‌के शरण हो जाय। अतएव भगवान्‌के अव्यक्त और व्यक्त निर्गुण सगुण रूपोंमें भेदभाव न कर, विवादको छोड़कर, तर्कको तिलाञ्जलि देकर केवल प्रेमपूर्वक भजन ही करो।

× × ×

चाहे अव्यक्तको भजो या व्यक्तको, प्राणिमात्रके साथ सद्व्यवहारकी दोनोंमें ही जरूरत है। अव्यक्तमें सब ब्रह्ममय है, और व्यक्तमें श्रीकृष्णमय या श्रीराममय! बात एक ही है। चाहे सबको ब्रह्म समझकर अपनेको भी उनसे अभिन्न मानकर अनिवार्य व्यावहारिक भेदको रखते हुए ही अभेद व्यवहार करो। चाहे सबको श्रीरामस्वरूप मानकर श्रीरामके दिये हुए अपने स्वाँगके अनुसार सबकी यथायोग्य सेवा करो। याद रक्खो—सेवा स्वकर्मसे ही अच्छी प्रकार हो सकेगी! यह आदर्श साधकोंके लिये है। सिद्धोंकी बात तो सिद्ध ही जानते हैं।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाप और पुण्य

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्र०—(क) पाप और पुण्य क्या है ?

(ख) जो मनुष्य ईश्वर और किसी धर्मशास्त्रपर विश्वास नहीं करता, वह शास्त्रीय विधि-निषेधको तो पुण्य-पाप मानता नहीं, फिर उसके लिये पाप-पुण्यकी व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है ?

उ०—(क) यद्यपि पाप-पुण्यका विषय बहुत गम्भीर है तथा इसका दायरा बहुत विस्तृत है तथापि संक्षेपमें साररूपसे यही कहा जा सकता है कि 'मानव-कर्त्तव्य ही पुण्य या सुकृत है, और अकर्त्तव्य ही पाप या दुष्कृत है।'

(ख) पुण्य-पाप अथवा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यके निर्णय-में शास्त्र (धर्मग्रन्थ) ही प्रमाण हैं इसीलिये श्रीभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है कि—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १६। २४)

'अतएव तेरे लिये इस कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तुझे शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्म ही करने चाहिये।' परन्तु जिस मनुष्यका ईश्वर और शास्त्रमें विश्वास नहीं है, शास्त्रकी व्यवस्था न माननेपर भी, उसके लिये भी मानव-कर्त्तव्य ही पुण्य है और अकर्त्तव्य ही पाप है। अब यह प्रश्न आता है कि शास्त्रको न माननेवाला मनुष्य कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका निर्णय किस प्रकार करे ? इसका उत्तर यह है कि उसे प्राचीन और वर्त्तमान महापुरुषोंके किये हुए निर्णय और आचरणको प्रमाण मानकर अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय करना चाहिये। इसपर यदि कहा जाय कि किसीकी दृष्टिमें कोई महापुरुष हैं और किसीकी दृष्टिमें कोई, और उन महापुरुषोंमें मतभेद है, ऐसी स्थितिमें वह क्या करे ? इसका उत्तर यह है कि जिसकी दृष्टिमें जो महापुरुष हैं, उसको उन्हींका आचरण और निर्णय मानना चाहिये। इसपर यदि यह कहा जाय कि तब तो माननेवालेकी बुद्धि ही प्रधान रही, सो ठीक ही है; जो धर्मशास्त्र और ईश्वरको नहीं मानते, उन्हें तो अपनी ही बुद्धिपर निर्भर करना पड़ेगा। अपनी बुद्धिके निर्णयमें भूल हो सकती है इसीलिये महापुरुषोंने शास्त्रप्रमाण माननेके लिये कहा है। शास्त्रको प्रमाण न माननेवालोंको किसी महापुरुषके वचन प्रमाणरूप मानने पड़ेंगे, और यदि किसी महापुरुषपर भी विश्वास न हो तो उन्हें अपनी बुद्धि-का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। अतएव ऐसे पुरुषोंके लिये अपनी बुद्धिसे किये हुए निश्चयके अनुसार ही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यकी व्यवस्था होती है।

अब यह बात बुद्धिसे सोचनी चाहिये कि मनुष्य-के लिये वस्तुतः कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य क्या हो सकता है। इस प्रकारसे सोचनेकी बुद्धि मनुष्यमें ही है, पशु-पक्षी आदि अन्यान्य जीवोंमें नहीं। इसलिये यह बात मनुष्यपर ही लागू पड़ती है। जो मनुष्यका शरीर प्राप्त करके कर्तव्याकर्तव्यका विचार किये बिना ही कार्य करता है, वह मनुष्यत्वसे गिर जाता है, वास्तव-में ऐसा मनुष्य मानव-शरीरमें भी पशुके ही तुल्य है।

संसारमें दो वस्तुएँ प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं—(१) चेतन, (२) जड़। जो द्रष्टा है वह चेतन है, और जो दृश्य है वह जड है। द्रष्टा भोक्ता है, दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग है। द्रष्टाके ही लिये दृश्य है। त्याग-बुद्धिसे ज्ञानपूर्वक दृश्यका उपभोग करनेमें मुक्ति है अर्थात् इस चेतनका दुःख और पापोंसे मुक्त होकर परम आनन्द और परमा शान्तिमें निवास है। बिना समझके उपभोगसे बन्धन, पतन, दुःख और अशान्ति है।

अतएव जो कर्म अपने या किसी भी अन्य चेतन जीवके लिये इस लोक और परलोकमें वस्तुतः लाभ-जनक है वही कर्तव्य है, और जिससे अपना या अन्य किसी जीवका इहलोक और परलोकमें अहित होता है वही अकर्तव्य है, इसी कर्तव्य-अकर्तव्यको शुभ-अशुभ कर्म, कार्य-अकार्य, विधि-निषेध या पाप-पुण्य कहा जा सकता है।

इसी प्रकार इस लोक और परलोकमें प्राप्त होने-वाले सुखके साधनरूप जो जड पदार्थ हैं, उनकी वृद्धिका यत्न करना पुण्य है और क्षयका प्रयत्न पाप है। यही पुण्य-पापका संक्षिप्त विवेचन है।

प्र०—मांसाहारको कुछ लोग पुण्य बताते हैं और कुछ लोग पाप; वास्तवमें यह क्या है? यदि पाप है तो जिस मनुष्यका जन्म मांसाहारी कुल और वातावरणमें हुआ है और लड़कपनसे ही मांस खाना जिसका स्वभाव है वह मांसाहारको पाप कैसे मान सकता है?

उ०—मांसाहारमें सबसे बढ़कर दोष यह है कि किसी-की हिंसा किये बिना मांस मिल नहीं सकता और किसी भी जीवको किसी प्रकारसे किञ्चित् मात्र भी कष्ट पहुँचाना पाप है। उसे समूल नष्ट कर देना तो महापाप है। ऐसी परिस्थितिमें मांसाहार पुण्य तो किसी प्रकार माना ही नहीं जा सकता, किन्तु वह पाप नहीं है सो बात भी नहीं, निश्चय पाप ही है। जो लोग मांसाहारको पुण्य समझते हैं अथवा जो पाप नहीं समझते, वे भी गम्भीरताके साथ विचार करें तो सम्भव है कि उनकी बुद्धिमें भी मांसाहार पाप दीखने लगे। क्योंकि जिनका मांस खाया जाता है, उन जीवोंको प्रत्यक्षमें ही महान् कष्ट होता है और उनका नाश हो जाता है। किसी प्रकारसे किसीको दुःख पहुँचाना ही पाप है। अपने शरीरका उदाहरण सामने रखकर इसपर विचार करना चाहिये। विवेकशील मनुष्यका कभी यह कर्तव्य नहीं हो सकता कि वह जिस कार्यको अपने लिये महान् दुःख समझता है, उसीको दूसरोंके प्रति करे। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है कि चोट लगनेपर या मारनेपर जैसी पीड़ा हम लोगोंको होती है वैसी ही पशु-पक्षियोंको होती है। मारनेके समय उनके रुदन, विलाप और छूटनेकी चेष्टा और निराशासे यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। फिर अपने शरीरपोषणके लिये या स्वादके लिये तो दूसरे जीवोंका जानसे मार डालना किसी प्रकार भी मनुष्यत्व नहीं कहला सकता!

पशु-पक्षी आदिको मारकर उनका मांसाहार करनेमें उनका या अपना किसी प्रकार हित भी नहीं है, वे तो प्रत्यक्ष पीड़ित होते और मरते ही हैं परन्तु मांसाहारीका भी बड़ा नुकसान होता है। मांसाहारसे मनुष्यका स्वभाव क्रूर और तामसी हो जाता है, दया उसके हृदयसे चली जाती है। वह जिनका मांस खाता है, उन जीवोंके रोग और दुष्ट-स्वभावके परमाणु अन्दर जानेसे नाना प्रकारकी शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ हो जाती हैं; पाप तो होता ही है। मनुष्यके मुखकी आकृति और उसके दाँतों तथा दाढ़ोंको देखनेसे इस बातका भी प्रत्यक्ष पता लगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मांस मनुष्यका आहार भी नहीं है। जो जिसका आहार नहीं है वह उसके लिये अखाद्य है और स्वास्थ्य-नाशक है। दुर्गन्धके कारण भी मांस अखाद्य है। फिर यह ऐसा आवश्यक भी नहीं है कि इसके बिना जीवन न चले। इसके अतिरिक्त अधिकार भी नहीं है, जो मनुष्य जिस वस्तुको पैदा नहीं कर सकता, उसको नाश करनेका उसे क्या अधिकार है ? किसी भी जीवको सहायता देने, बढ़ाने और उसके जीवन धारणमें मददगार होनेका ही अधिकार है, मारनेका कदापि नहीं। यह भी विचार करना चाहिये कि मांसाहारीको तो मांसाहारसे क्षणिक सुख मिलता है और थोड़े-से कालके लिये उसका निर्वाह होता है, परन्तु उस प्राणीका तो सदाके लिये नाश हो जाता है। इन सब बातोंपर विचार करनेसे कोई भी समझदार मनुष्य मांसाहारको न तो पुण्य बतला सकता है और न यही कह सकता है कि यह पाप नहीं है। यह तो एक प्रकारकी जबर्दस्ती है। पशुपक्षियोंमें हम देखते हैं कि बलवान् पशुपक्षी निर्बल जीवोंको मारते हैं। मनुष्य बुद्धिमान् होनेके कारण सबसे बलवान् है, अतः वह यदि अपने छल, बल और कौशलसे निरीह, निर्बल, मूक पशुओंको मारता है तो यह उसका मानवदेहमें ही पशुपन है। पशुमें तो कर्तव्याकर्तव्यकी बुद्धि नहीं है, इसलिये हम कह सकते हैं कि उसके लिये वह पाप नहीं होता परन्तु मनुष्यको तो यह बुद्धि प्राप्त है अतएव वह यदि दूसरे जीवोंको मारकर या उन्हें मरवाकर मांसाहार करता है, तो वह पशुसे भी गया-गुजरा है। पशुपक्षी ही नहीं, गम्भीर विचार करनेपर तो जान पड़ेगा कि सजीव हरे वृक्ष और व्रीहि आदिके छेदनमें भी किसी अंशमें हिंसा है। परन्तु संसारमें कोई भी आरम्भ निर्दोष नहीं होता, और मनुष्यको अपने जीवननिर्वाहके लिये इनका उपयोग करना पड़ता है और उसकी आकृतिसे भी पता लगता है कि यह फल, व्रीहि इत्यादि ही उसका खाद्य है; तथापि जहाँतक हो सके इनका उपयोग भी आवश्यकतानुसार कम-से-कम ही करना चाहिये। अनावश्यक फलमूलवृक्षादिका छेदन कदापि नहीं करना चाहिये। फिर वृक्षोंका तो उनकी उन्नति या वृद्धिके लिये भी छेदन किया जा सकता है। कलम करनेसे पेड़ बढ़ते हैं, फलोंसे बीज होते हैं और उन बीजोंसे पुनः वृक्षोंकी वृद्धि होती है। परन्तु मांसाहारमें तो केवल क्षय-ही-क्षय है अतएव मांसाहार सर्वथा पाप और त्याज्य है।

संसारमें जितने जड पदार्थ हैं वे सभी किसी-न-किसी रूपमें चेतनोंके लिये ही हैं, परन्तु उनको भी व्यर्थ नुकसान पहुँचाना पाप है, फिर चेतन प्राणियोंका शरीरवियोग करना पाप है इसमें तो कहना ही क्या है ?

जिस मनुष्यका जन्म और पालनपोषण मांसाहारी कुल और वातावरणमें हुआ है, और लड़कपनसे जिसका वैसा स्वभाव है, उसके लिये भी मांसाहार सर्वथा त्याज्य है। मनुष्यको विवेककी बड़ी सम्पत्ति प्राप्त है, जब उसको यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ आ जाय कि दूसरोंके द्वारा पीड़ा पहुँचाने-पर या मारनेपर मुझे दुःख होता है, तभीसे उसको यह सोचना चाहिये कि जैसा दुःख मुझको होता है, ऐसा ही दूसरे प्राणियोंको भी होता है। और दूसरे प्राणियोंके मरने-मारनेके समय होनेवाले कष्टको मांसाहारी देखता-सुनता भी है। ऐसी हालतमें विवेकशील मनुष्य होनेके कारण उसके लिये भी मांसाहार करना पाप ही है, और उसे मांसाहारको पाप समझकर तुरन्त ही त्याग देना चाहिये।

चेतावनी

(लेखिका—श्रीविद्यावतीदेवीजी)

(१)

लखि पायो नहीं परमारथ स्वारथ अंत समै पछितायगा रे।
जिस भोगका गाहक है रहा तू, सोई दाहक है घरि खायगा रे।
सुनि ले कहौं तोसों भजे बिन राम, अराम कहूँ नहिं पायगा रे।
धन-मालको ढोइकै रासभ-सो, खुद घूरकी घास ही खायगा रे॥

(२)

जेहिके सिर मोर किरीट लसै, वनमाल हिये पर सोहती है।
अधरानसों मंजु लगी मुरली, बजिकै सचराचर मोहती है।
जेहिकी दृग-दृष्टि दयासे भरी, दुख दीननहीके टटोहती है।
अभिलाष हमारी उसी हरिसे, मिलबे हित मारग जोहती है॥

(३)

जबलौं सुचितासों अरे मन! संत-समाजका संग करैगा नहीं।
जबलौं इन काननमें कमनीय कथा हरिकी तू भरैगा नहीं।
जबलौं उरसों मद कामऽरु क्रोधको कूर तू दूर धरैगा नहीं।
तबलौं चहै यत्न करोरि करै, भव-सिंधुसे पार परैगा नहीं॥

(४)

जिनकी रुचि राममें है न, तिन्है तजु चाहे सुधा ही रहैं परसे।
नहिं अंतमें आइहैं काम जबै, गहिहैं यमदूत कड़े करसे।
करिहैं न सहाय परे रहिहैं, भव-भोग सबै सरिता सरसे।
बुझिहै न पियास पपीहा तेरी, बिन स्वाँतिका बारिदके बरसे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मविद्या और उसके साधन

(लेखक—स्वामी श्रीनित्यानन्दजी भारती)

अनादि कालसे ऋषि, मुनि तथा महात्माजन वेद-मन्त्रों, उपनिषद्-वाक्यों और अपने सारगर्भित व्याख्यानों-द्वारा मनुष्यमात्रको सचेत करते रहे हैं और यह समझाते चले आ रहे हैं कि—मनुष्य-जन्म बारबार नहीं मिलता, इस जन्मको पाकर ऐसा पुरुषार्थ करो कि फिर जन्म-मरणका दुःख न भोगना पड़े, याद रक्खो परमेश्वरकी प्राप्ति ही मनुष्य-जन्मका मुख्य उद्देश्य है। इन सब विचारोंकी बार-बार आवृत्तिके अनन्तर परमात्माको जिस ज्ञानके द्वारा एक अविभक्त अविनाशी रूपमें जाना जाता है उस ज्ञानका नाम ही ब्रह्मविद्या है। क्योंकि यह विचार ही मनुष्यको ब्रह्मतक पहुँचनेके लिये उत्तेजित करते हैं और इनके सहारे ही मुमुक्षु लोग ब्रह्मको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं, संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि जिस विद्याके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त किया जाय वही विद्या ब्रह्मविद्या है।

इस ब्रह्मविद्याके सम्बन्धमें कई प्रकारके प्रवाद प्रचलित हैं। यद्यपि हमारा उद्देश्य इस लेखद्वारा उन प्रवादोंपर दृष्टि डालना नहीं है तथापि प्रसंगवशात् उपेक्षा न करते हुए हम यह वर्णन करेंगे कि ब्रह्मविद्यासे किस वस्तुकी प्राप्ति होती है, ब्रह्मविद्याका उपदेष्टा किस प्रकारका होना चाहिये और ब्रह्मविद्याका अधिकारी कौन हो सकता है?

सबसे पहले हमें यह विचार करना है कि ब्रह्मविद्याकी उपयोगिता क्या है। क्योंकि यदि हम यह जान लें कि ब्रह्म-विद्याकी आवश्यकता क्या है तो यह अनायास ही जान सकेंगे कि ब्रह्मविद्याका फल क्या है। आइये, सबसे पहले हम वेदभगवान्‌से परामर्श करें। ऋग्वेदसंहितामें कहा गया है कि—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥
(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १६४, मन्त्र ३९)

'जिस परम ब्रह्ममें अग्नि, सूर्यादि देवता आश्रय पाये हुए हैं उसी अविनाशी परम तत्त्वमें ऋचाएँ (वेद-मन्त्र और स्तुति-वाक्य) स्थित हो रही हैं। जो उस परम तत्त्व (अक्षर-ब्रह्म) को नहीं जानता वह मन्त्रों और स्तुति-वचनोंसे क्या ले लेगा? (अर्थात् कुछ नहीं,) हाँ, जो लोग उस अविनाशीका साक्षात्कार कर लेते हैं वही मोक्ष प्राप्त करते हैं।'

मन्त्रका 'समासते' शब्द बड़ा ही भावपूर्ण है। सम् और आङ् पूर्वक आस् धातुका प्रयोग मोक्षकी अवस्थाका कितना स्वाभाविक वर्णन कर रहा है इसका आनन्द वे ही विद्वान् अनुभव कर सकते हैं जिनको व्याकरणके साथ निर्वचन विद्याका भी ज्ञान है। अपनी भाषामें कहना चाहें तो इस प्रकार कहना होगा कि निश्चिन्त होकर बैठ गये हैं। जन्ममरणके चक्रपर चढ़कर चक्कर खानेवाला जितना दुःख अनुभव करता है उस दुःखसे छूटकर निश्चिन्त होकर—निर्भय होकर उससे कई गुणा बढ़कर सुख प्राप्त करता है। इसी भावको लेकर मोक्षकी चिन्तारहित ब्राह्मीस्थिति 'समासते' पदसे वर्णन की गयी है।

मन्त्रमें स्पष्ट कह दिया गया है कि जो अक्षर (ब्रह्म) का साक्षात्कार नहीं करता वह जन्ममरणके चक्रसे कदापि नहीं छूट सकता। मन्त्रों और स्तोत्रोंसे वास्तविक लाभ उसी व्यक्तिको प्राप्त होता है जो मन्त्रों और देवताओंके मूलाधार परम ब्रह्मका साक्षात्कार करता है। मन्त्रोंसे लौकिक सिद्धियाँ या अभ्युदय भी प्राप्त होते हैं परन्तु वेद-मन्त्रोंका मुख्य फल यह नहीं है, मुख्य फल तो आत्म-साक्षात्कार है। आत्मदर्शन या ब्रह्मसाक्षात्कारको छोड़कर जन्ममरणसे निश्चिन्त न करनेवाले तुच्छ फलोंको पानेके लिये वेदमन्त्रोंका पठन-पाठन करना ऐसा ही है जैसा दुग्धामृत त्याग करके गोबरके लिये कामधेनुकी सेवा करना!

प्राचीन कालसे एक ऐसा वैज्ञानिक सम्प्रदाय चला आ रहा है जो वेदमन्त्रोंका आध्यात्मिक व्याख्यान करनेमें प्रबल युक्तियोंका आश्रयण करता है। इसीलिये मन्त्रोंका वास्तविक अर्थ आत्मापरक माना जाता है। महर्षि यास्कने अपने निरुक्तमें इस विषयपर बड़ा मनोरञ्जक और प्रभाव-शाली लेख लिखा है। जो लोग निरुक्ततक नहीं पहुँच सकते वह यजुर्वेदके कठोपनिषद्की उस प्रतीकपर ध्यान दें जिसमें स्पष्ट कहा है कि सारे वेद जिस पदका बारबार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यान करते और अनेक प्रकारसे समझानेका प्रयत्न करते हैं वह—ब्रह्म है, आत्मा है, ओंकार है, ॐ है। यथा—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति···
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥
(कठ० १।२।१५)

उपर्युक्त मन्त्रका तात्पर्य ऋग्वेदमें दूसरे स्थानपर भी स्पष्ट है। यथा—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥
(१०।१२५।४)

'जो प्राण धारण करता है तथा जो विचारता, देखता है और जो सुनता भी है वह मेरा (ही दिया हुआ) अन्न खाता है। जो मुझको नहीं मानते, वह नाशको प्राप्त होते हैं। सुननेवाले! (कान खोलकर) सुन ले, तेरे बड़े कल्याणकी बात कह रहा हूँ—इसपर पूरा-पूरा विश्वास रख।'

परमात्मदेव हमारे कल्याणकी बात कहते हैं। विशेषकर उन लोगोंसे कहते हैं जो सुनने-सुनानेवाले हैं, जिनके कानोंमें सुनने और सुनकर समझनेकी शक्ति है। जो लोग परमात्माके नियमोंमें नियन्त्रित हुए सुख-दुःख भोगते हैं, ज्ञानेन्द्रियोंसे ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा कर्मेन्द्रियोंसे कार्य सिद्ध करते हैं—वे लोग परमात्माके राज्यमें रहते हुए, परमात्माके दिये हुए शरीर, इन्द्रिय और नाना प्रकारके भोगोंको भोगते हुए भी यदि भगवान्‌को भुलाते हैं अथवा परमेश्वरसे विमुख होते हैं तो निश्चय रक्खो कि वे अपने हाथों अपना सत्यानाश कर रहे हैं। वेद कहता है कि—जो ब्रह्मका साक्षात्कार नहीं करता वह नाशको प्राप्त होता है। दोनों मन्त्रोंसे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मदर्शनसे मोक्ष प्राप्त होता है अथवा ब्रह्मका निराकरण करनेसे नाश होता है। इन्हीं वैदिक शब्दोंपर विचार करते हुए महर्षिने समाधिद्वारा कैसा सुन्दर भाव पाया था। देखिये—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥
(केन० २।५)

'यदि मनुष्यजीवनमें जीते-जी यह जान लिया कि 'ब्रह्म क्या है' तब तो अच्छा हुआ, परन्तु यदि नहीं जाना तो याद रक्खो बड़ा भारी विनाश (नुकसानका काम) हुआ। धीर पुरुष तो प्रत्येक जड-जंगममें ब्रह्मको व्यापक जानकर मरनेके पश्चात् अमृतपदको प्राप्त कर लेते हैं (शरीर त्यागकर फिर जन्म-मरणमें नहीं आते)।'

ऋषि हमें समझाते हैं कि ब्रह्मदर्शनके लिये मनुष्य-जीवनका ठीक-ठीक उपयोग करो और यदि मार्ग कठिन प्रतीत हो-तो उत्साहहीन मत हो जाओ किन्तु अधिक-से-अधिक अदम्य उत्साह और प्रबल धीरताके साथ मोक्ष-धामकी ओर यात्रा निरन्तर जारी रक्खो। कहीं ऐसा न हो कि अमूल्य अवसर हाथसे निकल जावे और जन्ममरणका प्रवाह अपने वेगमें तुमको पुनः लपेट ले जावे!

यदि हम जन्ममरणके प्रवाहको तोड़ना चाहें तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम प्राणपणसे अपने वर्तमान जीवनसे लाभ उठावें और ब्रह्मविद्याका उपार्जन करें। न केवल उपार्जन ही करते रहें किन्तु उसपर आचरण करें और अत्यन्त पुरुषार्थद्वारा ब्रह्मका साक्षात्कार करें। क्योंकि मोक्षकी प्राप्ति केवल ब्रह्मदर्शनसे ही हो सकती है और किसी उपायसे नहीं। जैसा कि यजुर्वेदके पुरुषसूक्तमें भी कहा गया है कि—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(३१।१८)

'उस परम पुरुषका साक्षात्कार करके ही मृत्युको लाँघ सकते हो, (याद रक्खो!) विश्राम पानेके लिये और कोई मार्ग—उपाय नहीं है।'

इतनेसे भलीभाँति यह जाना जा सकता है कि ब्रह्म-ज्ञान—ब्रह्मविद्या—आत्मसाक्षात्कार या परमेश्वरका दर्शन ही एक ऐसा उपाय है जिसका सहारा लेकर हमलोग अनादि संसारचक्र या जन्म-मरण-प्रवाहसे निकलकर सच्चा विश्राम पा सकते हैं अथवा मोक्षका महान्—अपरिमित सुख प्राप्त कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचमुच जिन-जिन महापराक्रमी आत्मवीरों—महात्माओं-ने प्राणोंकी बाज़ी लगाकर—दिनरात एक करके—प्रबल पुरुषार्थ किया है, निश्चयसे उन्होंने ही मोक्ष प्राप्त किया है। उन्होंने जीवनकालमें ही वह आनन्द प्राप्त किया है जो न तो शरीरका विषय है और न मन तथा बुद्धिद्वारा प्रकाशित अथवा उपार्जित ही किया जा सकता है!

इसीलिये वेद, उपनिषद् और व्याख्यान ग्रन्थोंमें ऐसे ब्रह्मज्ञानी (ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाले) की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है और स्तुति वाक्योंसे उसका परम आदर किया गया है। ब्रह्मज्ञानी आचार्यको वेदभगवान् कितना सम्मान देता है—इस बातका यदि पता लगाना हो तो शुक्ल यजुर्वेदकी शरण लीजिये और ब्राह्मणग्रन्थोंसे उसका व्याख्यान पूछिये, देखिये, संहिता क्या कह रही है—

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पितासत्॥

(यजुर्वेद ३२। ९)

'गन्धर्व (वेदविद्याका धारण करनेवाला) विद्वान् (ब्रह्मवेत्ता) उस अमृत ब्रह्मका प्रवचन—खोल-खोलकर व्याख्यान करे जो ब्रह्म गुहा (बुद्धि या ब्रह्माण्ड) में स्थित है और जो स्वरूपसे सत् तथा आनन्दमय है। उस ब्रह्मके तीन पद गुहामें निगूढ़ (अत्यन्त गुप्त) हुए हैं उन पदोंको जो जान गया है वह पिताका भी पिता है।'

ब्रह्मके तीन पदोंका वर्णन करना यद्यपि इस लेखका उद्देश्य नहीं है। वेदमें कई स्थानोंपर ब्रह्मके पदोंका और विष्णुके पाद-विक्रमका सविस्तर वर्णन है तथापि हम इतना इस समय संकेत कर सकते हैं कि सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयको ब्रह्मके तीन पद कहा गया है। अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिका वर्णन किया गया है। विशेष बात जिसके लिये यह मन्त्र उद्धृत किया गया है वह यह है कि ब्रह्मज्ञानी महात्माको 'पिताका भी पिता' कहा गया है। पिताका पिता कहनेसे तीन अर्थोंका बोध होता है और तीनों अर्थोंकी दृष्टिसे ब्रह्मज्ञानी पिताका पिता कहलानेका अधिकारी है। यथा—

(क) अपने पिताका भी पिता। ब्रह्मज्ञानीका पिता यदि ब्रह्मविद्यासे शून्य है अथवा आत्मज्ञानसे विमुख होकर सांसारिक भोगोंमें व्यस्त है तो ऐसे पिताको वैराग्यका उपदेश देकर और ब्रह्मविद्याका व्याख्यान समझाकर ब्रह्मज्ञानी पुत्र उसका कल्याण कर सकता है। ऐसा करनेसे पिता शिष्य और पुत्र आचार्य होगा—शिष्य-आचार्यका सम्बन्ध पिता-पुत्रके समान है। अतः ब्रह्मज्ञानी पुत्र अपने पिता (चाचा, ताया, मामा, नाना, माता, नानी, चाची, ताई—आदि बड़े बूढ़ों) को इस नाते 'पुत्र' कह सकता है और 'सुनो वत्स!' इस प्रकार कहनेका अधिकारी है। यह है ब्रह्मविद्याका प्रताप जिससे पुत्र 'पिताका भी पिता' बन जाता है। यदि सन्देह हो तो एक छोटा-सा प्रमाण देते हैं—सुनिये!—इससे आपको पता लग जायगा कि ब्रह्मविद्याका उपदेश करने-वाला विद्वान् व्यक्ति सच्चा पिता क्योंकर कहला सकता है?

सामवेदके ताण्ड्य महाब्राह्मणमें एक प्राचीन ऐतिहासिक घटनाका वर्णन किया गया है जिसमें आंगिरस ऋषिने अपने पिताओंको 'पुत्र' कहकर पुकारा था। गाथा इस प्रकार है—

शिशुर्वै आंगिरसः मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्, स अध्यापयन् पितॄन् पुत्रकेत्यामन्त्रयत। तं पितरोऽब्रुवन्नधर्मं करोषि यो नः पितॄन् सतः पुत्रकेत्यामन्त्रयसे। सोऽब्रवीदहं वाव पिता यो मन्त्रकृदस्मीति। ते देवेष्वपृच्छन्त। ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृदिति। तद्वै सोदजयत्॥

(ताण्ड्य ब्राह्मण १३। ३। २४)

'अंगिराका पुत्र छोटी आयुमें ही ऐसा विद्वान् हो गया कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंसे भी आगे बढ़ गया और वेदका बड़ा रोचक और वैज्ञानिक व्याख्यान करनेमें प्रसिद्ध हो गया। उसने वेदका व्याख्यान करते हुए अपने पिता आदि बड़े वृद्धजनोंको 'पुत्रो!' कहकर सम्बोधन कर दिया। पिता आदि वृद्धजनोंको यह दुर्व्यवहार बहुत बुरा लगा। उनसे सहन न हुआ और वे कहने लगे—तू वेदवेत्ता होकर अधर्म करता है जो हम पिता आदि बड़े बूढ़ोंको 'पुत्रो' कहकर सम्बोधन करता है, यह सुनकर आंगिरसने कहा कि निश्चयसे मैं पिता हूँ क्योंकि मै मन्त्रोंका द्रष्टा और व्याख्याता हूँ परन्तु बड़े लोगोंकी इससे सन्तुष्टि नहीं हुई। वह इसका ठीक-ठीक निर्णय करनेके लिये देवोंके पास गये और सब वृत्तान्त सुनाकर व्यवस्था पूछने लगे। देवोंने पूर्वापर विचार-कर यह व्यवस्था दी कि—यह (आंगिरस) निश्चयसे पिता ही है क्योंकि यह मन्त्रद्रष्टा वैदिक तत्त्वज्ञानका प्रभाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाली व्याख्यान करनेवाला है। देवोंकी ऐसी व्यवस्थासे आंगिरसका पक्ष सत्य सिद्ध हो गया और इस प्रकार आंगिरसकी जीत हो गयी।'

यह कथा इतनी प्रसिद्ध और प्रामाणिक है कि राजर्षि मनुने भी अपने नियमोंमें इसको उद्धृत किया है और अन्तमें यह कहा है कि—

यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥

अर्थात् युवा भी जो विद्वान् है देवोंने उसीको बड़ा (पूजनीय) माना है।

(ख) दूसरा अर्थ है—दूसरोंके पिताजनोंका पिता। पूर्वोक्त युक्तिप्रमाणसे ही यह भी सिद्ध ही है कि ब्रह्मज्ञानी दूसरोंके वृद्धजनोंका भी अपने तत्त्वज्ञानसे उद्धार कर सकता है और इसीलिये उनका भी पिता कहलानेका अधिकारी है। एक प्रमाण इस विषयपर भी प्रकाश डाल रहा है। देखिये, अथर्ववेदकी पिप्पलाद शाखामें कैसा स्पष्ट वर्णन किया गया है! गाथा इस प्रकार है—ब्रह्ममें अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाले भारद्वाज, सत्यकाम, गार्ग्य, आश्वलायन, कात्यायन और भार्गव ये छः प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी ऋषि एकत्रित होकर बड़े ही विनीत भावसे महर्षि पिप्पलादके चरणोंमें उपस्थित हुए और प्रार्थना करने लगे कि 'भगवन्! हमें ब्रह्मज्ञान दीजिये और हमारी शंकाओंका कृपा करके समाधान कर दीजिये!' महर्षिने उनकी योग्यता देखकर ब्रह्मविद्यासम्बन्धी नियमोंका प्रारम्भिक उपदेश किया और कुछ दिन बाद उनके गूढ़ प्रश्नोंका भी विस्तारसहित समाधान कर दिया। उस अलौकिक व्याख्यानको सुनकर उन तत्त्वज्ञानी ब्रह्मनिष्ठोंको जो आनन्द हुआ और ब्रह्मवेत्ता महर्षि पिप्पलादके चरणोंमें उनकी जो श्रद्धा उत्पन्न हुई और जिन शब्दोंमें उन्होंने कृतज्ञता प्रकाशित की वह इतिहासके पृष्ठोंपर आज भी चमक रही है। वे सुवर्णमय शब्द ये हैं, ध्यान दीजिये!—

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ (प्रश्नोपनिषद् ६। ८)

'उन्होंने महर्षिकी श्रद्धापूर्वक पूजा की और अत्यन्त प्रतिष्ठा करते हुए यह बोले कि—भगवन्! आप हमारे सच्चे पिता हैं। भगवन्! आपने हमको अविद्यासागरसे पार कर परले पार पहुँचा दिया है। हमारा बेड़ा पार कर दिया है—हमें कृतार्थ कर दिया है। आप-जैसे परम ऋषियोंको हमारा नमस्कार है, बारबार नमस्कार है।'

अविद्यान्धकारसे पार लगानेवाले तत्त्ववेत्ताको 'पिता' माननेमें भारद्वाज आदि ऋषियोंका प्रमाण पर्याप्त है और यह सिद्ध करता है कि ब्रह्मज्ञानी दूसरेके पिता आदिका भी पिता कहलानेका अधिकारी है।

(ग) तीसरे अर्थकी दृष्टिसे भी 'पिताका पिता' कहना ठीक है। पिता नाम रक्षकका भी है। अतः जो रक्षकका भी रक्षक हो वह—पिताका पिता है। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मविद्याके प्रभावसे बड़े-बड़े रक्षकोंकी भी रक्षा करता है। जो पिता, माता अथवा धनी या राजा आदि सन्तानों, निर्धनों और प्रजा आदिकी रक्षा करते हैं उनकी भी ब्रह्मज्ञान देकर मृत्यु आदिसे रक्षा करनेवाला ब्रह्मज्ञानी है। अतः वह पिताका भी पिता या रक्षकका भी रक्षक है। अथवा रक्षकोंका रक्षक ब्रह्म है। और ब्रह्मज्ञानीको स्वयं उपनिषद्ने भी ब्रह्म ही माना है। यथा—'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' इत्यादि।

उपर्युक्त विचारसे ब्रह्मविद्या और उसकी आवश्यकतापर यत्किञ्चित् प्रकाश डालनेके पश्चात् अब हमारा यह कर्तव्य है कि हम यह भी जानें कि—ब्रह्मविद्या किस प्रकारसे प्राप्त की जा सकती है? ब्रह्मविद्याके लिये क्या-क्या आवश्यक नियम हैं? और ब्रह्मविद्याके अधिकारी कैसे होने चाहियें?

वेद और प्राचीन इतिहास इस विषयमें भी हमारी प्रचुर सहायता करनेको तैयार हैं और हमें भलीभाँति समझानेमें समर्थ हैं। आप उनका स्वाध्याय करके देखें कि प्राचीन कालमें ब्रह्मज्ञानी लोग कितने उदार, कितने धर्मात्मा, कितने सदाचारी और कितने मननशील, सत्यवादी, सत्यप्रिय, तपस्वी, तितिक्षु, ब्रह्मचर्यसम्पन्न और वैराग्यवान् होते थे तथा कितने तत्त्ववेत्ता, कितने ब्रह्मनिष्ठ, कितने ब्रह्मपरायण और कितने बड़े वैदिक विद्वान् हुआ करते थे। यह उन शुभ गुणोंका ही प्रताप था कि चक्रवर्ती महाराजा भी राजसिंहासन खाली कर देते थे और ब्रह्मवेत्ता ऋषियोंके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया करते थे तथा बड़े-से-बड़े विद्वान् भी नम्र होकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करते थे। आजकलके मर्यादाहीन समयमें—जब कि कोई ब्रह्मविद्याका ऋषि नहीं है—यों चाहे कोई भी अपनेको ऋषि, महर्षि, वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म मान ले अथवा निकम्मे, मूर्ख और विषयलम्पट, पाखण्डी शिष्यवर्गसे स्वार्थपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर पा ले और 'देवी ब्रह्मविद्या' का द्रौपदीके समान सरे बाज़ार अपमान करे—तो कहिये उसको इस दुष्कृत्यसे कौन रोक सकता है ?

आचार्य और शिष्य किस योग्यताके होने चाहियें—इस विषयमें महर्षि पतञ्जलिने अपने 'महाभाष्य' के पस्पशाह्निकमें तथा महर्षि यास्कने अपने 'निरुक्त' के नैगम काण्डमें वेदके कुछ मन्त्र संग्रह किये हैं और उनके आधारपर अपने बहुमूल्य विचार भी प्रकट किये हैं। हमारी इच्छा है कि इस स्थानपर उनका दिग्दर्शन करा दिया जावे। देखिये—

यस्तित्याज सचिविदं सखाय न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥
(ऋग्वेद १०। ७१। ७)

'जिसने वेदवक्ता कल्याणकारी मित्र (आचार्य) को त्याग दिया है ऐसे पुरुष (शिष्य) का वेदमें भी कोई भाग नहीं है। यदि सुनता है तो व्यर्थ सुनता है क्योंकि वह जानता ही नहीं कि कल्याणका मार्ग कौन-सा है।'

तात्पर्य यह कि, आचार्य वेदका पूर्ण विद्वान् होना चाहिये और शिष्यको चाहिये कि ऐसे विद्वान्की शरणमें रहकर ज्ञान उपार्जन करे।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥
(ऋग्वेद १०। ७१। ४)

'एक (मूर्ख) तो मन्त्रोंको देखता (पढ़ता) हुआ भी नहीं देखता (अर्थ नहीं समझता)। और दूसरा (अज्ञानी) वचनोंको सुनता हुआ भी नहीं सुनता (वास्तविक अर्थ नहीं जानता)। परन्तु एक ओर तो यह हैं और दूसरी ओर एक और (सुयोग्य शिष्य) है जिसके लिये विद्या अपना स्वरूप (वास्तविक रहस्य) प्रकाशित कर देती है जैसे पतिकी इच्छावाली सुन्दर स्त्री अपने पतिको अपना स्वरूप दिखाती है।'

तात्पर्य यह कि, शिष्य सुयोग्य और विद्वान् होता हुआ अधिकारी होना चाहिये। अनधिकारी होगा तो विद्या कभी उससे प्रसन्न होकर प्रेम नहीं करेगी। यदि वह विद्याको स्पर्श करेगा तो दुराचारी समझा जायगा।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति मायया एष वाचं शुश्रुवानफलामपुष्पाम्॥
(ऋग्वेद १०। ७१। ५)

'एक वह (आचार्य) है जिसको (ब्रह्मकी) मित्रतामें पक्के अनुभव (स्थितप्रज्ञा) वाला कहते हैं। ऐसे विद्वान् (के अनुभव) को बड़े-बड़े जानकार भी नहीं पहुँच सकते। और इधर देखिये, एक ओर (झूठा गुरु) है जो पाखण्ड और दम्भसे निर्दुग्धा गौके पीछे-पीछे फिरता है जिसने फल (अनुभव) और फूल (अर्थज्ञान) से रहित वाणीको सुना है।'

तात्पर्य यह कि, आचार्य वह है जो ब्रह्मनिष्ठ है तथा महान् अनुभवी है और जिसमें पाखण्डका नामतक भी नहीं है और इसके साथ ही वेदका प्रकाण्ड विद्वान् भी है। और सुनिये—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य
वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञः स सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥
(निरुक्त १। १८)

'निस्सन्देह वह गदहा है जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं समझता। जो वेदका यथार्थ अर्थ जानता है वह बड़े-से-बड़े कल्याणको प्राप्त करता है, और ज्ञान (ब्रह्मसाक्षात्कार) द्वारा पापोंको समूल नष्ट करके निरतिशय सुख (मोक्ष) को प्राप्त होता है।'

इत्यादि अनेकों मन्त्रोंका स्वाध्याय करके ऋषि-मुनियोंने विद्याके उपदेष्टा तथा उपदेश्य वर्गके लिये नियमोंका निर्माण किया है जो वैदिक साहित्यमें इतस्ततः बिखरे पड़े हैं और मनुस्मृति आदि स्मृतियों और श्रौत तथा गृह्यसूत्रोंमें वर्णन किये गये हैं। लेखके आकार-प्रकारका विचार करते हुए उपनिषद्के कुछ प्रमाणोंपर ही सन्तोष करना उचित प्रतीत होता है क्योंकि ब्रह्मविद्याका सीधा सम्बन्ध उपनिषदोंसे ही है। उपनिषदोंमें जहाँ-जहाँ आचार्यों और शिष्योंकी योग्यताका वर्णन हुआ है वहाँपर खुले शब्दोंका प्रयोग किया गया है जिससे अधिक व्याख्यानका अवकाश नहीं रहा है। कुछ स्पष्ट प्रमाण नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिनसे स्वतः पता लग जायगा कि ब्रह्मविद्याका आचार्य कैसा होना चाहिये और शिष्यमें कौन-कौन-से गुण होने चाहिये। देखिये ऋषि क्या कहते हैं !

(१) परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छे-
त्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥

(मुण्डक० १ । २ । १२-१३)

'(महर्षि आङ्गिरस, प्रसिद्ध गृहस्थ शौनकको समझाते हुए उपदेश करते हैं कि) ब्रह्मके जिज्ञासुको चाहिये कि कर्मसे प्राप्त होनेवाले लौकिक (तथा पारलौकिक) भोगोंकी भलीभाँति परीक्षा करनेके पश्चात् निर्वेद (वैराग्य-संन्यास) को प्राप्त हो जाय क्योंकि कर्मसे प्राप्त न हो सकने योग्य (मोक्ष) को कर्मसे कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः उस मोक्षविज्ञान (ब्रह्मविद्या) की प्राप्तिके लिये वह विरक्त पुरुष अत्यन्त नम्र होकर श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरुके शरणमें उपस्थित होवे। वह विद्वान् (आचार्य) शरणमें आये हुए शान्तचित्त और जितेन्द्रिय विरक्त शिष्यके (कल्याणके) लिये उस ब्रह्मविद्याको ठीक-ठीक वैसा ही (बिना कुछ छिपाये) सत्य-सत्य कह दे जिससे उसने स्वयं ब्रह्मको अविनाशी और व्यापक आत्मा जाना है।'

इस प्रतीकसे यह सिद्ध होता है कि—ब्रह्मविद्याका उपदेष्टा गुरु श्रोत्रिय अर्थात् वेदशास्त्रका पारङ्गत विद्वान् और ब्रह्ममें निष्ठा—अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाला अनुभवी महात्मा हो और सत्यवादी हो—दम्भी या पाखण्डी नहीं। और शिष्य ऐसा हो जो संसारके भोगोंको हृदयसे दुःखका कारण अनुभव करता हो, पूरा-पूरा विरक्त हो, मोक्षका अभिलाषी हो, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी हो और शुद्ध हृदय-वाला हो, इसके साथ ही आचार्यमें अत्यन्त भक्ति रखनेवाला भी हो।

(२) तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः ।

(मुण्डक० १ । २ । ११)

'जो तप और श्रद्धासे युक्त होकर अरण्य (एकान्त स्थान) में निवास करते हैं और मन तथा इन्द्रियोंको शान्त करके विद्वान् (ज्ञानी) हुए भिक्षासे निर्वाह करते हैं।'

इस प्रतीकमें कहा गया है कि ब्रह्मविद्याके अधिकारी वही लोग हैं जो श्रद्धालु, तपस्वी, एकान्तवासी और भिक्षा-हारी होते हुए विरक्त तथा विद्वान् हैं।

(३) तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् । तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥

(प्रश्न० १ । १५-१६)

'यह ब्रह्मलोक (मोक्षधाम) केवल उन लोगोंके लिये है जो तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं तथा जिनके (हृदयमें) सत्य प्रतिष्ठित है। निस्सन्देह पुण्यमय (परम पवित्र) ब्रह्मलोक उन्हीं लोगोंके लिये है, जिनमें न तो छल, कपट और कुटिलता है और न झूठ है तथा न जिनमें माया (अज्ञान) ही है।'

इस मन्त्रसे स्पष्ट है कि ब्रह्मविद्याके अधिकारीमें ब्रह्मचर्य और सरलताका होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

(४) त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः । (कैवल्य० १ । ४)

'उन्होंने (जिज्ञासु—मुमुक्षुओंने) एक त्यागसे ही अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त कर लिया था।' प्रजापति कहते हैं कि जिज्ञासुमें 'त्याग' का होना भी अनिवार्य है।

(५) तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति, सर्वमात्मानं पश्यति ।

(बृहदारण्यक० ४ । ४ । २३)

'इसलिये (आत्माको अविनाशी) जानता हुआ शम, दम, उपरति, तितिक्षा और समाधान (दृढ़ निश्चय) से युक्त होकर अपने आपमें ही आत्मा (ब्रह्म) का साक्षात्कार करे और सबको आत्मा (ही है—ऐसा) जाने।'

इस वाक्यमें महर्षि याज्ञवल्क्यने स्पष्ट कह दिया है कि ब्रह्मविद्याके अधिकारीमें शम, दम, उपरति, तितिक्षा और समाधानका होना अत्यन्तावश्यक है। न केवल यही अपितु मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्षकी प्रबल इच्छा भी आवश्यक है। यथा कृष्ण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतर शाखामें प्रार्थना है—

(६) मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ (६ । १८)

'मैं मोक्ष चाहता हुआ आपकी शरण आ पड़ा हूँ (भगवन्! मुझे अङ्गीकार कीजिये)।'

(७) ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति । (छान्दोग्य० २ । २३ । १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ब्रह्ममें अचल निष्ठा रखनेवाला (ही) मोक्ष प्राप्त करता है।'

अतः ब्रह्मनिष्ठाकी भी आवश्यकता है। इसीलिये महर्षि व्यासने भी कहा है कि—

(८) तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्। (वेदान्तसूत्र १।१।७)

'उस ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवालेको ही मोक्षका उपदेश (देने या लेने) का अधिकार है।'

(९) कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥
(कठ० २।१।१)

'मोक्षका अभिलाषी कोई होगा जो धीर बनकर जितेन्द्रियत्व धारण करे और आत्मदर्शन पावे।' इसीलिये भगवान् पतञ्जलिने योगदर्शनमें कहा है कि—

(१०) योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।
(२।२८)

'यमनियमादि योगांगोंका अनुष्ठान करनेसे अशुद्धि क्षीण हो जाती है और ज्ञानका प्रकाश हो जाता है यहाँ-तक कि विवेकख्याति भी प्राप्त हो जाती है।'

और देखिये, महर्षि गौतम अपने न्यायदर्शनमें कहते हैं कि—

(११) तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्म-विध्युपायैः। (न्यायसूत्र ४।२।४३)

'आत्मसाक्षात्कारके लिये यम-नियमोंके द्वारा आत्म-संशोधन करो अथवा अध्यात्मशास्त्र (उपनिषद्) में वर्णन की हुई विधियोंसे या योगसे योग्यता सम्पादन करो।'

(१२) यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
(श्वेता० ६।२३)

'जिसकी परमेश्वरमें अत्यन्त भक्ति है और जैसी परमेश्वरमें है वैसी ही गुरुमें है (ऐसे अधिकारीको कथन किये हुए उपदेश सफल होते हैं)।'

उपर्युक्त प्रमाणोंसे ऋषियोंका स्पष्ट आशय है कि ब्रह्मविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें और नहीं तो, कम-से-कम—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, विद्वत्ता, धैर्य, तप, सत्य, जिज्ञासा, मुमुक्षुत्व, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मनिष्ठा, त्याग, एकान्तवास और गुरुभक्ति-ये गुण तो अवश्य ही होने चाहिये। यही वह आवश्यक गुण हैं जिनकी उपनिषदों और गीतामें स्थान-स्थानपर व्याख्या की गयी है। यही वह गुण हैं जिनके धारण करनेसे ऋषि, मुनि और ब्रह्मज्ञानी बना जा सकता है, यही वह गुण हैं जिनसे जीते-जी मोक्ष प्राप्त होता है, यही वह गुण हैं जिनके धारण करनेसे मनुष्य-जन्मका उद्देश्य पूर्ण होता है। अधिक क्या यही गुण हैं—जिनसे ब्रह्मत्वकी योग्यता प्रकाशित होती है और 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'तत्त्वमसि' का रहस्य समझा जा सकता है।

वर्तमान कालके कलुषित और व्यभिचार-दोषदूषित कपटी ज्ञानियोंसे पीछा छुड़ाकर प्राचीन ऋषियोंपर दृष्टि डालो—देखो! वह कैसे पुरुषार्थी, निर्दोष और तपस्वी थे। आओ, हम भी वैसे ही बनें! और उनके चरण-चिह्नोंपर चलें।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु॥

रंगभूमिमें कलाधर कृष्ण

मल्लोंको अशनि तुल्य नरोंको नरेंद्र सम, मधुरा वनिताओंको मूर्तिमान मंजु काम।
गोपोंको स्वबंधु सम, शासक खल भूपोंको, निज पितु जननीको शिशु नयनाभिराम॥
मृत्यु भोजपतिको औ विराट अज्ञानियोंको, योगियोंको परम तत्त्व शुद्ध कैवल्यधाम।
वृष्णियोंको इष्टदेवस्वरूप विदित हुए, कंस रंगभूमि मध्य साग्रज मनोज्ञ श्याम॥

—विनायक राव भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

अज्ञानी जीवकी निन्दा

हे ब्राह्मणो ! इस लोकमें मैंने कितने ही पुरुष सफेद घरके समान देखे हैं। भाव यह है कि जैसे सफेद घर ऊपरसे रमणीक और भीतर जड़रूप होता है, इसी प्रकार कितने ही पुरुष ऊपरसे रमणीक दीखते हैं और भीतरसे तमोगुणयुक्त जड़रूप होते हैं। इस लोकमें मैंने बहुत-से पुरुष भारवाही वृषभके समान देखे हैं। भाव यह है कि जैसे वृषभ अपने प्रयोजन बिना ही भार उठाता है, इसी प्रकार कितने ही शास्त्रको पढ़कर अन्य लोगोंको शास्त्रका उपदेश करते हैं, किन्तु अपने मनमें किञ्चित् भी शास्त्रके अर्थको धारण नहीं करते। इसलिये वे व्यर्थ ही शास्त्रका भार उठानेवाले हैं। इस लोकमें कितने ही पुरुष मैंने शुक-सारिकाके समान देखे हैं। भाव यह है कि जैसे शुक-सारिका पक्षी सुन्दर शब्दोंका उच्चारण करते हैं, किन्तु उन शब्दोंका अर्थ नहीं जानते, इसी प्रकार कितने ही पुरुष सुन्दर शब्दोंका उच्चारण करते हैं, किन्तु शब्दोंका अर्थ नहीं जानते। हे ब्राह्मणो ! इस लोकमें कितने ही पुरुष विशाल नेत्रवाले होकर भी अन्धे हैं। भाव यह है कि जैसे अन्धा अत्यन्त समीपवर्ती पदार्थको भी नहीं देखता, इसी प्रकार कितने ही पुरुष अत्यन्त समीप हृदयदेशमें स्थित आत्माको भी नहीं जानते। इस लोकमें कितने ही पुरुष चित्रलिखित मूर्तिके समान देखनेमें आये हैं। भाव यह है कि जैसे चित्रलिखित मूर्ति देखनेमें सुन्दर लगती है किन्तु किसी कार्यके करनेमें समर्थ नहीं होती, इसी प्रकार कितने ही पुरुष देखनेमें सुन्दर लगते हैं किन्तु कोई कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते। हे ब्राह्मणो ! कितने ही पुरुष मैंने कुपथ्य भोजनके समान देखे हैं। भाव यह है कि कुपथ्य भोजन प्रथम आनन्दका हेतु प्रतीत होता है और पीछे दुःखका कारण होता है, इसी प्रकार कितने ही पुरुष सभामें लोगोंको सत्य अर्थका उपदेश करके कुछ प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं और एकान्तमें असत्य अर्थका उपदेश करके दुःखके कारण होते हैं। इस लोकमें कितने ही पुरुष मैंने बाघके समान देखे हैं। भाव यह है कि बाघ मृगादि पशुओंको मारता है, इसी प्रकार कितने ही पुरुष शरीर, मन तथा वाणीसे सर्वदा जीवोंकी हिंसा करते हैं। कितने ही पुरुष मैंने मदिराके पानसे मदोन्मत्त वानरके समान देखे हैं। भाव यह है कि जैसे मदिराके पानसे मत्त वानर अत्यन्त चंचल होता है, इसी प्रकार कितने ही पुरुष अज्ञानरूपी मदिराके पानसे शास्त्रविरुद्ध अनेक चेष्टाएँ करते हैं।

हे ब्राह्मणो ! इस लोकमें कितने ही पुरुष कामरूपी शत्रुके वश हुए देखनेमें आते हैं, कितने ही क्रोधरूपी अग्निसे जलते हुए दिखायी देते हैं, कितने ही लोभके वश हुए अनादरके पात्र होते हुए देखनेमें आये हैं। वेद और वेदान्तको जाननेवाले पुरुष भी सत्त्व, रज तथा तम इन तीन गुणवाले होते हैं। इसलिये मैंने उनको विषयोंमें रागवाला देखा है। देव और पुरुषोंके स्वप्न तथा जाग्रत्में कुछ भी विलक्षणता नहीं है। भाव यह है कि जाग्रत्में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निद्राका विरोधीपना स्वप्नसे विलक्षणरूप है। तीन गुणवाले अभिमानी देवोंके जाग्रत्में यह विलक्षणता सम्भव नहीं है क्योंकि देवताओंने अद्वितीय आत्माके ज्ञानसे अपने अज्ञानकी निवृत्ति नहीं की है। जबतक जीवको अद्वितीय आत्माका ज्ञान नहीं होता, तबतक अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती। तीन गुणवाले अभिमानी देवों और पुरुषोंको ब्रह्मका ज्ञान अज्ञानरूपी निद्रामें ही होता है क्योंकि ज्ञानसे उनके मूलाज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती। कितने ही पुरुष व्याकरण पढ़ते हैं, व्याकरणसे पदार्थोंके ज्ञानमें उन पुरुषोंकी बुद्धि कुशल होती है। कितने ही मीमांसाशास्त्रका पठन करते हैं, मीमांसाशास्त्रसे वाक्यार्थके ज्ञानमें उन पुरुषोंकी बुद्धि कुशल होती है। कितने ही न्यायशास्त्र पढ़ते हैं, न्यायशास्त्रसे प्रमाणज्ञानमें उनकी बुद्धि कुशल होती है। कितने ही धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, धर्मशास्त्रसे धर्माधर्मके ज्ञानमें उन पुरुषोंकी बुद्धि कुशल होती है। इसी प्रकार अन्य शास्त्र पढ़नेसे उन-उन शास्त्रोंके अर्थमें उनकी बुद्धि कुशल देखनेमें आती है किन्तु अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादक वेदान्तशास्त्रके अर्थमें उनकी बुद्धि कुशल देखनेमें नहीं आती। इस लोकमें जितने पुरुषोंको वेदान्तशास्त्रके अर्थका ज्ञान है, वह ज्ञान भी सम्पूर्ण नहीं है, किन्तु यत्किंचित् अर्थका ही ज्ञान है, इस थोड़ेसे अर्थके ज्ञानसे संशयकी निवृत्ति नहीं होती। हे ब्राह्मणो! जिनको सम्पूर्ण वेदान्तशास्त्रके अर्थका ज्ञान है, किन्तु उनमें काम-क्रोधादि ज्ञानके प्रतिबन्धक हैं, उन काम-क्रोधादिके प्रतिबन्धके कारण उन पुरुषोंके मूलाज्ञानकी निवृत्ति वह ज्ञान नहीं कर सकता। जैसे अग्निके सम्बन्धसे नाश हुई शक्तिवाला भुना हुआ दाना फल उत्पन्न नहीं करता, इसी प्रकार काम-क्रोधादि प्रतिबन्धयुक्त ज्ञान पुरुषके मूलाज्ञानकी निवृत्ति नहीं करता।

अहङ्कारमें ज्ञानकी मुख्य प्रतिबन्धकता

काम-क्रोधादिकी अपेक्षासे अहङ्कारमें मुख्य प्रतिबन्धकता है। जैसे अपराधी चोरका बन्धन गृहस्तम्भके सहारे रहता है और उस स्तम्भमें एक मध्यका स्तम्भ मुख्य होता है और दूसरे कोनोंके स्तम्भ गौण होते हैं। इसी प्रकार अज्ञानी जीवका बन्धनगृह यह संसार काम-क्रोधादि स्तम्भोंके आश्रय रहता है। इन स्तम्भोंमें भी अहङ्कार तो बीचका मूल स्तम्भ है और काम-क्रोधादि कोनोंके स्तम्भ हैं। जैसे कोनोंके स्तम्भोंका नाश होनेपर भी जबतक मूल स्तम्भ विद्यमान रहता है, तबतक घरका नाश नहीं होता, इसी प्रकार काम-क्रोधादि निवृत्त होनेपर भी जबतक अहङ्कार रहता है, तबतक संसारकी निवृत्ति नहीं होती। इसलिये अहङ्कार आत्मज्ञानमें मुख्य प्रतिबन्धक है।

अहङ्कारकी व्यापकता

हे ब्राह्मणो! यह अहङ्कार सब जीवोंमें रहता है। अहङ्कारसे रहित कोई भी जीव मैं नहीं देखती। क्योंकि जनक राजाके इस यज्ञमें सब देशोंके विद्वान् एकत्र हुए हैं। उनमें कितने ही ब्राह्मण अकेले कामदोषसे रहित हैं, कुछ काम-क्रोध दोनों दोषोंसे रहित हैं, कुछ ब्राह्मण काम, क्रोध, लोभ तथा मोह इत्यादि अनेक दोषोंसे रहित हैं तो भी अहङ्कारसे रहित मैं किसी ब्राह्मणको नहीं देखती। इसलिये अहङ्कार सर्वत्र व्यापक है।

अहङ्कारमें दुर्विज्ञेयता

हे ब्राह्मणो! अहंकारके सिवा जितने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष हैं, उनमें बुद्धिमान् पुरुष शास्त्रके प्रमाणसे तथा अनुभवसे दुःखकी कारणता जानकर उनको त्याग सकता है किन्तु अहंकारमें जो दुःखकी कारणता है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रके प्रमाणसे अथवा अनुभवसे जानी नहीं जा सकती, क्योंकि सर्व शास्त्रके वेत्ता विद्वान् पुरुषमें भी अहंकार देखनेमें आता है। यदि शास्त्रके प्रमाणसे अथवा अनुभवसे अहंकारमें दुःखकी कारणता जान ली जाती तो विद्वान् फिर किस लिये अहंकार करते? इससे सिद्ध होता है कि शास्त्रकारोंने दुःखकी कारणता नहीं जानी है। इस विषयमें आप सब ब्राह्मण दृष्टान्तरूप हैं।

अहङ्कारमें लोक तथा परलोकके दुःखकी कारणता

हे ब्राह्मणो! जैसे मदिराके पानसे मनुष्य विपरीत देखनेवाला हो जाता है, इसी प्रकार अहंकाररूपी मदिराके पानसे मनुष्य विपरीत देखने लगता है। इस विपरीत-दर्शनसे अहंकारी मनुष्य अपने माता-पिताका, अन्य बान्धवोंका, देवोंका तथा पण्डित ब्राह्मणोंका निरादर करता है। काले साँपके समान शीघ्र मृत्यु करनेवाले यमराजकी भी अहंकारी पुरुष अवज्ञा करता है। सोये हुए सर्पके समान मृत्यु-के कारणरूप बुद्धिमान् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य-की भी अहंकारी अवज्ञा करता है। इस प्रकार सब जीवोंका अपमान करनेवाला अहंकारी इस लोकमें जल्दी प्राणान्त दुःखको प्राप्त होता है। सब प्राणियों-की अवज्ञासे उत्पन्न होनेवाले पापसे अहंकारी मरनेके पीछे रौरव आदि नरकोंको प्राप्त होता है। इसलिये इस लोकमें तथा परलोकमें अहंकार जीवके दुःखका कारणरूप है। इस प्रकारका अहंकाररूपी दोष याज्ञवल्क्यमें नहीं है। इसलिये काम-क्रोधादि दोष भी उनमें नहीं हैं। भाव यह है कि जैसे व्यापक-रूप अग्निका अभाव होनेसे व्याप्यरूप धूम उसमें नहीं रहता, इसी प्रकार व्यापकरूप अहंकारके अभावसे व्याप्यरूप काम-क्रोधादि भी नहीं रहते। इसलिये इस लोकमें एक याज्ञवल्क्य ही पुरुष है। याज्ञवल्क्यके समान दूसरा पुरुष नहीं है। क्योंकि श्रुतिमें सर्वत्र पूर्णको पुरुष कहा है। ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य मुनिसे स्थूल, सूक्ष्मरूप सब जगत् पूर्ण है, इसलिये याज्ञवल्क्य ही एक पुरुष है। भाव यह है कि श्रुतिमें ब्रह्मको सर्वत्र पूर्ण कहा है। और 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' 'ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्मरूप ही हो जाता है।' इस श्रुतिमें ब्रह्मवेत्ता पुरुषकी ब्रह्मरूपता कही है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्यमें सर्वत्र पूर्णता सम्भव है। याज्ञवल्क्य-का ऐसा स्वरूप मैंने शास्त्रके प्रमाणसे और अपने अनुभवसे निश्चय किया है। एक दूसरा आश्चर्य आप देखिये, 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' मांसमय चक्षुसे और वाणीसे आत्मा देखनेमें और कथनमें नहीं आता। इस प्रकारका श्रुतिका वचन मुझे कुछ असत्य-सा प्रतीत होता है क्योंकि श्रुतिने तो कहा है कि सर्वत्र पूर्णरूप पुरुष मांसमय नेत्रोंसे दीख नहीं सकता किन्तु मैं गार्गी इन मांसमय नेत्रोंसे सर्वत्र पूर्ण याज्ञवल्क्यको अपने सामने देखती हूँ। सम्यक् विचारसे देखा जाय तो श्रुतिका वचन सत्य ही है क्योंकि मांसमय नेत्रोंसे आप सब ब्राह्मणोंको याज्ञवल्क्यका वास्तव स्वरूप दिखायी नहीं देता किन्तु मैं गार्गी तो शास्त्रप्रमाण तथा आन्तर अनुभव इन दोनों प्रमाणवाले नेत्रोंसे याज्ञवल्क्यका वास्तव स्वरूप जानती हूँ। केवल मांसमय नेत्रोंसे मैं उनके स्वरूपको नहीं जानती। जैसे कि 'यह देवदत्त है' इस प्रत्यभिज्ञानमें तथा अंशके ज्ञानमें केवल नेत्र-इन्द्रियकी कारणता नहीं है किन्तु पूर्वसंस्कार सहकृत नेत्र-इन्द्रियकी कारणता है। इसी प्रकार इस पूर्ण पुरुषके ज्ञानमें भी केवल नेत्र-इन्द्रियकी कारणता नहीं है, किन्तु शास्त्रप्रमाण तथा आन्तर अनुभव, इन दोनों प्रमाणवाले नेत्र-इन्द्रियकी कारणता है। इसलिये पूर्वोक्त श्रुतिका विरोध नहीं है। जिन माता-पितासे ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य उत्पन्न हुए हैं, उन माता-पिताको धन्य है। जिस पृथिवीपर याज्ञवल्क्य चलते हैं, वह पृथिवी धन्य है। इस सभामें मुझ गार्गीको, जनक राजाको और आप सब ब्राह्मणोंको याज्ञवल्क्य-के दर्शन हुए हैं और उनके वचन सुननेमें आये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, इसलिये हम सब भी धन्य हैं। इस जगत्‌में याज्ञवल्क्यके समान कोई भी पुरुष पूर्वमें नहीं हुआ, अब भी कोई नहीं है और आगे भी कोई नहीं होगा। इसलिये चन्दनके समान शीतल और क्षीरसमुद्र समान निःक्षोभ याज्ञवल्क्यका विवाद-रूपी मन्थन आप न करें। यदि आप ब्राह्मण अहंकार-वश याज्ञवल्क्यके साथ विवाद करेंगे तो जैसे क्षीरसमुद्रमेंसे अति मन्थन करनेसे कालकूट नामका विष निकला था और अति मन्थनसे जैसे चन्दनमेंसे अग्नि उत्पन्न हो आता है, इसी प्रकार याज्ञवल्क्य मुनिमेंसे शापरूप कालकूट विष तथा शापरूप अग्नि उत्पन्न होगा। उस शापरूपी अग्निसे आप सब ब्राह्मणोंका नाश हो जायगा। इसलिये याज्ञवल्क्यके साथ आप विवाद न करें और तीनों कालमें दुःख देनेवाले अहंकारको त्यागकर आप सब ब्राह्मण याज्ञवल्क्य गुरुको नमस्कार करें। हे ब्राह्मणो! आत्माके अपरोक्ष ज्ञानवाले याज्ञवल्क्य-के साथ हम परोक्ष ज्ञानवालोंने व्यर्थ विवाद आरम्भ किया है। इस विवादसे हमको दुःख ही मिलेगा। भाव यह है कि जैसे एकको नेत्रसे काशीका अपरोक्ष ज्ञान हुआ है और दूसरेको शब्दप्रमाणसे काशीका परोक्ष ज्ञान हुआ है, तो परोक्ष ज्ञानवाले पुरुषका अपरोक्ष ज्ञानवाले पुरुषके साथ काशीका स्वरूप निर्णय करनेमें विवाद सम्भव नहीं है, इसी प्रकार आत्माके अपरोक्ष ज्ञान-वाले याज्ञवल्क्यके साथ आत्माके परोक्ष ज्ञानवाले हम सबका विवाद सम्भव नहीं है। पूजा करनेयोग्य आत्मज्ञानरूपी समुद्रयुक्त याज्ञवल्क्यका उल्लंघन करना हम प्रतिवादियोंका विवादरूपी पापसे स्पर्श करना है, इसलिये हममें महान् पापकी उत्पत्ति हुई है। इस पापकी निवृत्तिका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। याज्ञवल्क्यको बारम्बार नमस्कार करनेसे ही इस पापकी निवृत्ति होगी। इसलिये पापकी निवृत्ति और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्तिके लिये आप सब ब्राह्मण याज्ञवल्क्यको नमस्कार कीजिये। श्रुतिमें भी कहा है कि 'आत्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः।' अर्थात् इस लोक, तथा परलोकके धन-पुत्रादि पदार्थोंकी कामना-वाले सकामी पुरुषको शरीर तथा धनसे ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुषकी सेवा करनी चाहिये। इस सेवासे सब मनोवाञ्छित पदार्थोंकी प्राप्ति उस पुरुषको होती है। इसलिये याज्ञवल्क्यके जीतनेकी इच्छा त्यागकर सब ब्राह्मण याज्ञवल्क्यको नमस्कार करें!

इस प्रकार सब ब्राह्मणोंसे कहकर गार्गी याज्ञवल्क्यको प्रणाम करके प्रश्न करनेसे निवृत्त हुई। पश्चात् गार्गीके अमृतरूपी वचनोंके पान-से जिनके अहंकारादि दोष जाते रहे हैं, ऐसे आश्वलादि सब ब्राह्मण याज्ञवल्क्यको नमस्कार करने लगे। इन ब्राह्मणोंमेंसे कितने ही ब्राह्मण मस्तकसे और कितने ही वाणीसे प्रणाम करने लगे। एक विदग्ध नामके ब्राह्मणने भावी मृत्युके वश मोहको प्राप्त होनेसे याज्ञवल्क्यको प्रणाम नहीं किया। उस शाकल्य ब्राह्मणका वृत्तान्त इस प्रकार है।

शाकल्यका वृत्तान्त

जब इस शाकल्यका जन्म हुआ तो जन्मकाल-के नक्षत्ररूप भावी अर्थको बोधन करनेवाले, ज्योतिषशास्त्रको जाननेवाले विद्वान् शाकल्यके जन्मनक्षत्रको देखकर विचार करने लगे कि यह शाकल्य याज्ञवल्क्यके साथ विविध प्रकारकी ईर्ष्या करके जल मरेगा। इस प्रकारके भावी अर्थको जानकर ज्योतिषशास्त्र जाननेवाले पण्डितोंने शाकल्यका विदग्ध नाम रक्खा था। शाकल्य-की बुद्धिका बोध करनेवाला यह विदग्ध नाम शाकल्यके माता-पिताको आनन्द देनेवाला हुआ। यदि विचारकर देखा जाय तो विदग्ध शब्दका प्रथम अर्थ ही शाकल्यमें घटता है किन्तु दूसरा अर्थ शाकल्यमें नहीं घटता क्योंकि बुद्धिमान् तो अपने हितकारी शब्दको अङ्गीकार करते हैं, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाकल्य तो गार्गीके हितकारी वचनोंको सुनकर उलटा क्रोधयुक्त हुआ। जैसे सर्पको दूध पिलाया जाय तो विषकी ही वृद्धि होती है, इसी प्रकार गार्गीके हितकारी वचन भी शाकल्यके क्रोधके हेतु हुए। इसलिये शाकल्यमें बुद्धिमत्ता सम्भव नहीं है। याज्ञवल्क्यने सूर्यसे विद्या प्राप्त की है, ऐसा जिस दिनसे शाकल्यने सुना, उस दिनसे ही शाकल्य विविध प्रकारकी ईर्ष्यासे जलने लगा। याज्ञवल्क्यने सूर्य भगवान्‌से यजुर्वेद प्राप्त किया है, इस प्रकारका वचन किसी प्रसङ्गपर जिस किसी पुरुषके मुखसे शाकल्य सुनता, तो उस कहनेवाले पुरुषसे शाकल्य इस प्रकार कठोर वचन कहता—

शाकल्य—इस याज्ञवल्क्यने जिस प्रकार सूर्य-भगवान्‌से शुक्ल वर्णवाला यजुर्वेद प्राप्त किया है, उसी प्रकार चन्द्रमासे रक्त वर्णवाला अथर्वकाण्ड भी तो प्राप्त किया है! इसी प्रकार मंगलसे हरित वर्णवाला ऋग्वेदकाण्ड भी प्राप्त किया है!

इस प्रकार उपहासयुक्त कठोर वचन रात-दिन शाकल्य लोगोंसे कहता था। और याज्ञवल्क्य-की निन्दाको नहीं सहन करनेवाले सज्जन पुरुष याज्ञवल्क्यके साथ विवाद करनेकी शाकल्यको प्रेरणा करते थे परन्तु मेरे समान याज्ञवल्क्य नहीं है इस प्रकारके अभिमानसे शाकल्य विवाद करनेको भी याज्ञवल्क्यके पास नहीं आता था। जैसे अर्जुन-के साथ कर्ण स्पर्धा करता था तथा जैसे इन्द्रके साथ नमुचि नामका दैत्य स्पर्धा करता था, इसी प्रकार शाकल्य याज्ञवल्क्यके साथ स्पर्धा किया करता था।

डोरूशंकर—हे देवी! याज्ञवल्क्यके साथ जब शाकल्यको इतनी अधिक स्पर्धा थी, तो सब ब्राह्मणोंसे प्रथम ही शाकल्यने याज्ञवल्क्यसे प्रश्न क्यों नहीं किया?

देवी—हे वत्स! जब याज्ञवल्क्यने गौओंका हरण किया, उस समय भी शाकल्य सभामें बैठा था किन्तु उस समय शाकल्यने अपने मनमें इस प्रकार विचारकर प्रश्न नहीं किया कि याज्ञवल्क्यने सब ब्राह्मणोंकी सभामें गौओंको ले जानारूप अनुचित कर्म किया है। इससे सिद्ध होता है कि सर्व ब्राह्मणोंकी अविद्यमानतामें याज्ञवल्क्यने 'मैं सूर्य भगवान्‌का शिष्य हूँ' ऐसे मिथ्या वचन कहकर सब लोगोंको मोहमें डाल दिया है। याज्ञवल्क्य-को उस पाप कर्मका फल अब प्राप्त हुआ है। आजतक याज्ञवल्क्यका प्रतिष्ठापूर्वक जो जीवन था, वह अब समाप्त हो गया है क्योंकि याज्ञवल्क्य खल पुरुषके समान पाखण्डी है, ऐसा जानकर ही मैंने और सब ब्राह्मणोंने याज्ञवल्क्यकी उपेक्षा की है। और विद्वान् जिसकी उपेक्षा करते हैं, उसका लोकमें कोई भी सत्कार नहीं करता, इसलिये सब ब्राह्मणोंके अपमान और गौओंके हरणसे याज्ञवल्क्यको यह फल मिला है। जैसे सूर्य भगवान्‌के समीप अन्धकार नहीं रहता, इसी प्रकार सर्व विद्वान् ब्राह्मणोंके समीप किसी पुरुषका पाखण्ड नहीं चलता। पाप-से मोहित हुआ याज्ञवल्क्य इस बातको नहीं जानता। यदि याज्ञवल्क्य ब्राह्मणोंकी महिमाको जानता होता, तो जिन ब्राह्मणोंके एक बालकके तेजको देवराज इन्द्र भी सहन नहीं कर सकता, ऐसे सब ब्राह्मणों-के देखते हुए यह गौओंका हरणरूप अनुचित कार्य नहीं करता।

इस प्रकारके अनेक विचार अपने मनमें करके अहंकारयुक्त शाकल्य प्रथम गूँगा बना रहा किन्तु जब उसने सब ब्राह्मणोंको पराजित देखा और सब ब्राह्मणोंसहित गार्गीने जब याज्ञवल्क्यको नमस्कार किया, तब जैसे पैरसे दबा हुआ सर्प क्रोधित होकर फुंकार मारता है, इसी प्रकार शाकल्यके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, उसकी भ्रकुटी ललाटकी तरफ चढ़ गयी और वह बारम्बार जल्दी-जल्दी लम्बे-लम्बे निःश्वास लेने लगा। जैसे जब किसीका पुत्र मर जाता है, तब वह दैवको धिक्कारता है, इसी प्रकार शाकल्य दैवको धिक्कारने लगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाकल्यका विचार

शाकल्य—(मनमें) जैसा इस लोकमें दैवका बल है, वैसा बल शास्त्रके अध्ययनका भी नहीं है, उत्तम कुलका भी वैसा बल नहीं है, और मन्त्रादिका भी वैसा बल नहीं है क्योंकि शास्त्रयुक्त, उत्तम कुलयुक्त और मन्त्रादियुक्त इन सब ब्राह्मणोंका याज्ञवल्क्यने जो पराभव किया है, वह केवल दैवबलसे ही किया है। विद्याका बल याज्ञवल्क्यमें नहीं है, इसलिये दैवबल विद्यादि सब बलोंकी अपेक्षा अधिक है। इतिहासमें बुद्धिमान् पुरुषोंने कहा है कि निमेष, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा संवत्सर इत्यादि कालरूप भगवान्के प्रतिकूल होनेसे सब जीवोंकी बुद्धि अन्यथा हो जाती है। यदि काल अनुकूल होता है, तो सब जीवोंके बुद्धिकी वृद्धि करता है। इस कालके उल्लंघन करनेको कोई पुरुष समर्थ नहीं है, यह ऐतिहासिक वचन आजदिनतक सच्चा होता चला आया है क्योंकि जैसे पाखंडी पुरुष मूढ़ बालकको पराजित करता है, इसी प्रकार ब्रह्माके समान विद्यावाले इन सब ब्राह्मणोंको इस दुर्बुद्धि याज्ञवल्क्यने पराजित किया है। इससे सिद्ध होता है कि काल भगवान्का उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। काल भगवान्की प्रतिकूलतासे ये सब विद्वान् ब्राह्मण पराजित हुए हैं और उन्हीं काल भगवान्की अनुकूलतासे विद्याहीन याज्ञवल्क्यका विजय हुआ है। इस लोकमें जो कार्य होनेवाला होता है, वह अवश्य होता है। हजार उपाय करनेपर भी होनहार नहीं टलती, शास्त्रमें लिखी हुई यह बात आज सत्य हुई। क्योंकि इस समाजमें जितने ब्राह्मण एकत्र हुए हैं, वे सब ब्रह्माके समान विद्यावाले हैं। यह कृपण याज्ञवल्क्य विद्यासे रहित है। किन्तु इस याज्ञवल्क्यका जय होनेवाला था और इन सब ब्राह्मणोंका पराजय होनेवाला था। वह अवश्य हो गया। इससे मुझे बड़ा भारी खेद है। अथवा यह काल मेरे यशकी वृद्धि करनेवाला है क्योंकि याज्ञवल्क्यने सब विद्वान् ब्राह्मणोंको जीत लिया है और मैं जब इस याज्ञवल्क्यको जीत लूँगा, तो सब लोकोंमें मेरा यश होगा, इसलिये यह काल मुझे यशकी प्राप्ति कराने आया है।

इस प्रकारके अनेक विचार शाकल्यके मनमें घूमने लगे। भावी अर्थको जाननेवाली गार्गीके पूर्वोक्त हितकारी उपदेशको त्यागकर दुर्बुद्धि शाकल्य गार्गीकी अनेक प्रकारसे निन्दा करने लगा—

शाकल्यके दुर्विचार

यह गार्गी कुमारी है, यौवन अवस्थावाली है, माता-पिताके घरमेंसे बाहर निकलकर व्यभिचारिणी स्त्रीके समान अपनी इच्छानुसार वर्तती है। इस सभामें याज्ञवल्क्यके सिवा सब ब्राह्मण सदाचारी हैं, स्नान-शौचादि कर्मोंमें नित्य प्रीतिवाले हैं, जटा-दाढ़ी धारण करनेवाले हैं, कृश शरीरवाले और वृद्धावस्थावाले हैं। ऐसे उत्तम ब्राह्मण इस नग्न गार्गीको नेत्रोंसे नहीं देखते। इस निर्लज्ज गार्गीकी ब्राह्मण क्यों इच्छा करें? यह याज्ञवल्क्य यौवनावस्थावाला, स्निग्ध शरीरवाला, निरन्तर शरीरका पोषण करनेवाला, अत्यन्त कामी तथा वेदके अर्थको अन्यथा करनेवाला है। यह दुर्बुद्धि याज्ञवल्क्य पापयुक्त नेत्रोंसे नग्न गार्गीके अंगोंकी ओर बारम्बार देखता है। जबसे याज्ञवल्क्य सभामें आया है, तबसे अबतक उसकी दृष्टि राजा जनक तथा गार्गीमें है। इन दोनोंको छोड़कर याज्ञवल्क्य किसी अन्य ब्राह्मणकी ओर नहीं देखता। याज्ञवल्क्यके सिवा सब ब्राह्मण गुरुके चरणकमलोंकी पूजा करनेवाले हैं और गुरु शास्त्रकी शिक्षा पाये हुए हैं। इसलिये वे सब नासिकाके अग्र भागमें दृष्टि करके सभामें बैठे हैं। यह अधम याज्ञवल्क्य इस सभामें अपनी विद्याका प्रकाश करने नहीं आया है किन्तु गार्गीके लिये और धनके लिये आया है। इसीलिये याज्ञवल्क्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गार्गीके मुखको तथा जनक राजाके मुखको बारम्बार देखता है। व्यभिचारिणी स्त्री व्यभिचारी पुरुषको फँसा लेती है और व्यभिचारी पुरुष व्यभिचारिणी स्त्रीके पीछे हो जाता है क्योंकि जिस पदार्थका बारम्बार अनुभव किया होता है, उस पदार्थको वह पुरुष जल्दी जान लेता है। जैसे मछली मच्छके गमनागमनको झट जान जाती है, इसी प्रकार यह गार्गी भी बाल्यावस्थासे अपनी इच्छानुसार विचरनेवाली व्यभिचारिणी है और यह याज्ञवल्क्य भी व्यभिचारी है, इसलिये इन दोनोंने परस्पर स्नेह बाँधा है। कुलीन स्त्रियाँ अपने पतिको, पुत्रको, भाईको, मामाको, अथवा अन्य किसी कुलीन स्त्रीको साथ लिये बिना अपने घरके आँगनसे बाहर नहीं जातीं किन्तु पति आदि किसीको साथ लेकर बाहर जाती हैं। बुरी नीयतसे ही यह गार्गी इन ब्राह्मणोंके सामने बारम्बार याज्ञवल्क्यकी स्तुति करती है। ये सर्व विद्वान् ब्राह्मण भी व्यभिचारिणी गार्गीके भीतरके अभिप्रायको न जानकर, इसके वचनोंसे मोहित होकर याज्ञवल्क्यको नमस्कार करते हैं। सब धर्मात्माओंमें मुख्य जनक राजा भी व्यभिचारिणी गार्गीके वचनोंसे मोहको प्राप्त हो गया है। इसीसे जनक राजा बारम्बार याज्ञवल्क्यको नमस्कार करता है।

हे वत्स! सर्वदा ब्रह्मचर्य-धर्मका पालन करनेवाली गार्गीको अनेक प्रकारके दुर्वचन कहकर शाकल्य उसकी निन्दा करने लगा। जैसे मृत्युके समीप प्राप्त हुए पतङ्गे महान् अग्निको उल्लंघन करनेका उद्यम करते हैं, इसी प्रकार मृत्युके समीप प्राप्त हुआ शाकल्य ज्ञानसमुद्ररूप याज्ञवल्क्यके उल्लंघन करनेका उद्यम करने लगा। पश्चात् शाकल्य अनेक प्रश्नोंसे देवोंकी संख्या याज्ञवल्क्यसे पूछने लगा और याज्ञवल्क्य भी उसे देवोंकी संख्या बताने लगे। याज्ञवल्क्यने विस्तारसे देवोंकी अनन्त संख्या कही और संक्षेपसे सूत्रात्मारूप एक प्राणको ही देवतारूप कहा और दूसरे सब देवताओंको सूत्रात्मारूप प्राणकी ही विभूतियाँ बताया। इस प्रकार संक्षेप और विस्तार दोनों प्रकारसे जब याज्ञवल्क्यने देवोंकी संख्या कही, तब शाकल्य याज्ञवल्क्यसे दूसरे आठ प्रश्न पूछने लगा। उनका उत्तर भी याज्ञवल्क्यने उसको दिया। जैसे मेंढक सर्पके मुखमें प्रवेश करता है, इसी प्रकार कालरूप सर्पके मुखमें प्राप्त हुआ मूढ़-बुद्धि शाकल्य याज्ञवल्क्यसे अनेक प्रकारके दुर्वचन कहने लगा, तब याज्ञवल्क्य बोले—

(क्रमशः)

राम-भक्तकी शक्ति

कोटिन कुबेरनको कनक, कनूका सम,
ताको चारों बेद एक अलप कहानी है।
कामधेनु कल्पतरु चिंतामनि आदिककी,
ताको दान देखि-देखि मति चकरानी है॥
पाँचहू मुकुति ताकी दासी ह्वै खवासी करैं,
कालहू करालकी न ता सँग बिसानी है।
'दीन' कवि जाके मन-मन्दिरमें बास करैं,
रामसो सुराजा औ सिया-सी महारानी है॥

अहल्या-उद्धार

सुनि मुनि कौशिकतें सापको हवाल सब,
बाढ़ी चित करुनाकी अजब उमंग है।
पद-रज डारि, करे पाप सब छारि, करि
नवल सुनारि दियौ धामहू उतंग है॥
'दीन' भनै ताहि लखि जात पति-लोक-ओर,
उपमा अभूतको सुझानो नयो ढंग है।
कौतुकनिधान राम रजकी बनाइ रज्जु,
पदते उड़ाई ऋषि-पतनी पतंग है॥

—स्व० लाला भगवानदीनजी 'दीन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-वाटिका

वह सभा सभा नहीं है जिसमें वृद्ध न हो; वह वृद्ध वृद्ध नहीं है जो धर्मकी बात नहीं कहता; वह धर्म धर्म नहीं है जिसमें सत्य नहीं है; वह सत्य सत्य नहीं है जिसमें छल है। —भगवान् श्रीरामचन्द्र

* * *

जो पुत्र बूढ़े माता-पिताकी, पति अपनी साध्वी स्त्रीकी, पिता अपने छोटे बच्चोंकी, शिष्य गुरुकी, समर्थ मनुष्य ब्राह्मणोंकी और शरणागतकी रक्षा नहीं करता वह जीता हुआ ही मुर्देके समान है। —भगवान् श्रीकृष्ण

* * *

मनुष्यके बन्ध और मोक्षका कारण मन है, विषयासक्त मनसे बन्धन होता है और विषयवृत्तिसे रहित मनसे मुक्ति। अतएव मुक्तिकी चाह करनेवाले मनको सदा विषयोंसे रहित रक्खें। विषयसङ्गसे छूटा हुआ मन जब उन्मनी भावको प्राप्त होता है, तब परमपदकी प्राप्ति होती है।

—उपनिषद्

* * *

जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित मनमाना घोर तप करते हैं और दम्भ, अहङ्कार, कामना, आसक्ति तथा शरीरादिके बलका अभिमान रखनेवाले हैं वे शरीरमें स्थित भूतसमुदायको और अन्तःकरणमें स्थित भगवान्‌को कष्ट देनेवाले हैं, उन अज्ञानियोंको आसुरी स्वभाववाला ही जानो। —श्रीमद्भगवद्गीता

* * *

जीवित अवस्थामें शरीरको लोग देव (नरदेव, भूदेव) शब्दोंसे पुकारते हैं परन्तु मर जानेपर उस शरीरके या तो (सड़ जानेपर) कीड़े हो जाते हैं, या (जला देनेपर) राख हो जाती है, अथवा (पशु आदिके खानेपर उनकी) विष्ठा बन जाती है, ऐसे शरीरके लिये जो मनुष्य दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करता है जिससे नरककी प्राप्ति होती है, वह क्या अपने स्वार्थको जानता है ? —देवर्षि नारद

* * *

परमात्माका वाचक प्रणव है, उसका जप और उसके अर्थकी भावना करनी चाहिये। इससे आत्माकी प्राप्ति और विघ्नोंका अभाव होता है। —योगदर्शन

* * *

परलोकमें सहायताके लिये माता-पिता, पुत्र-स्त्री और सम्बन्धी कोई नहीं रहते। वहाँ एक धर्म ही काम आता है। मरे हुए शरीरको बन्धु-बान्धव काठ और मिट्टीके ढेलोंके समान पृथ्वीपर पटककर घर चले आते हैं। एक धर्म ही उसके साथ जाता है। —मनुस्मृति

* * *

मन, वाणी और कर्मसे प्राणिमात्रके साथ अद्रोह, सबपर कृपा और दान, यही साधु पुरुषोंका सनातन धर्म है। —महाभारत

* * *

जो आत्मनिष्ठ हैं तथा जो आत्माके सिवा और कुछ भी नहीं चाहते, वे विषयी मनुष्योंकी भाँति रमणीय वस्तुकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होते और दुःखरूप वस्तुकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होते। —योगवासिष्ठ

* * *

सोये हुए गाँवको जैसे बाढ़ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्र और पशुओंमें लिप्त हुए मनुष्यको मौत ले जाती है। जब मृत्यु पकड़ती है उस समय पिता, पुत्र, बन्धु या जातिवाले कोई भी रक्षा नहीं कर सकते। इस बातको जानकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शीलवान् बने और निर्वाणकी ओर ले जानेवाले मार्गको जल्द साफ करे।

—धम्मपद

* * *

भगवान्‌की मायाके दोषगुण बिना हरिभजनके नहीं जाते, अतएव सब कामनाओंको छोड़कर श्रीरामको भजो।

—तुलसीदासजी

* * *

जो दिन आज है वह कल नहीं रहेगा, चेतना है तो जल्दी चेत जा, देख, मौत तेरी घातमें घूम रही है।

—कबीर

* * *

श्रीरामके चरणोंकी पहचान हुए बिना मनुष्यके मनकी दौड़ नहीं मिटती, जो लोग केवल भेष बनाकर दर-दरपर अलख जगाते हैं परन्तु भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम नहीं करते, उनका जन्म वृथा है। —रहीम

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

भक्तिके साधन

तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः ॥३४॥

३४–आचार्यगण उस भक्तिके साधन बतलाते हैं ।

कर्म और ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करके अब देवर्षि नारद भक्तिशास्त्रके प्रधान प्रवर्त्तक और भक्तितत्त्वके अनुभवी आचार्यों–सन्त-भक्तोंद्वारा गान किये हुए उस श्रेष्ठतम भक्तिके साधनोंका वर्णन करते हैं ।

तत्तु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च ॥३५॥

३५–वह (भक्ति-साधन) विषयत्याग और संगत्यागसे सम्पन्न होता है ।

जीवके मनमें स्वाभाविक ही प्रेमका स्रोत है क्योंकि जीव परमानन्दस्वरूप परमप्रेमरूप भगवान्‌का ही सनातन चिदंश है, परन्तु विषयोंके प्रति प्रवाहित होनेसे उसके प्रेमकी धारा दूषित हो गयी है और इसीसे वह प्रेम दुःखके कारण कामके रूपमें परिणत हो रहा है और इसी कारण उसके परमात्ममुखी दिव्य स्वरूपका प्रकाश नहीं होता । प्रेमके दिव्य स्वरूपके प्रकाशके लिये उसकी विषयाभिमुखी गतिको पलटकर ईश्वराभिमुखी करनेकी आवश्यकता है । इसके लिये दो उपाय हैं––१–विषयोंका स्वरूपसे त्याग और २–विषयोंकी आसक्तिका त्याग । जो लोग यह मानते हैं कि विषयोंमें आसक्त रहते और यथेच्छ अमर्यादित विषयोंका संग्रह एवं उपभोग करते हुए ही भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जायगी, अथवा भगवद्भक्तिके मार्गमें विषय और विषयासक्तिके त्यागकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, वे बहुत बड़ी भूलमें हैं । भक्तिमें तो अपने भोगके लिये कोई वस्तु रह ही नहीं जाती; जब भोक्ता ही कोई नहीं रहता तब भोग्यवस्तु कहाँसे रहे ? वहाँ तो एकमात्र प्राणाधार भगवान् ही सर्व-भोक्ता हैं और हम अपने समस्त अंगों एवं समस्त सामग्रियोंसहित भगवान्‌के भोग्य हैं । एकमात्र वही पुरुष हैं और सब उनकी भोग्या प्रकृति हैं । ऐसी अवस्थामें भक्तका अपना कोई भोग्य-विषय रह ही नहीं जाता । इसको यदि ऊँची स्थिति कहकर कोई इससे बचना चाहे तो उसे भी साधनकालमें विषयोंका और विषयासक्तिका यथासाध्य उत्तरोत्तर त्याग करना ही पड़ता है । शरीर विषयभोगमें लगा होगा और मन विषयोंमें आसक्त रहेगा, तो फिर प्रियतम भगवान्‌की सेवा किस तन-मनसे होगी ? अतएव विषयत्यागकी बड़ी भारी आवश्यकता है । बाह्यभोग तो क्या, मनसे भी विषयोंका चिन्तन छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि यह नियम है कि मन जिस वस्तुका चिन्तन करेगा उसीमें उसकी आसक्ति होगी । भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें कहा है––

विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥

अर्थात् 'विषयोंका चिन्तन करनेसे मन विषयोंमें आसक्त होता है और मेरा अनुस्मरण करनेसे मुझमें लीन हो जाता है ।'

मनको जहाँ लगाओ, वहीं लग जाता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह लगाना होता है, इन्द्रियोंके द्वारा ही; हम बार-बार जिस प्रकारके दृश्योंको देखेंगे, जैसी बात सुनेंगे, जैसी चीज खायँगे, जो कुछ सूघेंगे, जैसी वस्तुका स्पर्श करेंगे, उन्हींका मनमें बार-बार चिन्तन होगा और जिस वस्तुका अधिक चिन्तन होगा, उसीमें आसक्ति होगी। नाटक देखेंगे, वेश्याका गाना सुनेंगे, उनमें आसक्ति होगी; भक्तलीला देखेंगे, कीर्त्तन सुनेंगे तो उनमें आसक्ति होगी। अतएव भक्तिकी अभिलाषा रखनेवालोंको भगवान्‌के प्रतिकूल तमाम विषयोंका त्याग करना चाहिये। वास्तवमें इस सूत्रमें विषयत्यागमें उन्हीं विषयोंका त्याग समझना चाहिये, जो हमारे मनको भगवान्‌से हटाकर भोगोंमें—जगत् प्रपञ्चमें लगा देते हैं। ध्यान, चिन्तन, कीर्तन, भगवत्सेवा, साधुसत्कार, सत्सङ्ग आदि जो भगवदनुकूल विषय हैं, उनमें तो तन-मनको चाह करके लगाना चाहिये। और जिन विषयोंके संग्रह और सेवनकी शरीरयात्रा या कुटुम्बपोषणके लिये नितान्त आवश्यकता हो, उनका भी यथासम्भव बहुत ही थोड़े परिमाणमें संग्रह और सेवन करना चाहिये, और वह भी शास्त्रानुकूल तथा ईश्वरकी आज्ञा समझकर अन्य किसी भी फल-कामनाको मनमें स्थान न देते हुए केवल ईश्वर-प्रीत्यर्थ ही! इस प्रकारसे किया हुआ विषय-सेवन भी विषयत्यागके ही तुल्य समझा जाता है। केवल बाहरसे किसी विषयका त्याग कर दिया जाय और मनमें उसका स्मरण बना रहे, तो वह यथार्थ त्याग नहीं है, इसीलिये सूत्रमें विषयत्यागके साथ-ही-साथ आसक्ति-त्यागकी भी आवश्यकता बतलायी गयी है। महाभारतमें कहा है—

त्यागः स्नेहस्य यत्त्यागो विषयाणां तथैव च।

(शान्तिपर्व १९२। १७)

'विषयासक्ति और विषय दोनोंके त्यागका नाम ही त्याग है।' इसीसे विषयानुरागका त्याग होगा, और विषयानुरागसे रहित हृदय ही भगवत्प्रेमका दिव्य धाम बन सकता है। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होनेपर तो विषयका त्याग स्वाभाविक ही रहता है। श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़भागी॥

अमृतके स्वादको चख लेने और उसके गुणसे लाभ उठा लेनेपर फिर विषकी ओर किसीकी नजर ही क्यों जाने लगी? परन्तु उस अमृतकी प्राप्तिके लिये भी—इसकी ओर गति होनेके लिये भी विषयविषके त्यागकी आवश्यकता है। विषयासक्तिका त्याग करके भगवान्‌में आसक्त होनेमें ही परम सुख है। भगवान् कहते हैं—

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयात्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १२)

'मुझमें चित्त लगानेवाले और समस्त विषयोंकी अपेक्षा छोड़नेवाले भक्तको मुझसे जो परम सुख मिलता है, वह सुख विषयासक्त-चित्त लोगोंको कहाँसे मिल सकता है?'

अव्यावृतभजनात्॥ ३६॥

३६—अखण्ड भजनसे (भक्तिका साधन सम्पन्न होता है)।

भजन भक्तिका प्रधान अङ्ग है, यह साध्य और साधन दोनों है। जो भगवत्प्रेमको प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिये अखण्ड भजन स्वाभाविक हो जाता है और जिनको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति करनी है, उनको अखण्ड भजनका अभ्यास करना चाहिये। जो भजन बिना मुक्ति और भगवत्प्रेमकी प्राप्ति चाहता है वह भूलता है। गोसाईं श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारि मथे बरु होइ घृत, सिकतातें बरु तेल।
बिनु हरि-भजन न भव तरहिं, यह सिद्धांत अपेल॥

जलके मन्थनसे चाहे घी निकल आवे, बालूसे चाहे तेल निकले, परन्तु भगवान्‌के भजन बिना भव-सागरसे मनुष्य नहीं तर सकता, यह सिद्धान्त अकाट्य है। अतएव भजन तो अनिवार्य साधन है। फिर भक्तिके साधकके लिये तो यही एक खास वस्तु है। विषयसे मन हटाकर यदि भगवान्‌में न लगाया जाय तो वह वापस दौड़कर वहीं चला जायगा। विषयत्याग वैराग्य है और भगवत्-भजन अभ्यास। इन्हीं अभ्यास-वैराग्यसे विशुद्ध भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है। परन्तु जो भजन अभी होता है, घड़ीभर बाद नहीं होता, आज किया, कल नहीं; वह प्रेम और आदरयुक्त अखण्ड भजन नहीं है। भजनरूपी अभ्यास तो वही सिद्ध होता है जो सदा होता रहे, सतत होता रहे और सत्कारपूर्वक हो। योगदर्शनमें महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ-भूमिः। (१।१४)

'दीर्घकालपर्यन्त निरन्तर सत्कारके साथ करनेपर ही अभ्यास दृढ़ होता है।' इस नित्य-निरन्तरके अखण्ड स्मरणसे भगवान्‌की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। स्वयं भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मुझको स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

अतएव अखण्डरूपसे भगवान्‌का प्रेमपूर्वक चिन्तन करते हुए ही स्नान, भोजन, व्यापार आदि सब काम करने चाहिये। भगवत्-स्मरणयुक्त होनेसे प्रत्येक कार्य ही भजन हो जायगा। इस प्रकार भजनका ताँता क्षणभर भी नहीं टूटना चाहिये। स्वरूपका चिन्तन न हो सके तो निरन्तर भगवान्‌का नामस्मरण ही करना चाहिये। भगवान्‌के नामस्मरणसे मन और प्राण पवित्र हो जायँगे और भगवान्‌के पावन पदकमलोंमें अनन्य प्रेम उत्पन्न हो जायगा। नाम-जपकी सहज विधि यह है कि अपने श्वास-प्रश्वासके आने-जानेकी ओर ध्यान रखकर श्वास-प्रश्वासके साथ-ही-साथ मनसे, और साथ ही धीमे स्वरसे वाणीसे भी भगवान्‌का नाम-जप करता रहे। यह साधन उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते, खड़े रहते सब समय किया जा सकता है। अभ्यास दृढ़ हो जानेपर चित्त विक्षेपशून्य होकर निरन्तर भगवान्‌के चिन्तनमें अपने आप ही लग जायगा। प्रायः सभी प्रसिद्ध भक्तों और सन्तोंने इस साधनका प्रयोग किया था। महात्मा चरणदासजी कहते हैं—

स्वासा माँही जपेतें, दुबिधा रहे न कोय।

इसी प्रकार कबीरजी कहते हैं—

साँस साँस सुमिरन करौ यह उपाय अति नीक।

मतलब यह कि भगवान्‌के स्वरूप, प्रभाव, रहस्य, गुण, लीला अथवा नामका चिन्तन निरन्तर तैलधारा-की भाँति होते रहना चाहिये। यही अखण्ड भजन है।

लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवण-कीर्त्तनात्॥ ३७॥

३७—लोकसमाजमें भी भगवद्-गुण-श्रवण और कीर्तनसे (भक्ति-साधन सम्पन्न होता है)।

मनसे तो नित्य भगवान्‌का चिन्तन करना ही चाहिये, परन्तु कान और वाणीसे भी सदा-सर्वदा लोगोंके बीचमें भी भगवान्‌का गुण ही सुनना और कहना चाहिये। मनसे भगवच्चिन्तनकी चेष्टा तभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

'पुत्रादिके नामसङ्केतसे, परिहासमें, स्तोभ या अवहेलनासे भी भगवान्‌का नाम लेनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अज्ञान अथवा ज्ञानपूर्वक यदि कोई मनुष्य पुण्यश्लोक भगवान्‌का नाम-कीर्तन करता है तो उसके पाप अग्निमें जले हुए ईंधनकी तरह भस्म हो जाते हैं।'

सभी सद्ग्रन्थों और सन्तोंकी वाणियोंमें भगवन्नाम-की महिमा गायी है। श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोक मनन करने योग्य हैं। देवी देवहूतिजी भगवान् कपिलदेवसे कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(३।३३।७)

'अहो, जिसकी जिह्वापर तुम्हारा पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं उन श्रेष्ठ पुरुषोंने तप, यज्ञ, तीर्थस्नान, वेदाध्ययन सब कुछ कर लिये।'

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशोऽब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(१२।१२।४६-४७)

'कोई भी मनुष्य गिरते, पड़ते, छींकते और दुःखसे पीड़ित होते समय परवश होकर भी यदि ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' पुकार उठता है तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्य पर्वतकी गुफाके अन्धकारका भी नाश कर देता है, और जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको छिन्नभिन्न करके लुप्त कर देता है, इसी प्रकार अनन्त भगवान्‌का नाम-कीर्तन हृदयमें प्रवेश करके समस्त पापोंको धो डालता है।'

यह तो विवश होकर नाम लेनेका फल है। प्रेमसे लेनेपर तो कहना ही क्या है। इसीसे गुसाईं-जी कहते हैं—

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं।
जनम अनेक संचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भवबारिधि गोपद इव तरहीं॥

अतएव भक्तिकी प्राप्तिके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नाम-गुण-यशका कीर्तन, श्रवण और चिन्तन निःसन्देह परम साधन है।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपा-लेशाद्वा॥ ३८॥

३८—परन्तु (प्रेमभक्तिकी प्राप्तिका साधन) मुख्यतया (प्रेमी) महापुरुषोंकी कृपासे अथवा भगवत्कृपाके लेशमात्रसे होता है।

विषय और विषयासक्तिका त्याग करके अखण्ड भजन और श्रवण-कीर्तनका साधन बतलाया जानेके

नहीं होता) मानना, ६—नामका सहारा लेकर पाप करना, ७—धर्म, व्रत, दान और यज्ञादिके साथ नामकी तुलना करना, ८—अश्रद्धालु, हरिविमुख और सुनना न चाहने-वालोंको नामका उपदेश करना, ९—नाममाहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम न करना और १०—अहंकार, ममता तथा भोगादि विषयोंमें आसक्त रहना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद अब एक ऐसा साधन बतलाया जाता है, जिस एकके प्रतापसे ही पहले तीनों अपने-आप हो जाते हैं—वह साधन है 'महापुरुषोंकी कृपा'। महापुरुष तो कृपालु ही होते हैं परन्तु श्रद्धा-विश्वासपूर्वक उनका सङ्ग करना बड़ा कठिन है। महापुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर विषय तो आप ही छूट जाते हैं। उनके सङ्गसे श्रवण-कीर्त्तन भी करना ही पड़ता है और रातदिन जो कुछ सुनने, कहने और देखनेमें आता है, उसका स्मरण अनिवार्य है ही। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यहाँ जिन महापुरुषोंकी कृपा-मात्रसे ही फलरूपा प्रेमभक्तिकी प्राप्ति बतलायी है, वे महापुरुष केवल शास्त्रज्ञानी और सदाचारी ही नहीं होते, भगवान्‌के स्वरूप-तत्त्वको यथार्थरूपसे जानकर उनमें अनन्य प्रेम करनेवाले भक्त होते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तोंके सङ्गकी बड़ी महिमा है। इसीसे यज्ञ-धूमसे जिनके शरीर धुमैले हो गये हैं, ऐसे कर्मकाण्डी विज्ञानविद् ऋषि भगवच्चरणकमलरसामृतका पान करानेवाले प्रेममूर्ति सूतजीसे कहते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(श्रीमद्भा० १।१८।१३)

'हे सौम्य! भगवत्सङ्गी प्रेमियोंके निमेषमात्रके सङ्गकी तुलना, स्वर्गादिकी तो बात ही क्या है, पुनर्जन्मका नाश करनेवाली मुक्तिके साथ भी नहीं की जा सकती, फिर मर्त्यलोकके राज्यादि सम्पत्तिकी तो बात ही क्या है? इसीके आधारपर रामचरित-मानसमें कहा गया है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव-सत्संग॥

यह उस सत्सङ्गकी महिमा नहीं है जो अन्तः-करणकी शुद्धि करके मोक्षप्राप्ति करवाता है। क्योंकि यहाँ तो मोक्षके साथ लवमात्रके ऐसे सत्सङ्ग-की तुलना करना भी असङ्गत बतलाया गया है। अतएव यहाँ उन भगवत्तत्त्वके ज्ञाता होकर भगवत्-प्रेमके रंगमें रँगे हुए मोक्षसंन्यासी भगवत्सङ्गी (सर्वैश्वर्यपूर्ण मधुरतम लीलाविहारी भगवान्‌के नित्य लीलासङ्गी) प्रेमी सन्तोंकी उस कृपाका उल्लेख है, जो केवल मुक्ति ही नहीं, भगवान्‌के प्रेमरूपी भक्तिकी प्राप्ति भी सहज ही करवा देती है। क्योंकि मुक्तिको तो ऐसे प्रेमी चाहते ही नहीं। वरं मुक्तिकी चाहको ही वे प्रेमरूपा भगवद्भक्तिकी उत्पत्तिमें बाधा देनेवाली पिशाचिनी समझकर उसका तिरस्कार किया करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तोंकी कृपा जिनपर होती है, जो पुरुष ऐसे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त कर लेता है, योग और ज्ञान आदिसे भी वशमें न होनेवाले भगवान् (सहज ही) उसके वशमें हो जाते हैं। इसीलिये स्वयं भगवान् अपने प्रेमी भक्त उद्धवसे कहते हैं—

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥
(श्रीमद्भा० ११।१२।१-२)

'हे उद्धव! दूसरे समस्त सङ्गोंका निवारण करने-वाले 'सत्सङ्गसे' मैं जैसा वशीभूत होता हूँ वैसा योग, ज्ञान, धर्म, वेदाध्ययन, तप, त्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम और नियम किसीसे नहीं होता।'

इसका कारण यह है कि अन्यान्य सब साधन, सकामभावसे होनेपर भोग और स्वर्गादिकी, और निष्कामभावसे होनेपर अन्तःकरणकी शुद्धि और मुक्तिकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। लीलाविहारी भगवान्‌को सीधा वशमें करनेवाला तो केवल एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, अनन्य और विशुद्ध प्रेम ही है, जो इन साधनोंमेंसे किसीसे नहीं मिलता, वह तो केवल भगवत्संगी प्रेमी महापुरुषोंकी महती कृपासे ही मिलता है ।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥

हाँ, यदि श्रीभगवान् चाहें तो स्वयमेव अपना प्रेम दे सकते हैं, उनकी कृपाके लेशमात्रसे ही प्रेम मिल सकता है । गोसाईंजीने कहा है—

जाकी कृपा-लवलेसतें मतिमंद तुलसीदासहूँ ।
पायो परम बिस्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥

परन्तु नित्य कृपावर्षा करनेवाले भगवान्‌का कृपा-बिन्दु भी भगवदीय महात्माओंकी कृपासे ही जीवोंको मिल सकता है । अतएव ऐसे प्रेमी सन्तोंका सङ्ग ही प्रधान साधन है परन्तु ऐसा सङ्ग प्राप्त होना अपने वशकी बात नहीं ! इसीसे देवर्षि नारदजी अगले सूत्रमें महत्सङ्गको दुर्लभ बतलाते हैं—

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥३९॥

३९—परन्तु महापुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है ।

संसारमें स्वधर्मपरायण, सदाचारी, साधु स्वभाव, दैवी सम्पत्तिवान् पुरुषोंकी प्राप्ति बहुत दुर्लभ है । सच्चे हीरोंकी भाँति जमातों और उपदेशकोंमें सच्चे साधु थोड़े ही होते हैं पर खोज करनेपर संसारमें सदाचारी, कर्मकाण्डी और कुछ ज्ञानी पुरुष तो मिल भी सकते हैं । परन्तु ऐसे सच्चे प्रेमी महात्मा बहुत ही कम मिलते हैं जिनकी कृपामात्रसे परम दुर्लभ योगि-ज्ञानि-जनवाञ्छित भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जाती हो । इसीलिये ऐसे महात्माओंका मिलन बहुत दुर्लभ माना जाता है । यदि कहीं ऐसे महापुरुष मिल भी जाते हैं तो उनका पहचानना बहुत कठिन होता है। क्योंकि बाह्य आचार तो ढोंगी और नाटकके पात्र भी किसी अंशमें वैसा ही दिखला सकते हैं । आँखोंसे आँसुओंका बहना, रोना, हँसना और चिल्लाना ही प्रेमीके लक्षण नहीं हैं । अनेक बाह्य कारणोंसे भी ऐसा हो सकता है । फिर कोई-कोई सच्चे प्रेमी ऐसे भी हो सकते हैं, जो इन लक्षणोंवाली स्थितिसे भी आगे बढ़ चुके हों और जिनके बाह्य आचार साधारण समझसे बाहर हों । प्रेमीजन तो किसीको कहने जाते ही नहीं कि हमें प्रेमी मानो; और कहनेसे मानता भी कौन है । अतएव ऐसे निःस्पृही भगवज्जनोंकी पहिचान बहुत ही कठिन है, इसीसे उनके सङ्गको दुर्गम बतलाया गया है । परन्तु सौभाग्यसे यदि कहीं ऐसे महात्मा पुरुष मिल जाते हैं तो उनका बिना जाने मिल जाना भी कभी व्यर्थ नहीं हो सकता; क्योंकि वह अमोघ है । जब साधारण सदाचारी, विद्वान् साधुओंका समागम ही अन्तःकरणकी शुद्धिका कारण होकर पाप, ताप और दैन्यका निवारण करनेमें समर्थ होता है; तब जिनका हृदय भगवत्प्रेमसे छलकता है, जो प्रेम और आनन्दकी मूर्ति हैं, जिनके स्मरणमात्रसे ही पापोंका नाश होता है, उन भगवदीय प्रेमी महात्माओंके दर्शनका फल हुए बिना कभी रह ही नहीं सकता । इसीसे महत्सङ्गको अमोघ (अवश्य फलदायी) बतलाया गया है ।

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥४०॥

४०—उसकी (भगवान्) कृपासे ही (महत्पुरुषोंका) सङ्ग भी मिलता है ।

भगवत्कृपा और महान् पुरुषोंका सङ्ग एक-दूसरेके आश्रित हैं । महत्पुरुषोंके सङ्ग बिना भगवत्कृपाका अनुभव नहीं होता, और भगवत्कृपा बिना ऐसे महापुरुष नहीं मिलते । श्रीविभीषणको भी श्रीहनूमान्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीके मिलनेपर ही भगवत्कृपाका अनुभव हुआ, इसीसे उन्होंने कहा—

अब मोहिं भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं संता॥

अवश्य ही सन्तका मिलन हरि-कृपासे ही होता है। भगवान् जिसपर कृपा करके अपनाना चाहते हैं, उसीके पास, प्रेमपाशमें अपनेको बाँध रखनेकी शक्तिवाले, अपने स्वरूप प्रेमी भक्तको भेजते हैं।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ॥४१॥

४१—क्योंकि भगवान्‌में और उनके भक्तमें भेदका अभाव है।

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही हैं। जो भक्तोंका सेवन करते हैं वे भगवान्‌का ही सेवन करते हैं। भक्त भगवान्‌के हृदयमें बसते हैं और भगवान् भक्तके हृदयमें। भगवान्‌ने कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयन्त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भागवत ९। ४। ८)

'साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते और मैं उन्हें छोड़कर और किसीको नहीं जानता।' भरत रामको भजते हैं और राम भरतको—

भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥

श्रीभगवान्‌ने प्रेम-स्वरूपा गोपियोंके सम्बन्धमें कहा है—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

'हे अर्जुन! मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनकी बात तत्त्वसे केवल गोपियाँ ही जानती हैं और कोई नहीं जानता।'

ऐसे प्रेमी भक्तोंमें और भगवान्‌में क्या अन्तर है? भगवान्‌ने कहा ही है—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

'जो प्रेमसे मुझको भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।' ऐसे भक्त भगवत्प्रेममें इस प्रकार तल्लीन रहते हैं कि वे अपने बाह्य रूपको भूलकर साक्षात् भगवत्-स्वरूपका अनुभव करने लगते हैं। गोपियाँ भगवान्‌को ढूँढ़ती हुई ऐसी तन्मय हो गयीं कि वे उन्हींकी लीला करने लगीं—

मोहन लाल रसालकी लीला इनहीं सोहैं।
केवल तन्मय भईं कछु न जानैं हम को हैं॥

(नन्ददासजी)

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ॥४२॥

४२—(अतएव) उस (महत्सङ्ग) की ही साधना करो, उसीकी साधना करो।

अतएव भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये ऐसे भगवत्प्रेमी महापुरुषोंके सङ्गकी ही प्रबल इच्छा करो। भगवत्कृपासे प्रेमी सन्त मिल जायँगे और सन्त-मिलनके प्रतापसे ही हम पाप-तापसे छूटकर निर्मल भगवत्प्रेमको प्राप्त कर सकेंगे। इसमें एक बड़ा रहस्य है। मान लीजिये—एक महान् प्रतापी राजा है और साथ ही वह बड़ा भारी प्रेमी भी है, परन्तु प्रेम हरेकके साथ नहीं होता। राजा राजसभामें और अपने राज्यमें अपना प्रभाव और ऐश्वर्य तो खूब दिखला सकता है, परन्तु अपने मुँहसे अपने प्रेमका रहस्य किसीके सामने नहीं कह सकता। हम प्रजाके रूपमें विधिके अनुसार उससे मिलकर विधिवत् बातें कर सकते हैं, परन्तु न तो प्रेमका रहस्य पूछ सकते हैं और न वह हमें बतला ही सकता है। उसके प्रेमका गुह्य रहस्य जानना या उसके प्रेमराज्यमें प्रवेश करना हो तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके किसी अनन्य प्रेमीका—'जिसके साथ राजाका व्यक्तिगत प्रेमका निर्मल (राज्यविधिसे अतीत) सम्बन्ध है और जिसके साथ वह परस्पर खुली प्रेम-चर्चा करता है'—सङ्ग करना होगा, और उसके हृदयमें अपना विश्वास पैदा करके उसके द्वारा राजाके प्रेम-का रहस्य जानना होगा और उसीके द्वारा राजाके निकट अपना प्रेमसन्देश पहुँचाना होगा तथा अपनी पात्रता सिद्ध करनी होगी। जब राजा हमें पात्र समझ लेगा तो हमें भी उसीकी भाँति प्रेमगोष्ठीमें शामिल कर लेगा। इसी प्रकार भगवान् भी अपने प्रेमका रहस्य अपने मुँहसे नहीं बतलाते। भगवान्ने उद्धवको प्रेमशिक्षा दिलानेके लिये गोपियोंके पास भेजा था। प्रियतमका प्रेमरहस्य और उसके प्रेमकी गुह्य बातें जैसे उसकी प्रियतमाके द्वारा ही उसकी विश्वस्त सखियोंको मिलती है इसी प्रकार भगवान्के प्रेमका रहस्य भी भगवत्प्रेमी भक्तोंके द्वारा ही साधकको मिलता है। और मिलता भी है उसीको, जिसको भगवान् पात्र समझकर कृपा करके अपने प्रेमका भेद देना चाहते हैं। क्योंकि प्रेमी भक्त प्रेमास्पद प्रियतम भगवान्की इच्छा या आज्ञा बिना उनके प्रेम-का रहस्य किसीके सामने नहीं खोल सकते। पहले साधकको पात्र बनना होता है। जब भगवान्के निर्मल अत्युच्च प्रेमकी एकान्त आकांक्षा उसके मनमें उत्पन्न हो जाती है तब उसका हृदय भगवत्प्रेमके लिये रोने लगता है। उसके हृदयका आर्तनाद अन्तर्यामी आनन्दमय प्रभु सुनते हैं, और तब कृपा करके वे अपने किसी प्रेमी भक्तको आदेश या संकेत करके उसके समागममें भेज देते हैं। वहाँ उसके प्रेमकी परीक्षा होती है। यदि उसका प्रेम कामनाशून्य और अनन्य होता है, और वह अपने आचरण और व्यवहारसे उस प्रेमी भक्तके हृदयमें पात्रताका विश्वास पैदा कर देता है, तब वे उसका सन्देश भगवान्के पास पहुँचाते हैं और भगवान्की आज्ञा प्राप्त करके क्रमशः प्रेमका रहस्य उसके सामने खोलते हैं और धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों उसकी पात्रता बढ़ती है, त्यों-ही-त्यों भगवान्की आज्ञासे वे उसे भगवान्के प्रेमराज्यमें उत्तरोत्तर आगे बढ़ाकर ले जाते हैं और अन्तमें उसपर भगवान्की पूर्ण कृपा होनेसे वह भगवत्प्रेमको प्राप्त कर लेता है। राजा या उसका प्रेमी तो अन्तर्यामी न होनेसे किसीके धोखेमें भी आ सकता है परन्तु भगवान्, और भगवान्की इच्छासे नियुक्त होनेवाले प्रेमी भक्त, कभी धोखा नहीं खाते। अतएव जिसको भगवत्प्रेमकी प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे देवर्षिके बतलाये हुए साधनोंमें तत्पर होकर पहले पात्र बनना चाहिये, जिससे उसपर भगवान्की कृपा हो, और वह भगवत्प्रेमी पुरुषोंके सङ्गका पात्र समझा जाय। साथ ही ऐसे भगवत्प्रेमी पुरुषोंके सङ्ग-की इच्छा प्रबलरूपसे बढ़ानी चाहिये, क्योंकि इनके सङ्ग बिना भगवत्प्रेमकी प्राप्ति महान् कठिन है। इसीसे भगवान् अपने निर्मल प्रेमके प्रचारार्थ ऐसे भक्तोंको, मुक्तिके पूर्ण अधिकारी होनेपर भी, उनके मनमें प्रेमकी वासना जागृत रखकर उन्हें सायुज्य मुक्ति नहीं देते, और इसीसे प्रेमी भक्तगण इस प्रेम-लीला-सुखको छोड़कर मुक्तिकी कभी चाह नहीं करते। वे मुक्त होकर भी केवल प्रेम वितरणके लिये ही संसारमें आया करते हैं या निवास करते हैं। वे अहैतुक कृपालु होते हैं। हमारी तीव्र इच्छा पावेंगे तो भगवत्कृपासे भगवान्का संकेत प्राप्तकर अपने पुण्य-मय दर्शन-स्पर्श-भाषण और अपनी महती कृपासे हमें अवश्य प्रेमदान करेंगे। क्योंकि वे तो प्रेमी जनोंकी खोजमें ही रहते हैं। उनका काम ही प्रेमदान करना है। अतएव उन्हीं भगवत्सङ्गी प्रेमी महानुभावोंका सङ्ग प्राप्त करो, उन्हींकी कृपाकी इच्छा करो! (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीश्रीराधासहस्रनाम

(मातृ-शरण)

'श्रीशक्ति-अङ्क'ने लुप्तप्राय परम प्रयोजनीय मातृतत्त्वका रहस्योद्घाटन करके वास्तवमें कल्याणका कार्य किया है। प्रत्येक वस्तुको—जड़ जगत्के प्रतीयमान प्रत्येक स्थूलतम भावको भी—शक्ति-संवित् चैतन्यकला और शाश्वत मातृदेवीकी जाग्रत् लीलायित राशिके रूपमें प्रतिष्ठित करना भारतवासीकी चिर अतीतकी साधना रही है। जड़वत् प्रतीत होनेवाला पाषाण भी वस्तुतः चैतन्य-घन है इस सत्यकी प्रत्यक्ष अनुभूति निर्मल भारतवासीने अनेक युगों पूर्व उपलब्ध कर ली थी। आद्याशक्तिके मातृत्वकी उपेक्षाका भाव इसके हृदयमें घुसने लगा बाह्य अपवित्र संसर्गसे, विपरीत पाश एवं विगुणोंके अनुकूल बन्धनसे। उन विदेशी भावोंसे कि जिनमें मातृत्वका किञ्चित् भी प्रकाश नहीं है—Fatherhood से ही उनके भाव पोषित हैं। भगवान्की शक्तिमत्ता तथा ऐश्वर्य मातृदेवी शक्तिके संयोगके कारण है। मातृरूपमें शक्तिपूजाका प्राण प्रत्येककी नस-नसमें जब प्रवाहित होता था, उस समय भारतवर्ष उत्तुङ्ग शिरशिखरको उठाये और वज्रवक्षःस्थलको आगे तानकर अनुपम ज्योतिके संदेश-स्फुलिङ्ग प्रत्याशीके प्राङ्गणमें प्रसारित करता था। उस समय यहाँ प्रत्येक कार्य सुव्यवस्था, संगठन-शक्ति, नियमन तथा तन्त्रकी अभ्रान्त निश्चिन्ततासे सम्पन्न हुआ करते थे। कालक्रमसे अधोगतिके मोहनास्त्रने यहाँकी समुज्ज्वल व्यवस्थापद्धति—तन्त्रशैलीपर बुरा आघात करके सुप्तप्राय अवस्थामें उसको डाल दिया और 'जीवन' के उपादेय सूत्रको भूलकर सुगुम्फित मणियोंको हम न जाने कहाँ-कहाँ खो बैठे।

महाशक्तिकी अपार दयालुतासे उस अत्यावश्यकीय लुप्त सूत्र—तन्तु—(तन्त्र) के एक छोरकी स्पन्दन-रेखाकी झलक-सी अब होने लगी है। बच्चेको तो माँकी निश्चिन्त गोद चाहिये। इस बातकी आवश्यकताका अनुभव अब हमको पुनः होने लगा है। माँकी करुणा और उसके अभय-वरद-हस्त समस्त आपदाओंसे और विघ्नबाधाओंसे हमारी रक्षा करते रहें। माँकी आनन्दरूपिणी प्रतिमा श्रीश्रीराधिकाके रसपूर्ण वैभव और प्रभावका आनन्द 'कल्याण' के पाठकगण उपलब्ध करें, इस अभिप्रायसे रसपरिप्लुत तन्त्रमेंसे नीचे 'श्रीश्रीराधासहस्रनाम स्तोत्र' यहाँ दिया जाता है। ऋष्यादिन्यास, श्रीराधामन्त्र (क्लीं क्लीं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं राधिकायै क्लीं क्लीं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं) के साथ राधिकाजीकी पूजा करके इस स्तोत्रके रसपूर्ण आनन्दका अनुभव श्रीराधा-कृष्णके प्रेमी सज्जनगण सहज ही लाभ कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त बाह्यरूपसे भी प्रस्तुत स्तोत्र विचित्र विशिष्टताओंसे परिपूर्ण है। 'राधा' के 'र' वर्णसे आरम्भ करके वर्णानुक्रमके अनुसार प्रहर्षण पद-प्रसूनोंसे प्रोत समस्त श्लोक शृङ्खलाबद्ध किये गये हैं। और इसके बाद तन्त्रशास्त्रके गुह्यरहस्य ककार विद्याके ककारादिक्रमसे स्तोत्र-शब्दावलि बड़ी ही सुन्दरताके साथ गुम्फित की हुई है। समाहित चित्त-पूर्वक पाठ करनेवाले प्रेमीजन चमत्कृतपूर्ण इस दिव्य स्तोत्रसे निर्झरित आनन्द एवं शान्तिकी शीतल फुहारोंसे अवश्य पुलकित हुए बिना न रहेंगे। आनन्दपूर्ण जिस तन्त्रशास्त्रमेंसे प्रस्तुत स्तोत्र दिया गया है उसीमें श्रीश्रीराधाजीका एक बहुत ही स्फूर्तिपूर्ण कवच है जिसको भविष्यमें प्रेमियोंके समक्ष उपस्थित किया जा सकता है।

श्रीश्रीराधासहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीपद्मिनीसहस्रनामस्तोत्रस्य श्रीकृष्णऋषिर्महिषमर्दिन्यधिष्ठात्री देवता गायत्रीच्छन्दो महा-विद्यासिद्ध्यर्थे विनियोगः। ॐ ह्रीं ऐं पद्मिन्यै राधिकायै। राधा रमणीरूपा निरुपमरूपवती वश्या वामा रजोगुणा सर्वलोकेशजननी तत्त्वातीता परमा माता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्ताङ्गी रक्तपुष्पाभा राध्या रासपरायणा ।
रम्भावती रूपशीला रजनी रञ्जिनी रतिः ॥

रतिप्रिया रमणीया रसपुण्ड्रा रसायना ।
रासमध्ये रासरूपा रसवेशा रसोत्सुका ॥

रसवती रसोल्लासा रसिका रसभूषणा ।
रसमालाधरी रङ्गी रक्तपट्टपरिच्छदा ॥

कमला कल्पलतिका कुलव्रतपरायणा ।
कामिनी कमला कुन्ती कलिकल्लोलनाशिनी ॥

कुलीना कुलवती कामिकामसन्दीपनी तथा ।
कौमारी कृष्णवनिता कामार्त्ता कामरूपिणी ॥

कामुकी कलुषघ्नी च कुलज्ञा कुलपण्डिता ।
कृष्णवर्णा कृष्णाङ्गी कृष्णवस्त्रपरिच्छदा ॥

कान्ता कामस्वरूपा च कामरूपा कृपावती ।
क्षेमा क्षेमवती चैव खेलत्खञ्जनगामिनी ॥

खस्था खगा खगस्थात्री खगणस्यविहारिणी ।
गरिष्ठा गरिमा गङ्गा गया गोदावरी गतिः ॥

गान्धारी गुणिनी गौरी गङ्गा गोकुलवासिनी ।
गन्धर्वी गानकुशला गुणा गुप्तविलासिनी ॥

घर्घरा घर्मदा घर्मा घनस्था घनवासिनी ।
घृणा घृणावती घोरा घोरकर्मविवर्जिता ॥

चन्द्रा चन्द्रप्रभा चैव चन्द्रमूर्तिपरिच्छदा ।
चन्द्ररूपा च चन्द्राख्या चञ्चला चारुभूषणा ॥

चतुरा चारुशीला च चम्पा चम्पावती तथा ।
चन्द्ररेखा चन्द्रकला चारुवेशाविनोदिनी ॥

चन्द्रचन्दनभूषाङ्गी चार्वाङ्गी चन्द्रभूषणा ।
चित्रिणी चित्ररूपा च चित्रमूर्तिधरा सदा ॥

छद्मरूपा छद्मवेशी श्वेतच्छत्रविधारिणी ।
छत्रातपा च छत्राङ्गी छत्रघ्नी छत्रपालिनी ॥

छुरितामृतधारौघा छद्मवेशनिवासिनी ।
छटाकृतमरालौघा छद्मकृतनिजामृता ॥

जयन्ती च जगन्माता जननी जन्मदायिनी ।
जया जैत्री च जरती जीवनी जगदम्बिका ॥

जीवा जीवस्वरूपा च जाड्यविध्वंसकारिणी ।
जगद्योनिर्जनश्रेष्ठा जगद्धेतुर्जगन्मयी ॥

जगदानन्दजननी जनयित्री जनसम्पदाम् ।
झङ्कारवाहिनी झन्झा झर्झरी निर्झरावती ॥

टङ्कारटङ्किनी टङ्का टङ्किता टङ्करूपिणी ।
डम्बरा डम्भरा डम्बा डमडम्बा च डम्बुरा ॥

ढोकिताशेषनिर्घोषा ढलढोलितलोचना ।
तपिनी त्रिपथा तीर्थवारिणी त्रिदशेश्वरी ॥

त्रिलोकत्रयी त्रैलोक्यतरणी तरणे तरुः ।
तापहन्त्री तपा तापा तपनीया तपावती ॥

तापिनी त्रिपुरादेवी त्रिपुराज्ञाकरी सदा ।
त्रिलक्षा तारिणी तारा तारानायकमोहिनी ॥

त्रैलोक्यगमना तीर्णा तुष्टिता त्वरिता त्वरा ।
तृष्णा तरङ्गिणी तीर्था त्रिविक्रमविहारिणी ॥

तमोमयी तामसी च तपस्या तपसः फला ।
त्रैलोक्यव्यापिनी तुष्टा तृप्तिः स्तुत्या तुला तथा ॥

त्रैलोक्यमोहिनी तूर्णा त्रैलोक्यविभवप्रदा ।
त्रिपदी च तथा तथ्या तिमिरध्वंसचन्द्रिका ॥

तेजरूपा तपःपारा त्रिपुरा त्रिपदस्थिता ।
त्रयी तन्त्री तापहरा तापनाङ्गजवाहिनी ॥

तरिस्तरणिस्तारुण्या तपिता तरणीप्रिया ।
तीव्रपापहरा तुल्या तूर्णपापतनूनपात् ॥

दारिद्र्यनाशिनी दात्री दक्षा देया दयावती ।
दिव्या दिव्यस्वरूपा च दीक्षा दक्षा दया द्रवा ॥

दिव्यरूपा दिव्यमूर्त्तिर्दैत्येन्द्रप्राणनाशिनी ।
द्रुता च द्रुतरूपा च द्वन्द्वशोकविनाशिनी ॥

दुर्वारा दमयाद्या च देवकार्यकरी सदा ।
देवप्रिया देवयाज्या दैवा देवधिया सदा ॥

दिक्पालपददात्री च दीर्घाद्या दीर्घलोचना ।
दुष्टद्वेषकामदुघा दोग्ध्री दूषणवर्जिता ॥

दुग्धा द्युसदृशाभासा दिव्या दिव्यगतिप्रिया ।
द्युनदी दीनशरणा दिव्या देहविहारिणी ॥

दुर्गमा दरिमा दामा दुरघ्नी दूरवासिनी ।
दुर्विगाह्या दयाधरा दूरसन्तापनाशिनी ॥

दुराशया दुराधारा द्राविणी द्रुहिणस्तुता ।
दैत्यशुद्धिकरा देवी सदा दानवसिद्धिदा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्बुद्धिनाशिनी देवी सततं दानदायिनी ।
दानदात्री च देवेशी द्यावाभूमिविगाहिनी ॥

दृष्टिदा दृष्टिफलदा देवतागृहसंस्थिता ।
दीर्घव्रतकरी दीर्घा दीर्घधर्मा दयावती ॥

दण्डिनी दण्डनीतिश्च दोषदण्डधरार्चिता ।
दानार्चिता द्रव्यदात्री द्रवैकनियमापरा ॥

दुष्टसन्तापशाम्या च दात्री दवथुरोधिनी ।
देवी दिव्यबलवती दान्ता दान्तजनप्रिया ॥

दारिद्र्यादितटा दुर्गा दुर्गादैन्यप्रचारिणी ।
धर्मरूपा धर्मधुरा धेनुरूपा धृतिर्ध्रुवा ॥

धेनुदाना ध्रुवस्पर्शा धर्मकामार्थमोक्षदा ।
धर्मिणी धर्ममाता च धर्मधात्री धनुर्धरा ॥

धात्री ध्येया धरा धौर्या धारिणी धृतकल्मषा ।
धनदा धर्मदा धन्या धान्यदा धन्यदा धना ॥

धन्या धान्यादिरूपा च धरणी धनपूरिता ।
धारणा धनरूपा च धर्माधर्मप्रचारिणी ॥

धर्मिणी धर्मतन्त्राख्या धर्मिन्नामलकेशिनी ।
धर्मप्रचारनिरता धर्मरूपा धुरन्धरी ॥

धनुर्विद्या धनी धात्री धनुर्विद्याविशारदा ।
निरानन्दा निरीहा च निर्वाणद्वारसंस्थिता ॥

निर्वाणपदवीदात्री नन्दिनी नाकनायिका ।
नारायणी निषिद्धघ्नी निजरूपप्रकाशिनी ॥

नमस्या निर्द्वया नन्दनतनूतनरूपिणी ।
निर्मला निर्मलाभासा निरध्या निरपत्रपा ॥

नित्यानन्दमयी नित्या नित्यनूतनविग्रहा ।
निषिद्धा नीतिधैर्या च निर्वाणपददीपिका ॥

निःशङ्का च निरातङ्का निर्णाशितमहामनाः ।
निर्मला नन्दजननी निर्मलश्यामवेशिनी ॥

निरवद्यकुलश्रेष्ठा नित्यानन्दस्वरूपिणी ।
निर्णया निर्णयपिता निषिद्धकर्मवर्जिता ॥

नित्योत्सवा नित्यतृप्ता नमस्कार्या निरञ्जना ।
निष्ठावती निरातङ्का निर्लेपा निश्चलात्मिका ॥

निरवद्या निरीशा च निरञ्जनपुरस्थिता ।
पुण्यप्रदा पुण्यकरी पुण्यगर्भा पुरातनी ॥

पुण्यरूपा पुण्यदेहा पुण्यगीता च पावना ।
पूजा पवित्रा परमा परा पुण्यविभूषणा ॥

पुण्यदात्री पुण्यधरा पुण्यापुण्यप्रवाहिनी ।
पुण्यदेहा पुण्यवती पूर्णिमा पूर्णचन्द्रमाः ॥

पौर्णमासी परा पद्मा पथिज्ञा पद्मगन्धिनी ।
पद्मिनी पद्मवस्त्रा च पद्ममालाधरा सदा ॥

पद्मोद्भवा पराख्या च परमानन्दरूपिणी ।
प्रकाश्या परमाश्चर्या पद्मगर्भनिवासिनी ॥

पावनी च तथा पूता पवित्रपरमाकला ।
पद्मार्चिता पद्मसंस्था पद्ममाता पुरातनी ॥

पद्मासनगता नित्या पद्मासनपरिच्छदा ।
पद्मशुक्लासनगता पद्मरक्तासना तथा ॥

पदार्थदायिनी पद्मवनवासपरायणा ।
पूर्णा प्रकाशिनी प्रेमा पुण्यश्लोका च पावनी ॥

फलहन्त्री फलहरा फलिनी फलरूपिणी ।
फुल्लेन्दीलोचना फुल्ला फुल्लकोरकगन्धिनी ॥

फलिनी फालिनी फेना फुल्लच्छाटितपातका ।
विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्ववरप्रिया ॥

ब्रह्मण्या ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मज्ञा विमलामला ।
बहुला बाहुला वल्ली बल्लवीवनदायिनी ॥

विक्रान्ता विक्रमामाला बहुभाग्यविलोचना ।
विश्वामित्रा विष्णुसखी वैष्णवी विष्णुवल्लभा ॥

विरूपाक्षप्रियादेवी विभूतिर्विश्वतोमुखी ।
वेदवादरता वाणी वेदाक्षरसमन्विता ॥

विद्या विद्यावती वन्द्या बृहती ब्रह्मवादिनी ।
वरदा विप्रहृष्टा च वरिष्ठा च वशोधिनी ॥

विद्याधरी वसुमती विप्रबुद्धा विशोधिता ।
व्योमस्थानावती वामा विधात्री विबुधप्रिया ॥

बुद्धिर्विनाशिनीचित्ता ब्रह्मरूपवरानना ।
वासिनी ब्रह्मजननी ब्रह्महत्यापहारिणी ॥

ब्रह्मविष्णुस्वरूपा च सदा विभववर्द्धिनी ।
विभाषिणी व्यापिनी च व्यापिका परिचारिका ॥

विपन्नार्त्तिहरा देवी विनयव्रतचारिणी ।
विपन्नशोकसंहर्त्री विपञ्चीवाद्यतत्परा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेणुवाद्यपरादेवी वेणुश्रुतिपरायणा ।
वर्चस्विनी बलकरी बलमूला विवस्वती ॥
विषाघ्ना विशिखा चैव विकल्पपरिवर्जिता ।
बुद्धिदा बृहतीदेवी विधिविच्छिन्नसंशया ॥
विचित्राङ्गी विचित्राभा विच्छाविभवर्द्धिनी ।
विजया विनया वन्द्या वामदेवी वरप्रदा ॥
विषघ्नी च विशालाक्षी विज्ञानविन्धमानिनी ।
भद्रा भोगवती भव्या भवानी भयवासिनी ॥
भूतधात्री भयहरी भक्तवश्या भयापहा ।
भक्तिदा भयदा भेरी भक्तदुर्गप्रदायिनी ॥
भागीरथी भानुमती भाग्यदा भगनिर्हिता ।
भवप्रिया भूततुष्टिर्भूतिदा भूतभूषणा ॥
भोगावती भूतिमती भव्यरूपा भ्रमिर्भ्रमा ।
भूरिदा भक्तिसुलभा भाग्यवृद्धिकरी सदा ॥
भिक्षुमाता भिक्षुप्रिया भव्या भवस्वरूपिणी ।
महामाया मातृप्रिया महानन्दा महोदरी ॥
मतिर्मुक्तिर्मनोज्ञा च महामङ्गलदायिनी ।
महापुण्या महादात्री मैथुनप्रियलालसा ॥
मनोज्ञा मालिनी मान्या मणिमाणिक्यधारिणी ।
मुनिस्तुता मोहकरी मोहहन्त्री मदोत्कटा ॥
मधुपानरता मद्या मदाघूर्णितलोचना ।
मधुपानप्रमत्ता च मधुलुब्धा मधुव्रता ॥
माधवी मालिनी मान्या मनोरथपथातिगा ।
मोक्षैश्वर्यप्रदा मर्त्या महापद्मवनाश्रिता ॥
महाप्रभावा महती मृगाक्षी मीनलोचना ।
महाकाठिन्यसम्पूर्णा महाक्षी महतीकला ॥
मुक्तिरूपा महामुक्ता मणिमाणिक्यभूषणा ।
मुक्ताफलविचित्राङ्गी मुक्तारञ्जितनासिका ॥
महापातकराशिघ्नी मनोनयननन्दिनी ।
महामाणिक्यरचिता महाभूषणभूषिता ॥
मायावती मोहहन्त्री महाविद्याविधारिणी ।
महामेधा महाभूतिर्महामाया प्रियासखी ॥
मनोधरी महोषाया महामणिविभूषणा ।
महामोहप्रणयिनी महामङ्गलदायिनी ॥

यशस्विनी यशोदा च यमुनावारिहारिणी ।
योगसिद्धिकरी यज्ञा यज्ञेशवन्दितप्रिया ॥
यज्ञेशी यज्ञफलदा यज्ञनीया यशस्करी ।
योगयोनिर्योगमाया योगिनी योगबुद्धिदा ॥
योगयुक्ता यमाद्यष्टसिद्धिर्यज्ञैकधारिणी ।
यमुनाजलसेव्या च यमुनाजलविहारिणी ॥
यामिनी यमुना याम्या यमलोकनिवासिनी ।
लोकालोकविलासा च लोलत्कल्लोलमालिका ॥
लोलाक्षी लोकमाता च लोकानन्दप्रदायिनी ।
लोकबन्धुर्लोकधात्री लोकालोकनिवासिनी ॥
लोकत्रयनिवासा च लक्षलक्षणलक्षिता ।
लीला लोका च लावण्या लघिमा कमलेक्षणा ॥
वासुदेवप्रिया वामा वसन्तसमयप्रिया ।
वासन्ती वसुदा वज्रा वेणुवादपरायणा ॥
वीणा वाद्यप्रमत्ता च वीणानादविभूषणा ।
वेणुवाद्यरता चैव वंशीनादविभूषणा ॥
शुभाशुभरतिः शान्तिः शैशवा शान्तिविग्रहा ।
शीतला शोषिता शोभा शुभदा शुभदायिनी ॥
शिवप्रिया शिवानन्दा शिवपूजासु तत्परा ।
शिवस्तुत्या शिवसत्या शिवनित्यपरायणा ॥
श्रीमती श्रीनिवासा च श्रुतिरूपा शुभव्रता ।
शुद्धविद्याजपकरी शुभकर्त्री शुभाशया ॥
श्रुतानन्दा श्रुतिः श्रोत्री शिवप्रेमपरायणा ।
शोषणी शुभवार्ता च शालिनी शिवनर्तकी ॥
षड्गुणायुषदाक्रान्ता षडङ्गश्रुतिरूपिणी ।
सरसा सुप्रभा सिद्धा सिद्धसिद्धिप्रदायिनी ॥
सेव्या सङ्गा सती साध्वी मुक्तिरूपा मदप्रिया ।
सम्पत्प्रदा स्तुतिः स्तुत्या स्तवनीया स्तवप्रिया ॥
स्थैर्यदा स्थैर्यगा सौख्या स्त्रैणसौभाग्यदायिनी ।
सूक्ष्मासूक्ष्मा स्वधा स्वाहा स्वधालेपप्रमोदिनी ॥
स्वर्गप्रिया समुद्राभा सर्वपातकनाशिनी ।
संसारवारिणी राधा सौभाग्यवर्द्धिनी सदा ॥
हरप्रिया हिरण्याभा हरिणाक्षी हिरण्मयी ।
हंसरूपा हरिद्राभा हरिद्वर्णा हरिप्रिया ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेमदा क्षालिता क्षेमा क्षुद्रघण्टाविधारिणी ।
अजवा अतुलानन्ता अनन्तामृतदायिनी ॥

अन्नदाना अशोका च अलका अमृतश्रवा ।
अनाथवल्लभा अन्ता अयोनिसम्भवा प्रिये ॥

अव्यक्तालक्षणाक्षुण्णाविच्छिन्ना चापराजिता ।
अनाथानामभीष्टार्थसिद्धिदानन्दवर्द्धिनी ॥

अणिमादिगुणाधारा अगण्या लोकहारिणी ।
अचिन्त्यशक्तिबलयाद्भुतरूपा च हारिणी ॥

अद्रिराजसुतादूती अष्टयोगसमन्विता ।
अच्युता अनवच्छिन्ना अक्षुण्णशक्तिधारिणी ॥

अनन्ततीर्थरूपा च अनन्तामृतरूपिणी ।
अनन्तमहिमापारा अनन्तसुखदायिनी ॥

अर्थदा अन्नदा अर्था सदा अमृतवर्षिणी ।
अविद्याजालशमनी अप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥

अशेषविघ्नसंहन्त्री अशेषगुणगुम्फिता ।
अज्ञाननाशिनीदेवी अनन्तसिद्धिदायिनी ॥

अशेषपापसंहन्त्री अशेषदेवतामयी ।
अघोरा अमृतादेवी अज्ञानतिमिरप्रदा ॥

अनुग्रहपरादेवी अभिरामविनाशिनी ।
अनवद्यपरिच्छिन्ना अत्यनन्तकलङ्किनी ॥

आरोग्यदात्री आनन्दा अपर्णार्तिविनाशिनी ।
आश्चर्यरूपा आद्यस्था आत्मविद्या सदाप्रिया ॥

आप्यायिनी च आलस्या आपदाहामृतप्रदा ।
इष्टारतिरिष्टदात्री इष्टापन्नफलप्रदा ॥

इतिहासस्मृतिः श्वेता इहामुत्रफलप्रदा ।
इष्टा च इष्टरूपा च इत्यादिपरिवन्दिता ॥

इन्दिरा रचिताक्षी च इलङ्कार इधारिणी ।
इन्द्राणीसेवितपदा इन्द्रियप्रीतिदायिनी ॥

ईश्वरी ईशजननी ईशैश्वर्यप्रदायिनी ।
उत्तङ्कशक्तिसंयुक्ता उपमानविवर्जिता ॥

उत्तमश्लोकसंसेव्या उत्तमोत्तमरूपिणी ।
उक्षा ऊषा ऊधा राधा ऊर्मिला च शुचिस्मिते ॥

ऊहा ऊहवितर्का च ऊर्ध्वधारा च ऊर्ध्वगा ।
ऊर्ध्वधारा ऊर्ध्वयोनिरुपपापविनाशिनी ॥

ऋषिवृन्दस्तुता ऋद्धिर्ऋणत्रयविनाशिनी ।
ऋतम्भरा ऋद्धिदात्री ऋक्था ऋक्षस्वरूपिणी ॥

ऋतुप्रिया ऋक्षमाता ऋक्षार्चिर्ऋक्षमार्गगा ।
ऋतुलक्षणरूपा च ऋतुमार्गप्रदर्शिनी ॥

एषिताखिलसर्वस्वा एकैकायुतदायिनी ।
ऐश्वर्यतर्प्यरूपा च ऐतिरैन्द्रशिरोमणिः ॥

ओजस्विनी ओषधी च ओजोनादौजदायिनी ।
ॐकारजननीदेवी ॐकारप्रतिपादिता ॥

औदार्यप्रकरा भद्रे औपेन्द्रौषधिविग्रहा ।
अंश्ववस्था च अमृता अम्बा अम्बालिका तथा ॥

अम्बुजाक्षी च अन्धाना अम्बुस्निग्धाम्बुजानना ।
अंशुमाली अंशुमती अंशीत्यंशांशसम्भवा ॥

अन्धतामिस्रहा भद्रे अत्यन्तशोभनस्वरा ।
अर्थेशा अर्थदात्री च अर्णोरूपा अनाहता ॥

[शृणु नामान्तरं भद्रे ककारादि वरानने ।
अत्यन्तसुन्दरं शुद्धं निर्मलोत्पलगन्धिनि ॥]

कुटन्ता करुणा कान्ता कर्मजालविनाशिनी ।
कमला कल्पलतिका कलिकल्मषनाशिनी ॥

कमनीयकला कर्णा कपर्द्दिपूजनप्रिया ।
कदम्बकुसुमाभासा सदा कोकनदेक्षणा ॥

कालिन्दी केलिकलिता कणा कादम्बमालिका ।
कान्ता लोकत्रयकथा कन्थरूपा मनोहरा ॥

खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खगेन्दुधारिणी ।
खेखेलगामिनी खड्गा खड्गेन्दुतलकाष्टिता ॥

खेचरी खेचरीविद्या खगतिः ख्यातिदायिनी ।
खण्डिताशेषपापौघा खलबुद्धिविनाशिनी ॥

खातेनकन्दसन्दोहा खड्गखट्वाङ्गधारिणी ।
खरसन्तापशमनी खरमन्तनिकृन्तनी ॥

गुहागन्धगतिर्गौरी गन्धर्वनगरप्रिया ।
गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरवरङ्गिणी ॥

ग्रहपीडाहरा गुप्ता गदस्निग्धमनाः प्रिया ।
चाम्पेयलोचना चारुचार्वङ्गी चारुरूपिणी ॥

चन्द्रचन्दनसिक्ताङ्गी चर्वणीया चिरस्थिता ।
चारुचम्पकमालाढ्या चालिताशेषदुष्कृता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारिताशेषवृजिना चारुताशेषमस्तुला ।
रक्तचन्दनसिक्ताङ्गी रक्ताङ्गी रक्तमालिका ॥

शुक्लचन्दनसिक्ताङ्गी शुक्लाङ्गी शुक्लमालिका ।
पीतचन्दनसिक्ताङ्गी पीताङ्गी पीतमालिका ॥

कृष्णचन्दनसिक्ताङ्गी कृष्णाङ्गी कृष्णमालिका ।
शुक्लवस्त्रपरीधाना शुक्लवस्त्रोत्तरीयणी ॥

रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तवस्त्रोत्तरीयणी ।
पीतवस्त्रपरीधाना पीतवस्त्रोत्तरीयणी ॥

कृष्णपट्टपरीधाना कृष्णपट्टोत्तरीयणी ।
वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णकार्यप्रकाशिनी ॥

पद्मिनी नागरी गोपी कालिन्दीअवगाहिनी ।
गोपीश्वरप्रिया भृत्या सदा नगरमोहिनी ॥

त्रिपुरा त्रिपुरादेवी त्रिपुराज्ञाकरी सदा ।
त्रिपुरासन्निकर्षस्था त्रिपुराअनुचारिका ॥

त्रिपुरापुरसंस्था तु या राधा पद्मिनी परा ।
नानासौभाग्यसम्पन्ना नानाभरणभूषिता ॥

[स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं कथितं तव भक्तितः ।
एतत्स्तोत्रञ्च मन्त्रञ्च कवचञ्च वरानने ॥

कल्पे कल्पे च देवेशि प्रपठेद्यदि मानवः ।
उपास्य राधिकां दिव्यां केवलं कमलेक्षणे ॥

बहुकालेन देवेशि उपविद्यापि सिद्धयति ।
पद्मिनी राधिका विद्या उपविद्या सुनिश्चिता ॥

महाविद्यां महेशानि उपास्य यत्नतः स्वयम् ।
प्रकटं परमेशानि राधामन्त्रेण सुन्दरि ॥

शृणु नामसहस्राणि प्रकटे यत्तु शस्यते ।
कृष्णस्तु कालिका साक्षाद्राधा प्रकृतिपद्मिनी ॥

'कृष्णराधेगोविन्द' इदमुच्चार्य यत्नतः ।
तदासौ वैष्णवो देवि सर्वत्रैव प्रकाश्यते ॥
गोविन्दो यस्तु देवेशि स्वयं त्रिपुरसुन्दरी ॥

विना मन्त्रं विना होमं विना पूजां विना बलिम् ।
विना गन्धं विना पुष्पं विना नित्योदितां क्रियाम् ॥

प्राणायामं विना ध्यानं विना भूतविशोधनम् ।
विना जापं विना दानं येन राधा प्रसीदति ॥

राधासहस्रनामाख्यस्तोत्रमार्गेण पार्वति ।
यो जपेद्वैष्णवं मन्त्रं राधिकामन्त्रमेव च ॥

स पतेन्नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

श्रुत्वा गुरुमुखान्मन्त्रं वैष्णवं भक्तितत्परः ।
ततः पुरश्चरीं कुर्यादेकविंशतिसंख्यकाम् ॥

पूर्णाभिषेकसिक्तस्य ततो गुरुपदार्चनम् ।
विना पूर्णाभिषेकञ्च भवाब्धेः पारमिच्छति ॥

अज्ञस्य तस्य दुर्बुद्धेर्निरये पतनं भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यात्पूर्णाभिषेचनम् ॥

कृत्वा पूर्णाभिषेकञ्च पठेद् राधास्तवं प्रिये ।
स्तवपाठान्महेशानि स भवेद्भवनन्दनः ॥

विमग्नानां यथा श्रेष्ठा भवेद्भागीरथी प्रिये ।
वैष्णवानां यथा शम्भुः प्रकृतीनां यथा सती ॥

पुरुषाणां यथा विष्णुर्नक्षत्राणां यथा शशी ।
स्तवानाञ्च तथा श्रेष्ठं राधास्तोत्रमिदं प्रिये ॥]

नाथ !

अलग किया था नाथ ! निजसे तुम्हींने कभी, तबसे पड़े हैं भव-सिन्धुमें निहार लो ।
जीव हुए, हम हुए, हमसे हजारों हुए, कैसी हुई मधुर बिडम्बना बिचार लो ॥
जैसा हो घुमाते कर्म-चक्रपर घूमते हैं, विषम दशा है जो निहारो तो निहार लो ।
तरल तरङ्ग झोंके खा रहे हैं बेबश हैं, हाथमें तुम्हारे है डुबाओ या उबार लो ॥

मधुरप्रसाद 'कविरत्न'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[गतांकसे आगे]

सल तो यह है कि शरणागत हो जानेपर हमारा सब भर-भार भगवान्‌हीपर हो जाता है। जहाँ हम भगवान्‌की शरणमें गये और मैं आपका हूँ यह निवेदन किया, वहींसे हमारी सब चिन्ताएँ भगवान्‌हीपर जा पड़ती हैं । हम निश्चेष्ट हो जाते हैं, हाथ-पैरतक नहीं हिलाते । सब कुछ हमारे लिये भगवान् ही करते हैं । चाहे हम अपने हृदयमें न भी सोचें, परन्तु भगवान्‌का यह व्रत है कि जो मुझमें आत्मार्पण कर देते हैं उनका योगक्षेम मैं करता हूँ । आप किसी सज्जनके यहाँ पाहुने होते हैं तब आप घरसे अधिक आरामकी आशा नहीं कर सकते । न अपने आरामके सब सामानकी चिन्ता ही करते हैं । दूसरेके स्थानपर जाकर हमें जैसा भी सुभीता मिल जाता है, हम सन्तोष कर लेते हैं, मुखसे नहीं कहते । परन्तु जैसे ही आपका डेरा उनके मकानमें हुआ कि उनको उसी समयसे आगे-से-आगे आरामका इन्तज़ाम करना पड़ता है । वह बेचारे सोते-सोते भी किसी बातकी याद आनेपर चौंककर उठ बैठते हैं, और नौकरको बुलाकर कहते हैं 'अरे भाई शामके लिये उनके वास्ते सवारीका प्रबन्ध करना मैं भूल गया । शायद वह 'रामनिवासबाग़' देखने जायँगे ।' कहिये, साधारण ज्ञान रखनेवाला आरामतलब मनुष्यतक अपने प्राघुणिककी इतनी चिन्ता रखता है कि अपना खाना, पीना, सोनातक किरकिरा कर देता है । बहुत-से इसी क्लेशके कारण किसी प्राघुणिकको अपने खास रहनेके स्थानमें नहीं ठहराते । दूसरे मकानमें टिकाते हैं, जिसमें कुछ कमी भी रह जाय तो अपनी इतनी ज़िम्मेवारी नहीं रहती; कुछ ज़रूरत होनेपर प्राघुणिक अपने-आप भी प्रबन्ध कर लेता है। और हमें यह कहनेका अवसर भी रहता है कि आपने कहलाया क्यों नहीं, तत्काल प्रबन्ध कर दिया जाता । आजकल तो खैर पाहुनोंके लिये होटल-का द्वार खुला है । केवल बिल चुका देना पड़ता है । किन्तु जिन आतिथेयोंके यहाँ अतिथिका पैंड-पैंडपर ध्यान रक्खा जाता है उनकी चिन्ता वही जानते हैं । फिर अतिथि तो कुछ कालके ही लिये आता है और सब बोझ हमपर रखना भी नहीं चाहता, परन्तु शरणागतका तो सब बोझ भगवान् अपने ऊपर समझते हैं । फिर आप ही देख लीजिये, सहसा ही इतना बड़ा अधिकार न तो हमें मिल ही सकता है और न बिना सोचे-समझे भगवान् ही हमें अभिमुख कर सकते हैं ।

साफ़ बात तो यह है कि यदि हमें भगवान्‌का माहात्म्य कुछ भी मालूम है, कुछ भी भक्ति है और हृदयमें कुछ भी प्रेम है तो लाख तकलीफ़ उठाकर भी हम भगवान्‌की भक्ति करेंगे । लोग विघ्न डालेंगे, हमें तकलीफ़ पहुँचायेंगे और हम उन विघ्न-बाधाओंको हटाकर तकलीफ़ोंको सहकर भी भगवान्‌की तरफ़ ही जायेंगे । हम अपने आरामको और उपायोंकी सरलताको नहीं देखेंगे । हम देखेंगे अपने ध्येयको । हमको भगवान्‌की तरफ भावना है और उनसे मिलनेकी चटपटी है तो लाख दुःख सहकर भी हम उनके मिलनेके उपाय करेंगे । इसके विरुद्ध—दूसरी तरफ जानेमें अनेक आरामके लालच भी दिये जाते होंगे तो भी हम उस ओर नज़रतक नहीं डालेंगे । जिसकी तरफ़ जिसकी लगन लग जाती है वह आरामको नहीं देखता । वह तो उसकी प्राप्तिपर लक्ष्य रखता है । किन्तु जो आराम देख रहा है उसकी लगन सच्ची नहीं, उसकी लगन तो सरलतापर है । मान लीजिये आपको सुवर्णकी जरूरत है, आप उसके लिये कहाँ-कहाँ जायँगे, कितने-कितने कष्ट उठायेंगे । हम कहेंगे, 'भाई ! इतना दुःख क्यों उठाते हो । लो उसके स्थानमें यह पत्थरका टुकड़ा ले लो ।' तो क्या आप मान जायँगे ? पत्थरके मिलनेमें कोई श्रम नहीं परन्तु हम श्रम करके भी लेते हैं सोना । क्योंकि हमको जरूरत तो उसकी है ।

बस, इसी तरह जो सच्चे श्रेयःकामुक हैं वह अपने श्रेय और ध्येयकी ओर ही दृष्टि रखते हैं, उपायकी सरलता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लट्टू नहीं होते। चाहे हमें कितनी ही तकलीफ़ें मिलें, कितना ही परिश्रम करना पड़े परन्तु हमें वास्तविक सत्य सुख, सच्चा जो हमारा प्राप्तव्य है वही मिलना चाहिये। उसकी प्राप्तिके लिये चाहे कठिन-से-कठिन जप, तप, यज्ञ, दान, उपवासादि करने पड़ें चाहे तीर्थ-तीर्थ घूमना पड़े परन्तु प्राप्त करना हमें वही है। हमारी दृष्टि हमारे प्राप्तव्य-पर है सरलतापर नहीं। जो यज्ञ, याग, तपस्यादिको कठिन समझकर सरलताको टटोलते हैं, मालूम होता है वह अपने प्राप्तव्यपर दृढ़ नहीं हैं। मजनूको अपनी प्रेयसी लैलापर इतना प्रेम था कि उसकी प्राप्तिके लिये उसे कोई कैसी भी कठिनाईका काम बताता तो वह उसकी प्राप्तिकी उमङ्गमें प्रसन्नचित्तसे करने लगता। किसी दुष्टने कुएँको दिखाकर कहा कि तुम्हारी लैला इसीमें छिपी हुई है, तुम उसे पा सकते हो, वह अपनी तकलीफ़ोंका बादावर्द किये बिना ही तत्काल उसमें कूद पड़ा।

जो यह कहते हैं कि यह उपाय कठिन है, यह सरल है वह अपने लक्ष्यपर ही दृढ़ नहीं। यदि कोई उपाय सरल हो और उसके द्वारा उनकी चाही हुई चीज़से दूसरी चीज़ मिलेगी तो क्या वह ले लेंगे? और यदि अपनी चाही चीज़के लिये उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ेगा तो छोड़ देंगे? इसलिये सरलताकी बात तो विचारपूर्ण नहीं। सच्चे भक्त और भगवान्‌के प्रेमियोंको तो चाहे कितना भी कठिन उपाय और परिश्रम करना पड़े उन्हें इसकी कोई परवा नहीं, उन्हें तो प्रयोजन है भगवान्‌से। उनका प्राप्तव्य, उनका लक्ष्य, उनका प्रेष्ठ, जहाँ होगा उसी ओर वह अभिमुख हो जायँगे। परन्तु वह उसीके द्वारा उसे पाना चाहते हैं अर्थात् उनका उपेय भी वही और उपाय भी वही। अतएव उसको पानेके लिये वह उसीके शरण आते हैं दूसरी ओर चाहे कितनी ही सरलता हो उनकी नज़र नहीं जाती। बस, समझ लीजिये ऐसे ही भक्तोंकी यह बात है और वही 'प्रपत्ति' के अधिकारी भी हैं।

अब रही यह कि जैसा लोग समझते हैं 'प्रपत्ति' क्या उतनी सरल है? जो जन्मसे ही भगवान्‌का अनुराग लिये उत्पन्न होते हैं अथवा जिन भक्तोंको शापादिके कारण साधारण कुटुम्बमें जन्म मिला है उनके विषयमें तो पहले कह आये हैं, उनकी बात तो जाने दीजिये। किन्तु अन्य पुरुषोंका भगवान्‌के अभिमुख होना और उनकी भक्तिमें लीन हो जाना क्या सहज ही है? शैशवसे ही संसारी प्रवाह एकके अनन्तर एक ऐसा चलता है कि मरते दमतक मनुष्यको अवकाश नहीं लेने देता। चौदह-पन्द्रह वर्षतककी बाल्यावस्था तो जानें अज्ञान दशा गिनी जाती है। परन्तु यौवनका आरम्भ जैसे ही होता है और मनुष्य विवाह करके गृहस्थाश्रममें जैसे ही प्रवेश करता है वैसे ही वह धनैषणा-पुत्रैषणादिके चक्करमें ऐसा पड़ता है कि इनके सिवा दूसरी ओर ताकनेका ही अवसर नहीं मिलता। प्रथम तो स्त्री और धन यही इतने आसक्तिकर्ता और प्रतिबन्धक हैं कि इनकी मायामें पड़कर मनुष्यको दूसरा ज्ञान ही नहीं रहता। दुनियाके वैज्ञानिकोंने जिसकी दृष्टिमें ही इतना भयंकर असर बतलाया है कि उसके पड़ते ही जादूकी तरह आदमी खिंच जाता है, उस स्त्रीके मोहसे अलग होना क्या सहज है? अज्ञोंकी बात तो जाने दीजिये किन्तु जो लोक और शास्त्र दोनोंमें पण्डित हैं वह भी ऐसे सपाटेमें आते हैं कि दूसरोंकी क्या कथा, उनतकको अपना भान नहीं रहता। प्रत्युत लोगोंका तो यहाँतक कहना है कि समझदार लोग ही ज़्यादा चक्करमें पड़ते हैं। किसीने कहा है—

अज्ञास्तरन्ति पारं विज्ञा विज्ञाय मज्जन्ति।
कथय कलावति! केयं तव नयनतरङ्गिणीरीतिः॥

'अजान आदमी चाहे पार उतर जायँ परन्तु विज्ञ लोग जानते हुए भी उसमें डूब जाते हैं। अतएव हे अद्भुत-कलाशालिनी! बतलाओ तुम्हारी इस नयननदीकी यह क्या नयी रीति है [नदीमें उसकी थाह या तैरना नहीं जाननेवाले डूब जाते हैं और जानकार पार उतर जाते हैं किन्तु यहाँ विपरीत है]।'

साधारण ज्ञानियोंकी तो क्या चलायी, जगत्प्रसिद्ध प्रभावशाली विश्वामित्र आदि ऋषितक इस फन्देसे नहीं बच पाये। जो ऋषि सङ्गसे बचनेके लिये जङ्गलमें चले गये, इन्द्रियोंको क्षीणबल करनेके लिये केवल दर्भके अङ्कुरमात्र भोजन करते थे उन्हें भी इस जादूने ऐसा घड़ेमें लिया कि आजतक क़ैदसे नहीं छूटे। कालिदास कहते हैं—

पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्ति-
श्चरन्मृगैः सार्द्धमृषिर्मघोना।
समाधिभीतेन किलोपनीतः
पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दर्भाङ्कुरमात्र भोजन करके मृगोंके साथ विचरनेवाले शातकर्णि ऋषिको समाधिसे डरे हुए इन्द्रने पाँच अप्सराओं-के यौवनरूपी कूटयन्त्रमें क़ैद कर लिया।'

धनकी मायाको सब लोग जानते हैं। 'निन्यानबेका फेर' दुनियामें प्रसिद्ध है। यह वह मदिरा है जिसके हाथमें आते ही आदमी नशेमें बेहोश हो जाता है। बिहारी कहते हैं—

कनक कनकसों सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥

बात तो यह है कि कान्ता और कनक यह भवसागरके दो भयंकर भँवर हैं। इनमें पड़े पीछे आदमीकी तो क्या कथा बड़े-बड़े ज्ञानके जहाज़ भी डूब चुके हैं। ठीक ही तो कहा है—

वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः॥

'विधाताने कान्ता और कनक दो प्रकारके भयानक चक्र बनाये हैं इनमें अनासक्त रहकर जो बच जाता है उसे नरके रूपमें साक्षात् शिव समझना चाहिये।' जब दो ही चक्करोंका यह हाल है तब मनुष्यके पीछे तो ग्यारह चक्करोंका सामान हरदम साथ रहता है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और सबके नेता मनीराम, इस तरह ये ग्यारहों भयंकर रुद्र समयपर वह रौद्र रूप धारण कर लेते हैं कि मनुष्य सदाके लिये आपत्तियोंमें फँस जाता है। मनुष्यकी इन्द्रियलालसा और मस्ती थोड़े दिनकी होती है किन्तु उसका स्थायी परिणाम सदाके लिये उसे हीन कर डालता है। ज्ञानियोंने कहा है—

कतिपयदिवसस्थायिनि मदकारिणि यौवने दुरात्मानः।
विदधति तथाऽपराधं जन्मैव वृथा यथा भवति॥

'चन्द दिनके पाहुने किन्तु नशीले इस यौवनमें अज्ञानी लोग वह अपराध कर बैठते हैं जिससे जवानी ही क्या, उनका सम्पूर्ण जन्म ही व्यर्थ हो जाता है।' एक आपत्ति हो तो उसका उपाय किया जाय परन्तु चारों तरफसे जहाँ खींचा-तानी मची है वहाँ बेचारा मनुष्य क्या कर सकता है। परमहंसशिरोमणि भगवान् शुक कहते हैं—

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा-
च्छिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥

'एक ओर जिह्वा खींचती है तो दूसरी तरफ़ तृष्णा, इधर कामेन्द्रिय खींच ले जाना चाहती है तो कभी त्वचा और पेटका प्रश्न प्रबल हो उठता है। उससे बचता है तो कर्णेन्द्रियके द्वारा खींचा हुआ दूर बह जाता है। वहाँसे बचने भी नहीं पाता है कि थोड़ी ही देरमें सुगन्धकी डोरीसे दूसरी ही तरफ़ खिंच जाता है। इधरसे अभी छुटकारा भी नहीं हुआ कि वे चपल आँखें दूसरी ही ओर ढकेल ले जाती हैं। जिस तरह एक घरवालेके कई स्त्रियाँ हों और वे जिस तरह उसकी खींचातानीमें अच्छी तरह मरम्मत करती हैं वही दशा इस मनुष्यकी है।' महर्षि व्यास तो खींचातानी भी नहीं कहते, वह तो कहते हैं 'लुनन्ति'। एक शरीर हो और उसको खींचनेवाली दो-चार नहीं 'बह्व्यः' बहुत-सी। सो भी कौन? 'सपत्न्यः!' सौतें, जिनका बैर जगत्प्रसिद्ध है। बस फिर वहाँ छिन्न-भिन्न होनेमें क्या कसर है? प्रत्येक चाहती हैं कि समूचे गृहपतिको मैं ले जाऊँ। अतएव बड़े जोरके साथ चारों ओरसे 'रस्से खींचनेकी कसरत' हो रही है। अब कहिये, टुकड़े होनेमें कुछ बाकी रहेगा? इसी कारण तो व्यासजीके अक्षर हैं—'लुनन्ति'।

इस खींचातानीके मैदानमें दिमाग़को सही-सलामत रखकर भगवान्‌के आगे अभिमुख होना, सच कहिये, क्या सीधी बात है? यदि किसी तरह सत्सङ्गके कारण इस चक्करसे छुटकारा भी मिला और भगवत्प्राप्तिके लिये साधना भी आरम्भ की तो अनेक विघ्न ऐसे आते हैं कि जिनके कारण साधन होना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा हो जाता है। यदि उस घाटीको भी उलाँघकर साधनमें लगा ही रहा तो प्रथम नाना देवता ही उसकी मतिको व्यामुग्ध कर देते हैं जिससे वह स्वर्गादिके सुख, भोग, साम्राज्य, मन्वन्तराधु आदिके लालचमें पड़कर शरणागति-तक पहुँचता ही नहीं। बच्चेको हम जिस तरह चमकीले खिलौनोंसे भुला लेते हैं इसी तरह देवता लोग भगवच्छरणा-गतिके लिये दृढ़निश्चय हुए साधककी मतिको डुला देते हैं। और तो क्या, ध्रुव, प्रह्लाद सदृश भगवद्भक्तोंतक-पर ये देवता लोग अपनी करतूत चलानेमें नहीं चूकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के अनुगृहीत बालभक्त ध्रुवतक देवताओंके प्रलोभनमें पड़ जाते हैं। वहतक पश्चात्ताप करते हैं कि 'हाय ! महर्षि नारदने मुझे पहले ही चेता दिया था कि देवता तुम्हारी मतिको बिगाड़ेंगे परन्तु तुम दृढ़ रहना। भगवान्‌के सिवा कुछ मत चाहना। परन्तु हतभाग्य मैंने परात्पर नारायणके पास पहुँचकर भी 'अन्तवत्' जिनका कभी-न-कभी अन्त होता है ऐसे पदार्थ स्वीकार कर लिये!'

और तो और, स्वयं भगवान् पहले भक्तको चक्करमें डालते हैं। उसे यथेच्छ वरदान देकर अपनी भक्ति देना और अपनी शरणमें लेना बचा लेते हैं। महाभागवत प्रह्लादसे बढ़कर भगवत्कृपा किसपर हुई होगी जिनके वचनको सत्य करनेके लिये अचेतन—अस्थान—खम्भेमें भगवान्‌को प्रकट होना पड़ा। आपको अपने भक्तका अनिष्ट करनेवाले असुरपर इतना क्रोध आया कि ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता, ऋषि, पित्रीश्वर आदि सभीने स्तुति करके आपका क्रोध शान्त करना चाहा परन्तु न हो सका। साक्षात् प्रेयसी श्रीलक्ष्मीजी भी भगवान्‌को अनुकूल न कर सकीं। हद हो गयी। जहाँ प्राणप्रिया श्रीलक्ष्मी भी अकृतकार्य हो रही हैं वहाँ उनसे बढ़कर भगवत्प्रिय भला कोई मिलेगा जो भगवान्‌को प्रसन्न करे? परन्तु ब्रह्मा प्रह्लादसे कहते हैं—'तात्! प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम्॥' 'हे तात ! तुम्हारे पितापर कुपित हुए प्रभुको तुम्हीं प्रसन्न करो।' आहा ! यहाँ 'प्रभु' पदसे कितना भाव सूचित किया गया है। हमलोग हजार प्रसन्न करनेके उपाय करते हैं परन्तु प्रसन्न करनेका यत्न हमारे अधीन है। प्रसन्न होना हमारे हाथकी बात नहीं क्योंकि वह प्रभु हैं। वह प्रसन्न होना चाहें तभी तो हमारे प्रयत्नोंको स्वीकार करेंगे।

प्रह्लाद भगवान्‌के चरणोंमें जा गिरते हैं। जैसे ही प्रह्लादको अपने चरणोंमें पड़ा हुआ देखते हैं, दयालु भगवान्‌की मनोवृत्ति दूसरी हो जाती है। कालाग्निकी तरह जो प्रचण्ड कोप चढ़ रहा था वह दूधके उफानकी तरह अतर्कित शान्त हो जाता है। अपने प्राणप्रिय भक्तको देखकर आपका हृदय गद्‌गद हो उठता है। बड़े प्रेमसे आप स्वयं अपने हाथसे प्रह्लादको उठाते हैं और प्रेममें मग्न होकर उसके मस्तकपर अपना श्रीहस्त धरते हैं, कैसा श्रीहस्त? जो 'कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम्॥' 'कालरूप सर्पसे जिनकी मति त्रस्त हो रही है उनको जिस हस्तने अभयदान दिया है।' प्रह्लादके इस अनुग्रहपर, उनकी इस भाग्यवत्तापर महर्षि व्यास गद्‌गद होकर धन्य-धन्य कह उठते हैं। वह उनकी भाग्यवत्ताका अभिनन्दन करते हुए कहते हैं—'महाभागवतोऽर्भकः।'

भगवान्‌के इतने प्रिय होनेपर भी भगवान् पहले प्रह्लादकी परीक्षा करते हैं, नहीं-नहीं उन्हें भुलाते हैं। आप कहते हैं—'वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्॥' 'वत्स प्रह्लाद ! तुमको जो चाहिये सो माँगो,' यह मत समझना कि बड़े-बड़े पुण्यलोक आदि मैं नहीं दे सकूँगा। 'कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्' 'मैं मनुष्योंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हूँ।' किन्तु प्रह्लाद कौन हैं? 'महाभागवतोऽर्भकः।' वह कहते हैं—'मा मां प्रलोभयोत्पत्त्यासक्तं कामेषु तैर्वरैः।' 'हे भगवन्! हम-सरीखे तो जन्मसे ही कामनाओंमें आसक्त हैं, फिर मुझको आप कामनाओंके प्रलोभनमें क्यों पटकते हैं?'

भला जहाँ प्रह्लाद-सरीखे महाभागवतोंतककी यह कठिनातिकठिन परीक्षा की जाती है वहाँ साधारण साधकोंकी क्या गिनती है? साधक अदृष्टवश या सत्संगादिके कारण काम्य विभूतियोंसे बचकर भगवान्‌के अभिमुख भी हुआ और भक्तिसाधना करते समय कठिन परीक्षा करनेवाले देवताओंके प्रलोभनमें आ गया तो भगवच्छरणागतिसे वञ्चित हो जाता है। ऊँचे-से-ऊँचे दिव्य लोक ही क्यों न मिल जायँ परन्तु 'गतागतं कामकामा लभन्ते' संसारमें यातायातके चक्करसे विमुक्ति नहीं होती। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' पुण्य क्षय होनेपर फिर इस कर्ममार्गमें आना पड़ता है। यदि इस चक्करसे भी निकलकर आगे बढ़ा और साक्षात् प्रभुकी की हुई वरदानसमयकी अन्तिम परीक्षामें हिचक गया, प्रभुके सिवा दूसरी चीज़ माँग बैठा तो भी 'तमारूढच्युतं विदुः' इतना ऊँचा पहुँचकर भी वह फेल समझा जाता है। भगवान् इन्द्र, वरुण, कुबेर आदिकी विभूति दे देते हैं, 'पारमेष्ठ्यम्' ब्रह्मा बना देते हैं, और तो क्या मोक्षतक दे देते हैं परन्तु अपना भक्तियोग—शरणागति सहज ही नहीं देते।

माता अत्यावश्यक गृहकार्यमें लगी हो, और बच्चा माँके पास आनेको रोता हो और मचलता हो उस समय माता बहलानेके लिये एक खिलौना दे देती है यदि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे राज़ी हो गया तो माँ निश्चिन्त हो जाती है। यदि बच्चा उससे भी नहीं माना तो और भी अधिक चमचमाते खिलौने उसके पास फेंकती है, उसे मनाती है, पुचकारती है। यदि इनसे बालक बहल गया तो फिर वह नहीं आती। किन्तु ऐसा हठी बालक हुआ कि वह कितने ही खिलौने दे, कितना ही पुचकारे परन्तु जबतक वह स्वयं पास न आवे और उसे छातीसे लगाकर स्तन नहीं पिलावे तबतक हठ न छोड़े तो अन्तमें पुत्रस्नेहवती उस माताको स्वयं आना पड़ता है और अपने वात्सल्यभाजनका अनुरोध रखना पड़ता है। बस, भगवान् भी भक्तको पहले इसी प्रकार विभूतियोंसे सन्तुष्ट करना चाहते हैं स्वर्ग—पारमेष्ठ्य—और तो क्या मोक्षतक दे देते हैं परन्तु आप अपने ऊपर उसका बोझ नहीं लेते। किन्तु यदि ऐसा हठी भक्त मिला कि—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस! त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥

'मैं स्वर्ग, ब्रह्माधिकार, सार्वभौमता, सर्व रसातलकी स्वामिता, नाना तरहकी योगसिद्धियाँ, और तो क्या मोक्ष-तक आपको छोड़कर नहीं चाहता।' अपनेसे मुझे पृथक् कर दें और ये चीज़ें दें तो मैं इनको नहीं चाहता। आपके विरहमें, आपके बिना, मैं इनको लेकर क्या करूँगा? 'त्वाऽविरहय्य काङ्क्षे' हाँ, आपसे वियोग न हो तो यह चाहूँ। परन्तु जहाँ आप हैं वहाँ इनको माँगना केवल अहसानका बोझ बढ़ाना है या पुनरुक्ति है। आपके चरणोंके साथ तो यह चीज़ें स्वतः खिंची हुई चली आती हैं। अतः मुझे तो आप चाहिये, मैं और कुछ नहीं चाहता।' भक्तका जब इतना दृढ़ अध्यवसाय देख लेते हैं तब भगवान् भी प्रसन्न हो उठते हैं और उसको अपना कर लेते हैं, अपनी शरणमें ले लेते हैं। जब भगवान्की शरणमें आ गया फिर क्या भय है? 'मृत्युरस्मादपैति' साक्षाद्भयाधि-देवता कालतक उससे हाथ जोड़ता है। शरणागतिकी इसी महत्ताको दिखलाते हुए भगवान् यहाँ कहते हैं—'सकृदेव प्रपन्नाय'। जो 'प्रपत्ति' अङ्गीकार कर लेता है और मैं तुम्हारा हूँ यह एक बार भी कह देता है उसे मैं यावन्मात्र भयकारक पदार्थोंसे अभय दे देता हूँ। यहाँ अभय दे देना उपलक्षणमात्र है[1]। सब कुछ दे देता हूँ। क्योंकि जब भगवान् उसकी शरणागति स्वीकार कर लेते हैं तब सब कुछ उसका अभीष्टपूरण, उसका योगक्षेम भगवान्को करना पड़ता है। वह जो चाहे सो तत्काल भगवान्को उपस्थित करना पड़ता है और तो क्या स्वयं भगवान्को यहाँतक लक्ष्य रखना पड़ता है कि किस समय उसे क्या आवश्यक है, फिर और कौन-सा पदार्थ बाकी रहा? अतः यहाँ उपलक्षणरूपसे ही कहा है कि 'सर्वभूतेभ्यः अभयं ददामि' 'प्राणिमात्रसे अभय दे देता हूँ।'

'प्रपत्ति' का अर्थ आप सुन चुके हैं कि 'प्रकर्षेण अर्थात् सर्वभावेन पत्ति अर्थात् भगवत्सन्निधौ आगतिः।' अर्थात् चारों तरफसे अपना सब सम्बन्ध हटाकर 'सब कुछ मेरे अब भगवान् ही हैं' इस तरह अपना आत्मनिवेदन कर देना यही तो उसका सारांश है। अन्तर्यामी भगवान् विभीषणका भी यह भाव जान चुके हैं। विभीषणने आगे स्पष्ट अपने मुखसे ही कहा है—

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च।
भवद्गतं हि राज्यं मे जीवितं च सुखानि च॥

'मैं लङ्का, मित्र, धन, धान्य सबको छोड़ चुका हूँ। मेरा राज्य-सुख और तो क्या जीवनतक मेरे सब आप हैं।' जब शरणागत अपना अस्तित्वतक मिटाकर आपका ही हो चुका तो क्या भगवान् अब कुछ कमी रक्खेंगे? बस, जैसे वह अपनेको भगवान्के अर्पण कर चुकता है वैसे भगवान् भी अपने हृदयमें उसके अधीन हो चुकते हैं। सब कुछ उसे दे चुकते हैं, अतएव अभय शब्दके अन्दर सर्वस्वका क्रोडीकार करते हुए आज्ञा करते हैं कि 'प्रपन्नाय अभयं ददामि।'

दुनियाके साधारण-से धनी और समर्थोंतकको देखा है कि कोई अपना सम्बन्धी या भृत्य जबतक अपना आत्मा-भिमान रखता है, या अपना और स्वामीका यह अलग भाव रखता है तबतक स्वामी भी उसके कार्योंमें नुकताचीनी और दूसरी दृष्टि रखता है। किन्तु जब वह यह कह देता है कि 'मैं अब आपका हूँ, मेरी लज्जा अब आपके अधीन है' तब उसी समयसे उसका भाव बदल जाता है। उसके कार्योंमें त्रुटि आनेकी सम्भावना भी हो तो भी वह उसकी

१ एक बात कही जाय और उसी तरहकी दूसरी बात स्वतः समझी जा सके ऐसे अवसरपर उपलक्षण समझा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीक्षा न करके पहलेसे ही आप स्वयं पूर्ण कर देता है। उसको लज्जित करना या उसका अपमान होना उसको सह्य नहीं। उसकी लज्जा या अपमान अपनी समझता है। जब दुनियामें साधारण धनीतक अपना इतना महत्त्व रखना चाहता है तब त्रिलोकीके धनी भगवान् क्या अपनी प्रतिष्ठाकी ओर नहीं देखेंगे ? नहीं, जिस समय भक्तके मुखसे यह निकल चुकता है कि मैं आपका हूँ उसी समयसे भगवान् इतने लाचार हो जाते हैं कि उसके काममें हरदम खड़े रहते हैं। अतएव आप आज्ञा करते हैं कि 'प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते अभयं ददामि।'

'प्रपन्नाय' के पहले आया है 'सकृत्' अर्थात् एक बार भी जो 'प्रपन्न' शरणागत हो जाता है उसको मैं सब प्रकारका अभय दे देता हूँ। यहाँ 'सकृत्' (एक बार) कहनेसे क्या लाभ हुआ ? क्योंकि भगवान् आज्ञा कर रहे हैं कि शरणागत हो जानेपर यावन्मात्र जो भयकारण हैं उनसे मैं अभय दे देता हूँ, अभयका अर्थ है मोक्ष। अर्थात् उसे सांसारिक चक्रकी विडम्बनासे मुक्त कर देता हूँ। जैसे ही प्रथम बार 'प्रपन्न' हुए फिर हमारे पास दुःख और भय फटकने ही नहीं पायेंगे क्योंकि मोक्ष ही जब हो चुका तो फिर बाकी ही क्या रहा ? ऐसी हालतमें 'सकृत्' का क्या तात्पर्य ? ठीक है ! यही तो सूचित किया जा रहा है कि भगवत्प्रसादनके जितने उपाय हैं उन सबमें आवृत्ति अर्थात् बारम्बार करनेकी आवश्यकता होती है। जप, कीर्तन, तीर्थाटन आदि सब ही पुनः-पुनः किये जाते हैं। 'अधिकस्याधिकं फलम्' के अनुसार जितना किया जाय उतना ही अधिक फल होता है। वहाँ शास्त्रकी आज्ञा ही यह अनुस्यूत रहती है कि जितना अधिक किया जाय उतना ही अच्छा। किन्तु 'प्रपत्ति'में आवृत्ति शास्त्रको अभीष्ट नहीं। वहाँ एक बार अनुष्ठान ही काफी है। प्रपत्तिके लिये कहा है—

सकृदेव हि शास्त्रार्थः कृतोऽयं तारयेन्नरम्।'

'यह शास्त्रकी आज्ञा केवल एक बार ही करनेसे मनुष्यका उद्धार हो जाता है।' 'सकृत्'के आगे 'एव' और दिया है उसका अर्थ है कि अधिकारीको 'प्रपत्ति' केवल एक बार ही लेनी चाहिये। जो इसके विपरीत करेगा वह शास्त्राज्ञाको उल्लंघन करेगा। बस, शरणागतिका यही माहात्म्य सूचित करते हुए कि 'जो एक बार भी इस परम भागवत धर्मको स्वीकार कर लेता है फिर उसे कोई प्रातव्य नहीं रहता' भगवान् आज्ञा करते हैं—'सकृदेव'।

ठीक है। बहुत-से आचार्य यहाँ 'सकृत्' की यही योजना उत्तम मानते हैं परन्तु मेरे विचारसे एक शङ्का यों-की-यों बनी रही। वह यह कि आप शरणागतिका क्षेत्र बड़ा विस्तृत बता चुके हैं। शरणागतके भीतर 'आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्' इत्यादि छः प्रकार आ जाते हैं। उनमेंसे आत्मनिवेदन जहाँ किया कि भगवान्के ऊपर हमारे समस्त योगक्षेम दुःखनिवृत्त्यादिकी चिन्ता जा पड़ती है। साधारण-सा स्वाभिमानी पुरुषतक जब अपने आश्रितसे यह कहला लेता है कि 'अब आप मालिक हैं। मेरी लज्जा आपके हाथ है।' उस समय उसका सम्पूर्ण भार वह आप वहन करता है। यावन्मात्र उसकी चिन्ताएँ मानों वह मोल ले लेता है। फिर जगदीश्वर भगवान् आत्मनिवेदनके अनन्तर कुछ बाकी रक्खेंगे ? विश्वभरमें भगवान्की भक्तवत्सलताका डिण्डिम पिट रहा है। भगवान्का भक्त जहाँ हुआ और उसपर 'भगवान्का है' यह छाप जहाँ पड़ी कि मानों भगवान् उसके साथ-साथ रहने लगते हैं। मजाल क्या है कि उसमें कोई त्रुटि रह जाय। कोई उसका अनिष्ट करे यह तो सम्भव ही कहाँ है ? 'त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो' 'जो लोकपाल सब संसारको दण्ड देकर शासित करते हैं उनके भी नायकोंके अग्रगण्य होकर तुम्हारे भक्त निर्भय विचरते हैं।' जब एक सिपाहीमात्रके भरोसेपर हमको बड़ी हिम्मत हो जाती है तब लोकपालोंके अग्रगण्योंके मस्तकपर रहनेवालोंके पास कभी भयसंकथा आ सकती है ? कारण यह है कि जब भक्तके अधीन त्रिलोकीके नाथ भगवान् ही हो चुके तब उनके अधीन रहनेवाले लोकपालादि यावन्मात्र अधिकारियोंकी तो शक्ति ही क्या है कि भगवद्भक्तके विरुद्ध चलें वरं कई जगह तो यहाँतक देखा है कि भक्तके आगे भगवान्की भी नहीं चलती। स्वयं भगवान् ही लाचार होकर कह देते हैं कि 'भाई ! मैं इस समय विवश हूँ। भक्त जो चाहेगा वही होगा।' (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणकारी स्वप्न

(लेखक—एक सज्जन)

यद्यपि मैं एक पूर्ण संयमी छात्र था, किन्तु फिर भी बीमारीके चंगुलमें फँस ही तो गया। बीमारीका जोर दिनोंदिन बढ़ता ही गया। यही कारण था कि मेरी शक्ति दिनोंदिन (उत्तरोत्तर) क्षीण होती गयी। उस समय विद्यालय बन्द था। सभी लोग घर चले गये थे। छात्रावासमें केवल मैं ही अकेला रह गया था। इसीलिये ऐसी विकट परिस्थितिमें मेरा कोई सहायक और दवा-दर्पणका करनेवाला नहीं था।

शरीरकी पीड़ासे रह-रहकर छटपटाता, पड़े-पड़े आसमानसे आँखें लड़ाता, मन-ही-मन रोता और दुःखसे आँसू बहाता—इधर यह कारुणिक दृश्य था उधर असार संसारका नंगा चित्र आँखोंके सामने दिखायी देता था। विश्वनियन्ताकी अद्भुत, अलौकिक तथा सम्पूर्ण मनोमुग्धकारिणी कमनीय भोगसामग्रियाँ भी अन्तःकरणमें अपूर्व वैराग्य तथा दिव्य ज्ञानको उत्पन्न करती थीं—और करती थीं हृदयधाममें निष्काम भक्तिकी पूर्ण अविरलताका सञ्चार भी।

बीमारी भी इधर जोर पकड़ती ही गयी जिससे दिन वर्ष और रात युगके समान बीतने लगी। अशक्तता-से कमरमें चिलकन और शिरमें भीषण पीड़ा होती जिससे एक-ब-एक पागल हो उठता था। ऐसी दशामें 'निर्बलके बल राम' की शरण लेनेके सिवा आखिर दूसरा करता ही क्या? धैर्य धारणकर हृदयको स्थिर किया और अपने हृदय-मन्दिरमें भक्त-भयहारी वृन्दावन-विहारीका ध्यानकर 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' इस मन्त्रका जप करने लगा। इससे पीड़ाकी मात्रा कम हुई। फिर तो निद्रा देवीकी गोदमें पड़ गया।

सोये-सोये स्वप्नमें, मैं देखता क्या हूँ कि—'मैं एक रमणीय नदीके तटपर खड़ा हूँ, जिसकी दूधके समान उज्ज्वल जल-तरंगें अपने कल-कल शब्दसे मेरे हृदयको मोह रही हैं। उसके बालुकामय प्रदेशमें तरह-तरहके मगर, सूँस, मच्छ, कच्छ तथा घड़ियाल लोट-पोटकर अपने शरीरकी खुजलाहटको शान्त कर रहे हैं।—और कर रहे हैं नाना प्रकारके कौतूहलपूर्ण खेल-कूद भी। उसकी प्रचण्ड और तीक्ष्ण लहरोंके बारम्बारके अभिघातसे नदीके दोनों कूल कट रहे हैं। बड़े-बड़े विशाल वृक्ष, भूमिखण्ड तथा पाषाणशिलाके टुकड़े टूट-टूटकर जलमें गिर रहे हैं जिससे प्रलयके समान महाभयंकर शब्द हो रहा है, और जिससे लाखों प्राणियोंकी जीवन-लीला समाप्त हो रही है।

यह दृश्य देखकर मैं बहुत ही भयभीत हो गया। तो भी धैर्य धारणकर मैंने नदीमें स्नान किया। तत्पश्चात् बालुकाके सुन्दर आसनपर पद्मासन लगा, आँखें बन्दकर शान्तचित्तसे ईश्वरका गुणगान करने लगा। अन्तमें जब मेरी अल्प बुद्धि प्रभुकी मायानिर्मित अपरम्पार लीलाके रहस्यको समझनेमें किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी, तब मैं फूट-फूटकर रोने लगा कि—'प्रभो! क्या इस दासपर आपकी दया नहीं होगी? मैं ऐसा पतित प्राणी हूँ कि मुझमें भक्ति-भाव, ज्ञान-ध्यान, शील-दया, धर्म-कर्म, श्रद्धा-विश्वास तथा भक्ति-मार्गमें इस चञ्चल और दुर्दमनीय मनको मोड़नेके लिये पुण्यका सञ्चित कोष कुछ भी नहीं है।' इतनेमें बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ-साथ एक भयंकर डरावना शब्द हुआ। मैं एकाएक चौंक पड़ा, आँखें खुल गयीं तो देखता क्या हूँ कि—

दशों दिशाओंमें जल-ही-जल व्याप्त है, जिसकी उत्ताल तरंगें आकाशसे अठखेलियाँ कर रही हैं। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डरा तो था ही, परन्तु शीघ्र अति आतुर भावसे प्रभुसे विनती करने लगा—

तुम ही सब कुछ नाथ ! हमारो ।
अगम उदधिके भँवर बीचमें नहिं कछु नाथ सहारो ॥
तुम ही मातु पिता गुरु स्वामी तुम ही सखा हमारो ।
जगके सब धन धाम असत नित देत महादुःख भारो ॥
हेतु रहित अनुराग भगतिकी लगी चाह है प्यारो ।
पावन पतित नाम सुनि आयो क्यों तू 'राम' बिसारो ॥

डरसे काँपते-काँपते आँखें खोलीं तो मुझे जल-निधिमें एक सुन्दर रमणीय नौका देख पड़ी। जिसको एक दिव्य पुरुष पतवारसे खे रहा था । इधर तरंग-मालाओंने बात-की-बातमें ही मेरे पैरकी भूमिको जल-मग्न करके मुझे कमरभर पानीमें कर दिया । मैं कुछ साहस करके नौकाकी तरफ बढ़ा तो देखता हूँ कि वह चतुर नाविक यमुनाकूल-विहारी, वृन्दावन-विहारी मेरे प्राणाधार भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं । वह अपनी मधुर मुसकानसे चराचर जीवोंको मोहते, बाँकी चितवनसे सबके दिलोंको घायल करते, अलौकिक सौन्दर्य तथा रूपलावण्यसे प्राणीमात्रके हृदयपर जादू फेरते, अपने अपूर्व तेजकी ज्योत्स्ना दिग्दिगन्तमें छिटकाते और 'हम भक्तनके भक्त हमारे' का रसीला गान गाते हुए मेरी ओर आ रहे हैं ।

इस मीठी तानके अन्दर प्रभुकी अपार दयालुता तथा विरदकी झाँकी कर अपने भाग्यपर प्रफुल्लित हो, मैं फूलकर कुप्पा हो गया और प्रेमोन्मत्त हो तीव्र वेगसे नौकाकी तरफ बढ़ा, झट प्रभुके चरणोंमें माथा टेक गद्गद कण्ठसे कहने लगा—

'नाथ ! मैं दीन, हीन, नीचातिनीच कुटिल, पामर प्राणी हूँ, मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि इस चञ्चल मनको मोड़कर तुम्हारे चरणोंमें लगाऊँ । मैं तो काम-क्रोध, लोभ-मोह तथा कामिनी-काञ्चनरूपी दलदलमें बेतरह फँसा हुआ जीव हूँ । अनन्त जन्मोंसे इस भव-सागरमें डूब रहा हूँ । इससे उबारनेवाले तुम्हीं एक-मात्र कर्णधार हो, तुम्हारी दयाके बिना किसी भी जीवका उद्धार नहीं । तुम्हारे ही निकाले निकल सकता हूँ । पतितपावन ! मुझे कोई भी मार्ग नहीं सूझता, इस पतित प्राणीपर दया करो तथा निष्काम कर्मके रूपमें ही भजन करनेकी शक्ति दो ।' इतना कह मेरी आँखें प्रभुके अलौकिक रूपमाधुरीका रसास्वादन करने लगीं ।

प्रभुने हँसते हुए जलनिधिकी ओर संकेत किया तो देखता क्या हूँ कि उसमें असंख्य प्राणी हाथ-पाँव पटकते तथा छटपटाते अति आर्त्त नादसे 'बचाओ ! बचाओ !!' के भयंकर चीत्कारसे आकाशको गुञ्जायमान कर रहे हैं, जिसे सुनकर हृदय काँप उठता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, जाघें हिल जाती हैं और जी सन्न हो जाता है । उस भवसागरकी उत्ताल तरंगोंमें धनी-गरीब, राजा-रंक, सेठ-साहूकार, पढ़-अपढ़, ज्ञानी-ध्यानी कहानेवाले सभी बड़े वेगसे बह रहे हैं । यही नहीं बल्कि माला-छापा, चन्दन-तिलक, जटा-मेखलाधारी तथा नाना प्रकारके नाम धारण करनेवाले साधु-सन्त उन तरंगोंके सामने तिनकेकी तरह टूट-टूटकर अपने अस्तित्वको गवाँ रहे हैं । सबके सरपर अपनी-अपनी मनोवाञ्छित पाप, कामना तथा माया-मोहकी भारी गठरी लदी हुई है जो उनको और भी बुरी तरहसे डुबानेका प्रयत्न कर रही है। इसके भारसे सभी बेचारे दाँत चिआरे 'आरे मैया आरे बप्पा'का भीषण आहो नाला कर रहे हैं । उनकी आँखें सावनकी काली घटाएँ बनकर बरस रही हैं । उनके करुणाक्रन्दनसे करुणा बेचारीका कलेजा भी चाक-चाक हो रहा है । प्राणविमोचनके लिये सारे-के-सारे नौकाकी शरणमें जाना चाहते हैं, किन्तु सारी कोशिशें बेकार हो रही हैं। बस इतना ही था कि दीनबन्धु करुणानिधान भगवान्ने अपने विरद—

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—को याद करके उनमेंसे झट अपने चार डूबते हुए भक्तोंको भवसागरसे निकाल, हृदयसे लगा, नौकामें बैठा लिया और बाकी सभीने प्रचण्ड लहरोंके भीषण महाघातसे चूर्ण हो क्षणभरमें विकराल कालके भयंकर गालमें विलीन हो अपनी अन्तिम जीवनलीला समाप्त किये।

प्रभुकी लीलाका इस प्रकार दिग्दर्शनकर गद्‌गद कण्ठसे मैंने प्रभुसे प्रार्थना की—भगवन्! इस लीलाका रहस्य क्या है? हम-जैसे पामर प्राणियोंका इस असार संसारसागरसे कैसे उद्धार होगा? वह कौन-सा सुगम मार्ग है जिसके द्वारा सर्वसाधारणको सुलभतासे आपकी प्राप्ति होगी?

जनार्दनने कहा—'यदि तुम लीलाका रहस्य पूछते हो तो सुनो, वह वास्तवमें रहस्य नहीं—बल्कि उन्हींके कर्मोंका फल था जिसने उन्हें भवसागरमें डुबो दिया। उनके जीवनमें मैंने उन्हें सुधारके लाखों बहुमूल्य अवसर दिये, किन्तु उन्होंने उनको विषय-भोगोंके भोगनेहीमें गँवा दिया, जिसका फल आज उनके सामने है। मेरा तो वही सच्चा भक्त है जो अपनेको मुझे समर्पितकर निष्कामभावसे संसारके सारे कर्त्तव्य-कर्मोंको मेरे लिये ही करता हुआ चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हर घड़ी मुझे ही भजता है। सारे कर्मोंके मूलमें मेरी ही सेवाको अनुभव कर अपनेको उसमें जुटाये हुए अपूर्वानन्दका सुख उठाता है। जिसकी अपनी कहानेवाली कोई चीज़ नहीं होती, यहाँतक कि जो अपने शरीरको भी अपना नहीं समझता। ऐसे भक्तसे मैं कभी विलग नहीं होता। सदा छायाकी तरह उसका साथी बनकर पीछे-पीछे घूमनेमें अपना अहोभाग्य मानता हूँ। मैं तो केवल भावका भूखा हूँ न कि बाह्याडम्बरका। ऐसे सच्चे भक्तके लिये संसार-सागरका पार करना बायें हाथका खेल है। मेरी तो प्रतिज्ञा है कि—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

बस इतना ही सुना था कि—

सवेग उन्मीलन नेत्रका हुआ।
अदृश्य हा! हा!! वह दृश्य हो गया॥

मैं अवाक् हो पंखहीन पक्षेरूकी तरह बिस्तरेपर पड़े-पड़े लगा छटपटाने और फूट-फूटकर रोने। मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना करने लगा कि भगवन्! आपने मेरी आँखें खोल दी, अब मैं कभी आपको नहीं भूलूँगा। मैं जल्द ही अच्छा हो गया। तुरन्त ही गीताप्रेस आया और 'कल्याण' का ग्राहक बना। उस समय 'कल्याण' का 'चौथा' वर्ष चालू था। इसके अलावे और भी अपने कल्याणके लिये उपयोगी नियम बनाये और उनपर चलने लगा, जिससे मेरे-जैसे पतितके जीवनमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। मेरा तो अब यह अटल विश्वास हो गया है कि जो आदमी अपनी जीवन-नौकाको प्रभुके चरणोंमें बाँधकर संसारके कर्मोंको करता है, वह मानव नहीं देवता है। ऐसे ही नरपुंगवोंसे मनुष्य-जाति गौरवान्वित होती है और समाजका वास्तविक कल्याण हो सकता है। यह स्वप्न सदा मेरी आँखोंके सामने नाचता रहता है। मैं तो प्रत्येक भाई-बहिनोंसे सप्रेम आग्रह करता हूँ कि वे 'कल्याण' को एक पागलका प्रलाप समझकर भी पढ़ें और प्रचार करें तो उनका और मनुष्य-जातिका वास्तविक कल्याण होगा। इस मेरे स्वप्नसे पाठकोंका कुछ भी कल्याण हुआ तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य पथ

(लेखक—श्रीब्रह्मदत्तजी शर्मा 'शिशु')

संसारकी वर्तमान विभिन्न प्रकारकी अशान्ति, पारस्परिक विद्वेष, अपनेसे निर्बलका स्वत्वापहरण, एक राष्ट्रकी दूसरे राष्ट्रको हड़प करनेकी चाह, साम्प्रदायिक झगड़े, धर्मके नामपर घोर विवाद, स्वतन्त्रताकी घोषणामें निहित उच्छृङ्खलता आदिका एकमात्र कारण है वैयक्तिक (Personal) परिच्छिन्न 'अहं' मैं। यही मैं अपरिच्छिन्न होनेपर पारस्परिक प्रेमोत्पादक, सहानुभूति-प्रसारक, निर्बलोत्थापक, सम्प्रदाय और धर्मका समन्वय-कारक यथार्थ स्वतन्त्रता तथा विश्वकी शान्तिस्थापक है। इस 'मैं' का परिच्छिन्नत्व विनाश करनेके लिये परम उन्नत और सभ्यता-उत्पादक समझे जानेवाला आधुनिक विज्ञान (Science) आजतक किसी साधनका आविष्कार नहीं कर सका और न उससे भविष्यमें ही यह आशा की जा सकती है। परन्तु यह निर्विवाद है कि जबतक अमर्यादित स्वार्थकी माँग करनेवाला 'मैं' चाहे वह एक व्यक्तिका हो या एक राष्ट्रका मर्यादित स्वार्थपरक होकर व्यापक नहीं बनेगा तथा समाज शासनसूत्रकी इस नीतिपर प्रतिष्ठित होकर सञ्चालित नहीं होगा तबतक त्रिकाल-में भी मानवजाति या राष्ट्र मनुष्यत्वकी ओर अग्रसर होते हुए शान्ति-राज्यका स्थापन नहीं कर सकेगा। आजके प्रचण्डानलवर्षक गगनविकम्पी आग्नेयास्त्र (मशीन-गनें),एक कौतुकमें ही मनुष्योंका विनाश करनेवाली विषैली गैसें, वायरलेस टेलीग्राफ, वायुयान आदि आविष्कार तथा अन्तर्राष्ट्रीय-परिषद् (League of nations) मानवजीवनके ध्येय—प्रेमपूर्ण मुक्त जीवनको प्राप्त नहीं करा सकते। मैं तो कहूँगा कि कोई भी ऐसी शिक्षापद्धति या शासन जो मानवसमाजकी अन्तःशक्तिको प्रबुद्ध नहीं कर सकता, बाह्यरूपेण कड़े-से-कड़ा प्रयत्न कर लेनेपर भी उसको (मानवसमाजको) शान्ति-राज्यमें प्रविष्ट नहीं करा सकेगा। जो शिक्षा या शासन मनुष्यके मस्तिष्कको ज्ञानालोकित और हृदयको अनन्त प्रेमसे द्रवित नहीं कर सकता, वह अपूर्ण है, और मानवकी अन्तःपिपासा उससे कभी शान्त नहीं हो सकती। आज मानवका जीवन जिस शिक्षा और शासनसे अधिकृत है वह उसके अन्तरको स्पर्श भी कर नहीं पाता। तब क्या वह मनुष्य जिसके अन्तरमें मुक्ति, स्वातन्त्र्य और आनन्दकी तृषा अत्यन्त वेगसे भड़क रही है इस पिपासाकुल विचलित अवस्थामें ही आनन्द-वियोगाग्निसे जलता रहेगा ? क्या मनुष्य इस पतित अवस्थामें श्वानवत् अस्थि-खण्ड चूसते हुए ही पड़ा रहेगा, और प्रबुद्ध होकर अपने उस इन्द्रासनपर आसीन नहीं होगा जो अनादि कालसे उसके लिये नियत है? क्या विश्वमें कोई ऐसा साधन नहीं जिससे वह अपने अभिलषित आनन्द-राज्यमें विहरण कर सके ? क्या आजसे पूर्वकी मानवजातिने उस साधनको अवगत कर उस आनन्द-राज्यमें कभी पदार्पण किया था ?

इसका उत्तर हमें पूर्वके दिव्य अतीतकालमें अपनी मनोवृत्तियोंको पहुँचानेपर ही मिल सकता है। हमारा मन-मयूर उस पावन उत्तरको अपने अन्तरीय कानोंसे सुनकर नर्तन कर उठता है। हमारी इन्द्रियाँ अपने सुरीले कल-कण्ठसे विश्व-विमोहन राग गाने लगती हैं और झंकृत हो उठता है हमारा हृत्-तन्त्र। परन्तु यह सब भाषा उन लोगोंके लिये कुछ अर्थ नहीं रख सकेगी जो लोटा, तवा, परात लेकर भौतिक सृष्टिमें ही अपना टाँडा फैलाये पड़े हैं। वे धन्य मानव ही उस दिव्य उत्तरको श्रवण कर सकेंगे जिनके कान ऐहिक कोलाहलसे बहरे नहीं हो गये हैं। और यदि इन भौतिक कानोंसे सुना भी तो क्या? क्योंकि श्रवणसे वे ही यथार्थ लाभ उठा सकते हैं जो अपने अन्तरीय (मानसिक) कानोंसे सुनते हैं। अन्यथा कोई लाभ नहीं !

फिर, उस आनन्द-राज्यमें प्रवेश करनेका साधन भी बाहरसे नहीं अन्तरसे ही आरम्भ होता है। क्योंकि मानव-जीवनका विकास अन्तरसे ही होता है न कि बाहरसे। मनुष्यका बाहरसे बड़ी सुन्दर काट-छाँटवाले मनोरम वस्त्रों-से अलंकृत होना या सबल, गौर, पुष्ट शरीरका होना ही उसके अन्तःजीवनके विकास-पथानुसरणका प्रमाण नहीं है। वैसे तो उस साधन-पथपर गमन करता हुआ मनुष्य भी सर्वसाधारणकी तरह लौकिक काम करता हुआ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी देता है। परन्तु अन्तरसे वह उस आनन्द-राज्यमें प्रतिष्ठित होकर उसका (अच्युतानन्दका) रसपान करने लगता है। उस मानवकी बातोंमें सरसता और मधुरताका स्रोत बहने लगता है। उसके नेत्रोंमें प्रेम छलछला उठता है तथा उसकी संगतिमें मानवसमाज अलौकिक सुखका अनुभव करने लगता है। उसके शब्दोंमें होता है अमरत्व और जादू, और उससे होने लगता है शान्ति-सुधाका वर्षण। एकमात्र उससे ही गली, गाँव, नगर, प्रान्त, देश और राष्ट्र धन्य होते हैं। और वही इस पृथिवीपर ईश्वरीय राज्यकी स्थापना करता है। हाँ! यही इस प्रेम-पूर्ण विशाल वसुन्धराकी वात्सल्यमयी गोदमें निर्भय होकर शिशुवत् क्रीड़ा करता है। और वह, समस्त वह, उसको करती है स्नेहमयी लोरी देकर दुलार! तब वह एक व्यक्तिको या राष्ट्रको उस दिव्य राज्यमें प्रतिष्ठित करने-वाला साधन क्या है? हृदयको आनन्द-सिन्धुकी तरल-तरंगोंपर उतरानेवाला, प्रति रोममें आनन्द-विद्युत्का सञ्चालन करनेवाला, नेत्रोंमें आनन्दाश्रुके घन बरसानेवाला, उन्माद, प्रेमोन्मादकी अरुण वारुणीके प्याले ढलकानेवाला, अन्तःसाम्यवादका आलोकमय रँगीला फाग खिलानेवाला वह साधन है। भक्ति! भारतीय भक्ति!! भारतकी मूल-सम्पत्ति भक्ति!!!

उस पतितपावनी भक्तिका ही सबसे पहला और सबसे ऊँचा कार्य है कि 'वह' वैयक्तिक 'अहं' 'मैं' को विस्तृत करे। मनुष्यको पूर्ण होनेके लिये मिथ्या अहंकारका विनाश करना ही होगा। परन्तु इसका विनाश तबतक नहीं हो सकेगा जबतक कि वह दिव्य दैन्यभावको प्राप्त नहीं होगा। और वह 'दैन्यभाव' उस पावनी भक्तिकी उत्कण्ठा हुए बिना प्राप्त होना नितान्त असम्भव है।

दैन्य या दीनताका अर्थ उस गरीबीसे नहीं जो सांसारिक वैभवकी हीनता या धनाभावके कारण मनुष्यको प्राप्त होती है। वह दिव्य दैन्यभाव एक कौपीनधारी तथा एक स्वर्णसिंहासनासीन छत्रधारीके लिये समान ही साध्य है। वह दोनोंमें हो सकता है और वह (दैन्य) उस दिव्य पथपर जानेके लिये दोनोंके लिये धारण करने योग्य है। तब उसका स्वरूप क्या है?

वह मनुष्य जो अभिमानमें ऐंठा हुआ वैयक्तिक अहंकारवश दूसरोंको कुछ नहीं समझता, वह बलाभिमानी मनुष्य जो निर्बलोंको कुचलता रहता है, वह धनवैभवके मदमें चूर मानव जो कर्तव्याकर्तव्य कुछ न सोचते हुए मनमाना करता जा रहा है, वह मनुष्य जो महान् बननेकी कुपद्धतिपूर्ण चाहमें सत्यका तिरस्कार कर बढ़ता जा रहा है अपनी उत्पत्तिपर विचार करे। वैभवपूर्ण शोभन-वस्त्राभूषित मनुष्य मैं दूसरोंसे महान् हूँ, निर्बलोंको ठोकर लगानेका मुझे अधिकार है या जनता मेरे पीछे है, मैं चाहे जिस मार्गपर चला सकता हूँ। जहाँ वह यह खयाल करता है वहाँ यह भी सोचे कि मैं वही हूँ जो माँके गर्भमें सिर नीचा किये दुर्गन्धपूर्ण स्थानमें पड़ा रहा हूँ और मेरेसे पूर्व वे दिव्य पुरुष हो गये हैं जिन्होंने मानवकी मर्यादा और जीवनके प्रत्येक चक्रपर घूमकर मानवसमाजके लिये उस सत्यको प्रतिष्ठित किया है जो त्रिकालाबाधित है। उसको सोचना चाहिये कि प्रसवकी वायुके द्वारा मांसका लोथड़ा मैं अत्यन्त अपवित्र द्रवके साथ बाहर फेंक दिया गया तब मैं अपने मुँहपरसे भिनकती हुई मक्खियाँ भी नहीं उड़ा सकता था। पता नहीं, कितनी बार मैं मलमें सना पड़ा रहा हूँगा! विचार, ओ अहंकार और 'मैं' 'मैं' 'मैं' ऐंठनेवाले प्राणी! विचार, तेरी बुनियाद क्या है? और अगर आगे दुनियाँकी आँखोंमें पूर्ण आयुवाला भाग्यवान् हुआ तो अन्तमें आँख और कानकी शक्तिसे रहित दन्तहीन मुखवाला, खाँसी आदि रोगोंका शिकार, धनुष-सी कमर लेकर खटियापर पड़ा रहेगा। यह है तेरे आदि और अन्तका बाह्य रूप। विवश और दयाका पात्र! तब इस मध्यकाल यौवनमें जो न पहले था और न आगे रहेगा, अहंकार किस बातका? बस, इस प्रकारका चिन्तन ही दैन्य-भावके उत्पादनका बाह्य कारण है। तब मनुष्यको इस महान् विश्वके सम्मुख अपना अस्तित्व इतना तुच्छ अनुभव होता है कि वह सिंह-सा बलशाली और कुबेर-सा धनपति होते हुए भी विश्वके कण-कणके आगे झुक जाता है। और वह झुकना ही उसको वज्र-सा दृढ़ और हिमालय-सा उच्च बना देता है। परन्तु कब जब कि विश्वके कण-कणके प्रति हमारे हृदयसे भक्तिका स्रोत बह रहा हो और हमारी हृत्तन्त्रीसे मधुमयी विश्वमनरञ्जिनी ललित स्वरलहरी निकल रही हो यह—

सीय-राममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(श्रीतुलसीदासजी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संसारका कार्य हो रहा हो इस दृष्टिसे—

यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

बस, यहींसे भारतीय भक्तिका आरम्भ होता है और यहींपर होता है उसका पूर्णत्व। भारतीय संस्कृतिमें नरकी दृष्टिसे नरकी भक्ति नहीं की जाती और न सुन्दर वन, पर्वत, सिन्धुकी दृष्टिसे प्रकृतिकी। वरं वह (भारत) विश्वके कण-कणमें पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि जड तत्त्वोंमें 'सच्चिदानन्द' का दर्शन करता है। वह 'सत्-चित्-आनन्द' है उसका ईश्वर, उसके महाप्रभु प्रियतम। सूर्य और चन्द्र उसकी भक्तिके प्रत्यक्ष प्रतीक हैं। अंशुमान्‌की रश्मियाँ उसके प्राणधन विश्व-नटनागरके किरीटका वृत्तालोक है और चन्द्र है उसके हृत्-निकुञ्ज-विहारी कृष्णचन्द्रके विश्वविमोहन मुखकी मधुर ज्योत्स्ना। वह नील जलधरके दर्शनमें अपने विश्वविहारीके दिव्य वर्णकी छविका अवलोकन करता है और देखता है सुमनोंके प्रस्फुटनमें उसकी मनोहर मुस्कान। वह (भारत) पवित्रतोया जाह्नवीकी कल ध्वनिमें उसकी त्रिभुवन-मोहन बाँसुरीकी तान सुनता है और हिमालयके उत्तुङ्ग शिखरपर देखता है उनका दिव्य सिंहासन। वह (भारत) निर्झरके झरझरित रवमें मिलकर गाता है यह मादक गान—

मैं 'मैं' को नाथ ! मिटाने पतनोन्मुख हो झरता हूँ।
खींचो निज शुचि किरणोंसे जगतीपर यों गिरता हूँ॥
हो ! तेरे दिव्य करोंसे ओ सूर्य ! स्वर्गमें जा लूँ।
आकाशजाह्नवी बनकर तव चरणकमल धो डालूँ॥

उसकी इस दृष्टिको न समझनेवाले अज्ञानी लोग उसको कहते हैं प्रतिमापूजक, पर वह है उस अप्रतिम महाप्रभुका भक्त ! उसकी दृष्टिमें नर है उस भवभयहारी नारायणका निवासगृह। और स्त्री है चिदात्मिका प्रेम-पूर्णा जगत्-सञ्चालिका नारायणी-शक्तिकी प्रतिमा ! यह है उसका सेव्य जिसका वह सेवक और भक्त है। यह ही भारतीय भक्तिका अति संक्षिप्त रूप है।

जब भारतकी यह दृष्टि थी तब बहती थीं उसमें आनन्दकी सरिताएँ और होता था प्रेमघनवर्षण। और तभी बाहरसे आनेवाले प्रेम-पिपासु भी उस आनन्द-पयस्विनी (भक्ति) में डुबकी लगाकर करते थे भारतका यशोगान !

परन्तु आज भारत अपनी संस्कृतिको भुलाकर जिस मार्गपर जा रहा है वहाँ पाश्चात्यके शान्ति और आनन्द-इच्छुक मानव स्वतः ही व्याकुल होकर तड़फड़ा रहे हैं। आज हम जिस साम्यवादकी प्रतिष्ठाके लिये अपना सर्वस्व स्वाहा कर रहे हैं वह साम्यवाद अन्तःसत्यकी दृष्टिसे नितान्त विरुद्ध है। क्योंकि अन्तःसाम्यकी पूर्ण प्रतिष्ठा ही बाह्य साम्यकी प्रसारक है और यह बाह्य साम्य जो बाह्य स्वार्थवश बाह्य साधनोंसे स्थापित किया जाता है नींवहीन एक विशाल भवननिर्माण करनेकी चेष्टा-जैसा है। फिर स्वतः प्रकृति ही अपनी विभिन्नता और विचित्रतासे हमारे इस बाह्य साम्यके विरुद्ध घोषणा कर रही है। परन्तु हम निज आलोकसे हीन होनेके कारण इस सत्यकी प्रतिष्ठा करनेमें असमर्थ हैं। किन्तु साम्यवादकी अधिष्ठात्री देवी पावनी भक्तिके बिना साम्यवाद स्थापन करनेकी चेष्टा करना कोरा अज्ञान है। क्योंकि 'भक्ति' ही साम्यवादकी दिव्य जननी है और वह भक्ति है भारतीय संस्कृतिसे सिञ्चित उस सर्वव्यापक प्रेमार्णव पिताकी भक्ति !

जिस संगठनका कोलाहल आज किया जा रहा है उस संगठनकी यथार्थ सम्पादिका भी वही भक्ति है। परन्तु जिस पद्धतिसे संगठनका प्रयत्न किया जा रहा है वह (प्रयत्न) ऐसा है जैसे कि कोई स्वर्गकी कामना करता हुआ नरककी तैयारीके कर्म करे। आज जिस रूपमें जातिगत प्रेमका प्रश्न हल किया जा रहा है वह भी एक बाहरकी बनावट तथा निज-निज स्वार्थ-साधनपरक ढोंग है। ऐसे लोगोंको मुसलमानी राज्यका ही वह काल देखना चाहिये जब कि यहाँ (भारतमें) पावनी भक्तिकी गंगा बह रही थी। क्या उस कालके रहीम, जायसी, मुबारक, उस्मान, रसलीन, रसखान और शेख आदि यवन महानुभाव आज-जैसे किसी बाह्य स्वार्थसे हिन्दू संस्कृतिके भक्त बनकर विश्व-बन्धुत्वके भावमें बँधे थे ? क्या इससे सच्चा और पवित्र मन्त्र साम्यवाद और संगठनके लिये संसारमें मिल सकता है ? परन्तु आजके आर्य-संस्कृति-हीन हमलोग पाश्चात्य संस्कृतिमें पले होनेके कारण इस सत्य मन्त्रको न अपनाते हुए जिस रूपसे जातिगत प्रेमके प्रश्नको हल करना चाहते हैं वह बिल्कुल गलत है। कवि अकबरके कथनानुसार—

क्या हुआ यूँ मिल गये, साहब सलामत हो गयी।
दिल नहीं मिलता तो मिलनेका मजा मिलता नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब इस मिलनेसे क्या लाभ ? हृदय मिलानेवाली वस्तु है 'भक्ति'। यदि हिन्दू-समाजमें उस भक्तिका राज्य होता और हमलोग होते उस भक्तिसे पूर्ण तो कौन-सी विरोधिनी शक्ति थी जो उनका हार्दिक स्नेहपूर्ण सहयोग न करती ? हिन्दुओंके उस दिव्य भक्ति-कालमें हिन्दू और यवन-हृदयका मिलन कैसा था, वे (यवन) हिन्दुओंके आराध्यदेवको किस प्रकार अपने हृदयमें प्रतिष्ठित कर रहे थे, उसको 'रसखान' के ही शब्दोंमें सुनिये—

मानुस हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुलगाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंदकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरिको जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं नित कालिंदी-कूल-कदंबकी डारन॥

कैसा दैन्यभावपूर्ण आत्मसमर्पण है ! कितना अनुपम अनन्य प्रेम ! भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्रजीके शब्दोंमें 'इन मुसलमान हरिजननपै कोटिन हिंदुन वारिये' यह है दो जातियोंके हृदयका मिलन, संगठन और साम्यवाद। परन्तु आज हमलोगोंकी बुद्धि इतनी स्थूलद्रष्टा हो गयी है कि हम अपने अन्तःस्थित उस दिव्य-शक्ति भक्तिकी गंगाको प्रस्तावित न कर केवल बाह्य साधनासे हिन्दू-मुस्लिम-मिलनका स्वप्न देख रहे हैं। हम आज स्वराज्यकी कामनामें लुब्ध हुए अपनी उस अन्तःशक्तिको प्रबुद्ध न कर एकत्रित होनेको ही संगठन और मिलन समझते हैं। आज हमारे ऊपर कोई नियम नहीं, हमारा कोई अपना शास्त्र नहीं, कोई मर्यादा नहीं। श्रीराम-कृष्ण भी काल्पनिक हैं ! हमारे पूर्वज असभ्य थे; बर्बर थे ! ऋषियोंका मत दुर्गन्ध-पूर्ण मवाद है ! पुरानी पुस्तकें वेद और उपनिषद्-पुराण आदिका काल समाप्त हो चुका, वे अब रद्दी हैं ! अब हमें सभ्य बनना है और दौड़ना है पाश्चात्योंके साथ ! फेंको उतारकर आर्योंका अवशिष्ट चिह्न यज्ञोपवीत और सम्बन्ध-विच्छेद करो उनके संस्कारोंसे !! ये बातें हैं आजके हम उन्नतिकामियोंकी, सुधरे हुए लोगोंकी ! परन्तु भारतको अपनी प्रतिष्ठा रखनी होगी और पाश्चात्य गम्भीर द्रष्टाओं-की उस भविष्यवाणीपर कि 'यदि विश्वका सभ्य मानव-समाज शान्तिपूर्ण आनन्द-राज्यकी कामना करेगा तो उसको भारतीय संस्कृतिको अपनाना ही होगा' ध्यान देकर भारतके 'अहं' को अपने लिये भी और दूसरोंके लिये भी व्यापक करना ही होगा। और अपने देशको ही नहीं वरं विश्वको उस विशाल आनन्द-राज्यकी छत्रछायामें संगठित करना होगा। तब सभी विश्व-बन्धुत्वके आनन्द-सिन्धुमें निमग्न होकर इस भूतलपर ही उस दैवी राज्यका उपभोग करेंगे। परन्तु कब ?

जब कि भारतकी आर्य-सन्तति स्वयं उस विश्व-मन-रञ्जिनी भक्तिके रंगमें रञ्जित होकर उसका सुललित दिव्य शंखनाद करेगी।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

श्रान्त पथिक

(१)

ज्ञान अल्प, ज्ञाता अबल, है अज्ञेयाभास।
चंचल मन जावै कहाँ, कैसे, किसके पास ?

(२)

बुद्धि पंगु, चित तिमिरयुत, अहंकारका पास।
चंचल मन जावै कहाँ, कैसे, किसके पास ?

(३)

सांख्य, ज्ञान, अनुमान बन, होवै कैसे बास !
भेद निविड़-तम, शुष्क मग, तर्क-जालका पास !!

× × × ×

(४)

नित्य उदित विधु रुचिर मुख, ईषत् हास प्रकास।
मन-कुमुदिनि ! खिलती रहो बनमालीके पास॥

(५)

शील-शक्ति-सौंदर्ययुत, अतुल मनोहर हास।
आश्रय-मन ! आश्रित रहो, नित-आलंबन पास॥

(६)

जैमिनि, व्यास, कणादकी, अब छोड़ो तुम आस।
चंचरीक-मन ! रमि रहो राम-कंज-पद पास॥

—'चातक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बद्ध और मुक्त

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

बद्धो हि को यो विषयानुरागी
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ।

श्यामा—हे बहिन ! संसारमें बद्ध और मुक्त दो प्रकारके बहिन-भाई देखनेमें आते हैं उनके शास्त्रोक्त लक्षण मैं तेरे मुखसे सुनना चाहती हूँ, तेरी समझानेकी रीति बहुत ही सरल है, तू जो बात कहती है वह शीघ्र ही समझमें आ जाती है। हे बहिन ! बद्ध कौन है और मुक्त कौन है ? यह बात संक्षेपसे मुझे दो-चार दृष्टान्त देकर समझा। जिससे पढ़े-बेपढ़े सभी बहिन-भाइयोंकी समझमें आ जाय, बद्ध पुरुष यहाँपर दुःखका अनुभव करता है और मरनेके पीछे अशुभ गति पाता है। और मुक्त पुरुष इस लोकमें जीते-जी सुखी रहता है और देह त्यागनेके पीछे विष्णुके अचल पदको पाता है। यह बात तो लोक और वेदमें प्रसिद्ध है ही।

कोकिला—हे बहिन ! तेरी बातका सरल-सीधा और संक्षेपसे उत्तर यह है कि विषयभोगोंमें प्रेम करनेवाला बद्ध यानी संसारमें बँधा हुआ है, और विषयभोगोंसे विरक्त पुरुष मुक्त है, यानी संसारके दुःखोंसे छूटा हुआ है। अब इसी बातको कुछ स्पष्ट करके समझाती हूँ।

हे बहिन ! विचारकर देखा जाय तो न कोई बद्ध है, न मुक्त है; क्योंकि आत्मा, स्वरूपसे एक, अद्वितीय और चेतनस्वरूप है, और शरीर अनेक और अचेतन हैं। चेतन और अचेतन रात-दिनके समान हैं, दोनोंका सम्बन्ध ही नहीं हो सकता। जैसे सूर्यमें अँधेरा त्रिकालमें नहीं है, इसी प्रकार आत्मामें तीनों कालमें अज्ञान नहीं है, फिर भी आत्माके अज्ञानसे यह मन बन्ध और मोक्षकी कल्पना करता है। मनसे ही बन्ध है और मनसे ही मोक्ष है। अशुद्ध मनसे बन्ध है और शुद्ध मनसे मोक्ष है अर्थात् अशुद्ध मनवाला मनुष्य बद्ध है और शुद्ध मनवाला मुक्त है। प्रायः सब भाई-बहिन बद्ध ही हैं, मुक्त तो कोई एक बिरला ही होता है।

हे बहिन ! जिस बहिन या भाईके पूर्वके अनेक पुण्योंका जब उदय होता है, तब वह मुक्तिके लिये यत्न करता है, और मुक्तिके लिये यत्न करनेवालोंमेंसे भी कोई एक ईश्वर-प्राप्तिरूप मुक्तिके प्राप्त करनेके लिये योग्य होकर मुक्त होता है। सारांश यह कि मुक्ति थोड़े पुण्यका फल नहीं है, महान् पुण्यका फल है। जब बहुत दिनोंतक मनुष्य ईश्वरकी प्रीतिके लिये निष्काम कर्म करता है तब उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेसे विषय-भोगोंसे वैराग्य होता है और सच्चे सुखकी खोज होती है। सच्चा सुख अपने आत्मा—ईश्वरमें ही है। ईश्वर सामान्य-रूपसे सर्वत्र होनेपर भी विशेष रूपसे सबके हृदयमें विराजमान है। जो बहिन-भाई बाह्य पदार्थोंका ध्यान छोड़कर अन्तर्मुखी होकर हृदयेशका ध्यान करते हैं, वे उसका साक्षात्कार करते हैं, फिर उन्हें सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा ईश्वर ही दिखायी देता है, उसके सिवा अन्य कुछ दिखायी नहीं देता। अथवा दिखायी देता है तो वन्ध्या-पुत्रके समान या मृगतृष्णाके जलके समान। फिर उनकी उसमें आस्था नहीं होती। ऐसे भाई-बहिन जीते-जी ही मुक्त होकर विचरते हैं। वे न कभी शोक करते हैं, न मोह। निःशोक, निर्मोह होकर विचरते हैं। ऐसे बहुत-से भाई-बहिन मैंने देखे हैं। उनमेंसे ऐसी दो बहिनोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा मैं आज तुझे सुनाती हूँ, जिन्हें सुनकर तू मुक्तका स्वरूप समझ जायगी।

एक बार मैं और हमारे पड़ोसकी कई बहिनें हृषीकेशमें गङ्गा-स्नान करने गयीं और एक धर्म-शालामें ठहरीं। दैवयोगसे वहाँपर खटमल बहुत थे, चारपाईपर तो कोई सो ही नहीं सकता था, हम सब पृथिवीपर ही सोते थे। वहाँ भी खटमल आ जाते थे, किसीको सोने नहीं देते थे, हम सब कभी ऊपर जाते थे, कभी नीचे। परन्तु कहीं भी चैन नहीं मिलता था, रातभर जागते थे। दिनमें कभी एक-आध घण्टे सो लेते थे। हमारी मण्डलीमें शान्ति नामकी एक बहिन थी, वह पड़ते ही सो जाती थी, रातभर उसे खटमल काटते थे, परन्तु वह करवटतक नहीं लेती थी। चार बजे सबेरेतक सोती रहती थी। उठते ही भजनमें लग जाती थी और सूर्य उदय होनेतक एक आसनसे सीधी बैठी रहती थी। उसके शरीरपर सबेरे ही ददोड़े देख हम उससे पूछते कि तुम्हें खटमल नहीं काटते? तब वह उत्तर देती—

'बहिनो! काटते क्यों नहीं हैं। अवश्य काटते हैं। जैसे तुम्हें काटते हैं वैसे ही मुझे भी काटते हैं; परन्तु काटनेको जानता कौन है? मन ही तो जानता है, मनके बिना तो काटनेका ज्ञान हो नहीं सकता, जागतेमें मेरा मन आत्मानुसन्धानमें लगा रहता है और सोते समय अज्ञानमें लीन हो जाता है, इसलिये मुझे काटनेकी खबर ही नहीं रहती, यह सब ईश्वर-भजनका प्रताप है, यदि तुम भी मेरे समान ईश्वर-भजनमें मन लगाये रहो तो तुमको भी उनके काटनेकी प्रतीत न हो, अथवा हो भी तो इतनी न हो कि तुम व्याकुल हो जाओ। मैं अपनी बड़ाई नहीं करती, मेरी बड़ाई है भी नहीं। ईश्वर-भजनकी बड़ाई है। तुम्हारे हितके लिये कहती हूँ कि तुम यदि ईश्वर-भजन करने लगो तो मेरे समान तुम भी सुखकी नींद सोया करोगी, और तुमको सुख-दुःख, शीतोष्ण, मानापमान आदि द्वन्द्व व्याकुल नहीं कर सकेंगे।

शान्तिकी बातको सुन हमको बड़ा आश्चर्य हुआ और हमने विचार किया कि ईश्वर-भजन तो क्या करती होगी, नींदमें बेखबर सो जाती है इसलिये खटमलोंके काटनेकी इसे खबर नहीं रहती है। इसके ईश्वर-भजनकी परीक्षा लेनी चाहिये। ऐसा विचारकर हमने लड़क-बुद्धिसे जाड़ोंके दिनोंमें उस सोती हुईके ऊपर ठण्ढे पानीके छींटे डाल दिये, तो वह 'हरे राम हरे कृष्ण, हरे नारायण' कहती हुई उठ बैठी और इस प्रकार कहने लगी—

शान्ति—बादल तो हैं नहीं। तारे छिटक रहे हैं, बरसातका पानी नहीं है। किसी शिष्ट बहिन-भाईने मुझे ईश्वर-भजनसे रहित देखकर ईश्वर-भजन करनेको जगा दिया है। भाई जगानेवाले तुम्हारा भला हो, तुमने बहुत अच्छा काम किया है। जैसे दयालु सन्त-महात्मा अज्ञानी जीवोंको मोहनिद्रासे उठाकर तत्त्वमें जगा देते हैं, उसी प्रकार तुमने मुझ सोती हुईको नींदसे उठाकर ईश्वर-भजनमें लगा दिया, इसलिये मैं तुम्हारा बहुत ही उपकार मानती हूँ। हे भाई! मुझे रोज इसी प्रकार जगा दिया करो।

यह सुनकर हम सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं और सामने आनेके बाद मैं उससे इस प्रकार कहने लगी।

हे बहिन! यथा नाम तथा गुण, सचमुच तुम शान्तिकी मूर्ति हो, क्या इस शान्तिका आनन्द अकेले-ही-अकेले ही लूटोगी? अथवा हमको भी थोड़ा-सा भाग प्रदान करोगी? यदि हमारा-तुम्हारा कुछ दिन सङ्ग रहा तो आशा होती है कि हमें भी बहुत नहीं तो कुछ तो शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनकर शान्ति हँसने लगी, और हम सब चुपकी हो गयीं, बात गयी-आयी हुई। एक दिन शान्ति गङ्गा-स्नान करके बहुत देरमें आयी, हमने देरमें आनेका कारण पूछा तो कहने लगी।

शान्ति–हे बहिनो ! आजका दिन बड़ा शुभ है। गङ्गाजीकी मेरे ऊपर अपार कृपा है। आज मैंने तीन बार गङ्गा-स्नान किया है। बात यह है कि जब मैं स्नान करके आऊँ, तभी एक भङ्गिन टोकरा लिये हुए मार्गमें मिल जाय, बेचारी बहुत ही बचे फिर भी थोड़ी-सी धूल मेरे ऊपर आ जाय, अथवा नहीं आ जाय, किन्तु मुझे तो ऐसा ही मालूम हो कि धूल आ गयी। उस भङ्गिन बहिनका भला हो जिसने मुझे आज एक ही दिन-में तीन बार गङ्गा-स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त कराया।

कोकिला–मुक्त पुरुषके यही लक्षण होते हैं कि सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वोंमें समान रहे। ये लक्षण शान्तिमें घटते हैं। अब दूसरी बहिनका वृत्तान्त सुन।

एक गाँवमें एक सेठानी रहती हैं, उनके चार लड़के हैं और चार बहुएँ हैं, लखपती हैं। चार-पाँच हजार रुपये महीनेकी उनकी आमदनी है, सेठानीके पति कुछ दिन हुए परलोक सिधार गये हैं। फिर भी सेठानीकी आज्ञा घरभरपर चलती है, लड़के और बहुएँ तन, मन और धनसे उनकी सेवा करते हैं। हमेशा उनसे भय खाते रहते हैं। उनकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन नहीं करते। एक दिन उनके यहाँ चोरी हुई, और बीस-पचीस हजारका माल चोरी चला गया। सेठानीने चोरी होनेका कुछ सोच न किया। अपने पाससे सौ रुपयेका एक नोट निकालकर लड़कोंको दे दिया और ब्रह्मभोज करानेकी आज्ञा दी। लड़के और बहुओंने सेठानीकी आज्ञाका पालन किया। जब ब्राह्मण भोजन कर चुके तब एक पण्डितजी आकर सेठानीसे इस प्रकार कहने लगे।

पण्डितजी–हे दानशीले ! आप शुभ तिथियोंमें प्रायः ब्रह्मभोज कराया करती हैं। मैं समझता था कि आपके यहाँ धर्मकी कमाई आती है, धर्मकी आमदनी हो तो धर्मात्माको दान करना उचित ही है, परन्तु आज तो आपके यहाँ चोरी हो गयी। यदि धर्मसे कमाया हुआ धन चोरी चला गया है तो उसके लिये शोक करना चाहिये, उत्सव नहीं मनाना चाहिये। अधर्मकी कमाई चली जाय तो धर्मात्मा उत्सव मनाते हैं, अधर्मकी कमाई आपकी थी नहीं, फिर आज आपने उत्सव क्यों मनाया ?

सेठानी–(हँसकर) पण्डितजी ! जैसा आप समझते हैं वैसा नहीं है। धर्मकी कमाई हो या अधर्मकी, जो जानेवाला होता है वह चला ही जाता है। जो जानेवाला है वह अवश्य जायगा फिर मुझे सोच क्यों करना चाहिये ? मेरे चोरी हो गया है इसलिये मैंने उत्सव नहीं मनाया, उत्सव मनानेका कारण और ही है। मेरे लड़के मुझे सौ-पचास रुपये रोज कमाकर लाकर देते हैं, परन्तु मुझे कभी हर्ष नहीं होता है, आज मेरी चोरी हो गयी और बीस-पचीस हजार रुपयेका माल चला गया, तब मैंने अपने मनकी जाँच की, मैंने देखा कि मेरे मनमें किञ्चित् भी शोक नहीं है, वह जैसा हमेशा स्वस्थ रहता था, वैसा ही आज भी है, यह मैंने अपने मनके स्वस्थ रहनेका उत्सव मनाया है।

पण्डितजी–हे धर्मशीले ! जैसा धैर्य और विवेक आपमें है वैसा हम ब्राह्मणोंमें भी नहीं है, ब्राह्मण सबका गुरु है यह तो सामान्य बात है, परमार्थसे तो आप-सरीखी धीरा, वीरा, दानी और धर्मात्मा ही उपदेशक होनेके योग्य हैं। यदि आप-सरीखी दो-चार बहिनें और हों तो देशभर-का कल्याण हो जाय और कलियुगका सत्ययुग हो जाय।

इतना कहकर पण्डितजी सब ब्राह्मणोंसहित मार्गमें सेठानीकी प्रशंसा करते हुए और मनमें प्रसन्न होते हुए चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे बहिन ! इस दृष्टान्तसे तू मुक्तके लक्षण समझ गयी होगी। जिसके मनमें हर्ष-शोक न हो किन्तु जिसका मन सर्वदा समभावमें रहे, वही मुक्त है, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो।

श्यामा–हे बहिन ! पहले तो तू बता आयी है कि जो विषयोंसे विरक्त हो, वह मुक्त है, अब कहती है कि जिसको हर्ष-शोक न हो वह मुक्त है। और रामायण आदि सत्-शास्त्रोंमें मैंने सुना है कि जो अपनेको, ईश्वरको और मायाको जानता है, यानी जो सम्यक् आत्मज्ञानी है वह मुक्त है। तेरे पहले और पिछले कथनमें विरोध है, और अन्य शास्त्रोंसे भी विरोध है। इनका क्या सम्बन्ध है ?

कोकिला–हे बहिन ! जबतक मनुष्य भोगोंमें आसक्त रहता है तबतक करोड़ों जन्मोंमें भी मुक्त नहीं होता, और जब वह भोगोंमें दोष देखकर भोगोंसे विरक्त हो जाता है, तो उसके मुक्त होनेमें फिर देर नहीं लगती। इसी प्रकार जबतक मनुष्य हर्ष-शोक आदि द्वन्द्व नहीं त्यागता तबतक मुक्त नहीं होता और जब हर्ष-शोक आदि द्वन्द्व त्याग देता है तो शीघ्र ही मुक्त होनेके योग्य हो जाता है। भोगोंसे विरक्त होना और हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे दूर रहना यह साधकोंके तो साध्य लक्षण हैं, और सिद्ध पुरुषोंके यह लक्षण स्वाभाविक होते हैं। मुमुक्षुओंके लिये भोगोंकी आसक्ति छुड़ानेको और हर्ष-शोकसे बचनेको मुक्तके लक्षण कहे हैं। आत्मज्ञान हुए बिना कोई पूर्णरीतिसे भोगोंसे विरक्त नहीं हो सकता। और हर्ष-शोकको भी सर्वथा नहीं त्याग सकता। इसलिये भोगोंसे विरक्त होना यह मुक्तका लक्षण ठीक ही है, और हर्ष-शोक न होना यह भी मुक्तका लक्षण उचित ही है। क्योंकि विरक्त ही हर्ष-शोकको पूर्णरीतिसे त्याग सकता है, इसलिये मेरे पहले और पिछले कथनमें कोई विरोध नहीं है। और अन्य शास्त्रोंसे भी विरोध नहीं है। पूज्यपाद भाष्यकारने भी प्रश्नोत्तरीमें बद्ध और मुक्तके यही लक्षण बताये हैं कि 'विषयानुरागी बद्ध है और विषयविरक्त मुक्त है।' सबका सार यह है—

कुं०—भोगोंमें आसक्त नर, मरते बारंबार।
विषयविरागी धीर नर, भवसे होते पार॥

भवसे होते पार, भोगमें प्रेम न रखते।
जागत सोवत नित्य, आत्मरस अद्भुत चखते॥
'देवी' करे कुपथ्य, फँसे सो ज्यों रोगोंमें।
त्यों ही पावे कष्ट, प्रीति कर नर भोगोंमें॥

आकांक्षा

परहित रत रहिबेकी बुद्धि धारि तीखे तपसों जराय मद लोभ मोह कोह काम।
मानको मिटाय ध्यान राखि परितोष बानि सहिहौं सकल सुख-दुख नीर शीत घाम॥
आइहै दिवस कब ऐसो अभिराम जब विमल बनाय हिय जाय ब्रज मंजु धाम।
गद-गद कंठसों निकुंजनमें धाय-धाय टेरहुँगो रातदिन राधेश्याम राधेश्याम॥

—बलदेवप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्-गाथा

(१)

उषस्तिका आपद्धर्मपालन

एक समय कुरुदेशमें ओलोंकी बड़ी वर्षा होनेसे और उगते हुए अन्न-का नाश हो जानेसे भयानक अकाल पड़ गया । अकालसे पीड़ित नर-नारी अन्नके अभावसे देश छोड़कर भागने लगे । इसीलिये चक्रके पुत्र उषस्तिने भी अपनी अप्राप्तयौवना पत्नी आटिकीको साथ लेकर देश छोड़ दिया और भटकते-भटकते दोनों एक महावतोंके ग्राममें पहुँचे । भूखके मारे उस समय उषस्ति मरणासन्न दशाको प्राप्त हो रहा था । उसने एक महावतको उबले हुए उड़दके दाने खाते देखा और उसके पास जाकर कुछ उड़द देनेको कहा । महावतने कहा, 'मैं इस बर्तनमें रखे हुए जो उड़द खा रहा हूँ इन जूँठे उड़दोंके सिवा मेरे पास और उड़द नहीं है तब मैं तुम्हें कहाँसे दूँ ?' महावतकी बात सुनकर उषस्तिने कहा, 'मुझे इनमेंसे ही कुछ दे दो' तब महावतने उनमें-से थोड़े-से उड़द उषस्तिको दे दिये और जल सामने रखकर कहा कि 'लो, इनको खाकर जल पी लो ।' इसपर उषस्तिने कहा 'भाई ! मैं यह जल पी लूँगा तो मुझे दूसरेकी जूँठन खानेका दोष लगेगा ।'

महावतने अचरजसे पूछा, 'तो क्या तुमने जो उड़द मुझसे लिये हैं, ये जूँठे नहीं हैं, फिर जूँठे जलहीमें कौन-सा दोष है ?'

उषस्तिने उत्तर दिया, 'भाई ! यदि मैं यह उड़द नहीं खाता तो मेरे प्राण नहीं रहते (प्राण-सङ्कटमें आपद्धर्म समझकर ही मैं उड़द खा रहा हूँ) अब जल तो मेरी इच्छानुसार मुझे दूसरी जगह भी मिल जायगा । यदि उड़दकी तरह मैं तुम्हारा जूँठा जल भी पी लूँ तब तो वह स्वेच्छाचार ही होगा । आपद्धर्म नहीं रहेगा । इसलिये मैं तुम्हारा जल नहीं पीऊँगा ।' इतना कहकर उषस्तिने कुछ उड़द खा लिये और शेष स्त्रीको दे दिये । ब्राह्मणीको पहले ही कुछ खानेको मिल गया था, इसलिये पतिके दिये हुए जूँठे उड़द उसने खाये नहीं, अपने पास रख लिये ।

दूसरे दिन प्रातःकाल उषस्तिने बिछौनेसे उठकर अपनी स्त्रीसे कहा, 'क्या करूँ, मुझे जरा-सा भी अन्न कहींसे खानेको मिल जाय तो मैं अपना निर्वाह होने लायक कुछ धन प्राप्त कर सकता हूँ, यहाँसे समीप ही एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह ऋत्विक्‌के काममें मेरा भी वरण कर लेगा ।'

यह सुनकर स्त्रीने कहा, 'मेरे पास कलके बचे हुए कुछ उड़द हैं, लीजिये, इन्हें खाकर यज्ञमें शीघ्र चले जाइये ।' भूखसे अशक्त हुए उषस्तिने उड़द खा लिये और कुछ स्वस्थ होकर वह राजाके यज्ञमें चले गये। वहाँ जाकर वे आस्तावमें (स्तुतिके स्थानमें) स्तुति करने-वाले उद्गाताओंके पास जाकर बैठ गये । और स्तुति करनेवालोंकी भूल देखकर उनसे बोले, 'हे प्रस्तोता ! आप जिन देवताकी स्तुति करते हैं वे देव कौन हैं ? आप यदि अधिष्ठाताको जाने बिना उनकी स्तुति करेंगे तो याद रखिये, आपका मस्तक नीचे गिर पड़ेगा' इसी प्रकार उद्गातासे कहा कि 'हे उद्गीथकी स्तुति करनेवाले ! यदि आप उद्गीथ भागके देवताको जाने बिना उनका उद्गान करेंगे तो आपका मस्तक नीचे गिर पड़ेगा ।' तदनन्तर उन्होंने प्रतिहारका गान करनेवालेकी ओर भी मुड़कर कहा कि 'हे प्रतिहारका गान करनेवाले प्रतिहर्ता ! यदि आप देवताको बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने उसको प्रतिहार करेंगे तो आपका मस्तक नीचे गिर जायगा।' यह सुनकर स्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता आदि सब ऋत्विजगण मस्तक गिरनेके डरसे अपने-अपने कर्मको छोड़कर चुप होकर बैठ गये।

राजाने अपने ऋत्विजोंकी यह दशा देखकर कहा कि 'हे भगवन्! आप कौन हैं, मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ।' उषस्तिने कहा—'राजन्! मैं चक्रका पुत्र उषस्ति हूँ।' राजाने कहा—'ओहो! भगवन्! उषस्ति आप ही हैं? मैंने आपके बहुत-से गुण सुने हैं। इसीलिये मैंने ऋत्विजके कामके लिये आपकी बहुत खोज की थी परन्तु आपके न मिलनेपर मुझे दूसरे ऋत्विज वरण करने पड़े। अब मेरे सौभाग्यसे आप पधारे हैं तो हे भगवन्! ऋत्विज-सम्बन्धी समस्त कर्म आप ही करनेकी कृपा कीजिये।'

उषस्तिने कहा—'बहुत अच्छा! परन्तु इन ऋत्विजोंको हटाना नहीं, मेरी आज्ञानुसार ये ऋत्विज-गण अपना-अपना कर्म करें। और दक्षिणा भी जो इन्हें दी जाय, उतनी ही मुझे देना।' (न तो मैं इन लोगों-को निकालना चाहता हूँ, और न दक्षिणामें अधिक धन लेकर इनका अपमान करना चाहता हूँ। मेरी देख-रेखमें ये सब कर्म करते रहेंगे) तदनन्तर प्रस्तोता, उद्गाता आदि समस्त ऋत्विजोंने उषस्तिके पास जाकर विनयपूर्वक उनसे पूछ-पूछकर सब बातें जान लीं और उषस्तिने उन लोगोंको सब समझाकर उनके द्वारा राजाका यज्ञ भलीभाँति पूर्ण करवाया।

(२)

गाड़ीवाला रैक्व

प्रसिद्ध जनश्रुत राजाके पुत्रका पौत्र जानश्रुति नामक एक राजा था, वह बहुत ही श्रद्धाके साथ आदरपूर्वक योग्य पात्रोंको बहुत दान दिया करता था। अतिथियोंके लिये उसके घरमें प्रतिदिन बहुत-सा भोजन बनवाया जाता था। वह महान् दक्षिणा देने-वाला था। वह चाहता था कि प्रत्येक शहर और गाँवमें रहनेवाले साधु, ब्राह्मण आदि सब मेरा ही अन्न खायँ, इसलिये उसने जहाँ-तहाँ सर्वत्र ऐसे धर्मस्थान, अन्नछत्र या छात्रावास खोल रक्खे थे जहाँ अतिथियों आदिके ठहरने और भोजन करनेका सुप्रबन्ध था।

राजाके अन्नदानसे सन्तुष्ट हुए ऋषि और देवताओं-ने राजाको सचेत करके उसे ब्रह्मानन्दका सुख प्राप्त करानेके लिये हंसोंका रूप धारण किया और राजा-को दिखायी दे सकें ऐसे समय वे उड़ते हुए राजाके महलकी छतके ऊपर जा पहुँचे। वहाँ पिछले हंसने अगले हंससे कहा, 'भाई भल्लाक्ष! इस जनश्रुतके पुत्रके पौत्र जानश्रुतिका तेज दिनके समान सब जगह फैल रहा है। इसका स्पर्श न कर लेना, कहीं स्पर्श कर लेगा तो यह तेज तुझे भस्म कर डालेगा।' यह सुनकर अगले हंसने कहा—

'भाई! तुम बैलगाड़ीवाले रैक्वको नहीं जानते, इसीसे तुम उस रैक्वसे इसका तेज बहुत ही कम होनेपर भी उसकी-सी प्रशंसा कर रहे हो।' पिछले हंसने कहा, 'वह गाड़ीवाला रैक्व कौन है और कैसा है, यह तो बता।' अगले हंसने कहा, 'भाई! उस रैक्वकी महिमाका क्या बखान किया जाय। जैसे जुआ खेलनेके पासेके नीचेके तीनों भाग उसके अन्तर्गत होते हैं। यानी जब जुवारीका पासा पड़ता है तब वह तीनोंको जीत लेता है इसी प्रकार प्रजा जो कुछ भी शुभ कार्य करती है, वह सारे शुभ कर्म और उनका फल रैक्वके शुभ कर्मके अन्तर्गत है। अर्थात् प्रजाकी समस्त शुभ क्रियाओंका फल उसे मिलता है। वह रैक्व जिस जाननेयोग्य वस्तुको जानता है, उस वस्तुको जो जान जाता है उसे भी रैक्वके समान ही सब प्राणियोंके शुभ कर्मोंका फल प्राप्त होता है। मैं उसी विद्वान् रैक्वके लिये ही ऐसे कह रहा हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महलपर सोये हुए राजा जानश्रुतिने हंसोंकी ये बातें सुनीं और रातभर वह इन्हीं बातोंको स्मरण करता हुआ जागता रहा। प्रातःकाल बन्दीजनोंकी स्तुति सुनकर राजाने बिछौनेसे उठकर बन्दीजनोंसे कहा कि 'हे वत्स! तुम गाड़ीवाले रैक्वके पास जाकर उससे कहो कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ।' भाटने कहा, 'हे राजन्! वह गाड़ीवाला रैक्व कौन है? और कैसा है?' राजाने जो कुछ हंसोंने कहा था, सो उसे कह सुनाया। राजाकी आज्ञानुसार भाटोंने बहुत-से नगरों और गाँवोंमें रैक्वकी खोज की परन्तु कहीं पता नहीं लगा। तब लौटकर उन्होंने राजासे कहा कि 'हमें तो रैक्वका कहीं पता नहीं लगा।' राजाने यह विचार किया कि इन भाटोंने रैक्वको नगरों और ग्रामोंमें ही खोजा है, भला, ब्रह्मज्ञानी महापुरुष विषयी पुरुषोंके बीचमें कैसे रहेंगे? उनसे कहा कि 'अरे जाओ! ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके रहनेके स्थानोंमें (अरण्य, नदीतट आदि एकान्त स्थानोंमें) उन्हें खोजो।'

राजाकी आज्ञानुसार भाट फिर गये। और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी एक एकान्त निर्जन प्रदेशमें गाड़ीके नीचे बैठे हुए शरीर खुजलाते हुए एक पुरुषको देखा। बन्दीजन उनके पास जाकर विनयके साथ पूछने लगे, 'हे प्रभो! क्या गाड़ीवाले रैक्व आप ही हैं?' मुनिने कहा, 'हाँ, मैं ही हूँ।'

रैक्वका पता लगनेसे भाटोंको बड़ा हर्ष हुआ और वे तुरन्त राजाके पास जाकर कहने लगे कि 'हमने अमुक स्थानमें रैक्वका पता लगा लिया।'

तदनन्तर राजा छः सौ गायें, सोनेका कण्ठहार और खच्चरियोंसे जुता हुआ एक रथ आदि लेकर रैक्वके पास गया और वहाँ जाकर हाथ जोड़कर रैक्वसे बोला, 'भगवन्! यह छः सौ गायें, एक सोनेका कण्ठहार और यह खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ, ये सब मैं आपके लिये लाया हूँ। कृपा करके आप इनको स्वीकार कीजिये और हे भगवन्! आप जिस देवताकी उपासना करते हैं, उस देवताका मुझको उपदेश कीजिये।'

राजाकी बात सुनकर रैक्वने कहा, 'अरे शूद्र! यह गौएँ, हार और रथ तू अपने ही पास रख।' यह सुनकर राजा घर लौट आया और विचारने लगा कि 'मुझको मुनिने शूद्र क्यों कहा। या तो मैं हंसोंकी वाणी सुनकर शोकातुर था, इसलिये शूद्र कहा होगा। अथवा थोड़ा धन देखकर उत्तम विद्या लेनेका अनुचित प्रयत्न समझकर भी मुनि मुझको शूद्र कह सकते हैं।'

यह विचारकर राजा अबकी एक हजार गायें, एक सोनेका कण्ठहार, खच्चरियोंसे जुता हुआ एक रथ और अपनी पुत्रीको लेकर फिर मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा, 'हे भगवन्! यह सब मैं आपके लिये लाया हूँ, इसको आप स्वीकार कीजिये और धर्मपत्नीके रूपमें मेरी इस पुत्रीको, और जहाँ आप रहते हैं इस गाँवको भी ग्रहण कीजिये। तदनन्तर आप जिस देवकी उपासना करते हैं उसका मुझे उपदेश कीजिये।'

राजाके वचन सुनकर, कन्याकी करुणाभरी स्थिति देखकर मुनिने उसको आश्वासन दिया और कहा कि, हे शूद्र! तू फिर यही सब वस्तुएँ मेरे लिये लाया है? (क्या इन्हींसे ब्रह्मज्ञान खरीदा जा सकता है?)' राजा चुप होकर बैठ गया। कुछ समय बाद मुनिने उसको धनके अभिमानसे रहित हुआ जानकर ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। मुनि रैक्व जहाँ रहते थे उस पुण्य प्रदेशका नाम रैक्वपर्ण हो गया।

(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्त्र

(लेखक—पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

[गतांकसे आगे]

परन्तु साधारणतः कलिदूषित चित्तमें इस प्रकारके ज्ञानका उदय हो ही नहीं सकता। अतः कलिदोष-दूषित जनोंके लिये तन्त्रमें जो उपाय वर्णित हैं उनकी ही यहाँ आलोचना की जायगी। अब कलिकी अवस्था देखिये—

आयाते पापिनि कलौ सर्वधर्मविलोपिनि।
दुराचारे दुष्प्रपञ्चे दुष्टकर्मप्रवर्त्तके॥
न वेदा प्रभवस्तत्र स्मृतीनां स्मरणं कुतः।
तदा लोको भविष्यन्ति धर्मकर्मबहिर्मुखाः॥
उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः पापकर्मरताः सदा।
कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः॥
स्वल्पायुर्मन्दमतयो रोगशोकसमाकुलाः।
निःश्रीका निर्बला नीचा नीचाचारपरायणाः॥
नीचसंसर्गनिरताः परवित्तापहारकाः।
परनिन्दापरद्रोहपरिवादपराः खलाः॥
परस्त्रीहरणे पापशंकाभयविवर्जिताः।
निर्धना मलिना दीना दरिद्राश्चिररोगिणः॥
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ध्यावन्दनवर्जिताः॥

इत्यादि।

ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत् केवलं सूत्रधारणम्।
नैव पानादिनियमो भक्ष्याभक्ष्यविवेचनम्।
धर्मशास्त्रे सदा निन्दा साधुद्रोहो निरन्तरम्॥

इत्यादि।

अतः इस प्रकारके कलियुगमें (१) दिव्यभाव (२) पशु-भाव और (३) वीरभावकी साधना असम्भव है। कलिकालमें पशुभाव ही होना कठिन है—'पशुभाव कलौ नास्ति', फिर दिव्यभावकी तो बात ही क्या है? दिव्यभावापन्न व्यक्ति-को सदा देवताके समान शुद्ध अन्तःकरण, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेषवर्जित, क्षमाशील और समदर्शी होना चाहिये। इस कलियुगमें ऐसा होना अत्यन्त कठिन है। यद्यपि लता-साधन आदिके द्वारा शीघ्र ही कुछ सिद्धि प्राप्त हो सकती है, किन्तु सदा अस्थिर-चित्त, निद्रालस्य और प्रमादग्रस्त कलिदोषदूषित जीवोंके लिये यह सब साधन अत्यन्त ही विघ्नमय हैं। वीर साधनके लिये पञ्चमकाररूपी पाँच तत्त्व अपरिहार्य हैं किन्तु कलिकालके शिश्नोदरपरायण लुब्ध जीव इन पञ्चतत्त्वोंको लेकर साधन तो करेंगे नहीं, उलटे लोभ-वश इनमें आसक्त होकर ज्ञानशून्य पापाचारपरायण हो जायँगे। पञ्चतत्त्वकी दुहाई देकर दुर्बलचेता, पापिष्ठ मनुष्य अगम्या-गमन करनेमें भी मुँह न मोड़ेंगे। इसी कारण कलियुगमें इस प्रकारके साधनका शिवजीने निषेध किया है। यह सारे साधन तीक्ष्णधार तलवारके साथ खेल करनेके समान हैं। एक बार गिर गये तो फिर कहीं भी खड़े होनेतककी जगह नहीं है। जिनके चित्त कलिदोष-दूषित नहीं हैं, जो अत्यन्त ही संयत और भगवद्भजन-शील, सत्यव्रत और सत्यपरायण हैं वे यद्यपि इन सब प्रणालियोंके द्वारा शीघ्र सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं तथापि इस युगके लिये, तो इस प्रकारकी साधना विषका काम करेगी। कलियुगमें द्रव्य, मन्त्र और ब्राह्मणशुद्धिके अभावमें श्रौत और स्मार्त कर्मादि भी पूर्वकी भाँति फलप्रद नहीं होते।

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।

समस्त वैदिक मन्त्र विषहीन सर्पके समान निर्वीर्य हो गये हैं। कलिकालमें वैदिक आचारोंकी रक्षा करनेमें प्रायः सभी असमर्थ हैं। इसका कारण द्रव्यादि शुद्धिका अभाव है। अतः पद-पदपर सबको आचारभ्रष्ट होना पड़ता है। और आचारभ्रष्ट होनेपर कोई वेदफल प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् मनु कहते हैं—

आचाराद्धि च्युतो विप्रः न वेदफलमश्नुते।

यही क्यों शूद्रराज्यमें बसनेपर ही वैदिक कर्मोंका पालन नहीं हो सकता। मनु भगवान् कहते हैं—

न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब विषयोंका विचार करके कलिग्रस्त जीवोंके लिये शिवजी ब्रह्मदीक्षाका उपदेश करते हैं। महानिर्वाण-तन्त्रमें लिखा है—

कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे।
निस्तारबीजमेतावद् ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम्॥
कलौ नास्त्येव नास्त्येव सत्यं सत्यं मयोच्यते।
ब्रह्मदीक्षां विना देवि कैवल्याय सुखाय च॥

तपस्याविहीन, पापमय, अति दुस्तर इस घोर कलियुग-में ब्रह्ममन्त्रकी साधना ही एकमात्र निस्तारका उपाय है। हे देवि! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि कलियुगमें सुख और मुक्ति प्रदान करनेवाला साधन ब्रह्मदीक्षाके अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

अनेकों साधनोंकी बात तन्त्रमें होते हुए भी कलिके जीवोंके लिये शिव कहते हैं—'कलौ दुर्बलजीवानां असाध्यानि महेश्वरि!'—कलिके दुर्बल जीवोंके लिये अन्य समस्त साधन असाध्य हैं।

किसी बाह्य अनुष्ठानके बिना केवल ब्रह्मचिन्तनके अभ्यासके द्वारा ब्रह्मसाधना सिद्ध होती है, केवल सत्यासत्य-निर्णयके चिन्तनद्वारा ही ब्रह्मसाधना अनुकूल होती है, इसी कारण अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षा यह सुख-सम्पाद्य है।

परन्तु इस ब्रह्मसाधनाकी बात कहकर देवीके प्रश्नानुसार पुनः सदाशिव देवीकी उपासनाकी बात कहते हैं—यही कुलाचारसम्मत साधना है। ब्रह्मसाधनाके पश्चात् पुनः पञ्चतत्त्वोंके द्वारा साधना मुक्तिप्रदानकारिणी है, ऐसा क्यों कहा गया है, यह अवश्य विचारणीय विषय है। इसमें शिवजीका क्या उद्देश्य है, इसे बिना समझे तन्त्रोक्त साधनाका मर्म नहीं जाना जा सकता।

यह ठीक है कि ब्रह्मसाधना और भगवतीकी साधनामें तत्त्वतः वैसा कोई भेद नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसाधनामें जिसकी उपासना होती है, भगवती आद्याशक्तिकी साधना-में भी उसीकी उपासना होती है। क्योंकि पहले कहा जा चुका है कि निर्गुण ब्रह्मकी साधना होती ही नहीं। होती है मूलप्रकृतिसे उपहित निर्गुण ब्रह्मकी साधना अथवा निर्गुण ब्रह्म उपहित मूलप्रकृतिकी। इसमें प्रथम उपासना-का नाम है ब्रह्मोपासना और दूसरी उपासनाका नाम आद्याशक्ति या भगवतीकी उपासना। इसीलिये वस्तुतः ये दोनों ही उपासना ब्रह्मोपासना हैं। फल भी दोनोंका समान ही है। परन्तु दोनों उपासनाकी प्रणालियोंमें बड़ा भारी भेद है। ब्रह्मोपासना और मूलप्रकृतिकी उपासनाकी फल-साम्यताके विषयमें कुछ कहना नहीं है, क्योंकि सदाशिव कहते हैं—

शृणु देवि महाभागे तवाराधनकारणम्।
तव साधनतो येन ब्रह्मसायुज्यमश्नुते॥
त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः।
त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे॥

हे देवि! तुम्हारी आराधना क्यों करनी चाहिये, तथा तुम्हारी आराधनाके द्वारा क्यों ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है—इसका कारण सुनो। साक्षात् ब्रह्म या परमात्माकी तुम्हीं परा प्रकृति हो अतः केवल तुम्हारे ही साथ उसका साक्षात् और नित्य सम्बन्ध है। हे देवि! तुमसे ही समस्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, अतएव तुम्हीं अखिल विश्वकी एकमात्र जननी हो।

यदि दोनोंकी उपासना एक ही है, तो विभिन्न प्रणाली क्यों प्रचलित हुई है? जो कुछ स्थूल-सूक्ष्म है सभी तो ब्रह्म और प्रकृतिविशिष्ट है, अतएव सब कुछ ब्रह्म-शरीर है। ब्रह्म नामसे जो पहले निर्गुण निराकार था उसे 'माँ' सम्बोधन करते ही मानों वह इन्द्रियबोधगम्य होने लगा। क्रमशः यह समझमें आने लगा कि जो स्थूल है वही सूक्ष्म है, तथा जो सूक्ष्म है, वही स्थूल है। जो निराकार और इन्द्रियोंके लिये अगम्य था वही साकार होकर इन्द्रिय-ज्ञानका विषय बन गया। जो वाष्पाकार था वह घन होकर जल और अन्तमें तुषाराकार हो गया। परन्तु इस साकार और निराकारमें तत्त्वतः कुछ भी भेद नहीं है। हम सोचते हैं कि वह हमें इन नेत्रोंसे नहीं दीख सकता, परन्तु इस विश्वरूपमें हमें किसकी मूर्ति दीखती है? क्या इस रूपमें कोई दूसरा है? क्या यह वही नहीं है? इस स्थूलरूपमें भी वही है। इसीसे कवि कहता है—

चोखे धूला आर माटी—
प्राण-रसनाय देख रे चेखे रसेर सँगे खाँटी।

जिसे इन नेत्रोंसे धूल-मिट्टी समझकर उपेक्षा करते हो, एक बार प्राणकी जीभसे उसे चखकर तो देखो, तुम्हें इन धूलके कणोंमें उसीका दिव्य रूप सुशोभित दीखेगा। इसीलिये श्रुति कहती है—'मधुमत्पार्थिवं रजः'—एक बार मधुका आस्वादन पा लेनेपर फिर समस्त ज्ञानद्वारोंसे केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधु ही झरने लगता है, सारी वस्तुएँ मधुमय दीखने लगती हैं। परन्तु हमें दृष्टिदोषका संशोधन करना होगा, इसीका नाम साधना है। हिरण्यकशिपुने इस विश्वमें कहीं भगवान्‌को नहीं पाया, यह ठीक है, परन्तु ब्रह्मदृष्टिसम्पन्न प्रह्लादकी दृष्टिमें तो वह कहीं नहीं छिप सका, उसने सब जगह उसीको देखा। इसी देखनेको दिव्यदृष्टि या साधनदृष्टि कहते हैं। इस प्रकार भगवान् इन्द्रियोंके लिये अगोचर होते हुए भी ज्ञानियोंके ज्ञान-नेत्रमें और भक्तोंके शुद्धान्तःकरणमें—'रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम्'—भगवान्‌की दिव्य कमनीय मनोमुग्धकारी दुःखनाशक मूर्ति प्रकट हो जाती है। यही बात महानिर्वाणतन्त्रमें भगवान् शिवजी कहते हैं—

उपासकानां कार्यार्थं श्रेयसे जगतामपि।
दानवानां विनाशाय धत्से नानाविधास्तनूः॥

उपासकोंकी कार्यसिद्धिके लिये, जगत्‌के मङ्गलके लिये तथा दानवोंके विनाशके लिये तुम समय-समयपर अनेकों प्रकारके शरीर धारण करते हो।

जब भाफ और बरफ एक ही वस्तु है, तब यदि बरफको देखकर ज्ञानकी स्पष्टता बढ़ती है तो फिर बरफ देखनेको नीचा क्यों माना जाय? जड़ जड़ नहीं है, वह भी चेतन है। जडभावापन्न अकवि पुरुष उसे साकार कहें या निराकार बतलायें, उनके चित्तमें कोई भावना नहीं जम सकती। क्योंकि वहाँ उस दिव्यदृष्टिका अभाव है। और जहाँ प्राण है, वास्तविक प्रेम है वहाँ परमात्मा बालिका कन्याका वेश धारणकर पिताके सांसारिक कार्यमें भी सहायता करने आते हैं। यह एक अपूर्व भावराज्यकी बात है, यह उपेक्षा करनेकी वस्तु नहीं है। रामप्रसादके जीवनमें इसका प्रमाण मिलता है।

देश, काल और अधिकार-भेदसे नाना प्रकारके आचार और भावके भेद दिखलायी देते हैं। इसलिये जो जिस प्रकारकी साधनाका अधिकारी है वह यदि उसी प्रकारके मार्गका अवलम्बन करे तो उससे ठीक फलका भागी होकर संसारसागरसे पार हो सकता है।

कौलाचार

यह घोर कलिकालका समय है ऐसी अवस्थामें जो साधना सुगम है उसीका तन्त्रमें उपदेश दिया गया है। वह कौलाचार कहलाता है और वह ब्रह्मसाधनाके ही समान है। बहुतेरे इसपर सोचने लगेंगे कि तब क्या अन्यान्य साधना कलियुगमें निष्फल है? ऐसी बात नहीं है, यदि यही बात होती तो युगभेदसे होनेवाला साधनभेद भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें अवश्य बतलाते। यहाँतक कि, भगवद्गीताके परवर्ती भगवान्‌के उपदेश उत्तरगीता, देवीगीता तथा ज्ञानसङ्कलिनी-तन्त्रमें सर्वत्र ही ज्ञानका उत्कर्ष स्वीकृत किया गया है। एवं ज्ञानप्राप्तिके उपायस्वरूप योगादि यागोंका बारम्बार उल्लेख किया गया है। तन्त्रमें भी इसके विपरीत मार्गका अवलम्बन नहीं किया गया है। तन्त्रमें आध्यात्मिक मार्गके उपायरूपसे चार प्रकारके मार्गोंका उल्लेख किया गया है—

(१) पश्वाचार (२) वीराचार (३) दिव्याचार (४) कौलाचार। इनमें वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचारमें उपदिष्ट आचारका अवलम्बनकर जो साधना की जाती है वही पश्वाचार है। अज्ञानपाशमें बद्ध जीवको पशु कहा गया है। अर्थात् ऐसे साधक अत्यन्त संसारासक्त, सकामी होते हुए भी आस्तिक्यबुद्धिसम्पन्न और आचारनिष्ठ होते हैं। इनकी पूजाका उद्देश्य नित्यक्रियाके अनुकूल परलोकमें स्वर्गफलकी प्राप्ति और इहलोकमें सांसारिक विषयोंमें उन्नतिलाभ करना होता है। इसमें आत्मा या आत्मज्ञानके सम्बन्धमें अथवा भगवान्‌को निज-बोध करनेमें तनिक भी उत्कण्ठा नहीं होती। यह देहाभिमानके पाशसे बद्ध संसारासक्त जीवकी संसारगति प्राप्तिका मार्ग है, अतएव यह बद्धभाव है—अज्ञान—मोहरूपी फाँसीसे बँधा भाव है। यह उत्कृष्ट मार्ग नहीं है, इसे विशेषरूपसे समझानेकी आवश्यकता नहीं। इसमें पञ्चतत्त्वोंके गौण-भावसे देवताकी आराधना होती है। पञ्चतत्त्वके मत्स्य, मांस, मुद्रा, मद्य और मैथुन—इन शब्दोंके आध्यात्मिक अर्थ अथवा मुख्यार्थ हैं। तथा इनके गौण अर्थ भी हैं। बहुतेरे यह समझनेमें बड़ी भूल करते हैं कि इन शब्दोंद्वारा जिन बाह्य विषयोंकी भावना होती है, वही इनके मुख्यार्थ हैं। परन्तु यह बात नहीं है, वह तो अपेक्षाकृत गौण है। क्योंकि इन वस्तुओंका सेवन करनेवाला निम्नाधिकारी साधन करनेके लिये बैठे तो अभ्यास न होनेके कारण उचित समयतक बैठकर साधन करनेमें वह समर्थ न होगा। इसी कारण गुरुके सम्मुख गुरुके आदेशके द्वारा इन गौण द्रव्योंका मर्यादित व्यवहार करके साधन करना होता है। इससे वृत्तिका संयम होता है और कुछ-न-कुछ फलकी प्राप्ति भी होती ही है। किन्तु जो लोग इन पदार्थोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर अपनी जघन्यवृत्तिको चरितार्थ करनेकी इच्छा करेंगे, ऐसे शिष्यको गुरु गुरुचक्रसे दूर कर देंगे। यदि इसीकी मुख्यता स्वीकार की जाय तो महानिर्वाणतन्त्रगत देवीके मुखारविन्दसे निकले हुए इन व्याकुलतापूर्ण शब्दोंका क्या अभिप्राय होगा ? देवी कहती हैं—

कलिकल्मषयुक्तानां सर्वदाऽस्थिरचेतसाम्।
निद्रालस्यप्रसक्तानां भावशुद्धिः कथं भवेत्॥
वीरसाधनकर्माणि पञ्चतत्त्वोदितानि च।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च।
एतानि पञ्चतत्त्वानि त्वया प्रोक्तानि शङ्कर॥
कलिजा मानवा लुब्धाः शिश्नोदरपरायणाः।
लोभात्तत्र पतिष्यन्ति न करिष्यन्ति साधनम्॥
इन्द्रियाणां सुखार्थाय पीत्वा च बहुलं मधु।
भविष्यन्ति मदोन्मत्ता हिताहितविवर्जिताः॥
परस्त्रीधर्षकाः केचिद् दस्यवो बहवो भुवि।
न करिष्यन्ति ते मर्त्याः पापा योनिविचारणम्॥

पापोंसे कलुषित, सर्वदा अस्थिरचित्त, निद्रालस्यपरायण कलिके जीवोंकी भावशुद्धि कैसे होगी ? वीरसाधनके विषयमें आपने पञ्चतत्त्वोंको अपरिहार्य बतलाया है, परन्तु कलिकालके मनुष्य लोभी और शिश्नोदरपरायण होते हैं। वे लोभवश होकर इन पञ्चतत्त्वोंमें पतित और आसक्त हो जायँगे, कुछ भी साधनादि न करेंगे। केवल इन्द्रियसुखके लिये अपरिमित मद्यपान करके मदोन्मत्त हो हिताहितज्ञानसे रहित हो जायँगे। उनमेंसे कोई-कोई मदोन्मत्त होकर परस्त्रीके सतीत्वको नष्ट करेंगे, तथा कोई-कोई दस्युवृत्तिमें प्रवृत्त होंगे। वे पापिष्ठ मत्त होकर गम्य और अगम्य योनिका विचार न करेंगे।

इससे समझा जा सकता है कि मद्यपान इस साधनाके उद्देश्यका साधक कदापि नहीं हो सकता, तथापि इनमें जो कुछ गौण उद्देश्य था उसे यहाँ व्यक्त किया गया है।

(क्रमशः)

प्राचीन आचार

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते सुखम्।
आचारात् स्वर्गमोक्षं च आचारो ह्यन्तलक्षणम्॥
अनाचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
नरके नियतं वासो ह्यनाचारान्नरस्य च।
आचाराच्च परं लोकमाचारं शृणु तत्त्वतः॥
(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड)

यद्यपि वर्तमान युगके मनुष्य प्रायः प्राचीन आचारकी बातोंको बहुत ही क्षुद्र समझकर उनका पालन करना आवश्यक नहीं समझते परन्तु खोज करनेपर उन छोटी-छोटी दैनिक व्यवहारकी बातोंमें बड़ा तत्त्व मिलता है। यदि आज हम उन सबका तात्पर्य न भी समझ सकें तो भी हमें उनका निरादर नहीं करना चाहिये। यह आचारपद्धति उन देवों और महर्षियोंद्वारा स्थापित हैं जो भूत-भविष्यसे तथा अन्तर्जगत्की रचना और सञ्चालनासे परिचित थे। अतएव उसे जानकर यथासाध्य श्रद्धापूर्वक तदनुसार आचरण करनेसे निःसन्देह बहुत लाभ हो सकता है। प्रायः सभी प्राचीन स्मृति और पुराणोंमें कुछ-कुछ न्यूनाधिकताके साथ आचारकी पद्धतियाँ बतलायी गयी हैं। उनमेंसे आज 'कल्याण' के पाठकोंके लिये पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें नारद-ब्रह्मा-संवादके रूपमें उल्लिखित आचारका वर्णन कुछ संक्षेप करके प्रकाशित किया जाता है। आशा है श्रद्धालु पाठक इसे अनावश्यक और छोटी बात समझकर इसकी अवहेलना नहीं करेंगे और यथासाध्य इसका पालन करके लाभ उठावेंगे। ब्रह्माजी कहते हैं—

द्विजको रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उठकर प्रतिदिन भगवान्, देवता और पुण्यवान् व्यक्तियोंका स्मरण करना चाहिये। 'गोविन्द, माधव, कृष्ण, हरि, दामोदर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, अज, विभु, सरस्वती, महालक्ष्मी, वेदमाता सावित्री, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा, दिक्पालगण, ग्रहसमूह, शंकर, शिव, शम्भु, ईश्वर, महेश्वर, गणेश, स्कन्द, गौरी, भागीरथी गङ्गा, पुण्यश्लोक राजा नल, पुण्यश्लोक जनार्दन, पुण्यश्लोका जानकी, पुण्यश्लोक युधिष्ठिर और अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनूमान्, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुराम इन सात चिरञ्जीवी पुरुषोंके नाम जो मनुष्य नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, वह ब्रह्महत्यादि पातकोंसे छूट जाता है।'*

तदनन्तर साफ जगह मल-मूत्रका त्याग करे, रात्रिको दक्षिणाभिमुख और दिनमें पश्चिमकी ओर मुख करके मलमूत्रका त्याग करना चाहिये। अङ्गोंमें मिट्टी लगाकर उन्हें शुद्ध करे। लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगावे। फिर 'हे मृत्तिके! मेरे सारे पूर्वसञ्चित पापोंको दूर करो†।'इस मन्त्रसे सारे अङ्गोंमें मिट्टी लगावे। तदनन्तर गूलर आदिके दांतनसे दन्तधावन करके नद, नदी, कुएँ या तालाबमें स्नान करे। प्रातःस्नान अत्यन्त ही स्वास्थ्यप्रद और पापनाशक है। स्नानके बाद संयत होकर सन्ध्या करे। प्रातःकाल रक्तवर्णा, मध्याह्नमें शुक्लवर्णा और सन्ध्या-समय कृष्णवर्णा गायत्रीका ध्यान करे। लोकान्तरगत पितृगणोंको उत्तम जल नहीं मिलता, इसलिये पितृव्रतपरायण शिष्य, पुत्र, पौत्र, दौहित्र, बन्धु और मित्र अपने मरे हुए सम्बन्धियोंकी तृप्तिके लिये नित्य तर्पण करें। तर्पण कुश हाथमें लेकर करना चाहिये। पितरोंको काले तिलसे बहुत तृप्ति होती है अतएव तिल मिले हुए जलसे तर्पण करे। स्नान करके पवित्र वस्त्र पहने। धोबीसे धुला हुआ कपड़ा अपवित्र होता है, उसे पुनः स्वच्छ जलसे धोकर पहनना चाहिये। नित्य देवपूजन करे। विघ्ननाशके लिये गणेशकी, बीमारी मिटनेके लिये सूर्यकी, धर्म और मोक्षके लिये विष्णुकी, कामना-पूर्तिके लिये शिवकी और शक्तिकी पूजा करे। नित्य बलिवैश्वदेव और हवन करे। इस प्रकार सब देवों और सब प्राणियोंकी तृप्ति करनेके बाद स्वयं भोजन करे। स्नान, तर्पण, जप, देवपूजन और सन्ध्योपासना नियमपूर्वक नित्य करे। इनके न करनेसे बड़ा पाप होता है।

घरके आँगनको रोज गोबरसे लीपे; बर्तनोंको रोज माँजे। काँसेका बर्तन राखसे, ताँबेका खटाईसे, पत्थरका तेलसे, सोने-चाँदीका जलसे और लोहेका अग्निसे शुद्ध होता है। खोदने, जलाने, लीपने और धोनेसे पृथ्वी पवित्र होती है। बिछौने, स्त्री, शिशु, वस्त्र, उपवीत और कमण्डलु सदा ही पवित्र हैं, परन्तु अपने हों तो। दूसरोंके हों तो कभी शुद्ध नहीं हैं। एक कपड़ा पहनकर कभी स्नान या भोजन न करे। धोती और अँगोछा दोनों हों। दूसरेका स्नानवस्त्र कभी न पहने। रोज सबेरे बालोंको और दाँतोंको धोवे। गुरुजनोंको नमस्कार करे। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख इन पाँचों अंगोंको गीले रखकर (धोकर)

* गोविन्दं माधवं कृष्णं हरिं दामोदरं तथा।
नारायणं जगन्नाथं वासुदेवमजं विभुम्॥
सरस्वतीं महालक्ष्मीं सावित्रीं वेदमातरम्।
ब्रह्माणं भास्करं चन्द्रं दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा॥
शङ्करञ्च शिवं शम्भुमीश्वरञ्च महेश्वरम्।
गणेशञ्च तथा स्कन्दं गौरीं भागीरथीं शिवाम्॥
पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको जनार्दनः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
एतान् यस्तु स्मरेन्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥

† अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन करे। जो नियमित पञ्चार्द्र (इन पाँचोंको गीले रखकर) भोजन करते हैं वे सौ वर्ष जीते हैं। देवता, गुरु, राजा, स्नातक, आचार्य, ब्राह्मण और यज्ञादिमें दीक्षा लिये हुए व्यक्तिकी छायाको जान-बूझकर न लाँघे। गौ-ब्राह्मण, अग्नि-ब्राह्मण और दम्पति (पति-पत्नी) के बीचसे न जाय। अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरु, अपना मस्तक, फूलोंका पेड़, यज्ञवृक्ष और अधार्मिक मनुष्य, इनका जूँठे मुँह स्पर्श न करे। सूर्य, चन्द्रमा और तारे इन तीनों तेजमय पदार्थोंको जूँठे मुँह ऊपरकी ओर ताक-कर न देखे। विप्र, गुरु, देवता, राजा, संन्यासी, योगी, देवकार्यमें लगे हुए मनुष्य और धर्मोपदेशक पुरुषको भी जूँठे मुँह न देखे। समुद्र और नदीके किनारेपर यज्ञ-(वट,पीपल आदि) वृक्षोंके नीचे, बगीचेमें, पुष्पवाटिकामें, जलमें, ब्राह्मणके घरमें, राजमार्गमें और गोशालामें शरीरका कोई भी मल न त्याग करे। मङ्गलवारको हजामत न करावे। रवि और मङ्गलवार-को तैल न लगावे, मुखमें नख न ले। अपने शरीर-को और आसनको न बजावे। गुरुके साथ एक आसन-पर न बैठे। श्रोत्रिय, देवता, गुरु, राजा, तपस्वी, पंगु, अन्धे और स्त्रियोंका धन किसी तरह हरण न करे। ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी, बोझ लादे हुए, गर्भिणी स्त्री और कमजोर मनुष्यके लिये रास्ता छोड़ दे। राजा, ब्राह्मण और चिकित्सक (वैद्य-डाक्टर) से विवाद न करे। पतित, कुष्ठरोगी, चाण्डाल, गो-मांसभोजी, समाजबहिष्कृत और मूर्खसे सदा अलग रहे। दुष्टा, बुरी वृत्तिवाली, अपवाद लगानेवाली, कुकर्म करनेवाली, कलहप्रिया, प्रमत्ता, अधिक अङ्गवाली, निर्लज्जा, बाहर घूमने-फिरनेवाली, खर्चीली और अनाचारिणी स्त्रियोंसे दूर रहे। मलिन अवस्थामें गुरु-पत्नीको प्रणाम न करे। गुरुपत्नीको भी बिना प्रयोजन न देखे। पुत्रवधू, भ्रातृवधू, कन्या तथा अन्य जो भी स्त्रियाँ युवती हों तो बिना प्रयोजन उनकी ओर न देखे, स्पर्श तो कभी न करे। स्त्रियोंके साथ व्यर्थ बात-चीत न करे, न उनके नेत्रोंकी ओर देखे, न कलह करे और न अमर्यादित वाणी बोले। तुष, चिनगारी, हड्डी, कपास, देवनिर्माल्य और चिताकी लकड़ीपर पैर न रक्खे। दुर्गन्धवाली, अपवित्र और जूँठी चीज न खाय। क्षणभरके लिये भी कुसङ्गमें न रहे और न जाय। दीपककी छायामें और बहेड़ाके पेड़के नीचे न रहे। अस्पृश्य, पापात्मा और क्रोधी मनुष्यसे बात न करे। चाचा और मामा उम्रमें अपनेसे छोटे हों तो उनका अभिवादन न करे परन्तु उठकर उन्हें आसन दे और कृताञ्जलि हुआ रहे। तेल लगाये हुए, जूँठे मुँहवाले, गीला कपड़ा पहने, रोगी, समुद्रमें उतरे हुए, उद्विग्न, यज्ञके कर्ममें लगे हुए, स्त्रीके साथ क्रीड़ा करते हुए, बालकके साथ खेलते हुए, पुष्प या कुश हाथोंमें लिये हुए और बोझ उठाये हुए, इन मनुष्योंको अभिवादन न करे। क्योंकि बदलेमें इन्हें वैसा करने-में असुविधा होगी। मस्तक या दोनों कानोंको ढक-कर, चोटी खोलकर, जलमें अथवा दक्षिणमुखी होकर आचमन न करे। आचमनके समय पैर धोने चाहिये। सूखे पैर सोना और गीले पैर भोजन करना चाहिये। अँधेरेमें न सोवे, न भोजन करे, क्योंकि बिछौने या भोजनमें जीवजन्तु रह सकते हैं। पश्चिम और दक्षिण-की ओर मुँह करके दाँतोंको न धोवे। उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके न सोवे। दक्षिण और पूर्वकी ओर सिर करके सोना चाहिये। दिनरातमें एक बार भोजन करना देवताओंका, दो बार मनुष्यों-का, तीन बार प्रेत-दैत्योंका और चार बार राक्षसों-का होता है।

स्वर्गसे आये हुए मनुष्योंकी चार पहचान हैं—खुले हाथों दान, मीठी वाणी, देवब्राह्मणोंका पूजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तर्पण ! नरकसे आये हुए जीवोंकी छः पहचान हैं—कंजूसी, मैला-कुचैला रहना, स्वजनोंकी निन्दा, नीच जनोंकी भक्ति, अत्यन्त क्रोध और कठोर वाणी। जो धर्मके बीजसे उत्पन्न हैं, उनकी प्रत्यक्ष पहचान है—नवनीतके समान कोमल वाणी और दयासे कोमल हृदय। और जो पापके बीजसे पैदा हुए हैं, उनके प्रत्यक्ष लक्षण हैं—हृदयमें दयाका अभाव और केवड़ेके पत्तों-जैसी कँटीली और तीखी वाणी ! *

भक्त-गाथा

निर्लोभी भक्त तुलाधार शूद्र

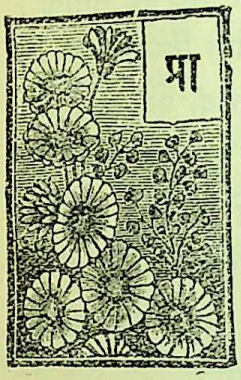

प्राचीन कालकी बात है, किसी गाँवमें तुलाधार नामक एक शूद्र रहते थे। ये बड़े ही सत्यवादी, निर्लोभी, वैराग्यसम्पन्न और भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। घरमें साध्वी स्त्री थी। संसारसे वैराग्य होनेके कारण ये कोई भी काम नहीं करते थे। शिलोञ्छवृत्तिसे अपना निर्वाह करते थे। खानेको इन्हें भरपेट अन्न तथा पहननेको पूरे वस्त्र नहीं मिलते थे, तथापि इनके मनमें कोई क्षोभ नहीं होता था। अवश्य ही इनकी स्त्रीको दरिद्रताके कारण कुछ दुःख रहा करता था परन्तु वह पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली होनेके कारण कभी इनसे न तो कुछ कहती और न इनकी रुचिके विरुद्ध किसी दूसरे उपायसे ही पैसे कमाती। पतिकी रुचिके अनुसार चलना ही वह अपना परम धर्म मानती थी। भगवान् बड़े भक्तवत्सल हैं, वे घटघटकी जाननेवाले होनेपर भी भक्तकी महिमा बढ़ाने तथा भक्तका एक ऊँचा आदर्श जगत्‌के सामने रखनेके लिये भक्तकी परीक्षा-लीला किया करते हैं। अतएव यहाँ भी उन्होंने परीक्षा करनेकी ठानी !

तुलाधारजीके कपड़ोंमें एक धोती थी और एक गमछा, दोनों ही बिल्कुल फट गये थे। मैले तो थे ही। वे नाममात्रके वस्त्र रह गये थे, उनसे वस्त्रकी जरूरत पूरी नहीं होती थी। तुलाधार नित्य नदी नहाने जाते थे, इसलिये एक दिन भगवान्‌ने दो बढ़िया वस्त्र नदीके तीरपर ऐसी जगह रख दिये जहाँ तुलाधारकी नज़र उनपर गये बिना नहीं रहे। तुलाधार नित्यके नियमानुसार नहाने गये। उनकी नज़र नये वस्त्रोंपर पड़ी, वहाँ उनका कोई भी मालिक नहीं था, परन्तु इनके मनमें ज़रा भी लोभ नहीं पैदा हुआ। इन्होंने दूसरेकी वस्तु समझकर उधरसे सहज ही नज़र फिरा ली और स्नान-ध्यान करके चलते बने। दूर छिपकर खड़े हुए प्रभु भक्तका संयम देखकर मुसकरा दिये।

दूसरे दिन भगवान्‌ने गूलरके फल-जैसा सोनेका गोला उसी जगह रख दिया। तुलाधार आये। उनकी

* स्वर्गच्युतानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये च सन्ति। दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः। अतीवरोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥
नवनीतोपमा वाणी करुणाकोमलं मनः। धर्मबीजप्रसूतानामेतत् प्रत्यक्षलक्षणम्॥
दयादरिद्रहृदयं वचः क्रकचकर्कशम्। पापबीजप्रसूतानामेतत् प्रत्यक्षलक्षणम्॥
(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नज़र आज भी सोनेके गोलेपर गयी। क्षणके लिये अपनी दीनताका ध्यान आया, परन्तु उन्होंने सोचा, 'यदि मैं इसे ग्रहण कर लूँगा तो मेरा अलोभव्रत अभी नष्ट हो जायगा। फिर इससे अहङ्कार पैदा होगा। लाभसे लोभ फिर लोभसे लाभ, फिर लाभसे लोभ, इस प्रकार निन्यानवेके चक्करमें मैं पड़ जाऊँगा। लोभी मनुष्यको कभी शान्ति नहीं मिलती। नरकका दरवाजा तो उसके लिये सदा खुला ही रहता है। बड़े-बड़े पापोंकी पैदाइश इस लोभसे ही होती है। घरमें धनकी प्रचुरता होनेसे स्त्री और बालक धनके मदसे मतवाले हो जाते हैं, मतवालेपनसे कामविकार होता है और कामविकारसे बुद्धि मारी जाती है। बुद्धि नष्ट होते ही मोह छा जाता है और उस मोहसे नया-नया अहङ्कार, क्रोध और लोभ उत्पन्न होता है। इनसे तप नष्ट हो जाता है और मनुष्यकी बुरी गति हो जाती है। अतएव मैं इस सोनेके गोलेको किसी प्रकार भी नहीं लूँगा।'

इस प्रकार विचार करके तुलाधार उसे वहीं पड़ा छोड़कर घरकी ओर चल दिये। स्वर्गस्थ देवताओंने साधुवाद दिया और फूल बरसाये!

इधर भगवान् भविष्य बतानेवाले ज्योतिषी बने, और पोथीपत्रा बगलमें दबाकर गाँवमें पहुँचे। आप घर-घर घूमने और लोगोंके हाथकी रेखाएँ देखकर भविष्य बतलाने लगे। तमाम गाँवमें बात फैल गयी। सब ओर ज्योतिषीजीकी पूछ हो गयी। चारों ओर भीड़ जमा हो गयी, सभी अपना-अपना भविष्य पूछने लगे। खबर पाकर अपने भाग्यका लेख पढ़ानेके लिये तुलाधारकी स्त्री भी अड़ोसिन-पड़ोसिनोंके साथ ज्योतिषीजीके पास पहुँची। ज्योतिषीजीने हँसकर उसके विषादका कारण दरिद्रता बतला दिया और कहा कि 'तेरे भाग्यमें दरिद्रता ही बदी है क्योंकि तेरा पति इतना मूर्ख है कि वह घर आयी लक्ष्मीका भी अपमान करता है। आज ही विधाताने उसे खूब धन दिया था, परन्तु वह मूर्खकी तरह उसे छोड़कर चला आया। तब धन कहाँसे मिलेगा। जबतक दोनों जीओगे, तबतक यह दरिद्रता ही रहेगी। हे माता! तू अपने घर जाकर अपने स्वामीसे पूछ तो सही कि आज वह मिले हुए धनको क्यों छोड़ आया?'

ज्योतिषीजीकी बात सुनकर तुलाधारकी स्त्री अपने घर लौट आयी और स्वामीसे सारा हाल कह सुनाया। तुलाधारने कहा, 'ज्योतिषीजीकी बात बिल्कुल सच है, परन्तु मैं धनका क्या करता।' साध्वी पत्नी कुछ नहीं बोली। तब कुछ विचारकर यह जाननेके लिये कि पण्डितको मेरी इस घटनाका पता कैसे लगा, तुलाधार अपनी स्त्रीको साथ लेकर ज्योतिषीजीके पास अकेलेमें गये और उनसे कहने लगे कि 'आप क्या कहना चाहते हैं, मुझसे कृपा करके कहिये।'

ज्योतिषीजी स्नेहभरे शब्दोंमें समझाते हुए-से बोले—'बेटा! तुम आँखोंके सामने पड़े हुए निर्दोष धनको सहज ही तृणके समान त्यागकर चले आये! अतएव अब तुम्हारा भाग्य कभी नहीं खुलेगा! तुम अपना अतुल ऐश्वर्य, शौर्य और मङ्गल सभी कुछ नष्ट हुआ समझो। तुमने अपने घर आयी लक्ष्मीका अपमान किया है। फिर तुम्हें धनका सुख कैसे मिलेगा? अब भी तुम मेरी बात मानो तो जाकर धन ले आओ और निष्कण्टक सुख भोग करो। संसारमें धन और ऐश्वर्य ही सार है इसीसे मनुष्यकी शोभा और सम्मान है।'

निःस्पृह तुलाधारने कहा—'भगवन्! धनमें मेरी रत्तीभर भी स्पृहा नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि धन जीवको फँसानेवाला बड़ा भारी जाल है। जिस मनुष्यकी धनमें आसक्ति है, उसकी मुक्ति कभी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकती। धनमें मादकता है, मोह है, भय है, और है मिथ्यामें प्रीति! धन आया कि चोर, जातिके लोग, राजा और राजपुरुषोंकी नजर उसकी ओर लग जाती है। पशु-पक्षियोंमें भी परस्पर डाह रहा करता है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। धनीसे दूसरे धनी और निर्धन डाह करने लगते हैं जिससे प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है। पापजनक अहंकार और कामादिका तो प्रिय निवासस्थल ही धन है, और है यह दुर्गतिका परम निदान। अतएव भगवन्! मुझको धन नहीं चाहिये। निर्धन रहकर ही मैं परम सुखी हूँ।'

ज्योतिषीजी कहने लगे—'तुम नहीं जानते, संसारमें जिसके पास धन है, उसीके सब कुछ है। धनी पुरुषके ही मित्र, बान्धव, कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, सौभाग्य, यश और सुख है। स्त्री-पुत्र उसीका सत्कार करते हैं, निर्धनको कोई पूछतातक नहीं; धनहीन मनुष्यके न मित्र है, न धर्म है और न उसका जन्म ही सार्थक है। धनसे ही परोपकार, यज्ञ, दान आदि होते हैं, धनसे ही कुएँ-तालाब बनाये जा सकते हैं, धनसे ही होम-जप होते हैं, जिनसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। निर्धन मनुष्य इनमेंसे कुछ भी नहीं कर सकता। व्रत, तीर्थसेवन, जप, सन्तुष्टि, सिद्धि, आजीविका, भोग, तप सब धनसे ही होते हैं। धनसे ही रोगका प्रतीकार, पथ्य, औषध और आत्मरक्षा होती है। शत्रुजय, स्त्रियोंका विलास, भूत-भविष्य और वर्तमानका ज्ञान, यहाँतक कि सभी सुकृत और दुष्कृत धनसे ही होते हैं। सारांश यह कि जिसके पास धन है वही इच्छानुसार भोग भोग सकता है और वही दान-धर्म करके स्वर्गादिमें जा सकता है।'

तुलाधार बोले—'भगवन्! यहाँके भोग और स्वर्ग दोनों ही अनित्य हैं। भोगोंमें सुख मानना ही तो मोह है। आप मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं—

अकामाच्च व्रतं सर्वमक्रोधात्तीर्थसेवनम्।
दया जप्यसमा शुद्धं सन्तोषो धनमेव च॥
अहिंसा परमा सिद्धिः शिलोञ्छवृत्तिरुत्तमा।
शाकाहारः सुधातुल्य उपवासः परं तपः॥
सन्तोषो मे महाभोग्यं महादानं वराटकम्।
मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्॥
परदारा भुजङ्गाख्याः सर्वयज्ञ इदं मम।
तस्मादेनं न गृह्णामि सत्यं सत्यं गुणाकर॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥

अकाम ही सर्वव्रत है, अक्रोध ही तीर्थसेवन है, दया ही जपके तुल्य है, सन्तोष ही शुद्ध धन है। अहिंसा ही परमा सिद्धि है, शिलोञ्छा ही उत्तम वृत्ति है, शाकाहार ही मेरे लिये अमृत और उपवास ही परम तप है। यथालाभमें सन्तुष्टि ही महान् भोग्य है और कौड़ी ही महादान है। परदारा मातृवत् है और पराया धन लोष्टवत् है। परस्त्रियाँ विषधर साँपके समान हैं; ऐसा भाव रखना ही मेरा सर्वयज्ञ है। अतएव हे ज्योतिषीजी! मैं धन नहीं लूँगा, यह मैं आपसे सत्य-सत्य कहता हूँ। कीचड़ हाथोंपर लपेटकर उसे धोनेकी अपेक्षा तो कीचड़से दूर रहना ही उत्तम है।'

नरश्रेष्ठ शूद्र तुलाधारके इस निर्लोभ वृत्तिपर देवताओंने उसका जयघोष किया, आकाशसे उसके मस्तक और शरीरपर देवताओंने फूल बरसाये। देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। दिव्य लोकसे उसके लिये विमान उतर आया!

तुलाधारने मन-ही-मन सोचा, ये ज्योतिषी कौन हैं। इनकी चेष्टा, इनकी वाणी और इनका ज्ञान बड़ा ही आकर्षक है। क्या मेरे प्रभु साक्षात् हरि ही मुझे छलने आये हैं अथवा ये दूसरे कोई देवता हैं? यों सोचकर तुलाधारने ज्योतिषीरूपी भगवान्‌के चरण पकड़कर उनसे कहा, 'प्रभो! मालूम होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ही मेरे प्रियतम स्वामी हैं, फिर छद्मवेषी ज्योतिषी क्यों बने हुए हैं, कृपाकर प्रकट होइये और अपने विश्वविमोहन स्वरूपकी झाँकी दिखाकर दासको कृतार्थ कीजिये ।'

भक्तकी प्रार्थना सुनते ही भगवान् अपने विष्णु-स्वरूपमें बदल गये । चारों ओर सहस्रों सूर्योंका-सा परन्तु निर्मल सुशीतल प्रकाश छा गया । उसी प्रकाश-में भक्त तुलाधार और उनकी भाग्यवती पत्नीने नील-मणि-सदृश सुन्दर सुनीलवर्ण, शङ्ख, चक्र, गदा-पद्मधारी, वैजयन्ती माला, कौस्तुभमणि और श्रीवत्स तथा भृगुलताके चिह्न हृदयपर धारण किये हुए, मकराकृति कुण्डल और किरीट-मुकुटधारी, पीताम्बर-धर प्रभुको मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखा । दोनों कृतार्थ हो गये । भगवान्‌की आज्ञासे दोनों दिव्य विमानपर सवार होकर दिव्य धामको पधारे !

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

जायसीकी प्रेमानुभूति

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

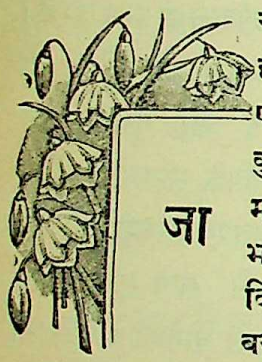

जायसी एक बहुत ही ऊँचे महात्मा हो गये हैं । वे सूफ़ी फकीर थे । एक कम्बल लपेटे रहते थे । जो कुछ किसीने दे दिया उसीमें मस्त रहते थे । कोढ़ीके रूपमें भगवान्‌ने जायसीको दर्शन दिये । इस दर्शनकी कहानी बड़ी विचित्र है । जायसी कभी अकेले भिक्षान्न भी नहीं खाते थे । जो कुछ मिलता था उसमेंसे दो-एक साधु-फकीरोंको भोजन करा लेते थे, फिर जो कुछ बचता था उसे ही प्रसाद-रूपमें ग्रहण करते थे । एक बार एक जंगलमें नदी-तटपर भिक्षाका अन्न लेकर जायसी बैठे थे । वे किसीकी बाट जोह रहे थे । इतनेमें एक कोढ़ी सामनेसे गुज़रा । जायसीने उसे पुकारा । पास आनेपर जायसीने देखा कि इसके शरीरसे रक्त-पीव बह रहा है और मक्खियाँ भन्ना रही हैं । परन्तु जायसीके मनमें तनिक भी घृणा नहीं हुई । उन्होंने भिक्षाके अन्नको 'अतिथि'के सामने रख दिया । रक्त और पीवसे आप्लावित शेषांशके पीनेकी बारी आयी तब जायसीने हठपूर्वक अपने-आप ही पीना चाहा । ज्यों ही उन्होंने उसको अपने मुँहसे लगाया उक्त कोढ़ी आँखोंसे ओझल हो गया । विस्मयसे भरे हुए जायसी बोल उठे—

बुंदहि सिंधु समान, यह अचरज कासों कहौं ।
जो हेरा सो हेरान, 'मुहमद' आपै आप महँ ॥

परमात्माके प्रेमको प्राप्तकर जायसी बस मस्त होकर जङ्गलोंमें घूमा करते थे । वे प्रेमकी पीरमें बेसुध रहते थे । उस समयकी उनकी स्थितिका पता नीचेकी कुछ पंक्तियोंमें मिल सकता है—

सुख भा सोच एक दुख मानूँ । वहि बिन जीवन मरन कै जानूँ ॥
नैन रूप सों गयेउ समाई । रहा पूर भर हिरदय छाई ॥
जहँवै देखौं तहँवै सोई । और न आव दिष्टतर कोई ॥
आपन देख देख मन राखौं । दूसर नाँव सो कासों भाखौं ॥

प्राणनाथके बिना यह जीवन मृत्युके समान है । मेरी आँखोंमें वह परमात्मज्योति अपनी अमित छबिके साथ समा गयी और हृदयको उसने छा लिया । अब जिधर भी दृष्टि जाती है वही वह दीखता है, मेरी दृष्टिकी सीमामें और कोई आता ही नहीं । 'उस' में अपना 'सर्वस्व' देख-देखकर मनमें ही जुगाये रखता हूँ फिर दूसरेका नाम क्यों लूँ, दूसरेकी चर्चा क्यों करूँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायसी बड़े ही कुरूप थे। उनकी एक आँख शीतलाके कारण चली गयी थी। एक बार अमेठीके राजाने जायसीका नाम सुनकर उन्हें अपने राज्यमें बुलवाया। जायसीकी कुरूपता देखकर वे हँस पड़े। इसपर जायसीने कहा—

मटियहिं हँससि कि कोंहरहि—

अर्थात् आप मेरी इस मिट्टी (शरीर) को हँस रहे हैं या इसके बनानेवाले कुम्हार (परमात्मा) को। राजा लज्जित हो गये।

जायसी, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है एक पहुँचे हुए सूफ़ी फकीर थे। सूफ़ी मतमें परमात्माकी प्रियतमके रूपमें उपासना की जाती है। सूफ़ी मत और हमारे 'माधुर्यभाव' में बहुत अधिक समानता है। जायसीके लिये संसारकी सब वस्तुएँ, संसारके सारे व्यापार, परमात्माके साथ अपना सम्बन्ध चरितार्थ कर रहे थे—यह समस्त प्रकृति उस 'परमपुरुष' से मिलनेके लिये अहर्निश व्याकुल है। जायसीने अपने हृदयके भीतर उस परमपुरुषकी अलौकिक रूप-आभाको देखा जिसकी ज्योतिसे अनन्त ब्रह्माण्ड जगमग कर रहे हैं—

देख्यों परमहंस परिछाहीं। नयन जोति सो बिछुरत नाहीं॥

मैंने परमहंस (परमात्मा) की अमर शीतल छायाको स्पर्श किया। अब वह ज्योति एक क्षणके लिये भी आँखोंसे बिछुड़ती नहीं। संसारमें जो कुछ भी 'सुन्दर' प्रतीत होता है वह परमात्माकी सुन्दरताकी छायामात्र है। 'तस्यैव भासा सर्वमिदं विभाति'।

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥

सरोवरमें चारों ओर जो कमल दिखायी पड़ रहे थे वे उस (परमपुरुष) के नेत्रोंके प्रतिबिम्ब थे; जल जो इतना स्वच्छ दीख पड़ता था वह 'उस' के स्वच्छ निर्मल शरीरके प्रतिबिम्बके कारण; उसके हासकी शुभ्र कान्तिकी छाया वे हंस थे जो इधर-उधर दिखायी पड़ते थे और उस सरोवरमें जो हीरे थे वे उसके दाँतोंकी उज्ज्वल दीप्तिसे उत्पन्न हो गये थे। इतना ही नहीं—

रबि ससि नखत दियहि ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥

सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, रत्न, पदार्थ, माणिक्य, मोती सभी कुछ उसी एककी ज्योतिके कारण ही प्रकाशमान हैं।

प्राणप्रिय हृदयमें ही बसता है परन्तु उसके दर्शन नहीं हो पाते। यह दुःख किससे रोया जाय?—

पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाव कहौं केहि रोई॥

विरहकी जो अधीर दशा है वह बहुत ही करुण और दारुण है—

बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातक भइउँ कहत पिउ पीऊ॥
जरिउँ बिरह जस दीपक बाती। पथ जोवत भइँ सीप सेवाती॥
भइउँ बिरह दहि कोइल कारी। डारि डारि जिमि कूकि पुकारी॥

कौन सो दिन जब पिउ मिलै, यह मन राता जासु।
वह दुख देखै मोर सब, हौं दुख देखौं तासु॥

जायसी उस दिनकी तीव्र प्रतीक्षामें है जब प्राणाधार आकर स्वयं उसे गले लगा लेगा और वह दो टुक उससे बातें कह सकेगा, अपने हृदयकी व्यथाको सुना सकेगा। 'उस' के मिलनेपर तो—

तौं लौं रहौं झुरानी, जौ लौ आव सो कंत।
एहि फूलि एहि सेंदुर, होइ सो उठै बसंत॥

इसी फूल (शरीर) से जिसे तुम इतना कुम्हलाया हुआ कहते हो, और इसी सिन्दूरकी फीकी रेखसे जो रूखे सिरमें दिखायी पड़ती है फिर वसन्तका विकास और उत्सव हो सकता है यदि 'पति' आ जाय।

मङ्गल मिलनके मन्दिरमें प्रवेशकर जब जायसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने हृदयधनसे मिलते हैं तो एक अपूर्व आनन्दकी विस्मृतिमें अपनेको खो देते हैं। अपनी स्थिति-का जब हलका-सा ज्ञान हो जाता है तो एक अपूर्व असमंजसका अनुभव करते हैं—

रहौं लजाइ तो पिउ चलै, कहौं तो कह मोहि ढीठ।

मिलनकी इस मधुर मङ्गलबेलामें यदि मैं लज्जित होकर घूँघट सरका लूँ तो पिय रूठकर चला जाय और मैं हाथ मलती रह जाऊँ, और यदि जरा घूँघटको उठाकर उसके चरणोंको जोरसे पकड़ लूँ तो मुझे वह ढीठ ही समझेगा। असमञ्जसकी यह मधुर स्थिति कितनी कोमल, कितनी जादूभरी है; जिसका थोड़ा-बहुत अनुभव प्रत्येक भक्तको होता होगा। वास्तवमें 'उसे' पकड़ते भी नहीं बनता, न छोड़ते ही बनता है।

'पति' के घर जानेमें पहले तो बड़ी झिझक, सङ्कोच और लज्जा होती है। परन्तु जब एक बार घूँघट हटकर 'पति' का साक्षात्कार हो जाता है तो समग्र हृदय वहीं उसके चरणोंमें आप-ही-आप निछावर हो जाता है और फिर एक क्षणका वियोग भी असह्य हो जाता है। जबतक प्राणनाथ-से परिचय नहीं तभीतक मायकेसे प्रेम और ससुरालसे विराग है। इस मायकेमें रहना भी कै छन है ?

छाँड़िउ नैहर, चलिउँ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई॥
छाँड़िउ आपन सखी सहेली। दूरि गवन तजि चलिउँ अकेली॥
नैहर आइ काह सुख देखा। जनु होइगा सपनेकर लेखा॥
मिलहु सखी हम तहँवाँ जाहीं। जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं॥
हम तुम मिलि एकै सँग खेला। अंत बिछोह आनि जिउ मेला॥

इस संसारसे जो हमारा अनुराग और आसक्ति है वह ठीक वैसा ही है जैसा कन्याओंका मायकेसे। परन्तु हमारा सच्चा और अपना देश तो 'साजनका घर' ही है। जब हम सच्चे रूपमें अपने 'हृदयधन' को पहचान लेंगे तो हमारी इस संसारमें जो आसक्ति है वह तो मिट ही जायगी, साथ ही हमें 'उस'के सिवा कुछ अच्छा लगेगा ही नहीं। यह भाव कबीर और दादू तथा अन्यान्य निर्गुणिये सन्तोंमें बहुत अधिक आया है।

यहाँ, इस पृथ्वीपर हमारा जितने दिनका रहना है वह 'प्रियतम' के विरहमें ही बीत रहा है। विरहका यह ताप बड़ा ही मधुर होता है। इसे जो 'दुःख' नामसे पुकारते हैं वे विरहके रससे परिचित नहीं हैं। विरहका ताप मधुर इसलिये है कि उसमें प्रीतमकी स्मृति है, उसमें स्वयं 'साजन' की मूर्त्ति विलसती रहती है। जायसीने इस माधुर्यको बड़े ही अनूठे ढङ्गसे रक्खा है—

लागिउँ जरै जरै जस भारू। फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँ न बारू॥

भाड़की तपती बालूके बीच पड़ा हुआ अनाजका दाना जैसे बार-बार भूने जानेपर उछल-उछल पड़ता है पर उस बालूसे बाहर नहीं जाना चाहता, उसी प्रकार इस प्रेमजन्य संतापके अतिरेकसे मेरा जी हट-हटकर भी उस संतापके सहनेकी बुरी लतके कारण उसीकी ओर प्रवृत्त रहता है। मतलब यह कि वियुक्त प्रियका ध्यान आते ही चित्त तापसे विह्वल हो जाता है फिर भी वह बार-बार उसीका ध्यान करता रहता है। प्रेमदशा चाहे घोर यन्त्रणामय हो जाय, पर हृदय उस दशासे अलग होना नहीं चाहता। विरहकी इस दारुण यन्त्रणामें—

हाड़ भये सब किंगरी, नसैं भईं सब ताँति।
रोवँ रोवँ ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति॥

जो अणु-अणुमें व्याप्त है, जो हर समय हमें भीतर और बाहर दोनों ओरसे देख रहा है उससे मिलनेके लिये क्या शृङ्गार किया जाय ? फिर भी भक्तका मन तो मानता नहीं और इसी हेतु 'उस' के निमन्त्रणपर 'तन मन जोबन साजिकै, देइ चली लेइ भेंट' समागमकी उत्कण्ठा या अभिलाष इतना तीव्र है कि अपने शरीर, मन और यौवनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजाकर भेंटमें देनेके लिये भक्त चला। लेकिन तुरन्त ही अपनी बालबुद्धिपर दृष्टि जाती है और वह सोचता है—

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओही देखहुँ ठावहि ठाऊँ॥
जौ पिउ महँ तौ उहै पियारा। तन मनसौं नहिं होहि नियारा॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना॥

शृङ्गार करके उसके पास क्या जाऊँ? उसे ही तो सर्वत्र देख रही हूँ। पिय तो प्राणोंमें बसा हुआ है। वह शरीर और मनसे भिन्न कैसे हो भी? आँखोंमें वही समाया हुआ है, जहाँ दृष्टि जाती है उसके अतिरिक्त अन्य कुछ दीखता ही नहीं। उसके बाणोंसे समस्त संसार बिंधा हुआ है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है।

जिस प्रकार हमारे यहाँ कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा सिद्धावस्था है उसी प्रकार सूफ़ी लोग भी साधककी चार अवस्थाएँ मानते हैं—शरीअत, तरीक़त, हक़ीक़त और मारफत। सूफ़ी मतमें ब्रह्मकी भावना अनन्त सौन्दर्य और अनन्त गुणोंसे सम्पन्न प्रियतमके रूपमें करते हैं। सूफ़ियोंका 'अनलहक' हमारे 'अहं ब्रह्मास्मि' का ही बोधक है। सर्वात्म-समर्पणके अनन्तर भक्तका भगवान्‌में लय हो जाता है, वह तद्रूप, तदाकार, एक और अभिन्न हो जाता है। इस प्रलयावस्थाका सूफ़ी धर्ममें बहुत विस्तारसे वर्णन मिलता है—

'फ़ना'—वह स्थिति है जिसमें साधक अपनी अलग सत्ताकी प्रतीतिसे परे हो जाता है। इसके बाद 'फ़क़द' की अवस्था है जिसमें अहंभावका सर्वथा नाश हो जाता है। 'सुक्र' अथवा प्रेममद-की स्थिति वह है जिसमें साधक अपनी निजी सत्ताको खोकर सर्वदा और सर्वत्र अपने 'प्रीतम' को ही देखता है और उसी अमर दिव्यप्रेममें माता-माता फिरता है। यह तो त्यागपक्षकी साधना-प्रणाली है। प्राप्तिपक्षसे इसी बातको दूसरे ढङ्गसे व्यक्त किया जाता है—'बक़ा'—वह स्थिति है जिसमें साधक परमात्मामें ही अखण्ड विश्वास और श्रद्धा रखते हुए उसी 'एक' में निवास करने लगता है। इसके बाद उसे परमात्माकी प्राप्ति होती है जिसे सूफ़ी लोग 'वज़्द' कहते हैं और अन्तमें है 'शह्व' अर्थात् पूर्ण शान्ति।

प्रेमका यह पथ जितना ही सरल प्रतीत होता है वास्तवमें वह उतना ही कठिन है। यह तो सिरका सौदा है। यह पथ तो 'सीस उतारै भुइँ धरै, तापर राखे पाँव' का है इसमें 'मैं' और 'हरि' एक साथ नहीं रह सकते। हरिको पानेके लिये 'मैं' का लोप करना ही होगा।

आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि बिचार मन, लेहु न हेरि हेराइ॥

अपनेको खोनेपर ही पिय मिलेंगे। यदि उस प्राणाधारको ही खो बैठे तो सब कुछ उसीके साथ गया! फिर मनमें समझ-बूझकर क्यों न अपनेको खोकर हरिको पा लें? परन्तु इस प्राप्तिके लिये मन और तनको दर्पणकी भाँति निर्मल कर लेना पड़ेगा। जब हमारा मन दर्पणके समान स्वच्छ हो जायेगा तो साईंकी छवि उसमें आप-ही-आप उतर आयेगी—

तन दरपन कहँ साजु, दरसन देखा जो चहै।
मन सों लीजिय माँजि, 'मुहमद' निरमल होइ दिया॥

काम, क्रोध, तृष्णा, मद और मायाको जायसीने दर्पणकी मैल बतलाया है। इनके हट जानेपर अन्तस्तल ऐसा निर्मल हो जायगा कि उसमें स्वयं हरिजी आ विराजेंगे।

कमी तो अपनी ही ओर है। 'प्राणनाथ' को देखना तो हमें ही स्वीकार नहीं है। यदि सच्ची लगन हो तो एक क्षण भी उसके बिना रहना दूभर हो जाय। 'वह' तो स्वयं मिलनेके लिये राह रोके खड़ा है। हम बार-बार उसके अपार प्रेम और अमित आकर्षणको ठुकराकर उसकी ओर पीठ फेर लेते हैं। वह बार-बार प्रतिपल हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आलिङ्गनपाशमें बाँध लेनेके लिये उत्सुक है परन्तु हम ही दुनियाको छातीसे चिपकाये हुए हैं और घूँघटके पटको हटाना नहीं चाहते। उससे मिलने, उसे रू-बरू देखनेकी उत्कट चाह तो हमारे हृदयमें पहले होनी चाहिये; उसे अपनानेमें क्या विलम्ब लगेगा? मायाके घूँघटको हटाकर और हृदयकी ज्ञानरूपी आँखें खोलकर देखनेपर तो 'वह' यहीं और अभी मिल जाय, क्योंकि—

दूध माँझ जस घीउ है, समुद माँझ जस मोति।
नैन मींजि जौ देखहु, चमकि उठै तस जोति॥

शक्ति और ब्रह्मकी समानता अर्थात् जानकी-विजय

(लेखक—श्रीसूरजमलजी गट्टानी)

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब युद्धमें राक्षसोंको मार पृथिवीको पवित्रकर अयोध्यापुरीमें सिंहासन-पर श्रीसीताजीसहित सुशोभित हुए, उस समय उनकी स्तुति करनेके लिये शिव, ब्रह्मा, इन्द्र और ऋषि-मुनि आदि सब आये और उन्होंने अनेक प्रकारसे श्रीराम और सीताकी स्तुति की।

सम सिय राम रूप जग जाना।
ब्रह्म सक्र सब बिनय बखाना॥

जब सब देवतागण स्तुति करके चले गये तब सप्त ऋषि वहाँ आये। इन्होंने श्रीरामचन्द्रको परब्रह्म परमेश्वर जान उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की—

नाथ निरामय अगुन निरंजन।
अज गो पार भगत-भय-भंजन॥
हरन हेतु महिभार उदारा।
लीन्ह कृपाकर नर अवतारा॥
मुनि-मख राखि तमीचर मारी।
निज-पद-रज गौतम-तिय तारी॥
बरी बिदेह कुमारिकहँ, भंजि पिनाक-पुरारि।
सुर-मुनि-हित तजि राज बन, रहे बरख दस-चारि॥
बधि बिराध खर आदि सुरारी।
मृग मारीच बालि भट मारी॥
कीन्ह पखान जलधि जलजाना।
गए सैन लंका भगवाना॥
भुजबल दल बहु दनुज सँहारे।
कुंभकरन रावन रन मारे॥
अब खल दनुज न कोऊ रहेऊ।
प्रभु प्रताप सब कर दुख गयेऊ॥

इस प्रकार सप्रेम स्तुति करके सप्त ऋषियोंने श्रीरामकी महिमाका बखान किया। परन्तु सीताजीकी स्तुति नहीं की।

मुनि मन राम ब्रह्म भगवाना।
सियहि राजपुतरी करि जाना॥

सीताजीको आदिशक्ति न समझ मनुष्य ही समझनेमें मुनियोंकी भूल देख श्रीसीताजी उनकी ओर लक्ष्य करके श्रीरामचन्द्रजीको कहने लगीं—"हे भगवन्! सप्तर्षियोंने आपकी स्तुतिमें कहा है कि—

× × × ×

'कुंभकरन रावन रन मारे॥
अब खल दनुज न कोऊ रहेऊ।
प्रभु प्रताप सबकर दुख गयेऊ॥

—तो क्या आपने सारे राक्षसोंको मार डाला है? क्या अब कोई भी राक्षस नहीं बचा है? आपने पृथिवीके भारको उतारनेके लिये अवतार धारण किया है। क्या आपका सम्पूर्ण कर्त्तव्य सम्पन्न हो गया है?"

श्रीरामने कहा—'क्या तुम्हारी समझमें पृथिवीका भार सम्पूर्ण नहीं उतरा है? क्या अब भी कोई राक्षस बाकी रह गया है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसीताने कहा—हाँ।

श्रीरामने कहा—'क्या तुम्हारा तात्पर्य विभीषणसे है? विभीषण तो पृथिवीका भार नहीं है। क्योंकि इसने राक्षसोंके नगरमें रहकर भी सदा ईश्वरचिन्तनमें ही समय व्यतीत किया है। इसपर यह दूषण तुम दे नहीं सकती।'

श्रीसीताने कहा—नहीं, मैं विभीषणके लिये नहीं कहती। मेरा कहनेका तात्पर्य यह है कि आपने दस सिरवाले रावणको ही मारा है। अभी एक सहस्र सिरवाला रावण और भी मौजूद है उसे जबतक आप न मारें तबतक पृथिवीका लेश-मात्र भी भार उतरा नहीं समझा जायेगा।

यह सुन श्रीरामने विस्मित होकर पूछा—मैंने तो सहस्र सिरके रावणका नाम भी आजतक नहीं सुना। बताओ कि वह किस दिशामें रहता है और तुमको क्योंकर उसका पता मालूम हुआ?

श्रीसीताजी बोलीं—जब मैं बाल्यावस्थामें जनकपुरमें थी तब एक दिन एक मुनिने आकर मेरे पिता जनकजीको उसका हाल सुनाया था कि सात द्वीपपार एक श्वेतद्वीप है। उसमें एक लोकालोकपर्वत है। उसी पर्वतपर दुर्ग बनाकर वह सहस्र सिरका रावण सदलबल रहता है। जिस पर्वतपर वह रहता है वह अत्यन्त ऊँचा है। उसमें तरह-तरहकी मणियाँ लगी हुई हैं जिस मकानोंमें वहाँके लोग निवास करते हैं। उनकी प्रत्येक ईंट सोनेकी है। सारांश यह कि वह एक अलौकिक देश है। वह रावण महाबली है। तथा राक्षसोंकी अगणित सेना उसके पास है। हर समय वह युद्धके लिये कमर कसे रखता है। किन्तु उससे युद्ध करनेवाला कोई वीर इस भूमण्डलपर नहीं है। युद्ध करनेके लिये जब उसकी भुजाएँ फड़कने लग जाती हैं तो वह निरुपाय होकर जोश मिटानेके लिये पर्वतोंको उखाड़-उखाड़कर इस प्रकार उछालता है जिस प्रकार बालक गेंदको उछालता है।

श्रीराम—इस रावणका हाल तो मैंने अब सुना है। खैर, इस दुष्टको मारकर ही अब मैं अयोध्यामें राज्य करूँगा।

यह कहकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने सारे सेना-पतियोंको ससैन्य बुलवा भेजा और युद्धकी यात्राके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दी।

यथासमय सारी सैन्य आकर इकट्ठी हुई, स्वर्गसे इन्द्रदेव देवताओंसहित सशस्त्रास्त्र विमानों-पर आ उपस्थित हुए। पातालसे वासुकि और तक्षकनाग भी अपनी-अपनी भयंकर विषधर सेना लेकर आ पहुँचे। लंकासे विभीषण भी अपनी राक्षसी सेनासहित आ गये। जाम्बवन्त और सुग्रीव अपनी-अपनी भालू और वानरोंकी सेनाका सुदृढ़ संगठन कर आ धमके। इनके अलावा संसारके सारे राजागण अपने-अपने वीर योद्धाओं-को लेकर आ पहुँचे।

जहँ लगि अपर भूप भट भारी।
ब्रह्मसृष्टि ब्रह्मांड मँझारी॥
निज निज सेन समाज सुहाये।
सजि सजि सकल अवधपुर आये॥
जुरा कटक दल अखिल अपारा।
सकइ को पाइ तासुको पारा॥

यह सेना इतनी विशाल थी कि इसकी संख्या-का पता लगाना कठिन था। रावणको जीतनेके लिये जो सेना जुड़ी थी वह सेना इस सहस्र सिरवाले रावणको जीतनेके लिये जानेवाली सेनाके मुकाबिले किसी भी गिनतीमें न समझी गयी।

इस प्रकार सेनाको सजा भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको प्रधान सेनाध्यक्ष बना श्रीरामचन्द्र-जीने सीताजीसहित पुष्पकविमानपर चढ़ युद्धके लिये प्रस्थान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनामें जगह-जगह शंख, दुन्दुभि, निशान आदि बज रहे थे जिसके कारण अपना-पराया कुछ सुनायी ही नहीं देता था। घोड़ोंकी टापोंसे और पैदलोंके पैरोंकी धमकसे धूलिका इतना बड़ा बादल बना जिससे सारा भूमण्डल घटाच्छन्न हो गया। बड़े वेगसे सेनाके चलनेसे पृथिवी थरथर काँपने लगी।

इस बारकी यात्रामें नल और नीलको सेतु बाँधनेकी आवश्यकता न पड़ी क्योंकि महासमुद्र मिट्टीके साथ सनकर कीचड़की भाँति बन गया था। और इसपरसे सारी सेना बिना श्रम पार होकर सहस्र सिरवाले रावणके देशमें पहुँच गयी।

वहाँके राक्षसोंने यह खबर रावणको दी कि भारतखण्डके सम्राट् श्रीरामचन्द्र युद्धके लिये आये हैं। यह सुन सहस्रसिर बोल उठा—अहा! क्या मेरे सिवा और भी कोई सम्राट् है? आजतक तो मैंने नहीं सुना था। खैर, आज सुना तो सही। हर्ज ही क्या है? जब आप ही भोजन आ गया तो उसे क्यों न राक्षसगण मिलकर खा डालें?

यह कहकर उसने भी अपनी सेनाको सजानेकी आज्ञा दी। तदनुसार यथासमय राक्षसी सेना युद्धके लिये चली। इस सेनाकी संख्या मनुष्य तो क्या स्वयं शेषजी और सरस्वतीजी भी नहीं लगा सकते थे।

इसके आगे श्रीरामचन्द्रजीकी सेना ऐसी मालूम होती थी जैसे सागरके सामने बूँद। यदि कोई इसकी संख्याका अन्दाजा लगाना चाहे तो इतना कहना ही काफी होगा कि श्रीरामचन्द्रजीकी सेनामें जितने सैनिक थे उससे सोलह शंख गुने तो रावणके केवल ऐरावत ही थे। जिसपर युद्धके डंके बज रहे थे। जिस दलके बाजेकी संख्याका यह हाल है उसकी सारी सैन्यका हाल बतानेका साहस ही कौन कर सकता है?

रावणकी सुविशाल काली सेनामें श्रीरामकी सेना इस तरह मालूम देती थी मानों अँधेरी रातमें तारे चमक रहे हों।

श्रीरामकी आज्ञासे उनकी सारी सेनाने युद्ध शुरू कर दिया। किन्तु उसका राक्षसी सेनापर कोई असर नहीं हुआ। श्रीरामके नन्हे-नन्हे सैनिकोंको युद्ध करते देख रावण हँसकर बोला—

सलभ समान सकल यह सैना।
जुद्ध इन्हैं सन मोहि बनै ना॥
कीजै कछु अब बेगि उपाई।
जाइ सो बिनु स्रम सकल उड़ाई॥

यह विचारकर उसने एक बाण निकाला और धनुषपर चढ़ाकर प्रहार किया।

जब उसके बाणका प्रहार हुआ तो एक भयंकर शब्द हुआ। साथ-साथ बाणके चलनेसे ब्रह्माण्डभरमें बड़ी भारी हवा चली। ब्रह्मा, विष्णु, महेश चौंक उठे। साथ-साथ जो हुआ वह बड़ा ही अद्भुत और आश्चर्यजनक था। यानी वायुके वेगने श्रीरामकी सेनाको उड़ाना शुरू किया।

देवतागण उड़कर स्वर्गमें जा गिरे। नागोंकी सेना पातालमें धँस गयी। विभीषणकी सेना एकबारगी लङ्कामें जा पड़ी। भालू और वानरोंकी सेना भी अपनी-अपनी भूमि (वन और कन्दरा) में जा गिरी। ऐसा ही हाल शेष वीर योद्धाओंका भी हुआ।

प्रभु सँग जहँ लगि दल रहेउ, गयउ सो सकल उड़ाइ।
रहेउ न कोइ रनभूमि महँ, सिय रघुबीर बिहाइ॥
भरत लखन रिपुदमन निज, दल समेत तब जाइ।
अवधपुरी निज पुरी महँ, ततछन परे उड़ाइ॥

× × ×

गयउ जबहिं सब सैन उड़ाई।
लड़ै लाग रिपु सन रघुराई॥

श्रीरामचन्द्रजीने अकेले ही शत्रुसे लड़ना शुरू कर दिया किन्तु सहस्रसिरके सामने उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भी न चली। जो बाण श्रीराम रावणपर चलाते थे वे सब कट-कटकर भूमिपर गिर पड़ते थे।

देखते-देखते अल्प ही कालमें श्रीरामचन्द्रजीके सारे आयुध कट-कटकर गिर गये। जब श्रीरामचन्द्रजी निरस्त्र हो गये तब रावणने बड़ा भीषण रणहुंकार किया। उसके वीर योद्धा श्रीरामको बाँधनेको दौड़े। यह देख श्रीरामचन्द्रजी सीताजीकी ओर देखकर बोले—

परम सक्ति अतुलित बल माया।
तव प्रभाउ निगमागम गाया॥
सहजै तुम निज भृकुटि बिलासा।
त्रिभुअन साजि पोखि पुनि नासा॥
धरि यह सौम्य सरूप सुहावा।
कत अब निज बल तेज दुरावा॥
एहि बिधि अब एह खलु बलु भारा।
कीजै अब याको संहारा॥

यह सुन सीताजीने कौतुक कर अपनी लीलाका विस्तार किया। वे सौम्यरूप त्यागकर तुरन्त प्रचण्ड शक्तिके रूपमें प्रकट हो गयीं।

पद पताल सिर सुरपुर पारा।
तेहि करनी को बरनै पारा॥
× × × ×
रोम रोम प्रति लोक अपारा।
प्रगटी शक्ति अनेक प्रकारा॥

प्रगटी जो शक्ति अनेक अतिबल सैन बहु बिधि को गनै।
बाहन बिबिध बिधि ध्वजा आयुध बेख बरनत नहिं बनै॥
ब्रह्मानि हंसासीन बहु सँग सैन बृंद बिराजहीं।
पुनि बैष्णवी गरुड़ासनी अति अखिल रूप सुभ्राजहीं॥
मृगराज राजति ईश्वरी धृत उग्र आयुध बहु अनी।
करि लसत इंद्रानी सुभग बपु कुटिल भृकुटी रिससनी॥
कौमारि सिखि आरूढ पुनि वाराहिनी आयुध धरे।
चामुंड सव आरूढ काली अमित रूप भयंकरे॥

इस प्रकार विविध रूप धरकर शक्तियाँ प्रकट हुईं और अपने-अपने शस्त्र-अस्त्रोंसे राक्षसी दलका संहार करने लगीं।

सब करत खल संहार। बहु अस्त्र-शस्त्र प्रहार॥
× × × ×
खल दल हनेउ ततकाल। त्रयनेत्र अग्नि कि ज्वाल॥
× × × ×
सोनित स्रवत चहुँ ओर। महि बहि चल्यो अति घोर।
× × × ×
सब खल भये खैखान। उबरे न एकौ प्रान॥

बिकट बेख तब मातु जानकी।
सैन हनी अति जातुधानकी॥
गजारूढ रावन ततकाला।
गहेउ गरुड़ मानहु लघु ब्याला॥
करिबर सह महि मरदन करेऊ।
काटि चक्र सिर प्रानहि हरेऊ॥
तजत प्रान रव कीन्ह प्रचंडा।
पूरित भयो सकल ब्रह्मंडा॥
× × × ×
प्रगटी अमित शक्ति गन जेती।
भई लीन सीता अँग तेती॥

जब सीताजीने रावणको मार डाला तो उसकी देह निस्तेज होकर भूमिपर पड़ गयी। सीताजीके कोपसे ब्रह्माण्ड वायुवेगसे हिलते हुए पत्तेकी तरह हिल उठा।

ब्रह्मादि भयभीत होकर प्रलयकी आशंका करने लगे। सप्तर्षि भी अपनी भूल समझकर और सीताजीको आदिशक्ति मानकर ब्रह्मा, विष्णु, महेशके साथ रणभूमिमें आये और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—

जय जै जगपावनि सीय सती।
जय सृष्टि उपावन सरन गती॥
तुम्हरे बल तेज तपै तरनी।
तुम्हरे बल सेख धरै धरनी॥
तुम्हरे बल सिंधु प्रबाह बहै।
तुम्हरे बल पवन सुतेज लहै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तव तेज बिराजति कोटि कला।
रजनीचरको बल नाहिं चला॥
तुम्हरी महिमा अवगाह महा।
स्रुति सारद सेख न पार लहा॥
तुममैं संसार सबै यह है।
तुम्हरे बल बिश्व बिमोहि रहै॥
तव माया बर भवकूप परै।
सुबिखै मद मोह सरीर जरै॥
करुना तव सो दुख हारन है।
मद मोहउ लोभ निवारन है॥
जननी जगपालनि हौ तुमहीं।
भवसिंधु अधार कहै सबहीं॥
हम हैं अघमूल भँडार भरै।
सरनागत पाहि पुकार करै॥
परसिद्धि पदांबुज प्रेम चहैं।
करुना करिये जेहि भक्ति लहैं॥

जब देवताओंने अनेक प्रकारसे स्तुति की तब सीताजी प्रसन्न हुईं। तदनन्तर उन्होंने सबको अभयदान दिया। और अपना विराट् रूप त्यागकर सौम्य रूप धारण किया।

उग्र रूप सो त्यागि तब, सौम्य सुभग तनु धारि।
राम बाम दिसि बास लै, बहुरि बिदेहकुमारि॥
सुर सब बरखे सुमन गन, बाजत ब्योम निसान॥
चले अवध दिसि जान चढ़ि, जै जै होत बखान॥

× × × ×

नित नव मंगल होत पुर, घर-घर उत्सव होत।
रविकुल रबि श्रीरामनृप, जबसे भयो उदोत॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें सबको आनन्द था। उसका विस्तार स्वयं शेषजी भी नहीं बता सकते, मनुष्यकी तो बात ही क्या है।*

एक बार बोलिये भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीताजीकी जय!

श्रीकृष्ण-स्तुति

पीतपटधारी पटहारी पद-पंकजपै,
पावन प्रबल नेह नैननि सनी रहै।
'ब्रजदेव' बिपिनबिहारी छबिवारी रूप,
रावरी हियेमें निसिबासर बनी रहै॥
जगसुखकारी बनवारी बाँसुरीकी तान,
सुखद सुरीली सुभ श्रवनन ठनी रहै।
कंसमदहारी गिरधारी औ मुरारी मंजु,
अरज हमारी, नेक नज़र बनी रहै॥

—लाल श्रीकण्ठनाथसिंह शर्मा 'ब्रजदेव'

* यह लेख 'जानकी-विजय' नामके एक ग्रन्थके आधारपर लिखा गया है। इसके बीच-बीचमें जो अवतरण दिये गये हैं वे इसी 'जानकी-विजय' ग्रन्थके हैं। कहते हैं कि यह ग्रन्थ गोस्वामी तुलसीदासजीका रचा हुआ है। किन्तु जगह-जगहपर अत्युक्तियाँ-सी होने और इस ग्रन्थकी रामचरितमानसकी रचनाशैलीके साथ असमानता होनेके कारण इसकी यथार्थतामें सन्देह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता-गुण-गान

(१)

भारतमैं पारथकों कृष्ण उपदेस्यौ ज्ञान,
पावन सुखद सो रहस्य सब गावती।
नासिनी कुमोह कोह ममता मदादि दोष,
ब्रह्म ही अगाध ताकी थाह को लहावती॥
छलकत जाके प्रति बचनमैं सांत-रस,
मारग परम निरवान को बतावती।
गीता सांतिदायिनी मुमुच्छुनके श्रौननमैं,
'पूरन' जू आनँद-पियूष बरसावती॥

(२)

सोई भ्रम-बात भूरि संकट करनहारो,
जोनिन अनेकमैं जो बासना भ्रमावती।
आतप-त्रैताप-धूरि ममता-जलाक पाइ,
बिषय-बिसूचिका त्रिकाल डरपावती॥
जरत बृथा ही भव-ग्रीषम बिषम दीन,
लहत न काहे जीव! सांति मन भावती।
'पूरन' प्रसिद्ध घनस्यामकी मधुर बानी,
गीता मेघ-माला ह्वै पियूष बरसावती॥

(३)

धर्मको बिसारि गति धारिकै तमीचरकी,
तामस-तिमिरमैं भ्रमत क्यौं बिहाला है?।
'पूरन' प्रकासमान पावन परम ज्योति,
ध्याव रे अनारी जग जासौं उजियाला है॥
बासना प्रबलतें न पैहै नतु पार कै हूँ,
मेटि बुद्धि जीवनकी देत जो कसाला है।
ग्रीषम प्रचंड घोर मारुत-झकोर आगे,
जैसे ठहराति नाहिं दीपनकी माला है॥

(४)

बासना प्रचंड पौन जीव ममतादि जामैं,
भवको पयोनिधि अगाध बिकराला है।
तरन चहै तू छुद्र प्राणी! तो रमेसै ध्याव,
ध्यान जल पान जाको 'पूरन' बिसाला है॥
खेवट-उपासना-सहारे पार लागनकों,
सबमैं बिसेस जो सुपास एक आला है।
मायाकी अँधेरीमैं कुपंथ की चटानपै हू,
गीताकी प्रकासमान दीपनकी माला है॥

(५)

भवके निदाघमैं जरत क्यौं अनारी जीव!,
पैहै सुख-घर्म-धाम सीतल सनातनमैं।
तीन-ताप-आतप तपत, चित लावै क्यौं न?,
ध्यान-सुख-सेज छाई भक्ति-कंज-पातनमैं॥
तृषना-तृषासौं रहै आकुल बृथा ही मूढ़!,
रीझ रस सीरे सांत-ग्रंथन पुरातनमैं।
लहु बिसराम खसखाने-गुरु-बातनमैं,
दुःख क्यौं सहत भ्रम घोर भ्रम-बातनमैं॥

(६)

भेद जीव-ईस को बतावै सरसावै ज्ञान,
प्रीति जो करावै ब्रह्म 'पूरन' सनातनमैं।
प्रकृतिकी संग्या दरसावै कै बिदित पंच-
तत्त्वको प्रबंध जौन जीवनके गातनमैं॥
सेत भव-सागरकी हेत परमानँदकी है,
पावन प्रसिद्ध जोई ग्रंथन पुरातनमैं।
पीजै सुधा-सांत-रस मनको लगाय ताही,
भगवतगीता परमातमाकी बातनमैं॥

—राव देवीप्रसाद 'पूर्ण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीगीता-जयन्ती

आगामी मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को श्रीगीताजयन्तीका महोत्सव है। गीता साक्षात् श्रीभगवान्‌के श्रीमुखकी अमृतमयी दिव्य वाणी है, गीता श्रीभगवान्‌का हृदय है, गीता श्रीभगवान्‌का सिद्धान्त है, गीता श्रीभगवान्‌का निश्चित मत है और गीता श्रीभगवान्‌का गुह्यतम उपदेश है। जो मनुष्य गीताके एक भी वचनका आश्रय लेकर तदनुसार चलता है, वह अनायास ही भवबन्धनसे छूट जाता है। गीता-माताकी जयन्ती मनाना मनुष्य मात्रका धर्म है। जयन्तीके महोत्सवमें अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार सब बातें गीताप्रेमी सज्जनोंको करनी चाहिये। परन्तु एक बात विशेषरूपसे होनी चाहिये, वह यह कि गीताभक्तोंको गीताके किसी भी एक या दो श्लोकोंको आधार मानकर तदनुसार अपना जीवन बनानेका निश्चय करना चाहिये, और हो सके तो हमें प्रण करना चाहिये कि आगामी वर्षकी गीता-जयन्तीतक यदि जीवन रहे तो वह उस श्लोकके अनुसार बन ही जायँगे। भक्तोंका ध्यान खींचनेके लिये तीन श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(१६।१—३)

अभय (निडरपन), अन्तःकरणकी शुद्धि, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें स्थिति, सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कर्त्तापनके अभिमानका त्याग, शान्ति, किसीकी निन्दा या चुगली न करना, सब प्राणियोंमें दया, विषयलोलुपताका अभाव, कोमलता, बुरे कामोंमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टा न करना, तेजस्विता, क्षमा, धैर्य, भीतर-बाहरकी शुद्धि, द्रोह न करना और अपनेमें बड़प्पनके अभिमानका अभाव, हे अर्जुन! दैवी सम्पत्तिको प्राप्त पुरुषके ये (२६) लक्षण हैं।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाई-बहिनसे सविनय प्रार्थना है कि सभी लोग जो गीताशास्त्रको मानते हों, चाहे वे किसी भी देश, वर्ण, जाति या श्रेणीके हों, उस दिन यथासाध्य निम्नलिखित कार्य करने-करानेका विनम्र प्रयत्न अवश्य करें।

(१) गीता-ग्रन्थकी पूजा।
(२) गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्ण और रचयिता श्रीव्यासदेवका पूजन।
(३) यथासाध्य गीताका पारायण।
(४) पाठशालाओं और विद्यालयोंमें गीतापाठ, गीतापर व्याख्यान और गीतापरीक्षामें उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार वितरण।
(५) गीतातत्त्वको समझने और गीताका प्रचार करनेके लिये स्थान-स्थानमें सभाएँ और गीता-प्रवचन तथा व्याख्यान।
(६) गीताजीकी सवारीके जुलूस।
(७) लेखक और कवि लेखों और कविताओं-द्वारा गीता-प्रचारमें सहायता करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सस्ते धार्मिक दर्शनीय चित्र

कागज-साइज १८×२२ इञ्चका बड़ा चित्र मूल्य ।)

ब्लाक-साइज १५ इञ्च चौड़ा, १६ इञ्च लम्बा

विश्वविमोहन श्रीकृष्ण (रंगीन)

इतने बड़े रंगीन चित्र हिन्दुस्तानके छपे हुए प्रायः बहुत कम मिलते हैं। एक मँगानेपर मूल्य, डाकव्यय, पैकिंगसहित ॥।-) लगता है, २ का १-), ३ का १।-), इकट्ठे मँगानेमें और भी सुभीता रहेगा।

कागज-साइज १५×२० इञ्चके बड़े चित्र

सभी चित्र बढ़िया आर्ट पेपरपर सुन्दर छपे हुए हैं

सुनहरी-दाम प्रत्येकका ।)
युगलछवि
रंगीन-दाम प्रत्येकका =)॥
श्रीनन्दनन्दन
श्रीवृन्दावनविहारी
श्रीविश्वविमोहन

भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
श्रीविष्णुभगवान्
श्रीलक्ष्मीजी
श्रीध्रुव-नारायण
श्रीरामचतुष्टय
सावित्री-ब्रह्मा

रामदरबार
धनुष-भंग
राम-रावण-युद्ध
सिंहासनारूढ श्रीराम
श्रीविश्वनाथजी
श्रीशिवपरिवार

शिव-बरात
शिव-परिछन
शिव-विवाह
प्रदोषनृत्य
श्रीजगज्जननी उमा
श्रीचैतन्यका संकीर्तन-दल

१८×२२ और १५×२० के चित्रोंमें कमीशन ६ लेनेसे २५% (एक रुपयेमें चार आना), १२ लेनेसे ५०% (एक रुपयेमें आठ आना), पैकिंग, डाकखर्च आदि अलग। ६ चित्र मँगानेपर पैकिंगमें चोंगा लगाना पड़ता है, जिससे डाकखर्च बढ़ जाता है। सोचकर मँगाना चाहिये। १२ मँगानेसे डाकखर्च-कमीशन-का सुभीता है।

कागज-साइज १०×१५ इञ्च

(छोटे ब्लाकोंसे ही केवल बड़े कागजपर बार्डर लगाकर छापे हैं)

सुनहरी चित्र, दाम -)॥ प्रतिचित्र

युगलछवि | तन्मयता

बहुरंगे चित्र, दाम -) प्रतिचित्र

कौसल्या-नारायण
अहल्योद्धार
वृन्दावनविहारी
मुरली-मनोहर
गोपीकुमार
जगद्गुरु श्रीकृष्ण
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
व्रज-नव-युवराज

कौरव-सभामें विराट् रूप
श्रीकृष्णार्जुन
श्रीशेषशायी भगवान् विष्णु
देवदेव भगवान् महादेव
शिवजीकी विचित्र बारात
शिव-परिछन
शिव-परिवार

ध्रुव-नारायण
पवन-कुमार
श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु
श्रीश्रीमहालक्ष्मी
श्रीविष्णु भगवान्
पञ्चमुख परमेश्वर
श्रीरामचतुष्टय

कमलापति-स्वागत
लोककल्याणार्थ हलाहलपान
जगज्जननी उमा
राधाकृष्ण
देवी कात्यायनी
गौरीशंकर
लक्ष्मीनारायण

कागज-साइज ७॥×१० इञ्च

सुनहरी चित्र, दाम -) प्रतिचित्र

श्रीरामपञ्चायतन
श्रीराम-सीता पुष्प-वाटिकामें
स्व

कंसका कोप
बँधे नटवर

वेणुधर
बाबा भोलेनाथ

युगलछवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुरंगे चित्र, दाम)॥। प्रतिचित्र

श्रीरामचतुष्टय (भगवान् श्रीरामरूपमें)
सदाप्रसन्न राम
कमललोचन राम
श्रीरामके चरणोंमें भरत
भगवान् श्रीरामचन्द्र
श्रीश्यामसुन्दर
श्रीरामावतार
भगवान् श्रीरामकी बाललीला
भगवान् श्रीराम और काक-भुशुण्डि
अहल्योद्धार
गुरु-सेवा
परशुराम-राम
श्रीसीताराम
कौसल्या-भरत
कैकेयीकी क्षमा-याचना
अनसूया-सीता
श्रीराम-प्रतिज्ञा
राम-शबरी
श्रीसीताजीके गहने
सुबेल-पर्वतपर श्रीरामकी झाँकी
राम-रावण-युद्ध
पुष्पकारूढ श्रीराम
सिंहासनारूढ श्रीराम
मारुति-प्रभाव
श्रीसीताजीकी गोदमें लव-कुश
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
विश्वविमोहन श्रीकृष्ण
श्रीश्यामसुन्दर
श्रीनन्दनन्दन
आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र

गोपीकुमार
व्रज-नव-युवराज
मोहन
भक्त-भावन भगवान् श्रीकृष्ण
साधु-रक्षक श्रीकृष्ण (वसुदेव-देवकीको कारागारमें दर्शन)
तृणावर्त-उद्धार
वात्सल्य
माखन-प्रेमी बालकृष्ण
गो-प्रेमी श्रीकृष्ण
मनमोहनकी तिरछी चितवन
भवसागरसे उद्धारक भगवान् कृष्ण
बकासुर-उद्धार
अघासुर-उद्धार
कृष्ण-सखा-सह वन-भोजन
राम-श्यामकी मथुरा-यात्रा
बन्धन-मुक्तकारी भगवान् श्रीकृष्ण
जगत्-पूज्य श्रीकृष्णकी अग्रपूजा
शिशुपाल-उद्धार
समदर्शी श्रीकृष्ण
शान्ति-दूत श्रीकृष्ण
मोह-नाशक श्रीकृष्ण
भक्त (भीष्म) प्रतिज्ञा-रक्षक श्रीकृष्ण
अश्व-परिचर्या
श्रीकृष्णका अर्जुनको पुनः ज्ञानोपदेश
नृग-उद्धार
परमधाम-गमन
ध्यानमग्न शिव
पञ्चमुख परमेश्वर
मदन-दहन

शिव-विवाह
उमा-महेश्वर
शिव-परिवार
जगज्जननी उमा
प्रदोष-नृत्य
हलाहल-पान
पाशुपतास्त्रदान
श्रीहरि-हरकी जल-क्रीड़ा
श्रीकृष्णकी शिव-स्तुति
श्रीविष्णु
कमलापति-स्वागत
भगवान् मत्स्यरूपमें
भगवान् कूर्मरूपमें
भगवान् वराहरूपमें
भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी गोदमें भक्त प्रह्लाद
भगवान् वामनरूपमें
भगवान् परशुरामरूपमें
भगवान् बुद्धरूपमें
भगवान् कल्किरूपमें
भगवान् ब्रह्मारूपमें
भगवान् दत्तात्रेयरूपमें
भगवान् सूर्यरूपमें
भगवान् गणपतिरूपमें
भगवान् अग्निरूपमें
श्रीगायत्री देवी
दास-भक्त हनुमान्‌जी
गुरु द्रोणाचार्य
भीष्मपितामह
अजामिल-उद्धार
सुआ पढ़ावत गणिका तारी
निमाई-निताई
प्रेमी भक्त सूरदासजी

गोस्वामी तुलसीदासजी
मीरा (कीर्तन)
मीराबाई (जहरका प्याला)
प्रेमी भक्त रसखान
श्रीश्रीमहालक्ष्मी
ऋषि-आश्रम
वसुदेवजी श्रीकृष्णजीको गोकुल ले जा रहे हैं
वर्षामें श्रीकृष्ण-बलराम
श्रीरामका रामेश्वर-पूजन
श्रीशिवकृत श्रीरामस्तुति
भगवान् विष्णुको चक्रदान
काशी-मुक्ति
सदाशिव
भक्त व्याघ्रपाद
शिव-ताण्डव
देवकीजी
लक्ष्मण-कोप
बिल्वमङ्गल
भिलनीके बेर
महासंकीर्तन
नारी शक्ति
देवी कात्यायनी
गौरीशंकर
भगवान् शक्तिरूपमें
ब्रह्मा-सावित्री
श्रीश्रीचैतन्य
महागौरी
मुरलीमनोहर
गोवंश प्रिय कन्हैया
नीलकान्तमणि
कालिका
राधाकृष्ण
कूष्माण्डा
लक्ष्मीनारायण

एकरंगे चित्र, दाम)। प्रतिचित्र नेट दाम

राम-विलाप
गोवर्धन-धारण
श्रीकृष्ण-सुदामाकी गुरु-सेवा
श्रीकृष्ण-द्रौपदी

श्रीश्रीनित्यानन्द-हरिदासका नाम-वितरण
कर नवनीत लिये
श्रीलाड़लीलालजी
श्रीरामानुजाचार्य

सूरदास
यवन हरिदास
मदन-दहन
ब्राह्मण मुद्गलमुनि
निमाई-संन्यास

भक्तवर रामाजी प्रेममग्न नाच रहे हैं
मालीसे फूल फूलमें भगवान्
आदर्श शूद्र भक्त कण्णप्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज-साइज ५×७॥ इञ्च

बहुरंगे चित्र, दाम)। प्रतिचित्र नेट दाम

श्रीविष्णु
शेषशायी
सदाप्रसन्न राम
कमललोचन राम
विश्वविमोहन श्रीकृष्ण
वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
आनन्दकन्द श्रीकृष्ण
गोपीकुमार
व्रज-नव-युवराज
श्यामसुन्दर

सुदामा और श्रीकृष्णका प्रेममिलन
अर्जुनको गीताका उपदेश
अर्जुनको चतुर्भुजरूपका दर्शन
ध्रुव-नारायण
समुद्रमें पत्थरोंसे दबे प्रह्लादका उद्धार
भगवान् नृसिंहकी गोदमें प्रह्लाद

पवन-कुमार
भगवान्‌की गोदमें भक्त चक्रिक
श्रीश्रीचैतन्य
भक्त धन्ना जाटकी रोटियाँ भगवान् ले रहे हैं
गोविन्दके साथ गोविन्द खेल रहे हैं
भक्त गोपाल चरवाहा
मीराबाई (कीर्तन)

भक्त जनाबाई और भगवान्
भक्त जगन्नाथदास भागवतकार
श्रीहरिभक्त हिम्मतदासजी
भक्त बालीग्रामदास
भक्त दक्षिणी तुलसीदासजी
भक्त गोविन्ददास
ऋषि-आश्रम
भक्त मोहन और गोपाल भाई
परमेष्ठी दर्जी

विशेष सुभीता

१५×२० साइजके सुनहरे और रंगीन २२ चित्रोंकी कीमत ३॥)॥ पैकिंग)॥। डाकखर्च ॥≡) सब जोड़कर ४।)। होते हैं जिसके २॥) लिये जायँगे।

१०×१५ साइजके सुनहरे और रंगीन ३१ चित्रोंकी कीमत २), पैकिंग -)॥।, डाकखर्च ॥-)। सब जोड़कर २॥≡) होते हैं, जिनके १।॥≡) लिये जायँगे।

७॥×१० के सुनहरे और रंगीन १३३ चित्रोंकी कीमत ६।-)॥, पैकिंग -)।, डाकखर्च ॥≡)॥। सब जोड़कर ७=)॥ होते हैं, जिनके ४।=) लिये जायँगे।

५×७॥ साइजके रंगीन ३२ चित्रोंकी नेट कीमत ॥) पैकिंग -) डाकखर्च -) कुल ॥।=) लिया जायगा।

१५×२०, १०×१५, ७॥×१० और ५×७॥ की चारों सेट एक साथ लेनेवालोंको चित्रोंके मूल्यमें ५×७॥ को छोड़कर बाकीमें ५० % (रुपयेमें आठ आना) कमीशन दिया जायगा अर्थात् छोटे-बड़े २१८ चित्रोंका मूल्य १२।=), डाकखर्च-पैकिंग १।) कुल मिलाकर १३॥=) होता है जिसका ७॥≡) मात्र लिया जायगा।

कमीशन-नियम

१०×१५ और ७॥×१० साइजके सेट न लेकर खुदरा और बिक्रीके लिये एक साथ लेनेपर दो दर्जनसे १०० तक २५) सैकड़ा, १०० चित्रोंसे २५० तक ३७॥) सैकड़ा और २५० से ऊपर ५०) सैकड़ा कमीशन दिया जायगा। इसमें डाकखर्च ग्राहकका लगेगा। १००) के चित्र लेनेसे ग्राहकके रेलवे स्टेशनपर माल-गाड़ीसे फ्री डिलेवरी दी जायगी। ५×७॥ का ५०० चित्र लेनेसे १०) हजार नेट दाम लिया जायगा। १०×७॥ के ५००० चित्र एक साथ लेनेसे नेट प्राइसपर २५) सैकड़ा कमीशन और दिया जायगा।

य रेट हमारे स्टाकमें छपे हुए तैयार चित्रोंके हैं, किसीके लिये खास तौरपर उनके बताये अनुसार छापकर देनेके नहीं। तैयार चित्रोंमेंसे भी जब कोई चित्र समाप्त हो जाता है, तब हम भेज सकनेमें असमर्थ होते हैं।

(१) चित्रका नाम जिस साइजमें दिया हुआ है वह उसी साइजमें मिलेगा, आर्डर देते समय देख लें। समझकर मँगवावें। (२) एक ही चित्र १००० लेनेसे कुछ विशेष रियायत कर दी जायगी। (३) पुस्तकोंके साथ मालगाड़ीसे चित्र मँगानेपर कुल मालका चित्रोंकी क्लासका किराया देना पड़ता है, इसलिये ३०) की पुस्तकोंके साथ नेट प्राइस यानी कमीशन काटकर कम-से-कम ७॥) का चित्र लेनेवालोंको चित्र फ्री डिलेवरी दिया जायगा, नहीं तो विशेष भाड़ा ग्राहकोंको देना होगा, आर्डर देते समय इस नियमको समझ लें। (४) केवल २ या ४ चित्र पुस्तकोंके साथ या अकेले नहीं भेजे जाते, क्योंकि रास्तेमें टूट जाते हैं। (५) 'कल्याण' के साथ भी चित्र नहीं भेजे जाते।

नोट—सेट सजिल्द भी मिला करती है। जिल्दका दाम १०×१५ का ॥=), ७॥×१० का ॥), ५×७॥ का ≡) लिया जाता है। सजिल्द सेटका डाकखर्च ज्यादा लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम

(१) यह हर एक महीनेकी कृष्णा एकादशीके लगभग प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांकसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≋) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अङ्कसे १२ वें अङ्कतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क-तक नहीं बनाये जाते। कल्याणका वर्ष श्रावणसे आरम्भ होकर आषाढ़में समाप्त होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहलेतक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले-पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेप-रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डरद्वारा भेजना चाहिये क्योंकि वी० पी०के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी-कभी तो डेढ़-दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलनेतक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। खर्च दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधाका है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजना चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि **'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे भेजने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप रहा है

नवीन संस्करण

श्रीशक्ति-अङ्क

कल्याणके पाठकोंको यह जानकर बहुत ही हर्ष होगा कि श्रीशक्ति-अङ्ककी देश-विदेशके विद्वान् महानुभावोंने हार्दिक प्रशंसा की है। प्रसिद्ध सामयिक पत्रोंने सुन्दर-सुन्दर समालोचनाएँ की हैं। २५६०० प्रतियोंका इतना बड़ा संस्करण प्रायः समाप्त हो चला है और ग्राहकोंकी बढ़ती हुई माँगको देखकर केवल प्रचारदृष्टिसे खर्चका खयाल प्रायः छोड़कर इतने बड़े विशेषाङ्कके द्वितीय संस्करणका आयोजन करना पड़ा है। किसी भी पूर्व विशेषाङ्कका दूसरा संस्करण इतनी शीघ्रतासे निकालनेका काम अबतक नहीं पड़ा था, इसीसे आप इसकी विशेषताका अनुमान लगा सकते हैं।

ग्राहक बननेवाले सज्जनोंको शीघ्रता करनी चाहिये। प्रेमी महानुभावोंको विशेष प्रयत्नपूर्वक नये-नये ग्राहकोंमें इसके प्रचारार्थ चेष्टा करनी चाहिये।

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

कल्याणके तीसरे वर्षकी फाइल

४०० से ऊपर लेख और कविताएँ, सुन्दर ७२ चित्र और ११२८ पृष्ठ, मूल्य अजिल्दका डाक-महसूल-सहित केवल ४≡), सजिल्द ४॥≡)। (इसमें प्रसिद्ध 'भक्तांक' भी शामिल है जो अलग नहीं मिलता।)

यह फाइल कितनी उपादेय है, कुछ लेखकोंके नाम देखनेसे ही इस बातका पता लग सकता है—

महात्मा श्रीगान्धीजी, श्रीअरविन्द घोष, काकाकालेलकर, आचार्य श्रीआनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव हिन्दू-युनिवर्सिटी, काशी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल, दीनबन्धु श्री सी० एफ० एण्ड्रूज महोदय, श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी, हरिभक्त श्रीयादवजी महाराज, बम्बई, जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज प्रतिवादी भयङ्कर मठ बम्बई, सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार, बाबा राघवदासजी, स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, चौधरी श्रीरघुनन्दन-प्रसादसिंहजी, श्रीअनिलवरण राय पाण्डीचेरी, भिक्षु श्रीगौरीशंकरजी, रा० व० अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए०, श्रीअच्युतमुनिजी महाराज, व्याख्यानवाचस्पति श्रीदीनदयालुजी शर्मा, वाणीभूषण पं० श्रीनन्दकिशोरजी शुक्ल, श्रीहरि-भाऊजी उपाध्याय सम्पादक 'त्यागभूमि', श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०, श्रीनलिनी-कान्त गुप्त, पाण्डीचेरी आदि।

कल्याणके सातवें वर्षकी फाइल

(इसमें दुबारा छपा हुआ प्रसिद्ध 'ईश्वरांक' भी शामिल है जो अलग नहीं मिलता)

२९५ लेख, १३५ कविताएँ और १४४ सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित, पृष्ठ १४१८, मूल्य डाकव्ययसहित ४≡), सजिल्द (दो जिल्दोंमें) ५।-)

कल्याणके आठवें वर्षकी फाइल

(प्रसिद्ध श्रीशिवाङ्कसहित)

३५१ लेख, ११० कविताएँ और ३०२ सुन्दर चित्रोंसे विभूषित, पृष्ठ १४६६, मूल्य डाकव्ययसहित ४≡), सजिल्द (दो जिल्दोंमें) ५।-), अकेला श्रीशिवाङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृष्ठ ६६६, चित्र २८७, मूल्य ३), स० ३॥)

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.

दाम घटा दिया Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri जल्दी खरीद दाम घटा दिया

श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीकृष्ण-विज्ञान)

मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद

सचित्र, सुन्दर मोटा एण्टिक कागज, दाम १) से घटाकर ॥|), सजिल्द १।) से १) कर दिया है।

कुछ सज्जनोंकी सम्मतियाँ देखिये—

जयपुर कौन्सिलके मेम्बर पुरोहितकुलभूषण रायबहादुर श्रीमान् पं० गोपीनाथजी एम० ए०, सी० आई० ई० की सम्मति।

श्रीकृष्ण-विज्ञानको पढ़ा। यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। गीताके अनेक हिन्दी-अनुवाद देखे गये। वे सब साम्प्रदायिक हैं और कृष्ण-विज्ञान पूर्णरूपसे पक्षपातरहित है और यही इसका उत्तम गुण है। अन्यान्य अनुवादोंमें यह भी देखा गया है कि अनुवादक जहाँपर मूल श्लोकके आशयतक नहीं पहुँचे वहाँपर अनुवाद या तो सर्वथा मूलके विरुद्ध या पूर्ण निरर्थक है। इसके अतिरिक्त बहुधा अनुवाद मूलसे न्यूनाधिक भी हैं। श्रीकृष्ण-विज्ञान इन त्रुटियोंसे रहित है। हिन्दीके पद्यमय अनुवाद अबतक जो मेरे देखनेमें आये हैं वे मिश्रित भाषामें हैं। केवल श्रीकृष्ण-विज्ञान ही आजकलकी खड़ी प्रचलित भाषामें देखा गया है। इस अनुवादको जहाँ-तहाँसे मैंने मूल ग्रन्थसे मिलाया है और सर्वथा याथातथ्य पाया है। एक श्लोकका अनुवाद एक ही छन्दमें किया गया है और जहाँतक हो सका है मूलसे न्यूनाधिक शब्दोंका प्रयोग कहीं नहीं किया है। मूलके छोटे श्लोकका अनुवाद आजकलकी खड़ी बोलीके छोटे छन्दमें और बड़े छन्दका बड़े छन्दमें बहुत सुन्दर और प्रशंसनीय रीतिपर किया गया है। मेरी सम्मतिसे प्रकृत हिन्दीके उत्तमोत्तम ग्रन्थभण्डारमें श्रीकृष्ण-विज्ञान भी एक अनुपम रत्न है। जिसके पठन, पाठन और मनन करनेसे मनुष्यमात्रके लिये धर्मार्थ-काम-मोक्षकी सिद्धि सुलभ हो जाती है।

हिन्दीके प्रसिद्ध आचार्य सरस्वतीके भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकी सम्मति।

गीताके मुख्य भावार्थको बड़े सरल शब्दोंमें व्यक्त किया है। मूलका मतलब न छोड़ते हुए उन्होंने ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं कि गीताका आशय समझनेमें कठिनाई नहीं होती। देखिये—

मर जानेसे स्वर्ग मिलेगा जय होनेसे भूतलराज। इससे निश्चय ही भारत! तू हो जा खड़ा युद्धको आज॥
विजय-पराजय, हानि-लाभ, सुख-दुःख सभीको जान समान। फिर प्रवृत्त हो जा तू रणमें पाप नहीं होगा मतिमान!॥

एक तो भाषा बोलचालकी, दूसरे सरल और सुन्दर शब्दोंका प्रयोग; फिर मूल ग्रन्थके मुख्यार्थका यथेष्ट सन्निवेश। बस, अनुवादमें और चाहिये क्या? अतएव मेरी सम्मतिमें यह अनुवाद संग्रहणीय ही नहीं, आदरणीय भी है। हिन्दीमें किये गये जितने गीतानुवाद मेरे देखनेमें आये हैं उन सबकी अपेक्षा यह अनुवाद अधिक सरस, सरल और भावव्यञ्जक है।

स्व० पण्डितवर श्रीचन्द्रधर शर्माजी गुलेरी बी० ए० की सम्मति।

अनुवाद बहुत सुपाठ्य है, मूलके प्रकृत अर्थको ठीक-ठीक दर्शाता है। यह अनुवाद अपने गुणोंसे स्वयं प्रतिष्ठित है, जो यह है वह यही है। भाषामें सरसता और सरलता है, पढ़ते समय भाव कहीं अटकता नहीं जैसे कि कई अनुवादोंमें अटकता है। मूलसे मिलाकर भी पढ़ा और यों भी पढ़ा, फिर पढ़ा और फिर पढ़ा, बहुत ही भाया। प्रशंसनीय है। अनुवाद मूलके विरुद्ध न जावे, न घटे, न बढ़े, फिर सरसता हो, कविता हो, भाषा प्राञ्जल हो, जो स्वतन्त्र कविताके तरह पढ़ी जा सके—इन सब बातोंको बहुत अच्छी तरह निबाहा गया है।

रायबहादुर श्रीयुत पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाकी सम्मति।

यह अनुवाद बड़ा ही मनोहर हुआ है, हिन्दीमें गीताके और भी छन्दोबद्ध अनुवाद छपे हैं परन्तु इसकी समता एक भी नहीं कर सकता, प्रत्येक हिन्दूके घरमें यह पुस्तक अवश्य रहनी चाहिये।

और भी अनेक सुन्दर-सुन्दर सम्मतियाँ आयी हैं।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* श्रीहरिः *

कल्याण पौष सं० १९९१ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–रामचरण-अनुराग [कविता] (श्रीमञ्जुकेशीजी) ९४५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश (प्रे०–श्रीरामसरनदासजी) ९४६
३–कल्याण ('शिव') ९४७
४–विषयसुखकी असारता (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ९४९
५–भक्त-गाथा ९५४
६–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ९६१
७–हे भगवन् [कविता] (श्रीघनूसिंहजी 'वीरेन्द्र') ९६९
८–उपनिषद्-गाथा ९७०
९–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ... ९७१
१०–श्रीसदाशिवेन्द्र सरस्वती (शास्त्रवाचस्पति पं० श्रीहरिहरस्वरूपजी शर्मा शास्त्री, बी० ए०) ... ९७८
११–तन्त्र (श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल) ... ९८४
१२–रामकी रीति [कविता] (पं० श्रीविश्वनाथजी मिश्र) ९८८
१३–स्वार्थी असुर (अ०–श्रीबालमुकुन्दजी वर्मा) ९८९

पृष्ठ-संख्या

१४–अध्यात्मकी ओर ! [कविता] (श्रीदयालगिरिजी गोस्वामी) ९९२
१५–एक सन्तके अमृत-वचन (सं०–श्रीदेवीचरणजी निगम एम० ए०) ९९३
१६–विनोद [कविता] (म० श्रीबालकरामजी विनायक) ९९६
१७–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न) ९९७
१८–नरक और स्वर्ग (बहिन श्रीजयदेवीजी) ... १००७
१९–मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्त्तव्य है ? (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... १०११
२०–कबीरका हृदय (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) १०१४
२१–श्रीभगवन्नाम (नाम-जप-विभाग, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर) १०१९
२२–राम प्रणवका एक रूप है १०२१
२३–पिता-पुत्र-संवाद (महाभारत शान्तिपर्वसे) १०२३

अंग्रेजी कल्याणके दूसरे वर्षका पहला अङ्क

गीताङ्क (Gita Number) होगा।

इसमें देश-विदेशके अनुभवी और प्रसिद्ध विद्वानोंके गीता-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेखोंके अतिरिक्त अनेक बहुरंगे और सादे चित्र भी रहेंगे।

गीताङ्कका अलग मूल्य २॥) होगा, परन्तु वार्षिक मूल्य ४॥) दे देनेपर गीताङ्क साथमें ही मिल जायगा। शीघ्र ही मनिआर्डर भेजिये।

कल्याण-कल्पतरुकी पहले वर्षकी फाइल God Number सहित मूल्य ४॥) सजिल्द ५।)

व्यवस्थापक–कल्याण-कल्पतरु, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम

(१) यह हर एक महीनेकी कृष्णा एकादशीके लगभग प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांकसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≋) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अङ्कसे १२ वें अङ्कतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क-तक नहीं बनाये जाते। कल्याणका वर्ष श्रावणसे आरम्भ होकर आषाढ़में समाप्त होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहलेतक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले-पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेप-रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) **ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डरद्वारा भेजना चाहिये** क्योंकि वी० पी० के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी-कभी तो डेढ़-दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलनेतक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। खर्च दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधाका है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजने चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि **'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर'**के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे भेजने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, पौष १९९१, जनवरी १९३५ | संख्या ६ पूर्ण संख्या १०२

रामचरण-अनुराग

विषय-रस पान-पीक-सम त्याग ।
बेद कहैं, मुनि-साधु सिखावैं बिषय समुद्री-आग ।
को न पान करि भो मतवाला यह ताड़ीको झाग ॥
बीतराग-पद मिलन कठिन अति काल कर्मके लाग ।
'केशी' एकमात्र तोहिं चाहिय रामचरन-अनुराग ॥

—मञ्जुकेशीजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

(प्रेषक—श्रीरामसरनदासजी)

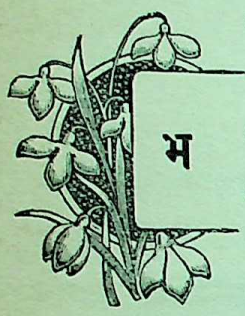

भगवान्‌के अनन्त नाम हैं, अनन्त शक्ति हैं, अनन्त रूप हैं, और अनन्त भाव हैं। किसी-किसी महानुभावने भगवान्‌के अनन्त नाम और अनन्त शक्ति यह दो ही माने हैं। इसलिये जब भगवान्‌के अनन्त नाम हैं तब भगवान्‌के श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीशिव आदि नाम क्यों नहीं हो सकते? जो भगवान्‌का श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीशिव नाम नहीं मानते वे उक्त सिद्धान्तसे विरुद्ध हैं।

प्र०—भगवान् अवतार क्यों लेते हैं?

उ०—भगवान् अपने भक्तोंकी प्रार्थनासे अवतार लेते हैं। पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

अगुन अरूप अनाम एकरस। राम सगुन भये भक्त प्रेमबस॥

भगवान् भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं। भगवान्‌को कोई प्रियाप्रिय नहीं है, भगवान् समदृष्टि हैं। भगवान्‌को भक्तोंकी वाञ्छा पूरी करनेके लिये अवतार लेना पड़ता है। इसलिये भक्तोंके अनुभवमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र साक्षात् भगवान् हैं। दुष्टोंको साधारण ग्वाल-बाल प्रतीत होते हैं। तुलसीदासजी महाराजने निर्गुणको सुलभ कहा है और सगुणको दुर्विज्ञेय बतलाया है।

निरगुन रूप सुलभ अति सगुन न जाने कोय।

प्र०—भक्तोंके दर्शनसे क्या लाभ हैं?

उ०—भगवद्भक्तोंके दर्शनसे पापके परमाणु नष्ट होते हैं। यह बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है। प्रत्यक्षमें भगवद्भक्तोंके दर्शनसे भगवान्‌का गुणानुवाद सुननेमें आता है, गुणानुवाद श्रवण करनेसे भगवान्‌में श्रद्धा और प्रीति बढ़ती है। सब महापुरुषोंका भी सिद्धान्त है कि ईश्वर जीवोंको सृष्टिसृजनद्वारा सुख-दुःख भोगाता है और जीव भोगते हैं। क्योंकि ईश्वर जगत्‌का कर्ता है। भगवद्भक्त संसारसे प्रेम छुड़ाकर भगवान्‌में प्रेम करा देते हैं।

प्र०—प्यारे श्रीकृष्णके दर्शन किस उपायसे हो सकते हैं?

उ०—संसार दुःखवत् प्रतीत होनेसे मनुष्य भगवद्भक्तोंकी शरणमें जाता है। भगवद्भक्तोंमें प्रेम होनेसे भगवान्‌में प्रेम स्वाभाविक हो जाता है। भगवान् और भक्तोंकी कृपा ही मुख्य साधन है।

प्र०—श्रीकृष्णकीर्तन क्यों करना चाहिये?

उ०—श्रीकृष्णकीर्तन इसलिये करना चाहिये कि श्रीकृष्ण हमारे प्यारे हैं। प्यारेका नाम लेना हमारी न छूटनेवाली आदत है। इसलिये प्यारेका जप, नाम-कीर्तन, गुणानुवाद किये बिना रहा ही नहीं जाता। यह भक्तोंका मानों स्वभाव हो गया है। चाहे कोई निन्दा ही क्यों न करे। यह एक नियम भी है कि जिस प्रकार बनियेसे व्यापारके कीर्तन बिना नहीं रहा जाता, कामी मनुष्योंसे स्त्रीके कीर्तन बिना नहीं रहा जाता, किसानोंसे खेतीके कीर्तन बिना नहीं रहा जाता, इसी प्रकार भक्तोंसे श्रीकृष्णकीर्तन बिना नहीं रहा जाता।

प्र०—श्रीकृष्णकीर्तनसे क्या लाभ है?

उ०—श्रीकृष्णकीर्तन करनेसे साधकको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं। और उन सिद्धोंको कि जिनको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो गये हैं अपने प्यारे श्रीकृष्णके नाम लेनेमें परम आनन्द आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

सेवा करना परम धर्म समझकर यथायोग्य तन-मन-धनसे सबकी सेवा करो, परन्तु मनमें कभी इस अभिमानको न उत्पन्न होने दो कि मैंने किसीकी सेवा या उपकार किया है। उसे जो कुछ मिला है सो उसके भाग्यसे, उसके कर्मफलके रूपमें मिला है, तुम तो निमित्तमात्र हो। दूसरेको सुख पहुँचानेमें निमित्त बनाये गये, इसको ईश्वरकी कृपा समझो और जिसने तुम्हारी सेवा स्वीकार की, उसके प्रति मनमें कृतज्ञ होओ।

× × ×

सेवा करके अहसान करना, सेवाके बदलेमें सेवा चाहना, अन्य किसी भी फल-कामनाकी पूर्ति चाहना तो प्रत्यक्ष ही सेवाधर्मसे च्युत होना है। मनमें इस इच्छाकी लहरको भी मत आने दो कि इसे मेरी की हुई सेवाका पता रहना चाहिये। सेवाके बदलेमें मान चाहना या बड़ाई और प्रतिष्ठाकी चाह करना तो मानके चाहकी चञ्चल लहर नहीं है, बहुत मोटी धारा है। यहाँ मनुष्य बहुधा भूल कर बैठता है। जब व्यक्ति (किसी जीव) या समष्टि (देश-जाति) की कुछ सेवा करता है, उस समय तो सम्भवतः सेवाके भावसे ही करता है परन्तु पीछेसे यदि उस सेवाके बदलेमें उसे कुछ भी नहीं मिलता अथवा उस मनुष्य या देशके द्वारा, जिसकी इसने सेवा की थी, किसी दूसरे-को सम्मान मिलता है तो इसे दुःख-सा होता है, यह इसीलिये होता है कि इसने मन-ही-मन उनके द्वारा सम्मानित होनेका अपना स्वत्व या हक समझ लिया था। दूसरेके सम्मानमें इसे अपना हक छिनता-सा नज़र आता है। वास्तवमें यह एक प्रकारसे सेवा-का मूल्य घटाना है। अतएव यह कभी मत चाहो कि मुझे कोई पुरस्कार या सम्मान मिले, न दूसरेको मान मिलता देखकर डाह करो। तुम तो अपना केवल सेवाका ही अधिकार समझो।

× × ×

कर्म या उसके फलमें आसक्त मत होओ, न ममता करो; और न विफलतामें विषाद करो। तुमने किसीकी सेवा की, और वह तुम्हारा उपकार न माने तो उसपर नाराज मत होओ, बल्कि अपनी सेवाको भूल जाओ, याद ही रहे तो पता लगाओ, कहीं उसमें दोष रहा होगा। सेवा करके तुमने गिनाया होगा, उसपर अहसान किया होगा, कुछ बदला चाहा होगा। जिस व्यक्ति या देशकी सेवा करते हो, उसका वह काम हो जानेपर उसमें अपना कोई अधिकार मत समझो। उस हालतमें अपनेको बहुत ही भाग्यवान् समझो जब कि तुम्हारी सेवाका बदला देनेके लिये, तुम्हारे सामने होते हुए भी तुम्हें कोई खोजकर न निकाल सके और वह बदला दूसरेको मिल जाय, और तुम उसमें मदद करो।

× × ×

सेवा या सत्कार्यके बदलेमें मरनेके बाद भी कीर्ति न चाहो। तुम्हें लोग भूल जायँ इसीमें अपना कल्याण समझो। काम अच्छा तुम करो, कीर्ति दूसरोंको लेने दो। बुरा काम भूलकर भी न करो, परन्तु तुमपर उसका आरोप लगकर दूसरा उससे मुक्त होता हो तो उसे सर चढ़ा लो। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। तुम्हारा वह सुखदायी मनचाहा अपमान तुम्हारे लिये मुक्तिका और आत्यन्तिक सुखका दरवाज़ा खोल देगा।

× × ×

सेवा करके नेता, गुरु, सभापति, सञ्चालक, पथ-प्रदर्शक, राजा, शासक और सम्मान्य बननेकी कभी मनमें भावना ही मत आने दो; जो पहलेसे ही सम्मान और ऊँचा पद प्राप्त करनेके लिये किसीकी सेवा करना चाहते हैं, वे यथार्थ सेवा नहीं कर पाते; उनकी अपने साथियोंसे प्रतिद्वन्द्विता हो जाती है और सेवा करनेकी शक्ति प्रतिद्वन्द्वीको परास्त करनेमें खर्च होने लगती है। रागद्वेष तो बढ़ता ही है। सेवा करनेपर मनचाही चीज नहीं मिलती तब दुःख होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके सिवा एक बात यह है कि जो ऊँचा बननेके उद्देश्यसे ही नीचा बनकर कार्य करता है, वह वास्तवमें नीचा बननेका—आज्ञा मानने या सेवा करनेका बहाना ही करता है, वह तो वास्तवमें दूसरोंको नीचा, आज्ञाकारी और सेवक बनानेकी नीयत रखता है। जिसकी नीयत ही ऐसी है. वह सेवा क्या कर सकता है? अतएव सदा सबके सेवक बननेकी ही अभिलाषा रक्खो, स्वामी बननेकी नहीं। कोई ऊँचा बनावे तो उसे स्वीकार न करो। खयाल रहे, बहुधा ऊँचे मानका अस्वीकार भी बड़ाईके लिये ही किया जाता है। बड़ाईके मोहमें भी मत फँसो। मान-बड़ाईका त्याग करो और फिर इस त्यागकी स्मृतिका भी त्याग कर दो।

× × ×

तुम्हारेद्वारा किसीकी कुछ भलाई हो जाय तो यह मत समझो कि यह भलाई मैंने की है। उसकी भलाई भगवान्‌ने की है और उसमें उसका अपना पूर्वकृत कर्म कारण है। तुम्हारी दृष्टि बहुत दूरतक नहीं जा सकती। सम्भव है तुम जिसमें किसीकी भलाई समझते हो, उससे परिणाममें उसका अहित हो जाय। तुम्हारी बुद्धि परिमित है, तुम्हारा विचार सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं है। सद्‌विचारके लिये परमात्मासे प्रार्थना करो, और परमात्माकी सत्ता, स्फूर्ति और प्रेरणा समझकर ही किसीके उपकारका कार्य करो। याद रक्खो, तुम्हारी बाह्य चेष्टाओंकी अपेक्षा ईश्वर-प्रार्थनासे अधिक और निश्चित फल होगा। क्योंकि तुम्हारी चेष्टा तो तुम्हारी अदूरदर्शिताके कारण विपरीत फल भी उत्पन्न कर सकती है परन्तु भगवान्‌की प्रार्थनासे तो विपरीत फल होता ही नहीं।

× × ×

सेवा करनेके अभिमानमें ईश्वरकी भूल मिटानेका दम मत भरो। बहुत-से लोग ईश्वरके किये हुए विधानको पलटनेकी व्यर्थ कोशिश करके ईश्वरको निर्दयी, अशक्त या असत् सिद्ध करना चाहते हैं और अपने बलकी स्थापना करना चाहते हैं, यह उनकी बड़ी भूल है। ईश्वरके प्रत्येक विधानको न्याय और दयासे युक्त समझो। ईश्वर किसीको व्यर्थ कष्ट नहीं देता, वह जीवके कर्मका फल ही उसे सुख-दुःखके रूपमें भुगताता है। और उसमें भी उसकी दया रहती है। उसके विधानको मिटानेकी चेष्टा न करो। हाँ, कष्टमें पड़े हुए प्राणीका कष्ट दूर करनेकी चेष्टा अवश्य करो। इससे ईश्वर तुमपर वैसे ही प्रसन्न होगा, जैसे स्नेहमयी माता अपने बच्चेको दण्ड देती है और उसके रोने लगनेपर उसका रोना बन्द कराके खुशीसे हँसा देनेवालेपर प्रसन्न होती है।

× × ×

ईश्वरको दयालु और सर्वशक्तिमान् समझो। और उसके अस्तित्वमें कभी सन्देह न करो। जगत्‌का अस्तित्व ही उसके अस्तित्वको सिद्ध करता है। जगत्‌को स्वीकार करना और भगवान्‌को अस्वीकार करना वैसा ही है जैसा सोनेके गहनेको स्वीकार करते हुए सोनेको अस्वीकार करना!

× × ×

सर्वत्र सर्वदा ईश्वरकी सत्ता देखकर जगत्‌का व्यवहार करो, प्रत्येक सृजन और संहारमें उसके मंगलमय हाथोंके दर्शन करो, प्रत्येक रुदन और गायनमें उसके मधुर कण्ठस्वरका अनुभव करो, प्रत्येक दुःख और सुखमें उसके कोमल शरीरका स्पर्श करो, प्रत्येक रूपान्तर और कालान्तरमें उसके मुस्कराते हुए मुखड़ेको देखो, प्रत्येक गति और चञ्चलतामें उसके अरुण चरणोंकी नूपुर-ध्वनि सुनो, और प्रत्येक प्रवाहमें उसकी स्थिरा अचला प्रकाशमयी नित्या सनातनी सच्चिदानन्दमयी सर्वव्यापिनी रसमयी मूर्तिकी पूजा करो! तुम धन्य हो जाओगे!

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयसुखकी असारता

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यह बात प्रायः देखनेमें आती है कि भगवद्भजनकी आवश्यकता-को समझ लेनेपर भी उस ओर वैसी प्रगति नहीं होती—सब बातोंको जान-बूझकर भी चित्त प्रायः भगवान्‌से दूर ही रहता है—इसका क्या कारण है? सो विचारना चाहिये। मेरे विचारसे इसमें मुख्य हेतु श्रद्धा-विश्वासकी कमी है, क्योंकि पूर्वसञ्चित पाप और अज्ञानके कारण लोग विषयोंमें आसक्त हो रहे हैं—प्रभुमें पूर्ण श्रद्धा और उनकी दयालुतामें पूरा विश्वास नहीं रखते। इसीलिये लोग प्रायः उनसे दूर ही रहते हैं। अज्ञानवश ही विषयी पुरुषोंको क्षण-क्षणमें बदलनेवाले, देश-कालसे परिच्छिन्न, अनित्य विनाशी और दुःखरूप तथा दुःखके हेतु इन विषयों-में सुख प्रतीत होता है, इसीसे वे इनमें आसक्त रहते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान् पुरुष विषयोंके यथार्थ स्वरूपको जान लेते हैं वे कदापि इनमें आसक्त नहीं होते। इसीलिये श्रीभगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको भ्रमसे सुखरूप भासते हैं, परन्तु ये निःसन्देह दुःखके ही हेतु और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसीलिये हे कौन्तेय! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष इनमें नहीं रमता।'

अतएव विषयोंके स्वरूपको समझकर इनकी आसक्तिसे छूटनेके लिये हमें यह विचार करना चाहिये कि जिस सुखसे आकृष्ट होकर लोग विषयोंमें फँसते हैं, क्या वस्तुतः वह विषयोंमें है? यदि विषय ही सुखस्वरूप होते तो उनकी सन्निधि-में सर्वदा ही सुख होना चाहिये था। परन्तु यह बात देखी नहीं जाती। उनमें सुखकी तो केवल क्षणिक प्रतीतिमात्र ही होती है। वस्तुतः तो वे दुःखरूप ही हैं। रसनेन्द्रियके विषयको ही लीजिये। हमें लड्डू बहुत प्रिय है। परन्तु उसकी प्रियता जैसी भूखके समय जान पड़ती है वैसी तृप्त हो जानेपर नहीं रहती; यही नहीं, पूर्ण तृप्ति हो जानेपर तो वह हमें अरुचिकर हो जाता है और उसे खिलानेका आग्रह भी बुरा मालूम होने लगता है। इसी प्रकार भोगानन्तर-क्षणमें स्त्री आदि जो अन्य इन्द्रियोंके विषय हैं, वे भी नीरस हो जाते हैं।

अतः अब यह विचारना चाहिये कि वस्तुतः सुख कहाँ है? विचारपूर्वक देखनेपर यही निश्चय होता है कि सम्पूर्ण सुखका भण्डार एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही है; जहाँ-जहाँ भी प्रियताकी अनुभूति होती है उसीकी सत्तासे होती है—सम्पूर्ण प्रिय पदार्थोंमें उसीकी प्रियता प्रतिफलित हो रही है।

एक मनुष्य समुद्रतटपर खड़ा हुआ है। उसके सामने अपार और अगाध जलनिधि उत्ताल तरङ्गों-में उछल-कूद मचा रहा है। इतनेमें ही उसकी दृष्टि समुद्रतलमें टिमटिमाती हुई एक मणिपर जाती है। जल किनारेपर भी बहुत गम्भीर है, परन्तु मणि-प्राप्तिका प्रलोभन उसे अधीर कर देता है। वह कपड़े उतारकर सागरमें डुबकी लगाता है; परन्तु बार-बार बहुत गहरे पानीमें जानेपर भी मणि उसके हाथ नहीं आती; वह विफलमनोरथ ही रहता है। परन्तु मणिकी दिपती हुई चमचमाहट उसे बेचैन कर रही है; इसलिये वह बहुत क्लान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दुखी हो जानेपर भी बार-बार डुबकी लगानेसे नहीं हटता। इस प्रकार उसे डूबते-उतराते बहुत समय हो गया।

इतनेमें वहाँ कोई अनुभवी महात्मा स्नान करनेके लिये आते हैं। वे देखते हैं कि एक मनुष्य बार-बार डुबकी लगाता है और हताश चित्तसे निकल आता है। उसकी आकृतिसे वह बहुत ही उद्विग्न और दुखी जान पड़ता है, मानो किसी वस्तुको पानेके लिये अत्यन्त व्यग्र है और वह उसे मिल नहीं रही है। उन्होंने उसके समीप जाकर पूछा—'क्यों भाई, तुम किसलिये इतने व्यग्र हो रहे हो और क्यों बार-बार समुद्रमें डुबकी लगाते हो ?' किन्तु वह मनुष्य अपना भेद खोलना नहीं चाहता, क्योंकि उसे यह आशङ्का है कि कहीं बाबाजी ही उस मणिको न निकाल ले जायँ। अतः वह बातको टाल देता है।

किन्तु इतनेहीमें महात्माजीकी दृष्टि भी उस मणिपर पड़ जाती है। उसे देखकर वे उसकी व्यग्रताका मर्म समझ गये, और उससे बोले—'क्यों भाई! तू इस मणिको लेनेके लिये ही बारम्बार डुबकी लगाता है न ?' अब भेद खुला देखकर उसे भी स्वीकार करना ही पड़ा। बाबाजीने कहा तुझे इस प्रकार डुबकी लगाते कितना समय हो गया ?

उसने कहा—बहुत समय हो गया।

बाबाजी—तुमने कितनी डुबकियाँ लगायी होंगी ?

मनुष्य—कुछ गिनती ही नहीं, मैं तो आया तबसे गोते ही लगा रहा हूँ।

बाबाजी—कुछ हाथ भी लगा ?

मनुष्य—कुछ नहीं।

बाबाजी—तो फिर क्यों डुबकी लगा रहा है ?

मनुष्य—इसीलिये कि डुबकी लगाते-लगाते कभी तो मणि मिल ही जायगी।

बाबाजी—भाई, इसी प्रकार तू सारी आयु भी गोते लगाता रहे तो भी तुझे यह मणि नहीं मिल सकती।

मनुष्य—क्यों ?

बाबाजी—तुझे जो मणि दिखायी दे रही है वह वस्तुतः वहाँ है ही नहीं।

मनुष्य—यह आप कैसी बात कह रहे हैं, वह तो प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है।

बाबाजी—(हँसकर) अच्छा कुछ देर ठहर, तुझे अभी सारा भेद ज्ञात हो जायगा। इसपर वह मनुष्य रुक गया। थोड़ी देरमें जब जल ठहर गया तो बाबाजीने कहा—क्यों भाई, जहाँ तुझे मणि दिखायी देती है वहाँ कुछ और भी है क्या ?

मनुष्य—हाँ, एक वृक्ष तो दिखायी देता है।

बाबाजी—तो क्या वस्तुतः वह वहाँ है। और यदि है तो इतनी बार डुबकी लगानेपर क्या तेरे हाथ उसकी कोई डाली भी आयी ?

मनुष्य—नहीं, डाली या पत्ता आदि तो कुछ भी हाथ नहीं लगा, परन्तु यदि वह वहाँ नहीं है तो फिर कहाँ है ?

बाबाजी—अरे, यदि वहाँ वृक्ष होता तो तेरे हाथ अवश्य उसका कोई पत्ता तो लगता ही। वस्तुतः वहाँ कोई वृक्ष है नहीं। देख, यह किनारेका वृक्ष। यही जलमें प्रतिबिम्बित हो रहा है। ऐसा कहकर बाबाजीने किनारेके उस वृक्षकी एक टहनी हिलायी, उसके हिलनेसे जलमें प्रतिबिम्बित वृक्षकी टहनी भी हिलती देखकर वह मनुष्य सहम गया और उसने महात्माजीसे कहा—आपका कथन ठीक है, वस्तुतः यह इस वृक्षकी ही परछाईं है। कृपया अब इस मणिके मिलनेका उपाय भी बतलाइये।

बाबाजी—यदि तुझे यह मणि प्राप्त करनी है तो तू इस वृक्षपर चढ़कर देख। प्रतिबिम्बमें जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिकी प्रतीति होती है उसीकी बिम्बभूत डालीपर तुझे यह रत्न मिल सकता है।

तब उस मनुष्यने वृक्षपर चढ़कर देखा तो उसे वह अनुपम लाल उसकी सबसे ऊँची टहनीपर पड़ा मिला। वह लालको पाकर निहाल हो गया और महात्माजीके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने लगा।

[यहाँ संसार ही समुद्र है, विषय ही उसमें जल है, विषयसुख ही मणिकी परछाईं है, जीव ही डुबकी लगानेवाला मनुष्य है, बार-बार जन्मना-मरना ही डुबकी लगाना है, सद्गुरु महात्माजी हैं, साधन किनारेका वृक्ष है, और परमानन्दरूप परमात्माका स्वरूप ही उसपर स्थित सच्ची मणि है।]

इस प्रकार जलमें मणिकी परछाईंकी भाँति तुम्हें यहाँ विषयोंमें जो आनन्द प्रतीत होता है वह उस विज्ञानानन्दघन परमात्माका ही प्रतिबिम्ब है। यदि उसे पानेकी इच्छा है तो इस संसार-समुद्रमें प्रतीत होनेवाले विषयोंकी आपातरमणीयतासे आकृष्ट न होकर किसी सद्गुरुके बतलाये हुए साधनसोपानपर चढ़कर उसे ढूँढ़ो। तभी तुम्हें उस विशुद्ध परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

एक मनुष्य किसी कमरेमें बैठा हुआ है। प्रातःकालका समय है। उस कमरेके बाहर वह देखता है कि प्रातःकालीन मन्द-मन्द घाम फैल गया है। इससे वह निश्चय कर लेता है कि सूर्योदय हो गया। यद्यपि इस समय सूर्य उसके सामने नहीं है, तो भी उस घामसे ही उसकी सत्ताका निश्चय हो जानेमें कोई त्रुटि नहीं रहती। प्रकाश तो उसके कमरेमें भी है परन्तु वह सूर्यसे सीधा न आकर उस घामसे ही प्रतिफलित हो रहा है। इसप्रकार सूर्य न दीखनेपर भी वह उसीके प्रकाश-से प्रकाशित हो रहा है। यदि किसी प्रकार उस कमरेको गिरा दिया जाय तो वह वहाँ बैठे-बैठे ही सूर्यका दर्शन कर सकता है। इसी प्रकार परमात्मा भी अविद्याके कारण हमसे छिपा हुआ है। उसके परमानन्दका प्रकाशरूप जो सात्त्विक आनन्द है, उसीकी आभा इन विषयोंमें पड़ी हुई है और उसीके कारण ये सुखमय जान पड़ते हैं। यदि किसी प्रकार वह अविद्याका पर्दा हटा दिया जाय तो हमें उस आनन्दघनका स्फुट साक्षात्कार हो सकता है। परन्तु इस विषयानन्दसे ही उस परमानन्दघनका निश्चय हो जानेमें तो कोई बाधा नहीं रहनी चाहिये। जब हम स्पष्ट ही सर्वत्र अल्प सुखका अनुभव करते हैं, तो उसके अधिष्ठानभूत पूर्णानन्दघन परमात्माकी सत्ता निश्चय ही सिद्ध होती है। इसमें अविश्वास या अश्रद्धाके लिये तनिक भी अवकाश नहीं है।

परन्तु इस विषयानन्दकी अपेक्षा भगवान्‌में कितना अधिक आनन्द है, इसका परिचय उसी प्रकार नहीं कराया जा सकता, जिस प्रकार कि खद्योतोंके समूहसे सूर्यका। मानववुद्धि उसका आकलन करनेमें सर्वथा असमर्थ है। भगवदानन्द-की बात तो दूर रही, विषयासक्त पुरुषोंके लिये तो शुद्ध सात्त्विक आनन्द भी अत्यन्त दुर्लभ है। प्रभुके परमानन्दको समझनेके लिये एक दृष्टान्त-पर ध्यान देना चाहिये। एक दर्पण है। उसमें सूर्यका प्रतिबिम्ब दिखायी देता है और उस सूर्यप्रतिबिम्बयुक्त दर्पणका चिलका दीवारपर पड़ रहा है, तथा उस चिलकेकी आभासे ही वह दीवार भी प्रकाशित हो रही है। इस प्रकार दीवारपर जो सामान्य प्रकाश है वह सूर्यप्रकाशके प्रतिबिम्बके प्रकाशका भी आभास है। इसी प्रकार विषयानन्द भी भगवान्‌के परमानन्दके प्रतिबिम्बके प्रकाशकी केवल आभामात्र ही है। विषयानन्द दीवारपर पड़े हुए सामान्य प्रकाशके समान है, दीवारपर पड़ा हुआ चिलका सात्त्विक आनन्द है। दर्पणप्रतिबिम्बित सूर्य अथवा घाम मानो सात्त्विक आनन्दका पुञ्ज है और भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात् सूर्यदेव हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विषयानन्दकी अपेक्षा प्रभुका परमानन्द असंख्य कोटि गुना अधिक बतलाया जाय तो भी उसकी उपमा नहीं बनती।

थोड़ी-सी विचार-दृष्टिसे देखा जाय तो विषयोंकी असारता, अस्थिरता और तुच्छता स्पष्ट प्रतीत होती है। देखिये, आकाशमें उड़नेवाला वायुयान जब पृथिवीपर होता है तो पचीस-तीस फुट लम्बा होता है। आकाशमें उड़ते समय वह प्रायः चार-पाँच फुटका दिखायी देता है, और भी ऊँचा चढ़ जानेपर केवल एक पक्षीके समान दिखायी देता है, यदि और दूर चला जाय तो दिखलायी भी नहीं देगा। इसी प्रकार यह देखा जाता है कि संसारमें प्रत्येक वस्तु अवस्थाभेदसे भिन्न-भिन्नरूपसे दिखायी देती है, और अवस्था क्षणिक है। क्षण-क्षणमें प्रत्येक पदार्थका भी क्षय हो रहा है। अभी एक सुगन्धित पुष्प तोड़ा गया है। वह घ्राणेन्द्रिय-को बड़ा ही प्रिय जान पड़ता है; परन्तु दो-चार बार सूँघनेपर वह उत्तरोत्तर अप्रिय होता जाता है। फिर वह सूखकर किसी कामका नहीं रह जाता और अन्तमें नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जब कि देश और कालके भेदसे प्रत्येक पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रकारका प्रतीत होता है, और प्रतिपल क्षय होता है तो उसे सत्य कैसे माना जा सकता है? सत्य तो वही वस्तु मानी जा सकती है जो सदा-सर्वदा एकरस रहे और जिसमें कभी कोई विकार-व्यभिचार न होता हो। स्थानभेद अथवा कालभेदके कारण कुछ-की-कुछ प्रतीत होनेवाली वस्तुएँ सत्य नहीं मानी जा सकतीं। जो सत्य है उसका कभी अभाव नहीं होता और जिसका अभाव या क्षय होता है, वह सत्य नहीं हो सकता। भगवान्‌ने भी कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥
(गीता २। १६)

अर्थात् 'असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है, और सत्‌का अभाव नहीं है, इस प्रकार ज्ञानी पुरुषों-द्वारा इन दोनोंका ही तत्त्व देखा गया है।'

किसी न्यायाधीशके यहाँ एक अभियोग उपस्थित होता है। उसकी पुष्टिके लिये वादी पाँच गवाह उपस्थित करता है। उसका दावा है कि अमुक व्यक्तिको मैंने दस हजार रुपये दिये थे, जिन्हें वह अन्यायपूर्वक दबाना चाहता है। न्यायाधीश पूछता है—इसमें कोई गवाह भी है?

वादी—जी हाँ, अमुक-अमुक पाँच व्यक्ति गवाह हैं, मैंने उनकी उपस्थितिमें उसे दस सहस्र रुपये दिये थे। इनमेंसे एक तो मेरे गिने रुपयोंको दुबारा गिन-गिनकर उसे दे रहा था।

न्यायाधीश—तुमने रुपये दिये थे या नोट?

वादी—रुपये।

न्यायाधीश—कहाँपर दिये थे?

वादी—अमरूदों और फूलोंके बगीचेमें।

न्यायाधीश—किस समय दिये थे?

वादी—दोपहरके समय।

इसके पश्चात् उसे हटाकर न्यायाधीश एक-एक गवाहको बुलाकर पूछने लगा। उसने पहले गवाहसे पूछा—क्या इस मनुष्यने तुम्हारे सामने अमुक मनुष्यको कुछ रुपये दिये थे?

पहला गवाह—जी हाँ, आठ हजार रुपये दिये थे।

न्यायाधीश—उस समय और भी कोई था?

पहला गवाह—जी हाँ, तीन आदमी और थे।

न्यायाधीश—वह दिनका कौन समय था?

पहला गवाह—प्रातःकाल था।

न्यायाधीश—ठीक है, अच्छा, जाओ।

फिर दूसरे गवाहको बुलाकर पूछा—इस आदमीने अमुक मनुष्यको कितने रुपये दिये थे?

दूसरा गवाह—दस हजार।

न्यायाधीश—क्या तुमने स्वयं देखा था?

दूसरा गवाह—नहीं, मैंने सुना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाधीश–वह दिनका कौन-सा समय था।

दूसरा गवाह–सायंकालका समय सुना गया था।

न्यायाधीश–ठीक है, अच्छा जाओ।

फिर तीसरे गवाहसे पूछा।

न्यायाधीश–इस आदमीने अमुक मनुष्यको कितने रुपये दिये थे?

तीसरा गवाह–बारह हजार।

न्यायाधीश–तुमने स्वयं देखा था?

तीसरा गवाह–देखा क्या! मैंने दुबारा गिन-गिनकर दिये थे।

न्यायाधीश–वह कौन-सा समय था?

तीसरा गवाह–रातको भोजनके बाद।

न्यायाधीश–अच्छा जाओ।

इसी प्रकार चौथे और पाँचवें गवाहको भी बुलाकर पूछा गया। एकने कहा—मैं बगीचेमें बड़े तड़के फूल लेने जाया करता हूँ, मैंने रुपये देते नहीं देखा। दूसरेने कहा, मैं तो वहाँ जाकर अमरूद खाया करता हूँ, रुपयोंकी बात मैं नहीं जानता। इस तरह सबकी अव्यवस्थित और विषम बातें सुनकर न्यायाधीशने अभियोगको मिथ्या ठहराकर खारिज कर दिया। जब वादीने आकर अनुनय-विनय की और अभियोग खारिज करनेका कारण पूछा तो न्यायाधीशने कहा—तुम्हारा एक गवाह कहता है कि आठ हजार रुपये दिये गये थे।

वादी–जी सरकार, आठ हजार ही थे, मैंने भूलसे दस हजारकी नालिश की थी।

न्यायाधीश–दूसरा बारह हजार कहता है।

वादी–हुजूर! उसे याद नहीं रहा होगा।

न्यायाधीश–गवाह कहते हैं रुपये नहीं नोट दिये गये थे।

वादी–जी हाँ, नोट ही दिये गये थे।

न्यायाधीश–गवाह कहता है, उस समय हम दो ही व्यक्ति थे।

वादी–जी।

न्यायाधीश–वह प्रातःकालका समय बतलाया जाता है।

वादी–जी हुजूर, प्रातःकाल ही था। मैं कहनेमें भूल गया।

इस प्रकार अपनी बातोंका ही खण्डन करते देख न्यायाधीशको निश्चय हो गया कि यह आदमी झूठा है और इसका अभियोग एक जाल ही है। इसी तरह इन विषयोंको ग्रहण करनेवाली—इनकी साक्षी हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनमेंसे किसी भी एकका अनुभव दूसरीसे नहीं मिलता। कर्ण केवल शब्द ही ग्रहण करता है, घ्राणेन्द्रिय केवल गन्धका साक्षी है, रसना केवल रस बतला सकती है, त्वचा केवल स्पर्श ही जान सकती है और नेत्रोंसे बस रूपका ही ज्ञान होता है। इस प्रकार जब सभी गवाहोंका अनुभव एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न है, तो उनमेंसे किसीकी भी बातको प्रामाणिक कैसे मान सकते हैं?

इस तरह जो विषय न सबको एक-से दीखते हैं, न सबको उनमें एक-सा सुख-दुःख होता है, जो पल-पलमें बदलते रहते हैं, अभी हैं, दूसरे ही क्षणमें नष्ट हो जाते हैं, ऐसे विषयोंको सत् मानकर उनमें आसक्त होना मूर्खताके सिवा और क्या है?

अतएव विषयोंकी असारता, अस्थिरता और दुःखरूपतासे उनकी असत्ताका निश्चय कर एकमात्र परमात्माको ही सर्वाधिष्ठान, पूर्णानन्दघन और सत्पदार्थ समझकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निरन्तर उन्हींका भजन-चिन्तन करना चाहिये, उन्हींके भक्तोंका सहवास करना चाहिये और एकमात्र उन्हींकी कृपामें दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। इससे अविद्या, आसक्ति आदि सब प्रकारके क्लेशोंका एवं पाप और सम्पूर्ण दुःखोंका सर्वथा अभाव होकर सदाके लिये परम शान्ति एवं परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा

दानवराज वृत्रासुर

क समय देवराज इन्द्रके अनम्र तथा उद्धत व्यवहारसे देवगुरु बृहस्पति नाराज हो गये, इन्द्रने पश्चात्ताप करके उनको तलाश भी किया परन्तु वह नहीं मिले; गुरुहीन देवताओंको दैत्योंने हरा दिया, तब ब्रह्माजीकी रायसे देवराज इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र अमित तेजस्वी विश्वरूपको अपना गुरु बनाया। विश्वरूप 'नारायणीकवच' जानता था, उस कवचके प्रभावसे इन्द्र बलवान् हो गया और देवताओंने पुनः दैत्योंपर विजय प्राप्त की। कुछ समय बाद इन्द्रको यह सन्देह हुआ कि विश्वरूपकी माता असुरवंशकी होनेके कारण वह गुप्तरूपसे असुरोंको यज्ञका हविर्भाग पहुँचाता है; इस प्रकारके सन्देहसे इन्द्रके मनमें असुरोंकी बलवृद्धिका भय हुआ और क्रोधावेशमें उसने विश्वरूपको मार डाला। पुत्रकी मृत्युसे शोकाकुल त्वष्टाने बदला लेनेके लिये इन्द्रका शत्रु उत्पन्न करनेकी इच्छा की और यज्ञ करके विश्वरूप-के शरीरमन्थनद्वारा अति उग्ररूप वृत्रको उत्पन्न किया। यह वृत्रासुर पूर्वजन्ममें भगवान्‌का परमभक्त राजा चित्रकेतुके नामसे प्रसिद्ध था, पार्वतीके शापवश इसे यह असुरशरीर प्राप्त हुआ था। परन्तु इस देहमें भी पूर्वाभ्यासवश इसकी भगवद्भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रही। अस्तु,

वृत्रासुरने साठ हजार वर्षतक कठिन तपस्या करके अमित शक्ति प्राप्त की और सबको जीतकर वह निर्भयरूपसे जगत्‌में अपार ऐश्वर्यका भोग करने लगा। यद्यपि वृत्र असुर था, उसका शरीर भी आसुरी चिह्नोंवाला था, परन्तु उसके हृदयमें भगवान्‌की ओर आकर्षण था, जगत्‌की नश्वरताको वह खूब जानता था, भगवान्‌के प्रति उसके मनमें भक्ति थी। इन्द्रके साथ शत्रुता करनेके लिये ही वह उत्पन्न हुआ था, इसलिये बाहरी दिखावेमें वह अवश्य ही महान् इन्द्र-शत्रु था, सारे देवता उसके नामसे काँपते थे, परन्तु मनमें उसका किसीसे भी वैर नहीं था, वह सबमें अपने भगवान्‌को देखकर अपने स्वाँगके अनुसार घोर कर्म करता हुआ जगत्‌में विचरता था। एक बार वह भगवदिच्छासे देवताओंसे हार गया, तब असुरगुरु शुक्राचार्य उसके पास आये। शुक्राचार्यने आकर देखा कि वृत्रके चेहरेपर उदासीका कोई चिह्न नहीं है, वह जैसा राज्य करनेके समय प्रफुल्लित था वैसा ही राज्यसे भ्रष्ट होनेपर भी है। तब शुक्राचार्यने उससे पूछा—

'हे वृत्र! तुम हार गये हो, राज्यसे च्युत हो, क्या इससे तुम्हें कोई दुःख नहीं होता?' वृत्रने कहा—'भगवन्! मैं सत्य और तपके प्रभावसे जीवोंके आने-जाने और सुख-दुःखके रहस्यको जान गया हूँ, इससे मुझको किसी भी अवस्थामें हर्ष या शोक नहीं होता। जीव अपने-अपने कर्मवश कालभगवान्‌की प्रेरणासे नरक या स्वर्गमें जाकर नियत समयतक पाप या पुण्यका फल भोगकर फिर बचे हुए पाप-पुण्यके कारण मनुष्य पशु, या पक्षीयोनिमें जन्मते-मरते हैं। मरकर पुनः नरक या स्वर्गमें जाते हैं, इस प्रकार उनका आवागमन हुआ करता है। मैंने भगवत्कृपासे अदृष्ट परमात्माको देख लिया है, इसलिये मुझको जीवोंके आने-जानेमें और भोगोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें कोई विकार नहीं होता। आप जानते हैं, मैंने पहले विजयकी इच्छासे दीर्घकालतक बड़ा तप किया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तपोबलके प्रभावसे त्रैलोक्यविजयी होकर परम ऐश्वर्यवान् बन गया था। अब मैंने अपने कर्मसे ही उस ऐश्वर्यका नाश कर दिया है, अतएव मुझे उस गये हुए ऐश्वर्यके लिये कोई शोक नहीं है। पहले जिस समय युद्धकी इच्छासे इन्द्र मेरे सामने आया था, उस समय मैंने अपने स्वामी भगवान् श्रीहरि-नारायणके दर्शन किये थे; वे श्रीहरि ही वैकुण्ठ, पुरुष, अनन्त, शुक्ल, विष्णु, सनातन, मुञ्जकेश, हरिश्मश्रु और समस्त भूतोंके पितामहके नामसे प्रसिद्ध हैं। मैं समझता हूँ, जिस तपसे मुझे श्रीभगवान्के दर्शन हुए थे उस तपका कुछ अंश अभी मेरे अन्दर वर्त्तमान है, इसीसे मैं अन्य किसी विषयकी इच्छा न करके आपसे यह जानना चाहता हूँ कि किस कर्मसे और किस ज्ञानसे परब्रह्म भगवान्की प्राप्ति हो सकती है। हे गुरो! आप कृपाकर मुझे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये।' वृत्रके इन असुरभावोंको नष्ट करनेवाले परमार्थप्रद वचनोंको सुनकर तथा उसे सृष्टि-स्थिति-संहारके एकमात्र आश्रय श्रीभगवान्के प्रति दृढ़ भक्तिपरायण जानकर शुक्राचार्य बोले—

नमस्तस्मै भगवते देवाय प्रभविष्णवे।
यस्य पृथ्वी तलं तात! साकाशं बाहुगोचरः॥
मूर्धा यस्य त्वनन्तश्च स्थानं दानवसत्तम।
तस्याहं ते प्रवक्ष्यामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्॥
(महा० शान्ति० २८०। १, २)

'हे प्रिय! यह भूमण्डल जिसका अधोभाग है, आकाश-सहित ऊपरके लोक जिसकी भुजाओंका मध्य-भाग है और मोक्षधाम जिसका मस्तकरूप है, उस भगवान् नारायणको मैं नमस्कार करके तुझे उन श्रीविष्णुका माहात्म्य सुनाता हूँ।'

वृत्रासुर और शुक्राचार्यमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि धर्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उनका सन्देह नाश करनेके लिये वहाँ पधारे। असुरराज वृत्र तथा मुनिवर शुक्राचार्यने उनकी यथोचित पूजा की। वह उत्तम सिंहासनपर विराजित हुए। तदनन्तर शुक्राचार्यके अनुरोध करनेपर सनत्कुमार भगवान् विष्णुका माहात्म्य कहने लगे—'हे दैत्येन्द्र! मैं तुमसे भगवान्का माहात्म्य कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो! यह समस्त विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है, वह परमपुरुष भगवान् ही कालके द्वारा चराचर भूत-प्राणियोंको रचते और उनका संहार करते हैं। यह समस्त भूत उन्हींसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लय हो जाते हैं। शास्त्रज्ञान, बाह्य तप और यज्ञद्वारा उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। केवल इन्द्रियसंयमसे अर्थात् मनसहित समस्त इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर उनमें लगानेसे ही वह मिलते हैं। जो दृढ़तर अध्यवसायके साथ निष्कामभावसे भगवदर्थ कर्मरूपी यज्ञ और शमदमादि साधनोंद्वारा चित्तकी शुद्धि करते हैं वही परलोकमें मोक्षको प्राप्त होते हैं। जैसे सुनार चाँदी-सोने आदि धातुको बार-बार अग्निमें तपा-तपाकर शुद्ध करते हैं, इसी प्रकार जीव भी बार-बार जन्म लेकर प्रयत्न करता हुआ शुद्ध होता है। हाँ, महान् प्रयत्न करनेवाला साधक पुरुष एक ही जन्ममें शुद्ध हो जाता है। शरीरका मैल उतारनेके समान यत्नपूर्वक अन्तःकरणका मल भी दूर करना चाहिये। जैसे सरसोंके तेलमें थोड़े-से पुष्पोंकी सुगन्धि देनेसे ही तेलकी गन्ध नहीं मिटती, इसी प्रकार थोड़े-से प्रयत्नसे दोष दूर नहीं होते परन्तु जैसे बार-बार बहुत-से पुष्पोंकी सुगन्धि देनेसे तेलकी गन्ध नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार बुद्धिसे विषयासक्तिके दोष भी बार-बार महान् प्रयत्न करनेसे और सत्यके सेवनसे ही नष्ट होते हैं।

हे दानवराज! अज, अविनाशी भगवान् नारायण ही इस चराचर विश्वकी सृष्टि करते हैं, वही समस्त भूतोंमें देहरूपसे और जीवरूपसे विराजित हो रहे हैं। वही मनसहित ग्यारह इन्द्रियोंके रूपमें होकर जगत्का उपभोग करते हैं। उन जगद्रूप परमात्माका चरण यह पृथ्वी है, स्वर्ग मस्तक है, दिशाएँ चार भुजा हैं, आकाश कान हैं, सूर्य नेत्र हैं, चन्द्रमा मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, ज्ञान बुद्धि है, जल जिह्वा है, आकाशमें रहनेवाले ग्रह उनकी भ्रुकुटिका मध्य भाग है। सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण भी वही नारायण हैं। वह सब आश्रम, कर्म और संन्यासके फलस्वरूप हैं। वेदके छन्द उनके रोम हैं, प्रणव उनकी वाणी है। वह सभी आश्रमोंके आश्रय हैं, उनका मुख सब ओर है। वही ब्रह्म हैं, वही परम धर्म हैं, वही तप हैं, वही सत्-असत् हैं, वही मन्त्र, शास्त्र, यज्ञपात्र, सोलह ऋत्विक्युक्त सर्व-यज्ञरूप हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु, अश्विनीकुमार, पुरन्दर, मित्र, वरुण, यम और कुबेर हैं। ऋत्विक्गण उन्हें इन्द्र, वैश्वानर आदि भिन्न-भिन्न रूपोंमें देखते हुए भी यह जानते हैं कि वह सनातन परमात्मा एक ही हैं। यह समस्त जगत् उन एक अद्वितीय भगवान् नारायण-के ही वशमें है। वेद उन्हींको विविध भूतोंका एक-मात्र कारण बतलाते हैं। जब मनुष्य दिव्य ज्ञानदृष्टिसे सबको एक नारायणमय देखते हैं, तभी ब्रह्मका स्वरूप प्रकट होता है अर्थात् वह ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

जीव जन्म लेकर अपने-अपने कर्मोंके अनुसार निर्दिष्ट लोकमें रहते हैं और अन्तमें प्रलयकालमें प्रकृतिके साथ ब्रह्ममें प्रवेश कर जाते हैं। ब्रह्मविद् महात्मा पाँचों इन्द्रियोंका संयम करके सुख-दुःखमें सम रहते हैं। उनके अन्दर ब्रह्मविद्या और वेदविद्या रहती हैं। जो पुरुष निर्मल मनसे परम पवित्र गतिको जानना चाहता है, वह ब्रह्मका साक्षात्कार कर नितान्त दुर्लभ मोक्षस्वरूप सनातन अविनाशी परब्रह्मको प्राप्त होता है।'

सनत्कुमारके इन वचनोंको सुनकर वृत्रासुरको बहुत ही आनन्द हुआ। वह अब परम दृढ़ निश्चयके साथ सबमें, सब ओर सर्वथा भगवान्का अनुभव करने लगा। उसकी धार्मिकता, उसका ज्ञान और उसकी भगवद्भक्ति ऐसी पवित्र और महान् हो गयी कि किसी के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। वह राज्यहीन होकर भी आसक्ति छोड़कर निर्भयतापूर्वक शत्रुओंमें रहने लगा। इन्द्रने देवताओंसहित उसके वधका बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। तब सब देवताओंने मिलकर भगवान्की ज्ञानमयी स्तुति की। और उनसे शीघ्र ही वृत्रासुरको वध करनेका वरदान माँगा! भगवान्ने उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर मार्मिक शब्दोंमें उनसे कहा—

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित्॥
न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक्।
तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः॥
स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः॥

(श्रीमद्भा० ६। ९। ४८—५०)

'हे देवताओ! मेरे प्रसन्न होनेपर क्या नहीं मिल सकता? तथापि जिसकी बुद्धि मुझमें अनन्यरूपसे लग जाती है वह मेरे तत्त्वको जाननेवाला पुरुष मुझको छोड़कर और किसी भी वस्तुको नहीं चाहता। परन्तु विषयोंको ही यथार्थ तत्त्व समझनेवाला पुरुष अपने कल्याणको नहीं जानता, इसीलिये वह अकल्याण-कारी विषय ही माँगता है; उस विषयकी इच्छा करने-वाले मनुष्यको वह विषय दे देना भी एक प्रकारसे अज्ञानका ही कार्य होता है। जैसे सद्वैद्य रोगीके चाहनेपर भी उसे कुपथ्य नहीं देता, इसी प्रकार कल्याणको जाननेवाला विद्वान् भी अज्ञानी पुरुषको बन्धनमय भोग प्रदान करनेवाले कर्मका उपदेश नहीं करता।'

भगवान्ने इन शब्दोंमें जो कुछ कहा उससे यही आशय लेना चाहिये कि तुमलोगोंने स्तुति तो बहुत विद्वत्तापूर्ण की, परन्तु ऐसी स्तुति करके भी अन्तमें मुझसे माँगी सांसारिक विजय और भोगराशि ही। बड़े ही दुःखकी बात है कि तुमने मूर्खोंकी भाँति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने यथार्थ कल्याणकी ओर ध्यान नहीं दिया, मुझको पाकर भी मुझसे दुर्लभ भक्ति न माँगकर विषय-भोगोंकी ही इच्छा करते हो। अब भी मैं तुम्हें सचेत करता हूँ। यदि तुम मेरे तत्त्वको जानते हो तो अबोध शिशुकी भाँति मुझपर ही निर्भर हो जाओ, फिर जैसे स्नेहमयी माता माँगनेपर भी बच्चेको जहर न देकर, उसे कल्याणकारी वस्तु ही देती है, वैसे ही मैं भी तुम्हें भोगोंसे हटाकर अपनी ओर खींच लूँगा। तुम मुझे सद्वैद्य समझकर अपने-आपको मुझे समर्पण कर दो, किस औषधसे तुम्हारा रोग मिटेगा, यह मैं जानता हूँ और स्वयं तुम्हें वही दूँगा। वृत्रासुरको मारने न मारनेकी चिन्ता छोड़ दो, निर्वैर हो जाओ। देखो, वह वृत्र असुर होकर भी कैसा मेरी कृपापर निर्भर कर रहा है, वह इस समय हारा हुआ है तथापि मुझसे कुछ भी नहीं चाहता। तुम भी वैसा ही कर सकते हो।

देवता भगवान्‌के वचन सुनकर चुप रहे—भगवान्‌ने समझ लिया यह देवता विषयोंके ही अभिलाषी हैं। इन्हें अपने श्रेयकी अभी इच्छा नहीं है, उधर भक्त वृत्रासुरको भी असुरदेहसे छुड़ाकर शीघ्र परम धाममें ले जाना है, अतएव उसके देहत्यागका साधन कर देनेमें ही दोनों पक्षको सुभीता है। यह सोचकर भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने कहा—अच्छा, तुम यही चाहते हो तो यही सही, 'हे इन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम महान् तपस्वी दधीचि ऋषिके पास जाओ और विद्या, व्रत तथा तपके द्वारा दृढ़ हुए उनके शरीरको उनसे माँग लो। हे इन्द्र! वह 'अश्वशिरस्' नामसे प्रसिद्ध शुद्ध ब्रह्मको दधीचि ऋषि जानते हैं, जिसका उन्होंने अश्विनीकुमारोंको उपदेश दिया था, और जिससे अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हुए थे।* इसके सिवा वह दधीचि ऋषि मेरे स्वरूपभूत अभेद्य नारायणकवचको भी जानते हैं, उन्हींसे यह कवच विश्वरूपके पिता त्वष्टाको मिला था, त्वष्टाने विश्वरूपको दिया था और विश्वरूपसे उसको पाकर तुमने दानवोंपर विजय प्राप्त की थी। इस प्रकारकी विद्याओंसे दृढ़ उनके शरीरको तुम माँग लो, वह धर्मात्मा तुम्हें दे देंगे, और फिर उनकी अस्थियोंसे विश्वकर्माके द्वारा वज्र नामक शस्त्र बनवा लो। उस वज्रसे ही वृत्रासुरका वध होगा।'

इन्द्रने दधीचिके पास आकर सब बातें कह सुनायीं। दधीचिने शरीर त्याग दिया, तब उनकी अस्थियोंसे वज्र बना और उसे लेकर इन्द्रने देवताओंकी विशाल सेनासहित अपने शत्रु वृत्रासुरपर चढ़ाई कर दी। जुझाऊ बाजे बजने लगे और भयङ्कर गर्जना होने लगी। विशाल देवसेनासहित इन्द्रको अपने सामने देखकर भी वृत्रासुरकी मानसिक

* एक समय दधीचि ऋषिके पास अश्विनीकुमार ज्ञानका उपदेश लेने गये, उस समय ऋषि नित्यकर्म कर रहे थे, अतएव उन्होंने किसी दूसरे समय आनेको कहा। अश्विनीकुमारोंके चले जानेपर इन्द्रने ऋषिके पास जाकर कहा कि अश्विनीकुमार वैश्य हैं, उन्हें आप ब्रह्मविद्याका उपदेश न कीजियेगा। आप यदि करेंगे तो मैं आपका सिर उतार लूँगा। इन्द्र चला गया। फिर अश्विनीकुमार आये तब ऋषिने इन्द्रकी बात उन्हें सुनायी। अश्विनीकुमारोंने कहा, 'आप चिन्ता न करें। हम पहले ही आपका यह मस्तक उतारकर इसकी जगह आपके धड़पर अश्व (घोड़े) का सिर लगा देते हैं। उसी सिरसे आप हमें उपदेश कीजिये। इसके बाद जब इन्द्र आकर आपका वह सिर काट डालेंगे, तब हम आपके असली सिरको धड़से जोड़कर आपको जीवित कर देंगे।' यह सुनकर असत्यसे डरनेवाले ऋषिने ऐसा ही किया। तभीसे अश्वके सिरसे ब्रह्मविद्याका उपदेश होनेके कारण उस ब्रह्मविद्याका नाम भी 'अश्वशिरस्' पड़ गया। यहाँ श्रीभगवान् इन्द्रको उस घटनाकी याद दिलाकर कहते हैं कि तुमने जिनका सिर उतार लिया था, वे राग-द्वेष-हीन ऋषि तुम्हारे माँगनेपर तुम्हें अपना शरीर दे देंगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ा । भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—

अथ वृत्रस्य कौरव्य दृष्ट्वा शक्रमवस्थितम् ।
न सम्भ्रमो न भीः काचिदास्था वा समजायत ॥
(महाभारत शान्तिपर्व २८१ । १२)

हे युधिष्ठिर ! इन्द्रको अपने सामने देखकर वृत्रासुरको न सम्भ्रम हुआ, न भय लगा और न उसने युद्धके लिये कोई यत्न ही किया। वह निर्भय निश्चल वीर हँसता हुआ इन्द्रसे लड़ने लगा । इन्द्र घबड़ा गये । तब वशिष्ठने आकर इन्द्रको उत्साह दिलाया । भगवान् विष्णुने इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया और भगवान् शङ्करके तेजःस्वरूप ज्वरने वृत्रासुरके अन्दर प्रवेश करके उसे शिथिल कर दिया । इतनेपर भी भगवान्‌में अटल विश्वास रखनेवाले वृत्रासुरका बल इन्द्रसे बढ़कर ही रहा । उसने इन्द्रके वाहन ऐरावतपर एक ऐसी गदा मारी कि वह चक्कर खाकर खूनकी उलटी करता हुआ अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया । तब हँसकर वृत्रासुर कहने लगा—'इन्द्र ! तुम घबराओ नहीं, अपने इस अमोघ वज्रका मुझपर प्रहार करो, तुम्हारा यह वज्र कभी खाली नहीं जायगा । और मैं भगवान्‌को इस शरीरकी बलि देकर कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्‌के परमपदको प्राप्त करूँगा । हे इन्द्र ! तुम्हारा यह वज्र श्रीहरिके तेज और महान् तपस्वी दधीचि ऋषिके तपसे तीक्ष्ण हो रहा है, अतएव इस वज्रसे अपनी विजय होनेमें तुम सन्देह न करो, क्योंकि जिधर श्रीहरि होते हैं उधर ही विजय, श्री और समस्त गुण होते हैं । 'यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ।' पर यह याद रक्खो कि भगवान्‌का सच्चा कृपापात्र तो मैं ही हूँ । तुमको तो मुझे जीत लेनेपर सिर्फ भौतिक सुख और अनित्य राज्यसिंहासन ही मिलेगा परन्तु मैं तो अपने स्वामी भगवान्‌के आदेशानुसार उनके पवित्र चरणकमलोंमें मनको स्थित करके तुम्हारे इस वज्रसे विषय-भोगरूपी पाशसे कट जानेपर शरीरको त्यागकर मुनिजनदुर्लभ परम धामको प्राप्त करूँगा । हे इन्द्र ! जिन भक्तोंने अपनी बुद्धि केवल प्रियतम भगवान्‌में ही लगा दी है, उन अपने परायण भक्तोंको भगवान् स्वर्ग, पृथ्वीलोक और पातालकी सम्पत्तियाँ कभी नहीं देते, क्योंकि यह सम्पत्तियाँ राग-द्वेष, उद्वेग-आवेग, आधि-व्याधि, मद-अभिमान, व्यसन-विवाद और परिश्रम-क्लेश आदि दोषोंसे भरी होती हैं । भला, माता कभी अपने ऊपर निर्भर करनेवाले शिशुको अपने हाथसे जहर दे सकती है ? इसी प्रकार मेरे प्रभु श्रीनारायण भी अपने भक्तको विषय-सम्पत्तिरूप विष न देकर उसके धर्म, अर्थ और कामसम्बन्धी प्रयत्नका ही नाश कर देते हैं । जब भगवान् ऐसा कर दें तभी भगवान्‌की मुझपर कृपा हुई ऐसा अनुमान करना चाहिये । मुझपर भगवान्‌की यह कृपा हुई है, इसीसे तुम वज्रहस्ता मुझे मारनेके लिये मेरे सामने खड़े हो । परन्तु तुम तो अभी धर्म, अर्थ और कामके ही प्रयत्नमें लगे हो, इससे तुम इस कृपाके पात्र नहीं हो । इसीसे तुमको स्वर्गादि सम्पत्तियाँ ही प्राप्त होंगी । भगवान्‌के इस कृपा-प्रसादका रहस्य उनके अकिञ्चन भक्त ही जानते हैं, दूसरे नहीं जानते ।' इतना कहकर आप्तकाम शरणागत अनन्य भक्त असुरराज वृत्रासुर अपने स्वामी भक्तवत्सल भगवान्‌से कहने लगा—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्मायया त्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥
(श्रीमद्भा० ६। ११। २४—२७)

'हे हरे! मैं मरकर भी फिर, तुम्हारे चरण ही जिनका आश्रय हैं, उन तुम्हारे दासोंका भी दास बनूँ। हे प्राणनाथ! मेरा मन तुम्हारे गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी तुम्हारे गुण-कीर्त्तनमें लगी रहे, मेरा शरीर तुम्हारी सेवा करता रहे। हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं तुमको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्माका पद, सार्वभौम राज्य, पातालका आधिपत्य, योगसिद्धि—अधिक क्या पुनर्जन्मका नाशक सायुज्य मोक्ष भी नहीं चाहता। जिनके पाँख नहीं जमे हैं वे पक्षियोंके बच्चे जैसे क्षुधासे अथवा दूसरे पक्षियोंसे पीड़ित होनेपर माताके आनेकी व्याकुलतासे बाट देखते हैं, जैसे रस्सीसे बँधे हुए भूखे छोटे-छोटे बछड़े गौका स्तन्य दूध पीनेके लिये उतावले रहते हैं और जैसे पतिव्रता स्त्री दूर देशमें गये हुए पतिको देखनेके लिये व्यग्र रहती है, हे कमललोचन! वैसे ही मेरा मन तुम्हारे दर्शनके लिये व्याकुल है। मैं अपने कर्मोंके द्वारा संसार-चक्रमें भ्रमण कर रहा हूँ, तुम पुण्यकीर्त्ति हो, तुम्हारे भक्तोंके साथ मेरी मैत्री हो। तुम्हारी मायाके वश होकर मेरा यह चित्त पुत्र-स्त्री, शरीर और घर आदिमें आसक्त हो रहा है। हे नाथ! अब ऐसा करो कि जिसमें यह चित्त तुम्हारे सिवा और किसीमें आसक्त न हो।'

अहा! कैसी निष्काम कामना है। न मोक्षकी इच्छा है, न संसारचक्रमें घूमते रहनेकी चिन्ता है, बस, है तो यही कामना है कि आत्मा, मन, वाणी, शरीर सदा केवल तुम्हारी सेवामें लगे रहें। इससे बढ़कर भक्तकी और क्या चाह हो सकती है?

प्रार्थना करते-ही-करते वृत्रासुर पुलकित होकर कुछ कालके लिये ध्यानमग्न हो गया। त्रिभुवनसुन्दर भगवान्‌की छवि उसके सामने प्रकट हो गयी और वह मन-ही-मन उन्हें नमस्कार कर शीघ्र ही अपने समीप खींच लेनेकी अन्तर्प्रार्थना करने लगा। इन्द्र वृत्रासुरकी दशा देखकर चकित रह गया।

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी शायद इसी भावनासे कहा है—

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ु अनुदिन अधिकाई॥

× × ×

कुटिल करम लै जाहिं मोहिं जहँ जहँ अपनी बरियाई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये कमठ अंडकी नाईं॥

अस्तु! वृत्रासुर भयानक त्रिशूल उठाकर इन्द्रकी तरफ दौड़ा। इन्द्रने त्रिशूलसहित उसकी भुजाको काट डाला। इसपर वृत्रासुरने बड़े जोरसे अपना परिघ इन्द्रकी ठोडीपर मारा, परिघ लगते ही इन्द्रके हाथसे वज्र नीचे गिर पड़ा। इन्द्र लज्जित हो गया। वृत्रासुरने हँसकर कहा—'हे इन्द्र! यह समय खेद या लज्जा करनेका नहीं है। क्या हुआ जो वज्र गिर पड़ा, उसे उठाकर तुम मुझपर प्रहार करो! सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाले एक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रभु ही हैं, उनके अधीन पुरुषोंकी स्वेच्छासे सभी जगह विजय नहीं होती। सब लोग जालमें फँसे हुए पक्षियोंके सदृश विवश होकर जिन परमात्माके अधीन हुए अपनी-अपनी चेष्टा कर रहे हैं वह सबके सञ्चालक कालभगवान् ही जय-पराजयके एकमात्र कारण हैं। ओज, साहस, शक्ति, प्राण, अमृत और मृत्युके रूपमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित भगवान् काल ही सबके कारण हैं। लोग मोह-वश ही जड शरीरको कारण समझते हैं। हे इन्द्र ! कठपुतली और कलके बने हुए हरिणकी भाँति सब जीव भगवान्‌के वशमें हैं। उस ईश्वरके अनुग्रहके बिना पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्च सूक्ष्म महाभूत, इन्द्रियाँ और मन—ये सब भी विश्वकी सृष्टि करनेमें असमर्थ हैं। जो लोग इस रहस्यको नहीं जानते वही पराधीन शरीरको स्वाधीन मानते हैं। हे इन्द्र ! वस्तुतः भगवान् ही प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंको उपजाते हैं और प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंका विनाश करते हैं। हे इन्द्र ! जैसे इच्छा न होनेपर भी कालकी प्रेरणासे अकीर्ति, ऐश्वर्यकी हानि और दरिद्रता प्राप्त होती है ऐसे ही भाग्यवश आयु, श्री, कीर्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जब सब कुछ ईश्वरके अधीन है तब कीर्ति, अकीर्ति, जय-पराजय, सुख-दुःख और जीवन-मरणके लिये हर्ष-विषाद न रखकर द्वन्द्वमात्रमें समदृष्टि रहना चाहिये। सुख-दुःखादि सब गुणोंके कार्य हैं और सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं, अतएव जो इन तीनों गुणोंका अपनेको साक्षी समझता है वह शोक-हर्षादिमें कभी लिप्त नहीं होता।'

वृत्रासुरके निष्कपट दिव्य भाषणको सुनकर इन्द्र उसकी प्रशंसा करते हुए हँसकर कहने लगे—'हे दानवेन्द्र ! अहो ! तुम्हारी इस प्रकारकी बुद्धि देखकर यह जान पड़ता है कि तुम सिद्धावस्थाको प्राप्त हो गये हो। तुम सबके अन्दर एक ही आत्माको देखते हो, सबके सुहृद् हो और जगदीश्वरके परम भक्त हो। तुम आसुरी भावको त्यागकर महापुरुषत्वको प्राप्त हो गये, इससे जान पड़ता है कि भगवान् विष्णुकी सबको मोहित करने-वाली मायासे तुम पार हो चुके हो। अहो ! यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि तुमने स्वभावसे ही रजोगुणी होकर भी बुद्धिको इस प्रकार दृढ़ताके साथ शुद्ध सत्त्वमय भगवान् वासुदेवमें लगा रक्खा है। इसलिये स्वर्गादि सुखोंमें तुम्हारा अनासक्त होना उचित ही है। क्योंकि जो पुरुष मुक्तिके अधीश्वर भगवान् श्रीहरिका भक्त है वह सदा ही आनन्दपूर्ण अमृतके सागरमें विहार करता है, वह गढ़ैयामें भरे हुए थोड़े गँदले जलके समान स्वर्गादि भोगोंमें क्यों आसक्त होगा ?'

इस प्रकार बातचीत होनेके बाद शीघ्र युद्ध समाप्त होनेकी इच्छासे दोनों भीषण युद्ध करने लगे। वृत्रासुर यों ही विशालकाय था। अब उसने मुँह फैलाकर, जैसे बड़ा भारी अजगर महाकाय हाथीको निगल जाता है इसी प्रकार ऐरावतसहित इन्द्रको निगल गया। परन्तु निगल लेनेपर भी अभेद्य नारायण-कवचके सुरक्षित होनेके कारण वृत्रासुरके पेटमें इन्द्रकी मृत्यु नहीं हुई और वह अपने तीक्ष्णधार वज्रसे उसके पेटको चीरकर बाहर निकल आये तथा उसके पर्वत-जैसे विशाल मस्तकको काटकर धड़से अलग कर दिया। सब लोगोंके देखते-देखते ही वृत्रके शरीरसे एक दिव्य ज्योति निकली और वह भगवान्‌के स्वरूपमें जाकर लीन हो गयी ! वज्रसे विदीर्ण किये जानेके समय उस महायोगी महासुर वृत्रका चित्त भगवान्‌में अनन्यभावसे लगा था, इससे वह अपार तेजवाले विष्णुभगवान्‌के परमधामको चला गया।

दारितश्च स वज्रेण महायोगी महासुरः।
जगाम परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः॥
(महाभारत शान्तिपर्व २८३। ६०)

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

[मणि १०]

याज्ञवल्क्य—हे शाकल्य ! जैसे तू बिना कारण द्वेष करता है, इस प्रकार तेरे बड़े बूढ़े किसीसे द्वेष नहीं करते। अन्य ब्राह्मण, ब्रह्मचारी तथा क्षत्रिय आदि भी तेरे समान बिना कारण किसीसे द्वेष नहीं करते। उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर तू बिना कारण मुझसे क्यों द्वेष करता है ? मेरे साथ द्वेष करनेसे कहीं तेरा मृत्यु न हो जाय ! मैं तेरा मरण नहीं चाहता। जैसे मेरे माता-पिताओंको, पुत्रोंको, स्त्रीको तथा अन्य बान्धवोंको मेरे शरीरमें प्रेम है, इसी प्रकार तेरे माता-पिता, स्त्री, पुत्र तथा बान्धवोंका तेरे शरीरमें प्रेम है, इसलिये तेरे मरणसे तेरे माता-पिता आदि सम्बन्धियोंको दुःख न हो, ऐसा मैं चाहता हूँ। यह वेदविद्या मैंने सूर्यभगवान्‌से प्राप्त की है, इसलिये मेरी विद्याका तेज दुःसह है, तू मेरी विद्याकी अवज्ञा मत कर। यदि तू अहङ्कारसे मेरी विद्याकी अवज्ञा करेगा तो क्षणमात्रमें मेरी विद्या तुझे भस्म कर देगी। जब सूर्यभगवान्‌से विद्या अध्ययन करके मैं पृथिवीपर आने लगा तो सूर्यभगवान्‌ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा था कि 'हे याज्ञवल्क्य ! मेरी दी हुई विद्याको जो पुरुष नहीं मानेगा मैं उसे उसी क्षण भस्म कर दूँगा।'

जब सूर्यभगवान्‌ने इस प्रकार कहा तो मैं उनसे प्रार्थना करने लगा कि 'हे भगवन् ! मेरी विद्यासे किसीका नाश न हो, ऐसा वरदान मुझे दीजिये।' तब सूर्यभगवान्‌ने कहा कि 'हे याज्ञवल्क्य ! जो पुरुष दुराचारसे तेरे सामने बीस प्रश्न करेगा, उस दुरात्माको तेरी जीभमें बैठकर मैं सूर्यभगवान् शाप दूँगा, उस शापसे वह पुरुष शीघ्र ही भस्म हो जायगा।'

जब इस प्रकारके वचन सूर्यभगवान्‌ने मुझसे कहे, तो मुझे भय हुआ, भयके कारण मैंने और कुछ प्रार्थना नहीं की, किसी पापरूप प्रतिबन्धके कारण तू मेरे गुरु सूर्यभगवान्‌को नहीं जानता, इससे ऐसा समझमें आता है कि कालभगवान्‌ने तुझे मोहित कर दिया है, सूर्यभगवान्‌के वचन स्मरण करके मुझे तेरी बहुत चिन्ता होती है, क्योंकि मुझसे द्वेष करनेसे तेरी बहुत ही बुरी गति होगी। यद्यपि तू सर्वदा मुझसे द्वेष करता रहा है किन्तु मैंने तुझसे कभी द्वेष नहीं किया है, क्योंकि जो आनन्दस्वरूप आत्मा मेरे शरीरमें स्थित है, वही आनन्दस्वरूप आत्मा तेरे और अन्य स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके शरीरमें स्थित है, इसलिये मैं आनन्दस्वरूप सबमें स्थित हूँ, अतएव मुझ आनन्दस्वरूप आत्मासे जगत् भिन्न नहीं है, मुझ आनन्दस्वरूप आत्मासे सब जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय होते हैं, इसलिये मुझे किसीसे द्वेष नहीं है। सुख-दुःख, हर्ष-शोक तथा भूख-प्यास इत्यादि द्वन्द्व-धर्म मेरे स्वरूपमें तीनों कालमें भी नहीं है। जैसे घटरूप उपाधिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयसे घटाकाशकी उत्पत्ति, स्थिति और लय नहीं होता, इसी प्रकार शरीररूप उपाधिकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश होनेपर भी मुझ अद्वितीय आत्माकी उत्पत्ति, स्थिति और लय नहीं होता। जो क्रियावाला होता है, वही किसीको मारता है। मैं आनन्दस्वरूप निष्क्रिय हूँ, इसलिये मैं किसी भी प्राणीको नहीं मारता। मैं आनन्दस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा निराकार हूँ, इसलिये कोई भी प्राणी मुझे नहीं मारता। जैसे कृमि आदि क्षुद्र जन्तुओंका आत्मस्वरूप ज्ञान अज्ञानसे ढका रहता है, इसी प्रकार तेरा भी आत्मस्वरूप ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ है, इसलिये सर्वात्मदर्शी मुझ आत्मज्ञानी याज्ञवल्क्यको तू पापीके समान देखता है। ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुषके साथ द्वेष करना, अग्निसे द्वेष करना है। द्वेषरूप अग्निसे तुझे भस्म हुआ देखकर, ये सब लोग तेरा शोक करेंगे। इसलिये ऐसा न हो तो अच्छा! तेरे मरणसे तेरी स्त्री विधवापनको प्राप्त होकर अत्यन्त दीन होकर रुदन न करे! तेरे मरणसे तेरे पुत्रादि सब बान्धव शोकरूपी समुद्रमें न पड़ें! तेरे मरणसे तेरे शत्रु आनन्दको न प्राप्त हों, और तू प्रेतशरीरको प्राप्त होकर क्षुधा-पिपासासे पीड़ित होकर तथा दुःखसे व्याकुल होकर यमराजकी पुरी न देखे तो अच्छा! मरणके अनन्तर तेरे पुत्रोंका दिया हुआ बलिदान तथा तिलोदक काकके समान तू भक्षण न करे, तेरे कोमल शरीरको अग्नि तथा श्वान न खायँ तो अच्छा! सब शिष्योंको छोड़कर तू अकेला ही परलोकको न जाय तो अच्छा! जैसे मल्लात नामके वृक्षका फल जीवका नाश करता है, इसी प्रकार तेरे चित्तरूप भूमिमें दीर्घकालसे उत्पन्न हुआ ब्रह्मज्ञानीका द्वेषरूपी वृक्ष तुझको मृत्युरूप फलकी प्राप्ति न करे, तो अच्छा! मरणके पीछे तेरी अस्थियोंको चोररूप चाण्डाल स्पर्श न करें तो अच्छा! जैसे पतंगे अग्निको प्राप्त होकर भस्म हो जाते हैं, इसी प्रकार सूर्यभगवान् जिसकी जीभमें हैं, ऐसे मुझ अग्निरूपमें तू भस्म न हो, तो अच्छा! जैसे अन्नको पकानेवाली भट्टीमें प्रज्वलित अग्निको अपने हाथसे कोई स्पर्श नहीं करता, किन्तु दीर्घ काष्ठरूपी दण्डवाले लोहेकी छड़से अग्निका सब स्पर्श करते हैं, इसी प्रकार सभारूपी यह भट्टी है, मैं याज्ञवल्क्य काष्ठके समान हूँ, मेरे गुरु सूर्यभगवान् अग्निरूप हैं, तुझे विवाद करनेमें प्रेरणा करनेवाले ब्राह्मण अन्नको भूननेवाले पुरुषके समान हैं और तू छड़के समान है। ये सब ब्राह्मण बुद्धिमान् हैं, इसलिये अपनी रक्षा करनेके लिये तुझ मूढ़बुद्धिको छड़के समान सूर्यरूप अग्निमें प्रवेश कराते हैं। भाव यह है कि जो ब्राह्मण तुझे विवाद करनेकी प्रेरणा करते हैं, वे ब्राह्मण भी तेरे मरणमें प्रसन्न हैं, किन्तु कालभगवान्से मोहित हुआ तू अपने मरणको नहीं जानता, यह मुझे बहुत ही आश्चर्य है।

जब याज्ञवल्क्यने इस प्रकार शाकल्यसे कहा, तो कालके वश हुआ शाकल्य उन वचनोंको विपरीत मानकर उनसे और भी अधिक द्वेष करने लगा। जिस रोगीका मरण समीप होता है, वह हितकारी वैद्यके साथ जैसे द्वेष करता है। जैसे राज्यसे भ्रष्ट होनेवाला राजा हितकारी मन्त्रीके साथ द्वेष करता है, जैसे भाग्यहीन पुरुष राजाके साथ द्वेष करता है, और जैसे पापी पुरुष सत्यका उपदेश करनेवाले गुरुसे द्वेष करता है, इसी प्रकार शाकल्य याज्ञवल्क्यके साथ द्वेष करता हुआ, मनमें विचारने लगा—

शाकल्य—(मनमें) जैसे कोई पुरुष मूढ बालकको भय दिखलाता है, इसी प्रकार यह मन्दबुद्धि याज्ञवल्क्य मुझे भय दिखाता है। सर्वज्ञता और निर्भयताको यह मन्दबुद्धि नहीं जानता। कृषि करनेवाले मूढपुरुषोंके ग्राममें अथवा पहाड़ी ग्राममें रहनेवाले बालक, स्त्रियाँ तथा काष्ठादि पदार्थोंके बीचमें बैठकर जैसे निर्लज्ज और निःशङ्क होकर मिथ्या भाषण करते हैं, इसी प्रकार यह याज्ञवल्क्य सब विद्वानोंकी सभामें निःशङ्क होकर मिथ्या भाषण करता है। क्योंकि यदि याज्ञवल्क्यका गुरु सूर्यभगवान् मुझ द्वेष करनेवाले शाकल्यको भस्म करनेमें समर्थ होता तो इससे पूर्व ही मुझ द्वेष करनेवालेको क्यों नहीं भस्म कर देता। क्योंकि सूर्य, चन्द्रमा तथा इन्द्र इत्यादि शब्दोंके नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवरूप हैं, अथवा सूर्य, चन्द्र तथा इन्द्र इत्यादि शब्दोंके अर्थ देवरूप हैं। शब्द तथा अर्थके सिवा देवोंका कोई स्वरूप नहीं है, यदि सूर्य शब्दको सूर्यदेवरूप मानें तो सूर्य शब्द आकाशका गुण है, इस शब्दमें जड़ता सब लोगोंके अनुभवसिद्ध है। यदि सूर्य शब्दके अर्थको सूर्यदेव मानें तो भी तेजोमय मण्डल सूर्य शब्दका अर्थ है। इस तेजोमय मण्डलमें भी जडता प्रसिद्ध है, यदि सूर्य शब्दसे और तेजोमय मण्डलसे भिन्न कोई चैतन्यरूप सूर्य शब्दका अर्थ मानें, तो सूर्यदेव पापकर्म बिना किसीको भस्म नहीं करते, जीवके पापकर्मकी अपेक्षा लेकर ही उसको भस्म करते हैं। यह पापकर्म मुझमें है नहीं, इसलिये सूर्य मुझको मार नहीं सकते। और 'सूर्यसे मैं विद्या पढ़ा हूँ' यह भी याज्ञवल्क्यका वचन मिथ्या है, क्योंकि याज्ञवल्क्य भूमिपर रहता है और सूर्य अत्यन्त दूर आकाशमें रहते हैं। इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध सम्भव नहीं है।

इस प्रकार विपरीत चिन्तन करता हुआ शाकल्य पहलेसे भी अधिक द्वेष करता हुआ क्रोध-युक्त होकर याज्ञवल्क्यसे इस प्रकार कहने लगा—

'हे याज्ञवल्क्य! कुरु तथा पाञ्चालादि देशोंमें रहनेवाले ब्राह्मणोंको तूने पराजित किया है, और सब ब्राह्मणोंकी गौओंको और सुवर्णको तू ले गया है। इस पापकर्मसे तुझे निर्जन वनमें अनेक बार राक्षसके शरीरकी प्राप्ति होगी। यदि ब्रह्मविद्याके अभिमानसे तूने इन सब महात्मा ब्राह्मणोंको पराजित किया है, तो उस ब्रह्मविद्याको मेरे सम्मुख कह।'

जब शाकल्यने इस प्रकारके वचन कहे तो याज्ञवल्क्य अपना ब्रह्मवेत्तापना दिखानेके लिये शाकल्यसे कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे शाकल्य! देवों तथा देवोंके कारणसहित सब दिशाओंको मैं जानता हूँ।

शाकल्य—हे याज्ञवल्क्य! पूर्वादि दिशाओंके देव कौन हैं, उन देवोंका कारण क्या है? और उन देवोंके देवोंका कारण क्या है?

याज्ञवल्क्य—हे शाकल्य! पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्व, इन पाँच दिशाओंके क्रमसे आदित्य, यम, वरुण, सोम तथा अग्नि ये पाँच देव हैं। ये देव मुझ आनन्दस्वरूप आत्मासे भिन्न नहीं हैं, किन्तु आनन्दस्वरूप मैं आत्मा ही आदित्यादि देवरूपसे स्थित हूँ। यह आदित्य चक्षुरूप कारणमें रहते हैं, यम देवता श्रोत्र-इन्द्रियरूप कारणमें रहते हैं, वरुण देवता रसन-इन्द्रियरूप कारणमें रहते हैं, सोमदेव मनरूप कारणमें रहते हैं और अग्निदेव वाक्-इन्द्रियरूप कारणमें रहते हैं। भाव यह है कि हिरण्यगर्भकी उपासनासे हिरण्यगर्भ-रूपको प्राप्त होनेवाले पुरुषकी चक्षु आदि इन्द्रिय अध्यात्मरूप हैं। ये चक्षु आदि अध्यात्म सूर्य आदि अधिदैवके परिणामको प्राप्त होती हैं, इसलिये चक्षु आदि इन्द्रियाँ सूर्य आदि देवोंकी कारणरूप हैं। रूपादि विषय अपना प्रकाश करनेकी चक्षु आदि इन्द्रियोंका आरम्भ करते हैं इसलिये चक्षु आदि इन्द्रियाँ रूपादि विषयोंमें रहती हैं अर्थात् चक्षु-इन्द्रिय शुक्ल, नील तथा पीत आदि रूपोंमें रहती है, और श्रोत्र-इन्द्रियसे वेदका अर्थ ग्रहण किया जाता है। श्रोत्र-इन्द्रियसे ग्रहण करनेयोग्य कर्मकाण्डरूप वेदके दो अर्थ हैं—एक मन, वाणी तथा शरीरको क्लेश देनेवाला यज्ञ, दान तथा व्रतादि अर्थ है, और दूसरा श्रद्धारूप अर्थ है। इनमें-से श्रोत्र-इन्द्रिय यज्ञदानादि कर्ममें रहता है, और यज्ञ, दान तथा व्रतादिरूप कर्म श्रद्धामें रहता है। इस-लिये अश्रद्धासे किये हुए यज्ञ, दान तथा व्रतादि कर्म फल नहीं देते किन्तु श्रद्धासे किये हुए ही फल देते हैं। और जलरूप रसन-इन्द्रिय रेतरूप कारणमें रहती है, दोषसे रहित मन सत्यरूप अर्थमें रहता है, इसी प्रकार वाक्-इन्द्रिय भी सत्यरूप अर्थमें रहती है, क्योंकि 'यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् पुरुष मनसे जिस अर्थका ध्यान करता है, उसी अर्थका वाणीसे कथन करता है। इस मन्त्रमें मन तथा वाणीका एक ही विषय कहा है। जैसे सब जलकी उत्पत्ति तथा स्थितिका कारणरूप समुद्र है, इसी प्रकार सूर्यादि देव, नेत्रादि इन्द्रिय तथा रूपादि विषय, इन सबकी उत्पत्ति और स्थितिका कारण हृदय है। यहाँ हृदय शब्दसे मायाविशिष्ट अन्तर्यामी परमात्माका ग्रहण है। जैसे दीवारमें प्रथम रेखामात्र देवादि मूर्तियोंके चित्र होते हैं और उन रेखारूपी चित्रोंमें श्वेत, पीत, नील तथा रक्त आदि वर्ण होते हैं। इन श्वेतादि वर्णोंमें देवोंके मुखमें दूध होता है, नेत्रमें अञ्जन होता है, मस्तकपर मुकुट होता है और हाथमें धनुष-बाणादि होते हैं। इस प्रकार चित्रादि पदार्थ एक दूसरेके साथ आश्रित होकर सब लोगोंको प्रतीत होते हैं परन्तु विचारकर देखा जाय तो सब चित्रादि पदार्थ एक दीवारके आश्रित रहते हैं, इसी प्रकार पूर्वादि दिशा, अग्नि आदि देव, नेत्रादि इन्द्रियाँ तथा रूपादि विषय इत्यादि सब जगत् साक्षात् अथवा परम्परासे एक परमात्मारूप हृदयमें रहता है। उसमेंसे वृत्तिसहित अन्तःकरण साक्षात् हृदयमें रहता है और दूसरा जगत् अन्तःकरणद्वारा परम्परासम्बन्धसे हृदयमें रहता है। जैसे जब चित्रके आधाररूप दीवारको मृत्तिकासे लीपते हैं, तब वे चित्र लयभावको प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानरूपी मृत्तिकाके लेपनसे यह जगत्‌रूपी चित्र लयभावको प्राप्त हो जाता है। जैसे नीचे तथा ऊँचेपनेसे रहित समान दीवारमें कोई चित्र ऊँचा और कोई नीचा प्रतीत होता है, वस्तुतः ऊँचा-नीचापना यथार्थ नहीं है, कल्पित है, इसी प्रकार सर्वत्र समान परमात्मारूपी हृदयमें इन्द्रादि देव उत्कृष्ट और वृक्षादि निकृष्ट प्रतीत होते हैं किन्तु यह उत्कृष्टता तथा निकृष्टता परमात्मारूप हृदयमें वस्तुतः नहीं है, कल्पित है। जिस प्रकार चित्रकार नील, पीतादि अनेक प्रकारके वर्णोंसे दीवारमें चित्र रचता है, इसी प्रकार अनेक प्रकारकी वासनाओंसे बुद्धिरूप चित्रकार 'अहं' 'मम' अभिमानरूप वर्णोंसे परमात्मारूप हृदयमें जगत्‌रूपी चित्र रचता है। इसलिये मायाविशिष्ट परमात्मा तथा बुद्धि ये दोनों जगत्‌के कारणरूप हैं। जैसे दीवारके चित्रोंके ऊपर जब बारम्बार मृत्तिकाका लेप किया जाता है तब वे चित्र लेशमात्र दीवारपर रहनेपर भी बाह्य स्पष्ट प्रतीत नहीं होते, इसी प्रकार प्रारब्ध कर्मकी समाप्तिपर्यन्त परमात्मारूप हृदयमें आभासमात्र रहनेपर भी जगत्‌रूपी चित्र ब्रह्माकार वृत्तिरूपी मृत्तिकाके लेपसे समाधिकालमें प्रतीत नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जैसे बारम्बार मृत्तिकाके लेपसे चित्रकी निःशेष निवृत्ति नहीं होती, किन्तु चित्रका अदर्शनरूप लय हो जाता है, दीवारकी निवृत्ति होनेसे ही चित्रकी निःशेष निवृत्ति होती है, इसी प्रकार ज्ञानसे अज्ञान निवृत्त होनेपर भी जबतक प्रारब्ध कर्म निवृत्त नहीं होता तबतक निःशेष प्रपञ्चकी निवृत्ति नहीं होती किन्तु जीवन्मुक्त पुरुषको विचारकालमें प्रपञ्चका अदर्शन हो जाता है। प्रारब्ध कर्म निवृत्त होनेपर ही निःशेषसे प्रपञ्चकी निवृत्ति होती है इसलिये जीवन्मुक्तको आभासमात्रसे जगत्‌का भान होता है। जैसे मायावी ऐन्द्रजालिक पुरुषरूप कारणसे आकाशमें अनेक प्रकारकी सेना प्रतीत होती है, इसी प्रकार बुद्धिरूपी कारणसे परमात्मारूप हृदयमें अनेक प्रकारका प्रपञ्च प्रतीत होता है। जैसे मायावी पुरुषरूप कारणका नाश होनेपर सुषुप्ति-अवस्था प्राप्त होनेपर अथवा किसी दूसरे कार्यमें आसक्त होनेपर आकाशमें रही हुई सेना प्रतीत नहीं होती, इसी प्रकार किसी रोगादि कारणसे बुद्धिके नाश होनेपर, सुषुप्ति प्राप्त होनेपर अथवा आत्मामें एकाग्र होनेपर परमात्मारूप हृदयमें रहा हुआ प्रपञ्चरूप चित्र प्रतीत नहीं होता। जैसे मायावीके आकाशमें उत्पन्न किये हुए अनेक प्रकारके पदार्थ मायावी पुरुषसे भिन्न नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, वे मायावी पुरुषके स्वरूप ही हैं, इसी प्रकार परमात्मारूप हृदयमें बुद्धिद्वारा कल्पित यह जगत् बुद्धिसे भिन्न नहीं है किन्तु बुद्धिस्वरूप ही है। इस अभिप्रायसे वेदान्तशास्त्रमें दृष्टि-सृष्टिवादका निरूपण किया है। जैसे आकाशमें रहा हुआ अन्धकार अन्धकार-से प्रतीत होता है, सूर्यादि प्रकाशसे अन्धकार प्रतीत नहीं होता, इसी प्रकार परमात्मा-रूप हृदयमें रही हुई बुद्धि बुद्धिसे ही प्रतीत होती है। जैसे सूर्यादि प्रकाशसे अन्धकार निवृत्त हो जानेसे विशुद्ध आकाशमें दोषरहित नेत्रवाले पुरुषको अन्धकार दिखायी नहीं देता, इसी प्रकार आत्मज्ञानसे अज्ञान निवृत्त होनेपर विशुद्ध आत्मामें कारणसहित बुद्धि विद्वान्‌को दिखायी नहीं देती। इसलिये आत्मासे भिन्न बुद्धि आदि जड़ पदार्थ प्रमाणसे सिद्ध नहीं होते, किन्तु भ्रान्तिसे सिद्ध हैं।

शाकल्य—यदि बुद्धिमें प्रमाणजन्य यथार्थ ज्ञानका विषय नहीं मानेंगे तो प्रमाणजन्य यथार्थका जो विषय होगा, वह शशशृंगके समान असत्य हो जायगा और ऐसा होनेसे बुद्धि भी असत्य हो जायगी। जो पदार्थ असत्य होता है, वह पदार्थ किसी कार्यके करनेमें समर्थ नहीं होता, इसलिये असत्य बुद्धिसे किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होनी चाहिये।

याज्ञवल्क्य—यद्यपि शशशृंग तथा वन्ध्यापुत्र असत्य हैं, तो भी वे शशशृंग तथा वन्ध्यापुत्र, इस प्रकारके शब्दसे स्वविषयक विकल्परूपी ज्ञान उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार कार्यकारणसहित बुद्धि यद्यपि असत्य है, तो भी वह बुद्धि अनेक प्रकारके भ्रान्तिरूप ज्ञानको उत्पन्न करती है। इसलिये शशशृंगके समान असत्य बुद्धिमें भी अनेक प्रकारके व्यवहारकी कारणता सम्भव है।

शाकल्य—बुद्धि असत्य होनेपर भी बुद्धिका कारणरूप अज्ञान सत्य क्यों नहीं है? यदि अज्ञानको असत्य माना जायगा, तो असत्य वस्तु किसी अनर्थकी प्राप्ति नहीं कर सकती। अनर्थकी प्राप्ति न होनेसे असत्य ज्ञानमें जन्ममरणादिरूप अनर्थकी कारणता नहीं होनी चाहिये।

याज्ञवल्क्य—जैसे बुद्धि असत्य है, वैसे ही बुद्धि-का कारण अज्ञान भी असत्य है। और असत्य वस्तुमें भी अनर्थकी कारणता लोकमें देखनेमें आती है। जैसे मक्षिका नहीं भक्षण होनेसे भी जिसको इस प्रकारकी भ्रान्ति हो जाती है कि मैंने मक्षिका भक्षण कर ली है, उसको वमन हो जाता है। अथवा जैसे सर्पके नहीं काटनेपर भी जिसको यह भ्रान्ति हो जाती है कि मुझे सर्पने डस लिया है और उस सर्पका विष मेरे शरीरमें चढ़ गया है, वह पुरुष मर जाता है इसलिये जैसे असत्य मक्षिकाका भक्षण वमनरूप अर्थका कारण है, तथा असत्य सर्प मृत्युरूप अनर्थका कारण है इसी प्रकार अत्यन्त असत्य अज्ञान भी भ्रान्त पुरुषके जन्म-मरणादि अनर्थका कारण सम्भव है। जैसे एक ही स्वप्नद्रष्टा पुरुष असत्य अज्ञानसे हस्ती, अश्व आदि अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार एक ही परमात्मा असत्य अज्ञानके कारण प्रपञ्चरूप धारण करता है। समान विद्वान् पुरुषकी दृष्टिसे यद्यपि अज्ञान तीनों कालमें असत्य है तो भी तेरे समान अविवेकी पुरुषको अज्ञान वज्रके पर्वतके समान दुर्भेद्य है। इसी कारणसे तेरे सदृश मूढ़, अविवेकी पुरुष अत्यन्त समीप हृदयमें स्थित आत्माको नहीं जानते। जैसे कि नेत्रोंसे रहित अन्धा पुरुष हाथसे स्पर्श करनेपर भी किसीको नहीं पहचान सकता, इसी प्रकार अज्ञानी पुरुष हृदयमें स्थित आत्माको जान नहीं सकते। इसलिये हे शाकल्य! सर्व-प्रपञ्चरूप चित्रका आश्रय परमात्मारूप हृदय है। यह तेरे प्रश्नका उत्तर है। इस परमात्मारूप हृदयसे बढ़कर अन्य कुछ नहीं है, इसलिये यदि तुझे अपना प्राण प्यारा है, तो आगे कुछ मत पूछ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब इस प्रकार याज्ञवल्क्यने कहा तो भी मूढ़-बुद्धि शाकल्य प्रश्न करनेसे निवृत्त नहीं हुआ, किन्तु कालसे मोहित हुआ मेंढक जैसे कृष्ण सर्पको बुलानेके लिये बारम्बार टर्र-टर्र करता है, इसी प्रकार पापकर्मसे प्रेरणा किया हुआ शाकल्य भी कालरूपी सर्पको बुलानेवाली प्रश्नरूपी वाणी बोलने लगा। ऐसा देखकर याज्ञवल्क्य करुणासे अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे शाकल्य! बड़े खेदकी बात है कि अब तेरा मरण-काल समीप आ पहुँचा है क्योंकि जिनके रक्तवर्णवाले नेत्र हैं, ऋक्, यजुष् तथा साम जिनका स्वरूप है, ऐसे सूर्यभगवान् अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेको अब मण्डलपरसे उतरकर मेरी जिह्वापर आवेंगे और मेरी जिह्वा परवश होकर तुझको शाप देगी, उस शापसे तू क्षणमात्रमें भस्म हो जायगा। इसलिये हे शाकल्य! मैं चाहता हूँ कि तेरी किसी प्रकार मृत्यु न हो तो अच्छा है।

याज्ञवल्क्य करुणायुक्त होकर इस प्रकार कहने लगे। उनके कथनको मिथ्या मानकर मृत्युके समीप प्राप्त हुआ शाकल्य फिर प्रश्न करने लगा—

शाकल्य—हे याज्ञवल्क्य! सर्वप्रपञ्चरूपी चित्रका आधाररूप हृदय किसके आश्रित रहता है?

जब इस प्रकारका प्रश्न शाकल्यने किया तो याज्ञवल्क्य 'हे अहिल्लक!' इस प्रकारका सम्बोधन देकर शाकल्यसे कहने लगे।

अहिल्लक शब्दका अर्थ पाँच प्रकारसे होता है। जैसे (१) दिनमें जो लयभावको प्राप्त हो और रात्रिमें प्रादुर्भावको प्राप्त हो, उसको अहिल्लक कहते हैं। ऐसा प्रेतशरीर होता है, यह शाकल्य भी मरनेके बाद प्रेतभावको प्राप्त होगा। (२) दिवसके समान प्रकाशवाले अर्थमें जो संशयरूपी लयको प्राप्त हो, उसको अहिल्लक कहते हैं, याज्ञवल्क्यके कहे स्पष्ट अर्थमें शाकल्यको संशय है, इसलिये अहिल्लक कहा है। (३) सूक्ष्म अर्थको निश्चय करनेवाले हृदयसे जो रहित हो, उसको अहिल्लक कहते हैं। स्पष्ट किये हुए अर्थमें कोई बुद्धिमान् फिर प्रश्न नहीं करता, किन्तु शाकल्य स्पष्ट अर्थमें भी बारम्बार प्रश्न करता है। इससे सिद्ध होता है कि सूक्ष्म अर्थके निश्चय करनेवाले हृदयसे शाकल्य रहित है। यदि शाकल्यकी बुद्धि सूक्ष्म अर्थको ग्रहण करती होती, तो यह बारम्बार प्रश्न न करता। (४) याज्ञवल्क्यके कहे हुए प्रपञ्चरूप चित्रके आधाररूप परमात्मारूप हृदयको शाकल्य नहीं जानता किन्तु मरणके अनन्तर पृथिवीपर रहे हुए जिस समय हृदयको श्वान आदि भक्षण करते हैं, इस मांसमय हृदयको ही शाकल्य जानता है। (५) दिवसके करनेवाले सूर्यभगवान् इस सभामें शाकल्यका नाश करेंगे इसलिये याज्ञवल्क्यने शाकल्यको अहिल्लक कहा। पीछे उत्तर देने लगे—

याज्ञवल्क्य—प्रपञ्चरूप चित्रके धारण करनेवाले परमात्माको ही मैं हृदयरूप कहता हूँ किन्तु तू उसको जानता नहीं है, प्रसिद्ध मांसके टुकड़ेको तू हृदय जानता है इसलिये तेरे अभिप्रायके अनुसार ही मैं तेरे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। यह हृदय मुझमें है यानी मेरे सूक्ष्म शरीरका आश्रय किये हुए है क्योंकि सूक्ष्म शरीर बिना स्थूल शरीर नहीं रहता और स्थूल शरीर बिना सूक्ष्म शरीर भी नहीं रहता। जब सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरसे पृथक् होता है, तब मांसमय हृदयसहित स्थूल शरीरको श्वानादि भक्षण करते हैं और काक आदि पक्षी टुकड़े-टुकड़े करके ले जाते हैं। इस अभिप्रायको लेकर सूक्ष्म शरीरका आधार हृदयसहित स्थूल शरीर कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्यने प्रथम शाकल्यको हृदय शब्दसे परमात्माका निरूपण किया किन्तु वह न जानकर जैसे शाकल्यने पूर्वमें हृदयका आधार पूछा था, इसी प्रकार फिर भी आधार पूछने लगा—

प्रश्न–हे याज्ञवल्क्य ! परस्पर आश्रित जो स्थूल-सूक्ष्म शरीर हैं, वे स्थूल-सूक्ष्म शरीर किसके आश्रित रहते हैं ?

उत्तर–स्थूल-सूक्ष्म शरीर प्राणके आश्रित रहते हैं।

प्र०–प्राण किसके आश्रित रहता है ?
उ०–प्राण अपानके आश्रित रहता है।
प्र०–अपान किसके आश्रित रहता है ?
उ०–अपान व्यानके आश्रित रहता है।
प्र०–व्यान किसके आश्रित रहता है ?
उ०–व्यान उदानके आश्रित रहता है।
प्र०–उदान किसके आश्रित रहता है ?
उ०–उदान समानके आश्रित रहता है।

देवी–हे वत्स ! शाकल्यने ये जो प्रश्न किये हैं, वे याज्ञवल्क्यके अभिप्रायको न जानकर किये हैं, क्योंकि सब प्राणियोंकी बुद्धिमें साक्षीरूपसे सर्वदा अपरोक्षरूपसे परमात्मारूप हृदय स्थित है। इस अभिप्रायको लेकर 'हृदय' शब्दसे याज्ञवल्क्यने परमात्मा कहा किन्तु शाकल्यने हृदय शब्दसे अन्तःकरणके निवासस्थानका तथा मांसमय हृदयका ग्रहण किया। यदि शाकल्यने 'हृदय' शब्दसे परमात्मा जाना होता तो ऐसा प्रश्न न करता कि हृदय किसके आश्रय रहता है क्योंकि 'स भूमा कुत्र प्रतिष्ठितः स्वे महिम्नि' अर्थात् व्यापक परमात्मा किसमें रहता है ? इस प्रकारकी शङ्का हो तो उसका उत्तर यह है कि वह अपनी महिमामें रहता है। इस श्रुतिमें परमात्माका कोई दूसरा आश्रय नहीं कहा है। ऐसा शाकल्यने ग्रहण नहीं किया, किन्तु मांसमय हृदयका ग्रहण किया। हृदय मुझमें रहता है, इस उत्तरके वचनमें याज्ञवल्क्यने 'मुझमें' इस अस्मद् शब्दसे अहं प्रतीतिमें भासनेवाले आत्माका ही कथन किया। मन्दबुद्धि शाकल्यने अस्मद् शब्दसे सूक्ष्म शरीरका ग्रहण किया। फिर याज्ञवल्क्यने प्राण, अपान, व्यान, उदान इन चार शब्दोंकी लक्षणावृत्तिसे प्राणादि प्रवर्तकरूप मायाविशिष्ट परमात्माका ही निरूपण किया किन्तु शाकल्यने प्राणादि शब्दोंसे वाच्यार्थभूत वायुका ही ग्रहण किया, इसलिये उसने प्राण किसमें रहता है? अपान किसमें रहता है? इत्यादि प्रश्न किये। अन्तमें सब भूतोंका आधारभूत समान याज्ञवल्क्यने कहा, इस समानको भी शाकल्यने वायुरूप समझा किन्तु याज्ञवल्क्यने समान शब्दसे वायुका निरूपण नहीं किया था, सबमें आत्मारूप परमात्मा देवका याज्ञवल्क्यने समान शब्दसे निरूपण किया था। यह आत्मा आनन्दस्वरूप है। 'नेति-नेति' यह श्रुति दो नकारोंसे स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चका निषेध करके परमात्माका बोधन करती है, अथवा तो अज्ञानकालमें विद्यमान भावाभावरूप दो प्रकारके जगत्का निषेध करके 'नेति-नेति' यह श्रुति परमात्माका बोधन करती है। यह परमात्मा सजातीय-विजातीय तथा स्वगतभेदसे रहित है। यह परमात्मा निर्गुणरूप होनेसे बुद्धि आदिसे जाना नहीं जा सकता, जैसे वस्त्र बहुत कालमें जीर्ण भावको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह आनन्द-स्वरूप आत्मा कालसे जीर्णभावको नहीं प्राप्त होता, इसलिये आनन्दस्वरूप आत्मा अशीर्य है। जैसे जलादि पदार्थोंके साथ आकाशका सम्बन्ध नहीं है, इसलिये आकाश असङ्ग है। इसी प्रकार बुद्धि आदिके साथ आत्माका वस्तुतः सम्बन्ध नहीं है, इसलिये आनन्दस्वरूप आत्मा भी असङ्ग है। यह आनन्दस्वरूप आत्मा अबद्ध है, इसलिये दुःखके सम्बन्धरूप व्यथाको प्राप्त नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आत्मा विनाशसे रहित है, इसलिये हिंसाको प्राप्त नहीं होता।

इस प्रकार जब शाकल्यने याज्ञवल्क्यसे बहुत-से प्रश्न किये तो सूर्यभगवान् अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेको याज्ञवल्क्यकी जिह्वामें आ बैठे। प्रथम शाकल्यने देवोंकी संख्या पूछी थी। याज्ञवल्क्यने उसका इस प्रकार समाधान किया था।

याज्ञवल्क्य—विस्तारसे देव अनन्त है किन्तु संक्षेपसे एक प्राणदेव है। इस प्राणदेवकी आठ विभक्तियाँ हैं। जैसे कि शारीर पुरुष, काममय पुरुष, आदित्य पुरुष, श्रौत पुरुष, छायामय पुरुष, प्रतिबिम्ब पुरुष, जलस्थ पुरुष, तथा पुत्र पुरुष। इनमेंसे पृथिवीरूप स्थूल शरीरमें मातासे उत्पन्न हुए (१) त्वक्, मांस तथा रुधिर ये तीन कोश शारीर नामके पुरुषके आश्रयरूप हैं। (२) स्त्री-के भोगकी इच्छारूप काम काममय नामके पुरुष-का आश्रयरूप है। (३) शुक्ल, नील, पीतादि अनेक प्रकारके रूप आदित्य नामके पुरुषके आश्रयरूप हैं। (४) प्रतिध्वनिरूप शब्दमें विशेष करके अभिव्यक्तिवाला श्रौत नामका पुरुष है, इस पुरुषका आश्रयरूप आकाश है। (५) अन्धकार-रूप तम छायामय नामके पुरुषका आश्रयरूप है। (६) प्रतिबिम्बको ग्रहण करनेयोग्य दर्पणादि स्वच्छ पदार्थोंमें स्थित प्रतिबिम्ब नामका पुरुष है। इस पुरुषका आश्रयरूप भास्कर है। (७) जल जलमें रहे हुए पुरुषका आश्रयरूप है और (८) उपस्थ इन्द्रिय पुत्र नामके पुरुषका आश्रयरूप है। यानी शारीरका चक्षु अग्नि, काममय पुरुषका चक्षु हृदय, आदित्य पुरुषका चक्षु चक्षु, श्रोत्र-पुरुषका चक्षु श्रोत्र, छायामय पुरुषका चक्षु हृदय, प्रतिबिम्ब पुरुषका चक्षु चक्षु, जलस्थ पुरुषका चक्षु हृदय और पुत्र पुरुषका चक्षु हृदय, इस प्रकार आठ पुरुषोंके आठ चक्षु हैं। अग्नि, हृदय, चक्षु, श्रोत्र, हृदय, चक्षु, हृदय तथा हृदय ये आठ शारीरादि आठ पुरुषोंके क्रमसे चक्षुरूप हैं। यहाँ हृदय शब्दसे बुद्धिका ग्रहण है, तथा अन्नादिके परिणामरूप अमृत शारीर पुरुषका कारणरूप है। स्त्री काममय पुरुषका कारणरूप है। चक्षु इन्द्रिय आदित्य पुरुषका कारणरूप है। दिशा श्रोत्र पुरुषका कारणरूप है। मृत्यु छायामय पुरुषका कारणरूप है। प्राण प्रतिबिम्ब पुरुषका कारण-रूप है, वरुण जीवस्थ पुरुषका कारणरूप है, प्रजापति पुत्र नामके पुरुषका कारण है। इस प्रकार आठ पुरुष, पुरुषके आठ आश्रय, पुरुषके आठ चक्षु तथा पुरुषके आठ कारण, इस अष्टकमें कारणरूपसे प्रवेश करके परमात्मा उनको अपना-अपना व्यवहार करनेमें समर्थ करता है। जैसे तन्तु-रूप कारण पटरूप कार्यमें प्रवेश करके शीतकी निवृत्ति आदि कार्य करता है, इसी प्रकार परमात्मा सर्व कार्य-प्रपञ्चमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके व्यवहार सिद्ध करता है। जैसे तन्तुरूप कारण पट-रूप कार्यको कार्यपनेसे रहित करके केवल कारण-रूपसे रहा हुआ होता है, इसी प्रकार यह परमात्मा प्रपञ्चके संहारकालमें पूर्वादि दिशाओंसे लेकर समानपर्यन्त सब कार्यका उपसंहार करके कार्य-भावसे रहित एक अद्वितीयरूपसे स्थित होता है। भाव यह है कि पूर्वादि दिशाओंमें रहे हुए पदार्थोंसहित पूर्वादि दिशाओंको सूर्य आदि देवोंमें, सूर्यादि देवोंको चक्षु आदि इन्द्रियोंमें, चक्षु आदि इन्द्रियोंको रूपादि विषयोंमें, रूपादि विषयों-को हृदयमें, हृदयको स्थूल-सूक्ष्म शरीरमें, स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंको प्राणमें, प्राणको अपानमें, अपान-को व्यानमें, व्यानको उदानमें और उदानको समान-में उपसंहार करता है। इस प्रकार परमात्मा सृष्टिकालमें जगत्को उत्पन्न करता है, प्रलय-कालमें सर्व जगत्का संहार करके बुद्धि आदि उपाधियोंसे तथा सुख-दुःखादि धर्मोंसे रहित होकर कार्य-कारण-भावसे रहित शुद्धस्वरूपमें स्थित होता है। दृष्टान्तरूपसे जैसे घट-मठादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाधियोंमें रहा हुआ आकाश आन्तर तथा बाह्य-भावको प्राप्त होता है और जब आकाश घटादि उपाधियोंका त्याग करता है तब आन्तर-बाह्यपनेसे रहित होकर वह आकाश अपने पूर्ण स्वभावमें स्थित होता है, इसी प्रकार शारीरादि उपाधियोंके सम्बन्धसे परमात्मामें आन्तर-बाह्यपना प्रतीत होता है। जब परमात्मा शारीरादि उपाधियोंका त्याग करता है तब आन्तर-बाह्यपनेसे रहित होकर अपने पूर्ण स्वभावमें स्थित होता है। जैसे मधुरादि रस केवल रसन-इन्द्रियसे जाने जा सकते हैं, रसन-इन्द्रियके सिवा अन्य किसी इन्द्रियसे जाननेमें नहीं आते, इसी प्रकार परमात्मा केवल उपनिषद्-के प्रमाणसे जाना जा सकता है, उपनिषद्-प्रमाण-के सिवा अन्य किसी प्रमाणसे जाननेमें नहीं आता, ऐसे परमात्मादेवका स्वरूप मैं तुझसे पूछता हूँ। यदि तू परमात्माका स्वरूप जानता हो, तो मुझसे कह। तेरे बहुत-से प्रश्नोंका उत्तर मैंने दिया है। अब तू मेरे एक प्रश्नका उत्तर दे। यदि तू मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं देगा, तो तीर्थसे रहित तथा मनुष्योंके समूहवाले जनकपुररूप अशुभ देशमें तथा दक्षिणायनके कृष्णपक्षकी अमावस्याकी रात्रि-रूप अशुभ कालमें तू शाकल्य मृत्युको प्राप्त होगा, मुझ ब्रह्मवेत्ता पुरुषके साथ द्वेष करनेवाले तुझ शाकल्यके मरणके पीछे तेरी अस्थियाँ भी घर न जायँगी किन्तु चोररूपी चाण्डाल धनके लोभसे अर्धमार्गमेंसे उन अस्थियोंको ले जायँगे। जगत्-की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय करनेवाले सूर्यभगवान् अत्यन्त क्रोधित होकर याज्ञवल्क्यकी जिह्वामें स्थित होकर इस प्रकारके वचन शाकल्यसे कहने लगे।

शाकल्य आत्मज्ञानसे रहित था, प्रश्नका कुछ भी उत्तर न दे सका, पश्चात् सूर्यभगवान्के शाप-से शाकल्यका मन तथा वाक् आदि इन्द्रियाँ शरीरमेंसे बाहर निकलने लगीं। पश्चात् अशुभ देश तथा कालमें शाकल्यका मस्तक शीघ्र ही भूमि-पर गिर पड़ा। जैसे देवोंको जीतकर स्वर्गमें निवास करनेवाले नमुचिका मस्तक वज्र लगनेसे भूमिके ऊपर गिरा था, उसी प्रकार शाकल्यका मस्तक भूमिपर गिर पड़ा। जब इस प्रकार शाकल्यकी मृत्यु हुई तो सर्वत्र हाहाकार मच गया। समस्त राजमण्डली शोकको प्राप्त हो गयी। शाकल्यके शिष्य तथा बान्धव सब रुदन करने लगे। शाकल्यको भूमिपर पड़ा हुआ देखकर सभामें आये हुए ब्राह्मण, बालक तथा स्त्री समस्त सभासमाज शाकल्यको धिक्कार देने लगे। (क्रमशः)

हे भगवन् !

कैधौं भूल गये आप अपनी पुरानी चाल,
कैधौं जान-बूझकर सुरति बिसारी है।
कैधौं घबराय गये पापियोंकी भीर लखि,
कैधौं त्रिपुरारि कैसी लगा लई तारी है॥
कैधौं पूँजी गमा बैठे भक्तनके तारिबेमें,
कैधौं बिपताकी नग्न नृत्य-कला प्यारी है।
कैधौं पाप-घट भरिबेमें अभी और शेष,
आरत-गिरा न याते सुनते हमारी है॥

—घनूसिंह 'वीरेन्द्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्-गाथा

अग्निद्वारा ब्रह्मोपदेश

कमलका पुत्र उपकोसल सत्यकाम जाबालके पास जाकर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर रहने लगा। उसने पूरे बारह वर्षतक गुरुके अग्नियोंकी सेवा की। गुरुने अपने दूसरे शिष्य ब्रह्मचारियोंका समावर्तन कर (वेदाध्ययन पूर्ण करवाकर) उन्हें अपने घर जानेकी आज्ञा दी, परन्तु उपकोसलको आज्ञा नहीं दी।

उपकोसलके मनमें कुछ विषाद हो गया, यह देखकर गुरुपत्नीके मनमें दया उपजी। उसने स्वामीसे कहा, 'इस ब्रह्मचारीने ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन किया है और श्रद्धापूर्वक विद्याध्ययन किया है और आपके अग्नियोंकी भलीभाँति सेवा की है, अतएव इसका समावर्तन करके इसकी कामना पूर्ण कीजिये। नहीं तो ये अग्नियाँ आपको उलाहना देंगे।' सत्यकामने बात सुनी-अनसुनी कर दी और वह बिना ही कुछ कहे यात्राके लिये घरसे चले गये।

उपकोसलको इससे बहुत दुःख हुआ। वह मानसिक व्याधियोंसे दुखी हो गया और अन्न छोड़कर अनशन व्रत करने लगा। दयामयी गुरुपत्नीने कहा—'हे ब्रह्मचारी! तू भोजन कर! किस लिये भोजन नहीं करता है?' उसने कहा—'मेरे मनमें अनेकों कामनाएँ हैं, मैं अनेक प्रकारके मानसिक दुःखोंसे ग्रस्त हूँ, अतः मैं कुछ भी नहीं खा सकूँगा।' गुरुपत्नी चुप हो गयीं।

अग्नियोंने विचार किया कि 'इस तपस्वी ब्रह्मचारीने मन लगाकर हमारी बहुत ही सेवा की है, अतएव इसकी कामनाको हमलोग पूर्ण करें।' यह विचारकर अग्नियोंने उसे अलग-अलग ब्रह्मविद्याका यथोचित उपदेश किया! उपदेशके अनन्तर सब अग्नियोंने मिलकर उससे कहा—'हे सौम्य उपकोसल! हमने तुझको अग्नि तथा आत्माका यथार्थ उपदेश दिया है, अब तेरा आचार्य आकर तुझे इस विद्याके फलका उपदेश देंगे।'

कुछ दिनों बाद गुरु यात्रासे लौट आये, उन्होंने शिष्यको पुकारा 'उपकोसल!' उसने कहा 'भगवन्!'

उपकोसलका मुख ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रहा था, उसकी समस्त इन्द्रियाँ सात्त्विक प्रकाशको प्राप्त थीं, यह देखकर आचार्यने हर्षमें भरकर पूछा—'बेटा उपकोसल! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानियोंकी तरह चमक रहा है, बता, तुझको किसने ब्रह्मका उपदेश किया?' किसी मनुष्यसे उपकोसलको उपदेश नहीं मिला था इससे उसने स्पष्ट न कहकर साङ्केतिक भाषामें कहा—'भगवन्! आपके बिना मुझे कौन उपदेश करता? यह अग्नियाँ पहले मानों दूसरे-से थे, अब आपको देखकर मानों डर-से रहे हैं।' संकेतका अर्थ समझकर आचार्यने कहा—'वत्स! अग्नियोंने तुझे क्या उपदेश किया।' उपकोसलने अग्नियोंसे जो कुछ प्राप्त किया था, सब कह सुनाया। सुनकर गुरु बोले—'वत्स! इन अग्नियोंने तो तुझे लोकसम्बन्धी ही उपदेश किया है। मैं तुझको उस ब्रह्मका उपदेश करूँगा, जिसका साक्षात् हो जानेपर जैसे कमलके पत्तेपर जल नहीं टिकता, वैसे ही उसपर पापका स्पर्श नहीं हो सकता। शिष्यने कहा—'भगवन्! आप उपदेश करें।'

इसके बाद आचार्यने उपकोसलको ब्रह्मका रहस्यमय सम्पूर्ण उपदेश किया। और उसका समावर्तन करके घर जानेकी आज्ञा दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

कुसंगका त्याग

दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः ॥ ४३ ॥

४३-दुःसङ्गका सर्वथा ही त्याग करना चाहिये ।

सत्सङ्गका महत्त्व बतलाकर अब देवर्षि दुःसङ्गका निषेध करते हैं । जिस प्रकार सत्सङ्गसे भगवत्कथा, भगवच्चर्चा, भगवन्नाम, भगवत्प्रीति, सदाचार, शास्त्र, विवेक, वैराग्य, सत् अभ्यास, सेवा, सरलता, नम्रता, क्षमा, तितिक्षा, शौच, दया, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निरभिमानिता और शान्ति आदिके प्रति प्रवृत्ति होती है और मनुष्य सदाचारपरायण परमभक्त बन सकता है । इसी प्रकार इसके विपरीत दुःसङ्गसे विषयवार्ता, जगच्चर्चा, लोकनिन्दा, भोगप्रीति, दुराचार, उच्छृङ्खलता, अविवेक, विषयलोलुपता, दुष्ट अभ्यास, मान, दम्भ, घमण्ड, क्रोध, असहिष्णुता, अपवित्रता, निर्दयता, हिंसा, असत्य, इन्द्रियलम्पटता, अभिमान और अशान्ति आदिके प्रति प्रवृत्ति होकर मनुष्य पापपरायण और अत्यन्त विषयासक्त हो जाता है । दुःसङ्गसे आसुरी सम्पत्तिके सभी दुर्गुण और दुराचारोंका विकास और विस्तार होता है । दुःसङ्गसे मनुष्यके समस्त सद्गुणोंका विनाश होकर उसका सर्वनाश हो जाता है । परम सुशीला, स्नेहमयी, प्रेमप्रतिमा कैकेयी देवी मन्थराकी कुसङ्गतिके कारण ही महाराज दशरथके, भरतके, अपने और तमाम अयोध्यावासियोंके परम शोकका कारण बनी थीं और इसीसे उन्हें अन्तमें दुःखप्रद वैधव्यका सहन करना और प्राणप्रिय भरतका अप्रीति-भाजन होकर रहना पड़ा था । शकुनिकी कुसङ्गति ही महाभारतके भयानक संहारमें एक प्रधान कारण हुई । श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेव माता देवहूतिजीसे कहते हैं—

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥
सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम् ॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥
(३ । ३१ । ३३-३५)

'जो मनुष्य शिश्नोदरपरायण (स्त्री और धनमें ही आसक्त) नीच पुरुषोंका सङ्ग करके उनके अनुसार बर्ताव करने लगता है वह उन्हींकी भाँति अन्धकारमय नरकोंमें जाता है । क्योंकि दुष्टसङ्गसे सत्य, पवित्रता, दया, मननशीलता, बुद्धि, लज्जा, श्री, कीर्त्ति, क्षमा, मनका वशमें रहना, इन्द्रियोंका वशमें रहना और ऐश्वर्य आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं । अतएव उन अशान्तचित्त, मूर्ख, स्त्रियोंके हाथके खिलौने बने हुए, शोकग्रस्त, असाधु दुष्ट मनुष्योंका संग कभी नहीं करना चाहिये ।'

अतएव दुःसङ्गका त्याग तो सभीके लिये आवश्यक है, पर भगवत्प्रेमकी इच्छा करनेवालोंको तो दुःसङ्गका त्याग बड़ी ही सावधानीसे करना चाहिये । भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे कहा है—

बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट संग जनि देहि बिधाता ॥

हे विभीषण ! नरकमें रहना अच्छा है परन्तु विधाता कभी दुष्टका सङ्ग न दे । दुष्ट-सङ्गसे केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुराचारी मनुष्योंका ही सङ्ग नहीं समझना चाहिये। इन्द्रियोंका कोई भी विषय, जो हमारे मनमें असत् विचार तथा विषयोंकी लालसा उत्पन्न करे और भगवत्प्राप्तिके मार्गसे हमारे चित्तको चलायमान कर दे, दुःसङ्ग हो सकता है। हमें न कोई ऐसी चेतन वस्तु या जड दृश्य देखना चाहिये, न ऐसी बात सुननी चाहिये, न ऐसी चर्चा करनी चाहिये, न वैसे स्थानमें जाना चाहिये, न वैसी पुस्तक या पत्रिका पढ़नी चाहिये, न वैसा चित्र देखना चाहिये, न वैसी वस्तु खानी, सूँघनी या स्पर्श करनी चाहिये और न वैसा विचार ही करना चाहिये, जिससे हमारे चित्तमें विषयचिन्तनकी प्रबलता हो जाय। याद रखना चाहिये कि मनुष्यमें अच्छे और बुरे भावोंकी उत्पत्ति और वृद्धिमें कम-से-कम ये दस बातें प्रधान कारण होती हैं—स्थान, अन्न, जल, परिवार, अड़ोस-पड़ोस, दृश्य, साहित्य, आलोचना, आजीविकाका कार्य और उपासना। यदि ये सब सात्त्विक होते हैं तो इनके सेवनसे सात्त्विकता बढ़ती है। इन्हींका सेवन सत्सङ्ग है। और यदि ये राजस या तामस हैं तो इनका सेवन दुःसङ्ग है और उससे अज्ञानकी वृद्धि होकर तमाम दोषोंका विकास हो जाता है। अतएव दुःसङ्गका सब प्रकारसे सर्वथा त्याग करना चाहिये।

कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात् ॥ ४४ ॥

४४—क्योंकि वह (दुःसङ्ग) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाशका कारण है।

भगवत्-सम्बन्धी तत्त्वरहस्य तथा लीलाकथाओंको छोड़कर इन्द्रियोंको भोगके समय तृप्ति देनेवाले लौकिक विषयोंका चिन्तन ही सर्वनाशकी जड़ है। चित्त निरन्तर या अधिक समयतक जिस विषयका चिन्तन करता है, उसीमें उसकी आसक्ति होती है। दुःसङ्गसे—सांसारिक विषयों, और विषयी पुरुषोंके शरीर, वाणी और मनद्वारा किये हुए संगसे स्वाभाविक ही विषयासक्ति बढ़ती है। आसक्तिसे कामना होती है, यह कामना ही समस्त पापोंका मूल है; कामनाकी तृप्तिसे अधिक प्राप्तिके लिये लोभ उत्पन्न होता है और अतृप्तिसे वही कामना क्रोधके रूपमें परिणत हो जाती है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने राग या आसक्तिरूपी रजोगुणसे उत्पन्न कामको ही पापोंके होनेमें प्रधान कारण बतलाया है। अर्जुनने पूछा कि 'भगवन्! मनुष्य न चाहता हुआ भी जबर्दस्ती पकड़ा-सा जाकर किसकी प्रेरणासे पाप करता है?' इसके उत्तरमें भगवान् स्पष्ट कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न यह काम ही क्रोध है, इस महापापी कामका पेट कभी नहीं भरता, इस विषयमें तुम इस कामको ही (पाप करनेवाला) अपना शत्रु मानो।' यद्यपि कामसे लोभ और क्रोध दोनों ही उत्पन्न होते हैं परन्तु संसारमें मनमानी थोड़ी ही कामनाओंकी पूर्ति होती है, अधिकांशमें तो विफलता ही प्राप्त होती है। विफलतामें क्रोध उत्पन्न होता है; क्रोधकी उत्पत्ति हो जानेपर मनुष्य विवेकविचारशून्य हो जाता है। उसे हिताहित कुछ भी नहीं सूझता, वह पिशाचकी भाँति केवल विनाशका ही प्रयत्न करता है। इस मोहमें उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है, और स्मृति भ्रष्ट होनेपर बुद्धि मारी जाती है। बुद्धिके नष्ट होनेपर वह इसलोक और परलोकके कल्याणपथसे गिर जाता है—उसका सर्वनाश हो जाता है। ठीक यही बात श्रीभगवान्‌ने भी गीताके अध्याय २ श्लोक ६२-६३ में कही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

'विषयोंके चिन्तनसे मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति होती है, आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, (कामकी तृप्तिमें बाधा होनेसे) उस कामसे ही क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे सम्मोह होता है, सम्मोहसे स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसे (पुरुषका) सर्वनाश हो जाता है।'

सर्वनाशके कारणभूत विषयोंका चिन्तन होनेमें विषय और विषयी पुरुषोंका संग ही प्रधान है, यही दुःसंग है, अतएव इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

तरङ्गायिता अपीमे सङ्गात्समुद्रायन्ति॥ ४५॥

४५–ये (कामक्रोधादि) पहले तरङ्गकी तरह (क्षुद्र आकारमें) आकर भी (दुःसंगसे विशाल) समुद्रका आकार धारण कर लेते हैं।

जबतक दोषोंका समूल विनाश न हो जाय, तबतक तनिक-से दोषसे भी डरते ही रहना चाहिये; जैसे ईंधनमें दबी हुई जरा-सी चिनगारी हवाके जोरसे विशाल अग्निका रूप धारण कर लेती है, इसी प्रकार दबा हुआ जरा-सा भी दोष कुसंग पाते ही पनपकर विशाल रूप धारण कर लेता है। पहले-पहले जब मनमें काम-क्रोधका विकार उत्पन्न होता है तो उसकी एक लहर-सी ही आती है, परन्तु कुसंग पाते ही वह लहर समुद्र बन जाती है, फिर चारों ओरसे सारे हृदयपर उसीका अधिकार हो जाता है। सद्विचारके प्रवेशकी भी गुंजाइश नहीं रह जाती; उससे सर्वनाश ही होता है। अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि हमारे अन्दर सद्गुण अधिक हैं और दोष कम है, इससे कुसंगसे हमारी क्या हानि होगी! वरं सदा-सर्वदा अत्यन्त सावधानीके साथ सब प्रकारसे कुसंगका त्याग ही करना चाहिये।

मायासे कौन तरता है?

कस्तरति कस्तरति मायां? यः सङ्गाँस्त्यजति, यो महानुभावं सेवते, निर्ममो भवति॥४६॥

४६–(प्रश्न) कौन तरता है? (दुस्तर) मायासे कौन तरता है? (उत्तर) जो सब संगोंका परित्याग करता है, जो महानुभावोंकी सेवा करता है और जो ममतारहित होता है।

नदीमें तैरनेवाले मनुष्यके लिये सबसे अधिक आवश्यक काम होता है—हाथों और पैरोंसे नदीके जलको फेंकते जाना, निरन्तर जलको काटते रहना, तभी नया तैराक नदीके पार जा सकता है। जलको फेंकना छोड़ दे तो तत्काल डूब जाय। इसी प्रकार इस महाभयावनी दुस्तर मायानदीको तैरकर जो उस पार जाना चाहते हैं, उन्हें अहंकार और विषयासक्तिरूपी जलको बराबर अलग फेंकते रहना चाहिये। अहङ्कार और आसक्तिरूपी जलसे ही यह मायानदी भरी है; जो अहङ्कार और आसक्तिको दूर नहीं फेंक सकता, इनका त्याग नहीं करना चाहता वह इस मायानदीके जलमें रमकर अतल तलमें डूब जायगा। इसलिये संगत्याग अवश्य करना चाहिये, परन्तु हाथ-पैर मारते-मारते भी उनके थक जानेकी अथवा श्वास टूट जानेकी सम्भावना है, अतएव बीच-बीचमें ऐसा अवलम्बन चाहिये जहाँ कुछ देर ठहरकर वह विश्राम ले सके। इस माया-नदीमें भी केवल संगत्यागसे काम नहीं चलता, इसमें भी विश्रामस्थल चाहिये, वे विश्रामस्थल सन्तोंके सुधामय वचन ही हैं, जिनके सहारेसे नवीन बल प्राप्त होता है और उस बलसे मनुष्य मायासमुद्रसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार पहुँच जा सकता है। वस्तुतः सन्तसेवी साधक-को अपने बलसे तैरना पड़ता ही नहीं, वह तो सन्त महानुभावोंकी कृपारूपी सुदृढ़ जहाजपर सवार होकर अनायास ही तर जाता है। इसीलिये देवर्षि महानुभावों-की सेवा करनेको कहते हैं।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥
(११।२६।३२)

'जलमें डूबते हुए लोगोंके लिये दृढ़ नौकाके समान इस भयङ्कर संसारसागरमें गोते खानेवालोंके लिये ब्रह्मवेत्ता शान्तचित्त सन्तजन ही परम अवलम्बन हैं।'

महानुभाव सन्तोंकी सेवासे पाप-ताप और मोह अनायास ही दूर हो जाते हैं।

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा॥
(११।२६।३१)

'जिस प्रकार भगवान् अग्निदेवका आश्रय लेनेपर शीत, भय और अन्धकार तीनोंका नाश हो जाता है, इसी प्रकार सन्त पुरुषोंके सेवनसे पापरूपी शीत, जन्म-मृत्युरूपी भय और अज्ञानरूपी अन्धकार ये कोई भी नहीं रहते।'

निर्मल हरिभक्तिकी प्राप्तिके लिये ही तो महापुरुषों-की चरणसेवा ही प्रधान है। श्रीमद्भागवतमें भक्तराज प्रह्लाद और ज्ञानिप्रवर अवधूतशिरोमणि जडभरतके वचन हैं—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥
(७।५।३२)

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा।
न च्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥
(५।१२।१२)

प्रह्लाद कहते हैं कि 'हे पिता! जिन भगवान् श्रीहरिके चरणोंका स्पर्श समस्त अनर्थोंकी निवृत्ति करनेवाला है, उन श्रीहरिचरणोंमें तबतक प्रेम नहीं होता, जबतक कि अकिञ्चन (सब कुछ भगवान्‌को अर्पण कर चुके हुए) साधु महान् पुरुषोंकी चरण-धूलिसे मस्तकका अभिषेक न किया जाय।'

महात्मा जडभरत राजा रहूगणसे कहते हैं—

'हे रहूगण! यह भगवत्तत्त्वका ज्ञान और भगवत्प्रेम तप, यज्ञ, दान, गृहस्थाश्रमद्वारा परोपकार, वेदाध्ययन और जल, अग्नि एवं सूर्यकी उपासनासे नहीं मिलता। यह तो महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिमें स्नान करनेसे अर्थात् उनकी चरणसेवासे ही मिलता है।'

परन्तु इतना स्मरण रहे कि महापुरुषोंकी सेवाका अर्थ केवल उनके समीप रहना या करना ही उनके शरीरकी सेवा नहीं है। उसकी भी यथायोग्य आवश्यकता और सार्थकता है, परन्तु जबतक हम उनकी आज्ञानुसार क्रिया नहीं करते, उनके इशारेपर नहीं चलते एवं उनकी रुचिके अनुसार अपना जीवन निर्माण नहीं करते तबतक सेवामें त्रुटि ही समझनी चाहिये। अतएव इस बातको समझकर सर्वदा और सर्वथा महानुभावोंकी सेवा करनी चाहिये।

परन्तु इसमें ममता एक बड़ी बाधा है। ममताके बन्धनसे सन्तसेवा ही नहीं हो सकती। घर मेरा, शरीर मेरा, परिवार मेरा, धन मेरा, सम्बन्धी मेरे, मकान मेरा, जमीन मेरी—इस प्रकार मेरे-मेरेके अनगिनत बन्धनोंमें जीव बँधा है, इन ममताके बन्धनोंको तोड़ना होगा। अवश्य ही सत्संग और सन्तोंकी सेवा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपी दिव्य मणिदीपकके प्रकाशसे ममतारूपी अन्धकार-मयी रात्रिका अन्धकार बहुत कुछ कम हो जाता है, तथापि पहले सन्त-संगमें जानेके लिये भी तो ममताको कम करनेकी आवश्यकता है। अतएव संसारके इन ममत्वके विषयोंको दुःखरूप, अनित्य और अज्ञानमूलक समझकर इनके प्रति मेरे भावको सर्वथा त्याग करना चाहिये। यह समझना चाहिये कि संसारमें मेरा कुछ भी नहीं है। जिस शरीरको मनुष्य मेरा ही नहीं वरं 'मैं' कहता है वह भी नष्ट हो जाता है, तब फिर अन्य वस्तुओंमें मेरापन समझना तो मूर्खता ही है। मायासे तरनेके लिये इस मेरेपनका नाश जरूर करना चाहिये। जो ऐसा करता है वह मायासे तर जाता है।

यो विविक्तस्थानं सेवते, यो लोकबन्धमुन्मूलयति, निस्त्रैगुण्यो भवति, योगक्षेमं त्यजति ॥४७॥

४७–जो निर्जन स्थानमें निवास करता है, जो लौकिक बन्धनोंको तोड़ डालता है, जो तीनों गुणोंसे परे हो जाता है और जो योग तथा क्षेमका परित्याग कर देता है।

मायासे तरनेके लिये पूर्वसूत्रमें तीन उपाय बतलाये गये हैं, अब इस सूत्रमें चार उपाय बतलाये जाते हैं और अगले दो सूत्रोंमें क्रमशः पाँच उपाय या लक्षण और बतलायेंगे।

ममताका त्याग दिन-रात ममत्वकी वस्तुओंकी बीचमें रहनेसे नहीं होता, संगसे तो ममता उलटी बढ़ती है, अतएव साधकको एकान्त सेवन करना चाहिये। श्रीभगवान्‌ने भी गीतामें—

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
(१३।१०)

—'एकान्त स्थानमें रहने और मनुष्योंकी भीड़भाड़में प्रीति न रखनेकी आज्ञा दी है।' मनुष्य कितना भी साधन करनेकी चेष्टा करे परन्तु जबतक वह विषय-वासनासे जकड़े हुए जनसमुदायमें और मोहक विषयोंसे भरे हुए स्थानोंमें रहेगा तबतक भगवान्‌में उसका मन लगना बहुत कठिन है, इसीलिये साधकको एकान्त देशमें रहकर भक्तिका साधन करना बतलाया गया है। साथ ही भगवान्‌के साथ प्रेमका बन्धन बाँधनेके लिये लोकबन्धनको तोड़ना आवश्यक है। एकान्तदेशसेवनसे लोकसंग छूट जानेके कारण लोकबन्धन स्वयमेव ही ढीला हो जायगा। इसके अतिरिक्त भगवान्‌के रहस्य, प्रभाव और तत्त्वके साथ मृत्युमय और दुःखालय इस लोककी तुलना करके बारम्बार विचार करनेपर लोकबन्धन आप ही टूट जाता है।

इसके बाद भक्तिके साधकको सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे परे होना पड़ेगा। संसारका प्रकाश इन गुणोंसे ही होता है। गुणोंका ही कार्य यह संसार है, अतएव इस संसारके पदार्थोंमें अनासक्ति या विरक्ति होना ही निस्त्रैगुण्य या असंसारी होना है। जो मनुष्य विषयासक्त और विषयकामी है, वही गुणबद्ध है, और जो भगवदासक्त और भगवत्प्रेमी है वही निस्त्रैगुण्य है। जो निस्त्रैगुण्य होगा वह योग-क्षेमकी चिन्ता क्यों करने लगा? संसारमें तो उसका कोई प्रलोभन ही नहीं है, क्योंकि वह निस्त्रैगुण्य है, और मोक्षकी सिद्धिसे भी वह निःस्पृह है, क्योंकि वह भगवान्‌का प्रेमी है। अप्राप्तकी प्राप्तिको 'योग' और प्राप्तके संरक्षणको 'क्षेम' कहते हैं। इसमें केवल भोजनाच्छादनका भाव ही नहीं है, पारमार्थिक अर्थमें तो योगका अर्थ है, भगवद्प्राप्ति या भगवत्-प्राप्तिका सफल साधन, और क्षेमका अर्थ है भगवत्-प्राप्तिके साधनका संरक्षण। प्रेमी भगवद्भक्त इन दोनों ही अर्थोंमें योग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेमकी परवा नहीं करता, वह तो भगवत्-प्रेममें ही मस्त रहकर भगवत्-प्रेरणासे सदा-सर्वदा भगवदनुकूल स्वाभाविक कर्म करता रहता है। भक्तका योगक्षेम स्वयं भगवान् ही चलाते हैं। श्रीभगवान्‌ने गीतामें स्वयं कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

'जो अनन्य भक्त निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए मेरी निष्काम उपासना करते हैं उन नित्य मुझमें लगे रहनेवाले भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।'*

भोजनादिकी चिन्ता तो साधारण विश्वासी भक्तको भी नहीं करनी चाहिये, जो भोजनादिके लिये भगवान्‌का भरोसा न रखकर न्याय और सत्यमार्गका तथा सदाचारका त्यागकर पापकी शरण लेते हैं वे तो एक प्रकारसे नास्तिक ही हैं। कहा है—

भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः।
विश्वम्भरो गुरुर्येषां किं दासान् समुपेक्षते॥

'वैष्णव आहारादिके लिये व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं। जो भगवान् समस्त विश्वके सब जीवोंका भरण-पोषण करते हैं वे क्या अपने सेवकोंको कभी भूल सकते हैं?'

---

* श्रीजगन्नाथपुरीमें एक सरल हृदयके सदाचारी ब्राह्मण सपरिवार रहते थे। उनको गीतासे बड़ा प्रेम था, वह दिन-रात गीताका अध्ययन और मनन किया करते थे। अवश्य ही उनका सकाम भाव अभी दूर नहीं हुआ था। परन्तु थे वे बड़े विश्वासी। एक दिन वे गीताके प्रत्येक शब्दका क्रियात्मक अर्थ देखना चाहते थे। पाठ करते समय जब उपर्युक्त श्लोकका 'वहाम्यहम्' शब्द आया तब ब्राह्मण सोचने लगे कि क्या भगवान् अपने भक्तके लिये आवश्यक वस्तुएँ स्वयं ढोकर उसके घर पहुँचा आते हैं; नहीं, नहीं! ऐसा नहीं हो सकता, भगवान् किसी दूसरे साधनसे संग्रह करा देते होंगे। यह विचारकर ब्राह्मणने 'वहाम्यहम्' का अर्थ ठीक न बैठते देख गीताके उक्त पदको काटकर उसकी जगह ऊपर 'करोम्यहम्' लिख दिया। ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे जीवननिर्वाह करते थे। भगवान्‌की अपार माया है; एक दिन मूसलाधार वृष्टि होने लगी। ब्राह्मणदेवता उस दिन घरसे न निकल सकनेके कारण दिनभर सपरिवार भूखे ही रहे। दूसरे दिन वर्षा बन्द होनेपर ब्राह्मण भीखके लिये चले। उनके घरसे जानेके थोड़ी ही देर बाद एक खूनसे लथ-पथ अत्यन्त ही सुन्दर बालक ब्राह्मणके घरपर आकर ब्राह्मणीसे बोला—'पण्डितजी महाराजने यह प्रसाद भेजा है।' ब्राह्मणी बालकके मनोहर वदनको देखकर और उसके मीठे वचन सुनकर मुग्ध हो गयी, परन्तु उसके शरीरसे खून बहता देखकर उसे बहुत ही दुःख हुआ, उसने आँसूभरे नेत्रोंसे पूछा 'तुमको किस निठुरने मारा है?' बालकने ब्राह्मणीके पतिका नाम लेकर कहा कि 'मुझको ब्राह्मणदेवताने मारा है।' ब्राह्मणी तो अचरजमें डूब गयी; कहने लगी 'वह तो बड़े सीधे-सादे, अक्रोधी और परम भागवत हैं, तुम-सरीखे नयनमनलुभावन बालकको वह क्यों मारने लगे?' बालकने कहा—'मैं सच कहता हूँ माँ! उन्होंने ही एक सूलसे मेरे वदनको काट डाला है, उन्होंने क्यों ऐसा किया, इस बातको तो वही जानें।'

इतना कहकर और प्रसाद रखकर बालक वहाँसे चल दिया; ब्राह्मणीको अन्यमनस्क होनेके कारण उसके जानेका पता नहीं लगा। वह कुछ भी न समझकर अति दुःखित चित्तसे स्वामीके घर आनेकी बाट देखने लगी। समयपर ब्राह्मण घर आये। ब्राह्मणीने विनयके साथ किन्तु रोष और विषादभरे शब्दोंमें सारा वृत्तान्त ब्राह्मणको कह सुनाया। पण्डितजी गृहिणीकी बात सुनकर अवाक् हो गये। गीताके श्लोकपर हरतालकी कलम फेरनेकी घटनाको स्मरण कर वह व्याकुल हो उठे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। ब्राह्मण अब समझे कि सचमुच ही भगवान् अपने विश्वासी भक्तके लिये स्वयं सिरपर ढोकर आहारादि पहुँचाते हैं। गीता श्रीभगवान्‌का अंग है। गीताका श्लोक काटनेसे भगवान्‌के शरीरपर चोट लगी है। ब्राह्मण अपनी करनीपर पश्चात्ताप करते-करते मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भगवान्‌ने उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। कुछ समय बाद उठकर वे भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना करने लगे और भावविह्वल होकर गीताके चारों ओर 'वहाम्यहम्' 'वहाम्यहम्' लिखने लगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि सन्न्यसति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥४८॥

४८–जो कर्मफलका त्याग करता है, कर्मोंका भी त्याग करता है और तब सब कुछ त्यागकर जो निर्द्वन्द्व हो जाता है।

योगक्षेमकी चिन्ताका त्याग करनेवाला कर्मफलका त्यागी होता ही है अथवा योगक्षेमके त्यागके लिये भी कर्मफलके त्यागकी आवश्यकता होती है। वस्तुतः अब यहाँसे प्रेमी भक्तके लक्षणोंका आरम्भ हो गया है। ये भक्तिके साधकोंके लिये आदर्श साधन हैं और सिद्ध प्रेमी भक्तोंके स्वाभाविक गुण! भक्त जो कुछ करता है वह भगवान्‌के लिये ही करता है, उसे उसका अपने लिये कुछ भी फल नहीं चाहिये। न उसकी कर्ममें आसक्ति है, और न उसके फलमें। वह तो यन्त्रवत् कर्म करता रहता है, परन्तु जहाँतक उसे यह स्मरण रहता है कि मैं यन्त्र हूँ, भगवान्‌के लिये कर्म करता हूँ, वहाँतक वह कर्मफलका ही त्यागी कहा जा सकता है, कर्मका त्यागी तो तब होगा जब उसे यह भी पता नहीं रहेगा कि मैं भी कुछ करता हूँ। जब मन-बुद्धिके पूर्ण समर्पणसे भगवान् उसके अहङ्कारको सर्वथा हरण करके स्वयं ही उसके हृदयमन्दिरमें बैठकर कर्म करने-कराने लगेंगे तब वह कर्मोंका सम्पूर्ण त्यागी होकर सर्वथा निर्द्वन्द्व हो जायगा। फिर उसे सुख-दुःख, हानि-लाभ, अपना-पराया, मैं-तू, आदि द्वन्द्वोंसे कोई प्रयोजन ही नहीं रह जायगा। परन्तु जबतक ऐसी स्वाभाविक स्थिति न हो तबतक साधनरूपसे कर्मफलत्याग और भगवत्-विरोधी अथवा अनावश्यक कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करके निर्द्वन्द्व होनेकी चेष्टा करनी चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥
(गीता २। ४५)

'हे अर्जुन! वेद तीनों गुणोंके प्रकाशरूप संसारको प्रकाश करनेवाले हैं, अतएव निस्त्रैगुण्य अथवा असंसारी (निष्कामी), सुखदुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित, योगक्षेमकी इच्छा न करनेवाला, नित्य सत्त्वमें स्थित और परमात्मपरायण हो जाओ।'

वेदानपि सन्न्यसति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ॥ ४९ ॥

४९–जो वेदोंका भी भलीभाँति परित्याग कर देता है और जो अखण्ड असीम भगवत्प्रेम प्राप्त कर लेता है।

साधनकी दृष्टिसे उपर्युक्त श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोक (२। ४५) के अनुसार तीनों गुणोंके प्रकाशरूप संसारको प्रकट करनेवाले वेदोंके त्यागसे, निष्कामी बननेका अर्थ बहुत ही ठीक है। सकाम भावका त्याग ही वेदत्याग है। परन्तु देवर्षि नारद यहाँ जिस प्रेमावस्थाका वर्णन कर रहे हैं, इस अवस्थामें तो भक्त केवल एक अविच्छिन्न अखण्ड भगवत्प्रेमके महान् सागरमें डूबकर तन्मय हो जाता है, इससे वेदोंका आश्रय स्वयमेव ही छूट जाता है, उससे फिर लौकिक-वैदिक कोई-सी क्रिया ही यथाविधि नहीं हो सकती। सारे नियमोंका अपने-आप टूट जाना ही इस प्रेमका एक नियम है। यह भी शास्त्रविधि ही है। इस स्थितिमें वेद अपने अनुयायीको वेदोंका परमफल प्राप्त करते देखकर स्वयं तृप्त होकर उसे छोड़ देते हैं। यह वेदत्याग तिरस्कारमूलक नहीं है, वरं तृप्तिमूलक है। वह जान-बूझकर वेदोंको नहीं छोड़ता, वेद ही उसे पूर्णकाम समझकर अपना आधिपत्य उसपरसे उठा लेते हैं। इस अवस्थामें वह प्रेमी भक्त विधिनिषेधमय वेदोंको लाँघकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस, केवल एक अनिर्वचनीय हरिप्रेममें ही मतवाला रहता है; वह भगवत्प्रेमकी एक जीती-जागती मूर्ति होता है। स्वयं भगवान् ही उसके शरीरमें दिव्य प्रेमके रूपमें प्रकट होकर लीला करते हैं—

स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ५०

५०—वह तरता है, वह तरता है, वह लोगों-को तार देता है।

देवर्षि नारद आनन्दमें भरकर पुकार रहे हैं कि जो इस प्रकार भगवान्‌के प्रेममें मतवाला हो जाता है, वह तो तर ही गया, वह समस्त लोकोंको भी तार देता है। वही सच्चा तरन-तारन होता है। भगवान्‌ने भी श्रीमद्भागवतमें कहा है—'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति' ऐसा मेरा भक्त त्रिभुवनको पवित्र कर देता है।

छियालिसवें सूत्रमें मायासे कौन तरता है यह प्रश्न करके यहाँतक उसका उत्तर दिया गया। चार सूत्रोंमें प्रेमके साधन और प्रेमियोंके लक्षण बतलाये गये। अब आगे उस प्रेमका रूप बतलाया जायगा, जिसको पाकर प्रेमी महानुभावगण इस दुर्लभ स्थिति-को स्वाभाविक गुणोंके रूपमें अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। (क्रमशः)

श्रीसदाशिवेन्द्र सरस्वती

(लेखक—शास्त्रवाचस्पति पं० श्रीहरिहरस्वरूपजी शर्मा शास्त्री, बी०ए०)

सदाशिवेन्द्र सरस्वती उन महात्माओंमेंसे हैं जिनके कारण भारतभूमि तीर्थरूप मानी जा सकती है। माया-मोहमें फँसे हुए प्राणियोंके उद्धारके हेतु भगवान्‌की अपार करुणामयी आज्ञासे प्रत्येक युग और अवान्तर युगमें एक-न-एक अलौकिक शक्तिशाली महापुरुष इस लोकमें आता रहता है जो अपने चरित्र और तपके प्रभावसे ईश्वरकी सत्ताका विश्वास दृढ़ करा जाता है। ऐसे ही चमत्कारी महापुरुषोंमें सदाशिवेन्द्र सरस्वती आदरपूर्वक गिने जानेके योग्य हैं।

छात्रावस्था

आजसे प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व चोलमण्डलमें कावेरी नदीके पवित्र तटपर स्थित करूर नामके ग्राममें आपका जन्म हुआ था। उस समय स्कूल-कालेजोंका प्रचार नहीं हुआ था। पाठशालाओंमें लोग अपने बालकोंको संस्कृत पढ़नेको भेज देते थे। इसी तरह सदाशिवेन्द्रजीकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृतकी एक पाठशालामें हुई। कावेरीके तटपर 'तिरू विशनल्लूर' नामके गाँवमें आपका पवित्र गुरुकुल था। उस समय इस पाठशालामें अच्छे-अच्छे कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी इकट्ठे हो गये थे। इनमें तीन व्यक्ति तो दक्षिणमें खूब प्रख्यात हुए। पहले रामभद्र दीक्षित थे, जो 'जानकीपरिणय' नामक नाटकके प्रणेता हुए। दाक्षिणात्य कवियोंको दृश्य काव्य नहीं बनाना आता इस अपवादको रामभद्र दीक्षितकी लेखनीने दूर किया है। दूसरे सहपाठी श्रीवेंकटेश थे जिन्होंने 'आख्याषष्टि', 'दयाशतक' आदिकी रचना करके अध्यात्मवेत्ताका सम्मानित आसन पाया था। तीसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावैयाकरण गोपाल शास्त्री थे। जिनकी यही रटन्त थी कि 'महाभाष्यं वा पठनीयम्, महाराज्यं वा पालनीयम्।' ऐसे सहपाठियोंमें चौथे भविष्यके यतीन्द्रशिरोमणि सदाशिवेन्द्र सरस्वती थे जिनके कारण सारे दक्षिण-प्रान्तका मस्तक ऊँचा हुआ। ये चारों विद्यार्थी चार वेद, चार मुक्तिके भेद और सनकादि चार बालब्रह्मचारियोंके समान विद्या, विनय और तपसे सम्पन्न होकर संसारको आनन्दित करते हुए दूजके चाँदकी तरह प्रतिपल उन्नत हो चले।

गृहस्थका त्याग

सदाशिवेन्द्र प्रायः सभी शास्त्रोंके अच्छे ज्ञाता हो गये। न्यायमें तो आप धुरन्धर माने जाने लगे। आपका विवाह बचपनमें ही हो गया था। कुटुम्बियोंके आग्रहसे आपको गुरुकुल छोड़कर घर आना पड़ा और अपनी इच्छाके प्रतिकूल गृहस्थधर्ममें चित्त लगाना पड़ा। परन्तु आपके जीवनका लक्ष्य कुछ और ही था। घरमें नयी दुनिया और नया ही समारम्भ देखा। आप बहुत शीघ्र गृहस्थके जंजालसे घबरा उठे; वैराग्यका तरुणारुण तरणि उनके निर्मल हृदय-गगनमें अद्भुत कान्तिके साथ उदित हुआ। 'यदहरेव विरजेत्, तदहरेव प्रव्रजेत्'—वेद पुरुषकी इस आज्ञाको यथार्थरूपमें पूरा करनेके लिये सदाशिव अनायास ही भाई-बन्धुओंसे नाता तोड़ घरसे निकल खड़े हुए। वर्ण और आश्रमकी औपाधिक सीमाको पारकर आप शीघ्र ही परमहंस दशामें पहुँचे और खाने-पीनेमें समताका व्यवहार कर देहयात्रा निर्वाह करने लगे। आपकी उन्मत्त और निरीह दशाको देख लोग आपको पागल और ढोंगी भी कह देते थे। रिन्दोंको अल्पज्ञजन ऐसा कहा ही करते हैं। पर सदाशिव-जैसे पक्के आत्मनिष्ठपर ऐसी बातोंका क्या असर हो सकता था।

योगकी शिक्षा

सदाशिवको योग सीखनेकी धुन सवार हुई। आप इस इच्छाको पूरा करनेके हेतु बहुत दिनोंतक अच्छे गुरुकी तलाशमें मारे-मारे फिरते रहे। अन्तमें आपको योगिराज परम शिवेन्द्र मिल गये। योगिराजने आपकी दशाको पहचान लिया और उन्हें विद्याका पात्र समझकर बड़े प्रेमसे योगविद्याका रहस्य समझा दिया। सदाशिवेन्द्रने थोड़े कालमें ही यम, नियम, आसन, धारणा, ध्यान, समाधि आदिके द्वारा आत्म-साक्षात्कारका आनन्द प्राप्त किया। आपने योगकी कलामें बहुत शीघ्र पूर्णता प्राप्त कर ली और सद्गुरु-की कृपासे हृदयकमल-कोशका उद्घाटन करके परं ज्योतिका साक्षात्कार कर सिद्ध-दशाको पहुँचे। आपका साधन समय पाकर इतना बढ़ा कि आपके लिये वर्ष मास, मास दिन और दिन पलोंके समान हो गये। आप 'संयमिसार्वभौम' कहलाने लगे। बासठ आर्या छन्दोंमें आपने एक छोटा-सा 'आत्मविलास' नामक काव्य लिखा है, जिसके अक्षर-अक्षरसे आपकी मस्ती टपकती है और यह पता चलता है कि बनावटी नहीं, किन्तु सच्चे साधुका दिल कैसा होता है।

मौनव्रत

सदाशिवके गुरु परम शिवेन्द्र स्वामीके पास अच्छे-अच्छे विद्वान् दूर-दूरसे दर्शनोंके लिये आते रहते और उनसे कुछ योगविद्यासम्बन्धी बातें पूछा करते थे। सदाशिव उनसे शास्त्रचर्चा छेड़कर अनेक प्रकारके प्रश्न कर बैठते थे, जिनका उत्तर देनेमें वे प्रायः असमर्थ रहते थे। सदाशिवका यह कुसंस्कार बढ़ता गया। कुछ असहिष्णु पण्डितोंने परम शिवेन्द्र-जीके पास इस व्यवहारकी शिकायत पहुँचायी। उनको सदाशिवका ऐसा सभ्यतासे गिरा हुआ व्यवहार अनुचित जँचा। आपने सदाशिवको बड़े क्रोधसे डाँट बतलायी और कहा—'योग तो सीखते हो पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अपने जीवनमें भी तो उपयोग करो। अपनी निरंकुश वाणीको क्या संयमका व्रत नहीं सिखा सकते हो ?' सदाशिवके सच्चे हृदयपर इन शब्दोंका विचित्र प्रभाव हुआ, ये शब्द हृदयमें स्थान कर गये। गुरुभक्त सदाशिवने गुरुजीको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी। इसीपर बस न करके निर्मलहृदय सदाशिवने गुरुकी आज्ञाका आदर करते हुए यह भीष्म-प्रतिज्ञा कर डाली कि मरणपर्यन्त अब मौनव्रतमें ही बिता दूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा सुन गुरुजी बड़े दुखी हुए। सदाशिवको बहुत समझाया, प्रतिज्ञा त्यागनेको कहा। परन्तु वहाँ ज़बानबन्दी हो चुकी थी; ज़बानपर प्रतिज्ञाका ताला पड़ चुका था। अन्तमें आचार्यने मौन-योगी होनेकी आज्ञा दी और सदाशिव मौन-दशामें अरि-षड्वर्गका दमन करते हुए करतलभिक्ष और तरुतल-निलय हो सुखसे समय बिताने लगे। अपने शिष्यकी ऐसी उन्नत दशा देखकर परम शिवेन्द्र योगी प्रसन्न होते थे, किन्तु इस बातका उन्हें खेद रहता था कि वे अपने शिष्यकी तरह संयम करनेमें समर्थ न हुए। उनकी ऐसी ही दशाका द्योतक यह पद्य है—

उन्मत्तवत् सञ्चरतीह शिष्य-
स्तवेति लोकस्य वचांसि शृण्वन्।
खिद्यन्नुवाचास्य गुरुः पुराहो
ह्युन्मत्तता मे न हि तादृशीति॥

× × × ×

तीन मासकी समाधि

मौनी होनेपर सदाशिवेन्द्रपर मस्ती और निरीहताका रंग दिनोंदिन गहरा होता गया। आप वनों और विजन स्थानोंमें रहना अधिक पसन्द करने लगे। ऐसे स्थानोंमें रहकर वे अपनी समाधिका अभ्यास अधिकाधिक बढ़ाने लगे। एक बारकी कथा है, आप कोडिमुडि नगरके पास कावेरीकी धारामें स्थित एक टीलेपर कुछ दिनसे पड़े थे। ऋतु वर्षाकी थी। दैववशात् नदीमें भयंकर बाढ़ आ गयी, जिससे किनारेके वृक्ष उखड़ गये और आसपासके छोटे गाँव बह गये। सदाशिव नदीके प्रवाहमें पड़े ही थे, वे भी इससे न बचे और प्रवाहके थपेड़े खाते हुए नदीकी सतहमें जा पहुँचे। आसपासके गाँवोंके लोगोंको इसका बड़ा खेद हुआ कि वे सदाशिवेन्द्र स्वामीको इस आपत्तिसे बचा न सके। तीन मासके बाद नदीका प्रवाह सूख गया और गाँवके लोग अपनी खेतीके कामके लिये कच्ची कुई खोदने लगे। खोदते समय एक व्यक्तिका कुदाल किसी कठिन वस्तुसे टकराया। उसी क्षण कुदालको निकालकर देखा गया तो वह खूनमें रँगा हुआ था। सब लोग आश्चर्यमें डूब गये। बड़ी साव-धानीसे धीरे-धीरे सबने मिलकर उस स्थानकी मिट्टी हाथोंसे दूर की। वहाँ प्रायः तीन मासके बाद सबके श्रद्धाभाजन स्वामी सदाशिवेन्द्रके दर्शन हुए। आप आनन्दसे हाथ-पाँव फैलाये, बालूका लिहाफ ओढ़े, पृथ्वी माताकी गुदगुदी गोदमें सो रहे थे। देखनेवाले सहम गये; एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। सबने मिलकर योगिराजके समाधिस्थ शरीरको पृथ्वीके गर्भसे बाहर ला रक्खा। इतने परिश्रमके कारण योगिराजकी समाधि खुल गयी और वह ठीक सोकर उठेकी तरह आँख मलते खड़े हो गये और यथेच्छ दिशाको चल दिये।

× × × ×

कुछ असाधारण घटनाएँ

सदाशिवेन्द्रका जीवन अद्भुत और असाधारण घटनाओंसे परिपूर्ण है। उनमेंसे कुछका उल्लेख पाठकोंके कुतूहलके अर्थ संक्षेपमें किया जाता है। आजकलके युक्तिवादके जमानेमें ऐसी घटनाओंको स्वीकार करते हुए बहुत लोगोंको पसोपेश होता है, परन्तु सदाशिव-सदृश पहुँचे हुए योगीके लिये ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें कर दिखाना सम्भावनाकी सीमासे बाहरकी बात नहीं कही जा सकती।

(१)

करूर गाँवके पासकी बात है। धान्य पक चुके थे और सिट्टे काटकर खेतोंमें इकट्ठे किये जा चुके थे। रातको घर जाते समय खेतके मालिक अपने हिस्सेदारोंमेंसे दो-एकको अनाजकी देख-भालके लिये छोड़ गये थे। समस्त जगत् निद्रा देवीकी गोदमें प्रमोद-निद्राका अनुभव कर रहा है। परन्तु—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

—के अनुसार सदाशिव आधीरातके समय आत्म-चिन्तनकी मस्तीमें घूम रहे हैं। घूमते-फिरते थककर अनाजके ढेरमें आकर लेट गये। खेतके रक्षक चोर समझकर लाठियाँ लेकर सदाशिवपर आ टूटे। योगिराज अविचलभावसे अनाजके ढेरमें लेटे रहे। पहरेवालोंकी मारपीटकी चेष्टाका उनपर ज़रा भी असर न हुआ। पहरेदारोंने बहुत चेष्टा की, किन्तु धन्य योगबल! सब चित्रमें लिखेके समान खड़े रहे, दिन निकल आया, मारना-छेड़ना तो एक ओर रहा, पहरेदार लोग अपने स्थानसे हिल भी न सके। दिन निकलनेपर बहुत-से किसान आसपाससे इकट्ठे हो गये। खेतके रखवालोंको सदाशिवद्वारा दण्डित देख बहुत चकित हुए और स्वामीजीकी महिमाका बखान करने लगे। लोगोंकी बातोंके शब्दसे योगिराजकी समाधि खुल गयी और वे चुपचाप उठकर यथेष्ट दिशाको चल दिये।

× × × ×

(२)

कभी-कभी आप मस्तीमें झूमते हुए आबादीमें भी आ जाते थे। गली-कूचोंसे जब आप गुज़रते तो बालक उनके चारों तरफ हिरावल डाल देते थे। उनके बालोंको, हाथ-पाँवकी अँगुलियोंको खींचकर और अन्य अनेक उपद्रव करके उनसे खेलते थे। जो भिक्षा योगिराज माँगकर लाते, वह बच्चोंमें बाँट देते थे। एक बार दो-तीन बालकोंने आपसे आग्रहपूर्वक कहा कि 'बाबा, आज रातको मदुरामें वृषभवाहनका उत्सव हो रहा है, आप हमें वह उत्सव दिखा दीजिये।' सदाशिवने शायद यह सोचकर कि बालकोंकी बात हँसीमें ही न उड़ जाय, उनके भक्तिभावसे प्रसन्न होते हुए उन्हें आँख बन्द करनेका इशारा किया और दोनों कन्धोंपर उन्हें बिठा लिया। आँखें खोलनेपर बालकोंने नृत्य-गीत-वाद्यसे गूँजते हुए, भक्तोंसे परिपूर्ण भगवान् सुन्दरनाथके मन्दिरमें अपने आपको देखा। बात-की-बातमें करूरसे मदुरामें अपने आपको देखकर सब बालक चकित हो गये। इसे स्वप्न, माया या चित्तविभ्रम—इनमेंसे कुछ भी न ठहरा सके। सदाशिवने सबको प्रसाद ला दिया और सूर्योदयसे पहले वापस घर पहुँचा दिया। सबने अपने घरवालोंको, जो घबराये हुए थे, यह आश्चर्यकथा कह सुनायी और प्रमाणस्वरूप प्रसाद दिया।

सुनते हैं महाशिवरात्रिकी रातको ये शिवभक्त योगिराज काशी, मदुरा, रामेश्वर आदि दिव्य क्षेत्रोंमें एक ही रात्रिमें भगवान् शङ्करके दर्शन करते हुए वहाँ-वहाँके निवासियोंद्वारा देखे गये हैं। आपकी महिमाका वर्णन करनेवाले यहाँतक कहते हैं कि आप योगबलसे यूरोपमें टर्कीपर्यन्त घूम आये थे।

× × × ×

(३)

एक महामूर्ख ब्रह्मचारी जिसके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' था सदाशिवकी तनमनसे सेवा करने लगा। उसकी सच्ची श्रद्धासे आशुतोष सदाशिव स्वामी प्रसन्न हो गये। ब्रह्मचारीने प्रार्थना की कि बालकोंकी भाँति उसे भी बिना यात्राकष्ट उठाये श्रीरङ्गनाथजीके दर्शन कराये जावें। स्वामीने आँखें बन्द करनेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्केत किया, ब्रह्मचारीने वैसा ही किया। आँखें खोलनेपर सदाशिवसहित अपने आपको भगवान् रङ्गनाथके मन्दिरमें खड़ा पाया। कुछ ही क्षणोंके बाद सदाशिव अन्तर्धान हो गये, ब्रह्मचारीने मन्दिर और उसके प्रकारोंके कोने-कोने छान डाले। लाचार पैदल ही करूरकी ओर चला और कुछ दिनमें पहुँचा। वहाँ समाधिस्थ यतीन्द्रको देखकर आनन्दित हुआ और इस विद्याके सीखनेकी भिक्षा माँगी। दया-परवश सदाशिवने धूलिमें मन्त्र लिख दिये। उनके अभ्याससे ब्रह्मचारीमें अद्भुत चमत्कार दीख पड़ने लगा और उस प्रान्तके लोगोंमें उसका सिद्धके रूपमें मान होने लगा।

× × × ×

कटा हुआ हाथ फिरसे जुड़नेकी एक अत्यन्त अद्भुत घटनाका सम्बन्ध भी आपके जीवनकी आश्चर्य घटनाओंमेंसे है। कहा जाता है—रिन्द सदाशिव कभी किसी मुसल्मान ज़मींदारके ज़नानखानेकी तरफ घूमते-फिरते जा निकले। असूर्यम्पश्या, पर्दानशीन बीबियोंमें एक अवधूतको घूमते देख नवाब साहब जामेसे बाहर हो गये। आपने क्रोधमें अन्धे होकर सदाशिवपर तलवारसे वार किया। जिससे उनके एक हाथकी अँगुली कट गयी। परन्तु इस घटनासे सदाशिवकी मौनवृत्तिमें कोई विकार नहीं आया। वे उसी प्रकार मत्त गजराजकी भाँति निर्विकारभावसे शनैः-शनैः वहाँसे चले गये। इनकी इस मजज़ूब हालतको देख नवाब साहबके हवास बाखता हो गये और वे अपनी भूलपर हाथ मलने लगे। मनमें यह धार लिया कि यह सच्चा ख़ुदादोस्त फ़क़ीर है, इससे अपना गुनाह मुआफ़ कराओ, वरना इसकी बद-दुआ ख़ातमा कर देनेको काफ़ीसे ज़्यादा है। यह सोच छायाकी तरह योगिराजका पीछा किया। इस तरह कई दिनसे निरन्तर पीछे घूमते देख योगिराजने इशारेसे इस व्यवहारका कारण पूछा। नवाबने दण्डवत् प्रणाम करके अपने अपराधकी क्षमा चाही। नवाबसे अपने हाथकी अँगुली कटी सुनकर योगिराज-ने उधर ध्यान दिया और दूसरे हाथसे कटे हुए अङ्गको धोकर कटी हुई अँगुली उसके स्थानपर जोड़ दी। यह अद्भुत घटना देखकर नवाब साहब क्षमाके लिये बुरी तरह गिड़गिड़ाये। अन्तमें योगीन्द्रने उसे क्षमाका दान दिया और यथेच्छ दिशाको चल दिये।

यह आश्चर्यजनक घटना इतनी प्रसिद्ध है कि इसका वर्णन शृङ्गेरीमठके विद्वान् शङ्कराचार्य श्रीनृसिंह भारती स्वामीने स्वनिर्मित 'सदाशिवेन्द्रस्तुति' में इस प्रकार किया है—

योऽनुत्पन्नविकारो बाहौ श्लेच्छेन च्छिन्नपतितेऽपि।
अविदितममतायास्मै प्रणतिं कुर्मः सदाशिवेन्द्राय॥

पुरा यवनकर्त्तनस्रवदमन्दरक्तोऽपि यः
पुनः पदसरोरुहप्रणतमेनमेनांनिधिम्।
कृपापरवशः पदं पतनवर्जितं प्रापयत्
सदाशिवयतीट् स मय्यनवधिं कृपां सिञ्चतु॥

उसी सदाशिव-महिम्नमें आगे इस प्रकार स्तुति की गयी है—

न्यपतन् सुमानि मूर्द्धनि येनोच्चरितेषु नामसूग्रस्य।
तस्मै सिद्धवराय प्रणतिं कुर्मः सदाशिवेन्द्राय॥
निजगुरुपरमशिवेन्द्रश्लाघितविज्ञानकाष्ठाय।
निजतत्त्वनिश्चलहृदे प्रणतिं कुर्मः सदाशिवेन्द्राय॥

जिस प्रकार सदाशिवेन्द्र शङ्कराचार्यकी सबसे बड़ी गद्दीके आचार्यके भक्तिभाजन बने वैसे ही दाक्षिणात्यके राजाओंद्वारा भी आप बहुत सम्मानित हुए थे। नवसाल-राज्यके अधीश्वर महाराज विजय रघुनाथ तोण्डमान्ने तो प्रायः आठ वर्षतक आपकी अपूर्व श्रद्धासे सेवा की। योगिराजने प्रसन्न होकर राज्यपालन और प्रजारञ्जनके कुछ उपाय बालमें लिख दिये और बाकी बातें जाननेको अपने सहपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल शास्त्रीके नामका सङ्केत कर दिया। उक्त महाराजने उक्त शास्त्रीजीको एक गाँव देकर राज-गुरुका सम्मान दिया। उनके वंशज अबतक राजगुरु हैं। इस राज्यमें सदाशिवके उपदेशानुसार ही शारदा-नवरात्रमहोत्सव, दक्षिणामूर्तिपूजा आदि बड़े समारोहके साथ मनाये जाते हैं। दक्षिणामूर्तिके पास ही पूजाके प्रधान द्रव्योंमें वह बालुका, जिसपर योगिराजने उपदेश लिखा था, प्रतिष्ठाके साथ रक्खी है और उसकी पूजा होती है।

आजकलकी शिक्षा-दीक्षाके प्रकाशमें योगिराजका चमत्कारयुक्त जीवन असम्भव घटनाओंसे पूर्ण दिखायी देता है। इस समयका महावाक्य है—'प्रकृतिरेव परं ब्रह्म।' परन्तु सदाशिवका जीवन 'नेचर-स्टडी' की कसौटीपर कसनेकी वस्तु नहीं है। यह तो भारतके योगबलका एक ऐसे कालका नमूना है जब कि यह देश अपना सर्वस्व और सारी विशेषताएँ प्रायः खो चुका था। सिद्ध लोग अन्तर्मुख हैं। उनके सब रहस्योंको हम संसारकी दृष्टिवाले लोग कैसे जान सकते हैं। वे आत्माराम; हम इन्द्रियोंके क्रीत दास। वे अपने अन्तःकरणमें देदीप्यमान परंज्योतिको योगकलासे प्रत्यक्ष देख प्रसन्न होते हैं; हम गली-कूचोंमें चमकती हुई बिजलीकी रोशनीकी चकाचौंधमें साइन्सकी उन्नति समझकर सन्तुष्ट हो रहते हैं। वे सात्त्विक आहार और यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि दुष्कर साधनोंसे इन्द्रियोंका दमन करते हैं; हम तमोगुणी और मादक वस्तुओंका सेवन करके बुरी वासनाओंके इशारेपर नाचते हैं। जहाँ इतना प्रत्यक्ष अन्तर है वहाँ ऐसी बातोंके लिये विशेष आश्चर्यका स्थान नहीं है। ऐसे ही आत्माराम सिद्ध पुरुषोंमें योगिराज सदाशिव अग्र-गण्य थे। इसमें कोई अत्युक्ति प्रतीत नहीं होती।

इस प्रकार परमात्मध्यानमें रत मौनव्रती योगीने चिरकालतक संसारको योगविद्याका अद्भुत चमत्कार दिखाकर लीलाका उपसंहार करनेकी इच्छा प्रकट की। नेरूर गाँवके ब्राह्मण बुलाये गये और उनसे कह दिया कि 'ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको इस पाञ्चभौतिक शरीरको त्याग मैं ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति करना चाहता हूँ। उसी दिन काशीसे वाणलिंग लेकर एक ब्राह्मण आवेगा। इस लिंगकी मेरी समाधिके समीप एक मन्दिरमें स्थापना कर देना।' नियत तिथिको काशीसे वाणलिंग आ गया और सबके देखते मौनयोगी श्रीसदाशिवेन्द्र सरस्वतीने अन्तिम समाधि ले ली। जीवन्मुक्त योगिराजने नेरूर गाँवमें ही नहीं, किन्तु भिन्न-भिन्न तीन स्थानोंमें, एक ही कालमें उन-उन स्थानोंके निवासियोंके देखते समाधि लेकर शरीर त्याग दिया। इस बातका समर्थन नृसिंह भारती स्वामीके इस श्लोकसे भी होता है—

त्रिविधस्यापि त्यागं वपुषः कर्तुं स्थलत्रये य इह।
अकरोत् समाधिमस्मै प्रणतिं कुर्मः सदाशिवेन्द्राय॥

परन्तु इनमें नेरूरकी ही समाधि दक्षिणमें प्रसिद्ध है। इस स्थानमें आजतक भी नवसालके राजाकी तरफसे नित्य-नैमित्तिक पूजा, पक्षोत्सव, मासोत्सव और वार्षिकोत्सव आदि धूमधामसे होते हैं।

वास्तवमें आपके जन्मसे दक्षिण प्रान्तका मस्तक ऊँचा हुआ है। इनका नाम दाक्षिणात्य लोग बड़ी प्रतिष्ठासे लेते हैं। जगद्गुरु शंकराचार्यकी प्रधान गद्दी शृंगेरीके परम विद्वान् शंकराचार्य श्रीसच्चिदानन्द नृसिंह भारती स्वामी योगीन्द्रके बड़े भक्त थे जैसा कि आपके ऊपर उद्धृत पद्योंसे प्रकट है। सदाशिवेन्द्रकी महिमाका यह उज्ज्वल उदाहरण है।

श्रीसदाशिवके रचित ग्रन्थ

आपके रचे हुए अनेक ग्रन्थ हैं। उनमें 'ब्रह्मतत्त्व-प्रकाशिका' नामकी ब्रह्मसूत्रोंपर लिखी गयी वृत्ति बहुत उत्तम हुई है। इसमें प्रत्येक सूत्रके साथ पूर्वपक्षका निरूपण करनेके बाद सूत्रसंगति, अधिकरणसंगति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादसंगति इत्यादि विविध विषयोंका निरूपण किया गया है, जिनसे भगवान् शंकरके भाष्यके निगूढ़ अर्थोंका भी विशदरूपसे प्रकाश होता है।

आपने योगसूत्रोंपर 'योगसुधाकर' नामकी वृत्ति रची है, जिससे योगशास्त्रके अनेक रहस्योंका ज्ञान सहजहीमें हो सकता है। इन दोनों वृत्तियोंके कारण स्वामी सदाशिवेन्द्र केवल सिद्ध ही नहीं वरं वैज्ञानिक और परम दार्शनिक भी कहे जा सकते हैं।

इनके अतिरिक्त उपनिषद्दीपिका (बारहों उपनिषदोंपर), आत्मविद्याविलास, अद्वैतरसमञ्जरी, बोधार्य, सिद्धान्तकल्पवल्ली आदि अनेक वेदान्त-विषयक छोटे-बड़े ग्रन्थरत्न योगिराजकी गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण लेखनीसे निकले हैं। इनकी सम्पूर्ण सूक्तियाँ ब्रह्मानन्दके मधुर स्रोत हैं। पढ़नेवालोंके हृदयोंमें उनके पाठमात्रसे पार्थिव भोगोंसे अरुचि, आत्मतत्त्वका साक्षात्कार और अपूर्व रसका आविर्भाव हो उठता है। हम अपने सहृदय पाठकोंको इन महात्माके दो-तीन सुभाषित भेंट करके यह पवित्र कथा समाप्त करते हैं—

सन्त्यज्य शास्त्रजालं संव्यवहारञ्च सर्वतस्त्यक्त्वा।
आश्रित्य पूर्णपदवीमास्ते निष्कम्पदीपवद् योगी॥
वैराग्यविपुलमार्गं विज्ञानोद्दामदीपकोद्दीप्तम्।
आरुह्य तत्त्वहर्म्यं मुक्त्या सह मोदते यतिराट्॥
आशावसनो मौनी नैराश्यालङ्कृतः शान्तः।
करतलभिक्षापात्रस्तरुतलनिलयो मुनिर्जयति॥

तन्त्र

(लेखक—श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

[गतांकसे आगे]

साधनके गौणरूपमें सहायक इन वस्तुओंके ग्रहणकी जो विधि है, उससे यह समझ लेना ठीक न होगा कि तन्त्रमें इन्हीं वस्तुओंको साधनका एकमात्र मुख्य उपाय माना गया है। साधन करना ही साधकका लक्ष्य है, उस साधनामें कुछ सहायता करनेके उद्देश्यसे ही पञ्चतत्त्व गृहीत हुए हैं, परन्तु जिस साधककी साधनामें ये सहायता न करके विघ्न उत्पादन करते हैं, उस साधकके लिये ये सर्वथा अस्पृश्य और उपेक्षणीय हैं।

वीर साधकोंके लिये ये साधनाके अङ्गरूपमें क्यों गृहीत हुए हैं; इसपर तनिक स्थिरभावसे विचार करनेपर इसका उद्देश्य समझमें आ सकता है। वीर साधकका वीरत्व ही यही है कि वह तेजधार तलवार लेकर खेलका कौशल दिखलावे, परन्तु कहीं उससे तनिक भी चोट न खा जाय। तलवारको लेकर खेल करते-करते जिसने अपने सारे शरीरको ही लहू-लुहान कर दिया, फिर वह वीर ही कैसा? उसका तो इन वस्तुओंको लेकर खेल करना मूर्खता ही है। जिसमें सामर्थ्य है, जो वीर है उसीके लिये इस प्रकारका खेल दिखलाना शोभाजनक है। तन्त्रोक्त वीर साधकको भी जब ये पञ्चतत्त्व तनिक भी विचलित नहीं कर सकें तभी समझना चाहिये कि वह वीर है, और इस प्रकारकी साधना उसे कभी पथभ्रष्ट या लक्ष्यभ्रष्ट नहीं कर सकती। जब ये सारी उन्माद पैदा करनेवाली वस्तुएँ भी मनुष्यके चित्तको विक्षिप्त और उन्मत्त नहीं कर सकें तभी समझा जा सकता है कि वह यथार्थ वीर है, तथा उसकी साधनाका उपकरण भी यथार्थ वीरके समान ही होगा।

साधारणतः ये वस्तुएँ मनुष्यको उन्मत्त करती हैं, इसीलिये साधारण मनुष्यके लिये इनका अस्पृश्य होना विचारसंगत है। परन्तु सदा ही यदि ये मनुष्यको आकर्षण करके मोहकूपमें गिराती रहें, तथा सदा ही मनुष्य इनके भयसे यदि अधीर रहे; तो वह कभी भी इन प्रवृत्तियोंसे ऊपर नहीं उठ सकेगा। यदि मनुष्य यथेष्ट साधन-भजन करनेपर भी इन वस्तुओंके देखते ही इनके लिये लोलुप हो उठता है, तो साधनाकी उच्चावस्था प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेकी सम्भावना उसके लिये कैसे हो सकती है ? तब तो शिक्षा, दीक्षा, साधना सभी वृथा हो जायगी। अपनेमें जो कच्चापन था, वह तो बना ही रहा, जल लगनेमात्रसे हम गल गये। इस प्रकारसे तो काम नहीं चलेगा। इसीलिये जब साधक पक्के हो जाते हैं, तब ये तत्त्व उनको आकर्षण नहीं कर सकते, बरं इनके द्वारा वे कितने ही सामयिक कार्योंको सिद्ध कर सकते हैं। अतएव जिनका चित्त इन तत्त्वोंके संसर्गमें आकर गल नहीं जाता, उन्हें ही वीर साधक समझना चाहिये। किन्तु केवल मुँहसे वीर कहनेमात्रसे ही काम न चलेगा, परीक्षा देनी पड़ेगी।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः।

—यदि साधककी चित्तवृत्ति विकारका कारण उपस्थित होनेपर भी विकृत न हो तभी उन्हें धीर कहा जा सकता है।

कापुरुषके समान कोई-कोई कह सकते हैं कि जिस पथमें भय है, उसमें जानेका प्रयोजन ही क्या है ? निश्चय ही भयके मार्गमें न जानेसे स्थूल भयके दर्शनसे तो हम वञ्चित रह जाते हैं, परन्तु मनकी भयशून्यतारूप अभयभावको तो प्राप्त नहीं होते; हमारे मनसे भयका संस्कार तो दूर नहीं हो जाता। हम यदि सदा ही माता-पिताकी गोदपर चढ़े रहें तो इसमें आराम अवश्य मिलेगा, पैदल चलनेमें गिरनेका डर है इस भयसे चलनेका अभ्यास न करनेपर गिरनेसे तो हम बचेंगे परन्तु इससे हम सदाके लिये पंगु ही बने रह जायँगे। चलनेलायक कभी नहीं होंगे।

इस पंगुत्वसे, इस विभीषिकासे जीवको अभय करनेके लिये ही तन्त्रकी इस अद्भुत साधनाका आविष्कार हुआ है। तन्त्रके अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्र-ग्रन्थोंमें भी वीर साधककी प्रशंसा दिखलायी देती है। शास्त्रान्तरमें लिखा है—

पुङ्खानुपुङ्खविषयानुपसेवमानो
धीरो न मुञ्चति मुकुन्दपदारविन्दम्।
संगीतवाद्यपरिनृत्तवशं गतापि
मौलिस्थकुम्भपरिरक्षणधीर्नटीव॥

धीर व्यक्ति बारम्बार विषय सेवन करते हुए भी मुकुन्दपदारविन्दसे पृथक् नहीं होते। जिनका मन गोविन्दचरणारविन्दमें रत हो गया है, उनका मन बाह्य विषयोंके उपभोगकालमें भी भगवान्के चरणाम्बुजमें लगा ही रहता है। वह सहस्रों कर्मोंमें लगे रहनेपर भी मुख्य लक्ष्यको कभी नहीं भूलते। जिस प्रकार नटी यद्यपि घड़ा मस्तकपर रखकर अनेकों हाव-भावसे नृत्य करती है तथा उसके सङ्गीतका तान भी अनवरत अटूटभावसे चलता है, तथापि सिरके घड़ेके ऊपर उसका अटल लक्ष्य बना रहता है—वैसा न होनेसे उसका घड़ा सिरसे गिर जाता। इसी प्रकार जो साधक संसारके सब कर्मोंमें लिप्त रहते हुए भी गोविन्दको कभी नहीं भूलते, वही यथार्थ धीर हैं और यही धीर यथार्थ वीर साधक हैं। ये वीर साधक इस प्रकार मस्तकपर अग्नि लेकर, दोनों हाथोंमें तलवार लेकर जिस प्रकार अपने विविधरूपसे अङ्ग-सञ्चालनके द्वारा खेल दिखलाते हैं, तन्त्रोक्त वीर साधक भी उसी प्रकार विमुग्धकारिणी वस्तु लेकर साधन करते हैं, तथापि वे वस्तुएँ उन्हें कभी लक्ष्यभ्रष्ट नहीं करतीं। समय-समयपर युग-युगमें अनेक वीर साधकोंके चरणस्पर्शसे यह धरणी पवित्र हुई है। विचारपूर्वक देखनेसे मालूम हो जायगा कि हमारे पुराणोंमें वर्णित ध्रुव-प्रह्लाद आदि सभी वीर साधक थे। प्रह्लादके सामने सहस्रों प्रलोभन आये, ध्रुवके सम्मुख कितने भीषण दृश्य आये—तथापि उनको अच्युतचरणसे विच्युत करनेका सामर्थ्य किसीमें न हुआ। यदि वे इन सब भयङ्कर और मोहक द्रव्योंमें परीक्षा देनेका अवसर न पाते, तो क्या उनकी सात्त्विक शक्तिका परिचय जगत्को कभी मिलता ?

दिव्याचार—जो दिव्य भावके साधक हैं वे इसकी अपेक्षा भी उच्चावस्थासम्पन्न पुरुष हैं, उनको नीचा दिखला सकनेकी शक्ति किसी सांसारिक वस्तुमें नहीं है। कोई भी प्रलोभन उन्हें मुग्ध या विचलित नहीं कर सकता। दिव्य भावापन्न साधक नरदेव हैं। वे निरन्तर सन्तोषी, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेषविवर्जित, क्षमाशील और समदर्शी होते हैं। गीताके बारहवें अध्यायके उच्चतम भक्तके लक्षणोंके साथ उनके सारे लक्षण मिल जाते हैं। वीर साधकोंके समान उनको अपनी असाधारण शक्ति प्रदर्शन करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। वे अपने शत्रुओंको सहज ही अपने ऐसे सेवक बना लेते हैं मानों वे उनके घरके सदासे जाने-पहचाने हुए पुराने नौकर ही हों।

बाघको दबाकर उसे पराक्रम प्रकाशित न करने देना, अथवा उसके दोनों पैरोंको पकड़कर चक्रवत् घुमाकर तमाशा दिखलाना असाधारण शक्तिका परिचायक अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, परन्तु वह व्यक्तिविशेषका वीरत्वमात्र है, उसे देवत्व नहीं कह सकते। जब देवभाव विकसित होता है तब बाह्य बल-विक्रम या योगशक्तिका प्रभाव दिखलानेका प्रयोजन नहीं रह जाता। वह तो सर्वदा उसे दिव्य शक्ति-द्वारा विमण्डित कर रखता है, इसीसे उसका हृदय सर्वदा प्रशान्त रहता है, उसमें लेशमात्र भी उद्वेग या आशङ्का नहीं रहती। उसमें एक ऐसा अपनेको भुला देनेवाला भाव रहता है, समस्त विश्वको अपना लेनेका एक ऐसा स्वाभाविक प्रेम उसके अन्तरमें उत्पन्न होता है जिससे व्याघ्र-सिंह आदि जीव भी उसे देखकर अपने स्वाभाविक हिंस्र-भावको भूलकर देवभावमें निमग्न हो जाते हैं। यही समाधि-मग्न योगीका परम दिव्य भाव—आत्मसाक्षात्कार ज्ञानीकी अपरोक्षानुभूतिकी चरम सीमा है। इसकी साधना कौलाचारकी मानसपूजामें प्रारम्भ होती है, तथा दिव्य समरसमें निमज्जित हो जाना ही इसका अवसान है। यहाँ उसी दिव्याचारकी प्रारम्भिक मानसपूजाकी विधि शास्त्रानुसार उद्धृत की जाती है।

हृत्पद्ममासनं दद्यात् सहस्रारच्युतामृतैः।
पाद्यं चरणयोर्दद्यान् मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत्॥
तेनामृतेनाचमनीयं स्नानीयं तेन च स्मृतम्।
आकाशतत्त्वं वस्त्रं स्याद् गन्धः स्याद्गन्धतत्त्वकम्॥
चित्तं प्रकल्पयेत्पुष्पं धूपं प्राणान्नियोजयेत्।
तेजस्तत्त्वञ्च दीपार्थं नैवेद्यं स्यात्सुधाम्बुधिः॥
अनाहतध्वनिर्घण्टा वायुतत्त्वञ्च चामरम्।
सहस्रारं भवेच्छत्रं शब्दतत्त्वञ्च गीतकम्॥
नृत्यमिन्द्रियकर्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा।
सुमेखलां पद्ममालां पुष्पं नानाविधं तथा॥
अमायाद्यैर्भावपुष्पैरर्चयेद्भावगोचरम्।
अमायमनहङ्कारं अरागममदं तथा॥
अमोहकमदम्भञ्चाद्वेषाक्षोभकौ तथा।
अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः॥
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः।
दया पुष्पं क्षमा पुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम्॥
इति पञ्चदशैर्भावपुष्पैः सम्पूजयेच्छिवम्।
कामक्रोधौ छागवाहौ बलिं दत्त्वा प्रपूजयेत्॥

इस मानसपूजापर विचार करनेसे समझमें आ जा सकता है कि दिव्य भावद्वारा परिपूर्ण पुरुषके लिये मांसाहार करने या मदोन्मत्त होनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। मुखसे केवल यह कहकर कि 'अपने हृदयपद्मको तुम्हारे आसनरूपमें मैंने दिया' मन्त्र पढ़ देनेसे ही आसन देना नहीं बनता। साधकको अनुभव करना पड़ेगा कि हमारे हृदयासनपर भगवान् बैठे हैं। हृदयमें दूसरी कोई झलक न उठे, और न दूसरी कोई आशा ही जागृत हो। जो अपने हृदयके अधीश्वर हैं, भक्त केवल उन्हींको हृदयमें अनुभव करते हैं। इसी अवस्थामें हृदयासन उनके लिये अर्पित होता है। उसी प्रकार सहस्रारच्युत अमृत पाद्यरूपमें देना पड़ता है। किन्तु इसकी केवल मनमें कल्पना कर देनेसे ही काम न चलेगा। जब यथार्थरूपसे साधकके सहस्रारसे सुधा स्रवित होती है, तब उसके द्वारा साधक भगवान्‌के चरण प्रक्षालन करता है। वे चरण भी अद्भुत हैं, और उनका प्रक्षालन भी एक अद्भुत रहस्य है। तत्पश्चात् मनको अर्घ्य बनाकर उन्हें समर्पण करना होगा। जो वस्तु दे दी जाती है, वह फिर अपनी नहीं रह जाती—इस मनको अर्घ्यरूपमें निवेदन कर देना होगा, जिससे वह फिर हमारे सङ्कल्पोंका वाहक नहीं रह जायगा। तब मन सदाके लिये विष्णुके परमपदमें अपने आपको लीन कर देगा। फिर इस पूजाके लिये पुष्प भी कितने सुन्दर हैं! दयापुष्प, क्षमापुष्प, ज्ञानपुष्प, अहिंसा, इन्द्रियनिग्रहरूप परम पुष्प—और भी अनहङ्कार, अनासक्ति, अमद, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य, अलोभ आदि कितने सुन्दर-सुन्दर पुष्प हैं! इन पुष्पोंका चयन किये बिना इस पूजाका आयोजन ही कैसे होगा? इसीलिये सर्वत्र चरित्रबल, साधनबलकी प्राप्ति होनेपर इस पूजाका पुजारी बना जा सकता है। यही दिव्याचारका मार्ग है।

कौलाचार—यह कौलाचार एक बड़ा ही जटिल विषय है। परन्तु तन्त्रमें इसकी बड़ी प्रशंसा पायी जाती है। इसकी साधना वीराचारके ही समान है। परन्तु इसमें वीरता दिखानेकी अपेक्षा वीर बननेकी साधनाकी ओर ही विशेष लक्ष्य रक्खा जाता है। वीराचारकी साधनामें पहलेसे ही कुछ वीर होना, कुछ प्रकृत वीरत्वका होना परमावश्यक है, नहीं तो पतन अवश्यम्भावी हो जायगा। कुलाचारकी प्रणालीमें भी पञ्चतत्त्वोंका व्यवहार प्रचलित है अवश्य, परन्तु वह मत्स्य-मांसासक्त व्यक्तिको संयम-पथमें लानेकी एक चेष्टामात्र है। जो साधनहीन पुरुष इन पञ्च मकारोंमें डूबे हुए हैं, उनके उस घोर नशेको उतारनेके लिये, उन्हें और भी उच्चतर श्रेष्ठतर दिव्य मदका मार्ग दिखलानेके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवोंके प्रति भगवान् सदाशिवकी अद्भुत करुणा इस साधनामें प्रकाशित होती है।

भोगोंके पीछे पागल हुए मनुष्योंको भोगोंसे छुड़ाकर मोक्ष-सुखका स्वाद चखानेके लिये ही ऐसी व्यवस्था की जाती है।

भोग-बारुणीके साथ मोक्षकी शान्त सुधा मिला दी जाती है, इसी कारण कौलाचारको भोगमोक्षपथके नामसे पुकारते हैं। लक्ष्य तो केवल मोक्ष है, और भोग केवल उपलक्ष्य-मात्र है; मोक्ष लक्ष्य या उपेय है और भोग उसका उपाय या साधन है। जो बालक ओषधि नहीं खाना चाहता, उसे जिस प्रकार वैद्यराज खाँड या लड्डू का लोभ दिखलाकर ओषधि लेनेके लिये प्रलुब्ध करते हैं—यह भी प्रायः वैसी ही बात है। मोक्षकी इच्छामें भोगके उपकरणद्वारा भोगको संयत करना ही इसका उद्देश्य है। तन्त्रमें कुलाचारके सम्बन्धमें लिखा है—

यत्रास्ति भोगबाहुल्यं तत्र योगस्य का कथा।
योगेऽपि भोगविरतः कौलस्तूभयमश्नुते॥

जहाँ भोगबाहुल्य है, वहाँ फिर योगप्राप्ति सम्भव नहीं है, फिर जहाँ योगानुष्ठान है, वहाँ भोग नहीं रह सकता। परन्तु कुलाचारमें प्रवृत्त होनेपर साधक भोग और योग दोनोंको प्राप्त करते हैं। इसी कारण यह पथ अपेक्षाकृत सहज और इस युगके लिये उपयोगी माना जाता है। इसमें पञ्चतत्त्वोंका स्थूलभावमें ग्रहण करनेपर भी इनके व्यवहारके जो नियम हैं (अर्थात् पञ्चतत्त्व शोधन करके व्यवहार करनेकी प्रणाली) तथा उसकी शोधनप्रणाली भी इस प्रकार साधनाङ्गके साथ जोड़ दी गयी है कि उसमें भोगका नाममात्र ही रह जाता है—भोगवासना तृप्त करनेका अवसर ही नहीं रह जाता। पहले यह बात कही जा चुकी है कि इन तत्त्वोंके द्वारा जो साधनाका अनुष्ठान है वह भोगार्थ नहीं है, इन प्रवृत्तियोंसे छूट जाना ही इस साधनका उद्देश्य है। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है—

कुलाचारगता बुद्धिर्भवेदाशु सुनिर्मला।
तदाद्याचरणाम्भोजे मतिस्तेषां प्रजायते॥

'कुलाचारके अनुवर्ती होनेपर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है, तथा बुद्धिकी निर्मलतासे जगज्जननी आद्याके चरण-कमलमें स्थिरबुद्धि अर्थात् दृढ़मति उत्पन्न होती है।'

इससे समझा जा सकता है कि बुद्धिको निर्मला और ब्रह्ममुखी करनेके लिये ही भोगके द्वारा मोक्षका द्वार खोलना इस साधनाका उद्देश्य है। परन्तु इन तत्त्वोंका इच्छानुसार व्यवहार नहीं करना होगा। उपयुक्त गुरुके सम्मुख बैठकर यह अनुष्ठान करने पड़ते हैं। उपयुक्त गुरुके न मिलनेपर साधकको इन वस्तुओंको लेकर खेल नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेपर उससे लाभकी जगह हानि ही होगी। यदि कोई प्रश्न करे कि क्या इन कुपथ्योंके द्वारा कभी भवरोग नष्ट हो सकता है? उत्तर यह है कि हाँ हो सकता है। भगवान्ने इस जगत्की प्रत्येक वस्तुको इस कुशलतासे बनाया है कि उनके व्यवहारका यथार्थ ज्ञान होनेसे उनसे अमृतकी प्राप्ति हो सकती है, और व्यवहारदोषसे उन्हींसे विष भी उत्पन्न हो सकता है।

येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः।
तेनैव विषखण्डेन भिषग् नाशयते रुजम्॥

'जिस विषके खानेसे जीवकी मृत्यु होती है उसी विषके द्वारा वैद्य रोगीका रोग नाश करते हैं।'

इसलिये गुरु ऐसा होना चाहिये जो यथार्थ भव-रोगका वैद्य हो। कुलाचार जीवोंके भवबन्धन नष्ट करनेकी ही चेष्टा करता है। जीवको मद्यपी या लम्पट बनानेके उद्देश्यसे शास्त्रविधिकी रचना नहीं हुई है।

स्त्रीके द्वारा कुलाचारका साधन होता है, परन्तु उस स्त्रीको भोगकी वस्तु नहीं समझना होगा, उसे साक्षात् इष्टदेवीस्वरूपिणी समझे बिना कोई तन्त्रोक्त साधनामें सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। चण्डीमें भी लिखा है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥

'हे देवि! सारी विद्याएँ तुम्हारा अंशमात्र हैं। संसारकी सारी स्त्रियाँ तुम्हारा ही रूप हैं। एकमात्र तुम्हीं मातृरूपमें इस जगत्के बाहर-भीतर व्याप्त हो रही हो।'

अतएव तन्त्र इन तत्त्वोंको साधारण दृष्टिसे नहीं देखता। बुद्धि मलिन होनेके कारण ही हम पवित्रभावसे तन्त्रोंको नहीं देख सकते। महानिर्वाणके सप्तमोल्लासके अन्तमें इसी कारण इसके व्यवहारके सम्बन्धमें सावधान कर दिया गया है—

असंस्कृतञ्च यत्तत्त्वं मोहदं भ्रमकारणम्।
विवादरोगजननं त्याज्यं कौलैः सदा प्रिये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पञ्चतत्त्व विधिपूर्वक शोधित न होनेपर केवल मोह और भ्रमका कारण बनते हैं, विवाद और रोग भी उत्पन्न करते हैं—अतः कौलोंको असंस्कृत तत्त्वोंका सर्वतोभावेन त्याग करना चाहिये ।

तन्त्रोक्त साधनामें बहुत शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है । जो सिद्धिलाभके लिये समुत्सुक हैं वे ही तन्त्रोक्त प्रणालीसे साधन करनेमें अग्रसर हो सकते हैं । परन्तु इससे साधन-सिद्धि जैसे थोड़े ही दिनोंमें हो जाती है, इसी प्रकार इसमें उसी परिमाणमें साधनाकी उत्कटता भी अत्यन्त अधिक होती है । यह उत्कटभावकी साधना क्यों गृहीत हुई, इसपर विचार नहीं करना है, क्योंकि यह किसी मनुष्य-विशेषके चिन्तनका फल नहीं है । यह साधकोंके साधनसे प्राप्त अनुभवके द्वारा आविष्कृत हुआ है—जिस अवस्थामें उन साधकोंको इसका ज्ञान हुआ है, उसको सदाशिवकी उक्तिके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? तन्त्रोक्त साधनाके स्थान और कालके विषयमें विचार करके देखिये। वह जीवके साधारणभावमें स्थित चित्तके द्वारा हो ही नहीं सकता । पहले सोचिये, साधनाका स्थान ही कैसा भयङ्कर है, वहाँ दिनमें भी जानेमें भय होता है । जहाँ नरकंकाल, नरमुण्ड और विच्छिन्न कंकालराशि इधर-उधर बिखरे पड़े हों, निर्जन, दुर्गन्धसे परिपूर्ण, सियारोंकी चिल्लाहट-से विभीषिकामय बने हुए श्मशानक्षेत्रमें अमावास्याके घोर अन्धकारमें मृतदेहके वक्षःस्थलपर बैठकर साधन करना होता है! बतलाइये, इसमें साधकके लिये कितने असीम साहसकी आवश्यकता है । इसीके लिये इसीके उपयोगी तत्त्वोंका भी प्रयोजन होता है ।

जिनका इस मार्गमें अनुराग नहीं है, जिन्हें इन वस्तुओंसे यथेष्ट घृणा है, जानना चाहिये कि उनके लिये यह मार्ग कदापि नहीं है । क्योंकि शास्त्र जीवोंकी प्रकृतिकी विचित्रताका विचार करके ही नाना प्रकारके मार्गोंका उल्लेख करते हैं । जीवके रुचिभेदसे भिन्न-भिन्न भावमय उपास्य देवता और उनकी साधनप्रणालीमें भेद होते हुए भी चाहे जिस मार्गका अवलम्बन किया जाय, साधकके लिये लक्ष्यस्थानपर पहुँचनेमें असुविधा नहीं होती, तथा सब साधनाओंके चरम लक्ष्य भगवान् भी पृथक्-पृथक् नहीं हो जाते । अतएव साधनाकी प्रणाली चाहे जो हो भगवत्-प्राप्तिके विषयमें कोई वैलक्षण्य नहीं घटता । पद्मपुराणमें लिखा है—

सौराश्च शैवगाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः ।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा ॥

पुनः यह भी विचार रखना होगा कि समस्त शास्त्र ऋषिप्रणीत हैं । हमारे-जैसे अज्ञ पुरुष शास्त्ररचना नहीं कर सकते, इसलिये साधनके पथ भिन्न हों, विकट हों, या बीभत्स हों, हम उनकी निन्दा या उपहास नहीं कर सकते। जीव जिस प्रकार त्रिगुणान्वित है उनकी साधनपद्धति भी उसी प्रकार गुणभेदसे विभिन्न प्रकारकी होगी । ऋषिप्रोक्त शास्त्रोंकी यथार्थ महिमा ही यही है कि साधनपथ बाह्य दृष्टिसे चाहे जितना विकट और बीभत्स हो, साधक यदि यथार्थमें भगवान्‌को लक्ष्यकर अकपट भावसे साधनामें अग्रसर होता है, तो अन्तमें साधनाका अन्तिम फल भगवत्प्राप्ति उसे होगी ही । स्थूल दृष्टिसे किसी-किसी तन्त्रोक्त साधनप्रणालीको चाहे हम कितना ही हेय क्यों न समझें, प्रकृत साधकके निकट वह हेय नहीं हो सकती।

यहाँतक तन्त्रोक्त स्थूल अनुष्ठान पद्धतिकी ही आलोचना की गयी है अब इसके परम रमणीय आध्यात्मिक साधनके विषयमें कुछ लिखा जाता है । (क्रमशः)

रामकी रीति

शरणागत शत्रु-सहोदरको लखना उनकी नृप-नीति नहीं।
निज दासके द्रोहीको मारनेमें उनको अपगीतिकी भीति नहीं॥
सबरीके चखे बदरीफलकी क्या करी थी उन्होंने प्रतीति नहीं ।
कर प्रीति जिसे अपनाया उसे तजना यह रामकी रीति नहीं ॥

—विश्वनाथ मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वार्थी असुर

(अ०—श्रीबालमुकुन्दजी वर्मा)

सन्ध्याके समय बालक पाठशालासे आकर असुरके उद्यानमें खेला करते थे।

यह उद्यान अत्यन्त मनोहर था। इसकी हरी-हरी मखमली घास चित्ताकर्षक थी। इस घासमें इधर-उधर हर तरफ अति सुन्दर पुष्प आकाशमें तारागण-की भाँति चमक रहे थे। इसी उद्यानमें आड़ू, आम, सेब, नासपाती आदिके पेड़ खड़े लहलहा रहे थे और उनकी टहनियोंके साथ फलोंके गुच्छे लटक रहे थे। पेड़ोंके ऊपर रंग-बिरंगे पक्षी बैठे चहचहा रहे थे। उनके मधुर संगीतको सुननेके लिये बालक अपना खेलकूद बन्द करके मन्त्रमुग्धकी नाईं खड़े-के-खड़े रह जाते और पुकार उठते, 'अहा! कैसा सुहावना बगीचा है।'

असुर महाराज अपने एक मित्र असुरके साथ मुलाकात करनेके लिये बाहर गये हुए थे। श्रीमान् असुरजीको अपने मित्रके साथ कुछ बातें करनी थीं, इसीमें उनके सात वर्ष व्यतीत हो गये। इस बीच बालक उस उद्यानमें आकर निष्कण्टक खेलते रहे।

श्रीमान् असुरजी मुलाकात समाप्त करनेके अनन्तर एक दिन अपने महलमें लौटे, देखा कि बालक उद्यान-में खेल रहे हैं। उनके क्रोधका वारापार न रहा। आँखोंमें खून भर आया। बालकोंका स्वच्छन्द नटखट नाच और खेल-कूद उन्हें एक आँख भी न भाया, भयानक स्वरमें वे गूँज उठे, 'अरे, यहाँ क्या कर रहे हो?' बालक दौड़ चले!

'मेरा महल, मेरा उद्यान, ये वृक्ष तथा यह हरी-हरी घास, ये वृक्षोंके फल मेरी मिलकियत हैं। मेरी मिलकियतमें दूसरेका क्या हक है। अपनी मिल-कियतमें मैं ही खेल-कूद सकता हूँ—दूसरा नहीं।' यह सोचकर असुर महाराजने एक ऊँची दीवार अपने बगीचेके इर्दगिर्द बना दी और एक नोटिसबोर्ड लगा दिया—

'अन्दर आनेवाला सज़ा पायेगा।'

ग्रामके बालकोंके खेलनेके लिये और कोई रमणीक स्थान न था, बेचारे सड़कपर ही खेलने-कूदने लगे। सड़ककी मिट्टी, सड़कके कंकड़ उनको कष्ट देने लगे। सड़कको छोड़कर वे गरीब बालक बगीचेकी दीवारके बाहर ही टहलते रहते और उद्यानकी रमणीयताके गीत गाते रहते और बड़ी उत्सुकताके साथ आपसमें यही कहते, 'अहा! दीवारके भीतर कैसा रमणीक उद्यान है।'

शीत ऋतुका अन्त हुआ। वसन्त फूली। प्रान्तमें हर जगह, हर तरफ वृक्ष फूले, कलियाँ फूटीं, फूल खिले और पेड़ोंपर बैठे पक्षी अपना-अपना मधुर राग अलापने लगे।

केवल असुर महाराजके उद्यानमें अभीतक शीत ऋतुका ही दौर-दौरा था। पक्षियोंकी चहचहाहट बन्द थी, क्योंकि उद्यानमें बालक तो नज़र ही न आते थे। वृक्ष भी फूलना भूल गये। कदाचित् फूलकी एक कली घासमेंसे फूट निकली परन्तु नोटिसबोर्डको देखते ही कलीका कोमल हृदय बैठ-सा गया और वह भी चुपकेसे घासके भीतर ही अन्तर्धान हो गयी।

हाँ, कुछ व्यक्तियाँ ऐसी थीं जो उजड़े हुए उद्यान-को देखकर प्रसन्नचित्त थीं, वह थीं 'बरफ़' और 'कोहरा' 'बसन्त इस उद्यानको भूल ही गयी है—अब वह यहाँ नहीं आवेगी। अब इस उद्यानमें सर्वथा और सर्वदा हमारा ही आधिपत्य रहेगा' बरफ़ और कोहरेने कहा!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरी-हरी घास सूखकर काँटा बन गयी। रुण्ड-मुण्ड पेड़ोंकी सूखी हुई टहनियोंपर भी सफेद कोहरा जम गया। बर्फ और कोहरा दोनों मित्रोंने अपनी सहेली 'उत्तरी हवा'को निमन्त्रण भेजा। वह भी आ पहुँची!

वह महामाया इतने वेगसे चलने लगी कि असुर महाराजके महलकी खिड़कियाँ और दरवाज़े घोर नाद करने लगे। वृक्षोंकी सूखी हुई टहनियाँ कड़कड़ाकर गिरने लगीं।

उद्यान तथा महलको तहस-नहस करनेके लिये अब केवल 'ओला' महाशयकी ही कसर थी, तीनों मित्रवरोंने परामर्श करके उनको भी न्योता भेज दिया, वह भी दलबलसहित आ विराजे। दिन-रातमें तीन घण्टे असुर महाराजकी नौकरी बजानेका निःस्वार्थ भार अपने कन्धोंपर उठा लिया। छतों, दीवारों, खिड़कियों और दरवाज़ोंपर लगातार खटखटाहटकी आवाज़ने असुर महाराजके लिये एक अपूर्व संगीतका समा बाँध दिया, शीशे टूट-टूटकर उद्यानमें गड़ गये, छतोंकी स्लेटें चकनाचूर हो गयीं, बगीचेके पेड़ सूख गये।

असुर महाराज अपने महलके दीवानखानेके एक झरोखेमें बैठकर अपने बगीचेकी दशा निहारने लगे और कहने लगे, 'ओह! उद्यानमें बसन्तका नामोनिशान नहीं, सब तरफ़ सफेदी-ही-सफेदी है, शीतसे हर चीज़ ठिठुरी हुई पड़ी है। आह! कभी यहाँ भी बसन्त आवेगी?' परन्तु बसन्त नहीं आयी। ग्रीष्म ऋतुका तो कहना ही क्या। दूसरे स्थानोंमें फल लगे, डालियाँ उनके बोझसे झुक-झुककर अपने फल सब छोटे-बड़ोंके लिये सुलभ कर रही थीं, लेकिन असुर महाराजके उद्यानके पेड़ अकड़े खड़े थे। बसन्तने स्वार्थी असुरके आँगनमें सज़ाके डरसे पदक्षेप नहीं किया। उस उद्यानमें निरन्तर शीत, बरफ़, उत्तरी हवा, कोहरा और ओलोंका ही दमदमा लगा रहा।

एक दिन प्रातःकाल असुर महाशयको बिस्तरमें पड़े हुए एक अपूर्व संगीत सुनायी दिया। उसने समझा कि राजकीय संगीतमण्डली उसके महलके पाससे जा रही है। वस्तुतः एक कोयल उसकी खिड़कीके पास अलाप रही थी। उसको ऐसा गाना सुने इतना अधिक समय बीत गया था कि वह उस कोयलके अलापको ही तानसेनी संगीत मान बैठा। फिर उसने अनुभव किया कि अति शीतल उत्तरी हवा जो रोज़ उसके उद्यानमें चला करती थी, बन्द है और खिड़कीके बीचमेंसे उसे भीनी-भीनी पुष्प-सुगन्ध आने लगी। असुर महाशयने अनुभव किया कि बसन्त आ गयी। वह बिस्तरसे कूदकर खिड़कीमेंसे बाहरकी ओर झाँकने लगा।

बाहर देखते ही वह चकित-सा रह गया। उसकी बनायी हुई दीवारमें एक सूराख हो गया था और उस सूराखमेंसे घुसकर आये हुए बालक वृक्षोंकी टहनियोंपर बैठे हुए थे। वृक्ष बालकोंके आनेसे प्रसन्नचित्त होकर फूलोंसे लदे हुए थे और बालकोंपर अपनी टहनियोंकी छत्रछाया किये हुए प्रफुल्लित हो रहे थे। घास हरी-भरी हो रही थी और उसके बीचमेंसे बहुरंगे फूल निहार रहे थे। पक्षीगण अपना मधुर अलाप अलाप रहे थे। चारों दिशाओंमें आनन्द और उल्लास छा रहा था।

यह दृश्य अति मनोहर था, परन्तु उद्यानका एक कोना अभी जैसे-का-तैसा ही ठिठुरा हुआ मूक पड़ा था। उस कोनेमें एक छोटा-सा बालक अकेला ही खड़ा था। वह इतना छोटा था कि वृक्षोंकी शाखाओंतक नहीं पहुँच पाता था। वह वृक्षके इर्द-गिर्द ज़ोरोंसे घूम रहा था और साथ-ही-साथ रोता भी जाता था और सिसकियाँ भर रहा था। इस वृक्षपर बरफ़का जमाव अभी ज्यों-का-त्यों ही था। उत्तरी हवाके ज़ोरके धक्के इसे लग रहे थे। वृक्षने बालकसे कहा—'बेटा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़ आओ' और अपनी टहनियोंको इतना नीचा कर दिया जितना कि सम्भव था, परन्तु फिर भी बालक बहुत नन्हा होनेके कारण वहाँतक नहीं पहुँच सका!

यह देखकर असुरका हृदय पसीजा, उसने कहा—'हा, मैं कैसा स्वार्थी हूँ। अब मुझे मालूम हुआ कि मेरे उद्यानमें क्यों बसन्त ऋतु आती ही न थी। मैं उस नन्हे बालकको अभी वृक्षपर चढ़ा दूँगा, मैं उस दीवार-को जो मैंने बालकोंको रोकनेके लिये बनवायी थी—उस निगोड़ी दीवारको—फौरन गिरा दूँगा। आजसे, अभीसे मेरा उद्यान बालकोंके लिये ही रहेगा, केवल उनके मनोरञ्जनके लिये ही! हाँ अभीसे और सर्वदा वह बालकोंका उद्यान रहेगा।'

राक्षस अपने महलकी ऊँची अट्टालिकासे नीचे उतरा और आहिस्ता-आहिस्ता बगीचेमें पहुँचा। बालकोंने ज्यों ही उसको देखा, भयभीत होकर वे वहाँ-से भाग निकले और वही उद्यान जो अभी-अभी फलों और खिले हुए फूलोंकी सुगन्धसे महक रहा था फिर-से रुण्ड-मुण्ड हो गया।

केवल एक वह नन्हा बालक जो उद्यानके दूसरे कोनेमें खड़ा रो रहा था, नहीं दौड़ा क्योंकि उसकी अश्रुओंसे भरी हुई आँखोंने असुरको देख ही नहीं पाया था।

असुर चुपकेसे उसकी ओर बढ़ा और आहिस्ता-से बालकको उठाकर उसे वृक्षकी टहनीपर बैठा दिया। रुण्ड-मुण्ड वृक्ष आन-बानमें हरा हो गया, फलों और फूलोंसे लद गया। पक्षी आ-आकर वृक्षकी टहनियों-पर बैठ गये और अपने मधुर राग अलापने लगे। नन्हे बालकने अपने कोमल हाथ आगेको बढ़ाये, अपने आपको असुरके गलेका हार बना दिया और प्रेमभरे नयनोंसे असुरकी ओर देखकर मुसकराते हुए अधरों-से राक्षसके मस्तकपर रसभरा चुम्बन दे दिया। असुर निहाल हो गया।

दूसरे बालक जो दूरसे इस घटनाको देख रहे थे निर्भय हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि असुर अब असुर नहीं रहा और वह दौड़ते हुए बागमें फिर घुस आये और वृक्षोंपर चढ़ गये। उद्यान फिरसे हराभरा हो गया। असुर महाशय बोले, 'पुत्रो! आजसे यह बाग तुम्हारा ही है, खेलो-कूदो और मौजसे फल खाओ' उसने दीवारको उसी क्षण तोड़ डाला।

बालक स्वच्छन्दतासे उद्यानमें सारा दिन खेला-कूदा करते और सन्ध्याको असुरको नमस्कार करके घर लौट जाते।

एक दिन असुर देवताने बालकोंसे पूछा कि 'वह नन्हा-सा बालक जिसको मैंने स्वयं वृक्षपर चढ़ाया था, वह फिर कभी देखनेमें नहीं आया।' असुर महाराज उस चुम्बनसे जो उस बालकने उनके माथे-पर दिया था, अति प्रसन्न थे और इच्छा यही थी कि वह बालक फिर मिले।

बालकोंने कहा कि 'हम उस नन्हे बालकको, जिसके आगमनसे हमें वह उद्यान मिला है जानते ही नहीं और न उसको उससे पहले अथवा उसके बाद कभी हमने देखा है।' इससे असुरके दिलमें कुछ चोट-सी लगी।

प्रतिदिन बालक उद्यानमें आते, खेलते-कूदते। असुरजी भी उनके साथ खेलते परन्तु वह बालक फिर कभी न आया।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। राक्षस देवता भी वयोवृद्ध हो गये। शरीरके क्षीण होनेके कारण अब वह बालकोंके साथ खेल नहीं सकते थे, आरामकुरसीमें बैठकर दूरसे ही बालकोंकी खेल-कूदका आनन्द लेते, कभी-कभी कह देते 'अरे, बागमें अपूर्व फूल हैं पर ये बालक तो उन फूलोंमें भी अपूर्व ही हैं।'

शरद् ऋतु फिर आयी, फूल-पत्ते झड़ गये। परन्तु असुर देवताको अब शरद् अथवा शीतसे वह पहली घृणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी। वह जानते थे कि बसन्त केवल सो रही है फिर जगेगी और फिर वह पहलेकी-सी चहल-पहल होगी।

शीत यौवनपर थी। उद्यानमें सर्वत्र घास सूखी हुई थी, पेड़ रुण्ड-मुण्ड खड़े थे। एक दिन प्रातः असुर देवता शय्यासे उठते ही देखते हैं कि उसके उद्यान-का वही कोना बसन्तसे फला-फूला है—वह वृक्ष हरा-भरा खड़ा है, फूल खिल रहे हैं और उसी वृक्षके तले वही नन्हा बालक खड़ा है।

असुर देवता दौड़ते हुए महलसे नीचे उतरे और उस कोनेकी ओर झपटे। बालकके पास पहुँचते ही उन्होंने देखा कि बालकके दोनों हाथों और दोनों पैरों-में कील गाड़नेके चिह्न-से पड़े हुए हैं। क्रोधातुर होकर बालकसे धीरेसे कहा—'बेटा, यह घाव किसने लगाये हैं, यदि तुम बताओ तो मैं अभी उस निर्दयीका सिर काटकर तुम्हारे पैरोंपर रख दूँ।'

बालकने प्रेमभरे स्वरमें कहा, 'मित्रवर! घबराओ मत, यह घाव द्वेषके नहीं, प्रेमके हैं।'

असुर (कुछ घबराकर) 'तुम कौन हो'—इतना कहते ही असुर देवता बालकके पैरोंपर विनयपूर्वक दण्डवत् करने लगे।

बालकने मुस्कानभरी निगाहसे राक्षसकी ओर देखा और कहा 'तुमने मुझे अपने उद्यानमें प्रेमपूर्वक खेलाया था न? आज मैं तुम्हें अपने बाग (परम धाम) में खेलनेके लिये ले जाना चाहता हूँ।'

सन्ध्याको जब दूसरे बालक उद्यानमें आये तो उन्होंने देखा कि असुर देवताका शव वृक्षके नीचे पड़ा है और श्वेत फूलोंसे लदा हुआ है।*

अध्यात्मकी ओर!

है नहीं किसीको मैंने, सुख-निद्रा सोते देखा।
हा! जन्म लिया है जबसे, जग सारा रोते देखा॥
इस चक्रव्यूहमें किसने, रे! सुख उपभोग उठाया।
वह छला गया जो इसमें, एकाकी दौड़ा आया॥
इस नश्वर जग-जीवनमें, मायामें रास मचाया।
औ सुख-लिप्सामें देखी, उस कल्प-वृक्षकी छाया॥
है हुई यहाँपर मेरी, आते ही रोचक-रोली।
हा! आँखें मींची, कर दी, आ! किसने नंगा-झोली॥
तत्काल चितामें जलते, लोगोंने मुझको देखा।
औ 'मृतक-विरति' की सबने, मानसमें खींची रेखा॥
यह ओस-बिन्दु-सा जीवन, उन्मत्त उषा लहराता।
पर दिन चढ़ते ही स्वयमपि, है रज-कणमें मिल जाता॥

—दयालगिरि गोस्वामी

* "The Selfish Giant" by Oscar wilde.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सन्तके अमृत-वचन *

(संग्रहकर्ता—श्रीदेवीचरणजी निगम एम० ए०)

तुम अपनेको देह मत समझो। तुम्हारा स्वरूप यह शरीर नहीं है। तुम मूत्र नहीं हो। तुम मल नहीं हो। क्योंकि इनके त्यागनेपर भी तुम बने रहते हो। तुम केश नहीं हो, जो आठवें रोज काट दिये जाते हैं। तुम वह हो जिसकी स्थितिसे तुम्हारे शरीरकी स्थिति है। जिसके निकलनेसे तुम्हारा शरीर सड़ जाता है।

× × × ×

तुम अमर हो, अजर हो, आनन्दमय हो। तुम्हारा वह स्वरूप है, जिसके लिये गीता कहती है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

× × × ×

तुम्हारे मनसे ही यह सारा संसार है। परमपद पानेकी इच्छा हो तो मनका नाश करो। कहा है—

मनोनाशः परमं पदम्।

गायके चार पैर होते हैं। उनमेंसे यदि एक भी काट दिया जाय, तो गाय चल नहीं सकती। ऐसे ही प्रत्येक ग्रन्थके चार अङ्ग होते हैं। उसका पढ़ना, उसके अर्थ समझना, उसके भावार्थ समझना और उसके अनुसार रहनी रहना। अगर तुमने ग्रन्थ पढ़ लिया पर उसके अर्थ, भावार्थ न समझे तो तुम्हारा पढ़ना व्यर्थ है। अर्थ-भावार्थ समझ भी गये और रहनी न रहे, उसके अनुकूल अपनी दिनचर्या, अपना आचरण नहीं बनाया, तो भी पूरा लाभ नहीं होता। इससे मेरे भाई! चाहे थोड़ा ही पढ़ो, मगर अपनी रहनी वैसी ही बना लो।

× × × ×

बहुत ज्यादा पढ़नेसे कोई लाभ नहीं। एक ग्रन्थ पकड़ो, गीता ले लो, उसपर अमल करो। बस, तुम्हारा कल्याण है।

× × × ×

गीताका एक ही श्लोक ले लो। उसपर चलो। उसके अनुसार बन जाओ, बस, तुम मुक्त हो। गीता कहती है—

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥
(५।२८)

'जिस मनुष्यने अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये जीत लिये हैं, जो मुनि यानी मननशील है, जो मोक्षके साधनोंमें लगा है, जिसको इच्छा, भय, क्रोध आदि कोई वेग नहीं हैं, वह मनुष्य सर्वदा मुक्त है।' इन सब बातोंको पकड़ो, अपनी दिनचर्यामें इनका समावेश करो।

प्र०—भगवन्! इन्द्रियोंके जीतनेसे क्या मतलब है?

उ०—प्यारे! इन्द्रियोंके जीतनेसे अभिप्राय है 'इन्द्रियोंको वेदानुसार चलाना।' इन्द्रियोंको कोई एकदम बन्द नहीं कर सकता। जैसे वेदोंमें लिखा है, इन्द्रियोंसे वैसे ही काम लेनेको 'इन्द्रियोंको जीतना' कहते हैं।

* सौभाग्यसे और पूर्वजन्मके संस्कारोंसे मुझे भी कभी-कभी बैरीनिवासी श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीस्वामी एकरसानन्दजीके मंगलमय चरणकमलोंमें बैठनेका अवसर प्राप्त हुआ है। कभी-कभी उनके अमृतमय उपदेश भी सुननेको मिले हैं। उनमेंसे थोड़े-से मैंने लिख लिये थे। वही आज 'कल्याण' के पाठकोंके सामने उपस्थित करता हूँ। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०–मुनि कौन है ?

उ०–मुनि कहते हैं मननशीलको, जो इस बातका मनन करे, विचारे, कि संसारमें सत् वस्तु क्या है और असत् वस्तु क्या है ।

× × × ×

देखो यह तीन अङ्क हैं—'१११' । इनका ऐसा विवेचन है ।

१ (प्रकृति) १ (जीव) १ (ईश्वर) । ईश्वरका मुख जीव और प्रकृति दोनोंकी ओर है । वह दोनोंको देखता है । जीवका मुख प्रकृतिकी ओर है । ईश्वरकी तरफ उसने पीठ कर दी है। बस, इसीलिये उसे दुःख है । जिस दिन वह ईश्वरकी ओर मुख कर लेगा, वह तुरन्त ही निहाल हो जायगा । प्रकृति जड़ होनेकी वजहसे अन्धी है । वह कुछ भी नहीं देखती ।

× × × ×

सगुण-निर्गुणमें कोई भेद नहीं है । दोनोंमें एक ही ईश्वरकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं । जब ईश्वर काम करने लगता है, तब वह सगुण हो जाता है । जब वह विश्राम करने लगता है, तब निर्गुण कहलाता है ।

प्र०–भगवन् ! अभी पूरे तौरसे भेद समझमें नहीं आया ।

उ०–देखो रेलवेके इञ्जिनको । जब वह रेल चलाता है, तब वह सगुण है, जब वह बिना काम किये खड़ा रहता है, तब निर्गुण है ।

× × × ×

सब शास्त्रोंसे 'मानस-शास्त्र' बड़ा है । इसीको समझो, तुम्हारा कल्याण होगा ।

× × × ×

तुमसे कोई पूछे कि तुम काँच बनना चाहते हो या हीरा । तुम यही कहोगे कि हम हीरा बनना चाहते हैं । परन्तु हीरा बननेके लिये तुम्हें अपनेमें हीरेके गुणोंका विकास करना पड़ेगा । निहाईपर काँचको रखकर पीटो । एक ही चोटमें चूर-चूर हो जायगी । फिर हीरेको रक्खो । उसपर चाहे जितनी चोटें लगाओ वह वैसे-का-वैसा बना रहेगा । ऐसे ही जब तुमपर आपत्तियोंके पहाड़ टूट-टूट गिरें और तुम वैसे ही मस्त बने रहो, तुमपर कोई असर न आवे, तब तुम हीरे बन जाओगे । तुम्हारे शरीरका मूल्य ही बहुत अधिक हो जायगा । जीवात्माका तो कहना ही क्या !

× × × ×

अनन्त ईश्वरकी सृष्टि भी अनन्त है । आजकल सन् १९३४ है । सन् १८३४ में यह सृष्टि ऐसी ही हरी-भरी थी । परन्तु १८३४ में हम-तुम इस रूपमें नहीं थे । और न २०३४ में रहेंगे । एक दिन चलना है । इस जीवनको व्यर्थ नहीं खोना चाहिये । परलोकके लिये कुछ कर लेना ही अच्छा है ।

× × × ×

संसारको स्वप्नवत् जानो । जीवको दुःख इसीलिये है कि वह इसे सच्चा मान बैठा है । स्वप्नमें जो वस्तु दिखायी देती है उसे जीव उस समय सच मान लेता है । उसे दुःख-सुख होने लगते हैं । जागते ही उसका भ्रम मिट जाता है । उसे अपनी भूल मालूम हो जाती है । यदि स्वप्नावस्थामें ही वह उन दृश्योंको भ्रम समझ लेता तो उसे सुख-दुःख न होता । ऐसे ही इस जाग्रदवस्थाके संसारका हाल है ।

प्र०–यह संसार और इसकी वस्तुएँ तो देखनेमें सच मालूम होती हैं ।

उ०–देखो, तीन अवस्थाएँ होती हैं । सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत् । ये तीनों तीन गुणोंसे बनी हैं । तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण । सुषुप्ति-अवस्था तमोगुणसे, स्वप्नावस्था रजोगुणसे और जाग्रदवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्त्वगुणसे बनी है। स्वप्नावस्था रजोगुणसे बनी होनेकी वजहसे थोड़ी ही देर ठहरती है। सत्त्वगुणमयी होनेसे जाग्रदवस्था ज्यादा देरतक ठहरती है। इस कारण जाग्रत् संसारमें सत्यताका आभास मालूम होता है। वास्तवमें वह भी असत् है।

× × × ×

अपने-अपने संस्कारके अनुसार सुख-दुःख सबको होते रहते हैं। तुम्हारे परिवारमें माँ-बाप, स्त्री-पुत्रादि जो कोई हों उनको जहाँतक तुमसे बने सुख पहुँचाओ। यही तुम कर सकते हो। बाकी परेशान होना व्यर्थ है।

× × × ×

संसारके भोगोंमें मत फँसो। भोग तो तुम्हारे लिये सभी योनियोंमें तैयार हैं।

× × × ×

मनुष्यकी दशा खरबूजेके फलके समान है। पकनेपर खरबूजा तुरन्त बेलसे अलग हो जाता है। यही हालत मनुष्यकी है।

× × × ×

दस बजे सो जाओ। चार बजे उठो। चारसे छःतक परमात्माका भजन करो। बाकी घण्टोंमें चाहे संसारका काम करो। कम-से-कम डेढ़ घण्टा तो रोज़ भजन किया करो। तुम्हारा बहुत कल्याण होगा।

× × × ×

देखो चार बजे मुर्गा उठकर बोलता है। तुम क्या उससे भी गिर गये? इन्द्रियोंके गुलाम मत बनो। चार बजे उठ बैठो। बिस्तरा छोड़ दो।

× × × ×

संसारके काम छोड़नेकी ज़रूरत नहीं है। संसारमें रहकर, गृहस्थीमें रहकर, तुम्हारी मुक्ति हो सकती है। संसारमें चिपटो नहीं। नीतिके अनुसार सब काम करो। देखो राजा जनक गृहस्थ थे। फिर भी शुकदेव मुनि उनसे ब्रह्मविद्या सीखने आये।

× × × ×

सब कार्योंको ईश्वरका विधान समझकर तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिये। तुम्हारा हित, तुमसे अधिक, ईश्वर समझता है। वह सब काम तुम्हारे हितके लिये करता है। मनुष्य अपनी मूर्खतासे उन्हें उलटे समझकर दुखी होने लगता है। स्वामी रामतीर्थ कालेजमें भर्ती होने गये थे। उनकी अर्ज़ी नामंज़ूर हो गयी, और वे भर्ती नहीं हुए। यह सब सुनकर वे दुखी होनेके बजाय हर्षसे नाचने लगे। वे कहने लगे कि ईश्वरको इससे और कुछ अच्छा करना है।

× × × ×

अखण्ड प्रफुल्लित रहो, दुःखमें भी। चाहे कैसा ही दुःख पड़े, गुलाबके फूलकी तरह खिले बने रहो।

× × × ×

खूब हिम्मत रक्खो। पाताल खोदकर पानी निकालो। अगर तुममें हिम्मत नहीं, तो तुम्हारी कीमत भी नहीं।

× × × ×

सत्त्वशुद्धिके लिये आहार-शुद्धिकी आवश्यकता है। आहार-शुद्धि बिना कोई काम नहीं बनता। कहा है—'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। जैसा पीवे पानी, वैसी होवे बानी'—उड़दकी दाल, घुइयाँ, भिंडी, मछली, मांस, मद्य, लाल मिर्च, लहसुन, प्याज, ये सब चीजें विषकी तरह छोड़ देनी चाहिये। दूध पाव-डेढ़पाव एक उबालका पीना चाहिये, नियत समयपर स्वल्पभोजन करना चाहिये। अगर इसका ध्यान न होगा, तो योग रोग हो जायगा।

× × × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जठराग्नि दीप्त रखनेके लिये कोई व्यायाम अवश्य करना चाहिये। योगके आसन ही किया करो।

× × × ×

सत्संग किया करो। देखो, शब्दोंमें शक्ति होती है। जैसे शब्द सुनोगे, या पढ़ोगे, वैसा ही तुम्हारा मन बनेगा। अभी हम तुम्हें गाली दे दें; तुम्हें दुःख होगा। क्रोध हो आयेगा।

प्र०—भगवन्! सत्संग किस तरह करें?

उ०—देखो, दो-चार आदमी अपने मुहल्लेके इकट्ठा कर लो। रोजका एक कोई समय नियत कर लो। ऐसा समय जिसमें सबको सुभीता हो। एक आदमी तुलसीकृत रामायणका पाठ करे, बाकी सब लोग उसके साथ कहा करें। यह एक प्रकारका सत्संग हो जायगा।

× × × ×

हमारे शरीरमें एक प्रकारके शब्द हो रहे हैं। इन्हीं शब्दोंके कारण हमारा शरीर हरा-भरा और जीवित है। मृत्युके आठ रोज पहले ये शब्द बन्द हो जाते हैं। फिर शरीर सड़ने लगता है। योगियोंको ये शब्द सुनायी देते हैं इसीलिये उन्हें मौतका समय मालूम हो जाता है।

× × × ×

व्यभिचारिणी स्त्रीको जानते हो। वह घरका काम-धन्धा तो सब करती है, परन्तु उसका मन पर-पुरुषमें लगा रहता है। तुम उससे शिक्षा लो। उसीकी भाँति संसारके काम-काज तुम भी करो। परन्तु मन परमात्मामें लगाये रक्खो।

× × × ×

तुम साधक-अवस्था चाहते हो, तो शिवजीका चित्र देखो। वे आँखें बन्द किये बैठे हैं। मायाको वे देखते ही नहीं। मानो मायासे वे कहते हैं कि तुम हमें सताती हो तो हम तुम्हें देखेंगे ही नहीं।

और यदि सिद्ध-अवस्था जानना चाहते हो तो श्रीकृष्णजीका चित्र देखो। वे आँखें खोले मायाको देखते और हँसते हैं। मानो वे कहते हैं, मायाको मैं जान गया हूँ। माया मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

× × × ×

जिस तरह गङ्गाकी धार हमेशा चलती रहती है, ऐसे ही जबतक तुम जीवित हो, तुम्हारे हाथ-पैर हमेशा चलते रहें। बराबर काम करते रहो। आलसी मत बनो।

विनोद

इक दिन गया था शीतल अमराईकी तरफ़। गरमीके दिन थे जब कि धनी पीते हैं बरफ़॥
एक वृक्ष सघन छाया संपन्न मिल गया। शीतल पवनको पाकर दिल मेरा खिल गया॥
बैठा ज़मींके फर्शपर आसन जमा वहाँ। आये युगल बटोही जब मन रमा वहाँ॥
थे एक कर्मकांडी औ एक ज्ञानवान। दोनों स्वरूपवान् थे दोनों थे शीलवान॥
कर्मठने पूछा हँसकर 'हे स्वामिजी महान। क्यों तुम नहीं हो करते संध्या त्रिकाल ध्यान॥'
बोले यती कि 'मर गयी माया हमारी मा। इक पुत्र घरमें जन्मा है ज्ञान नामका॥
दोनों अशौच वेरे रहते हैं रात-दिन। संध्या करूँ तो कैसे उसमें बहुत है टिन॥'

—म० बालकराम विनायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[गतांकसे आगे]

भगवद्भक्त अम्बरीष एकादशीके व्रतके अनन्तर द्वादशीके दिन 'पारण' करनेकी तैयारी कर रहे थे। इसके पूर्व केवल एक एकादशीका ही उपवास न था 'त्रिरात्रं समुपोषितः' तीन दिनका उपवास हो चुका था। परन्तु नियमानुसार दान देना, ब्राह्मणोंको भोजन कराना, आये हुए अतिथियोंका सत्कार करके फिर पारण करना आवश्यक था। इसलिये जैसे ही दानादिसे निवृत्त हुए कि महर्षि दुर्वासा राजाके यहाँ आ गये। उनसे भोजनके लिये प्रार्थना करना राजाको आवश्यक हो गया। महर्षि इसको स्वीकार करके आह्निकके लिये नदीपर चले गये, किन्तु वहाँ उन्होंने बहुत विलम्ब कर दिया। बड़ा लम्बा पूजन-पाठ ले बैठे। भगवान् व्यास कहते हैं 'बृहद्ध्यायन्'। इधर द्वादशी अर्ध मुहूर्तमात्र रह गयी। भक्तशिरोमणि अम्बरीष कुछ क्षुधा-व्याकुल न थे। वह भागवत थे, ब्राह्मणोंकी प्रतीक्षामें और भी दो दिन भूखे रह सकते थे। किन्तु शास्त्राज्ञानुसार द्वादशीमें पारण करना आवश्यक था। अतएव पुरोहित आदिकी मन्त्रणासे एक आचमनमात्र ले लिया कि यह एक तरह अशन भी हो गया और नहीं भी। वे दुर्वासाकी प्रतीक्षा करते रहे।

दुर्वासा अपने सुदीर्घ आह्निकसे निवृत्त होकर आये और राजाकी ओर जैसे ही उन्होंने नज़र डाली कि दिव्य ज्ञानसे उनको विदित हो गया कि राजाने पारण कर लिया। बस, वह आगबबूला हो उठे। 'अभक्त' 'ढोंगी' 'अभिमानी' आदि कहकर वाचिक अपमान तो किया ही किन्तु अपनी जटासे बाल तोड़कर राजाको दण्ड देनेके लिये कालाग्नि-सदृश कृत्या उत्पन्न की। वह राजाको भस्म करने चली। स्मरण रहे, उन दिनों भक्तकी रक्षाका भार विशेषरूपसे भगवान्‌ने ले रक्खा था। अपने सुदर्शनचक्रको ही राजाकी नौकरीमें बोल रक्खा था। सुदर्शनने तत्काल ही कृत्याकी मरम्मत करके दुर्वासाको सँभाला। दुर्वासा रक्षाके लिये त्रिभुवनमें घूमते हुए कहीं भी आश्रय न पाकर अन्तमें भगवान्‌के पास पहुँचे। वहाँ भगवान्‌ने स्पष्ट कह दिया—

'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयः'

मैं भक्तोंके पराधीन हूँ। मुझे बिल्कुल स्वतन्त्रता नहीं। स्वतन्त्रता तो तब हो जब मैं पृथक् सत्ता रखता होऊँ। 'अहं तु साधुभिर्ग्रस्तहृदयः'। मेरे हृदयको साधु (भक्तोंने) ग्रास कर लिया है, सर्वथा ले रक्खा है। कदाचित् तुम कहो कि यह भक्त आपके ही तो हैं। उनकी जो महत्ता और गौरव है सब आपके ही कारणसे तो है। आप उनको हटा दो, दमन कर दो। तो आप कहते हैं—

'नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीम्।'

'मैं भक्तोंके विरहमें अपनी आत्यन्तिक श्री, और तो क्या, अपनी आत्मातकको नहीं चाहता। मेरे भक्त न रहें और मैं उनके अभावमें रहूँ यह मुझसे नहीं हो सकता। यदि बचना है तो मैं जिसके अधीन हूँ उसीके पास जाओ।' लाचार होकर दुर्वासा लौटकर अम्बरीषके पैरों पड़ते हैं।

जहाँ भक्तके लिये भगवान्‌का यह आग्रह है कि आप अपना गौरव नष्ट कर देते हैं परन्तु भक्तकी बातको नीचा नहीं होने देते, वहाँ और क्या बाकी रह गया? विस्तार हुआ जाता है—परन्तु श्रीकृष्णावतारमें स्थान-स्थानपर देखा है कि भगवान् भक्तोंके लिये अपना कितना-कितना अपमानतक सह लेते हैं परन्तु भक्तोंका मन मैला नहीं होने देते। श्रीदामा गोप कहता है 'भाई! मैं तो कन्हुआकी चढ़ी लूँगा। कन्हुआ जैसा घोड़ा मिले और मैं उसे छोड़ दूँ?' बस भगवान् घोड़ा बनते हैं और वह उनके कन्धेपर सवार होता है। जिन वैकुण्ठनाथके दर्शनमात्रके लिये सनकादि सिद्धतक अवसर पूछा करते हैं और बड़े भाग्योंसे वह मिल पाता है, उसी चराचरनायकके मस्तकपर एक गोप पैर रखता है, यह साधारण बात है? भगवान् व्यास-देव इस विडम्बनापर कहते हैं—

'उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हारे हुए श्रीकृष्ण श्रीदामाको कन्धेपर बिठाते हैं।' यहाँ श्रीकृष्णके साथ 'भगवान्' की इस मगज़ी लगानेकी क्या ज़रूरत थी ? परन्तु वह यह दिखाना चाहते हैं कि विश्व देख ले कि भक्तोंके आगे भगवान्‌की क्या दशा हो रही है। जिसे 'षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न' कहते हैं वह हारा है और जो गोप है वह उसके ऊपर सवार है। 'पराजितः' दोनों अर्थोंको दिखा रहा है। भगवान् भक्तोंके आगे सदा हारे हैं। इन्हीं फ़ज़ीतियोंके डरसे भगवान् सहसा ही किसीको अपनी भक्ति नहीं देते। मुक्ति चाहे दे देते हैं पर अपनी भक्ति नहीं देते। मुक्तिमें आप झंझटसे बच जाते हैं। एक बारमें सब टण्टा चुक जाता है किन्तु भक्ति देते ही सदाके लिये टण्टा मोल ले लेना पड़ता है। इसीसे तो कहा है—

'मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स न भक्तियोगम्।'

जब भक्तके साथ आपका यह व्यवहार है तब जहाँ उसने भक्ति स्वीकार कर ली वहाँ सब कुछ आप उसे एक बारमें ही दे चुके। अब उसे आपके पास आनेकी आवश्यकता ही कहाँ है ? उसको ज़रूरत पड़ेगी तो उसके लिये आप ही सौ दफ़ा जायँगे, वह क्यों आवेगा। फिर 'प्रपन्नाय' के साथ 'सकृदेव' की संगति क्योंकर हुई ? अतएव शरणागति प्रकरणके योग्य अच्छा अर्थ यही प्रतीत होता है कि—'प्रपन्नाय' जो शरणागत हो चुका, तदनन्तर 'तवास्मीति सकृदेव याचते' तुम्हारा हूँ यह एक बार मात्र कह देता है, उसको मैं यावन्मात्र भयोंसे सदाके लिये मुक्त कर देता हूँ और यावन्मात्र आशास्य पदार्थ दे देता हूँ। तात्पर्य यह है कि वह जिस समय भगवान्‌की शरणागति स्वीकार कर चुका था और उनके पास आ गया था उसी समय तात्कालिक भय (जिससे बचनेके लिये वह भगवान्‌के पास आया था) की निवृत्ति तो हो चुकी थी किन्तु उसके पीछे उसने यह और कहा कि 'मैं तुम्हारा हूँ।' 'तुम्हारा हूँ' यह कहना लक्षणावृत्तिसे दूसरा अभिप्राय रखता है। क्योंकि भक्त जिस क्षण भगवान्‌के शरणागत हो चुकता है उसी समय वह तो भगवान्‌का हो जाता है। 'आप ही मेरे सब कुछ हो, मैं तो अब आपका हूँ' यही तो शरणागतिका फलितार्थ है। फिर पुनरुक्तप्राय यह कहना कि 'मैं आपका हूँ' यह बाधित हुआ। अतएव इसका तात्पर्यार्थ यह निकलता है कि 'वर्तमानकालका उपस्थित भय ही नहीं, यावन्मात्र सङ्कटोंसे मेरे बचानेवाले सदाके लिये अब आप हैं, क्योंकि मैं आपका हो चुका। मुझे सब भयोंसे बचाइये।' शरणागत हो चुकते ही सब कार्योंके ज़िम्मेवार भगवान् हो चुके थे किन्तु उसके अनन्तर उसने 'मुझे भयसे बचाइये' यह और कह दिया। अब तो और भी अहसान हो गया। अतएव भगवान् इस याचनाके फल-स्वरूपमें सर्व भयोंसे निवृत्ति (अपवर्ग) ही क्या दे देते हैं, यावन्मात्र आशास्य ही दे देते हैं। फलित यह हुआ कि 'प्रपन्न' होनेके अनन्तर भक्तके कारण चाहे मुझे हज़ार बार सङ्कट, याचना, परिश्रम, लाञ्छना आदि सहनी पड़ती हों किन्तु भक्तको तो 'सकृदेव' एक बार ही याचना करनी पड़ती है।

वास्तवमें देखा जाय तो 'तवास्मीति याचते' यह 'प्रपन्नाय' का विवरणमात्र है। 'प्रपत्ति' में मैं तुम्हारा हूँ इत्यादि सब कुछ आ जाता है। यहाँ केवल उसे स्पष्टार्थ मात्र करनेके लिये ही कहा है कि 'शरणागत होकर जो एक बार भी मैं तुम्हारा हूँ कहकर (ध्वनिसे) आगे आने-वाले भयोंकी निवृत्ति माँगता है मैं उसको सदाके लिये सर्व भयोंसे निवृत्त कर देता हूँ।'

यह तो हुआ, परन्तु 'एतद्व्रतं मम' यह मेरा व्रत (नियम) है, यह कहनेकी क्या जरूरत आयी ? 'प्रपन्नाय अभयं ददामि' 'शरणागतको मैं संसारके यावन्मात्र फल दे देता हूँ' इसीमें तो सब कुछ आ गया था फिर 'व्रतं मम' अक्षर क्यों बढ़ाये ? 'व्रतं मम' से यह दिखाते हैं कि शरणागतको सर्व अभय और फल दे देता हूँ इसको साधारण न समझना, यह मेरा व्रत (दीक्षा) है। व्रत जैसे किसी भी अवस्थामें छोड़ा नहीं जा सकता और यदि छोड़ दे तो दृष्ट और अदृष्ट दोनोंसे वह गिर जाता है, उसका जीवन लाञ्छित हो जाता है। इसी तरह शरणागत-रक्षा मुझसे त्रिकालमें भी नहीं छोड़ी जा सकती।

महाराज रुक्माङ्गद एकादशीका व्रत किये हुए नियम-में बैठे हैं। वह सदा एकादशीका अखण्डित व्रत लिये हुए थे। देवताओंने उनकी दृढ़ताकी परीक्षा करनेके लिये उनकी छोटी महारानीकी बुद्धि बदली। वह मानमें आकर राजासे कहने लगी कि यदि आपका मुझमें सत्य अनुराग है तो आज मेरे हाथसे भोजन कीजिये। कनिष्ठा रानी मोहिनी-पर राजाका अत्यन्त अनुराग था। यों कहना चाहिये कि राजापर मोहिनीकी मोहिनी पड़ी हुई थी। वह उसके हाथके खिलौने हो रहे थे। बड़ी रानी जिसको कि पाँच-छः वर्ष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का राज्याधिकारी सुन्दर कुमार था उसको भी अनादृत कर रक्खा था। मोहिनीके यह आग्रह करते ही सत्यव्रत राजा-का आसन डोल उठा। वह उसे नाना प्रकारसे समझा रहे थे कि यह धार्मिक नियम है, जो मेरी आत्मासे सम्बद्ध है। इसके विषयमें तुम हठ मत करो। इसके सिवा तुम जो भी कहो मैं करनेको तैयार हूँ। मेरा राज्य, मेरी विभूति और तो क्या शरीरतक उपस्थित है। तुम इनका जो चाहो सो कर सकती हो, किन्तु व्रतभङ्गका आग्रह छोड़ दो।

देवताओंके द्वारा आविष्ट हुई मोहिनीने कहा कि यदि भोजन नहीं करते हो तो देवताके सम्मुख अपने हाथसे अपने पुत्रकी बलि दे दो। सुनते ही राजाकी बड़ी दीन दशा हो गयी। इधर धर्मभङ्ग होता है, उधर अपने राज्या-धिकारी प्रिय पुत्रकी निरपराध हत्या करनी पड़ती है। एक राजा ही क्या, सम्पूर्ण राजपरिवार राज्यकार्य छोड़कर प्राणसङ्कटमें पड़ा हुआ है। यह वृत्तान्त धीरे-धीरे राज-कुमारको भी विदित होता है। वह बालक होनेपर भी क्षत्रिय सन्तान था। हँसता हुआ वह आकर प्रसन्नतासे राजासे कहता है—'पिताजी! आप चिन्ता क्यों करते हैं, निःशङ्क होकर मुझे बलि दे दीजिये।' धार्मिक राजाके हृदयपर घोर आघात होता है। इस करुणामय दृश्यको देखकर तमाम राजमहल करुणा और शोकमें डूब जाता है किन्तु दृढ़व्रत राजा इतनेपर भी व्रतभङ्गके लिये तैयार नहीं होते। देव-मन्दिरमें देवताके सम्मुख अबोध राजकुमार प्रसन्नतापूर्वक अपने कण्ठच्छेदके लिये खड़ा हो जाता है। राजा रुक्माङ्गद खड्ग लेकर स्वयं अपने औरस और बालक पुत्रको बलि देनेके लिये तैयार हो जाते हैं किन्तु अङ्गीकार किये हुए व्रतको नहीं छोड़ते। तत्काल देवता प्रकट होकर राजाका अभिनन्दन करते हैं और प्रसन्न होकर वरदान देते हैं।

जिस व्रतकी रक्षाके लिये प्राणप्रिय पुत्रतकको अपने हाथसे मारा जा सकता है क्या उसी व्रतको कोई धार्मिक पुरुष छोड़ सकता है? अतएव मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र कहते हैं—'एतद् व्रतं मम।'

महाराज दशरथने श्रीरामचन्द्रसदृश प्राणोपम प्रिय पुत्रको अपने हाथसे वन भेज दिया। पुत्र ही क्या, अपने प्राणतक छोड़ दिये परन्तु अपना व्रत नहीं छोड़ा। धार्मिक जीवनमें व्रतरक्षाका सबसे बढ़कर महत्त्व है। जिसमें भी भगवान् श्रीरामचन्द्रके लिये तो त्रिभुवनमात्र कहता है कि—'सत्यवाक्यो दृढव्रतः।' उनके द्वारा लिया हुआ व्रत कभी छोड़ा जा सकता है? इसी आशयसे सर्वथा अत्याज्यताको सूचित करते हुए आप आज्ञा करते हैं कि—'एतद् व्रतं मम।'

यहाँ 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इस सूत्रसे 'सर्वभूतेभ्यः' अपादान पञ्चमी तो है ही किन्तु 'सर्वभूतेभ्यः' इसकी आवृत्ति करके चतुर्थीका भी अर्थ किया जाता है, यही महर्षिका तात्पर्य मालूम होता है। अर्थात् भय करनेवाले सर्वभूतोंसे अभयदान मैं 'प्रपन्न' को भी देता हूँ और 'सर्वभूतेभ्यः' उससे सम्बन्ध रखनेवाले प्राणिमात्रको भी अभयदान दे देता हूँ। मेरे प्रपन्न होनेपर केवल उसीको अभय नहीं देता उसके सम्बन्धी सभीको अभय देता हूँ, चाहे मनुष्य हो, पशु हो, पक्षी हो, मेरे भक्तके सम्बन्धी सभी मुक्तिके अधिकारी हैं। कहा भी है—

पशुर्मनुष्यः पक्षी वा ये च वैष्णवसंश्रयाः।
तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

भगवान् प्रह्लादपर प्रसन्न होकर उनकी परीक्षा करते हुए आज्ञा करते हैं—'वरं वृणीष्वाभिमतम्' अपना अभीष्ट वर माँगो, मैं सबके मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूँ। प्रह्लाद परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वह वरयाचनाकी कड़ी आलोचना करते हैं; किन्तु भगवान् अपने-आप ही उन्हें आयु, भोग, मोक्ष सब कुछ दे देते हैं। उसपर प्रह्लाद कहते हैं 'भगवन्! एक वर मैं आपसे यह माँगता हूँ कि आपके प्रभावको नहीं जाननेके कारण मेरे पिताने आपकी निन्दा करके घोर अपराध किया है। अब मैं चाहता हूँ कि उस दुरन्त पातकसे उनकी मुक्ति हो जाय!' भगवान् कहते हैं जिस कुलमें तुम-सदृश कुलपावन पैदा हो गया वहाँ केवल तुम्हारा एक पिता ही क्या तुम्हारे इक्कीस पुरुष पवित्र हो गये। मेरे भक्तोंका सम्बन्ध किसी तरहका भी जिन-जिनसे हो जाता है 'ते पूयन्त्यपि कीकटाः' वे चाहे जैसे अपवित्र हों पवित्र हो जाते हैं। इसी बातको सूचित करते हुए यहाँ भी कहा है—'सर्वभूतेभ्यः,' शरणागत और उसके सम्बन्धी सब प्राणियोंको अभय देता हूँ।

व्रजराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण कंसका विध्वंस करने जिस समय मथुरापुरीके राजमार्गमें होकर पधारे, उस समय सुदामा मालाकारने भगवान्का कण्ठ शून्य देखकर पुष्पमालाओंसे आपकी सेवा की। आपने उसे तो अभय दिया ही, किन्तु—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'युष्मत्संततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ।'

—कहकर उसके सभी वंशजोंको दीर्घ आयुष्य प्रदान की । जब मार्ग चलते हुए, साधारण-सी सेवाके उपलक्ष्यमें आप इतनी कृपा करते हैं तब शरणागतके लिये कुछ न्यूनता रहेगी ? अतएव आपने आज्ञा की है कि मैं प्रपन्न और उसके सब सम्बन्धियोंको अभय देता हूँ, यह मेरा व्रत है । (सर्ग १८ श्लो० ३३)

अब विभीषणको देखिये । उसने मानसिक, वाचिक आदि किसी एक ही प्रकारकी शरणागतिको स्वीकार किया हो सो नहीं, 'आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः' आदि छओं अङ्गों-सहित शरणागतिका उसने अवलम्बन किया है । जिस समय रावणने उसका तिरस्कार किया और स्पष्ट कह दिया कि—

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन्मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसन ॥

'यदि और कोई इस तरहका वाक्य कदाचित् बोलता तो इसी क्षण उसको समाप्त कर देता, पर तू सहोदर भाई है । कुलकलङ्क तुझको धिक्कार है ।' उसी क्षण विभीषणने समझ लिया कि अब रावणके हाथसे निष्कृति तभी हो सकती है जब भगवान् श्रीरामचन्द्रका आश्रय लिया जाय । बस, वहींसे 'रक्षिष्यसि' यह विश्वास करके—सदा अनुकूल रहनेका सङ्कल्प आदि स्वरूपवाली शरणागति आरम्भ हो गयी । फिर इतनी दूर चलकर, अपना दैन्य-सूचन करते हुए वह तो स्पष्ट निवेदन कर चुके हैं कि—

'त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ।'

भला उनके लिये भगवान् विलम्ब कर सकते हैं ? भगवान् गद्गद होकर कहते हैं—

ये दारागारपुत्रास्तानिष्टान् प्राणान् धनानि च ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

'स्त्री, पुत्र, घर, सगे सम्बन्धी, धन-धान्य और तो क्या प्राणोंका भी मोह छोड़कर जो मेरे शरण आते हैं उनको भला मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ?'

विभीषणके स्वीकारके लिये अपने परिकरके साथ विचार करनेमें जो विलम्ब हो रहा था उसका एक-एक क्षण भगवान्‌को घोर असह्य था । किन्तु स्नेहके कारण अनिष्टकी शंकासे सुग्रीव विरोध करते ही जा रहे थे । अन्ततोगत्वा भगवान्‌को अपना दिव्य प्रभाव प्रकट करना पड़ा । और यहाँ आकर तो आपको स्पष्ट मुखसे ही कह देना पड़ा कि इसके विरुद्ध चाहे लाख युक्तियाँ हों परन्तु मैं शरणागतको किसी तरह नहीं छोड़ सकता । प्रपन्न-को अभय देनेका मैंने सङ्कल्प कर रक्खा है ।

यह हुक्म देकर आपने कुछ कालकी प्रतीक्षा की हो सो नहीं, तत्काल ही इस हुक्मकी इजरा करनेकी भी आप आज्ञा देते हैं । और अदालतोंमें डिग्री मिल जानेपर भी कुछ मियादकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है किन्तु श्रीरामके दरबारमें शरणागतिके हुक्मकी इजरा उसी क्षण की जाती है । अतएव शरणागतिकी स्वीकृति देकर तत्काल ही आप हुक्म देते हैं कि—

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥

(वा० रा० युद्ध० १८ । ३४)

'हे हरिश्रेष्ठ ! जाओ, उसको लिवा लाओ । मैंने उसको अभय दे दिया । चाहे विभीषण हो चाहे वह स्वयं रावण ही क्यों न हो ।'

भक्तपरतन्त्र भगवान् श्रीरामचन्द्रको शंका हुई कि ऐसा न हो सुग्रीव फिर विभीषणके स्वीकारमें कोई विरोध कर बैठे । अतएव अपने सङ्कल्पको कह देनेके अनन्तर एक क्षणका भी अवकाश न देकर आप आज्ञा करते हैं कि—'एनम् आनय, इसको लाओ ।'

'एनम् (इसको)' यह क्यों ? 'इसको' तो उसके लिये कहा जाता है जो सम्मुख वर्तमान हो । श्रीरामने तो विभीषणको अभी देखातक भी नहीं है । सैन्यसंनिवेशका प्रबन्ध करनेवाले सुग्रीवादिने चाहे आकाशसे आते हुए उसे देखा भी हो किन्तु श्रीरामचन्द्रकी तो अभी उसपर दृष्टितक नहीं पड़ी है । फिर जिस तरह अपने सुपरिचितके लिये कहा जाता है उस तरह 'इसको लाओ' यह कैसे कहा ? कहना चाहिये 'जो दरवाज़ेपर आकर प्रार्थना पहुँचवा रहा है 'उसे' लाओ' । ठीक है । इसमें कुछ ध्वनि है ।

आर्त विभीषणने श्रीरामदरबारमें आकर सुग्रीवादिके द्वारा जैसे ही अपनी प्रार्थना पहुँचायी—

'निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।'

और श्रीरामने उसे अपनी शरणमें आया हुआ जिस क्षण समझ लिया उसी समयसे श्रीरामचन्द्रकी प्रतिज्ञानुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उनके परिकरमें शामिल हो चुका। आपके यहाँ आर्तको महीनोंतक प्रार्थना, उम्मीदवारी नहीं करनी पड़ती। आपकी ड्योढ़ीमें जैसे ही शरणागतने प्रवेश किया और आपको उसका आना विदित हुआ वैसे ही आप उसे अभय देकर अपनी शरणमें ले लेते हैं। आपकी शरणमें आया हुआ आर्त जितने दुःखके श्वास प्रतीक्षामें लेता है आप उतना ही अपने ऊपर उसका बोझ समझते हैं। सर्पविषकी चिकित्सा करनेवाले गारुड़िकके घर जैसे ही खबर पहुँची कि अमुकको सर्पने काटा है और उसका इलाज कराने रोगी आया है, किंवा बुलानेके लिये आदमी आया है, उसी क्षण वह जैसे-का-तैसा अपने स्थानसे उठ बैठता है। फिर घरमें जलतक नहीं पीता, श्वासतक नहीं लेता। अथवा आग लगनेकी सूचना मिलनेपर जैसे फायरब्रिगेडवाले उसी क्षण दौड़ जाते हैं इसी तरह कालरूपी कालभुजङ्गसे या त्रितापरूपी अग्निसे सताये हुए प्राणियोंके उद्धारके लिये अवतार लेनेवाले श्रीरामकी शरणमें जैसे ही आर्त उपस्थित होता है आप तत्काल उसे अभय दे देते हैं। संसारसे निर्विण्ण होकर, भगवान्‌की दयालुतापर बड़ा भारी भरोसा रखकर, शरणार्थी जैसे ही आपके अभिमुख आया कि आप उसे बड़े बहुमानसे, बड़ी सान्त्वनासे तत्काल आश्रय देते हैं। मानो आप प्रतीक्षा करते रहते हैं कि दुनियाँके चक्करदार मार्गोंमें भूले-भटके बटोही किसी तरह इधर आवे और आप उन्हें तुरन्त घर पहुँचा दें। जब आपकी इतनी दयालुता है, इतनी भक्तवत्सलता है तब भला आर्तको शरण देनेमें विलम्ब हो सकता है?

यह नयी बात नहीं। आर्तकी पुकार पहुँचते ही भगवान्‌को एक अद्भुत तड़फड़ी लग जाती है। एक-एक पल बिताना आपको पहाड़-सा भारी हो जाता है। ग्राहका सताया हुआ गजेन्द्र जिस क्षण पानीमें डूबने लगा, उसकी सूँड तिलमात्र पानीके बाहर रह गयी, उसपर भी हवाके झकोरोंने डुबानेमें कमी न रक्खी। किसीने कहा है—

'बार बराबर बारि है तापर चलत बयार।'

उस समय वैकुण्ठमें स्थित गोविन्दके पास गजेन्द्रकी पुकार पहुँची। श्रीलक्ष्मीजीके साथ जिस स्थितिमें आप बातचीत कर रहे थे उसी तरह बिना कुछ कहे-सुने आप खड़े हो गये। चलते-चलते ही गरुड़को बुलाकर उसपर आपने आरोहण कर तो लिया परन्तु उसकी भी उड़ान आपको बड़ी धीमी मालूम हुई। माघ कविने कहा है—

'जिस समय इन्द्रपर कोई चढ़ाई करता और इन्द्र उससे हारकर उलटे मुँह दौड़ने लगता उस समय ऐरावतके सुन्दर पादन्यास, घूमकर चलना आदि विचित्र गतियोंपर प्रसन्न होना तो कैसा उल्टी उसे झुँझल आती थी। वह तो उसके तेज़ दौड़नेपर वाह-वाह करके प्रशंसा करता जिससे कि वह जल्दी अमरावतीमें सुरक्षित पहुँच जाय।' इसी तरह गरुड़की विभ्रम चालें तो क्या, तेज उड़ानतक भगवान्‌को धीमी मालूम हुई, पसन्द न आयी। अन्तमें गरुड़को भी छोड़कर अपनी दिव्य गतिसे ही आपको गजेन्द्रके पास पहुँचना पड़ा। जहाँ आपको पधारनेका परिश्रम करना पड़ता है वहीं शीघ्रताका यह हाल है तब घर बैठे आपके पास शरणार्थी आवे और आप शरण देनेमें विलम्ब कर दें, यह सम्भव है? नहीं-नहीं। आपके पास 'शरणार्थी विभीषण आया है' इतनी प्रार्थना पहुँचते ही आप अपने हृदयके द्वारा उसे अपने परिकरमें ले चुके थे। किन्तु इधर 'विभीषणको आश्रय देना कि नहीं' इस विषयको लेकर उनकी चर्चा खूब चल चुकी थी। इस चर्चामें जब-जब उनका नाम आता वा प्रसङ्ग उठता वह सुपरिचितकी तरह उन्हें अपने हृदयमें स्थान देते थे। भगवान्‌को अध्यास है कि विभीषण मेरा हो चुका, मेरे पारिषदोंमें आ गया। अतएव निरन्तर हृदयमें खेलते हुए सुपरिचित विभीषणको सम्मुख वर्तमान समझकर आप आज्ञा करते हैं—'एनम्' 'इसको' लाओ।

यहाँ आपने कहा है 'आनय' लाओ। हाकिम वा स्वामी किंवा बड़े आदमी तो ऐसे अवसरपर कहा करते हैं कि 'उसे आने दो'। अर्थात् 'विभीषण शरणार्थी होकर मेरे पास आनेकी प्रार्थना करता है और हमलोगोंने भी परस्पर संवित् करके निश्चित कर लिया है कि शरणागतका त्याग नहीं करना चाहिये। अतएव उसको यहाँ आने दो। उसके आनेमें अवरोध मत करो।' फिर यह न कहकर 'आनय' 'लाओ' से क्या तात्पर्य?

भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्र अपने अभिमुख आनेवाले प्राणिमात्रको शरण देनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं। आपके अवतार लेनेका प्रयोजन ही यह है कि पृथ्वीपर जो भक्त वा धार्मिक सांसारिक क्लेशोंसे निर्विण्ण होकर आश्रय ढूँढ़ रहे हैं उन्हें अवलम्बन दिया जाय। दुर्जनोंसे सताये हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जनोंको सान्त्वना दी जाय। धर्मके अभिमुख हुआ कोई प्राणी क्लेश न पावे। आपका भूतलपर आना ही 'आर्त-त्राणाय,' दुखियोंकी रक्षा करनेके लिये है। अतएव आपको चिन्ता रहती है कि दुखी जीवोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उनका दुःख दूर किया जाय। अब जो आर्त वा पीड़ित भगवान्‌के द्वारा अपनी तलाश न कराकर स्वयं उनकी शरणमें आते हैं भगवान् अपने परिश्रमकी बचत समझकर उनका बड़ा उपकार मानते हैं। 'पङ्गोरुपरि गङ्गापातः' पङ्गुके ऊपर गङ्गाकी धार पड़नेकी तरह अहसान मानते हैं। शरणार्थी होकर स्वयं आनेवाले भक्तोंको अपना आश्रित न समझकर मित्रकोटिमें गिनते हैं। इसीलिये पहले आप कह चुके हैं—

'मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।'

यहाँ विभीषण भी स्वयं शरणार्थी होकर आये हैं अतएव उनका दर्जा मित्रके बराबर हो गया। किन्तु उनका आदर तो कैसा, हमलोगोंने 'उन्हें स्वीकार किया जाय या न किया जाय' इत्यादि व्यर्थ वितण्डावादमें ही बहुत-सा समय खो दिया। और वह दरवाज़ेपर खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि देखें क्या उत्तर आता है। इस विलम्बसे उनका घोर अपमान हो रहा है। इसपर भी, वह स्वयं यदि यहाँ आ गये तो हमलोगोंकी और भी असभ्यता और भीरुता सिद्ध होगी। अतएव यावन्मात्र सेनाके स्वामी भगवान्‌के अग्नि-साक्षिक मित्र किष्किन्धाधिपति सुग्रीव ही जाकर यदि उनकी अगवानी करें, और उन्हें सादर लिवा लावें तो कुछ सम्मान-रक्षा हो। अतएव आपने सुग्रीवको आज्ञा दी है कि 'आनय'।

भगवान् जब विभीषणको मित्रकोटिमें गिनते हैं और भगवान्‌के हृदयमें साधारण धनियोंकी तरह अभिमान भी नहीं है तब तो स्वयं भगवान्‌को ही आना चाहिये था और बड़े आदरसे विभीषणको लिवा ले जाना था। दुनियाके सभ्यों-का भी यही सदाचार देखा जाता है कि यदि कोई मित्र दूर देशान्तरसे आया हो और उसके आनेकी खबर भीतर पहुँचे तो गृहस्वामी ही स्वयं दरवाज़ेपर लेने आता है। फिर श्रीराम स्वयं न जाकर सुग्रीवको क्यों भेजते हैं? हाँ, यह ज़रूर होता है कि कोई थर्ड क्लास मित्र आया हो तो आप स्वयं नहीं जाते। किसी दूसरे सज्जनको लिवा लानेको भेज देते हैं। तो क्या श्रीरामचन्द्र इन्हें मित्र तो समझते हैं परन्तु हलके दर्जेका? थर्ड क्लास? नहीं-नहीं, इसमें तात्पर्य है।

भगवान् श्रीरामचन्द्र शरणागत-वत्सल हैं। कैसा भी शरणागत चला आवे, दयासागर श्रीरामचन्द्र तत्काल उसे अवलम्बन देते हैं। वह शरणार्थीके दोष-गुणोंका विचार ही नहीं करते। आप पहले कह आये हैं कि मैं अपने शरणार्थी-पर दृष्टि रखता हूँ उसके गुण-दोषोंपर नहीं। अतएव आप तो विभीषणको आश्रय देनेकी आज्ञा पहले ही दे चुके थे किन्तु प्रधान पारिषद मित्रताके दर्जेतकको पहुँचे हुए सुग्रीव इसका घोर विरोध कर रहे थे। यद्यपि आपने सुग्रीवकी प्रत्येक युक्तिका समञ्जस उत्तर दे दिया था, हर एक पूर्व-पक्षका यथोचित समाधान कर दिया था तो भी सुग्रीवकी तरफ़से आपको अभी कुछ खटका है। ऐसा न हो कि मैं अपने ही आग्रहसे विभीषणको बुला लूँ और मेरे स्नेही फिर भी उसका विरोध कर बैठें। श्रीरामचन्द्रके दक्षिण स्वभावसे यह बिल्कुल विरुद्ध था कि वह अपने स्नेही और अनुजीवियोंके प्रतिकूल कार्य करें। वे लोग तो अप्रसन्न रहा करें और श्रीरामचन्द्र उस अप्रसन्नताकी कुछ भी परवा न करके उस प्रतिकूल प्रसङ्गका सदा निर्वाह करते रहें। अतएव अपने सब परिकरकी सम्मतिसे ही आप विभीषणको स्वीकार करना चाहते हैं। इसीलिये शरणागतके दरवाजेपर प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहनेपर भी आपने अपने सलाहकारोंके साथ बहसमें इतना समय बिता दिया। और अब भी आप यही चाहते हैं कि केवल मेरी ही अनुमतिसे विभीषणका आना न समझा जाय। इसीलिये सब परिकर-के नेता सुग्रीवको ही आप भेजते हैं कि तुम जाओ और लिवा लाओ। आपका तात्पर्य यह है कि यदि स्वयं सुग्रीव ही जाकर लिवा लायेंगे तो परिकरके किसी भी मनुष्यको यह कहनेका अवसर न रहेगा कि 'विभीषणके स्वीकारमें हम तो सम्मत न थे। आप ही जानें'। क्योंकि परिकरके नेता स्वयं सुग्रीव ही तो उन्हें आगे होकर लिवा लाये थे। अतएव श्रीरामचन्द्र सुग्रीवको ही आज्ञा कर रहे हैं कि 'एनम् आनय' 'इन्हें लाओ'।

अथवा—भक्तवशीभूतताके कारण भगवान्‌ने ऐसा कहा है। कई जगह देखा है कि भक्तोंकी प्रतिज्ञा वा भक्तों-के हठके आगे भगवान्‌को अपनी प्रतिज्ञा और वचनतक छोड़ देना पड़ा है। अपने एकान्तभक्त प्राणप्रिय अर्जुनके लिये कई स्थानपर आपको अपनी प्रतिज्ञा, अपना वचन छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना पड़ा है। महाभारतमें भीष्मपितामहका युद्ध विश्वके प्रधान युद्धोंमेंसे गिना जाता है। जिन आजन्म ब्रह्मचारीके बलका कुछ पार न था, उनके युद्धकी तुलना कौन कर सकता है। यों समझिये—पाण्डवपक्षमें ही क्या राजमण्डल-भरमें उनके मुक़ाबिलेका कौन था? जिस अर्जुनको अद्वितीय धनुर्धारी समझा जाता है वह उनकी शिष्य और पोष्य-कोटिमें था। अर्जुन ही नहीं, सभी उन्हें पितामहवत् गौरव-भाजन समझते थे। प्रसिद्धि ही उनकी 'भीष्मपितामह'के नामसे थी। वह जिस समय युद्धके लिये खड़े हुए, सब थर्रा उठे। गाण्डीवधारी अर्जुनको भी दो-एक युद्धोंमें ही मालूम पड़ा कि युद्ध इसका नाम है। वीर पितामहका एक-एक बाण वज्रके समान आकर लग रहा था। अर्जुन विकल हो पड़े। जिधर देखो उधर बाणोंकी वर्षाने व्याकुल कर दिया था!

भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञा थी कि मैं इस युद्धमें शस्त्र नहीं लूँगा। इधर भीष्मपितामहने प्रण किया था कि मैं युद्धमें श्रीकृष्णको भी शस्त्र ग्रहण करा दूँ तभी तो मेरा नाम। जिस समय यह भयङ्कर युद्धकाण्ड आरम्भ हुआ, पाण्डवपक्षके सब वीर त्रस्त हो गये। सबके शरीर घायल थे। कवच खण्डित हो चुके थे। एक-एक क्षण मुश्किलसे बीत रहा था। अर्जुनके रथके जूड़ेपर श्रीकृष्ण बैठे थे, आपकी भी यह दशा थी कि सारे शरीरसे रक्त बह रहा था। कवचके टुकड़े-टुकड़े हो चुके थे। भीष्मपितामह अपनी की हुई स्तुतिमें कहते हैं—

'शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।'

'तीक्ष्ण बाणोंसे आहत हुए, जिनका कवच टूट गया, रक्तसे चारों तरफ़से नहा गये।' भगवान्‌की आड़में रहते हुए भी अर्जुनकी यह दशा थी कि बाण चलाना मुश्किल था। थोड़ी देरमें तो यह हालत हो गयी कि युद्धक्षेत्रमें ठहरना असम्भव प्रतीत हुआ। घबराकर अर्जुनने भगवान्‌से कहा कि—'कृष्ण! यह क्या करा रहे हो? क्या प्रलय यहाँ ही करा देना चाहते हो? यह बूढ़ा अभी सब महाभारत समाप्त किये देता है। तुम्हें जबतक यह शस्त्र ग्रहण न करा देगा बाकी न छोड़ेगा।' बाणवर्षासे भगवान् भी तिलमिला उठे थे। यह संहार न देखा गया। आप रथके जूड़ेसे कूद पड़े और सामने टूटे हुए रथका एक पहिया पड़ा था उसको चक्रकी तरह अँगुलीमें घुमाते हुए आगे बढ़ गये। बस, भीष्मपितामहने सिंहनाद करके साभिप्राय एक खँखारा किया, अर्थात् ताना दिया कि क्यों, युद्धमें शस्त्र नहीं लूँगा यह प्रतिज्ञा रख ली?

जिन भगवान्‌की भ्रुकुटिमात्रके एक इशारेपर ब्रह्माण्डकी सब शक्तियाँ नाच उठती हैं, वहाँ बेचारे भीष्मकी क्या गिनती थी? परन्तु अपनी प्रतिज्ञाकी अपेक्षा आप अपने भक्तकी प्रतिज्ञाका अधिक सम्मान रखते हैं। अपना वचन चाहे चला जाय परन्तु भक्तकी बातमें बल न आये, यह आप संसारको दिखाना चाहते हैं। मरते-मरते भी ज्ञानैकनिधि भीष्मपितामह इस बातको याद करके कहते हैं—

'स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययात्।'

'अपनी प्रतिज्ञाको तोड़कर मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये आप रथसे कूद पड़े और हाथमें पहिया ले लिया।' बात यह है कि भगवान्‌की भक्तवत्सलताका ही यह दोष है कि उनकी प्रतिज्ञा भक्तोंके हठके आगे नहीं ठहरने पाती। कई एक ऐसे उदाहरण आपको मिलेंगे। इसीलिये गीतामें आपने कहा है कि—

'कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥'

कहना चाहिये था—

'अहं प्रतिजानामि न मे भक्तः प्रणश्यति।'

मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। परन्तु आप अर्जुनसे कहते हैं कि 'त्वं प्रतिजानीहि' 'तू प्रतिज्ञा कर।' आपका तात्पर्य यह है कि यदि मैंने प्रतिज्ञा कर ली और उसके मुक़ाबिलेमें कोई भक्त अड़ गया तो लेनेके देने पड़ जायँगे। मुझे अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर भक्तकी प्रतिज्ञा रखनी पड़ेगी। फिर मेरी प्रतिज्ञाका क्या मूल्य रहेगा। अतएव आप भक्तसे ही प्रतिज्ञा कराते हैं कि जिसमें कभी चल-विचल होनेका डर ही नहीं।

यही सन्देह भगवान्‌को यहाँ है। आपने विभीषणके स्वीकारके लिये शास्त्रकी, नीतिकी, धर्मकी, अपने स्वभावकी, सब युक्तियाँ देकर अपना मत परिपुष्ट कर दिया। विभीषणको स्वीकार करनेके लिये स्पष्ट आज्ञा दे दी। तीसरी बार जो आपने आज्ञा दी उसका फिर किसीने विरोध भी नहीं किया था। आपने अबकी स्पष्ट ही तो कह दिया था कि शरणागतको अभय देना यह मेरा व्रत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रतिज्ञा) है। परन्तु सुग्रीवादि भक्तोंके चुप रहनेसे आपको यह शङ्का अबतक बनी हुई है कि कहीं विभीषणको स्वीकार कर लेनेपर भी यदि हमारे हठीले भक्त अड़ गये और विभीषणके स्वीकारमें पीछेसे विरुद्ध हो गये तो मेरे आश्रय देनेका क्या मूल्य रहेगा। मैं बड़े गर्वसे जाकर विभीषणको लिवा तो लाया किन्तु पीछेसे अपने निश्चयको बदलनेकी नौबत आयी तो कैसी होगी ? अतएव आप अपने हठीले भक्त सुग्रीवको ही आज्ञा करते हैं कि 'तुम लिवा लाओ'। जिसमें फिर किसी तरहके सन्देहका अवकाश ही नहीं रहे। इसी आशयसे आप स्वयं न जाकर कहते हैं कि—'आनय', 'लिवा लाओ'।

अथवा, अपना अन्तिम निर्णय सुनाकर शीघ्र ही 'आनय' का हुक्म देनेका दूसरा तात्पर्य है—श्रीजनक-नन्दिनीको हर लानेवाले आततायी रावणको दण्ड देनेके लिये श्रीराघव इस समय समुद्रतटपर आये हुए हैं। त्रिलोकविख्यात क्रूरकर्मा दशाननको पूर्णशासन देनेके लिये किष्किन्धाधिपति सुग्रीवको सेनापति बनाकर आप अपार वानरसैन्य साथ लाये हैं। इस समय फ़ौजी क़ानून पूर्ण रीतिसे बर्ते जा रहे हैं। चारों तरफ़ सेनानायकोंका बन्दोबस्त है। स्थान-स्थानपर पहरे लग रहे हैं। किसकी मज़ाल है कि बिना आज्ञाके कोई अपरिचित पास तो आ जाय। ऐसे नाजुक समयमें विभीषण श्रीरामचन्द्रके समीप पहुँचनेकी प्रार्थना शिविरसन्निवेशके दरवाज़ेपर कराते हैं। विभीषण वैरीका साक्षात् भ्राता है यह सुनकर सब लोग एकदम बिगड़ उठे। शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्र आर्त विभीषणको परिकरमें लेनेके पक्षपाती हैं किन्तु यह आपके स्वभावके विरुद्ध है कि आप अपने अनुगतोंके विरुद्ध होकर कोई काम करें। अतएव विभीषणका संग्रह करना चाहिये कि नहीं, इसको तय करनेके लिये आपने विचारसभा बुलायी है। विभीषणके स्वीकारके लिये आपने जितनी बार युक्तियाँ दीं उतनी बार ही सभाके प्रधान सदस्य सुग्रीवने विरोध किया। अकेले सुग्रीव ही नहीं, अङ्गद, शरभ, जाम्बवान् आदि सभीने विभीषणको दलमें ले लेनेका विरोध किया। अकेले श्रीमारुतिमात्रने विभीषण-के पक्षमें समर्थन दिया। श्रीरामचन्द्रको स्पष्ट विदित हो गया कि मुझमें अलौकिक स्नेहके कारण मेरे अनुजीवियों-को विभीषणमें घोर शङ्का है कि यह पीछेसे मेरा अनिष्ट करेगा। पक्षसमर्थनके लिये आपने बहुत कुछ युक्तियाँ दीं परन्तु उनके जवाबमें विरुद्ध युक्तियाँ ही तो सुन पड़ीं किन्तु अनुमतिके अक्षर कर्णगोचर न हुए। इधर विचार-ही-विचारमें शरणार्थी विभीषण दरवाज़ेपर खड़े न जाने कितना दुःख पा रहे होंगे, यह आपको अलग विचार हो रहा था। ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जा रहा है त्यों-त्यों श्रीराघवका दुःखभार असह्य होता जाता है। दो बार जब-जब श्रीरामने विभीषणको ले लेनेका प्रस्ताव उठाया तब-तब विरोध किया गया। इस समय तीसरी बार सब सेनाके प्रधानाध्यक्षके रूपमें तथा इस विचारसभाके प्रधान सभापतिकी हैसियतसे कुछ ज़ोर देते हुए आपने कहा कि मेरा यह सङ्कल्प है 'शरणागतको अभय दिया जाय।' इस कथनके अनन्तर थोड़ी देर चुप्पी रही। किसी तरफ़से भी तत्काल उत्तर न मिला। श्रीरामचन्द्रने देखा कि—'सम्भव है यह अब भी विरोध न छोड़ें। आगे इसपर भी कोई-न-कोई विरोध किया जाय। अतएव यही अवकाश अच्छा है। सभा न सही, सभापतिकी तरफ़से ही यह प्रस्ताव हुआ सही। क्योंकि सभापतिके आसनसे जो प्रस्ताव होता है वह पास समझा जाता है। अतएव सभापतिकी हैसियतसे इस प्रस्तावको पास ही क्या, कार्यरूपमें परिणत करते हुए आप आज्ञा करते हैं—'आनय' 'इसको लाओ'।

अथवा—सुग्रीवको ही लिवा लानेकी आज्ञा देनेका कुछ तात्पर्य है। अबतक सुग्रीव ही विभीषणके स्वीकारका विरोध क्या घोर विरोध कर रहे थे। कई युक्तियाँ देनेपर भी उनके हृदयमें कोई नहीं जँच रही थीं। ऐसे सङ्कटमय समयमें वैरिपक्षके आदमीको लेना वह कथमपि नहीं चाहते थे। इसमें यही कारण है कि वह श्रीरामचन्द्रके सत्य स्नेही थे। उन्हें पूर्ण शङ्का थी कि यह वैरीका साक्षात् भाई है। अतएव पीछे चलकर दारुण समयमें यह दग़ा करेगा। उनके नहीं लेनेमें उनका कोई स्वार्थ न था, न उनका विभीषणके साथ कोई वैर ही था। केवल श्रीरामचन्द्रका स्नेह ही उन्हें इस आग्रहके लिये बाध्य कर रहा था। किन्तु इधर श्रीरामचन्द्रको शरणागत विभीषणको लेना अभीष्ट है। श्रीराघवने देखा कि मैं जिस समय विभीषणको ले लूँगा और वह मेरे परिकरमें आ जायँगे उस समय मेरे स्नेहके कारण सदाके लिये सुग्रीव और विभीषणमें मनोमालिन्य रह जायगा। विभीषण समझेंगे कि मेरा विरोध करनेवाले प्रधानतया सुग्रीव ही थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर सुग्रीव भी जब-जब विभीषणको देखेंगे तब-तब उन्हें यही स्मरण होगा कि यह वही है जिसको लेनेमें मैंने विरोध किया था परन्तु मेरी बात काटकर बलात् यह आया है। अतएव सुग्रीव और विभीषणमें विरोध न रहे बल्कि परस्पर यह स्नेहभाव हो जाय कि मुझको श्रीरामपरिकरमें सम्मिलित करनेवाले सबसे प्रथम व्यक्ति सुग्रीव ही हैं। अतः आप सुग्रीवको ही आज्ञा देते हैं कि—'आनय'।

किंवा सुग्रीवको ही आज्ञा देनेमें श्रीरामचन्द्र कोई प्रबल कारण समझ रहे हैं। आप शरणार्थीकी अनुरोधरक्षा सर्वतः प्रधान मानते हैं। शरणार्थीके ही लिये तो इतना वाद-विवाद, आग्रह करके आपने अपना पक्ष सिद्ध किया है। भला आप शरणार्थीका अनुरोध टाल देंगे? शरणार्थी विभीषणने 'निवेदयत मां क्षिप्रम्', 'महात्मा श्रीरामचन्द्रके समीप मेरे आनेका निवेदन कीजिये' कहकर सुग्रीवादिको ही तो अपना प्रधान द्वार बनाया था। विभीषण जानते थे कि जिस समय मैं लङ्कासे रवाना हुआ और मेरी मति श्रीरामके अभिमुख हुई उसी समयसे प्रभुने मुझे स्वीकार कर लिया। अथवा यों समझिये कि प्रभुने मुझे अङ्गीकार करनेकी इच्छा की तभी तो मेरी मति प्रतिकूल संगसे छूटकर श्रीरामके अभिमुख हुई। अतएव मेरे स्वीकार कर लेनेमें श्रीरामकी कृपा ही कारण हुई, मेरी तरफका पुरुषार्थ तो कुछ न हुआ। और वह चाहते थे कि मेरी तरफका उद्योग भी कुछ उसमें सम्मिलित होना चाहिये। इसलिये सुग्रीवादिको ही पुरुषकारतया वरण करते हुए उन्होंने कहा था—'निवेदयत मां क्षिप्रम्।' भक्तपरवश श्रीरामचन्द्र भी अपने शरणार्थीकी इच्छा नहीं टालना चाहते। इसीलिये आप भी अपने परिकरके प्रमुख श्री-सुग्रीवको ही स्वीकृतिका द्वार बनाते हुए आज्ञा करते हैं—'आनय' 'विभीषणको लिवा लाओ'।

आगे है—'हरिश्रेष्ठ!' 'हे हरिश्रेष्ठ! इसको लिवा लाओ'। यहाँ 'हरिश्रेष्ठ' सम्बोधनसे श्रीरामचन्द्र अपना हार्दिक कारुण्य प्रकट कर रहे हैं।

'त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः।'

यह दैन्यभरे शब्द जबसे आपके कानमें पड़े हैं तभीसे आप विभीषणको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं। सायंकाल वनसे आयी हुई बालवत्सा गौ जैसे अपने घरके दरवाज़ेपर खड़ी खिड़कके खलनेकी प्रतीक्षा किया करती है, उसको अत्यन्त उतावल रहती है कि किसी तरह दौड़कर अपने बच्चेको सूँघूँ, चाटूँ। इधर बच्चा भी आयी हुई माताका हुंकार शब्द जैसे ही सुनता है, कान ऊँचे करके 'माँ' यह करुणा और प्रेमसे भरा शब्द पुकार उठता है। बस, उस समय वत्सलप्रकृति गौसे नहीं रहा जाता। वह खिड़कका दरवाजा तोड़कर भी भीतर जाना चाहती है। इसी तरह श्रीराम भी विभीषणके विषयमें विरुद्ध वाक्य सुनते-सुनते ऊब गये। निरर्थक विलम्ब रोकनेके लिये आपको अपना दिव्य प्रभाव भी अपने मुखसे कह देना पड़ा। आपने स्पष्ट कह दिया कि चाहे कुछ भी हो शरणागतको अभय देनेका जो मेरा स्वभाव है इसे मैं नहीं रोक सकता। इसके साथ ही कुछ भी प्रतीक्षा न करके आप आज्ञा भी दे चुके हैं—'एनम् आनय' 'इसको ले आओ।' आपका हृदय तड़प रहा है कि हाय! दरवाज़ेपर अवाङ्मुख खड़े विभीषणको न जाने इस प्रतीक्षामें कितना दुःख होता होगा। हा हन्त! शरणार्थी, और मेरे द्वारपर खड़ा दुःख पावे! अतएव उसकी और मेरी इस दुःख-निवृत्तिके लिये यदि तुम ही जाकर उसको लिवा लाओगे तो मेरे स्नेहपात्र सम्पूर्ण वानरोंमें तुमसे बढ़कर श्रेष्ठ और कौन होगा? यावन्मात्र वानर जो अपने प्राणोंकी भी परवा न करके मेरे लिये सम्मुख समरमें लड़ रहे हैं, भला उनका अहसान कभी मैं भूल सकूँगा। वह मेरे प्राणप्रिय हैं। किन्तु विभीषणके लिये जो मेरे हृदयकी करुणदशा है उसको यदि तुम सबसे आगे होकर सँभाल लोगे तो तुमसे अधिक मैं किसका अहसान मानूँगा। तुमको सबसे बढ़कर समझूँगा। बस, इसी आशयसे यहाँ सम्बोधन दिया है—'हरिश्रेष्ठ!'

'अस्य अभयं मया दत्तम्' 'इसको मैंने अभय दे दिया।' यहाँ 'दत्तम्' दे दिया, यह भूतकाल कैसे? अभी विभीषणको देखा नहीं, उसके दुःखोंको प्रत्यक्ष सुनातक नहीं। फिर अभय अभीसे दे दिया। कहना चाहिये था 'दास्यामि' 'इसको लिवा लाओ मैं अभय दूँगा।' ठीक है, श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि जिस समय विभीषणने अपने सहोदर भाईको छोड़ा। चाहे जैसा क्रूरकर्मा और नृशंस था परन्तु था उसका भाई। अबतक यह उसीके आश्रयमें रह रहा था। उसीने उसका पालनादि किया था। आज वह मेरे ही कारण उसको छोड़कर चला आ रहा है। 'श्रीजनकनन्दिनीको श्रीरामके समीप पहुँचाकर उससे सन्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लो' यही तो उसको समझाना था। इसीपर तो अभिमानमूर्ति रावणने उसका अपमान किया था। आज वह इसीलिये तो अपने स्त्री, पुत्र, लङ्काकी विभूति, धन, वैभव सब कुछ छोड़कर मेरे पास आश्रय लेनेके लिये चला आ रहा है। मैंने प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि कोई भी और कैसा भी दोषी मेरे अभिमुख चला आवे उसको मैं आश्रय दूँगा। मेरे यहाँ तो साधारण-से-साधारण शरणार्थीको भी आश्रय मिलता है। जिसमें इसने तो मेरे ऊपर बड़ा अहसान किया है। मेरे हितके लिये अपना सर्वस्व त्याग किया है। दुस्त्यज घरद्वारतककी ममता छोड़ दी है, भला यह त्याग कुछ कम है? जिस समय भाईपर आपत्ति आ रही है, अपना पारम्परिक राष्ट्र नष्ट हो रहा है, उस सङ्कट-मय समयमें भी न्यायके मार्गको अवलम्बन करके वह मेरी सहायताके लिये यहाँ चला आ रहा है। उसके हृदयमें सच्ची लगन है कि मैं श्रीरामकी सहायता करूँ। मेरी इस सहायताके बदले आजन्मके लिये उसने कलङ्क मोल ले लिया।

विभीषण चाहे जैसे धर्मात्मा हों, चाहे जिस भावसे रामकी सेवा उन्होंने अङ्गीकार की हो परन्तु विश्वभरमें वह विश्वासघातीकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। 'घरका भेदी लङ्का ढाये' यह प्रवाद आजतक नहीं मिटता। जो मेरे लिये इतना त्याग कर चुका है उसका उपकार मेरे ऊपर कुछ सामान्य है? परन्तु इतना होनेपर भी वह अपनी आत्मामें ज़रा अभिमान नहीं रखता। रञ्चकमात्र भी मेरे प्रति अहसानकी झलक दिखाना नहीं चाहता। वह अपने मुखसे अपना निकर्ष सूचित कर रहा है, दैन्य दिखा रहा है। भला यह सामान्य शरणभाव है? नहीं-नहीं, उसका उत्कर्ष मेरा यह हृदय जानता है। जिस समय वह लङ्कासे रवाना हुआ उसी समयसे मैंने भी उसको अङ्गीकार कर लिया, उसको अभय दे दिया। इसी भावको लेकर श्रीरामचन्द्र यहाँ आज्ञा करते हैं—'अभयं दत्तम्' दे दिया।

सदाचारमें चलनेवाले धार्मिक विभीषणने जिस समय सुना कि रावण श्रीरामचन्द्रकी वञ्चना करके श्रीजनक-नन्दिनीको ले आया है। उसी समयसे उनका हृदय लङ्कासे निर्विण्ण हो गया था। फिर जैसे-जैसे अशोक-वाटिकाके क्रूर वृत्तान्त उनके पास पहुँचते रहे वैसे-वैसे उनके हृदयमें एकान्तदुःख बढ़ता रहा। रावणको अहित-मार्गसे हटाकर कल्याणके रास्तेपर लानेके लिये वह बड़े विकल हो रहे थे। जब-जब उनको अवसर मिलता वह उग्रप्रकृति रावणके स्वभावको देखकर दबी ज़बान धीरे-धीरे हितकी सलाह देते। परन्तु राक्षसमण्डलीमें भली सलाह कौन सुनने देता है? जिस समय श्रीराघवका समुद्रतटपर पधारना सुना तथा यह भी विदित हुआ कि किष्किन्धाधिपति अथाह वानर-ऋक्ष-सैन्य लेकर साथ आये हैं और समुद्रोल्लङ्घनकी सलाह हो रही है, उस समय रावणके सच्चे हितैषी विभीषणसे न रहा गया। बिना कहे भी आप लङ्काधिपतिके पास गये। जिस समयसे रावण और उसके सलाहकारोंको यह विदित हुआ कि विभीषण सीताके हरणसे अप्रसन्न हैं तथा रामसे सन्धि कर लेनेके पक्षपाती हैं उसी समयसे लङ्काधिपतिके राजमहलमें उनका सम्मान घट चुका था। कोई उनके अनुकूल न था, सब उन्हें हेयदृष्टिसे देखते थे। रावण भी उनसे न कभी बोलता, न सलाह लेता, किन्तु विभीषण रावणका भला चाहते थे। अतएव अपने मानापमानकी तरफ कुछ न देखकर वे चलकर राजमहलमें पहुँचे।

जहाँतक उनकी शक्ति थी खूब ऊँच-नीच रावणको समझाया। परन्तु इसपर प्रहस्त आदि सभी मन्त्री बिगड़ उठे। इन्द्रजीत जो इनका भतीजा था, पुत्रके समान पोष्य था, उसने भी यहाँतक इनका अपमान और तिरस्कार किया और कहा कि 'इस कुलकी तो क्या कथा किसी नीच कुलमें उत्पन्न हुआ मनुष्य भी ऐसी सलाह नहीं दे सकता। इस वंशमें एक यही ऐसे हुए हैं जो वीर्य, पराक्रम, धैर्य, तेज इत्यादि सबसे हीन हैं।' दयालु विभीषणके हृदयमें भतीजेके ये वाक्य विषबुझे तीरकी तरह लगे। रावणने भी इन्हें बड़े कुटिल वाक्योंसे फटकारा। कहा कि—

वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना॥

'शत्रुके साथ, क्रुद्ध हुए साँपके साथ भी आदमी रह सकता है परन्तु ऊपरसे मित्रता-सा दीखे और भीतर शत्रुसे मिला हुआ हो ऐसे मनुष्यके साथ कभी न रहे।' साधुहृदय विभीषण उठ खड़े हुए। अपने कर्तव्यकी जहाँतक दौड़ हो सकती थी उससे अधिक उद्योग वह कर चुके थे। इस दशामें उन्हें यहाँतक दुःख हुआ कि बिना घर गये ही समुद्रतटकी तरफ़ उन्होंने मुख कर लिया। नलिनायतलोचन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी ओर उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त खिंच गया था। लङ्का, स्त्री, पुत्र, राज्यविभूतियाँ, उसी क्षण उनके हृदयसे हट चुकी थीं। उनको एकमात्र अब यही ध्यान था कि जिन श्रीरामचन्द्रके गुण अबतक सुनता आया हूँ, जो दयाके सागर सुने जाते हैं, वह क्या मेरे सदृश दुष्कुलोत्पन्न पुरुषको भी अपनी सेवामें ले सकेंगे ?

ध्यान रहे, यह विभीषणकी भावना आन्तरिक थी। इसमें कृत्रिमताका लेशमात्र न था। जिन श्रीरामचन्द्रको देखा नहीं, परिचय नहीं, प्रत्युत इस समय वैरीपक्षमें हो रहे थे, उन्हींकी तरफ़ एकाएक हृदयका मुड़ जाना स्वभावकी प्रेरणा नहीं तो और क्या है ? फिर आप ही देख लीजिये—स्वभावसे, सच्चे हृदयसे, अकृत्रिमभावसे, भगवान्‌का ध्यान किया जाय और भगवान् उसका अनिष्ट देखा करें ? नहीं-नहीं, वे अन्तर्यामी हैं। जिस समय इनके हृदयमें अङ्कुररूपसे ही भगवान्‌की भावना उत्पन्न हुई थी, उसी समयसे वह उनसे अविदित न थी। भगवान् उसी समय इन्हें परिकरमें ले चुके थे और अभय दे चुके थे, अब लेना-देना कैसा ? इसीलिये भगवान् श्रीरामचन्द्र कहते हैं 'अभयं मया दत्तम्।' 'अभय मैं पहले ही दे चुका।' (क्रमशः)

नरक और स्वर्ग

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति।

श्यामा—हे बहिन ! सुनते हैं कि पापात्मा प्राणी मरनेके बाद नरकोंमें जाकर पापोंका फल यम-यातना भोगते हैं। और पुण्यात्मा प्राणी स्थूल देहको त्यागकर स्वर्गलोकमें जाकर देवताओंके दिव्य भोग भोगते हैं। बहुत-से लोगोंका कथन है कि नरक, स्वर्ग यहाँ ही है। जो भाई-बहिन धन-धाम, स्त्री-परिवारसे युक्त होनेसे सुखी हैं, उनके लिये यहीं स्वर्ग है। और जो भाग्यहीन धन-धाम आदिसे हीन होनेसे दुःखी हैं उनके लिये यहीं नरक है। दोनोंका कथन ठीक ही है; क्योंकि यहाँ भी सुखी-दुखी देखनेमें आते हैं। और परलोकमें तो नरक-स्वर्ग हैं ही, क्योंकि ऐसा शास्त्रोंका मत है। मैं तुमसे यह सुनना चाहती हूँ कि तेरी समझमें नरक और स्वर्ग क्या हैं ?

कोकिला—हे बहिन ! तेरा यह कहना सर्वथा सत्य ही है कि नरक और स्वर्ग यहाँ भी हैं और परलोकमें भी हैं। परन्तु मुझे तो पूज्यपाद भाष्यकारका कथन रुचता है। उनका कथन है कि अपना देह ही नरक है, और तृष्णाका नाश ही स्वर्ग है। यह बात सोलहों आने सत्य है, क्योंकि देहवाला अथवा देहके अभिमानवाला मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, वह सदा दुखी ही रहता है। और जो दुखी रहता है, वह नरकमें ही है। इसी प्रकार जिसमें तृष्णा नहीं है, उसके लिये संसारमें कहीं भी दुःख नहीं है। तृष्णा ही दुःखका मूल है, तृष्णारहित मनुष्य सदा सुखी होता है। अतएव तृष्णारहित मनुष्य संसारमें जीता हुआ ही स्वर्गका सुख भोगता है। इस प्रकार सबके अनुभवसे सिद्ध है कि अपना देह ही नरक है और तृष्णाका नाश ही स्वर्ग है। अतः कल्याणकी इच्छा-वालोंको तृष्णाका नाश करना चाहिये और ऐसा उपाय करना चाहिये कि इस देहके त्यागके बाद दूसरे देहकी प्राप्ति न हो। जहाँतक हो सके देहाभिमानका त्याग अवश्य करना चाहिये, इसी बातको मैं तुझे कुछ विस्तारसे समझाती हूँ।

हे बहिन ! स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन देह हैं, ये तीनों देह सदा-सर्वदा ज्वरोंसे युक्त रहते हैं। स्थूल शरीरमें वात, पित्त और कफके दोषसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक प्रकारके ताप होते रहते हैं। भूख-प्यास भी प्रतिदिन सताती हैं। लड़कपन तथा जवानीमें भी कोई-न-कोई रोग रहता ही है और बुढ़ापा तो प्रत्यक्ष रोगोंका घर ही है। यह बात सबके अनुभव-से सिद्ध है। सूक्ष्म देहमें काम-क्रोधादि और शम-दम आदि ज्वर होते हैं। जब काम-क्रोधादि होते हैं तब सताते हैं; और शम-दम आदि जब नहीं होते, तब सताते हैं। इसलिये सूक्ष्म शरीर रोगमय है, कारण-शरीर इन दोनोंका बीजरूप होनेसे दुःखरूप है। न अपनेको जानता है न परायेको जानता है, मरा हुआ-सा होता है। इस प्रकार तीनों शरीर रोगमय हैं। जागतेमें मनुष्य रोता हुआ-सा रहता है। स्वप्नमें अन्धा-सा हो जाता है और सुषुप्तिमें मरा हुआ-सा हो जाता है। जिनके सत्संगसे स्वयं ज्योति आत्मा रोता हुआ-सा, अन्धा-सा और मरा हुआ-सा हो जाय वे शरीर प्रत्यक्ष नरक नहीं तो और क्या है ?

एक दिन एक मनुष्यने एक महात्मासे इस प्रकार प्रार्थना की।

मनुष्य—महाराज! मैं बहुत दिनोंसे गुरुकी खोजमें हूँ, आजतक मुझे कोई गुरु नहीं मिला। आपकी सेवामें मैं सालभरसे आता हूँ, यह बात आप जानते ही हैं। मुझे भी आपपर यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि आपके द्वारा अवश्य ही मेरा कल्याण होगा। कृपया मुझे शिष्य बनाकर योग्य उपदेश दीजिये। मैं आपके उपदेशको सिर-आँखोंसे मानूँगा।

महात्मा—भाई! मैं शिष्य तो किसीको नहीं बनाता परन्तु तुम सालभरसे निरन्तर मेरे पास आते हो, तुम्हारे स्वभावसे मैं परिचित हो गया हूँ। तुम शुद्ध बुद्धिवाले दीखते हो, इसलिये मैं तुम्हें उपदेश दूँगा। जाओ तुम संसारमेंसे ऐसी कोई वस्तु खोजकर लाओ, जो तुम्हारी समझमें सबसे बुरी हो!

मनुष्य चल दिया और गुरुकी आज्ञानुसार सबसे बुरी वस्तुकी खोज करने लगा। किसी चीजको बुरी समझकर उठाता, परन्तु जब दूसरी वस्तु उससे अधिक बुरी मिल जाती तब उसे छोड़कर दूसरीको उठा लेता। इस प्रकार वह कई दिनोंतक करता रहा। उसे एक-से-एक बढ़कर बुरी वस्तु मिलती रही! एक दिन वह विष्ठाको देखकर सोचने लगा कि बस, इससे बढ़कर मेरी समझमें और कोई बुरी वस्तु नहीं है। सब मनुष्य इससे घृणा करते हैं, और दूर रहते हैं। मक्खियाँ इसके ऊपर बैठती हैं, और सूकर आदि इसको खा जाते हैं। ये दोनों मूर्ख हैं, इनकी समझ प्रमाणरूप नहीं है और भङ्गी इसे उठाते हुए देखनेमें आते हैं वे लोभवश ऐसा करते हैं, उनकी बुद्धि लोभवश होनेसे प्रमाणरूप नहीं है। मेरी समझमें सबसे बुरी वस्तु यही है। अतएव इसीको गुरुके पास ले चलना चाहिये।

ऐसा विचारकर मनुष्य विष्ठाको एक टोकरीमें रखकर गुरुके पास ले चला। तब विष्ठा उससे इस प्रकार कहने लगी—

अरे भाई! तू मुझे जैसी समझता है वैसी मैं नहीं हूँ। मैं तो कल दूध, दही, घी, मिष्ठान्न आदि सुन्दर और स्वादिष्ट पदार्थ थी। मनुष्योंका मन मेरे लिये ललचाता था, मुझे देखते ही उनकी जीभ लपलपा उठती थी, मुझको मनुष्यने खाया और एक ही रातके उसके सत्संगसे मेरी यह दशा हो गयी। हे मनुष्य! यदि मैं तेरे शरीरका संग न करती तो मेरी यह दशा न होती। मैं बुरी नहीं हूँ, तेरे शरीरके संगसे ही बुरी हो गयी हूँ। इसलिये तेरा यह शरीर ही सबसे बुरा है।

श्यामा—हे बहिन! तूने भी खूब कहा? कहीं विष्ठा भी बोला करती है? जड़ पदार्थ तो कहीं भी बोलते हुए नहीं देखनेमें आते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोकिला—हे बहिन! जड़ पदार्थ क्यों नहीं बोलेंगे? चेतन-अचेतन सभी पदार्थ बोलते हैं। कोई सबसे बोलते हैं, कोई किसीसे। बुद्धिमानोंसे तो सभी बोलते हैं। हाँ, बोलनेकी भाषा अपनी-अपनी अलग-अलग होती है। बुद्धिमान् पुरुष उनकी भाषा समझते हैं, विष्ठाको देखते ही सभी हट जाते हैं। घी पुष्टिकारक है, दूध रेचक और पाचक है, उड़दकी दाल वादी करती है, अरहरकी दाल रूखी है, इत्यादि सभी चीजें अपने-अपने गुण बताती हैं। मूर्ख उनके बतानेपर भी नहीं समझते, चतुर समझ जाते हैं। बोलना मुखसे ही नहीं होता। सूरतसे, रंगसे, स्वभावसे, स्वादसे, गुणसे और अन्यान्य अनेक प्रकारोंसे परस्पर बातचीत हो सकती है। अस्तु! हे बहिन! वह मनुष्य विष्ठाकी बात सुनकर इस प्रकार विचार करने लगा। हाँ ठीक तो है, विष्ठा सच कहती है कि मेरा शरीर ही बुरा है, यद्यपि विष्ठाका यह कथन ठीक नहीं है कि मेरे संगसे ही उसकी दुर्दशा हो गयी है। क्योंकि मेरे संगके बिना भी दूध-दही आदि वस्तु सड़ जाती हैं। फिर भी मेरा शरीर बुरा है, यह कथन तो ठीक ही है। क्योंकि जिन अन्नादि वस्तुओंकी बनी हुई विष्ठा है उन्हीं अन्नादि वस्तुओं-का बना हुआ मेरा शरीर है। इस शरीरमें हड्डी, मांस, चमड़ा आदि कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं है। इन्हीं वस्तुओंको जब हम बाहर देखते हैं, तब उनसे घृणा करते हैं। किसीने सच कहा है यदि मांस-रक्तादि-का यह शरीर चमड़ीसे नहीं ढका होता, तो स्त्री-पुरुष उसे चील-कौओंसे बचाते-बचाते मर जाते।

ऐसा विचारकर मनुष्यने महात्मासे जाकर कहा कि भगवन्! सबसे बुरा मेरा यह शरीर ही है। महात्माने अधिकारी समझकर उसे उपदेश दिया और तीनों शरीरोंसे भिन्न उसके आत्माका साक्षात्कार करवाकर उसे कृतार्थ कर दिया। हे बहिन! अब तू समझ गयी होगी कि अपना यह शरीर ही नरक है। भाष्यकारका यह कथन सत्य है।

अब तृष्णाका नाश स्वर्ग है, यह बताती हूँ। तृष्णा पिशाचिनीने सब जीवोंको दीन बना रक्खा है। जीव स्वभावसे चेतन, अमल और सुखकी राशि है परन्तु इस राक्षसी तृष्णाके कारण यह अपने सुखस्वरूपको भूलकर सुखकी खोजमें ऊँच-नीच योनियोंमें चक्कर काटता हुआ कष्ट पा रहा है। तृष्णा जन्मके साथ ही जीवके संग आती है। और जीवनभर उसके साथ रहकर अन्तमें जीवके मरनेपर उसके साथ ही सती हो जाती है। फिर जहाँ भी वह जाता है, यह साथ ही रहती है। जो धीर भाई-बहिन विचारपूर्वक इस तृष्णासे छूट जाते हैं, वही धन्य हैं और उन्हींका जन्म सफल है।

स्वधर्मका निष्कामभावसे पालन करनेसे दयालु भगवान् अपनी भक्ति और मुक्ति दोनों दे देते हैं। परन्तु यह तृष्णा चुड़ैल मनुष्यको स्वधर्मका पालन नहीं करने देती और उसको परधर्ममें प्रवृत्त कराकर अधोगति प्राप्त करा देती है। तृष्णाके कारण ही उच्च वर्णका मनुष्य नीच वर्णके धर्मका अनुष्ठान करके लोक-परलोक दोनोंसे भ्रष्ट होता है, इसी प्रकार तृष्णासे ही नीच वर्णका मनुष्य अपना धर्म छोड़कर पराये धर्मका आचरण करता है और अपने दोनों लोकोंको बिगाड़ लेता है। उत्तम कुलकी स्त्रियोंका धर्म है कि जब कभी उन्हें बाहर जाना हो तो पति अथवा भाईके साथ जायँ अथवा दो-चार जनी मिलकर जायँ। परन्तु बहुत-सी बहिनें उत्तम कुलकी होकर भी तृष्णाके कारण स्वतन्त्र होकर अकेली ही घूमना चाहती हैं। धर्ममें अधर्म और अधर्ममें धर्मबुद्धि करानेवाली इस तृष्णा राक्षसीसे परमात्मा सबको बचावें।

किसी जगह एक परिवारमें दो स्त्री-पुरुष थे, वे पहले बहुत धनी थे। पीछे दैवयोगसे निर्धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये, तब दोनोंने बहुत वर्षोंतक एकचित्त होकर सूर्य भगवान्‌की आराधना की। सूर्य भगवान्‌ने उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर मनोकामना पूर्ण करनेवाला एक अद्भुत शङ्ख देकर उनसे कहा—

हे भावुको! यह शङ्ख बिना माँगे ही तुम्हारी सब कामनाएँ पूरी करता रहेगा और अन्तमें तुम दोनोंको मेरे दिव्य लोककी प्राप्ति करा देगा। अतएव इससे कुछ माँगना नहीं; यदि माँगे बिना मन न रहे तो बीस बारसे अधिक तो कभी माँगना ही नहीं, क्योंकि बीस बारतक तुम्हें यह मुँहमाँगी वस्तु देगा। परन्तु तुम इक्कीसवीं बार माँगोगे तो यह तुम्हें दी हुई सारी वस्तुएँ छीन लेगा। और तुम जैसे इस समय निर्धन हो वैसे ही फिर हो जाओगे।

शङ्खके आते ही दम्पतिका काम भलीभाँति चलने लगा। अन्न-वस्त्रकी कुछ भी कमी नहीं रही। सूर्य भगवान्‌की आज्ञानुसार उन्होंने उससे बहुत समयतक कुछ भी नहीं माँगा। बिना ही माँगे सारी आवश्यकताएँ अपने-आप पूरी होती रहीं। दोनों सुखी हो गये। परन्तु तृष्णा राक्षसी उन्हें सुखी न देख सकी। पुरुषके ऊपर तो उसका कुछ बस न चला। परन्तु एक दिन स्त्रीके ऊपर वह भूतनी होकर चढ़ बैठी। जैसे मन्थराके वश हुई कैकेयीने राजा दशरथसे वर माँगा था, उसी प्रकार वह स्त्री अपने पतिसे कहने लगी—

स्त्री—हे प्राणपते! इस लोकमें आकर केवल अन्न-वस्त्रसे ही निर्वाह नहीं करना चाहिये, प्राप्त हो सके तो और भोग भी भोगने चाहिये। सूर्य भगवान्‌ने बीस बार माँगनेकी आज्ञा तो दे ही रक्खी है, दो-चार बार माँगनेमें तो कुछ हानि है ही नहीं। लक्ष्मीचन्द सेठका-सा एक मकान माँग लो तो हमारा मकान ग्राममें सबसे ऊँचा हो जायगा। पुरुष स्त्रीके कहनेमें आ गया, उसने एक मकान माँगा और माँगते ही मकान इच्छानुसार मिल गया। तब दम्पतिने दास-दासियाँ हो जानेकी शङ्खसे प्रार्थना की। दास-दासी भी हो गये। फिर दास-दासियोंके लिये प्रचुर धनकी प्रार्थना की। धन भी हो गया। फिर पुत्र-पुत्रियोंकी चाहना की, वे भी मिल गये। फिर भी तृष्णा पूरी न हुई। फिर नगरके राजा बननेकी प्रार्थना की। राजा हो गये। पर राजा होकर भी सन्तोष न हुआ। फिर देशके राजा बननेकी प्रार्थना की, उससे भी सन्तोष न हुआ। कई बार प्रार्थना करते-करते बीस बार प्रार्थना हो गयी। और वे पृथ्वीभरके सम्राट्-सम्राज्ञी हो गये।

एक दिन स्त्रीको, यह इच्छा हुई कि मनुष्य होकर पूर्ण आनन्द तो हमको प्राप्त हो गया है। अब यदि सूर्य, चन्द्रमा और मेघ भी हमारे वशमें हो जायँ तो फिर आनन्दका कोई पार ही न रहे। सर्दी, गर्मी, वर्षा सभी हमारे अधीन हो जायँ।

ऐसा विचारकर स्त्रीने, पुरुषसे पुनः प्रार्थना करनेको कहा। उसकी भी तृष्णा अत्यन्त बढ़ी हुई थी। कितनी बार प्रार्थना की, यह उसे याद नहीं था। स्त्रीकी बात मानकर उसने प्रार्थना की। इस प्रार्थनाका पूर्ण होना असम्भव था, क्योंकि यह इक्कीसवीं बारकी थी। प्रार्थना करते ही उनका सब ऐश्वर्य चला गया। और उन्होंने अपनेको उसी गरीबी दशामें पहलेवाले छोटे-से मकानमें पाया, अब तो वे दोनों बहुत ही पछताये, परन्तु अब क्या होता! तृष्णा ऐसी ही है, यह कभी पूर्ण नहीं होती। देवताओंको भी इसने वशमें कर रक्खा है।

हे बहिन! उपर्युक्त कथाका रहस्य यह है कि जीवात्मा पुरुष है और बुद्धि स्त्री है। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्माका अंश होनेसे धनी हैं, परन्तु तृष्णाके कारण कङ्गाल हो गये हैं। जब वे सूर्य भगवान्‌रूप परमेश्वरकी आराधना करते हैं, तब परमेश्वर उनको पुण्यरूप शङ्ख दे देता है, यदि वे किसी प्रकारकी कामना न करें तो पुण्य वृद्धिको प्राप्त होकर उन्हें परमात्मासे मिला देता है। परन्तु कुबुद्धिके वश होकर जीव अनेक प्रकारकी इच्छाएँ किया करता है। इच्छाएँ करनेसे और उनका फल भोगनेसे जीवका पुण्य क्षय हो जाता है, इच्छाके ऊपर इच्छा करना ही तृष्णा है। यह तृष्णा महान् अनर्थका मूल है और तृष्णाका नाश हो जाना सब अनर्थोंका नाश हो जाना है। इसलिये ठीक ही कहा है कि तृष्णाका नाश स्वर्ग है। सबका सार यह है ।

नर शरीर है नरक सम, कष्ट अनेकों देय।
तृष्णाक्षय है स्वर्ग सम, यही शान्ति सुख देय॥

मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्त्तव्य है ?

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रत्येक मनुष्यको विचार करना चाहिये कि 'मैं कौन हूँ' और 'मेरा क्या कर्त्तव्य है ?' मैं नाम, रूप—देह, इन्द्रिय, मन या बुद्धि हूँ या इनसे कोई भिन्न वस्तु हूँ ? विचारपूर्वक निर्णय करनेसे यही बात ठहरती है कि मैं नाम नहीं हूँ, मुझे आज जयदयाल कहते हैं परन्तु जब प्रसव हुआ था उस समय इसका नाम जयदयाल नहीं था। यद्यपि मैं मौजूद था। घरवालोंने कुछ दिन बाद नामकरण किया। उन्होंने उस समय जयदयाल नाम न रखकर महादयाल रक्खा होता तो आज मैं महादयाल कहलाता और अपनेको महादयाल ही समझता ! मैं न पूर्वजन्ममें जयदयाल था, न गर्भमें जयदयाल था, और न शरीरनाशके बाद जयदयाल रहूँगा। यह तो केवल घरवालोंका निर्देश किया हुआ साङ्केतिक नाम है। यह नाम एक ऐसा कल्पित है कि जो चाहे जब बदला जा सकता है, और उसीमें उसका अभिमान हो जाता है। जो विवेकवान् पुरुष इस रहस्यको समझ लेता है कि मैं नाम नहीं हूँ, वह नामकी निन्दा-स्तुतिसे कदापि सुखी-दुखी नहीं होता। जब वह मनुष्य 'नाम' की निन्दा-स्तुतिमें सम नहीं है, निन्दा-स्तुतिमें सुखी-दुखी होता है तब वह नाम न होनेपर भी 'नाम' बना बैठा है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जो इस रहस्यको जान लेता है उसमें इस भ्रमकी गन्धमात्र भी नहीं रहती। इसीलिये श्रीभगवान्‌ने तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके लक्षणोंको बतलाते हुए उन्हें निन्दा और स्तुतिमें सम बतलाया है—

'तुल्यनिन्दास्तुतिः.....' (गीता १२ । १९)

'तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः' (गीता १४ । २४)

फिर यह प्रसिद्ध भी है कि जयदयाल 'मेरा' नाम है 'मैं' जयदयाल नहीं हूँ । इससे यह सिद्ध हुआ नाम 'मैं' नहीं हूँ ।

इसी प्रकार रूप—देह भी मैं नहीं हूँ, क्योंकि देह जड है और मैं चेतन हूँ, देह क्षय, वृद्धि, उत्पत्ति और विनाशधर्मवाला है, मैं इनसे सर्वथा रहित हूँ। बालकपनमें देहका और ही स्वरूप था, युवापनमें दूसरा था और अब कुछ और ही है, किन्तु मैं तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्थाओंको जाननेवाला तीनोंमें एक ही हूँ। किसी पुरुषने मुझको बाल्यावस्थामें देखा था, अब वह मुझसे मिलता है तो मुझे पहचान नहीं सकता। देहका रूप बदल गया। शरीर बढ़ गया, दाढ़ी-मूँछें आ गयीं। इससे वह नहीं पहचानता। किन्तु मैं पहचानता हूँ, मैं उससे कहता हूँ, आपका शरीर युवावस्थासे वृद्ध होनेके कारण उसमें कम अन्तर पड़ा है, इससे मैं आपको पहचानता हूँ। मैंने आपको अमुक जगह देखा था। उस समय मैं बालक था, अब मेरे शरीरमें बहुत परिवर्त्तन हो गया, अतः आप मुझे नहीं पहचान सके। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर 'मैं' नहीं हूँ। 'शरीर मैं हूँ' ऐसा अभिमान भी पूर्वोक्त नामके समान ही सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जो पुरुष इस रहस्यको जानते हैं वे शरीरके मानापमान और सुख-दुःखमें सर्वथा सम रहते हैं। क्योंकि वे इस बातको समझ जाते हैं कि मैं शरीरसे सर्वथा पृथक् हूँ। इसीलिये तत्त्ववेत्ताओंके लक्षणोंमें भगवान् कहते हैं—

'समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।' (गीता १२। १८)

'मानापमानयोस्तुल्यः' (गीता १४। २५)

'समदुःखसुखः' (गीता १४। २४)

अतएव विचार करनेसे यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि यह जड शरीर मैं नहीं हूँ, मैं इस शरीरका ज्ञाता हूँ; और प्रसिद्धि भी यही है कि शरीर 'मेरा' है। मनुष्य भ्रमसे ही शरीरमें आत्माभिमान करके इसके मानापमान और सुख-दुःखसे सुखी-दुखी होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मैं शरीर नहीं हूँ।

इसी तरह इन्द्रियाँ भी मैं नहीं हूँ। हाथ-पैरोंके कट जाने, आँखें नष्ट हो जाने और कानोंके बहरे हो जानेपर भी मैं ज्यों-का-त्यों पूर्ववत् रहता हूँ, मरता नहीं। यदि मैं इन्द्रिय होता तो उनके विनाशमें मेरा विनाश होना सम्भव था। अतएव थोड़ा-सा भी विचार करनेपर यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि मैं जड इन्द्रिय नहीं हूँ, वरं इन्द्रियोंका द्रष्टा या ज्ञाता हूँ।

इसी प्रकार मैं मन भी नहीं हूँ। सुषुप्तिकालमें मन नहीं रहता, परन्तु मैं रहता हूँ। इसीलिये जागनेके बाद मुझको इस बातका ज्ञान है कि मैं सुखसे सोया था। मैं मनका ज्ञाता हूँ। दूसरोंकी दृष्टिमें भी मनके अनुपस्थितिकालमें (सुषुप्ति या मूर्छित अवस्थामें) मेरी जीवित सत्ता प्रसिद्ध है। मन विकारी है, इसमें भाँति-भाँतिके संकल्प-विकल्प होते रहते हैं। मनमें होनेवाले इन सभी संकल्प-विकल्पोंका मैं ज्ञाता हूँ। खान, पान, स्नान आदि करते समय यदि मन दूसरी ओर चला जाता है तो उन कामोंमें कुछ भूल हो जाती है, फिर सचेत होनेपर मैं कहता हूँ, मेरा मन दूसरी जगह चला गया था इस कारण मुझसे भूल हो गयी। क्योंकि मनके बिना केवल शरीर और इन्द्रियोंसे सावधानी-पूर्वक काम नहीं हो सकता। अतएव मन चञ्चल और चल है परन्तु मैं स्थिर और अचल हूँ। मन कहीं भी रहे, कुछ भी संकल्प-विकल्प करता रहे, मैं उसको जानता रहता हूँ, अतएव मैं मनका ज्ञाता हूँ, मन नहीं हूँ।

इसी तरह मैं बुद्धि भी नहीं हूँ, क्योंकि बुद्धि भी क्षय और वृद्धि-स्वभाववाली है। मैं क्षय-वृद्धिसे सर्वथा रहित हूँ। बुद्धिमें मन्दता, तीव्रता, पवित्रता, मलिनता, विकार, व्यभिचारादि होते हैं परन्तु मैं उसकी इन सब स्थितियोंको जाननेवाला हूँ। मैं कहता हूँ उस समय मेरी बुद्धि ठीक नहीं थी, अब ठीक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि कब क्या विचार रही है और क्या निर्णय कर रही है इसको मैं जानता हूँ। बुद्धि दृश्य है, मैं उसका द्रष्टा हूँ। अतएव बुद्धिका मुझसे पृथक्त्व सिद्ध है, मैं बुद्धि नहीं हूँ।

इस प्रकार मैं नाम, रूप—देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि प्रभृति नहीं हूँ। मैं इन सबसे सर्वथा अतीत, इनसे सर्वथा पृथक्, चेतन, साक्षी, सबका ज्ञाता, सत्, नित्य, अविनाशी, अविकारी, अक्रिय, सनातन, अचल और समस्त सुख-दुःखोंसे रहित केवल शुद्ध आनन्दमय आत्मा हूँ। यही मैं हूँ। यही मेरा सच्चा स्वरूप है।

क्लेश, कर्म और सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त होकर परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति हुई है। इस परम शान्ति और परमानन्दको प्राप्त करना ही मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य है। मनुष्य-शरीरके बिना अन्य किसी भी देहमें इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इस स्थितिकी प्राप्ति तत्त्वज्ञानसे होती है, और वह तत्त्वज्ञान विवेक, वैराग्य, विचार, सदाचार और सद्गुण आदिके सेवनसे होता है। और इन सबका होना इस घोर कलिकालमें ईश्वरकी दयाके बिना सम्भव नहीं। यद्यपि ईश्वरकी दया सम्पूर्ण जीवोंपर पूर्णरूपसे सदा-सर्वदा है किन्तु बिना उनकी शरण हुए उस दयाके रहस्यको मनुष्य समझ नहीं सकता। एवं दयाके तत्त्वको समझे बिना उस दयाके द्वारा होनेवाले लाभको वह प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारसे ईश्वरके शरण होकर उनकी दयाके रहस्यको समझकर उससे पूर्ण लाभ उठाना चाहिये। ईश्वरकी शरणसे ही हमें परम शान्ति मिल सकती है। श्रीभगवान् कहते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
(गीता १८।६२)

'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्ति और सनातन परम धामको प्राप्त होगा।'

जब यह मनुष्य परमेश्वरके शरण* होकर परमेश्वरके तत्त्वको जान जाता है, तब उस परमेश्वरकी कृपासे अज्ञान नाश होकर वह परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है। जैसे निद्राके नाशसे मनुष्य जाग्रत्को, दर्पणके नाशसे प्रतिबिम्ब बिम्बको, तथा घटके फूटनेसे घटाकाश महाकाशको प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार अज्ञानके नाशसे यह जीवात्मा विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जब यह साधक नाम, रूप—देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे अपनेको सर्वथा पृथक् समझ लेता है, तब यह ईश्वरके शरण होकर ईश्वरकी कृपासे, देहादि सम्बन्धसे होनेवाले समस्त क्लेशों और पापोंसे सदाके लिये सर्वथा मुक्त हो जाता है, एवं विज्ञानानन्दघन परमात्माका सनातन अंश होनेके कारण सदाके लिये उस विज्ञानानन्दघन प्रभुको प्राप्त हो जाता है। प्रभुको प्राप्त करनेके लिये अनन्यभावसे इस प्रकार प्रयत्न करना और प्रभुको प्राप्त हो जाना ही मनुष्यका परम कर्तव्य है।

* शरणका सार अर्थ है श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्काम भावसे प्रभुकी आज्ञाका पालन करना, गुण और प्रभाव-सहित उसके स्वरूपका चिन्तन करना, एवं हमारे कर्मोंके अनुसार परमेश्वरकृत सुख-दुःखादि विधानमें सर्वथा सम-चित्त रहना। शरणागतिका विशेष वर्णन देखना हो तो 'तत्त्व-चिन्तामणि' नामक गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तक देखनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीरका हृदय

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

कबीरकी अटपटी 'बानी' के भीतर पैठकर उनके हृदयकी निगूढ़ व्यथाका मर्म समझना बहुत कठिन कार्य है। कबीरके सम्बन्धमें हमारी बड़ी विचित्र धारणा है। कबीरको प्रायः नीरस, शुष्क, अक्खड़ महात्मा समझा जाता है। संसारके प्रति कबीरका जो दृढ़ वैराग्य है उसकी ही ओर हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ, प्रेमसे भिने हुए कबीरके हृदयकी कसमसाहटको किसीने देखनेकी चेष्टा ही नहीं की। 'नइयामें नदिया बही जाय' तथा 'बरसे आँगन भीजे पानी' की ओर बार-बार संकेतकर हमने कबीरको ऊटपटाँग महात्मा मानकर सन्तोष कर लिया। इन उलट-बाँसियोंमें लोगोंका बस एक कुतूहलमात्र हुआ। कबीरके साथ अभी हमारा परिचय सर्वथा अपूर्ण है, अधूरा है।

कबीरकी साधनाके दो अंग हैं—'दुःखालय' और 'अशाश्वत'। जगत्के बनने-मिटनेवाले बाह्य रूपके प्रति कबीरका अत्यन्त दृढ़ वैराग्य है। उनकी भावना प्रबल है कि 'रहना नहिं देस बिराना है।' यह संसार जिसके प्रति हमारा अपार आकर्षण है पानीके बुलबुलेकी भाँति क्षणभंगुर है। कबीरने जगत्के असली रूपको खूब अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख लिया परन्तु इससे वे परास्त नहीं हुए। मृत्यु, विनाश, सीमा, परिवर्तन और विकारको पारकर कबीरने 'परम पुरुष' के संस्पर्श-सुखको अपने अन्तस्तलमें अनुभव किया। इस ब्रह्म-संस्पर्शके उन्मादकारी मधुमें कबीरने अपनी साधनाको अभिसिञ्चित किया है। कबीरने सच्चे आनन्दका रस पिया और घूँघटका पट हटाकर अपने प्राणवल्लभका आलिङ्गन किया। मृत्युके उस पार प्रेम, सौन्दर्य और आनन्दकी जो त्रिवेणी लहरा रही है उसमें कबीरने अपनी आत्माको नहलाया। उस अमर ज्योतिसे कबीरके जीवनका प्रति पल और उनके विश्वका कण-कण उद्भासित हो रहा है।

सोवौं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर॥

कबीर 'क्रान्तदर्शी' आत्मज्ञानी सन्त थे। उन्होंने 'उस पार' को देखा और जगत्को बेधती हुई उनकी दृष्टि वहीं जाकर ठहरी जहाँ 'परम पुरुष' का रंगमहल है; जहाँ सत्-चित्-आनन्दका ही साम्राज्य है।

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घटकी, जा घट परगट होय॥
ज्यों तिलमाहीं तेल है, ज्यों चकमकमें आगि।
तेरा साईं तुज्झमें, जागि सकै तो जागि॥

ऊपरी ऊपर तो जगत्में हाहाकार, अशान्ति और विरोध तथा विषमताकी आग धधक रही है। परन्तु जिन्होंने इसके बाह्य रूपको भेदकर अन्तरमें प्रवेश किया है उनके लिये यही संसार आनन्द और शान्तिका आगार है। यह जो कुछ भी है वह परमात्मासे ओतप्रोत है, इस जगत्में जो कुछ भी 'जगत्' है वह प्रभुमय है, हरिका रूप-विलास है। इसे समझनेके लिये आवश्यकता है अपने भीतर डूबकर अपनी वास्तविक सत्ताका साक्षात्कार करनेकी। कबीर इसे ही 'पियका परिचय' कहते हैं—

पिउ परिचय तब जानिये, पिउसे हिलमिल होय।
पिउकी लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय॥
लिखा लिखीकी है नहीं, देखा-देखिकी बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी पड़ी बरात॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह साक्षात्कार, यह प्रिय-मिलन बहुत ही कठिन, बहुत ही दुर्लभ है। यह सिरका सौदा है। इसके लिये कबीरने ललकारते हुए कहा है कि यदि प्रभुका साक्षात्कार करना है तो अपने ही हाथों अपना सिर उतारकर रख देना होगा और उस कटे सिरपर पैर देकर भीतर आना होगा। मिलनके इस आनन्दको राजा, प्रजा जिसे भावे वही सीस देकर पा सकता है। एक बार परम आनन्दके इस अमृत तत्त्वके संस्पर्शमें जो आ गया वह जन्म-जन्मान्तरके लिये निहाल हो गया। आठों पहर वह इसी रसमें भीना रहता है और उसका रोम-रोम प्रेममें छका रहता है। पुतलीमें दिलदारकी तस्वीर जब उतर आयी तो फिर घूँघटका पट आप ही हट गया, और—

नैनोंकी करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकोंकी चिक डारिके, पियको लिया रिझाय॥

आँखोंकी कोठरीमें पुतलीका पलंग बिछा दिया, बाहरसे पलकोंकी चिक डाल ली और रंगमहलमें पियको रिझा लिया। हृदयके भीतर जब प्राणवल्लभकी रूप-श्री उमड़ आयी तो आँखें उसे क़ैद करनेके लिये मचल पड़ीं। कई जन्मोंके भूखे-प्यासे प्राणोंने उसमें 'हाँ' भरा और फिर क्या था—

चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउसे खेल।
दीपक जोया ज्ञानका, काय जरै ज्यों तेल॥
नैनों अंतर आव तूँ, नैन झाँपि तोहिं लेवँ।
ना मैं देखौं औरको, ना तोहि देखन देवँ॥

कई जन्मोंसे तुम्हें ढूँढ़ता आ रहा था। आज मेरे भाग्य खुले—तुम्हारे दर्शन हुए। अब तो मैं तुम्हें अपनी आँखोंमें बन्द किये बिना न रहूँगा। मुझसे अब तुम्हारा वियोग सहा नहीं जाता। आओ, इन आँखोंमें तुम्हें छिपा लूँ, झाँप लूँ। न मैं ही और किसीको देखूँ और न तुम्हें ही दूसरेको देखने दूँ। सती नारी अपने प्राणवल्लभ पतिके हाथोंमें अपनेको सौंपकर, सर्वथा उसकी ही होकर, अपने जीवनधनपर भी एक अपूर्व अधिकारका अनुभव करती है। उसकी प्रति पलकी यही कामना होती है कि मैं इनकी होकर रहूँ और 'ये' भी केवल मेरे ही होकर रहें। अनन्यताकी इस प्रगाढ़ विभोर अवस्थामें कबीरने 'हरि मोर पिउ मैं हरिकी बहुरिया' कहा था। 'ढाई अच्छर प्रेमका' यही है।

जबतक विवाह नहीं हुआ होता तबतक कन्याओंका मायकेमें अटूट अनुराग रहता है। वे रात-दिन गुड़ियोंके खेलमें मस्त रहती हैं। परन्तु जहाँ कन्याके माँगमें सिन्दूर पड़ा और 'प्राणनाथ' के साथ ग्रन्थिबन्धन हुआ वहीं उसके गुड़ियोंके खेल समाप्त हो जाते हैं। सच्चे खेलमें प्रवेश करते ही झूठे खेलोंसे नाता आप-ही-आप टूट जाता है। गुड़ियोंके खेल खतम होने-पर भी मायकेसे स्नेह बना ही रहता है। वह जानती है, प्रति पल अपने हृदयमें अनुभव करती है कि उसका 'घर' कहीं और है, जहाँ 'साजनका देश' है। अपरिचित और अनजान देशमें जानेकी कल्पनासे ही वह एक बार काँप उठती है परन्तु तुरन्त ही उसे ध्यान हो आता है—'अरे वह देश मेरे लिये अपरिचित कैसे जहाँ स्वयं मेरे प्राणाधार और जीवनसर्वस्व बसते हैं। मैं तो उनकी ही, केवल उनकी ही हूँ। वे मुझे जहाँ रक्खें, जिस प्रकार रक्खें—अपने चरणोंमें रक्खें। बस, यही परम सान्त्वना है, यही परम सुख है। उनके चरणोंकी शरणमें जहाँ भी रहूँगी वहीं मेरे लिये सच्चा सुख है, वही मेरा अपना देश है।'

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माँहिं।
ऐसे जन जगमें रहैं, हरिको भूलत नाहिं॥

यह सब होते हुए भी जब 'वह' लिवाने आता है तो मायकेका प्रेम उमड़ ही आता है; माता-पिताका वियोग हृदयको रुला ही देता है। साजन-के देशमें पहुँचकर भी 'संकोच' बना ही रहता है और अपनी ओरसे घूँघट सरकाये नहीं सरकता। हमारी बेबसीको हमारा प्राणाधार खूब जानता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसीलिये आवरणभंग (Lifting of the Veil) का मनोहर और प्रिय कार्य उसे ही करना होता है और वह करता भी है इसे बड़े ही आवेगपूर्ण उल्लास और उन्मद प्यारके साथ ! प्राणनाथद्वारा घूँघटका पट हटना कितना सुखद, कितना मधुर है !!

मिलन-कालकी वह कोमल सलज्ज पुलक ! सारा संसार जब प्रगाढ़ निद्रामें बेसुध होकर सो रहा था उसी समय प्रीतमने पैरोंकी चाप छुपाकर धीरे-धीरे हृदयका पर्दा हटाकर 'भीतर' प्रवेश किया, स्वप्नमें प्रीतम मिले। उन्होंने सोते हुए 'कबीर' को जगा दिया। एक मधुर-मधुर शीतलस्पर्शने कबीरकी आत्माको जगा दिया। रोम-रोम जाग उठे ! आँखें खोलते यह भय लगता है कि कहीं 'वह' छोड़कर चला न जाय—

सपनेमें साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता, मति सुपना ह्वै जाय॥

आध्यात्मिक परिणय हुए बिना प्रभुमें हमारा वास्तविक समर्पण हो नहीं सकता। गीताजीमें 'सर्व-धर्मान् परित्यज्य' का जो वर्णन है उससे यह स्पष्ट है कि सर्वात्म श्रीकृष्णार्पण हुए बिना 'मामेकं शरणं व्रज' असम्भव है। समर्पण तो एकमात्र पत्नीका पतिमें ही होता है। अन्य सभी सम्बन्धोंमें द्वैतका पूर्णतः लय नहीं हो पाता। पत्नी अपने नाम-गोत्रको, अपनी आत्माको अपने पतिमें एक कर देती है। वह अपने शरीरपरसे भी अपना अधिकार हटा लेती है। वह समग्ररूपसे, सर्वभावेन पतिके चरणोंमें अपनेको अर्पण करती है। हृदयके समर्पणके साथ ही सर्वत्र अखण्ड-रूपसे 'प्राणनाथ' के दर्शन होने लगते हैं जिसकी मधुर-मधुर अनुभूतिको कबीरने यों व्यक्त किया है—

लाली मेरे लालकी, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

अहर्निशका यह मधुर मिलन हृदयके रेशे-रेशेमें ओतप्रोत है। बाहर-भीतर केवल 'प्रीतम' ही रह जाता है। आँखें मूँदकर भीतरके संसारमें आँखें खोलकर बाहरकी दुनियामें जहाँ भी दृष्टि जाती है केवल हरि-ही-हरि रह जाते हैं। स्वयं भक्तकी निजी सत्ता भी उस अपार आनन्द-राशिमें लय हो जाती है। उसे अपनी भिन्न सत्ताका कभी बोध ही नहीं होता। वह स्थिति द्वैत और अद्वैतकी भाषामें व्यक्त नहीं की जा सकती—

कबीर प्याला प्रेमका अंतर लिया लगाय।
रोम रोममें रमि रहा, और अमल क्या खाय॥
सब रग ताँत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त॥
प्रीति जो लागी घुल गई, पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ कहै, मुखकी सरधा नाहिं॥

आध्यात्मिक परिणयकी—जिसे हम 'ब्रह्म-सम्बन्ध' अथवा 'ब्रह्म-संस्पर्श' कहते हैं कई श्रेणियाँ (stages) हैं। सबसे पहले स्मरण (recollection) होता है। स्मरणका अर्थ है स्मृतिका ध्येयमें तद्रूप हो जाना। यह तद्रूपता धीरे-धीरे इतनी घनीभूत हो जाती है कि अन्तःकरण अपनी स्वस्थ स्वाभाविक स्थितिमें आ जाता है। उस समय निश्चलता (Quiet) प्राप्त होती है। मन प्राणप्यारेके सिवा कहीं हिलता-डुलता ही नहीं; उसे छोड़कर कहीं जाना ही नहीं चाहता ! निश्चल मन प्रभुको प्राप्त कर लेता है और तभी मिलन (Union) होता है। मिलनमें आनन्दकी विभोर दशाकी अधिकता हो जाती है और भीतर-ही-भीतर निर्भरतासे मिली हुई अपूर्व उन्मत्तता (Ecstasy) का आविर्भाव होता है। यह उन्मत्तता सर्वथा अलौकिक है; यह मिलन-जन्य आनन्द एवं आत्मविस्मृतिकी विभोर दशा है। उन्मत्ततामें अपने शरीरकी सँभाल स्वयं हट जाती है और भक्त भगवान्‌में उसी प्रकार लय हो जाता है जिस प्रकार पानीमें रंग; दूधमें मिश्री या समुद्रमें नमक। यह स्थिति तन्मयता (Rapt) की है। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तकी संज्ञा 'प्रेमी' की हो जाती है और उसे भगवान्‌का विरह (Pain of God) प्रसादरूपसे मिलता है। इस प्रसादको पाकर प्रेमी सर्वशून्य होकर, निरावरण होकर एकमात्र भगवान्‌का हो जाता है। कबीरका हृदय आठों पहर इसी रसमें भिना हुआ है। यही आध्यात्मिक परिणय है।

आध्यात्मिक परिणयके अनन्तर साधककी एक बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती है। उसे परमात्माके मिलनका आनन्द प्राप्त हो जाता है और उसका हृदय उसी रसमें सराबोर रहता है। वह एक पलके लिये भी उससे बाहर नहीं आता। वह संसारका तिरस्कार अथवा अनादर भी नहीं करता। जो जगत् प्राणप्यारेका बनाया हुआ है, जिसपर प्रियतमकी छाप लगी हुई है और जिसकी ओटसे 'वह' स्वयं झाँक रहा है, उस जगत्‌के प्रति अश्रद्धाका भाव कैसे और क्यों हो? प्रियकी सभी वस्तुएँ प्यारी होती हैं। हर समय और हर स्थानमें साधक अपने 'देवता' की मधुर उपस्थिति (Divine presence) का अनुभव करता है और इस अनुभूतिमें ही वह सुध-बुध खोकर माता-माता फिरता है। प्रेमके इसी अमृतको पीकर मन्सूर हँसते-हँसते सूलीपर लटक गया और मीरा जहरका प्याला भगवान्‌का चरणामृत समझकर पी गयी!

भगवान्‌के विरहका रस मिलनके आनन्दसे कुछ कम सुखकर नहीं है। सगुण भक्तों और निर्गुण सन्तोंने समानरूपसे प्रभुके विरहकी अनुभूतिमें अपनी आत्माको उज्ज्वल किया है। विरह प्रेमकी जाग्रत् अवस्थाका नाम है। प्रेमीसे यह सहा नहीं जाता कि उसका प्रेमपात्र एक क्षणके लिये भी उससे अलग रहे। बार-बार हृदय विरहकी ज्वालामें जा पड़ता है, इस ज्वालामें ही, प्रभुकी स्मृतिमें ही उसे एक सुखद शान्ति मिलती है! विरहकी इस अवस्थाको भूलसे 'दुःख' कहा जाता है। वह 'दुःख' कैसे, जिसमें बार-बार हृदय चला जाय और जहाँ पहुँचकर ही जीकी तपन बुझे! विरहकी यह ज्वाला ही भक्तोंका अमृतपान है। प्रेमी बार-बार अपनी ओर देखता है और अपनेमें प्रेमका अभाव अनुभव करता है। वह अनन्यता, वह सर्वात्म समर्पण जो भक्तको प्रभुके चरणोंमें पहुँचा देता है उसको अपने भीतर न पाकर भक्तका हृदय रो उठता है—

कै बिरहिनको मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहरका दाझना, मोपै सहा न जाय॥
हिरदे भीतर दव बलै, धुवाँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, कै जिन लाई सोय॥

विरहकी वह ज्वाला अमृतमयी है क्योंकि इसमें 'पिय-मिलनकी आस' बराबर है। मिलनकी विह्वल प्रतीक्षामें विरहकी ये घड़ियाँ भी सुखकर ही हैं। 'पति' से मिलनेके लिये कबीरका साधक हृदय कराह उठता है—

येहि तनका दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव॥

इस शरीरका दीपक बनाऊँ, जीवको बत्ती करूँ और लोहूका तेल जलाऊँ यदि 'पिय' के मुख देखनेको मिले। त्रुटियों, दुर्बलताओं और अपराधों तथा विकारोंसे भरे अपने जीवनपर जब ध्यान जाता है तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि अभी तो सौ-सौ जन्मोंमें भी 'हरि' के दर्शन दुर्लभ हैं। 'मैं मैली पिउ ऊजलो, मिलना कैसे होय' का भाव कबीरमें बहुधा आया है—

आय सकौं नहिं तोहिपै, सकौं न तुज्झ बुलाय।
जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय॥

'ओदी लकड़ी' की तरह कबीरका हृदय धुँधुआ रहा है और दर्शनके प्यासे नैन—

बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दोउ नैन।
माँगे दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन॥

विरहमें मिलनकी जो आशा है वही प्राणोंका आधार है। बार-बार पियका स्मरणकर भक्त रो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठता है। रोनेसे ही हृदय कुछ हलका होता है और जीकी तपन बुझती है—

कबीर हँसना दूर करु, रोनेसे करु चित्त।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मित्त॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेलै पिउ मिलैं, तो कौन दुहागिन होय॥

यह सारा शृंगार, सभी साज-बाज व्यर्थ गये यदि पतिसे भेंट न हुई। सौन्दर्य, शृङ्गार तथा सजावटकी सफलता तो तभी है, जब 'साईं' की आँखें इनपर पड़े; जब प्रभुसे मिलन हो—नहीं तो ये सभी व्यर्थ ही हैं—

चूड़ी पटकौं पलँगसे, चोली लावौं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि॥

तन धारण करनेकी सफलता तो हरि-मिलनमें ही है—यदि यह न हुआ तो इन चूड़ियों और चोलीमें आग लगे? वह शृङ्गार किस कामका जो प्रभुके मिलन-सुखसे वञ्चित रहे। यही है 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता!'

यह विरह ही प्रभुको मिलानेवाला है। यह विरह ही सच्चा मिलन है। एक क्षण भी 'साईंकी याद' भूलती नहीं और रोम-रोममें उसीकी छबि, उसीकी स्मृति छायी रहती है। कबीरने विरह-जन्य आत्म-विस्मृतिकी उस दशाको, जिसमें साजनके सिवा कुछ रहता ही नहीं—बहुत ही सुन्दर ढंगसे रक्खा है—

कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम मिलि रहा, दूजा कहाँ समाय॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तूँ बसै, नींदको ठौर न होय॥
पतिबरता तब जानिये, रतिउ न उघरै नैन।
अंतरगति सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन॥

आँखोंमें प्रीतमकी छबि भरी हुई है, काजलकी रेखा उसमें कैसे अँटे? आठों पहर चौंसठों घड़ी जब हरिके सिवा कोई रहा ही नहीं तो फिर नींद निगोड़ी कैसे आवे? सच्ची पतिव्रता तो वह है जो एक क्षणके लिये भी संसारपर आँखें नहीं डालती। वह तो अहर्निश आँखें बन्द करके प्रभुके रसमें डूबी रहती है।

उस अमर सनातन सत्ताके स्पर्शमें आ जानेपर मानवका लौहजीवन सोना बन जाता है। इसकी हलकी झाँकी कबीरके इस पदमें है—

रस गगन गुफामें अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै॥
बिना ताल जहँ कमल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे ताली लागी, अलख पुरख जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगन जुगनकी तृषा बुझानी करम भरम अघ ब्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूँ न मरै॥

अन्तर और बाहर जब सब कुछ प्रभुके प्रकाशसे जगमग-जगमग हो उठा, जब सर्वत्र अबाधरूपसे मधुर मिलनकी प्रक्रिया होने लगी तो फिर कबीरने डंकेकी चोट कहा—

हिरदेमें महबूब है, हरदमका प्याला।
पीवेगा कोई जौहरी गुरुमुख मतवाला॥
पियत पियाला प्रेमका, सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै, जस मैगल हाथी॥
धरती तो आसन किया, तंबू असमाना।
चोला पहिरा खाकका रह पाक समाना॥

इसीको मीराने 'लीन्ह बजंता ढोल' कहा है। मैंने तो डंकेकी चोट प्रभुको पा लिया। मीराकी यह मधुर अनुभूति श्रीगिरधारीलालकी मधुर मूर्तिमें एकाकार हो गयी है। कोई कुछ भी कहे, मीरा तो यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रही है कि उसका प्राणेश्वर निरन्तर उसके नेत्रपाशमें बँधा है, हृदयके मन्दिरमें खड़ा-खड़ा हँस रहा है।

अपने परम प्रियतमको एक बार भी देख लेनेपर फिर नैहरका मोह स्वयं मिट जाता है और एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षणका भी उसके बिना रहना दूभर हो जाता है। बार-बार प्राणप्यारेके देशका स्मरण हो आता है—

नैहरवा हमकाँ न भावै।
साईंकी नगरी परम अति सुंदर
जहाँ कोइ जाय न आवै॥
चाँद सुरज जहाँ पवन न पानी
को सँदेस पहुँचावै
दरद यह साईंको सुनावै॥

परम प्रेमके मधुर पानके लिये यह आवश्यक है कि जगत्‌की इस दीख पड़नेवाली भिन्नता तथा अनेक नाम-रूपमें छिपे हुए एक परमात्मज्योतिसे साक्षात्कार हो। खण्ड, सीमा, परिवर्त्तन, मृत्यु, हाहाकार और विनाशके पार 'प्रीतमकी नगरी' है और इन दीख पड़नेवाली भिन्नताओंको पार करके ही वहाँ जाया जा सकता है, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता। कबीरकी साधनामें इस संसारके प्रति अटूट दृढ़ अजेय वैराग्य है जो उन्हें संसारमें विरमने नहीं देता और उन्होंने इसीके बलपर साईंके देश पहुँचकर, साजन-की अटारीपर पौढ़ते हुए कहा है—'अब हम अमर भये न मरेंगे।'

श्रीभगवन्नाम

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

राम-नाम कलि-कामतरु, सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, पग-पग परमानंद॥
रामनाम-रति रामगति, रामनाम बिसवास।
सुमिरत सुभ मंगल कुशल, चहुँ दिसि तुलसीदास॥
रसना साँपिनि बदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि विधाता बाम॥
हिय फाटहु फूटहु नयन, जरहु सो तन केहि काम।
द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

(तुलसीदासजी)

कबीर सब जग निरधना, धनवन्ता नहिं कोय।
धनवन्ता सोइ जानिये, जो रामनाम धन होय॥
कबीर हरिके नाममैं, बात चलावे और।
तेहि अपराधी जीवको, तीन लोक नहिं ठौर॥
नाम जपत कुस्टी भला, चुइ-चुइ परै जु चाम।
कंचन देह केहि कामकी, जा मुख नाहीं नाम॥
नाम हरीका छाँड़िकै, करै औरका जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप॥

(कबीरजी)

श्रीभगवान्‌के पवित्र नामकी महिमा सभी अनुभवी सन्तोंने गायी है। जिन पुरुषोंने श्रद्धाभक्तिपूर्वक भगवन्नामका जप-कीर्तन करके इससे परम लाभ प्राप्त किया है वे ही नामका माहात्म्य कुछ जानते हैं। भगवान्‌के नामको ही परम साध्य और नामको ही बहुत बड़ा साधन समझकर जो लोग निरन्तर प्रेम-पूर्वक नामजप करते हैं, वे लोग इस कलिकालमें धन्य हैं। भगवन्नामसे क्या नहीं हो सकता? इहलोक और परलोकमें परमसुख, भगवान्‌की भक्ति, और मुक्ति नामके जपसे अनायास ही मिल जाती है। कलियुगके साधनहीन जीवोंके लिये तो भगवन्नाम ही एकमात्र अवलम्बन है, इसीलिये 'कल्याण'के प्रिय पाठक-पाठिकाओंसे उपर्युक्त षोडश नामका मन्त्र जपने-जपानेके लिये प्रार्थना की जाती है। प्रतिवर्ष ही नाम जपनेवाले कई लोगोंको विभिन्न प्रकारके लाभ और अनुभव होते हैं। अतएव इस वर्ष भी सब लोगोंको प्रेमसे नामजप करना-करवाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत वर्ष 'कल्याण'के पाठकोंसे पौष सुदी १ से फाल्गुण सुदी १५ तक, ढाई महीनेमें उपर्युक्त १६ नामोंके दस करोड़ मन्त्र-जप करने-करवानेकी प्रार्थना की गयी थी। और बड़े हर्षकी बात है कि प्रेमी पाठक-पाठिकाओंकी चेष्टा और उत्साहसे दस करोड़की जगह चौबीस करोड़से अधिक मन्त्रोंका जप हो गया।

इस वर्ष भी फिर उसी प्रकार दस करोड़ मन्त्र-जपके लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की जाती है। आशा है, भगवत्-रसिक पाठक-पाठिकाएँ विशेष उत्साहके साथ नाम-जप करने-करवानेका महान् पुण्यकार्य करेंगे। नियमादि वही हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक, चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है। संख्याकी गिनतीके लिये माला हाथमें या जेबमें रक्खी जा सकती है। अथवा प्रत्येक मन्त्रके साथ संख्या याद रखकर भी गिनती की जा सकती है। बीमारी या अन्य किसी अनिवार्य कारणवश यदि जपका क्रम टूट जाय तो किसी दूसरे सज्जनसे कहकर जप करवा लेना चाहिये। यदि ऐसा न हो सके तो नीचे लिखे पतेपर उसकी सूचना भेज देनेसे उसके बदलेमें जपका प्रबन्ध करवाया जा सकता है। जो करे सो स्वयं आप ही करे। किसी अनिवार्य कारणवश यदि जप बीचमें छूट जाय, दूसरा प्रबन्ध न हो और यहाँ सूचना भी न भेजी जा सके, तो कोई आपत्ति नहीं। निष्कामभावसे जप जितना भी किया जाय उतना ही उत्तम है। थोड़ी-सी भी निष्काम-उपासना अमोघ और महान् भयसे तारनेवाली होती है।

हमारा तो यह विश्वास है कि यदि 'कल्याण' के प्रेमी पाठक और पाठिकाएँ अपने-अपने यहाँ इस बातकी पूरी-पूरी चेष्टा करें तो आगामी अङ्क प्रकाशित होनेतक ही हमारे पास बहुत अधिक संख्याकी सूचना आ सकती है। अतएव सबको इस पुण्यकार्यमें मन लगाकर भाग लेना चाहिये।

१—किसी भी तिथिसे आरम्भ करें परन्तु पूर्ति फाल्गुण शुक्ला पूर्णिमाको हो जानी चाहिये।

२—सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक, वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३—प्रतिदिन कम-से-कम एक मनुष्यको १०८ (एक सौ आठ) मन्त्र (एक माला) का जप अवश्य करना चाहिये।

४—सूचना भेजनेवाले सज्जन केवल संख्याकी ही सूचना भेजें। जप करनेवालोंके नाम भेजनेकी आवश्यकता नहीं। केवल सूचना भेजनेवाले सज्जन अपना नाम और पता लिख भेजें।

५—संख्या मन्त्रकी भेजनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणार्थ यदि सोलह नामोंके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ होती है। जिसमेंसे भूल चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं। जिस दिनसे जो भाई आरम्भ करे उस दिनसे फाल्गुण सुदी पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

६—संस्कृत, हिन्दी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी और उर्दूमें सूचना भेजी जा सकती है।

७—सूचना भेजनेका पता—

नाम-जप-विभाग
कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम प्रणवका एक रूप है

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्में प्रणवकी उद्गीथ उपासना इस प्रकार है।

ॐ अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वादित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति। (प्र० १ खं० ५ मं० १)

अर्थ—अब निश्चयसे जो उद्गीथ है सो प्रणव है, जो प्रणव है वह उद्गीथ है या यह उद्गीथ ही आदित्य है, यह प्रणव है ओम् इस प्रकार उच्चारण किया जाता है। ओंकारको प्रणव कहते हैं क्योंकि ब्रह्मोपासना इस नामद्वारा की जाती है। और सामवेदमें उपासनाका क्रम गानद्वारा है जिसको उद्गीथ कहते हैं। उपर्युक्त श्रुतिमें प्रणवको उद्गीथ कहा है अर्थात् प्रणवकी उपासना उद्गीथसे करनेका विधान बताते हैं।

उपनिषदोंमें प्रणवकी चार मात्राएँ और तन्त्रमें सात मात्राएँ कही गयी हैं, जो इस प्रकार हैं (१) अकार (२) उकार (३) मकार (४) अनुस्वार (५) ध्वनि (६) नाद (७) शान्ति। प्रथम तीन मात्राओंसे प्रणवका स्थूल रूप बनता है जो वैखरी वाणीका विषय है, अनुस्वार और ध्वनि प्रणवका सूक्ष्म रूप है और मध्यमा वाणीका विषय है, नाद प्रणवका कारण या अव्यक्तरूप है, जो पश्यन्ती वाणीका विषय है। और शान्ति निराकार निर्गुण अर्थात् तत्त्वस्वरूप है जो परा वाणीका विषय है। वाणी चार प्रकारकी होती है (१) वाक्‌रूपा वैखरी (२) सङ्कल्परूपा मध्यमा (३) ज्ञानरूपा पश्यन्ती (४) चिच्छक्तिरूपा परा। यह सातों मात्राएँ क्रमानुसार सातों लोकोंसे सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। अकारसे स्थूल रूपका आरम्भ, उकारसे विकास, मकारसे पूर्णता प्रकट होती है। उक्त मात्राओंको समझनेके लिये किसी काँसेके घण्टेके शब्दपर ध्यान देना चाहिये। पहले शब्द होता है जिसका रूप ओम्‌के सदृश है, उस शब्दके बन्द होनेपर अनुस्वार, तदनन्तर उसकी ध्वनि और नादका ज्ञान होता है, ज्यों-ज्यों शब्द लय होता जाता है क्रमसे सातों मात्राओंका अनुभव होता है। अन्तमें वह शब्द लय होते-होते शान्त होता है, वही उसकी सप्तम मात्राका रूप समझना चाहिये।

कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये।
ॐकारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता॥
यस्मिन् विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।
(ब्रह्मविद्योपनिषद् १२-१३)

अर्थ—काँसेके घण्टेका शब्द जिस प्रकार शान्त होनेके लिये लय होता है उसी प्रकार मुमुक्षुको ॐकारकी योजना करनी चाहिये, जहाँ शब्द लय हो जाता है वह परंब्रह्म गाया जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मवाचक प्रणवकी योजना उसकी उद्गीथ उपासना कहलाती है।

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳ सर्वꣳ स्थितम्।
(प्र० १ खं० ३ मं० ६)

अर्थ—अब निश्चयसे उद्गीथके अक्षरोंकी उपासना करनी चाहिये। उत् गी थ इति। प्राण ही उत् है क्योंकि प्राणसे (ध्वनि और नाद) उठता है, (शब्द) वाक् ही गी है। इसीलिये वाणीको गिरा कहते हैं, अन्न थं है क्योंकि अन्नपर ही यह सब स्थित है।

अर्थात् प्रणवका गान प्राण, वाक् और अन्नके सहयोगसे होता है। अन्नसे शरीरमें बल आता है, बलसे वाक् निकलती है और प्राणके बलसे गान होता है।

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्गायुर्गीरग्निस्थꣳ सामवेद एवोयजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति। (प्र० १ खं० ३ मं० ७)

अर्थ—इसी प्रकार—

(१) द्यौ उत् है, अन्तरिक्ष गीः और पृथिवी थं
(२) आदित्य उत् है वायु गीः और अग्नि थं
(३) सामवेद उत् है यजुर्वेद गीः और ऋग्वेद थं

इस प्रकार वाणीको दुहनेवाला (उपासक) जो वाग्दोहनद्वारा दूध दुहता है अर्थात् वाणीरूपी गायका जपरूपी दोहनद्वारा ब्रह्मज्ञानरूपी दूध दुहता है, वह विद्वान् उद्गीथके अक्षरोंकी उपासना करता है, वह अन्नवान् अन्नको पानेवाला होता है।

तन्त्रानुसार—

(१) ओ पृथिवीतत्त्वका अक्षर है
अर्थात् पृथिवीरूपी थं है
म् आकाशतत्त्वका अक्षर है
अर्थात् अन्तरिक्षरूपी गीः है } ओम्
ँ सूर्य है
अर्थात् द्यौरूपी उत् है

(२) र् अग्नितत्त्वका अक्षर है
अर्थात् अग्निरूपी थं है
आ वायुतत्त्वका अक्षर है
अर्थात् वायुरूपी गीः है } राम्
ँ सूर्य है
अर्थात् आदित्यरूपी उत् है

वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथस्तद्वा एतन्मिथुनं यद्वार्क् च प्राणश्चर्क् च साम च। (प्र० १ खं० १ मं० ५)

वाक् ऋक् है, प्राण साम है, ओम् यह अक्षर उद्गीथ है। या वह उद्गीथ यह मिथुन है अर्थात् वाक् और प्राण तथा ऋक् और साम। वाक् और प्राणके सहयोगसे ॐका उद्गीथ गान होता है, वाक् ऋक् है और प्राण साम है।

ऋक्+साम ही प्रणवका रूप है, व्यञ्जनोंका अर्थात् क् स् का लोप करनेसे ऋ आमसे राम बन जाता है। राम इसलिये प्रणवका आग्नेय रूप है जो जगद्जाड्य, कर्मबन्धन तथा पापोंकी राशिको समूल भस्म करनेकी शक्ति रखता है।

व्यञ्जन शब्दको स्थूल रूप देते हैं और वे स्वरोंकी अपेक्षा रखते हैं, स्थूल रूपके अन्तर्गत सूक्ष्म रूपसे स्वर होते हैं और स्वर ही प्रणव है जो सदा शब्दोंमें, मणियोंमें सूत्रकी नाईं, आधाररूपसे स्थित है। प्रत्येक शब्दका उच्चारण स्वरोंके संयोगसे होता है, अकारकी सहायतासे ही प्रत्येक व्यञ्जनका रूप प्रकट होता है। कण्ठसे उच्चारणके साथ अकारका उद्गम होता है और फिर जिह्वाके मूर्धा, तालु, दन्तादि स्थानोंके स्पर्शसे व्यञ्जनोंका उच्चारण बनता है और साथ ही उकार भी अव्यक्त रूपसे साथ रहता है। होठोंके बन्द होनेसे अनुनासिक ध्वनिसे ओम्का रूप बनता है, यदि व्यञ्जनोंका लोप कर दिया जाय तो ओं शेष रह जाता है। इसी प्रकार बाह्य शब्द जैसे शङ्ख, घण्टा, यन्त्रादिके शब्द या खटका, फटाका, धड़ाका, टङ्कार आदिके शब्दोंमें भी उनके अन्तर्गत ध्वनि होती है जिसकी गूँज या प्रतिध्वनि अनुस्वारयुक्त होती है और जब वह शब्द लय होता है तब ॐकारका स्वरूप स्वच्छरूपसे प्रकट होता है। राम शब्दके उच्चारणमें तो प्रणवकी ध्वनि साफ है ही।

ॐकारकी सात मात्राओंकी तरह राममें भी सात मात्राएँ हो सकती हैं और रामका जप उद्गीथकी उपासनाका भेदान्तर है। रामकी सात मात्राएँ इस प्रकार होंगी (१) र् (२) आ (३) म् (४) (५) ध्वनि (६) नाद (७) शान्ति।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता-पुत्र-संवाद

प्राचीन कालमें किसी एक स्वाध्याय-सम्पन्न ब्राह्मणके मेधावी नामक एक बहुत ही बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्षधर्ममें कुशल उस पुत्रने अपने वेदपाठी पिताको मोक्ष-लाभसे वञ्चित देखकर कहा—'हे पिताजी! मनुष्यकी आयु क्षण-क्षणमें क्षय हो रही है। यह जानकर बुद्धिमान् पुरुष-को क्या करना चाहिये, आप मुझे बतलाइये।'

पिताने कहा—'वत्स! मनुष्यको पहले ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके वेद पढ़ना चाहिये, फिर पितरोंको तारनेके लिये पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, तदनन्तर अग्निस्थापनपूर्वक यज्ञादि करने चाहियें और अन्तमें वनमें जाकर मुनिवेश धारण करना चाहिये।'

पुत्रने कहा—'पिताजी! जब लोग सब ओरसे नष्ट हुए चले जा रहे हैं, चारों ओरसे अव्यर्थ आपत्तियाँ आ रही हैं, तब आप यह शान्त समयकी-सी निश्चिन्त बातें किस तरह कर रहे हैं?'

पिताने कहा—'वत्स! मनुष्योंका कैसा नाश हो रहा है, किसने इनपर चढ़ाई की है और कौन-सी अव्यर्थ विपत्तियाँ आ पड़ी हैं, तू ऐसी बातोंसे मुझको क्यों डरा रहा है?'

पुत्रने कहा—'हे पिताजी! मृत्यु मनुष्यका संहार कर रही है। बुढ़ापेने चढ़ाई कर रक्खी है। ये दिन-रात आपत्तियाँ रोज-रोज आ रही हैं, तब भी आप क्यों नहीं जागते? जब मैं यह जानता हूँ कि मृत्यु तनिक भी नहीं ठहरती। हमें तैयार होनेके लिये क्षणभरका भी मौका नहीं देती, उसी क्षण जीवको धर घसीटती है, तब यह जानकर भी मैं कैसे उसकी प्रतीक्षा करूँ? जैसे थोड़े जलके तालाबमें रहनेवाली मछलीको सुख नहीं मिलता, ऐसे ही हर रातको जिसकी उम्र घट रही है उस मनुष्यको कैसे सुख मिल सकता है? जैसे माली पेड़ोंसे फूलोंको तोड़ लेता है वैसे ही मनुष्यका मन चाहे जहाँ विचर रहा हो, उसका काम चाहे अधूरा पड़ा हो, मौत उसे पकड़कर ले ही जाती है। अतएव कल करनेके कामको आज, और तीसरे पहरके कामको अभी कर डालना चाहिये। क्योंकि मृत्यु यह नहीं देखती कि इसने यह काम किया है या नहीं किया है। इसलिये जो काम हमारे कल्याणका हो उसे अभी ही कर डालना चाहिये। समय नहीं खोना चाहिये, न मालूम कब किसकी मृत्यु हो जाय! काम भले ही अधूरे पड़े हों, मृत्यु जीवको खींच ले जाती है, अतएव बुढ़ापेकी बाट न देखकर अभी जवानीमें ही धर्म कमा लेना चाहिये, क्योंकि जीवनका कोई भरोसा नहीं है। धर्मके आचरणसे इसलोक और परलोकमें सुख मिलता है। मोहसागरमें डूबा हुआ मनुष्य धर्म और अधर्मका ध्यान छोड़कर दिन-रात स्त्री-पुत्रोंको ही सन्तुष्ट रखनेमें लगा रहता है, ऐसे पुत्र और पशु आदिसे सम्पन्न विषयासक्त मनुष्यको काल वैसे ही अचानक बहा ले जाता है जैसे जलकी बाढ़ सुखसे सोते हुए बाघको। नाना प्रकारके मनोरथोंमें फँसे हुए भोगोंसे अतृप्त मनुष्यको काल वैसे ही घसीटकर ले जाता है जैसे भेड़के बच्चेको बाघिन ले जाती है। मनुष्य इस उधेड़-बुनमें ही लगा रहता है कि मैंने यह कार्य कर लिया, यह करना बाकी है, यह काम आधा हो गया है, बस आधा ही शेष है, इतनेमें ही मृत्यु उसके किसी भी कामका तनिक-सा भी विचार न कर, मनुष्यको किये हुए कर्मका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल मिलनेके पहले ही पकड़कर ले जाती है। मकान बन रहा है, बहुत-सा बन चुका है, उसमें रहनेका मौका आता ही नहीं, और मनुष्यको मौतका शिकार बन जाना पड़ता है। मनुष्य चाहे खेतमें हो या बाजारमें, दूकानमें या घरमें काम करता हो, दुर्बल हो या बलवान् हो, मूर्ख हो या बुद्धिमान् हो, कायर हो या शूरवीर हो, चाहे उसकी एक भी इच्छा पूरी न हुई हो, समय आनेपर मृत्यु उसको पकड़कर ले ही जाती है। मनुष्य मृत्यु, बुढ़ापा, रोग और अन्य अनेकों कारणोंसे उत्पन्न दुःखोंके पञ्जेसे छूट ही नहीं सकता। इतनेपर भी हे पिताजी ! आप निश्चिन्त-से होकर कैसे बैठे हैं ? प्राणी जबसे जन्म लेता है, तभीसे काल और जरा उसका विनाश करनेके लिये उसके पीछे लगे रहते हैं। बुढ़ापा मृत्युकी सेना है और विषयासक्ति मृत्युका मुँह है। अरण्य देवताओंका स्थान है और ग्राममें रहनेकी इच्छा अर्थात् भोगकी इच्छा बन्धन करनेवाली रस्सी है। पुण्यवान् पुरुष इस रस्सीको काटकर मुक्ति पाते हैं। पापी पुरुष इस बन्धनरज्जुको नहीं काट सकते।

जो पुरुष मन, वाणी और शरीरसे किसी प्राणी-की हिंसा नहीं करता, जो किसीके भी जीविकाके साधनोंका नाश करके किसीको कष्ट नहीं पहुँचाता, उस पुरुषकी कोई हिंसा नहीं करता। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सत्य बोलना चाहिये, सत्य आचरण करना चाहिये, सत्यपरायण रहना चाहिये और सत्यकी ही कामना करनी चाहिये। सब प्राणियोंमें और सब स्थितियोंमें समभाव रखना, इन्द्रियोंका दमन करना और सत्यके द्वारा मृत्युको जीतना चाहिये। अमृत और मृत्यु दोनों हमारे साथ हैं। विषयोंमें मोहसे मृत्यु होती है और सत्यसे ब्रह्मरूप अमृतकी प्राप्ति होती है। अतएव मैं अहिंसाव्रतसे रहकर काम-क्रोधसे दूर रहूँगा। मोक्षसुखका आश्रय लेकर क्षेमके लिये सत्यका अवलम्बन कर मृत्युपर विजय प्राप्त करूँगा। इन्द्रियोंका दमन करके शान्तियज्ञमें रत हुआ ब्रह्म-यज्ञमें स्थित रहूँगा। मनसे आत्म-विचाररूप मनोयज्ञ, वाणीसे भगवन्नामजपरूप वाक्‌यज्ञ और शरीरसे अहिंसा, शौच और गुरु-सेवादि कर्मयज्ञ करूँगा। मैं हिंसायुक्त पशुयज्ञ कभी नहीं कर सकता। मैं स्वयं आत्मयज्ञ करूँगा। मेरे पुत्र नहीं है तो क्या है ? अपने उद्धारके लिये पुत्रकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस पुरुषकी वाणी और मन वशमें हैं, जिसने तप, त्याग और योग किया है वह सब वस्तुओंको पा जाता है। ज्ञानके समान कोई नेत्र नहीं है, ब्रह्म-विद्याके समान कोई फल नहीं है। आसक्तिके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। एकान्तवास, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, दण्डधारण (मन, वाणी, शरीरसे हिंसाका त्याग), सरलता और उपरामता—द्विजोंका यही असली धन है, इसके समान और कोई भी धन नहीं है। आप ब्राह्मण हैं, और आपको मरना है। फिर आपको धनसे, स्त्रीसे तथा बन्धुओंसे क्या प्रयोजन है ? विचार कीजिये—आपके पिता और दादाजी कहाँ गये ? अतएव आप अपने आत्माकी गुफामें प्रवेशकर आत्माका पता लगाइये !

पुत्रकी इन बातोंको सुनकर पिता सावधान होकर उसी क्षणसे सत्य और आत्मपरायण हो गया।

(महाभारत शान्तिपर्वसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Kalyana-Kalpataru ("The Bliss")

(English edition of the 'Kalyan')

The "Gita-Number."

The "Kalyâna-Kalpataru" has just completed the first year of its existence and is now on the threshold of its second year. The Special inaugural Number for this year will be a "Gītā Number", which will contain articles bearing on the *Bhagavadgītā* from the pen of distinguished writers of this country and abroad, embracing different religions. Like its predecessor, the "God-Number," it will provide a rich feast of spiritual food to all seekers of truth and will also contain a number of multi-coloured and one coloured illustrations. The following are the names of some of its leading contributors:—

His Holiness Jagadguru Sankaracharya Sri Bharati Krishna Tirthaji Maharaj of Govardhana Pitha, Puri, Sri Aurobindo, Sadhu T. L. Vaswani, Sri Meher Baba, Pandit Bhawani Shankerji, Principal A. B. Dhruva, Dr. Bhagvandas, Mahamahopadhyaya Pandit Pramathanath Tarkabhushana. Mahamahopadhyaya Pt. Gopinath Kaviraj, Jayadayal Goyandka, Revd. Arthur E. Massey, Prof. F. Otto Schrader, Dr. Heinrich Lueders and Mrs. Lueders (Berlin). Prof. Otto Stross (Breslau), Prof. Helmuth Von Glasenapp., Prof. Ernest P. Horrwitz (New York), Dr. V. G. Rele, Bhai Parmanand, Shivadas Bodhraj, Basant Kumar Chatterjee, M. A., Syt. Bhupendranath Sanyal, Dewan Bahadur K. S. Ramaswami Shastri, Rao Bahadur C. V. Vaidya, Sadhu C. Leik, K. J. Dastur, P. N. Sankara Narayana Iyer, Anilbaran Roy, Nolini Kanto Gupta, Josephine Ransom, Dr. M. H. Syed, etc., etc.

Intending subscribers would be well-advised to send the amount of their subscription in advance so that they may receive the copies of the Special Number as soon as it is published.

The Manager,
Kalyana-Kalpataru,
Gorakhpur.

दूसरा संस्करण **नवीन संस्करण**

श्रीशक्ति-अङ्क

केवल २५०० पुनः छपा है ।

जो सज्जन ग्राहक बनना चाहें वे ४=) मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भेज दें । या हमें वी० पी० भेजनेकी आज्ञा दें । इस समयकी माँगको देखते हुए यह संस्करण भी शीघ्र ही समाप्त हो जानेकी आशा है । तीसरी बार छपनेकी अभी कोई सम्भावना नहीं है । ग्राहक बनने-बनानेवालोंको शीघ्रता करनी चाहिये ।

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि श्रीशक्ति-अङ्क कैसा उपयोगी है । इसका इतना प्रचार ही इसकी विशेषताका अच्छा प्रमाण है ।

व्यवस्थापक—कल्याण

गीता-डायरी सन् १९३५ की

मूल्य साधारण जिल्द ।) कपड़ेकी जिल्द ।-)

बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं । ग्राहक और विक्रेतागण यदि जल्दी मँगवानेकी कृपा करेंगे तो अभी शायद उन्हें मिल सकेगी । दूसरे संस्करणकी अभी कोई सम्भावना नहीं है ।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य पढ़िये ! सुन्दर अवश्य पढ़िये !

शिक्षाप्रद पुस्तकें

स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सर्वोपयोगी सचित्र, संक्षिप्त भक्त-चरित-मालाके

नये-नये सुवासित पुष्प

[सम्पादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार]

१—**भक्त बालक**—४ रंगीन और १ सादा चित्र, एण्टिक कागज, सुन्दर छपाई पृष्ठ ८०, मू० ।-); इसमें बालक भक्त गोविन्द, मोहन, धन्ना, चन्द्रहास और सुधन्वाकी भक्तिरसपूर्ण कथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगता है। बारबार भगवान् और उनके प्रभावका स्मरण होता है।

२—**भक्त नारी**—३ रंगीन और ३ सादे चित्र, एण्टिक कागज, पुष्ट टाइटल, पृष्ठ ८०, मू० ।-); इसमें भक्तिमती शबरी, मीराबाई, जनाबाई, करमैतीबाई और तपस्विनी रबियाकी प्रेमभक्तिसे पूर्ण बड़ी ही रोचक गाथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते हृदय आनन्दसे भर जाता है। चित्त भगवान्‌की ओर तेजीसे दौड़ने लगता है।

३—**भक्त-पञ्चरत्न**—४ रंगीन और २ सादे चित्र, एण्टिक कागज, दोरंगा सुन्दर टाइटल, पृष्ठ ९८, मू० ।-); इसमें भक्त रघुनाथ, भक्त दामोदर, गोपाल चरवाहा, भक्त शान्तोबा और नीलाम्बरदासके परमपावन चरित्र हैं। इनको पढ़ते-पढ़ते हृदय द्रवित होकर बारबार आँसू निकल पड़ते हैं।

४—**आदर्श भक्त**—७ चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ ११२, मू० ।-); इसमें राजा शिवि, महात्मा रन्तिदेव, भक्त अम्बरीष, पितामह भीष्म, पाण्डव अर्जुन, विप्र सुदामा और चक्रिक भीलकी कथाएँ हैं।

५—**भक्त-चन्द्रिका**—सुन्दर रंगीन ७ चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ ९६, मू० ।-); हालहीमें छपी है; इसमें साध्वी सखूबाई, महाभागवत श्रीज्योतिपन्त, भक्तवर विट्ठलदासजी, दीनबन्धुदास, भक्त नारायणदास और बन्धु महान्तिकी सुन्दर भक्तिभावपूर्ण गाथाएँ हैं। पढ़नेसे आत्माको बड़ी शान्ति मिलती है।

६—**भक्त-सप्तरत्न**—सात सुन्दर बहुरंगे चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ १०५, अभी नयी छपी है, मू० ।-); इसमें दामाजी पन्त, मणिदास माली, कूबा कुम्हार, परमेष्ठी दर्जी, रघु केवट, रामदास चमार और सालवेगकी सुन्दर उपदेशप्रद कथाएँ हैं। पढ़कर चित्तको बड़ा सुख मिलता है।

७—**भक्त-कुसुम**—६ तिरंगे चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ ९१, नयी ही छपी है, मू० ।-); इसमें जगन्नाथदास, हिम्मतदास, बालीग्रामदास, दक्षिणी तुलसीदास, गोविन्ददास और हरिनारायणके सरस, भावपूर्ण जीवन-चरित्र हैं।

८—**प्रेमी भक्त**— ७ चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ १०३, नयी छपी है, मू० ।-); इसमें भक्त बिल्वमङ्गल, जयदेव, श्रीरूप-सनातन, हरिदास और रघुनाथदासकी प्रेम-भक्तिरससे सनी हुई त्यागपूर्ण महान् जीवनियाँ हैं।

९—**यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ**—३ चित्र, पृष्ठ-संख्या ९२, हालहीमें प्रकाशित हुई है, मू० ।); इसमें साध्वी रानी एलिज़ाबेथ, साध्वी कैथेरिन, साध्वी गेयों और साध्वी लुइसाकी सुन्दर उपदेशप्रद जीवनियाँ हैं।

ये बूढ़े-बालक, स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने योग्य, बड़ी सुन्दर और शिक्षाप्रद पुस्तकें हैं। पढ़ने-सुननेसे आनन्द तो होता ही है, साथ ही हृदयका मल नष्ट होकर प्रेमभक्तिका अंकुर भी दृढ़तासे जम जाता है। एक-एक प्रति अवश्य पास रखने योग्य है।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

विशेष जानकारीके लिये बड़ा सचित्र पत्र मुफ्त मँगाइये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

कल्याण माघ सं० १९९१ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–व्रजका टोना [कविता] (मीराबाईजी) १०२५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ... १०२६
३–लाखकी चूड़ियाँ अपवित्र हैं ... १०२८
४–देशकालतत्त्व (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १०२९
५–श्रीस्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूतके उपदेश (प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी) ... १०३१
६–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ... १०३३
७–कल्याण ('शिव') १०३७
८–ब्रह्मज्ञानदीपिका (परमहंस श्रीकृष्णवियोगी योगिराज) १०३९
९–विचार-तरंग (श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी 'विशारद') ... १०४०
१०–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) १०४१
११–गोस्वामी तुलसीदासजीका एक अपूर्व दोहा (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) ... १०४९
१२–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न) १०५४

पृष्ठ-संख्या

१३–सूरदासका अन्तिम पद (अज्ञात) ... १०६२
१४–एक सती (पं० श्रीलालारामजी शुक्ल) ... १०६६
१५–गोपियोंके आँसू [कविता] (तोष) ... १०६८
१६–आत्मबोध (बहिन श्रीजयदेवीजी) ... १०६९
१७–ईश्वरकी दयाका ज्वलन्त प्रमाण (एक दीन) १०७२
१८–जय हो श्रीरघुनाथकी [कविता] (पं० श्रीगंगाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु') १०७३
१९–तन्त्र (श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल) ... १०७४
२०–खोज [कविता] (पं० श्रीगौरीशंकरजी मिश्र 'द्विजेन्द्र') १०७९
२१–हमारे विश्वविद्यालय और धार्मिक शिक्षा (बाबा श्रीराघवदासजी) ... १०८०
२२–भक्त-गाथा १०८२
२३–श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामनामका महत्त्व (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी) ... १०८९
२४–ईश्वर-भजन (पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०) १०९६

छप गया

छप गया

गोपी-प्रेम

(लेखक—हनुमानप्रसाद पोद्दार)

पृष्ठ ५०, सचित्र, सुन्दर छपाई, मू० ≈)॥ डेढ़ आनामात्र

गोपी-प्रेमका विषय यों तो अवर्णनीय है, पर लेखकने अपनी मति-अनुसार उसे लिखनेका प्रयत्न किया है। यह लेख जब कल्याणमें निकला था तब लोगोंको बहुत ही भाया था। फिर कुछ बढ़ाकर 'तुलसीदल' नामक पुस्तकमें भी शामिल किया गया था। यहाँतक कि एक दूसरे पत्रमें भी छप गया। पर कुछ माननीय सज्जनोंके इसे पुस्तकाकार छापनेके आग्रहसे यह अब अलग छापा गया है। वास्तवमें इसे पढ़नेसे आप आनन्दित होंगे; क्योंकि प्रेमका विषय ही ऐसा है, दूसरे श्रीगोपियोंके प्रेमकी तो बात ही क्या ? इसमें व्रजके कवियोंकी सुन्दर कविताएँ और पद भी बहुत हैं।

मिलनेका पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ

The Gita Number

of

THE KALYANA-KALPATARU

We are glad to announce that the 'Kalyana-Kalpataru' has completed one year of its existence and entered the second year. During this short space of time it has been able to attract the notice of a large section of the religious-minded public and some of the representative journals and eminent scholars all over the world have spoken very highly of it. People of a spiritual bent of mind both in the East as well as the West have appreciated our work which has emboldened us to carry on our mission much more enthusiastically than before.

The inaugural Special Number for this year, which is going to be out very shortly, will be almost as voluminous as the 'God Number' and will contain over 250 pages of closely printed matter and about a dozen of beautiful illustrations, most of which are tri-coloured. There are a good number of thought-provoking and soul-stirring articles on some of the most important topics bearing on the Bhagavadgītā from distinguished scholars and thinkers of this country as well as abroad, embracing different faiths such as Hinduism, Islam, Christianity, Zoroastrianism and so on. The contributors include, among others, eminent personages like H. H. Jagadguru Sankaracharyaji Maharaj of Puri, Sri Aurobindo of world-wide fame, Pandit Madan Mohan Malaviya, Mahatma Gandhi, Sadhu T. L. Vaswani, Pandit Bhavani Shankerji, Acharya A. B. Dhruva, Sri Krishna Prem Bhikhari (whilom Prof. Ronald Nickson), Sj. Jayadayal Goyandka, Revd. Arthur E. Massey, Prof. F. Otto Schrader (Kiel), Dr. Heinrich Lueders (Berlin), Prof. Otto Strauss (Breslau), Prof. Helmuth von Glassenapp (Koenigsberg), Prof. Ernest P. Horwitz (New York), Principal P. Seshadri, Sj. Shivadas Budhiraja, Dewan Bahadur K. S. Ramaswami Sastri, Rao Bahadur C. V. Vaidya, Swami Dayanand, Swami Ramdas, Sj. Hanumanprasad Poddar, Swami Yoganand, Swami Asangananda, Sj. Anilbaran Ray, Mrs. Sophia Wadia, Dr. I. J. S. Taraporewalla, Prof. Firoz Cowasji Davar, Pandit Sadasiva Sastri Bhide, Dr. M. H. Syed, etc., etc.

To add to the utility of the number, we have quoted the full text of the Gita in two pages and reproduced some of the choicest portions of the Gita in translation as well, besides quoting the opinions of eminent historical personages of different countries and nationalities about the Gita. We have also given a concise list of Gita publications all over the world in so many different languages, which will prove of unique use and interest to the readers.

Our aim is the propagation of spiritual ideas and no monetary gain and hence the Gita Number is priced at Rs. 2/8/- only. The subscribers for the whole year will get this splendid Special Number along with eleven ordinary numbers with two multi-coloured illustrations in each on Rs. 4/8/- only. Men of a religious bent of mind should not miss this splendid opportunity.

THE MANAGER,
KALYANA-KALPATARU,
Gorakhpur.
(INDIA)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, माघ १९९१, फरवरी १९३५ | संख्या ७ पूर्ण संख्या १०३

ब्रजका टोना

या ब्रजमें कछु देख्यो री टोना ॥
लै मटकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नंदजीके छोना ।
दधिको नाम बिसरि गयो, प्यारी, ले लेहु री कोउ स्याम सलोना ॥
बिंद्राबनकी कुंजगलिनमें आँख लगाय गयो मनमोहना ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर सुंदर स्याम सुघर रस-लोना ॥

—मीराबाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्र०—आपने कहा था कि एक ज्ञान तो वह है जो सुन-सुनाकर होता है, और दूसरा अनुभवगम्य है। इनमें पहला ज्ञान बोध नहीं कहा जा सकता; अतः कृपया यह बतलाइये कि अनुभवगम्य ज्ञानकी प्राप्तिके लिये क्या करना चाहिये ?

उ०—इसके लिये शास्त्रोंमें अनेक साधन बताये हैं। उसमें जैसा मेरा विचार है वह कहे देता हूँ। प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी देनेके लिये यह आवश्यक है कि अपनी आँखें साफ हों और दर्पण भी स्वच्छ हो। आत्मानुभवमें विवेककी स्फुटता ही आँखोंका साफ होना है और चित्तका राग-द्वेष-रहित होना दर्पणकी सफाई है।

प्र०—विवेककी स्फुटता और चित्तकी शुद्धि—ये दोनों तो चित्तके ही धर्म हैं। इनमें आँख और दर्पणके समान भेद किस प्रकार किया जा सकता है ?

उ०—विवेक दो प्रकारका होता है। (१) नित्यानित्यवस्तुविवेक और (२) तत्त्वविवेक। नित्यानित्यवस्तुविवेक अज्ञानीको होता है। उसमें वस्तुतः अनित्य वस्तुमें ही नित्य और अनित्य दो विभाग कर लिये जाते हैं। चित्तकी दो अवस्थाएँ हैं (१) कार्यावस्था और (२) कारणावस्था। उनमेंसे कार्यावस्थाको अनित्य और कारणावस्थाको नित्य मान लिया जाता है परन्तु वस्तुतः वे दोनों ही अनित्य हैं, किन्तु तत्त्वविवेकमें साक्षी सम्पूर्ण प्रपञ्चसे अलग रहता है और सारा प्रपञ्च एक ओर होता है। इसलिये इसमें चित्त अलग रहता है और अपना शुद्ध स्वरूप अलग। अतः यह अपनी आँखोंकी सफाईके समान है और इसमें चित्त दर्पण-तुल्य है।

प्र०—ठीक है, इससे आगे कहिये।

उ०—परन्तु यह तत्त्वविवेक भी पूर्णबोध नहीं कहा जा सकता, इसमें भी अपनेसे भिन्न दृश्य वस्तुकी सत्ता बनी रहती है। यह अद्वैतबोधके बिना निवृत्त नहीं हो सकती।

प्र०—इसके लिये साधकको क्या करना चाहिये ?

उ०—जब साक्षी और साक्ष्यका विवेक हो जाय तो यह विचारना चाहिये कि यह जितना प्रतीयमान दृश्य है वह अलग-अलग है या एक। जिस समय वह एक निश्चय हो जायगा उसी समय उसके अत्यन्ताभावका बोध हो जायगा और अद्वैततत्त्वमें स्थिति हो जायगी।

प्र०—समस्त दृश्यकी एकताका अनुभव हो जानेसे ही उसके अभावका बोध कैसे माना जा सकता है ? जिस प्रकार भेद-दृष्टि रहनेपर वह अपनेको परिच्छिन्न उपाधिका साक्षी और उससे असंग समझता था उसी प्रकार इस समय वह अपनेको सम्पूर्ण प्रपञ्चका साक्षी और उससे असंग अनुभव करते हुए भी दृश्यको सत्य ही क्यों न समझेगा ?

उ०—जब सारा प्रपञ्च एक सत्तामें आ जायगा तब उसका कोई कारण न मिलनेसे वह सत्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। सांख्यने जो प्रकृति और पुरुष दो स्वतन्त्र तत्त्वोंको सत्य माना है वह युक्ति और अनुभवके सर्वथा विरुद्ध है। जब दो स्वतन्त्र तत्त्व सत्य हैं तो कोई उनका आधार भी अवश्य होना चाहिये, क्योंकि बिना आधारके कोई भी आधेय पदार्थ रह नहीं सकता और जब वे दो हैं तो आधेय अवश्य हैं। इसलिये ऐसी अवस्थामें दृश्यकी सत्यता कभी सम्भव नहीं है।

इस प्रकार जब दृश्यका अत्यन्ताभाव बोध हो जाता है तो उसे समस्त दृश्य अपनेमें ही अनुभव होने लगता है। इस अवस्थामें उसका किसी भी वस्तु अथवा क्रियासे राग या द्वेष नहीं रहता। विवेकीको तो सत्में राग और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असत्में द्वेष रहता है परन्तु उसकी सभीमें समदृष्टि रहती है; जैसा गोसाईंजीने कहा है—

सबके प्रिय सबके हितकारी। सुख दुख सरिस प्रसंसा गारी॥

शास्त्रोंमें ऐसे बोधवान् व्यक्ति तीन प्रकारकी क्रिया करते देखे जाते हैं। एक कर्मकाण्डी—जैसे वसिष्ठ आदि, दूसरे उपासक—जैसे नारदादि, और तीसरे विरक्त—जैसे शुकदेव, वामदेव आदि। इस प्रकार यद्यपि उनके व्यापार अलग-अलग हैं तो भी बोधमें कोई अन्तर नहीं है। उनकी वे क्रियाएँ बालवत् लीलामात्र होती थीं।

प्र०—आपने जिस प्रकार ये अलग-अलग व्यापार बतलाये, उसी प्रकार एक ही बोधवान् समय-समयपर सभी व्यापारोंको भी तो कर सकता है न?

उ०—हाँ, क्यों नहीं कर सकता। नाटकमें देखते नहीं हो? एक ही व्यक्ति कितने पार्ट करता है। इसी प्रकार वह भी समय-समयपर विभिन्न व्यापार करके भी उनसे अलिप्त रहता है। परन्तु इस प्रकार सब कुछ करते हुए भी वस्तुतः वह कुछ नहीं करता, क्योंकि उसकी दृष्टि प्रपञ्चके अत्यन्ताभावमें स्थित रहती है।

प्र०—जिस प्रकार आपने ज्ञानीके व्यापारके तीन भेद बतलाये हैं उसी प्रकार वह नीतिनिष्ठ भी तो हो सकता है; और यदि नीतिनिष्ठ होगा तो नीतिके प्रति राग और अनीतिके प्रति द्वेषका प्रदर्शन भी आवश्यक होगा।

उ०—हाँ, नीतिनिष्ठ भी अवश्य हो सकता है। परन्तु उस अवस्थामें अथवा पहली तीन अवस्थाओंमें भी उसका जो राग-द्वेषका प्रदर्शन होगा वह केवल लीला-मात्र होगा, वास्तविक नहीं होगा। यदि राग-द्वेषमें वास्तविकता आ जाती है तब तो बोधवान् क्या, उसे विवेकी भी नहीं कह सकते। क्योंकि राग-द्वेषकी दृढ़ता दृश्यकी सत्यता माने बिना नहीं हो सकती और दृश्यकी सत्यता तो तत्त्वविवेक होनेपर ही निवृत्त हो जाती है।

प्र०—परन्तु यदि भय या क्रोध आदिकी वृत्ति होगी तो वह तो बिना अविवेकके नहीं हो सकती। ऐसा होनेसे क्या उसे अज्ञानी माना जायगा।

उ०—यदि वह केवल एक क्षणके लिये कल्पना-मात्र ही होती है तब तो विशेष हानिकारक नहीं है परन्तु यदि क्रोध या भय आदि कल्पनाओंकी निवृत्ति हो जानेपर भी वह बनी रहती है तो अवश्य उसे अविवेकी ही कहा जायगा। बोधवान्की कोई भी उत्तेजना स्थायी नहीं हो सकती।

प्र०—ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये तो विचार ही मुख्य जान पड़ता है, उसके लिये ध्यानादिकी क्या आवश्यकता है?

उ०—जबतक प्रपञ्चका अत्यन्ताभाव बोध नहीं होता तबतक तो विचार मुख्य है; परन्तु जब यह निश्चय हो गया तो उसपर अधिक जोर देनेकी आवश्यकता नहीं है। वह गौण हो जाना चाहिये। फिर तो ध्यान ही मुख्य होना चाहिये। विचारसे भी वृत्ति प्रपञ्चके अत्यन्ताभावको ग्रहण तो करती है परन्तु उसपर स्थिर नहीं रहती; किन्तु ध्यानसे उसमें स्थिरता आती है। यदि ध्यानादिमें न लगकर विवेकमें ही लगा रहेगा तो उसे उसीका व्यसन हो जायगा और वह जीवन्मुक्तिके आनन्दसे वञ्चित रह जायगा, इसीको शास्त्रवासना भी कहते हैं।

प्र०—यह तो सिद्धपुरुषोंकी स्थितिका वर्णन हुआ। अब यह बतलाइये कि साधकको यदि व्यापारमें विक्षेप होता हो तो उसे व्यापारका त्याग करना चाहिये या विक्षेपकी निवृत्तिका प्रयत्न करना चाहिये?

उ०—साधकको व्यापारका संकोच करना ही आवश्यक है। उसे विक्षेपके कारणको रखते हुए केवल विक्षेपकी निवृत्ति करनेका प्रयत्न करना ठीक नहीं। व्यापारका संकोच होनेसे और विचारपर जोर रहनेसे स्वतः ही विक्षेप भी निवृत्त हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—यदि रोग आदि हो जाय तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये या उसे सहन करते रहना चाहिये।

उ०—रोग हमें दबाना चाहता है। उससे हमारा विचार मन्द भी पड़ जाता है, इसलिये उसकी निवृत्ति अवश्य करनी चाहिये। परन्तु विचारवान् पुरुष उसीके पीछे नहीं पड़ जाता। वह तो यही देखता है कि भयंकर दुःखके समय भी उसका विचार तो नहीं छूटता। वह कभी हाय-हाय करके प्राण नहीं देता, क्योंकि वह जानता है कि रोग उसका दास है; वह कैसा ही भय दिखलावे मेरे ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकता। भला, जो व्यक्ति यह बात अच्छी तरह जानता है कि मैं एक ऐसी ठोस वस्तु हूँ कि कोई भी शस्त्र मेरा भेदन नहीं कर सकता, वह किसीको हाथमें तलवार लेकर अपने ऊपर आता देखकर भी कैसे कम्पायमान हो सकता है?

प्र०—जिसे बोध हो गया है क्या उसे भी सत्संग आदि करनेकी इच्छा होती है?

उ०—लोकमें यह बात देखनेमें आती है कि पहलवान भले ही मरणासन्न हो जाय वह जिस समय कहीं दंगलका समाचार पाता है फौरन पहुँच जाता है। उसे वहाँ जाकर कुछ सीखना भी नहीं होता, तो भी उससे वहाँ जाये बिना नहीं रहा जाता, वह उसका स्वभाव है। इसी प्रकार जहाँ कहीं विचारकी बात होती होगी वहाँ जानेके लिये उसकी प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। उसे उसकी आवश्यकता नहीं होती; तो भी वह वहाँ जाये बिना नहीं रह सकता।

लाखकी चूड़ियाँ अपवित्र हैं

उनका त्याग करो

भारतवर्षके कुछ प्रान्तोंमें स्त्रियाँ सौभाग्यका चिह्न समझकर लाखकी बनी चूड़ियाँ हाथोंमें पहनती हैं। लाख बहुत ही अपवित्र चीज़ है। लाख कीड़ोंसे उत्पन्न होती है। लाखमें दो प्रकारके कीड़े रहते हैं। एक तो बहुत बारीक होते हैं जो बरसातमें जहाँ लाख रक्खी रहती है वहाँ निकल-निकलकर दीवारोंपर चढ़ जाते हैं। वे इतने होते हैं कि उनसे दीवार लाल हो जाती है। दूसरे कीड़े लम्बे होते हैं। ये लाखके बीज समझे जाते हैं। इन असंख्य प्राणियोंकी बहुत बुरी तरहसे हिंसा होती है। पहले तो लाखके धोनेमें ही असंख्य प्राणी मर जाते हैं। फिर उसको थैलियोंमें भर-भरकर जलती हुई भट्टीमें तपाया जाता है, जिससे जानवरोंका चपड़ा बनता है। जानवरोंके खूनका लखवटिया बनता है। जिस समय उसको तपाते हैं उस समय चटाचट् शब्द होता है। चारों ओर दुर्गन्ध फैल जाती है। इस प्रकारकी अपवित्र और हिंसाप्रधान लाखसे चूड़ियाँ बनती हैं। फिर उनके बनानेवाले मांसभक्षी मुसलमान मनियार (चूड़गर) होते हैं, जो चूड़ियाँ बनाते समय उनमें थूकते भी रहते हैं। अतः ऐसी चूड़ियोंका व्यवहार धर्म, अहिंसा तथा पवित्रताकी दृष्टिसे सर्वथा निन्दनीय और त्यागने-योग्य है। अतएव धर्मप्रेमीमात्रको अपने-अपने घरोंमें-से लाखकी चूड़ियाँ तुरन्त निकालकर धर्मका भागी बनना चाहिये। इसीलिये इनके बदलेमें सब नाप और सब रंगोंकी सुन्दर सस्ती और टिकाऊ काँचकी चूड़ियाँ तैयार करवानेकी व्यवस्था की गयी है। सुनहरी पात लगी हुई चूड़ियाँ लाखकी चूड़ियों-जैसी ही देखनेमें लगती हैं। अतएव माताओं और बहिनोंसे लाखकी चूड़ियाँ त्याग करके इन काँचकी पवित्र चूड़ियोंका व्यवहार करनेका निवेदन किया जाता है। लाखकी अपवित्र और हिंसामयी चूड़ियोंमें सुहाग समझना निरी मूर्खता है। आशा है, वे इस निवेदनपर ध्यान देंगी। लाखनिषेधक कार्यालय, पो० फिरोजाबाद (आगरा) को पत्र लिखनेपर चूड़ियाँ मिल सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशकालतत्त्व

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

देश और कालके सम्बन्धमें हमारा जो ज्ञान है वह बहुत ही सीमित और सङ्कुचित है। हमलोग प्रायः इस स्थूल देशको ही देश, और युग, वर्ष आदि स्थूल कालको ही काल समझते हैं। इनकी गहराईमें नहीं जाते। देश क्या वस्तु है, उसका मूल स्वरूप क्या है; समय या काल क्या वस्तु है और उसका मूल स्वरूप क्या है, इसे ठीक-ठीक हृदयङ्गम कर लेनेपर देश और कालविषयक हमारा अधूरा ज्ञान बहुत अंशोंमें पूर्ण हो सकता है, और हमारी दृष्टि सीमित देश और परिमित कालसे परे पहुँच जा सकती है।

विचारणीय विषय यह है कि हम जिस आकाशादि-को देश, और युग, वर्ष, मास, दिन आदिको काल समझते हैं वह देश-काल तो प्रकृतिसे उत्पन्न है और प्रकृतिके अन्तर्गत है। परन्तु महाप्रलयके समय जब यह कार्यरूप सम्पूर्ण जगत् अपने कारणरूप प्रकृतिमें लय हो जाता है उस समय देश-कालका क्या स्वरूप होता है? वह देश-काल प्रकृतिका कार्य होता है या कारण?

इस प्रश्नपर विचार करनेसे यह प्रतीत होता है कि स्थूल देश-काल जिस प्रकृतिरूप देश-कालमें लय हो जाता है वह प्रकृतिरूप देश-काल तो प्रकृतिका स्वरूप ही है, और इस प्रकृतिका जो अधिष्ठान है अर्थात् यह प्रकृति अपने कार्य सम्पूर्ण जड दृश्यवर्गके लय हो जानेके बाद भी जिसमें स्थित रहती है, वह अधिष्ठान प्रकृतिका कार्य कभी नहीं हो सकता। वह तो सबका परम कारण है और सबका परम कारण वस्तुतः एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही है। उस विज्ञानानन्दघन परमात्माके किसी अंशमें मूलप्रकृति या माया स्थित है। वह प्रकृति कभी साम्यावस्थामें रहती है और कभी विकारको प्राप्त होती है। जिस समय वह साम्यावस्थामें रहती है उस समय अपने कार्य समस्त जड दृश्यवर्गको अपनेमें लीन करके स्वयं परमात्मामें स्थित रहती है, और जिस समय वही परमात्माके सकाशसे विषमताको प्राप्त होती है, उस समय उससे परमात्माकी अध्यक्षतामें संसारका सृजन होता है। सांख्य और योगके अनुसार सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण प्रकृतिके स्वरूप हैं, परन्तु गीता आदि वेदान्तशास्त्रोंके अनुसार ये प्रकृति-के कार्य हैं।

गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। (गीता १४।५)

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥

(१३।१९)

प्रकृतिमें विकार होनेपर पहले सत्त्वगुणकी उत्पत्ति होती है, फिर रजोगुणकी और उसके बाद तमोगुण-की। सत्त्वगुणसे बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ, रजोगुणसे प्राण और कर्मेन्द्रियाँ, तथा तमोगुणसे पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं भूतोंमें आकाश है और यही आकाश * हमारे इस व्यक्त स्थूल देशका आ[illegible]त

* यह आकाश अर्थात् पोल प्रकृतिका कार्य होनेसे उत्पत्ति, तिस्थि और लय धर्मवाला है। योगमाया यानी प्रकृति इसका आधार है। प्रकृतिका अधार विज्ञानानन्द-घन परमात्मा है, यह पोलरूपी आकाश मूल तन्मात्रारूप आकाशका एक स्थूल स्वरूप है। यह पोल समष्टि अन्तः-करणमें है, समष्टि अन्तःकरण मायामें है, और माया परमात्मामें वैसे ही है, जैसे स्वप्नका देश-काल स्वप्नद्रष्टा पुरुष-के अन्तर्गत रहता है। वस्तुतः यह आकाश या पोल परमात्माका संकल्पमात्र है। इस संकल्पका अभाव होनेपर, जिसका संकल्प है, वह अपनी योगमाया (मूलप्रकृति) सहित स्वयं अधिष्ठानरूपसे रहता है, वह किस प्रकार रहता है सो नहीं बतलाया जा सकता, क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । इसी प्रकार हमारा युग, वर्ष, मास, दिन आदि-रूप स्थूल काल भी प्रकृतिसे प्रादुर्भूत है । यह देश-कालका स्थूल रूप है । यह जड और अनित्य है । सबका अधिष्ठान होनेसे परमात्मा ही सबको सत्ता-स्फूर्ति देता है, इस प्रकार वह समस्त ब्रह्माण्डमें प्रत्येक वस्तुमें व्याप्त होनेपर भी इस स्थूल देश-कालसे, और इस देश-कालके कारणरूप प्रकृतिसे भी परे है । स्थूल देश-कालको तो हमारी इन्द्रियाँ और मन समझ सकते हैं परन्तु सूक्ष्म देश-कालतक उनकी पहुँच नहीं है । महाप्रलयके समय प्रकृति जिस परमात्मामें स्थित रहती है और जबतक स्थित रहती है, वह अधिष्ठानरूप देश और काल वास्तवमें परमात्मा ही है । वही मूल महादेश और महाकाल है । वह चेतन, उपाधिरहित, नित्य, निर्विकार और अव्यभिचारी है । वह कालका भी महाकाल * और देशका भी महादेश है, सारे काल और देश एक उसीमें समा जाते हैं । परमात्माका यह नित्य सनातन और शाश्वत स्वरूप ही देश-कालका चिन्मय रूप है । यह सदा-सर्वदा एकरस है । अव्याकृत मूलप्रकृति महाप्रलयके समय इसी परमात्मारूप देश-कालमें रहती है । हमारी बुद्धिमें आनेवाला यह मायारचित जड और अनित्य देश-काल तो बुद्धिका कार्य है, और बुद्धिके अन्तर्गत है । बुद्धि स्वयं मायाका कार्य है । इस मायाके स्वरूपको बुद्धि नहीं बतला सकती, क्योंकि यह बुद्धिसे परे है, बुद्धिका कारण है । इस मायाके दो रूप माने गये हैं—एक विद्या, दूसरा अविद्या । समष्टिबुद्धि विद्यारूपा है, और जिसके द्वारा बुद्धि मोहको प्राप्त हो जाती है, वह अज्ञान ही अविद्या है । अस्तु ।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार देश-कालके ये तीन भेद होते हैं—

१—नित्य महादेश या नित्य महाकाल ।

२—प्रकृतिरूप देश या प्रकृतिरूप काल ।

३—स्थूल देश या स्थूल काल ।

इनमें पहला चेतन, नित्य, अविनाशी, अनादि और अनन्त है । शेष दोनों जड, परिवर्तनशील, अनादि और सान्त हैं ।

जिसको सनातन, शाश्वत, अनादि, अनन्त, कालस्वरूप, नित्य ज्ञानस्वरूप और सर्वाधिष्ठान कहते हैं, निर्विकार परमात्माका वह स्वरूप ही मूल नित्य महादेश और महाकाल है ।

महाप्रलयके बाद जितनी देर प्रकृतिकी साम्यावस्था रहती है, वही प्रकृतिरूप काल है, और अपने कार्यरूप समस्त स्थूल दृश्यवर्गको धारण करनेवाली होनेसे यह कारणरूपा मूलप्रकृति ही प्रकृतिरूप देश है ।

आकाश, दिशा, लोक, द्वीप, नगर, और कल्प, युग, वर्ष, अयन, मास, दिन आदि स्थूल रूपोंमें प्रतीत होनेवाला प्रकृतिका कार्यरूप यह व्यक्त देश-काल ही स्थूल देश और स्थूल काल है ।

इस कार्यरूप स्थूल देश या स्थूल कालकी अपेक्षा तो बुद्धिकी समझमें न आनेवाला प्रकृतिरूप देश-काल

---

*यस्य ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥
(कठ० २ । २५)

'जिस आत्माके ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दोनों भात हैं और मृत्यु जिसका उपसेचन (शाक-दाल आदि) है वह जहाँ है उसे इस प्रकार (ज्ञानीके सिवा और) कौन जान सकता है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म और पर है; और इस प्रकृतिरूप देश-कालसे भी वह सबका महाकारण और मूल अधिष्ठानरूप देश-काल अत्यन्त सूक्ष्म और परम श्रेष्ठ है जो नित्य, शाश्वत, सनातन, महाकालरूप विज्ञानानन्दघन परमात्माका स्वरूप है। वस्तुतः परमात्मा देश-कालसे सर्वथा रहित है परन्तु जहाँ प्रकृति और उसके कार्यरूप संसारका वर्णन किया जाता है, वहाँ उनको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाले तथा सबके अधिष्ठानरूप विज्ञानानन्दघन परमात्माको ही देश-कालरूप बतलाया जाता है। संक्षेपमें यही देश-काल-तत्त्व है।

श्रीस्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूतके उपदेश

(१) इस असार संसारमें मनुष्य-जन्म पाकर भी जिसने श्रीकृष्णकीर्तन नहीं किया, श्रीकृष्णभजन नहीं किया एवं श्रीकृष्णभक्तोंका संग नहीं किया, उसने वृथा ही जन्म लिया।

(२) विषयी मनुष्य भागवतरूपी कामधेनुसे श्रीकृष्ण-भक्तिरूपी दुग्धामृत पान नहीं कर पाते, किन्तु शोणितरूपी विषयादिजन्य कुतर्क ही प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं।

(३) कामको और मदको मोहित करनेवाले श्रीकृष्ण ही हैं।

(४) परिपूर्ण पापके कारणसे ही जीवोंको श्रीकृष्णकथा तथा श्रीकृष्णकीर्तनमें रुचि नहीं होती। ऐसे मनुष्योंको धिक्कार है।

बस, श्रीकृष्णभक्तमें और विषयी मनुष्यमें इतना ही भेद है कि श्रीकृष्णभक्त तो श्रीकृष्णसेवा करते हैं और विषयी मनुष्य प्राकृत स्त्रीकी सेवा करते हैं। श्रीश्रीगौराङ्ग-पार्षदोंने श्रीकृष्णप्रेमके द्वारा काम-क्रोधादि षड् रिपुओंपर विजय प्राप्त किया था। एक बार श्रीश्री-भागीरथीके सुहावने तटपर सुन्दर रमणीक गुफामें परम सुन्दर युवावस्थावाले श्रीश्रीगौराङ्गचरणाश्रित परमतेजस्वी श्रीहरिदासजी महाराज भजन करते थे। जब उनके भजन और तपस्याका प्रभाव चारों ओर फैल गया तब मुसलमान नवाबको भी इस बातकी खबर हुई। उसने हरिदासजीकी परीक्षाके लिये तथा उनका सुनाम सुनकर ईर्ष्यावश उन्हें तपमार्गसे भ्रष्ट करनेके लिये एक रूपवती युवती वेश्याको उनके पास भेजा। वेश्या सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शृङ्गार करके सायंकालके समय उनके पास गयी। परमपूज्य हरिदासजी महाराज उस समय—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामन्त्रका ऊँचे स्वरसे जप कर रहे थे। वेश्याको देखकर उन्होंने उसे इशारेसे बैठनेके लिये कहा और फिर अपने हरि-कीर्तनमें लग गये। बहुत देर हो गयी। वेश्याने जब अधिक रात होते देखा तो चलनेका इरादा किया। हरिदासजी महाराजने फिर उसे बैठनेको कहा। वेश्या फिर बैठ गयी। वेश्याने हाव-भाव-कटाक्षोंसे अपनी इच्छा प्रकट की। हरिदासजी महाराज प्रतिदिन साढ़े तीन लाख जप करते थे। उन्होंने वेश्यासे कहा कि मैं अपना भजन-कीर्तन कर लूँ। वेश्या फिर बैठ गयी। धीरे-धीरे रात बीतने लगी। ब्राह्ममुहूर्तका समय हो गया। वेश्याका चेहरा फीका पड़ गया। वह निराश होकर चल दी। इसी प्रकार दो-तीन दिन-तक वह वहाँ आयी और वहाँके शुद्ध वायुमण्डलसे तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिनाम सुननेसे उसका मन एकदम पलट गया और वह हरिदासजी महाराजसे श्रीकृष्ण-नामका उपदेश प्राप्त कर ऐसी भक्तिमती बन गयी कि उसके दर्शनोंको बड़ी-बड़ी दूरसे मनुष्य आते थे। इसी प्रकार परमपूज्य नित्यानन्दजी महाराजने क्रोधपर विजय प्राप्त किया। जगाई-मधाईने उनके सिरमें मारी, जिससे उनके सिरसे खूनकी धारा बह चली। लेकिन आप उसी प्रकार 'हरि बोल', 'हरि बोल' ही कहते रहे। जगाई-मधाई बड़े ही दुष्टप्रकृतिके मनुष्य थे परन्तु श्रीनित्यानन्दजीकी कृपासे वे महान् भक्त हो गये। स्वयं भक्तप्राण श्रीश्रीगौराङ्गदेव भी श्रीकृष्णप्रेममें विह्वल होकर अहैतुकी भक्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार कहते हैं—

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

'हे जगदीश्वर! मुझे न तो धनकी इच्छा है, न मित्रोंकी, न सुन्दर स्त्रीकी और न विद्वत्ताकी। मेरी तो केवल यह अभिलाषा है कि जन्म-जन्मान्तरमें मेरी तुम्हारे प्रति हेतुरहित भक्ति बनी रहे।'

(५) काम, क्रोध, मद, मोहसे कलुषित स्वभाव-वाले क्षुद्र जीवोंको भगवान् श्रीकृष्णके चरितमें व्यभिचार तथा मिथ्या दोष दीखते हैं। इसमें उनका दोष नहीं। कुसंगति तथा पूर्व-कर्म-सम्बन्धसे प्राप्त स्वभावका दोष है क्योंकि कामी और अभिमानी पुरुष उतना ही समझ सकते हैं।

(६) श्रीश्रीसद्गुरुचरणारविन्दाश्रय बिना जीव इस संसार-समुद्रसे पार नहीं जा सकता। सन्त श्री-कबीरदासजी महाराजने कहा है—

गुरु बिन कौन बतावे बाट। बड़ा बिकट जमघाट॥
भ्रांतिकी पहाड़ी नदिया बिचमें अहंकारकी लाट।
काम क्रोध दो परबत ठाढ़े लोभ चोरको ठाट॥
मदमत्सरका मेहा बरसत माया पवन बहे बाट।
कहत कबीर सुनो भाई साधो क्यों तरना यह घाट॥

(७) 'कलौ केशवकीर्तनात्' कलियुगमें भगवत्-प्राप्तिका सरल साधन केवल श्रीकृष्णकीर्तन ही है।

(८) जब तुम श्रीकृष्णकीर्तन करो तब श्रीकृष्ण-प्रेममें इतने मस्त हो जाओ कि अपने शरीरकी भी सुध-बुध न रहे। जब हमारे गुरु श्रीस्वामी ज्ञानानन्ददेवजी महाराज बैठते थे और भक्त लोग उनके सामने कीर्तन करते थे तो स्वामीजी महाराज श्रीकृष्णप्रेममें इतने मस्त हो जाते थे कि उनको अपने शरीरका भी पता नहीं रहता था। मैंने कई बार उनका हाथ अग्निमें पड़ा देखा लेकिन स्वामीजीको इसका कुछ पता नहीं रहता था, उसे भक्त ही उठाते थे।

(९) दुष्ट मनुष्य भक्तोंको सताते हैं, लेकिन भक्त इस बातकी परवा नहीं करते। अभी थोड़े दिनकी बात है, एक ब्राह्मणी श्रीकृष्णकी बड़ी भक्त थी। वह रात-दिन श्रीकृष्णभजनमें अपना समय बिताती थी। उस ब्राह्मणीकी सास उससे जला करती थी। एक दिन उसने गुस्सेमें आकर उसे एक कोठरीमें बन्द कर दिया और उससे कहा कि अगर तू भजन करना छोड़ दे तो मैं तुझे कोठरीसे निकाल दूँ। उसने कहा—'प्राण भले ही चले जायँ लेकिन भजन करना नहीं छोड़ूँगी।' सासने उसे दो-तीन दिनतक कोठरीमें बन्द रक्खा। वह भूखी-प्यासी कोठरीमें बन्द पड़ी रही। चौथे दिन स्वयं भगवान्‌ने उसे अपने हाथोंसे भोजन करवाया।

(प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

प्रेम-भक्ति और गौणी भक्तिका स्वरूप

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ॥ ५१ ॥

५१–प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है ।

प्रेम और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं, जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन असम्भव है, वेद 'नेति नेति' कहकर चुप हो जाते हैं, इसी प्रकार प्रेमका वर्णन भी वाणीद्वारा नहीं हो सकता । संसारमें भी हम देखते हैं कि प्रिय वस्तुके मिलनेपर, उसका समाचार पानेपर, उसके स्पर्श, आलिङ्गन और प्रेमालापका सुअवसर मिलनेपर हृदयमें जिस आनन्दका अनुभव होता है, उसका वर्णन वाणी कभी नहीं कर सकती । जिस प्रेमका वर्णन वाणीके द्वारा हो सकता है, वह तो प्रेमका सर्वथा बाहरी रूप है । प्रेम तो अनुभवकी वस्तु है । भगवान् श्रीराम लंकामें स्थित जगज्जननी जानकीजीको सन्देशा कहलाते हैं—

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं । जानेउ प्रीति रीति यहि माहीं॥

प्रेमका अनुभव है मनमें, और मन रहता है सदा अपने प्रेमीके पास । फिर भला, मनके अभावमें, वाणीको यत्किञ्चित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले ! अतएव प्रेमका जो कुछ भी वर्णन मिलता है वह केवल सांकेतिकमात्र है—बाह्य है । प्रेमकी प्राप्ति हुए बिना तो प्रेमको कोई जानता नहीं, और प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है । जलमें मुखसे शब्दका उच्चारण तभीतक होता है जबतक कि मुख जलसे बाहर रहता है, जब मनुष्य अतलतलमें डूब जाता है तब तो डूबनेवालेकी लाशका पता लगना भी कठिन होता है । इसी प्रकार जो प्रेम-समुद्रमें डूब चुका है, वह कुछ कह ही नहीं सकता । और ऊपर-ऊपर डुबकियाँ मारने और डूबने-उतरानेवाले जो कुछ कहते हैं सो केवल ऊपर-ऊपरकी ही बात कहते हैं—

डूबै सो बोलै नहीं, बोलै सो अनजान ।
गहरौ प्रेम-समुद्र कोउ डूबै चतुर सुजान ॥

मूकास्वादनवत् ॥ ५२ ॥

५२–गूँगेके स्वादकी तरह ।

जैसे गूँगा गुड़ खाकर प्रसन्न होता है, हँसता है, परन्तु गुड़का स्वाद नहीं बतला सकता, इसी प्रकार प्रेमी महात्मा प्रेमका अनुभवकर आनन्दमें निमग्न हो जाते हैं परन्तु अपने उस अनुभवका स्वरूप दूसरे किसीको भी बतला नहीं सकते । इस प्रेममें तन्मयता होती है । इसलिये प्रेमी यह नहीं जानता कि मैं क्या हूँ और क्या जानता हूँ । इसीसे श्रीराधाने एक समय कहा है कि हे सखि ! मैं कृष्णप्रेमकी बात कुछ भी नहीं जानती, नहीं समझती, और जो कुछ जानती हूँ उसे प्रकट करनेयोग्य भाषा मेरे पास नहीं है । मैं तो इतना ही जानती हूँ कि जब उनका स्पर्श होता है, तभी मेरा सारा ज्ञान चला जाता है ।

प्रकाशते क्वापि पात्रे ॥५३॥

५३–किसी बिरले योग्य पात्रमें (प्रेमी भक्तमें) ऐसा प्रेम प्रकट भी होता है ।

यह तो निश्चित है कि वाणीद्वारा प्रेमका स्वरूप नहीं बतलाया जा सकता, परन्तु जब कोई प्रेममदसे छके हुए भाग्यवान् महापुरुष तन-मनकी सुधि भुलाकर दिव्य उन्मत्तवत् चेष्टा करने लगते हैं तब प्रेमका कुछ-कुछ प्रकाश लोगोंको प्रकट दीखने लगता है । उस समय ऐसे महात्माकी केवल वाणीसे और नेत्रोंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं, शरीरके रोम-रोमसे प्रेमकी किरणें अपने-आप ही निकलने लगती हैं। यह प्रेमका प्राकट्य साक्षात् भगवान्‌का ही प्रकाश है। ऐसा प्रकाश किसी बिरले ही प्रेमी महापुरुषमें होता है।

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण-वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभव-रूपम्॥ ५४॥

५४–यह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेदरहित है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है।

किसी गुणको देखकर जो प्रेम होता है वह तो गुण न दीखनेपर नष्ट हो जा सकता है। परन्तु असली प्रेममें गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। प्रेमीको अपने प्रेमास्पदमें गुण-दोष देखनेका अवकाश ही कहाँ मिलता है, वहाँ तो स्वाभाविक सहज प्रेम होता है। अथवा यों कह सकते हैं कि प्रेम गुणातीत होता है। वह तीनों गुणोंके दायरेसे परेकी वस्तु है।

प्रेममें कुछ भी कामना नहीं होती, क्योंकि प्रेममें प्रेमास्पदको सुखी देखनेकी एक इच्छाको छोड़कर अन्य किसी स्वार्थकी वासना ही नहीं रहती। उसका तो परम अर्थ केवल प्रेमास्पद ही है। जहाँ कुछ भी पानेकी वासना है वहाँ तो प्रेमका पवित्र आसन कुटिल कामके द्वारा कलङ्कित हो रहा है। अतएव प्रेममें कामनाका लेश भी नहीं है।

सच्चा प्रेम कभी घटता तो है ही नहीं, वरं वह सदा बढ़ता ही रहता है। प्रेममें कहीं परिसमाप्ति नहीं है। प्रेमीका सदा यही भाव रहता है कि मुझमें प्रेमकी कमी ही है। किसी भी अवस्थामें उसे अपना प्रेम बढ़ा हुआ नहीं दीखता, अतएव उसकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभाविक ही प्रेम बढ़ानेकी होती है। इस विच्छेदरहित प्रेमकी सतत वृद्धिका क्रम कभी टूटता ही नहीं। यह विशुद्ध प्रेम दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता ही रहता है।

प्रेम सदा बढ़िबौ करै ज्यों ससिकला सुवेष।
पै पूनौं यामें नहीं तातें कबहुँ न सेष॥

यह प्रेम हृदयकी गुप्त गुहामें रहनेवाला होनेके कारण सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर होता है और केवल अनुभवमें ही आता है। प्रेमी रसखानिजी मानो इसी सूत्रका अनुवाद करते हुए कहते हैं—

बिनु जोबन गुन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि।
सुद्ध, कामनातें रहित, प्रेम सकल रसखानि॥
अति सूच्छम, कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इकरस भरपूर॥
रसमय स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान।
सदा एकरस बढ़त नित सुद्ध प्रेम रसखान॥

यह प्रेम परम आनन्दमय है और आनन्दमय श्रीहरिके साथ मिलाकर प्रेमीको आनन्दमय बना देता है।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति॥ ५५॥

५५–इस प्रेमको पाकर प्रेमी इस प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही सुनता है, प्रेमका ही वर्णन करता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है।

परम प्रेमके दिव्य रसमें डूबा हुआ प्रेमानन्दमय प्रेमी सर्वत्र अपने प्रेममय, रसमय प्रियतमको ही देखता है। उसे कहीं दूसरी वस्तु दीखती ही नहीं। ऐसी ही स्थितिमें एक गोपी कहती है—

जित देखौं तित स्याममई है।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा, स्याम गगन घनघटा छई है॥
सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है।
मैं बौरी, की लोगन ही की, स्याम पुतरिया बदल गई है॥
चंद्रसार रबिसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है।
नीलकंठको कंठ स्याम है, मनो स्यामता बेल बई है॥
श्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीपसिखापर स्यामतई है।
नरदेवनकी कौन कथा है अलख ब्रह्म छबि स्याममई है॥

दूसरा भक्त कहता है—

बाटनमें घाटनमें बीथिनमें बागनमें,
बृच्छनमें बेलिनमें बाटिकामें बनमें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरनमें दिवारनमें देहरी दरीचनमें,
हीरनमें हारनमें भूषनमें तनमें ॥
काननमें कुंजनमें गोपिनमें गायनमें,
गोकुलमें गोधनमें दामिनमें घनमें ।
जहाँ-जहाँ देखौं तहाँ स्याम ही दिखाई देत,
सालिगराम छाइ रह्यो नैननमें मनमें ॥

कहि न जाय मुखसौं कछू स्याम-प्रेमकी बात ।
नभ जल थल चर अचर सब स्यामहि स्याम दिखात॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल ।
अपनीहू सुधि ना रही, रह्यौ एक नँदलाल ॥
को, कासौं, केहि बिधि कहा, कहै हदैकी बात ।
हरि हेरत हिय हरि गयो हरि सर्वत्र लखात ॥

ऐसी अवस्थामें उसके कानमें जो कुछ भी आवाज आती है, वह केवल प्रेममयके प्रेमसंगीतकी स्वरलहरी ही होती है, वह सर्वदा उसकी मुरलीकी मीठी तानमें मस्त रहता है। इसी प्रकार उसके मुखसे भी प्रेम-मयको छोड़कर दूसरा शब्द नहीं निकलता। वह प्रेममयका गुण गाते-गाते कभी थकता ही नहीं, बात-बातमें उसे केवल दिव्य प्रेमरसामृतका ही अनुपम स्वाद मिलता रहता है और वह अतृप्त रसनासे सदा उसी अमृतरसपानमें मत्त रहता है। उसके चित्तमें तो दूसरेके लिये स्थान ही नहीं रह गया। वहाँ एकमात्र प्रियतमका ही अखण्ड साम्राज्य और पूर्ण अधिकार है। ऐसा जरा-सा भी स्थान नहीं, जहाँ किसी दूसरेकी कल्पनाकी स्मृति छायारूपसे भी आ सके। चित्त साक्षात् प्रियतमके प्रेमका स्वरूप ही बन जाता है; इस अवस्थाका अनुमान करते हुए कवि कहता है—

कानन दूसरो नाम सुनै नहिं एकहि रंग रँगो यह डोरो ।
धोखेहु दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरो ॥
ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै, हम कैसेहु टेक तजै नहिं भोरो ।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ निहारति गोरो ॥

समस्त अंग केवल उसीका अनुभव कर रहे हैं। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसीको विषय करती हैं। आँखें अहर्निश सम्पूर्ण विश्वको श्याममय देखती हैं। कान सदा उसी अनाहत शब्दब्रह्मकी मधुर वेणुध्वनि सुनते हैं। नासिका नित्य-निरन्तर उसी नटवरके अंगसौरभको ही सूँघती है। जिह्वा अविच्छिन्नरूपसे उसी प्रेमसुधाका आस्वादन करती है। और शरीर सर्वदा उसी अखिल सौन्दर्यमाधुर्य-रसाम्बुधि रसराज परम सुख-स्पर्श आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दनके अनुपम स्पर्श-सुखका अनुभव करता है। आकाशमें वही शब्द है, वायुमें वही स्पर्श है, अग्निमें वही ज्योति है, जलमें वही रस है और पृथ्वीमें वही गन्ध बना हुआ है। सबमें वही भरा है। सबमें वही अपनी अनोखी रूपमाधुरीकी झाँकी दिखा रहा है। सर्वत्र प्रेम-ही-प्रेम—आनन्द-ही-आनन्द है। समस्त विश्व प्रेममय, आनन्दमय, रसमय या श्रीकृष्णमय है। सब कुछ आनन्दसे और सौन्दर्य-माधुर्यसे भरा है। दृश्य, द्रष्टा सभी मधुर हैं, हम-तुम सभी मधुर हैं, उस परमानन्द-रस-सुधामय मधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है। 'मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः, माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः, मधुमत् पार्थिवं रजः' सर्वत्र मधु ही मधु। इस प्रकार प्रेमी भक्तकी दृष्टिमें सर्वत्र प्रेममय भगवान् हैं और भगवान्‌की दृष्टिमें भक्त। भगवान्‌ने कहा ही है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
(गीता ६ । ३०)

'जो मुझे सर्वत्र देखता है, और सबको मुझमें देखता है, न कभी मैं उसकी आँखोंसे ओझल होता हूँ और न वह मेरी आँखोंसे ओझल होता है।'

इस अवस्थामें प्रेमी भक्त जिस नित्य महान् दिव्य प्रेमामृतरससागरमें मग्न रहता है, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। यही प्रेमाभक्ति या पराभक्तिका स्वरूप है। यही महान् भूमानन्द है, इसी सर्वव्यापी भूमानन्दके साथ अल्प सुखका तारतम्य दिखलाती हुई श्रुति कहती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोति अन्यद्विजानाति तदल्पम्, यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। (छान्दोग्योपनिषद्)

'जहाँ दूसरेको नहीं देखता, दूसरेको नहीं सुनता, दूसरेको नहीं जानता, वही भूमा है। और जहाँ दूसरेको देखता है, दूसरेको सुनता है, दूसरेको जानता है वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है, वह मरा हुआ है।' इसीलिये प्रेम सदा मधुर, अविनाशी, सनातन और सत्य है।

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ॥५६॥

५६—गौणी भक्ति गुणभेदसे अथवा आर्तादि-भेदसे तीन प्रकारकी होती है।

पिछले सूत्रतक उस परा या मुख्या भक्तिका विवेचन हुआ जिसमें प्रेमी भक्त उस प्रेमाभक्तिसे अपने प्रियतम भगवान्‌के प्रेममय स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। इसीको श्रीमद्भागवतमें अहैतुकी—निर्गुण-भक्ति तथा गीतामें ज्ञानीकी भक्ति कहा है। अहैतुकी भक्तिमें भक्तकी चित्तवृत्ति और कर्मगतिका प्रवाह अविच्छिन्नरूपसे स्वाभाविक ही भगवान्‌की ओर बहता रहता है अर्थात् उसका चित्त निरन्तर निष्काम अनन्य प्रेमभावसे भगवान्‌में लगा रहता है और उसकी समस्त क्रियाएँ श्रीभगवान्‌के लिये ही होती हैं (भागवत ३। २९। ११-१२)। और गीतोक्त दुर्लभ तत्त्वज्ञानी महात्मा भक्त भी सब कुछ वासुदेव ही देखता है (अध्याय ७। १७)। ये दोनों तो भगवत्-स्वरूप ही हैं। अब यहाँ इस भक्तिकी अपेक्षा निम्न-श्रेणीकी गौणी भक्तिका वर्णन किया जाता है। यह गौणी भक्ति सात्त्विकी, राजसी और तामसी-भेदसे अथवा आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी-भेदसे तीन प्रकारकी है।

जो भक्ति पापनाशकी इच्छासे सब कर्मफल भगवान्‌में समर्पण करके भगवान्‌की प्रीतिके लिये, यज्ञ करना कर्तव्य है यह समझकर भेद-दृष्टिसे की जाती है वह सात्त्विकी है (श्रीमद्भागवत ३। २९। १०)।

जो भक्ति विषय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे भेद-दृष्टिपूर्वक केवल प्रतिमादिके पूजनके रूपमें ही की जाती है वह राजसी है (श्रीमद्भागवत ३। २९। ९)।

जो भक्ति क्रोध, हिंसा, दम्भ, मत्सरता और अहंकारसे कामनापूर्तिके लिये भेद-दृष्टिसे की जाती है वह तामसी है (श्रीमद्भागवत ३। २९। ८)।

इसी तरह आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी पुरुष त्रिविध उपासनासे तीन प्रकारकी भक्ति करते हैं, अर्थात् भक्तोंके भाव-भेदसे गौणी भक्तिके तीन भेद होते हैं।

गौणी भक्तिके साधनोंसे यद्यपि साक्षात् भगवत्-प्राप्ति नहीं होती, तथापि इस गौणी भक्तिके साधक भी सुकृती ही होते हैं और उन्हें भी भगवत्कृपासे इसका अनुष्ठान करते-करते अन्तमें भगवत्-प्राप्तिकी मुख्य साधनस्वरूपा या साक्षात् भगवत्-स्वरूपा प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति होती है। भगवान्‌की भक्तिमें यही विशेषता है कि इसका अन्तिम फल दुर्लभ भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति ही है। इसीसे गौणी भक्तिको भी श्रेष्ठ और पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा ही होनेवाली माना गया है। क्योंकि भक्तिमात्रमें ही भगवान्‌का भजन, भगवान्‌का आश्रय, भगवान्‌का ध्यान किसी-न-किसी रूपमें रहता है, और भगवद्भजन, भगवदाश्रय तथा भगवान्‌के ध्यानका फल सीधा भगवत्प्राप्ति ही होता है। अतएव किसी प्रकारसे भी हो भगवान्‌की भक्ति मनुष्यको अवश्य ही करनी चाहिये। परन्तु जहाँतक हो सके सात्त्विकी भक्ति अथवा त्रिभुवनके वैभवको भी अनर्थ एवं भगवान्‌को ही परम अर्थ—परम धन मानकर उसीके प्रेमकी प्राप्तिके लिये सच्चे अर्थार्थीके भावसे भक्ति करनी चाहिये।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

द रक्खो, विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं। जीवके रूपमें शिव ही विविध लीला कर रहे हैं। इसलिये तुम किसीसे घृणा न करो, किसीका कभी अनादर न करो, किसीका अहित मत चाहो। निश्चय समझो, यदि तुमने स्वार्थवश किसी जीवका अहित किया, किसीके हृदयमें चोट पहुँचायी तो वह चोट तुम्हारे भगवान्‌के ही हृदयमें लगेगी। तुम चाहे जितनी देर अलग बैठकर भगवान्‌को मनाते रहो परन्तु जबतक सर्वभूतोंमें स्थित भगवान्‌पर तुम स्वार्थवश चोट करते रहोगे तबतक भगवान् तुम्हारी पूजा कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

× × ×

सबका सम्मान करो, सबका हित चाहो, सबसे प्रेम करो, आत्माकी दृष्टिसे सब भेदोंको भुलाकर सबको नमस्कार करो। इसका यह अर्थ नहीं कि व्यवहारके आवश्यक भेदको भी मिटा दो। दुष्टबुद्धि-वाले पुरुषको जीवन्मुक्त महात्मा मत समझो। मूर्खको विद्वान् समझकर उसकी बात सुनोगे तो गिर जाओगे। विद्वान्‌को मूर्ख मानकर उसकी बात नहीं सुनोगे तो ज्ञानसे वञ्चित रह जाओगे। पापसे घृणा करो, असंयमसे द्वेष करो, दुष्ट आचरणोंसे वैर करो, कुविचारोंका अपमान करो, नास्तिकताका विनाश करो, जिनमें ये दोष हों उनसे अलग रहो, परन्तु उनसे आत्माकी दृष्टिसे घृणा न करो। स्वरूपमें अभेद और व्यवहारमें आवश्यक भेद रक्खो।

× × ×

किसीको नीच, पतित या पापी मत समझो; याद रक्खो, जिसे तुम नीच, पतित और पापी समझते हो, उसमें भी तुम्हारे वही भगवान् विराजित हैं जो महात्मा ऋषियोंके हृदयमें हैं। सबको प्रेमदान करो, सबके प्रति सहानुभूति रक्खो। किसीकी निन्दा न करो। किसीकी निन्दा न सुनो। साधकको तो दूसरेकी निन्दा सहन ही नहीं होनी चाहिये। निन्दा सुननी हो अपनी सुनो, और करनी आवश्यक समझो तो अपनी सच्ची निन्दा करो।

× × ×

निःस्वार्थभावसे सबके साथ प्रेम करो, अपने प्रेमबलसे दूसरोंके चरित्रको सुधारो, उन्हें ऊँचे उठाओ। तुम्हारे आचरण आदर्श होंगे तो तुम अपने स्वार्थहीन प्रेमके बलसे गिरे हुए भाईको ऊँचा उठा सकोगे। याद रक्खो, शुद्ध आचरणयुक्त निःस्वार्थ प्रेममें बड़ा बल होता है।

× × ×

अपनेको कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती केवल इसी बुनियादपर किसी चीज़को बुरी न मान लो। और न उसके ध्वंसकी चेष्टा करो। यह मत समझ बैठो कि तुम्हारा सर्वथा सुधार हो गया है, तुम्हारी सभी बातें सबके लिये कल्याणकारी हैं और तुम्हारे विचारोंमें भ्रम है ही नहीं। जबतक मनुष्यमें राग-द्वेष है, तबतक उसका निर्णय कभी सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं हो सकता। कभी अपनेको दूसरोंसे श्रेष्ठ समझकर अभिमान न करो। अगर करोगे तो याद रक्खो, तुम्हारा पतन भी जरूर होगा। अतएव पहले अपने दोषोंको देखो, उनमें सुधार करो, फिर दूसरेके सुधार-की चेष्टा करो।

× × ×

सुधारका ठेका मत लो। न अपने मतको सर्वथा उपकारी समझकर किसीपर लादनेका हठ करो। सुधारका रूप जो तुम समझते हो, सम्भव है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो, और तुम्हें मोह, परिस्थिति, स्वार्थ या द्वेषवश वैसा दीखता हो। सावधान, कहीं सुधारके नामपर संहार न कर बैठो। सुधार तुम्हारे किये होगा भी नहीं। सच्चे सुधारक तो भगवान् हैं जो प्रकृतिके द्वारा निरन्तर ध्वंस और निर्माणके रूपमें सुधार करते रहते हैं। निःस्वार्थी, जीवोंके सुहृद्, सर्वज्ञ, तथा सर्वशक्तिमान् होनेके कारण भगवान्का किया हुआ सुधार परिणाममें निश्चय ही कल्याणकारी होता है, और मोहवश इच्छा न करनेपर भी बाध्य होकर उसे सबको स्वीकार भी करना ही पड़ता है।

× × ×

भगवान् मंगलमय हैं, हमारे परम हितैषी हैं, सर्वज्ञ हैं, किस बातमें कैसे हमारा हित होता है, इस बातको जानते हैं। अतएव उनके प्रत्येक विधानका स्वागत करो। खुशीसे सिर चढ़ाकर स्वीकार करो। उनके हाथके दिये ज़हरमें अमृतका अनुभव करो; उनके हाथकी तलवारमें शान्तिकी छबि देखो, उनके कोमल करस्पर्शसे महिमाको पाये हुए सुदर्शनमें चरम सुखके शुभ दर्शन करो, और उनकी दी हुई मौतमें अमरत्वको प्राप्त करो। उनके प्रत्येक मंगलविधानमें उनको स्वयमेव अवतीर्ण देखो।

× × ×

थोड़े-से जीवनमें इतना समय ही कहाँ है, जो पर-चर्चा और परनिन्दामें खर्च किया जाय। तुम्हें तो अपनी उन्नतिके कामोंसे ही कभी फ़ुरसत नहीं मिलनी चाहिये। इतना अवश्य याद रक्खो कि दूसरोंकी अवनति करके—दूसरोंका बुरा करके तुम अपनी उन्नति या भलाई कभी नहीं कर सकते। तुम्हारा मंगल उसी कार्यमें होगा जिसमें दूसरेका मंगल भरा हो। कम-से-कम अपने मंगलके लिये, मोहवश, दूसरोंका अमंगल कभी न करो—न चाहो। अपने अमंगलसे दूसरोंका मंगल होता दीखे तो जरूर करो, यह विश्वास रक्खो कि दूसरोंका मंगल करनेवाले पुरुषका परिणाममें कभी अमंगल हो ही नहीं सकता।

× × ×

डरो पापसे, अभिमानसे, ममतासे, कामनासे, शोकसे, क्रोधसे, लोभसे, सम्मानसे, बड़ाईसे, ख्यातिसे, पूजासे, नेतृत्वसे, गुरुपनेसे, महन्तीसे, पदवीसे, सभा-समितियोंसे, स्वेच्छाचारसे, उच्छृङ्खलतासे, मनमाने आचरणोंसे, इन्द्रियोंकी गुलामीसे, विषयासक्तिसे, मौज-शौकसे, विलासितासे, वादविवादसे, परचर्चा-से, परनिन्दासे, परधनसे, परस्त्रीसे; और इनसे यथासाध्य सदा बचे रहो।

× × ×

किसी कामके सफल होनेपर यह मत समझो कि यह तुम्हारी करनीसे हुआ है। तुम तो निमित्त-मात्र हो। सफलतापर बड़ाई मिलनेपर खुशीसे फूल मत उठो। यह तो संसारका नियम ही है। सफलता-पर सभी बधाई और बड़ाई देते हैं और असफलता-पर धिक्कार एवं निन्दा। आज बड़ाईमें फूलोगे तो कल निन्दा सुनकर रोना पड़ेगा। सदा न किसीको सफलता मिलती है, न असफलता।

× × ×

अपनी समझसे कोई बुरा काम न करो, बुरी नीयत मत रक्खो, फल बुरा हो तो शोक न करो। इसी प्रकार अपनी समझसे अच्छा काम करो, अच्छी नीयत रक्खो, फल तो विधाताके हाथ है। तुम अपना काम करो। विधाताके विधानको पलटनेकी व्यर्थ चेष्टा मत करो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मज्ञानदीपिका

(लेखक—परमहंस श्रीकृष्णवियोगी योगिराज)

जो लोग मुँहसे अपनेको 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं, उनको इस उत्तम ज्ञानपर बार-बार विचार करना चाहिये। इसमें किसीकी निन्दा-स्तुति नहीं की गयी है, भगवान् आनन्दकन्द प्यारेने ब्रह्मविचारवालोंके लिये यह खुशखबरी जाहिर की है—

१—जब तुम केवल सत्य हो अर्थात् 'आत्मा' हो, फिर रुपया पैदा करनेकी चिन्ता क्यों रहती है ? विषयोंके लिये क्यों पागल हो ? ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये।

२—इन्द्रियोंके विषय अज्ञानकी अवस्थामें प्रिय जान पड़ते हैं, जिस प्रकार मनुष्य सीपीको चाँदी समझकर भ्रमसे सीपीको लेनेके लिये दौड़ता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष विषयोंके लिये दौड़ते हैं। ज्ञानीको यह भ्रम कैसा ?

३—जिस प्रकार नदीकी लहरें नदीसे अलग नहीं उसी प्रकार जगत् आत्मासे अलग नहीं, जब यह ज्ञान हो गया कि मैं एक आत्मा हूँ, फिर विषयोंका प्रलोभन कैसा ?

४—जब तुम शुद्ध ज्ञान हो अर्थात् विकाररहित, स्वच्छ और सुन्दर आत्मा हो तो फिर तुम्हारे मनमें विषयोंकी वासनाका मैल क्यों भरा है ?

५—जब तुम सबमें एक आत्माको जानते हो, और इसी आत्मामें सब जगत्के पदार्थ इसी प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार स्वप्नके दृश्य। अर्थात् स्वप्नमें आत्मासे ही असंख्य जीव निकलते हैं, आत्माके संकल्पसे ही पैदा होते हैं, आत्मामें ही स्थित रहते हैं, उसीमें मिलकर व्यवहार करते हैं, फिर खेल दिखाकर संकल्पसे ही उसी आत्मामें अदृश्य हो जाते हैं। आत्मा ही अपना शरीर स्वप्नमें बनाता है। फिर आश्चर्य है कि मेरा-तेरा-पन बराबर कैसे चला जाता है।

जब यह ज्ञान हो गया, कि यह स्वप्न है, सत्य नहीं, फिर उसके प्राप्त करनेके लिये इतना यत्न क्यों करते हो ?

६—जब यह ज्ञान हो गया सब कुछ ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ तब कामना और वासनाओंका दास बनकर व्याकुल रहना और अपनेको सुखी-दुखी जानना आश्चर्यकी बात है।

७—जब तुम आत्माके स्वरूपको जानते हो तब ज्ञानके शत्रु कामना और आकांक्षाकी लहरमें क्यों फँसे हुए हो ? यह तो ऐसा जाल है कि मरनेके समय-तक भी नहीं छूट सकता।

८—जिसने आत्माको अमर और शेष सब पदार्थों-को नाशवान् जान लिया, और इस लोक और परलोक-के सारे विषयोंको वैराग्य-विवेकसे छोड़ दिया है, वह मृत्युसे क्यों डरेगा ?

सत्य ज्ञानकी व्याख्या

१—ज्ञानी वह है जो सुख-दुःखमें घबरानेवाला न हो।

२—ज्ञानी तो सब विषयोंमें बर्तता हुआ भी न कभी खुश होता है और न व्याकुल होकर क्रोधमें आता है। वह तो हर हालतमें आत्मामें ही स्थिर होकर आनन्दमय रहता है, और जगत्के सब पदार्थोंको स्वप्नवत् समझता है। अपने शरीरको भी और पदार्थोंकी तरह ही असत् जानता है।

३—ज्ञानी अपने शरीरको भी सत् नहीं मानता, इसलिये उसको न तो इसकी निन्दा या स्तुति सुनकर मनमें जोश आता है और न वह मौतसे ही डरता है।

४—ज्ञानी तो अपने-आपको शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा मानता है, दृश्य-प्रपञ्चको मायाका खेल और स्वप्नवत् असत् जानता है, फिर उसके मनमें कामना और वासनाओंका गुजर होना सम्भव ही नहीं। वह तो आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है।

५—सच्चा ज्ञानी वह है जो आत्माके ज्ञानमें ही तृप्त रहता है, उसके मनमें कोई संकल्प ही नहीं उठता, उसे किसी बातकी इच्छा ही नहीं रहती, वह सदा आत्मस्वरूपहीमें मस्त रहता है।

६—सच्चा ज्ञानी आत्माको सबमें समभावसे देखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसकी दृष्टिमें यह दुनिया आत्मरूप है। फिर इस दुनियाके नजर करनेसे क्या लाभ, क्या हानि ? फिर राग-द्वेष कहाँ रहा, वह किस चीज़को छोड़ दे और किसको ग्रहण करे ?

७—सच्चे ज्ञानीकी हर अवस्थामें एक ही दशा रहती है, उसे न अच्छी चीज़से सुख मिलता है और न बुरी चीज़से दुःख।

योगकी विधि

१—शरीरका खयाल छोड़ दे अर्थात् इसे मायामें लय करके अपने स्वरूपमें समा जा।

२—सारा जगत् तुमसे इस प्रकार पैदा हुआ है जिस प्रकार नदीमें लहरें—बुद्बुदे। बस, आपको अपनेसे जुदा न समझकर आत्माको एक जानकर उसमें लय हो जा अर्थात् समा जा।

३—यद्यपि यह संसार स्पष्टरूपसे दिखायी देता है, किन्तु शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मामें यह संसार कोई वस्तु नहीं है।

४—जिस प्रकार अँधेरेमें रस्सी साँप दिखायी देती है, किन्तु रस्सी न पहले साँप थी, न अब है, और न भविष्यमें ही ऐसा हो सकता है।

५—तू भरपूर शुद्ध आत्मा है, इस कारण सुख-दुःखमें समान है, मरने-जीनेको एक-जैसा ही समझकर अपने स्वरूप आत्मामें समा जा।

प्रश्न—यह चाह अर्थात् कामना क्यों उत्पन्न होती है?

उत्तर—१—इसका बड़ा भारी कारण विषयोंकी आसक्ति है, मनुष्य सदैव यही चाहता है कि दूसरेकी भी चीज़ मैं ले लूँ। इसको अहंकार वा खुदी कहते हैं। मनुष्य अहंकारसे बँधा हुआ है। अहंकार छूटना ही मोक्ष है!

२-३—ज्ञान बोलनेवालेको गूँगा—त्रिकालज्ञ, काम करनेवालेको बेकार और विद्वान्को अबोध बना देता है।

४—मनुष्यको खुदी खुदग़रज़, कार्मी, बहुत बोलनेवाला, बहुत दौड़-धूप करनेवाला, और अपने-आपको विद्वान् जनानेवाला बना देती है।

विचार-तरंग

(लेखक—श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी 'विशारद')

१—मैंने अपर्याप्त विश्वासरूप सुमनाञ्जलिको तव पाद-पद्मोंमें समर्पित किया। तू रहस्यमयी हँसी हँसा और तैंने मुट्ठीभर रत्नोंको मेरे जीर्ण पटमें बाँध दिया।

२—हा! सहजहीमें प्राप्त रत्नोंका यथार्थ मूल्य न जानकर मैंने उन्हें शूकरोंके समक्ष निक्षेपित कर दिया।

३—वे वंशपरम्परागत पुरातन स्वभाववश 'गुड-गुड' शब्द करते हुए विष्ठामें मुँह मारने लगे और उन अमूल्य कणकोंकी ओर उन्होंने उपेक्षा-दृष्टिसे देखा।

४—मैं अपनी मूर्खतापर पछताया एवं अपनी चञ्चलतापर मुझे मन-ही-मन खीझ हुई।

५—थोड़ी देरके बाद मुझे स्पष्ट ज्ञात हुआ कि मूर्खता एवं चञ्चलताकी ओटमें छिपा हुआ दर्प अपनी उत्तमता प्रकट करनेका प्रयत्न कर रहा था, किन्तु वह विफल-मनोरथ हुआ।

६—इसे उसकी किंवा अपनी पराजय मानूँ अथवा इस पराजयको वास्तविक विजय समझकर इसीमें तेरी कृपाके दर्शन करूँ।

७—मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ।

८—आओ, झिलमिलाती हुई वारुणी*का एक प्याला पिला दो, ताकि इस झंझटसे भी पीछा छुड़ानेमें समर्थ हो सकूँ।

* प्रगाढ़ भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

सभासद्गण—ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्यके साथ शाकल्यने द्वेष किया, इस द्वेषरूपी विषवृक्षका मृत्युरूप फल शाकल्यको मिला। यद्यपि शाकल्य विद्वान् और सर्वगुणसंयुक्त था तो भी ब्रह्मवेत्ताके द्वेषरूपी प्रबल द्वेषसे शाकल्य मृत्युको प्राप्त हुआ, जैसे एक प्रलयकालका अग्नि स्थावरजंगमरूप सब जगत्को जला देता है, इसी प्रकार एक ही ब्रह्मवेत्ताका द्वेष विद्यादि सब गुणोंका नाश करता है, क्योंकि शाकल्य यद्यपि अनेक विद्याओंमें कुशल और सर्वगुणयुक्त था तो भी ब्रह्मवेत्ताके द्वषरूप अग्निसे क्षणभरमें भस्म हो गया। जैसे समुद्रको सुखा देनेकी किसीमें सम्भावना नहीं होती, इसी प्रकार याज्ञवल्क्यके शापसे शाकल्यके मरणकी यद्यपि किसी प्राणीको सम्भावना न थी तो भी याज्ञवल्क्यके साथ द्वेष करनेसे शाकल्यकी मृत्यु हुई। इसलिये ब्रह्मवेत्ताका द्वेष अद्भुत प्रभाववाला है। सर्वगुणयुक्त तथा अनेक विद्याओंमें कुशल शाकल्य ब्रह्मवेत्ताके साथ द्वेष करनेसे जब इस प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त हुआ तो विद्यादि गुणोंसे रहित अन्य पुरुष ब्रह्मवेत्ताके साथ द्वेष करनेसे दुर्गतिको क्यों न प्राप्त होगा ? इसलिये ब्रह्मवेत्ताके साथ कभी भी द्वेष नहीं करना चाहिये। 'ब्रह्मवित्परमाप्नोति' 'ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मभावको प्राप्त होता है।' यह श्रुति आज हमने सत्य हुई देखी है क्योंकि विद्यादिगुणसम्पन्न शाकल्यको कोई भी मारनेमें समर्थ न था, यह अचिन्त्य शक्तिरूप परमात्माका ही कार्य था। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि याज्ञवल्क्य साक्षात् ब्रह्मरूप है। ब्रह्मवेत्ता सर्वात्मभावको प्राप्त होता है, यह श्रुति भी आज सत्य हुई हमारे देखनेमें आयी। क्योंकि जैसे अपने शत्रुका नाश होनेपर देहधारी जीव सुखको प्राप्त होता है, वैसे ही याज्ञवल्क्यके शत्रु शाकल्यके नाश होनेसे सब लोग सुखको प्राप्त हुए। जैसे देहधारी जीव अपनी निन्दा नहीं करता किन्तु अपनेसे भिन्न दूसरोंकी निन्दा करता है, इसी प्रकार सब लोग याज्ञवल्क्यकी निन्दा नहीं करते किन्तु शाकल्यकी निन्दा करते हैं। इससे ऐसा जाननेमें आता है कि ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य सब जीवोंका आत्मरूप है। यदि याज्ञवल्क्य सब जीवोंका आत्मा न हो तो जैसे देवदत्त नामके पुरुषके शत्रुके मरणसे यज्ञदत्त नामके पुरुषको सुख नहीं होता, इसी प्रकार याज्ञवल्क्यके शत्रुके मरणसे अन्य सब लोगोंको सुख नहीं होना चाहिये, किन्तु शाकल्यके मरणसे सब लोग सुखको प्राप्त हुए हैं, इससे याज्ञवल्क्य सब जीवोंका आत्मरूप है, इसीलिये अपने आत्मरूप याज्ञवल्क्यकी कोई निन्दा नहीं करता किन्तु सब लोग शाकल्यकी निन्दा करते हैं। सब पापकर्मोंसे ब्रह्महत्यारूप पापकर्म अधिक है, ब्रह्महत्यासे भी अधिक पापकर्म ब्रह्मवेत्ता पुरुषपर द्वेष करना है क्योंकि इस जन्ममें की हुई ब्रह्महत्या इस जन्ममें पुरुषको दुःखरूप फलकी प्राप्ति नहीं करती, दूसरे जन्ममें दुःखरूप फलकी प्राप्ति करती है। ब्रह्मवेत्ता पुरुषपर किया हुआ द्वेष इस जन्ममें और जन्मान्तरमें भी मनुष्यको दुःखकी प्राप्ति करता है, इस अर्थमें शाकल्य ही दृष्टान्तरूप है, क्योंकि उत्तम गद्दी तथा तकियोंके योग्य तथा अत्यन्त कोमल शाकल्यका शरीर ब्रह्मवेत्ताके साथ द्वेष करनेसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशाचरूप उन्मत्त पुरुषके समान अपवित्र भूमि-पर पड़ा है, इसलिये ब्रह्मवेत्ताके द्वेषसे शाकल्य-को इस जन्ममें परम दुःखकी प्राप्ति हुई। याज्ञवल्क्य-के शापसे शाकल्यकी दक्षिणायनके कृष्णपक्षकी अमावस्याको मृत्यु हुई है, इससे जाननेमें आता है कि शाकल्यको अवश्य नरक प्राप्त होना चाहिये। इस शाकल्यने बिना कारण ही ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य-के साथ द्वेष किया। इस दोषरूपी पापकर्मसे शाकल्यको दुःख हुआ हो, इतना ही नहीं किन्तु उसने अपने सब बान्धवोंको भी शोकरूपी समुद्रमें डाल दिया है। उसने अपनी स्त्रीको भी विधवा बना दिया तथा अपनेको भी नरकोंमें डाला। अपने कोमल शरीरको पृथिवीपर डाला और अपने पुण्यकर्मको भी पापरूप अग्निमें जला दिया, इस-लिये ब्रह्मवेत्ताके साथ द्वेष करनेसे शाकल्यके दोनों लोक भ्रष्ट हुए। इसी प्रकार यदि कोई अन्य ब्रह्म-वेत्ताके साथ द्वेष करेगा, तो वह दोनों लोकोंसे भ्रष्ट होगा।

इस प्रकारके वचनोंसे जनक, गार्गी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सब याज्ञवल्क्यकी स्तुति और शाकल्यकी निन्दा करने लगे। पश्चात् शाकल्य-के शिष्योंने उसके शरीरको ले जाकर संस्कारसे रहित लौकिक अग्निमें जलाया, पश्चात् श्रद्धावान् शिष्य शाकल्यकी अस्थियोंको वस्त्रमें बाँधकर घर ले जाने लगे। मार्गमें चाण्डाल जातिवाले निर्दय चोरोंने वस्त्रमें हड्डियाँ देखकर ऐसी कल्पना करके कि जनकके यज्ञमेंसे ये ब्राह्मण सुवर्ण लाये हैं, धनके लोभसे शिष्योंको मार डाला और वस्त्रसहित हड्डियोंको वे अपने घर ले गये। शाकल्यके मरनेके बाद सभामें बहुत देरतक हाहाकार शब्द होता रहा। जब हाहाकार निवृत्त हो गया तब याज्ञवल्क्य सबसे इस प्रकार कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे सब ब्राह्मणो ! आप सब विद्वान् ब्राह्मण कुरु, पाञ्चाल आदि अनेक देशोंसे आकर इस सभामें एकत्र हुए हैं, आप सब मेरा एक वचन सुनिये। आप सब ब्राह्मणोंमेंसे जिस किसीको प्रश्न करनेकी इच्छा हो, वह मुझसे निःशंक होकर प्रश्न करें, अथवा जो ब्राह्मण मेरे प्रश्न-का उत्तर देना चाहते हों, उनसे मैं प्रश्न करूँ। यदि कोई भी एक ब्राह्मण प्रश्न करने और उत्तर देनेमें समर्थ न हो, तो आप सब मिलकर मुझसे प्रश्न करें अथवा सब ब्राह्मणोंसे मैं प्रश्न करूँ। इन दोनों बातोंमेंसे जो बात आपको अच्छी लगे, वह कीजिये।

इस प्रकारके वचन जब याज्ञवल्क्यने ब्राह्मणों-से कहे तो कोई भी ब्राह्मण याज्ञवल्क्यसे प्रश्न करने-में अथवा याज्ञवल्क्यके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं हुआ; बल्कि शाकल्यकी मृत्यु देखकर सब भयभीत होकर मौनको प्राप्त हो गये। पश्चात् याज्ञ-वल्क्य अपनी विद्याकी उत्कृष्टता बोधन करनेके लिये आप ही सब ब्राह्मणोंसे प्रश्न करने लगे।

मनुष्य तथा पीपलमें समानता

जैसे लोकमें पुष्प बिना फलको ग्रहण करने-वाले पीपलादि वृक्ष मिथ्या प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार मनुष्यादि शरीर भी मिथ्या प्रतीत होते हैं। जैसे पीपलके वृक्षके अनेक पत्ते होते हैं, इसी प्रकार मनुष्यशरीरमें अनेक रोम हैं। जैसे पीपलके वृक्ष-की बाह्य त्वचा कठिन होती है, इसी प्रकार मनुष्य-शरीरकी बाह्य त्वचा कठिन है। जैसे कुल्हाड़ेसे काटनेसे पीपलवृक्षमेंसे रस निकलता है तथा श्वेत वस्त्रके समान त्वचाका नीचेका भाग निकलता है, इसी प्रकार शस्त्रसे काटनेसे मनुष्य-शरीरमेंसे भी रुधिर निकलता है और श्वेत वस्त्रके समान त्वचाका नीचेका भाग निकलता है। जैसे कुल्हाड़ीसे छेद करने-से पीपलवृक्षमेंसे काष्ठमय टुकड़ा निकलता है, इसी प्रकार शस्त्रसे छेदन करनेसे शरीरमेंसे भी मांसमय टुकड़ा बाहर निकलता है। जैसे पीपलके वृक्षमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हुई नाड़ियाँ मिलकर गाँठें करती हैं, इसी प्रकार मनुष्य-शरीरमें भी अनेक सूक्ष्म नाड़ियाँ मिलकर मस्तक आदि अंगोंमें गाँठें करती हैं, जैसे पीपल-वृक्षमें कठिन सार भाग होता है, इसी प्रकार मनुष्य-शरीरमें हड्डियाँ कठिन होती हैं, जैसे पीपल-वृक्षके कठिन सार भागमें रस होता है इसी प्रकार मनुष्य-शरीरकी हड्डियोंमें मज्जारूपी रस होता है। इसलिये मनुष्य-शरीरमें तथा पीपलके वृक्षमें सर्वथा समानता प्रतीत होती है। किन्तु मनुष्य-शरीरमें पीपलके वृक्षसे एक विशेषता देखनेमें आती है, उस विशेषताको मैं कहता हूँ, सुनो। जैसे कुल्हाड़ीसे काटा हुआ पीपल फिर मूलमेंसे नवीन उत्पन्न हो आता है यह बात सब लोगोंके अनुभव-सिद्ध है, इसी प्रकार नाशको प्राप्त हुआ मनुष्य-शरीर जिस मूलमेंसे नया उत्पन्न हो आता है, वह मूल प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता। किन्तु मूल बिना शरीरकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, इसलिये शरीरका भी कोई मूल होना चाहिये। इस मूलको आप सब ब्राह्मण बताइये। यदि आप पिताके वीर्य तथा माताके रक्तको शरीरका मूल कहें, तो आपका यह कहना नहीं बनता क्योंकि प्राणको धारण करनेवाले देहधारी जीवके अन्नादि भक्षणसे वीर्यकी उत्पत्ति होती है, और मेरे पूछनेका अभिप्राय यह है कि जब सुषुप्ति-अवस्थामें तथा प्रलय-अवस्थामें सब कार्य-प्रपञ्चका नाश हो जाता है, उसके पीछे किस मूल कारणमेंसे नया देह उत्पन्न होता है, और माता-पिताका शरीर प्रलयकालमें होता नहीं, इसलिये देहका मूल कारण वीर्य नहीं है। यदि आप कहें कि जैसे पीपलका वृक्ष अपने मूल बिना अन्य वृक्षपर नवीन होकर उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यह शरीर भी मूल बिना नवीन होकर उत्पन्न होगा, तो यह आपका कहना सम्भव नहीं है क्योंकि अन्य वृक्षके ऊपर जो पीपलका वृक्ष उत्पन्न होता है, वह अपने मूलमेंसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु वृक्षके ऊपर पीपलके बीजको पक्षी ले जाता है, उस बीजमेंसे वहाँ पीपलका वृक्ष उत्पन्न होता है, बीज बिना अन्य वृक्षपर पीपलका वृक्ष उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार इस शरीरके मूलरूप कारणका अभाव होनेपर बीजरूप कारण आपको कहना चाहिये। इस बीजके समान शरीरके बीजका क्या कारण है, वह मुझसे कहें। यदि आप ऐसा कहें कि शरीरादि प्रपञ्चके मूलरूप कारणका तथा बीजरूप कारण-का निश्चय करनेसे किसी प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती, तो आपका यह कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि जैसे जिस पुरुषको वृक्षके नाश करनेकी इच्छा होती है, वह पुरुष वृक्षके मूलका कुल्हाड़ीसे छेदन करता है और वृक्षके बीजको अग्निमें जला देता है, इन दो उपायोंसे वृक्षका नाश हो जाता है। इसी प्रकार अधिकारी पुरुषको जब शरीरादि प्रपञ्चके मूलका तथा बीजका ज्ञान होता है, तब वह अधिकारी असङ्ग बुद्धिरूपी शस्त्रसे तथा ज्ञानरूपी अग्निसे मूल तथा बीज-का नाश करता है। मूलादिके ज्ञान बिना उसका नाश करना सम्भव नहीं है, इसलिये देहादि प्रपञ्चके मूलरूप कारणको तथा बीजरूप कारणको अवश्य जानना चाहिये। यदि आप कहें कि जो पदार्थ एक बार उत्पन्न होता है, वह पदार्थ दूसरी बार उत्पन्न नहीं होता किन्तु स्वभावरूप कारणमेंसे अपूर्व पदार्थ ही उत्पन्न होता है, इसलिये मूलका विचार करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है तो आपका यह कहना भी उचित नहीं है क्योंकि एक बार उत्पन्न हुए पदार्थकी फिर उत्पत्ति नहीं मानेंगे, तो किये हुए पुण्यपापरूप कर्मका बिना भोग नाश होगा, और नहीं किये हुए पुण्यपापरूप कर्म-का सुखदुःखरूप फल भोगना पड़ेगा, इन कृतनाश तथा अकृताभ्यागमरूप दो दोषोंकी प्राप्ति होगी और पूर्व उत्पन्न हुए पदार्थकी फिर उत्पत्ति माननेमें ये दो प्रकारके दोष प्राप्त नहीं होते क्योंकि पूर्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्ममें जीव जो कुछ पुण्यपापरूप कर्म करता है, उस पुण्यपापरूप कर्मका फल सुखदुःख इस जन्ममें भोगता है और इस जन्ममें जीव जो पुण्यपापरूप कर्म करता है, उस कर्मका फल जन्मान्तरमें भोगेगा, इसलिये पूर्व उत्पन्न हुए पदार्थमें ही पुण्यपापरूप अदृष्ट रहता है। जो पदार्थ नृश्रृङ्गके समान कभी उत्पन्न नहीं होता, उस पदार्थमें पुण्यपापरूप अदृष्ट सम्भव नहीं है। जो पूर्व उत्पन्न हुए पदार्थकी फिर उत्पत्ति न मानें तो माताके गर्भमेंसे निकला हुआ बालक उसी समय स्तनका पान करनेमें प्रवृत्त होता है, यह न होना चाहिये, क्योंकि यह पदार्थ मेरे सुखका कारण है, इस प्रकारकी सुखकी साधनताका ज्ञान जीवकी प्रवृत्तिमें कारणरूप है, सुखसाधनताके ज्ञान बिना किसी जीवकी प्रवृत्ति नहीं होती। जन्मकालमें 'यह स्तनपान मेरे सुखका साधन है' इस प्रकारका ज्ञान बालकको न हो तो स्तनपानमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये, परन्तु उत्पन्न हुए पदार्थकी फिर उत्पत्ति मानें, तो इस दूषणकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि जन्मकालमें जीवको यद्यपि स्तनपान मेरे सुखका साधन है, इस प्रकारका ज्ञान अनुभवरूपसे नहीं है तो भी पूर्वके अनन्त जन्मोंमें यह जीव स्तनपानके सुखकी साधनताका अनुभव करता आया है, इस अनुभवजन्य संस्कारसे जीवको जन्मकालमें यह स्मृतिज्ञान होता है कि यह स्तनपान मेरे सुखका साधन है। बालककी इस स्तनपानकी प्रवृत्तिसे ऐसा सिद्ध होता है कि उत्पन्न हुए पदार्थकी ही उत्पत्ति होती है, अपूर्व पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि आप कहें कि जैसे बीजमेंसे अंकुर होता है और अंकुरमेंसे फिर बीज होता है, इसी प्रकार पुण्यपापरूप अदृष्टमेंसे यह शरीर होता है। इस शरीरमेंसे फिर पुण्यपापरूप अदृष्ट होता है। इसलिये दूसरे किसी कारणका विचार करना निष्फल है तो आपका यह कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि जैसे बीजमें तथा अंकुरमें पृथिवीरूप कारण अनुगत हुआ प्रतीत होता है, इसी प्रकार पुण्यपापरूप अदृष्टमें तथा शरीरमें कोई अनुगत कारण प्रतीत नहीं होता। इसलिये बीजाङ्कररूप विषम दृष्टान्तसे अदृष्ट शरीरका कार्य-कारणभाव सिद्ध नहीं होता। जैसे बीजमें तथा अङ्कुरमें पृथिवीरूप मूलकारण अनुगत है, इसी प्रकार पुण्यपापरूप अदृष्टमें तथा शरीरमें भी कोई मूलकारण अनुगत होगा, यह मूलभूत कारण यद्यपि प्रत्यक्षादि लौकिक प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता तो भी वेदरूप अलौकिक प्रमाणसे सिद्ध है, इसलिये पुण्यपापरूप अदृष्टके तथा शरीरादि प्रपञ्चके उपादान कारणका स्वरूप आप मुझसे कहिये।

इस प्रकारका प्रश्न जब याज्ञवल्क्यने सब ब्राह्मणोंसे किया तो सब ब्राह्मण जगत्के कारणको न जाननेसे पराभवको प्राप्त हुए। पश्चात् याज्ञवल्क्य मुमुक्षुओंके हितके लिये आप ही उस प्रश्नका उत्तर देने लगे।

जगत्के कारण परमात्माके लक्षण

याज्ञवल्क्य—स्थूल—सूक्ष्मरूप जड-प्रपञ्चका विज्ञान-आनन्दरूप परमात्मा ही कारण है। यह परमात्मा सुवर्णादि पदार्थोंके दान करनेवाले पुरुषोंको सुखरूप फलकी प्राप्ति करता है और ब्रह्महत्यादि पाप-कर्म करनेवाले पुरुषोंको दुःखकी प्राप्ति करता है, भाव यह है कि परमात्माके लक्षण दो प्रकारके हैं। एक स्वरूपलक्षण और दूसरे तटस्थलक्षण। जो लक्षण अपने लक्ष्यका स्वरूप होकर अन्य पदार्थसे अपने लक्ष्यकी व्यावृत्ति भिन्नता करे, उसको स्वरूपलक्षण कहते हैं, जैसे कि विज्ञान तथा आनन्द ब्रह्मका स्वरूप होनेसे जड-प्रपञ्चमेंसे ब्रह्मकी व्यावृत्ति करते हैं। इसलिये विज्ञान तथा आनन्द ब्रह्मके स्वरूपलक्षण हैं। जो लक्षण अपने लक्ष्य अर्थमें सर्वदा न रहकर किसी समय रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और किसी समय न रहे, और अपने लक्ष्य अर्थको अन्य पदार्थोंसे भिन्न करके बतावे, उसको तटस्थ-लक्षण कहते हैं। जैसे सुखदुःखफलका दातापना ब्रह्ममें सर्वदा नहीं रहता किन्तु जगत्की स्थिति-कालमें ही रहता है और आकाशादि जड पदार्थोंसे लक्ष्यरूप ब्रह्मको भिन्न करके बताता है। इसलिये सुखदुःखरूप फलका दातापना ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है। इस प्रकारके जगत्के मूल कारणका निरूपण मैं आपसे आगे करता हूँ।

वृक्षरूप दृष्टान्तकी समानता

हे ब्राह्मणो ! जैसे वृक्षका नाश होनेपर भी फिर वृक्षकी उत्पत्तिमें बीज कारण होता है इसी प्रकार जीवके स्थूलशरीरके नाश होनेपर फिर स्थूलशरीरकी उत्पत्तिमें सूक्ष्मशरीर कारण है। जैसे बीजका नाश होनेपर केवल पृथिवी रह जाती है, इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्था तथा प्रलय-कालमें सूक्ष्मशरीरका लय होनेपर केवल अज्ञान रह जाता है।

ब्राह्मण—हे याज्ञवल्क्य ! जब अज्ञानसे तथा सूक्ष्मशरीरसे ही सब जगत्की उत्पत्ति हो सकती है, तो ब्रह्मके माननेकी क्या आवश्यकता है ?

याज्ञवल्क्य—हे ब्राह्मणो ! जैसे वृक्षकी उत्पत्तिमें बीजको अदृष्टरूप निमित्त कारणकी अपेक्षा है, इसी प्रकार सूक्ष्मशरीरको स्थूलशरीरकी उत्पत्ति-में परमात्माकी अपेक्षा है। चैतन्यरूप परमात्माकी सत्ता बिना जड सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरकी उत्पत्ति नहीं कर सकता। इसलिये परमात्माको अवश्य मानना चाहिये। पृथिवीमें रहे हुए बीजका अङ्कुर-रूप कार्यद्वारा ज्ञान होता है। पृथिवीमें संस्कार-रूपसे बीजकी स्थिति अङ्कुररूप कार्यके द्वारा बीजके ज्ञानमें कारण है क्योंकि यदि संस्काररूपसे बीज पृथिवीमें न हो तो अङ्कुररूप कार्यद्वारा उस बीजको ज्ञान न होना चाहिये। इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें तथा प्रलयकालमें रहा हुआ अज्ञान सृष्टिकालमें सूक्ष्मशरीराकार परिणामको प्राप्त होता है; इसलिये अज्ञानमें रहे हुए सूक्ष्मशरीरके संस्कार सूक्ष्मशरीरकी उत्पत्तिके कारण हैं क्योंकि यदि प्रलयकालमें सूक्ष्मशरीरके संस्कार अज्ञानमें न हों तो सृष्टिकालमें अज्ञानसे सूक्ष्मशरीरकी उत्पत्ति न होनी चाहिये। इसलिये प्रलयकालमें सूक्ष्म शरीरके संस्कार अज्ञानमें रहते हैं, ये संस्कार अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे सर्वज्ञ परमात्माके सिवा किसी अन्यसे जाने नहीं जा सकते, अतएव सूक्ष्म संस्कारोंको जाननेवाले सर्वज्ञ परमात्माको अवश्य मानना चाहिये। जैसे अमूर्त आकाशमें मूर्तरूप पृथिवी रहती है, इसी प्रकार विज्ञानरूप परमात्मामें जड अज्ञान रहता है। चैतन्यरूप परमात्माके सिवा अन्य किसी पदार्थमें अज्ञान नहीं रहता क्योंकि चैतन्य परमात्माके सिवा अन्य सब जड पदार्थ अज्ञानके कार्य हैं, अतः उन जड पदार्थोंमें अज्ञान नहीं रह सकता। अज्ञान अपने आश्रय रहे हुए पदार्थोंको अन्धकारके समान आवरण करता है। यह अज्ञानका स्वभाव है, और आकाशादि जड पदार्थ स्वभावसे ही आवरणरूप होनेसे अज्ञानकृत आवरण जड पदार्थोंमें सम्भव नहीं है। इसलिये जड पदार्थोंमें अज्ञान नहीं रहता। जो मनुष्य आकाशादि जड पदार्थोंके आश्रय रहा हुआ अज्ञान मानते हैं उनसे पूछना चाहिये कि जब आकाशादि जड पदार्थ उत्पन्न हुए नहीं होते तब वह अज्ञान क्या आश्रय बिना रहता है अथवा किसी दूसरेके आश्रय रहता है ? इन दोनों पक्षोंमेंसे प्रथम निराश्रय पक्ष मानना सम्भव नहीं है क्योंकि 'अज्ञान' इस प्रकारके शब्दके श्रवणसे लोग ऐसा पूछेंगे कि किस वस्तुका अज्ञान है और किसमें अज्ञान है। इस प्रकारके लोगोंके अनुभवसे अज्ञानमें आश्रयकी तथा विषयकी अवश्य अपेक्षा रहती है, इसलिये आश्रय बिना अज्ञान नहीं रहता, यह सिद्ध हुआ। आकाशादि जड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थोंकी उत्पत्तिसे पूर्व किसी दूसरेके आश्रय अज्ञान रहता है, यह दूसरा पक्ष जो कोई माने, उससे पूछना चाहिये कि वह दूसरा जीव है, ईश्वर है अथवा शुद्ध परमात्मा है ? इनमेंसे जीव अथवा ईश्वरमें अज्ञानकी आश्रयता सम्भव नहीं है क्योंकि अज्ञानविशिष्ट चैतन्यका नाम जीव एवं ईश्वर है। इन जीव-ईश्वरमें यदि अज्ञानकी आश्रयता मानें तो अज्ञानमें अज्ञानकी आश्रयतारूप आत्माश्रय-दोषकी प्राप्ति होती है, इसलिये जीव-ईश्वरके आश्रित अज्ञान नहीं रहता किन्तु शुद्ध परमात्माके आश्रित अज्ञान रहता है। यह वेदान्त-मतका सिद्धान्त है। जैसे इस लोकमें निर्धन पुरुष धनवाले पुरुषका आश्रय करता है, इसी प्रकार दुःखरूप अज्ञान विज्ञान-आनन्दरूप आत्माका आश्रय करता है।

विज्ञान-आनन्दका अभेद

विज्ञान आनन्दरूप है। इस लोकमें भी विज्ञान-से भिन्न आनन्द देखनेमें नहीं आता क्योंकि 'मैं सुखी हूँ' इस प्रकारके ज्ञान विना आनन्दकी सिद्धि नहीं होती।

ब्राह्मण—हे याज्ञवल्क्य ! जैसे 'मैं सुखी हूँ' इस प्रकारके ज्ञान विना सुखकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये सुख विज्ञानरूप है। इसी प्रकार 'मैं दुःखी हूँ' इस प्रकारके ज्ञान बिना दुःखकी भी सिद्धि नहीं होती, इसलिये दुःख भी विज्ञानरूप होना चाहिये।

याज्ञवल्क्य—हे ब्राह्मणो ! सुख विज्ञानरूप है, इसमें केवल लोकप्रसिद्धि ही प्रमाण नहीं है किन्तु 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' यह श्रुति भी प्रमाणरूप है। इस प्रकार दुःखकी विज्ञानरूपतामें श्रुति तथा प्रत्यक्षादि कोई प्रमाण नहीं है, इसलिये दुःख विज्ञानरूप नहीं है।

ब्राह्मण—हे याज्ञवल्क्य ! शास्त्रोंमें अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिरूप योग तथा प्राप्त वस्तुका रक्षणरूप क्षेम इन दोनों रूपोंसे सुखदुःखकी समानता कही है, इसलिये यदि सुखको विज्ञानरूप मानेंगे तो दुःख-को भी विज्ञानरूप मानना चाहिये। यदि सुखको ही विज्ञानरूप मानें और दुःखको विज्ञानरूप न मानें तो सब शास्त्रोंमें कही हुई सुखदुःखकी समान योगक्षेमता असङ्गत हो जायगी।

याज्ञवल्क्य—हे ब्राह्मणो ! यद्यपि शास्त्रोंमें सुख-दुःखकी समानता कही है तो भी सुखदुःखमें इस प्रकारकी विलक्षणता सब लोगोंके अनुभवसिद्ध है कि सब लोग 'हमको सुख हो' इस प्रकार आत्मसम्बन्धी सुखकी इच्छा करते हैं और 'दुःख हमको कभी न हो' इस प्रकार दुःखमें सब द्वेषबुद्धि करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि 'हमको यह पदार्थ सर्वदा प्राप्त रहे' इस प्रकारकी इच्छाका विषय जो पदार्थ होता है, वह पदार्थ अनुकूल होता है और वह स्वशब्दसे प्रतिपादन करनेयोग्य होता है। और 'हमको यह पदार्थ कभी प्राप्त न हो' इस प्रकारकी इच्छाका विषय जो पदार्थ होता है, वह पदार्थ प्रतिकूल होता है और वह स्वशब्दसे प्रतिपादन करने योग्य नहीं होता। इन दोनोंमेंसे 'हमको सर्वदा सुख हो' इस प्रकारकी इच्छा सब जीवोंको होती है, इस इच्छामें 'सर्वदा सुख हो' इतने अंशसे सुखमें अनुकूलता प्रतीत होती है और 'हमको' इतने अंशसे सुखमें स्वशब्दकी प्रतिपाद्यता प्रतीत होती है, इसलिये सुखका लक्षण यह है कि जो सर्वदा अनुकूल हो तथा स्वशब्दसे प्रतिपाद्य हो, उसका नाम सुख है। और 'हमको कभी दुःख न हो' इस प्रकारकी इच्छा भी सब जीवोंको होती है, इसलिये दुःखका लक्षण यह है कि जो सब जीवोंको प्रतिकूल हो और स्वशब्द-से अप्रतिपाद्य हो, वह दुःख है। इसमें जो अनुकूल हो, उसको ही सुख कहते हैं। यदि इतना ही सुख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का लक्षण कहें, तो वैरी पुरुषका सुख भी सुख-रूपसे अनुकूल है, इसलिये वैरीका सुख भी अन्यको सुखरूप होना चाहिये। परन्तु वैरीका सुख किसी-को सुखरूप प्रतीत नहीं होता, इसलिये स्वशब्दसे प्रतिपाद्य कहा है। 'जो स्वशब्दसे प्रतिपाद्य हो, उसको सुख कहते हैं' यदि इतना ही सुखका लक्षण मानें तो 'यह मेरा शत्रु है, यह मेरा दुःख है' इस प्रकारकी प्रतीति सब जीवोंको होती है। इस वाक्यमें स्वशब्दसे वैरीमें तथा दुःखमें प्रति-पाद्यपना प्रतीत होता है, इसलिये वैरी तथा दुःख सुखरूप होने चाहिये, अतएव अनुकूल सुखका लक्षण कहा है। वैरीमें तथा दुःखमें किसीको अनुकूलताका ज्ञान नहीं होता इस प्रकार अनुकूल और स्वशब्दसे प्रतिपाद्य होना यह सुखका लक्षण है।

ब्राह्मण–हे याज्ञवल्क्य! जो अनुकूल हो तथा स्वशब्दसे प्रतिपाद्य हो, उसको सुख कहते हैं। इस प्रकारके सुखके लक्षणमें स्वशब्दका अर्थ आत्माका सम्बन्धी लेना चाहिये अथवा आत्माको ही लेना चाहिये? इन दोनोंमेंसे यदि आत्माका सम्बन्धी स्वशब्दका अर्थ मानें तो आत्माके सम्बन्धी शरीरादि आत्मा नहीं हैं, इसलिये आत्म-सम्बन्धी सुख आत्मरूप न होना चाहिये और यदि स्वशब्दका अर्थ आत्मा मानें तो 'मुझे सुख हो' इस प्रतीतिमें सुखका तथा आत्माका जो भेद प्रतीत होता है, वह न होना चाहिये किन्तु 'मैं सुखरूप हूँ' ऐसी प्रतीति होनी चाहिये।

याज्ञवल्क्य–हे ब्राह्मणो! सुखके लक्षणमें स्वशब्द-का आत्मसम्बन्धी अर्थ नहीं है किन्तु आत्मा ही स्वशब्दका अर्थ है। इसलिये सुख आत्मारूप है। जैसे लोकमें मनुष्य आप अपना उपकार करता है, इस प्रकारका शब्द बोलनेमें आता है, तब शब्दोंसे यद्यपि अपनेमें अपना भेद प्रतीत होता है तो भी अपनेमें भेद नहीं है, इसलिये वह प्रतीति भ्रमरूप है। इसी प्रकार श्रुतिके प्रमाणसे सुख तथा आत्माको अभेदकी सिद्धि होनेपर भी 'मुझे सुख हो' इस प्रकारके शब्दसे सुख तथा आत्माके भेद-की जो प्रतीति होती है, वह भ्रान्तिरूप है। इसलिये भ्रान्तिज्ञानसे सुख तथा आत्माका भेद सिद्ध नहीं होता। सुख तथा आत्माका परस्पर सम्बन्ध नित्यरूप है। क्योंकि यदि सुख तथा आत्माका सम्बन्ध अनित्य मानें, तो जो पदार्थ अनित्य होता है, वह किसी कालमें होता है और किसी कालमें नहीं होता। जैसे घटादि पदार्थ किसी कालमें होते हैं और किसी कालमें नहीं होते, इसी प्रकार सुख तथा आत्माका सम्बन्ध भी जिस समय न हो, उस समय आत्मा सुखसे भिन्न हो। जो सुखसे भिन्न होता है, वह दुःखके समान प्रतिकूल होता है, इसलिये आत्मा-में भी प्रतिकूलता होनी चाहिये, किन्तु किसी कालमें किसी जीवको अपने आत्मामें प्रतिकूलता नहीं होती, सब जीवोंको अपने आत्मामें सर्वदा अनुकूलता ही होती है, इसलिये सुख तथा आत्मा-का नित्य सम्बन्ध है।

ब्राह्मण–हे याज्ञवल्क्य! समवाय सम्बन्धको ही नैयायिक नित्य सम्बन्ध मानते हैं, तथा गुण और द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध रहता है, इसलिये सुखरूप गुण भी आत्मामें समवाय सम्बन्धसे रहता है। जिनका समवाय सम्बन्ध होता है, उनका परस्पर भेद होता है, इसलिये सुख तथा आत्माका भेद सिद्ध होता है।

याज्ञवल्क्य–हे ब्राह्मणो! सुख तथा आत्माका परस्पर समवाय सम्बन्ध नहीं है। किन्तु कल्पित भेदवाला वास्तव अभेदरूप तादात्म्य-सम्बन्ध सुख तथा आत्माका नित्य सम्बन्धरूप है। क्योंकि 'नेति-नेति' यह श्रुति आत्मासे भिन्न सर्व जगत्का निषेध करती है। इसलिये सुख और आत्मा अभिन्न हैं। जैसे सुख आत्मासे भिन्न नहीं है, इसी प्रकार विज्ञान भी आत्मासे भिन्न नहीं है, क्योंकि यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानको आत्मासे भिन्न मानें तो जैसे बुद्धिकी वृत्तिरूप गौण ज्ञान आत्मासे भिन्न होनेसे जडरूप है, इसी प्रकार आत्मासे भिन्न हुआ विज्ञान भी जड हो जायगा। जो जड होता है, वह अपनी सिद्धिके लिये अन्य ज्ञानकी अपेक्षा रखता है, जैसे घटादि जड पदार्थ अपनी सिद्धिके लिये अन्य ज्ञानकी अपेक्षा रखते हैं, इसी प्रकार जड विज्ञान भी अपनी सिद्धिके लिये किसी अन्य विज्ञानकी अपेक्षा करेगा। दूसरा विज्ञान अपनी सिद्धिके लिये तीसरे विज्ञानकी अपेक्षा करेगा। इस प्रकार विज्ञानको अनवस्थादोषकी प्राप्ति होगी। जो अपनी सिद्धिके लिये अन्य विज्ञानकी अपेक्षा करे, वह विज्ञानरूप न हो। जैसे घटादि पदार्थ अपनी सिद्धिके लिये अन्य विज्ञानकी अपेक्षा करते हैं, इसलिये घटादि विज्ञानरूप नहीं हैं, इसी प्रकार यदि विज्ञान भी अपने प्रकाशके लिये अन्य विज्ञानकी अपेक्षा करे तो विज्ञान भी घटादिके समान अविज्ञानरूप हो जाय। विज्ञानको अविज्ञानरूप कहना अत्यन्त विरुद्ध है, इसलिये सुखके समान विज्ञान भी स्वप्रकाश आत्मारूप है। सब जगत्में मिथ्यात्व बोधन करनेके लिये श्रुति विज्ञान तथा आनन्दरूप आत्माको ब्रह्मरूप कहती है, भाव यह है कि देश, काल, वस्तु इन तीनों परिच्छेदसे रहित महान् अर्थका ब्रह्म शब्द बोध कराता है। यदि प्रपञ्चको सत्यरूप मानें तो ब्रह्ममें वस्तु-परिच्छेदकी प्राप्ति होती है इसलिये ब्रह्म शब्द आत्मासे भिन्न सब जगत्में मिथ्यात्वका बोध करता है। जैसे एक ही आकाशमें घट-मठादि उपाधियोंसे अनेक प्रकारका भेद प्रतीत होता है। इसी प्रकार एक ही अद्वितीय आत्मामें अज्ञानादि उपाधियोंसे अनेक प्रकारका भेद प्रतीत होता है इसलिये ब्रह्ममें सजातीय भेद नहीं है। जैसे कि मायावी अपनी मायासे आकाशमें मायामय शरीर उत्पन्न करता है। जब ये शरीररूप उपाधियाँ होती हैं तब मायावीका आकाश आदिमें जो भेद प्रतीत होता है, तथा आकाश आदिका मायावी पुरुषमें जो भेद प्रतीत होता है, वह भेद उपाधियाँ मिथ्या होनेसे मिथ्या हैं। इसी प्रकार अज्ञानादि उपाधियाँ मिथ्या होनेसे अज्ञानादिका किया हुआ ब्रह्ममें अनेक प्रकारका भेद भी मिथ्या है। इसलिये ब्रह्म विजातीय भेदसे रहित है। इस विज्ञानरूप ब्रह्मका स्वरूप मैंने आपसे कहा। यह शुद्ध ब्रह्म जगत्का कारणरूप नहीं है, किन्तु मायाविशिष्ट ब्रह्म जगत्का कारण है। इस अभिप्रायसे श्रुतिने पुण्य तथा पापके फलके देनेवालेको जगत्का कारण-रूप कहा है, और मायामें जगत्की कारणताका बोध करानेको मायाविशिष्ट परमात्मामें जगत्की कारणता पूर्वमें कही है, किन्तु इस अर्थमें अनुपपत्ति-रूप दोषकी प्राप्ति होती है क्योंकि चैतन्यकी सत्ता बिना जड माया अपनी ही स्थिति करनेमें समर्थ नहीं है, तो फिर सब जगत्का निर्वाह करनेको यह जड माया कैसे समर्थ होगी? इस प्रकारकी अनुपपत्तिके विचारसे वेद भगवान् केवल शुद्ध ब्रह्मको ही सर्व जगत्का अधिष्ठानरूप कहते हैं। यह ब्रह्म केवल जड अज्ञानका ही अधिष्ठान नहीं है किन्तु ब्रह्मचर्यादि साधनोंसे जिस पुरुषको 'मैं ब्रह्मरूप हूँ' ऐसा अभेद ज्ञान हुआ है, उस विद्वान्का शुद्ध ब्रह्म चरम स्थान है।

देवी—हे डोरूशंकर! मायाविशिष्ट ब्रह्म पुण्य तथा पापका फल देनेवाला है तथा मायासे रहित हुए ब्रह्मज्ञानी पुरुषका जो आत्मा है वही ब्रह्म जगत्का उपादानकारण है। इस अभिप्रायसे याज्ञवल्क्यने सब ब्राह्मणोंसे जगत्का कारण पूछा किन्तु सब ब्राह्मण जगत्के कारणको जानते नहीं थे। यह कारणरूप ब्रह्म अधिकारियोंने वेदके वचनसे श्रवण किया है। इस प्रकार सूर्यभगवान्के शिष्य याज्ञवल्क्यने गौओंको घर ले जानेरूप निमित्तसे सब ब्राह्मणोंको पराजित किया। शाकल्यने ब्रह्मवेत्तासे द्वेष किया, इसलिये वह भस्म हुआ। जो ब्रह्मविद्या सूर्यभगवान्ने याज्ञवल्क्यसे कही थी और जो याज्ञवल्क्यने सब ब्राह्मणोंसे पूछी थी, वही ब्रह्मविद्या याज्ञवल्क्यने जनक राजासे कही थी।

तीसरा अध्याय समाप्त (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदासजीका एक अपूर्व दोहा

(छः महीनेका अनुष्ठान)

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीके 'रामचरितमानस' (रामायण) और विनयपत्रिका ये दो अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त भी उनके छोटे-छोटे बहुत-से ग्रन्थ हैं। उनमें दोहावली भी एक परम चामत्कारिक ग्रन्थ है। इसमें कुल मिलाकर ५७३ दोहे हैं। बहुत-से दोहे श्रीरामचरितमानस तथा सतसईके भी हैं। जैसे अन्य ग्रन्थोंमें गोस्वामीजीने श्रीनाममहिमाके वर्णनमें हद कर दी है उसी प्रकार इस ग्रन्थमें भी नाममहिमा-वर्णनमें पराकाष्ठा कर दी है। इसमें आपने श्रीराम-नामजपका एक आनुष्ठानिक प्रयोग बताया है। दोहावलीका पाँचवाँ दोहा है—

पय अहार फल खाइ जपु, राम नाम षटमास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब, करतल 'तुलसीदास'॥

इस दोहेमें मुख्यतया तीन विधि हैं। एक तो पय अहार फल खाना, दूसरी रामनाम जपना, तीसरी छः महीनेतक जपना। विधि कहनेके बाद उसका फल भी कहना चाहिये। इसलिये इसका फल बताते हैं—ऐसा अनुष्ठान करनेसे सम्पूर्ण अच्छे मंगल और सब सिद्धियाँ करतल अर्थात् मुट्ठीमें आ जायँगी। अन्तमें 'तुलसीदास' पद देनेसे वे कहते हैं—'इसका साक्षी तुलसीदास है। तुलसीदास सुनी बात नहीं कहता, शास्त्रोंकी बात नहीं कहता, इसका अपना अनुभव है, तुम विश्वास कर लो।

अब तीन विधि तो स्पष्ट ही हैं, चौथी विधि गुप्त है। फलाहारका भोजन यह तो ठीक ही हुआ, रामनामका जप भी कर्तव्यकर्म रहा, अब जो छः महीनेकी अवधि बाँधी थी इससे स्पष्ट है कि छः महीनेतक सिवा रामनामके और न कुछ कहो, न बोलो और न कुछ करो। यदि भोजनके सम्बन्धमें भी कुछ न कहते, तब समझ लेते भोजन भी न करना चाहिये। किन्तु पहले ही फलाहारकी विधि बतायी है, इससे स्पष्ट है कि शरीरसम्बन्धी कार्य—मलमूत्र-त्याग, स्नान-सन्ध्या आदिके सिवा कुछ न करो। 'छः महीनेतक रामनाम जपना' ऐसी विधि करके स्पष्ट कर दिया है कि रामनामके सिवा छः महीनेतक और कुछ भी बोलना नहीं, मौन रहना। अब चार विधि हुईं। फलाहार, रामके नामोंका जप, मौन और छः मासकी अवधिपर्यन्त।

फलाहारमें दो शब्द पड़े हैं 'पय-अहार' 'फल खाइ' इसके तीन अर्थ हैं या तो छः महीनेतक केवल दूध पीकर ही रहे, या केवल फल खाकर ही रहे अथवा फल-दूध दोनों ही खाकर रहे। फलाहार-व्रत चार प्रकारके माने गये हैं। एक तो केवल जल पीकर रहना। जलको कुछ लोग आहारमें सम्मिलित करते हैं कुछ नहीं करते। दूसरा केवल दूध पीकर ही रहना। तीसरा दूध-फूल दोनों खाकर रहना और चौथा एक और भी प्रचलित है—सिंघाड़ेका हलुआ, कूट्टकी पूड़ी, जलेबी, पेड़ा, बरफी, साबूदानेके पापड़, भाँति-भाँतिकी फलारी चटनी, अचार, रायते। यह फलाहार क्या है, एक प्रकारसे अन्नका बचाव है। उत्तम तो यही तीन हैं दूध पीकर या फल खाकर या दूध-फलपर ही रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलाहारसे कितना लाभ है, शरीर कितना हलका रहता है, मन कैसा शुद्ध रहता है, इस विषयपर बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं। लोगोंने अपने अनुभव भी बताये हैं। इतना कहना यथेष्ट होगा कि परमार्थपथमें हलका भोजन, सात्त्विक पदार्थ और जल्दी पचनेवाली वस्तुएँ अत्यन्त ही सहायक हैं, और दूध-फलसे हलका, सात्त्विक और जल्दी पचनेवाला पदार्थ दुनियामें कोई भी नहीं। अतः परमार्थपथके पथिकको फलाहार बहुत ही उपयुक्त हैं।

दूसरी विधि है मौनकी। जब निरन्तर मुखसे भगवन्नामोंका जप और कीर्तन ही होता रहेगा तब उसमें बोलनेकी गुंजाइश ही कहाँ है। मौन तो अपने आप ही हो जायगा। मौनके भी तीन भेद हैं—एक तो संकेतशून्य मौन, दूसरा संकेतसहित मौन और तीसरा वाणीसे न बोलनेका मौन। संकेतशून्य तो ऐसा कि न किसीकी ओर देखना, न बोलना और न किसी भी प्रकारका संकेत—इशारा करना। किसीने दे दिया तो खा लिया, न दिया तो माँगना नहीं, उढ़ा दिया तो ओढ़ लिया नहीं तो जैसे हैं वैसे ही पड़े रहे। ऐसे मौनको या तो अत्यन्त विरक्त ही कर सकते हैं जिन्हें शरीरकी कुछ भी परवा नहीं, अथवा अत्यन्त सम्पन्न ही कर सकते हैं जिनके सुयोग्य सेवक ठीक समयपर यन्त्रकी तरह चुपचाप उनकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकते हैं। यह हम-जैसे साधारण लोगोंकी शक्तिके बाहरकी बात है।

संकेतसहित मौन उसे कहते हैं जो अत्यन्त आवश्यक कार्योंको संकेतसे समझा दिया और अपना मौन रहे। तीसरा वाणीसे न बोलनेका मौन है, जिसमें लिखकर संकेतसे तरह-तरहकी बातें कर ली जाती हैं। यह भी अच्छा है, कुछ-न-कुछ वाणीका संयम तो होता है परन्तु इसकी गणना मौनमें नहीं है। फिर निरन्तर राम-नामका जापक न तो लिख ही सकता है और न बहुत अधिक इशारे ही कर सकता है। लिखनेमें जप नहीं हो सकता और जपमें सामान्य खाने-पीनेके संकेतको छोड़कर इशारे भी नहीं हो सकते। अतः सर्वोत्तम यही है कि मुखसे निरन्तर जप-कीर्तन होता रहे। दूसरी बात जीभसे निकले ही नहीं।

तीसरी विधि है जपकी। जप तीन प्रकारका है—मानसिक, उपांशु और वाचिक। मानसिक जो मनसे किया जाय; उपांशु, जिसमें केवल ओष्ठ हिलते रहें, और वाचिक जो जरा जोरसे बोला जाय जिसे पासमें बैठा मनुष्य सुन सके। इन तीनों प्रकारके जपोंकी संख्या रखनी पड़ती है। बिना संख्याका जप निष्फल बताया गया है। किन्तु जोर-जोरसे अकेला या बहुत-से आदमियोंके साथ मिलकर जो भगवन्नामोंका उच्चारण किया जाता है उसे कीर्तन कहते हैं। उसमें संख्याकी विधि नहीं। चाहे जबतक करते रहो। कलियुगमें इसी कीर्तनकी महिमा विशेष है। अकेले-दुकेले, सबके साथ मिलकर, गाकर-बजाकर, नाचते हुए, रोते हुए, गद्‌गद कण्ठसे, मनसे, बे-मनसे कैसे भी नामोंका कीर्तन या जप होना चाहिये। शुक्राचार्यजीने भागवतमें कहा है—'हे प्रभो! आपके नाममें इतनी शक्ति है कि यज्ञादि कर्मोंमें, विधिमें जो भी कुछ न्यूनता रह जाती है, वह सब आपके नाम लेनेसे पूर्ण हो जाती है।' इसलिये जप-कीर्तन कैसे भी हो मुखसे भगवन्नामोंका उच्चारण होना चाहिये।

अब प्रश्न यह है कि गोस्वामीजीने छः महीनेकी ही अवधि क्यों बाँध दी। रामनामका जप तो जितने ही अधिक समयतक किया जाय उतना ही उत्तम है। छः महीनेमें ही 'सकल सुमंगल सिद्धि' की बात क्यों कह दी? असली बात यह है कि रामनामको तो मरते समयतक लेना चाहिये और सभी महापुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त समयतक निरन्तर रामनामकी रट लगाते रहे हैं। बल्कि यहाँतक कहा गया है कि अन्त समयमें रामनाम न आनेसे सद्गति ही नहीं होती। अतएव यह न समझना चाहिये कि छः महीनेतक रामनाम जपकर फिर इससे एकदम अलग ही हो जाना चाहिये। अलग हो गये तो जप करनेसे लाभ ही क्या; जप, तप, पूजा-पाठ सब अन्त समयके ही लिये किया जाता है। किन्तु जिसने छः महीनेतक निरन्तर मौनी-फलाहारी रहकर जप किया है उसकी जिह्वा कभी रामनामके रसको छोड़ ही नहीं सकती। जिसने मिश्रीका स्वाद चख लिया है और मनों मिश्री उसके सामने पड़ी है, वह फिर काले गुड़को क्यों खाने लगा। उसकी जिह्वा तो मिश्रीको छोड़कर दूसरे पदार्थकी इच्छा ही न करेगी। छः महीनेकी अवधि तो विश्वासके लिये रक्खी गयी है वह भी तीव्र वैराग्यवालोंके लिये—अत्यन्त उत्कण्ठावालोंके लिये। जिन्होंने अपना तन, मन सर्वस्व श्रीप्रभुके ही पाद-पद्मोंमें अर्पण कर दिया है, जो प्रभुको छोड़कर और कुछ सोचते या कहते ही नहीं जिनका जीवन सर्वतोभावेन उन्हींका हो लिया है उनके लिये छः महीनेका नियम नहीं है। यह तो अत्यन्त उत्सुक साधकोंके लिये विधि है।

अत्यन्त दुःखमें, अत्यन्त जिज्ञासामें और धनकी कामना होनेपर अत्यन्त गरीबीमें यह इच्छा होती है कि कोई कैसा भी उग्र साधन मिल जाय जिससे हमारी मनोकामना पूर्ण हो जाय। धनके लिये लोग कैसे-कैसे घोर यत्न करते हैं। कोयलोंकी खानमें घुस जाते हैं। ज्येष्ठ-वैशाखकी गर्मीमें दहकते हुए इञ्जनके सामने आठ-आठ घण्टे खड़े रहते हैं। एक पैसेके लिये बढ़ती हुई गङ्गा-यमुनामें डुबकी लगाते हैं, इतने कठिन-कठिन उपाय करनेपर भी पेटकी ज्वाला नहीं बुझती। यदि अर्थके ही लिये सच्चे हृदयसे भगवान्‌की शरण ली जाय तो अर्थ तो मिलेगा ही, भगवान् उसे अपना भी लेंगे। कामनासे, बिना कामनासे या मोक्षकी कामनासे कैसे भी भगवान्‌की शरण जानेमें कल्याण ही है। अतः दुःखकी तीव्रतामें, परमार्थकी जिज्ञासाकी तीव्रतामें या धनकी इच्छाकी तीव्रतामें सच्चे हृदयसे भगवान्‌की दयालुतापर विश्वास करके जो इस प्रयोगको करेंगे, उनकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।

अत्यन्त आर्त, अत्यन्त जिज्ञासु और अत्यन्त अर्थार्थी ही ऐसे विधिपूर्ण अनुष्ठानोंमें प्रवृत्त होंगे। अत्यन्त ज्ञानीको क्या पड़ी है वह तो इन सबसे मुक्त है, किन्तु कभी-कभी अत्यन्त ज्ञानी भी ऐसे अनुष्ठानोंमें प्रवृत्त होते देखे गये हैं। श्रीनारदजीसे बढ़कर ज्ञानी कौन होगा। जब शौनकजीने सुना कि वे भी श्रीमद्भागवतकी सप्ताहकी विधिमें प्रवृत्त हुए तो उन्होंने आश्चर्यके साथ सूतजीसे पूछा—

लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च।
विधिश्चवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह॥

'निरन्तर घूमने-फिरनेवाले और लोकोंके विग्रहमें निरत उन नारदजीकी ऐसे विधिविधानपूर्ण अनुष्ठानोंमें प्रीति कैसे हुई और सनकादि महर्षियोंके साथ उनका सङ्गम कैसे हुआ, इसके उत्तरमें अन्तमें सनकादि ऋषियोंने ही स्वयं नारदजीसे कहा है—

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि।
घटते कृष्णदासस्य भक्तेः स्थापनता सदा॥

'आप इतने विवेकी और भक्त होकर भी जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी जरठता दूर करनेके लिये इतने व्याकुल हो रहे हैं सो यह बात आपके लिये कुछ आश्चर्यकी नहीं है। क्योंकि सदा सब स्थानोंमें भक्तिकी स्थापना करना ही श्रीकृष्णके दासोंका मुख्य कर्तव्य है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे यही सिद्ध हुआ कि अत्यन्त ज्ञानी भक्त भी (अपने लिये नहीं तो लोककल्याणके ही निमित्त सही) ऐसे अनुष्ठानोंमें प्रवृत्त होते हैं। इसलिये जबतक कैसे भी हो हृदयमें तीव्र उत्कण्ठा न होगी तबतक ऐसे कठिन अनुष्ठानोंमें प्रवृत्ति ही न होगी। तीव्र उत्कण्ठा होनेपर जो श्रद्धापूर्वक एकाग्र चित्तसे इनमें प्रवृत्त होंगे, उनकी छः महीनेमें अवश्य ही मनोकामना पूर्ण होगी, इसमें मैं साक्षी नहीं हूँ। श्रीवाल्मीकिजीके ही अवतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी इसमें प्रमाण हैं।

अत्यन्त आर्तता, अत्यन्त जिज्ञासा और अत्यन्त अर्थार्थीपन ये तीनों बातें हमें श्रीध्रुवजीके चरित्रमें मिलती हैं। अपने भाई उत्तमको राजाकी गोदमें देखकर उनकी भी वहाँ बैठनेकी इच्छा हुई, क्योंकि उत्तमकी तरह उनके भी वे पिता थे। इसपर उनकी सौतेली माँने कहा—'बेटा! तैंने इतने पुण्य कहाँ किये हैं जो तू इस गोदमें बैठ सके। मेरे कोखसे पैदा हुआ होता तब तू इसमें बैठनेका अधिकारी होता। जा भगवान्‌का भजन कर तब कहीं इसका अधिकारी होगा।'

सौतेली माताने ये बातें कुछ उपदेशकी नीयतसे बालक ध्रुवसे नहीं कही थी। उसने बच्चेका अपमान किया था। व्यंग करके यह कहा था कि तू गोदमें चढ़नेका साहस मत कर, नहीं तो दूसरा व्यवहार होगा।

राजपुत्रका इससे बढ़कर क्या अपमान होगा कि वह अपने सगे पिताकी गोदमें भी न चढ़ सके। क्षत्रियके बच्चेकी आँखोंमें खून उतर आया। कोई उसे गोलीसे मार देता तो भी उसे इतना दुःख न होता।

'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥'

अपमानजन्य दुःखके घूँटको मुखमें भरे हुए वह अपनी प्रेममयी माताके समीप आया। उसने जिज्ञासु बनकर मातासे पूछा—'क्या भगवान्‌की आराधनासे ही मैं राजाकी गोदमें बैठनेका अधिकारी हूँगा?'

माताने डबडबाई आँखोंसे रोते-रोते कहा—बेटा! तेरी सौतेली माताने जो भी कुछ कहा ठीक ही कहा। यदि अपने भाई उत्तमकी तरह तू भी राज्यासनपर बैठना चाहता है, तो विष्णुभगवान्‌की निष्कपट भावसे आराधना कर। एक बात और है, तू मनमें अपनी सौतेली माताके प्रति मत्सरताके भाव मत लाना। उसने किसी भी भावसे क्यों न कहा हो, बात तो उसने ठीक ही कही—

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्व-
मुक्तं समात्राऽपि यदव्यलीकम्।
आराधयाधोक्षजपादपद्मं
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा॥

पुत्रके जिज्ञासु होनेपर माताने सौतेली माके वचनोंका समर्थन किया। किन्तु उसने तो बुरी नीयतसे, अपमान करनेकी नीयतसे कहा था। इससे बालकको उसके प्रति क्रोध और वैर होना स्वाभाविक ही था और हुआ भी ऐसा ही। बालक रूठकर चला आया। माताने कहा—'इस उपायसे यदि तू उत्तमका-सा राज्यासन चाहता है तो जरूर मिल जायगा, किन्तु भगवान्‌की शरणमें जानेवालेको कपट और मत्सरता दो छोड़नी पड़ती हैं। सच्चे हृदयसे शत्रुके प्रति भी द्वेषभाव न रखकर जो जिस भावसे भगवान्‌की आराधना करेगा उसका वह कार्य अवश्य सिद्ध हो जायगा। इसीलिये माता फिर कहती है—

तमेव वत्साश्रयभृत्यवत्सलं
मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्यभावे निजधर्मभाविते
मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥

'हे वत्स ! मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनके चरणकमलोंका अन्वेषण करते हैं, उन भक्तवत्सल प्रभुकी शरणमें तू जा और अपने धर्ममें स्थिर रहकर अनन्यभावसे उन श्रीहरिको मनमें धारण करके भजन कर ।'

पहले श्रीध्रुवजी आर्त थे, आर्त होनेसे माताके पास जिज्ञासु होकर आये । माताने जिज्ञासुको यथार्थ उपदेश किया । इससे पहले कभी स्वप्नमें भी उन्हें राज्य पानेकी इच्छा नहीं उठी थी । इस अपमानने और माताके उपदेशने उन्हें राज्य-प्राप्तिकी इच्छा पैदा कर दी । अब वे अर्थार्थी बनकर प्रभुकी शरणमें चले । सच्ची जिज्ञासावाले प्रभुकी शरणमें प्राप्त होनेवाले साधकको गुरु स्वयं खोज लेते हैं, उन्हें गुरुकी खोज नहीं करनी पड़ती । श्रीनारदजीने उन्हें मन्त्रोपदेश दिया ।

उन्होंने क्रोध, मत्सर छोड़कर अनन्यभावसे मधुवनमें जाकर केवल छः महीने उपासना की । बड़ा कठिन तप किया । पहला महीना तीन-तीन दिनका अन्तर देकर बेर और कैथा खाकर बिताया । दूसरे महीनेको छः-छः दिनका उपवास करके सूखे पत्ते खाकर काटा । तीसरे महीनेको नौ-नौ दिनका उपवास करके केवल जल पीकर बिताया । चौथे महीने बारह-बारह दिनका उपवास करके एक समय वायु पीकर रहे थे । बाकी समय श्वास रोककर ध्यानमें मग्न रहते थे । पाँचवें महीने प्राणको रोककर बिल्कुल खम्भेकी तरह खड़े रहे । छठे महीने प्राणोंको रोककर एक पैरके अँगूठेपर खड़े रहे ।

बस, छः महीने बाद भगवान् प्रकट हुए और उनकी मनोकामना पूर्ण की । इस लोकमें राज्य दिया और परलोकमें इतना ऊँचा पद दिया कि जिसे आजतक किसीने पाया ही नहीं । अन्तमें भगवत्-स्वरूप तो उन्हें होना ही है । सच्ची लगनसे अनन्यभावसे करनेसे छः महीनेमें उन्होंने वह पद प्राप्त कर लिया जिसे करोड़ों वर्षोंमें योगी योग, याग, जप, तपसे नहीं प्राप्त कर सकते ।

अब शंका यह होती है कि उन्होंने तो इतना घोर तप किया था, गोस्वामीजी तो केवल फलाहार करके मौनी रहकर राम-नाम जपनेको ही कहते हैं । इससे इतनी जल्दी सिद्धि कैसे होगी ? सो इसका उत्तर यही है, कि यह सत्ययुगकी बात थी । सत्ययुगमें ध्यान ही प्रधान था । इस कलियुगमें तो केवल श्रीकृष्ण-कीर्तनसे ही वह सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं जो पहले तप, योग और ध्यानसे प्राप्त होती थीं । तभी तो भगवान् व्यासदेव स्थान-स्थानपर पुकार-पुकारकर कह रहे हैं—

यत् फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत् फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्तनात् ॥

इससे बढ़कर और क्या प्रमाण होगा ? यदि तुम सच्चे हृदयसे प्रभुको पाना चाहते हो, यदि श्रीकृष्ण-दर्शनकी तुम्हें सचमुच जिज्ञासा है, यदि इस संसारको सचमुच तुम दुःखमय समझते हो, यदि प्राण-प्यारे प्रभुकी प्राप्तिके लिये सचमुच तुम्हारे प्राण तड़प रहे हैं, यदि तुम भगवान् श्रीरामको इन चर्मचक्षुओंसे देखनेके लिये लालायित हो, तो गोस्वामी तुलसीदासजीके वचनोंपर विश्वास करो । छः महीने क्या बात है ? किसीसे झगड़ा हो गया, छः महीने जेल ही चले गये । तब कौन काम सँभालता है । बीमार ही पड़ गये, वर्षों वैद्य-डाक्टरोंको घरकी पूँजी लुटानी पड़ती है । इसमें तुम्हारा बिगड़ता ही क्या है । कोई खर्च नहीं, कुछ देना नहीं । राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम जपो और छः महीने जगत्‌की ओरसे आँख मींच लो। कैसे नहीं 'सकल सुमंगल सिद्धि' तुम्हारे करतल आवेंगी।

समय बड़ा खराब है, एकान्तमें भजन-साधन और भी कठिन है; निद्रा, तन्द्रा, आलस्य और भाँति-भाँतिके विघ्न एकान्तमें आते हैं। यदि सच्ची लगन-वाले, भगवान्‌को चाहनेवाले उत्साही और प्रेमी दस-पाँच भक्त मिलकर इस साधनको करें तो शीघ्र सफलता-की सम्भावना है। तभी तो भगवान्‌ने एक भक्त न कहकर बहुवचन कहा है—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

मेरे बहुत भक्त जहाँ जाकर कीर्तन करते हैं वहाँ मैं रहता हूँ। यदि सचमुच ऐसी सच्ची लगनके साधक मिल जायँ तो कोई भी कार्य कठिन नहीं।*

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[गताङ्कसे आगे]

यहाँ कहा है 'अस्य अभयं मया दत्तम्'। 'दा' धातुका प्रयोग होनेपर 'सम्प्रदाने' चतुर्थीका होना अनिवार्य है। अतएव 'अस्मै अभयं मया दत्तम्' 'इसके लिये मैंने अभय दे दिया' यों कहना चाहिये, फिर 'अस्य' क्यों? ठीक है। दानका अर्थ है 'स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वक परस्वत्वा-पादन'। अर्थात् 'दी जानेवाली चीज़परसे अपना स्वत्व हटाकर, जिसे दी जाती है उसका स्वत्व स्थापित करना।' हमने गाय ब्राह्मणको जिस समय दी उसी समय उसपरसे हमारा स्वत्व हट गया और ब्राह्मणका स्वत्व (अधिकार) हो गया। इसलिये यह दान कहलाता है। किन्तु धोबीको कपड़े हम जिस समय धुलनेके लिये देते हैं उस समय उन कपड़ोंसे हम अपना स्वत्व नहीं हटाते, न धोबीको स्वामित्व देते हैं, धोकर वापस देनेके लिये देते हैं। दो दिन भी देर हो जाती है तो तक़ाज़ेपर तक़ाज़ा भेजते हैं। ऐसी हालतमें धोबीको कपड़ोंका देना 'दान' कौन कहेगा? अतएव वहाँ सम्प्रदानमें चतुर्थी भी नहीं होती 'रजकस्य वस्त्रं ददाति' यही बोला जाता है।

गीताने भगवान्‌की तरफ़ अभिमुख होनेवाले अधिकारियोंमें प्रधानतया चारको गिनाया—'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च'। उनमें विभीषण पहली कोटिमें आते हैं। श्रीरामचन्द्रके गुणश्रवण करनेके कारण वह बहुत काल पूर्वसे ही उनमें सद्‌बुद्धि रखते थे। उन्हें साधारण नहीं अलौकिक महापुरुष समझते थे। उनको मालूम था कि यह पराक्रम मानुष नहीं देवविभूति है। इसीलिये रावण और इन्द्रजित्‌का लोकविख्यात, प्रत्यक्ष दृष्ट पराक्रम जानकर भी उन्होंने कहा था—

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम्।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली॥

'हाथी, घोड़े, रत्नोंसहित इस लङ्काको जबतक श्रीरामचन्द्र अपने बाणोंसे नष्ट नहीं करते उसके पहले ही जानकीको दे दीजिये'। किन्तु दुर्दैवदावानलसे दग्ध हुए रावणने इस बातपर ध्यान नहीं दिया। प्रत्युत विभीषणको घरसे निकल जानेकी भर्त्सना की कि—

न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना।

भगवान् श्रीरामचन्द्रके गुणोंने पहले ही इनके हृदयमें स्थान कर लिया था। इधर इस तिरस्कारने और भी हृदयभूमिका शोधन कर दिया। अहर्निश कोसलेन्द्र

* भाई श्री श्रीनिवासदासजी पोद्दारकी प्रेरणासे ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराजने अपनी देख-रेखमें झूसी, प्रयागमें छः महीनेके लिये ऐसा अनुष्ठान कराना स्थिर किया है। यदि दस-बारह उत्साही और सच्चे साधक मिल गये तो माघके अन्तिम सप्ताहमें अनुष्ठान आरम्भ करनेका विचार है। जो सच्चे साधक भगवत्प्रीत्यर्थ छः महीनेतक मौनी फलाहारी रहकर सच्ची लगनसे निरन्तर महामन्त्रके अनुष्ठानमें लगे रहना चाहते हों वे श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी हंसतीर्थ, पोस्ट झूसी (इलाहाबाद) के पतेपर पत्र लिखें। कुछ सज्जन उन्हें मिल भी गये हैं।—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचन्द्रकी भावना रहने लगी। वह चाहते थे कि अवश्यावश्य नष्ट होनेवाली इस लङ्कासे बाहर निकल जाऊँ। दुर्जनोंके निरन्तर संसर्गसे किसी तरह भी बच जाऊँ। परन्तु सगे भाईका स्नेह इन्हें रोके हुए था कि किसी तरह भी इसे दुष्कार्योंसे बचाकर अच्छे रास्तेपर ले आऊँ, जिससे इसके प्राण बच जायँ। परन्तु जब देखा कि यह दैवकी ही प्रेरणा है कि रावण अब नष्ट होनेसे नहीं बच सकता। उसपर भी सब लङ्काभरने विभीषणका तिरस्कार किया। 'दूसरा होता तो इसी क्षण तुझे मार देता। कुल-कलंक! तुझको धिक्कार है' कहकर रावणने इन्हें ठुकराया। इन्होंने देखा अब अपना बस नहीं। न लोकके अनुसार मैं दोषी ही हूँ। श्रीरामके समीप चलनेका यही अवसर है। बस, अङ्कुररूपसे स्थित भगवान्‌की भक्ति इनके हृदयमें लहलहा उठी। यह उसी आन्तरिक वेदनाको लिये 'आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः' 'लक्ष्मणसहित श्रीरामकी सेवामें उपस्थित हुए।'

अब आप ही देखिये—श्रीरामचन्द्रका पक्ष लेनेके कारण किसीको पीड़ा हो, उसका घोरातिघोर अपमान हो, और अन्तर्यामी श्रीरामचन्द्र जानते हुए भी उसकी उपेक्षा करें, उसको भयाभिभूत रहने दें, क्या यह सम्भव है? नहीं, नहीं, जैसे ही रावणने—'अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत्' इत्यादि भय देनेके वाक्य विभीषणके प्रति कहे, उसी समय त्रिलोक-साक्षी भगवान्‌ने आगे बढ़कर भयके जवाबमें अभय दे दिया। उसी समयसे अभय विभीषणकी मुट्ठीमें आ गया। अब अकेला रावण ही क्या त्रिभुवन भी उसका अनिष्ट नहीं कर सकता। जिस समय अजामिलका काल आया और यमदूतोंने पाशमें डालकर उसको डराया उसी समय 'नारायण' यह नाम लेते ही भगवान्‌के पार्षद पहुँचे। उसको केवल उसी भयसे नहीं, सदाके लिये यावन्मात्र भयोंसे मुक्त कर दिया।

भगवद्भक्त प्रह्लादको हिरण्यकशिपु जैसे ही खड्ग लेकर भरी सभामें मारनेको तैयार हुआ और गर्जना करके बोला कि बता अब तुझे बचानेवाला कौन है। उसी क्षण, अस्थानसे भी प्रकट होकर भगवान् स्वयं पहुँचे और प्रह्लादकी रक्षा की। जहाँ-जहाँ भगवान्‌के भक्तोंको पीड़ा दी गयी और उनको डराया गया, वहाँ-वहाँ भक्त तो पीछे चेते हों परन्तु भक्तोंके वशीभूत भगवान् पहले पहुँचे हैं, और उन्हें इस तरह निर्भय कर दिया है कि सब भयोंका एक भय मौत भी उनसे डरती है—'मृत्युरस्मादपैति'। फिर भगवान्‌के कारण ही जिन्हें भय दिया जा रहा हो ऐसे विभीषणको भला भगवान् भूल जायँगे? नहीं। उसी क्षण अभय उनके सुपुर्द कर दिया गया। विभीषणके लिये जिस अभय देनेकी बातको आप अब उठा रहे हैं वह बहुत काल पहलेसे ही उनका हो चुका। भगवान्‌का कब्जा उसपरसे हट गया। अतएव भगवान् कहते हैं यह अभय तो मैं पहले ही दे चुका, उसका स्वत्व पहले ही उसपर हो चुका, अब दान कैसा? इसीलिये सम्प्रदानमें होनेवाली चतुर्थी भी नहीं हुई। किन्तु पहलेसे ही हो चुके हुए इनके परस्पर सम्बन्धको लक्ष्य करके 'सम्बन्धे षष्ठी' की गयी है। इसीलिये यहाँ कहा है 'अस्य अभयं मया दत्तम्'।

अनन्तशक्ति भगवान्‌की शक्ति भी भक्तकी इच्छाके आगे कुण्ठित होती हुई देखी जाती है। भगवान् चाहते कुछ हैं और भक्तकी इच्छा यदि दूसरी है तो भक्तकी इच्छाके अनुसार ही भगवान्‌को चलना पड़ता है। दुर्वासाको जिस समय सुदर्शनचक्रने लपकाया उस समय भगवान श्रीकृष्णने स्पष्ट कह दिया कि—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।

भगवान् भक्तकी मुट्ठीमें हैं। अब आप ही समझ लीजिये कि भगवान्‌की भक्ति हो जाना कितना ऊँचा अधिकार है। त्रिलोकनायक भगवान्‌को भक्तके इङ्गितके अनुसार नाचना पड़ता है। अतएव भगवान्‌की भक्ति हर एकके भाग्यमें नहीं। भगवान् सब कुछ दे देते हैं परन्तु भक्ति देते समय बड़ा विचार करते हैं। स्वर्ग, सार्वभौम राज्य, ब्रह्माका अधिकार, और तो क्या मोक्षतक दे देते हैं परन्तु भक्ति नहीं देते। परमहंस भी भक्तिके लिये तरसते हुए भगवान्‌की कंजूसी वर्णन करते हैं कि—

मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स न भक्तियोगम्।

परन्तु जिस भाग्यवान्‌के ललाटमें भगवान्‌की भक्ति लिखी होती है वह त्रिभुवनमें धन्य है। जिस समय उसका जन्म होता है—गन्धर्व, विद्याधर, देवतातक उसके बड़े भाग्यकी सराहना करते हैं। अनन्त पुण्य करनेवाली माताएँ तक भक्त पुत्रके लिये तरसती हैं—

सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरैं तुलसी सो सुत होय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीषण भूरिभाग्य थे जिनके हिस्सेमें भगवान्‌की भक्ति आयी थी। रावण और कुम्भकर्ण पुलस्त्यकुलके जैसे प्रत्यक्ष पाप थे वैसे ही विभीषण पूर्ण पुण्योदय थे। महर्षि विश्रवाने हर्षगद्‌गद होकर कहा था कि—

पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च न संशयः॥

'तुम्हारा सबसे छोटा जो पुत्र होगा वह धर्मात्मा होगा, मेरे वंशके योग्य होगा, इसमें सन्देह नहीं।' जिस समय उनका जन्म हुआ देवताओंतकने बधाई बाँटी। देवलोकमें नौबतखाने बैठे। पुष्पवर्षा हुई—

तस्मिन् जाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह।
नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तथा॥

उनकी धर्मरुचि और भगवद्भक्तिको क्या कहा जाय, वह जनककी तरह सर्वदा अपने अन्तःकरणमें भगवान्‌की तरफ अन्तर्मुख रहते थे। प्रसन्न होकर ब्रह्माने कहा कि—'वर माँगो' धर्मात्मा विभीषणने उसके उत्तरमें क्या माँगा?

प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे ननु सुव्रत।
परमापद्गतस्यापि धर्मे मम रतिर्भवेत्॥

'हे भगवन्! आप प्रसन्न हुए हैं और मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही दीजिये कि घोरातिघोर आपत्ति आनेपर भी मेरी मति धर्ममें रहे।' उनके जन्म होते समय देवता ही नहीं, भगवान्‌तक प्रसन्न हुए थे कि मेरे एक भक्तका जन्म हो रहा है। जन्मसे ही भगवद्भावना उनके साथ थी। कहिये—सन्मार्गमें चलनेवाले साधारण मनुष्यतकको जब निर्भय माना जाता है तब विभीषण-सरीखे भाग्यवानोंके भाग्यमें अभय न होगा? नहीं-नहीं, अभय तो भगवत्सेवकोंके साथ-साथ चलता है—

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य
पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावा-
द्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः॥

'इस संसारमें भगवच्चरणारविन्दका सेवन ही ऐसा है कि 'अकुतश्चिद्भयम्' किसी तरफसे भी जिसपर भय नहीं आ सकता, ऐसा है। देहादि असत् पदार्थोंमें जो मनुष्यको आत्मबुद्धि रहती है उससे जहाँ उसको उद्वेग हुआ कि उसका भय सर्वथा निवृत्त हो जाता है।' आहा, निर्भयताका क्या अव्यभिचारी कारण बतलाया है। मनुष्य जबतक देह, घर, स्त्री, पुत्र आदिमें आसक्त रहता है, अहन्ता-ममतासे ग्रस्त रहता है तभीतक तो उसपर चारों तरफसे वार होते हैं। जहाँ उसने इन सबको मिथ्या समझकर सत्यतत्त्वकी ओर मुख किया, भगवच्चरणारविन्दका आश्रय लिया, उसी समय 'निवर्तते भीः' भय सदाके लिये दूर हो जाता है। भगवच्चरणारविन्दोंका आश्रय लेनेवालोंके पास भला भय आ सकता है? सब भयोंका महाभय तो संसारचक्रका भय है जिससे बाहर निकल जाना सम्भव ही नहीं। इस भयसे देवता, ऋषि-महर्षि ही क्या बड़े-बड़े महाभागवत भक्ततक घबराते हैं।

भगवान् नृसिंहकी उग्र मूर्तिको देखकर बड़े-बड़े देवतातक काँप उठे थे। और तो क्या, श्रीलक्ष्मीजीने भी भगवान्‌का—

अदृष्टाऽश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शङ्किता।

'ऐसा भयानक रूप न कभी देखा था न सुना था। अतएव वे भी डरके कारण न जा सकीं।' किन्तु महाभक्त प्रह्लादको उससे भी भय न हुआ। वे कहते हैं—'हे भगवन्! त्रिलोकीको भय पैदा करनेवाले आपके इस रूपसे मैं नहीं डरता। डरता हूँ इस भयानक संसारचक्रसे'—

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात्।

× × ×

त्रस्तोस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनात्.....।

इस भयके मारे ब्रह्मादि देवता तक काँप उठते हैं किन्तु वह भयानक भय भी भगवत्सेवकोंके पास नहीं आने पाता—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद्विपदां न तेषाम्॥

'जो भगवच्चरणारविन्दरूप नौकाका आश्रय लेते हैं उनके लिये यह भवसागर बत्सके खुरके समान हो जाता है। 'परं पदं तेषां पदं भवति' परमपद उनका स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। विपत्तियोंका जो स्थान है वह उनका स्थान कभी नहीं होता।' भला ऐसोंके लिये कहीं अभय खोजने जाना पड़ता है? नहीं-नहीं, अभय उनका है। इसी आशयसे भगवान्‌ने भी यहाँ कहा है—'अभयम् अस्य', अभय तो इस विभीषणका ही है जो 'मया दत्तम्', मैंने अपने हाथसे नाममात्रके लिये दे दिया है।

जिन भक्तोंको इतना अधिकार मिल गया है कि उनके लिये भवाम्बुधि भी गोखुरवत् है, भला उनके पास कोई भय, ताप, दुःख आ सकता है?

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा-
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः॥

'भगवच्चरणारविन्दकी नखचन्द्रिकासे जिनके सब ताप दूर हो चुके हैं उनके हृदयमें फिर सांसारिक तापादिका प्रसङ्ग हो सकता है? चन्द्रके उदय होनेपर कभी किसीको सूर्यके तापने सताया है?' मनुष्य जिस समय भगवान्‌का स्मरण सच्चे मनसे करता है और भगवान् उसके हृदयमें आ विराजते हैं उस समय उसके सब पाप-ताप दूर हो जाते हैं। जिन भगवान्‌के नामस्मरणमात्रसे अजामिल-सरीखे पापी भी तर जाते हैं, भला वह भगवान् साक्षात् हृदयमें आ विराजें और पाप-ताप फिर भी उसे सताते ही रहेंगे? नहीं-नहीं, जो अनन्यभावसे भगवच्चरणारविन्दका आश्रय लेते हैं, हृदयमें संनिविष्ट हुए परात्पर भगवान् उनके उन सब विरुद्ध कर्मोंको भी दूर कर देते हैं जो ज्ञानाज्ञानमें बन पड़े हों—

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चि-
द्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः॥

आज विभीषणसे बढ़कर भाग्यवान् कौन होगा जिनके हृदयमें स्वयं भगवान् विराजे हैं। धर्मानुरोध और भाईके कर्तव्यानुसार जिस समय उन्होंने रावणको हितकी सलाह दी और उसके बदलेमें उसने क्रोध ही नहीं, उनका घोरापमान किया उस समय भगवान्‌की स्मृति उनके हृदयमें और भी उज्ज्वल हो उठी। वह पहलेही-से विरक्त-से तो रहते ही थे, इस समय सब कुछ छोड़कर भगवान्‌की तरफ चल पड़े। भगवान्‌का आश्रय लेनेके सिवा उन्हें अब कुछ नहीं दिखायी दे रहा था। अहा! जो भगवान्‌की शरणमें जा रहा है उससे बढ़कर पुण्यात्मा और भाग्यवान् कोई हो सकता है? देवतातक उसके भाग्यकी बड़ी श्लाघा और भीतर-भीतर ईर्ष्या करते हैं। जिस समय शरणार्थी भगवान्‌की शरणमें जाने लगता है उस समय उसका एक-एक पैंड पवित्रतम और दूसरोंके लिये पावन हो जाता है। भक्तिगद्गद होकर भावुक कहते हैं 'पग-पग होत प्रयाग'

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां
न किङ्करो नायमृणी न राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम्॥

'वह भाग्यवान् देवता, ऋषि, पितर आदि सबसे अनृण हो जाता है, किसीका फिर सेवक नहीं रहता जो सब कुछ छोड़कर शरणागतवत्सल भगवान्‌के शरण होता है।' कहिये—आज विभीषणसे बढ़कर कोई पुण्यात्मा और भाग्यवान् होगा? फिर ऐसा पुण्यात्मा भी किसीका मुहताज होगा, भय उसे फिर सतायेंगे! नहीं-नहीं, जिस समय उनकी बुद्धि भगवान्‌के अभिमुख हुई उसी समय चारों पुरुषार्थ उनके हो चुके। फिर अकेला अभय (मोक्ष) ही कहाँ रहा? वह तो उसी समय उनका हो चुका था। इसीलिये भगवान् श्रीरामचन्द्र भी यहाँ कहते हैं 'अस्य अभयं मया दत्तम्' 'अभय तो इसका पहले ही हो चुका था' अब अपनी तरफसे रस्म पूरी करनेके लिये 'मया दत्तम्' 'मैंने दे दिया है।'

भगवत्कृपाजनित शुभ संस्कारोंके बिना किसीके भाग्यमें भक्ति नहीं होती। परमहंसोंका कहना है कि ज्योतिष्टोमयाजी, अश्वमेधयाजी, अब्भक्ष-वायुभक्ष होना सहज है किन्तु भगवद्भक्त होना भगवान्‌की कृपाके बिना नहीं हो सकता। विभीषण जन्मसे ही संस्कारी थे। महर्षि वाल्मीकिने स्थान-स्थानपर उन्हें 'विभीषणस्तु धर्मात्मा' कहा है। सज्जन वह लङ्कासदृश निशिचर-निवासमें भी 'जिमि दसननि महँ जीभ बिचारी' की तरह रह रहे थे। हृदयमें भगवद्भक्ति रखते हुए भी रावणके कारण उसे प्रकट करना उचित नहीं समझते थे। वह सच्चे भक्त थे। उन्हें ज़मानेको दिखानेकी क्या ज़रूरत थी। फिर ऐसे अवसरपर, जब कि लंकानायक रावणके हृदयमें नाहक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असन्तोष हो। गोस्वामीजी तो यहाँतक कहते हैं कि वह इस विषयमें रावणका भी अनुरोध नहीं रखते थे। वह अपने घरमें पूर्ण भक्तकी रीतिसे रहते थे। उनके राज-महलमें उपासनाके लिये भगवान्‌का मन्दिर अलग बनाया हुआ था। उनके मकानपर राम-नाम अङ्कित थे। श्री-तुलसीके पेड़ चारों तरफ लग रहे थे—

राम-नाम अंकित गृह, सोभा बरनि न जाय।
नव तुलसिका बृन्द तहँ देखि हरष कपिराय॥

ऐसे जन्मसिद्ध भगवद्भक्तपर भगवान्‌का अनुग्रह आज हुआ है, क्या यह माना जा सकता है? भगवान्‌के अनुग्रह बिना जब मनुष्य भगवान्‌के अभिमुख ही नहीं हो सकता तब पहलेहीसे उनपर भगवान्‌का अनुग्रह था, यह अवश्य मानना पड़ेगा। आहा, जब उनपर भगवान्‌का अनुग्रह है और वह भगवद्भक्त हैं तब उनके लिये अब कमी क्या रह गयी? सांसारिक प्रतिबन्ध तभीतक रहते हैं जबतक मनुष्य सांसारिक पदार्थोंमें ममता रखकर आसक्त रहता है। जहाँ वह सब कुछ छोड़कर भगवान्‌के अभिमुख हुआ कि वे सब प्रतिबन्धक उससे कोसों हट जाते हैं—

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनः॥

'राग-द्वेषादि चोर तबतक उसके पीछे लगे रहते हैं, यह घर भी तबतक उसके लिये क़ैदखाना रहता है और मोह भी तभीतक उसके लिये बेड़ीका काम देता है जबतक यह मनुष्य आपका नहीं हो जाता।' जब यह मनुष्य आपका हो गया अर्थात् किसी तरहसे भी आपके साथ उसका सम्बन्ध हो गया फिर उसे यह सब विडम्बना नहीं रहती।

ज़रा विचार करिये, कैसे विज्ञानकी भरी हुई बात कही है। लोग समझते होंगे कि यह भक्तिका माहात्म्य और अर्थवाद है, किन्तु नहीं। यह तो स्वाभाविक बात है। आप जिस घरमें रह रहे हैं, उसकी बड़ी हिफ़ाजत करते हैं। कुर्सी रखते समय भीतपर ज़रा टक्कर भी लग जाती है तो नौकरपर एकदम बिगड़ उठते हैं। किन्तु जिस समय उस घरको बै कर देते हैं उस समय आपकी उसपर दूसरी ही बुद्धि हो जाती है। नौकरने कहा कि 'ओहो, आज तो वह अपनीवाली हवेली इस भूकम्पमें यकायक सब-की-सब बैठ गयी। खैर तो यह हुई कि उस समय सब मकानदार बाहर गये हुए थे नहीं तो बड़ा अनर्थ होता।' इस बातको सुनकर आपको उतना ही विस्मयसंवलित कौतुक हुआ जो और-और मकानोंके गिरनेकी ख़बर पत्रोंमें पढ़कर हुआ था। बल्कि भीतर-भीतर आपको यह विजयहर्ष होता है कि चलो यह अच्छा हुआ कि हमने पहले ही बेच दिया था। अन्यथा हज़ारोंपर पानी तो फिरता ही किन्तु इस समय मलबा उठवानेके लिये म्युनिसिपलटीवाले और तंग करते।

यह वही मकान है जिसमें एक टाँच पड़ जानेपर भी आप आँच हो उठते थे किन्तु देखिये आज यह ख़बर सुनकर भी उसी तरह पानीकी तरह ठण्ढे हैं। कारण यही है कि अब उससे आपका सम्बन्ध नहीं, मेरा है यह ममता नहीं रही। बस, इसी तरह मनुष्य जब संसारके सब पदार्थों-से सम्बन्ध हटाकर भगवान्‌के साथ सम्बन्ध कर लेता है, फिर उसे क्लेश नहीं होता। भक्तोंकी मर्यादा भी पुरानी चली आती है कि वह अपने पुत्र, घर-बार आदिको तो भगवान्‌का बताते हैं। कोई पूछता है 'यह बालक किसका है', वह कहते हैं 'भगवान्‌का'। और भगवन्मूर्तिके लिये कहते हैं 'मेरी।' रहस्य यह है कि सब वस्तुओंपरसे ममता हटाकर 'यह सब भगवन्मय हैं और भगवान् मेरे हैं' यों जब मनुष्य भगवत्सम्बन्ध कर लेता है उस समय जो वस्तुएँ बाधक थीं वे भी अब बाधक नहीं रहीं, प्रत्युत भगवन्मय होनेसे साधक हो जाती हैं। इसीलिये यहाँ कहा है कि यह सांसारिक विडम्बना तभीतक रहती है जबतक यह मनुष्य तुम्हारा नहीं होता। जहाँ तुम्हारी छाप उसपर लगी कि फिर उसे बाधा देनेवाला है ही कौन?

जगत्‌को भगवन्मय देखना, भगवान्‌को सर्वस्व समर्पण कर देना यह तो बात ही निराली है परन्तु जो सच्चे हृदयसे, वाणीसे और शरीरसे भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें प्रणाम करता हुआ भी जीवन बिताता है वही मुक्तिका अधिकारी हो जाता है—

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

यहाँ 'दाय' शब्दपर ध्यान दीजिये। जिसपर हमारा नियमतः 'राइट' अधिकार हो चुका उस 'दाय' परसे हमारा स्वत्व हटानेवाला कौन है? उसपर स्वत्व आगे होकर 'अदालत' दिलाती है। इसी तरह भगवद्भक्तका मुक्तिपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायसिद्ध स्वत्व है। उसे वह बलात् ले सकता है। वह उसका स्वाभाविक 'रिक्थ' है। इसी आशयसे श्रीरामचन्द्रने भी कहा है कि 'अभयम् अस्य'। जिस समय विभीषण मेरे अभिमुख हुआ उसी समय 'अभय' उसका हो चुका। अदालतके न्यायानुसार उसका वह 'दाय' हो चुका। अब मैं देनेवाला कौन? किन्तु बहती गङ्गामें हाथ पखारनेकी तरह चलता अहसान लेनेके लिये मैं अपनी तरफसे देता हूँ। इसीलिये कहते हैं 'अस्य अभयं मया दत्तम्।'

जब स्वयं श्रीरामचन्द्र आज्ञा कर रहे हैं और पहले पद्यमें 'अभय देना मेरा व्रत है' यह कह भी चुके हैं तब बिना कहे भी यहाँ प्रतीत हो जाता है कि अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्र ही हैं फिर 'मया' (मैंने) यह क्यों कहा? इसका तात्पर्य यह है कि—शरणागतरक्षणरूप मेरे दृढ़ व्रतके अनुसार विभीषणके यहाँ आते ही उनका संग्रह करना मुझे अभीष्ट था। परन्तु मर्यादा और मेरे स्वभावके अनुसार सम्पूर्ण परिकरकी सलाहसे ही यह कार्य करना मैंने उचित समझा था। अतएव मैंने आपलोगोंकी राय ली। आपकी रायपर उचित आलोचना करके विभीषणके स्वीकारको मैंने सिद्ध भी कर दिया किन्तु अभीतक दलीलें ही चल रही हैं, स्पष्ट अनुमति नहीं मिल रही है। शरणागतके लिये एक-एक क्षणका विलम्ब मुझे घोर असह्य हो रहा है। अतएव आपलोगोंकी सम्मतिसे यदि विभीषण नहीं लिया जा रहा हो तो—'मया अभयं दत्तम्' 'औरोंकी राय न सही, मैंने स्वतन्त्र, अपनी तरफ़से अभय दे दिया।' अपने कियेका निर्वाह अब मुझे करना है। अब मैं देखूँगा कि मेरे शरणागतको भय देनेवाला कौन है। यों श्रीरामचन्द्र विभीषणके स्वीकारमें विशेष आग्रह और उत्साह प्रकट कर रहे हैं। अतएव यहाँ कहा है कि 'मया' 'लो यह अभय 'मैंने' दे दिया।'

'विभीषण हो चाहे स्वयं रावण हो' यह कहनेका तात्पर्य है कि विभीषणके स्वीकारमें अबतक जो बाधाएँ उपस्थित की जा रही हैं वह रावणके सम्बन्धके कारणसे ही तो हैं। किन्तु जहाँ मेरे यहाँ कोई शरणागत हो जाता है फिर मैं उसके गुणदोषोंपर दृष्टि ही नहीं देता। तुम विभीषणके लिये ही इतना आकाश-पाताल सोच रहे हो, किन्तु तुम जिस रावणके सम्बन्धके कारण विभीषणपर शंका कर रहे हो मैं उस स्वयं रावणतकको लेता हूँ कि 'चाहे शरणागत होकर रावण ही क्यों न आया हो, उसे भी ले आओ'। इसीलिये कहा है कि—'यदि वा रावणः'।

विभीषण धर्मात्मा और सदाचारी हैं। सर्वत्र उनकी सौम्यता और शिष्टता प्रसिद्ध है। लंकासे लौटे हुए हनुमान्‌ने भी उनके सदाचारकी प्रशंसा की है फिर ऐसे गुणवान्‌का स्वीकार कर लेना कौन बड़ी उदारता है? दुनियाके साधारण आदमी भी अपने मतलबकी अच्छी चीज़को आग्रहसे लेते हैं फिर भला सोना और सुगन्ध! विभीषण शरणागत भी हैं और गुणी, सदाचारी भी। इनके संग्रह कर लेनेमें कौन-सा बड़ा अहसान है? शरणागत-धर्मका प्रतिपालन तो वह कहलायेगा, जहाँ कैसा भी दोषी और अपराधी चला आवे और उसपर टीका-टिप्पणी किये बिना ही उसको छातीसे लगा लिया जाय। अतएव उचित यह है कि जो रावण जगत्प्रसिद्ध क्रूरकर्मा और दुराचारी है, जिसके लिये तुम स्वयं कह रहे हो कि 'रावणस्य नृशंसस्य भ्राता', वह भी यदि अपने दरवाज़ेपर इस समय आया हुआ हो तो उसे भी मैं खुले हृदयसे अभय देनेको तैयार हूँ। इसीलिये भगवान् श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि—'यदि वा रावणः स्वयम्'।

भगवान् लोकोद्धारके लिये अवतार लेकर यहाँ पधारे हैं। आपकी हार्दिक इच्छा है कि जितने भी आर्त और पीड़ित हों, जितने भी दीन प्राणी दुर्जनोंके द्वारा सताये गये हों उन सबकी मेरेद्वारा रक्षा हो। जिन पातकियोंकी पहुँच पुण्यलोकोंमें नहीं हो सकती वह भी यदि अपने पापोंपर पश्चात्ताप करते हों तो उन्हें भी इस समय सान्त्वना मिल जाय। दीन, पातकी, अपुण्यकर्माओंको भी अपनी आत्माके उद्धारका अवसर मिले इसीलिये तो दीनोद्धारक भगवान् अवतार लेकर पधारते हैं। गङ्गा यदि स्वर्गङ्गा ही बनी रहतीं तो कहिये कितनोंका उद्धार होता? स्वर्गतक पहुँचनेके लिये कितने पुण्योंकी पूँजी आवश्यक होती? किन्तु जिस समय वह भूमण्डलमें पधार आयीं उस समयसे 'जडानन्धान् पङ्गून् प्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान्' मूर्ख, अन्धे, बहरे, गूँगे, लँगड़े आदि अनेक अपाहिजोंको भी आत्मोद्धारका मार्ग दीखने लग गया। इसी तरह भगवान् भी यदि वैकुण्ठमें ही विराजे रहते तो कितने पुण्यवानोंकी वहाँ पहुँच होती, और कितनोंको आत्मोद्धारका अवसर मिलता? जहाँ ब्रह्मादि देवतातक अवसर देखकर पहुँच सकते हैं, जहाँ सनकादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध भी रोक दिये जाते हैं वहाँ क्या दीनोंकी पहुँच हो जाती ? परन्तु अधमोद्धारक दीनदयालु भगवान् सबको एक दृष्टिसे देखते हैं । अतएव दीनोंकी भी रक्षा हो इसलिये भूमण्डलमें अवतार लेते हैं । यहाँ आकर जितने भी अधिक दीनोंकी रक्षा हो, जितने भी अधिक पापियोंका उद्धार हो, उतना ही अधिक भगवान्‌के पधारनेका प्रयोजन सिद्ध होता है। यदि पुण्यकर्मा विभीषणको आश्रय दिया जायगा तो उनके साथ आये हुए चार लंकावासियोंकी ही रक्षा हो सकेगी। किन्तु यदि स्वयं लंकाधिपतिको ही शरणमें लिया जाता तो उनके साथ सम्पूर्ण लंकाका उद्धार होता है। यों रावणके संग्रहमें अधिक जनोंकी रक्षा होती है । इसमें अपना प्रयोजन अधिक सिद्ध हुआ या बिगड़ा ? इसी आशयसे आप सुग्रीवको आज्ञा दे रहे हैं कि—'यदि वा रावणः स्वयम्' यदि स्वयं रावण भी आया हुआ हो तो 'एनम् आनय' इसे बेखटके ले आओ ।

तुमने बड़ी लम्बी-चौड़ी दलीलोंसे सिद्ध करना चाहा है कि वैरी-भ्राता विभीषणको ले लेनेसे हमारी बड़ी हानि हो सकती है । किन्तु मैं देखता हूँ विभीषण भी नहीं, स्वयं रावणको भी ले लेनेसे हमें लाभ ही है, हानिकी कोई सम्भावना नहीं ।

मेरी कीर्ति विश्वव्यापिनी हो यही तो सर्वात्मना आपलोगोंको अभीष्ट है । 'पुण्यश्लोकः' 'महायशाः' कह-कहकर जो आपलोगोंका मुँह सूखा जाता है इसका यही तो तात्पर्य है कि आपलोग जीवनका सबसे बड़ा ध्येय 'कीर्तिरक्षा' समझते हैं । अब ज़रा स्वार्थदृष्टिसे ही विचार कर लीजिये कि विभीषणके संग्रहमें मुझे अधिक लाभ है या स्वयं रावणके । मैं तो समझता हूँ कि विभीषणके स्थानपर यदि स्वयं रावणको ही अभय दे दिया जाता है तो अधिक लाभ होता है । रावणके संग्रहमें विभीषण तो उनके साथमें स्वयं आ ही जाते हैं किन्तु उसके साथ-साथ ही मेरी कीर्तिकौमुदी चतुर्दश भुवनोंमें और भी उज्ज्वल होकर फैलेगी कि घोरापराधी क्रूरकर्मा रावण-सरीखेको भी राघवने शरणमें ले लिया। सम्मुख युद्धमें शस्त्रोंके जोरसे अपने बाहुबलके द्वारा जो वीरलोग भयानक-से-भयानक शत्रुको जीतते हैं उनकी अपेक्षा मैं तो उनको बड़ा वीर समझता हूँ जो अपने साथ घोर अपकार करनेवालेको भी शरणागत होनेपर क्षमा कर देते हैं । आज जो रावणने अपराध किया है वह मेरे पक्षमें सबसे उत्कट है, जगत्‌मात्र जान रहा है । ऐसे घोर अपराधका अपराधी दीन होकर मेरे दरवाज़ेपर आया हो और मैं अभय देकर उसे अपनी शरणमें ले लूँ इसमें मेरी अधिक कीर्ति होगी या अपकीर्ति ? मेरी उदारता समझी जायगी या 'घूँसेका बदला लातसे लेनेवालोंकी'-सी प्रावाहिकता ?

आज दिन रावण विश्वविदित एकमात्र वीर है। उसकी क्या कथा, उसके पुत्रोंतकने कई बार देवताओंको छका दिया है । उसके बेटेकी ख्याति ही इन्द्रजित् नामसे है, जिसे सुन-सुनकर बेचारा इन्द्र लज्जाके मारे गड़ा जाता है । भूमिकी कौन गिनती, देवतातक आज उसे प्रणाम कर रहे हैं । सन्ध्योपासनके समय द्विजोंके प्रणाम अबतक सूर्यके हिस्सेमें आते थे । जिस दिशामें सूर्य होता उसी दिशाकी तरफ मुख करके ब्राह्मण, क्षत्रियादि सन्ध्या-प्रणाम आदि किया करते थे किन्तु आज रावणका यह दबदबा है कि सूर्य कहीं भी रहे उससे कोई प्रयोजन नहीं । रावण जिस दिशामें जाता है उसी दिशाकी तरफ़ मुख करके ब्राह्मणादि प्रणाम कर रहे हैं । वह भी इतना मनस्वी और मानी है कि कभी किसीसे नम्र नहीं हुआ । इतिहासोंमें सुना जाता है कि ऐसे-ऐसे राजा हो गये हैं जिन्होंने कहा है कि हमें झुकना मालूम नहीं । आजतक किसी राजशक्तिको हमने झुककर सलाम नहीं किया। किन्तु रावणकी मानिता, सर्वमानिता (सबकी मानी हुई) है । आलोचक लोग कहते हैं कि रावणके ऊपर इतनी विपत्तियाँ आयीं, कुटुम्बका इतना क्षय हुआ परन्तु अपनी बातसे कभी न हटा । जिस समय कुम्भकर्ण और इन्द्रजित्-सरीखे मारे गये उस समय प्रहस्त आदि बड़े-बड़े अभिमानी रावण-सचिवोंकी भी हिम्मत हिल गयी । उनकी तरफ़से भी प्रस्ताव हुआ कि अब रामसे सन्धि कर ली जाय, परन्तु वाह रे रावण, हज़ार आपत्ति आनेपर भी दैन्य स्वीकार नहीं किया । उसने कहा कि अबतक जो रावण त्रिभुवनमें शरण्य (शरण देनेवाला) रहा है, कभी किसीसे दीन वचन कहनेका जिसको अवसर नहीं आया, वह आज अपनी तरफ़से सन्धिका प्रस्ताव करे ? प्राण बड़ी चीज़ है कि अपना यश ? मैं कभी सन्धिके अक्षर मुखसे नहीं कह सकूँगा। जो कुछ होना है, मुझे निश्चित है, किन्तु मैं कभी अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचनको नहीं जाने दूँगा। आज भी मैं यही साहस रखता हूँ कि तपस्वी रामको उसके हिमायतियोंसहित ठीक कर दूँगा।

और तो क्या—जिन भगवान् शिवसे इतना रुतबा मिला था उनके आगेतक तो जिससे दीनताके वचन कहे ही न गये। अपने मस्तकोंको अपने ही हाथसे काट-काटकर होम कर देनेके साहससे प्रसन्न होकर चराचरनायक शिवने जिस समय वर माँगनेके लिये कहा उस समय रावणके दसों मुख आपसमें झगड़ने लगे कि 'तू माँग, तू माँग'। प्रत्येक मुखको लज्जा है कि आजतक मैंने किसीसे याचना नहीं की। शिव हुए तो क्या—परन्तु मैं ज़बान कैसे निकालूँ। बस, आपसमें बहुत देरतक मुखोंमें हुज्जत होती रही, कलहतकका मौका आ गया। क्या ऐसा मानी त्रिभुवनमें दूसरा है? कवि मुरारि कहते हैं—

सन्तुष्टे तिसृणां पुरामपि रिपौ कण्ठूलदोर्मण्डली-
लीलालूनपुनर्विरूढशिरसो देवस्य लिप्सोर्वरम्।
याच्ञादैन्यपराङ्मुखस्य कलहायन्ते मिथस्त्वं वृणु
त्वं वृण्विस्यभितो मुखानि स दशग्रीवः कथं कथ्यताम्॥

'अपने हाथसे मस्तक काट दिया जाता है और वह फिर निकल आता है। यों मस्तकहवनरूपी असामान्य साहससे जब त्रिपुरारि भगवान् सन्तुष्ट हो गये और वर देने लगे उस समय याचनाकी दीनतासे पराङ्मुख हुए जिसके दशों मुख 'तू माँग, तू माँग' इस तरह कलह करते हैं, उस दशग्रीवका वर्णन कैसे किया जा सकता है?'

वही मानी रावण यदि आज मेरे दरवाजेपर आया हुआ हो तो मेरी कीर्ति कुछ कम प्रशस्य है? सो भी किस-लिये? शरणागत होनेके लिये। बस, इससे बढ़कर कीर्ति-पताका और कितनी ऊँची चाहते हो? यह मेरा बड़ा गौरव है कि रावणसदृश त्रिलोकीका अद्वितीय अभिमानी मेरे पास शरणयाचनाके लिये आया हुआ हो, और मैं उसे अभय दे रहा होऊँ। अतएव, श्रीरामचन्द्र यहाँ आज्ञा करते हैं कि—'यदि वा रावणः स्वयम्' 'यदि स्वयं रावण भी आया हुआ हो तो उसे ले आओ, मैंने उसे अभय दे दिया।'

यहाँ 'स्वयम्' और कहा है। स्वयं कहनेका तात्पर्य है कि जिस रावणके सम्बन्धके कारण तुम लोग विभीषणपर भी शंका कर रहे हो वह 'स्वयम्' रावण भी आवे तो भी मैं उसे अभय कर देता हूँ। अथवा 'स्वयम्'से आप बड़ी गूढ़ बात कहते हैं। आप कहते हैं कि यदि रावण अपने कियेपर पश्चात्ताप करे और अब अपनी खैर न समझकर जनक-नन्दिनी श्रीसीताको आगे लेकर मेरी शरणमें आवे तो मुझे ही क्या तुमको और साधारण-से-साधारण मनुष्यतकको उसके स्वीकारमें संशय न होगा। जिन मैथिलीके लिये इतना विवादसूत्र छिड़ा है उन्हें ही आगे लिये आ रहा है और क्षमायाचना कर रहा है, अब और बाकी क्या रहा? किन्तु शरणागतवत्सलताका गौरव इसमें ही है कि यदि वह अकेला खाली हाथ भी आये तो भी मैं उसे अभय दूँ। अतएव आप आज्ञा कर रहे हैं कि 'स्वयम्'। यदि बिना सीताको लिये केवल वही आया हो तो भी मैंने उसे अभय दिया।

अथवा—'स्वयम्'से यह सूचित करते हैं कि तुम विभीषण समझकर उसे लिवाने जाओ किन्तु वहाँ तुम्हें मालूम पड़े कि विभीषणका रूप धारण करके यह तो स्वयं रावण ही आया है। तो भी मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि तुम उसको लिवा लाओ। उसे बिना लाये अकेले तुम मुझसे यह पूछने मत आना कि 'वह तो विभीषणके रूपमें रावण-है'। नहीं, कोई हो, मैंने अभय दे दिया। अतएव आप कह रहे हैं कि—'स्वयम्'। विभीषणके रूपमें स्वयं रावण ही क्यों न हो, मैंने अभय दे दिया।

जब इस तरह शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्रने तृतीय बार बड़े ज़ोरसे विभीषणके स्वीकारकी केवल सम्मति ही नहीं उसे लिवा लानेकी आज्ञा ही दे दी तब कारुणिक हृदय सुग्रीवसे न रहा गया। वह एकदम प्रसन्न हो गये, कहा कि 'हे भगवन्! आप 'लोकनाथशिरोमणि' हैं' जो लोकोंके नायक हैं उनके भी आप शिखामणि हैं। यह उदारता आपमें न हो तो और किसमें हो? धृष्टताकी क्षमा हो, हमलोग तो आपकी उदारताकी एक तरहसे परीक्षा कर रहे थे। मेरा भी अन्तरात्मा विभीषणको शुद्ध जान चुका है। मैं आपके शरणागत-रक्षणव्रतको आज ही नहीं, पहलेसे ही अच्छी तरह जानता हूँ। अब यह विभीषण 'नः सखित्वम् अभ्युपैतु' 'हमारा मित्र और समान गौरवका भाजन बने' यों सुग्रीव बड़ी प्रसन्नताके साथ विभीषणको लिवा लाते हैं।

श्रीरामके सम्मुख आते ही विभीषण उनके चरणोंमें गिर जाते हैं और—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ।
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ॥
परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ।
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥

'मैं रावणका छोटा भाई हूँ, उसके द्वारा तिरस्कृत होकर निकाला गया हूँ। आप सर्वलोकोंके शरण्य हैं, मैं आपके शरण आया हूँ। मैंने लङ्का, मित्र, धन आदि सब कुछ छोड़ दिया है। राज्य, सुख, और तो क्या मेरे जीवनतक अब आप हैं' यों दैन्यप्रदर्शनपूर्वक आर्त विभीषण आत्मनिवेदन करते हुए 'मानसिक' के अनन्तर 'वाचिक' शरणागति निवेदन करते हैं।

बस, भगवान् तो उन्हें पहले ही स्वीकार कर चुके थे। अब इस समय, विभीषण अपने दैन्यको भूल जायँ और उनपर इतना बड़ा अहसान श्रीरामने किया है, इस बातका प्रसङ्ग ही हटानेके लिये श्रीरामचन्द्र बात ही दूसरी छेड़ देते हैं। लोचनाभ्यां पिबन्निव' प्रेमातिशयके कारण बड़े स्नेहसे विभीषणको निहारते हुए आप पूछते हैं—'विभीषण! मुझे लङ्काके समाचार कहो' इत्यादि।

बस, विभीषणकी शरणागति सफल होती है। दयालु श्रीरामचन्द्र सबपर इस तरह अनुग्रह करें।

कञ्जमाञ्जुल्यहरणे करणे सर्वसम्पदाम् ।
श्रीरामचन्द्रचरणे शरणेच्छा समेधताम् ॥

सूरदासका अन्तिम पद

(लेखक—अज्ञात)

'खंजन नैन रूप रसमाते' सूरदासका यह अत्यन्त प्रसिद्ध पद है। इसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह सूरदासका अन्तिम पद है। भक्तोंसे लेकर हिन्दी साहित्यके अनेक पण्डितोंने इस कथनको साधु मान लिया है और बहुतोंने तो इसकी मनमानी व्याख्या कर पाठकोंको भ्रममें डाल दिया है। टीकाकारोंकी टिप्पणियोंपर विचार करनेकी आवश्यकता तो तब पड़ती जब उनमें कुछ सार होता। हमारी धारणा है कि किसी लेखकने इस पदपर विचार नहीं किया है; नहीं तो उसको स्पष्ट हो जाता कि इस पदका प्रसङ्ग क्या है और यदि सूरदासने अन्तिम समय इसका गान किया तो उसका आशय क्या है? इस पदके सम्बन्धमें हमारा मत है कि यह सूरदासका अन्तिम पद नहीं है और इसमें श्रीकृष्ण या सूरदासके नेत्रोंका वर्णन न होकर श्रीराधाके नेत्रोंका वर्णन है। इस पद-का प्रसङ्ग ही हमारे कथनका पुष्ट प्रमाण है। पदका प्रसङ्ग है—

स्यामहि सुख दै राधिका निजधाम सिधारी ।
चित तें कहुँ उतरत नहीं श्रीकुंजबिहारी ॥
रैनि बिपिन रतिरस रह्यो मो मनहिं बिचारै ।
पिय सँगके अँग चिन्ह जे दर्पणहि निहारै ॥
यहि अंतर चन्द्रावली राधा गृह आई ।
अंग सिथिल छबि देखिकै जहँ तहँ भरमाई ॥
कह्यो चहति कहत न बनै मन मन अनुमानै ।
सूर स्याम सँग निसि बसी निहचै यह जानै ॥

पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि उक्त प्रसङ्गपर ध्यान रखकर सूरदासके इस पदपर विचार करें और देखें कि इसका अर्थ क्या है। सूरदास कहते हैं—

खंजन नैन सुरंग रसमाते ।
अतिसय चारु बिमल दृग चंचल पल पिंजरा न समाते ॥
बसे कहूँ सोइ बात कही सखि रहे इहाँ केहि नाते ।
सोइ संज्ञा देखति औरासी बिकल उदास कला ते ॥
चलि चलि आवत श्रवण निकट अति सकुचति टंक फँदाते ।
सूरदास अंजन गुन अटके नतरु कबै उड़ि जाते ॥

इस पदका शुद्ध पाठ 'रत्नाकर'जीके अनुसार शायद यह है—

खंजन नैन सुरंग रसमाते ।
अतिसय चारु बिमल चंचल ये पल पिंजरा न समाते ॥
बसे कहूँ सोइ बात कही सखि रहे इहाँ किहिं नातैं ।
सोइ संज्ञा देखति औरासी बिकल उदास कला तैं ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलि चलि जात निकट काननि ह्वै सकि ताटंक फँदा तैं।
सूरदास अंजन-गुन अँटके नतरु कबै उड़ि जाते॥

प्रसङ्गको अधिक स्पष्ट करनेके लिये हम सूरदासजीका एक और पद उद्धृत किये देते हैं। यह पद उक्त पदके बाद ही एक पद छोड़कर, जिसमें श्रीराधाकी छविका वर्णन है, दिया गया है। वह पद है—

मोसौं कहा दुरावति प्यारी।
नंदलाल सँग रैनि बसी री कोक-कला गुन भारी॥
लोचन पलक पीक अधरनको कैसे दुरत दुराए।
मनो इन्द्रपर अरुण रहे बसि प्रेम परस्पर भाए॥
अधर दसन-छतकी अति सोभा उपमा कही न जाइ।
मनो कीर फल बिंब चोंच दै भख्यो न गयो उड़ाइ॥
कुच नख-रेख धनुसकी आकृत मनु सिव सिर ससि राजै।
सुनत सूर प्रियवचन सखी सुख नागरि हँसि मन लाजै॥

अब तो आप समझ गये होंगे कि सूरदासका 'अन्तिम पद' वास्तवमें अन्तिम पद नहीं है। इस पदमें तो राधाके नेत्रोंका वर्णन है, 'कृष्ण या सूर' के नेत्रोंका नहीं। राधा 'सुरति-लक्षिता' के रूपमें अङ्कित की गयी हैं जो चन्द्रावलीसे 'सुरति-गोपन' कर रही हैं।

उक्त पदको भलीभाँति समझनेके लिये यह आवश्यक है कि हम इसके रूपकको अलग कर लें और उसमेंसे सखियोंके वाद-विवादको अलग। 'खंजन-नैन' का सांग रूपक इस प्रकार पदमें पूरा होता है—

खंजन-नैन सुरँग-रस माते।
अतिसय चारु बिमल चंचल ये पल-पिंजरा न समाते॥
.....
चलि चलि जात निकट काननि ह्वै सकि ताटंक-फँदा तैं।
सूरदास अंजन-गुन अँटके नतरु कबै उड़ि जाते॥

सखियोंकी बातचीत इस प्रकार है 'बसे कहूँ', 'सोइ बात कही सखि', 'रहे इहाँ केहि नातैं।' इसके बादकी पंक्तिका सम्बन्ध 'खंजन-नैन' से भी हो सकता है, पर हमारी समझमें इसकी व्यञ्जना तभी उचित होती है जब इसका सम्बन्ध राधाकी दशासे होता है। इसका प्रधान कारण यह है कि नेत्र प्रेममें मस्त हैं, खिन्न नहीं। खिन्नता तो स्वयं राधामें है। उसका श्रीकृष्णसे एक ओर तो वियोग हो गया है और दूसरी ओर सखियाँ उसकी रतिको ताड़कर उसके पीछे पड़ गयी हैं। अस्तु, इस पंक्तिका अर्थ है कि राधामें इस समय न तो वह प्रफुल्लता है और न वे हाव-भाव। उसमें तो केवल वियोगजनित खिन्नता और व्यग्रता है। चन्द्रावलीने राधासे प्रश्न किया था 'बसे कहूँ?' राधाने उत्तर दिया था 'रहे इहाँ केहि नातैं।' चन्द्रावलीने राधासे कहा था कि 'तुम्हारी बातोंसे तो जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे संग बसे थे।' राधाने टालते हुए उत्तर दिया कि 'यहाँ किसलिये रहने लगे? हमारा-उनका सम्बन्ध ही क्या है?' चन्द्रावलीने कहा अच्छा, इसीलिये आपकी यह दशा हो रही है कि आप खिन्न हैं और आपके नेत्र प्रियतममें लगे हुए हैं और उड़कर वहीं पहुँचना चाहते हैं। वे उड़कर चले भी गये होते, पर करें क्या, वे बेचारे तो 'अञ्जन-गुण', लोक-लाज या लोक-व्यवस्थामें बँधे हैं; किन्तु अञ्जन (कृष्ण-रंग) से रिक्त नहीं हैं।

प्रस्तुत पदकी व्याख्या करने हम नहीं बैठे हैं। अतएव प्रसङ्गवश जो उसकी ओर सङ्केत कर दिया गया है वही पाठकोंके लिये पर्याप्त है। इस पदमें जो 'बसे' और 'ताटंक'* पर ध्यान देगा वह स्वतः समझ

* ताटंक शब्द विचारणीय है। 'वार्त्ता' में केवल सांग रूपक दिया गया है। उसमें 'बसे' और 'सखि' शब्द नहीं हैं। पर ताटंक वहाँ भी बना है। 'ताटंक' स्त्रियोंके कानमें पहननेका एक भूषणविशेष है जिसे तरकी भी कहते हैं। सूरसागरमें राधाके ताटंकका उसी प्रकार वर्णन है जिस प्रकार श्रीकृष्णके कुण्डलका है। 'वार्त्ता' में यह पद इस प्रकार दिया गया है—'खंजन नैन रूप रस माते। अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते। चलि चलि जात निकट श्रवननके उलट पलट ताटंक फँदाते। सूरदास अंजन गुन अटके नातर अब उड़ि जाते।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेगा कि इसका प्रसङ्ग क्या है। प्रसङ्गको स्पष्टकर हमने यह दिखा देनेकी चेष्टा की है कि सूरसागरकी अधिकांश प्रतियोंमें जिस प्रसङ्गमें यह पद मिलता है वही इसका वास्तविक स्थान है और उसी प्रसङ्गमें, उसी अवसरपर इसकी रचना भी हुई है।

यह तो हमने देख लिया कि इस पदका प्रसङ्ग क्या है और यह किसके सम्बन्धमें कहा गया है। अब हमको थोड़ा इस बातपर भी विचार कर लेना चाहिये कि इस व्यापक भ्रमका कारण क्या है। लोग इसको क्यों सूरदासका अन्तिम पद मानते हैं। और यदि अन्त समयका पद मान लिया जाय तो इसका तात्पर्य क्या है?

हमारी धारणा है कि इस व्यापक भ्रमका मूल कारण 'चौरासी वार्त्ता' का यह कथन है 'इतनो कहि-कै श्रीसूरदासजीके चित्त श्रीठाकुरजीको श्रीमुख तामें करुणारसके भरे नेत्र देखे, तब श्रीगुसाईंजी पूछो जो सूरदासजी नेत्रकी वृत्ति कहाँ है तब सूरदासजीने एक पद और कह्यो सो पद—'खंजन नैन रूप रसमाते'—इतनो कहत ही सूरदासजीने या शरीरको त्याग कियो सो भगवत्-लीलामें प्राप्त भये।' कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस कथनमें केवल 'पद कह्यो' है। इसका तात्पर्य यह नहीं लगाया जा सकता कि सूरदासने इस पदकी रचना की। इसका सीधा-सादा अर्थ है कि सूरदासजीने इस पदका पाठ किया। इस पदका भाव जो ऊपर दिया गया है उसका स्पष्टीकरण इस बातसे हो जाता है कि सूरदासजीने इस पदके पहले जिस पदका पाठ किया था, वह है—

बलि बलि बलि हौं कुमरि राधिका नंदसुवन जासों रति मानी॥
वे अति चतुर तुम चतुरसिरोमनि प्रीति करी कैसे होत छानी॥
वे जु धरत तन कनक पीतपट सो तो सब तेरी गति ठानी॥
ते पुनि स्याम सहज वे सोभा अंबर मिस अपने उर आनी॥
पुलकित अंग अबहिं ह्वै आयो निरखि देखि निज देह सयानी॥
सूर सुजान सखाके बूझे प्रेम प्रकास भयो बिहँसानी॥

इस पदके पाठके विषयमें 'वार्त्ता' का कथन है—'सूरदासजीको मूर्छा आयी तब श्रीगुसाईंजी कहें जो सूरदासजी चित्तकी वृत्ति कहाँ है। तब सूरदासजीने एक पद और कह्यो।' 'वार्त्ता'के कथनोंसे स्पष्ट अवगत हो जाता है कि सूरदास उस समय नये पदोंकी रचना नहीं कर रहे थे, बल्कि अपने प्रिय पदोंका गान कर रहे थे। उनके अन्य पद भी सूरसागरमें संग्रहीत हैं। और उनका प्रसङ्ग भी ठीक-ठीक मिल जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास किस प्रकार मरते समय भी अपने ललित पदोंका गान करते तथा उन्हें आनन्ददायक समझते थे।

यहाँपर प्रश्न उठता है कि सूरदासने अन्तिम समय श्रीकृष्णका ध्यान न कर श्रीराधाका ध्यान क्यों किया और किस प्रेरणासे प्रेरित होकर किस इष्टकी प्राप्तिके लिये मरते समय भी सूरदासने 'रति' का प्रसङ्ग छेड़ा। श्रीराधाके सम्बन्धमें जो लेख निकल रहे हैं और सूरको जो कुत्सित किया जा रहा है उसका एकमात्र कारण है भक्ति-भावनाके मर्मसे अपरिचित रहकर भी भक्तोंका भाव चूसना। राधा तथा सूरको समझनेके लिये इस प्रश्नपर विचार करना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। सूरदासने स्वतः कहा है—

रूप-रासि सुख-रासि राधिका सील महा गुनरासी।
कृष्ण चरन ते पावहिं स्यामा जे तुव चरन उपासी॥
जगनायक जगदीस पियारी जगत जननि जगरानी।
नित विहार गोपाल लाल सँग बृन्दावन रजधानी॥
अगतनि को गति भक्तनकी पति श्रीराधापद मंगलदानी।
असरन-सरनी भव-भय-हरनी वेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक सोभा अमित अपारी।
कृष्ण-भक्ति दीजै श्री राधे सूरदास बलिहारी॥

सूरदास श्रीराधाको क्या समझते थे, इसका कुछ पता तो चल गया होगा। जो लोग श्रीराधाको जीव समझते हैं उनको एक बार अच्छी तरह सूरका अध्ययन कर लेना चाहिये। राधाको सूर श्रीकृष्णकी शक्ति समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। यहाँ राधा, श्रीकृष्ण एवं गोपियोंके प्रसङ्गपर विचार करना नहीं है। हमें तो यह स्पष्ट करना है कि सूरदासने राधाकी दशा तथा उनके नेत्रोंके भावका स्मरण इसलिये किया कि राधा भी, लीलाके लिये ही सही, श्रीकृष्णकी चिन्तामें इतनी मग्न थीं कि उनको यदि किसी प्रकारके बन्धनका सामना न करना होता तो वे श्रीकृष्णमें समा जातीं। सूरके नेत्र राधाके नेत्रोंकी उस दशाका अनुभव कर रहे थे जिसमें पड़कर उन बेचारों-को श्रीकृष्णका दीदार दुर्लभ हो गया था और वे उन्हींके पास उड़कर जाना चाहते थे। पर लोकलाजके कारण जा नहीं पाते थे। सूरदासके कहनेका अर्थ था कि नेत्र तो उड़कर श्रीकृष्णके रूपमें लय हो जाना चाहते हैं पर करें क्या, श्रीकृष्णकी लीला अपरम्पार है। उनकी मायाने जो सृष्टि की है अभी उनके नेत्र उसी 'अञ्जन-गुण' में अटके हैं। यदि उनपर कृष्णकी कृपा हो जाती और वे अपनी मायाको समेट लेते तो उन्हें श्रीकृष्णका साक्षात्कार हो जाता। उनकी भी ठीक वही दशा है जो सखियोंके बीचमें राधाके नेत्रोंकी थी। तात्पर्य यह कि सूरदास अब शीघ्र ही श्रीकृष्णलोकमें जाना चाहते हैं और बीचमें किसी अन्य व्यवधानको नहीं देख सकते। राधाका अवतरण इसलिये होता है कि हम उनसे प्रेम करना सीख लें। राधा एक तो सामान्य गोपीके रूपमें हमारे सामने आती हैं और हमें प्रेम करना सिखाती हैं; दूसरे उनका वह रूप भी बना रहता है जिसका उल्लेख उक्त पदमें किया गया है। श्रीकृष्ण भी इन्हीं दो रूपोंमें हमारे सामने आते हैं। सूरदासने इस पदमें श्रीकृष्णके माधुर्य-भावकी कामना की है, ऐश्वर्य-भावकी नहीं। अवतार लेनेका प्रधान कारण धर्मकी व्यवस्था और दुष्टोंका दलन होता है। यही भक्तोंकी दृष्टिमें प्रभुकी प्रभुता है। कहना न होगा कि भगवान्‌के इस रूपमें आनन्दके साथ ही विषाद भी मिला रहता है। अतएव आनन्दके पक्के उपासक इस ऐश्वर्य-भावकी उपासना न कर भगवान्‌-के उस भावकी उपासना करते हैं जो दुष्टोंकी शत्रु-भावकी उपासना भी स्वीकारकर उन्हें मुक्त कर देता है और काम-भावके उपासकोंको परम कान्तके रूपमें मिल जाता है। सूरदासने श्रीकृष्णके माधुर्य-भावको चुना और उस रसिककी उपासना की जिसके लिये राधाके नेत्र परवश होकर ललक रहे थे। निदान हमको कहना पड़ता है कि यदि सूरदासने अन्तिम समय 'खंजन नैन सुरंग रसमाते' का गान किया तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने इसकी रचना भी उसी समय की; प्रत्युत इसका अर्थ यह है कि सूर कृष्णके दीदारके लिये तरस रहे थे, किन्तु लोक-बन्धन-से मुक्त नहीं हो पाते थे। प्रिय पदोंको सङ्कट या मौजके समय सभी गाते हैं। फिर सूर तो उसके निर्माता थे।

अवगुन किये तो बहु किये करत न मानी हार।
भावैं बंदा बकसिये, भावैं गरदन मार॥
औगुन मेरे बापजी बकस गरीबनिवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिताको लाज॥

—कबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सती

(लेखक—पं० श्रीलालारामजी शुक्ल)

इस विशाल विश्वकी क्रीडास्थलीमें देश, काल और वस्तुके चाहे कितने परिवर्तन ही होते रहें, समाज और संस्थाओंके भीषण तूफान अपनी प्रबलताका कितना ही वेग दिखावें, संसारके उच्चातिउच्च मस्तिष्कोंकी विचारतरंगें चाहे कितनी ही टक्करें खायँ, परन्तु सत्यके स्वयं जाज्वल्यमान प्रदीपपर ये एक छिटक भी नहीं डाल सकते। यह वह प्रदीप है जिसको संसारकी कोई शक्ति बुझा नहीं सकती; यह सदा अविच्छिन्नरूपसे प्रकाशित रहा है और प्रकाशित रहेगा। इस सत्य प्रदीपका प्रकाश समय-समयपर हमारी आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर देता है, हमारे मस्तिष्कोंको शून्य बना देता है और हमारी बुद्धि तथा चतुराईको चूल्हेमें झोंक देता है; तब हम किंकर्तव्यविमूढ़ होकर कहने लगते हैं कि उस लीलाधारीकी लीला कुछ समझमें नहीं आती। इसी सत्यको प्रदर्शित करनेवाली एक सच्ची घटनाका विवरण पाठक-पाठिकाओंके सम्मुख रक्खा जाता है।

हरदोई जिलान्तर्गत कस्बा साडीके पास एक इकनौरा नामका ग्राम है। जिसमें नवाब खान्दानके एक बड़े सज्जन व्यक्तिकी ज़मींदारी है। इसी ग्राममें पं० छोटेलालजीके गृहमें उनकी धर्मपत्नीकी कुक्षिको पवित्र करनेवाला एक कन्यारत्न अवतीर्ण हुआ; जिसका नाम रेशमदेवी प्रसिद्ध हुआ।

जबतक बाल्यकाल रहा तबतक यह कन्या अपने स्वभावसे सबको प्रेमविभोर करती रही। ग्रामोंमें शिक्षाका संस्कार कम होनेके कारण इसकी शिक्षा लगभग हिन्दीके चौथी कक्षातक ही समाप्त हो गयी। परन्तु बचपनहीसे इसको रामायणसे विशेष प्रेम रहा, यहाँतक कि जिस दिनसे रामायण पढ़ना प्रारम्भ किया फिर छूटा ही नहीं। कन्याका रूप सुन्दर और स्वभाव बड़ा लजीला था। परोपकारवृत्ति स्वभावमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। अपनी शक्ति-अनुसार वह पास-पड़ोसवालोंकी तथा हेली-मेली सबकी सहायता करनेको सदा उद्यत रहती थी। छोटे-बड़े सभी उससे प्रसन्न रहे। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' वाली कहावत पूर्णरूपसे चरितार्थ हुई।

धीरे-धीरे समय बढ़ता गया और रेशमदेवी विवाहके योग्य हुई। तेरह सालकी आयुमें कसरावाँ ग्रामके निवासी पं० दीनदयालजी मिश्रके सुपुत्र पं० वंशीधरजीसे, जो कि अंग्रेज़ीके सातवें या आठवें क्लासमें पढ़ते थे, उनका विवाह निश्चित हुआ और आनन्दपूर्वक सुचारुरूपसे शादी हो गयी। शादीके पश्चात् वंशीधरजी अपनी ससुराल इकनौरा दो-एक बार आये-गये।

समय बीतनेपर गौना होनेकी बात चली और इसी गत ज्येष्ठके महीनेमें गौना होना निश्चित हुआ। परन्तु विधाताका विधान कुछ और ही था। गौना होनेकी तिथिमें केवल एक सप्ताह शेष रहा, तब रेशमदेवीके पति वंशीधरजी अचानक बीमार पड़ गये। और इकनौरा सूचना दी गयी कि वे अत्यन्त भीषण रोगसे ग्रसित हैं कोई देखना चाहे देख ले।

चूँकि यह दुःखद संवाद शामको मिला था, इसलिये रेशमदेवी तथा कुटुम्बियोंने जैसे-तैसे रात काटी। प्रातः होते ही रेशमदेवी लहड़ूमें बैठकर अपने मामा श्रीरामके साथ पिताकी आज्ञासे कसरावाँको रवाना हुईं। अपने प्रियतमके दर्शनके ध्यानमें संलग्न मार्गमें चली जा रही थीं कि अचानक उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँहसे निकला कि 'मामा ! काम तो हो गया चलना व्यर्थ है।' मामाने कहा घबड़ाओ नहीं। थोड़ी ही देरमें एक आदमीसे सूचना मिली कि वंशीधर इस असार संसारसे विदा हो गये, और उनका शव गंगाजीको आ रहा है, अब कसरावाँ न जाकर उधर ही चलना चाहिये। इन वज्रतुल्य शब्दोंकी चोटसे रेशमदेवीको जो व्यथा हुई होगी उसको कोई भी नहीं लिख सकता। लेकिन फिर भी वह चुपचाप थीं, शान्त थीं और उनके नेत्रोंमें एक भी आँसू नहीं था। वह शान्तिकी पुजारिन न मालूम किस देवके ध्यानमें ध्यानावस्थित थीं।

जिस मार्गसे पतिका शव जा रहा था, उसी ओरको रेशमदेवीका लहड़ू रवाना हुआ। करीब दो घड़ी दिन रहे रेशमदेवीको अपने प्रिय पतिकी लाश देखनेको मिल गयी, और गौना हो गया। देवी फूट-फूटकर रोने लगीं, और मृत शरीरके पास जाकर अपनी साड़ीके छोरसे पतिका मुँह पोंछा और रोकर कहा कि 'बोलो' परन्तु कौन बोले? फिर दुबारा कहा कि 'बोलना पड़ेगा' इतनेहीमें लोगोंने खींचकर उसे अलग कर दिया, और फिर शवके पास बहुत कम जाने दिया। यह रात्रि जैसे-तैसे सबको वहीं काटनी पड़ी।

प्रातः भगवान् भास्करकी किरणोंके प्रकट होनेके साथ-ही-साथ, रेशमदेवीका पवित्र विचार भी प्रकट हो गया। उन्होंने अपने ससुर, जेठादिके चरण स्पर्श करके कह दिया कि मैं सती होऊँगी। और उसी समयसे अपने सिरसे साड़ी हटाकर कन्धोंपर कर ली। जब अनेकों प्रकार समझा-बुझाकर भी लोग उनके पवित्र विचारको रोकनेमें सफल न हुए तो देवीके मामा आदि सम्बन्धियोंने पकड़कर उन्हें लहड़ूमें बैठा लिया, वह बेचारी पर कटे हुए पक्षीकी भाँति फड़फड़ाती हुई अन्तमें मूर्छित हो गयीं।

उधर वंशीधरका मृत शरीर अन्तिम संस्कारके अर्थ गंगाजीको रवाना हुआ। और इधर रेशमदेवीका मृततुल्य ही मूर्छित शरीर इकनौरा ले जाया गया। तीन-चार घण्टे पश्चात् मूर्छावस्थाहीमें देवीका शरीर उतारकर आँगनमें रख दिया गया। चेत होनेपर उन्होंने कई बार उठ-उठकर पतिके पास जानेका प्रयास किया, पर बलात् रोक लिया गया।

जब देवीने जाना कि इस भाँति काम न चलेगा; तो वह शान्त हो गयीं और उठकर भलीभाँति स्नान किया तथा नित्यकी भाँति तुलसीजीकी पूजा और आरती करके, श्रीरामायणजीका अन्तिम पाठ करने बैठ गयीं। पाठ समाप्त करके पुनः अपना 'सती होने' का दृढ़ विचार प्रकट किया। उसी समय एक वृद्ध कुटुम्बीने कहा कि 'देखो बिना पति-देहके कोई सती नहीं होती, सुलोचना भी तो पतिका शीश लाकर ही सती हुई थी।' देवीने उत्तर दिया कि 'नहीं, ऐसा नहीं, सुलोचना तो भगवान्के दर्शनके लिये गयी थी। दैवयोगसे शीश भी मिल गया तो ले लिया। स्त्रीका सारा शरीर ही पतिका शरीर है। पतिव्रताको सती होनेके लिये पतिशरीर ही अनिवार्य नहीं है। उसे तो केवल 'सत्' चाहिये।' इसपर लोगोंने कहा कि बिना कोई सत्की बात देखे कैसे विश्वास हो कि तुम सती हो सकती हो। देवीने झट अपनी कनिष्ठिका अँगुली जलती हुई आरतीसे लगा दी और अँगुली मोमबत्तीकी भाँति जलने लगी। जब आधी जल गयी तब देवीने कहा कि देखो 'मेरे पतिदेवका शरीर भी अभी जला नहीं है, चिता तैयार हो गयी है और लोग उनको स्नान करा रहे हैं। शीघ्रता करो मुझे स्नान कराओ नहीं तो मकानादि सब भस्म हो जायगा।' बस फिर क्या था, लोगोंके मस्तिष्क चकराये, कोलाहल मच गया। देवीने अँगुली दिवालसे रगड़ दी, वह बुझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। जो निशान अँगुली बुझानेसे दीवालपर बन गया था उसे अपनी माताके लिये छोड़ा क्योंकि माता पहलेहीसे दूसरे ग्राममें अपने किसी सम्बन्धीके यहाँ गयी हुई थीं। देवीने लोगोंसे कहा कि 'मेरा यह निशान माताको दिखाकर समझा देना कि तुम्हारी रेशम पतिके साथ जा रही है।'

पश्चात् देवी उठ खड़ी हुईं, एक मुट्ठीभर कुश बगलमें दबाया, एक हाथमें अपने अन्तिम कालतकके आश्रय परम प्रिय रामायणकी पुस्तकको लिया और दूसरेमें आरतीकी कटोरी। इस दशामें सिर खोले हुए दुर्गारूपिणी देवी घरसे निकल पड़ीं। आगे-आगे तेजपुञ्ज मूर्ति जा रही थी और इधर-उधर हज़ारों आदमियोंकी भीड़ चल रही थी। जिस बागमें बारात ठहरी थी उसीमें एक पीपल वृक्षके नीचे, जहाँपर पतिकी पीनस रही थी, उन्होंने स्थान पसन्द किया। अति शीघ्र वह स्थान गोबरसे लिपवाया, उसपर कुश बिछा दिये, चन्दन छिड़का और आरतीकी कटोरी अलग रख दी। श्रीरामायण दोनों हाथोंमें दबाकर पूर्वाभिमुख एक पैरके बल खड़ी हो गयीं और जैसा कि घरसे निकलते समयसे राम-राम उच्चारण करती आ रही थीं वैसा ही करती रहीं। दो-तीन मिनट बाद एकदम दक्षिणको मुँह किया और आसन बाँधकर बैठ गयीं। अब ओष्ठ चलते थे लेकिन आवाज़ नहीं थी। एक मिनटके अन्दर ही तमाम शरीरसे लपटें निकलने लगीं। नीचेकी ओरसे शरीर जलने लगा। जितना शरीर जलता था उतनी ही साड़ी जलती थी। बादको जब सिर नीचेको झुका तब आगकी एक लौ पचीस-तीस फीटतक ऊँची गयी। शरीर लगभग जल चुका था तब लोगोंके कुछ नेत्र खुले और सतीका सत् समझमें आया। फिर श्रद्धा और पूज्यभावसे घी, मेवादि चढ़ाया गया, जय-जयकारका घोष किया, और लोगोंने अपनेको धन्य समझा।

इस प्रकार बिना किसी वस्तुके संयोगके स्वतः प्रज्वलित हुई प्रेम-अग्निसे सप्तदशवर्षीया प्रेमिणीका पुनीत शरीर शान्त हो गया। जगत्में यश छा गया, माता-पिताका जीवन धन्य हुआ, और पातिव्रत धर्मका अटल नियम अटल हो गया।

अब समाधि बन गयी है जिसके दर्शन करके और स्थानीय लोगोंसे सतीचरित्र सुनकर दर्शकगण अपनेको कृतार्थ समझते हैं और मुझे तो यही स्मरण आता है कि—

पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ।
सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥

गोपियोंके आँसू

गोपिनुके अँसुवानकौ नीर पनारे भये, बहिकैं भये नारे।
नारेनहूसों भईं नदियाँ, नदियाँ नद ह्वै गये काटि कगारे॥
बगि चलौ तो चलौ ब्रजकों कवि 'तोष' कहैं ब्रजराजदुलारे!
व नद चाहत सिंधु भये, अब नाहिं तो ह्वैहै जलाहल सारे॥

—तोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मबोध

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

"संसारहृत्कः श्रुतिजात्मबोधः
को मोक्षहेतुः कथितः स एव"

श्यामा—हे बहिन ! प्रश्नोत्तरीमें शिष्यका प्रश्न है कि संसारको हरनेवाला कौन है। इस प्रश्नका उत्तर पूज्यपाद भाष्यकारने यह दिया है कि श्रुतिसे उत्पन्न हुआ आत्मज्ञान संसारको हरनेवाला है। और जब शिष्यने मोक्षका कारण पूछा, तो उसके उत्तरमें भी आचार्यने उसी आत्मज्ञानको मोक्षका कारण बतलाया। मैं तुझसे यह पूछती हूँ कि संसार क्या है ? क्या यह जो बाहर दीखता है यही संसार है अथवा इसके अतिरिक्त कोई और भी संसार है ? आत्मबोध यानी अपना ज्ञान सबको है ही, सब अपनेको जानते ही हैं कि हम हैं, कोई ऐसा नहीं जानता कि मैं नहीं हूँ। छोटे-बड़े सभी अपनेको 'हम हैं' ऐसा कहते हैं, तब आत्मबोध अथवा आत्मज्ञानसे संसारका नाश, और मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह कहना कैसे बनता है ? और श्रुतिसे ही आत्मज्ञान क्यों होता है ?

कोकिला—हे बहिन ! यह दीखता हुआ संसार असली संसार नहीं है, संसार तो सबके मनमें रहता है। मनका संसार ही बाहर देखनेमें आता है और यह मनका संसार सबका अलग-अलग है। इसीलिये वेदवेत्ता कहते हैं कि प्रत्येक जीवकी सृष्टि भिन्न-भिन्न है। संसार कहते हैं संसरणको, और संसरण नाम चलनेका है। इसलिये मनका चलना ही संसार है। सुषुप्तिमें जब हम सो जाते हैं तब मन अपने कारण-रूप अज्ञानमें लय हो जाता है। मनके लय होनेसे वहाँ जगत् नहीं भासता, और जगत्के सुख-दुःख भी नहीं भासते। इससे यह सिद्ध है कि मनका संसार ही जीवको सुख-दुःख देनेवाला है, बाहरका नहीं। संसार मनमें ही है बाहर नहीं है; और यदि बाहर है भी तो जीवकी उससे कुछ हानि नहीं है, हानि-लाभ तो मनके संसारसे ही है। अतएव मन ही संसार है। भगवान् पतञ्जलिका कथन है कि अनर्थका मूल कर्माशय है, मूल होनेसे उसका फल जन्म होता है और जन्मसे आयु और भोग होते हैं। श्रुतिमें भी कहा है कि बन्ध और मोक्षका कारण मन है। जबतक मन है तबतक संसार है। मनका नाश ही मोक्ष है।

हे बहिन ! इन सब बातोंसे सिद्ध हुआ कि मन ही संसार है और जन्म-मरणका कारण भी मन ही है। इसलिये जन्म-मरण ही संसार है और यह जन्म-मरणरूप संसार आत्माके अज्ञानसे है। आत्माके ज्ञानसे इसकी निवृत्ति हो जाती है। अतएव पूज्यपाद आचार्यका यह कथन ठीक ही है कि आत्मबोध संसारका हरनेवाला है, और वही मोक्षमें हेतु है।

श्यामा—हे बहिन ! तब क्या बाहरका यह संसार व्यर्थ ही है ?

कोकिला—नहीं, बाहरका संसार वृथा नहीं है। मूर्खोंको बाहरका संसार मोहित करनेवाला है, और चतुर पुरुषोंको वैराग्यकी शिक्षा देता है। संसारकी कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है, सभी चलायमान है, क्षण-क्षणमें बदलती रहती हैं। जो दिन चला गया सो चला गया, वह फिर नहीं आता। बालकपन गया सो गया, फिर वह मुख नहीं दिखाता। बालकपनेके पीछे जवानी और जवानीके पीछे बुढ़ापा आ जाता है। मृत्यु तो बालक, जवान और बूढ़ा देखती ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सबके सिरपर सवार रहती है। चाहे जब चीलके समान झपटा मारकर भाई-बन्धुओंके देखते-देखते ही वह मनुष्यको इस मनुष्यलोकसे ऐसे लोकमें ले जाती है, जहाँसे फिर उसकी कोई खबर ही नहीं आती। धन और ऐश्वर्य आदिका भी यही हाल है, वे आते हैं और चले जाते हैं। ऐसे अस्थिर संसारको भी सत्य मानकर मूर्ख भाई-बहिन स्त्री, पुत्र, धन, धाम आदि-में मन लगाकर उनके होने और न होने दोनोंमें दुखी रहते हैं। चतुर पुरुष इस क्षणभङ्गुर संसारमें मन न लगाकर अपने आत्मा परमेश्वरमें मन लगाकर उसीकी भक्ति करके, इस असार संसारसे पार हो जाते हैं।

हे बहिन ! जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह संसार आत्माके अज्ञानसे सिद्ध है और आत्मज्ञानसे नष्ट हो जाता है। आत्मा एक है, वह सबका अपना आप है, नित्य है, अपरिच्छिन्न है और देहसे भिन्न है। देहकी तीनों अवस्थाओंका साक्षी है। देह जड है, दृश्य है, परिच्छिन्न है, और परिणामशील है। देह और देही (आत्मा) का स्वरूप भगवान्‌ने गीताके दूसरे अध्यायके ११ श्लोकसे लेकर ३० श्लोकतक समझाया है, उन श्लोकोंका मनन करनेसे आत्माका स्वरूप समझमें आ जाता है। उन श्लोकोंका सार यह है कि आत्मा होने, जन्मने, बढ़ने, घटने, बदलने और मरनेसे रहित है। यह छः धर्म देहके हैं, देही यानी आत्माके नहीं हैं। यह आत्मा सब शरीरोंमें एक ही है। जैसे कपड़ा देहसे भिन्न होता है, इसी प्रकार देहसे आत्मा भिन्न है। देहसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी आत्माके अज्ञानसे मनुष्य देहके धर्म जन्म-मरण आदिको आत्माके मानकर यानी अपनेको देह समझकर देहके पालन-पोषणार्थ किसीसे राग और किसीसे द्वेष करता है। जब उसको आत्माका विवेक होता है, तब वह राग-द्वेष छोड़ देता है और संसाररूप बन्धनसे मुक्त हो जाता है, आत्मबोधके अतिरिक्त संसारसे मुक्त होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

हे बहिन ! यह जो तूने कहा कि आत्माको सब जानते ही हैं कि 'हम हैं' कोई ऐसा नहीं जानता कि मैं नहीं हूँ। यह बात ठीक है। अपना सामान्य ज्ञान तो सबको ही है, परन्तु विशेष ज्ञान बिना श्रुतिके किसीको नहीं होता; 'मैं कौन हूँ' इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर श्रुतिवाक्यसे ही मिलता है। सामान्य मनुष्योंका तो कहना ही क्या है, आत्माके जाननेमें शास्त्रकारोंका भी मतभेद है। कोई देहको आत्मा मानता है, कोई इन्द्रियोंको, कोई मनको और कोई बुद्धिको ! कोई आत्माको कर्ता मानता है, कोई भोक्ता मानता है, और कोई कर्ता-भोक्ता दोनों मानता है। कोई आत्माको चेतन कहता है, कोई अचेतन कहता है और कोई चेतन-अचेतन दोनों कहता है। इस प्रकार आत्माके माननेमें मतभेद है। इसलिये वास्तविक आत्माका जानना आवश्यक है, वास्तविक आत्माके जाने बिना मोक्ष नहीं होता। मोक्ष वास्तविक आत्माके ज्ञानसे ही होता है, इसलिये आत्मबोधसे मोक्ष होता है यह आचार्यका कथन ठीक ही है।

हे बहिन ! यह आत्मा श्रुतिप्रमाणसे ही जाननेमें आता है, अन्य प्रमाणोंसे जाननेमें नहीं आता। श्रुति ब्रह्मविद्याका नाम है, ब्रह्मविद्या ईश्वरकी बनायी हुई होनेसे अलौकिक है, अलौकिक ब्रह्मविद्यासे ही ब्रह्म यानी आत्मा जाननेमें आता है। अन्य प्रमाण जीवोंके बनाये हुए होनेसे लौकिक हैं। लौकिक प्रमाणोंसे ब्रह्मका जानना असम्भव है। श्रुति यानी ब्रह्मविद्या भी ब्रह्मको साक्षात् नहीं बताती, किन्तु तात्पर्यवृत्तिसे बताती है, यानी पहले ब्रह्ममें जगत्‌का आरोप करती है, और पीछे आरोप किये हुएका अपवाद यानी बाध करके ब्रह्मको लखाती है क्योंकि किसी सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुके हुए बिना आरोप नहीं हो सकता और निषेध की हुई सब वस्तुओंकी कहींपर अवधि होती है। इसलिये जो जगत्का अधिष्ठान और अवधि है वही सत्य वस्तु है, वही ब्रह्म है, और वही सबका आत्मा यानी स्वरूप है। शुद्ध मनवाला अधिकारी सब जगत्-का बाध करके शेष बचे हुए ब्रह्मको अपने आत्मरूपसे जान लेता है।

हे बहिन ! अशुद्ध मनवाला श्रुतिवाक्यसे भी आत्माको नहीं समझ सकता, शुद्ध मनवाला ही समझ सकता है। इसलिये कल्याणके अभिलाषी भाई-बहिनों-को आत्मबोधकी प्राप्तिके लिये मनको शुद्ध करना चाहिये। मनको शुद्ध करनेका उपाय अष्टाङ्गयोग है, परन्तु अष्टाङ्गयोग आजकलके भाई-बहिनोंके लिये सुलभ नहीं है, इसलिये श्रेयाभिलाषियोंको सगुण ब्रह्मके गुण गा-गाकर मनको शुद्ध करना चाहिये ! विद्वानोंका अनुभव है कि सगुण भगवान् और भक्तोंके गीत गानेसे जितना जल्दी मन शुद्ध होता है उतना जल्दी अष्टाङ्गयोगसे भी नहीं होता। गीता, भागवत, रामायणादि शास्त्रोंमें पूर्वके ऋषि मुनियोंने भगवान्के गीत गाये हैं। उनका अथवा उनमेंसे किसी एकका पठन-पाठन अथवा श्रवण करनेसे मन शीघ्र ही शुद्ध होकर आत्मबोधप्राप्तिके लिये योग्य हो जाता है। शुद्ध मनवाले पुरुषको ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखसे एक बार ही महावाक्यका अर्थ सुननेसे आत्मबोध हो जाता है। और एक बारका हुआ यथार्थ आत्मबोध फिर कभी विस्मरण नहीं होता। वह सर्वदा बना रहता है।

सरला नामकी एक बहिन भागवतका नित्यप्रति पाठ किया करती थी, कुछ दिनोंमें उसका मन शुद्ध हो गया, और गुरु एवं ईश्वरकी कृपासे उसे ज्ञान भी हो गया। फिर भी उसने भागवतका पढ़ना नहीं छोड़ा। बहुत-सी बहिनें उसके पास भागवतकी कथा सुनने जाया करती थीं। और वह बड़े प्रेमसे उनको सुनाया करती थी। कुछ दिनोंमें उसे संसार स्वप्न-सा दिखायी देने लगा और वह इतनी शान्त हो गयी कि कोई उसे कितना ही भला-बुरा कहे उसके मनमें कभी क्षोभ ही नहीं होता था। संसारमें भले-बुरे सब प्रकारके मनुष्य होते हैं, कोई उसकी निन्दा करता, कोई स्तुति करता। परन्तु वह किसीकी निन्दा-स्तुतिपर ध्यान न देकर सर्वदा शान्त बनी रहती। स्तुति करनेवाले परस्पर कहते कि अजी सरलादेवी क्या है, सचमुच देवी है, इसके सङ्गसे बहुत-सी बहिनें सुधर गयी हैं। हमारे पड़ोसकी सब स्त्रियाँ सरल स्वभाववाली हो गयी हैं। चम्पा पहले बहुत क्रोध किया करती थी, अब चाहे कुछ भी कहो, उसे क्रोध ही नहीं आता। चमेली सबसे लड़ा करती थी, गाली-गलौज किया करती थी, अब वह कभी भूलकर भी गन्दी और कड़ी जबान मुँहसे नहीं निकालती, सबसे मीठा बोलती है। बसन्ती देवरानी-जेठानीके लड़कोंको देखकर जला करती थी, अब तो वह उनको अपने बच्चोंसे भी बढ़कर प्यार करती है। मनोहरकी बहू अपने पतिसे वस्त्रा-भूषणोंके लिये दिन-रात झगड़ा किया करती थी, अब वह गहना तो कभी माँगती ही नहीं है, और कपड़ा जो पति ला देता है उसीको सहर्ष पहन लेती है। मोटे कपड़ेसे विशेष राजी रहती है। सालभर हुआ एक नयी बहू आयी है, वह याससे कभी सीधी नहीं बोलती थी, सदा चिल्लाकर बोला करती थी, अब वह ऐसी सीधी हो गयी है कि सबेरे ही उठकर सासके पैर छूती है, और सास कुछ भी कह ले कुछ उत्तर नहीं देती। जिसके सङ्ग-साथसे उसके पास बैठनेवालियोंका जब इस प्रकार दुष्ट स्वभाव छूटकर शुद्ध स्वभाव हो गया है तब उसकी शान्तिका तो कहना ही क्या है। वह तो साक्षात् शान्तिकी मूर्ति ही है। सचमुच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा भाग्य उदय हुआ है कि जिनके पड़ोसमें ऐसी सरल स्वभाववाली, सदाचारिणी, जितेन्द्रिया, ब्रह्मचारिणी, बुद्धिमती सरलादेवी रहती हैं। हमारी स्त्रियाँ भी धन्य हैं जो ऐसी सुशीलाका सङ्ग करती हैं इत्यादि अनेक प्रकारसे शिष्ट पुरुष सरलाकी प्रशंसा करते थे। कई दुष्ट पुरुष निन्दा भी करते थे। कहा करते थे कि अजी इस सरलाने सारे मुहल्लेको बिगाड़ दिया। अभीसे सब वैरागिन-सी हो गयी हैं, जिसको देखो वही माला घुमाती रहती है, जब देखो तब उसीके घर बैठी दिखायी देती हैं। गहने-कपड़ेकी इज्जतको इज्जत ही नहीं समझतीं। बस, सत्सङ्गकी ही बात किया करती हैं। पुरुष कुछ कहे तो सुनती भी नहीं हैं। हाँ, इतना अच्छा है कि पुरुषको कोई स्त्री उत्तर नहीं देती। सम्भव है कि आगे उत्तर भी देने लगेंगी इत्यादि अनेक प्रकारसे बहुत-से लोग निन्दा भी किया करते थे। परन्तु सरलादेवी निन्दा-स्तुतिमें समान ही रहती थीं। हे बहिन ! यह आत्मबोधकी महिमा है कि आत्मज्ञानी भाई-बहिन निन्दा-स्तुति, मानापमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें समान रहते हैं। क्योंकि वे सब भूतोंमें अपने आत्मा एक जनार्दनको ही देखते हैं, इसीलिये वे किसीसे राग-द्वेष नहीं करते। अतएव जबतक जीते हैं यहाँ सुखी रहते हैं और अन्तमें विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं।

सच कहा है—

कुं०—महिमा सम्यकबोधकी, सकै न कोई गाय।
जीवत ज्ञानी पाय सुख, अन्त परमपद पाय॥
अन्त परमपद पाय, बोधकी महिमा अद्भुत।
नर होवे या नारि, पाय पद होवै अच्युत॥
'जयदेवी' भज आत्म, त्याग दे अणिमा लघिमा।
भगवत गाई आप, आत्मज्ञानीकी महिमा॥

ईश्वरकी दयाका ज्वलन्त प्रमाण

(लेखक—एक दीन)

गत ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको दरभंगेके लक्ष्मीसागर तालाबपर श्रीजंगलीबाबा साधुके दर्शन करनेके लिये कादराबाद मुहल्लेके पश्चिम-दक्षिणकी ओर रहनेवाले श्रीकुञ्जविहारी मिश्र वैद्य गये। इनके भाई श्रीसत्यदेव मिश्र भी चिकित्सक हैं और उनका औषधालय दरभंगेमें कादराबाद मुहल्लेमें है। गत भूकम्पके सम्बन्धमें बाबाजी-द्वारा कुशलप्रश्न किये जानेपर श्रीकुञ्जविहारीजीने कहा—

मेरी एक विवाहिता कन्या, जिसकी उम्र लगभग चौदह-पन्द्रह वर्षकी है, बचपनसे ही ईश्वरमें अनुरक्त रहती है। वह त्रिकाल स्नान करती है, नियमसे पूजा-पाठ करती है और उत्तम पुस्तकें पढ़ती है। उसने श्रीबद्रीनारायणधामकी यात्रा भी की है और वहाँसे लौटनेपर वह बड़ी श्रद्धाके साथ भगवत्-मूर्तिकी पूजा करती है। उसकी मुख्य निष्ठा है श्रीभगवान्‌की सेवा और स्मरणमें सदा अनुरक्त रहना। इसमें वह श्रीमीराबाईको अपना आदर्श मानती है। सावित्री, सत्यवान् आदि पातिव्रतसम्बन्धिनी कथाओंको बड़ी श्रद्धासे पढ़ती है और पतिव्रत-धर्मको अपना आदर्श समझती है। श्रीभगवान्‌की सेवामें जीवन लगानेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होनेपर भी वह पिता-माताकी आज्ञाको शिरोधार्यकर विवाहके लिये सहमत हुई थी। परन्तु अब भी भगवत्सेवा ही उसके जीवनका मुख्य व्रत है और वह अपना अधिकांश समय ईश्वर-स्मरणमें ही बिताती है।

गत १५ जनवरीके भीषण भूकम्पके दिन कम्प होनेके समय वह अपने मकानके दोमंजिलेपर अकेले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्याह्न-स्नान कर रही थी। नीचेके लोगोंके भागनेका कोलाहल सुनकर वह नीचे उतरी और सड़कके तरफ निकलकर भागने लगी। इसके निमित्त उसे तीन कोठरियोंको लाँघना पड़ा। इसके बाद जब वह निकली तो निकलते ही उसपर अपने मकानकी दीवार गिर पड़ी, साथ ही दो और मकानोंकी दीवार भी उस-पर पड़ीं। यों तीन दीवारोंका ढेर उसपर पड़ गया और वह उसके नीचे दब गयी। भूकम्पके बाद हमलोग आँगन तथा मकानके अन्य मुख्य-मुख्य स्थानोंसे मलबा हटवाने लगे, क्योंकि हम समझे हुए थे कि लड़की यहीं कहीं दबी होगी। वह इतनी दूर जाकर दबी है यह किसीने नहीं समझा था। तीन दिनोंके बाद जब उस स्थानका मलबा हटाया गया तब वह लड़की अर्धचेतन अवस्थामें वहाँसे निकाली गयी। होशमें आनेपर लड़कीने अपने दबनेकी घटना बतलाकर कहा कि जब दबे रहनेमें मुझे असीम कष्ट होने लगा तब एक परम सुन्दर पीतवस्त्रधारी बालक प्रकट हुए, जिनके रूपकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने मुझे आश्वासन देकर कहा कि 'तुम्हारा कष्ट दूर होगा, जीवनकी शंका मत करो, तुम जीती ही इस अवस्थासे छूट जाओगी।' वह बालक जब मेरी पीठपर हाथ रखते थे तब मुझे न बोझ मालूम होता था, न और कोई कष्ट! इस प्रकार वह मेरी पीठपर हाथ रखकर मेरे कष्टको दूर करते थे और तब मुझको नींद भी आती थी। जब-जब मुझे कष्ट होता, तभी तब वह प्रकट होकर मेरी पीठपर अपना हाथ रखकर मेरा कष्ट दूर करते थे। लड़कीके पिताने कहा कि 'भूकम्पके बाद उस लड़कीकी श्रद्धा-भक्ति श्रीभगवान्‌में और भी अधिक बढ़ गयी है।'

भूकम्पके सम्बन्धमें ऐसी अनेक घटनाएँ हुईं जिनमें विपद्-ग्रस्तोंकी रक्षा हुई, वे बुरी-से-बुरी स्थितिमें पड़कर भी बच गये, ऐसा होना ईश्वरकी कृपा बिना सम्भव नहीं था। परन्तु इस घटनामें विशेषता यह है कि यहाँ विपद्-ग्रस्त एक भगवत्-कृपाकी पात्री थी जिसके कारण श्रीभगवान्‌को स्वयं प्रत्यक्ष होना पड़ा। इससे सिद्ध है कि इस कलिकालमें भी भक्तको भगवान्‌का साक्षात्कार होता है।

जय हो श्रीरघुनाथकी

(लेखक—पं० श्रीगंगाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु')

जय हो भरत विरागीकी,
जय हो लक्ष्मण त्यागीकी,
जय हो पृथ्वीनाथकी,
जय हो श्रीरघुनाथकी ॥ १ ॥

जय हो दशरथ दानीकी,
जय कौसल्या रानीकी,
जय श्रीदीनानाथकी,
जय हो श्रीरघुनाथकी ॥ २ ॥

जय कैकयी विमाताकी,
जय हो लक्ष्मण भ्राताकी,
जय शत्रुघ्न सनाथकी,
जय हो श्रीरघुनाथकी ॥ ३ ॥

जय हो जनकनंदिनीकी,
जय हो विश्व-वंदिनीकी,
जय हो सीतानाथकी,
जय हो श्रीरघुनाथकी ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्त्र

(लेखक—श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

(गतांकसे आगे)

तन्त्रमें साधकके बाह्य भावका उल्लेख करके उसके अन्तर्भावको जागृत करनेके लिये संकेत किया गया है, इस बातपर तनिक विशेष ध्यान देना होगा ।

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये ।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवीं शिवे ॥
पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने ।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च ।
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

महादेव पार्वतीसे कहते हैं कि 'हे प्रिये, तेज ही आद्य तत्त्व, पवन द्वितीय तत्त्व, जल तृतीय तत्त्व, पृथिवी चतुर्थ तत्त्व तथा जगदाधार आकाश पञ्चम तत्त्व है । हे कुलेश्वरि ! कुलधर्मके आचार तथा पञ्चतत्त्व जिस साधकको इस प्रकार विज्ञात हैं वह निश्चय ही जीवन्मुक्त है, इसमें सन्देह नहीं ।'

इससे समझमें आ सकता है कि ये तत्त्व साधनाकी उन्नतिके साथ-साथ फिर उस प्रकार स्थूलभावमें नहीं लिये जाते । इस अन्तर्लक्ष्यकी ओर गये बिना कोई भी साधक अन्तमें परम उच्चावस्थाको प्राप्त नहीं हो सकता । इसी अन्तर्लक्ष्यकी आलोचना अब की जायगी । तेज नहीं रहनेसे साधनमें उत्साह नहीं रहता परन्तु जिस साधकको विषय विषवत् बोध होते हैं, परमात्मा स्वादु बोध होते हैं उसको भगवत्पथमें चलनेके लिये किसी बाह्य उत्तेजक पदार्थकी आवश्यकता नहीं होती । प्रियतम आत्मा या भगवान्‌को चाहे जैसे हो प्राप्त करना ही होगा, जिसके मनमें भगवत्प्राप्तिकी ऐसी प्रबल इच्छा है, उसकी प्रबल इच्छा या तेज ही भगवत्प्राप्तिके मार्गमें उसके अन्दर असीम उत्साह उत्पन्न कर देता है । अतएव भगवत्प्राप्तिकी प्रबल इच्छा ही प्रथम तत्त्व है । यही भक्ति है । श्रीमद्भागवत-में कहा है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥

जब फलकी इच्छा नहीं होती तथा कोई विघ्न-बाधा जिसे प्रतिरोध नहीं कर सकती उसी साधकका चित्त परमानन्दमें अवस्थान करता है, एवं इसी प्रकारकी भगवद्भक्ति ही जीवका परम धर्म है ।

साधनामें यही तेज आवश्यक है, यही प्रथम तत्त्व मद्य है ।

द्वितीय तत्त्व पवन, अर्थात् प्राण तत्त्व है । प्राण जब-तक चञ्चल रहेगा, तबतक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा, इसलिये श्वासपर विजय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है । श्वासपर विजय प्राप्त करनेसे उसीके साथ मन भी स्थिर हो जायगा । इस प्रकारके प्रयत्नके फलस्वरूप आत्म-साक्षात्कार-लाभ हो सकता है । अतएव यह द्वितीय प्रयोजनीय वस्तु है । तृतीय तत्त्व है जल या रस । जिन वस्तुओंमें रस प्रतीत होता है, उन्हीं वस्तुओंके लिये मनमें स्वाभाविक आकर्षण होता है । जब प्राणकी स्थिरताके साथ मनकी स्थिरता आ जाती है, तब एक अनिर्वचनीय रस या आनन्दका अनुभव होता है । इस आनन्दके प्राप्त होते ही जीवको विषयोंसे वैराग्य हो जाता है । चतुर्थ तत्त्व है पृथिवी अर्थात् मूलाधार ग्रन्थि । इस ग्रन्थिको बिना भेद किये जीवकी पार्थिव वस्तु अन्नपानादि, नाना प्रकारके भोग और दृश्य पदार्थके प्रति आसक्ति नहीं जाती । साधनाकी उच्चावस्था प्राप्त होनेपर भी जागतिक आकर्षण नहीं मिटता—इस पृथिवीतत्त्वके जय होनेपर फिर वस्तुओंके स्थूलत्वके प्रति आकर्षण नहीं रह जाता, तब वे स्थूल पदार्थ उसके निकट स्थूल जड पिण्डमय पदार्थ न रहकर मानो सभी चिन्मय हो उठते हैं । इस अवस्थामें साधकको स्थूल वस्तु या बाह्य रूप मुग्ध नहीं कर सकते । तत्पश्चात् पञ्चम तत्त्व आकाश है—जब साधकका चित्त समाधिमग्न होकर जगत्‌को भूल जाता है तब साधकका मन और उसके साथ ही जितनी ज्ञेय वस्तु हैं सब आकाश हो जाती हैं । तब साधक बाह्य आकर्षण या मोहकी सीमासे बाहर आ जाता है । मन महाशून्यमें या परम व्योममें मिल जाता है । तब चैतन्यप्राप्त साधक ब्रह्मानन्दमें विभोर हो उठता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥

तब फिर उसके ज्ञाननेत्रोंके सामने—'नेह नानास्ति किञ्चन' रह जाता है। तन्त्रके मतसे यही शिव-शक्तिके सहयोगमें समरस बोध है।

पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु
इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।

आत्माको जानकर जिनकी कामनाएँ निवृत्त हो गयी हैं, तथा अविद्याको अतिक्रमकर जो कृतात्मा अर्थात् शुद्धात्मा हो गये हैं, उनकी इसी जन्ममें सारी कामनाएँ अर्थात् कामनाओंके बीज नष्ट हो जाते हैं। इस पञ्चतत्त्वसे ही जगत्—ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है।

ये पञ्चतत्त्व जैसे स्थूल हैं, वैसे ही सूक्ष्म सृष्टिके भी मूल हैं। प्रत्येक जीवमें ये पञ्चतत्त्व विद्यमान हैं। यदि जीव कभी मुक्तिपदपर आरूढ़ होता है तब भी इन पञ्चतत्त्वोंकी सहायतासे ही वह अपनी स्वरूपावस्थाको प्राप्त करता है। ये पञ्चतत्त्व ही स्थूलरूपमें भोगदेह हैं और पञ्च मकारद्वारा ही साधन प्रारम्भ किया जाता है। परन्तु दुःखकी बात है कि हमारी बुद्धि इतनी स्थूल हो गयी है कि पञ्चतत्त्वके यथार्थ तत्त्वको हम नहीं समझ पाते। इन पञ्चतत्त्वोंका सूक्ष्म उपादान जीवके मेरुदण्डके भीतर सुषुम्नाके अन्तर्गत चक्रके मध्यमें प्रसुप्त रहता है। इसी कारण सुषुम्नाका उत्थान हुए बिना जीवको ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति नहीं होती, मुक्ति नहीं मिलती, जीवका बन्धन नहीं छूटता। इसीलिये साधक सुषुम्ना-स्थित शक्तिको जाग्रत् करनेकी चेष्टा करते हैं। योगीके योगसाधनका मूल लक्ष्य यही है। तन्त्रोक्त योगी इस मेरुदण्डको ही कुलवृक्ष कहते हैं, तथा उसके मध्यमें स्थित विद्युज्ज्वालाके समान प्रकाशमयी कुल-कुण्डलिनीको परमशिवके साथ संयुक्त करना ही तन्त्रोक्त योगरहस्य है। इसीको लतासाधन भी कहते हैं। कुलकुण्डलिनी ही लता है। हमारे यहाँ साँपको लता कहते हैं। कुलकुण्डलिनी भी सर्पाकार है, जान पड़ता है इसी कारण लता नामसे प्रसिद्ध है। इस मूल वृक्षका अवलम्बन करके साधनाभ्यास सुदृढ़ होनेपर—'तदुपरि जाय लता गोलोक वृन्दावन' अर्थात् कुलकुण्डलिनी शक्ति मस्तकस्थित सहस्रारमें परम पुरुषके साथ मिल जाती है। यहीं साधनाकी परिसमाप्ति है।

तन्त्र कुलका क्या अर्थ करते हैं, देखिये—

न कुलं कुलमित्याहुः कुलं ब्रह्म सनातनम्।

'वंशपरम्पराको कुल नहीं कहते, सनातन ब्रह्म ही कुल-शब्दवाच्य है।' इस ब्रह्मतत्त्वको वस्तुतः जानकर जो पुरुष मोहशून्य या निर्विकार हो सकते हैं वे कुलतत्त्वज्ञ हैं। जो इस साधनाके साधक हैं वे ही कुलसाधक या कौल हैं। इसी कौलकी तन्त्रमें बड़ी प्रशंसा की गयी है।

श्वपचोऽपि कुलज्ञानी ब्राह्मणादतिरिच्यते।

'चाण्डाल भी यदि कुलतत्त्वज्ञ हो तो वह ब्राह्मणसे भी श्रेष्ठ है।' अतएव तन्त्रका कुलतत्त्व कोई सहज बात नहीं है तथा कौल बन जाना कोई मामूली बात नहीं है। तन्त्रमें लिखा है—

कुलं कुण्डलिनी शक्तिरकुलं तु महेश्वरः।

'कुण्डलिनी शक्ति ही कुलशब्दवाच्य है तथा महेश्वरको ही अकुल कहा जाता है।' कहनेकी आवश्यकता नहीं कि कुण्डलिनीतत्त्वका ज्ञान होनेपर साधक ब्रह्मज्ञ हो जाता है और यही तन्त्रोक्त साधनाका मर्मस्थान है।

कुण्डलिनी ही जीवतत्त्व या मुख्य प्राण है। यही यथार्थतः 'अध्यात्म या परा प्रकृति' है। जगत्को यही धारण करती है।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

योगीलोग इसीको प्राणशक्ति कहते हैं।

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत् ॥

'प्राण ही ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक है, प्राण ही जगत्का धारण करनेवाला है। समस्त जगत् ही प्राणमय है।' जो महाशक्ति ब्रह्मस्वरूपसे विकसित होकर स्थूलसे स्थूलतर जगदादिरूपमें परिणत होती है, वह विश्वका मूल या आदि-शक्ति बीज ही प्राण या कुण्डलिनी है।

राधावक्षःस्थलस्थित पुरुष ही श्रीकृष्ण या पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्णको जाननेके लिये सबसे पहले राधाको जानना होगा। वैष्णवजन कहते हैं कि श्रीकृष्णको पानेके लिये श्रीराधिकाका अनुगत होकर भजन करना होगा। यह परम सत्य है। योगी और तन्त्रोक्त उपासक भी यही कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि कुण्डलिनी ही चैतन्यशक्ति है, उसकी कृपाके बिना कोई शुद्ध चैतन्य या निर्गुण ब्रह्मको नहीं जान सकता।

कुलसाधनाके द्वारा ही यह परम तत्त्व अवगत हो जाता है। यही जीवात्माके साथ परमात्माका संयोग साधन है, श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका मिलन आनन्द है। इसीको रेतस्के साथ रजका मिलन भी कहते हैं। वास्तविक तत्त्वको बिना समझे ही कुछ मूर्खोंने इस साधनकी आड़ लेकर न मालूम कितनी अद्भुत और घृणित साधनाओंका आविष्कार कर डाला है।

योगी इसे चन्द्र-सूर्यका मिलन, वा प्राणापानका गतिरोध या प्राणके साथ मनका मिलन कहते हैं। यही नादब्रह्मके साथ विन्दुका योग है। यथार्थ शक्तिसाधना यही है।

अब योगतत्त्वके साथ पञ्च मकारकी साधनाका उल्लेख कर इस लेखको समाप्त करना है।

पञ्चतत्त्वोंके निगूढ़ तत्त्व आगमसारमें किस प्रकार व्याख्यात हुए हैं, यहाँ वे उद्धृत किये जाते हैं। यथार्थ सत्य क्या है?

सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्राद्वरानने।
पीत्वानन्दमयस्तां यः स एव मद्यसाधकः॥

भगवान् महादेवजी श्रीजगदम्बासे कहते हैं कि 'हे वरानने! ब्रह्मरन्ध्रसे क्षरित अमृतधाराका नाम मद्य है, जो साधक उसे पानकर आनन्दित होता है वही मद्य-साधक है।' कैवल्यतन्त्रमें लिखा है—

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनं ज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्॥

निर्विकार निर्गुण परब्रह्ममें जो प्रमदन है वही ज्ञान है—एवं यह ज्ञान जगत्को भुला देता है, इसी कारण इसे मद्य कहते हैं। योगी कहते हैं कि नाभिदेशमें सूर्य हैं तथा तालुमूलमें चन्द्र हैं। सूर्यको योगाभ्यासके बलसे तालुमूलमें आकर्षण कर लानेसे ही चन्द्र-सूर्यका समागम होता है। चन्द्र-सूर्यके इस समागममें साधकको अमृतस्वरूप अनिल या सुधावायुकी अनुभूति होती है। यही मद्यका कार्य करता है। साधक इस अवस्थामें भगवान्के नशेमें चूर हो जाता है, मदोन्मत्तके समान बाह्य ज्ञानशून्य हो जाता है।

मांसके सम्बन्धमें आगमसारमें लिखा है—

मा शब्दाद् रसना ज्ञेया तदंसाद् रसनं प्रिये।
सदा यो भक्षयेद्देवी स एव मांससाधकः॥

'हे प्रिये! मा शब्दसे जिह्वा जानो, और अंस शब्दसे उसके रसन अर्थात् वाक्यको समझो। हे देवि, जो साधक इस मांसका भोजन करते हैं अर्थात् जो वाक्यसंयमी मौनी हैं वही मांससाधक हैं।' जिह्वाको तालुमूलमें प्रवेश करानेसे ही अपने-आप वाक्यसंयम होता है, और वाक्यसंयमसे ही इच्छाका नाश होता है।

मत्स्य—

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स एव मत्स्यसाधकः॥

'गंगा और यमुना अर्थात् इडा और पिङ्गलाके मध्यमें श्वास-प्रश्वासरूपी दो मत्स्य विचरण करते हैं, इन दो मत्स्यों-को जो भक्षण करते हैं वही मत्स्यसाधक हैं, अर्थात् जो प्राणायामादि अभ्यासद्वारा प्राणवायुका निरोध कर समाधिस्थ हो सकते हैं वही यथार्थ मत्स्यसाधक हैं।

मुद्रा—

सहस्रारमहापद्मे कर्णिका मुद्रिता च यत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमम्॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
अतीव कमनीयञ्च महाकुण्डलिनीयुतम्॥
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते॥

'हे देवेशि! सहस्रार महापद्ममें मुद्रित कर्णिकाके मध्यमें आत्मा पारदके समान अवस्थित रहता है। उसका तेज कोटि सूर्यके समान दीप्तियुक्त है तथा कोटि चन्द्रके समान यह सुशीतल और अत्यन्त रमणीय है। उस महाकुण्डलिनीसे युक्त आत्माको जो अनुभव करते हैं वही मुद्रासाधक हैं।'

स्वशरीरस्थ सहस्रदलकमलके अन्तर्गत कर्णिकाके मध्य स्थित कूटस्थके अन्दर पारदके समान निर्मल शुभ्रवर्ण महाकुण्डलिनीयुक्त आत्मा रहता है। उसकी प्रभा चन्द्र-सूर्यकी प्रभाकी अपेक्षा भी अधिक दीप्तिशाली और कमनीय है। वह कुण्डलिनी प्राणवायुके रूपमें देहमें रहती है। रुद्रयामलतन्त्रमें लिखा है—

सा देवी वायवी शक्तिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह वायवी शक्ति या प्राण ही सूत्रात्मा है। उपनिषद्में लिखा है—

वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दब्धानि भवन्ति। तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रंसिषतास्याङ्गानीति। वायुना हि गौतम सूत्रेण सन्दब्धानि भवन्ति।

'हे गौतम! सूक्ष्म वायु ही वह तुम्हारा (पूछा हुआ) सूत्र है। हे गौतम! वायुके सूत्रद्वारा इहलोक, परलोक तथा समस्त भूतगण ग्रथित रहते हैं। हे गौतम! इसीलिये लोकमें मृत व्यक्तिको देखकर कहा जाता है कि उसके अङ्ग-समूह विस्रंसित (शिथिलभूत) हो गये हैं। क्योंकि वायुरूप सूत्रद्वारा ही तो समस्त अंग विधृत होते हैं।'

यह प्राण ही इन्द्रियरूप तथा इन्द्रियभोग्यवस्तुरूपमें दृष्ट होता है। श्रुतिमें लिखा है—

अयं वै नः श्रेष्ठो यः सञ्चरंश्चासञ्चरंश्च न व्यथते यो न रिष्यति हन्तास्यैव सर्वे रूपमसामेति। एतस्यैव सर्वे रूपमभवंस्तस्मादेत एतेनाख्यायन्ते प्राणा इति।

'इन्द्रियोंने उसे जाननेके लिये मनोनिवेश किया, उन्हें ज्ञात हुआ कि वह हमसे श्रेष्ठ है—वह कार्य करते या न करते हुए कभी श्रान्त नहीं होता, विनष्ट नहीं होता। अहो! हम सब उसीका रूप धारण करती हैं। हम सब उसका ही स्वरूप बन गयीं अर्थात् सबने प्राणके रूपको ही आत्मरूपसे ग्रहण कर लिया। इसी कारण इन्द्रियाँ उसीके नामसे अभिहित होती हैं। इन्द्रियोंका व्यापार प्राण-व्यापारके ही अधीन है। इसी कारण प्राण और मनके एक साथ स्पन्दित होनेसे प्राणके संयमसे मनका भी संयम हो जाता है। योगवाशिष्ठमें लिखा है—

यः प्राणपवनस्पन्दः चित्तस्पन्दः स एव हि।
प्राणस्पन्दक्षये यत्नः कर्त्तव्यो धीमतोच्चकैः॥

'प्राणवायुके स्पन्दनको ही चित्तके स्पन्दनके नामसे पुकारते हैं।' अतएव धीमान् व्यक्तिको प्राणस्पन्दनिरोधके लिये यत्न करना चाहिये। अमृतनादोपनिषद्में लिखा है—

यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते दहनान्मलाः।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात्॥

'धातुको दहन करनेसे जैसे उसका मल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियकृत दोष प्राणनिग्रहके द्वारा नष्ट हो जाते हैं।'

बाह्य प्राणस्पन्दन ही जगत्-व्यापारकी मूल अविद्या-शक्ति है। प्राणस्पन्दनके रहते चित्त निरुद्ध नहीं होता, और चित्तके निरुद्ध हुए बिना विषयासक्ति दूर नहीं होती, तथा विषयासक्तिके रहते सुख-दुःखातीत ब्रह्मस्वरूपमें कोई प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः।
सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या
तस्मिन् महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये॥

'जिस अवस्थामें प्रकृतिप्रवाहके निवृत्त होनेपर पुरुष अखण्ड अव्यवधान (ध्याता और ध्येयके भेदसे रहित) आत्माका दर्शन करता है, तथा चित्तवृत्तिकी चरम निवृत्तिसे सुख-दुःखसे अतीत महिमामें (ब्रह्मस्वरूपमें) प्रतिष्ठित होता है।'

मैथुन—

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।
मैथुनाज्जायते सिद्धिर्ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्॥
रेफस्तु कुङ्कुमाभासः कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारो बिन्दुरूपश्च महायोनौ स्थितः प्रिये॥
आकारो हंसमारुह्य एकतश्च यदा भवेत्।
तदा जातं महानन्दं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्॥
आत्मनि रमते यस्मादात्मा रामस्तदुच्यते।
ब्रह्माण्डं जायते यस्मात्तस्माद्ब्रह्म प्रकीर्तितम्॥
अतएव रामनाम तारकं ब्रह्म निश्चितम्।
मृत्युकाले महेशानि स्मरेद्रामाक्षरद्वयम्॥
सर्वकर्माणि सन्त्यज्य स्वयं ब्रह्ममयो भवेत्।
इदन्तु मैथुनं तत्त्वं तव स्नेहात्प्रकाशितम्॥
मैथुनं परमं तत्त्वं तत्त्वज्ञानस्य कारणम्।
सर्वपूजामयं तत्त्वं जपादीनां फलप्रदम्॥
षड्ङ्गं पूजयेद्देवि सर्वमन्त्रं प्रसीदति।

'मैथुन-तत्त्व परम गुह्य तत्त्व है, यही सृष्टि, स्थिति और प्रलयका कारण है। इसीके द्वारा सिद्धि और सुदुर्लभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मज्ञान-लाभ हो सकता है। कुण्डके मध्यमें कुङ्कुमवर्णयुक्त रेफ और बिन्दुरूप मकार महायोनिमें स्थित रहता है। हंसमें आरोहण करके आकार जब एकीभूत हो जाता है तब सुदुर्लभ ब्रह्मज्ञान और परमानन्द उत्पन्न होता है। आत्मामें रमण करनेके कारण ही वह आत्माराम कहलाता है और उसीसे ब्रह्माण्डका उद्भव होनेके कारण वह ब्रह्म कहलाता है। अतः यह रामनाम ही निश्चयपूर्वक तारक ब्रह्म है। हे महेशानि! मृत्युकालमें 'राम' इन दो अक्षरोंका स्मरण करनेसे जीवका कर्मबन्धन छूट जाता है तथा वह स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है। यह मैथुन-तत्त्व परम गुह्य और तत्त्वज्ञानका कारणस्वरूप है। सब पूजाका सारतत्त्व और जपादिका समस्त फल इससे प्राप्त होता है। हे देवि! षडङ्गपूजाके अनुष्ठान करनेसे सब मन्त्र प्रसन्न होते हैं।'

संस्कृत श्लोकोंका उपर्युक्त अर्थ करनेसे ठीक मर्म ध्यानमें नहीं आता। इनका अर्थ भी विशेषभावसे ज्ञातव्य हैं। कुण्डमध्यमें कुङ्कुमवर्णयुक्त रेफ और बिन्दुरूप मकार महायोनिमें स्थित है—इसका भावार्थ यह है कि शरीरके भीतर नाभिचक्रमें कुङ्कुमकी आभाके समान रक्तवर्ण तेजस्तत्त्व रहता है—यही 'रं' बीज है। उसी तेजस्तत्त्वके साथ महायोनिमें बिन्दुरूप मकार रहता है। अर्थात् ब्रह्मयोनि—कूटस्थज्योतिर्मण्डलके मध्य जो बिन्दु रहता है वही मकार है। यहाँ पूर्वोक्त 'रं' बीज वा तेजस्तत्त्वके साथ एक 'आ'कार संयुक्त करना होगा, तब दोनोंके योगसे 'राम' नाम उत्पन्न होगा और यही रामनाम तारक ब्रह्म है। उसका आकार क्या है? वह हंसपर आरूढ़ है—हंस अर्थात् अजपारूपमें श्वास-प्रश्वास। इसी श्वास प्रश्वासमें लक्ष्य या मनको लगाकर साधन करनेसे नाभिचक्रस्थित तेजस्तत्त्वरूप 'र' कारके साथ आज्ञाचक्रस्थित बिन्दुरूप 'म' कारका मिलन होता है। इस प्रकार प्राणापानकी गति रुद्ध होनेपर श्वास मस्तकमें स्थिर होता है। इस प्रकारकी स्थितिलाभ होनेपर परमानन्दकी प्राप्ति होती है, जीवका यही तारक मन्त्र है—

निःश्वासोश्वासरूपेण मन्त्रोऽयं वर्त्तते प्रिये।

'इस निःश्वास और श्वास वायुकी सहायतासे मन्त्रका मनन नहीं करनेसे वास्तविक मन्त्र चैतन्य नहीं होता।' प्राणायामद्वारा वायवी वा प्राणशक्ति कुण्डलिनी जब सहस्रारमें जाकर सहस्रारस्थित महेश्वरके साथ सम्मिलित होती है, तभी जीवको मोक्षकी प्राप्ति होती है। यही बात देवीस्तवनमें है—

राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा।
प्रभुत्वं तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि॥
निर्वाच्यो निर्गुणो वापि सत्त्वेन परिवर्जितः।
परं पौरुषमाप्नोति यावत्त्वं मस्तकोपरि॥

गौतमीय तन्त्रशास्त्रमें भी लिखा है—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
एतत्किञ्चिन्न सिद्ध्येत्तु यन्त्रमन्त्रार्चनादिकम्॥
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा सप्रसवा यान्ति यन्त्रमन्त्रार्चनादयः॥

'जबतक मूलपद्मविलासिनी कुलकुण्डलिनी शक्ति निद्रिता है तबतक माताका मन्त्र, यन्त्र, जप, अर्चनादि कुछ भी किसी रूपमें फलप्रद नहीं होता।' किन्तु भाग्यवश यदि वह जाग्रत् हो जायँ तो यन्त्र, मन्त्र, जप, अर्चनादि सब अनुष्ठान सुन्दर फल प्रदान करते हैं।

वस्तुतः देवीकी शक्तिके बिना स्वतन्त्रभावसे किसीमें कुछ करनेकी शक्ति नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे लेकर जितने देवगण, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, भृङ्ग, लता, तृण आदि जीव हैं, कोई उस निखिल ब्रह्माण्डकी अधीश्वरीकी आज्ञाके बिना स्वाधीनतापूर्वक कुछ भी नहीं कर सकता। माँ! तुम प्रसन्न होकर जब साधकके मस्तकपर प्रतिष्ठित होती हो तब वह क्या नहीं कर सकता? जो अति निन्दित सब सत्त्वोंसे विवर्जित पशुतुल्य जीव है वह भी तुम्हारी कृपासे निर्वाणमुक्ति लाभ कर सकता है। तुम नाना आकारसे, नाना आधारसे जगत्के शुभाशुभ समस्त कर्मोंको निष्पन्न करती हो। हम मूर्ख अज्ञ जीव समझते हैं कि सब कुछ हमीं करते हैं। तुम कालरात्रिरूपमें जगत्के जीवोंको भीत—सन्त्रस्त करके मृत्युरूपसे ग्रास करती हो, फिर जगदाधिष्ठात्री जगद्धात्रीरूपमें जगत्की माँ होकर जगत्जीवका परिपालन करती हो। तुम चामुण्डारूपमें दुष्ट दैत्योंके दर्पको ध्वंस करके उनका रुधिर पान करती हो। फिर भुवनमोहिनी शिवसीमन्तिनी गौरीरूपमें विश्व-ब्रह्माण्डको विमुग्ध कर रखती हो! तुम कृपा करके जीवकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशेष दुर्गतिको दूर करके त्रिलोकपूज्या दुर्गारूपमें जीवोंके शान्तिविधानके लिये उन्हें परम शान्तिरूपा मुक्तिऐश्वर्य प्रदान करती हो। माँ अभये ! हम अनेकों शत्रुओंके फेरमें पड़कर दिन-रात उत्पीड़ित हो रहे हैं, एक बार 'मा भैः मा भैः' रवसे दिङ्मण्डलको कम्पित करती हुई हमें अभय दान करो।

यह माँ भगवती ही समस्त विश्वका प्राण है। जब माँ शक्तिरूपमें जगद्व्यापारमें रत होती हैं तब निर्गुण ब्रह्म अचैतन्यभावसे माँके पैरोंके तले पड़ जाते हैं, तभी ब्रह्माण्डका पुनः-पुनः सृजन, पालन और ध्वंस होता है। पुनः जब उसमें पुरुषभाव जाग्रत् हो उठता है तब प्रकृति पुरुषमें आत्मसमर्पण करती है। यही शिव-शक्ति-सम्मिलन है। यह मिलन ही महासमाधिकी अवस्था है। योगीकी समाधि और ब्रह्माण्डका महाप्रलय एक ही वस्तु है।

सारे ही जगत्जीव पुरुष-प्रकृतिमय हैं। यह दोनों शक्तियाँ मिलकर 'राम' बन जाती हैं। यह रामनाम ही जीवका तारक मन्त्र है। परन्तु हम सभी सहज अवस्थासे च्युत हो गये हैं, इससे हम 'राम-राम' नहीं बोल सकते—'मरा-मरा' बोलते हैं। परन्तु इस 'मरा-मरा' (देहेन्द्रियादि) के द्वारा ही 'राम' में (आत्मचैतन्यमें) पहुँचना होगा। यही उलटा नाम है—इस उलटे नामकी साधना ही प्रचलित है। श्वासके बहिर्गमनागमनमें जगद्दृष्टि नहीं ठहरती, इसपर ध्यान देनेसे, इस 'मरा-मरा' के जप करते रहनेसे श्वास ऊर्ध्व हो जायगा, इसका बहिर्गमनागमन बन्द होते ही प्राण सुषुम्नामें प्रवाहित होने लगेंगे, तभी जीवनमें परमानन्दकी प्राप्ति होगी।

योगशास्त्रमें लिखा है—

यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते।
तदा समरसत्वञ्च समाधिरभिधीयते॥

'प्राण क्षीण होकर मनके लय होनेपर जिस समरसभावका उदय होता है उसीका नाम समाधि है।' वही तारक ब्रह्मनाम है। तन्त्रका यही सारांश है।

खोज

प्रिय ! इतना क्यों भरमाया ?
उदधि-वीचिमें, सरिता-जलमें,
सघन गहनमें, अनिल-अनलमें,
अगम गगनमें, तारक-दलमें,
खोजा सिगरी वसुंधरामें अपना रूप न दिखलाया।
प्रिय ! इतना क्यों भरमाया ?

वारि-कणोंमें, खग-गानोंमें, हृत्कंपनमें, ओ, तड़पनमें
ऊषाकी मृदु मुसकानोंमें, अपने अनुपम यौवन-धनमें
प्राचीके चिर आख्यानोंमें, खोजा, नहीं मिला जीवनमें,
तरु-पत्रोंके मर्मर स्वरमें खोज-खोजकर फिर आया। बैठ गया थक हार, तुझे तब हृदयमध्य हँसते पाया।
प्रिय ! इतना क्यों भरमाया ? प्रिय ! इतना क्यों भरमाया ?

—गौरीशङ्कर मिश्र 'द्विजेन्द्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे विश्वविद्यालय और धार्मिक शिक्षा

(लेखक—बाबा श्रीराघवदासजी)

प्राचीन भारतीय समाजमें शिक्षाका उद्देश्य छात्रको शीलवान् बनाना था। इसलिये आश्रमोंका वातावरण तथा शिक्षाप्रणाली ऐसी रक्खी जाती थी जिसमें बालक बचपनसे परिश्रम, स्वावलम्बन तथा उच्चादर्श-का अभ्यासी हो। अध्यापकोंका आचरण भी इसी ध्येयकी पूर्तिके लिये अत्यन्त सरल और बाह्य आडम्बर-से शून्य होता था। बुद्धिमान् और प्रभावशाली होते हुए भी उन्होंने स्वेच्छासे निर्धनता स्वीकार की थी। हर एक प्रकारकी सुविधा मिलनेके साधन होनेपर भी स्वेच्छासे उनसे दूर रहकर कष्टमय तथा स्वावलम्बनपूर्ण जीवन व्यतीत करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। वे जानते थे कि मनुष्यजीवनका उद्देश्य अधिक ऐश्वर्य, धन या प्रतिष्ठा प्राप्त करना नहीं, बल्कि अपनेको भगवान्‌का अंश कहलाने योग्य बनाना है। परन्तु आजकलका दृष्टिकोण यह नहीं है। चाहे वह अंगरेजी विश्वविद्यालयोंकी पढ़ाई हो या संस्कृत कालेजोंकी; इन संस्थाओंमें छात्रको शीलवान्, स्वावलम्बी बनानेकी ओर विशेष ध्यान न दे, किस प्रकार वह अधिक अधिकार, ऐश्वर्य, धन आदि प्राप्त कर सकेगा, बस इसी ओर ध्यान दिया जाता है। किसी भी विश्वविद्यालयके पाठ्यक्रम तथा उसके वातावरणकी ओर देखनेसे यह बात स्पष्ट मालूम हो सकती है। आज छात्र और अध्यापक जितने ही अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर पहुँचते हैं, प्रायः वे उतने ही अधिक विलासी, शारीरिक परिश्रमको अनावश्यक समझनेवाले और अधिक-से-अधिक सुविधा प्राप्त करनेकी ओर प्रवृत्ति रखनेवाले होते हैं। प्राचीन समयमें जहाँ शिक्षाका उद्देश्य शीलवान् या श्रीटालस्टायके शब्दोंमें दूसरोंसे कम-से-कम लेकर दूसरोंको अधिक-से-अधिक देना था, वहाँ आज शिक्षाका उद्देश्य स्पष्टरूपसे तो नहीं, अप्रत्यक्षरूपसे यही है कि दूसरोंसे अधिक-से-अधिक प्राप्त कैसे किया जाय। और इसका कारण है पश्चिमीय शिक्षाप्रणालीका प्रभाव। यूरोपमें और खासकर इङ्गलैण्डमें एक समय ऐसा था जब विश्वविद्यालयोंमें इसलिये पढ़ायी होती थी कि अच्छे पादरी तैयार हों; परन्तु सतरहवीं शताब्दीसे इस विचारमें परिवर्तन हुआ और विश्वविद्यालयोंमें 'जंटिलमैन' सभ्य बनानेका रिवाज चल पड़ा। आज भी आक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंमें 'जंटिलमैन' ही बनाये जानेपर विशेष जोर है। पर ये जंटिलमैन या पादरी उस जमानेमें तो शोभा पा सकते थे जब यन्त्रयुग नहीं था। अब तो यन्त्रयुग आ गया है। इस यन्त्रयुगमें 'जंटिलमैन' को स्थान कहाँ? इसके लिये तो दूसरे ही ढंगके लोग चाहिये। इसलिये आज इन विश्व-विद्यालयोंमें भी परिवर्तन हो रहे हैं। अब कलाविद् पैदा करनेकी ओर लोगोंका ध्यान जा रहा है। जिस इङ्गलैण्डमें सालमें चालीस दिन खाने लायक अन्न पैदा होता है उस इङ्गलैण्डके किसानोंको अधिक योग्य बनानेकी ओर सरकारका ध्यान नहीं है, पर वह इङ्गलैण्ड और आस्ट्रेलियाके बीचका रास्ता हवाई-जहाजसे कम-से-कम समयमें किस प्रकार तय किया जा सकता है, इसके लिये लाखों रुपये खर्च कर डालती है। आज पादरीकी उतनी खोज नहीं जितनी पाइलाटकी—हवाईजहाज चलानेवालेकी। इससे युगपरिवर्तनका अनुभव हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर क्या इससे शिक्षाका मुख्य हेतु सिद्ध हो जायगा ? हर-एक मनुष्यकी आर्थिक दुःस्थिति, परस्पर अविश्वास तथा समाजमें बढ़नेवाली बेकारीको देखकर तो यही कहना पड़ता है कि बुद्धिमानोंको—क्योंकि यही समाजके नेत्र होते हैं—अपनी जीवन-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन करनेके लिये नये ही ढंगकी शिक्षा-प्रणालीका अवलम्बन करना होगा । वह प्रणाली होगी अपने लिये समाजसे कम लेनेकी और समाजको अधिक-से-अधिक देनेकी । हमारी शिक्षाका उद्योग अधिक ऐश्वर्य, धन या अधिकार प्राप्त करना न होकर जीवनपर्यन्त अपनेको एक विशिष्ट प्रकारके ढाँचेमें ढालनेके लिये—शीलवान् बनानेके लिये संयमी जीवन व्यतीत करना होगा । 'उच्च विचार और सादी रहन-सहन' इस कहावतको साहित्यकी या बोलचालकी ही चीज न रखकर, जीवनमें परिणत करना होगा ।

आज कुछ पाश्चात्य देशोंमें गरीबोंके साथ रहनेकी, उनका सुधार करनेके लिये अपने भी गरीब बनकर गरीबीमें जीवन-निर्वाह करनेकी जो योजना चल रही है वह यह सूचित करती है कि इस युगकी शिक्षा-प्रणाली श्रेयस्कर नहीं है, उसमें परिवर्तनकी आवश्यकता है । पर इस परिवर्तनका कारण आर्थिक समस्या मानी जा रही है । किन्तु जीवनपर दृष्टि डालनेसे यह ज्ञात हो जायगा कि हमारा सुख बाहरी जड पदार्थोंपर नहीं, बल्कि हमारी मानसिक अवस्थापर ही अधिक निर्भर करता है । मनुष्यके शरीरके दो भाग किये जा सकते हैं—एक शरीर और दूसरा आत्मा । शरीरको सुव्यवस्थित रखनेके लिये समाज-सत्तावादियोंद्वारा जोरोंका प्रयत्न किया जा रहा है । इसके लिये कोई भी उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करेगा । परन्तु मनुष्यमें जबतक बुद्धि है, और आदर्शके लिये सर्वस्व होम करनेकी मनकी तैयारी है तबतक केवल अन्न-वस्त्रसे उसको सन्तोष नहीं हो सकता । जब कि महात्मा सुकरात और भगवद्भक्त माता मीराबाई प्रसन्नतापूर्वक जहरका प्याला पीकर भी अपने आदर्शको छोड़नेके लिये तैयार न हुईं तब इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यकी बुद्धिकी उड़ान बहुत ऊँची है । वह भौतिक सुखमें ही अपना श्रेय नहीं समझता । आज रूसमें समाजसत्तावादी राज्य होनेपर भी बौद्ध-धर्मके अध्ययनकी ओर विद्वानोंका मन आकर्षित हो रहा है—यह भी इसी बातका द्योतक है । बीसवीं शताब्दिमें 'ईश्वर मर गया' कहनेवाले जर्मन विद्वान् नित्शेको भी 'God-man' देव-मनुष्यकी कल्पना करनी पड़ती है और वह देव-मनुष्य केवल धनी या अधिकारसम्पन्न नहीं, बल्कि मानवी गुणोंका पुतला है । इससे यह स्पष्ट होता है कि शरीरके साथ ही बुद्धि-विकासकी ओर भी—शुद्ध बुद्धिकी ओर भी सहसा ध्यान जाता है । और इसीलिये हमारे गायत्री-मन्त्रमें भगवान्से बुद्धिको प्रेरणा करनेके लिये प्रार्थना की गयी है । और जहाँ बुद्धि-शुद्धि—विकासकी बात आयी कि हमें भगवद्भक्तिकी आवश्यकता अनुभव होने लगेगी । आज भगवद्भजनकी ओटमें जो सामाजिक अत्याचार कुछ लोगोंद्वारा किये जा रहे हैं, उससे भगवद्भक्तिको ही हीन समझना या उसको मिटा देनेका सङ्कल्प करना ठीक वैसी ही बात होगी जैसी किसी पुरुषकी असावधानीसे कहीं आग लग जानेपर आगका ही बहिष्कार करनेका बीड़ा उठाना । भक्ति तो हृदयकी चीज है । इसलिये उसकी कसौटी शुद्ध प्रेमपूर्ण व्यवहार है । बाह्य दिखलावा या तिलक-माला भक्तिका चिह्न नहीं, बल्कि एक पद्धतिका रूप है । इसलिये कि हीरा कूड़ेमें पड़ा है, कूड़ेके साथ उसे फेंक देना उचित न होगा । मध्यकालीन भारतीय सन्तोंने और वर्तमान समयके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकृष्ण परमहंस महाराजादि भगवद्भक्तोंने हमको अपने जीवनसे बतलाया है कि भक्तिके लिये धन-सम्पत्ति आदि बाह्य साधनोंकी जरूरत नहीं है। इतना ही नहीं, वरं ये साधन अथवा बाहरी आडम्बर भक्तिमार्गके लिये प्रायः बाधक हैं।

इसलिये हमारे विश्वविद्यालयोंमें—क्योंकि विश्व-विद्यालय विद्वानोंका आगार है—देश-कालानुरूप परिवर्तन करनेके लिये योग्य धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध होना ही चाहिये। और इसकी जिम्मेवारी उन विद्वानोंपर अधिक है जो अपनेको आस्तिक मानते हैं। क्योंकि आज आस्तिकता और समाजसेवामें सर्वथा विरोधाभास देखनेका जो जोरोंसे प्रयत्न किया जा रहा है, उसका सुन्दर उत्तर भी इसी प्रकार दिया जा सकेगा। केवल भौतिकवादी लेनिन जब गरीबीका व्रत लेकर अपने अनुयायियोंसे उस जीवनक्रमका सख्तीके साथ पालन करवानेमें उद्यत हुआ है तब अध्यात्मवादको श्रेयस्कर माननेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे भी उससे भी अधिक उत्साहके साथ इस व्रतको धारणकर अपने मतका महत्त्व संसारपर जाहिर कर दें।

अध्यात्मवाद कसौटीपर कसा जा रहा है। इसलिये मैं सभी आस्तिक विद्वानोंसे नम्रतापूर्वक यह प्रार्थना करूँगा कि वे इस समय दृढ़तासे अपने पक्षका क्रियात्मक समर्थन करें, जिससे हमारे विश्वविद्यालयोंपर उनका योग्य प्रभाव पड़े और सारी शिक्षाका रुख छात्रोंको शीलवान् बनानेकी ओर हो जाय।

भक्त-गाथा

(भक्त राजा चित्रकेतु)

प्राचीनकालमें सूरशेन नामक देशमें चित्रकेतु नामक सार्वभौम सदाचारी भगवद्भक्त राजा राज्य करते थे। राजा बुद्धि, बल, विद्या, श्री, कीर्ति, उदारता, ऐश्वर्य, रूपलावण्य आदिसे सम्पन्न थे। पृथ्वी कामधेनुकी भाँति उन्हें मन-इच्छित वस्तु देती थी। उनके बहुत-सी रानियाँ थीं परन्तु सन्तान नहीं थी। राजा बुद्धिमान् होनेपर भी मोहवश सन्तानके अभावसे सदा दुखी रहा करते थे। एक बार परदुःखकातर और परोपकारपरायण अंगिरा ऋषि सदाचारी और भगवान्‌के भक्त राजापर अनुग्रह करके उन्हें भगवन्मार्गपर सुदृढ़ करनेके उद्देश्यसे राजाके यहाँ पधारे, परन्तु राजाको पुत्रके अभावमें दुखी देखकर उन्होंने ज्ञानोपदेश न देकर त्वष्टादेवताका यज्ञ किया और यज्ञ पूर्ण होनेपर यज्ञावशेष अन्न राजाको देकर कहा कि यह अन्न अपनी रानीको खिला दो, इससे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा और उससे तुम्हें हर्ष-शोक दोनों ही मिलेंगे। ऋषिने सोचा कि भगवद्भक्ति और सदाचार होनेपर भी राजाके मनमें अभी पुत्रका मोह है। जबतक यह पुत्र-प्राप्तिके अनन्तर पुत्रसे होनेवाले दुःखको न देखेगा तबतक इसका मोह दूर होना कठिन है; इसलिये अभी ज्ञानोपदेश न करके उन्होंने यज्ञ कराके राजाकी पुत्रकामना पूरी की। तदनन्तर वे वहाँसे चले गये। राजाने वह अन्न अपनी सबसे बड़ी और श्रेष्ठ रानी कृतद्युतिको दिया और रानीने उसे भोजन करके राजासे गर्भ धारण किया। समय पूरा होनेपर बालक उत्पन्न हो गया। राजकुमारके जन्मसे राजाको बड़ी ही प्रसन्नता हुई, सारे राज्यमें आनन्द-बधाइयाँ बटने लगीं। परन्तु राजाकी दूसरी रानियोंको बड़ा सन्ताप हुआ, वे सब कृतद्युतिको पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हुआ देखकर जलने लगीं और उन्होंने सौतिया-डाहसे विवेकको खोकर विद्वेषवश राजकुमारको जहर दे दिया। राजकुमारकी मृत्यु हो गयी। राजा और रानी कृतघ्नति दुःखसागरमें डूब गये। राजा सिर पीट-पीट-कर रोने लगे। यहाँ एक तो यह सीखनेकी बात है कि एकसे अधिक विवाह करनेसे इस प्रकार अनर्थकी सम्भावना रहती ही है। राजा दशरथके मरण और श्रीरामके वनवासमें भी लौकिकदृष्टिसे यह सौतियाडाह ही प्रधान कारण था। अतः पुरुषको एक स्त्री रहते दूसरा विवाह भूलकर भी नहीं करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि संसारके तमाम विषय वियोगशील और दुःखमिश्रित हैं। जिस वस्तुकी प्राप्तिमें जितना सुख होता है, उसके नाश होनेपर उतना ही अधिक दुःख होता है। राजा चित्रकेतुको पुत्रकी प्राप्ति होनेपर जितना सुख हुआ था, उससे अनन्त गुना अधिक दुःख पुत्रकी मृत्युपर हो रहा है। राजा और रानी दोनों तरह-तरहके विलाप करके अति सन्तापसे बहुत ऊँचे स्वरसे डाह मारकर रो रहे हैं। उन दोनों स्त्री-पुरुषोंके विलाप-को सुन-सुनकर आसपासके सभी स्त्री-पुरुष दुखी हो-कर रोने लगे। राजा चित्रकेतुको ऐसी विपत्तिमें पड़ा देखकर महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारद दयावश वहाँ आ पहुँचे। वे राजाको मृत बालकके पास मुर्देकी भाँति अचेत पड़े हुए देखकर नाना प्रकारकी युक्तियोंसे उन्हें समझाने लगे। उन्होंने कहा—

'हे राजन्! तुम जिसके लिये इतना शोक कर रहे हो, रो रहे हो, बताओ तो सही, वह तुम्हारा कौन है? इस जन्मसे पहले तुम इसके कौन थे और अब आगे कौन होओगे? तुम यह निश्चयरूपसे समझ लो कि जैसे जलके प्रवाहसे एक जगहका बालू अलग-अलग कई जगह बह जाता है और दूर-दूरसे आ-आकर एक जगह इकट्ठा हो जाता है, ऐसे ही नियन्त्रणकर्त्ता कालके द्वारा सब देहधारियोंका अपने-अपने कर्मवश कभी संयोग और कभी वियोग हुआ करता है। यह पिता-पुत्रका सम्बन्ध आरोपित है, केवल कल्पनामात्र है। हमारे और तुम्हारे ये शरीर न जन्मके पहले थे, न मृत्युके बाद रहेंगे। इस समय भी वास्तवमें सत् नहीं है अतएव शरीरके नाशसे तुम शोक न करो।'

ऋषियोंके वचन सुननेसे राजाको कुछ सान्त्वना मिली और वह उठकर आँसू पोंछकर कहने लगे—'हे महात्माओ! आप दोनों कौन हैं? आप बड़े ही ज्ञानी और महात्माओंमें भी महात्मा हैं। मुझ-सरीखे विषयोंमें फँसे हुए लोगोंको ज्ञान देनेके लिये आप-सरीखे भगवत्प्रिय सिद्ध महात्मा निःस्वार्थभावसे अवधूत-वेष धारण किये पृथ्वीमें घूमा करते हैं। मैं ग्राम्य पशुके समान मूढबुद्धि हूँ, घोर अन्धकारमें डूब रहा हूँ। आप दोनों महात्मा ज्ञानरूपी दीपक जलाकर मुझको बचाइये।

राजाके ऐसे वचन सुनकर महर्षि अङ्गिराने कहा—'हे राजन्! मैं वही अङ्गिरा हूँ, जिसने तुम्हारी प्रबल इच्छा देखकर तुम्हें यह पुत्र दिया था, और मेरे साथ ये महात्मा ब्रह्मापुत्र देवर्षि नारदजी हैं। हमको यह पता लगा कि इस समय तुम पुत्रशोकसे दुस्तर अज्ञानके समुद्रमें डूब रहे हो। तुम भगवान्‌के भक्त और ब्रह्मण्य हो, तुम्हारे लिये इस तरह मोहमें निमग्न होना उचित नहीं है। तुम्हारे इस मोहका नाश करनेके लिये ही हम दोनों यहाँ आये हैं। हे राजन्! मैं जब पहले आया था तभी तुम्हें ज्ञानोपदेश करनेका मेरा विचार था, परन्तु उस समय तुम्हें पुत्र-प्राप्तिके मोहमें पड़े देखकर मैंने पुत्र ही दिया। अब तुमको यह अच्छी तरह अनुभव हो रहा है कि जिनके पुत्र हैं, उन गृहस्थोंको कितना सन्ताप होता है। जबसे पुत्र-प्राप्ति-की इच्छा मनमें जागृत होती है, तभीसे दुःखका आरम्भ हो जाता है। पहले अभावका दुःख रहता है, गर्भाधान हो जानेपर दस महीनेतक माताको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना प्रकारके दुःखोंका सहन करना पड़ता है। प्रसव-कालकी पीड़ा तो असह्य होती है। बच्चेका जन्म होनेपर उसके लालन-पालनमें माता-पिताको महान् कष्ट होते हैं। परन्तु मोहवश वे माता-पिता इस कष्टमें सुखका स्वप्न देखते हैं। तदनन्तर जब वियोग होता है, पुत्रको छोड़कर मरना पड़ता है, अथवा पुत्र पहले मर जाता है तब तो दुःखका कोई पार ही नहीं रहता। आज तुम भी इसी दुःखसे ग्रसित हो रहे हो। यह निश्चय समझो कि स्त्री, धन, घर, ऐश्वर्य और नाना प्रकारकी सम्पत्तियाँ ये सभी वस्तुएँ मोहके कारण इसी प्रकार जीवको सन्ताप देनेवाली हैं। शब्दादि विषय, राज्य, धन, पुत्र, स्त्री, स्वामी आदि सभी चीजें अनित्य और क्षणभंगुर हैं। ये पृथ्वी, राज्य, बल, खजाना, भृत्य, दीवान, सुहृद्, मित्र आदि सभी शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाले तथा गन्धर्वनगरकी भाँति (बिना ही हुए नेत्र-दोषसे आकाशमें दीखनेवाले पदार्थोंकी भाँति) जरा-जरा-सी देरमें दीखनेवाले और नष्ट होनेवाले हैं। ये सभी स्वप्न या मायामनोरथके सदृश असत् हैं। हे राजन्! ये सभी दृश्य पदार्थ मनोकल्पित हैं, यथार्थ नहीं हैं। क्योंकि अभी दीखते हैं और दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाते हैं। अपनी-अपनी भावनाके अनुसार ही ये सुख-दुःखदायी दिखायी देते हैं। यह द्रव्य-ज्ञान और क्रियात्मक शरीर ही शरीराभिमानी जीवको नाना प्रकारके सन्ताप देनेवाला है। इसलिये एकाग्र-चित्तसे तत्त्वका विचार करो और एक सत्-चित्-आनन्दघन परमात्माको छोड़कर और सभी वस्तुओंको असत् समझकर शान्ति धारण करो।'

तदनन्तर देवर्षि नारदने शोकसे व्याकुल राजाको सान्त्वना देनेके लिये राजकुमारके जीवात्माका आवाहनकर उसे जीवित किया, और कहने लगे—'हे जीवात्मा! देखो, तुम्हारे माता-पिता और बन्धु-बान्धव तुम्हारे लिये रो रहे हैं। तुम इनके पुत्र और बन्धु हो, इनके पास क्यों नहीं रहते।' जीवात्माने कहा—'ये किस-किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए थे? मैं तो अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये देवता, मनुष्य, पशु आदि अनेकों योनियोंमें भ्रमण कर रहा हूँ। जीव परस्परमें कभी भाई, कभी पिता, कभी पुत्र, कभी मित्र, कभी शत्रु, कभी जातीय, कभी विजातीय, कभी रक्षक, कभी विनाशक, कभी आत्मीय, कभी उदासीन बनते रहते हैं। यहाँ कौन किसका अपना और यथार्थ सम्बन्धी है? ये लोग मुझे पुत्र मानकर रोनेके बदले शत्रु समझकर खुशी क्यों नहीं मनाते? जैसे खरीद-बिक्रीकी सोना-चाँदी आदि चीजें खरीदने-बेचनेवाले व्यापारियोंके पास जाती-आती रहती हैं, इसी प्रकार जीव भी नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्मता-मरता है। यहाँ घर, स्त्री, पुत्र, आदिका कोई भी सम्बन्ध सच्चा और स्थायी नहीं है। जितने दिन जिसके साथ जिसका सम्बन्ध रहता है उतने दिन उसका उसपर मेरापन रहता है। आत्मा नित्य शुद्ध है, परन्तु जितने काल-तक वह शरीरस्थ होकर जिसके पास रहता है उतने कालतक उस जीवात्मापर उसका स्वत्व रहता है। आत्मा वास्तवमें न कभी मरता है, न जन्मता है। आत्मा नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म, सर्वाधार और स्वयंप्रकाशित है। वस्तुतः श्रीभगवान् ही अपनी मायाके गुणोंद्वारा विश्वरूपमें प्रकट होते हैं। आत्माके लिये कोई अपना-पराया या प्रिय-अप्रिय नहीं है। वह एक है, और हित तथा अहित करनेवाले मित्र-शत्रु आदि नाना प्रकारकी बुद्धियोंकी साक्षीमात्र है। आत्मा साक्षीरूप-से सदा उदासीनवत् रहता है, वह किसी भी सम्बन्ध तथा गुण-दोषको ग्रहण नहीं करता। अतएव इनका पुत्र-शोकसे व्याकुल होना मोहजनित है। आत्मा कभी भी मरता नहीं, और शरीर नित्य रहता नहीं, फिर ये किसलिये रो रहे हैं?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपुत्रका जीवात्मा इतना कहकर चला गया, उसकी बातोंसे सबका मोह-बन्धन टूट गया। मृतदेह-का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। बालकको मारनेवाली रानियाँ भी इन बातोंको सुन रही थीं। जब उन्होंने जाना कि पुत्रादि सब दुःखके ही कारण हैं, तो वे बहुत ही लज्जित हुईं। और उन्होंने यमुना-तीरपर जाकर अपने पापका प्रायश्चित्त किया। राजा चित्रकेतु भी जीवात्मा और ऋषियोंके वचनोंसे शोक, मोह, भय और क्लेश देनेवाले और कठिनतासे छूटनेवाले घरके स्नेहको छोड़कर जैसे हाथी तालाबके कीचड़से निकलता है, वैसे ही गृहरूपी अँधेरे कुएँसे बाहर निकल आये और यमुना-तटपर जाकर विधिपूर्वक स्नान और तर्पणादि करके मननशील और जितेन्द्रिय होकर महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारदजीसे भगवत्-पद-प्राप्तिका सरल साधन पूछने लगे। भक्त, जितेन्द्रिय और शरणागत राजा चित्रकेतुको अधिकारी जानकर भक्तराज देवर्षि नारदजीने उन्हें स्तुतिविद्या बतलाकर कहा कि तुम बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरसे संयत होकर इस परम कल्याणकारी मन्त्रको ग्रहण करो; श्रद्धा, भक्ति और शरणागतिपूर्वक सात दिनतक इसका अनुष्ठान करनेसे तुम्हें प्रभु संकर्षणदेवके दर्शन होंगे और हे नरेन्द्र! बड़े-बड़े देवगण जिन प्रभुके चरणमूलका आश्रय ले द्वैत-भ्रमसे छूटकर शीघ्र ही जिस अतुलनीय महिमाको प्राप्त हुए हैं, तुम भी उसको प्राप्त हो जाओगे। वह स्तुतिमयी विद्या यह है—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च॥
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये॥
आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये॥
वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह।
अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते।
मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः॥
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तं नतोऽस्म्यहम्॥
देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी
यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु।
नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं
स्थानेषु तद्द्रष्टृपदेशमेति॥
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकर-कमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते॥

(श्रीमद्भागवत ६। १६। १८—२५)

'हे भगवन्! वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण-रूपसे विराजमान आपको मैं शुद्ध मनसे नमस्कार करता हूँ। हे विज्ञानघन! आप परमानन्दस्वरूप हैं, आत्माराम हैं, शान्त हैं, द्वैतदृष्टि आपसे दूर रहती है, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! आप आत्मानन्दके अनुभवसे मायारचित प्रपञ्च आदि तरङ्गों-को निरस्त करते हैं, आप इन्द्रियोंके स्वामी और महान् हैं, आप ही विश्वरूपसे प्रकट हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे परमात्मन्! मनसहित समस्त इन्द्रियाँ आपके स्वरूपतक न पहुँचकर उपराम हो जाती हैं, आप सत् और असत्से परे नाम-रूप-रहित अकेले ही चित्स्वरूप हैं, आपके सिवा और कुछ है ही नहीं, आप हमारी रक्षा कीजिये। यह कार्यकारणरूप जगत् जिसमें अवस्थित है, जिससे उत्पन्न होता है और जिसमें लय हो जाता है, जो मिट्टीसे बने हुए घड़े आदि पदार्थोंमें मिट्टीके समान सर्वत्र व्याप्त है उन ब्रह्मस्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आकाशकी भाँति भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बाहर सर्वत्र सदा व्याप्त रहनेपर भी मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण जिनको स्पर्श नहीं कर सकते उन विभु भगवान्‌को मेरा नमस्कार है। देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन और बुद्धि ये सब चैतन्यांशसे युक्त होते हैं तभी अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, जिस समय चैतन्यका सम्बन्ध नहीं रहता उस समय ये वैसे ही क्रियाशून्य रहते हैं जैसे अग्निमें बिना तपाया हुआ लोहेका गोला जला नहीं सकता। वह चैतन्य ही सबका साक्षी है। उस साक्षीस्वरूपको जाननेसे ही जीवका कल्याण होता है। उन महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपति भगवान्‌को नमस्कार है। महान् श्रेष्ठ भक्तगण निरन्तर अपने करकमलोंकी कलियोंसे आपके दोनों चरणकमलोंकी सेवा करते हैं। हे सर्वश्रेष्ठ सर्वेश्वर ! आपको नमस्कार है।'

देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरा शरणागत चित्रकेतुको इस स्तुतिमयी विद्याका उपदेश करके ब्रह्मलोकको चले गये। राजा चित्रकेतुने नारदजीके उपदेशानुसार सात दिनोंतक केवल जलपर रहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एकाग्र चित्तसे उपर्युक्त विद्याका जाप किया। सात रात्रि बीतनेपर इस विद्याके प्रभावसे राजा चित्रकेतु विद्याधरोंके स्वामी हो गये। फिर कुछ दिनोंमें ही उसी विद्याके बलसे राजा मनोगतिके अनुसार देवाधिदेव भगवान्‌के शेषस्वरूपके चरणोंमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर राजाने देखा कि भगवान् संकर्षण सनत्कुमारादि सिद्धेश्वर महात्माओंसे घिरे बैठे हैं। उनका वर्ण कमल-की नालके समान गौर है, वह नील वस्त्र धारण किये, देदीप्यमान किरीट, केयूर, कटिसूत्र (तागड़ी) और कंकण आदिसे सुशोभित हैं। उनका मुख प्रसन्न और नेत्र लाल हैं। इस प्रकार शेषरूपमें सर्वेश्वर भगवान्‌के दर्शन करते ही राजाके सब पाप नष्ट हो गये और उनका अन्तःकरण स्वस्थ और निर्मल हो गया। प्रेमावेशसे शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे और वाणी रुक गयी। तदनन्तर राजाने आदिपुरुष भगवान् संकर्षणको भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। राजाने स्तुति करना आरम्भ किया परन्तु प्रेमावेशसे उनके कण्ठ रुक गये, बहुत देरतक स्तुति नहीं की जा सकी और वे पवित्रकीर्ति भगवान्‌के चरणप्रान्तको प्रेमाश्रुओंकी बूँदोंसे सींचने लगे। कुछ देरके अनन्तर जब कुछ बोलनेकी शक्ति आयी तब राजाने एकाग्रचित्तसे शास्त्रानुसार जगद्गुरु परमेश्वरकी स्तुति की। स्तुतिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् अनन्त विद्याधराधिपति राजा चित्रकेतुसे कहने लगे—

हे राजन् ! नारद और अंगिराने मेरे सम्बन्धमें तुमको जिस विद्याका उपदेश दिया, उसीके प्रभावसे तुम मेरे दर्शन पाकर सम्पूर्णरूपसे सिद्ध हो गये हो। मैं ही समस्त भूतप्राणी हूँ, मैं ही उनका आत्मा और उत्पन्न करनेवाला हूँ। देखो, शब्दब्रह्म और परब्रह्म दोनों मेरे ही नित्य स्वरूप हैं। लोकमें आत्मा सत्यरूप-से और आत्मामें लोक आरोपितरूपसे व्याप्त है, और मैं दोनोंमें ही कारणरूपसे व्याप्त हूँ। ये दोनों मुझमें ही रचित हैं। जैसे सोया हुआ मनुष्य सपनेमें नाना प्रकारकी वस्तुओंको देखता और अपनेको विश्वके एक देशमें स्थित जागता हुआ मानता है, ऐसे ही प्रत्यक्ष जागना भी जीवकी उपाधिभूत बुद्धिकी ही एक अवस्थाविशेष है, और वह मायासे ही आत्मामें कल्पित है। यह जानकर आत्माको उन अवस्थाओंका साक्षी और उनसे रहित समझो। सोया हुआ पुरुष सुषुप्ति-अवस्थामें जिसके द्वारा गाढ़ निद्रा-को और अतीन्द्रिय सुखको जानता है वह आत्मारूप ब्रह्म मैं ही हूँ। हे राजन् ! निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओंका अनुसन्धान करनेसे जो पुरुष इन दोनोंमें ज्ञानके प्रकाशकरूपसे स्थित है और दोनों-से अलग है वही परम ज्ञान है और वही ब्रह्म है। इस द्रष्टारूपी ब्रह्मस्वरूपको भूलकर ही जीव आत्मासे अलग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है और इसीसे बार-बार जन्म-मरणरूप संसार-की प्राप्ति होती है। इस मनुष्य-शरीरमें ज्ञान और विज्ञानकी प्राप्ति होती है, जो इस मनुष्य-देहको पाकर भी आत्माको नहीं जानता, उसका किसी भी योनिमें कल्याण नहीं होता। विषयोंमें प्रवृत्तिसे ही क्लेश और उलटा फल होता है। विषयोंसे निवृत्त होनेमें कोई डर नहीं है अतएव बुद्धिमान् पुरुषको विषयोंसे निवृत्त होना चाहिये। जगत्में स्त्री-पुरुष सभी सुख-की प्राप्ति और दुःखोंके नाशके लिये नाना प्रकारके कर्म किया करते हैं परन्तु उन कर्मोंसे न तो उनको सुख ही मिलता है और न दुःख ही दूर होते हैं। इस प्रकार कर्मोंमें लगे हुए अपनेको बुद्धिमान् और विज्ञ समझकर अभिमान करनेवाले पुरुषोंको सुख न मिलकर दुःख ही मिला करता है। आत्माकी सूक्ष्म गति जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे परे है, ऐसा समझकर विवेकके द्वारा इस लोक और परलोकके विषयोंसे चित्तको हटाना चाहिये और ज्ञान-विज्ञानके द्वारा सन्तुष्ट होकर मनुष्यको मेरी भक्ति करनी चाहिये। योग-मार्गमें निपुण बुद्धिवाले मनुष्योंको यह बात भली भाँति जान लेनी चाहिये कि एक ही परमात्मा सब स्थानोंमें सदा-सर्वदा व्याप्त है। वही सब कुछ है। हे राजन्! तुम यदि सावधान होकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस उपदेशको ग्रहण करोगे तो शीघ्र ही ज्ञान-विज्ञान-से युक्त होकर तुम मेरे स्वरूपकी प्राप्तिरूप परम सिद्धिको पा जाओगे।' जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि इस प्रकार चित्रकेतुको आश्वासन देकर उनके देखते-ही-देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

अब राजा चित्रकेतु समदृष्टिको प्राप्त होकर द्वन्द्व-रहित हो गये। वे कामना, स्पृहा, ममता और अहंता-का त्यागकर नित्य परमात्मामें संयुक्त हुए तपोबलसे चौदहों भुवनोंमें इच्छानुसार विचरण करने लगे। एक दिन उन्होंने तेजोमय विमानपर चढ़े हुए आकाश-मार्ग-से गमन करते समय मुनियोंकी सभामें भवानीको भगवान् शंकरजीकी गोदमें बैठे देखा। चित्रकेतुको यह व्यवहार विपरीत मालूम दिया। उन्होंने इसकी कुछ कटु आलोचना की, इसपर भगवान् शंकर तो हँस दिये परन्तु भवानीजीसे नहीं रहा गया, उन्होंने यह सोचकर कि यह बहुत अविनीत हो उठा है, अतः भगवान्के चरणोंमें रहने लायक नहीं है, चित्रकेतुको शाप दे डाला कि 'तू जाकर असुर-योनिमें जन्म ग्रहण कर।'

श्रीसतीजीके शापको सुनकर यद्यपि राजा चित्र-केतुको कुछ भी शोक नहीं हुआ। क्योंकि वह सर्वत्र सब समय भगवान्को देखते थे, इससे उन्होंने समझा कि असुर-योनिमें भी मेरे भगवान् तो मुझसे अलग नहीं होंगे, फिर क्या चिन्ता है। तथापि शिष्ट व्यवहारके अनुसार भवानीजीसे क्षमा माँगनेके लिये वे विमानसे उतरकर सतीके चरणोंपर गिरकर नम्रतापूर्वक उनसे बोले—माताजी! आपने कृपा करके जो शाप दिया, उसको मैं सादर स्वीकार करता हूँ। मैं इस बातको जानता हूँ कि देवगण जो कुछ मनुष्यके लिये कहते हैं सो उनके कर्मानुसार ही कहते हैं। अज्ञानसे मोहित होकर प्राणी इस संसारचक्रमें घूमता हुआ सदा और सर्वत्र सुख-दुःख भोगता ही रहता है। इस गुणोंके प्रवाहरूप संसारमें शाप-वरदान, स्वर्ग-नरक और सुख-दुःख वस्तुतः कुछ भी नहीं है। हे देवि! स्वयं बन्धनादिसे रहित एक परमेश्वर ही अपनी मायाके द्वारा सब प्राणि-योंको रचते हैं और उनके सुख-दुःख और बन्ध-मोक्ष-की व्यवस्था करते हैं। हे माता! उन ईश्वरका न कोई प्रिय है, न अप्रिय; न अपना है, न पराया; न कोई जातिवाला है, न बन्धु है, वह सर्वत्र समान और असंग हैं। उन भगवान्को जब सुखमें प्रीति नहीं है तब क्रोध कहाँसे होगा? तथापि उनकी मायासे जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन पुण्य-पापरूप कर्मोंको करता है, वे ही उसके सुख-दुःख, हित-अहित, बन्ध-मोक्ष, जन्म-मृत्यु और संसारके कारण होते हैं। हे देवि! मैं शापसे छूटनेके लिये आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। मेरे जो शब्द आपको बुरे लगे हैं उन्हींके लिये आप मुझपर क्षमा कीजिये!

इस प्रकार कहकर शिव-सतीको प्रसन्न करके राजा चित्रकेतु सबके सामने ही विमानपर चढ़कर आकाश-मार्गसे चले गये। उनकी ऐसी स्थिति देखकर वहाँ बैठे हुए सभी लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर श्रीशिवजीने भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए सबके सामने सतीजीसे कहा—'हे सुश्रोणि! देखा तुमने अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीहरिके दासानुदास निस्पृह महात्माओंका माहात्म्य! भगवान् नारायणके परायण हुए भक्तगण किसीसे कहीं भी नहीं डरते, वे नित्य निर्भय हुए स्वर्ग, नरक और मोक्षमें समदृष्टि रहते हैं। हे देवि! भगवान्‌की लीलासे ही जीवोंको देहकी प्राप्ति होकर उसमें सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-अनुग्रह हुआ करते हैं, और उनमें, जैसे स्वप्नमें मनुष्यको सुख-दुःख होता है अथवा रस्सीमें जैसे सर्पका भ्रम होता है वैसे ही अज्ञानसे इष्ट-अनिष्टका बोध होता है। भगवान् वासुदेवमें भक्ति करनेवाले ज्ञान और वैराग्यके बलसे सम्पन्न पुरुष किसी भी सांसारिक पदार्थको 'यह अच्छा है' ऐसा समझकर उसका आश्रय ग्रहण नहीं करते। मैं, सनत्कुमार, नारद, मरीचि आदि ब्रह्माके पुत्र महर्षिगण, इन्द्रादि देवता भी जब परमेश्वरकी लीलाके रहस्यको उनकी कृपा बिना नहीं समझ पाते तब जो लोग उनके अंशके भी अंश हैं वे अपनेको अलग-अलग ईश्वर मानकर अभिमान करनेवाले लोग उनके स्वरूपको कैसे जान सकते हैं? उन श्रीहरिके कोई भी प्रिय-अप्रिय या अपना-पराया नहीं है, तथापि वह सब प्राणियोंके आत्मा होनेके कारण सब प्राणियोंके प्रिय हैं। हे सती! यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं भगवान्‌का प्यारा भक्त, भगवान्‌की रुचिके अनुसार चलनेवाला, शान्त और सर्वत्र समदृष्टि है। मैं भी उन्हीं अच्युतका प्रिय हूँ। इसी कारण मुझको उसपर क्रोध नहीं हुआ। अतएव इस प्रकारके शान्त, समदृष्टि, भगवद्भक्त, महात्मा पुरुषोंके आचरण देखकर आश्चर्य नहीं मानना चाहिये।'

भगवान् श्रीशिवजीके वचन सुनकर देवीका विस्मय दूर होकर उनका चित्त शान्त हुआ। उल्टा शाप देनेमें समर्थ होनेपर भी भगवद्भक्त चित्रकेतुने शान्तभावसे बिना किसी हर्ष-विषादके देवीके शापको सिर चढ़ा लिया। यही तो उनकी साधुता है। इसी शापके कारण चित्रकेतु अगले जन्ममें त्वष्टाकी दक्षिणाग्निमें उत्पन्न होकर वृत्रके नामसे प्रसिद्ध हुए, और निरन्तर प्रेमपूर्वक भगवान्‌में चित्त लगाये हुए अन्तमें भगवान्‌को प्राप्त हो गये!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामनामका महत्त्व

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

रम कल्याणकारी जगत्-विख्यात 'कल्याण' पत्रके कल्याणस्वरूप श्रीसम्पादकजीने जनताके कल्याणार्थ श्रीरामचरितमानसमेंसे श्रीरामनामका महत्त्व उद्धृत करनेकी प्रेरणा की है। श्रीत्रिवेणी-बाँधगुफा, प्रयागके निजनाथ स्वामी श्रीपरमहंसजी महाराजसे सम्मान्य सम्पादकजीने यह स्वीकार करवा लिया है कि श्रीतुलसीकृत रामायण-सम्बन्धी प्रश्नोंके उत्तर गुफासे अवश्यमेव भेजे जाते रहेंगे। उसी स्वामि-आज्ञाका पालन करनेके लिये विवश होनेके कारण इस दीनके तुच्छ अन्तः-करणकी ठीक 'साकबनिक मनि-गुनगन जैसे' की ही दशा हो रही है; क्योंकि—

कहँ यह नाम-महत्त्व अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥

अतः—

समुझत अमित नाम प्रभुताई। लेख करत मन अति कदराई॥

परन्तु आश्रितोंको स्वयं विचार करनेका अवकाश कहाँ? 'सबतें सेवक-धर्म कठोरा।' अतएव करबद्ध आज्ञा शिरोधार्य कर लेख आरम्भ किया जा रहा है,—

यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं।

श्रीरामनामका महत्त्व रामचरितमानसके जिस किसी अंशको देखिये, वहीं अगाधरूपमें ओतप्रोत है, जैसा कि ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजीकी प्रतिज्ञासे ही सूचित होता है—

भनित मोरि सब गुनरहित, बिस्वबिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहैं सुमति, जिनके बिमल बिबेक॥

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल-भवन अमंगल-हारी। उमासहित जेहि जपत पुरारी॥
भनित बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधु-बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
सब गुनरहित कुकबि कृत बानी। रामनाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥
जदपि कबित-रस एकौ नाहीं। राम प्रताप प्रगटि एहि माहीं॥

इस प्रतिज्ञाके अनुसार इस पुराण-श्रुतिके सारभूत 'पावनं पावनानाम्' उदार श्रीरामनामके अपार महत्त्वका परिचय देते हुए श्रीगोस्वामीजीने स्वरचित रामायणकी केवल चौबीस पंक्तियोंको प्रयोजनवश छोड़कर, जिसका कारण फिर कभी अवसर मिलनेपर दूसरे किसी लेखमें विस्तारके साथ स्पष्ट करनेकी सेवा की जायगी, शेष समस्त ग्रन्थ (सातों काण्डोंके प्रत्येक पद) की रचना ऐसे नियमसे की है कि श्रीरामनामके वरवरणयुग (रा) रकार और (म) मकार दोनों अक्षरोंमेंसे एक-न-एक किसी-न-किसी रूपमें प्रत्येक पंक्तिमें अवश्य पाया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थमें रामनाम ओतप्रोत होनेसे 'एहि महँ रघुपति नाम उदारा' तो सिद्ध हो ही गया है; इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं प्रसङ्गवश अवसर मिला है, वहीं ठौर-ठौरपर प्रकटरूपमें श्रीरामनामका महत्त्व भरपूर गाया गया है। उदाहरणार्थ विभिन्न स्थलोंसे कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥
राम राम कहि जे जमुआहीं। तिनहिं न पाप-पुंज समुहाहीं॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुक्त होइ श्रुति गावा॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं समगति अबिनासी॥
जासु नाम त्रयताप-नसावन। सो प्रभु प्रगट समुझ जिय रावन॥
जाकर नाम लेत जगमाहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। भव-बारिध गोपद इव तरहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥
कोटि कोटि मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

कृतजुग त्रेता द्वापरहुँ, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि-नाम ते पावहिं लोग॥
यहि कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनायक नाम तजि, नहिं कछु आन अधार॥

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थमें गुप्त और प्रकटरूपसे श्रीरामनामका महत्त्व तो प्रदर्शित किया ही गया है; फिर बालकाण्डके वन्दना-प्रसंगमें श्रीरामनाम-वन्दना पृथक् ही नौ दोहोंमें रचकर उस रामनाम-महत्त्वकी असीमता सूचित की गयी है। वह इस तरह कि, अंकोंकी सीमा नौ (९) पर ही जाकर समाप्त हो जाती है। नौके पश्चात् चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्ब, खर्ब, संख्य, असंख्यतक लिखते जाइये, वही १ से लेकर ९ तकके अंकोंको इकाई-दहाई आदिके स्थानोंमें घूम-फिरकर लिखना पड़ेगा। ९ से अधिक अंक हैं ही नहीं तब आवेंगे कहाँसे ? इस प्रकार अंकोंकी सीमा ९ ही है। पुनः ९ का ही अंक एक ऐसा अंक है जो अपने गुणनफलमें सदैव अपनी नौ की संख्याको अचलरूपसे पूर्ण बनाये रखता है। यह गुण १ से लेकर ८ तकके किसी दूसरे अंकमें आपको नहीं मिलेगा। यह ऐश्वर्य केवल ९ के अंकको ही प्राप्त है। उदाहरणके लिये किसी एक अंकको गुणा करके देख लीजिये। ८ का दूना १६ हुआ, जिसमें दो अंक १ और ६ हैं। इन दोनों अंकोंको जोड़िये तो दोनों मिलकर ७ हुआ, ८ पूरा नहीं हुआ। पुनः ८ का तिगुना २४ हुए, जिसमें २ और ४ दो अंक हैं। इन दोनोंका योग ६ ही होता है। इसी प्रकार पूरे पहाड़ेतक इकाई और दहाईके अंकोंको जोड़ते जाइये। आठ ही क्यों ७, ६, ५, ४, ३, २, १ किसी भी अंकको अपने गुणनफलमें उसके पूरे रूपमें बराबर नहीं पायेंगे। किन्तु ९ का अंक ऐसा विलक्षण है कि वह हर हालतमें नौका नौ ही मिलता है। जैसे ९ का दूना १८ हुआ, जिसमें १ और आठ दो अंक हैं, इनको जोड़िये तो १+८=९ ही होता है। पुनः ९ का तिगुना २७ हुआ और २ तथा ७ का जोड़ ९ हुआ। फिर ९ का चौगुना ३६ हुआ और ३+६=९ हुआ। इसी प्रकार नौ नवाँ ८१ तक जोड़ते चले जाइये, किसी गुणनफलमें ९ से कम या अधिक जोड़ नहीं होगा। इसके दसगुना नब्बे (९०) तकमें भी ९ और शून्यका जोड़ ९ ही रहता है। अतएव श्रीरामनामकी वन्दना अलग नौ दोहोंमें करके उसके महत्त्वकी असीमता और अचलताका लक्ष्य कराया गया है। और भी ऐसे प्रसंगोंपर जहाँ-जहाँ यह रहस्य सूचित करनेकी आवश्यकता श्रीगोस्वामीजीको प्रतीत हुई है, वहाँ-वहाँ वन्दना और उपमा आदिको नौकी ही संख्यातक रचकर इस नियमको पुष्ट किया है। जैसे, बालकाण्डके आदि मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें केवल नौ महानोंकी ही वन्दना की गयी है—'वन्दे वाणीविनायकौ'—श्रीसरस्वती और श्रीगणेश (दो), 'भवानीशङ्करौ वन्दे'—श्रीशिव और श्रीपार्वती (चार), 'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुम्'—श्रीगुरुदेव (पाँच), 'वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ'—श्रीवाल्मीकि और श्रीहनुमान्‌जी (सात), 'सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्'—श्रीसीताजी (आठ) तथा—

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।

श्रीसरकार रघुनाथजीकी वन्दना अन्तमें करके नौकी संख्या पूरी की गयी है। अवधकाण्डमें जब श्रीसुमन्तजी श्रीसरकारकी वनयात्राके समय उन्हें शृंगवेरपुर गङ्गातटपर पहुँचाकर अयोध्या वापस आये हैं तो उनके शोककी पराकाष्ठा दिखानेके लिये वहाँ भी नियमसे ९ ही उपमाएँ दी गयी हैं—

(१) मनहु कृपिन धनरासि गँवाई।

(२) चलेउ समर जनु सुभट पराई।

(३) बिप्र बिबेकी बेदबिद, संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोच तेहि भाँति॥

(४) जिमि कुलीन तिय साधु सयानी।
पति देवता करम मन बानी॥
रहै करमबस परिहरि नाहू।
सचिव-हृदय तिमि दारुन दाहू॥

(५) बिबरन भयउ न जाइ निहारी।
मारेसि मनहु पिता-महतारी॥

(६) हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी।
जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई।
जनु मारेसि (७) गुर (८) बाँभन (९) गाई॥

फिर उत्तरकाण्डमें जहाँ—

बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल।

यह निश्चय करना इष्ट था, वहाँ भी नौ ही असम्भव बातोंको गिनाकर असीमताके लिये नौका ही नियम निबाहा गया है। यथा—

(१) कमठ पीठ बरु जामहिं बारा।

(२) बंध्यासुत बरु काहुहि मारा।

(३) फूलहि नभ बरु बहुबिधि फूला।
जीव न लह सुख हरि-प्रतिकूला॥

(४) तृषा जाइ बरु मृग जलपाना।

(५) बरु जामहि सस-सीस बिषाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) अंधकार बरु रबिहि नसै।
रामबिमुख सुख जीव न पावै॥

(७) हिम ते अनल प्रगट बरु होई।
बिमुख राम सुख पाव न कोई॥

(८) बारि मथे घृत होइ बरु,

(९) सिकता ते बरु तेल।

इसी प्रकार नौ अंकके द्वारा, नौ दोहोंमें वन्दना करके श्रीरामनामका महत्त्व तो प्रकट किया ही गया है, साथ ही इस वन्दनाके एक-एक पदमें जिन सप्रमाण और सगर्भ हेतुओं तथा दलीलोंके द्वारा प्रत्येक शब्द श्रीरामनामके महत्त्वसे भर दिया गया है,—जो भगवत्कृपासे भावार्थोंद्वारा सुझाये जा सकते हैं,—उनकी गम्भीरता, अगाधता और असीमताका तो ठिकाना ही नहीं है। यदि कोई इन्हीं नौ दोहोंके प्रत्येक पदका भावार्थ लिखकर श्रीरामनामका महत्त्व दिखलाना चाहे तो पूरे सातों काण्ड रामायणसे भी विस्तृत ग्रन्थ तैयार हो जायगा, किन्तु फिर भी वह पूरा नहीं लिखा जा सकता। इसलिये इस वन्दना-प्रसंगका एक पद आरम्भका तथा एक पद अन्तका सम्पुटरूपमें लेकर इन्हीं दोनों पदोंके भावार्थ संक्षेपरूपमें श्रीरामनाम-महिमा प्रकट करनेके लिये अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार 'तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे' का अवलम्बन कर समर्पित किये जा रहे हैं।

आरम्भका पद है—

वन्दौं नाम राम रघुबरको। हेतु कृसानु भानु हिमकरको॥

इससे पहले श्रीराम-रूपकी वन्दना आप कर चुके—

पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरन-कमल बन्दौं सब लायक॥

तथा 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' की उपमा देकर दोहेमें युगल सरकारकी एकता भी कर चुके। अतः अब कहते हैं कि 'बन्दौं नाम'—श्रीसरकारके नामकी वन्दना करता हूँ। वह नाम क्या है? राम ऐसा नाम है। राम भी तो अनेक हैं; जैसे—परशुराम, बलराम, व्यापक राम इत्यादि; तो फिर कौन-से राम? रघुवरको राम। अर्थात् श्रेष्ठ रघुकुलोत्पन्न श्रीदाशरथी रामजी ('रामो दाशरथी बभूव' इति तापिनी) इस निर्णयके अनुसार श्रीगोसाईंजी श्रीअवधनाथ, दशरथपुत्र, कौशल्यानन्दन, रघुकुलश्रेष्ठ जो राम हैं, उन रामजीके नामकी वन्दना करते हैं। कैसा है वह रामनाम? वह कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) तथा हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु (कारण) है। तात्पर्य, रामके (र) रकारसे अग्नि, (ा) अकारसे सूर्य, एवं (म) मकारसे चन्द्र इन तीनों कार्यरूपोंकी उत्पत्ति हुई है। इस पदसे श्रीरामनामका महान् महत्त्व इस प्रकार सूचित कर रहे हैं कि इस जगत्मात्रके आधार अग्नि, सूर्य और चन्द्र ही हैं, यदि ये तीनों न होते तो संसारका कोई भी कार्य चल ही नहीं सकता था। यह प्रत्यक्ष और निर्विवाद है। जब कार्योंका महत्त्व इतना प्रकट है तब उनके कारण-स्वरूप रामनामके महत्त्वका क्या कहना? अतः इस जीवका जो अर्थ अग्निके द्वारा सिद्ध हो रहा है, उसके लिये तो अग्नि ही समर्थ है; परन्तु जो 'परमार्थ' अग्निके सामर्थ्यमें नहीं है, उस परमार्थके जिज्ञासुको अग्निके कारण (र) रकारकी शरण लेनी चाहिये, तब काम चलेगा। तात्पर्य यह कि सृष्टिके सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक पदार्थोंको अग्निद्वारा भस्म किया जा सकता है; परन्तु शुभाशुभ कर्मोंको भस्म करनेका कार्य अग्निसे नहीं सिद्ध हो सकता। इसलिये जिसे शुभाशुभ कर्मोंसे छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त करनेकी चाह हो, वह अनलके बीज (कारण) रामनामके रकारका अनुसन्धान करे, तब उसके शुभाशुभ कर्म भस्मीभूत होंगे। इसका प्रमाण भी इस प्रकार है—

रकारोऽनलबीजः स्याद् ये सर्वे बाडवादयः।
कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम्॥

इसी प्रकार जो अर्थ सूर्यसे नहीं सिद्ध होनेवाला है, वह, जैसे, जगत्भरके अन्धकारका नाश तो सूर्योदयसे हो जाता है—

रबिमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

परन्तु हृदयके अज्ञानान्धकारका नाश—सूर्यके बीज (कारण) स्वरूप रामनामके अन्दर रकारके आगे आनेवाली जो पाई (ा) है, उस अकारके अनुसन्धानसे ही सम्भव है। प्रमाण—

अकारो भानुबीजः स्यात् सर्ववेदप्रकाशकः।
दहत्येव च सद्रीत्या याविद्या हृदये तमः॥

इसी भाँति जो अर्थ चन्द्रमासे सिद्ध नहीं हो सकता, उसकी सिद्धिके लिये रामनामके (म) मकारकी ही शरण पर्याप्त होगी, जो चन्द्रका बीजस्वरूप है। संसारी उष्णतासे उत्पन्न होनेवाले तापको हरण करनेमें चन्द्रदेव समर्थ हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सरदातप निसि ससि अपहरई'; परन्तु अन्तःकरणके तापका निवारण इनके बीज रामनामके मकारसे ही सम्भव है। प्रमाण—

मकारश्चन्द्रबीजः स्यात् सदस्या परिपूरणम्।
त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च॥

इन्हीं भावोंकी पुष्टि श्रीरामचरितमानसकी उन बीजक चौपाइयों और दोहोंके द्वारा स्वयं श्रीग्रन्थकारजीने भी स्पष्ट-रूपमें कर दी है, जिनकी रचना यहाँके बीजको सफल करनेके निमित्त ही प्रसङ्गानुकूल अवसर पानेपर ग्रन्थके बीच-बीचमें अनेक स्थलोंपर की हुई मिलती है। जैसे—

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा॥
(बालकाण्ड)

जिन श्रीरामजीका 'राम' नाम पतङ्ग अर्थात् सूर्य है। परन्तु लौकिक तिमिरके लिये नहीं, भ्रम (अज्ञान)-तिमिर (अन्धकार) का नाश करनेके लिये रामनाम सूर्य है। जो तम इन सूर्यसे नष्ट होता है, उसके लिये तो यही समर्थ हैं। पुनः—

जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥
(अवधकाण्ड)

जिन श्रीरामजीका 'राम' नाम पावक अर्थात् अग्नि है। परन्तु पाञ्चभौतिक पदार्थोंको भस्म करनेके लिये नहीं, क्योंकि इन्हें तो यही अग्नि भस्म कर सकती है, श्रीराम-नाम तो अघरूप रूईको भस्म करनेके लिये पावकरूप है। पुनः—

राका रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहिं भगत उर ब्योम॥
(वनकाण्ड)

जिन श्रीरामजीका 'राम' नाम चन्द्र है। परन्तु साधारण रजनीके लिये नहीं, इस रात्रिको तो यही चन्द्रमा शोभित करते हैं; श्रीरामनाम भक्तिरूप पूर्णमासीकी रात्रिके लिये सोम अर्थात् चन्द्र है, जहाँ त्रिताप एवं अन्तःतापका नाम नहीं रह पाता।

साथ ही श्रीगोस्वामिपादने उक्त पदमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रके लिये ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया है, जिनमें रकार, अकार और मकार बीजरूपसे झलक रहे हैं और इस तरह इन्हीं भावोंकी पुष्टि होती है। उन्होंने पावक, अग्नि, अनल आदि किसी ऐसे शब्दका प्रयोग न कर, ढूँढ़कर 'कृशानु' शब्द लिखा है, जिस कृशानुमें (र) रकार बीज 'क्' में 'ऋ' के रूपमें झलक रहा है। यदि रकारकी मात्रा न रहे तो 'कशानु' निरर्थक शब्द हो जाय। इसी प्रकार सूर्य, पतङ्ग, दिनेश आदि शब्दोंका प्रयोग न करके, जान-बूझकर 'भानु' शब्द रक्खा गया है, जिसमें 'भ' और 'नु' के बीचमें (ा) अकारकी पाई बीजरूपसे वर्तमान रहे। यहाँ भी पाईके हट जानेपर केवल 'भनु' रह जायगा जो सूर्यका बोधक ही नहीं होगा। ऐसे ही बिधु, शशि, चन्द्र आदि शब्दोंको छोड़कर चन्द्रमाके लिये 'हिमकर' शब्द ढूँढ़ा गया है, जिससे इसमें भी (म) मकार बीज-रूपसे झलकता रहे। इसका भी 'म' हटा देनेपर केवल 'हिकर' शब्द निरर्थक ही रह जाता है।

इस प्रकार कार्य-कारण-भावका पूर्ण प्रमाण देकर यह विशेष वैलक्षण्य श्रीरामनामके महत्त्वमें दिखाया गया है कि कार्योंसे तो केवल एक-एक अर्थ अलग-अलग साधे जा सकते हैं; किन्तु कारण-रूप केवल एक रामनामसे ही तीनों अर्थ एक साथ ही पूर्ण हो जाते हैं—(१) जन्म-जन्मान्तरके शुभाशुभ कर्म भी भस्म हो जाते हैं; (२) अज्ञान-तम भी निवृत्त हो जाता है; तथा (३) सब प्रकार-के बाह्यान्तर ताप भी दूर हो जाते हैं, जिससे श्रीभक्ति महारानीकी प्राप्ति होती है तथा हृदय नित्य शीतल एवं सुखमय हो जाता है।

नाम-वन्दना-प्रसङ्गके अन्तका पद, नवाँ दोहा इस प्रकार है—

राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल॥

श्रीरामनाम नरसिंह भगवान्‌की उपमामें है, कलियुग हिरण्यकशिपुकी उपमामें है, नामजापक लोग प्रह्लादकी उपमामें हैं तथा पुण्यात्मा लोग देवताओंकी उपमामें हैं। जैसे सुरसालि (देवताओंको दुःख देनेवाला हिरण्यकशिपु) सुरोंको दुखी करता रहा, उसी प्रकार कलियुग पुण्यात्माओं-को (जो अपने वर्णाश्रम-धर्मानुकूल शुभाचरण करते हुए चलना चाहते हैं) रगड़ता रहता है। एक रामनामके जापकोंसे उसकी उसी प्रकार एक भी नहीं चलती जिस प्रकार हिरण्यकशिपुकी प्रह्लादसे एक भी नहीं चली थी।

सहे सुरन बहु काल बिषादा। नरहरि प्रगट किये प्रहलादा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबतक हिरण्यकशिपु देवताओंको ही दुखी करता रहा तबतक तो भगवान्‌के लिये असह्य नहीं हुआ, किसी प्रकार चलता गया। किन्तु जब उसने नामजापक भक्त प्रह्लादको दुःख देना आरम्भ किया तब—

निज अपराध रिसाहि न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल स्वभाऊ॥
जो अपराध भगतकर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

—के अनुसार भगवान्‌ने तत्काल नरसिंह-रूपमें प्रकट होकर उसे चीर-फाड़ डाला। वैसे ही अपर यज्ञ-यागादि कर्मावलम्बियोंको कलिकाल क्लेश पहुँचाता रहता है, परन्तु अगर कभी वह किसी रामनाम-जापक भक्तपर अपना जोर दिखावेगा तो उसी समय नष्ट-भ्रष्ट कर डाला जायगा—ऐसा समझकर वह नामजापकोंके नजदीक नहीं आता और न कोई विघ्न ही पहुँचाता है। इसी कारण इस घोर कलिमें एक नामावलम्ब ही निष्कण्टक मार्ग बताया गया है। जैसे—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहिं आन उपाऊ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥
सब भरोस तजि जो भज रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन-ग्रामहिं॥
सोभव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥

राम राम जपे जैहै जियकी जरनि।
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये
जैसे तम नासिबेको चित्रके तरनि।
(विनयपत्रिका)

अर्थात् रामनामको छोड़कर और दूसरे समस्त उपाय बिना पगके हो गये हैं, चल नहीं सकते। वे देखनेमात्रको रह गये हैं, कलियुगने उन्हें शक्तिहीन बना दिया है, जैसे चित्रमें सूर्यका आकार तो छपा रहता है पर वह देखनेभरके लिये होता है; उससे यदि कोई रात्रिका निवारण करना चाहे तो कदापि नहीं हो सकता। हाँ, एक राम-नामसे चाहे जो हो सकता है—

नाम प्रताप सही जो कहे कोउ सिलों सरोरुह जामो।
(बिनयपत्रिका)

क्योंकि इसपर अपना जोर डालनेमें कलियुग भय खाता है तथा इसी नाते इस कलियुगकी भी प्रशंसा इतने अंशमें हो रही है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिसवास।
गाइ राम गुनगन बिमल, भव तर बिनहि प्रयास॥
कृतजुग त्रेता द्वापरहुँ, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि-नाम ते पावहिं लोग॥

श्रीगोस्वामीजी महाराज 'विनयपत्रिका' में भी ठीक इसी भावकी अपनी प्रेमपूर्ण सम्मति दे रहे हैं—

नाना पथ निर्वाणके साधन अनेक बहु भाँति।
तुलसी तू मेरे कहे रटु राम नाम दिन राति॥

फिर 'कवितावली' में भी कितना स्पष्ट कह रहे हैं—

न मिटै भवसंकट दुरघट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न बिराग न ग्यान कहूँ सब लागत फोटक झूठ जटो॥
नट ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाठ ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिय तो रसना निसबासर राम रटो॥

बरवैरामायणमें कहते हैं—

काल कराल बिलोकहु होइ सचेत।
राम नाम जपु तुलसी प्रीति समेत॥
कलि नहिं ग्यान बिराग न जोग समाधि।
राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि॥

ऐसे ही सैकड़ों वचन श्रीतुलसी-ग्रन्थावलीमें भरे पड़े हैं तथा नाना पुराण-निगमागम भी एकमुख होकर कलि-युगमें केवल नामका ही अवलम्बन लेनेकी आज्ञा दे रहे हैं, जिसके प्रमाण ठौर-ठौर भरे पड़े हैं।

उपर्युक्त दोहेमें एक भाव और भी बड़े मार्केका है; वह यह कि इसके ऊपरकी चौपाईमें एक बार कलियुगका कालनेमिकी तथा रामनामको श्रीहनुमान्‌जीकी उपमा दी जा चुकी है—

कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनमानू॥

किन्तु इस चौपाईमें केवल इतना ही भाव प्रकट हुआ था कि जैसे श्रीहनुमान्‌जीसे कालनेमिका कोई कपट नहीं चल सका, वह खुद ही नष्ट कर दिया गया, उसी प्रकार कलियुगका कोई कपट-तन्त्र रामनामपर नहीं चल सकेगा और यदि चलायेगा तो वह कलि ही नाशको प्राप्त हो जायगा। इससे यह सिद्ध होता था कि और साधनोंकी भाँति रामनामको कलियुग कील नहीं सकता, रामनाम अपनेको आघातसे बचानेमें पूर्ण समर्थ है। पर इस दोहेके द्वारा इस बातका स्पष्टीकरण किया गया है कि यदि राम-नाम जपनेवालेपर कलियुगने आघात किया तो उस हालतमें भी वह नष्ट कर डाला जायगा अर्थात् जब नामसे भिड़ेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कालनेमिकी भाँति और जब नामजापकसे भिड़ेगा तो हिरण्यकशिपुकी भाँति दोनों ही हालतोंमें नष्ट कर डाला जायगा—चाहे कालनेमिकी भाँति कपटसे जुटे, चाहे हिरण्यकशिपुकी भाँति प्रकट युद्ध करे, उसका कपट-प्रकट एक भी नहीं चलेगा।

उपर्युक्त नाम-वन्दना बालकाण्डके चौबीसवें दोहेके पश्चात्‌से आरम्भ होकर तैंतीसवें दोहेपर समाप्त हो गयी है। नियमपूर्वक आठ-आठ चौपाइयोंके बाद एक-एक दोहा दिया हुआ है। इस प्रकार कुल नौ दोहोंके अन्तर्गत बहत्तर चौपाइयाँ हैं। इनमेंसे प्रत्येक पदमें मानो श्रीरामनाम-महिमाका भाण्डार भर दिया गया है। यहाँतक कि 'राम न सकहिं नाम गुन गाई' इत्यादि पद भी कह डाले गये हैं। इनमेंसे आरम्भकी एक चौपाई तथा अन्तके केवल एक दोहेका भावार्थ यहाँ संक्षेपमें लिखा जा सका है। परन्तु पाठकोंकी श्रद्धा और विश्वास होनेके लिये तो उपर्युक्त दो ही पदोंसे यह भलीभाँति स्पष्ट हो गया है कि श्रीरामनामके ऐश्वर्य और महत्त्वका ठिकाना नहीं है, न ऐसा सामर्थ्य कहीं हो सकता है तथा इस घोर कलियुगमें केवल रामनामका ही बोलबाला है। जिस बड़भागीने रामनाममें अनुराग कर लिया उससे कलिकाल भी दबक जाता है—

काल कर्म गुन सुभाव सबके सीस तपत।
राम नाम महिमाकी चरचा चलै चपत॥

तथा—

प्रिय रामनाम ते जाहि न रामौ।
ताकहँ भलो अजहुँ कलिकालहुँ आदि मध्य परिणामौ॥

(विनयपत्रिका)

अब उपर्युक्त महत्त्वकी पुष्टिमें सरकारी मुहर-छाप-सहित एक और सही देख ली जाय जो श्रीरामचरितमानसके ही अन्तर्गत वर्तमान है। वनकाण्डमें वर्णन है कि जब पम्पा-सरोवरपर श्रीरघुनाथजी परम प्रसन्नरूपमें विराज रहे थे—

बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥

तब देवर्षि नारदजीको स्मरण हुआ कि—

मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥
ऐसे प्रभुहिं बिलोकौं जाई। पुनि न बनै अस अवसर आई॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गये जहाँ प्रभु सुख आसीना॥

× × × ×

नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बेले बचन तब, जोरि सरोरुह पानि॥

सुनहु परम उदार रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बरदायक॥
देहु एक बर माँगौं स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी॥

श्रीनारदजीके इस प्रकार विनती करनेपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करौं दुराऊ॥
कवन बस्तु अस प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह माँगी॥
जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिसवास तजहु जनि भोरे॥

श्रीरघुनाथजीकी ऐसी कृपा और उदारता देखकर देवर्षि नारदजी हर्षसे भर गये—

तब नारद बोले हरषाई। अस बर माँगौं करौं ढिठाई॥
जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥
राम सकल नामन ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

राका रजनी भगति तव, **राम** नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहु भगत उर ब्योम॥

भगवद्भक्तिके परमाचार्य, नामनिष्ठशिरोमणि, कीर्तन-कलानिधि, परम भागवत, साक्षात् भगवद्विग्रह (देवर्षीणां च नारदः—'गीता') महर्षि नारदजी प्रसन्नचित्त होकर विनय करते हैं कि हे नाथ! मैं ढिठाई करके ऐसा वर माँगता हूँ कि यद्यपि सरकारके बहुत-से नाम हैं और उन सब नामोंका महत्त्व वेदोंमें एकसे एक अधिक वर्णित है (तात्पर्य, भगवान्‌के सभी नामोंका असीम महत्त्व वर्णित है); तथापि आपका रामनाम समस्त नामोंकी अपेक्षा पाप-रूप पक्षियोंके लिये बधिक होनेमें अधिक महत्त्वका होवे। आपकी भक्ति तो पूर्णिमाकी रात्रि हो और आपके भक्तोंका हृदय विमल आकाश हो। उस हृदयाकाशमें भक्तिरूपा रात्रि पाकर आपके अन्यान्य नाम तारागणकी तरह उदय रहें और आपका **राम** नाम सर्वोत्कृष्ट पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति देदीप्यमान रहे।

इस प्रकारकी देवर्षि नारदकी वर-याचना सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने 'एवमस्तु' उच्चारण करते हुए इस अनुपम वरके लिये अपनी स्वीकृति दे दी—

एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हर्ष अति, प्रभु पद नायेउ माथ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार इस रामनामके महत्त्वपर भगवान्‌की मुहर-छाप भी इस रामचरितमानससे ही प्रमाणित है। भगवान्‌के समस्त नामोंसे अधिकता श्रीरामनामके लिये स्वयं नामी भगवान्‌ने ही प्रदान कर रक्खी है। उसपर विलक्षणता यह है कि जैसे बधिक (शिकारी) खगगण (पक्षियों) को खोज-खोजकर बध करनेमें आह्लाद मानता है, वैसे ही श्रीरामनाम शौकके साथ अपने नामजापकोंके पापोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर नष्ट करनेमें आनन्द मानता है। इतना ही नहीं, पापोंकी निवृत्तिमें तो बधिककी भाँति रामनामको ही सुख होता ही है, भक्तोंको भी सुखी करना नाम भगवान्‌का मुख्य बिरद है। अतः वे अपनी अनपायिनी भक्ति-रूपा पूर्णिमाकी रात्रि प्रदानकर भक्तोंके हृदयाकाशमें स्वयं चन्द्रमाके समान सदैव उदय रहकर उसे शीतल और सुखमय बनाये रहते हैं। श्रीरामनाम-रूपी सोमसे सदैव प्रेमामृत स्रवित होकर नामानुराग-रूपी प्रेमाङ्कुरका अद्भुत पोषण हुआ करता है।

सकल कामनाहीन जे, रामभगति रस लीन।
नाम प्रेम पियूष ह्रद, तिनहु किये मन मीन॥

उत्तमता यह है कि श्रीरामनामका जापक भगवान्‌के और समस्त नामोंको भी अपने हृदयमें जगह दिये रहता है, श्रीरामनाम सोम अपने अपर नामसमाजको उडुगणकी भाँति संग लिये रहते हैं—

रामनाम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥

अतएव भगवत्-चरणानुरागियोंको सब ओरसे मुँह मोड़कर इस कलिकालके पहरमें, जब कि—

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

—की दशा प्राप्त है, रामनाम-कल्पतरुकी ही छायामें गुजारा करनेका निश्चय कर लेना चाहिये—

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत सुलभ सुखद सब काला॥

श्रीरामचरितमानसके दो-एक प्रसङ्गोंको आज्ञानुसार उद्धृत कर देनेकी सेवा इस दीनसे हो सकी, इसमें जो त्रुटि हो उसे भगवज्जन क्षमा करेंगे। इस तुच्छको रामनाम-के महत्त्वका क्या पता?

महिमा राम नामकी जान महेस।
देत परमपद कासी करि उपदेस॥
जान आदिकबि तुलसी नाम प्रभाव।
उलटा जपत कोल ते भै ऋषिराव॥
कलुस जोनि जिय जानेउ नाम प्रताप।
कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जाप॥

अपनी दशा तो यह हो रही है कि 'एकहि एक सिखावत जपत न आप।' कारण क्या? कारण यह है कि 'तुलसी नाम प्रेमकर बाधक पाप।' इसलिये इस तुच्छ जीवके लेखकी त्रुटिपर ध्यान न देकर पाठकोंको चाहिये कि श्रीगोस्वामीजीके मूल वचनोंपर विश्वास करें और श्रीरामनामके महत्त्वको यथावत् मानकर, हठनियमसे यथाशक्ति संख्याका संकल्प करके रामरटनमें लग जावें। पहला दर्जा हठ है, दूसरा रुचि, तीसरा अभ्यास और चौथा तदाकारता है। जैसे, जब हम सब बचपनमें माताका दूध पीते थे और जब अन्नप्राशनकी साइत पूछकर हमारे मुखमें पहले-पहल अन्न चढ़ाया गया था तब हम थू थू करके रो उठे थे। परन्तु माता हठ करके रोज चढ़ाती रही। उस हठका फल यह हुआ कि रुचि हो गयी, अनिष्टता गयी, कुछ दिनों पीछे अभ्यास हो गया। जैसे माताका दूध माँगते थे वैसे अन्नकी रोटी भी माँगने लगे। आज दिन वही अन्न तद्रूप होकर जीवनाधार बन गया है और इस समय वह माताका दूध याद करनेपर घृणा-सी मालूम होती है। इसी प्रकार जब आपकी बुद्धि नाम-महिमापर निश्चितरूपसे विश्वास कर ले तब अपने मन-रूप शिशुसे बुद्धि-माताद्वारा हठपूर्वक अन्नप्राशनकी भाँति नाम-रटन आरम्भ करा दीजिये। यद्यपि पहले-पहल वह कुछ बोझ-सा प्रतीत होगा; परन्तु यदि हठ न छोड़ा जायगा तो कुछ दिनोंमें रुचि हो जायगी और फिर आगे चलकर अभ्यास भी हो जायगा। जैसे व्यवहारकी बातोंमें मन लगता है, वैसे ही रामभजनमें भी लगने लगेगा। कुछ दिनों तो दोनों चलेंगे; किन्तु पीछे यदि नेम दृढ़ रहा तो अन्नकी ही भाँति श्रीरामभजन ही जीवन हो जायगा, विषय-व्यवहारकी माताके दूधकी भाँति विस्मृति हो जायगी।

माय बाप गुरु स्वामि रामकर नाम।
तुलसी जेहि न सोहाय ताहि बिधि बाम॥
तप तीरथ मख दान नेम उपवास।
सब ते अधिक नाम जप तुलसीदास॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामनामपर तुलसी नेह निबाहु ।
एहि ते अधिक न यहि सम जीवन लाहु ॥
आगम निगम पुरान कहत करि लीक ।
तुलसी नाम राम कर सुमिरन नीक ॥
तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि ।
बेद पुरान पुकारत कहत पुरारि ॥
तुलसी रामनाम सम मित्र न आन ।
जो पहुँचाव रामपुर तन अवसान ॥
केहि गनती महँ गनती जल बन घास ।
नाम जपत भये तुलसी तुलसीदास ॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु ।
जनम जनम रघुनन्दन तुलसिहिं देहु ॥
सियावर रामचन्द्रजी जय !

ईश्वर-भजन

(लेखक—पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०)

सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर-भजन क्यों किया जाय ? जिनको कम-से-कम ईश्वरकी सत्ता, आत्माकी अमरता, आवागमन, कर्म और कर्म-फलपर ही श्रद्धा नहीं है उनको तो पहले ये ही विषय समझानेकी आवश्यकता है जो कि इस लेखका विषय नहीं। उनके लिये तो यहाँ संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि जिनको ईश्वरकी सत्तामें सन्देह हो वे 'कल्याण' का 'ईश्वराङ्क' अथवा अंग्रेजी 'कल्याण-कल्पतरु' का God-number और वैशाख, १९९१के 'कल्याण' में हमारा 'अवतार-सिद्धि' नामक लेख पढ़ें। कर्म और कर्मफलका इतना ही प्रमाण बहुत है कि सृष्टिकी विचित्रता और सुख-दुःखका और कोई कारण ही सिद्ध नहीं हो सकता। आवागमन न होता तो जीव पहले जन्मके अनन्तर ही, और कर्म भोगे बिना ही, नष्ट हो जाते और ऐसी थोड़े दिनोंकी सृष्टिसे फल-सिद्धि ही क्या होती ? आत्मा अमर नहीं है तो आवागमन किसका होता है ? यह उत्तर उन लोगोंके लिये है जो अश्रद्धासे धन, अधिकार और भोग-विलासके पीछे, ईश्वर-भजनको व्यर्थ समझते हैं।

कोई यह कहते हैं कि ईश्वर जो कुछ करता है हमारे कर्मोंके अनुसार करता है और कर्मफल अमिट है, इसलिये हम ईश्वरको क्यों भजें, अपने कर्मोंको ही क्यों न सुधारें ? यदि यह भी मान लिया जाय कि मनुष्य अपने कर्मोंको सुधार सकता है, तो भी उनका यह कहना ऐसा ही है जैसे कोई मनुष्य राज्यके सब कर दे और सब प्रकारकी राज्य-सेवा भी करे, पर जब राजाकी सवारी निकले तो उसका अभिवादन या आदर न करे, जैसा कि J.S. Blackie इस प्रसंगमें अपने Self-culture के तीसरे भागके दूसरे पैरेमें कहते हैं—

It is as if a good citizen in a monarchy were to pay all the taxes conscientiously, serve his time in the army, and fight the battle of his country bravely, but refuse to take off his hat to the queen when she passed.'

यहाँ ये भी प्रश्न उठते हैं कि मनुष्य कहाँतक कर्म करनेमें स्वतन्त्र है; कर्म अपने-आप फल देते हैं अथवा ईश्वर देता है; और ईश्वर पाप क्षमा भी कर सकता है वा नहीं। इन विषयोंका विवेचन किसी अलग लेखमें किया जा सकता है। यहाँ इतना ही कह देना बहुत है कि ईश्वर-भजनादि उपायों बिना वह स्थिति ही नहीं आ सकती जिसमें कि मनुष्य कर्मोंको सुधार सके। यह तो सिद्धावस्था है, जो यदि आ गयी तो फिर चाहिये ही क्या ? परन्तु ऐसे संस्कारी जीव विरले ही हो सकते हैं और वे भी इस अवस्थाको पूर्व जन्मान्तरोंमें ईश्वर-भजनादि करके ही पाते हैं। अन्य लोग तो ईश्वर भजन-जैसे सरल उपायको छोड़कर, केवल ऐसे मनसूबे बाँधते-बाँधते ही, 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' होकर, नरककुण्डमें गोता लगानेके योग्य रह जाते हैं।

इस प्रकार विषयके विरोधको हटाकर हम बतलाते हैं कि ईश्वर-भजन क्यों करना चाहिये। यहाँ हम उन सिद्ध पुरुषोंको भी अलग कर देते हैं जो वेदान्तके श्रवण, मनन, निदिध्यासनद्वारा आत्मसाक्षात्कार कर, स्वयं ब्रह्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप हो चुके हैं। उनकी दृष्टिमें जब द्वैत ही नहीं रहा तो कौन किसका भजन करे? हमारा लिखना तो सामान्य मनुष्योंके सम्बन्धमें है—

१–सृष्टिका कर्त्ता हमारा स्वामी अथवा माता-पिता है और हम उसके दास अथवा प्रजा हैं। वह हमको सुख तो देता ही है, पर दुःख भी देता है तो हमको सुधारनेके लिये, न कि शत्रुकी भाँति बदला लेने अथवा उससे अपना जला हृदय ठण्ढा करनेके लिये। ऐसे-ऐसे सुख वह हमको देता है जिनकी कुछ योग्यता हममें नहीं मिलती, और जब दुनियाँभर हमारे विरुद्ध हो जाती है और कोई सहारा देनेवाला नहीं मिलता, तब वह इस प्रकार हमारे सङ्कट दूर कर देता है, मानो वे केवल हमको डरानेके लिये ही आये थे। यदि हमारे पूर्व सुकृत ही ऐसे थे तो इस जन्ममें हम उनको क्या जानें? हमारा उपकारक तो वही है। इसलिये कर्तव्य और कृतज्ञताके रूपपर उसको भजना चाहिये जिससे आगे भी वह हमपर दया-भाव रक्खे।

२–हम बड़े क्षुद्र और निर्बल-हृदय प्राणी हैं। आरोग्य, स्त्री, सन्तान, सम्पत्ति आदि अनेक सुख-सामग्री चाहते हैं और अनेक प्रकारके कष्टोंसे बचना चाहते हैं। हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाला और सङ्कटोंसे बचानेवाला बढ़कर समर्थ सहारा और कौन हो सकता है? संसारमें उससे स्वयं समर्थ कोई नहीं है। सम्राट्से लेकर मजदूरतक सभी दूसरेके बलपर समर्थ हैं। यह बल टूटा अथवा विरुद्ध हुआ कि सब समर्थता दूर हुई। ऐसा समर्थ तो परमेश्वर ही है जो अपने ही बलपर समर्थ है और सबको सामर्थ्य देता है। निज़ाम हैदराबाद, महबूब अलीखाँके राजकवि 'दाग़' को जो उनके मित्रोंने निज़ामकी परम कृपाभाजनता-पर बधाई दी तो उन्होंने इतना सच्चा और बढ़िया उत्तर दिया—

खुदाके फ़ज़लसे है ऐ 'दाग़' सब कुछ।
जो वह मेहरबाँ है तो शाहे दकन भी॥

इसलिये हमको सांसारिक अर्थके लिये भी ईश्वरको भजनेकी आवश्यकता है।

३–हम पापके कीड़े हैं। मनकी दुष्ट प्रवृत्तियाँ ऐसी प्रबल हैं कि हम पापसे बच नहीं सकते। हम अपने अर्थ अथवा सुखके लिये, उसके रचे हुए उसीके सन्तान और अपने भाईस्वरूप और जीवोंकी, शरीरसे कष्ट पहुँचाकर, सम्पत्ति हरणकर और चित्त दुखाकर कितनी हिंसा करते हैं और कितना भारी ईश्वरका अपराध करते हैं। आँखें तो हमारी तब खुलती हैं जब वह हमको उन पापोंके दण्ड देने लगता है। इसलिये भयसे और क्षमाके लिये भी उसका भजन करना चाहिये, जिससे आगे भी पापसे बचनेकी धारणा चित्तमें बलवती हो। प्रारब्धकर्म चाहे अटल हों, पर सञ्चित अज्ञात पाप ईश्वर-भजनसे अवश्य दूर होते हैं, यह शास्त्रमें सर्वसम्मत है। इस जन्मसे पहलेके सभी पाप अज्ञात हैं और वे असंख्य हैं। यदि वे ऐसे सरल उपायसे, एक साथ नष्ट न होकर, घटते भी रहें तो हम कितने हलके होते रहेंगे और कितने कष्टोंसे बचेंगे? क्या यह थोड़ा लाभ है?

४–जब हम धन उपार्जन करते हैं तो हमारी कामना यही रहा करती है कि खर्च और हानि कम-से-कम हो और आय तथा बचत अधिक-से-अधिक हो। यह बचत ही सङ्कट वा आवश्यकताके समय काम आती है और इसीसे चित्तको सहारा रहता है। यदि खर्च और हानि, आय और बचतसे बढ़ गये तो यह ऋण हो गया जो पूँजीको ही खाकर शान्त नहीं होता, किन्तु सब चौपट कर देता है। इस प्रसङ्गमें यह समझना चाहिये कि धन कर्म अर्थात् पाप-पुण्य है; आय सुकृत है; खर्च और हानि पाप है; सुकृत जब पापसे बढ़ जाय तो वह बचत है और पाप जब सुकृतसे बढ़ जाय तो वह ऋण है। बुद्धिमान् मनुष्य जो अपने हिताहितको समझता है यही चाहेगा कि यदि पापसे बचना निरा कठिन है, तो कम-से-कम सुकृतका पलड़ा भारी तो रक्खे, जिससे पापजन्य कष्टोंकी अपेक्षा सुकृतजन्य सुख अधिक भोगनेको मिलें और कष्टोंके समय, भावी सुखकी आशामें, धैर्य भी बना रहे। हमने तो अनायास पापके गट्ठर-के-गट्ठर अपने ऊपर लाद लिये हैं। यदि ये गट्ठर अपने बोझसे हमको गिरा ही देंगे, तब तो हम हाथ-पैर ही क्या हिला सकेंगे और इतने-हीमें कूच करनेका समय आ गया और फिर तिर्यक्योनिमें जा पहुँचे तो कौन तो उपाय बतलावेगा और कौन करेगा?

बजा नगारा कूचका उखड़ गई सब मेख।
अब तो टाँडा लद चुका, खड़ा तमासा देख॥

इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः।
गत्वा निरौषधं स्थानं सरुजः किं करिष्यति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरका भजन दोनों काम करता है। पाप भी घटाता है और सुकृत भी बढ़ाता है। और जब कि सब प्रकारके सुकृतमात्र ईश्वरको पानेके ही उपाय हैं, तो साक्षात् उसी-को भजनेसे बढ़कर और कौन सुकृत हो सकता है। इसलिये इस लोक और परलोकके लिये पूँजी इकट्ठी करनेके तौरपर भी ईश्वर-भजन करना चाहिये।

५—ईश्वर-भजनसे बढ़कर लोक और परलोकमें सुख और मुक्ति पानेका और कोई सरल और सीधा मार्ग नहीं है। कर्मों अथवा निचली श्रेणीके देवताओंद्वारा भोगोंको पाने और ईश्वरतक पहुँचनेके उपाय अलग-अलग अधिकारियोंके लिये उसीने बतलाये हैं, और उपाय चाहे कोई हों, फल देनेवाला तो वही है। और उपायोंमें क्लेश, द्रव्य और सहायकोंकी भी आवश्यकता होती है और कोई-कोई उपाय किसी-किसीके उपयुक्त भी नहीं होते। इसलिये द्राविड़-प्राणायामको छोड़कर, क्यों न सीधी उसीसे लौ लगायी जाय? जब उसीका शरण ले लिया तो और उपाय क्या रहे।

'सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नम्॥'

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सब संसार और उसके कार्योंको तिलाञ्जलि देकर दिन-रात ईश्वरके भजनमें लग जाना—यह उन्हींका काम है जिनको भोगमात्रसे पूर्ण वैराग्य हो चुका है अथवा जिनके आगे-पीछे कोई नहीं है अथवा जिनके पुत्र-पौत्रोंने घर-बार सँभाल लिया है और अब करने-धरनेको कुछ नहीं है। ऐसी स्थिति बिना आश्रितोंको उनके भाग्यपर छोड़कर सब समय केवल भजनमें लगे रहना उचित नहीं। ऐसे भजनसे संसार-कार्यमें हानि होती है जो नहीं करनी चाहिये, क्योंकि संसारको चलाना स्वयं परमेश्वरकी इच्छा है और गृहस्था-श्रम एक परम आवश्यक आश्रम है। ऐसे भजन-कर्ताओं-का—चाहे वे गृहस्थी हों अथवा वेषधारी साधु—भजनोत्साह भी प्रायः थोड़े ही दिन रहता है। फिर भजनमें मन नहीं लगता और बहुत समय जो खाली रहता है उसमें उनका मन शैतानका कारखाना (An idle brain is the devil's workshop) हो जाता है जिसमें कुत्सित वृत्तियाँ भाँति-भाँतिके पाप ही गढ़ा करती हैं। हाथमें तो माला रहती है, पर मन घूमता है मिठाइयोंमें, सुन्दरियोंमें, रुपये-पैसेमें, अथवा आराममें और सबसे बढ़कर पुजवानेमें। ऐसे लोगोंमेंसे कई तो फिर भोगोंके लिये तरसते-तरसते दुराचारमें पड़ जाते हैं और कभी-कभी वापस गृहस्थाश्रममें आ जाते हैं, क्योंकि उनके चित्तसे 'रस' (गीता २।५९) नहीं गया। व्यर्थ आश्रितोंको मँझधारमें छोड़ देने और दुर्दै-शाग्रस्त कर नष्ट कर देनेतकका अपराध उनके गले अलग पड़ता है। ऐसे लोगोंके लिये गृहस्थाश्रम ही उत्तम बन्धन और तपःशाला है।*

हमारा प्रयोजन उतने ही भजनसे है जितना प्रत्येक गृहस्थी कर सकता है। चाहे एक-आध घड़ी ही क्यों न हो। ऐसे भजनमें न कुछ परिश्रम होता, न कुछ खर्च होता और जब कि बहुत-सा समय व्यर्थ ही चला जाया करता है तो थोड़ा-सा भजनमें लगा देनेसे सांसारिक कार्यकी भी कुछ हानि नहीं होती। घड़ी-आध-घड़ी कहनेसे हमारा प्रयोजन यही है कि इतना-सा समय तो प्रत्येकको मिल सकता है, यदि अधिक नहीं, और बूँद-बूँद करके घड़ा भर जाता है। 'अधिकस्याधिकं फलम्' तो है ही। इतना-सा भजन भी यदि मनुष्य नहीं करते हैं तो बिना कारण हाथ लगे बड़े भारी लाभको खोते हैं और बड़े भारी दण्ड और हानिको मोल लेते हैं। जो यह समझते हैं कि भजन बूढ़ोंका काम है, वे बड़े दयाके पात्र हैं। या तो स्वयं माता-पिताने उनके चित्तमें बचपनसे भजनके संस्कार न जमाकर, अथवा योग्य रीतिसे न जमाकर अपने प्राण-प्रिय सन्तानोंका परम अहित कर डाला; अथवा वे हम-जैसे पापी, कुसंस्कारी जीव हैं जिन्होंने थोड़े-बहुत विद्या-बुद्धिसम्पन्न होकर भी भजनके गुण बड़ी उम्रतक नहीं जाने। भजनका समय तो बचपनसे बुढ़ापेके पहलेतक ही है। जितना भजन-धन इतने समयमें इकट्ठा हो सकता है उतना तेल बिना बुझते हुए दीपककी-सी वृद्ध मनुष्यकी उम्रमें

* सब समय भजन करनेके लिये संसार और उसके कार्योंको तिलाञ्जलि देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। भजनमें लगन होनी चाहिये, फिर भजन करते हुए ही परिवार-पालन, व्यवहार आदि घरके सब काम भगवत्प्रीत्यर्थ हो सकते हैं। अर्जुनको तो श्री-भगवान्‌ने निरन्तर भगवत्-स्मरण करते हुए युद्ध करनेकी आज्ञा दी थी। मेरी समझसे तो भजनसे और घर छोड़नेसे कोई ऐसा खास सम्बन्ध नहीं है। भजन अलग बैठकर या अलग रहकर ही होता हो, सो बात नहीं है अतएव सभीको सब समय ईश्वर-स्मरण करते हुए ही संसारके सारे वैध कर्तव्यकर्मोंको करना चाहिये।—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हो सकता है। जब इन्द्रियाँ उत्तर दे जाती हैं, शरीर-की शक्ति क्षीण हो जाती है और यमदूतोंके घण्टेका शब्द सुनायी देने लगता है तब तो भजन, भजन नहीं, किन्तु फाँसीवाले अपराधीकी हाय-हाय और क्षमाकी गुहार है, जब कि और कुछ करने-धरनेको ही नहीं रहता। भजन तो लड़के, लड़की, जवान और स्त्रियाँ सबको करना चाहिये। इसमें तो अनधिकारी कोई भी नहीं और कर्म तो अपने-अपने ही अपने साथ जाते हैं। कैसी भारी भूल है कि माता-पिता सन्तानोंके पापमूलक और नरकपरिणामी सांसारिक हितकी चिन्ता तो उनके उत्पन्न होनेके दिनसे करने लगते हैं, पर जिसमें उनका जन्म-जन्मान्तर और लोक-परलोक दोनोंमें हित है और सांसारिक हित भी जिसके आश्रित हैं उसकी कुछ चिन्ता और शिक्षा नहीं करते। ऐसी ही भूल यह है कि ईश्वर-भजन विधवाओंके ही योग्य मानकर सुहागिनोंको उससे रोका जाता है अथवा उनको इसमें प्रवृत्त नहीं किया जाता। इसी प्रकार कुछ लोगोंको भजन करते लजातक आती है, यद्यपि झूठ, जाल, धोखा, चोरी और निर्लज्ज कर्म करते नहीं आती।

हमको भलीभाँति अनुभव हो चुका है कि भजन एक विलक्षण कल्पवृक्ष और कवच है। मनोरथ पूर्ण करने और सङ्कटोंको टालनेमें जैसी इसकी शक्ति है वैसी और किसी-की नहीं। यथार्थ साधु पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करे और सङ्कट टाले—इसमें तो आश्चर्य ही क्या है। यह तो इसका शास्त्रसम्मत स्वाभाविक प्रभाव है। परन्तु ऐसे पुरुषोंके भी, जिन्होंने सारी उम्र व्यभिचार करने, पराया धन हरने और लोगोंको कष्ट पहुँचानेमें ही बितायी, असहाय दशामें भी मनोरथ पूर्ण होते और सङ्कट टलते हमने देखे हैं, यद्यपि उनके पाप—

अत्युग्रपाप पच्यानामिहैव फलमश्नुते ।

ऐसे थे। कारण केवल यही था कि वे भजनके नित्य-नियममें कभी नहीं चूकते थे। यह हमने भजनकी शक्तिका अनुभवमात्र लिखा है। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि भजनके पीछे सब उद्योग छोड़ देने चाहिये अथवा उद्योग बिना भजनसे ही सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह भी हमारा अभिप्राय नहीं है कि ईश्वर भजनके पक्षपातसे दुष्टोंको प्रबल पापोंका दण्ड नहीं देता। यदि ऐसा होता तो दुष्टोंके दोनों हाथ लड्डू रहते। अर्थात् पाप भी पेटभर कर लेते और फिर भजनसे उसका फल भी नष्ट कर देते। यदि ऐसा होता, तो दुष्टोंका अन्त ही नहीं होता और प्रजाका अन्त हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता, जिसके साक्षी पुराण और वर्तमान इतिहास हैं। फल भुगतानेका देश-काल-निमित्त ईश्वर ही जानता है और कभी-न-कभी वह उनको उन प्रबल पापों-का दण्ड भी दे ही देता है। यह भी हमारा कभी अभिप्राय नहीं है कि ईश्वर-भजन-जैसे अमूल्य रत्नको सांसारिक मनोरथ-पूर्ण और सङ्कट-निवारण-जैसे काँचको खरीदनेमें ही खर्च कर देना चाहिये। परन्तु यह लेख सामान्य संसारियोंके लिये है और जिनके पापक्षय, आत्मोन्नति भगवत्प्राप्ति अथवा मुक्ति-जैसे ऊँचे प्रयोजन होते हैं उनको भी संसारमें रहनेसे मनोरथ और सङ्कटोंके प्रसङ्ग आते ही हैं और एक दिनमें उनकी भी चित्तकी वृत्ति ऐसी बदल भी नहीं जाती कि ऐसे प्रसङ्गोंका विचार न हो।

ईश्वर-भजनके प्रयोजनोंको हम उत्तम, मध्यम, निकृष्ट श्रेणियोंमें विभक्त करते हैं—

१ भगवत्प्राप्ति अथवा मुक्ति।

२ पापक्षय।

३ सुख-प्राप्ति, जिसके अन्तर्गत सङ्कट-निवारण भी है।

पहला सामान्य गृहस्थियोंके लिये नहीं है और इस लेखका विषय भी नहीं है। तीसरा इसलिये निकृष्ट है कि ईश्वरसे ऐसी अल्पकालस्थायी वस्तु क्या चाहना? परन्तु संसारियोंका अधिकांश इसीको चाहता है, इसलिये इसमें भी कोई दोष नहीं है। परन्तु उस दशामें यह नीचाति-नीच और सर्वथा हेय प्रयोजन है, जब कि मनुष्य यह चाहे कि चाहे किसी भी पापसे मिले, परन्तु मुझे सुख मिले। ऐसा मनुष्य मनुष्य नहीं, किन्तु असुर (असुषु=विषयसुखेषु रमते इति) अर्थात् राक्षस है जो औरोंकी हिंसा अथवा हानि करके अपना सुख चाहता है जिसका किसीको अधिकार नहीं। सुख चाहिये तो धर्मानुकूल उपायोंसे ही चाहिये, चाहे थोड़ा मिले। अन्यथा वही नरक और कष्टका कारण होगा जिसको यदि मनुष्य परिणामशोची होगा तो स्वयं नहीं चाहेगा।

वरं दारिद्र्यमन्यायप्रभवात्खलु वैभवात्।
कृशताभिमता देहे पीनता न तु शोकतः॥

परन्तु हमारी समझमें प्रत्येकका प्रयोजन सुखप्राप्तिसे भी अधिक पापक्षय होना चाहिये। क्योंकि सुखका अभाव कष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो नहीं है। पापका परिणाम तो स्पष्ट कष्ट ही है जिसको कोई नहीं चाहता।

अब हम भजनके आठ प्रकार मानकर, उनमेंसे चार-चारको विचारांश और क्रियांश, अथवा परोक्ष और साक्षात्, अथवा गौण और मुख्य इन-इन श्रेणियोंमें विभक्त कर और प्रत्येक प्रकारको उत्तरोत्तर फलाधिक्यके क्रमसे रखकर, क्रमसे उनपर विचार करते हैं—

पहली अर्थात् विचारांश, परोक्ष, अथवा गौणश्रेणी—

१ पाठ

२ कथा

३ व्याख्यान वा वाद-विवाद

४ शास्त्रालोचन

दूसरी अर्थात् क्रियांश, साक्षात् अथवा मुख्य श्रेणी—

५ दर्शन

६ पूजा

७ नामग्रहण, स्तुति-प्रार्थना

८ कीर्तन

१ पाठ—इसमें हम मूल पद्य पाठको लेते हैं, जैसे भागवतादि पाठ और स्तोत्रपाठ। अर्थज्ञ पुरुष अर्थपर बराबर ध्यान रखता हुआ जो पाठ करे उसका फल अधिक है क्योंकि उसमें ध्यान पूरा लगता है और संस्कार पक्का होता है। जो तोतेकी तरह पाठ किया जाय उसका फल स्पष्ट कम है। और जब मूल कण्ठ हो जाता है अथवा जिनकी वाचनशक्ति तीव्र होती है उस दशामें तो पाठ प्रायः जीभका व्यापार रह जाता है, मनका नहीं। परन्तु निष्फल तब भी नहीं होता, क्योंकि भावना तो बनी रहती है।

२ कथा—जिसमें भागवतादिका अर्थ वा व्याख्यान किया जाता है। मूलपाठसे इसमें ध्यान स्वभावतः अधिक रहता है, क्योंकि ध्यान न रहे तो अर्थ हो ही नहीं सकता।

३ व्याख्यान वा वाद-विवाद—किसी आध्यात्मिक विषयका स्पष्टीकरण, शङ्का-समाधान, खण्डन और मण्डन। इसमें भी ध्यान बराबर बना रहता है।

४ शास्त्रालोचन—शास्त्रका विचार जो अपने आप अथवा गुरुकी सहायतासे पुस्तकपर किया जाता है। इसमें बुद्धिपर इतना दबाव पड़ता है कि ध्यान कहीं डिग ही नहीं सकता। इसका फल हम एकाग्रजपसे कम नहीं मानते। इस विषयमें विस्तारसे आगे लिखा जा सकता है।

ये चारों प्रकार भी भजनका ही काम देते हैं और वैसा ही इनका फल है। भगवान् वेदव्यास 'सिद्धान्तदर्शन' की समाप्तिमें स्पष्ट कहते हैं—

स्वाध्यायो धियमुल्लावयति निसर्गादुल्लावयति निसर्गात्।

अर्थात् इस शास्त्रका अध्ययन, चाहे यह किसी भी रूपमें हो, मनुष्यकी बुद्धिको अवश्य ऊँचा ले जाता है जिससे वह उत्तम लोक या जन्म पाता है, क्योंकि सबका प्रयोजन भगवच्चिन्ता ही है। नीचे लिखे प्रकार तो साक्षात् ही भगवद्भजनके रूप हैं—

५ दर्शन—भगवान्‌की मूर्तियोंका दर्शन। यह साधारण लोगोंके लिये है। जबतक दर्शन किया जायगा, चित्त एकाग्र रहेगा। परन्तु दर्शनसे यदि भक्तिभाव उत्पन्न न हुआ तो अधिक फल नहीं, यद्यपि निरा निष्फल भी नहीं।

६ पूजा—यह भी साधारण लोगोंके लिये है। जबतक पूजा होती रहेगी चित्त एकाग्र रहेगा, यद्यपि उस समय जो श्लोक या मन्त्र बोले जायँगे उनके अर्थपर ध्यान कम रहेगा और मूर्ति और सामग्रीपर अधिक रहेगा। दोनोंपर बराबर साथ रहे वह एकाग्रता है। परन्तु पूजा करते हुए यदि ऐसा आदरभाव न रहे जैसा कि माता-पिता अथवा गुरुकी सेवा करते समय होता है अथवा ऐसा वात्सल्यभाव न रहे जैसा अपने बालकको नहलाते-धुलाते और शृङ्गार करते समय होता है, तो वह पूजा बहुत ही कम फलदायिनी है, यद्यपि निरी निष्फल नहीं।

७ जप—नामग्रहण, स्तुति और प्रार्थनाको हम इसके अन्तर्गत मानते हैं। यह स्थूलबुद्धि और सूक्ष्मबुद्धि दोनोंके लिये है और सब कर्मोंसे बढ़कर है, जैसा कि कहा है—

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १०। २५)

'जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः।

'कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात्'—(मनु० २। २७)

'जपतो नास्ति पातकम्'

और साथ ही सबसे सरल और सीधा है। विष्णुसहस्रनामादि पाठको नामग्रहणके अन्तर्गत मानना चाहिये। परन्तु इसका सबसे अधिक फल तब है, जब पूरी शुद्धि, एकाग्रता और भावके साथ, अर्थपर ध्यान रखते हुए किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। इनमेंसे जिस-जिसमें जितनी-जितनी कमी रहेगी उतना ही फल कम होगा, यद्यपि निष्फल तो कभी भी नहीं, क्योंकि भावना तो बनी ही रहती है। सबसे अधिक फल तो मानस जपका है जिसमें जीभ और ओठ कुछ भी नहीं हिलते। हमारा ऐसा अनुमान है कि इसमें संस्कार कुछ भी बिखरने नहीं पाते, किन्तु एकाग्र होकर दृढ़ होते हैं। इससे कम फल उपांशु जपका है जिसको पास बैठा मनुष्य भी नहीं सुन सकता, यद्यपि इसमें जीभ और ओठ अवश्य हिलते हैं। इससे कम फल उसका है जिसको पासका मनुष्य सुन सकता है, चाहे धीरे बोले। इससे भी कम फल उसका है जो बातचीतके स्वरमें किया जाता है। और सबसे कम फल उसका है जो जोर-जोरसे किया जाता है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणस्साहस्रो मानसः स्मृतः॥

(मनु० २। ८५)

८ कीर्तन—एक प्रकारसे तो इसका फल कम होना चाहिये, क्योंकि यह मुक्तकण्ठसे किया जाता है। परन्तु स्वयं भगवान् कहते हैं कि—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

इससे इसका फल सबसे बढ़कर होना चाहिये। कारण यह जान पड़ता है कि जप-पाठादि तो रूखे काम हैं जिनमें मन नहीं लगता और पूरा भाव उत्पन्न नहीं होता। इसमें रागके कारण कीर्तनकर्ता और श्रोता सबके मन इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि सब भावमें डूब जाते हैं और ऐसा अनुभव होता है मानो चित्तके सब दुष्ट संस्कार धुलकर स्वच्छ हो गये। एकाग्रता तो भावके साथ ही लगी रहती है।

अब हम 'शास्त्रालोचन' और 'जप या नामग्रहण' पर कुछ विस्तारसे अपना अनुभव लिखना चाहते हैं—

शास्त्रालोचन—यदि ज्ञानके बिना भी कोई भगवद्भजन अथवा आत्माका उद्धार करना चाहे, तो ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो इसके लिये अनधिकारी (अयोग्य) हो। जडात्मा-से-जडात्मा और नीच-से-नीचके हाथमें सरल-से-सरल उपाय विद्यमान है! केवल लौ होनी चाहिये और पाखण्ड नहीं होना चाहिये। परन्तु यदि भाग्यसे विद्या और विशेषकर संस्कृतविद्या और बुद्धिसे सम्पन्न हो, तो वह जन्म व्यर्थ ही है जिसमें ईश्वर, आत्मा, सृष्टि, परलोक, जीवोंकी गति और कर्म इत्यादिकोंका सम्पूर्ण यथार्थ तत्त्व जाननेका यत्न मनुष्य न करे, चाहे पूर्ण तत्त्व शीघ्र जाननेमें न भी आ सके। पशुओंकी तरह उत्पन्न होकर और कुछ दिन संसारमें रहकर मर जाना तो बड़ा सहज है, और इन तत्त्वोंको जाने बिना भी, केवल श्रद्धासे आत्माकी सद्गति कर लेना भी कठिन नहीं है। और कई विद्वान्, पेटके लिये अथवा रुचिसे, तुच्छ जड प्रकृतिके अनेक भागोंमेंसे एक भागमात्रसे सम्बन्ध रखनेवाले एक लौकिक शास्त्रके अध्ययन और विचार, और उसके भी एक अंश-मात्रके आविष्कारमें, जन्म बिता ही देते हैं। पर ऊपर लिखे तत्त्वोंको नहीं जाना तो जन्म लेकर क्या किया और क्या जाना?

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(श्रीमद्भा० १। २। १०)

विषयभोग इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये नहीं हैं, किन्तु जीवननिर्वाहमात्रके लिये हैं; और यज्ञादि कर्मोंसे जो स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है वह भी जीवका मुख्य प्रयोजन नहीं है। जीवका मुख्य प्रयोजन तो तत्त्वजिज्ञासा है। केवल श्रद्धासे, जप-पाठादिद्वारा भगवद्भजनादि कर लेना और बात है, और सब तत्त्व जानकर करना और बात है। कहा भी है—

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'

(केन० २। ५)

यदि इसी जन्ममें तत्त्व जान लिया तो अच्छा है, नहीं तो बड़ी हानि है। कौन जाने ऐसी योनि मिल गयी अथवा संस्कारवश मनुष्य-जन्ममें ही इस तत्त्वकी ओर ध्यान न गया अथवा योग्यता न हुई तो हाथ मलना रह गया! माना कि केवल जाननेसे उतना लाभ नहीं, जितना भजनादि करनेसे, जिससे आत्माका हित हो सकता है, तथापि तत्त्वालोचन भी भजनादिकी ही कक्षाका माना गया है, जैसा कि ऊपर लिखे व्यासवचनसे सिद्ध है। और भी कहा है—

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्तापि सर्वावनि-
र्यज्ञानाञ्च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च सम्पूजिताः।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥

(वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तत्त्व केवल अद्वैतवेदान्तमें है। इससे संसारके सब धर्म और शास्त्रोंका तात्पर्य और सङ्गति करामलकवत् हो जाती है। संसारकार्य भी जैसे इस तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे हो सकते हैं, और दृष्टिसे नहीं। इसीलिये एक यूनानी तत्त्वज्ञने विरोधाभासमें कहा है कि राजकाज तत्त्वज्ञको सौंपना चाहिये, परन्तु तत्त्वज्ञका धर्म नहीं कि राजकाज करे। इससे ऐसी आँखें खुलती हैं कि प्रत्येक वस्तु अथवा घटनाका यथार्थ और अद्भुत अर्थ दिखायी देने लगता है। गृहस्थोंको थोड़ा-बहुत समय इसमें अवश्य लगाना चाहिये। इससे ऐसे संस्कार उत्पन्न होंगे कि भावी जन्मोंमें भी चित्तको बलपूर्वक तत्त्वजिज्ञासा होगी, जैसा कि कहा है—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥

(गीता ६। ४३-४४)

'अगले जन्ममें मनुष्य उस पूर्वजन्मके बुद्धिसंयोगको प्राप्त होकर हे अर्जुन! फिर उसीकी सिद्धिके लिये यत्न करता है। पूर्वजन्मके अभ्याससे विवश होकर वह योग-मार्गमें आकृष्ट हो जाता है और जो योगका जिज्ञासु है वह भी शब्दब्रह्मके परे चला जाता है।' इस प्रकार तत्त्वज्ञान बढ़ानेके ही संयोग मिलेंगे जिससे समयपर पूर्ण तत्त्वज्ञान हो जायगा और मोक्षप्राप्ति स्वतः हो जायगी, यदि वैसी इच्छा होगी।

जप वा नामग्रहण—सनातनधर्मशिक्षाके अभाव, अंग्रेजी रहन-सहन और विचारोंके प्रभाव, धन, अधिकार और भोग-विलासकी लिप्सा और निर्धनता, महँगी और जीवन-यात्राकी दौड़-धूपसे, हम ब्राह्मणतक सर्वथा पतित हो गये हैं। हमको या तो भजनके लिये अवकाश नहीं मिलता है, या उसमें रुचि नहीं होती। फिर चित्त एकाग्र कैसे हो? हमसे शिखासूत्र, सन्ध्यावन्दन और पञ्चमहायज्ञके ही नियम नहीं निभते जिसके बिना ब्राह्मण भी थोड़े ही समयमें शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है। खान-पान, संसर्ग और सम्बन्ध हमारे ऐसे भ्रष्ट हो चुके कि हमारे रक्तकी एक-एक बूँद अपवित्र हो चुकी। भाँति-भाँतिकी चिन्तासे और चर्या बिगड़ जानेसे हमारे शरीर भी ऐसे निर्बल हो गये—चाहे चूनापोती कब्रकी तरह स्वच्छ गोरे और पुष्ट दिखायी दिया करें—कि स्नानादि नियमोंको निभाते हैं तो रुग्ण हो जाते हैं। ऐसी दशामें शौचाचारकी क्या बात है? इसलिये कोई जपादि कर्म हम पूर्ण शास्त्रविधिसे और अविच्छिन्न तो कर नहीं सकते और ऐसी दशामें पहले-जैसा फल भी कैसे हो?

परन्तु ऐसी स्थितिमें यही सिद्धान्त सत्यानाशी है कि—

न नौ मन तेल हो, न राधा नाचे।

अथवा—

'या तो खाय घीसे, या जायँ जीसे'

सिद्धान्त यह होना चाहिये कि—

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति॥

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

इसलिये हमारा मत यह है कि जिनसे शास्त्रविधि निभ सके वे उसको निभावें। उसका फल उतना ही अधिक है। परन्तु जिनसे कम वा कुछ न निभ सके वे उसका कुछ विचार न करें। जिस दिन, जिस समय, जितनी-सी देर और जिस दशामें जितना-सा भजन हो सके, अवश्य कर लिया करें, चाहे गायत्री जपें, चाहे प्रणव जपें, चाहे मूलमन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ नमः शिवाय इत्यादि) जपें, चाहे "हरे राम हरे कृष्ण" आदि जपें, चाहे राम-नाम लें, चाहे कृष्ण-नाम लें, अथवा विष्णु-सहस्रनामादिका पाठ करें, पर जिसमें रुचि हो उसीका जप कर लिया करें। भगवान् भावके भूखे हैं, शुद्धाशुद्धि, एकाग्रता-अनेकाग्रता आदिका कुछ विचार नहीं करते। रोग, यात्रा, आवश्यक कार्य, अथवा चिन्ता आदिके अवसरोंपर भजन न हो सके तो न सही। कदापि कुछ न करनेसे कभी-कभी और थोड़ा भी करना अच्छा है। हमने किसी भी प्रकारसे किये हुए भजनको व्यर्थ नहीं माना है। इसका कारण यही है कि मैं भजन करता हूँ यह भावना तो उस दशामें भी विद्यमान है। श्रद्धा हो तो भजन करना चाहिये, न हो तो भी करना चाहिये। दान भी तो धर्म, अर्थ, भय, स्नेह, दया इन पाँच कारणोंसे करना लिखा है जो सात्त्विक दानके अन्तर्गत नहीं है, किन्तु राजस, तामसके अन्तर्गत है, जैसा कि कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मादर्थाद्भयात्कामात्कारुण्यादिति भारत।
यथाशक्त्या प्रदातव्यमेवमाह प्रजापतिः॥
(महा० अनु० १२९।५, ११)

इस प्रकार भजन अश्रद्धासे भी किया जाय तो क्या बुरा है?

यह सब कुछ हमने प्रारम्भिक अवस्थाके लिये कहा है जिससे अभ्यास प्रारम्भ तो हो जाय। समयपर भजनमें श्रद्धा और रुचि भी उत्पन्न हो ही जायगी। फिर तो ऐसा चाव भी लग सकता है कि—

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

यदि यह कार्य रूखा होनेसे इतना चाव न भी बढ़े तो कम-से-कम इतनी इच्छा और सङ्कल्प तो अवश्य हो जायगा और होना ही चाहिये कि कोई दिन भजनसे खाली न जाय और जितना भजन संग्रह हो सके उतना ही अच्छा। ज्यों-ज्यों भजनके गुण जान पड़ेंगे, जीवनकी अस्थिरताका अनुभव होने लगेगा और मनुष्य-योनिकी दुर्लभताका ज्ञान होने लगेगा त्यों-त्यों 'गृहीत इव केशेषु मृत्युना' इस न्यायसे अविच्छिन्न और अधिकाधिक भजन बढ़ने लगेगा। समयपर शौच, एकाग्रता आदि शास्त्र-विधिका भी विचार उत्पन्न हो सकता है और सब न्यूनताएँ पूर्ण कर ली जा सकती हैं। परन्तु यदि अन्ततक भी ऐसा न हो, तो भी कुछ सन्ताप करनेकी आवश्यकता नहीं। भगवान्‌का नाम अपवित्रोंको पवित्र और सब कर्मोंकी न्यूनताओंको पूर्ण करनेवाला है। इसलिये यह न मनुष्य-की अपवित्रतासे स्वयं अपवित्र हो सकता है और न किसी विधिकी न्यूनतासे निरा निष्फल हो सकता है। यह समझकर सन्तोष और श्रद्धा कर लेनी चाहिये कि हमारे भाग्यमें इतना निभना ही लिखा था। निष्फलताका सन्देह कदापि नहीं करना चाहिये।

इस सम्बन्धमें हमारा अनुभव यह है, गायत्री तो वेदमाता है और द्विजाति और विशेषकर निष्कामकर्मियोंके उपयुक्त है। इसलिये ऐसे पवित्र मन्त्रका जप तो अशुद्ध-दशामें कदापि नहीं करना चाहिये। जिस दिन और जिस समय पूर्णतया शुद्ध हो तभी करे और समय न भी सही। भजनका समय कम-से-कम प्रातःकाल जगनेके पीछे और रातको सोनेके पहले सबसे उपयुक्त है। अर्थात् प्रातःकाल-का दिनभरके कुशल और शान्तिके लिये और सोनेके पहलेका रात्रिभरके कुशल और शान्तिके लिये। इस बीचमें जब-जब अवकाश और रुचि हुई भजन करने बैठ गये और जी हटा कि उठ गये, चाहे पाँच मिनट ही क्यों न हो। दिनभरमें कम-से-कम एक बेर तो अवश्य भजन होना ही चाहिये और कुछ अवकाश, रुचि अथवा शक्ति न हो तो भी पड़े-पड़े अथवा चलते-फिरते ही कुछ नाम तो भगवान्‌के लिये ही लेने चाहिये जिससे नित्य-भजनका तन्तु न टूटने पावे। अशुद्ध दशामें—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

इस श्लोकसे भजनका आरम्भ कर सकते हैं और अन्तमें 'ॐ तत्सत्' इसको एक अथवा तीन बेर बोल लेना चाहिये। यदि भजनके बीचमें बोलना अथवा उठना हो तो भी 'ॐ तत्सत्' बोलकर भजन छोड़ सकते हैं। स्थान कोई एकान्त हो जहाँ कोई शब्द नहीं आता हो और अशुद्धिका संसर्ग न हो। सन, ऊन, रेशम, मृगादि चर्मादिका आसन न हो तो पृथ्वी ही सही। सहारा लेकर बैठना अच्छा है, जिससे शरीर हिले नहीं। आँख बन्द रखना चाहिये जिससे दृष्टि कहीं न जाय। कमर, गर्दन और सिर दृढ़ और सीधे रखने चाहिये जिससे चित्तपर दबाव पड़े और एकाग्रता हो। गीताके 'सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वम्' (६।१३) इस श्लोकके शाङ्कर-भाष्यमें लिखा है कि नासिकाग्रसे कोई प्रयोजन नहीं है, केवल दोनों भौंके बीचमें दृष्टि रखनेसे है और उसका भी प्रयोजन यही है कि दृष्टि इधर-उधर न डोले और चित्त एकाग्र हो। मुँह न ऊँचा और न नीचा, किन्तु सीधा रखना चाहिये, जिससे कष्ट न हो। मन बड़ा चञ्चल है। प्रतिपल सावधान न रहे तो वह गया, वह गया! फिर-फिर पकड़कर लाना पड़ता है। नये अभ्यासियोंके लिये माला आवश्यक है। इससे यह नियम और उत्साह रहता है कि हमने इतना भजन कर लिया। परन्तु मूँगोंपर जो अंगुलियाँ चलती हैं उससे भी कुछ ध्यान बटता है। परिमाण जानना हो तो दूसरा उपाय यह भी है कि घड़ी रखकर मालासे गणना कर ली कि कितने समयमें किस मन्त्र अथवा नामकी कितनी आवृत्ति होती है। दोनों हाथ जोड़कर, नम्रभावसे भजन करनेमें एकाग्रता और सन्तोष अधिक होता है। जितनी एकाग्रताके साथ भजन होगा उतना ही सन्तोष होगा और यह सन्तोष ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजनकी सफलताका साक्षी है। यथार्थमें तो एकाग्रताका उपाय एकाग्रताका निरन्तर यत्न ही है, और कुछ नहीं। प्रत्येक नित्यके अथवा विशेष कार्यके प्रारम्भ और समाप्तिमें चुपचाप दस-पन्द्रह परमेश्वरके नाम ले लेनेका अभ्यास कर लेनेसे भी भजनकी मात्रा और चित्तकी निर्मलता अनायास बढ़ सकती है। भगवान्‌के जिस स्वरूपमें विशेष रुचि हो उसीके चित्रको छोड़कर सोते-जागते और किसीका मुँह न देखनेका नियम कर लिया जाय, तो इसमें भी कुछ श्रम नहीं होता और सदा मङ्गल रहता है। ऐसे अनेक, सहज, भगवद्भजनके प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार निकाले जा सकते हैं। हम तो स्वयं उन रँगरूटोंमें हैं जिनका भजनमें न विशेष चित्त लगता और न स्थिति ऐसी है कि कोई शास्त्रीय विधि निभ सके। परन्तु—

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।

इस न्यायसे स्वच्छन्दता और सुखपूर्वक जो कुछ हम कर सकते हैं वही हम-जैसे औरोंके लिये लिख दिया है। जिसको जिस प्रकारमें सुभीता और लाभ दिखायी दे और जितना निभ सके उसके लिये वही उपयुक्त है।

परन्तु चेष्टा ऐसी ही करनी चाहिये जिसमें भजन अधिक-से-अधिक और निरन्तर हो सके, समयपर भजनकर्ताको अनुभव हो जायगा कि भजन कैसे-कैसे मनोरथ पूर्ण कर रहा है और कैसे-कैसे सङ्कट टाल रहा है; चित्तमें कैसी निश्चिन्तता, निःशोकता, दृढ़ता, निर्भयता और शान्ति आ रही है और पाप नष्ट हो-होकर कैसी निर्मलता आ रही है; आगेके लिये नित्यप्रति कैसा धन इकट्ठा होता जा रहा है जिसके आगे मौतका डर भी भाग रहा है और कम-से-कम यह तो निश्चय हो रहा है कि हम वर्तमानसे ऊँची नहीं तो, नीच गति तो नहीं पायँगे। यह क्या कम लाभ है, हमारा तो यहाँतक विश्वास है कि भजनसे स्वराज्यतक सुलभ है जिसमें कि कोई क़ानून, पुलिस या फौज़ आदि रुकावट नहीं डाल सकते, केवल प्रजाके अधिक-से-अधिक संख्यामें श्रद्धासे प्रार्थना करते रहनेकी आवश्यकता है।

परन्तु भजनके अनुसार आचरण भी रहना चाहिये। पापोंसे भजन व्यर्थ तो नहीं जा सकता; परन्तु पाप न छोड़े तो वह भजनमें कलङ्क ही है। यह सत्य है कि मन और इन्द्रियोंकी विषयोंमें प्रबल प्रवृत्ति होनेसे और दुष्ट लोगोंके विवश कर देनेसे, साधु पुरुषका भी पापसे बचना कठिन है। परन्तु कई व्यर्थ पाप भी होते हैं। जैसे वाणीसे परनिन्दा, आत्मश्लाघा, व्यर्थ असत्य, बकवाद, अश्लील और कठोर बोलना जिनसे कोई सांसारिक लाभ नहीं। चित्तसे किसीसे डाह करना, किसीका बुरा चाहना और किसीके कष्ट वा हानिसे प्रसन्न होना जिससे अपनेको कुछ लाभ नहीं। शारीरिक व्यभिचार तो करने पावें एक स्त्रीसे पर मनसा, वाचा व्यभिचार करें पाँच सौ से। यह पिछला पाप 'गुनाह बेलज़त' है। घर बैठे जो अपनी अर्थहानि करे उसको 'जैसेको तैसा' न्यायसे रोकना अथवा हानि पहुँचाना आवश्यक हो सकता है, परन्तु आगे होकर अपने लाभके लिये अथवा बिना कारण किसीकी अर्थहानि करनेका किसीको अधिकार नहीं है। इस प्रकारके व्यर्थ और अनधिकार पाप तो भजनकर्ताको अवश्य बन्द कर देने चाहिये। तब भजन एक महाफल तप हो जायगा। इसलिये मन, वचन, कर्मपर इस प्रकारकी संयमदृष्टि सदा रखनी चाहिये। जहाँतक हो सके मौन रखना—यह इस कार्यमें बड़ा सहायक है और एक प्रकारका तप है। नम्रता भी एक आवश्यक गुण है। इन दोनों गुणोंमें कुछ श्रम वा खर्च भी नहीं होता। इस प्रकार पापोंसे बचकर सदाचारका ग्रहण करते हुए ही भजन करना चाहिये।

इस लेखमें हमने अपने-जैसोंके हितके लिये, इस विषयमें जितने हमारे विचार थे उनमेंसे कुछ यहाँ व्यक्त कर दिये हैं। इसमें कोई बात अनुचित अथवा शास्त्र-विरुद्ध दिखायी दे, तो उसके सर्वथा दोषभागी हम ही हैं, 'कल्याण' कदापि नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप गया

श्रीतुकाराम-चरित्र

(जीवनी और उपदेश)

९ चित्र, ६९४ पेज, अच्छा कागज

मूल्य १॥) सजिल्द १॥।)

लेखक—

श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए०

अनुवादक—

श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

श्रीशक्ति-अंक

४॥) भेजकर ग्राहक बन जायँ या हमें वी० पी० भेजनेकी आज्ञा दें।

इतनी सामग्री आपको और कहाँ मिलेगी ?

सुन्दर, उपयोगी, सस्ता यही धार्मिकपत्र है।

यह एक बारका व्यय आपके बार-बार पढ़नेके काम आवेगा।

नया संस्करण

१००० बिक गया

मैनेजर 'कल्याण'

गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोपयोगी ! सबके पढ़ने लायक !!

आध्यात्मिक आनन्दप्रद पुस्तकें

भगवन्नाम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-समन्वित लेखोंसे परिपूर्ण परमार्थ-ग्रन्थमालाकी सुन्दर नौ मणियाँ—

(१) **तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ (सचित्र)**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका। पृष्ठ ३५०, दो सुन्दर चित्र, मूल्य ॥≈) सजिल्द ॥।८)

···पुस्तकमें धर्मका भाव बड़ा जागरूक है, प्रत्येक पृष्ठसे सचाई और सात्त्विकी श्रद्धा प्रकट होती है।···लेख तो अमृतरूप हैं। —माधुरी

(२) **मानव-धर्म**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। पृष्ठ ११२, अच्छा कागज, मूल्य केवल ≈)

···इसमें धर्मकी आवश्यकता, धृति, क्षमा आदि विषयोंपर प्राचीन गाथाओंको लेकर अच्छा विवेचन किया गया है।···भाषा बहुत ही सरस है। —सम्मेलन-पत्रिका

(३) **साधन-पथ**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। पृष्ठ ७२, भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर चित्र, मूल्य ≈)॥ मात्र।

—साधन-पथ पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ।···साधकोंके लिये सच्चा पथ-प्रदर्शक है।···अवश्य ही अपने पास रखकर सदा अध्ययन करते रहना चाहिये। —स्वामी विज्ञानहंसजी

(४) **तुलसीदल**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सम्पादक-कल्याण। बढ़िया कागज, मनोहर चित्र, सुन्दर छपाई, सचित्र, पृष्ठ २९५, मूल्य ॥) स० ॥≈)

—'तुलसीदल'···देखा···सभी ग्रन्थ अच्छा है—उसमें जो संस्कृत और हिन्दी पद्य उद्धृत हैं, एक-से-एक अच्छे हैं—पर सूरदासजी और नन्ददासजी तथा चैतन्य-चरितामृतके पद्य अत्युत्तम सात्त्विक भावोत्पादक हैं। पृ० २२२ पर सहचारी दोषोंसे विविक्त विमुक्त गुणोंका गोपियोंमें जो संग्रह आपने कर दिया है, वह विशेष विलक्षण और अपूर्व है। —डा० भगवानदासजी एम० ए०, डी० लिट्

(५) **माता**—ले० श्रीअरविन्द, अनुवादक—पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे। मोटा एण्टिक कागज, खूबसूरत टाइटल, साफ-सुथरी अत्युत्तम छपाई, मू० ।) मात्र।

(६) **परमार्थ-पत्रावली**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका। पृष्ठ १४४, एण्टिक कागज, मूल्य ।) मात्र। ये पत्र लोगोंकी साधन-सम्बन्धी पूछ-ताछके उत्तरमें लिखे हुए हैं। साधनहीन जनोंको चेतावनी है।

(७) **नैवेद्य**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। २८ लेख और ६ कविताओंका सचित्र सुन्दर ग्रन्थ, छपाई-कागज बढ़िया, पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥≈) स० ॥।८) मात्र

—'नैवेद्य' सचमुच नैवेद्य है।···इसे पढ़कर तृप्त हो जायँगे।—रायबहादुर अवधवासी लाला सीतारामजी बी०ए०

(८) **ईश्वर**—ले० महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय। पृष्ठ ३२, एण्टिक कागज, सुन्दर आवरण पृष्ठ, मूल्य केवल ८)। मात्र।

(९) **तत्त्व-चिन्तामणि भाग २**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका। पृष्ठ ६३२, मोटा एण्टिक कागज, सुन्दर छपाई-सफाई, सचित्र मूल्य केवल ॥।≈), सजिल्द १≈) मात्र

—प्रत्येक निबन्धका विषय पवित्र और गम्भीर है। भाषा परिमार्जित और सुबोध है।—किशोरीदासजी वाजपेयी

The book will be of immense help to those who want to practise religion in life. —Prabuddha Bharat.

ये पुस्तकें सरल हिन्दी-भाषामें उच्च आध्यात्मिक उपदेश और विचारपूर्ण, गम्भीर लेखोंसे परिपूर्ण हैं। सर्वसाधारण को इनका विचारपूर्वक मनन करके यथासाध्य लाभ उठाना चाहिये। पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥
गीता ९।३२-३३

फाल्गुन १९९१

भाग ९
अङ्क ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन जय सियराम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥

[संस्करण २७५००]

अनुष्ठानकी आवश्यक सूचना

जो लोग मौनी फलाहारी रहकर और ६ महीनेतक काम, क्रोध और लालचके वेगको रोककर झूसीमें निरन्तर जप-कीर्तन करते हुए रहना चाहें वे फाल्गुन सुदी ८ तक आ सकते हैं । झूसी बी० एन० डब्ल्यू रेलवेका स्टेशन है और इलाहाबाद सिटी (रामबाग) स्टेशनसे चार पैसे लगते हैं । जो आश्रमसे फलाहार करनेवाले साधक थे उनकी भर्ती हो चुकी अब जो १५) महीना देंगे उनके फलाहारका प्रबन्ध आश्रमसे कर दिया जायगा ।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
हंसतीर्थ
झूसी (इलाहाबाद)

वार्षिक मूल्य
भारतमें ४≡)
विदेशमें ६॥≡)
(१० शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ।)
विदेशमें ।≡)
(८ पेंस)

Edited by Hanumanprasad Poddar.
Printed and published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur. U. P. (India)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

१०००

श्रीशक्तिअङ्कसहित कल्याण के ग्राहक हम अब एक हजार ही और बना सकेंगे क्योंकि दूसरे संस्करणकी प्रतियाँ इतनी ही लगभग बची हैं। जिस प्रकार श्रीभगवन्नामाङ्क, श्रीगीताङ्क, श्रीकृष्णाङ्क आदि अप्राप्य हो गये हैं उसी प्रकार जल्दी ही यह भी न मिल सके तो आश्चर्य नहीं। यह पिछले सभी विशेषाङ्कोंसे बड़ा और सुन्दर हुआ है जिन्होंने इसे देखा है वे यही कहते हैं।

आप मनिआर्डरद्वारा ४≋) भेजकर ग्राहक बन सकते हैं या हमें वी० पी० भेजनेकी आज्ञा देनेसे हम आपकी सेवामें भेज सकते हैं।

विनीत

व्यवस्थापक— **कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर**

कल्याण फाल्गुन संवत् १९९१ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–अनन्य भजन [कविता] (सूरदासजी) ··· ११०५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ··· ११०६
३–धर्मसे लाभ और अधर्मसे हानि (श्री-जयदयालजी गोयन्दका) ··· ११०७
४–राम-फगुआ [कविता] (महात्मा जय गौरी-शंकर सीतारामजी) ··· ११११
५–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ११११२
६–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्री-भोलेबाबाजी) ··· ··· ११२१
७–दर्शन-चर्चा (विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री) ··· ··· ११२६
८–महात्मा चरनदासजी (पं० श्रीभुवनेश्वर-नाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) ··· ११३०
९–एक महात्माके सदाचार-सम्बन्धी विचार तथा उनके जीवनकी कुछ घटनाएँ (उनके एक सत्संगीसे प्राप्त) ··· ··· ११३४

पृष्ठ-संख्या

१०–गीताका दिव्य सन्देश (श्रीमथुरादत्तजी ज्योतिर्विद् बी० ए०) ··· ··· ११४३
११–यदि तुझे पा जाऊँ [कविता] (पं० श्री-बलदेवप्रसादजी मिश्र) ··· ११५४
१२–क्या विज्ञानके रूपमें धर्मका अध्ययन हो सकता है ? (श्रीरामरतनजी खन्ना) ··· ११५५
१३–श्रीमानसशंकासमाधान (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी) ··· ··· ११५९
१४–'प्रियतम' से [कविता] (मधुकर) ··· ११६१
१५–नरक और स्वर्गका द्वार (बहिन श्रीजयदेवीजी) ११६२
१६–रासलीला (एक 'महात्मा') ··· ११६५
१७–ईश्वरका अनुभव (स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) ··· ··· ११७१
१८–भक्त-गाथा ··· ··· ११७७
१९–कृपालु लेखकों, चित्रकारों और पाठकोंसे प्रार्थना (हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक) ११८०
२०–विवेक-वाटिका ··· ··· ११८४

'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) के ग्राहक बनाइये

छप गया — **गीताङ्क** — छप गया

'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध है कि वे चेष्टा करके 'कल्याण-कल्पतरु' के तीन हजार ग्राहक बना देनेकी कृपा करें। थोड़ी-सी चेष्टा करनेसे ही आसानीसे इतने ग्राहक हो सकेंगे। मामूली खर्चके लिये **तीन ग्राहक बना देनेवाले सज्जनको प्रति ग्राहक ॥) आठ आने कमीशन दिया जायगा।** ५ ग्राहक बना देनेवाले इसका नवीन विशेषाङ्क "गीताङ्क" ले सकते हैं। ८ ग्राहक बनानेवाले सालभरतक 'कल्पतरु' पा सकते हैं। कमीशन नगद भी दी जा सकती है या इतनेकी पुस्तकें एवं चित्र भी ले सकते हैं।

क — **मैनेजर 'कल्याण-कल्पतरु' गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम

(१) यह हर एक महीनेकी कृष्णा एकादशीके लगभग प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांकसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≋) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अङ्कसे १२ वें अङ्कतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क-तक नहीं बनाये जाते। कल्याणका वर्ष श्रावणसे आरम्भ होकर आषाढ़में समाप्त होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहलेतक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले-पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेप-रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डरद्वारा भेजना चाहिये क्योंकि वी० पी०के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी-कभी तो डेढ़-दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलनेतक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। खर्च दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधाका है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजना चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि **'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे भेजने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकें

१-श्रीमद्भगवद्गीता—शांकरभाष्य, सरल हिन्दी-अनुवाद, इसमें मूल भाष्य है और भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है। श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके उद्धृत प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है, भाष्यके पदोंको अलग-अलग करके लिखा गया है और गीतामें आये हुए हरेक शब्दकी पूरी सूची है। पृष्ठ ५१९, ३ चित्र, मू० साधारण जिल्द २॥), पक्की जिल्द ... २॥।)

२-श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७०, बहुरंगे ४ चित्र १।)

३-श्रीमद्भगवद्गीता—गुजराती टीका, गीता १।) वालीकी तरह ... ... १।)

४-श्रीमद्भगवद्गीता—मराठी टीका, गीता १।) वालीकी तरह ... ... १।)

५-श्रीमद्भगवद्गीता—(श्रीकृष्ण-विज्ञान) अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद (सचित्र) पृ० २७५, मोटा एण्टिक कागज, गीताके श्लोकोंके सामने ही कवितामें अनुवाद छपा है। दो सुन्दर चित्र भी हैं। मू० ॥।) स० १)

६-श्रीमद्भगवद्गीता—प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≋) सजिल्द ... ॥।=)

७-श्रीमद्भगवद्गीता—बंगला टीका, हिन्दी गीता ॥≋) वालीकी तरह, मूल्य १) सजिल्द ... १।)

८-श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी, प्रधान विषय और त्यागसे भगवत्-प्राप्ति नामक निबन्धसहित, साइज मझोला, मोटा टाइप, ३३२ पृष्ठकी शुद्ध छपी और अच्छे कागजकी सचित्र पुस्तकका मू० ॥) स० ॥≋)

९-गीता—साधारण भाषा-टीका, त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, सचित्र, ३५२ पृष्ठ, मूल्य =)॥ सजिल्द ≋)॥

१०-गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य ।—) सजिल्द ... ... ।≋)

११-गीता—भाषा, इसमें श्लोक नहीं है। केवल भाषा है, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र भी लगा है, मू० ।) सजिल्द ।=)

१२-गीता—मूल ताबीजी साइज २×२॥ इञ्च, सजिल्द ... ... =)

१३-गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... ... =)

१४-गीता—७॥×१० इञ्च साइजके दो पन्नोंमें सम्पूर्ण ... ... —)

१५-गीता-सूची (Gita-List)—संसारकी अनुमान २००० गीताओंका परिचय ... ... ॥)

१६-श्रीविष्णुपुराण—हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ चित्र, पृष्ठ ५४८, मू० २॥) सजिल्द ... ... २॥।)

१७-अध्यात्मरामायण—(सातों काण्ड) सम्पूर्ण, मूल और हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ रंगीन चित्र, मूल्य साधारण जिल्द १॥।) कपड़ेकी जिल्द ... ... २)

१८-प्रेम-योग—सचित्र, लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा एण्टिक कागज, मू० १।) सजिल्द १॥)

१९-विनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मू० १) सजिल्द १।)

२०-श्रीतुकाराम-चरित्र—पृष्ठ ६९४, चित्र ९, अभी छपा है, मू० १≋) ... ... १॥)

२१-श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी इतनी बड़ी जीवनी अभी हिन्दीमें कहीं भी नहीं छपी। यह ५ खण्डोंमें पूर्ण होगी। पृष्ठ ३६०, मूल्य ॥।=) सजिल्द १=) मात्र।

२२— ,, ,, (खण्ड २)—९ चित्र, ४५० पृष्ठ। पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ। मू० १=) सजिल्द १।=)

२३— ,, ,, (खण्ड ३)—११ चित्र, ३८४ पृष्ठ, मू० १) ... ... सजिल्द १।)

२४— ,, ,, (खण्ड ४)—१४ चित्र, अभी छपा है, अवश्य पढ़िये। मू० ॥=) सजिल्द ॥।=)

२५-तत्त्व-चिन्तामणि भाग १—सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ४०६, एण्टिक कागज, मू० ॥=) सजिल्द ॥।—)

२६— ,, ,, २—सचित्र, लेखक— ,, ,, पृष्ठ ६३०, एण्टिक कागज, मू० ॥।=) सजिल्द १=)

२७-भागवतरत्न प्रह्लाद—३ रंगीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द १।)

२८-श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र—(सचित्र) महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्तकी जीवनी और उपदेश, मूल्य ... ॥।—)

२९-विष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य, हिन्दी-अनुवाद-सहित सचित्र मू० ... ... ॥=)

३०-एकादश स्कन्ध—(श्रीमद्भागवत) सचित्र हिन्दी-टीका-सहित। यह स्कन्ध बहुत ही उपदेशपूर्ण है। मू० ॥।) स० १)

३१-देवर्षि नारद—२ रंगीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर अक्षर, मू० ॥।) सजिल्द ... १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२–नैवेद्य–(सचित्र) लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृ० ३५०, मू० ॥≡) सजिल्द ... ॥≡)
३३–तुलसीदल–(सचित्र) लेखक— ,, पृष्ठ २९२, मूल्य ॥) सजिल्द ... ॥–)
३४–श्रीएकनाथ-चरित्र–(सचित्र) प्रसिद्ध महान् भगवद्भक्तकी बड़ी सुन्दर जीवनी, पृष्ठ २४०, मूल्य ॥≡)
३५–दिनचर्या–(सचित्र) उठनेसे सोनेतक करने योग्य धार्मिक नित्यकर्मकी बातोंका वर्णन है। इसमें अनेक स्तोत्र, भजन, वर्ण और आश्रम-धर्म आदिकी बातें भी जोड़ दी गयी हैं। पुस्तक रुचिकर है। मूल्य ॥)
३६–श्रुति-रत्नावली–(सचित्र) लेखक–श्रीभोलेबाबाजी, वेद और उपनिषदोंके चुने हुए मन्त्रोंका अर्थसहित संग्रह। मू० ॥)
३७–विवेक-चूडामणि–(सचित्र) मूल श्लोक और हिन्दी-अनुवाद-सहित, पृष्ठ २२४, मूल्य ।≡) सजिल्द ॥=)
३८–श्रीरामकृष्ण परमहंस–(सचित्र) जीवनीके साथ-साथ ३०१ उपदेशमय वचनोंका संग्रह भी है। पृष्ठ २५०, मू० ।≡)
३९–भक्त-भारती (७ चित्र) कवितामें सात भक्तोंके चरित्र ।≡)
४०–भक्त बालक—५ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४१–भक्त नारी—६ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४२–भक्त-पञ्चरत्न—५ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४३–आदर्श भक्त—७ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४४–भक्त-चन्द्रिका–७ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४५–भक्त-सप्तरत्न–७ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४६–भक्त-कुसुम–६ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४७–प्रेमी भक्त–६ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४८–यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ–३ चित्रोंसे सुशोभित ।)
४९–गीतामें भक्ति-योग (सचित्र) ले०–श्रीवियोगी हरिजी।–)
५०–श्रुतिकी टेर–(सचित्र) ले०–श्रीभोलेबाबाजी ।)
५१–परमार्थ-पत्रावली–श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कल्याणकारी ५१ पत्रोंका स्वर्ण-संग्रह ।)
५२–माता—श्रीअरविन्दकी अंग्रेजी पुस्तक (Mother) का हिन्दी-अनुवाद ।)
५३–ज्ञानयोग–इसमें जानने योग्य अनेक पारमार्थिक विषयोंका सुन्दर वर्णन है ।)
५४–व्रजकी झाँकी–वर्णनसहित लगभग ५० चित्र ।)
५५–श्रीबदरी-केदारकी झाँकी (सचित्र) ।)
५६–प्रबोध-सुधाकर (सचित्र) सटीक ≡)॥
५७–मानव-धर्म–ले०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ≡)
५८–साधन-पथ—ले०— ,, =)॥
५९–गीता-निबन्धावली =)॥
६०–वेदान्त-छन्दावली–ले०—श्रीभोलेबाबाजी =)॥
६१–अपरोक्षानुभूति–मूल श्लोक और अर्थसहित =)॥
६२–मनन-माला–सचित्र, भक्तोंके कामकी पुस्तक है =)॥
६३–भजन-संग्रह प्रथम भाग सं०–श्रीवियोगी हरिजी =)
६४– ,, दूसरा भाग ,, =)
६५– ,, तीसरा भाग ,, =)
६६– ,, चौथा भाग ,, =)
६७– ,, पाँचवाँ भाग (पत्र-पुष्प) =)
६८–चित्रकूटकी झाँकी (२२ चित्र) =)
६९–स्त्रीधर्म-प्रश्नोत्तरी (नये संस्करणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) =)

७०–The Immanence of God(By Malaviyaji) as.2
७१–सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय –)॥
७२–गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग –)॥
७३–मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थसहित –)॥
७४–हनुमानबाहुक सचित्र, सटीक –)॥
७५–आनन्दकी लहरें (सचित्र) –)॥
७६–गोपी-प्रेम –)॥
७७–मनको वश करनेके उपाय (सचित्र) –)॥
७८–गीताका सूक्ष्म विषय, पाकेट-साइज –)॥
७९–ईश्वर–लेखक–पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय –)॥
८०–मूल गोसाईं-चरित –)॥
८१–श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश, २ रंगीन चित्र –)
८२–त्यागसे भगवत्प्राप्ति (सचित्र) –)
८३–ब्रह्मचर्य–ले०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार –)
८४–भगवान् क्या हैं ? –)
८५–समाज-सुधार –)
८६–आचार्यके सदुपदेश –)
८७–एक सन्तका अनुभव –)
८८–सप्त-महाव्रत –)
८९–हरेरामभजन २ माला)॥
९०–विष्णुसहस्रनाम–मूल, मोटा टाइप)॥। सजिल्द –)॥
९१–रामगीता–मूल, अर्थसहित)॥
९२–सेवाके मन्त्र)॥
९३–सीतारामभजन)॥
९४–प्रश्नोत्तरी–श्रीशंकराचार्यकृत (टीकासहित))॥
९५–सन्ध्या (हिन्दी-विधि-सहित))॥
९६–बलिवैश्वदेव-विधि)
९७–पातञ्जलयोगदर्शन (मूल))
९८–गीता द्वितीय अध्याय अर्थसहित, पाकेट-साइज)
९९–धर्म क्या है ?)
१००–दिव्य सन्देश)
१०१–श्रीहरि-संकीर्तन-धुन)
१०२–कल्याण-भावना ले०–श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या आधा पैसा
१०३–लोभमें पाप आधा पैसा
१०४–गजलगीता
१०५–श्रीरामायणांक-१६७ चित्र,५१२ पृष्ठ मू०२॥≡)स०३≡)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दाराननवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, फाल्गुन १९९१, मार्च १९३५ | संख्या ८ पूर्ण संख्या १०४

अनन्य भजन

मेरे जिय ऐसी आय बनी ।
छाँड़ि गोपाल और जो सुमिरौं तो लाजै जननी ॥
विषको मेरु कहा लै कीजै अमृत एक कनी ।
मन क्रम बचन और नहिं चितवौं जब कब स्याम धनी ॥
कहँ ले करौं काँचको संग्रह छाँड़ि अमोल मनी ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु तजी जाति अपनी ॥

—सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्र०—चित्तशुद्धिका साधन क्या है और यह कब समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हो गया ?

उ०—चित्तशुद्धिके लिये दो बातोंकी आवश्यकता है विवेक और ध्यान । केवल आत्मा-अनात्माका विवेक होनेपर भी यदि ध्यानके द्वारा उसकी पुष्टि नहीं की जायगी तो वह स्थिर नहीं रह सकता । इसके सिवा इस बातकी भी बहुत आवश्यकता है कि हम दूसरोंके दोष न देखकर निरन्तर अपने चित्तकी परीक्षा करते रहें ।

जिस समय चित्तमें राग-द्वेषका अभाव हो जाय और चित्त किसी भी दृश्य पदार्थमें आसक्त न हो उस समय समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हुआ । परन्तु राग-द्वेषसे मुक्त होनेके लिये परमात्मा और महापुरुषोंके प्रति राग होना तो परम आवश्यक है ।

प्र०—राग-द्वेष किन्हें कहते हैं ?

उ०—जिस समय मनुष्य नीतिको भूल जाय, उसें सदाचारके नियमोंका कोई ध्यान न रहे, तब समझना चाहिये कि वह राग-द्वेषके अधीन हुआ है । राग-द्वेषका मूल अहंकार है । अहंकारके आश्रित ही ममता और परत्वकी भावनाएँ रहती हैं । ममता ही राग है—परत्व ही द्वेष है ।

प्र०—कुछ सन्त कहा करते हैं कि हम तो अपने प्रारब्धानुसार ही भोग भोगा करते हैं । यदि ऐसी ही बात है तो दाताको उसके दानका कोई पुण्य होता है या नहीं ?

उ०—ठीक है, महात्माका भोग तो अवश्य उसके प्रारब्धाधीन ही है, परन्तु दाताकी श्रद्धा तो महात्माका प्रारब्ध नहीं है । इसलिये अपनी श्रद्धाके प्रभावसे दाताको उसके दानका पुण्य अवश्य होगा ।

प्र०—भगवान्‌की कृपा तो सभीपर समान है, फिर उसके लिये किसी प्रकारकी याचना करनेकी क्या आवश्यकता है ? और मनुष्योंकी परिस्थितिमें भी अन्तर क्यों है ?

उ०—भगवान् या महात्माकी कृपा सामान्यतः तो सभीपर समान है; परन्तु भक्तकी सेवासे जो उन्हें एक विशेष प्रकारका सन्तोष होता है वही विशेषतया कल्याणका हेतु होता है । इसीसे मनुष्योंकी परिस्थितिमें भी अन्तर है । उस भगवत्प्रसाद या महात्माकी प्रसन्नताके दो कारण हैं । या तो भक्तिपूर्वक उनकी सेवा की जाय और या उनकी आज्ञाका पूर्णतया पालन करे ।

प्र०—प्रेमका लक्षण क्या है ?

उ०—प्रेमका लक्षण इस श्लोकमें कहा है—

सर्वथा ध्वंसरहितः सत्यपि ध्वंसकारणे ।
यद्भावबन्धनं यूनोः तत्प्रेमः परिकीर्तितः ॥*

* नाशका कारण उपस्थित होनेपर भी जो दो व्यक्तियों (प्रेमिक और प्रेमपात्र) का भावमय बन्धन नाशरहित रहता है वह प्रेम कहलाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मसे लाभ और अधर्मसे हानि

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

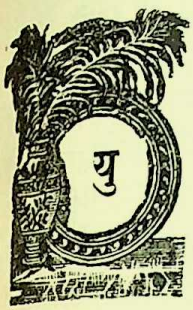

युगके प्रभाव और जड़ भोगमयी सभ्यताके विस्तारसे आज जगत्में धर्मके सम्बन्धमें बड़ी ही कुरुचि हो रही है। जहाँ प्राणोंको न्योछावर करके भी धर्मका पालन कर्तव्य समझा जाता था, वहाँ आज धर्मको ही प्राणविघातक शत्रु मानकर उसके विनाशकी चेष्टा हो रही है। धर्म क्या वस्तु है, इसको जाननेका प्रयास कुछ भी न कर आज उलटे धर्मका नाम-निशान मिटानेमें ही बहादुरी समझी जाती है और आवेशमें आये हुए धर्मज्ञानशून्य मनुष्य उच्छृङ्खलतारूप स्वतन्त्रताके उन्मादसे ग्रस्त होकर ईश्वर और धर्मका अस्तित्व नाश करनेपर तुले हुए हैं। और डङ्केकी चोट ईश्वर और धर्मको अपराधी ठहराकर पुकार रहे हैं कि 'इस धर्म और ईश्वरने ही जगत्का सत्यानाश कर दिया। धर्म और ईश्वरके कारण ही संसारमें गरीबों और दुर्बलोंपर अत्याचार हुए और हो रहे हैं। धर्म और ईश्वरकी गुलामीने मनुष्यको गुलाम बननेका आदी बना दिया और इस धर्म और ईश्वरकी मान्यतासे ही भोलेभाले लोग लूटे गये और लूटे जा रहे हैं।'

इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वार्थी, कामभोगलोलुप, दाम्भिक पाखण्डी लोगोंने कामिनी, काञ्चन और मान-बड़ाईकी कामनासे काम, क्रोध और लोभके वश होकर धर्मके नामपर अनाचार किये और कर रहे हैं। यह भी सत्य है कि ईश्वरके पूजक कहलानेवाले पुजारी और याजकोंमें भी अनेकों पाखण्डी दुराचारियोंने लोगोंके ठगनेके लिये नये-नये स्वाँग बनाये और आज भी ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और धनके मदमें अन्धे हुए स्वार्थपरायण, धर्मज्ञानरहित विषयलोलुप मनुष्य अवश्य ही बेचारे गरीब, दुखी किसान मजदूर ग्रामीण भोलेभाले लोगोंसे पशुओंकी भाँति काम लेते हैं, उनपर अत्याचार करते हैं और उनका हक मारते हैं। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह धर्म और ईश्वरका दोष है या इसलिये धर्म और ईश्वरको नहीं मानना चाहिये। बल्कि यों कहना चाहिये कि लोगोंमें धर्मबुद्धि और ईश्वरमें आस्था न रहनेसे ही यह पाखण्ड और अनाचार फैला। यदि वास्तवमें लोगोंकी धर्ममें प्रवृत्ति, और सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, न्यायकारी दयालु ईश्वरकी सत्तामें विश्वास होता तो इस प्रकारका अनाचार कदापि नहीं फैलता। अनाचार, अत्याचार, पाखण्ड और गरीबोंके उत्पीड़नमें यह धर्मका ह्रास ही प्रधान कारण है।

आज तीर्थोंमें जो काम और लोभके वशमें हुए कुछ दाम्भिक पुरुष किसी प्रकारसे प्रविष्ट होकर श्रद्धावान् यात्रियोंकी श्रद्धासे अनुचित लाभ उठा रहे हैं, अथवा आज जो कामभोगपरायण नीच वृत्तिके मनुष्य भक्तिके उत्तम चिह्नोंको धारणकर धन और स्त्रियोंके सतीत्वका हरण कर रहे हैं, वे अवश्य ही महान् अपराधी हैं। धर्मके स्थानोंको दूषित करनेवाले, काम और लोभवश जनताको ठगनेवाले, अपने कुकर्मों और दुराचारोंसे धर्मात्मा, साधु-सन्त, और भक्तोंके नामपर कलङ्क लगानेवाले इन नर-पिशाचोंकी जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। परन्तु ईश्वर और धर्मकी सत्तामें श्रद्धा न रखकर धर्मका ढोंग करनेवाले इन स्वार्थी, दम्भी और पाखण्डियोंको धर्मात्मा, भक्त या ईश्वरवादी बतलाकर, इनका उदाहरण पेशकर अविवेकवश तीर्थ, मन्दिर, धर्म या ईश्वरकी निन्दा करना—धर्म और ईश्वरपर अश्रद्धा पैदा करनेकी चेष्टा करना एक प्रकारसे धर्मपर अत्याचार करना और जान-बूझकर घोर अपराध करना है। जगत्में न्यूनाधिकरूपमें दम्भी, पाखण्डी मनुष्य सदा ही रहे हैं और इस घोर कलिकालमें तो उनकी संख्या बढ़ी हुई है। जहाँ जिस वेषके धारण करने और जिस प्रकारका काम करनेसे उनका स्वार्थसाधन होता है वे तुरन्त दम्भपूर्वक उसी वेषको धारण कर वैसा ही कर्म अपना नीच मनोरथ सिद्ध करनेके लिये करने लगते हैं। पिछले दिनों जब खादीका बहुत अधिक आदर था, तब यह देखा गया था कि कितने ही मनुष्य स्वार्थसाधनके लिये ही, खादीमें श्रद्धा न रहनेपर भी, खादी पहनने लगे थे। परन्तु इससे खादी बदनाम नहीं की जा सकती। आज भी यदि सच्चे देशसेवकोंमें कोई देशद्रोही मिल जाय और देशसेवकका बाना पहनकर देशका अहित करने लगे तो इससे न तो देशसेवा बुरी बात ठहरती है और न सच्चे देशसेवकोंपर ही न्यायतः कोई अभियोग लग सकता है। यही न्याय धर्मके लिये भी लागू है। परन्तु आज तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो धर्म और ईश्वरसे लोगोंका कुछ द्वेष-सा हो गया है। न्यायान्यायका विचार छोड़कर किसी भी बहाने धर्मकी और ईश्वरकी व्यर्थ निन्दा करना ही कुछ लोगोंने अपना कर्तव्य-सा मान लिया है।

खेदकी बात है कि धर्मप्राण भारतकी आर्य जातिमें उत्पन्न पुरुषोंमें भी आज ऐसे लोग हो गये हैं; इसका एक बड़ा कारण है भोगमयी पाश्चात्य संस्कृतिसे प्रभावान्वित आजकलकी दूषित धर्महीन शिक्षा। बचपनसे लड़कोंको ऐसी शिक्षा दी जाती है जिसमें धर्मका ज्ञान तो होता ही नहीं वरं उलटी धीरे-धीरे धर्ममें अरुचि बढ़ने लगती है। यही कारण है कि जिनके पिता-पितामह संस्कृतके बहुत अच्छे विद्वान्, धर्मके ज्ञाता और धर्मपथपर दृढ़तासे आरूढ़ थे, आज उन्हींके पुत्र-पौत्रोंको यह भी पता नहीं है कि ऋषिसेवित सनातनधर्म किसे कहते हैं। अधिकांशमें ऐसे ही लोग धर्म और ईश्वरके विरोधी बनते हैं। जैसे आज जङ्गलोंमें रहनेवाली पहाड़ी जातियोंमें धर्मका ज्ञान नहीं रहा, प्रायः इसी प्रकारकी स्थिति अधिकांश शिक्षित कहलानेवाले लोगोंकी है। एक विशेषता और भी है। पहाड़ी जातिके भोले-भाले भाइयोंको समझा-बुझाकर धर्मके मार्गपर लाना सहज है; परन्तु जिन भाइयोंको विद्या, बुद्धि और नवीन संस्कृतिका अभिमान है और जो इसीको उन्नति मान बैठे हैं उनका धर्मपथपर आना बहुत ही कठिन है। ईश्वरकी दयाके सामने तो कुछ भी कठिन नहीं है; ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, वे जो चाहें सो कर सकते हैं। कुछ समय पूर्व भारतवर्षमें कोई भी भाई इस प्रकार धर्म और ईश्वरके विरुद्ध खुले आम कुछ भी कहनेका साहस नहीं करता था, जैसा कि आजकल लोग पत्रों और सभाओंमें अनर्गल वाणीमें ईश्वर और धर्मका नाम मिटानेके उद्देश्यसे धर्म और ईश्वरपर गन्देसे गन्दा आक्षेप करते हैं। उन ईश्वरके और धर्मके विरोधी भाइयोंसे मेरा नम्र निवेदन है कि आपलोग आवेशमें न आकर गम्भीर विचार करें। उन्नति और उद्धारके नामपर ईश्वर और धर्मके विरुद्ध आन्दोलन कर इस पवित्र आर्यभूमिको महान् सङ्कटमें डालनेका प्रयत्न न करें। प्राचीनकालके धर्मप्रचारक और धर्मसेवी महर्षियोंके त्यागपूर्ण जीवनकी ओर ध्यान दें। वे कितने बड़े त्यागी और विरक्त थे। धर्मके लिये उन्होंने कैसे-कैसे सङ्कट सहे थे। देश और धर्मकी रक्षाके लिये उन्होंने किस प्रकार अपने जीवन अर्पण कर रक्खे थे। वृत्रासुरके उपद्रवसे दुनियाको बचानेके लिये महर्षि दधीचिने शरीरका मांस गायोंको चटवाकर अपनी अस्थियाँतक दे दी थीं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण प्राचीन इतिहासोंमें मिलेंगे। आपलोग विचार कीजिये कि धर्मका ह्रास होनेपर देश और जातिकी क्या दशा होगी। ईश्वरका आश्रय और धर्ममें प्रवृत्ति—यही दो ऐसी चीजें हैं, जिनसे हम दुःखोंसे छूटकर परम सुखके अधिकारी हो सकते हैं। ईश्वरमें अविश्वास और धर्मका लोप होनेपर हमारा जीवन पशुओंसे भी अधिक खराब हो जायगा।

ईश्वरकी सत्ता न मानने और धर्मका विरोध करनेसे अधर्मकी वृद्धि होगी। अधर्मके विस्तारसे संसार नष्ट-भ्रष्ट होने लगेगा। आचारकी मर्यादा नष्ट हो जायगी। परधन, पर-स्त्रीका विचार उठ जायगा। आगे चलकर अधर्मी लोग बहिनों और कन्याओंके साथ व्यभिचाररूपी घोर पाप करने लगेंगे। इस बातका सङ्केत अभीसे लोगोंके लेखोंमें होने लगा है। यह इतना बड़ा पाप है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इसको महान् घृणित कार्य बतलाकर ऐसा करनेवाले नीच मनुष्योंको मार डालनेतककी प्रेरणा की है—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जेई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

जब धर्मकी मर्यादा नहीं रहेगी, पशुधर्म फैल जायगा तब ऐसे घोर पाशविक कर्मसे कौन किसे रोकेगा? माता-पिता, गुरुजनोंकी सेवा तो दूर रही, उनकी अवहेलना और अपमान होने लगेगा। जिसके मन जो बात अच्छी लगेगी, उसीको सिद्धान्त बतलाया जायगा। जिसका फल इस लोक और परलोकमें कहीं भी लाभप्रद नहीं होगा। श्रीभगवान्‌ने कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(गीता १६। २३)

'जो पुरुष शास्त्रकी विधिको त्यागकर अपनी इच्छासे बर्तता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है, न परम गतिको और न सुखको ही प्राप्त होता है।'

ईश्वर और धर्मका शासन न रहनेके कारण अधर्मी लोग अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये पाखण्ड रचकर दुनियाको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोखा देंगे। बलवान् और अधिकारसम्पन्न लोग क्रोध और मोहके वश हो दुर्बलों और गरीबोंपर वैसे ही अत्याचार करेंगे जैसे वनके बलवान् पशु निर्बल, निरपराधी पशुओंको दुःख देते हैं। निरपराध पशु-पक्षियोंकी हत्या करना जब पाप नहीं माना जायगा तब उसे कौन रोकेगा। नृशंसता बढ़ते-बढ़ते इतना राक्षसीपन आ जायगा जब कि स्वार्थवश मनुष्य ही मनुष्यको खाने लगेगा। मान, मोह और मदमें भूले हुए अधर्मी लोग स्वार्थसिद्धिके लिये मनमाना आचरण करेंगे। बलवान्, धनी और शिक्षित कहलानेवाले मनुष्य ही ईश्वर, महात्मा, योगी समझे जायँगे। ऐसी अवस्थामें जगत् दुःखमय हो जायगा। अधर्मके कारण ही आज पुण्यभूमि भारतवर्ष पराधीन, दीन, दुखी हो रहा है। अधर्मकी वृद्धिका ही यह परिणाम है जो आज भारतवर्षमें नित-नयी महामारियाँ बढ़ रही हैं, मनुष्योंकी आयु कम हो गयी है, पशुधन नष्ट हो रहा है। भूकम्प और बाढ़ आदि दैवी प्रकोपोंसे प्राणी दुखी हो रहे हैं और अन्न-वस्त्रके बिना प्राण-त्याग कर रहे हैं। फिर अधर्मकी विशेष वृद्धि होनेपर तो दुःख और भी बढ़ जायँगे। अधर्मका फल निश्चय ही दुःख है। परन्तु धर्मका फल दुःख कदापि नहीं हो सकता। संसारका इतिहास देखनेसे पता लगता है कि सच्चे धर्मकी ही सदा जय हुई। क्योंकि जहाँ धर्म होता है वहीं ईश्वरकी सहायता मिलती है। महाभारतमें गुरु द्रोणाचार्य धर्मराज युधिष्ठिरको विजयका आश्वासन देते हुए कहते हैं—

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।

(भीष्मपर्व)

'जहाँ धर्म है, वहीं ईश्वर (कृष्ण) हैं और जहाँ ईश्वर हैं, वहीं जय है।'

अधर्म करनेवाले सब प्रकारसे धन, जन, शक्ति और सत्तासे सम्पन्न बड़े-से-बड़े बलवान् लोग भी धर्मात्माओं-द्वारा मारे गये हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि असुर विपुल धन-जनसे सम्पन्न थे, उनके पास युद्धके असाधारण उपकरण मौजूद थे। किन्तु पापके कारण वे भगवान्‌की दयासे युक्त साधारण वानरोंद्वारा परास्त किये गये। यह बात न्याययुक्त और सिद्ध है कि जो मनुष्य दुखी, अनाथ और निर्बलोंपर अत्याचार करता है वह अपनी उस अत्याचारमयी अनीतिके द्वारा स्वयं ही मारा जाता है। उसीका पाप उसे खा जाता है। पापका परिणाम अवश्य ही भोगना पड़ेगा; किसी कारणवश कुछ विलम्ब भले ही हो जाय। दीर्घ कालके बाद मिलनेवाले फलको दीर्घदृष्टि न होनेके कारण हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। इसीसे हमें भ्रम हो जाता है कि पापीलोग फलते-फूलते हैं और संसारमें पापका फल नहीं मिलता। इसीसे लोग धर्मकी अवहेलना कर अधर्ममें प्रवृत्त होते हैं। पर यह सोचना चाहिये कि सभी कुपथ्योंका फल तत्काल नहीं होता। किसीका जल्दी होता है तो किसीका बीसों वर्ष बाद फल सामने आता है। निपुण वैद्य-डाक्टरोंको भी पता नहीं लगता कि यह किसका परिणाम है, परन्तु है वह अवश्य ही किसी समय किये हुए किसी कुपथ्यका परिणाम। कोई बीज जमीनमें तुरन्त अङ्कुरित होता है, कोई महीनों बाद होता है। किसी पेड़में हाथोंहाथ फल लगने लगते हैं तो कोई पेड़ बीसों सालके बाद फल देता है। यह निश्चय रखना चाहिये कि बीजके अनुसार फल अवश्य होगा। इसी प्रकार हमारे किये हुए कर्मोंका फल भी निस्सन्देह हमें भोगना पड़ेगा। अतएव अधर्मसे सदा बचना चाहिये, और धर्मपालनमें तत्पर होना चाहिये।

धर्मके आचरणसे मनुष्यमें समता, शान्ति, दया, सन्तोष, सरलता, साहस, निर्भयता, वीरता, धीरता, गम्भीरता, क्षमा आदि गुणोंका स्वाभाविक ही विकास होता है। धर्मरूपी तपके आचरणसे अग्निसे ईंधनकी भाँति सारे पाप और अवगुण जल जाते हैं और विषयोंसे विरक्ति तथा ईश्वरके तत्त्वका ज्ञान हो जाता है, जिससे समस्त सद्गुण उसमें अपने-आप ही प्रकट हो जाते हैं। ऐसा धर्मात्मा पुरुष किसी भी प्राणीको किञ्चिन्मात्र भी कष्ट नहीं पहुँचा सकता। वह सबमें ईश्वरका या अपने आत्माका दर्शन करता है। सर्वत्र ईश्वर अथवा आत्माका दर्शन करनेवाला पुरुष कैसे किसीको दुःख दे सकता है। जैसे अज्ञानी पुरुष अपने स्वार्थमें रत रहता है, वैसे ही ऐसा धर्मात्मा पुरुष चींटीसे लेकर इन्द्रपर्यन्त समस्त जीवोंके हितमें रत रहता है। इसीके परिणामस्वरूप ऐसे पुरुष परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।

(गीता १२। ४)

धर्मको जाननेवाले पुरुषोंद्वारा निर्बल गरीबोंपर अत्याचार होना तो दूर रहा, उनके द्वारा किसीका धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरण होना और सताया जाना तो एक किनारे रहा, वे समझ-बूझकर एक क्षुद्र चींटीको भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। जो जान-बूझकर किसी भी जीवको किञ्चिन्मात्र भी पीड़ा पहुँचाता है, उसके लिये धर्मके तत्त्वकी बात तो दूर रही, उसने धर्मका तत्त्व जाननेवाले पुरुषोंसे शिक्षा भी नहीं पायी है। क्योंकि शास्त्रोंमें अहिंसाको भी परम धर्म बतलाया है—

अहिंसा परमो धर्मः।

गोस्वामीजीने भी कहा है—

परहित सरिस धरम नहि भाई। पर-पीड़ा सम नहि अधमाई॥

हमलोगोंको शम, दम, यम, नियम आदि उत्तम धर्मोंका पालन करके अपने भूले हुए भाइयोंको मार्ग दिखलाना चाहिये, जिससे सब धर्मपर आरूढ़ हों और देश सुखी हो जाय। जिस देशमें भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णने अवतार लिया और जिसमें साक्षात् श्रीभगवान्‌के मुखकमलसे निकले हुए गीता-जैसे सच्चे धर्मको बतलानेवाला ग्रन्थ हो, उस देशकी प्रजा अशान्ति और दुःखका भोग करे, यह बहुत ही लज्जाकी बात है। गीतामें बतलाये हुए धर्मका पालन करनेसे हम स्वयं शान्त और सुखी होकर समस्त भारतको सुखी और स्वावलम्बी बना सकते हैं। समस्त गीताकी बात तो दूर रही केवल सोलहवें अध्यायमें बतलाये हुए दैवी सम्पदारूप धर्मका पालन और आसुरी सम्पदारूप अधर्मका त्याग करनेसे ही मनुष्य सदाके लिये परम शान्ति और परमानन्दको प्राप्त हो सकता है। वह स्वयं ही सुखी होता है सो बात नहीं, वह जिस गाँव, जिस नगर, जिस प्रान्त और जिस देशमें रहता है, उसमें जितने लोग रहते हैं सबको अपने धर्मबलसे सुखी बना सकता है। जहाँ सच्चा धर्मात्मा पुरुष रहता है वहाँ उसके धर्मके प्रतापसे भूकम्प, महामारी, अकाल आदि दैवी कोपसे प्रजा पीड़ित नहीं हो सकती। दैवयोगसे कदाचित् ऐसी कोई विपत्ति आ जाती है तो उनके प्रतापसे यानी उनकी परोपकार-वृत्तिसे लोग उस विपत्तिसे सहज ही छूट जाते हैं। महाराज धर्मराज युधिष्ठिर जब अपने चारों भाइयों तथा रानी द्रौपदीके साथ विराटनगरमें छिपे हुए थे, उस समय उनका पता लगानेके लिये व्यग्र हुए दुर्योधनको पितामह भीष्म उनकी पहचान बतलाते हुए कहते हैं—

पुरे जनपदे चापि यत्र राजा युधिष्ठिरः।
दानशीलो वदान्यश्च निभृतो ह्रीनिषेवकः।
जनो जनपदे भाव्यो यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
प्रियवादी सदा दान्तो भव्यः सत्यपरो जनः।
हृष्टः पुष्टः शुचिर्दक्षो यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
नासूयको न चापीर्षुर्नाभिमानी न मत्सरी।
भविष्यति जनस्तत्र स्वयं धर्ममनुव्रतः॥
ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुत्यस्तथैव च।
क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः॥
सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः।
सम्पन्नसस्या च मही निरातङ्का भविष्यति॥
गुणवन्ति च धान्यानि रसवन्ति फलानि च।
गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च भारती॥
वायुश्च सुखसंस्पर्शो निष्प्रतीपं च दर्शनम्।
न भयं त्वाविशेत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः।
पयांसि दधिसर्पींषि रसवन्ति हितानि च॥
गुणवन्ति च पेयानि भोज्यानि रसवन्ति च।
तत्र देशे भविष्यन्ति यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
रसाः स्पर्शाश्च गन्धाश्च शब्दाश्चापि गुणान्विताः।
दृश्यानि च प्रसन्नानि यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
धर्माश्च तत्र सर्वैस्तु सेविताश्च द्विजातिभिः।
स्वैः स्वैर्गुणैश्च संयुक्ता अस्मिन् वर्षे त्रयोदशे॥
देशे तस्मिन्भविष्यन्ति तात पाण्डवसंयुते।
सम्प्रीतिमान् जनस्तत्र सन्तुष्टः शुचिरव्ययः॥
देवतातिथिपूजासु सर्वभावानुरागवान्।
इष्टे दाने महोत्साहः स्वस्वधर्मपरायणः॥
अशुभाद्धि शुभप्रेप्सुरिष्टयज्ञः शुचिव्रतः।
भविष्यति जनस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
त्यक्तवाक्यानृतस्तात शुभकल्याणमङ्गलः।
शुभार्थेप्सुः शुभमतिर्यत्र राजा युधिष्ठिरः॥
भविष्यति जनस्तत्र नित्यञ्चेष्टप्रियव्रतः।
धर्मात्मा शक्यते ज्ञातुं नापि तात द्विजातिभिः॥
किं पुनः प्राकृतैस्तात पार्थो विज्ञायते क्वचित्।
यस्मिन्सत्यं धृतिर्दानं परा शान्तिर्ध्रुवा क्षमा॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः परन्तेज आनृशंस्यमथार्जवम्।

(महा० विराटपर्व २८। १४–३२)

'जिस देशमें राजा युधिष्ठिर रहते होंगे उस देशके मनुष्य दानशील, उदार, जितेन्द्रिय तथा बुरे कामोंमें लज्जा करनेवाले होने चाहिये। राजा युधिष्ठिर जहाँ रहते होंगे वहाँके मनुष्य प्रिय बोलनेवाले, सदा इन्द्रियोंको जीते हुए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यपरायण, हृष्ट, पुष्ट, पवित्र तथा चतुर होने चाहिये। जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे, वहाँके लोग दूसरेके गुणोंमें दोषारोपण करनेवाले, डाह करनेवाले, अभिमानी, मत्सरतावाले नहीं होकर सब धर्मका अनुसरण करनेवाले होंगे। वहाँ सर्वत्र वेदध्वनियाँ, यज्ञोंकी पूर्णाहुतियाँ और बड़ी-बड़ी, दक्षिणावाले यज्ञ होते रहेंगे। वहाँ आवश्यकतानुसार सदा अच्छी वर्षा होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। और पृथ्वी पीड़ारहित और बहुत अन्न पैदा करेगी। वहाँ सारयुक्त अन्न, रसभरे फल, सुगन्धित पुष्प और शुभ शब्दोंसे युक्त वाणी होगी। जहाँ युधिष्ठिर रहते होंगे, वहाँ सुखस्पर्श वायु चलती होगी, पाखण्डरहित धर्म और ब्रह्मकी आलोचना होगी तथा भयको कहीं प्रवेश करनेकी जगह नहीं मिलेगी। वहाँ बहुत-सी गायें होंगी और वे निर्बल तथा दुबली-पतली नहीं होंगी। वहाँ दूध, दही और घृत रसयुक्त तथा हितकारक होंगे। वहाँ खाने पीनेके पदार्थ रसभरे और गुणकारी होंगे। जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे वहाँ रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श गुणोंसे भरे होंगे तथा रूप (दृश्य) भी रमणीय दिखायी देंगे। इस तेरहवें वर्षमें राजा युधिष्ठिर जहाँ रहते होंगे वहाँके सब द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) धर्मका पालन करते होंगे और धर्म स्वयं अपने गुणोंसे सम्पन्न होंगे। हे तात! जिस देशमें पाण्डव रहते होंगे वहाँ सब लोग परस्पर प्रेम करनेवाले, सन्तोषी, पवित्र और अकालमृत्युसे रहित होंगे। वहाँ लोग देवता और अतिथिकी पूजामें सर्वात्मभावसे प्रीति रखनेवाले, इष्ट और दानमें महान् उत्साह रखनेवाले और अपने-अपने धर्ममें तत्पर होंगे। जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे वहाँके मनुष्य अशुभका त्याग करके शुभकी चाह करनेवाले, यज्ञमें प्रीति करनेवाले और शुभ व्रतोंको धारण करनेवाले होंगे। जहाँ युधिष्ठिर रहते होंगे, हे तात! वहाँके मनुष्य असत्य वचनोंका त्याग करनेवाले, शुभ, कल्याण तथा मंगलसे युक्त, कल्याणकी इच्छावाले और शुभ बुद्धिवाले होंगे। वे नित्य परम सुख देनेवाले शुभ कार्योंमें तत्पर होंगे। हे तात! ऐसे जिन धर्मात्मा युधिष्ठिरमें सत्य, धर्य, दान, पराशान्ति, अविचल क्षमा, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्ति, महान् तेज, दयालुता, सरलता आदि गुण नित्य निवास करते हैं, उन धर्मराजको ब्राह्मण भी नहीं पहचान सकते, फिर साधारण मनुष्य तो पहचान ही कैसे सकते हैं?'

आज धर्मराज-जैसे एक भी पुरुषका उदाहरण देशमें नहीं मिलता, इससे सिद्ध है कि धर्मका ह्रास हो गया है। अतएव सबको धर्मपरायण होना चाहिये। खास करके धर्माचार्य और धर्मप्रेमी कहलानेवाले पुरुषोंको—जिनमें आज कुछ थोड़े-से महात्माओंको छोड़कर अधिकांश स्वार्थमें रत हो रहे हैं—अज्ञाननिद्रासे सचेत होकर धर्मपालनके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये और पाश्चात्य भोगमयी सभ्यताकी चकाचौंधसे पथच्युत हुए भाइयोंको बहुत प्रेम, विनय और नम्रताके साथ धर्मका मर्म समझाकर धर्ममार्गपर लानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

राम-फगुआ

(लेखक—महात्मा जय गौरीशङ्कर सीतारामजी)

यहाँ न कोई हमारा, समुझ मन ॥ टेक ॥

कुल-परिवार सब सुखके साथी, दुखमें भागैं किनारा ॥ १ ॥
समुझ मन०

दुनिया दुखका असल मोकमवाँ, मनमें देखु बिचारा ॥ २ ॥
समुझ मन०

भीर पड़ेपर कोउ नहिं पूछत, बोलत बात हजारा ॥ ३ ॥
समुझ मन०

रामभजन बिनु काम न चलिहैं, होइहैं न तोर गुजारा ॥ ४ ॥
समुझ मन०

'कवलबास' यह दुनिया मतलबी, रामहिं नाम अधारा ॥ ५ ॥
समुझ मन०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ॥ ५७ ॥

५७–उत्तर-उत्तर क्रमसे पूर्व-पूर्व क्रमकी भक्ति कल्याणकारिणी होती है ।

तामसीकी अपेक्षा राजसी और राजसीकी अपेक्षा सात्त्विकी भक्ति उत्तम है । इसी प्रकार अर्थार्थी भक्तकी अपेक्षा जिज्ञासुकी और इन दोनोंकी अपेक्षा आर्त्तकी भक्ति विशेष कल्याणकारिणी होती है ।

भक्तिकी सुलभता और महत्ता

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ॥५८॥

५८–अन्य सबकी अपेक्षा भक्ति सुलभ है ।

इससे पहले भक्तिकी महिमा और कर्म, योग तथा ज्ञानादिकी अपेक्षा उसकी श्रेष्ठताका वर्णन किया जा चुका है । अब सूत्रकार यह दिखलाते हैं कि इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ होनेपर भी भक्तिकी प्राप्ति अन्यान्य फलोंकी अपेक्षा सहज और सुलभ है । भक्तिकी प्राप्तिमें न विद्याकी आवश्यकता है न धनकी, न श्रेष्ठ कुल प्रयोजनीय है और न उच्च वर्णाश्रम, न वेदाध्ययनकी आवश्यकता है न कठोर तपकी, न विवेककी जरूरत है न कठिन वैराग्यकी, आवश्यकता है केवल सरल भावसे भगवान्‌की अपार कृपापर विश्वास करके उनका सतत प्रेमभावसे स्मरण करनेकी । फिर सुलभता तो प्रत्यक्ष ही दीखने लगती है । भगवत्कृपा सबपर सदा सर्वदा है । मनुष्य विश्वास नहीं करता, इसीसे वह वञ्चित रह जाता है । भगवान्‌ने तो गीतामें डङ्केकी चोट कहा है कि मैं सब प्राणियोंका सुहृद् हूँ और जो मुझे सुहृद् जान लेता है वह उसी क्षण शान्ति पा जाता है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।

(गीता ५ । २९)

मनुष्यको चाहिये कि वह भगवत्कृपापर विश्वास करे, यह मान ले कि मैं भगवत्कृपाके समुद्रमें डूब रहा हूँ । मेरे ऊपर-नीचे, इर्द-गिर्द, भूत-भविष्यत्, सब स्थानों और सब कालमें भगवत्कृपा भरपूर है । ऐसा मानते ही वह उस भगवत्कृपाके प्रतापसे पाप-तापसे मुक्त होकर भगवान्‌की भक्तिका अधिकारी हो जाता है । भगवत्कृपापर इस प्रकार विश्वास और निश्चय करके भगवान्‌के अनन्य स्मरणका अभ्यास किसी भी अवस्थामें बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण शूद्र कोई भी कर सकता है । इसमें न कुछ छोड़ना है और न ग्रहण करना है । सदा सबपर भगवत्कृपा होनेपर भी हमें जो विश्वास नहीं है, उस विश्वासको स्थिर कर लेना है । फिर भक्तिकी प्राप्तिके सभी साधन अपने आप सहज ही सिद्ध हो जायँगे । ('तस्याहं सुलभः पार्थ'–गीता ८ । १४) भक्ति किसी और साधनसे नहीं मिलती, यह भक्तिसे ही मिलती है।

प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात् ॥ ५९ ॥

५९–क्योंकि भक्ति स्वयं प्रमाणरूप है, इसके लिये अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिके मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको भक्तिसुखका प्रमाण अपने आप ही मिलता रहता है। उन्हें स्वयमेव अनुभव होता रहता है। दूसरे किसी प्रमाणकी इसमें आवश्यकता नहीं है। पतिसुखके आनन्दका अनुभव भार्या बननेपर ही मिल सकता है। यह कुमारी कन्याको समझानेकी बात नहीं है। इसी प्रकार भक्तिसुखका अनुभव भक्तोंको ही होता है, यह कहकर बतलानेकी बात नहीं है। जो पुण्यात्मा महानुभाव सब कामनाओंका त्यागकर एकमात्र भगवत्प्रेमकी कामनासे ही भगवत्कृपाका आश्रय लेकर भगवान्‌का सदा सर्वदा प्रेमपूर्वक पुलकित चित्तसे भजन करते हैं वे ही भक्तिसुखका अनुभव करते हैं।

शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ॥६०॥

६०—भक्ति शान्तिरूपा और परमानन्द-रूपा है।

शान्ति और परम आनन्द साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। अपने प्रेमरूपमें स्वयं भगवान् ही अवतीर्ण होते हैं, इसलिये यह भगवत्प्रेम भी शान्ति और परमानन्द-स्वरूप ही है। आनन्दमय भगवान् स्वयं ही अपनी आह्लादिनी नाम्नी आनन्दशक्तिको निमित्त बनाकर प्रेम और प्रेमिकके रूपमें प्रकट होते हैं और स्वयं ही प्रेमास्पद बनकर अपने आनन्दका आप ही उपभोग करते हैं। यही उनकी आनन्दलीला है। यहाँपर यह समझ लेना चाहिये कि जिन भगवान्‌की भक्ति या प्रेम शान्तिरूप और परमानन्दरूप है, वे भगवान् निर्गुणवादियोंद्वारा माने हुए प्रकृतिसम्भव सत्त्व, रज, तमरूप त्रिगुणोंसे युक्त 'सगुण ब्रह्म' नहीं हैं। भगवान्‌का दिव्य तनु उनके अपने आनन्दांश, अपनी योगमायाके निमित्तसे नित्य ही प्रकट है। इसीलिये आत्माराम मुनि, जीवन्मुक्त महापुरुष, व्यास, नारद, शुकदेव, जनक, सनकादि महात्मा उनके एक-एक दिव्य गुण, दिव्य आभूषण, दिव्य गन्ध, दिव्य मुरली-ध्वनि, और दिव्य सौन्दर्यपर मुग्ध हो जाते हैं। यदि भगवान्‌में इस जगत्प्रसविनी, आवरण करनेवाली मलिना मायाके ही गुणोंका विकास होता, या इसीसे निर्मित उनका शरीर होता तो मायाकी ग्रन्थिको काटे हुए ब्रह्मस्वरूप महात्माओंका उनकी ओर इतना आकर्षण कभी नहीं होता। निर्गुणवादी जिस भगवत्स्वरूपको शुद्ध सच्चिदानन्दघन ब्रह्म कहते हैं, और वेद जिसे 'नेति नेति' कहकर सङ्केतसे समझाना चाहते हैं, वही मायातीत विज्ञानानन्दघन परमात्मा भक्तोंके प्रियतम भगवान् हैं। उनको शान्ति और आनन्दके समुद्र कहनेसे भी उनका यथार्थ वर्णन नहीं होता। उनका जो प्रेम है, वही परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप है। इसी प्रेमका वर्णन देवर्षि नारदजी इस सूत्रमें कर रहे हैं—

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्म-लोकवेदशीलत्वात् ॥६१॥

६१—लोकहानिकी चिन्ता (भक्तको) नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह (भक्त) अपने आप-को, और लौकिक, वैदिक (सब प्रकारके) कर्मों-को तथा शीलको भगवान्‌के अर्पण कर चुका है।

भक्त सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर चुकता है, इसलिये उनके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी चिन्ता करने-की उसे क्या आवश्यकता है? उसको तो केवल एक प्रियतम भगवान्‌के चिन्तनकी ही चिन्ता रहनी चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन, जन, मानादि पदार्थ रहें या चले जायँ, उसे इनकी कोई परवा नहीं, क्योंकि वह तो इन्हें पहले ही समर्पण करके सर्वथा अकिञ्चन हो चुका है। फिर उसके पास इनकी चिन्ता करनेके लिये समय और चिन्ता करनेवाला चित्त भी कहाँ है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके चित्तको तो एकमात्र चिन्ताहरण चिन्तामणि-की चिन्ताने चुरा लिया है। वे चतुरचूडामणि कभी उसके चित्तको वापस देना ही नहीं चाहते, फिर वह चित्तके अभावमें किसी हानिकी चिन्ता ही कैसे करे ? अतएव इस पथके पथिकको लोकहानिकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। उसे तो सबके सार अर्थ श्रीभगवान्‌का ही चिन्तन करना चाहिये। और भक्तके हृदयमें ऐसा ही होता भी है।

न तदसिद्धौ* लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ॥ ६२ ॥

६२–(परन्तु) जबतक भक्तिमें सिद्धि न मिले तबतक लोकव्यवहारका त्याग नहीं करना चाहिये, किन्तु फल त्यागकर (निष्कामभावसे) उस भक्तिका साधन करना चाहिये।

प्रेमकी प्राप्ति होनेपर लौकिक (और वैदिक) कर्म छूट जाते हैं, जान-बूझकर उनका स्वरूपसे त्याग नहीं करना पड़ता। समर्पणका अर्थ उनका मनसे समर्पण ही है। फिर जब प्रेमकी उच्च दशा प्राप्त होती है तब विधि-निषेधके परे पहुँच जानेके कारण ये सब कर्म स्वतः ही उसे विधिके बन्धनसे मुक्त कर अलग हो जाते हैं। उस स्थितिका यही नियम है। परन्तु जो जान-बूझकर प्रेमके नामपर शास्त्रविधिका त्याग करता है, उसे भक्तिकी सिद्धि सहजमें नहीं होती। इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि लोकव्यवहारका त्याग जान-बूझकर मत करो। फलकी कामना छोड़कर कर्म करते रहो। निष्काम कर्म करनेवाला स्वयमेव ही लोकहानिकी चिन्तासे छूट जाता है और उसके वे भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम भावसे किये हुए लौकिक कर्म भक्तिकी प्राप्तिमें साधक बन जाते हैं।

* 'तत्सिद्धौ' पाठान्तर मिलता है।

स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रं न श्रवणीयम् ॥ ६३ ॥

६३–स्त्री, धन, नास्तिक और वैरीका चरित्र नहीं सुनना चाहिये।

६२वें सूत्रमें लोक-व्यवहारका त्याग नहीं करने-की आज्ञा दी गयी है, अतएव लोकव्यवहार तो करना चाहिये; परन्तु प्रेमपथके पथिकको लोकव्यवहारमें भी स्त्री, धन, नास्तिक और शत्रुके चरित्र-श्रवणसे तो बचना ही चाहिये।

(१) जिसका मन ही स्त्रीकी चिन्तामें लग गया, वह भगवान्‌की चिन्ता किसी प्रकार नहीं कर सकता। स्त्रीकी चिन्तासे कामकी उत्पत्ति होती है, और काम प्रेममार्गमें सबसे बड़ा बाधक है। स्त्रीसम्बन्धी बातोंके सुनने, पढ़ने और देखनेसे ही स्त्रीचिन्तन होता है। अतएव साधकको चाहिये कि स्त्रीसम्बन्धी बातचीत न करे, स्त्रीसम्बन्धी बात या गान न सुने, स्त्री-सम्बन्धी तस्वीर न देखे, स्त्रीसम्बन्धी पुस्तक या अन्य साहित्य न पढ़े, नाटक, सिनेमा आदि न देखे, स्त्री-चरित्रपर कुछ भी आलोचना न करे, स्त्रियोंके सम्बन्ध-में लेखादि न लिखे, स्त्रियोंमें रहे नहीं, और स्त्रियोंसे अनावश्यक मिले नहीं। जो साधक गृहस्थ हों, उन्हें अपनी विवाहिता पत्नीके सिवा यथासाध्य अन्य स्त्रियोंसे मिलनेसे बचना चाहिये। स्त्रीसम्बन्धी चर्चा करना-सुनना, चित्रादि देखना, तो सभीके लिये हानिकारक है। श्रीमद्भागवतमें तो कहा है–

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥
(३ । ३१ । ३५)

'स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंका संग करनेवालोंके संगसे मनुष्यको जैसा मोह और बन्धन प्राप्त होता है वैसा अन्य किसीके भी संगसे नहीं होता।' आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलकर पञ्चम स्कन्धमें स्त्रियासक्त पुरुषोंकी संगतिको 'नरकका द्वार' बतलाया है। जैसे पुरुषोंके लिये स्त्रीका संग त्याज्य है, इसी प्रकार स्त्रियोंके लिये भी पुरुषोंका संग सर्वथा त्याज्य है।

(२) धनके चिन्तनसे लोभकी उत्पत्ति होती है। जहाँ चित्तमें धनका लोभ जागृत हुआ, वहीं न्याया-न्यायकी बुद्धि मारी जाती है, और मनुष्य सत्पथको त्यागकर अन्यायके मार्गपर चलने लगता है। अतएव धन और धनियोंकी भोग और गर्वभरी बातें नहीं सुननी-देखनी चाहिये।

(३) जिनका ईश्वर और शास्त्रोंपर विश्वास नहीं है, वे ही नास्तिक हैं। ईश्वरका अस्तित्व न माननेवाले नास्तिकोंके समान जगत्के जीवोंका शत्रु शायद ही कोई है। 'इसमें क्या रक्खा है? उसमें क्या है? ईश्वर केवल ढोंग है, किसने ईश्वरको देखा है? आत्मा तो कल्पनामात्र है।' ऐसी बातें बकनेवाले और ईश्वर तथा शास्त्रोंकी निन्दा करनेवाले कुतर्कियोंका संग करने तथा उनके चरित्र सुननेसे ईश्वरमें अश्रद्धा पैदा होती है और ईश्वरमें अश्रद्धाके समान पतनका साधन और कोई-सा भी नहीं है। अतएव नास्तिकोंसे सदा बचना चाहिये।

(४) वास्तवमें भक्तके मन उसका कोई भी शत्रु नहीं है। जो सब जगत्में अपने प्राणाराम परमात्मा-को व्याप्त देखता है, जो जगत्को श्रीकृष्णमय देखता है, वह कैसे किसको अपना वैरी मान सकता है। देवदेव श्रीमहादेवजीने कहा है—

उमा जे रामचरनरत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं बिरोध॥

परन्तु जबतक भक्तिकी सिद्धि न हो, तबतक साधकको ऐसी भावना करनी चाहिये, और मन-ही-मन यह निश्चय करना चाहिये कि सब कुछ मेरे प्रभुका ही स्वरूप है। ऐसी अवस्थामें यदि कोई दूसरा मनुष्य भ्रमवश साधकसे द्वेष या वैर रक्खे तो उसकी उन वैर-सम्बन्धी बातोंको, जहाँतक हो, सुनना ही नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे क्रोध उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। अतएव अपनी ओरसे तो अपने न जीते हुए मनके सिवा किसीको शत्रु माने ही नहीं, और दूसरा कोई शत्रुता रखता हो तो उसपर भी विचार न करे।

स्त्रीके चिन्तनसे काम, धनके चिन्तनसे लोभ, नास्तिकके चिन्तनसे ईश्वरमें अविश्वास और वैरीके चिन्तनसे क्रोध उत्पन्न होता है। अतएव इन चारोंके चरित्रोंको यथासाध्य सुनना ही नहीं चाहिये।

अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ॥६४॥

६४—अभिमान, दम्भ आदिका त्याग करना चाहिये।

इससे पहलेके सूत्रमें स्त्री, धन, नास्तिक, वैरीका चरित्र न सुननेका आदेश दिया गया है। परन्तु वैसा करके यह नहीं मान लेना चाहिये कि मैं कामिनी-काञ्चनका त्यागी हूँ, मैं परम आस्तिक हूँ, मैं अजात-शत्रु हूँ। अभिमान सर्वथा पतनका हेतु है। सम्पत्ति, सन्तति, शक्ति, स्वास्थ्य, विद्या, बुद्धि, कुल, वर्ण, आचार, आश्रम, रूप, पद, पुरुषार्थ आदि किसी भी वस्तुका अभिमान नहीं होना चाहिये। जो कुछ सद्वस्तु या सद्गुण प्राप्त हों, अथवा साधन ठीक चलता रहे तो उसमें भगवान्की कृपाको ही कारण समझना चाहिये। अभिमानसे बहुत बड़ी हानि होती है। अतएव अभिमानका सर्वथा त्याग करना चाहिये। यहाँतक कि निरभिमानताके अभिमानको भी छोड़ देना चाहिये। अभिमाननाशका एक उत्तम उपाय दीनता, विनय और नम्रता है। नमन-भक्तिसे भी अभिमानका नाश होता है। इसी प्रकार दम्भका भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग करना चाहिये। अपनेमें जो गुण न हों, धन-मानके लोभसे या स्वभावदोषसे उन गुणोंको दिखाने-की चेष्टा करना, बाहरसे धर्मात्मा, भक्त, त्यागी बननेका ढोंग करना दम्भ कहलाता है। दाम्भिक पुरुषका साधनपथ बहुत बुरी तरहसे रुक जाता है। वह ऊपरसे अपना कपटवेश बनाये रखनेमें ही अपनी समस्त विद्या, बुद्धि और क्रियाकुशलताको समाप्त कर देता है। निरभिमानता और सरलता ये दो भक्तिके साधनमें परम सहायकरूप हैं, और अभिमान एवं दम्भ महान् बाधक। ये दोनों आसुरी सम्पदाके दुर्गुण हैं। इनके साथ 'आदि' शब्द जोड़कर सूत्रकार-ने आसुरी सम्पदाके* अन्यान्य दुर्गुणोंकी तरफ इशारा किया है। अतएव सभी आसुरी दुर्गुणोंका त्याग करना चाहिये।

तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधा-भिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ॥६५॥

६५—सब आचार भगवान्‌के अर्पण कर चुकने-पर यदि काम, क्रोध, अभिमानादि हों तो उन्हें भी उस (भगवान्) के प्रति ही करना चाहिये।

---

* श्रीमद्भगवद्गीताके १६ वें अध्यायमें श्लोक ७ से २० तक श्रीभगवान्‌ने आसुरी सम्पत्तिका जो वर्णन किया है उसका भावार्थ इस प्रकार है—

आसुरी मनुष्य धर्माधर्मविषयक प्रवृत्ति और निवृत्तिको नहीं जानते, इसलिये उनमें न पवित्रता है, न आचार है, और न सत्य ही रहता है। वे आसुरी मनुष्य कहते हैं कि यह जगत् असत्य, अप्रतिष्ठ (धर्माधर्मव्यवस्थासे रहित), ईश्वररहित और अन्योन्यसम्भूत है अर्थात् स्त्रीपुरुषमिथुनजनित है। इस जगत्‌का और कोई कारण नहीं, यह केवल स्त्री-पुरुषके कामजनित संयोगसे ही उत्पन्न है। वे सब अल्पबुद्धि मनुष्य इस प्रकारकी दृष्टिका आश्रय करके मलिनचित्त, उग्रकर्मा और अहितकारी होकर जगत्‌के विनाशके लिये ही जन्म ग्रहण करते हैं। वे दुष्पूरणीय (किसी प्रकारसे भी पूरी न हों ऐसी) कामनाओंका आश्रय करके दम्भ, अभिमान और मदके वशीभूत हो मोहवश असदाग्रह (इस षड्यन्त्रसे अमुक मनोरथ पूर्ण हो जायगा ऐसी वेदशास्त्रविरुद्ध दुराशा) स्वीकार कर अपवित्र व्रत (मद्यमांसादि तथा चोरी झूठ कपटादिद्वारा सम्पादित नरकादि-उत्पादक कुव्रतोंको) धारणकर शास्त्रविरुद्ध—पापकर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। अन्तिम श्वासतक अपार विषयचिन्ताओंसे घिरे हुए वे 'कामोपभोग' ही परम पुरुषार्थ है, इस प्रकार स्थिर निश्चय करके सैकड़ों प्रकारकी आशाओंकी फाँसियोंसे बँधे हुए कामक्रोधपरायण होकर कामभोगके लिये अन्यायपूर्वक (चोरी, विश्वासघात आदिके द्वारा) धन सञ्चय करनेकी चेष्टा करते हैं। 'आज मैंने यह पाया', 'यह मनोरथ भी पूरा होगा', 'यह धन मेरे हैं', 'फिर वह धन भी प्राप्त होगा।' 'मैंने अमुक शत्रुको मार डाला', 'अब उन शत्रुओंको भी मारूँगा।' मैं ईश्वर (के समान सर्वशक्तिमान्) हूँ, मैं भोगी हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं धनी हूँ, मैं बड़े कुलवाला हूँ, मेरे समान और कौन है, मैं यज्ञ करूँगा, मैं (नाम, यश या स्वार्थके लिये) दान करूँगा, मैं मौज करूँगा, इस प्रकार अज्ञानसे मोहित होकर वे अनेकों विषयोंके चिन्तनमें लगे हुए विभ्रान्त चित्तवाले, मोहजालसे ढके हुए कामभोगमें आसक्त होकर महान् क्लेशदायक अपवित्र नरकोंमें पड़ते हैं। वे अभिमानी स्वयं अपनेको श्रेष्ठ समझते हैं (अपनेमें पूज्यबुद्धि रखते हैं), अकड़े रहते हैं, धन, मान और मदके नशेमें चूर हुए वे केवल दम्भपूर्वक लोगोंको धर्मात्मापनका स्वाँग दिखानेके लिये (ईश्वरप्रीत्यर्थ श्रद्धाविश्वासपूर्वक नहीं) अविधिपूर्वक नाममात्रका यज्ञ करते हैं। अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोधका आश्रय लिये हुए वे अपने तथा दूसरोंके शरीरमें (आत्मारूपसे) स्थित मुझ (भगवान्) से द्वेष करते हैं और सत्य मार्गपर चलनेवाले साधुओंमें दोषारोपण करते हैं। मैं, उन मेरे द्वेषी, क्रूर, नराधम और पापी मनुष्योंको, संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। हे अर्जुन! वे मूर्ख इस प्रकार जन्म-जन्ममें बार-बार आसुरी योनिको प्राप्त होकर मुझको (भगवान्‌को) न पाकर (मुझको पाना तो दूर रहा, मेरी प्राप्तिके योग्य मनुष्यशरीरको भी न पाकर) और भी नीची योनियोंको प्राप्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर दिया तो फिर काम, क्रोधादिका अर्पण दूसरे किसको किया जाय। जैसे प्रियतम भगवान् प्रेमी भक्तके प्रेमके पात्र हैं, वैसे ही उसके काम-क्रोधादिके पात्र भी वही हैं। दूसरा तो कोई उसके मन है ही नहीं, तब इनका पात्र और कौन हो? इसका अर्थ यह नहीं कि भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंमें भी विषयी पुरुषों-जैसे ही काम, क्रोध, अभिमान रहते हैं। आसुरी सम्पदाके दुर्गुणस्वरूप काम, क्रोध, अभिमानादिके त्यागकी बात तो पहले ही कही जा चुकी है। फिर प्रेमी भक्त महात्माओंमें यह दूषित काम कहाँ? उनमें विषयासक्ति, हिंसा, द्वेष और क्रोध कहाँ? उन अमानियोंमें मानकी गन्ध भी कहाँ? इनका तो उनमें बीज ही नहीं है। अपने सुखकी जब कोई वासना ही नहीं, तब ये दोष कहाँसे आवें? उन भक्तोंके जीवनका उद्देश्य तो बस एक ही प्रियतम-को सुखी करना है—'कृष्णसुखैकतात्पर्य गोपीभाववर्य।' उनके चित्तमें जगत्‌का संस्कार ही नहीं है, वे तो लज्जा, घृणा, कुल, शील, मान, देह, गेह, भोग, मोक्ष, सबकी सुधि भुलाकर केवल अपने प्रियतम भगवान्‌पर ही न्योछावर हो चुके हैं। अतएव जैसे ये भक्त दिव्य भाववाले होते हैं, वैसे ही इनके काम, क्रोध, अभिमान भी दिव्य होते हैं। इसीलिये परम विरागी जीवन्मुक्त मुनियोंने इस प्रकारके भगवत्-रंगरँगीले प्रेमियोंकी ऐसी लीलाएँ गाने और सुननेमें अपनेको कृतार्थ माना है। जिनका चित्त सब ओरसे हट गया है, एकमात्र भगवान् ही जिनकी कामनाकी वस्तु रह गये हैं, वे भक्त अपने उन भगवान्‌के दर्शनकी कामनाके वेगसे पीड़ित होकर रो-रोकर पुकारते हैं—

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत)

'हे देव! हे प्रियतम! हे विश्वके एकमात्र बन्धु! हे हमारे मनोंको अपनी ओर बरबस खींचनेवाले! हे चपल! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु! हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम! हा! हा! तुम कब हमारे दृष्टिगोचर होओगे?'

श्रीकृष्णगतप्राणा श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥
का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम्॥
यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्॥

(श्रीमद्भा० १०। ५२। ३७, ३८, ४३)

'हे अच्युत! हे त्रिभुवनसुन्दर! जो कानोंके द्वारा हृदयमें प्रवेश करके सुननेवालोंके अंगतापको हरण कर लेते हैं वे आपके दिव्य गुण, और जो नेत्रधारियोंकी दृष्टिका सबसे परम लाभ है वह आपका दिव्य रूप, इनकी प्रशंसा सुनकर मेरा चित्त सारी लोक-लाजको छोड़कर आपपर अत्यन्त आसक्त हो गया है। हे मुकुन्द! कुल, शील, रूप, विद्या, वय, द्रव्य, धाम, और प्रभावमें आपके समान बस आप ही हैं। हे पुरुषोत्तम! आप नरलोक-नयनाभिराम हैं। हे पुरुष-सिंह! विवाहकाल (आपसे मिलनका अवसर) उपस्थित होनेपर ऐसी (कौन प्रेमी भक्तरूपी) कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कन्या है, जो आपके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गँठजोड़ा करनेकी इच्छा न करेगी ? हे कमललोचन ! उमापति शंकरके समान महान् देव, अपने हृदयका तम दूर करनेके लिये आपकी जिस चरणधूलिमें स्नान करनेकी प्रार्थना करते रहते हैं, यदि वह चरणधूलि मुझे प्रसादरूपमें नहीं मिली तो यह निश्चय समझिये कि मैं व्रतादिके द्वारा शरीरको सुखाकर इन व्याकुल प्राणोंको त्याग दूँगी, और ऐसे करते-करते कभी सौ जन्मोंमें तो आपका प्रसाद मुझको प्राप्त होगा ही ।'

भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानियाँ द्रौपदीसे कहती हैं—

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत।
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।
कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ८३ । ४१-४२)

'हे साध्वी ! हमें पृथ्वीके साम्राज्य, इन्द्रके राज्य, भौज्यपद, सिद्धियाँ, ब्रह्माके पद, मोक्ष या वैकुण्ठकी भी इच्छा नहीं है । हम तो केवल यही चाहती हैं कि भगवान् श्रीकृष्णकी कमलाकुचकुंकुमकी सुगन्धसे युक्त चरणधूलिको ही सदा अपने मस्तकोंपर लगाती रहें ।' मुक्ति तो ऐसे भक्तोंके चरणोंपर लोटा करती है—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ॥

'जिसकी श्रीमुकुन्दके चरणोंमें परमानन्दरूपा भक्ति होती है, मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणोंमें लोटती है ।'

आदर्श प्रेममयी भक्तशिरोमणि गोपियाँ प्रियतम भगवान्‌के आँखोंसे ओझल हो जानेपर विलाप करती हुई कहती हैं—

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥
व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शंतमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ३१ । ५-६, १३)

'हे यदुकुलशिरोमणि ! जो लोग संसारके भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरण लेते हैं, तुम्हारे करसरोज उन्हें अभय देकर उनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं । हे प्रियतम ! अपने उन्हीं करकमलोंको, जिनसे आपने लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रखिये । हे व्रजवासियोंके दुःखोंको हरनेवाले वीर ! आपकी मन्द मधुर मुसकान भक्तोंके गर्वको हरनेवाली है । हे सखे ! हम आपकी किंकरी हैं, कृपा करके हमें स्वीकार कीजिये और अपना सुन्दर मुखकमल हमें दिखाइये । हे रमण ! हे आर्तिनाशन ! तुम्हारे चरणारविन्द प्रणत जनोंकी कामना पूरी करनेवाले हैं, लक्ष्मीजीके द्वारा सदा सेवित हैं, पृथ्वीके आभूषण हैं, विपत्तिकालमें ध्यान करनेसे कल्याण करनेवाले हैं, हे प्रियतम ! उन कल्याणमय सुशीतल चरणोंको हमारे तप्त हृदयपर स्थापित कीजिये ।'

इस प्रकार प्रेमी भक्त श्रीकृष्णके कामसे पीड़ित हुए सदा उन्हींके लिये रोया करते हैं और उन्हें पुकारा करते हैं; और आँखमिचौनीकी-सी लीला करनेवाले लीलाविहारी भगवान् जब उनकी प्रेम-पुकार सुनकर त्रिभुवनकमनीय, योगिजनदुर्लभ, देवदेव-प्रत्याशित, ऋषिमहर्षिमहापुरुषचित्ताकर्षक निखिल-सौन्दर्यमाधुर्यरसामृतसारभूत आनन्दकन्द मदन-मोहन मन्मथमन्मथरूपमें मन्द मन्द मुसकाते हुए और मुरलीमें अपना दिव्य मोहन सुर भरते हुए सहसा प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर प्रेमानन्दरसमाधुरी चारों ओर बिखेर देते हैं, जब अपनी सौन्दर्यमाधुर्यसुधासुशीतल पूर्णचन्द्र-की शुभ्र चाँदनी चारों ओर छिटका देते हैं, तब वहाँ उन भाग्यवान् दिव्यचक्षु दिव्यभावापन्न भक्त महात्माओंके चित्तोंकी क्या अवस्था होती है, इसका वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। यह अनिर्वचनीय रहस्य है।

उस समय भक्तका अपना सब कुछ उनके चरणों-में स्वयमेव न्योछावर हो जाता है और वह आनन्दोल्लासमें मत्त होकर सारे जगत्‌की परवा छोड़-कर पुकार उठता है—

घर तजों बन तजों, नागर नगर तजों,
वंसीबट-तट तजों, काहूपै न लजिहौं।
देह तजों, गेह तजों, नेह कहो कैसे तजों,
आज राजकाज सब ऐसे साज सजिहौं॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोकौं,
बावरी कहेते मैं काहू ना बरजिहौं।
कहैया सुनैया तजों, बाप और मैया तजौं,
दैया तजों मैया! पै कन्हैया नाहिं तजिहौं॥

जीना और मरना तुम्हारे ही लिये होगा, और तुम्हारे ही चरणोंमें होगा। यही एकमात्र मेरे हृदयकी कामना है। जब सब कुछ न्योछावर हो गया तो फिर मरनेके बाद शरीरके ये पाँचों भूत अलग-अलग बिखरकर भी तुम्हारी ही सेवा करेंगे। कहीं ये पञ्च-भूत जब मुझे छोड़कर अलग हों तब प्रियतमकी सेवा-से हट न जायँ। इसीलिये विह्वल चित्तसे भक्त विधातासे प्रार्थना करता है—

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गन-
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः॥

इसीका अनुवाद करते हुए एक कविने कहा है—

मरिबे डरौं न बिधिहिं बस, पंचभूत करि बास।
पी-बापी, मारग, मुकुर, बीजन, अँगन-अकास॥

पाँचों तत्त्व तो अलग-अलग होंगे ही, हे प्रभो! आप इतना कर दीजिये कि जलका भाग उस कुएँमें जाकर मिल जाय जिसके जलको मेरे प्रियतम नहाने और पीनेके काममें लेते हों, अग्नितत्त्व उस दर्पणमें जा मिले जिसमें प्रियतम अपना मुख देखते हों, पृथ्वीतत्त्व उस मार्गमें मिल जाय जिस मार्गसे प्रियतम आते जाते हों, वायुतत्त्व उस भाग्यवान् पङ्खेमें जा मिले जिससे प्रियतम हवा लेते हों और आकाश-तत्त्व उस आँगनमें जाकर मिल जाय जिसमें प्रियतम बैठते हों!

और जीव? वह तो प्रभुके चरणोंसे कभी अलग हो ही नहीं सकता। उसको वे अपने हृदयमें ही छिपा रक्खेंगे! यह भक्तोंके कामका एक अति क्षुद्र-सा वर्णन है! अब उनका क्रोध देखिये।

एक दिन श्रीकृष्णकी किसी खिझानेवाली चालसे श्रीराधाजी खीझ गयीं, सखी समझाने लगीं तो वे क्रोधमें भरकर कहने लगीं—तू उसका नाम भी मेरे सामने मत ले; उसकी तो बात ही क्या है, मैं काले रङ्गकी चीज मात्रका त्याग कर दूँगी। जीवन भर उसके विरहतापसे जलती रहूँगी, परन्तु उससे मिलूँगी नहीं।

मिलौं न तिनसों भूल, अब जौलौं जीवन जियौं।
सहौं बिरहको सूल, बरु ताकी ज्वाला जरौं॥
मैं अब अपने मन यह ठानी। उनके पंथ पिऊँ नहिं पानी॥
कबहूँ नैन न अंजन लाऊँ। मृगमद भूलि न अंग चढ़ाऊँ॥
सुनौं न स्रवननि अलि-पिक-बानी। नील जलज परसौं नहिं पानी

जरा ध्यान देकर देखिये, इस खीझमें कितनी रीझ भरी है।

एक समय लीलामयने भक्त सखाओंके प्रणय-कोपका आनन्द लूटनेके लिये खेलमें गड़बड़ मचाकर सखाओंको खिझा दिया। सखाओंने मिलकर निश्चय किया कि इस नटखटको खेलसे अलग कर दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामसुन्दरका वियोग तो क्षणभरके लिये भी सहनेको एक भी तैयार नहीं, उसके अलग करते ही प्राण अलग हो जाते हैं; परन्तु ऊपरसे बात गाँठकर उन्होंने कहा—'कृष्ण ! तुम खुद ही गड़बड़ मचाते हो, और फिर तनकर रूठ जाते हो; हटो यहाँसे, हम तुम्हें अपने साथ नहीं खेलने देंगे ।' बस, जहाँ फटकार मिली कि प्राणधन श्यामसुन्दर ढीले पड़ गये । लगे पैरों पड़ने और शपथ खा-खाकर क्षमा माँगने । सूरदासजीने गाया है—

खेलनमें को काको गुसैयाँ ।
हरि हारे जाते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रुसैयाँ ॥
जाति पाँति हमते बड़ नाहीं, ना हम बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत तातें, जाते अधिक तुम्हारे गैयाँ ॥
रूठ करे ता सँगको खेलै, हा हा खात परत तब पैयाँ ।
'सूरदास' प्रभु खेल्यो ही चाहैं, दाँव दियो करि नंद दुहैयाँ ॥

अब रही मानकी बात, सो दूषणरहित मान तो इस प्रेमाभक्तिका एक भूषण ही है । एक समय श्रीराधारानी रूठ गयीं, मान कर बैठीं और सखियोंसे बोलीं—

सखि नँदलाल न आवन पावैं ।
भीतर चरन धरन जिन दीजो, चाहे जितै ललचावैं ॥
ऐसनको बिस्वास कहा री कपट बैन बतियावैं ।
'नारायन' इक मेरे भवन तजि अनत चहे जहँ जावैं ॥

भगवान् मनाते मनाते थक गये और शेषमें बोले—

इतो स्रम नाहिंन तबहुँ भयो ।
सुनु राधिका ! जितो श्रम मोकौं ते यह मानु दयो ॥
धरनीधर बिधि बेद उधारो, मधु सो सत्रु हयो ।
द्विज नृप किये दुसह दुख मेटे, बलिको राज्य लयो ॥
तोरयो धनुष सुयंबर कीनो, रावन अजित जयो ।
अघ बक बच्छ अरिष्ट केसि मथि दावानल अँचयो ॥
तिय बपु धरयो असुर सुर मोहे, को जग जो न द्रयो ।
गुरुसुत मृतक ज्यायबे कारन सागर सोध लयो ॥
जानों नाहिं कहा या रसमें सहजहि होत नयो ।
'सूरश्याम' बल तोहि मनावत मोहि सब बिसरि गयो ॥

धन्य तेरा मान ! बड़े-बड़े काम किये, कहीं हार नहीं मानी, कहीं थकावट नहीं प्रतीत हुई । आज तुझे मनानेमें मेरा सारा बल बिला गया । यह भक्तोंकी और भगवान्‌की प्रणय-लीला है—इस लीलामें राग, काम, क्रोध, मान सभी है परन्तु सभी दूसरे रूपमें हैं। यहाँका सर्वधर्मत्याग ही परम धर्म है । यहाँकी अविधि ही सर्वोपरि प्रेमकी विधि है ।

यह तो हुई सिद्ध भक्तोंकी बात । भक्तिके साधनमें भी यदि काम, क्रोध, लोभ कभी सतावें तो उनको भगवान्‌के प्रति ही लगा देना चाहिये । जो बातें हमारे मार्गमें बाधक होती हैं, वे ही भगवान्‌के प्रति प्रयुक्त होनेपर साधक बन जाती हैं । यह निश्चय रखना चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें परमहंसश्रेष्ठ श्रीशुकदेवजीके वचन हैं—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥
(१० । २९ । १५)

'कामसे, क्रोधसे, भयसे, स्नेहसे, अभेदभावसे, मित्रतासे या भक्तिसे किसी प्रकार भी जिनका चित्त श्रीहरिमें लग जाता है वे अवश्य ही भगवान्‌के साथ तन्मय हो जाते हैं ।'

तीव्र काम उसी वस्तुके लिये उत्पन्न होता है जो सबसे श्रेष्ठ हो, अखिल ऐश्वर्यमय हो, महान् माधुर्यसे पूर्ण हो, सर्वाङ्गसुन्दर हो, आनन्दमय हो; भगवान्‌में यह सब कुछ है । यह सोचकर सदा-सर्वदा एकमात्र श्रीकृष्णमिलनकी कामनासे पीड़ित रहे और यह कामवासना उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय । प्रेमभरा क्रोध इस प्रकार करे कि 'तुम बड़े निठुर हो, इतना पुकारनेपर भी नहीं आते; याद रक्खो, अभी तो मैं पुकारता हूँ, पीछे तुम्हें पीछे-पीछे भटकना पड़ेगा ।' आठों पहर चिन्तनमें लगे रहकर प्रेमभरा मान इस प्रकार करे कि 'मेरे पास तो अटूट चिन्तन-धन है, मैं तुम्हारी कोई गरज नहीं रखता, तुम्हें सौ बार गरज़ हो तो आना ।' इत्यादि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

(मणि १०)

चौथा अध्याय

जनक राजाको याज्ञवल्क्यका उपदेश

डोरूशङ्कर—हे देवि ! याज्ञवल्क्य मुनिने जनक राजाको जिस ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था, वह विद्या मुझे अब आप सुनाइये ।

देवी—हे वत्स ! याज्ञवल्क्यने जनक राजाको जो उपदेश दिया था, उसको मैं कहती हूँ, तू सावधान होकर सुन। ब्रह्म-सभामें शाकल्यकी मृत्यु और सब ब्राह्मणोंका पराजय होनेके बाद जनक राजा और सब सभासद् सभासे उठकर अपने-अपने घर चले गये, दूसरे दिन प्रातःकाल दुन्दुभि और अन्यान्य बाजोंके मधुर शब्दसे जनक राजा जाग्रत् हुआ। प्रातः नित्य-कर्म करके तथा ब्राह्मणोंका आशीर्वाद ग्रहणकर एवं यथायोग्य वस्त्राभूषण धारणकर राजसभामें आकर राजा ऊँचे सिंहासनपर विराजमान हुआ और अन्य सब सभासद् अपने-अपने योग्य आसनोंपर बैठ गये। याज्ञवल्क्य भी स्नानादि क्रिया करके अपने शिष्यों-सहित राजसभामें आये। याज्ञवल्क्य मुनिको सभामें आये हुए देखकर राजा जनक समस्त सभासदों-सहित उठ खड़ा हुआ और आदरसहित मुनिको योग्य आसनपर बैठाया। मुनिने आसनपर बैठकर जनक राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन सबको अपने-अपने आसनपर बैठनेकी आज्ञा की। जब सब बैठ गये तो राजा जनक नम्रतापूर्वक कहने लगा—

राजा—हे मुनि ! आप-जैसे विद्वान् ब्राह्मण परमात्मारूप हैं, क्योंकि जैसे परमात्मा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करता है, उसी प्रकार आप-जैसे विद्वान् ब्राह्मण भी इन्द्रादि देवताओंकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेको समर्थ हैं। तो फिर हम-सरीखे देहधारी जीवोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेमें ब्राह्मण समर्थ हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है। सबपर समान दृष्टिवाले, शम-दमादि गुणोंसे युक्त, मत्सरादि विकारोंसे रहित और सब कामनाओंसे मुक्त आप-जैसे विद्वान्का पृथिवीपर विचरना सुवर्णादि पदार्थोंके ग्रहण करनेके लिये कदापि नहीं है, किन्तु अज्ञानी जीवोंका उद्धार करनेके लिये है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि मुझ-जैसे संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको तारनेके लिये ही आपका यहाँ शुभागमन हुआ है। कृमि-कीटादिसे व्याप्त, कान-पूँछ कटा हुआ तथा नाना प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त श्वान जैसे विष्ठासे लिप्त सूखी हड्डीके लिये दूसरे बलवान् श्वानोंके साथ लड़कर मृत्युको प्राप्त होता है, उसी प्रकार मैं विष्ठा-मूत्रादिसे दुर्गन्धवाले निन्दित शरीरको अहंबुद्धिसे ग्रहण करके अनेक प्रकारके दुःखोंको सहन करता हुआ मरणोन्मुख हुआ हूँ। जैसे क्षुधासे पीड़ित राक्षस मनुष्यादि जीवोंको भक्षण करता है, उसी प्रकार क्षुधासे पीड़ित हुआ मैं भी तण्डुलादि स्थावर-जङ्गम पदार्थोंका भक्षण करता हूँ। जैसे श्मशानमें पड़े हुए मृत शरीरको पिशाच ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार कामरूपी पिशाचके आवेशसे युक्त होकर मैं अपवित्र स्त्रियोंके शरीरको आलिङ्गन करता हूँ। तात्पर्य यह है कि यदि मैं स्त्रीका आलिङ्गन नहीं करता तो कामके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण दुखी होता हूँ और यदि मैं आलिङ्गन करता हूँ, तो पिशाचकी तुल्यता प्राप्त होती है। और स्त्रीके संयोगके परिणामकालमें भी अनेक प्रकारके दुःखोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये स्त्रीका संयोगरूप व्यवहार भी सर्वथा दुःखका कारण है। जैसे कोई निर्दय राक्षस मनुष्यादिको मारता है, उसी प्रकार गन्धके लोभवाला मैं चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंके घर्षणसे दुर्गन्धवाले शरीरको मलता हूँ। जैसे शान्त स्वभाववाले मुनियोंको बिना अपराध राक्षस मारता है, इसी प्रकार मृगया-रूपी व्यसनवाला मैं भी तृण तथा पर्णादि भक्षण करनेवाले मृगोंको बिना अपराध मारता हूँ। जैसे तेली तिलोंको पेरकर उनमेंसे तेल निकाल लेता है, इसी प्रकार मैं भी द्रव्यके लोभसे प्रजाको नाना प्रकारके दुःख देकर उनके पाससे द्रव्य ग्रहण करता हूँ। भाव यह है कि यदि प्रजासे द्रव्य न लूँ तो द्रव्यकी इच्छासे दुःख होता है और यदि लेता हूँ तो तेलीकी तुल्यता प्राप्त होती है, इसलिये प्रजासे द्रव्य लेनेका व्यवहार भी सर्वथा दुःखरूप है। जैसे कन्धे अथवा पीठपर रक्खा हुआ गट्ठर मनुष्य तथा पशुको कष्ट देता है, उसी प्रकार पुरुषके कन्धेपर बैठकर अथवा हाथी या घोड़ेकी पीठपर बैठकर मैं भी उनको कष्ट देता हूँ। कौआ जैसे छप्परपर बैठकर अप्रिय शब्द उच्चारण करता है, उसी प्रकार मानयुक्त मैं सब लोगोंसे ऊँचे आसन-पर बैठता हूँ और सबको अप्रिय शब्द सुनाता हूँ। पृथिवीमें रहनेवाला आसक्तियुक्त सर्प जैसे धनकी रक्षा करता है, उसी प्रकार मैं धनकी रक्षा करता हूँ। जैसे ग्रामका शूकर अपने स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बमें अत्यन्त आसक्त होता है, उसी प्रकार मैं भी स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बमें आसक्त हूँ। इस प्रकार अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैव, इन तीन प्रकारके दुःखवाले संसारमें पड़े हुए मुझ-जैसे अज्ञानी जीवोंके उद्धार-के लिये आपका यहाँ शुभागमन हुआ है।

याज्ञवल्क्य—हे राजन्! मेरा आगमन गौओंकी प्राप्ति और आत्माके निर्णय करनेके लिये हुआ है। राजसभामें बहुत-से विद्वान् आकर राजाको ज्ञान देते हैं, ऐसा नियम है। तुम ब्राह्मणोंका सत्कार करनेवाले हो, अतएव तुम्हारे यहाँ बहुत-से ब्राह्मण आते हैं, और तुमको ज्ञान देते हैं। इसीलिये तुमको विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ है। ऐसा जानकर यह जाननेके लिये मैं यहाँ आया हूँ कि तुमको कितना ज्ञान प्राप्त हुआ है। जितना ज्ञान तुमने प्राप्त किया हो, वह मुझको सुनाओ, तदनन्तर मैं तुम्हें उपदेश करूँगा।

मुनिके ऐसे वचन सुनकर पूर्वमें राजसभामें आकर जिन-जिन ब्राह्मणोंने जो-जो उपदेश राजाको दिया था, वह सब उपदेश राजा याज्ञवल्क्यको इस प्रकार सुनाने लगा—

जनक—हे भगवन्! (१) शिलिन ऋषिके पुत्र जित्वा ऋषिने अग्निको ब्रह्मरूप कहा है, (२) शुल्ब ऋषिके पुत्र उदंकने वायुको ब्रह्मरूप कहा है, (३) वृष्णु ऋषिके पुत्र वर्कु ऋषिने सूर्यको ब्रह्मरूप कहा है, (४) भरद्वाजगोत्रमें उत्पन्न हुए गर्दभी विपील नामके ऋषिने दिशाओंको ब्रह्मरूप कहा है, (५) जबालके पुत्र सत्यकाम ऋषिने चन्द्रमाको ब्रह्मरूप कहा है और (६) विदग्ध नामके शाकल्य ऋषिने प्रजापतिको ब्रह्मरूप कहा है। इस प्रकार पूर्वमें राजसभामें आये हुए ब्राह्मणोंने मुझे उपदेश किया है।

याज्ञवल्क्य—हे जनक! अग्नि आदि देव सब जगत्का निर्वाह करनेवाले हैं, इसलिये ब्रह्मरूपसे उनकी उपासना करना उचित है। किन्तु केवल इतना ही करनेसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। अग्नि आदि देवोंका तुमको उन्होंने जो उपदेश किया है, वह सम्पूर्ण नहीं है, क्योंकि उन्होंने तुमको एक पादका उपदेश किया है और इन ऋषियोंके उपदेश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अभी तीन पाद शेष हैं, इसलिये मैं जो कुछ कहता हूँ उसको सुनो।

(१) अधिदैवरूप अग्नि प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप वाक् इन्द्रिय दूसरा पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तीसरा पाद है और प्रज्ञा चतुर्थ पाद है। (२) इसी प्रकार अधिदैवरूप वायु प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप घ्राण इन्द्रिय दूसरा पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तीसरा पाद है और प्रिय चौथा पाद है। (३) अधिदैवरूप सूर्य प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप चक्षु इन्द्रिय दूसरा पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तीसरा पाद है और सत्य चौथा पाद है। (४) अधिदैवरूप दिशा प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप श्रोत्र इन्द्रिय दूसरा पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तीसरा पाद है और अनन्त चौथा पाद है। (५) अधिदैवरूप चन्द्रमा प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप मन दूसरा पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तीसरा पाद है और आनन्द चौथा पाद है। (६) अधिदैवरूप प्रजापति प्रथम पाद है, हृदय दूसरा पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तीसरा पाद है और स्थिति चौथा पाद है। अग्नि आदिके चार-चार पादोंमें प्रत्येकके प्रथम पादका चिन्तन करनेसे हिरण्यगर्भकी स्मृति होती है, दूसरे पादका चिन्तन करनेसे विराट् भगवान्‌की स्मृति होती है, तीसरे पादका चिन्तन करनेसे अन्तर्यामी ईश्वरकी स्मृति होती है और चौथे पादके स्मरणसे तुरीयकी स्मृति होती है।

इस प्रकार अग्नि आदि चार पादवाले सगुण ब्रह्मकी उपासना याज्ञवल्क्य मुनिने छः बार कही और जनक राजाने छः बार मुनिसे कहा कि ये एक सहस्र गौ मैं आपको दक्षिणामें देता हूँ और याज्ञवल्क्यने छः बार राजासे कहा कि हे जनक! जबतक शिष्य कृतार्थ नहीं हो जाता, तबतक गुरुदक्षिणा ग्रहण करना योग्य नहीं है। जबतक तुमको आत्मसाक्षात्कार नहीं होगा, तबतक मैं तुमसे दक्षिणा नहीं लूँगा। अग्नि आदि चार पादवाले सगुण ब्रह्मकी उपासनासे शिष्य कृतार्थ नहीं होता किन्तु निर्गुण ब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञानसे ही शिष्य कृतार्थ होता है। निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार अभी तुमको नहीं हुआ।

जब याज्ञवल्क्यने राजासे इस प्रकार कहा, तो राजा मुनिको निर्लोभ देखकर बहुत ही आश्चर्यको प्राप्त हुआ और इस प्रकार कहने लगा—

राजा—हे भगवन्! जिससे शिष्य कृतार्थ होता है, वह वस्तु मैं आपसे सुननेकी इच्छा करता हूँ।

इतना कहकर राजा सिंहासनको छोड़कर पृथिवीपर खड़ा हो गया और बारम्बार नमस्कार करके कहने लगा—

जनक—हे भगवन्! जैसे अन्धे पुरुषको देखकर कोई दयालु पुरुष मार्गका उपदेश देकर उसको वनसे बाहर निकाल देता है, उसी प्रकार संसाररूपी महान् वनमें भूले हुए मुझको अनेक प्रकारके दुःखोंका अनुभव हो रहा है। इसलिये आपका दयालु स्वभाव देखकर संसाररूपी वनमेंसे बाहर निकलनेके लिये मैं आपसे मार्ग पूछता हूँ। हे भगवन्! जैसे वनमें भयानक सर्प रहते हैं, अनेक गड्ढे होते हैं, अनेक भेड़िये फिरते रहते हैं, अनेक सिंह गर्जना करते हैं और अग्नि जला करती है, इसी प्रकार इस संसाररूपी वनमें कामरूपी सर्प है, नारीरूप महान् गड्ढा है, नेत्रादि भेड़िये हैं, अहङ्काररूपी सिंह गरजता है और क्रोधरूपी अग्निसे चित्तरूपी भूमि तथा शुभ गुणरूप वृक्ष जल रहे हैं। जैसे वनमें शिकारी कुत्ते तथा धनुष-बाण लेकर मृगोंको मारता है, उसी प्रकार संसाररूपी वनमें मृत्युरूप शिकारी मनरूप कुत्तेको लेकर, क्षण-लवादि कालरूप धनुषमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा-व्याधिरूप बाणोंको चढ़ाकर अस्मदादि जीव-रूप मृगोंको मारता है। इसलिये हे भगवन्! मृत्युरूप शिकारी जरा-व्याधिरूप बाण लेकर जबतक मेरे सम्मुख आवे, उससे प्रथम ही आप मुझे संसाररूपी वनसे निकलनेका मार्ग बताइये।

याज्ञवल्क्य—(राजाकी परीक्षा लेनेके लिये) हे राजन्! तुम कौन-सा मार्ग ढूँढ़ते हो वह मुझसे कहो कि जिससे मैं उसी मार्गका तुम्हें उपदेश करूँ। दूर देशमें जानेके लिये पृथिवीपर जाना होता है तो मनुष्य अश्वपर या रथमें बैठ-कर जाता है, जलमें जाना होता है तो नौकामें जाता है। हे राजन्! प्रज्ञान, प्रिय, सत्य, अनन्त, आनन्द और स्थिति ये छः नामवाले अग्नि, वायु, सूर्य, दिशा, चन्द्रमा तथा प्रजापति इन छः देवों-की ब्रह्मरूपसे तुमने उपासना की है। अहिंसा, सत्यादि दैवी सम्पत्तियोंसे तुम युक्त हो, इसलिये देवके समान तुम सब लोगोंके पूजनेयोग्य हो। कर्मकाण्डका तुमने अध्ययन किया है, अनेक ऋषियोंसे उपासनाके रहस्यको तुमने जाना है और सम्पूर्ण लोकोंमें तुम बुद्धिमान् प्रसिद्ध हो। अब इस शरीरको त्यागकर कर्म तथा उपासना-रूप साधनोंसे तुम कौन-से स्थानमें जाओगे, यह मुझको बतलाओ। तब मैं तुम्हारे जानेयोग्य स्थानका तुम्हें उपदेश करूँगा। जैसे कोशल, कुरु तथा पाञ्चालादि जानेयोग्य देशोंको न जानकर जो पुरुष अन्यको किसी मार्गका उपदेश करता है, वह उपदेश जैसे ठीक नहीं है, इसी प्रकार चित्तशुद्धिद्वारा कर्म-उपासनारूप साधनोंसे जाने-योग्य स्थानोंको मुझसे कहो, पीछे मैं तुमको उपदेश करूँगा।

जनक—हे भगवन्! कर्म और उपासना आदि साधनोंसे अपने गन्तव्य स्थानको मैं नहीं जानता। जैसे सिंह-सर्पादियुक्त वनमें कोई विदेशी अन्धा पुरुष वृद्धावस्था तथा भूख-प्यासके कारण अपने मार्गको न जानकर किसी दयालु पुरुषसे मार्ग पूछता है, उसी प्रकार अपने गन्तव्य स्थानको न जानकर मैं आपसे मार्ग पूछता हूँ। जैसे समुद्रके पानीमें नमकका टुकड़ा बँध जाता है, और अपने आनेके स्थानको नहीं जानता, उसी प्रकार कौन-से स्थानसे मैं आया हूँ, यह मैं नहीं जानता। हे भगवन्! भूत, भविष्य तथा वर्तमान—इन तीन प्रकारके पदार्थोंको आत्माके किसी धर्मसे जानता हूँ, अथवा आत्माके किसी स्वरूपसे मैं जानता हूँ, इस प्रकारके अर्थको ही मैं नहीं जानता, तो फिर गन्तव्य स्थानको मैं किस प्रकार जान सकता हूँ? मेरा स्वरूप कैसा है, यह मैं नहीं जानता। रात-दिन सदा दुःख भोगता हूँ किन्तु सुख-दुःखका कारण क्या है, यह भी मैं नहीं जान सकता। बाल्यावस्थासे लेकर अबतक सब अवस्थाओंमें मैंने दुःखका ही अनुभव किया है, दुःखके भोक्ताको, दुःखके कारणको अथवा दुःखके विशेष रूपको मैं नहीं जानता। जैसे वायुसे उड़ते हुए पतङ्गे अग्निमें पड़कर मृत्युको प्राप्त होनेतक अपने आत्माको, परको, दुःखके कारणको अथवा किसी दूसरे पदार्थको नहीं जानते, केवल दुःखका ही अनुभव करते हैं, उसी प्रकार कर्मरूप वायुसे संसाररूपी अग्निमें पड़ा हुआ मैं अपने आत्माको, दुःखके कारणको अथवा दूसरे किसी पदार्थको नहीं जानता। मुझे केवल दुःखका ही निरन्तर अनुभव होता है। इसलिये कर्मोपासनासे गन्तव्य स्थानको मैं किस प्रकार जान सकूँ? यदि गन्तव्य स्थानको जानता होता तो फिर आपसे उसका मार्ग किस-लिये पूछता? अधिकारी पुरुषको भी गन्तव्य मार्ग दुर्विज्ञेय है, क्योंकि जीव जब स्थूल शरीरसे बाहर निकलता है, तो उसका क्या स्वरूप होता है, किस प्रकार परलोकमें जाता है, और किस फलको भोगता है, इत्यादि विषयोंकी उसे कुछ भी खबर नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य—हे जनक ! अधिकारी कर्मोपासनादि साधनोंसे चित्तकी शुद्धिद्वारा जिस स्थानको प्राप्त करता है, उस स्थानका मैं तुमको उपदेश करता हूँ, उसको सुनो—इस ज्ञानसे तुम सब भयसे मुक्त हो जाओगे। पूर्वमें मैंने तुमसे गन्तव्य स्थानका जो प्रश्न किया था, उसका कारण यह है कि वादी दो प्रकारके प्रश्न करते हैं, एक प्रतिपादन करनेयोग्य वस्तुको न जानकर प्रश्न करे, वह, तथा दूसरा प्रतिपादन करनेयोग्य वस्तुको जानकर प्रश्न करे, वह। प्रतिपादन करनेयोग्य वस्तुको जानकर जो वादी प्रश्न करते हैं, वे भी दो प्रकारके होते हैं—वस्तुके यथार्थ ज्ञानपूर्वक और वस्तुके अयथार्थ ज्ञानपूर्वक प्रश्न होता है। वादीके ज्ञानका विषय जो पदार्थ तथा प्रतिवादीके ज्ञानका विषय जो पदार्थ है उन दोनोंकी समानताका जो निर्णय है, वह वस्तुके यथार्थ ज्ञानपूर्वक प्रश्नका फल है। संशय तथा विपर्ययकी निवृत्ति यह वस्तुके अयथार्थ ज्ञानपूर्वक प्रश्नका फल है। वस्तुके यथार्थ ज्ञानपूर्वक प्रश्न भी दो प्रकारके होते हैं—अपनी बुद्धिकी निर्मलता जतानेके लिये प्रश्न किया जाय, वह और प्रतिवादीकी बुद्धिकी निर्मलता जाननेके लिये प्रश्न किया जाय, वह। इस प्रकार वस्तुके ज्ञानपूर्वक प्रश्नोंके भेद अनेक प्रकारके हैं। जो गन्तव्य स्थानको जानकर उसके मार्गका प्रश्न करते हैं, उन बुद्धिमान् गन्तव्य स्थानके जाननेवालोंको बुद्धिमान् केवल मार्गका ही उपदेश करते हैं। गन्तव्य स्थानके ज्ञानके सिवा विद्वान् अन्य किसी भी मार्गका उपदेश नहीं करते। जो कोई मनुष्य गन्तव्य स्थानको न जानकर प्रश्न करता है, तो उस श्रद्धावान्‌को दयालु पुरुष गन्तव्य स्थान तथा उसका मार्ग ये दोनों बतला देते हैं। तुम भी गन्तव्य स्थानको नहीं जानकर प्रश्न करते हो, इसलिये मैं तुम श्रद्धावान्‌को गन्तव्य स्थानका तथा उसके मार्गका उपदेश करूँगा। सावधान होकर सुनो !

जनक—(प्रसन्न होकर) हे भगवन् ! मैं सावधान हूँ, आप उपदेश कीजिये।

याज्ञवल्क्य—हे जनक ! सूर्य भगवान्‌ने जिस ज्ञानका मुझे उपदेश किया था, वही ज्ञान मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। यह ज्ञान आत्मसाक्षात्कारका कारण है और यज्ञादि बहिरङ्ग साधनोंसे तथा विवेकादि अन्तरङ्ग साधनोंसे प्राप्त होनेयोग्य है। शुद्ध ब्रह्मका बोध होनेके लिये जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंके अभिमानी विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ—इन तीनोंके स्वरूपको प्रथम जानना चाहिये। अविद्यासे देहादिके साथ तादात्म्याध्यास होनेसे परमात्मा जब नेत्रादि इन्द्रियोंसे रूपादि विषयोंको ग्रहण करता है, तब वह जाग्रत्-अवस्थावाला कहलाता है। जाग्रत्-अवस्थामें परमात्मा दो रूपसे रहता है, एक भोक्ता इन्द्ररूपसे दक्षिण नेत्रमें और दूसरा भोग्या इन्द्राणी-रूपसे वाम नेत्रमें। वैश्वानरके उपासक पुरुष विश्वात्माका इन्द्र-इन्द्राणी-रूपसे ध्यान करते हैं। हे जनक ! आत्मा आकाशादि भूत-भौतिक प्रपञ्चको उत्पन्न करके उस प्रपञ्चको इदंरूपसे देखता है। इसलिये परमात्मा यद्यपि इदं (ब्रह्मज्योति) नामसे व्यवहार होनेयोग्य था, तो भी परोक्षप्रिय अग्नि आदि देव इदन्द्र ऐसे अपरोक्ष नामसे परमात्माका कथन नहीं करते किन्तु इन्द्र ऐसे परोक्ष नामसे अग्नि आदि देव परमात्माका कथन करते हैं। आनन्दस्वरूप परमात्मा स्वयंप्रकाश होनेसे यद्यपि इन्द्र नामसे कथन करनेयोग्य था, तो भी परोक्षप्रिय अग्नि आदि देव इन्द्र ऐसे अपरोक्ष नामसे आत्माका कथन नहीं करते किन्तु इन्द्र ऐसे परोक्ष नामसे कथन करते हैं। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन-चर्चा

(लेखक—विद्यामार्त्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

(श्रीपुष्पदन्ताचार्यस्य)

(प्रवेशिका)

सांख्यदर्शन सब दर्शनोंसे प्राचीनतम दर्शन है। और दर्शन सब इसके पीछेके हैं। ऐसा ही प्रायः वर्तमानकालिक लोगोंका ऐतिहासिक निर्णय है। इसके अनुसार हम समझते हैं कि सांख्यशास्त्रके तत्त्वोंको ही किसी प्रयोजनके लिये अथवा अपने-अपने विचारानुसार सुभीतेसे तत्त्वज्ञान करानेके लिये अन्य-अन्य शास्त्रकारोंने (आचार्योंने) भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे दिखाया है या विभक्त किया है और इसके अतिरिक्त उन्हीं तत्त्वोंके उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें विचार-भेद तथा किसी-किसी अस्वीकृत पदार्थको स्वीकार भी किया है। अर्थात् जिस आचार्यने जिस वस्तुको अनुपयुक्त समझा, अथवा जिसके न माननेमें लौकिक दृष्टिसे दृढ विरोध उपस्थित नहीं हो सकता, उसका अपने दर्शनमें त्याग कर दिया है। जैसे न्याय और वैशेषिक दर्शनके आचार्योंने सांख्यके प्रकृतितत्त्वको पूर्वोक्त हेतुसे त्याग दिया है। एवं जिस पदार्थके स्वीकार करनेमें किसी आचार्यको कोई सुभीता प्रतीत हुआ, और लोकको उसके स्वीकार करनेमें कोई दृढ आपत्ति होना भी सम्भव न प्रतीत हुआ, ऐसी किसी वस्तुको बढ़ा भी लिया है। जैसे वैशेषिकोंने विशेष पदार्थको। प्रयोजन यह है कि लोक अपने निर्णयके उपायोंसे उसके अस्तित्वतक या अभावतक नहीं पहुँच सकता। उसकी स्थितिको दार्शनिक अपनी युक्तिसे कल्पित करते हैं जिसका कि लोक सहजमें खण्डन भी नहीं कर सकता। एवं अन्य दर्शनकारोंकी प्रक्रियाका निर्वाह इसके बिना हो जाय तो उनको उसके माननेमें बाध्य भी नहीं होना पड़ता। इसी आधारपर दार्शनिकोंके मतभेद चलते हैं।

जैसे—यह विशेष पदार्थ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु—इनके परमाणुओंमें और आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मन—इन द्रव्योंमें रहता है। यहाँपर किसीकी स्थूल दृष्टि नहीं पहुँचती, इसीसे इनको कोई रोक नहीं सकता। और इनको इसकी यह आवश्यकता हुई कि परमाणु आदि सूक्ष्म द्रव्योंका योगियोंको प्रत्यक्ष होता है। वहाँ 'इस पृथिवी-परमाणुसे यह पृथिवी-परमाणु पृथक् है' अथवा 'यह वही पार्थिव परमाणु है,' ऐसे परिचयका साधन उन परमाणुओंमें कोई विशेष धर्म रहता है। उसीके द्वारा योगियोंको पूर्वोक्त प्रत्यक्ष होता है। अन्यथा उस प्रत्यक्षका असम्भव हो जायगा। इसी कारणसे वैशेषिकोंको सप्त पदार्थोंमें एक विशेष पदार्थ भी स्वीकार करना पड़ा है, जो अन्य दार्शनिकोंकी पदार्थ-गणनामें नहीं आया है।

इसी प्रकार सांख्योंने प्रकृतितत्त्वको भी स्वीकार किया है, जो अन्य दार्शनिकोंकी पदार्थसूचीमें अनुपलब्ध है। वे देखते हैं कि संसारकी उत्पत्तिके विचार करनेमें प्रथम ही प्रकाशकी आवश्यकता है। प्रकाशके बिना अन्धकारमें विचारकी प्रवृत्ति ही कैसे हो सकती है। एवं संसारमें जो घट-पट आदि कार्य देखे जाते हैं, वे सब बुद्धिपूर्वक[1] ही होते हुए दिखायी देते हैं। अतएव संसारका कारण प्रकाश-सदृश ही होना चाहिये। अतः उन्होंने प्रथम तत्त्व बुद्धिको ही ठहराया है। और उसपर भी जब यह प्रश्न हुआ कि वह कहाँसे आया तो उन्होंने उसके उत्तरमें मूलप्रकृति-तत्त्व खड़ा किया। इस पदार्थमें मूलशब्द विशेषण लगाने-से आगेके प्रश्नमें रुकावट डाल दी कि फिर कोई न पूछ उठे कि वह कहाँसे आया? इसीके 'प्रधान' और 'परमाव्यक्त' ये दो नाम और हैं, जिनका प्रयोजन भी पूर्वनामके समान ही है।

ऐसी कल्पनाके भीतर भी एक गूढ कल्पना और है। वह यह कि बुद्धि नामसे यदि केवल प्रकाश पदार्थ हो, तो भी केवल प्रकाशसे ही स्थावर-जङ्गम सब संसार नहीं बन सकता, अतः उसके अतिरिक्त कुछ प्रकाश्य और भी होना

१ 'स ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुतिः (छा० उ० ६। २। ३), तथा 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' इति ब्रह्मसूत्रम् (१।२।५), 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' (वैशे० ६। १। १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। इस प्रश्नके उद्धारके लिये मूलप्रकृतिके तीन धर्म स्वीकार किये हैं, जिनका नाम सत्त्व, रजस् और तमस् है। सत्त्वगुण हल्का और प्रकाशस्वभाव है। संसारमें जो वस्तु हल्की और प्रकाशस्वभाव है, वह सब सत्त्वगुणकी प्रधानतासे है। दूसरा गुण रजस् है, जो क्रियाशक्तिवाला है। जो कुछ संसारमें चलना, फिरना या हिलना देखा जाता है, सब रजोगुणका कार्य है। एवं तीसरा गुण तमस् है जो भारी (ठोस) अन्धकाररूप है। ऐसे जितने कार्य संसारमें हैं वे सब तमोगुणके कार्य हैं। ऐसी त्रिगुणा इनकी मूलप्रकृति है। इसीसे वह बुद्धितत्त्व भी उत्पन्न होता है और इसीके सदृश है। प्रयोजन यह हुआ कि विविध रूप-की सृष्टि जितनी भी है वह इस प्रकारकी मूलप्रकृतिसे साध्य हो जाती है। तथा उलटा-सीधा कोई भी प्रश्न आता है वह इन तीन गुणोंसे सुलझ जाता है।

सांख्योंने सृष्टिके प्रश्नोंका उद्धार करनेके लिये यह मार्ग बहुत ही पक्का और सुन्दर निकाला है। उसपर अनुकूल दृष्टि डालनेसे वह बहुत प्रिय प्रतीत होता है। ऐसे ही यथाक्रम और यथाकाल अन्य-अन्य दर्शनोंके सम्बन्धमें भी चर्चा आती रहेगी, ऐसा सम्भव है। सुतरां सर्वप्रत्यक्ष या लोकके द्वारा सर्वथा प्रमाणित या सर्वथा स्वीकृत पदार्थोंका किसी दार्शनिकने भी त्याग नहीं किया है। प्रत्युत उन्हें किसी-न-किसी प्रकारसे स्वीकार ही कर लिया है। जैसे पृथिवी, आकाशादि महाभूत इत्यादि। हम इस उपर्युक्त दृष्टिके आधारपर ही अपने पाठकोंको इस दर्शन-चर्चाका अवलोकन कराना चाहते हैं। आशा है, इस निबन्धके पाठक पढ़ते समय इस बातका ध्यान रक्खेंगे और इसके पठनके मुख्य लाभको प्राप्त करेंगे।

दार्शनिकोंकी प्रवृत्तिका आधार

सभी अवस्थाओंमें सभी आचार्योंको संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके विचारसे यह निर्णय कर लेना चाहिये कि यह संसार किन तत्त्वोंसे बना है, अथवा किन तत्त्वोंपर निर्भर है। जब कि सब आचार्योंके सामने एक ही वस्तु निरूपणीय है, तो वे सर्वथा परस्परकी अपेक्षासे विभिन्न मार्गोंमें नहीं जा सकते। जैसे कई विचारक एक वस्त्रका निरूपण करते हैं तो वे नामान्तरोंसे तथा प्रकारान्तरोंसे उन्हीं तत्त्वोंको बतावेंगे जिनसे यह बना है। जैसे कोई कहता है, यह वस्त्र तन्तुओंसे बना है। एक कहता है रूईसे बना है, क्योंकि रूई पूर्व होती है। तीसरा कहता है पहले कपास होती है, उसीसे फिर रूई, तन्तु और वस्त्र होते हैं। एवं चौथा कहता है कि कपाससे भी पूर्व कार्पास-वृक्ष होता है। पाँचवाँ कहता है कि बिनौला ही सबका कारण है। छठा कहता है यह सब पृथिवीसे पैदा होते हैं। इसमें जिसको जिस तरह आवश्यक प्रतीत होता है उसी प्रकार वैसा मानकर अपनी बातको पूर्ण कर लेता है।

ऐसी ही दशा संसारकी गतिके विचारमें दार्शनिकोंकी भी है। इस प्रकार सभी दर्शन अपने-अपने ढंग और उद्देश्यसे ठीक और उपयुक्त हैं। उनके विरुद्धांशोंको देखकर मनुष्योंको भ्रान्त तथा उद्विग्न न होना चाहिये।

सांख्य और वैशेषिक दर्शन

(१) सांख्य—सांख्यदर्शनका निर्माण बीजाङ्कुरन्यायपर अवलम्बित है। अर्थात् वृक्ष, लता आदि जिस प्रकार अपने बीजमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं और वह बीज पृथिवीमें रूढ होकर अङ्कुर आदि क्रमसे महान् वृक्षके रूपमें प्रकट होता है। ऐसा ही प्रकृति और संसारका लेखा है। प्रकृति बीजके स्थानमें, और सब संसार वृक्षके स्थानमें है अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, उससे अहंकार, उससे मन; नेत्र, श्रवण, घ्राण, रसन, त्वक्—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और वाक्, हस्त, पाद, गुद, उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँच तन्मात्रा—ये सोलह तत्त्व प्रकट होते हैं तथा उनके मध्यमें तन्मात्राओंसे पृथिव्यादि पञ्च महाभूत होते हैं एवं इन चौबीस तत्त्वोंका एक वृक्ष बन जाता है। इनके साथ स्वतन्त्र एक पुरुषरूप वस्तुके संयोगसे प्राकृत विकाररूप स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण संसार प्रकट होता है। जब महाप्रलय-का समय आता है तब जो वस्तु जिससे प्रकट हुई है वह उसीमें लय होती है—इस सिद्धान्तमें कोई वस्तु न अत्यन्त उत्पन्न होती है और न विनष्ट ही होती है।

सुतरां इस दर्शनमें व्यक्त होना उत्पत्ति और अव्यक्त होना विनाश है। सब पदार्थ अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अपने कारण या प्रकृतिमें विद्यमान ही रहते हैं। कोई कार्य अपनी उत्पत्तिसे पहले अविद्यमान होकर उत्पन्न नहीं

(१) पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः। (सां० का० २१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता । इसको 'सत्कार्यवाद'[1] कहते हैं । इस सत्कार्यवादकी दृष्टिसे संसारके सब पदार्थ नित्य हैं—कभी सूक्ष्मरूपसे और कभी स्थूलरूपसे विद्यमान ही रहते हैं । इस सिद्धान्तमें जिस प्रकार आत्मा नित्य है उसी प्रकार शरीर भी नित्य है ।

सांख्यशास्त्रकी उत्पत्ति और विनाशको समझना हो तो किसी जलाशयपर जाकर कच्छप (कछुए) को देखना चाहिये । कभी उसके अङ्ग मुख-चरणादि उसके आवरण पिण्डमें लीन हो जाते हैं, और कभी प्रकट हो जाते हैं । यही दशा पुरुषतत्त्वको[2] अलग रखकर प्रकृति और उसकी विकृति (कार्य) महत्तत्त्व आदिके सम्बन्धमें है । विकृतिरूप महदादि कभी प्रकृतिसे बाहर और कभी उसके भीतर होते रहते हैं । इन विकृतियोंके अन्तर्गत सम्पूर्ण संसार है ।

(२) वैशेषिक दर्शन-जिस प्रकार सांख्यदर्शन सम्पूर्ण संसारको पचीस तत्त्वोंमें बना हुआ पाता है उसी प्रकार वैशेषिक दर्शन सप्त पदार्थोंमें उसको सम्पन्न देखता है । अर्थात् इस दर्शनके सिद्धान्तमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव, इन सप्त पदार्थोंसे संसारकी कोई वस्तु बाहर नहीं है ।

सांख्यशास्त्रके तत्त्वविभागपर दृष्टि डालते हुए जब हम वैशेषिक दर्शनके पदार्थविभागपर दृष्टि डालते हैं तो प्रतीत होता है मानो ये किसी अन्य ही संसारकी सामग्रीको बता रहे हैं । अर्थात् सांख्यदर्शनमें इस संसारकी सामग्री जिन पचीस तत्त्वोंमें बतायी है उनमेंसे इनके सप्त पदार्थोंमें कोई भी नामतः प्रतीत नहीं होता । तथापि एतावन्मात्रसे आश्चर्य या व्यामोह न करके उनपर धैर्यसे दृष्टि डालनी चाहिये, और उनसे पूछना चाहिये कि आप एक बार ही उन पचीस तत्त्वोंसे और ही पदार्थोंमें इस संसारको विभक्त करते हैं यह क्या बात है ? अथवा आपने जो यह द्रव्यादि सप्त नाम विभिन्न प्रकारके कहे हैं इनसे क्या अभिप्राय है ? इसपर उत्तर यही मिलता है कि—

१-द्रव्यनामसे—(१) पृथिवी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिक् (८) आत्मा और (९) मन—इन नौ वस्तुओंका ग्रहण है ।

२-गुणशब्दसे—(१) रूप (२) रस (३) गन्ध (४) स्पर्श (५) संख्या (६) परिमाण (७) पृथक्त्व (८) संयोग (९) विभाग (१०) परत्व (११) अपरत्व (१२) गुरुत्व (१३) द्रवत्व (१४) स्नेह (१५) शब्द (१६) बुद्धि (१७) सुख (१८) दुःख (१९) इच्छा (२०) द्वेष (२१) प्रयत्न (२२) धर्म (२३) अधर्म (२४) संस्कार—ये चौबीस वस्तुएँ हैं ।

३-कर्मशब्दसे—(१) उत्क्षेपण* (२) अपक्षेपण (३) आकुञ्चन (४) प्रसारण और (५) गमन—ये पाँच वस्तुएँ होती हैं ।

४-सामान्यशब्दसे—(१) पर (२) अपर तथा (३) परापरसामान्य—ये वस्तुएँ होती हैं ।

५-विशेषशब्दसे—अनन्त विशेष लिये जाते हैं†।

६-समवायशब्दसे—नित्य-सम्बन्धका ग्रहण होता है।

७-अभावशब्दसे—(१) प्रागभाव (२) प्रध्वंसाभाव (३) अत्यन्ताभाव और (४) अन्योन्याभाव—ये चार अभाव लिये जाते हैं ।

अब इनकी इस व्याख्याको सुनकर यह अवधारण हो गया कि ये भी संसारकी उसी सामग्रीको बता रहे हैं, जिसको सांख्यने बतलाया है और तत्त्व जो गिनाये हैं वे भी प्रायः उन्हींमेंसे हैं । तथा जो सांख्यीय तत्त्वोंकी अपेक्षा इन्होंने नये तत्त्व या पदार्थ माने हैं उनको सांख्यीय दृष्टिसे न माननेपर भी कोई आपत्ति उपस्थित नहीं हो सकती । इसी तरह सांख्यशास्त्रके अभिमत तत्त्वोंमेंसे जिन तत्त्वोंको अपने अभिमत सप्त पदार्थोंमें नहीं लाते हैं उनके अवश्य माननेके लिये इनपर भी कोई कठिन आपत्ति नहीं आती । सुतरां जिन तत्त्वोंको दोनों ही पक्ष आवश्यक समझते हैं वे तत्त्व इन्होंने भी अवश्य मान लिये हैं । अर्थात् एक मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा, पाँच महाभूत और एक पुरुष-ये बाईस तत्त्व किसी-न-किसी प्रकारसे इनके सप्त वर्गोंमें

---

१ असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् । शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् । (सां० का० ९)

२ मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥१॥

* उत्क्षेपण ऊपरको जाना, अपक्षेपण नीचेको जाना, आकुञ्चन सिमिटना, प्रसारण फैलना और गमन चलना क्रिया है, इसीमें घूमना आदि क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं ।

† नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एवेति । (अन्नंभट्ट)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ ही जाते हैं। यदि और भी प्रयत्न करें तो महत्तत्त्व या बुद्धि और अहंकार इन दोनोंको भी उन्हींमें समावेश कर सकते हैं। प्रयोजन यह है कि—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और पुरुष या आत्मा—ये सत तत्त्व द्रव्याख्यवर्गमें आ जाते हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द—ये पाँच तन्मात्रा गुणवर्गमें, और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ भौतिक होनेसे द्रव्यवर्गमें आ जाती हैं। एवं महत्तत्त्वका दूसरा नाम 'बुद्धि' ये भी बतलाते हैं और 'बुद्धि' वैशेषिक दर्शनके मतमें चौबीस गुणोंमें एक गुण है। ऐसे ही अहंकार भी एक बुद्धिविशेष ही होता है। अतः यह बुद्धि गुणके अन्तर्गत ही आ जाती है। सुतरां सांख्यके पचीस तत्त्वोंमेंसे चौबीस तत्त्व इनके दर्शनमें भलीभाँति आ जाते हैं। रहा एक पचीसवाँ प्रकृतितत्त्व, सो उसकी अनावश्यकता ये अपने एक सिद्धान्तके परिवर्तनसे ही दिखा देते हैं। क्योंकि यह तत्त्व पूर्वोक्त कथनके अनुसार पृथिव्यादि तत्त्वोंके समान ऐसा नहीं है कि इसे प्रत्येक अवस्थामें स्वीकार ही करना पड़े। अर्थात् वैशेषिक दर्शनके आचार्य प्रकृतितत्त्व और उससे महत्तत्त्व आदि तेईस तत्त्वोंके आविर्भाव-तिरोभावको कल्पना या सत्कार्यवाद दोनोंको ही अननुमोदित करते हैं। उनका अभिप्राय यह है कि जब महदादि तत्त्वोंकी पहलेसे भी अव्यक्तरूपसे प्रकृतिमें स्थिति मानते हैं तो क्यों न उनको या आवश्यक तत्त्वोंको स्वतन्त्र-रूपसे स्वीकार कर लिया जावे। और उस सत्कार्यवादके क्लेश तथा उसके मूल तत्त्व प्रकृतितत्त्वको न मानकर क्यों न असत्कार्यकी उत्पत्ति ही मान ली जावे, जिसमें आबाल-वनिता सभीके अनुभवानुमोदित जगत्की उत्पत्ति और विनाशका क्रम मिल सके। अभिप्राय यह है कि पट (वस्त्र) अपनी उत्पत्तिसे पहले भी तन्तुओंमें विद्यमान था एवं घट अपनी उत्पत्तिसे पूर्व भी कपालोंमें था, इसकी अपेक्षा तन्तुओंमें पट अपूर्व या नया उत्पन्न होता है तथा घट कपालोंमें पहलेसे अविद्यमान होता हुआ ही अपूर्व उत्पन्न होता है—ऐसा सर्वसाधारणको प्रतीत होता है। इस रीतिसे तत्त्वोंकी उत्पत्तिमें सांख्योंकी दृष्टिसे 'उससे वह तत्त्व और उससे वह तत्त्व' ऐसा एक बड़ा जंजाल-सा प्रतीत होता है तथा घटको उसकी उत्पत्तिसे पहले कपालोंमें अपने अनुभवके विरुद्ध विद्यमान मानना पड़ता है, ये सब कष्ट निवृत्त हो जाते हैं। इस तरह सत्कार्यवादके त्याग करते ही उसके लिये जो मूलप्रकृति बलात्कारसे स्वीकार करनी पड़ती है, अनावश्यक हो जाती है, क्योंकि सत्कार्यवादमें सर्वप्रथम जो वस्तु उत्पन्न होगी वह अपने व्यक्त होनेसे पहले अव्यक्त अवश्य ही माननी पड़ेगी, वही अव्यक्त सांख्यका मूलप्रकृति या प्रधान है।

सांख्य और वैशेषिक दोनोंके मतोंमें बुद्धि और अहंकारके स्वरूपमें भेद यह है—

यद्यपि पहले यह कहा गया है कि सांख्यका बुद्धितत्त्व, जिसका दूसरा नाम महत्तत्त्व है, वैशेषिकोंके गुणपदार्थमें आ गया है। किन्तु इन दोनोंके मतोंके रहस्यपर दृष्टि डालनेसे प्रतीत होता है कि उन दोनोंके 'बुद्धि' इस एक शब्दमें ऐकमत्यके अतिरिक्त उसके स्वरूपमें दोनों ही दर्शन परस्पर बहुत दूर जा रहे हैं। क्योंकि सांख्यके बुद्धितत्त्वसे अहंकार आदि अन्य सभी तत्त्व उत्पन्न होते हैं, जिनके अन्तर्गत वे मन आदि सब इन्द्रियाँ भी हैं जिनसे वैशेषिकोंकी अभिमत बुद्धि उत्पन्न होती है। अर्थात् वैशेषिकके मतमें मन और चक्षुरादि इन्द्रियोंसे पहले या उनके बिना कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं होता और न उस ज्ञानसे पृथिव्यादि किसी तत्त्वकी उत्पत्ति ही होती है। एवं सांख्यशास्त्रमें अहंकारादि सब तत्त्वोंका अव्यक्त कारण बुद्धि ही है। इस तरह बुद्धि और इन्द्रियोंके मध्यमें जो कार्यकारणभाव है वह परस्परसे विपरीत है। प्रयोजन, सांख्य कहता है बुद्धिसे इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और वैशेषिक कहता है—इन्द्रियोंसे ही बुद्धि उत्पन्न होती है। सुतरां सांख्यके मतमें जो अहंकारादि तत्त्वोंका अव्यक्त रूप बुद्धि है वह भिन्न तत्त्व है और वह वैशेषिकोंको मूलप्रकृतिकी तरह अनभिमत ही है। यह इनके सत पदार्थोंमेंसे किसी पदार्थमें अन्तर्गत नहीं होता और न स्वीकृत है।

अब यह पूछा जाय कि—वैशेषिकोंका अभिमत जो इन्द्रियजन्य ज्ञान है वह सांख्यके मतमें कहाँपर है? तो उसका उत्तर यही दिया जाना चाहिये कि वह ज्ञान यहाँ-पर इन्द्रियोंकी वृत्तिके रूपमें है। और ये भी वैशेषिकोंके समान उसे प्रत्यक्ष ज्ञान ही कहते हैं। सर्वथा इस ज्ञान-में दोनों मत समान-विचार ही हैं। इस विवेचनका यह फलित निकला कि सांख्योंका अभिमत महत्तत्त्वापरनामक

१ प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि। (सां० का०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धितत्त्व वैशेषिकोंको स्वीकृत नहीं है। और उसकी युक्ति वही है जो मूलप्रकृतिके सम्बन्धमें दी जा चुकी है। ऐसे वैशेषिक लोग जिस प्रकारसे प्रकृति और महत्तत्त्वमें आपत्ति रखते हैं वैसी ही आपत्ति महत्तत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अहंकारके सम्बन्धमें रखते हैं। क्योंकि सांख्यके मतमें अहंकारसे जो सोलह पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब वैशेषिकोंके मतमें अन्यथा सिद्ध हैं अर्थात् उनमें मन नित्य है और पृथिव्यादिके परमाणु नित्य हैं। उनसे स्थूल पृथ्वी आदि उत्पन्न हो जाते हैं। और उन्हींसे ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। तन्मात्रा भी उत्पन्न होनेवाले उन्हींसे होते हैं, शेष स्वयं-सिद्ध हैं।

आत्मा उभय पक्षमें नित्य है ही, इस प्रकारसे उनको प्रकृति-महत्तत्त्व और अहंकारकी कल्पनाकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः उनका सांख्यके शेष इक्कीस तत्त्वोंसे ही संवाद है किन्तु उनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें उनसे किसी प्रकारका संवाद नहीं है। (क्रमशः)

महात्मा चरनदासजी

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

समस्त चराचर परमात्माका साकार स्वरूप है। इस समस्त अभिनयका वह एक सूत्रधार अपनी लीलाओंका झीना आवरण डालकर पर्देमें मुसकरा रहा है। उस सनातन दिव्य सत्ताके स्पर्शमें आ जाना, उसे सर्वत्र और सर्वदा अनुभव करना ही मानव-जीवनका चरम उद्देश्य है। यही अनात्मसे आत्ममें प्रवेश करना है और इसे ही कहते हैं आत्मसाक्षात्कार।

उपनिषदोंने 'आत्मानं विद्धि'—'अपनेको जानो' को ही डङ्केकी चोट कहा है। हमारे ऋषि-मुनियोंने भी बार-बार इसे ही दुहराया है। भगवान्‌से यदि परिचय नहीं हुआ तो यह जन्म व्यर्थ गया। साँस-साँसमें 'साँई' का स्मरण न हुआ तो संसारमें आना बेकार हुआ। यही ऋषि-मुनि, सन्त-महात्माओंने बार-बार सुझाया है। भगवान्‌के सिवा सार वस्तु कोई है नहीं। 'हरि' से हृदयका ग्रन्थिबन्धन न हुआ तो जीवनसे क्या लाभ? 'सब तज हरि भज'—यही महात्माओंका उपदेश है। भारतवर्षकी मूल साधना यही रही है। सन्तोंने अपने भीतर भगवान्‌की झाँकी पायी और समस्त चराचरमें उसी एक परमात्मसत्ता का साक्षात्कार किया। इस अमृतमन्थनसे जो कुछ उन्हें मिला वे 'प्रसाद' रूपमें छोड़ गये। हम उस प्रसादको पाकर अपना जीवन धन्य कर सकते हैं।

महात्मा चरनदासजी उन्हीं आत्मदर्शी सन्तोंमें हैं जिन्होंने परमात्माके परिचयमें ही अपना सारा जीवन लगाया। मेवात (राजपूताना) के डेहरा गाँवमें इनका जन्म १७६० वि० सं० के लगभग हुआ था। वे गृहस्थ वैश्य थे और उन्होंने दिल्ली तथा पंजाबमें अपने मतका प्रचार किया था। आज तो चरनदासी पन्थ भारतवर्षके कई हिस्सोंमें फैला हुआ है। वह इन्हींका है। इनकी प्रधान दो शिष्याएँ थीं—सहजो और दया। कहते हैं कि उन्नीस वर्षकी अवस्थामें महात्मा चरनदासजी जंगलमें एकान्त तपस्या कर रहे थे। उसी समय श्री-शुकदेवजीने इन्हें दर्शन दिये और मन्त्र दिया। अपने पदोंमें भी गुरुके रूपमें इन्होंने श्रीशुकदेव मुनि-का स्मरण किया है। इनके मतमें 'शब्द-मार्ग' बहुत प्रचलित है। योग, ध्यान आदिकी बातें प्रमुखरूपसे इनके सम्प्रदायमें पायी जाती हैं। महात्मा चरनदास-जीने अपनी बानीमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और आशाको सर्वथा परित्याग करनेका उपदेश किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है क्योंकि इनका यह दृढ़ विश्वास है कि इन शत्रुओं-को जीते बिना साधना हो नहीं सकती। अस्तु !

साधनाके आरम्भमें संसारके नाना उपद्रव बड़े ही विकराल रूपमें आते हैं। ज्यों ही मन संसारसे हटकर भगवान्‌में लगने लगता है त्यों ही संसार घेर लेता है। संसारसे छुटकारा हुआ नहीं फिर मन प्रभु-में कैसे लगे ? यह संग्राम ही साधनाकी सबसे विकट समस्या है। सच्चा शूर तो वही है जो इन प्रमत्त शत्रुओंपर शासन स्थापित कर सके। साधकका यह संग्राम यों तो चलता है जीवनपर्यन्त परन्तु आगे चलकर जब गुरुका सहारा और भगवान्‌का आश्रय प्राप्त हो जाता है तब उसे कुछ सुगमता हो जाती है। साधनाके पथमें गुरुका सहारा अनिवार्य है। 'बिन गुरु होंहि न ज्ञान'—सनातन सत्य है। गुरुकी शरणमें जानेपर ही अनात्मका साथ छूट सकता है। गुरु हृदयकी आँखें खोलकर भगवान्‌के साथ जोड़ देता है, मिला देता है। गुरु ही भगवान्‌द्वारा हमारा पाणिग्रहण कराता है। महात्मा कबीरदासने तो गुरु और गोविन्द दोनोंको सामने देखकर पहले गुरुके ही चरणोंमें अपनेको बलिहार किया है क्योंकि गुरुकी कृपासे ही गोविन्दके दर्शन हुए। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'श्रीगुरु-पद-नख मनि-गन-ज्योति' से अपने हृदयको जगमग किया और उनका यह अटल विश्वास है कि श्रीगुरुके चरण-कमलोंके स्मरणमात्रसे ही हृदयकी दिव्य दृष्टि खुलती है। गुरुके चरण-नखकी द्युतिसे महा अन्धकार भी छिन्न-भिन्न हो जाय और जिसके हृदयमें श्रीगुरु-चरणोंका स्मरण है वह वास्तवमें बड़भागी है। गुरुके चरणोंकी कृपासे ही हृदयकी विमल आँखें खुल सकती हैं और जब वे आँखें खुल गयीं तो संसाररूपी रात्रि-का दोष और दुःख आप ही मिट गया; जन्म-मरणका बन्धन आप ही छिन्न-भिन्न हो गया।

महात्मा चरनदासजीने गुरुकी महिमा गायी है, और गुरुके चरणोंमें अपना हृदय अर्पण किया है। चरनदासी पन्थमें तो गुरु-चरणोंका आश्रय लेना ही सर्वोच्च साधन है। सहजो और दया तो गुरुका गुणानुवाद गाते-गाते कभी थकीं ही नहीं। महात्मा चरनदासजीका तो कहना है कि तीनों लोकमें ढूँढ़ आया परन्तु गुरुके समान कोई न दीखा क्योंकि उनके नाममात्रसे सब पाप मिट जाते हैं और उनका ध्यान करनेसे हरिका साक्षात्कार होता है, गुरुके प्रतापसे ही संसारकी समग्र व्याधियाँ मिट सकती हैं और हृदयमें अथाह प्रेम उपजता है। इस हाड़-मांसके पुतलेको गुरुने साधनमार्गमें लगाकर धन्य कर दिया। जबसे गुरु श्रीशुकदेव मुनिने कृपा की और मुझे दर्शन दिये तबसे रोमरोममें वे ही रम रहे हैं।

मैं मिरगा गुरु पारधी, सबद लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बींधे प्रान॥

'गुरुने शब्दके बान साधकर मुझ मृगपर छोड़ा। मैं घायल होकर गिर पड़ा। मेरे तन, मन, प्राण उस बानसे बिँध गये।' महात्मा कबीरदासने भी कहा है—

हौं हिरनी पिय पारधी हो, मारे सबदके बान।
जाहि लगी सो जान ही हो, और दरद नहिँ जान॥

गुरुके तीरसे जबतक हृदय घायल नहीं हुआ, जबतक अन्तर्दृष्टि खुली नहीं तबतक हरिके दर्शन कैसे हों ? सद्‌गुरुकी कृपासे ही चौरासी लाख योनियोंमें भटकना बन्द होगा। गुरुके चरणोंका आश्रय पा लेनेपर जगत्‌के विषयोंसे जो हमारा संग्राम चल रहा है वह स्वयं मिट जाता है और हमारी सारी शक्ति जो विषयोंको जीतनेमें लगी थी, परमात्मचरणोंमें वेगवती होकर चलती है। जिसने मनको जीत लिया उसका तो आधा काम हो गया, अब तो जीते हुए मनको भगवान्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लगाना ही बाकी रहता है; और मन अचञ्चल होकर लगता भी है पूर्णतः भगवान्‌में ही ।

भगवान्‌की झाँकी पानेके लिये हृदयको निर्मल दर्पणके समान बनाना होगा । हृदय पवित्र हो और भगवान्‌की ओर हो तभी हरिके दर्शन होंगे। साधनाका प्रधान धर्म है ईश्वरोन्मुख होना । समग्र कर्म, सभी व्यापार, समस्त जीवनका प्रतिपल, हृदयका रेशा-रेशा, शरीरका रोम-रोम श्रीकृष्णार्पण होना चाहिये । साधक तो केवल अपनेको ही नहीं अपितु समग्र विश्व, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डको प्रभुके चरणोंमें अर्पण कर देता है । उसके लिये अपना जीवन और यह विश्व 'निर्माल्य' है । समग्र श्रीकृष्णार्पण प्रभुकी प्रेरणासे ही सम्भव है । परन्तु एक बात तो हम करते रहें—सदैव, अहर्निश, सोते-जागते, उठते-बैठते भगवत्स्मरण स्वाभाविकरूपमें होता रहे । संसारके विषयोंसे मुख मोड़कर हमारी सभी इन्द्रियाँ भगवान्‌को ही विषय करें । मन प्रभुका मनन करे, कान हरिगुण-गान सुनें, जीभ भगवान्‌का गुणानुवाद गावे, आँखें हरिकी मूर्ति और सन्तोंका दर्शन करें, हाथ हरिके चरणोंका स्पर्श करें और पैर तीर्थोंमें घूमें । सच्चा स्मरण तो करना नहीं होता । प्रियतम तो रोम-रोममें छाये हुए हैं; हृदयके सिंहासनपर विराजमान हैं; भीतरकी आँखें खोलकर और आवरण हटा देनेपर हरिकी जब झाँकी मिल गयी तो उसके स्मरण बिना एक क्षणके लिये भी कल नहीं । प्रियतमका स्मरण तो प्राणोंका प्रधान अवलम्बन है ही । स्मरण किये बिना प्राण टिक नहीं सकते । यही स्मरण सच्चा स्मरण है—

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

महात्मा चरनदासजी भी ऐसे ही स्मरणकी चर्चा करते हुए लिखते हैं—

सकल सिरोमनि नाम है, सब धरमनके माँहि ।
अनन्य भक्त वह जानिये, सुमिरन भूलै नाहिं ॥

सहज स्मरण होते-होते समस्त वृत्तियाँ जब प्रभुमय हो गयीं तो हृदयका दर्पण स्वतः उज्ज्वल हो गया और हरिकी तस्वीर समग्ररूपसे उतर आयी । व्यक्तिगत जीवनमें यही भगवान्‌का अवतार है । लोगोंकी दृष्टिमें श्रीराम और श्रीकृष्ण भले ही ओझल हो गये हों परन्तु सन्त-महात्मा तो आज भी पूर्ववत् उनका दिव्य दर्शन करते हैं । उनके लिये भगवान्‌का जो प्राकट्य हुआ था वह सनातनकालके लिये । सन्तोंके लिये तो आज भी भगवान्‌का दिव्य विग्रह साक्षात्कारका विषय है । हम सांसारिक पुरुष जितना ठोस इस जगत्‌को समझे हुए हैं उससे भी अधिक विश्वास और प्रतीति उन महात्माओंको परमात्माके दिव्य दर्शनमें है । अस्तु !

महात्मा चरनदासजीने स्मरण और 'लौ' के सम्बन्धमें चर्चा करते हुए कहा है—

जग माँही न्यारे रहौ, लगे रहौ हरि-ध्यान ।
पृथवीपर देही रहै, परमेसुरमें प्रान ॥

शरीरसे संसारमें रहते हुए भी मनसे हम भगवान्‌में रह सकते हैं । आवश्यकता है प्राणोंको प्रभुमें होम कर देनेकी । प्रभुके रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे जब प्राण ओतप्रोत हो गये तब बाकी ही क्या रहा ?

सारी साधनाका मूल है प्रेम । प्रेम नहीं हुआ तो जप, तप, पूजा, पाठ किस कामका ? दर्शन तो प्रेम ही करा सकता है । प्रेमके द्वारसे ही प्रभुके मन्दिरमें प्रवेश होता है । समस्त साधन—जप, तप आदि हृदयमें प्रेम उत्पन्न करानेके लिये ही हैं । प्रभुके लिये हृदयमें प्रेमका जब उदय हो गया तब क्या पूछना ? प्रेम तो पारसमणि है—वह समस्त साधनोंको, सम्पूर्ण जीवनको 'सोना' बना देता है । प्रेम ही श्रीकृष्णार्पणका एकमात्र साधन है । महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरनदासजीने इस प्रकारके भगवत्प्रेमकी प्रशंसा करते हुए कहा है—

हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलकै आय।
सोई छका हरि रस पगा, वा पग परसों धाय॥

हृदयमें प्रभुका प्रेम उमड़ पड़ा और आँखोंमें झलक उठा। वही हृदय हरिके रसमें पगा है, वे ही आँखें उस अमृतमें छकी हुई हैं—ऐसा प्रेमी धन्य है। उसके चरण-तलमें मस्तक नत करके, उसके चरणोंकी धूलि सिर-आँखोंपर रखकर हम भी धन्य हो सकते हैं। उस प्रेमकी चर्चामें महात्मा चरनदासजीके वचन हैं—

गदगद बानी कंठमें, आँसू टपकै नैन।
वह तो बिरहिन रामकी, तलफत है दिन-रैन॥
हाय हाय हरि कब मिलैं, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरसन करौं अघाय॥

प्राणनाथ सुध लें या नहीं, भक्त तो प्रभुके बिना रह न सकेगा। वह तो संसारसे उदासीन होकर पियके रंगमें राता रहेगा—

पीव चहौ कै मत चहौ, वह तौ पीकी दास।
पियके रँग राती रहै, जगसूँ होय उदास॥

अब तो पियके सिवा कुछ रह ही नहीं गया है—

जाप करै तो पीवका, ध्यान करै तो पीव।
पिव बिरहिनका जीव है, जिव बिरहिनका पीव॥

पिय ही विरहिणीका जीव है, पिय ही विरहिणीका प्राण है।

संसारके आवरणको हटाकर देखनेपर सर्वत्र सर्वदा परमात्माका दर्शन हो सकता है। परन्तु है यह बहुत ही कठिन कार्य। इसके लिये तो अपना सब कुछ होम करना होगा। 'मैं' को मिटाना होगा। जिस प्रकार दूधमें घी तथा मेंहदीमें रंग ओतप्रोत है उसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु दूधसे घी तथा मेंहदीसे रंग निकालनेके लिये 'जतन' करना पड़ता है, उसी प्रकार परमात्माको पानेके लिये साधनका आश्रय लेना पड़ता है और सच्चा साधन तो वही है जो प्रभुको मिला दे—

दूध मध्य ज्यों घीव है, मिहँदी माँहीं रंग।
जतन बिना निकसै नहीं, चरनदास सो ढंग॥

प्रभुसे परिचय अथवा मिलनके लिये हमारे सन्त-महात्माओंने पतिव्रताके प्रेमको ही आदर्शरूपमें स्वीकार किया है। पतिव्रता उसे कहते हैं जो अपने 'पति' के सिवा किसीको जानती ही नहीं। उसका सारा सुख पतिपर निर्भर है। पतिके सिवा और किसीकी ओर वह देखतीतक नहीं। वह सतत प्राणनाथके चरणोंकी दासी है। कबीर, दादू आदि महात्माओंने पतिव्रताके प्रेमको आदर्श माना है। महात्मा चरनदासजीने भी इसपर बहुत जोर दिया है। उनका कथन है कि संसारके सभी कार्योंमें प्रभुकी आज्ञाका स्मरण बराबर बना रहे। सदैव यह स्मरण बना रहे कि एक भी ऐसा कार्य न हो जो प्राणनाथको न रुचे। अपने पियके रंगमें राती रहे और कुछ संसारमें उसे सुहावे ही नहीं। वह पर-पुरुषको विषके समान समझे।

पतिकी ओर निहारिये, औरनसों क्या काम।
सबै देवता छोड़िकै, जपिये हरिका नाम॥

यह सिर झुके तो हरिके चरणोंमें ही, नहीं तो टूटकर गिर जाय। अपने 'स्वामी' को छोड़कर दूसरे देवताका स्पर्श कभी न करूँ; भले ही यह शरीर छूट जाय!

यह सिर नवै तो रामकूँ, नाहीं गिरियो टूट।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट॥

जब पतिसे परिचय हो गया तो फिर अब क्या भटकना? उसे ही जब एकान्तरूपमें भजा जाय तो वह अपनालेगा और अपने परमधाममें रखकर, बाँह पकड़कर आनन्द देगा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तू जानै पीवहीं वह अपनी करि लेहि।
परम धाममें राखि करि, बाँह पकरि सुख देहि॥

इसके लिये अपनी ओरसे आवश्यकता है आज्ञाकारिणी पतिव्रताकी भाँति बननेकी—

आज्ञाकारी पीवकी, रहै पियाके संग।
तन मनसों सेवा करै, और न दूजो रंग॥

जिसे प्रियतमसे मिलनका रस मिल गया उसके लिये संसारके सभी रस नीरस हो गये। जिसने उस अरूप-रूपको देख लिया उसकी दृष्टि संसारके रूपपर क्यों जायगी? जिसे उसका नाम मिल गया उसके लिये और नामसे क्या ममता? जिसे हरिके दिव्य अंगका स्पर्श प्राप्त हो गया उसे संसारके किसी भी स्पर्शका सुख क्या? भगवान्‌में एक साथ ही हमारी सभी इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। 'भूमा' का आनन्द भी यही है। इसे ही चरनदासजीने 'आठ पहर साठौं घरी, जागै हरिके ध्यान' कहा है। सदा-सदैव भगवान्‌में जागता रहे; सर्वत्र जागरूक रहे; आवरणमें उलझ न जाय, गुड़ियोंमें फँस न जाय! गुड़ियोंको फेंकता जाय, खिलौनोंपर आँखोंको कभी टिकने न दे—पानीकी लहरें आती जायँ—उन्हें चीरता जाय; 'उस पार' का विस्मरण न हो, प्राणनाथसे मिलना है—यह भूले नहीं। दृष्टि सर्वत्र, सदैव हरिपर ही रहे—संसारके घने आवरणको भेदकर, जगत्‌के आकर्षणको बेधते हुए, उमंग और उल्लासके साथ आगे बढ़ता चला जाय—'सोये हैं संसारसूँ, जागे हरिकी ओर'.... आज न सही कल, इस जन्ममें न सही किसी भी जन्ममें प्रभुके दर्शन तो होंगे ही। वह मिलन ही यात्राकी 'इति' है!

एक महात्माके सदाचार-सम्बन्धी विचार तथा उनके जीवनकी कुछ घटनाएँ*

(उनके एक सत्संगीसे प्राप्त)

व्यवहार तथा परमार्थ अथवा इहलोक या परलोकके सुखके लिये सदाचार और शुद्ध व्यवहार ही मुख्य साधन है। तप, तीर्थ, दान, यज्ञ तथा ईश्वराराधन आदि जितने कल्याणके साधन हैं, सब सदाचारपूर्वक ही सफल हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। शुद्ध व्यवहार जाननेके लिये विशेष सूक्ष्म दृष्टि होनी चाहिये। ऐसा उनका निश्चय था। उनके इस भावको प्रकट करनेके लिये नीचे उनके कुछ विचार तथा कुछ जीवनकी घटनाएँ दी जाती हैं। पहले उनके गार्हस्थ्यसम्बन्धी विचार लिखता हूँ—

१—अपने पूर्व-जीवनमें वे रेलवे-सर्विसमें थे। उस समय रेलवे-विभागसे उन्हें जो तेल जलानेको मिलता था उसमेंसे खर्च करनेपर जितना बच रहता था उसे वह लौटा दिया करते थे। तथा रेलवेसे मिले हुए कागजको भी व्यर्थ खर्च नहीं करते थे।

२—पिताजीने मरते समय आपसे एक बहुमूल्य आभूषण लेनेको कहा तो आपने यह सोचकर कि हम दो भाई हैं अतः मैं अकेला इसे नहीं ले सकता, उसे लेना अस्वीकार कर दिया।

३—मरते समय पिताजीने आज्ञा दी कि एक ब्राह्मणके मेरे पास छः सौ रुपये रह गये हैं; उस

* जिन महात्माजीके विचार तथा उनकी जीवनसम्बन्धी घटनाएँ यहाँ दी जाती हैं उनका देहान्त हो चुका है। उन्होंने अपना नाम प्रकाशित करनेकी लेखकको आज्ञा नहीं दी थी। जनताके कल्याणकी दृष्टिसे ही यहाँ यह लेख दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणका शरीर छूट गया है और अब उसका कोई समीपी सम्बन्धी भी नहीं है; अतः तुम उसका रुपया किसी धर्मकार्यमें लगा देना। पिताजीकी मृत्युके पश्चात् एक साझेका मकान बेचती बार आपने अपने भाईसे कहा, 'भाई, ३००) तू दे दे और ३००) मैं लगा दूँगा। उससे पिताजीकी आज्ञाका पालन हो जायगा। उन्होंने कहा—'तुम अपना ३००) धर्मार्थ लगा दो, मैं अपना लगा दूँगा।' अपने भागके ३००) का महात्माजीने एक शिवमन्दिर बनवा दिया। बहुत दिन बीतनेपर भी जब भाईने न तो रुपया धर्मादेमें लगाया और न यह आशा ही दिखलायी दी कि वह लगावेगा, तो उन्होंने अपने पाससे ब्राह्मणके नामसे ३००) गौशालामें जमा करा दिये। इस प्रकार सरकारी अथवा बिरादरीका किसी तरहका दबाव न होनेपर भी उन्होंने केवल पिताकी आज्ञा तथा धर्म-कर्त्तव्यको ही मुख्य समझकर दूसरेके हिस्सेके तीन सौ रुपये अपने पाससे लगा दिये।

४—एक बार एक रिश्तेदार इनके मकानके आगे गलीमें इस उद्देश्यसे मिट्टी आदि डालने लगा कि धीरे-धीरे चबूतरा हो जानेसे उसपर अपना अधिकार हो जायगा। आपने उसे हटा दिया और कहा कि 'हम किसीकी जमीन नहीं दबाते। उसने समझाया कि 'और लोग भी तो ऐसा करते ही हैं।' इसपर महात्माजीने कहा—'यदि अन्य लोग कोई बुरी चीज़ खाने लगें तो क्या हमें भी खानी चाहिये।'

५—एक बार आप ५००) देकर किसी दूकानदारके साथ साझी हुए। आपको इससे २५) मासिककी आमदनी थी। किन्तु एक दिन ग्राहकोंके साथ उसका अन्याय देखकर आप अपने ५००) लेकर उससे अलग हो गये।

६—आप कहा करते थे कि कई आदमियोंने मुझे मेरी रक़म नहीं दी, परन्तु मैंने किसीके दाम नहीं रक्खे। सदाचारका यही उद्देश्य है कि दूसरोंकी कठोरता सहन करना और स्वयं कठोरता न करना।

७—एक बार आपने किसी दूकानदारसे एक पैसेकी कोई चीज़ ली। उस समय पैसा आपके पास न था, इसलिये दूकानदारने कहा कि फिर दे देना। उसी रातको अकस्मात् आपको ज्वर हो गया तो आप चिन्ता करने लगे कि कहीं मरनेके पश्चात् पैसा देना न रह जाय। अतः सबेरा होते ही आप सबसे पहले उसका पैसा दे आये।

८—आप खोटा सिक्का चलाना अच्छा नहीं समझते थे। यदि आपके पास कोई आ जाता तो आप उसे तोड़ देते थे और यदि उसकी धातु अच्छी होती तो किसी गलानेवालेको कम दामपर दे देते थे।

९—एक बार आपने अजमेरके अनाथालयको सौ रुपये दिये। अनाथालयके वार्षिकोत्सवपर आपको इस उद्देश्यसे बुलाया गया कि आप उत्सवके अधिवेशनमें अनाथोंकी उन्नतिके लिये अपना मन्तव्य प्रकाशित करें। उस समय उसके उत्तरमें आपने ५) का मनीआर्डर भेजकर लिख दिया कि 'जिस प्रकार मैंने ५) रेलवेको न देकर अनाथोंकी सेवामें भेजे हैं वैसे ही दूसरोंको भी करना चाहिये—यही मेरी सम्मति है।'

१०—आप अपने या दूसरेके बिना टिकिट रेलमें बैठनेके अत्यन्त विरोधी थे।

११—रेलवे-सर्विसमें रहते समय यदि कोई साधु गाड़ीमें बैठनेका सवाल करता तो आप अपने पाससे उसे एक स्टेशनका टिकिट दिलवा देते थे।

१२—आपको यदि कोई परोपकारका कार्य सौंपा जाता था तो उसे बड़े ध्यानसे करते या कराते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वैसा न करना वे विश्वासघात समझते थे। आप कहा करते थे कि परोपकारमें दो प्रकारके मनुष्य सम्मिलित होते हैं। एक स्वार्थी—वे अपना स्वार्थ चाहते हैं, इसलिये कामके नहीं, और दूसरे निःस्वार्थी—वे उदासीन रहते हैं, इसलिये कामके नहीं। यदि कोई मनुष्य निःस्वार्थभावसे तत्परतापूर्वक काम करनेवाला हो तो वह उत्तम है।

१३—एक मनुष्य आपसे बाज़ारसे चीज़ें मँगवाया करता था। जब आप सौदा लाते तो वह कहता कि यह तो कामकी नहीं। तब इन्हें वह चीज़ स्वयं अपने पास रखनी पड़ती। ऐसा कई बार हुआ; परन्तु इन्होंने उसकी चीज़ें लाना नहीं छोड़ा और उसने अपना स्वभाव नहीं बदला।

१४—आपने किसी प्रसङ्गमें एक मनुष्यसे १०) मासिक देनेको कहा। उस समय आप महीनेकी पहली तारीखको ही १०) का मनीआर्डर करा दिया करते थे। एक दिन इस प्रसङ्गमें आपने अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकाशित किया—जो आवश्यकता पड़नेपर उधार लेकर बिना माँगे ही पहुँचा दे वह उत्तम पुरुष है, जो माँगनेपर दे वह मध्यम है और जो रकम पास होते हुए भी बार-बार फेरे कराकर दे वह निकृष्ट है।

१५—एक बार आपको स्टेशनपर बदला गया। वहाँ रहनेवाला पहला बाबू किसी आदमीको किसी धर्म-कार्यके लिये स्टेशनका तेल दे दिया करता था। उस बाबूके बदल जानेपर वह आदमी इनके पास भी तेल लेने आया। परन्तु इन्होंने मना कर दिया। उस व्यक्तिने आपका उद्देश्य न समझकर आपसे आग्रह किया और पहले बाबूका दृष्टान्त भी दिया। तो भी महाराजजीने न माना। तात्पर्य यह कि आप दूसरेकी वस्तु चुराकर दान करनेके विरोधी थे।

१६—एक मनुष्य सन्तोंके पास बढ़िया कपड़ा लाया। उस समय आप सन्तोंके पास आया-जाया करते थे। ऐसा कपड़ा देखकर आपको उसके विषयमें सन्देह हुआ। आपने उससे पूछा, 'ऐसा कपड़ा बाजारमें भी मिलता है या नहीं?' उसने कहा, 'यह तो खास तौरसे मँगवाया हुआ है' इसपर आपने दूसरे सन्तोंसे कहा कि 'यह कपड़ा सन्देहयुक्त यानी चोरीका है।' तात्पर्य यह है कि आप चोरीका माल दान करने अथवा स्वार्थ या लोभवश बिना आगा-पीछा सोचे ले लेनेको बुरा समझते थे।

१७—आप कहते थे कि मेरे पिताजीने मेरी दस वर्षकी आयुके भीतर ही मुझे भगवद्गीता, विष्णुसहस्रनाम, शिवमहिम्नःस्तोत्र और गङ्गालहरी—ये चार पुस्तकें पढ़ा दी थीं।

आपके सदाचारविषयक विचार सूक्ष्म थे। आपके साधु हो जानेपर मुझे कुछ काल आपके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय आपके व्यवहार और उपदेश जो प्रायः मेरे सम्मुख हुए थे उनमेंसे कुछ आगे लिखता हूँ।

१—एक बार आपने किसी आदमीसे औषधके लिये मिश्री मँगवायी। मिश्री लानेपर आपने उसे हाथपर जाँचा। उस जाँचसे आपको मिश्री कुछ अधिक प्रतीत हुई। तब आपने उस आदमीको फिर मिश्री तुलवानेके लिये भेजा और ठीक आवश्यकतानुसार लानेपर ही उसे लेना स्वीकार किया।

२—एक बार महात्माजी एक बगीचेमें ठहरे। उस बगीचेसे आप कभी-कभी पोदीना ले लिया करते थे। एक दिन आपको पता लगा कि पोदीनामें पानी दूसरेका चुराकर दिया जाता है तबसे आपने पोदीना लेना बन्द कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३–कुछ रोगी होनेके कारण आप अपने लिये दवाकी शीशी आदि भी रखते थे। एक दिन मैं लघुशंकाको गया। वहाँ मुझे एक डाट पड़ी मिली। मैंने उसे इस उद्देश्यसे उठा लिया कि महात्माजीके काम आ जायगी। जब महात्माजीसे कहा कि 'यह डाट पड़ी थी, मैं ले आया हूँ' तो यह बात सुनकर आप प्रसन्न नहीं हुए और बोले–'आज यदि डाट उठा लाया है तो कल बोतल उठा लानेकी सम्भावना है।' ऐसा सुनते ही मैं डाट वहीं रख आया।

४–एक बार चिप्पीकी टूँटी लगवानी थी। एक कारखानेके प्रबन्धकने कहा कि मैं अपने कारखानेमें आदमियोंसे लगवा दूँगा, तो महात्माजीने उससे कहा कि अपने मालिकोंसे पूछकर लगवाना और चिप्पी बन जानेपर मुझे आज्ञा दी कि कारखानेके आदमीको आना न पड़े, आप ही जाकर चिप्पी ले आना।

५–आप दूसरेके किरायेसे लम्बी-लम्बी यात्राएँ करना अथवा ब्राह्मणसे सेवा लेना अच्छा नहीं समझते थे। तथा किसी अस्वतन्त्र स्त्री अथवा लड़केसे कोई वस्तु घरवालोंकी सम्मतिके बिना नहीं लेते थे।

६–आपकी शिक्षा थी कि साधु अवस्थामें हमारा कोई भी व्यवहार, जिसका बोझा दूसरोंपर है, आवश्यकतासे अधिक नहीं होना चाहिये। चाहे जलकी कितनी ही बहुलता हो, किन्तु स्नान करती बार आप उतना ही जल बर्तते थे जितना कि दामोंसे आया हुआ जल काममें लाते थे।

७–एक बार माली फल लाया; किन्तु आपने यह सोचकर कि मालिककी आज्ञाके बिना मालीसे फल लेना ठीक नहीं है, उन्हें नहीं लिया।

८–आपकी किसी बातको, अपनी सफलता होनेपर यदि कोई आदमी सिद्धिमें सम्मिलित करता तो आप प्रसन्न नहीं होते थे; कभी-कभी तो साफ कह भी देते थे कि 'मैं सिद्ध नहीं हूँ।'

९–यदि आप किसी दीन पुरुषकी सहायता करते तो आपको उसके आचरणोंको न देखकर उसकी दशाको ही देखते थे, तथा किसीको थोड़ी चीज़ भी देते तो आदरसे देते थे।

१०–आप दूसरेके समयका भी बहुत ध्यान रखते थे और कहा करते थे कि यदि हमें दूसरेकी प्रतीक्षा करनी पड़े तो चिन्ता नहीं, पर दूसरा हमारी प्रतीक्षा न करे।

११–आप यह शिक्षा दिया करते थे कि 'ईश्वरसे भी किसी प्रकारकी इच्छा न करो; पर प्रेम सबसे करो।'

१२–आप कहा करते थे—'हमारा कोई भी आचरण ऐसा न हो कि जिसमें प्रशंसा या वाहवाहीकी इच्छा हो।'

१३–आपका कथन था—'ईश्वर फल देनेवाला और सर्वव्यापक है; किसी भी कर्मके फलसे हम बच नहीं सकते। इसलिये लोगोंसे अपने कर्मोंको छिपाना व्यर्थ है।'

१४–कोई पुरुष सांसारिक अथवा पारमार्थिक बात पूछता तो—वह अधिकारी हो अथवा अनधिकारी—आप केवल इस उद्देश्यसे कि इसका चित्त प्रसन्न हो, उसे सरल और सीधे भावसे उत्तर दे देते थे।

१५–एक दिन आपने कहा—'यदि किसीको छटाँकभर सुख मिले और हमें सेरभर दुःख उठाना पड़े तो हमें दुःख उठा लेना चाहिये।'

१६–यदि रोगी दशामें कोई पुरुष आपके दर्शनकी अभिलाषा प्रकट करता तो आप चाहे कितनी ही दूर हों उसके पास इस उद्देश्यसे चले जाते कि जिससे उसका मन मुझमें न रह जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७–आतुरदशामें आप कहा करते थे कि रोगमें आत्माकी असंगताके विचारसे ढाढस मिलता है, देहके मिथ्यात्वसे नहीं।

१८–अहंकार और परदोषदर्शन आत्मोन्नतिमें बाधक हैं।

१९–एक बार एक मनुष्यने अपनी बात कहकर आपसे कहा कि 'किसीसे कहना मत।' पीछे वह बात एक पूज्य महात्माके पास चली तो कह दिया कि यह बात ऐसी नहीं है, पर जैसी है वैसी भी मैं कह नहीं सकता, क्योंकि उसने मना कर दिया है।

२०–अपने निर्वाहके लिये आप पुराने कपड़े और साधारण वस्तुओंके लेनेपर ही दृष्टि रखते थे।

२१–यदि कोई पुरुष आपसे अनुचित बात कहता तो उसका उत्तर सूझते हुए भी आप बात बढ़ जानेके भयसे कभी-कभी चुप हो जाते थे।

२२–यदि किसी बातमें आपका किसीसे विरोध होता तो वह उतने ही अंशमें रहता था। यदि उसकी कोई प्रशंसनीय बात होती तो उसका भी उदार चित्तसे वर्णन करते थे।

२३–एक दिन किसीने कहा कि 'आप दुबले हो गये हैं, कुछ खाया कीजिये।' इसपर स्वामीजीने कहा–'यदि दो रुपये तोलेकी वस्तुसे शरीर बचे तो मैं इसे मरने नहीं दूँगा, और यदि टके सेर या अधेला सेरकी भी वस्तुसे मोटा होगा तो मैं इसे मोटा नहीं करूँगा।'

२४–आप रोगीदशामें कहा करते थे—'मैंने पाँच विकार * तो पास कर लिये हैं, छठा रह गया है।'

२५–यदि कोई कहता—'महाराज ! आप दुबले हो गये हैं।' तो आप कहते—'अरे ! कुछ दिनमें यह भी न रहेगा।'

२६–आतुरदशामें आप कहा करते थे—

खोले हुए हों हाथ जहाँसे बवक्ते कूच।
लिपटी हुई कफनमें कोई आरज़ू न हो॥

२७–सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्॥

यह मन्त्र आप अधिकतर कहा करते थे।

२८–कभी कहते—'यह शरीर दिनभरमें कई रंग पलटता है' [आत्मा सदा एकरस रहता है]—यह बात आत्माकी असंगताकी सूचना देती है।

२९–पदार्थोंके संग्रहमें जो आपकी अरुचि थी उसके सम्भवतः निम्नलिखित कारण थे—

(१) धर्मविषयक सूक्ष्म विचार होनेसे उनका ऐसा भाव रहता था कि अधिक पदार्थ लेनेका हमारा कोई अधिकार नहीं है—ऐसा मेरा विचार है।

(२) आपमें शास्त्रसम्बन्धी पदार्थोंके दोष तथा मिथ्यात्वबुद्धिके संस्कार भी काफ़ी थे।

(३) रोगी होनेके कारण भी ऐसा होना सम्भव है।

३०–यदि कोई साधारण मनुष्य आपके सम्मुख अयुक्तियुक्त शंका करता तो प्रथम उसकी शंकाको ठीक करके उसका अनुवाद कर देते थे, जिससे वह अनुवादसे ही प्रसन्न हो जाता था—पीछे उसका उत्तर देते थे—ऐसा भी उनका स्वभाव देखा गया था।

३१–आपका भाषण कुछ धीमा, स्पष्ट और बीच-में कुछ रुकता हुआ था, जिससे अनुमान होता था

* सत्ता, जन्म लेना, बढ़ना, बदलना और क्षीण होना—ये पाँच विकार तो पास कर लिये हैं, छठा विकार मृत्यु रह गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उनके हृदयमें जो अहिंसा और सत्यका आदर था वह वाणीको धीरे-धीरे रोकता था।

३२–कभी-कभी अपनी जाति* और सम्प्रदायकी बात चलाने लगते। एक दिन मैंने इस प्रसङ्गको रोकनेको कहा तो कहने लगे, 'मैं इसलिये इन बातोंको छेड़ देता हूँ, जिससे कोई मनुष्य धोखेसे मेरा सत्कार आदि न करे।'

३३–आपका कहना था—जहाँ दूसरोंके साथ अपना विचार न मिले वहाँ अपना विचार हटा ले तो शान्ति-ही-शान्ति है।

३४–आपके भाषणसे आपके मनकी स्फुरणाओंका भी कुछ ज्ञान होता है। आपके जो सङ्कल्प होते थे कोमल होते थे। आप उन्हें सहजहीमें बदल भी दिया करते थे। जिससे आपके मनकी स्फुरणाओंका संयत होना सिद्ध होता है।

३५–आपका लेख और भाषण संक्षिप्त, सरल तथा भावपूर्ण होता था। लेख वा भाषणका बढ़ाना, कठिन शब्दोंको व्यवहारमें लाना अथवा प्रकरणकी लम्बाईमें अर्थको खो देना आप अच्छा नहीं समझते थे।

३६–वृद्ध और आतुरावस्थामें आप कहा करते थे—

छान पुरानी हो गयी ठौर-ठौर ते छयी।
अमरदास गोविंद भजनकर नयी होनते रही॥

३७–आपके अहिंसा, धर्मपरायणता तथा सङ्कोच-के भाव बढ़े हुए थे, जिनका परिचय आपने मरण-शय्यापर पड़े हुए भी व्यवहारद्वारा दिया था। महा-पुरुषोंके विचार इतने पुष्ट और स्वाभाविक होते हैं कि मरणका कष्ट भी उन्हें दबा नहीं सकता; आगे इन्हीं भावोंको प्रदर्शित किया जाता है—

(१) अहिंसाका भाव—आपकी रुग्णावस्थामें एक सज्जन प्रायः आपके समीप रहा करते थे। आपके मरणकालसे कुछ पूर्व उनके सिरमें दर्द-सा होने लगा। उस समय आपने उनसे कहा—'जा, सो जा'। इस प्रकार अपनी मरणदशा-के कष्टको गौण करके उसके दुःखका खयाल किया।

(२) धर्मपरायणता और सङ्कोच—मरनेसे पूर्व आपने अच्छे कपड़े उतार दिये और साधारण वस्त्रोंमें ही देहत्याग किया, इससे आपका यह भाव था कि ये वस्त्र किसी योग्य कार्यमें लग जायँ—मैं मरतीबार इतने कपड़े लेकर क्यों मरूँ?

३८–आप शरीरसे दुबले-पतले थे और साधारण श्वेत वस्त्र पहना करते थे, जिससे उनमें कोई बड़प्पन प्रतीत नहीं होता था। आपके रहन-सहन, बोल-चाल और विचार भी बड़े सादे थे, जिनसे आपकी कोई विशेषता नहीं मालूम होती थी। पर इस सादगी-के साथ-साथ आपमें बुद्धिमत्ता, व्यवहार-कौशल, विचारशक्ति, वैराग्य, धैर्य, धार्मिक बल और आध्यात्मिक शक्ति भी पर्याप्तमात्रामें थी।

३९–न्यायप्रियताके साथ-साथ आपमें अहिंसा, दया, कोमलता और सर्वात्मकताके भी भाव थे। जिनके कारण इनमें क्रोध या दूसरोंके प्रति अनुचित प्रतिहिंसाके भाव प्रायः नहीं होते थे।

४०–आपका हृदय और मस्तिष्क धर्मका आदर करनेवाला, धर्माधर्मविषयक विचारोंमें निपुण और उन भावोंको बाँटनेमें उदार था। आपकी दृष्टि बाह्य त्यागकी अपेक्षा आन्तरिक त्यागपर विशेष प्रतीत होती थी। कर्म करते हुए भी उनमें अनासक्त रहनेका स्वभाव रखते थे तथा आपके छोटे-छोटे साधारण कार्य भी परिमित और सुव्यवस्थित होते थे, जिससे

* महात्माजीका जन्म वैश्यजातिमें हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी असाधारण कार्यकुशलता और महत्ताका परिचय मिलता है।

४१—यदि कोई मनुष्य आपको कोई अनावश्यक वस्तु भेंट करता तो पहले उसे नम्र और मधुर शब्दोंमें लौटा देनेको कहते। यदि वह न मानता तो उसे प्रसन्न करनेके साथ-साथ खुले शब्दोंमें यह भी कह देते कि 'यदि हमारे काम न आयी तो किसीको दे देंगे'—ऐसा भी उनका स्वभाव देखा गया था।

४२—यदि कोई मनुष्य आपके पास मनीआर्डर भेजता और मैं कहता कि इसे वापिस कर दो तो कहते कि 'वह दुःख मानेगा।' आप वह रुपया ले लेते और उसके सदुपयोगका उपाय ढूँढ़ते तथा उसे किसी शुभकार्यमें लगा देते। तात्पर्य यह है कि दूसरोंको प्रसन्न करनेके लिये वे अपने कष्ट और त्यागकी परवा नहीं करते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि सम्भवतः अपने मानसिक भावोंपर ही रहती थी 'इस विषयमें लोग हमें क्या कहेंगे?' इसपर नहीं।

४३—कोई सज्जन आपको भक्तजी, कोई महात्माजी, कोई ब्रह्मचारीजी, कोई स्वामीजी, कोई चिट्टे वस्त्रवाले और कोई लालाजी कहकर पुकारते थे, क्योंकि आपका वेश ऐसा ही सन्दिग्ध था मानो आप 'सन्दिग्धः सर्वभूतानाम्'[1] और 'गुणं ममेमं जानातु जनः'[2] इन दो शास्त्रवाक्योंको प्रमाणित कर रहे थे।

४४—यदि आपसे विद्या और त्यागमें कम कोई साधारण मनुष्य भी लाभ उठानेकी इच्छा करता और किसी कारणवश आपके पास आनेमें सङ्कोच मानता या न आ सकता तो ऐसा भी देखा गया था कि आप उसके पास जाकर उसे यथायोग्य लाभ पहुँचा देते थे।

४५—आप सत्यसे भी अहिंसाको अधिक मानते और अहिंसासे भी स्वयं दुःख उठाकर दूसरोंको सुख पहुँचाना विशेष समझते थे—ऐसा मेरा विचार है।

४६—यदि आपको शिक्षाके रूपमें अपने जीवनकी कोई विशेष घटना सुनानी होती तो उसे ('एक वैश्यने ऐसा किया'—इस प्रकार) परोक्षरूपसे भी कह दिया करते थे, जिससे अपने मुखसे अपनी प्रशंसा भी न हो और उस बातका प्रचार भी हो जाय।

४७—कभी आप सवेरे ही पत्र लिखने बैठ जाते। इससे आपका यही अभिप्राय प्रतीत होता था कि महात्माओंका दूसरोंको आश्वासन देना तथा अपना कर्तव्य-पालन करना भी एक प्रकारका भजन ही है।

४८—एक बार एक कारखानेसे आपको कोई वस्तु लेनी थी। उसका प्रबन्धक आपका प्रेमी था। उसने उन्हें वह चीज बिना दाम देनी चाही। परन्तु आपने न लिया, क्योंकि वह तो नौकर था, मालिककी वस्तु उनसे चुराकर देता। पीछे मोल देनेपर ले आये; परन्तु इसपर भी मुझसे कहा—'उस वस्तुके लानेमें एक त्रुटि रह गयी है, जिसे मैंने नहीं छेड़ा, कारखानेके नौकरोंके लिये इसकी वस्तुओंको मोल लेनेमें खास रिआयत है, इस बाबूने मुझे भी उस रिआयती दरसे ही यह वस्तु दी है; परन्तु यह रिआयत तो इन्हें अपने लिये मिली है, औरोंके लिये नहीं।'

४९—एक बार रेलगाड़ीद्वारा आपको दूसरी जगह जाना था। आपने स्टेशनसे टिकिट खरीदे। वहाँका बाबू आपपर श्रद्धा रखता था। उसने कहा-

१ सन्दिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः।
अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत्॥

अर्थ—सब प्राणियोंका सन्देहपात्र, वर्णाश्रमके चिह्नोंसे रहित तथा अन्धे, मूर्ख और मूक पुरुषके समान पृथिवीमें पर्यटन करे।

२ गुणं ममेमं जानातु जनः पूजां करोतु मे।
इत्यहंकारिणामीहा न तु तन्मुक्तचेतसाम्॥

अर्थ—लोग मेरे इस गुणको जान जायँ और मेरी पूजा करें—यह इच्छा अहङ्कारियोंको होती है; जीवन्मुक्त पुरुषोंकी वैसी इच्छा नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप टिकिट लौटाकर अपने दाम वापस कर लीजिये, यह आदमी वहाँ जा रहा है आपको बिना टिकिट वहाँ पहुँचा देगा।' उस साथ जानेवाले आदमीने भी कहा—'हाँ, मैं ले जाऊँगा।' परन्तु आपने नम्रता-पूर्वक अस्वीकार कर दिया।

५०—एक स्टेशन बाबू आपसे गीता पढ़ने आया करते थे। उन्हें आपके पास आता देख एक आदमी-ने अपनी तीर्थयात्राके लिये सवाल किया। बाबूने कहा कि 'कुछ स्टेशनतक मैं गार्डसे कह सकता हूँ, वह आपको बिना टिकिट ले जायगा।' इस विषयमें स्वामीजीने मुझसे कहा—'ऐसा करनेसे चार मनुष्य पापी होंगे—(१) यात्रा जानेवाला, (२) गार्डसे कहनेवाला बाबू, (३) गार्ड और (४) आगेके स्टेशनपर जिस बाबूसे गार्ड इसे छोड़ देनेके लिये कहेगा।'

५१—एक बार एक सज्जनने आपको अपनी रुग्णावस्थामें याद किया। आप उसके पास गये। उसने एक पुस्तककी प्रशंसा की और आपसे उसे देखनेके लिये कहा। वह पुस्तक आपकी पहले देखी हुई थी, परन्तु आपने वहाँ कुछ भी नहीं कहा, उसका मन रखनेके लिये पुस्तक ले आये और कुछ दिन अपने पास रखकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार उसे प्रसन्न करनेके लिये आपने वहाँ तो अपनी वाणीको रोका और फिर वहाँसे पुस्तक लाने तथा उसे फिर लौटाने या किसीके हाथ भेजनेका झंझट स्वीकार किया।

५२—यदि आवश्यकता पड़नेपर आप किसी दूसरे व्यक्तिसे कोई पात्र आदि लेते तो जहाँतक होता उसे सुधारकर लौटाते और काम हो जानेपर उसे तुरन्त लौटा देते तथा उसे उसी दृष्टिसे बर्तते जैसे कि अपनी वस्तु बर्ती जाती है।

५३—यदि कोई वस्तु दोषयुक्त होती और उसकी अपने काम आनेकी सम्भावना न होती तो आप या तो उसे फेंक देते या किसी दूसरेको दे देते और उससे कह देते कि यह वस्तु हमारे कामकी नहीं है, इसमें अमुक दोष है, यदि तेरे काम आ जाय तो बरत लेना, नहीं तो फेंक देना।

५४—एक बार एक धर्म-कार्यके लिये कई सज्जनोंने कुछ रुपया दिया। उस कामको आरम्भ करनेपर उसमें सफलता न हुई और उसे बीचहीमें छोड़ना पड़ा। कुछ रुपया तो उस कार्यमें लग चुका था और कुछ शेष था। इन बचे हुए रुपयोंको दूसरों-की सम्मति किसी अन्य धर्म-कार्यमें लगानेकी थी। परन्तु आपने इसे अस्वीकार किया और उसे हिस्सेवार दानदाताओंको ही लौटानेकी सम्मति दी। इससे आपका यह अभिप्राय था कि जो रुपया जिस कार्यके लिये लिया गया है उसे उसी कार्यमें लगाना न्याय है, अन्यथा उसे लौटा देना ही उचित है।

५५—एक बार एक मकानके बनवानेमें आप कुछ देख-भाल करते थे। उसके लिये जङ्गलसे लकड़ी मँगवायी गयी। वह लकड़ी जङ्गलके मालिकसे रवन्ना लेनेपर एक आदमी एक बार ला सकता था। परन्तु वहाँकी प्रथा इसके विरुद्ध भी थी। इनका आदमी भी उस रवन्नासे तीन बार लकड़ी ले आया। खातीने आपसे कहा—'तीन बार तो मज़दूर लकड़ी ले आया।' इसपर आपने उसे टोककर कहा—'इसमें लाभ तो मालिकको हुआ तू (खाती) * इस चोरीके पापमें क्यों फँसा?' यह सुनकर वह चुप हो गया; पर एक दूसरे आदमीने कहा—'यह चोरी नहीं है।' तथा किसी दूसरे आदमीका दृष्टान्त देकर कहा कि वे भी तो ऐसा ही करते हैं। तब आपने कहा—'अच्छा यदि चोरी नहीं है तो मैं पत्रद्वारा जङ्गलके मालिकसे पूछता हूँ।' तात्पर्य यह है कि 'ईश्वर और धर्मको सामने रखते हुए अपने लाभके लिये गुप्त या प्रकट-रूपसे किसीको किसी प्रकारसे कभी हानि नहीं पहुँचानी चाहिये।'

५६—एक मनुष्यने आपसे कहा—'महाराजजी!

* क्योंकि खाती मज़दूरद्वारा मँगवाया करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे पास कोई कच्चा-पक्का (अनुचित कमाईका) पैसा आ जाता है। आप यदि सेवा करा लें तो वह शुद्ध हो जाय।' इसपर आपने उत्तर दिया—'हमारी सेवासे वह शुद्ध नहीं होगा, बल्कि हमें भी तुम्हारे साथ उसका फल भोगना पड़ेगा।'

५७—आप दृष्टान्तरूपसे कहा करते थे—'खसम भी प्यारा और पूत भी प्यारा, फिर सौगन्ध किसकी खाऊँ?' अर्थात् 'संसार भी प्यारा और ईश्वर भी प्यारा, फिर दोनोंका साथ-साथ निबाह कैसे हो?' अतः संसार और ईश्वर इनमेंसे एकपर मुख्य दृष्टि रखकर दूसरेको गौण समझना होगा; जैसे कि स्त्रीको सौगन्ध खानेके लिये पति और पुत्रमेंसे एकको मुख्य तथा दूसरेको गौण समझना आवश्यक है।

५८—आपकी दूसरेके साथ बात करनेकी शैली बहुत अच्छी थी। उसके शब्द कैसे ही उत्तेजनाप्रद हों आपका स्वभाव उनसे उत्तेजित होकर टोकनेका नहीं था। आप दूसरेकी बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहते थे और फिर सोच-समझकर उसका उत्तर देते थे। इससे उनके मानसिक संयमकी झलक प्रतीत होती है।

५९—आपका हृदय ऐसा कोमल था कि थोड़ी-सी भूल हो जानेपर भी आपको पश्चात्ताप होने लगता था। एक बार अपनी रुग्णावस्थामें आपने कोई व्यावहारिक शब्द—जो इस समय मुझे स्मरण भी नहीं है—कुछ जोर देकर मुझसे कह दिया। उसका आपको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मुझसे कहा कि इसके बदलेमें तू मुझे कुछ कह ले।

६०—एक बार एक मनुष्यने आपको कुछ आवश्यकतासे अधिक देनेका आग्रह किया। उससे पीछा छुड़ानेके लिये आपने उससे कुछ शब्द* आवेशपूर्वक कहे। किन्तु पीछे पश्चात्तापके रूपमें आपने कई बार मुझसे उस बातका जिक्र किया।

६१—अपनी आतुरदशामें आप कुछ उपदेशप्रद मीठा उपहास भी किया करते थे। एक बार आपकी मरणोन्मुख अवस्थामें कुछ लोग चुपचाप बैठे थे। उस समय आपने मुझे सम्बोधन करके कहा—'काकाः काकान्नु शोचन्ति।' इससे आपका अभिप्राय यह था कि 'जिस प्रकार कौए कौओंके लिये शोक करते हैं, उसी प्रकार मरणोन्मुख मनुष्यको घेरकर उसके सम्बन्धी शोक किया करते हैं।' आप यह भी कहा करते थे कि 'कुछ दिनमें हम भी स्मृतिमें आनेवाले हैं।' कभी किसी स्थानविशेषको लक्ष्य करके कहते 'वहाँ मरनेका स्वाद नहीं है।'

६२—एक बार एक मनुष्यने बड़ी लागत लगाकर एक धर्मशाला बनवायी। परन्तु पड़ोसमें पड़ोसीके कर्मचारीको कुछ देकर थोड़ी-सी भूमि दबा ली। इस बातको लक्ष्य करके आप कहा करते थे—'उसकी यह प्रवृत्ति ऐसी है मानो सोनेकी थालीमें लोहेकी मेख गाड़ दी हो।' अर्थात् एक ओर तो पुण्य-कार्य और दूसरी ओर अनुचित रीतिसे दूसरेका अधिकार हरण करना।

६३—एक उदार सज्जन ब्राह्मणमात्रको अपने पास आनेपर कुछ भेंट किया करते थे। उन ब्राह्मणोंमेंसे कुछ तो चुपचाप लेकर चले जाते और कोई लालच या दरिद्रतासे विवश होकर कुछ और लेनेकी इच्छा प्रकट करते। उस समय वे सज्जन आपेसे बाहर हो जाते और अनाप-शनाप कहने लगते। यह दशा देखकर स्वामीजीने उनसे कहा—'आप यह नक़दी देना बन्द कर दें। इसका फल नहीं होगा; आप व्यर्थ अपना रुपया क्यों खोते हैं?' (क्योंकि जिस शुभ कर्मके करते समय क्रोध, अहङ्कार अथवा दूसरोंका चित्त दुखाया जाता है, उसका फल विपरीत ही होता है।)

* महात्माजीने उससे जो शब्द कहे थे वे ये थे—'साधुका धर्म बिगाड़ा नहीं करते।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताका दिव्य सन्देश

(लेखक—श्रीमथुरादत्तजी ज्योतिर्विद् बी० ए०)

जयति श्रीवासुदेवः।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय।

हे भगवन्! आप ही हमारे माता और आप ही हमारे पिता हैं, आप ही हमारे बन्धु और आप ही सखा हैं। आप ही विद्या और आप ही हमारे धन हैं। हे देवदेव! आप ही हमारे सब कुछ हैं।

गीता सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न है। यह महाभारतके भीष्म-पर्वके अन्तर्गत है। इसका अनुवाद संसारकी सभी सभ्य भाषाओंमें हो चुका है। अत्यन्त रहस्यमय और सुप्रसिद्ध ग्रन्थ होनेके कारण इसके गूढ़ अर्थोंपर लोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सदा ही कुछ-न-कुछ प्रकाश डालनेका प्रयत्न करते रहते हैं। इसका जितना अधिक अध्ययन किया जाय, उतने ही नये-नये भाव मनमें उत्पन्न होते जाते हैं। आजतक कोई इसका पार न पा सका। इसीलिये कहा गया है कि गीताका अर्थ सम्यक् प्रकारसे तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही जानते हैं, पर इसका थोड़ा बहुत अर्थ अर्जुन, महाराज जनक, व्यासदेव, शुकदेव और याज्ञवल्क्य भी जानते थे। अस्तु।

वाराहपुराणमें भगवान्‌ने कहा है—'हे अर्जुन! गीता मेरा हृदय है। यही मेरा उत्तम सार है। यह मेरा अति अग्र-ज्ञान है।' गीता सब उपनिषदोंका सार है। यह समस्त मानव-जाति, सब देश तथा सब कालोंके लिये है। इसके श्रवण या पठनमें ऊँच-नीच, जाति-पाँतिका भेद-भाव नहीं है। इसके अमृतमय उपदेशसे सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुष समानरूपसे लाभ उठा सकते हैं।

गीताने चारों वर्णोंके स्वाभाविक धर्मोंका बड़ा ही सजीव निरूपण किया है। वस्तुतः चारों वर्ण एक ही समाजरूप विराट् पुरुषके अङ्ग हैं; वे चारों ही समाजके भिन्न-भिन्न अङ्गोंकी पुष्टि करते हैं। ब्राह्मणोंमें ब्रह्मज्ञान विद्या, क्षत्रियोंमें शूरवीरता तथा समाजकी रक्षा करना, वैश्योंमें कृषि, पशु-रक्षा तथा वाणिज्य और शूद्रोंमें परिचर्या या सेवा-कर्म स्वाभाविक हैं। जिसके यहाँ जैसा कार्य परम्परासे होता आया है, वह उस कार्यमें शीघ्र ही योग्यता प्राप्त कर लेता है और अपने कार्यमें निपुण या सिद्धहस्त हो जाता है। अतः जिस वर्णमें जो कार्य होता चला आया है, उस वर्णमें उत्पन्न हुए पुरुष अथवा स्त्री अपनी-अपनी योग्यतानुसार अपने उस सामाजिक धर्मका पालन करते हुए उसीके द्वारा उस परम पवित्रात्मा भूत-भव्य-भवत्-प्रभु जगत्पिता जगदीश्वर परब्रह्मकी सेवा करें। अपने-अपने कार्यमें सिद्धि प्राप्त करें और उसीसे सर्वव्यापी परमात्माकी भक्ति और पूजा करके परमगतिको प्राप्त हों। (गीता अध्याय १८।४६) इस प्रकार अपने-अपने धर्मका पालन करनेसे स्वकर्म, भक्ति और ज्ञानद्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पतित, स्त्री, पुरुष, धनाढ्य, निर्धन, युवा, वृद्ध सभीको मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

सच्चिदानन्दघन श्रीवासुदेव ब्राह्मण और चाण्डाल तथा स्त्री और पुरुष सबमें समानभावसे निष्पक्ष साक्षीरूपसे स्थित हैं। भगवान्‌ने कहा है—'हे अर्जुन! मेरे लिये सब बराबर हैं। मेरा न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। मैं निष्पक्ष हूँ। पर जो मेरा भक्तिसे भजन करते हैं, मैं उनमें हूँ और वे मुझमें हैं' (९।२९)। अतः जो कोई भी स्वधर्मका पालन करते हुए उन्हें अनन्यभावसे भजता है उसीपर प्रभुकी पूर्ण कृपा हो सकती है और वह उस कृपासे कृतकृत्य हो उनके परमपदका भागी हो सकता है।

भक्ति कैसी होनी चाहिये?

भक्ति अनन्य होनी चाहिये—

देख्यो नहिं जात तू ही देखियत जहाँ-तहाँ,
दूसरो न देख्यो देव तुही देख्यो अब मैं।
(महाकवि देव)

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।'
(मीराबाई)

इन अमूल्य शब्दोंसे देवी मीराबाईने अपनी सच्ची, अटल, अनन्यभक्तिका परिचय दिया है। केवल श्रीवासुदेवको ही अपना स्वामी और प्रभु मानकर उनकी अनन्यभक्तिसे उपासना करनी चाहिये। उनके अतिरिक्त और किसी देवी-देवताको, उनसे किसी प्रकारका द्वेष और विरोध न करते हुए भी उन्हें अपने इष्टदेवके रूपमें न मानना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌ने कहा है—

'हे अर्जुन ! जो अन्य देवी-देवताओंको श्रद्धासे पूजते हैं वे भी अविधिपूर्वक मेरी ही पूजा करते हैं। अन्य देवताओंके उपासक अल्पबुद्धि होते हैं। उन्हें प्राप्त होनेवाला फल भी नाशवान् होता है। देवताओंकी उपासना करनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे उपासक मुझे ही प्राप्त कर लेते हैं।' (९ । २३; ७ । २३)

अपने भक्तके विषयमें भगवान् कहते हैं—

'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और नित्य शान्ति प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन ! तू अच्छी प्रकार समझ ले, मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता।' (९ । ३१)

अहा ! भगवान्‌की भक्तिमें कैसा अनूठा आनन्द भरा हुआ है ! श्रीमद्भागवतमें कहा है—'गायन्‌विलज्जो विचरेदसङ्गः' अर्थात् भक्त लोग सांसारिक माया-मोहमें न फँसकर लोक-लाजको तिलाञ्जलि दे भगवान्‌का कीर्तन करते हुए विचरते हैं। जिस प्रकार कि देवी मीराबाई और चैतन्य महाप्रभु भगवान्‌की भक्तिमें ही अपनी सुध-बुध भूलकर लवलीन हो गये थे। कहा भी है कि भगवान्‌के सच्चे भक्त तीनों लोकोंका राज्य और ऐश्वर्य तृणवत् तुच्छ समझकर एक क्षणके लिये भी भगवद्भक्तिसे विमुख नहीं होते। उन्हें तो भगवान्‌के चरणकमलोंमें ही परम आनन्द प्राप्त होता है। 'ब्रह्मस्पर्श' में जो आनन्द है, वह इन्द्रियोंसे परे है और केवल सूक्ष्म बुद्धिसे ही ग्राह्य है। गीता उपनिषदोंका सार है और भक्ति इसकी विशेषता है। श्रीवासुदेव परम दयालु तथा पतितपावन हैं, वे ही जगत्‌के माता-पिता हैं, वे भक्तवत्सल हैं, वे सहजहीमें पापोंसे छुटकारा देते हैं और अपनी भक्तवत्सलताके वश होकर उद्धार करते हैं।

कर्म कैसा होना चाहिये ?

सिद्धि-असिद्धि और हार-जीतसे विचलित नहीं होना चाहिये। अपना कर्तव्य पालन करते हुए उसके फलकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिये और उसमें आसक्तिरहित रहना चाहिये, क्योंकि आसक्तिके कारण विवेक नष्ट हो जाता है। अतः आलस्य, लोभ, मोह और भयको छोड़कर बड़ी सावधानीसे आसक्तिरहित होकर विश्वरूप भगवान्‌के निमित्त अपना-अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। यही योग है। 'योगः कर्मसु कौशलम्' (२ । ५०) और यही सच्चा संन्यास है (६ । १)।

योग और संन्यास फलरूपमें एक ही है। कर्म और कर्मफलमें आसक्त न होकर सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर भगवान्‌की प्रीतिके लिये अपने वर्णाश्रमविहित कर्मोंका अनुष्ठान करना योग है, और भगवान् ही सर्वत्र एकरूपसे स्थित हैं तथा गुण ही गुणोंमें वर्त रहे हैं, मैं कुछ भी नहीं करता, ऐसी भावना करते हुए, कर्तृत्वाभिमानको त्यागकर केवल भगवदिच्छाका अनुवर्ती हो जाना संन्यास है। गीताके मतमें यज्ञ, दान, तप और कर्तव्य-कर्मका लोभ, मोह, क्रोध या झूठे वैराग्यवश त्याग कर देना तामसी एवं निन्दनीय है।

ज्ञान—

'हम सब माहिं सकल हम माँहीं'

(श्रीकबीरदासजी)

सब प्राणियोंको अपनेमें देखना और अपनेको सबमें देखना तथा सब प्राणियोंको और अपनेको भगवान् श्रीवासुदेवमें देखना चाहिये।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥

गीतामें कहा है—'एक वासुदेव ही सब कुछ हैं' 'भगवान्‌के सिवा और कुछ है ही नहीं।' यही सर्वोत्तम ज्ञान है। जिसे इसकी प्राप्ति हो जाती है वह कभी पाप नहीं कर सकता। भगवान्‌ने कहा है—

'हे अर्जुन ! वही योगी श्रेष्ठ गिना जाता है, जो सब प्राणियोंमें अपने सदृश सुख-दुःख बराबर देखता है।' (६ । ३२)

वह योगी अपनाही-सा सुख-दुःख दूसरोंका भी समझता है। इस विचारसे वह सर्वत्र स्वार्थका त्याग कर देता है। ज्ञानीजन जानते हैं कि श्रीवासुदेव ही जगत्‌के माता-पिता, पितामह तथा धारण-पोषण करनेवाले हैं,* वे ब्रह्मज्ञान, पवित्र ओंकार, परमगति, स्वामी, साक्षी, निवासस्थान, शरण, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, निधान और अविनाशी बीज (सबके आदिकारण) हैं। सम्पूर्ण जगत् और प्रकृति उन्हींके अधीन है। वे समस्त जगत्‌में अव्यक्त-

* तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।
(श्रीतुलसीदासजी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपसे व्याप्त हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् उन्हींमें स्थित है। उनकी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है। सूर्य और अन्य नक्षत्रादिमें उन्हींकी ज्योतिका प्रकाश है। वे वह दिव्य अक्षय और अटल चेतन नियम हैं कि जिनके कारण अखिल ब्रह्माण्ड अपनी मर्यादामें स्थित है। तथा वे ही उस दिव्य नियमके अजन्मा, अजर, अमर, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, परम दयालु और सर्वज्ञ नियन्ता हैं। उनके बिना कुछ भी नहीं है। वे अनन्त हैं। वे ही सब यज्ञोंके भोक्ता और स्वामी हैं। सब यज्ञ और तप उन्हींके निमित्त किये जाते हैं। वे सब प्राणियोंके सच्चे मित्र और भक्तवत्सल हैं। शुद्ध मन एवं भक्तिसे उनके निमित्त जो पत्र, पुष्प, फल और जल चढ़ाया जाता है, उसे वे सहजहीमें सप्रेम ग्रहण करते हैं। यदि पापीजन भी उनको अनन्यभावसे भजते हैं तो वे शीघ्र ही धर्मात्मा होकर परमशान्तिको प्राप्त होते हैं। भगवान्के भक्तोंका कभी नाश नहीं हो सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले, पुरुष या स्त्री जो भगवान्के शरणमें आते हैं, वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

इसीलिये अपने शरणागत भक्त अर्जुनको स्वकर्मद्वारा उपासना करनेकी पद्धति बतलाते हुए भगवान्ने कहा है—'अर्जुन! तू कायर मत बन और हृदयकी दुर्बलताको छोड़कर युद्ध* (कर्तव्य-पालन) के लिये खड़ा हो। जो वीर धर्मयुद्ध अर्थात् निष्काम कर्तव्य-पालनमें मारे जाते हैं वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! तू निरन्तर आसक्तिरहित रहकर अपना कर्तव्य पालन कर, क्योंकि मनुष्य जब आसक्तिरहित होकर कर्म करता है तो वह निःसन्देह परम शुभ (मोक्ष) को प्राप्त होता है। ऐसे ही कर्मद्वारा महाराज जनकादि राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों और मुमुक्षुओंने सिद्धि प्राप्त की थी। हे अर्जुन! लोगोंकी भलाईको विचार करके भी तू कर्म कर, क्योंकि बड़े लोग जैसा-जैसा करते हैं अन्य लोग भी उन्हींका अनुकरण करते हैं। जिस बातको श्रेष्ठ लोग प्रमाण मानते हैं अन्य लोग भी उसीको प्रमाण मानने लगते हैं। हे अर्जुन! मुझे देख, मैं सदा आलस्यरहित संसारके हितके निमित्त कर्ममें ही प्रवृत्त रहता हूँ, नहीं तो संसारका नाश हो जाता। हे अर्जुन! जिस प्रकार अज्ञानी लोग कर्मफलकी इच्छा करते हुए कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, इसी प्रकार ज्ञानीजन, कर्मफलकी इच्छा न करते हुए भी, लोक-हितके निमित्त कर्म करें, इसीमें श्रेय है। एवं ज्ञानी लोग स्वयं युक्त होकर कर्म करते हुए औरोंको उसके लिये उत्साहित करें, क्योंकि जनताका श्रेय कर्म करनेमें ही है। हे अर्जुन! तू अपना कर्तव्य पालन कर, क्योंकि कर्म करना ही कर्म न करनेसे श्रेष्ठतर है, बिना कर्म किये तो शरीरका निर्वाह भी नहीं हो सकता। तू जो कुछ करता है वह आसक्तिरहित होकर और फलकी आकांक्षा न करते हुए अहङ्काररहित होकर विवेकपूर्वक परमात्माके निमित्त कर। कर्म करने या न करनेमें शास्त्रको अपना प्रमाण मान क्योंकि शास्त्र समाजके हितके लिये बनाये गये हैं, अन्यथा लोग अज्ञान तथा अपनी-अपनी दुष्कामनाओंसे प्रेरित होकर बुरे कर्मोंको भी कर्म समझने लगते और इस प्रकार वे भ्रममें पड़ जाते। एवं मनुष्यको चाहिये कि वह कर्म (विहित कर्म), कर्मत्याग तथा निषिद्ध कर्मका ज्ञान अच्छी प्रकार प्राप्त करें।' भगवान्का यह भाव गीताके निम्न श्लोकोंसे व्यक्त होता है—२। ३; ३। १९-२२; ३। २५-२६; ३। ८; १६। २४ और ४। १७

भगवान्ने यह भी कहा—'हे अर्जुन! सभी कार्योंमें, जहाँ गुण है वहाँ कुछ-न-कुछ दोष भी पाये ही जाते हैं। जैसे कि जहाँ आग है, वहाँ धुआँ भी रहता है। अतः संसारमें किसीको भी अपने कर्तव्यका त्याग नहीं करना चाहिये। (क्योंकि इससे समाजकी बड़ी अवनति और दुर्दशा होनेका भय है) हे वीर! अपना कर्तव्य पालन कर, मेरी कृपासे तू सब कठिनाइयोंको पार करेगा। हे तात! जिसने शुभ मार्गमें पैर रक्खा उसकी दुर्गति कभी नहीं होती। स्मरण रख, यदि तू अहङ्कार (अज्ञान) वश मेरी बातपर ध्यान न देकर युद्ध नहीं करेगा तो तेरा यह संकल्प मिथ्या ही होगा; प्रकृति तुझे बलात्कारसे युद्धमें नियुक्त कर देगी'। यथा—१८। ४८; ६। ४० और १८। ५९।

यह सब सुनकर धनुर्धर अर्जुनने उत्तर दिया—'करिष्ये वचनं तव' हे अच्युत! आपकी आज्ञा मेरे लिये शिरोधार्य है और तुरन्त ही घमासान युद्धमें जुट गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपना-अपना कर्तव्य-पालन ही गीताकी किल्ली है। बोध प्राप्त होनेपर स्वकर्म

* यह युद्ध हमारे अन्दर भी नित्य वर्तमान रहता है। शुद्ध अन्तःकरण हमारा 'सारथी' है। अज्ञान, स्वार्थ, आलस्य, काम, क्रोध, मोह इत्यादि कौरव-सेना (आततायी) हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर अकर्म या विकर्ममें प्रवृत्त होना गीताको अभिमत नहीं है। यदि ज्ञानी अपना कर्तव्य उल्लंघन करने लगें तो सारे समाजकी स्थिति डाँवाडोल हो जाय। सम्पूर्ण समाज उन्हींके पीछे होता है। अतः ज्ञानीका कोई कर्तव्य न होनेपर उनके द्वारा लोकसंग्रहार्थ वर्णाश्रम-धर्मका यथावत् पालन हुआ करता है। गीतामें ज्ञान, योग, संन्यास-कर्मका भक्तिके अमृतरूपी रसमें एकीकरण किया गया है—बस, यही इसका मर्म है।

संन्यास, त्याग तथा कर्मयोग

भगवान् कहते हैं—

हे अर्जुन! विद्वान् लोग काम्य (अर्थात् जो फलकी इच्छासे किये जाते हैं (उन) कर्मोंके त्यागको संन्यास कहते हैं तथा सब कर्मफलके त्याग (छोड़ने) को त्याग कहते हैं। हे अर्जुन! यज्ञ, दान और तप अवश्य करने चाहिये। क्योंकि यज्ञ, दान और तप मतिमान् मनुष्योंको भी पवित्र करनेवाले होते हैं। (१८। २; १८। ५)

गीताने ये यज्ञ, दान और तप सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन-तीन प्रकारके बतलाये हैं। गीता अध्याय १७ के ११ से १३ तक और १४ से २२ तक उन सब भेदोंका बड़ा स्फुट वर्णन किया है। गीता कहती है जो तप श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे किया जाता है वह सात्त्विक; जो सत्कार, मान, पूजा या दम्भके लिये किया जाता है वह राजस और जो दूसरोंको हानि पहुँचानेके लिये आग्रह-पूर्वक शरीर-शोषणके लिये किया जाता है वह तामस है। इसी प्रकार जो दान उचित समझकर प्रत्युपकारकी आशा न रखकर योग्य देश-काल-पात्रमें दिया जाता है वह सात्त्विक है; जो प्रत्युपकार या फलकी कामनासे दिया जाता है वह राजस है और जो निरादर एवं अवज्ञापूर्वक अपात्रको दिया जाता है वह तामस है। यज्ञके विषयमें गीताका कथन है कि जो यज्ञ समाहित-चित्तसे अपना कर्तव्य समझकर निष्कामभावसे विधिपूर्वक किया जाता है वह सात्त्विक है, जो फलकी इच्छासे या दम्भपूर्वक किया जाता है वह राजस है तथा जो बिना मन्त्र और दक्षिणाके ब्रह्मभोजसे रहित तथा अविधि और अश्रद्धापूर्वक किया जाता है वह तामस है।

इस प्रकार जो तीन-तीन प्रकारके यज्ञ, दान और तप बतलाये हैं उनमें सात्त्विकोंका ही आचरण करना चाहिये। तथा वे भी हों सर्वथा आसक्तिरहित, क्योंकि आसक्तिसे विवेक एवं न्याय-अन्यायका ज्ञान नहीं रहता। जिस प्रकार हम देखते हैं कि शुभ कर्मकी आसक्तिवश भी लोग अन्यायपूर्वक अर्थसंग्रहमें प्रवृत्त हो जाते हैं। इसके सिवा उन्हें फलकी कामनाका त्याग करके ही कर्म करना चाहिये क्योंकि फलकी कामनासे मनुष्य उसी कर्मको करेगा जो इसको प्रिय हो, अथवा जिससे उसको पारितोषिक, पुरस्कार या वाञ्छित फल मिलनेकी सम्भावना है और ऐसी अवस्थामें वह कर्तव्य-पालन ठीक प्रकारसे नहीं कर सकेगा। भगवान्ने कहा—हे अर्जुन! कर्तव्यका त्याग कभी हो ही नहीं सकता। अज्ञान और मोहमें फँसकर कर्तव्यका त्याग करना तामसी है। सङ्ग (आसक्ति) और कर्मफलको त्यागकर, यह कर्तव्य ही है, यह हमें अवश्य करना चाहिये इस भावसे परमात्माके निमित्त जो कर्म किया जाता है वह वास्तवमें सच्चा त्याग है। ऐसा त्यागी पुरुष कर्म करनेमें कष्ट, सुख, दुःखका तथा प्रिय-अप्रिय फलका विचार छोड़ देता है और प्रसन्नचित्त, संशयरहित, राग-द्वेषशून्य, दृढ़निश्चय, उत्साहयुक्त और निर्भीक होकर अपने कर्तव्य-पालनमें डटा रहता है। ऐसे मनुष्यको कर्मफल नहीं भोगने पड़ते, क्योंकि उसका सारा जीवन ही यज्ञ है। वह कर्तव्यरूपी ब्रह्माग्निमें अपनी आहुति देता है। उसके सब कर्म ज्ञानकी अग्निमें भस्म हो जाते हैं। इसीको नैष्कर्म्य भी कहते हैं।

हे अर्जुन! जो कर्मफलसे प्रयोजन न रखकर अपना पूरा कर्तव्य पालन करता है वास्तवमें वही संन्यासी है और वही कर्मयोगी है। जो कर्म ही नहीं करता, वह न तो संन्यासी है और न कर्मयोगी ही हो सकता है। (६। १) उसका जीवन ही निरर्थक है। जिसको संन्यास (कर्मफलका त्याग) कहते हैं उसीको तू योग (निष्काम कर्म) जान। (६। २)

जबतक कर्मफलकी इच्छाका त्याग न किया जाय तबतक कोई कर्मयोगी नहीं हो सकता। हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो कुछ देता है तथा जो तपस्या करता है वह सब मेरे ही अर्पण कर। तू भले-बुरे कर्मफलोंसे, अर्थात् कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जायगा और संन्यास-योगसे युक्त होकर मुक्त हुआ तू मुझको ही प्राप्त होगा। (९। २७-२८) अस्तु।

भगवान्ने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अर्जुन ! यही ज्ञान सात्त्विक है कि जिसके कारण मनुष्य मुझ एक विभागरहित अविनाशी परमेश्वरको नाना प्रकारसे विभक्त सब प्राणियोंमें निष्पक्ष समभावसे स्थित देखता है। मैं ही सबकी गति, सबका भरण-पोषण करनेवाला, सबका प्रभु, साक्षी, निवासस्थान, आश्रय और सुहृद् हूँ तथा मैं ही (ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपसे) सब प्राणियोंकी उत्पत्ति, धारण-पोषण और संहारका कारण हूँ। मैं ही सबका आदिकारण हूँ। जो योगीजन अनन्य भक्तिसे मुझमें ही अपना चित्त लगाकर मुझे नित्य स्मरण करते हैं, मैं उनको सहजहीमें प्राप्त होता हूँ ! जो जिस भावसे अथवा प्रयोजनसे मेरे पास आते हैं, मैं उसी भावसे उनको भजता हूँ। अर्थात् उनकी श्रद्धा तथा कामनानुसार उनको फल देता हूँ। हे अर्जुन ! मनुष्य सब प्रकारसे तथा चारों ओरसे मेरे ही मार्गको बर्तते हैं।

उपासना

तन, मन, धन तथा वचन और कर्मसे सब प्रकार अनन्य भक्तिभावसे परमात्माकी शरण लेना, अपने शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्माको परम श्रद्धाके साथ परमात्माके अर्पण कर देना—इसे उपासना कहते हैं।

भगवान्‌ने कहा—

हे अर्जुन ! जिस ईश्वरसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति है, अथवा जिसके कारण सबको अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्ति होती है, तथा जिससे समस्त विश्व व्याप्त है, उसी ईश्वरको प्रत्येक मनुष्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) अपने-अपने कर्मोंद्वारा पूजकर सिद्धि प्राप्त करता है। (१८। ४६)

मोक्ष

भगवान्‌ने कहा है—

'हे अर्जुन ! जो मेरे ही निमित्त कर्म करता है, मुझको ही सर्वश्रेष्ठ मानकर, केवल मेरी ही भक्ति करता है, जो संसारी माया-मोहसे दूर रहता है और किसी प्राणीसे वैरभाव नहीं रखता, अर्थात् सबका सच्चा मित्र बना रहता है, वह मुझको ही पाता है। मैं ही उसकी गति हूँ। इसी परमगतिको मोक्ष कहते हैं। जो जानते हैं कि 'वासुदेवः सर्वमिति' अर्थात् वासुदेव ही सब कुछ हैं, उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है वे ही सच्चे महात्मा हैं, ऐसे लोग धन्य हैं।' (११। ५५)

श्रीमद्भागवतमें कहा है कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं और अन्य अवतार उसी एक परमात्माके अंशमात्र हैं।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

अतः—

स्मर्तव्यः सततं कृष्णो विस्मर्तव्यो न जातुचित्॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णका सदा स्मरण करना चाहिये। उनको कभी नहीं भूलना चाहिये। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

सीयराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

कबीरदासजीने भी कहा है कि सोते-जागते, उठते-बैठते अर्थात् प्रत्येक क्षण हरि (पापोंके हरनेवाले) का नाम जपना चाहिये। कहा भी है कि इस असार संसारको पार करनेका एकमात्र उपाय गीतारूपी नाव है, जिसे स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे वर्णन किया है।

भगवान् श्रीवासुदेव सर्वव्यापी हैं, जैसा कि महाकवि देवने कहा है—

दूरि सब ही ते भरिपूरि रह्यो सबमें।

वे प्रत्येक अणुमें, जलमें, स्थलमें, आकाशमें, अखिल ब्रह्माण्डमें और घट-घटमें विराजते हैं। अखिल ब्रह्माण्ड और उसके परे सर्वत्र वासुदेवमय है।

भगवान्‌ने कहा है—

हे अर्जुन ! मुझसे परे कुछ भी नहीं है। यह सब लोक (अखिल ब्रह्माण्ड) सूतमें मनकोंके समान मुझहीमें पिरोया हुआ है। मैं केवल अपने एक अंशसे सारे जगत्‌में व्याप्त हूँ। (७। ७; १०। ४२ उत्तरार्ध)

हनूमान्‌जीने कहा है कि मुझे सुन्दर जटावाले श्रीरामचन्द्रजी प्रत्येक पत्तेमें दीखते हैं।

भगवान्‌ने भी कहा है—

मैं सबके हृदयमें बसता हूँ। हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। तू केवल उसी एक ईश्वरकी (जो कि हृदयमें स्थित है) मनसा, वाचा, कर्मणा शरण ले। उसकी असीम कृपासे तुझे परमशान्ति और परमगति प्राप्त होगी। (१८। ६१-६२)

श्रीवासुदेव ही सच्चे तीर्थ हैं

खेद है कि भोले भाई उस सच्चे तीर्थको, जो कि सबके हृदयमें विराजमान है, छोड़कर अन्य तीर्थोंमें भटकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मशुद्धि और भगवत्प्राप्तिके लिये एकमात्र भगवद्भक्ति-रूप परम पावन सलिलमें ही अवगाहन करना चाहिये। इसके लिये कहीं अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं है। * वह तो अविच्छिन्नरूपसे सबके अन्तस्तलमें हिलोरें मार रहा है। श्रीव्यासजीने कहा है कि दिव्य ब्रह्मज्योति अपने ही अन्दर है न कि कहीं बाहर।

उस मानस-तीर्थकी महिमाका जगह-जगह इस प्रकार वर्णन किया गया है—

आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा
सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥
(वामन० ४३। २५)

ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वमार्जवमेव च॥
(पद्म० उ० २३७। १२)

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यतीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
(पद्म० उ० २३७। ३५)

'आत्मारूप नदी संयमरूप जलसे पूर्ण है। वह सत्यकी ओर बहनेवाली है, शील उसके तट हैं और दया लहरें हैं। हे पाण्डुपुत्र! तू उसीमें अभिषेक कर, जलसे अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं हो सकती। ज्ञान जिसका कुण्ड है, जिसमें ध्यानरूप जल है, जो राग-द्वेषरूप मलको दूर करनेवाला है उस मानस-तीर्थमें जो पुरुष स्नान करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है। सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियनिग्रह तीर्थ है, सम्पूर्ण भूतोंपर दया करना तीर्थ है, सब प्रकारकी सरलता तीर्थ है, दान तीर्थ है, दम तीर्थ है और सन्तोष भी तीर्थ कहा जाता है। ब्रह्मचर्य बड़ा उत्कृष्ट तीर्थ है, प्रियभाषण भी तीर्थ ही है तथा ज्ञान, धृति और पुण्य भी तीर्थ माने गये हैं। ये ही तीर्थोंमें उत्कृष्ट तीर्थ हैं और इन्हींसे मनकी अत्यन्त शुद्धि होती है।'

श्रीमनुजीने भी कहा है कि जलसे शरीरकी शुद्धि होती है, पर मनकी शुद्धि सत्यसे ही होती है। किन्तु फिर भी हमारा यह सविनय निवेदन है कि इन पंक्तियोंको लिखकर तीर्थयात्राका विरोध करना हमें कदापि अभीष्ट नहीं है। तीर्थयात्राके प्रेमी तीर्थयात्रा कर उससे लाभ उठावें, पर साथ-ही-साथ वे अन्तरात्माकी शुद्धिके लिये आत्मतीर्थका भी आनन्द अवश्य लें और इसे कदापि न भूलें।

अवतार

भगवान्‌ने कहा है—

मैं अज, अविनाशी, भूतोंका ईश्वर रहते हुए ही अपनी प्रकृतिको साथ लेकर लीलासे अवतीर्ण होता हूँ। हे अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं साधुओंको बचाने, एवं पापी, नीच कर्म करनेवालोंका नाश करनेके निमित्त तथा धर्मकी रक्षा और संस्थापनाके लिये युग-युगमें प्रकट होता हूँ अर्थात् अवतारादि धारण करता हूँ। जो पुरुष मेरे दिव्य जन्म-कर्मको तत्त्वसे जान लेता है वह शरीरको छोड़कर पुनः जन्म धारण नहीं करता। हे अर्जुन! तू सब समय मुझको स्मरण कर और युद्ध कर। (अर्थात् अपना कर्तव्य पालन कर) इस प्रकार मुझमें अपना मन और बुद्धि अर्पण करके तू मुझहीको प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे अर्जुन! यदि मैं किसी समय आलस्ययुक्त होकर कर्म न करूँ तो सब लोग मेरे ही मार्गका अनुवर्तन करने लगें (इसीलिये मैं सदा आलस्यरहित कर्ममें जुटा रहता हूँ।) हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, कर्मके फलमें तेरा अधिकार नहीं है। अतः तू कर्मफलको अपनी प्रवृत्तिका हेतु न बना और न अकर्ममें ही आसक्त हो।
(४। ६–९; ८। ७; ३। २३; २। ४७)

दैवी और आसुरी सम्पदा

हे अर्जुन! मनुष्योंकी प्रकृति दो प्रकारकी होती है। अर्थात् कोई तो दैवी स्वभाववाले और कोई आसुरी स्वभाववाले लोग होते हैं।

* यहाँपर तीर्थोंकी निन्दा करनेका कदापि प्रयोजन नहीं है, कहनेका तात्पर्य केवल यही है कि वास्तवमें इनसे वैसी आत्म-शुद्धि या आत्मोद्धार नहीं हो सकता, जैसा आत्मतीर्थमें अवगाहन करनेसे होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैवीसम्पदा

अपने मान-अपमान, स्तुति-निन्दासे विचलित न होना, मित्र और शत्रुको बराबर समझना, एकीभावसे मेरी अनन्य भक्ति करना, भयका त्याग करना, अपने अन्तःकरणकी शुद्धि कर ज्ञानयोगमें लवलीन रहना, इन्द्रिय-निग्रह करना; दान, यज्ञ, पाठ (स्वाध्याय अथवा हरिकीर्तन), तप, आर्जव (सरलता, मिथ्या आडम्बरका त्याग), अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, किसीकी निन्दा न करना, सब प्राणियोंपर दया करना, आसक्त न होना, कोमलता, लज्जा, चञ्चलताका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, किसीका द्रोह न करना और अभिमानरहित होना—ये सद्गुण दैवीसम्पदा माने जाते हैं और ये मोक्षके साधन हैं।

आसुरी सम्पदा

आसुरी स्वभावके लक्षण ये हैं—पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान। आसुरी सम्पदासे बन्धन होता है। असुर लोग विवेकशून्य होते हैं, वे नहीं जानते कि कौन कर्म करने योग्य है और कौन न करने योग्य। अर्थात् किस कर्मको करना चाहिये और किससे बचना चाहिये। उनका आचरण भ्रष्ट होता है और उनमें आत्मा एवं शरीरकी शुद्धि नहीं होती है। उनमें सत्य नहीं होता और झूठ ठूँस-ठूँसकर भरा होता है। वे कहते हैं कि संसार सत्य तथा आश्रयरहित है, ईश्वर है ही नहीं। संसार केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है, यदि यह भोगोंके निमित्त नहीं है तो क्या है? ऐसे मूर्ख और दुष्ट लोगोंसे संसारका कुछ उपकार नहीं हो सकता, वे तो केवल संसारका नाश करनेके लिये ही उद्यत रहते हैं और रात-दिन सांसारिक चिन्ताओंमें (जिनका कि अन्त ही नहीं है) तथा काम, क्रोध, मोहमें फँसे रहते हैं। वे सदा इसी सोचमें डूबे रहते हैं कि आज मैंने यह पाया, कल वह पाऊँगा। आज इस शत्रुको मारा, कल उसे मारूँगा। मैं धनवान् हूँ, मैं कुलीन हूँ, मैं शक्तिमान् हूँ, वाह! मैं ही सब कुछ हूँ और मैं ही ईश्वर हूँ। मेरे बराबर कौन हो सकता है? इत्यादि।

हे अर्जुन! काम, क्रोध और लोभको नरकके द्वार समझकर इनका त्याग करना चाहिये। इनसे आत्माकी अवनति अथवा अधोगति होती है। जो मनुष्य इनके वशमें नहीं है, वह स्वयं अपनी उन्नति अथवा कल्याण करता है। वह ठीक मार्गमें है, इसलिये वह परम गतिको प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! विषयेन्द्रियोंके भोगोंको तू दुःखकी जड़ जान। ये सुख क्षणिक हैं। आगे चलकर इनके कारण दुःख-ही-दुःख मिलता है। बुद्धिमान् लोग इनमें कभी निमग्न नहीं रहते। आत्मज्ञानी लोग तो आत्मामें ही रमण करते हैं, न कि विषयेन्द्रियोंमें। अर्थात् उनका आत्मामें ही प्रेम होता है, न कि विषयोंमें। इसीलिये वे लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत* करते हैं। हे अर्जुन! अपने मनको सदा अपने वशमें रख। अर्जुनने कहा—'हे प्रभो! मन तो बड़ा ही चञ्चल है और सहसा कहीं-का-कहीं ले जाता है। इसमें किसीका वश नहीं चलता है। भगवन्! यह समझमें नहीं आता कि इसे किस प्रकारसे अपने वशमें किया जाय। इसको वशमें करना तो ऐसा ही कठिन है कि जैसे वायुको पकड़ना।'

भगवान्‌ने कहा—'हे वीर! निःसन्देह मन चञ्चल है, एवं उसका वशमें करना बहुत कठिन है, पर अभ्यास और वैराग्यसे यह भी वशमें हो सकता है। हे अर्जुन! प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वह स्वयं अपने आत्माका उद्धार करे और अपना अधःपतन न होने दे। क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु (मित्र) है और आत्मा ही अपना शत्रु है। जिसने अपनी आत्माको जीत लिया, उसका आत्मा उसका बन्धु है, जिसने अपने आत्माको नहीं जीत पाया अर्थात् अपने मन और शरीरको अपने वशमें नहीं किया, उसका आत्मा ही उसका शत्रु है।' (६। ३४; ६। ५-६)

आदर्श जीवन

भगवान्‌ने कहा—'हे अर्जुन! जो भक्त सब प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित है, अर्थात् किसीसे द्वेष नहीं करता, सबका मित्र है, सबपर दया करता है, ममता और अहङ्काररहित है, सुख-दुःखसे विचलित नहीं होता है और उनको एक-सा समझता है तथा दूसरोंके अपराध क्षमा करता है, जो सन्तुष्ट

* ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत आवश्यक है। अन्यथा शरीर, मन, बुद्धि और आत्माको हानि पहुँचती है। ऋषि-मुनियोंने ब्रह्मचर्यका सदा पालन किया और तभी उनको ऊँची पदवी मिली। श्रुतिमें कहा है—'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत' अर्थात् देवतागण ब्रह्मचर्य-तपस्याके कारण अमर हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है तथा सदा मेरे ध्यानमें तत्पर रहता है, जिसने अपने शरीर, मन तथा आत्माको वशमें कर लिया है, जो अपने निश्चयमें दृढ़ रहता है और जिसने अपने मन और बुद्धि मुझमें अर्पण कर दिये हैं ऐसा जो मेरा भक्त है वह मुझे प्रिय है। तथा जिससे दूसरे लोग उद्वेगको प्राप्त नहीं होते और जो स्वयं दूसरोंसे उद्विग्न नहीं होता, जो शत्रु और मित्रके लिये एक-सा बर्ताव करता है तथा अपने मान और अपमानको एक-सा समझता है, जो सुख-दुःखको बराबर गिनता है, आसक्तिरहित है और सदा सन्तुष्ट रहता है, वह मुझे अति प्यारा है।' (१२ । १३-१५)

विराट् रूप

जब अर्जुनने भगवान्‌का विश्वरूप देखनेकी इच्छा प्रकट की तो प्रभुने कहा—'हे अर्जुन ! मैं तुझे दिव्य ज्ञान-चक्षु देता हूँ। जिससे तू मेरे इस देहमें एक ही जगह एकत्रित, अखिल ब्रह्माण्ड (सम्पूर्ण चराचर जगत् तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है) देख सकता है। ब्रह्मज्ञानद्वारा यह अनुभव होता है कि श्रीवासुदेव सर्व-व्यापी हैं और उनसे बाहर कुछ भी नहीं है। अखिल ब्रह्माण्ड श्रीवासुदेव (सर्वव्यापी देवता) का ही स्थूल रूप है और उन्हींमें बसा है। 'भगवान् वासुदेवो हि सर्वभूतेष्व-वस्थितः' भगवान् वासुदेव ही सब प्राणियोंमें स्थित हैं। श्रीभीष्मपितामहने कहा है—'जैसे तालाबमें हंस रहते हैं, उसी प्रकार परमात्मा (श्रीवासुदेव) में सब लोक स्थित हैं। यह ज्ञान केवल अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त हो सकता है।'

भगवान्‌ने कहा—

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥

(गीता ११ । ७)

इससे स्पष्ट है कि सारा जगत् भगवान्‌में ही स्थित है, और उनसे अलग कुछ भी नहीं है।

स्तुति

भगवान्‌का विराट् रूप देखकर अर्जुन चकित हो गया और उसने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की—

हे हृषीकेश ! आप अन्तर्यामी हैं। यह सत्य है कि आपहीकी महिमासे सारा जगत् हर्षित और प्रफुल्लित होता है और अनुरागको प्राप्त होता है। यह यथोचित ही है। (क्योंकि आप ही भूतात्मा और विश्वात्मा हैं।) दुष्टजन आपके भयसे भागते हैं, पर धर्मात्मा और महात्मालोग आपसे स्नेह रखते हैं और आपकी आज्ञाका पालन करके आपको नमस्कार करते हैं। हे महात्मन् ! आप तो जगत्‌के आदिकर्ता ब्रह्मासे भी महान् हैं, फिर वे आपको नमस्कार क्यों न करेंगे ? हे अनन्त ! आप देवताओंके भी स्वामी और जगत्‌के निवासस्थान तथा अविनाशी हैं। सत् (अर्थात् जो विद्यमान है), असत् (जो विद्यमान नहीं है) और जो सत्, असत् इन दोनोंसे भी परे है, आप ही हैं। अर्थात् आप ही सब कुछ हैं। आप ही आदिदेव, पुराण-पुरुष और इस विश्वके परम निधान हैं। आप ही सबको जाननेवाले हैं, तथा आप ही जाननेयोग्य भी हैं। हे अनन्तरूप ! आप ही परमधाम हैं और सारा विश्व आपहीसे परिपूर्ण तथा व्याप्त है। वायु, यम, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा आदि भी आप ही हैं। तथा आप ही प्रजापति और प्रपितामह हैं, आपका पराक्रम अपार है, आपको हजारों बार नमस्कार है। तथा फिर भी बारम्बार नमस्कार है, आपको आगेसे नमस्कार है और पीछेसे भी नमस्कार है। हे सर्व ! आपको सभी ओरसे नमस्कार है। हे अनन्तवीर्य ! आप अत्यन्त पराक्रमी हैं, सबको व्याप्त किये हैं और सर्वत्र फैले हुए हैं, अपनाही-सा साधारण व्यक्ति और अपना सखा जानकर आपकी इस महिमाको न जानकर मैं प्रमाद और स्नेहवश आपको 'हे कृष्ण' ! 'हे यादव' ! 'हे सखा' ! इत्यादि कहकर पुकारता था। हे अच्युत ! इस प्रकार मैंने आपका उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते, विहार तथा भोजन करते समय अथवा अकेलेमें जो तिरस्कार किया हो, उसे मैं आपसे क्षमा कराता हूँ। क्योंकि आप ही इस चराचर जगत्‌के पिता और सबसे बड़े गुरु तथा पूजनीय हैं। हे अप्रतिमप्रभाव ! तीनों लोकमें आपके समान कोई नहीं है। भला आपसे बढ़कर कौन हो सकता है ? हे ईश ! आप पूजनीय हैं, इसीलिये मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करके आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। हे देव ! जैसे पिता अपने पुत्रके, सखा अपने सखाके, अथवा जैसे प्रिय (पति) अपनी प्रिया (स्त्री) के अपराध क्षमा करता है, वैसे ही आपको मेरे अपराध क्षमा करने उचित हैं। हे नाथ ! मैं आपके इस रूपको देखकर हर्षित हुआ, पर बहुत घबरा भी गया हूँ। इसलिये अब आप कृपाकर मुझे अपना मानुषी रूप दिखलाइये, जिससे कि मेरा भय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर हो। हे जगन्निवास ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। (११। ३६-४५)

भगवान्‌ने कहा—'हे अर्जुन ! तू मेरे इस विराट् रूपको देखकर व्याकुल मत हो और निर्भय तथा प्रसन्नचित होकर मेरे इस रूपको फिरसे देख। मनुष्य केवल अनन्यभक्तिसे ही मेरा यह दिव्य रूप देख सकता है। और मुझे तत्त्वसे जान सकता है, तथा मुझमें प्रवेश कर सकता है। हे अर्जुन ! जो भक्त मुझको ही सबसे बड़ा समझकर मेरे लिये ही कर्म करता है और आसक्तिरहित है, अर्थात् सांसारिक माया-मोहमें फँसा नहीं है और सम्पूर्ण प्राणियोंसे वैररहित होता है, वह मुझको पाता है।' (११। ४९, ५४-५५)

अनन्यभक्ति

भगवान्‌ने कहा है 'हे अर्जुन ! मैं ही उस अविनाशी परब्रह्म अमृत शाश्वत धर्म और ऐकान्तिक सुखका आश्रय हूँ। तू केवल मुझको ही अपना प्रभु और स्वामी जानकर अनन्य और एकीभावसे मेरी उपासना कर। तू अव्यभिचारिणी भक्तिसे, मुझ त्रिलोकीनाथको सर्वशक्तिमान् परमेश्वर एवं सब कुछ जानकर, मेरी ही उपासना कर; जैसे पतिव्रता स्त्री (आर्य-महिला) अपने पतिको ही अपना स्वामी, प्रभु एवं सब कुछ जानकर सप्रेम, शुद्धभाव, और तन, मन, धनसे अपनेको निछावर कर, उसीकी सेवामें सदा तत्पर रहती है। इसीको अनन्य या अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं।

न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलं
न वासुदेवात्परमस्ति पावनम्।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं
तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति॥

श्रीवासुदेव परम कल्याणस्वरूप हैं। श्रीवासुदेव परम पवित्र करनेवाले हैं। श्रीवासुदेव सर्वश्रेष्ठ देवता हैं और उनके परे कुछ भी नहीं है। ऐसे वासुदेवका भक्त कभी दुःख नहीं पाता और उसका सर्वथा कल्याण होता है। श्रीवासुदेव सर्वव्यापी हैं, हमारे हृदय-मन्दिरमें साक्षीरूपसे निवास करते हैं। हमें आर्जव, अन्तःकरणकी शुद्धि, परस्पर प्रेम और निष्काम कर्तव्यपालनसे तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, छल, कपट और राग-द्वेषको त्यागकर, अनन्यभक्तिसे अपना हृदय-मन्दिर स्वच्छ एवं निर्मल रखना चाहिये ताकि हम उस अनन्त अनादि-निधन, परम-उदार, दयानिधान, करुणासागर, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, लोक-बन्धु, अखिल ब्रह्माण्डके स्रष्टा, सञ्चालक एवं अध्यक्ष, सब प्राणियोंके माता, पिता, गुरु, सुहृद् तथा स्वामी सच्चिदानन्दघन परब्रह्मकी दिव्य झलक देख सकें।

जीवात्मा

परमात्माके ही प्रकाशका अंश है, इसलिये यह अमर माना गया है। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह केवल शरीर अथवा चोलेका छोड़ना है। आत्मा कभी नहीं मर सकता और न उसे कोई मार सकता है। उसका कोई छेदन नहीं कर सकता है और न उसको कोई जला या सुखा सकता है। यह नित्य है तथा शरीरके नष्ट होनेपर भी उसका नाश नहीं होता।

श्रीशङ्कराचार्यजीने कहा है कि परमात्मा महासागर है और जीवात्मा उसकी तरङ्गमात्र है। 'तरङ्ग समुद्रकी होती है न कि समुद्र तरङ्गका। अतः हे नाथ ! मैं आपका हूँ न कि आप मेरे हैं।'

शरीर और आत्मा

शरीरको आत्माका केवल वस्त्र मानना चाहिये। उसका नाश होनेपर भी जीवात्मा नष्ट नहीं होता। एक समय मिथिलापति महाराज जनक श्रीअष्टावक्रजीको देखकर मुसकाये। परमज्ञानी श्रीअष्टावक्रजी इस बातको ताड़ गये कि विदेह महाराजने मुझे अत्यन्त कुरूप समझकर अपने मनमें शङ्का की है कि मुझमें ब्रह्मज्ञान कैसे हो सकता है ? वे बोले 'महाराज ! यदि आप मेरे कुरूप देहका विचार छोड़कर आत्मापर विचार करेंगे तो आपको मेरी टेढ़ी-मेढ़ी देहमें स्थित आत्मा टेढ़ी नहीं जान पड़ेगी; देखिये, नदी टेढ़ी होती है, पर उसका जल टेढ़ा नहीं होता। गन्ना टेढ़ा होता है क्योंकि उसमें गाँठें होती हैं, पर उसका रस टेढ़ा नहीं होता। इसी प्रकार यद्यपि मेरा शरीर टेढ़ा है, परन्तु अन्तर्यामी आत्मा टेढ़ा नहीं है। वह तो असङ्ग, निर्विकार, व्यापक, ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप, अखण्ड्य, अच्छेद्य, अकाट्य, अभेद्य, नित्य, निर्मल, शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव और अमर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा और परमात्मा

श्रुतिमें कहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
(मुण्ड० ३ । १ । १)

अर्थात् (जीवात्मा और ईश्वररूप) दो पक्षी समान वृक्ष (देह) में साथ-साथ परस्पर सखा होकर रहते हैं। उनमेंसे जीवात्मा तो कर्मफलोंको भोगता है, पर ईश्वर (जो कि अन्तर्यामी और प्रकाशक है) साक्षीरूपसे रहता है।

परमात्मा

जब हम संसारके वास्तविक स्वरूपका अनुसन्धान करते हैं तो हमें अन्तमें दो ही तत्त्व इस सम्पूर्ण प्रतीयमान जगत्‌के मूलमें दिखायी देते हैं। उनमें एक तो वह है जो सम्पूर्ण कार्य, करण और क्रियाका हेतुभूत है और दूसरा उस सम्पूर्ण दृश्यवर्गका साक्षी है। गीताने पहलेको 'क्षर' या 'प्रकृति' शब्दसे तथा दूसरेको 'अक्षर' या 'पुरुष' शब्दसे निर्देश किया है। प्रकृति जड और दृश्य है, पुरुष चेतन और द्रष्टा है। स्वरूपतः ये दोनों ही तत्त्व अनादि हैं; परन्तु पुरुष सर्वदा एकरस और अपरिणामी है तथा प्रकृति विकारी और परिणामशीला है। बुद्धिसे लेकर शरीर-इन्द्रिय आदि सारा विकार तथा गुणोंके कार्यभूत सुख-दुःख एवं मोह आदि प्रकृतिके ही कार्य हैं; प्रकृतिमें स्थित हुआ पुरुष केवल इनका भोक्ता है; वह विकाररूप अथवा विकारोंका कर्ता नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सारा जगत् इन भोक्ता-भोग्यरूप पुरुष और प्रकृतिका ही विलास है। किन्तु इन दोनोंसे परे, इन दोनोंका अधिष्ठान कोई और ही है। उसका साक्षात् स्वरूप निर्देश करनेके लिये संसारके पास कोई साधन नहीं है। उसे गीताने 'पुरुषोत्तम' 'परमात्मा' या 'ईश्वर' कहकर निरूपण किया है। वह अविनाशी, अच्युत, अकर्ता, अभोक्ता अप्रमेय परमात्मा ही सबका अधिष्ठान है; इसीसे उसे सबका भर्ता (भरण करनेवाला) कहा गया है। (गीता १५। १७)

उसके विषयमें श्रुति कहती है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'एकमेवाद्वितीयम्' 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' 'एकं सन्तं बहुधाः कल्पयन्ति' अर्थात् 'ब्रह्म सत्य ज्ञान-स्वरूप और अनन्त है' 'वह एक ही है और अद्वितीय है'। 'विद्वान् लोग उसी एक परब्रह्मको कई नामसे पुकारते हैं और उसकी बहुत प्रकारसे कल्पना करते हैं।' श्रीभीष्म-पितामहने कहा है—'धाता, भगवान्, नारायण, हरि एक ही ईश्वरके नाम हैं। उनकी सत्ताको न तो देवताओंने ही जाना, न ऋषिगण ही जान सके।' 'एको नैकः' परमात्मा एक ही है पर अपनी मायासे अनेक-सा प्रतीत होता है। वह सर्वत्र है, वह निर्गुण है और सगुण भी है। वह अनन्त है एवं उसके सहस्र अर्थात् असंख्य नाम हैं, जो कि उसके किसी-न-किसी भाव अथवा गुणके वाचक हैं। वह आत्माओंका स्वामी होनेके कारण परमात्मा, समस्त लोकोंका अधिपति होनेके कारण परमेश्वर, परम कल्याणस्वरूप होनेके कारण सदाशिव, लक्ष्मी (सम्पत्ति) का स्वामी होनेके कारण माधव, दशरथके घर अवतरित होने तथा सबमें रमण करनेवाला होनेसे 'राम', सत्+चित्+आनन्दस्वरूप होनेके कारण सच्चिदानन्द, श्रीवसुदेवके घर प्रकट होने तथा सर्वव्यापक होनेके कारण श्रीवासुदेव और सर्वश्रेष्ठ (परम) पुरुष होनेके कारण पुरुषोत्तम, कहलाता है। तथा दुष्ट मनुष्योंको कर्मानुसार दण्ड देता है, इसलिये वह जनार्दन है, भक्तोंके पापोंको हरता है, इसलिये हरि है तथा सर्वत्र वास (या प्रवेश) किये हुए है, इसलिये विष्णु, कहलाता है और वही इस असार मृत्युलोकमें एक-मात्र आनन्द तथा सहारा होनेके कारण कृष्ण (कृ+ष्ण) कहलाता है।

श्रुतिमें कहा है कि उस महद्यश (परमात्मा) की कोई प्रतिमा या मूर्ति नहीं है—

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।

और सारा जगत् उसीकी प्रतिमा और महिमा है। ठीक है, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, नक्षत्रादि, सारा विश्व, उसीके अधिष्ठानके विभिन्न स्वरूप और उसी विश्वकर्माके चमत्कार हैं एवं उसीकी महिमा गा रहे हैं। श्रुति और स्मृतिमें कहा है कि सृष्टिके आदिमें केवल परमात्मा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, अन्तमें भी केवल वही 'युगान्तशेष' रहेगा। वह 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है। वह एक ही है और सनातन पुरुष अथवा पुराणपुरुष है। वह सत्य है, सत्यस्वरूप है, नित्य स्वयं प्रकाशमान है, नित्य है, अनन्त है, सबका आदि-कारण है, नाशरहित है, नित्य आनन्दस्वरूप है, स्वच्छ है, पूर्ण है, अद्वितीय है, अमृत है और उपाधि-रहित है।

उसका तीनों लोकोंमें कोई स्वामी नहीं है, न उसको कोई आज्ञा देनेवाला है। वह अमूर्तिमान् है, एवं उसका कोई लिङ्ग (स्थूल चिह्न) भी नहीं है। वही सबका कारण है, उसका कोई उत्पन्न करनेवाला या स्वामी नहीं है। वह ईश्वरों (राजाओं, बादशाहों, लोकपालों और ब्रह्माण्डनायकों) का भी परमेश्वर है और देवताओंका भी परम देवता है। वह स्वामियोंका भी स्वामी है। वह सब लोकोंका स्वामी तथा बड़े-से-बड़ा देवता है। और यह सब कुछ भी वही बना हुआ है। उसमें सब कल्पित है और वह सबमें सत्यरूपसे विराजित है।

वह अजन्मा, अमर, सर्वव्यापक, सब लोकोंका अध्यक्ष तथा परमेश्वर है। वह सब वेद तथा धर्मोंका जाननेवाला और लोकोंकी कीर्ति बढ़ानेवाला सबका स्वामी है तथा सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और संहारका कारण है। वह परम तेज है, जो सारे जगत्‌को अपने प्रकाशसे प्रकाशित करता है। वह परब्रह्म और परम प्रभु है। वह देवताओंका भी देवता है और परम पवित्र, परम कल्याणस्वरूप तथा सब प्राणियोंका अविनाशी पिता है। वह सर्वव्यापक, सब लोकोंका प्रधान और सारे जगत्‌का स्वामी है। देवता, ऋषि, पितर, असुर, समस्त चराचर जगत् तथा योग, ज्ञान, सांख्य, विद्या, कर्म, वेद, शास्त्र, विज्ञान एवं शिल्पादि उसीसे उत्पन्न हुए हैं। वही सर्वमय देव है, जिसमें सब हैं और जिससे सब उत्पन्न हुए हैं, जो सभी ओर है तथा सर्वात्मा और सर्वस्वरूप है उसी विश्वकर्मासे सारा विश्व उत्पन्न हुआ है। वही कर्ता, कारण, कर्म, उपादान इत्यादि सब कुछ है। इसीलिये उसे—

कारणं करणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः।

कहा गया है।

उसके सब ओर हाथ, पैर, आँख, सिर, मुँह और कान हैं और वह सबको व्याप्त किये हुए है। वह सब इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी, सब इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेमें समर्थ है। स्वयं आसक्तिरहित है, परन्तु सबको धारण किये हुए है; निर्गुण है, पर गुणोंका भोगनेवाला भी है। वह चर, अचर दोनों है। वह दूर भी है और समीप भी है। सूक्ष्म होनेके कारण वह 'अविज्ञेय' है। अर्थात् जाना नहीं जा सकता।

'बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना।
आननरहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥'

वह बिना हाथ-पैरके है, पर ग्रहण करता है और चलता है। उसके आँखें नहीं हैं, पर वह देखता है। उसके कान नहीं हैं, पर वह सुनता है।

वह सत्यव्रत, परम सत्य, तीनों लोक तथा तीनों कालोंमें सत्यस्वरूप, सत्यके उत्पत्तिका स्थान, सत्यमें रहनेवाला, सत्यका भी सत्य, ऋत, सत्य नेत्रवाला (जो यथार्थको देखता है तथा सत्यकी ही आँखसे देखता है) और सत्यात्मा है।

वह स्वयम्भू (आप ही उत्पन्न होनेवाला) सारे विश्वका आधार है। उसीसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है और उसीके कारण यह सब विश्व वर्तमान है। वह स्वयं विश्वरूप है और विश्व तथा विश्वके परेसे भी परे है।

उस परमात्माके भयसे सूर्य तपता है, वायु चलता है, अग्नि प्रज्वलित होता है और मृत्यु मारता है। अर्थात् उस एक सर्वशक्तिमान् नियन्ताकी आज्ञानुसार सारी प्रकृति अपना-अपना काम करती है।

श्रीवासुदेवका अव्यक्त तथा अचिन्त्य रूप

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
नारायणं कारणमादिदेवम्।
युगान्तशेषं पुरुषं पुराणं
तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये॥

भगवान्‌ने कहा—'हे अर्जुन! मुझे तत्त्वसे देवता और महर्षिगण किसीने भी नहीं जाना।' अर्जुनने कहा—'हे प्रभो! आप ही इस जगत्‌के स्वामी, सब प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले और उनके ईश्वर तथा देवताओंके देवता हैं। हे पुरुषोत्तम! आप ही स्वयं अपने तत्त्वको जान सकते हैं। भला किसी दूसरेकी आपको जाननेकी सामर्थ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे हो सकती है ?' भगवान्‌ने कहा—'हे अर्जुन ! मैंने लीलासे दिव्य मनुष्य-शरीर धारण किया है, एवं मूर्ख लोग मुझे एक साधारण मनुष्य जानकर मेरी अवहेलना करते हैं । वे मेरे परम अविनाशी एवं अत्युत्तम (सर्वश्रेष्ठ) भावको नहीं जानते ।'

श्रीवासुदेव निर्गुण तथा सगुण

अर्जुनने भगवान्‌से प्रश्न किया—'प्रभो ! बतलाइये यथाविधि आपकी उपासना करना, और अव्यक्त (परब्रह्म) की उपासना करना, इन दोनोंमें आप किस उपासनाको श्रेष्ठतर मानते हैं ?'

भगवान्‌ने उत्तर दिया—जो मुझ सगुणस्वरूपमें मन लगाकर परम श्रद्धाके साथ मेरी उपासना करते हैं वे ही योगवित्तम हैं परन्तु हे अर्जुन ! मैं और अव्यक्त (परब्रह्म) कदापि अलग-अलग नहीं हैं । मैं ही परब्रह्म हूँ, मुझसे परे कुछ भी नहीं है । जो भक्त इन्द्रियोंको अपने वशमें करके पक्षपातरहित समदृष्टि हो सबको बराबर जानते हैं, और सब प्राणियोंके सच्चे मित्र बनकर उनके हितमें सदा तत्पर रहते हैं और उस कूटस्थ*, अविनाशी, सर्वव्यापी, अचिन्त्य अर्थात् मन और बुद्धिसे परे, नित्य, अचल, अव्यक्त (निराकार परब्रह्म) की उपासना करते हैं, वे मुझको ही प्राप्त होते हैं । परन्तु हे तात ! देहधारी मनुष्योंकी पहुँच उस निराकार अनन्ततक होनी ही बहुत कठिन है, क्योंकि वह मन और बुद्धिसे परे है । एवं उसकी कल्पना ही नहीं हो सकती । (अर्जुन तो विराट् रूप देखकर ही घबरा गया, उसके छक्के छूट गये और उसको अपनी सुध-बुध कुछ भी नहीं रही ।) इसलिये तू मुझ (सगुण परब्रह्म) में ही अपना मन और बुद्धि लगा । यही सरल मार्ग है । ऐसा करनेसे तू निस्सन्देह मुझहीमें निवास करेगा, मुझको ही प्राप्त होगा । हे अर्जुन ! तू अनन्य-भक्तिसे केवल मेरी ही शरणमें आ । इसीमें तेरा परम कल्याण है । सारांश यह है कि तू सब धर्मोंको छोड़कर केवल मेरी ही शरणमें आ । मैं तेरा सब पापोंसे छुटकारा करूँगा, तू कुछ भी शोक मत कर (१२ । १–७; १८ । ६६) ।

यह सब सुनकर अर्जुनने कहा—'हे प्रभो ! मेरी भारी भूल थी, अब आपकी कृपासे मेरा संशय दूर हो गया है और अज्ञानका भी नाश हो गया है । मैं आपकी आज्ञानुसार अपना निष्काम कर्तव्य पालन करूँगा' (१८ । ७३) । भगवान्‌ने कहा—'हे अर्जुन ! तू मुझमें ही अपना मन लगा, मेरा ही भक्त बन, मेरी ही पूजा कर, और मुझको ही नमस्कार कर । ऐसा करनेसे तू मुझको ही पायेगा । तू मेरा प्यारा है, इसे तू मेरी सत्य प्रतिज्ञा जान । हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरे भक्तोंको हमारा यह परम गुह्य सन्देश सुनायेगा, वह इस संसारमें मेरी परा भक्ति करके निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा ।' (१८ । ६५, ६८)

संजय बोले—हे महाराज ! मेरा मत यह है कि जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और धनुषधारी अर्जुन हैं (अथवा जहाँ इनका नित्य कीर्तन होता है) वहीं लक्ष्मी, विजय, विभूति और अटल नीति है । (१८ । ७८)

शुभमभूयात्

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ।

यदि तुझे पा जाऊँ

नयनमें पूतरी सरिस मैं बसाऊँ बैनमें बरनमाला ही सो तोकहँ सजाऊँ मैं ।
मोह-अन्धकारके समान ही हृदय माहिं मूरति तिहारी नेह सानिकै जमाऊँ मैं ॥
मस्तकमें कारे केस ही सो बेस तेरो ध्यान सकल सुज्ञान सीस ऊपर मढ़ाऊँ मैं ।
नस-नस रोम-रोम तेरो रूप छाऊँ जोपै कवि 'राजहंस' मेरे श्याम ! तोहिं पाऊँ मैं ॥

—बलदेवप्रसाद मिश्र

* प्रकृतिको 'माया' या कूट कहते हैं तथा महेश्वरको 'कूटस्थ' या मायाका अधिष्ठाता अथवा स्वामी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या विज्ञानके रूपमें धर्मका अध्ययन हो सकता है ?

(लेखक—श्रीरामरतनजी खन्ना)

अगस्त सन् १९२९ से पहले, जब कि भगवत्कृपासे मेरा एक महात्माके मार्गमें प्रवेश हुआ था, मैं केवल एक दिल्लगीबाज़ आदमी था जैसे कि हममेंसे आजकल बहुत-से हुआ करते हैं। जिन बातोंको मैं आज कहना चाहता हूँ, उस समय उनमेंसे किसीको भी मानना मेरे लिये असम्भव था। मैं जो कुछ अब लिख रहा हूँ उसका आधार स्वयं मेरा अनुभव है, जिसकी जाँच-पड़ताल भी कई बार हो चुकी है। ये पंक्तियाँ सेवा-भावसे लिखी जाती हैं। यह उन लोगोंके कल्याणके लिये हैं जिनको उस आध्यात्मिक जीवनके पानेकी लगन है, जो उनकी आत्मामें प्रच्छन्न है।

अब पहला प्रश्न यह है कि धर्म किसे कहते हैं ? मेरे लिये 'धर्म' मानव-अनुभवोंका (अपने सृष्टिकर्ता परमात्माके साथ मनुष्य-सम्बन्धका और मानव-संसारके बीच इस सम्बन्धके आदर्शका) सार है। इसलिये मेरे लिये धर्मका आधार अनुभूति है—वह मानव-अनुभूति है, जिसका विस्तार बहुत समयका है। वैज्ञानिक प्रयोगोंके अनुसार इन अनुभवोंकी जाँच-पड़ताल परिस्थितिके अन्दर हो सकती है।

मैं तो इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि धर्मका अनुशीलन बिल्कुल वैज्ञानिक ढंगपर है। मनुष्यका मन वह यन्त्र है जिसके द्वारा ये प्रयोग किये जाते हैं। ईश्वरको यथार्थरूपसे पहचाननेवाला सद्गुरु (शिक्षक अथवा मुरशिदेकामिल) इस विभागका मुख्य अध्यक्ष है। और प्रार्थना ही प्रयोग है। यह पहला प्रयोग दृढ़ श्रद्धाके द्वारा किया जाता है। अब हम प्रयोगात्मक भौतिक विज्ञान अथवा प्रयोगात्मक रसायनका अध्ययन करते हैं तो हम कुछ समयके लिये मान लेते हैं कि जो प्रयोग पुस्तकोंमें वर्णित है अथवा जिनको अध्यापकने सिद्धान्तरूपसे समझाया है वे प्रयोग लेखक, अध्यापक अथवा मुझसे पहले होनेवाले बहुत-से मनुष्योंद्वारा सिद्ध किये जा चुके हैं। इसलिये मैं भी चेष्टा करके देखूँ कि मुझे भी वैसा ही प्रतिफल मिलता है या नहीं। यही वैज्ञानिक तरीका है। हम किसी मन्दश्रद्धा या कल्पनाके सहारे क्रिया आरम्भ करते हैं। धर्ममें भी कुछ समयके लिये मानी हुई बात अथवा कल्पित आस्तिकताका आरम्भ है, फिर श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। मनुष्यका हृदय अथवा मन प्रयोगशालाकी 'नोटबुक' है जिसमें प्रयोग (प्रार्थनादि) के फल लिखे जाते हैं। एकान्त स्थान ही प्रयोगशाला है। भगवान्‌के प्रेमी किसी सन्त-महात्माकी अनुकम्पासे जब हृदयमें अग्नि प्रज्वलित हो जाती है तो इसी प्रयोगशालामें प्रयोग सिद्ध किये जाते हैं। बिना सच्चे पथ-प्रदर्शकके यथार्थ आध्यात्मिक जीवन असम्भव है।

दूसरा प्रश्न होता है कि आस्तिकता क्या है ? भगवान्‌के अस्तित्वका ज्ञान ही आस्तिकता (Faith) है। इस संसारकी सुव्यवस्थित सृष्टिके पीछे एक सर्व-ज्ञानमयी शक्तिकी सत्ता है, ब्रह्माण्डके सम्पूर्ण पदार्थोंकी व्यवस्थाका कोई निर्माता तथा सञ्चालक अवश्य है, जिसकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न विज्ञानों (भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र, वैद्यकादि) के नियमोंमें हो रही है। यही ज्ञान आस्तिकता कहलाता है।

अब आप पूछ सकते हैं कि इस आस्तिकतासे लाभ क्या है ? इसके जाननेके हेतु हमें एक ईश्वरभक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यके जीवनकी अवस्थाके साथ, एक दूसरे नास्तिक मनुष्यके मनकी अवस्थासे तुलना करनी चाहिये। तब हमें अन्तर मालूम होगा। मेरा स्वयं अनुभव है कि स्वामीजीकी कृपाद्वारा भक्तिदान पानेके पहले स्वयं मेरा जीवन मानसिक व्यथा और चिन्ताओंका आगार था। मैं मानता हूँ कि उनमें बहुत-सी चिन्ताएँ केवल काल्पनिक थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय मेरे जीवनमें सुखद अवसर भी आते थे, यदि ऐसा न होता तो जीवन ही नितान्त असह्य हो जाता। परन्तु भक्तिरहित मेरा मन प्रत्येक वायुके संचरणसे प्रभावित, प्रत्येक झोंकेसे प्रताड़ित, प्रत्येक लहरसे विलोड़ित तथा प्रत्येक धक्केसे प्रकम्पित हो जाता था। प्रत्यक्ष धन, सम्पत्ति, पद तथा प्रतिष्ठाके बीचमें मेरे मनमें सदैव यही प्रश्न उठा करता था कि इतने वैभवके बाद अब क्या होगा? इन सब पदार्थोंकी प्रगति किधर है? अमुक आपत्तिपर कैसे विजय प्राप्त की जाय? क्या भविष्यमें मेरे लिये और भी कोई उज्ज्वल आशा है? जब मैं किसी प्रकारके कार्योंमें संलग्न होता, तो मेरे मनमें ऐसे ही विचार इस प्रकार दौड़ा करते जैसे किसी अस्थिपिञ्जरपर गिद्ध टूटते हैं। अधिकतर मुझे या तो कार्यभारका, अन्यथा दुश्चिन्ताका सहारा लेना पड़ता था। परन्तु अब किसी अंशमें भक्तिका उपहार पानेके बाद मेरी क्या स्थिति है? मुझे अब प्रतीत होता है कि मेरा पिता जीवित है और मैं अनाथ नहीं हूँ। मैं जानता हूँ मेरा पिता सर्वशक्तिमान् है और वही मेरी भविष्यकी आवश्यकताओंका उसी प्रकार ध्यान रक्खेगा जैसे कि उसने अबतक रक्खा है। मैं जानता हूँ वह दयालु है, और वह मेरे सब पिछले पापोंको क्षमा कर देगा। मैं जानता हूँ कि वह प्रेममय है और कुत्सित कर्मोंके होते हुए भी वह जीवनमें मेरी अवश्य सहायता करेगा। मैं जानता हूँ कि वह मेरे भाइयोंके प्रति सेवा-भावको पसन्द करता है। इसलिये मुझे उसके बच्चोंकी—मानव-समाजकी निःस्वार्थ सेवा करके उसे प्रसन्न करना चाहिये।

इसलिये मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि भक्तिहीन मनुष्य सृष्टिका सबसे अधिक शक्तिहीन जीव है। वह सदैव भयभीत, चिन्तामग्न तथा दुखी रहता है। निस्सन्देह, उसे जीवनकी नीरसतासे मुक्त करनेके लिये सुखद अवसर भी आते हैं परन्तु वे क्षणिक ही होते हैं। चाहे उसे वह वस्तु मिल जाय जिसे साधारणतया जीवनकी सफलता कहते हैं, फिर भी उसकी अतृप्त वासनाएँ उसे सताती ही रहती हैं, अन्तमें एक सुदिन आता है जब उसे ज्ञात होता है कि मैं जिन सम्पत्ति, शक्ति और प्रतिष्ठा आदिके सम्पादन करनेमें सफल हुआ था वे मेरे लिये व्यर्थ हैं। इन सबका अन्त होता है। और फिर वह निस्सहाय अवस्थामें आ जाता है। बालूकी भीत गिर जाती है। भक्तिहीन मनुष्य अपने-आपको अन्तमें 'किंकर्तव्यविमूढ' पाता है। यह गहरा धक्का कुछ समयके लिये उसे विषयोंकी झंझटोंकी निद्रासे जाग्रत् कर देता है। फिर उसे यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि उसकी कोई चीज़ खोयी हुई है और जबतक वह उसे पा नहीं लेता तबतक जीवन अन्धकारमय ही रहता है। यह अवस्था कबतक रहती है? यह उस धक्के और व्यक्तिगत उत्तरदायिनी शक्तिपर निर्भर है। इसके दूसरी ओर आस्तिक पुरुष अपने पापोंके विषयमें सज्ञान रहता है। वह अपनी त्रुटियोंको पहचानता है। और भगवान्‌की दयालुताका भी अनुभव करता है। अतएव जो कुछ उसने पाया है उसके लिये वह कृतज्ञ रहता है। और भविष्यके लिये भी आशापूर्ण रहता है क्योंकि वह जानता है कि उसका स्वामी, जब आवश्यक समझेगा उसे और अधिक देगा। वह सब कष्टोंको तथा आपत्तियोंको सहर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करता है। क्यों ? क्योंकि वे सब उसके परम सुहृद, परम प्रियतम परमात्माके यहाँसे आते हैं। उसे विश्वास है कि ये आपत्तियाँ उसकी आत्माकी शुद्धिके लिये भेजी गयी हैं, वह उनको किसी हितैषी डाक्टरके द्वारा किये गये ऑपरेशन अथवा किसी सहृदय वैद्यकी दी हुई व्याधिनाशिनी कड़वी गोली समझता है। उसके लिये जीवनके ये कष्ट शान्ति, प्रेम और आनन्दके दिव्य स्थानकी ओर जानेवाली यात्राकी मंजिलें हैं। वह जानता है कि ये सब मंजिलें शीघ्र ही समाप्त हो जायँगी। अतएव श्रद्धालु और भक्तके लिये कष्टमय जीवन एक आनन्दमय कर्तव्य है। क्योंकि जीवनयात्राके अन्तिम स्थानपर वह औरोंकी अपेक्षा अधिक सुगमतासे तथा परमात्माकी अधिक स्वीकृतिके साथ पहुँचता है। लगभग साठ वर्षके वियोगके बाद जब एक आज्ञाकारी सत्पुत्र अपने परम पिताके पास लौटता है उस समय उत्पन्न होनेवाले वात्सल्य, प्रेम और प्रशंसाके भावोंकी क्या हम कल्पना कर सकते हैं ? क्या इन भावोंकी तुलना उस समयके भावोंसे हो सकती है जब कि एक कृतघ्न कामचोर नौकर अपने मालिकके पास जाता है ? पहला अपने पिताके नामपर सदैव स्वामिभक्त, अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तैयार और पिताकी आज्ञानुसार दूसरोंके कष्टोंमें हाथ बँटानेको तैयार रहा है। और दूसरा कृतघ्न, स्वार्थी तथा सम्पूर्ण जीवनभर बड़बड़ाता रहा है। उसने दूसरोंसे सदा सब कुछ लिया, लाभ उठाया परन्तु प्रत्युपकार लेशमात्र भी नहीं किया। ऐसे पुरुषको मिलनेवाले स्वागतका हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं। मानवके आदर्शके अनुसार ऐसे पुरुषकी स्थिति बहुत कठिन होती है।

अब हम यह पूछनेको उत्सुक होते हैं, 'क्या भक्तिका उपार्जन किया जा सकता है ?' हाँ, अवश्य किया जा सकता है। मेरे अपने अनुभवसे ज्ञात होता है कि उसका उपार्जन हो सकता है। सन् १९२९ के जुलाई मासमें ही मैंने अपने मित्रको सच्चे हृदयसे कहा था 'यह साधु और फकीर लोग कैसे मूर्ख हैं जो परलोकमें कुछ पानेकी मिथ्या आशामें इस जीवनकी अच्छी वस्तुओंको छोड़ देते हैं। भविष्यमें सन्दिग्ध फलप्राप्तिके लिये वर्तमानकी उपलब्ध सुन्दर वस्तुओंको छोड़ना पागलपनसे कम नहीं प्रतीत होता। जीवनमें जो कुछ श्रेष्ठ है वह हमको मिल रहा है, और सम्भव है कि इस लोकमें दी हुई वस्तुओंके स्वीकार करनेसे हमें परलोकमें भी कुछ अधिक भाग मिल जाय। मान लीजिये कि परलोकमें किसीको कुछ भी न मिले तो ये बेचारे गरीब तो मर मिटे क्योंकि उन्हें न यहाँ कुछ मिला और न वहाँ।'

मेरे उन मित्रने, जो एक बड़े भारी प्राच्य विद्वान् थे, मेरे इस धर्मविरुद्ध वक्तव्यको बड़ी सहिष्णुताके साथ सुनकर उत्तर दिया कि 'मुझको तो सभी धर्मोंके पवित्र ग्रन्थोंके वचनोंका भरोसा है। यदि वे वचन असत्य ठहरे तो मेरा तो सत्यानाश ही हुआ।' फिर भी मेरा भ्रान्त मत आग्रहपूर्ण ही रहा। मैंने कहा, 'मैं किसी बातको सच समझकर केवल इस विश्वासपर उसे अङ्गीकार नहीं कर सकता कि अमुक व्यक्तिके कथनानुसार यही प्रमाण है।'

मैंने इस वार्तालापको जहाँतक हो सका है और जहाँतक मुझे याद है ज्यों-का-त्यों देनेका प्रयत्न किया है। इससे ज्ञात हो गया होगा कि मैं स्पष्टरूपसे अविश्वासी और नास्तिक था। यदि ईश्वर कृपालु और करुणामय न होता, जैसा कि आजकल मुझे दीख रहा है, तो वह मेरे इस भ्रान्त मत तथा मेरी कृतघ्नताके कारण मेरी सब आनन्दकी वस्तुओंका हरण ही कर लेता। ऐसे करनेके बजाय, मेरा यह निष्कपट भ्रान्त आग्रह उसकी दया और प्रेमपूर्ण दरबारमें स्वीकृत हो गया और उसने अपने भक्तोंमेंसे एक महात्माको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो मेरे सुधारके लिये भेज दिया। इस ईश्वर-प्रेमी महात्माने सात साल पहले शिमलामें मुझसे परमार्थ-सम्बन्धी वार्तालाप किया था। उस समय यह वार्तालाप अधूरा ही छूट गया था। ईश्वरके विधान दिव्य तथा उत्कृष्ट ही होते हैं। उस समयसे ईश्वरने मुझे एक ऐसा विश्वास दे दिया है कि मैं अपने चारों ओर होनेवाले कार्योंमें उसीका हाथ देखता हूँ। यह उसीका प्रसाद है। इस प्रसादका अधिकारी मैं बिना उसकी कृपाके पलभर भी नहीं हो सकता। बाइबिलका लेख है कि 'वे पुरुष धन्य हैं जो हृदयसे पवित्र हैं क्योंकि वे ही परमात्माके दर्शन पायेंगे' मेरी शिफ़ारिश केवल मेरा भ्रान्त मत, मिथ्या अभिमान और मेरी कृतघ्नता ही थे। उसने अपनी दयालुताके कारण अपने बहके हुए बच्चेसे इन्हींको स्वीकार किया। अतएव कम पापी पुरुषोंके लिये तो बहुत आशा है, जब उसने संसारके सबसे बड़े मुझ-जैसे पापीको भी सुधार लिया। कदाचित् उसने अपने और बच्चोंको यह दिखानेके लिये ही ऐसा किया हो कि अब किसीको भी आशा न खोनी चाहिये।

कुछ लोग जन्मसे ही पूर्णतया आस्तिक होते हैं। कुछ आस्तिकताका उपार्जन करते हैं। और दूसरे कुछ ऐसे हैं जिनपर आस्तिकता जबरदस्ती डाली जाती है।

जो बीसों बिस्वा आस्तिक भावोंके साथ उत्पन्न होते हैं वे ही सद्गुरु हैं, जो इस जगत्में उस समय आते हैं जब समस्त संसारमें यथार्थ आध्यात्मिक अन्धकार और घृणाका साम्राज्य फैल जाता है। जब ईश्वर और प्रेमको लोग भूल जाते हैं, जैसा कि आजकल हो रहा है। वे उस समय प्रकट होते हैं जब ईश्वरमें विश्वास प्रातःकालीन ओस-बिन्दुओंके समान लोप हो जाता है तथा पुस्तकें स्मृतिमात्रके लिये अवशेष रह जाती हैं। उनका आगमन उस समय होता है जब मनुष्योंके हृदयसे प्रेमका साम्राज्य उठ जाता है, जब निःस्वार्थ परोपकारी जीवन तथा पवित्र प्रेममय सच्चा त्याग केवल कहानीमात्र ही रह जाते हैं और संसारके चतुर पुरुषोंके विचारमें असम्भव प्रतीत होने लगते हैं। ऐसे ही समयमें ये आते हैं और बहुत-से भटके हुए प्राणियोंके जीवनपर प्रभाव डालते हैं। वे अपने निजी आदर्शद्वारा बलात् जीवन-पथको बदल देते हैं। वे आते हैं और प्रेममय पवित्र जीवनके ज्वलन्त उदाहरण बनते हैं। वे भक्तिपूर्ण होते हैं और उनका जीवन भगवान्के बालकोंकी—मनुष्य-जातिकी—निःस्वार्थ सेवाके लिये होता है। जो कोई भी उनके सम्पर्कमें आता है, वह उनके प्रगाढ़ प्रेम, दिव्य विनम्रता, छोटे-बड़े सबके दुःखोंमें प्रेमपूर्ण भाव, उनकी असीम सहानुभूति तथा दुःखित मानव-जातिके लिये उनकी प्रार्थनासे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। संक्षेपमें उनकी ईश्वर-भक्तिसे प्रभावित हुए बिना कोई नहीं रह सकता। फिर संसारमें उद्दण्ड आदमी भी इन महान् आत्माओंद्वारा ईश्वरके दर्शन करने लगते हैं। ऐसी ही आत्माएँ पूर्ण आस्तिकताके साथ जन्म लेती हैं।

कुछ ईश्वर-भक्तिका उपार्जन करते हैं। प्रत्येक मनुष्य इतना भाग्यशाली नहीं होता कि वह ऐसे महात्माओंके निर्दिष्ट मार्गमें प्रवेश पा सके। आप पूछेंगे 'तो फिर एक साधारण व्यक्ति भक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है?' यदि मैं रसायन विद्या सीखनेका इच्छुक हूँ तो मैं एक रसायन-वेत्ताके पास जाऊँगा, उसकी आज्ञाओंका पालन करूँगा। उसकी सेवा करूँगा, उसके साथ रहूँगा, तब कहीं उससे शिक्षा प्राप्त कर पाऊँगा। इसी प्रकार यदि मैं भक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ तो मुझे ऐसे व्यक्तिके पास जाना चाहिये जिसका मुझे इस विषयमें विश्वास है और मैं अनुभव करता हूँ कि वह एक भक्त है। मुझे उसका सत्संग करना चाहिये। उसकी आज्ञाओंका पालन और उसकी सेवा करनी चाहिये। वही मुझे भक्ति प्रदान कर सकता है। भक्तोंका सत्संग शीघ्र ही मार्ग प्रदर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। भक्तोंके निरन्तर सत्संगमें भाग लेनेसे आप अपनेमें एक नया जीवन-सञ्चार, एक नवीन आनन्दका अनुभव करने लगेंगे। आपकी एकान्त-प्रार्थनाओंकी तल्लीनता उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। आपको उत्तरोत्तर अनुभव होगा कि आप अपनी प्रार्थनाओंसे किसी ऐसेके सामने विनय कर रहे हैं जो उन्हें सुनता है और जिसे दीन हृदयके सच्चे उद्गारोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं भाता।

हम वैद्यक-शास्त्रका अध्ययन अनुभवी गुरुओंद्वारा करते हैं। महान् पुरुषोंकी देख-रेखमें उनकी सहायतासे किये हुए प्रयोगोंद्वारा हम उस विद्याको सीखते हैं। संक्षेपमें उसी प्रकार भक्ति भी सद्गुरुओंकी पवित्र चरण-सेवासे, प्रार्थनाके बीच और बादके अभ्याससे, भगवान्‌की विभूतिस्वरूप सन्तोंके सत्संगसे तथा उन महात्माओंके अधीन रहकर उनके आदेश-द्वारा दूसरोंकी निःस्वार्थ सेवा करनेसे प्राप्त हो सकती है। एक साधारण डाक्टर बननेके लिये बड़े भारी त्याग और अनवरत परिश्रमके साथ, स्कूल तथा विश्वविद्यालयकी शिक्षामें जब सतरह वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं, तब क्या हम सबसे बड़ी 'न्यामत' भक्तिको पानेके लिये ऐसा त्याग करने और इसी प्रकारके कष्ट सहनेको तैयार हैं? हममेंसे प्रत्येक अपने-आप उत्तर दे। निःसन्देह यह प्राप्त करने योग्य है। किसी व्यक्तिद्वारा प्राप्त की हुई भक्ति, दृढ़तापर निर्भर होना, उसके गुरुकी आध्यात्मिक शक्ति, जिज्ञासुकी इच्छाशक्तिकी प्रगाढ़ता और विशेषकर भगवान्‌के अनुग्रहपर ही है।

यह सब प्रेरणा मेरे स्वामी, मेरे प्रभुहीके कारण है। मुझमें जो परिवर्तन हुआ है वह भी उसके सदय प्रेम और उसकी अद्भुत शक्तिके कारण ही हुआ है। जिससे मैं एक दूसरे ही प्रकारका आदमी हो गया हूँ। इस विवरणमें त्रुटियाँ सब मेरी ही हैं, जिसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

श्रीमानसशंकासमाधान

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

एक सज्जनने कुछ शङ्काएँ की हैं, उनका समाधान इस प्रकार है—

पहली शङ्का

तुलसीकृत रामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें आया है कि—

सुनहु प्रानपति भावति जीका। देहु एक बर भरतहिं टीका॥
माँगौं दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेष उदासी। चौदह बरिष राम बनबासी॥

कैकेयीने इस प्रकार राजा दशरथसे वर माँगे। किन्तु मन्थराने कैकेयीसे वनवासके सम्बन्धमें कोई निश्चित समय नहीं बताया था। न तबतक तपस्वी वेष तथा विशेष उदासीन रहनेकी कोई शर्त्त लगानेको कहा था, जैसा कि रामायणमें है कि—

दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती॥

फिर यह शङ्का होती है कि कैकेयीने चौदह वर्षके ही लिये वनवास क्यों माँगा, आजन्म या कुछ कम समयके ही लिये क्यों नहीं माँगा और फिर वनवासके साथ-साथ तपस्वी वेष और विशेष उदासी रहनेकी शर्त्त उस महारानीने क्यों लगा दी?

समाधान

यह ठीक है कि मन्थराने केवल इतनी ही सम्मति दी थी कि—

सुतहिं राज रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तापस वेष और विशेष उदासीनताके साथ चौदह वर्षका वनवास स्वयं कैकेयीने ही माँगा था। किन्तु ऐसा करनेके लिये उसी गिरा (सरस्वती) ने उसके अन्दर प्रेरणा की थी, जिस गिराने मन्थराकी मति फेरकर उससे दो वर माँगनेके लिये सम्मति दिलवायी थी। इसका प्रमाण उसी रामायण-ग्रन्थमें मौजूद है—

गूढ़ कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधर बुधिरानि।
सुरमायाबस बैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि॥

'सुरमायाबस' का तात्पर्य ही गिरा (सरस्वती) द्वारा बुद्धि बदल जाना है। पुनः श्रीभरद्वाज ऋषि तो स्पष्ट ही श्रीभरतजीसे कह रहे हैं कि—

तात कैकइहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति।

इसलिये यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीसरस्वतीकी प्रेरणासे ही ऐसा वर कैकेयीने माँगा था।

केवल चौदह वर्षकी ही प्रेरणा इस कारण हुई कि रावणकी आयुमें अब केवल चौदह वर्ष ही शेष रह गये थे, इससे अधिक माँगनेकी कोई जरूरत न थी और इससे कम तो माँगा ही नहीं जा सकता था। तापस वेष और विशेष उदासी रहनेकी शर्त्त रखनेका उद्देश्य यह था कि मुनि और तपस्वियोंपर ही धर्माघात करनेके लिये रावण तथा अन्य राक्षसोंका विशेष आक्रमण हुआ करता था—

निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुबीर नयन जल छाये॥

इसलिये सोचा गया कि जब सरकार भी तपसी (साधु) वेषमें रहेंगे तब अवश्य ही रावण इनसे भी छेड़-छाड़ करेगा। इसके अतिरिक्त देवताओं और साधु-तपस्वियोंमें प्राकृतिक सम्बन्ध है। दैवी और आसुरी दो सम्पत्तियाँ हैं और साधु-वेष दैवी सम्पत्तिका द्योतक है। अतः अपने वर्गानुकूल वेष मँगवाया गया, जिससे सब तरहकी सुविधा और लाभ रहे। इसके सिवा वनवासीके लिये यही वेष सुविधाजनक भी था। अब रही विशेष उदासीकी बात। सो तापसका वेष रखना तो बाह्य वृत्ति बनाना है। किन्तु केवल साधुका वेष बनाकर प्रपञ्चरत रहना उस वेषकी भी निन्दा करना-कराना है—

सोचिय जती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग।

इस तापस वेषके साथ-साथ उदासीन वृत्ति अर्थात् प्रपञ्चसे उपेक्षा भी होनी चाहिये, तभी उसकी गिनती साधु-समाजमें हो सकती है। असुरोंको भी सच्चे साधुओंकी ही खोज रहती है, दम्भियोंको तो वे अपना सहायक ही मानते हैं। अतएव देवताओंने उपर्युक्त प्रयोजन दृष्टिमें रखकर ऐसा वर माँगनेकी प्रेरणा की।

दूसरी शङ्का

भरतजी जिस समय चित्रकूट गये हैं, उस समयके उनके मार्गका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

'.....। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥
किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहत बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात॥

अर्थात् चित्रकूट जाते समय भरतजीको सब प्रकारकी सुविधाएँ मिलीं; श्रीरामचन्द्रजीकी अपेक्षा उनको रास्ता भी कम चलना पड़ा। किन्तु दूसरी ओर भरतजीके लिये यह वर्णन किया गया है कि 'झलका झलकत पायन्ह कैसे' और श्रीरामचन्द्रजीके लिये रास्तेभरमें कहीं ऐसा वर्णन नहीं आया है।

समाधान

जब अयोध्याजीमें श्रीभरतलालने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि मैं प्रातःकाल श्रीचित्रकूट चलूँगा, आपलोग यही आज्ञा दीजिये और यह आशिष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीजिये कि श्रीरामचन्द्रजी हमारी विनती मानकर राजधानीको लौट आवें—

तुम पै पाँच मोर भलमानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी॥

तब इस अभिप्रायको सुनकर देवताओंको चिन्ता हो गयी और वे रुष्ट होकर इस जतनमें लग गये कि श्रीभरतजीके सामने मार्गादिके कष्टोंके द्वारा ऐसा विघ्न खड़ा किया जाय जिसमें श्रीरामचन्द्रजीके साथ उनकी भेंट ही न हो सके। इस कारण केवल शृङ्गवेरपुर और प्रयागके मध्यके मार्गमें उन्हें ऐसा कष्ट दिया गया, जैसा कि निम्नाङ्कित पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है—

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेस प्रयाग।
कहत राम-सिय राम-सिय, उमँगि उमँगि अनुराग॥

(अवध० दोहा १९५)

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओसकन जैसे॥
भरत पयादहिं आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥

परन्तु जब श्रीभरतजीने त्रिवेणी-स्नान करके तीर्थराज श्रीप्रयागसे खुले शब्दोंमें यह विनती की कि—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥

(अवध० दोहा १९६)

तब देवताओंको विश्वास हो गया कि भरतजी हमारी हानि नहीं चाहते हैं, उन्हें तो केवल श्रीराम-प्रेमसे ही मतलब है और उन्हें लौटाने आदिका इनका उद्देश्य नहीं है। उस समयसे वे उनकी सेवामें लग गये और उसके बादका यह वर्णन है कि—

किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहै बर बात।
तस मग भयो न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात॥

(अवध० दोहा २०८)

यह वर्णन प्रयागराजसे प्रयाण करनेके पश्चात् ही प्रयाग और चित्रकूटके बीचके रास्तेका है, जब कि देवताओंकी रुष्टता हट चुकी थी। उपर्युक्त दो प्रकारके वर्णनोंका यही कारण है।

सुर स्वार्थी कहे गये हैं। स्वार्थबुद्धि बराबर बदलती रहती है। आगे चलकर देवता फिर घबड़ा गये और यह विचार करने लगे कि ऐसा करना चाहिये जिसमें 'रामहि भरतहिं भेंट न होई।' परन्तु जब सुरगुरु श्रीबृहस्पतिजीने समझाया कि रामभक्त श्रीभरतजीका स्वप्नमें भी 'अकाज' न देखो, नहीं तो अनर्थ हो जायगा, तब 'समझाये सुरगुर जड़ जागे'—सचेत होकर सब किसीने श्रीभरतकी ही शरण ली। इन्हीं देवताओंके भ्रमवश प्रतिकूल और अनुकूल होनेके कारण रामायणमें उपर्युक्त दो प्रकारका—मार्ग-दुःख और मार्ग-सुखका, वर्णन आया है।

बोलो सियावर रामचन्द्रकी जय!

'प्रियतम' से

तेरे ही सुमुखके समान जौलों पूर्ण-चन्द्र
देखता रहेगा लोल-लोचन चकोर-सा।
घनश्याम, गगनमें देखि-देखि प्राण-प्यारे,
नाचता रहेगा जौलों मोही मन मोर-सा॥
सुनते रहेंगे कान, बोली जौलों कोयलकी,
तेरी प्रिय बोली-सी, सुमीठी, औ मदालसा।
जीती ये रहेंगी तौलों मेरी जगतीतलमें
आशा और 'मधुकर' साथ ही सुलालसा॥

—मधुकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरक और स्वर्गका द्वार

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

द्वारं किमेकं नरकस्य नारी का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥

श्यामा—हे बहिन ! शिष्यने जब पूज्यपाद आचार्यसे प्रश्न किया कि नरकका मुख्य द्वार कौन-सा है, तब उन्होंने उत्तर दिया कि नरकका मुख्य द्वार नारी है, और जब शिष्यने पूछा कि स्वर्ग देनेवाली कौन है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि प्राणधारियोंकी अहिंसा स्वर्ग देनेवाली है । यह तो मैं जानती हूँ कि नरकका अर्थ यहाँ संसार है, और स्वर्गका अर्थ स्वस्वरूप है क्योंकि यहाँ निवृत्ति-मार्गवाले शिष्य-गुरुओंका संवाद है । सामान्य नरक और स्वर्ग तो प्रवृत्ति-मार्गवालोंको प्राप्त होते हैं, यानी वेदोक्त धर्म करनेवालोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है, और वेदोक्त अधर्म (निषिद्ध कर्म) करनेवाले नरकमें जाते हैं ।

हे बहिन ! मैं तुमसे यह पूछना चाहती हूँ कि नारी नरकका मुख्य द्वार कैसे है ? जैसी नारी, वैसा ही नर । यदि नरके लिये नारी नरकका द्वार है तो नारीके लिये नर भी वैसा ही है, तब केवल नारीको ही नरकका द्वार क्यों कहा है ? सब नर नारीसे ही उत्पन्न होते हैं, कार्य-कारणकी एकता है । इसलिये नारीसे उत्पन्न हुआ नर भी नरकका द्वार है । जैसे नारीसे नरको संसाररूप नरककी प्राप्ति होती है, इसी प्रकार नारीको भी नरसे संसाररूप नरककी प्राप्ति होती है, दोनों एक-से ही हैं । फिर पूज्यपाद आचार्य जगद्गुरु होकर भी नारीकी क्यों निन्दा करते हैं ? हे बहिन ! अपने युक्तियुक्त वचनोंसे मेरी इस शङ्काका समाधान कर, और उस अहिंसाका सूक्ष्म स्वरूप भी बतला, जिससे ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्ष-लाभ होता है ।

कोकिला—हे बहिन ! तेरा अनुमान ठीक ही है । जैसे नरके लिये नारी नरकका द्वार है, वैसे ही नारीके लिये नर भी नरकका द्वार है । परमार्थसे तो नर अथवा नारी कोई भी नरकका यानी संसारका कारण नहीं है । संसारका कारण तो कामना है । यानी नरको नारीकी कामना संसारकी प्राप्ति कराती है । और नारीको नरकी इच्छा संसारमें हो जाती है, अतएव कल्याण चाहनेवाले स्त्री-पुरुषोंको एक दूसरेकी इच्छा-का त्याग करना चाहिये । यही पूज्यपाद आचार्यका अभिप्राय है, और यही सब विद्वानोंको सम्मत है ।

हे बहिन ! तूने जो यह कहा कि नर-नारी दोनों एक-से ही हैं यह तेरा कथन ऊपरकी दृष्टिसे ठीक ही है, जिन तत्त्वोंसे स्त्रीका शरीर बना है, उन्हीं तत्त्वोंका बना हुआ पुरुषका शरीर है । इस प्रकार तत्त्वोंके विचारसे दोनोंका शरीर एक-सा है, दोनों शरीरोंमें आत्मा भी एक है, इस कारणसे भी दोनोंका शरीर एक-सा ही है । फिर भी दोनोंमें अत्यन्त विलक्षणता है । स्त्रीके शरीरके ऐसे अङ्ग हैं कि वे कभी शुद्ध ही नहीं रह सकते । यह बात तो दूर रही । स्त्रीके शरीरमें जितना कष्ट होता है उतना पुरुषके शरीरमें नहीं होता । जब मैत्रेयीने याज्ञवल्क्यसे कहा कि मैं भी आपके साथ संन्यास लेना चाहती हूँ, तब याज्ञवल्क्यने कहा कि संन्यास लेनेमें बहुत कठिनाई है, अन्न-वस्त्र भी मिलना कठिन है । पतिकी यह बात सुनकर मैत्रेयी इस प्रकार कहने लगी ।

मैत्रेयी—हे स्वामिन् ! यह आप क्या कहते हैं कि अन्न-वस्त्र मिलना कठिन है । जो विश्वम्भर विश्वभरका पालन करता है क्या वह अपने भक्तोंका पेट नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरेगा ? अवश्य भरेगा । मान लिया कि अन्न न मिले तो भी क्या हानि है, काम-क्रोध आदि जितने दोष हैं वे सब अन्नमें ही हैं, अन्न न मिले तो कोई दोष ही उत्पन्न न हो, भोजनकी इच्छाने ही सब जीवोंको चक्करमें डाल रक्खा है । भोजनकी इच्छासे ही जीव अनेक योनियोंमें जन्म लेता है । भोजन करके ही वह जीता है, उम्रभर खाता ही रहता है, और अन्तमें मुँह फाड़कर मर जाता है । इससे सिद्ध होता है कि भोजन करते-करते अभीतक इसकी तृप्ति नहीं हुई, भोजनकी इच्छा न हो तो यह शरीर ही उत्पन्न न हो, भोजनकी इच्छासे ही स्त्री-पुरुषोंके शरीर उत्पन्न होते हैं । यद्यपि दोनों शरीर रोगके घर होनेसे कष्टदायक हैं, फिर भी पुरुषकी अपेक्षासे स्त्रीको अधिक कष्ट होता है । प्रसवके कष्टके समान मृत्युमें भी कष्ट नहीं होता । क्योंकि मरते समय तो जीव प्रायः बेहोश हो जाता है । परन्तु प्रसवके समय तो स्त्रीको होश रहता है, इसलिये प्रसवके कष्टको मृत्युसे भी बढ़कर बतलाना अतिशयोक्ति नहीं है । पुरुषोंको इस कष्टका स्वप्नमें भी अनुमान नहीं होता । कहावत है, 'जिसके नहिं फटी बिवाई । वह क्या जाने पीर पराई ॥' मृत्युसे भी अधिक प्रसवके कष्टको सहकर भी स्त्री मरती नहीं है, जीती रहती है । इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्माने स्त्रीका शरीर वज्रसे भी अधिक कठिन बनाया है । ऐसे कष्टमय स्त्री-शरीरको पाकर भी, जिस बहिनको वैराग्य नहीं हुआ, उसका दुर्भाग्य ही है ।

हे बहिन ! मदालसा रानी अपने पुत्रोंको समझाया करती थी कि 'हे श्रेयाभिलाषियो ! हड्डियोंसे बनी हुई मांस, मेदा, रक्त आदिसे भरी हुई, चमड़ेसे ढकी हुई, स्त्रीमें सुन्दर वस्तु ही क्या है ? मूढ़ पुरुष ही अपवित्र पदार्थोंसे बनी हुई स्त्रीके शरीरको देखकर मोहित होते हैं । चतुर पुरुष नहीं होते ।' हे बहिन ! यद्यपि स्त्रीका शरीर निकृष्ट है, तो भी जैसे विद्वानोंका वचन है कि सुपुत्रसे कुपुत्र श्रेष्ठ है, क्योंकि सुपुत्र रागका हेतु होता है और कुपुत्र वैराग्यका हेतु है । इसी प्रकार यह निकृष्ट स्त्री-शरीर, उत्कृष्ट नर-शरीरसे उत्तम है, क्योंकि इस शरीरको पाकर जितना जल्दी जीवको वैराग्य होता है, उतना जल्दी नर-शरीरको पाकर नहीं होता । जैसे थोड़ी आयु, आधि-व्याधिकी बाहुल्यता होनेके कारण मनुष्यको कलियुग वैराग्यकी शिक्षा देकर अन्य युगोंकी अपेक्षा शीघ्र ही कृतार्थ कर देता है । वैसे ही यह निकृष्ट स्त्री-शरीर भी विवेकी बहिनोंको जल्दी कृतार्थ कर सकता है । मूर्खोंका तो कुछ कहना ही नहीं है, स्त्री हो या पुरुष, उनकी बुद्धि तो उलटी ही होती है, ऐसे भाई-बहिनोंके लिये शोक है ! परमात्मा उन्हें शुद्ध बुद्धि दें ।

हे बहिन ! तूने जो यह कहा कि जगद्गुरुने नारीकी निन्दा क्यों की ? सो यह बात नहीं है । नारीकी निन्दा तो वे करते हैं जो नारीको नारी मानते हैं, नारी कहते हैं, और नारीकी इच्छा करते हैं । क्योंकि ऐसे लोग खुद नरकरूप संसारमें जाते हैं और साथ ही नारीको भी ले जाते हैं । महात्मालोग तो नारीको जननी, भगिनी अथवा साक्षात् देवी ही मानते हैं । खुद तर जाते हैं और नारीको तार देते हैं, इसलिये आचार्यद्वारा की गयी यह निन्दा निन्दा नहीं है, किन्तु स्तुति है । भावनाका सर्वत्र फल होता है, यह बात निर्विवाद है ।

हे बहिन ! विचारकर देखा जाय तो नारी, नारी नहीं है; नर हो, चाहे नारी हो, जो विषयोंमें आसक्त है वही नारी है । जो विषयोंमें आसक्त नहीं है वह नारी होती हुई भी नारी नहीं, नर ही है । जिसको ऐसा अभिमान है कि मैं सुन्दर अङ्गवाली हूँ, युवती हूँ, पतिवाली हूँ, अपने पतिके कुलकी वृद्धि करूँगी, उस अभिमानिनीको अवश्य नारी समझना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। और जिसको ऐसा ज्ञान है कि मैं देह नहीं हूँ, किन्तु तीनों देहोंका और तीनों देहोंके अभावका साक्षी शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त, चेतन आत्मा हूँ, वह बाहरसे किसी भी देहवाला हो, वस्तुतः वह न नर है, न नारी है, किन्तु नारायण-स्वरूप ही है। सच कहा है—

कुं०—नर भी नारी जानिये, जो है विषयासक्त।
नारी भी नर मानिये, जो है विषय-विरक्त॥
जो है विषय-विरक्त, नहीं नारी या नर है।
किन्तु सर्वका आत्म, विश्वसे भी अति पर है॥
'जयदेवी' तज भोग, खाय पीवे कूकर भी।
जो है भोगासक्त, मानिये कूकर नर भी॥

हे बहिन! अहिंसा स्वर्गको देनेवाली है, यानी मोक्षका द्वार है, यह कहना भी ठीक ही है। मन, वाणी अथवा शरीरसे चर-अचर किसी प्राणीको किसी प्रकारसे भी पीड़ा न देनेका नाम अहिंसा है। हिंसा क्रोधसे उत्पन्न होती है, और क्रोध देहाभिमानसे उत्पन्न होता है। देहाभिमान न हो तो क्रोध न हो, और क्रोध न हो तो हिंसा भी न हो। इसलिये जिसको देहका अभिमान नहीं होता वही पूरा अहिंसक हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता। देहाभिमानीको अवश्य क्रोध आता है और वह क्रोध पहले क्रोध करनेवालेकी ही हिंसा करता है क्योंकि क्रोध करनेवालेको अपना होश नहीं रहता। यही उसकी हिंसा है। जब वह पहले अपनी हिंसा कर लेता है तब दूसरेकी करता है। इसलिये अहिंसक बननेकी इच्छा करनेवालेको धीरे-धीरे देहाभिमान कम करना चाहिये। ज्यों-ज्यों देहाभिमान कम होता जायगा, त्यों-ही-त्यों हिंसा अपने-आप ही कम होती जायगी। और जब देहाभिमान पूर्णरूपसे निवृत्त हो जायगा, तब हिंसा होगी ही नहीं। और ऐसे पूर्ण अहिंसक मनुष्यको, गुरुमुखसे एक बार महावाक्य सुननेसे ही आत्मज्ञान हो जाता है। आत्मज्ञान होनेसे वह मुक्त हो जाता है, इसलिये अहिंसा मोक्षको देनेवाली है, यह वचन सर्वथा सत्य है।

एक राजा अपना राजपाट त्यागकर, एक पर्वतकी गुफामें एकान्त बैठकर ब्रह्मका ध्यान किया करता था, दिनभर गुफामेंसे नहीं निकलता था। सन्ध्याको अँधेरेमें पासके ग्राममें जाकर रोटियोंके टुकड़े माँग लाया करता था और शेष चौबीसों घण्टे गुफामें ही पड़ा रहता था। उसके त्यागकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। गुरु गोरखनाथ उसकी ख्याति सुनकर उसकी परीक्षा लेने, और कुछ कचाई रही तो उसे दूर करनेके लिये उस ग्राममें आये, और जिस मार्गसे त्यागी राजा रोटियोंके टुकड़े माँगकर ले जाया करता था, उसमें ठहर गये। सन्ध्याके समय जब राजा टुकड़े लेकर निकला तो गोरखनाथजीने झटका देकर उसके हाथमेंसे टुकड़े गिरा दिये। राजा कुछ नहीं बोला, टुकड़े बीनकर चलने लगा। थोड़ी ही दूर चला था कि गोरखनाथने फिर उसी प्रकार टुकड़े गिरा दिये। राजा फिर भी कुछ न बोला, टुकड़े बीनकर चलने लगा। जब गोरखनाथने तीसरी बार फिर उसके टुकड़े गिरा दिये, तब टुकड़े बीनकर राजाने धीरेसे कहा—

'भगवन्! आप मुझमें जो देखना चाहते हैं, वह अब मुझमें नहीं है। वह सब तो मैं घरपर ही छोड़ आया।'

गोरखनाथने कहा 'हे त्यागी पुरुष! इसमें सन्देह नहीं है कि तुम बहुत ही बड़े त्यागी हो, परन्तु अभी तुम्हें एक बहुत बड़ा त्याग और करना है, वह है तुम्हारा देहाभिमान, उसी देहाभिमानके कारण तुम्हें अपने पूर्वके ऐश्वर्य और उसके त्यागकी बात याद है। जब तुम्हें देहका किञ्चित् भी अभिमान नहीं रहेगा, तभी तुम पूरे त्यागी बनोगे और तभी पूरे अहिंसक भी हो सकोगे। तुम दूसरोंकी हिंसा नहीं करते यह तो ठीक है, परन्तु अपनी हिंसा तो करते ही हो, क्योंकि जितना तुम्हें देहका अभिमान है, उतना ही तुम्हें ब्रह्मका ज्ञान कम है। उतना ही सुख भी कम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तुम्हारा देहाभिमान पूर्ण निवृत्त हो जायगा तभी तुम स्वस्थ होओगे।

हे बहिन ! राजाने गुरु गोरखनाथका कहना मान लिया और लेशमात्र रहे हुए देहाभिमानको त्यागकर पूरा त्यागी और पूरा अहिंसक बन गया, फिर उसने न तो अपनी हिंसा की, न दूसरेकी हिंसा की। यह सूक्ष्म हिंसाका दृष्टान्त है। अब स्थूल अहिंसाका दृष्टान्त सुन।

नर-नारायण ऋषि हिमालयपर्वतपर तप कर रहे थे। इन्द्रने उनका तप भंग करनेके लिये, कई अप्सराओंसहित कामदेवको भेजा। कामदेवने अपने पाँचों वाण चलाये। परन्तु जैसे भाग्यहीनके सब मनोरथ निष्फल होते हैं, इसी प्रकार ऋषियोंपर चलाये हुए कामदेवके वाण सर्वथा निष्फल चले गये। तब तो ऋषि मुझे शाप देकर भस्म कर देंगे, ऐसा समझकर अप्सराओंसहित कामदेव काँपने लगा। परन्तु नर-नारायणने क्रोध नहीं किया, बल्कि उनके कृत्यसे प्रसन्न होकर अपनी रची हुई उर्वशी नामकी एक अप्सरा उन्हें उपहारमें दे दी, जो अबतक कल्पवृक्ष और कामधेनुके समान इन्द्रलोकका अलौकिक भूषण है। सच है, क्रोध तो देहाभिमानीको ही होता है। जिसको देहका अभिमान ही नहीं है उसको क्रोध कहाँसे हो। क्रोधसे हिंसा होती है, जहाँ क्रोध नहीं वहाँ हिंसा कैसी ? जिसके लिये समस्त ब्रह्माण्ड अपना स्वरूप ही है, वह किसीपर क्रोध क्यों करेगा और क्यों किसीकी हिंसा करेगा ? सच कहा है—

कुं०—हिंसा उपजे क्रोधसे, क्रोध मूल अभिमान।
तजे देह-अभिमान जो, सो नर सन्त सुजान॥
सो नर सन्त सुजान, देहसे हो जो न्यारा।
सबका अपना आप, सभी प्यारोंसे प्यारा॥
'जयदेवी' हो स्वस्थ, सिद्ध हो परम अहिंसा।
निज हिंसा नहिं होय, न हो फिर परकी हिंसा॥

रासलीला

(लेखक—एक 'महात्मा')

'रस' शब्दसे स्वार्थमें अण् प्रत्यय करनेपर 'रास' शब्द बनता है। रस क्या है, इस विषयपर बहुत विचार किया गया है—'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' जो आस्वादन किया जाय वही 'रस' है। अम्ल (खट्टा), मधुर आदि रस जीभकी सहायतासे अनुभववेद्य होकर हमें आनन्द देते हैं। समस्त आनन्दके मूल कारण हैं हमारे श्रीभगवान्, वह आनन्दमय हैं—हम नाना रूपोंमें, नाना भावोंमें उनका आस्वादन किया करते हैं। उन्हींके आनन्द-का कण माता-पिता, भाई-बन्धु और पति-पत्नीके अन्दरसे क्षरित होकर संसारको मधुर बना देता है, उन्हींका आनन्द-कण शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धके अन्दरसे झरकर हमें आनन्द प्रदान करता है। साधकोंने, ऋषियोंने देखा है, दिखानेकी चेष्टा की है कि हमारे वह परमात्मा श्रीभगवान् परम रसस्वरूप हैं—'रसो वै सः।' वह रसस्वरूप, आनन्दस्वरूप न होते तो फिर कौन प्रयत्नशील होता, और कौन जीवित रहता—

को ह्येवान्यात् को वा प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ?

हम संसारमें उस रसका एक आभासमात्र पाते हैं। वह रस एक ऐसा तत्त्व है जिसे प्राप्त कर लेनेपर, जिसका आस्वादन कर लेनेपर मनुष्य आनन्दस्वरूप, पूर्णतृप्त, अमृतस्वरूप हो जाता है, संसारका भय और चिन्ता फिर उसे स्पर्श भी नहीं कर सकती—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति..... अथ सोऽभयं गतो भवति ।

उस रसका यथार्थ स्वरूप मन-वचनके अगोचर, अव्यक्त और अचिन्त्य है, फिर भी उसके विकास, प्रकाश, लीलाभावका कुछ अंशमें आस्वाद, अनुभव किया जा सकता है ।

वेद कहते हैं, आनन्दस्वरूप परमात्मा अपनेको अभिव्यक्त करनेके लिये, आस्वाद्य बनानेके लिये अपनी मायाकी सहायतासे इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं, जगत्‌रूपमें स्वयं परिणत और विवर्तित होते हैं । रसशास्त्र कहते हैं, परम रसिकशेखर श्रीभगवान् अपनी लीलाके विस्तारके लिये, योगमायाकी सहायतासे लीला-तत्त्वके द्वारा अपनेको आस्वाद्य, अनुभवगम्य बनानेके लिये ही रासलीलाका अनुष्ठान वा अभिनय किया करते हैं । श्रीभगवान् अकेले होनेके कारण आस्वाद कैसे लें—किसका लें ? इसके अतिरिक्त केवल अपने ही खा लेनेसे तृप्ति भी तो नहीं होती, दूसरोंको, प्रियजनोंको भी खिलाना पड़ता है, किन्तु वह किसको खिलावें ? 'द्वितीयाभावात्'—उनके सिवा तो और दूसरा कोई भी है नहीं ! इसीलिये उन्होंने एक कौशलका अवलम्बन किया, एक माया रची । 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ।' जो एक थे, वह बहुत हो गये; अपनेको ही छिन्नमस्ता देवीकी तरह द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भोक्ता-भोग्य-भोजनादिरूप अनेक भावोंमें परिणत या विवर्तित कर लिया । आरम्भ हुई अविभक्तकी विभक्ति, एकका बहुत्व । इस असम्भव कार्यको सम्भव कर दिखानेके लिये आवश्यकता हुई अघटनघटनापटीयसी योगमाया देवी-की—जो श्रीभगवान्‌के साथ युक्त रहकर भी शक्तिमान्‌से शक्तिकी पृथक् कल्पना करके, एकको अनन्त रूपोंमें, अनन्त भावोंमें विभक्त करके लीला-रसका विस्तार करनेमें समर्थ हैं । निर्गुणका सगुण-भाव, निराकारका साकार-भाव, एकका बहुभाव, अव्यक्तका व्यक्तित्व—ये सब बड़ी ही विलक्षण बातें हैं । इसीसे तो भगवान्‌को मायावी कहा गया है । उनकी माया असम्भवको सम्भव कर दिखानेमें, रज्जुको सर्परूपमें, ब्रह्मको जगत्‌रूपमें प्रतीयमान करनेमें समर्थ है ।

तो क्या यह सब एकदम मिथ्या ही है ? वास्तवमें यह सब मिथ्या ही होता, यदि इसके साथ उनका (भगवान्‌का) योग न होता, यदि इस सृष्टिके अन्दर, लीलाके भीतर वह प्रविष्ट होकर, ओतप्रोतभावसे वर्तमान न होते । वह जिसके मूलमें हैं, उनके सहारे ही जो कुछ है, वह क्या मिथ्या हो सकता है—या बन्धनका कारण हो सकता है ? इसीसे तो सृष्टि, रास एकदम मिथ्या, माया-प्रवञ्चना नहीं—यह सब उन्हींका विकास है, उन्हींकी लीला है । वह स्वयं ही जगज्जीवरूपमें विवर्तित, परिणत होकर इस नाटकका अभिनय कर रहे हैं । हमारा यह जगत् योगमायाका खेल होनेपर भी, जब जीव उनके साथ योगकी उपलब्धि करना भूल जाता है तब वह इसे मायाका खेल समझने लगता है । योगमायाका खेल अप्राकृत है, इसीसे सिद्ध-महात्माओंके अतिरिक्त कोई भी प्राकृत जीव इस लीला-तत्त्वका आस्वादन करनेमें समर्थ नहीं; साधकको छोड़कर दूसरे इस तत्त्वकी कल्पना भी नहीं कर सकते । रास आनन्दलीला है—रसराज और महाभावका, शक्तिमान् तथा शक्तिका एक अपूर्व आनन्दरसास्वादन-तत्त्व है । इसका क्षेत्र है अप्राकृत आनन्द-चिन्मय-रस-परिभावित श्रीवृन्दावनधाम, काल है शारदी पूर्णिमा तिथि, पात्र हैं साक्षात् रसिकशेखर श्रीमदनमोहन और उनकी ह्लादिनी शक्तिका पूर्ण विकास श्रीगोपीजन, और उद्देश्य है मर्त्यधाममें परम-धाम स्थापित करके जीवको अप्राकृत लीलारस आस्वादन कराते हुए अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त करा देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और धीरे-धीरे प्रकृत गोलोकधामका अधिकारी बना देना।

भगवान् बुद्धकी साधना थी जीवको, साधकको 'नेति' 'नेति' साधनाद्वारा पवित्र और अप्राकृत बना देना, शंकरकी साधना थी विचारद्वारा तत्त्वतः भगवान्‌के अस्तित्वको प्रमाणित करना, ईसामसीहकी साधना थी मर्त्यलोकके निवासियोंके सामने स्वर्गकी बातें उपस्थित करना, चैतन्यकी साधना थी बहिरंग साधकको अन्तरंग बना डालना और अन्तरंग साधकको रसतत्त्वका आस्वादन करनेमें सहायता देना; इसीसे तो महाप्रभु रासरसमें इतने मतवाले रहते थे, वह राधाभावद्युतिसम्पन्न श्रीकृष्णरूप, रसराज और महाभावकी युगल मूर्ति थे।

रासतत्त्व समझनेके लिये सृष्टितत्त्वको समझनेकी चेष्टा करो; माया और योगमायाकी सृष्टियोंमें कहाँ कैसा अन्तर है, इसे अनुभव करनेके लिये साधना करो। उसके बाद जीवतत्त्व, गोपीतत्त्व, राधातत्त्व और श्रीकृष्णतत्त्वका ध्यान करते हुए समाधिमग्न हो जाओ, किस अवस्थामें पहुँचनेपर जीवके भाग्यमें रासतत्त्वके आस्वादन करनेका अधिकार प्राप्त होता है, इसे ध्याननेत्रसे देखनेकी चेष्टा करो। क्यों श्रीकृष्णने ऋषिपत्नियोंको वापस लौटा दिया था, इसे अच्छी तरह समझ लेना होगा। यह स्मरण रखना होगा कि जबतक चित्तमें देह-गेहकी स्मृति है, 'मैं' 'मेरे' का ज्ञान है, जगद्धर्मके संस्कार मौजूद हैं, तबतक इस तत्त्वका आस्वादन नहीं किया जा सकता। ध्यानमें रखना होगा कि सख्यभावको प्राप्त करनेके लिये एक दिन अर्जुनको भी सर्व धर्मका परित्याग करना पड़ा था। नित्यसिद्धा, स्वरूपशक्ति गोपियोंको भी तबतक इस पवित्र रासतत्त्वके आस्वादन करनेका अधिकार नहीं प्राप्त हुआ था जबतक कि वस्त्रहरणलीलाके द्वारा उनका संस्कारावरण दूर नहीं हो गया। यह याद रखना होगा कि चित्तके कामभावको पूर्णरूपेण जीतनेके लिये ही रासलीलाका अभिनय हुआ था; यह बात स्वयं श्रीशुकदेवजीने कही है; और आदर्श पवित्र प्रेमिक महाप्रभु इसी रासलीलामें सदा-सर्वदा डूबे रहते थे।

दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि 'नेति, नेति' साधनाके फलस्वरूप लययोगकी अन्तिम अवस्थामें, समाधिदशामें प्रकृतिराज्यके सब भाव, सब संस्कार चले गये, जगत्‌के सब तत्त्व शून्यमें परिणत हो गये; इसके बाद एक-एक कला करके अप्राकृत भगवत्तत्त्वने साधकके हृदयमें, नित्यसिद्ध भक्तहृदयमें, पूर्णरूपसे प्रस्फुटित होना आरम्भ किया, वस्त्रहरणलीलाके फलस्वरूप भक्तके सब आवरण, मायाकी सारी चादरें हट जानेपर उसे दिव्य-दर्शन प्राप्त हुआ। तब उस भावराज्यके पूर्ण विकासके साथ-साथ सब तत्त्वोंकी पूर्ण परिणति हो जानेपर भक्तहृदय मदनमोहनके आविर्भाव और लीलाके योग्य प्रशस्त भूमि बन गया। यद्यपि साधारण भावमें वह नित्य सर्वगत हैं, फिर भी विशेष भावमें उनकी प्रकाशलीला विशिष्ट क्षेत्रमें ही देखनेमें आती है। नित्यभावमें जो सर्वान्तर्यामी परमात्मा सच्चिदानन्दघनमूर्ति आनन्दरूपममृतं सर्वचित्ताकर्षक रसस्वरूप हैं, नैमित्तिकभावमें उन्हींके पूर्ण विकास, पूर्ण अवतार जो हैं—वही हमारे कृष्णतत्त्व हैं। जो तत्त्व मन-वचनसे अगोचर था वही कृष्णतत्त्वरूपमें कुछ अंशमें अनुमेय और आस्वाद्य बन गया। इसी परमतत्त्वकी स्वरूपशक्तिको सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी नामसे तीन रूपोंमें विभक्त किया गया है। इनमेंसे सत्स्वरूपा सन्धिनीशक्ति सृष्ट्यादि कार्यके लिये नियुक्त हैं, चित्स्वरूपा संवित्शक्ति ज्ञानियोंकी आराध्य देवी हैं, और आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिको, भगवान्‌को आनन्द प्रदान करनेके लिये, रासलीलाका पुष्टिसाधन करनेकी आज्ञा मिली है। गोपियाँ इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्लादिनी शक्तिकी सर्वश्रेष्ठ विकास हैं, श्रीकृष्णको सुख प्रदान करनेके लिये सर्वदा तत्पर हैं—'कृष्णसुखैक-तात्पर्य गोपीभाववर्य' श्रीराधारानी प्रेमके सर्वप्रधान सारतत्त्व महाभावस्वरूपिणी हैं। गोपियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। गोपियोंको इनका कायाव्यूह कहा गया है। यद्यपि परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र सब तत्त्वोंमें वर्तमान हैं, फिर भी विशुद्ध भक्तहृदयमें, अप्राकृत वृन्दावनधाममें ही उनका समधिक प्रकाश होता है।

जीवमात्र ही परमात्माको आच्छादन करने और धारण करनेके लिये गोपीभावापन्न और भगवत्लीलामें अल्पाधिकरूपमें सहायक होनेपर भी, नित्यसिद्ध सखियाँ ही साधारणतः गोपी नामसे परिचिता हैं।

गोपायति आत्मानं परमात्मानं या सा गोपी, न तु स्तनकेशवती।

—इसे समझनेकी चेष्टा करो। गोपी होनेके लिये स्त्री बनना पड़ेगा—इस बातका कुछ भी अर्थ नहीं। श्रीचैतन्यलीलामें अद्वैताचार्य, श्रीवास आदिका गोपी-भावमें वर्णन किया गया है। प्रथमतः 'गो' शब्दका अर्थ है गाय; प्रकट लीलामें जो नवनीत (मक्खन)-प्रिय दुलारे बाल-गोपालका आदर करनेके लिये, उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये गौ चराने और पालनेके कार्यमें दक्ष थीं और जिन्हें वह कार्य सौंपा गया था, वे ही गोपी हैं। उसके बाद 'गो' शब्दका अर्थ है 'इन्द्रिय', और उनका जो पालन करते हैं—संयमद्वारा शुद्ध करके भगवत्-सेवामें, भगवदाराधनामें पूर्णरूपेण नियुक्त करके विशेषरूपसे भगवत्-लीलामें सहायक होते हैं, वे भी गोपी हैं। 'गो' शब्दका एक और अर्थ वेद है। यों तो समस्त ज्ञान इस वेदके अन्तर्गत है, फिर भी जो ज्ञान भगवत्तत्त्वको, भगवत्-लीलाको पूर्णरूपमें प्रकट करता है, उसी ज्ञानके सारभूत उपनिषदुक्त ब्रह्मज्ञान, रसतत्त्व, आनन्द-तत्त्वकी जो रक्षा करते हैं, उसे भगवत्-सेवामें लगाते हैं, वे भी गोपी हैं। ये सब तो हुईं पण्डितोंकी बातें। हमारी रायमें जिसका कारण-शरीर अखण्ड, अद्वय, ज्ञानतत्त्वके साररूप प्रेमरससे भरपूर है, जिसका सूक्ष्म शरीर संयत, शुद्ध और शान्त है, जिसका स्थूल-शरीर प्रकटरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवामें नियुक्त है, वही गोपी है। इस प्रकार समन्वयसाधनकी ओर ही हमारी दृष्टि है। जो भगवान्को पाकर उनके सिवा और कुछ भी न देखते, न सुनते, न सोचते और न जानते हैं, और किसी चीजके लिये जिन्हें कुछ भी राग, आसक्ति अथवा उत्साह नहीं दिखायी पड़ता—

ॐ यत्प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति न शोचति न रमते नोत्साही भवति।

—श्रीकृष्णचन्द्र ही जिनके सर्वस्व हैं—उन्हींके साथ जो सर्वदा लीला करनेके लिये तत्पर रहते हैं, वे आत्मक्रीड़, आत्मरत, आत्ममिथुन, भगवत्-सेवापरायण सिद्ध-महात्मा ही वास्तवमें गोपी कहलाने योग्य हैं। इसी गोपी-प्रेमकी सारभूता, महाभावस्वरूपिणी, श्रीकृष्णमयी, श्रीकृष्णसर्वस्वा, श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णकी परमवाञ्छिता, रासेश्वरी देवी ही श्रीश्रीराधारानी हैं।

स्थानमाहात्म्यसे, कालमाहात्म्यसे, भक्त-भगवान्के पूर्ण आविर्भावसे, समस्त तत्त्वोंके पूर्ण विकाससे श्री-वृन्दावनधाम भक्तहृदय आज आनन्दरससे भरपूर है। गोपीगण, साधकगण श्रीभगवान्के दर्शनके लिये, उनकी सेवाके लिये लालायित हैं, तन्मयभावप्राप्त हैं; ऐसे समय बज उठी उनकी (भगवान्की) शब्द-ब्रह्ममयी मोहिनी बाँसुरी;—वही अनङ्गवर्द्धन प्रेमरससे पूर्ण, उद्दीपक श्रीभगवान्का साक्षात् आह्वान—उनकी कातर पुकार, उस समय उस वेणुस्वरने गोपियोंके कानोंके द्वारा भीतर जाकर उनके मर्मस्थलको स्पर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और उनके मन-प्राणको व्याकुल बना दिया। सब कुछ छोड़कर, सब भूलकर गङ्गाप्रवाहकी तरह गोपीचित्त चल पड़ा आज कृष्णाभिसारके लिये, उसकी गतिमें बाधा देनेकी शक्ति किसमें है ?

स्थूल देहकी गति रुक जानेपर सूक्ष्म देह किस तरह स्थूल देहको त्यागकर श्रीकृष्णके सन्निकट जा उपस्थित होती है, इसका उल्लेख भागवतमें पाया जाता है। जब सब तत्त्व भगवन्मुखी होते हैं तब जीवात्मा सब कुछ छोड़कर किस तरह किस रूपमें परमात्माकी ओर दौड़ पड़ता है, इस तत्त्वको गोपियोंके अभिसारतत्त्वके श्रीकृष्णान्वेषण-रहस्यके द्वारा प्रकट करनेकी चेष्टा की गयी है। मर्त्य-जगत्में यदि इसका दृष्टान्त देखना हो तो चुम्बकके सामनेके पवित्र निखालिस लोहेके टुकड़ों अथवा जलते हुए अग्निकुण्डके सामनेके पतङ्गोंकी अवस्थापर विचार करो। इनकी गतिके लिये, अभिसारके लिये, मिलनके लिये यदि कोई दायी है तो वह स्वयं विधाता हैं, वह सृष्टिकर्ता स्वयं भगवान् हैं—भला जीव कैसे उस तत्त्वकी कल्पना कर सकता है, कैसे उसकी कर्तव्यता और अकर्तव्यताका निर्णय कर सकता है ? रसोत्कर्षके समय श्रीभगवान्का तिरोभाव, गोपियोंका श्रीकृष्णान्वेषण, जगत् श्रीकृष्णमय-दर्शन, अपने अन्दर श्रीकृष्णकी अनुभूति, अन्य सब तत्त्वोंका विस्मरण, भगवान्का आविर्भाव इत्यादि सब तत्त्वोंकी उपलब्धि जबतक बहुत कालतक ध्यान करके नहीं कर ली जाती तबतक रासतत्त्वका आस्वादन नहीं किया जा सकता। नित्यलीलामें साधक व्यष्टि-समष्टि-भावमें, अपने और जगत्के प्रत्येक तत्त्वमें, भगवत्सत्ता, भगवद्विकास, भगवत्-लीला-रहस्यका आस्वादन किस प्रकार करते हैं, और नैमित्तिक प्रकट लीलामें वही भगवान् जब रूप, गुण, ज्ञान, प्रेम, आनन्द और आकुलतासे भरपूर होकर जगत्के जीवोंके बीचमें आविर्भूत होते हैं, अवतीर्ण होते हैं, सखा-रूपमें, गुरु-रूपमें, पुत्र-रूपमें, या पति-रूपमें साधकके द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, तब उस साधक-रूप आराधिकाके साथ पतिभावमें आगत श्रीभगवान्की जो रासलीला होती है, इस तरह जो आनन्द-आस्वादन-तत्त्व प्रकट होता है, वही तो वैष्णव साधकोंका रासतत्त्व है। नित्यभावमें भक्तहृदयमें यह लीला अनुष्ठित होती है, नैमित्तिक भावमें समय-विशेषमें इस जगत्में उसी अप्राकृत रासलीलाका अभिनय हुआ करता है। सच्चे साधक नित्य अपने हृदयमें स्वरूपप्रतिष्ठ होकर इस लीलाका स्वाद ग्रहण करनेकी चेष्टा करते हैं, शारदी पूर्णिमा-तिथिको उद्दीपन-विभावकी सहायतासे रसग्राही भावुक भक्तके सहित इस रसका आस्वादन करनेकी चेष्टा करते हैं। कहना न होगा कि जो रोज स्वयं अपने भीतर इस लीलाका आस्वादन करते हैं, उनके द्वारा ही तिथि-विशेषको इस लीलाके आस्वादन और प्रचारका कार्य सुचारुरूपसे अनुष्ठित हुआ करता है। शुकदेवजी कहते हैं, रासलीला जीवको स्वरूपप्रतिष्ठ करनेके लिये, जीवको उसके उस आनन्दधामकी, उसके उस प्राणारामकी बात स्मरण करा देनेके लिये है। श्रीधर स्वामी कहते हैं, रासलीलाके अभिनयने जीवको कामना, वासना और आसक्तिके चंगुलसे छुड़ाकर, भगवत्तत्त्वका आस्वादन कराकर, भगवत्-लीलाका दर्शन कराकर, अप्राकृत सुखका परिचय देकर, अप्राकृत भगवद्धामके लिये एकदम उत्सुक बना दिया है। साधकका इन्द्रियोंपर विजय, वासनाका नाश, अहंकारशून्यता, भगवान्के प्रति आकर्षण-बोध, मायाके आवरणका भेद, भगवद्दर्शन, अहंतत्त्वका दर्पनाश, अनन्य आत्म-निवेदनपूर्ण रसास्वादन, भगवत्तृप्ति-विधान, चरम परिणति-प्राप्ति, पूर्णरूपसे भगवान्की उपलब्धि इत्यादि साधनके सब अंग, सब तत्त्व इस रासलीलाके भीतर दिखाये गये हैं। इस रासके नृत्यने ही तो जगत्भरमें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब तत्त्वोंमें अनुप्रविष्ट होकर जगत्‌को इतना मधुर बना दिया है। श्रीराधाकृष्णके इस नृत्यने ही तो ब्रह्मा-ब्रह्माणीको, विष्णु-लक्ष्मीको, रुद्र-रुद्राणीको, समस्त जीव-दम्पतिको युगलरूपमें नाचनेके लिये, लीलारसका आस्वादन करनेके लिये प्रणोदित किया है। जगत् जो आज इतना मधुर हो रहा है, वह उसी परम मधुरके कारण हो रहा है। जगत् जो आज इतना सरस हो रहा है, वह उसी रसराज और महाभावकी रासलीला-का परिणाम है। जीव किस तरह आनन्दके द्वारा उस परमानन्दका आस्वाद पाकर शिवको प्राप्त करना सीख सकता है, किस तरह इस संसारको वृन्दावन-धामके रूपमें परिणत करके मर्त्यलोकमें स्वर्गराज्य प्रतिष्ठित देख सकता है, इसका कौशल हम रासतत्त्वके भीतर देख सकते हैं। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि पवित्रचेता श्रीशुकदेवजी इसके वक्ता और स्वयं श्रीचैतन्य इस रसके भोक्ता हैं। उनका थोड़ा भी प्रसाद प्राप्त होनेपर हम अपना जीवन सार्थक समझेंगे।

केवल अत्यन्त तेजस्वी, वीर, स्वरूपप्रतिष्ठ साधक ही इस रसतत्त्वका विचार करनेके अधिकारी हैं। भगवान्‌के अपनी शक्तिके साथ विहारके रूपमें, रासके खेलका वर्णन करते हुए शुकदेवजीने क्या कह डाला, उसे भी याद रखनेकी जरूरत है—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।

बालक जिस तरह दर्पणके सामने अपने प्रतिबिम्बके साथ खेला करता है, हमारे श्रीवृन्दावनके बाल-गोपालने भी ठीक उसी तरह योगमायाकी सहायतासे निज प्रतिबिम्बरूपा गोपियोंके साथ लीला की थी। रासमें कामके गन्धका नाम भी नहीं,—अनंगको महादेवने भस्म किया था, इसके बाद मदनमोहनने उसे नया जीवन प्रदान करके, उसी कामको प्रेमके रूपमें परिणत करके उसके द्वारा रासलीला की। सच्चा रास, साधकोंके मतानुसार, अनुष्ठित होता है सिद्ध शरीरमें, चिन्मय देहमें। कहना न होगा कि साधक रासतत्त्वके ध्यानके फलस्वरूप पति-पत्नीके अन्दरका अपना कामभाव दूर हो जानेसे अपने अन्दर भी रसराज और महाभावकी विलासविभूतिका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं। उस समय उनकी दृष्टि तामसिक देहके तामसिक भावकी ओर न रहकर भीतरकी वास्तविक ज्योतिर्मय देहकी ओर ही रहती है।

जीवका वास्तविक वासस्थान श्रीभगवान्‌का वह आनन्दधाम ही है। जीव स्वयं भी श्रीभगवान्‌की ही तरह नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त-स्वभाववाला है। चाहे जिस कारणसे हो, बलरामके माया देखने जाने-की तरह, जीव इस संसारमें आकर, मायामें भूलकर, अपने स्वरूप, भगवान्‌के स्वरूप और भगवद्धामका स्वरूप भूल गया है और इसी कारण दुःख, कष्ट और तापसे अधीर हो उठा है। प्रेममय श्रीभगवान् कैसे इतने दिनोंतक अपने प्रियतम जीवकी दुर्दशा देख सकते हैं? इसी कारण वह समय-समयपर अनेक साधु-महात्माओंके द्वारा अपने उस देशका सन्देशा इस देशमें भेजा करते हैं, अपने जीवोंको बुला भेजते हैं। परन्तु जीव इतना मायामें आबद्ध हो गया है कि वह भगवान्‌की पुकार सुनकर भी नहीं सुनता, महात्माओं-की बात समझकर भी नहीं समझता। इस तरह जगत्‌के जीव जब दुर्दशाकी सीमापर जा पहुँचे, असुरोंके अत्याचारसे जब देवगण विशेषरूपसे पीड़ित हुए तब साधुओंकी कातर-प्रार्थनाने भगवद्धाममें पहुँचकर श्रीभगवान्‌के कोमल प्राणोंको इस तरह आघात पहुँचाया कि वह उसी समय अपने धाम और पार्षदों-के साथ मर्त्यलोकमें आकर अवतीर्ण हो गये। दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन तो उस समय हुआ उनका गौण कर्म; और मर्त्यलोकमें प्रेमराज्य स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके, जीवको स्वरूपप्रतिष्ठ कर अपने आनन्दधामके उपयुक्त बना देना, आनन्दधामकी बात स्मरण कराकर वहाँ जानेके लिये उसे उत्सुक बना देना हुआ उनका मुख्य उद्देश्य। इस अवतरणके, लीलाप्रकटनके भीतर एक और भी सर्वश्रेष्ठ कार्य, सर्वश्रेष्ठ साधनतत्त्व है हमारी यह रासलीला। श्रीवृन्दावनमें, भगवद्धाममें श्रीभगवान् अपने पार्षद सखा-सखियोंके साथ किस रूपमें आनन्दके साथ लीला करते हैं, इसका एक जीवन्त दृष्टान्त इस जगत्में अवतीर्ण होकर उन्होंने उसी रूपमें खेल करके, लीला करके जीवोंको दिखा दिया। उस आदर्श जीवनके सहारे, उस आदर्श लीलाकी सहायतासे जीव अपने प्रकृत स्वरूपको समझकर आनन्दधामकी मधुरताका आस्वादन करके श्रीभगवान्का पूर्ण रूपमें आस्वादन करनेके लिये व्यस्त हो पड़ा। रासलीला कुपथगामीको सुपथपर लानेके लिये, दुःख-कष्टसे पीड़ित प्रवासी व्यक्तिको स्वदेशमें—अपने वासस्थानमें लाकर आनन्दरसमें विभोर कर देनेके लिये, स्वरूप-विस्मृत जीवोंको स्वरूपमें प्रतिष्ठित करके श्रीभगवान्की सेवामें, लीलामें सहायक होने योग्य बना देनेके लिये है। यह रासलीला जीवकी पूर्ण परिणतिमें, भगवत्प्राप्तिमें सहायता देने-वाली है।

ईश्वरका अनुभव

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)

पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षाके फलस्वरूप जितनी विजातीय चीजें हमारे देशमें बाहरसे आयी हैं, उनमें एक 'नास्तिकता' भी है। आजकलके नयी रोशनीके शिक्षित कहलानेवाले बाबुओंमें हम इसका काफी प्रभाव देखते हैं। उसके चक्करमें आकर इन लोगोंने ईश्वर और धर्मपरसे अपनी आस्था खो दी है और इनकी दृष्टिमें ईश्वर, आत्मा, धर्म, कर्मवाद, पुनर्जन्म, देवी-देवता, भूत-प्रेतादि योनियाँ, स्वर्ग, नरक आदि बातें केवल ढोंग और भ्रमोत्पादक जान पड़ती हैं। इन लोगोंके मनपर नास्तिकताकी इतनी गहरी छाप पड़ गयी है कि प्राचीन धर्म-ग्रन्थोंका पाठ करना, विद्वान् पुरुषोंकी बातें सुनना या उनसे इस विषयमें कुछ पूछना तो दूर, वे स्वयं भी इन बातोंपर विचार करना नहीं चाहते। वे अपनी स्थूल दृष्टिसे संसारका जो कुछ स्थूल रूप देखते हैं, बस उसीको सत्य मानकर अपना दृढ़ सिद्धान्त बना लेते हैं। और इससे भी भयंकर बात तो यह है कि वे येन केन प्रकारेण अपने धर्म-विरुद्ध सिद्धान्तोंका प्रचार भी करनेकी चेष्टा करते हैं। फलस्वरूप ऐसे अनेक लेख और पुस्तकें आज बाजारमें देखनेको मिलती हैं, और इनके द्वारा समाजकी न केवल आर्थिक हानि हो रही है, बल्कि साधारण जनतामें इनके द्वारा काफी भ्रम फैल रहा है और लोग अपना धार्मिक विश्वास भी खो रहे हैं, जो समाजके लिये अत्यन्त घातक बात है। आज हम इसी बातको ध्यानमें रखकर उनके कुछ मूल सिद्धान्तोंपर विचार करेंगे और ईश्वरके अस्तित्वको साबित करनेकी चेष्टा करेंगे। चूँकि ऐसे लोगोंको ऋषि-मुनियोंके अनुभवों तथा शास्त्रवचनोंपर विश्वास नहीं है; अतएव हम भी यहाँपर वैसे प्रमाण न देकर केवल पदार्थ-विज्ञान और मानस-विज्ञान-शास्त्र-सम्मत बुद्धिगम्य युक्तियों तथा साधारण मनुष्योंके अनुभवके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे। हम यहाँपर ऐसे विद्वानों तथा उनके विचारोंके प्रभावमें आकर भ्रममें पड़े हुए लोगोंसे इतनी प्रार्थना भी कर देना चाहते हैं कि वे पक्षपात तथा दुराग्रहको छोड़कर सारासारका विचार करें और सत्य-को ग्रहण करें।

ईश्वरके अस्तित्वके कुछ प्रमाण ये हैं—

(१) सूर्यादि सब मण्डल चल हैं। सबको नियमानुसार मर्यादित आकाशमें भ्रमण करानेके लिये सर्वज्ञ और स्थिर आधाररूप परमात्माकी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) प्राणिमात्रमें प्रतीत होनेवाला ज्ञान अनादिसिद्ध चैतन्यरूप है ।

(३) इस सृष्टिमें आनन्दकी प्रतीति होती है, वह भी अनादिसिद्ध चैतन्यस्वरूप है ।

(४) मनुष्योंके चेहरे और शब्दोच्चारणमें विभिन्नता उत्पन्न करनेके लिये ईश्वरकी आवश्यकता है ।

(५) प्राणिमात्रके शरीरकी आन्तरिक रचना और आन्तरिक क्रियाका निरीक्षण करनेसे किसी सर्वज्ञकी सिद्धि होती है ।

(६) मनुष्योंके हाथकी रेखाओंमें भिन्नता देखनेसे ईश्वरकी महिमाका अनुभव होता है ।

(७) संस्कृत-भाषाकी रचना देखनेसे संसाररक्षक परमात्माका बोध होता है ।

(८) ऋतुओंमें नियमित परिवर्तन होना, ऋतुओंके कारण उत्पन्न होनेवाले वात-पित्तादि दोष-प्रकोपसे रक्षा हो, वैसे साधनोंकी भी साथ-साथ उत्पत्ति देखकर ईश्वरकी दयालुता जानी जाती है ।

(९) प्राणिमात्रके मनका विकास होनेके लिये सर्वव्यापक चैतन्यका आधार है ।

(१०) देश तथा धर्मपर संकट उपस्थित होनेपर संसारकी रक्षाके हेतु महान् पुरुषोंकी उत्पत्ति ईश्वर-रचित नियमके अनुसार होती है। इतिहास इस बातका साक्षी है ।

(११) देशोंके वैभवकी उन्नति और अवनतिमें भी ईश्वरकी लीला प्रतीत होती है ।

(१२) सब जीवात्माओंको सत्यकी प्राप्ति करनेका सामर्थ्य ईश्वर प्रदान कर रहा है ।

(१३) पृथ्वीपर सुवर्णादि धातुओं और नाना प्रकारकी वनौषधियोंकी न्यूनाधिक आवश्यकताके अनुसार उत्पत्ति सर्वज्ञ ईश्वरका बोध कराती है ।

(१४) मूल प्रकृतिके कार्यरूप परिणाममें और कार्यमेंसे पुनः कारण-भावकी प्राप्तिमें अपरिणामी स्थिर चैतन्यका आधार है ।

विस्तार-भयसे अधिक प्रमाण न देकर अब हम इनमेंसे प्रत्येकपर कुछ विस्तारके साथ विचार करेंगे ।

१ सूर्य, तारागण, नक्षत्र, धूमकेतु, ग्रह और चन्द्र आदि सब मण्डल नित्य अविश्रान्त आकाशमें भ्रमण करते हुए मालूम होते हैं । अगर ये सब मण्डल नियमरहित ऊटपटाङ्ग गतिसे भ्रमण करते होते तो रोज सैकड़ों मण्डल एक-दूसरेके साथ टकरा-टकराकर चूर हो जाते; किन्तु ऐसा नहीं होता । इससे सिद्ध होता है कि सब मण्डल नियमपूर्वक अपने-अपने आकाशके मर्यादित विभागमें भ्रमण करते हैं । इन मण्डलोंकी प्रदक्षिणाके नियमका उत्पादक और रक्षक सर्वज्ञ ही हो सकता है । सम्भवतः लोग कहेंगे कि यह तो प्रकृतिके स्वभावसे होता रहता है; नियमके लिये किसी सर्वज्ञकी क्या जरूरत ? किन्तु यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं । कारण, प्रकृति जड और ज्ञानरहित है और नियमके लिये ज्ञानकी आवश्यकता होती है, बिना ज्ञानके नियम नहीं बन सकता ।

साथ ही सूर्यादि सब मण्डलोंके लिये अमर्यादित शक्तिसम्पन्न स्थिर आधार भी चाहिये । कारण, प्रत्येक मण्डल किसी बड़े मण्डलके इर्द-गिर्द भ्रमण करता है और वह बड़ा मण्डल भी अपनेसे और किसी बड़े मण्डलके चारों ओर प्रदक्षिणा करता है । जैसे, चन्द्र पृथ्वीके चारों ओर और पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रह सूर्यके इर्द-गिर्द घूमते हैं । सूर्य भी स्थिर नहीं है; वह और किसी बड़े मण्डलके आसपास घूमता है—ऐसा पाश्चात्य भूगर्भशास्त्रियोंका कथन है । अनेक वर्षोंसे सूर्य अपने आसपास प्रदक्षिणा करनेवाले ग्रह-समुदायके साथ रोज हजारों कोसकी गतिसे ऊपरकी ओर जा रहा है । कहाँ जा रहा है और किसके आसपास घूम रहा है—यह निश्चित न होनेपर भी ऐसा निश्चित माना गया है कि वह किसी बड़े मण्डलके इर्द-गिर्द प्रदक्षिणा कर रहा है। इस तरह ऐसा निश्चय हुआ है कि सूर्यादि सब मण्डल चल हैं । जैसे घड़ीके घूमनेवाले पुर्जोंके मूलमें एक स्थिर आधार रहता है वैसे ही इन सब चलायमान मण्डलोंके मूलमें एक नित्य, अचल और पूर्ण सामर्थ्यवान् आधार होना चाहिये । ऐसा जो आधार है और जिसने इस ब्रह्माण्डकी रक्षाके लिये नियम बनाये हैं, वही सर्वज्ञ सर्वव्यापक परमात्मा हैं ।

सूर्यके आसपास प्रदक्षिणा करनेवाले ग्रहोंके प्रदक्षिणा-मार्गके नियम जैसे बने हैं, वैसे ही हर एक ग्रहका रंग, रूप, आकार, परिमाण, कृति, वातावरण, आबादी, दूरी, वेग और प्रदक्षिणा-कालके नियम इत्यादिमें किसी उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर हेतुपूर्वक भिन्नता रक्खी गयी है। यह सब रचना सर्वज्ञकी है, प्रकृतिका उद्देश्यविहीन मन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़न्त परिणाम नहीं। यदि यह सब प्रकृतिका कार्य होता तो बिल्कुल नियमरहित होता। इस पृथ्वीकी दो प्रकारकी गति मानी गयी है। एक गतिद्वारा अपनी कीलपर अधोर्ध्व गोल चक्कर लगा लेनेपर चौबीस घण्टेका रात-दिन होता है। दूसरी गतिसे सूर्यके चारों ओर घूमनेमें लगभग तीन सौ पैंसठ दिन लगते हैं, जिससे वर्षकी गणना होती है। इस दूसरी गतिसे प्रदक्षिणा करनेमें नियमपूर्वक हर साल पचास विकलाका मार्ग छूटता जाता है और इस तरह प्रायः नौ सौ वर्षोंमें एक नक्षत्र छूट जाता है। ऐसी प्रदक्षिणा करीब छब्बीस हजार बार हो जानेपर पृथ्वी पुनः मूल नक्षत्रमें आ जाती है। जिस तरह पृथ्वीके लिये यह नियम रक्खा गया है उसी तरह और ग्रहोंके लिये भी कोई-न-कोई नियम है, ऐसा प्रतीत होता है। इसी तरह सब तारादि मण्डलोंके लिये भी मर्यादा निश्चित की गयी है। अच्छे-बुरे वातावरणके लिये भी नियम है। अधिक सुख भोगनेके लिये जो ग्रह बनाये हैं, उनका वातावरण पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक अच्छा है। मङ्गल ग्रहके निवासी पृथ्वीके निवासियोंकी अपेक्षा पदार्थ-विद्यामें विशेष आगे बढ़े हुए हैं, ऐसा पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका अनुमान है। इस कारण हम मङ्गल ग्रहको पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक सुख-भूमि कह सकते हैं और वहाँका वातावरण भी अच्छा कह सकते हैं। परन्तु शनि ग्रहका वातावरण पृथ्वीकी अपेक्षा खराब माना गया है, अतः उसको दुःख-भूमि कहेंगे। इसी तरह सब मण्डलोंकी उत्पत्ति, स्थिति और क्रिया मर्यादासहित होती है। किसी मण्डलमें मर्यादा न हो, ऐसा बोध अभीतक पाश्चात्य मनीषियोंको नहीं हुआ है। इस नियमके कारण भी मर्यादा-रक्षक परमात्माकी सिद्धि होती है।

२ प्राणिमात्रमें ज्ञानकी प्रतीति होती है; यह ज्ञान अनादिसिद्ध चैतन्यरूप है। जड प्रकृतिमेंसे कदापि ज्ञान नहीं उत्पन्न होता। शायद लोग कहें कि शरीरकी उत्पत्तिके साथ चेतनाशक्ति और ज्ञान भी उत्पन्न होता है, अनादि ज्ञान माननेकी क्या आवश्यकता है? परन्तु सृष्टिका यह नियम है कि जो गुण मूल उपादान कारणमें होते हैं वे ही गुण उनसे बननेवाले कार्यमें आते हैं। मूल कारणमें जो गुण नहीं होता वह कदापि उसके कार्यमें नहीं उत्पन्न हो सकता। इस सृष्टिमें जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं वे सब प्रकृतिसे बने हैं। प्रकृतिमें चेतनाशक्ति और ज्ञान-गुण नहीं है, तब इस प्रकृतिके कार्यरूप संसारमें वे गुण नये कैसे उत्पन्न हो गये? इसलिये कहना पड़ेगा कि ज्ञान-रूप चैतन्य अनादि और सर्वव्यापक है। इस चैतन्यके आधारसे ही प्रकृतिका रूपान्तर होता रहता है। पाश्चात्य दार्शनिकोंने भी इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है।

यदि यह सिद्धान्त विरोधियोंको प्रतिकूल प्रतीत होता हो तो वे कोई ऐसा यन्त्र बनाकर दिखावें जो अन्य चैतन्यकी सहायताके बिना बुद्धिपूर्वक यथासमय आहारादि प्राप्त करे और अपने मालिकका कार्य भी करता रहे। जिस तरह चींटी स्वेच्छासे अनुकूल दिशामें आहारादिके लिये गमन करती है और पलटनके सिपाही अफसरकी आज्ञाके अनुसार समझकर नियमपूर्वक कवायद करते हैं, उसी तरह बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाला कोई जड यन्त्र तैयार करके दिखावें। अगर ऐसा यन्त्र तैयार न हो सकता हो तथा प्रकृतिके कार्यरूप पत्थर आदिमें ज्ञान प्रतीत न होता हो और जहाँ-जहाँ अभिमानी चैतन्य रहता हो वहाँ-वहाँ ही ज्ञानकी प्रतीति होती हो तो यह मानना ही पड़ेगा कि प्रकृतिसे ज्ञानगुणकी उत्पत्ति नहीं होती।

चैतन्य सर्वव्यापक होनेके कारण प्रकृतिके परमाणु-परमाणुमें ओतप्रोत है। जड प्रकृति चैतन्यसे अलग होकर कुछ भी कार्य नहीं कर सकती। आजतक किसी पदार्थ-विज्ञानवेत्ताको प्रकृतिका एक भी अणु ऐसा नहीं प्राप्त हुआ है जो चैतन्यशक्तिसे अलग हो। वनस्पतिके बीजोंमें प्रकृतिके परमाणुओंके साथ चैतन्यशक्ति रहती है, इसीलिये बीजको पृथ्वीमें बोनेपर पञ्चभूतके कार्यरूप मिट्टीका, बीजमें वर्तमान चेतनाशक्तिके अनुसार, भिन्न-भिन्न गुणोंमें रूपान्तर होता है। अगर बीजमें चैतन्यशक्ति न होती तो एक ही प्रकारकी मिट्टीका भिन्न-भिन्न रूपान्तर कैसे होता? ऐसे ही प्राणिमात्रकी बुद्धिका विकास न्यूनाधिक परिमाणमें होता हुआ देखा जाता है। किसी मनुष्यके शरीरमें प्रकृतिके ज्ञानवर्धक परमाणु बाहरसे नहीं घुस आते, तथा समान मानसिक श्रम और समान आहार करनेपर भी बुद्धिके विकासमें भिन्नता मालूम पड़ती है। इसका क्या कारण है? नास्तिकोंके मनमें इसका कोई सन्तोषप्रद समाधान नहीं मिल सकता। हम आस्तिकोंके मतानुसार पुनर्जन्म और अनेक कर्मोंके संस्कारसहित अभिमानी चैतन्य जीवात्मा प्रत्येक जीवित शरीरमें रहता है। इसलिये उसके संस्कारके अनुसार भिन्न-भिन्न परिमाणमें बुद्धिका विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। और बुद्धिके विकासके अनुसार सर्वव्यापक चैतन्यरूप ज्ञानके प्रकाशका लाभ न्यूनाधिक परिमाणमें जीवात्माको मिलता है।

बुद्धि-वृत्तिके आविर्भाव और तिरोभावके साथ ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश होता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु यह सोपाधिक भ्रम है। जैसे जवाकुसुमके पुष्पके ऊपर स्फटिक रखनेपर पुष्पकी लालीके कारण स्फटिक भी लाल दीखता है और मृगजलके स्थानपर सूर्यके तापके कारण भ्रम हो जानेसे जलसे भरा हुआ तालाब प्रतीत होता है, वैसे ही बुद्धि-वृत्तिकी उत्पत्ति और लयके साथ ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश भासता है। वास्तवमें ज्ञान अनादि स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश है। अगर ज्ञान ऐसा न हो तो अन्य विषयोंकी कदापि सिद्धि नहीं हो सकती। ज्ञान घटादि पदार्थोंके समान जड अप्रकाशरूप नहीं है। ज्ञानको अगर अप्रकाश जडरूप मानें तो उसे अन्यके अधीन और विषयरूपसे भासित होना चाहिये। परन्तु विषयरूपसे ज्ञानकी प्रतीति कदापि नहीं होती; ज्ञान विषयी (विषयको जाननेवाला) रूपसे ही सर्वदा भासित होता है। अतः विषयसे वैलक्षण्य होनेके कारण ज्ञान स्वप्रकाशरूप है। ज्ञानके प्रागभाव (प्राक्-कालीन अभाव) और ध्वंसकी सिद्धि स्वतः या दूसरोंके द्वारा नहीं होनेसे ज्ञान अनादि अनन्त है। जैसे घटादि पदार्थोंकी उत्पत्ति और नाश ज्ञानद्वारा जाना जाता है, वैसे ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश उस ज्ञानसे अथवा अन्य किसी तरहसे अनुभवमें नहीं आता। और संसारमें उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंकी उत्पत्ति-विनाशशीलता जाननेके लिये अविनाशी, अपरिणामी साक्षीस्वरूप ज्ञानके अस्तित्वकी आवश्यकता है। यदि सर्वविध विकारोंसे रहित, त्रिविध (देश, काल और पात्र) परिच्छेदशून्य तथा कालिक विकारसमूहका साक्षीरूप चैतन्य—स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप न होता तो इस सृष्टिमें काल और तत्कृत विकारादिके ज्ञानकी प्रतीति ही न होती।

कदाचित् कोई ज्ञानको अनित्य माने तो इस दशामें भी सर्व ज्ञानके अवधिभूत एक नित्य ज्ञानकी आवश्यकता रहती ही है। कारण, बुद्धिवृत्तिकी उत्पत्ति और विनाशके साथ उत्पत्ति-विनाशशील अनित्य ज्ञान परस्पर व्यभिचारी अननुगत होगा। वह ज्ञान जिस आश्रयमें उत्पन्न होता है उसका स्वरूपभूत होनेके कारण या उसके साथ तादात्म्य-प्राप्तिके कारण मूल आश्रय भी विकारको प्राप्त होगा। अतएव ज्ञानकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश, इनकी प्रतीति उस विकारावस्थासे या अवस्थावान्से (बुद्धि या प्राणतत्त्व मानें तो उससे भी) नहीं हो सकती। क्योंकि यह नियम है कि विषय और विषयी (विषयका जाननेवाला) सर्वदा भिन्न रहते हैं। अतएव अवस्थारहित परन्तु अवस्थामें आध्यासिक तादात्म्यसम्बन्धसे अनुगत अविनाशी सर्वव्यापक ज्ञानरूप एक चैतन्यकी आवश्यकता रहती है। इस चैतन्यसे ही संसारके सब विषयोंकी सिद्धि होती है; यही हमारा ईश्वर है।

इस तरह सर्वत्र सर्वव्यापक चैतन्य और सब चर-अचर प्राणियोंमें आत्मचैतन्यकी शक्ति स्पष्ट प्रतीत हो रही है। तो भी विरोधियोंको चैतन्यका प्रकाश कहीं भी नहीं दीखता और वे ठीक उसी तरह ईश्वर और धर्मसम्बन्धी बातोंको गप्प कहकर उड़ा देना चाहते हैं जिस तरह अबोध बालक पुस्तकोंके अक्षरोंके ज्ञान-भाण्डार, मेंहदीमें लाली, घी-तैलादिमें अग्नितत्त्व, जलमें विद्युत्, लकड़ी अथवा दियासलाईमें अग्नि आदि बातोंको कपोलकल्पित और गप्प समझता है।

३ इस सृष्टिमें प्रतीत होनेवाला आनन्द अनादिसिद्ध चैतन्यरूप है। अगर सर्वव्यापक चैतन्य आनन्दरूप न हो तो आत्मचैतन्य भी आनन्दरहित ही होना चाहिये। और यदि आत्मचैतन्य आनन्दरहित हो तो इस संसारमें अनुकूल विषयके सम्बन्धसे जो स्वरूपानन्दका भान होता है, वह नहीं होना चाहिये। जब किसी इच्छित विषयकी प्राप्ति होती है तब बहिर्मुख वृत्ति क्षणभरके लिये अन्तःकरण-देशमें अन्तर्मुख आत्माकार बनकर आनन्दका ग्रहण करती है। जबतक वृत्ति बहिर्मुखी रहती है तबतक मनमें चञ्चलता रहनेके कारण स्वरूपानन्दका भान नहीं होता। केवल अन्तर्मुखी वृत्ति बननेपर ही आनन्दका अनुभव होता है। परन्तु स्वरूपानन्दका ग्रहण और विषयका ज्ञान दोनोंके अत्यन्त अव्यवहित हो जानेके कारण अविवेकीको भ्रान्ति हो जाती है और वह समझता है कि मुझे विषयसे ही आनन्द प्राप्त हुआ है। यदि विषयसे आनन्दकी उत्पत्ति होती तो किसी एक ही विषयसे जो एक व्यक्तिको आनन्द मिलता है और उसीसे दूसरेको दुःख होता है, ऐसा न होता। जैसे, शराबीको तो शराब मिलनेपर आनन्द होता है परन्तु शराबको हानिकर और अपवित्र माननेवालेको शराबके स्पर्शमात्रसे ही अत्यन्त दुःख होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और एक विषय एक समय जितना आनन्दप्रद प्रतीत होता है, वही विषय दूसरे समय उतना प्रिय नहीं मालूम होता। जैसे, अगर किसी मनुष्यका आज्ञाकारी बुद्धा पुत्र धन, विद्या और कीर्ति प्राप्त कर दीर्घकालके पश्चात् दूर देशसे आकर मिले तो उस समय उसे जितना आनन्द होता है उतना आनन्द उसे फिर दूसरे दिन उसी पुत्रके मिलनेपर नहीं होता। ऐसे ही एक ही विषय एक समय आनन्ददायक प्रतीत होता है और दूसरे समय वही दुःखदायी मालूम होता है, जैसे जाड़ेमें स्नान करनेके लिये गरम जल मिलनेपर तो आनन्द होता है, परन्तु वैसा ही गरम जल यदि ज्येष्ठकी गरमीमें स्नानके लिये मिले तो मनको क्लेश होता है। इन सब दृष्टान्तोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि विषयोंमें आनन्द नहीं है। विषयोंसे यदि आनन्दकी उत्पत्ति होती तो उनसे सबको सब समय समान आनन्द मिलता। परन्तु ऐसा अनुभव नहीं होता। मनमें जिस विषयकी चाह होती है उसी विषयकी प्राप्ति होनेपर आनन्द मिलता है। परन्तु जब उस विषयके प्रतिकूल विषयकी प्राप्ति होती है तो मनमें दुःख उत्पन्न होता है। इससे निश्चय होता है कि मनकी वृत्ति अन्तर्मुखी होनेपर ही आनन्द मिलता है। अन्तर्मुखी वृत्ति हुए बिना आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती। और वृत्ति तृप्त होनेके कारण जितने कालतक अन्तर्मुखी रहती है उतने ही कालतक आनन्दका भान होता है। थोड़े समयतक वृत्ति अन्तर्मुखी रहे तो थोड़े समयतक आनन्द रहेगा और अधिक कालतक वृत्ति अन्तर्मुखी रहे तो अधिक कालतक आनन्दका अनुभव होगा।

आत्मासे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें प्रीति होती है; और उनमें भी जो जितना ही अधिक सम्पर्कमें होता है उसमें उतना ही अधिक प्रेम होता है। तात्पर्य कि दूरके पदार्थोंकी अपेक्षा समीपके पदार्थोंमें अधिक प्रेम होता है। जैसे, पुत्रके मित्रकी अपेक्षा पुत्रमें, पुत्रकी अपेक्षा अपने स्थूल शरीरमें और स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीररूप प्राण-तत्त्व—जीवनमें अधिक प्रेम होता है। यदि किसी मनुष्यके पैरके अंगूठेमें सर्पदंश हुआ हो और डाक्टर कहे कि इतना अंगूठा कटवा डालो अन्यथा प्राणभय है तो यह मनुष्य सूक्ष्म शरीरमें अधिक प्रेम होनेके कारण उतना अपना स्थूल शरीर तुरन्त कटवा डालेगा। सूक्ष्म शरीरका आत्मासे साक्षात् सम्बन्ध होनेके कारण सूक्ष्म शरीरमें स्थूल शरीरादिकी अपेक्षा अधिक प्रीति होती है। जिस आत्माके सम्बन्धके कारण प्रीति होती है उस आत्मामें सबकी अपेक्षा अधिक प्रीति है, ऐसा ही मानना पड़ेगा। वास्तवमें यह प्रीति आनन्द, और दुःखके अभावमें है; और इस आनन्द, और दुःखनाशके लिये ही सांसारिक पदार्थोंमें प्रीति प्रतीत होती है। अतः सबकी प्रीतिका मुख्य विषय आनन्दरूप चैतन्य ही है।

पशुओंकी स्वाभाविक वृत्तिका निरीक्षण करनेपर मालूम पड़ता है कि वे भी अपने शिशुपर आरम्भमें अति प्रेम करते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं वैसे-वैसे माताका प्रेम भी कम होता जाता है। और जहाँ बच्चेका दूध पीना बन्द हुआ कि प्रीति भी चली जाती है; केवल सामान्य सद्भावभर रहता है। आरम्भमें अत्यन्त प्रेम करके बच्चोंको पालन करनेकी मनोवृत्ति क्यों उत्पन्न हुई? थोड़ी देरके लिये ऐसा मान लें कि मनुष्य तो इस प्रलोभनके कारण सन्ततिका प्रेमसे पालन करते हैं कि भविष्यमें बालक बड़े होकर हमारी—माता-पिताकी सेवा करेंगे। परन्तु पशुओंको न तो भविष्यकी सेवाका लोभ है और न वर्तमान समयमें बच्चोंकी रक्षा करनेसे उन्हें कोई लाभ होता है। ऐसा भी नहीं है कि पहली सन्ततिमें प्रेम रहा और फिर बादमें होनेवाली सन्ततिसे उनका प्रेम न हो। कितनी ही बार सन्तान हों, बराबर पशुकी प्रेमविषयक वृत्ति एक समान ही देखनेमें आती है; और हर बार उसी तरह एक निश्चित कालतक प्रेम करके फिर प्रेम छोड़ देता है। इस प्रेमवृत्तिको प्रकृतिका स्वाभाविक परिणाम कहेंगे या प्रेमको हरिरूप कहेंगे? यदि प्रकृतिका परिणाम कहें तो फिर प्रसवके समय क्या विकृति हुई जिससे प्रेमकी इच्छा उत्पन्न हुई और पुनः इसके विरुद्ध कौन-सी क्रिया हुई तथा क्यों हुई जिससे प्रेम विसर्जित हो गया? प्रेम करने और छोड़नेमें मनोवृत्तिकी ज्ञानपूर्वक ही विकृति होती है। वह ज्ञान और प्रेम दोनों चैतन्यरूप ही हैं। यह ऊपर युक्तिपूर्वक समझाया है। आनन्द और ज्ञानकी उत्पत्ति और नाश कदापि नहीं होता। आनन्द और ज्ञान चैतन्यस्वरूप होनेसे अनादि हैं। केवल वृत्तिकी उत्पत्ति और लयसे अविवेकीको भ्रान्ति होती रहती है। ज्ञान और आनन्द कदापि प्रकृतिके स्वभावसे उत्पन्न नहीं हो सकते।

विरोधियोंका कहना है कि 'यह संसार स्वाभाविक है और इसका सञ्चालन स्वयमेव होता है! प्रकृतिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव्यवस्था इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि यह स्वाभाविक है, किसीके द्वारा सञ्चालित नहीं।' किन्तु यह कहना बड़ा कठिन है कि 'संसार' शब्दको वे किस अर्थमें लेते हैं। वास्तवमें इस स्थूल पृथ्वीके ऊपरी स्थानोंकी विभिन्नताके कारण उन्हें जो कुछ दोष प्रतीत होता है, वे उसीके आधारपर अपना निर्णय कर डालते हैं। पृथ्वीको छोड़कर आकाशमें दिखायी देनेवाले सूर्य, तारागण आदि मण्डलों-की रचनामें कोई दोष है या नहीं इस बातका उन्हें कुछ भी पता नहीं। इससे अनुमान होता है कि उनके 'संसार' का अर्थ है केवल पृथ्वीका स्थूल ऊपरी रूप। परन्तु यह पृथ्वी ब्रह्माण्डके भीतर बहुत छोटी है, जैसे हिमालयपर्वत-पर रक्खा हुआ राईका दाना हो; अथवा इस प्रमाणका लाखवाँ हिस्सा कहा जाय तो भी अनुचित न होगा। यदि संसारका अर्थ सारा ब्रह्माण्ड मान लें और अन्य ग्रहोंकी रचनाके दोष आदिका विचार इस कारण कि वे सब अप्रत्यक्ष हैं, छोड़ भी दें तो भी हम संसारको स्वाभाविक नहीं कह सकते। क्योंकि आकाशमें प्रतीत होनेवाले और प्रतीत न होनेवाले सब मण्डल विनाशी हैं, एक भी मण्डल अविनाशी नहीं है; और सबकी रचना किसी-न-किसी अज्ञात कालमें हुई है। परन्तु सब मण्डलोंका मूल उपादान कारण प्रकृति परिणामी होनेपर भी नित्य है; इसलिये प्रकृतिको यदि कोई अनादि और अनन्त कहे तो उस कथनको सृष्टिकालके भीतर मान लेंगे। कार्यरूपसे तो किसी भी मण्डलको अविनाशी नहीं कह सकते। अपनी पृथ्वी जिस सूर्यके इर्द-गिर्द नियमपूर्वक प्रदक्षिणा कर रही है, वह सूर्य भी भविष्यमें शीतल होकर नष्ट हो जायगा; साथ-ही-साथ सूर्यके इर्द-गिर्द भ्रमण करनेवाले बृहस्पति, शनि, मंगल, पृथ्वी आदि ग्रह भी आधारके अभावमें नष्ट हो जायँगे—ऐसा पाश्चात्य भूगर्भशास्त्रियोंका कथन है; और अपने देशके प्राचीन शास्त्रकारोंने भी ब्रह्माण्डोंको विनाशी कहा है। आकाशमें एक नहीं, अनन्त ब्रह्माण्ड बतलाये गये हैं। अपना सूर्य और उसके इर्द-गिर्द घूमने-वाले सब ग्रह मिलकर एक ब्रह्माण्ड हुआ; ऐसे अनन्त सूर्य आकाशमें हैं और सबके आसपास इर्द-गिर्दवाले ग्रह भी हैं। ये सब ब्रह्माण्ड नाशवान् हैं। जब एक अथवा अनेक ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते हैं तब नष्ट हुए ब्रह्माण्डोंके मूल उपादान कारणरूप प्रकृतिके परमाणुओंमेंसे पुनः ब्रह्माण्डोंकी नवीन रचना प्रकृतिसे ही कराकर, उन्हें निश्चित स्थानोंमें स्थिरकर पूर्ववत् सृष्टिका कार्य जारी करनेके लिये सर्वज्ञ ईश्वरकी आवश्यकता रहती है। प्रकृतिके परमाणुओं-का संयोग भी अपने-आप नहीं हो सकता, और कदाचित् परमाणुओंके संयोगको कोई स्वाभाविक मान भी ले तो स्थान-निर्णय नहीं हो सकता। क्योंकि जो नये मण्डल तैयार होंगे उनके स्थान पहलेके अन्य मण्डलोंसे भिन्न होने ही चाहिये, नहीं तो वे आपसमें बराबर टकराते रहेंगे और इस तरह सृष्टि-कार्य चलना असम्भव हो जायगा। इसलिये अन्तमें कहना पड़ेगा कि सृष्टि-कार्यका आरम्भ करानेका काम प्रकृतिसे नहीं हो सकता, सर्वज्ञ ईश्वरसे ही होता है।

अक्सर लोग यह शङ्का उपस्थित करते हैं कि घटका कर्ता कुम्भकार है और कुम्भकार अपने माता-पितासे उत्पन्न हुआ है। इसी तरह जब जगत्का कर्ता ईश्वर है तो ऐसा ईश्वर किससे उत्पन्न हुआ?—उसका कर्ता किसे मानेंगे? इस शङ्काका समाधान यह है कि, ईश्वर अनादि सिद्ध है। जो वस्तु अनादि होती है वह कार्य नहीं कहलाती। जो कार्य होता है, उसीकी उत्पत्ति होती है, और जिसकी उत्पत्ति होती है, उसीके लिये कर्ताकी आवश्यकता रहती है। किन्तु जो कार्य नहीं है, उसे उत्पन्न होनेवाला नहीं कह सकते। अतः उसका कोई कर्ता भी नहीं हो सकता। चूँकि यह प्रतीत होनेवाला संसार कार्यरूप है, इसलिये यह मानना ही पड़ेगा कि यह किसी अज्ञात कालमें उत्पन्न हुआ है। और यह संसार उत्पन्न होनेवाला है, इसलिये उससे भिन्न इसका कोई दूसरा कर्ता भी होगा ही। जैसे घट कार्य होनेसे उत्पन्न होनेवाला है अतः उसका उपादानकारण मिट्टी तथा निमित्तकारण कर्ता कुम्हार है, वैसे ही यह संसार भी कार्यरूप होनेके कारण उसका उपादानकारण प्रकृति और निमित्तकारण ईश्वर है। परन्तु जैसे संसाररूप कार्यका उपादानकारण प्रकृति अनादि होनेके कारण उत्पन्न होनेवाली नहीं है और इसलिये उसका कोई उपादानकारण या निमित्तकारण भी नहीं हो सकता; वैसे ही ईश्वर भी अनादि स्वयंसिद्ध होनेसे उसका भी कोई उपादान या निमित्तकारण नहीं है।

ईश्वर सर्वव्यापक है, एक देशमें स्थित नहीं है। जो वस्तु एक देशमें होती है, अन्य देशमें नहीं होती, उसीकी उत्पत्ति और नाश होता है। जिसका देशके हिसाबसे अन्त होता है, उसका कालके हिसाबसे भी अन्त होता है। ईश्वर एक देशमें स्थित (परिच्छिन्न) नहीं है, परन्तु विभु—सर्वव्यापक है। सर्वव्यापकका कर्ता कोई नहीं हो सकता। वैसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वस्तु अनित्य होती है वही कर्तासे जन्य होती है; परन्तु ईश्वर अनित्य नहीं है। ईश्वर अपरिणामी, अनादि, अनन्त है। इस हेतुसे ईश्वरका कोई कर्ता नहीं हो सकता।

कदाचित् ईश्वरका कोई कर्ता मानें, तो उसमें यह दोष आता है कि कोई स्वयं ही तो अपना कर्ता बन नहीं सकता, एक ईश्वरके कर्ता दूसरे ईश्वरको मानना पड़ेगा। पुनः दूसरेका कर्ता तीसरा ईश्वर अङ्गीकार करना पड़ेगा। फिर तीसरेका चौथा, चौथेका पाँचवाँ और इस तरह अनन्त कर्ताओंको मानना पड़ेगा, धाराका कहीं विराम न होगा तथा इस रीतिसे अनवस्था-दोषकी प्राप्ति होगी।

वास्तवमें इस संसारमें जो अविचल नियम देखनेमें आते हैं, उनका रक्षक सर्वज्ञ ईश्वर है। परिणामी प्रकृतिमें रूपान्तर होनेके लिये यही अपरिणामी ईश्वर आधार-स्वरूप है।

उपर्युक्त हेतुओंसे ईश्वर अनादिसिद्ध होनेके कारण कर्तासे जन्य नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है।

४ मनुष्योंकी मुखाकृति (चेहरे) और शब्दोच्चारण (आवाज) पर विचार करनेसे भी सहज ही ईश्वरकी सिद्धि हो सकती है। वर्तमान समयमें इस पृथ्वीपर लगभग दो अरब मनुष्योंकी आबादी है। इनमें अथवा भूतकालके मनुष्योंमें किन्हीं दो मनुष्योंके चेहरे पूर्णरूपसे समान नहीं देखे गये हैं। एक ही माताके गर्भमेंसे एक ही साथ जन्म लेनेवाले भाई-बहिनोंके चेहरोंमें भी थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य ही रहता है। वैसा ही अन्तर आवाजमें भी रहता है। यदि पूर्णरूपसे समानता रहती तो रामको धनिक जानकर श्याम उसके घरमें घुस जाता और सच्चे रामको नकली कहकर घरसे निकाल देता। परन्तु ऐसा इस संसारमें कहीं देखा नहीं जाता। यदि प्रकृतिकी ही सब रचना होती तो इस नियमका सर्वांशमें पालन नहीं हो सकता था। इसीसे सर्वज्ञ ईश्वरकी इस सृष्टिको सर्वज्ञ ईश्वरद्वारा रचित ही मानना पड़ता है। (क्रमशः)

भक्त-गाथा

(भक्त लोचनदास)

बंगालमें बर्दवान जिलेमें कोग्राम नामक स्थान भक्तवर श्रीलोचनदासजीका जन्म-भूमि था। इनके पिताका नाम कमलाकर और माताका नाम सर्वानन्दीदेवी था। घर सम्पन्न था। लोचनदास अपने मातापिताके एकमात्र सन्तान थे, और उनका ननिहाल भी उसी गाँवमें होनेके कारण वृद्ध नाना-नानी भी उनको बहुत ही प्यार करते थे। इस प्यार-दुलारके कारण लोचनदासका बाल्यजीवन प्रायः हँसने-खेलनेमें ही बीता, उन्हें पढ़ने-लिखनेका विशेष अवसर नहीं मिला।

घरमें सम्पन्न होने और मातापिता तथा नाना-नानीके परम स्नेहसे सदा पले होनेपर भी लोचनदासका मन किसी पूर्व संस्कारवश विषयोंमें नहीं लगता था। वह खेलनेमें मिट्टीके महल बनाते और फिर उन्हें बिगाड़कर कहते 'देखो, यह संसार भी ऐसा ही है। आज है, कल नहीं।' वास्तवमें बात भी यही है। बच्चोंके मिट्टीके बने घरोंको बनते-बिगड़ते देखकर मातापिता हँसते हैं और बच्चोंको उस खेलमें निमग्न देखकर, और बीच-बीचमें खेलमें ही उन मिट्टीके महलोंके लिये लड़ते-झगड़ते तथा रोते-हँसते देखकर बड़ी उम्रके लोग उन्हें मूर्ख मानते हैं, परन्तु अपनी दशापर विचार नहीं करते। संसारके सब जड पदार्थ मिट्टीके ही तो हैं। पार्थिव पदार्थोंमें कौन-सा दूसरी चीजसे बना है। तुम्हारे हीरे-मोती, सोना-चाँदी, महल-मन्दिर, मोटर-विमान, मेवा-मिश्री सब मिट्टीसे ही तो बने हैं। तुम बच्चोंपर हँसते हो, उन्हें मूर्ख मान-कर कोसते हो परन्तु खुद इन्हीं मिट्टीकी चीजोंके संग्रह और भोगके लिये दिनरात भटकते रहते हो, प्राणियोंकी हिंसा करते हो, दूसरे मनुष्योंसे वैर बाँधते हो। तुम्हारे इन मिट्टीके पदार्थोंके लिये तो इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारखाने बने हैं। मिट्टीके पदार्थोंके लिये ही लड़ाई लड़नेको ये कोट-कचहरियाँ बनी हैं। खुद मिट्टीके पुतले तुम मिट्टीकी बनी वस्तुओंपर पागल हो रहे हो। सोचो, जैसे बच्चोंका मिट्टीका महल पलक मारते-मारते ढह जाता है, ऐसे ही तुम्हारे यह सब पदार्थ भी नष्ट हो जायँगे। अस्तु।

लोचनदासके पितामाताको पौत्रका मुख देखनेकी इच्छा हुई, इसलिये उन्होंने ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही लोचनदासका विवाह करना चाहा। लोचनदासने बहुत मने किया परन्तु आखिर मातापिताकी आज्ञाके सामने सिर झुकाकर उन्होंने विवाह कर लिया। साक्षात् लक्ष्मी-जैसी बहूका मुख देखकर लोचनदासके मातापिताको बड़ी खुशी हुई। परन्तु लोचनदासका मन इधर नहीं फिरा, उनकी मनोवृत्ति जहाँ लगी थी, वहाँसे नहीं हट सकी।

श्रीखण्ड नामक स्थानमें श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्त पण्डितप्रवर नरहरिजी महाराज निवास करते थे। वे जैसे प्रेमी भक्त थे वैसे ही सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वान् थे। उस समय श्रीखण्डमें रास हुआ करता था। दूर-दूरसे भक्तलोग आकर रासोत्सवमें सम्मिलित हुआ करते। लोचनदास भी गाँवके कुछ बालकोंके साथ श्रीखण्ड गये, और वहाँ भक्तवर श्रीनरहरिजीके सत्सङ्गसे लाभ उठाने लगे। लोचनदासजी श्रीनरहरिजीसे दीक्षा लेकर उनके शिष्य हो गये। उनकी रही-सही सारी आसक्ति नाश हो गयी। उनका वैराग्य श्रीकृष्णानुराग-के रूपमें बदल गया। वस्तुतः वैराग्यवान् पुरुष ही श्रीकृष्णप्रेमके प्रकृत अधिकारी हैं। संसारके भोगोंमें आसक्त विषयी मनुष्योंको श्रीकृष्णका योगिजनदुर्लभ प्रेम क्यों प्राप्त होने लगा।

लोचनदास वहीं रह गये और बड़ी तेज़ीके साथ साधनके पथपर अग्रसर होने लगे। वे मातापिता, बालिका पत्नी, गाँव, घर, बन्धु-बान्धव सबको भूलकर श्रीभगवान्‌के प्रेममें निमग्न हो गये। सद्गुरु नरहरिजी भी अधिकारी शिष्यकी उन्नतिमें दत्तचित्त हो गये।

श्रीनरहरिजी बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित विद्वान् थे। लड़का उनका शिष्य हो गया, यह सुनकर कमलाकर और सर्वानन्दीको बहुत आनन्द हुआ परन्तु वे उसे घर लाना चाहते थे। कारण, बहू अब पूर्ण युवती हो गयी थी। उसकी उम्र सोलहको पार कर गयी थी। आठ वर्ष पहले विवाहके समय उसने पतिका मुख देखा था। उसके बाद द्विरागमन (गौना) न होनेतक वह नैहरमें रही, और जब ससुरार आयी तो पतिको वहाँ नहीं पा सकी। न इतने लम्बे समयमें पतिने उसको कोई सन्देशा भेजा और न उसकी कोई खबर ही ली। इससे उसकी मानसिक वेदना बहुत ही बढ़ गयी थी। वह सदा उदास रहा करती और रात-को एकान्तमें आँसुओंकी तप्त धारासे मुँहको धोकर हृदयको कुछ शीतल करनेका प्रयास करती। पुत्रवधू-की यह दशा देख-सुनकर लोचनदासके पितामाताको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने उसे सान्त्वनाप्राप्तिके लिये नैहर भेज दिया, और कमलाकरने पण्डित नरहरिजीके पास जाकर सारी स्थिति उनको समझायी। नरहरि-जीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने लोचनदासको बहुत समझाया-बुझाया, और न माननेपर अन्तमें जोर देकर उन्हें आमोदपुर नामक गाँवमें ससुरार भेजा।

लोचनदास गुरु-आज्ञाको सिर चढ़ाकर आमोदपुर पहुँचे। बहुत दिन पहले आये थे, इससे उन्हें ससुरार-का घर याद नहीं था। विधाताका विधान कुछ और ही था। गाँवमें घुसते ही उन्हें एक सुन्दरी युवती मिली। उन्होंने बड़े ही विनीत भावसे उससे पूछा-'माताजी! अमुकका घर कहाँ है, किस रास्ते होकर जानेसे मैं वहाँ पहुँच सकूँगा?' युवती एक बार उनकी ओर देखकर और अँगुलीके इशारेसे उन्हें एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तङ्ग गलीका रास्ता दिखाकर सिर नीचा किये अपने रास्ते चली गयी। लोचनदास ससुरार पहुँचे।

बहुत दिनों बाद वैरागी जवाँईको घर आया देखकर लोचनदासजीके सास-ससुरके आनन्दका पार नहीं रहा। स्वागत-सत्कार, कुशल-प्रश्न आदिके बाद स्नान-भोजन हुआ। रात तो हो ही गयी थी। लोचनदास सासकी आज्ञासे एक कोठरीमें घुसे और जाकर देखते हैं तो वहाँ वही युवती खड़ी है जिससे उन्होंने रास्ता पूछा था और 'माताजी' कहकर सम्बोधन किया था। युवतीने भी समझा कि वह अपरिचित मुसाफिर ही मेरे हृदयका आराध्य देव है। पतिके मुखसे निकला हुआ 'माताजी' शब्द याद आते ही धर्मभीरु तरुणी काँप गयी, उसका मुख मलिन हो गया, विषादकी छाया प्रत्यक्षरूपसे उसके मुखपर दिखायी देने लगी और थोड़ी ही देरमें हृदयका वह दुःख उसके नयनोंसे मोतियोंकी असंख्य बूँदोंके रूपमें झरने लगा। युवती साड़ीके आँचलसे आँखें पोंछकर दूर हट गयी। लोचनदास भी सब कुछ समझ गये। युवती पत्नीकी करुण दशा देखकर दयार्द्र लोचनदासका हृदय विदीर्ण हो गया। उनके मुखसे एक शब्द निकलना भी दूभर हो गया।

समयकी गति कभी नहीं रुकती। रात प्रायः बीत गयी परन्तु अभीतक पति-पत्नी दोनों चुप हैं, और दोनोंके आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग रही है। निशानाथको अस्ताचलकी ओर जाते देख, सूर्यदेवकी अगवानी करनेके लिये अरुणोज्ज्वल वस्त्रोंसे तन ढाँककर उषादेवी पधारीं। अब लोचनदासकी जबान खुली। धर्मभीरु लोचनदासने विधाताका अनिवार्य विधान बतलाकर पत्नीको समझाया। उसने गद्गद कण्ठसे कहा—'स्वामिन्! मेरे तो आप ही आराध्य देव हैं। आपको छोड़कर मैं दूसरे किसी ईश्वरको नहीं जानती। मैंने तो सोते-जागते सदा-सर्वदा आपका ही चिन्तन किया है। मैं भोगकी भूखी नहीं हूँ, मुझे आपका शरीर नहीं चाहिये। मैं तो हृदय चाहती हूँ। मैं नहीं चाहती कि आपने जिसको 'मा' कह दिया उसके साथ पत्नीका-सा बर्ताव करके धर्मपथसे च्युत हों। मेरी तो बस यह एक ही प्रार्थना है कि मुझे आप सदा अपने साथ रक्खें। आपको स्पर्श करनेका मेरा अधिकार न रहनेपर भी सेवा करनेका तो अधिकार है ही। आप निश्चय रक्खें, मैं कामकी दासी नहीं हूँ। मैं तो प्रेमकी भूखी हूँ। ईश्वर आपके और मेरे पवित्र व्रतको निबाहेंगे। आप कोई सन्देह न करें।' इस प्रकार स्वामीके चरणप्रान्तमें बैठी हुई सती न मालूम कितनी बातें कह गयी। परन्तु उसकी बातोंमें कहीं भी न थी कातरता, न कामलोलुपता, न विषाद, न अधीरता और न भोगवासना। थी केवल एक साथ रहनेकी इच्छा,—प्रार्थना जिसको लोचनदासने स्वीकार किया। पवित्र शीलव्रतको धारणकर दोनों पति-पत्नी परमात्माके मार्गपर चलनेके लिये सूर्योदयसे पूर्व ही वहाँसे चल पड़े।

अहा! कैसा ऊँचा भाव है। एक बार भूलसे भी जिसको 'मा' कह दिया, विवाहिता पत्नी होनेपर हृदयको कठोर करके उसके साथ पत्नीका-सा व्यवहार त्याग देना और पत्नीका इस बातको सहर्ष स्वीकार कर लेना कितनी धर्मप्रियता है। कहाँ वह पुण्यकाल, और कहाँ आजका इन्द्रियोंकी गुलामीसे सना हुआ लम्पटता और विषयवासनायुक्त व्यभिचारपूर्ण गन्दा जमाना! अस्तु।

पितामाताकी मृत्युके बाद लोचनदास अपनी सारी धनदौलत गरीबोंको बाँटकर ग्रामके बाहर एक पर्णकुटी बनाकर सती पत्नीके साथ वहीं रहकर भगवद्भजन करने लगे। दोनोंकी जवान उम्र थी और दोनों रातदिन पास रहते थे परन्तु उनका व्रत सदा अटल रहा, वे कभी आत्मविस्मृत नहीं हुए। वे धर्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथसे कभी एक पैंड भी नहीं डिगे। भगवत्प्रेममें दोनों ही मस्त रहते थे। लोचनदासजीका श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें प्रगाढ़ प्रेम था। इसीसे उन्होंने श्रीचैतन्यलीलाका वर्णन करनेकी इच्छासे 'चैतन्य-मङ्गल' नामक बङ्गला महाकाव्यकी रचना की।

लोचनदासजी कुटियामें बैठे-बैठे एकान्तमें 'चैतन्य-मङ्गल' का गान करते, और सती पत्नी पास बैठी हुई एकाग्र मनसे हर्षाश्रु बहाती हुई सुनती। कभी-कभी वह भी भावावेशमें साथ-साथ गाने लगती। इस प्रकार युवती पत्नी लोचनदासकी साधनसंगिनी बन गयी। उनका दाम्पत्यप्रेम श्रीकृष्णप्रेमके रूपमें परिणत हो गया—और उस प्रेमकी सुधाधारा विश्वको पावन करने लगी। लोचनदासका चित्त आनन्दसे भर गया। उनका ग्रन्थ 'चैतन्यमङ्गल' वैष्णवोंकी परम प्रिय और बहुमूल्य सम्पत्ति है। उसमें श्रीश्रीचैतन्यदेवकी प्रायः सभी लीलाओंका बड़ी ही मधुर भाषा और सुन्दर भावोंमें वर्णन किया गया है। इसके सिवा लोचनदास-जीने 'दुर्लभसार', 'वस्तुतत्त्वसार', 'आनन्दलतिका', 'प्रार्थना', 'श्रीचैतन्यप्रेमविलास', 'देहनिरूपण' और 'रागलहरी' नामक सात ग्रन्थोंकी और भी रचना की थी। ये सातों ही वैष्णवोंके प्रिय ग्रन्थ हैं। उनका सारा जीवन भजनकीर्तन और ग्रन्थनिर्माणमें ही बीता। ६६ वर्षकी अवस्थामें संवत् १६४५ वि० में पौष मासमें उनका भगवत्-स्मरण करते-करते ही देहावसान हुआ। कोग्राममें कुनुई नदीके तीरपर उनकी समाधि बनी है। लोचनदासजीकी पत्नीका भी समस्त जीवन भगवद्भजनमें ही बीता!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

कृपालु लेखकों, चित्रकारों और पाठकोंसे प्रार्थना

'योगाङ्क'

श्रीभगवान्‌की कृपा, प्रेरणा और शक्तिसे आपका 'कल्याण' अपने जीवनका नवम वर्ष सकुशल समाप्त कर आगामी श्रावणमें दशम वर्षमें प्रवेश करेगा। इस समय 'कल्याण' की २७५०० प्रतियाँ छप रही हैं। शक्त्यंकका तीन ही महीनेमें दूसरा संस्करण छापना पड़ा है। भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें लोग 'कल्याण' को बड़े चावसे पढ़ते हैं और अनेकों नर-नारी 'कल्याण' में प्रकाशित साधनोंके अनुसार चलकर अपने जीवनको उन्नत और भगवद्-मुखी बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। इससे आप समझ सकेंगे कि आपके 'कल्याण' के द्वारा मानवसमाजकी यत्किञ्चित् सेवा हो रही है और इसीसे यह किसी अंशमें लोकप्रिय बन सका है।

इस बार दशम वर्षका प्रवेशाङ्क 'योगाङ्क' निकालना निश्चित किया गया है। योग बहुत ही व्यापक विषय है और इसका सभी साधन-सम्प्रदायोंसे निकटतम सम्बन्ध है। 'योगाङ्क' में यथासाध्य योगसम्बन्धी अधिकांश विषयोंपर प्रकाश डालनेका विचार है। इसके साथ छपी हुई लेख-सूची देखनेसे आपको इस बातका पता लग जायगा। साथ ही इसमें योग और योगियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक रंगीन और सादे चित्र रहेंगे। इससे आशा है कि यह सभीके लिये बड़े कामकी वस्तु होगी। पिछले विशेषांकोंकी भाँति इस अंकमें भी अनेक सन्त, महात्मा, साधक, सिद्धयोगी और सम्माननीय विद्वानोंके अनुभवपूर्ण महत्त्व भरे लेख प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहा है। इस अंकके लिये नीचे लिखे विषयोंमें-से किसी विषयपर या अन्य किसी योग सम्बन्धी उपयोगी विषयपर लेख भेजनेके लिये पूज्यचरण सन्त, महात्मा और विद्वान् महानुभावोंसे प्रार्थना की गयी है। लेख आ रहे हैं। सन्त, महात्मा और विद्वान् महानुभावोंसे करबद्ध प्रार्थना है कि वे अपने लेख-कविता आगामी चैत्र शुक्ल १ से पहले-पहले ही भेजनेकी कृपा करें।

लेख बहुत बड़ा न हो। तथा हासिया छोड़कर साफ अक्षरोंमें कागजकी एक ही पीठपर लिखा हुआ हो। लेख हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती या अंगरेजी इनमेंसे किसी भी भाषामें भेज सकते हैं। लेखके साथ प्राचीन योगी और योगसम्बन्धी घटनाओंके वर्णनसहित चित्र भी भेज सकते हैं। वर्णन सच्चा और संक्षिप्त हो। इस सहायताके लिये मैं बड़ा कृतज्ञ होऊँगा। अनुभव किया हुआ सफल साधन लिखनेवाले महात्मा भी बड़ी कृपा करेंगे।

प्रार्थी

हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक

लेख-सूची

१–महायोग।
२–पूर्णयोग।
३–राजाधिराजयोग।
४–ज्ञानयोग।
५–सांख्ययोग।
६–निष्कामकर्मयोग।
७–भक्तियोग।
८–भक्तियोगकी सर्वव्यापकता और उत्कृष्टता।
९–भक्ति और प्रपत्तिका स्वरूपगत भेद।
१०–रागभक्ति तथा वैधभक्तिका परस्पर भेद।
११–भक्तियोगमें रसभेद।
१२–प्रेमयोग।
१३–शरणागतियोग।
१४–अभ्यासयोग।
१५–ध्यानयोग।
१६–राजयोग।
१७–समाधियोग।
१८–क्रियायोग।
१९–मन्त्रयोग।
२०–जपयोग।
२१–लययोग।
२२–हठयोग।
२३–प्राचीन हठयोग (मार्कण्डेय-प्रत्यय)।
२४–नवीन हठयोग (मत्स्येन्द्र और गोरखनाथप्रत्यय)।
२५–हठयोगोक्त षट्कर्म।
२६–हठयोगमें असंयम और अनियम-से हानि।
२७–कुण्डलिनीयोग और षड्चक्र।
२८–कुलकुण्डलिनी और अकुल-कुण्डलिनीका रहस्य।
२९–शून्ययोग।
३०–शब्दयोग।
३१–अस्पर्शयोग।
३२–साहसयोग।
३३–श्रद्धायोग।
३४–वाग्योग।
३५–प्राचीन वाग्योगका स्वरूपनिर्देश।
३६–अष्टाङ्गयोग।
३७–षट्कर्म।
३८–विभिन्न योगोंका परस्पर सम्बन्ध।
३९–योगमार्गका रहस्य।
४०–योगमार्ग और वियोग (विवेक)-मार्ग।
४१–विभिन्न योगमार्गोंके फलमें समन्वय।
४२–गीतामें योगके विभिन्न अर्थ।
४३–गीतोक्त कर्मयोग।
४४–गीतोक्त भक्तियोग।
४५–गीतोक्त सांख्ययोग।
४६–गीतोक्त मोक्षसंन्यासयोग।
४७–क्या गीतोक्त सांख्य कापिल सांख्यसे भिन्न है?
४८–वेदोंमें योग।
४९–दर्शनोंमें योग।
५०–उपनिषदोंमें योग।
५१–पुराणोंमें योग।
५२–स्मृतियोंमें योग।
५३–महाभारतमें योग।
५४–रामायणमें योग।
५५–योगवाशिष्ठमें योग।
५६–तन्त्रमें योग।
५७–योग सर्वश्रेष्ठ क्यों है?
५८–योगके परमाचार्य और उनकी शिष्यपरम्परा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५९–वेदान्त और योग ।
६०–कापिल सांख्य और योग ।
६१–योगीश्वर भगवान् शिव ।
६२–योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ।
६३–योगी श्रीदत्तात्रेय और श्रीदक्षिणामूर्ति ।
६४–स्वामी शंकराचार्य और योग ।
६५–भक्ति-सम्प्रदायके प्रमुख आचार्य और योग ।
६६–योगी सन्त ।
६७–भारतके प्राचीन योगी ।
६८–मध्यकालीन योगी (कबीर, नानक, पलटू, दक्षिणके तुलसीदास आदि) ।
६९–भारतीय योग-सम्प्रदाय ।
७०–पाश्चात्य योग-सम्प्रदाय ।
७१–पाश्चात्य योगाचार्य और महान् योगी ।
७२–बौद्धधर्ममें योग ।
७३–जैनधर्ममें योग ।
७४–ईसाईधर्ममें योग ।
७५–इस्लामधर्ममें योग ।
७६–जरथुस्त्रधर्ममें योग ।
७७–मुसलमान योगी ।
७८–यम, नियम और ईश्वरप्रणिधान-की योगमें प्रधानता और परम आवश्यकता ।
७९–योगमार्गमें सहायक साधन ।
८०–योगमार्गके विघ्न ।
८१–योगलभ्य मुक्तिका प्रकार-भेद ।
८२–योगमें उपासनाका प्राधान्य ।
८३–योगकी विभिन्न सिद्धियाँ ।
८४–सिद्धि-प्राप्तिके उपाय ।
८५–सिद्धियोंसे पारमार्थिक हानि ।
८६–सिद्धयोगी ।
८७–योगमाया ।
८८–प्रेमयोगिनी श्रीराधाजी ।
८९–रासलीला और व्रजगोपियोंकी योगधारणा ।
९०–अधोमुख सहस्रार और ऊर्ध्वमुख सहस्रार ।
९१–नाडीचक्र ।
९२–नाडियोंके भेद ।
९३–नाडीशुद्धि ।
९४–दशमद्वारका रहस्य ।
९५–भ्रमरगुहा ।
९६–गुप्त अष्टदलकमल ।
९७–बन्धभेद (जालन्धर, उड्डियान, मूल आदि)
९८–मुद्राभेद ।
९९–वज्रोली, अमरोली तथा सहजोलीका साधनप्रकार और फलनिर्देश ।
१००–अ-क-थ-चक्र ।
१०१–गुरुपादुका ।
१०२–गुरुतत्त्व
१०३–दीक्षातत्त्व ।
१०४–दीक्षाके अवान्तरभेद (आणवी, शाक्ती, शाम्भवी, वैष्णवी, कलावती, मान्त्री, हौत्री, स्मार्ती, चाक्षुषी इत्यादि वैध दीक्षा) ।
१०५–न्यासतत्त्व (अन्तर्न्यास, बहिर्न्यास, मातृकान्यास, अंगन्यास, शरीरको तेजोमय करना आदि) ।
१०६–शक्तिपात (शक्तिसञ्चार) और गुरुकृपा ।
१०७–शब्दसे (गुरुवाक्यसे) अपरोक्ष-ज्ञानके उद्भवकी प्रक्रिया ।
१०८–तारक ज्ञानका स्वरूप ।
१०९–कायाकल्प ।
११०–परकायप्रवेश ।
१११–शून्यमार्ग (व्योमपथ) ।
११२–बिन्दु और महाबिन्दुका स्वरूप तथा परस्पर सम्बन्ध ।
११३–नादानुसन्धान ।
११४–ग्रन्थिमोचन (ब्रह्मा-विष्णु-शिव-ग्रन्थिके उन्मुक्त करनेका प्रकार) ।
११५–युक्त त्रिवेणी और मुक्त त्रिवेणी ।
११६–सहजमार्ग ।
११७–प्रणवका स्वरूप, भेद तथा अनुशीलनप्रकार ।
११८–प्रणवके साथ बीजमन्त्रोंका सम्बन्ध ।
११९–प्राणतत्त्व ।
१२०–प्राणायाम-तत्त्व ।
१२१–कुम्भकका प्रकारभेद ।
१२२–पिपीलिकामार्ग तथा विहङ्गम-मार्ग ।
१२३–योगसे स्वरोदयका सम्बन्ध ।
१२४–पञ्चस्वरका स्वरूप ।
१२५–लेश्या (Aura)-तत्त्व (शुक्ल, पीत, नील) ।
१२६–निर्गुण-ध्यान ।
१२७–शून्यध्यान ।
१२८–शून्य, महाशून्य और अतिशून्य ।
१२९–योगके तन्त्रोक्त तीन मार्ग (आणव, शाम्भव तथा शाक्त) ।
१३०–अनुपायमार्ग ।
१३१–साधन-क्रम ।
१३२–अभिमतध्यानका रहस्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३३–भवप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि तथा उपायप्रत्यय सम्प्रज्ञात समाधिका भेद।

१३४–धर्ममेघ-समाधि।

१३५–अपरवैराग्य और परवैराग्यका रहस्य।

१३६–पाशुपतशास्त्रोक्त सात्मक तथा निरात्मक योग।

१३७–प्रज्ञाकी सप्त भूमियाँ।

१३८–पातञ्जलोक्त क्रियायोग तथा समाधियोगका स्वरूप तथा अधिकारविषयक भेद।

१३९–योगविभूति।

१४०–भूतजय तथा अष्टमहासिद्धि।

१४१–इन्द्रियजय तथा मधुप्रतीक-सिद्धि।

१४२–विशोका-सिद्धि।

१४३–ऋतम्भरा प्रज्ञा।

१४४–ज्योतिष्मती प्रवृत्ति।

१४५–स्मृति-परिशुद्धि।

१४६–सम्प्रज्ञात समाधिके प्रकारभेद।

१४७–कायसिद्धि (कायशुद्धि)।

१४८–भूतशुद्धि तथा चित्तशुद्धि।

१४९–भावदेह।

१५०–ज्ञानदेह।

१५१–बोधिसत्त्वकी दस भूमियाँ।

१५२–श्रुत-चिन्ता-भावनामयी प्रज्ञा तथा भूमिप्रविष्ट प्रज्ञा।

१५३–बोधिचित्तोत्पाद।

१५४–लोकसंस्थान।

१५५–रूप-ध्यान।

१५६–अरूप-ध्यान।

१५७–स्मृत्युपस्थान।

१५८–दर्शनमार्ग तथा भावनामार्गका परस्पर भेद।

१५९–कायव्यूह।

१६०–निर्माणकाय और निर्माणचित्त।

१६१–क्लेशोंका स्वरूप, भेद तथा निवृत्तिप्रकार।

१६२–गुण-स्थानका विवरण।

१६३–सिद्धशिला।

१६४–लोकाकाश तथा अलोकाकाश।

१६५–संवर तथा निर्जरके साथ योगका सम्बन्ध।

१६६–मनःपर्यायज्ञान, अवधिज्ञान, केवलज्ञान।

१६७–कर्मका स्वरूप तथा प्रकारभेद।

१६८–कर्मविपाक।

१६९–योगमें ब्रह्मचर्यकी प्रधानता।

१७०–नैष्ठिक तथा उपकुर्वाण ब्रह्मचर्य-का स्वरूप तथा उद्देश्यगत भेद।

१७१–उपकुर्वाण ब्रह्मचर्यके शुक्ल, रक्त तथा कृष्ण प्रकारके भेदका वर्णन।

१७२–ऊर्ध्वरेता।

१७३–मधुमती भूमि तथा योगान्तराय।

१७४–आश्रयपरावृत्ति।

१७५–असङ्गोक्त योगप्रकार।

१७६–नागार्जुनप्रदर्शित योगप्रकार।

१७७–प्रज्ञापारमितासे योगका सम्बन्ध।

१७८–योगलभ्य निर्वाण तथा बुद्धत्व।

१७९–श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान और बोधिसत्त्वयानमें योगका प्रकार-भेद।

१८०–राधास्वामी-सम्प्रदायानुमत योग-साधना।

१८१–प्राचीन कैथलिक (Catholic)-सम्प्रदायानुमत योगसाधना।

१८२–नाथ-सम्प्रदाय और योग।

१८३–थिऑसोफीमें योग।

१८४–स्वामीनारायण-सम्प्रदायमें योग।

१८५–मेस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म।

१८६–प्रेतात्मवाद।

१८७–रश्मिविज्ञान।

१८८–योगका दुरुपयोग।

१८९–जड समाधि समाधि नहीं है।

१९०–चित्तकी वृत्तियोंके निरोधके सरल उपाय।

१९१–त्याग और लोकसेवा योगकी एक मुख्य साधना है।

१९२–योगसाधनमें सहायक आहार-विहार।

१९३–योगसाधनके प्रतिकूल आहार-विहार।

१९४–योगयुक्त और योगारूढ।

१९५–योगक्षेम।

१९६–गृहस्थमें योगसाधन।

१९७–एकान्तवासी योगियोंसे संसारका कल्याण।

१९८–योगके आसन।

१९९–योगासनोंसे रोगनाश।

२००–यौगिक व्यायाम।

२०१–प्राचीन योगाश्रम।

२०२–वर्तमान योगाश्रम।

२०३–महाराष्ट्र और दक्षिणके सिद्ध योगी।

२०४–राजपूताना और गुजरातके सिद्ध योगी।

२०५–युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और मध्य-भारतके सिद्ध योगी।

२०६–बङ्गाल बिहार, उड़ीसा और आसामके सिद्ध योगी।

२०७–पञ्जाब और सिन्धके सिद्ध योगी।

२०८–हिमालय, तिब्बत और नेपालके सिद्ध योगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-वाटिका

जो शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होता है वही आत्माको आत्मामें देखता है और वही सबका आत्मरूप होता है। —उपनिषद्

* * *

जीवोंसे द्रोह करके जो अपने शरीरको पालता है, वह अपने उस शरीरको और पापकर्मोंसे सञ्चित धनको यहीं छोड़कर अकेला पापरूपी राहखर्चको साथ लेकर घोर अन्धकारमय नरकमें प्रवेश करता है। —श्रीमद्भागवत

* * *

जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छः शत्रुओंको जीत लिया है वह पुरुष ईश्वरकी ऐसी भक्ति करते हैं जिसके द्वारा भगवान्‌में परम प्रेम उत्पन्न हो जाता है। —महाभारत

* * *

श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, प्राणीमात्रको किसी प्रकार भी पीड़ा न पहुँचाना, अपराध करनेवालेके प्रति भी क्षमाभाव, मन, वाणी, शरीरकी सरलता, श्रद्धाभक्तिसहित गुरुकी सेवा, भीतर और बाहरकी शुद्धि, चित्तकी स्थिरता, मन और इन्द्रियों-सहित शरीरका वशमें होना, इस लोक और परलोक-के समस्त भोगोंमें वैराग्य, अहङ्कारका अभाव, प्रत्येक विषयमें जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिरूप दुःख-दोषोंको बार-बार देखना, पुत्र-स्त्री-धन आदिमें आसक्तिका अभाव, किसी सांसारिक वस्तुमें मेरापन न होना, लौकिक दृष्टिसे प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा समचित्त रहना, परमेश्वरमें अनन्य भावसे अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव, विषयी मनुष्यसमुदायमें मन न लगना, अध्यात्म ज्ञानमें नित्य स्थिति, और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना यह बीस लक्षणवाला ज्ञान है, जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है। —श्रीमद्भगवद्गीता

* * *

जैसे प्रवाहके वेगमें एक स्थानकी बालू अलग-अलग बह जाती है और दूर-दूरसे आकर एक जगह एकत्र हो जाती है, ऐसे ही कालके द्वारा सब प्राणियोंका भी वियोग और कभी संयोग होता है। —देवर्षि नारद

* * *

सरलता, कर्तव्यपरायणता, प्रसन्नता और जितेन्द्रियता तथा वृद्ध पुरुषोंकी सेवा इनसे मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति होती है! —प्रह्लाद

* * *

जिससे सब जीव निडर रहते हैं और जो सब प्राणियोंसे निडर रहता है वह मोहसे छूटा हुआ सदा निर्भय रहता है। —भगवान् व्यास

* * *

जो मनुष्य समस्त भोगोंको पा जाता है और जो सब भोगोंको त्याग देता है, इनमें सब भोगोंको पानेवालेकी अपेक्षा सबका त्याग करनेवाला श्रेष्ठ है। —श्रीशुकदेवजी

* * *

जो संग्रह त्याग करके अपरिग्रहमें रत है, ऐसे चित्तके मलोंसे रहित हुए ज्ञानवान् पुरुष ही निर्वाणको प्राप्त होते हैं। —बुद्ध भगवान्

* * *

जबतक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा नहीं आया, इन्द्रियों-की शक्ति बनी हुई है, आयुके दिन बाकी हैं, तभीतक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणकी चेष्टा अच्छी तरह कर लेनी चाहिये। घरमें आग लगनेपर कुआँ खोदनेसे क्या लाभ? —भर्तृहरि

* * *

जब दृश्य नहीं है, तब दृष्टि भी कुछ नहीं है। दृश्यके बिना द्रष्टृत्व कहाँ, दृश्यके कारण ही द्रष्टा और दर्शन है। —ज्ञानेश्वर

* * *

काम, क्रोध, मद, लोभकी खान जबतक मनमें है, तबतक पण्डित और मूर्खमें क्या भेद है? दोनों एक समान ही हैं। —तुलसीदासजी

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सस्ते धार्मिक दर्शनीय चित्र

कागज-साइज १८×२२ इञ्चका बड़ा चित्र नेट दाम ≡)

ब्लाक-साइज १५ इञ्च चौड़ा, १६ इञ्च लम्बा।

विश्वविमोहन श्रीकृष्ण (रंगीन)

इतने बड़े रंगीन चित्र हिन्दुस्तानके छपे हुए प्रायः बहुत कम मिलते हैं। एक मँगानेपर मूल्य, डाकव्यय, पैकिंगसहित ॥) लगता है, २ का ॥≡), ३ का १=), इकट्ठे मँगानेमें और भी सुभीता रहेगा।

कागज-साइज १५×२० इञ्चके बड़े चित्र।

सभी चित्र बढ़िया आर्ट पेपरपर सुन्दर छपे हुए हैं।

चित्रोंके नाम	चित्रोंके नाम	चित्रोंके नाम	चित्रोंके नाम
सुनहरी-नेट दाम प्रत्येकका ≡)	भगवान् श्रीकृष्णरूपमें	राम-रावण-युद्ध	प्रदोषनृत्य
युगलछवि	श्रीविष्णुभगवान्	श्रीविश्वनाथजी	श्रीजगज्जननी उमा
रंगीन-नेट दाम प्रत्येकका =)	श्रीलक्ष्मीजी	श्रीशिवपरिवार	श्रीचैतन्यका संकीर्तन-दल
श्रीनन्दनन्दन	श्रीध्रुव-नारायण	शिव-बरात	महासंकीर्तन
श्रीवृन्दावनविहारी	श्रीरामचतुष्टय	शिव-परिछन	कमला
श्रीविश्वविमोहन	सावित्री-ब्रह्मा	शिव-विवाह	लक्ष्मीनारायण
	रामदरबार		

६ चित्र मँगानेपर पैकिंगमें चोंगा लगाना पड़ता है, जिससे डाकखर्च बढ़ जाता है। सोचकर मँगाना चाहिये। १२ मँगानेसे डाकखर्चका सुभीता है।

कागज-साइज १०×१५ इञ्च

(छोटे ब्लाकोंसे ही केवल बड़े कागजपर बार्डर लगाकर छापे हैं)

सुनहरी चित्र, नेट दाम -) प्रतिचित्र

युगलछवि	तन्मयता

बहुरंगे चित्र, नेट दाम)॥। प्रतिचित्र

कौसल्या-नारायण	व्रज-नव-युवराज	शिव-परिवार	श्रीरामचतुष्टय
अहल्योद्धार	कौरव-सभामें विराट् रूप	ध्रुव-नारायण	कमलापति-स्वागत
वृन्दावनविहारी	श्रीकृष्णार्जुन	पवन-कुमार	लोककल्याणार्थ हलाहलपान
मुरली-मनोहर	श्रीशेषशायी भगवान् विष्णु	श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु	जगज्जननी उमा
गोपीकुमार	देवदेव भगवान् महादेव	श्रीश्रीमहालक्ष्मी	देवी कात्यायनी
राधाकृष्ण	शिवजीकी विचित्र बारात	श्रीविष्णु भगवान्	गौरीशंकर
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें	शिव-परिछन	पञ्चमुख परमेश्वर	लक्ष्मीनारायण

कागज-साइज ७॥×१० इञ्च

सुनहरी चित्र, नेट दाम)॥। प्रतिचित्र

श्रीरामपञ्चायतन	कंसका कोप	वेणुधर	बाबा भोलेनाथ
श्रीराम-सीता पुष्प-वाटिकामें स	बँधे नटवर	मातङ्गी	दुर्गा
			युगलछवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुरंगे चित्र, नेट दाम)॥ प्रतिचित्र

श्रीरामचतुष्टय (भगवान् श्रीरामरूपमें)
सदाप्रसन्न राम
कमललोचन राम
श्रीरामके चरणोंमें भरत
भगवान् श्रीरामचन्द्र
श्रीश्यामसुन्दर
श्रीरामावतार
भगवान् श्रीरामकी बाललीला
भगवान् श्रीराम और काकभुशुण्डि
अहल्योद्धार
गुरु-सेवा
परशुराम-राम
श्रीसीताराम
कौसल्या-भरत
श्रीचैतन्यका संकीर्तन-दल
अनसूया-सीता
श्रीराम-प्रतिज्ञा
राम-शबरी
श्रीसीताराम (शक्तिअंक)
सुबेल-पर्वतपर श्रीरामकी झाँकी
राम-रावण-युद्ध
पुष्पकारूढ श्रीराम
मारुति-प्रभाव
श्रीसीताजीकी गोदमें लव-कुश
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
विश्वविमोहन श्रीकृष्ण
बाँकेबिहारी
श्रीनन्दनन्दन
आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र
गोपीकुमार
व्रज-नव-युवराज

मोहन
भक्त-भावन भगवान् श्रीकृष्ण
साधु-रक्षक श्रीकृष्ण (वसुदेव-देवकीको कारागारमें दर्शन)
तृणावर्त-उद्धार
वात्सल्य
माखन-प्रेमी बालकृष्ण
गो-प्रेमी श्रीकृष्ण
मनमोहनकी तिरछी चितवन
भवसागरसे उद्धारक भगवान् कृष्ण
बकासुर-उद्धार
अघासुर-उद्धार
कृष्ण-सखा-सह वन-भोजन
राम-श्यामकी मथुरा-यात्रा
बन्धन-मुक्तकारी भगवान् श्रीकृष्ण
जगत्-पूज्य श्रीकृष्णकी अग्रपूजा
शिशुपाल-उद्धार
समदर्शी श्रीकृष्ण
शान्ति-दूत श्रीकृष्ण
मोह-नाशक श्रीकृष्ण
भक्त (भीष्म) प्रतिज्ञा-रक्षक श्रीकृष्ण
अश्व-परिचर्या
श्रीकृष्णका अर्जुनको पुनः ज्ञानोपदेश
नृग-उद्धार
परमधाम-गमन
ध्यानमग्न शिव
पञ्चमुख परमेश्वर
मदन-दहन
शिव-विवाह
उमा-महेश्वर

शिव-परिवार
जगज्जननी उमा
प्रदोष-नृत्य
हलाहल-पान
पाशुपतास्त्रदान
श्रीहरि-हरकी जल-क्रीड़ा
श्रीकृष्णकी शिव-स्तुति
श्रीविष्णु
श्रीविष्णुरूप और श्रीब्रह्मारूपके द्वारा श्रीशिवरूपकी स्तुति
कमलापति-स्वागत
भगवान् मत्स्यरूपमें
भगवान् कूर्मरूपमें
भगवान् वराहरूपमें
भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी गोदमें भक्त प्रह्लाद
भगवान् वामनरूपमें
भगवान् परशुरामरूपमें
भगवान् बुद्धरूपमें
भगवान् कल्किरूपमें
भगवान् ब्रह्मारूपमें
भगवान् दत्तात्रेयरूपमें
भगवान् सूर्यरूपमें
भगवान् गणपतिरूपमें
भगवान् अग्निरूपमें
भीष्मपितामह
अजामिल-उद्धार
सुआ पढ़ावत गणिका तारी
निमाई-निताई
प्रेमी भक्त सूरदासजी
गोस्वामी तुलसीदासजी
मीरा (कीर्तन)
मीराबाई (जहरका प्याला)
प्रेमी भक्त रसखान

श्रीश्रीमहालक्ष्मी
ऋषि-आश्रम
वसुदेवजी श्रीकृष्णजीको गोकुल ले जा रहे हैं
वर्षामें श्रीकृष्ण-बलराम
श्रीरामका रामेश्वर-पूजन
श्रीशिवकृत श्रीरामस्तुति
भगवान् विष्णुको चक्रदान
काशी-मुक्ति
सदाशिव
भक्त व्याघ्रपाद
शिव-ताण्डव
देवकीजी
लक्ष्मण-कोप
भिलनीके बेर
महासंकीर्तन
नारी शक्ति
देवी कात्यायनी
गौरीशंकर
भगवान् शक्तिरूपमें
ब्रह्मा-सावित्री
महागौरी
मुरलीमनोहर
कालिका
राधाकृष्ण
गोकुलगमन
भक्तमनचोर
लार्ड बुद्ध
शेषशायी
कूष्माण्डा
लक्ष्मीनारायण
देवी चन्द्रघण्टा
महाकाली
षोडश माता

एकरंगे चित्र, दाम)। प्रतिचित्र नेट दाम

श्रीकृष्ण-सुदामाकी गुरु-सेवा
देवकृत देवी-स्तुति

कर नवनीत लिये
श्रीलाड़लीलालजी

माता श्रीसीताजी
यवन हरिदास
ब्राह्मण मुद्गलमुनि

भक्तवर रामाजी प्रेममग्न नाच रहे हैं
मालीसे फूल फूलमें भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज-साइज ५×७॥ इञ्च

बहुरंगे चित्र, दाम)। प्रतिचित्र नेट दाम

श्रीविष्णु
शेषशायी
सदाप्रसन्न राम
कमललोचन राम
विश्वविमोहन श्रीकृष्ण
वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
आनन्दकन्द श्रीकृष्ण
गोपीकुमार
व्रज-नव-युवराज
श्यामसुन्दर

सुदामा और श्रीकृष्णका प्रेममिलन
अर्जुनको गीताका उपदेश
मोहन
अर्जुनको चतुर्भुजरूपका दर्शन
ध्रुव-नारायण
समुद्रमें पत्थरोंसे दबे प्रह्लादका उद्धार
भगवान् नृसिंहकी गोदमें प्रह्लाद

पवन-कुमार
भगवान्‌की गोदमें भक्त चक्रिक
श्रीश्रीचैतन्य
भक्त धन्ना जाटकी रोटियाँ भगवान् ले रहे हैं
गोविन्दके साथ गोविन्द खेल रहे हैं
भक्त गोपाल चरवाहा
मीराबाई (कीर्तन)
भक्त जनाबाई और भगवान्

भक्त जगन्नाथदास भागवतकार
श्रीहरिभक्त हिम्मतदासजी
भक्त वालीग्रामदास
भक्त दक्षिणी तुलसीदासजी
भक्त गोविन्ददास
ऋषि-आश्रम
भक्त मोहन और गोपाल भाई
परमेष्ठी दर्जी

चित्रोंके दाम

चित्र बेचनेके नियमोंमें परिवर्तन हो गया है। दाम बहुत घटा दिये गये हैं अब नीचे लिखे प्रकारसे दाम लिये जायँगे। आशा है इस सुविधासे लोग लाभ उठावेंगे।

साइज और रंग	१ से ११ तक प्रति चित्र	१२ से ९९ तक प्रति दर्जन	१०० से ४९९ तक प्रति सैकड़ा	५०० से ९९९ तक प्रति पाँच सौ	९९९ से ऊपर प्रति एक हजार
१८×२२, रंगीन	≡)	१।=)	१०)		
१५×२०, सुनहरी	≡)	१।=)	९)	४०)	७५)
१५×२०, रंगीन	=)	॥।≡)	७)	३२)	६०)
१०×१५, सुनहरी	-)	॥-)	३)	१३)	२५)
१०×१५, रंगीन	)॥।	।=)॥।	२॥)	११)	२०)
७॥×१०, सुनहरी	)॥।	।=)॥।	२॥)	११)	२०)
७॥×१०, रंगीन	)॥	।)॥	२)	८)	१५)
५×७॥, रंगीन	)।	=)।	१)	५)	१०)

सेट लेनेवालोंको सुविधा

१५×२० साइज़के सुनहरे और रंगीन २३ चित्रोंके सेटकी नेट कीमत १॥।=)॥ पैकिङ्ग)॥ डाकखर्च ॥≡) कुल लागत २॥=) लिये जायँगे।

१०×१५ साइज़के सुनहरे और रंगीन ३० चित्रोंके सेटकी नेट कीमत १-)॥। पैकिङ्ग -)॥ डाकखर्च ॥-)॥। कुल १॥।-) लिये जायँगे।

७॥×१० साइज़के सुनहरे और रंगीन १३५ चित्रोंके सेटकी नेट कीमत २॥।≡)। पैकिङ्ग -)॥ डाकखर्च ॥।)। कुल ३॥।-) लिये जायँगे।

१५×२०, १०×१५, ७॥×१० के तीनों सेटकी नेट कीमत ५॥।≡)॥ पैकिङ्ग -)॥ डाकखर्च १≡) कुल ७।) लिये जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

इससे पिछली चित्र-सूचियोंको रद्द समझें, आर्डर इस सूचीके अनुसार देनेकी कृपा करें।

ये रेट हमारे स्टाकमें छपे हुए तैयार चित्रोंके हैं, किसीके लिये खास तौरपर उनके बताये अनुसार छापकर देनेके नहीं। तैयार चित्रोंमेंसे भी जब कोई चित्र समाप्त हो जाता है, तब हम भेज सकनेमें असमर्थ होते हैं।

(१) चित्रका नाम जिस साइजमें दिया हुआ है वह उसी साइजमें मिलेगा, आर्डर देते समय देख लें। समझकर मँगवावें। (२) पुस्तकोंके साथ मालगाड़ीसे चित्र मँगानेपर कुल मालका चित्रोंकी क्लासका किराया देना पड़ता है, इसलिये ३०) की पुस्तकोंके साथ नेट प्राइस कम-से-कम १०)का चित्र लेनेवालोंको चित्र फ्री डिलेवरी दिया जायगा, नहीं तो विशेष भाड़ा ग्राहकोंको देना होगा, आर्डर देते समय इस नियमको समझ लें। (३) १००) के चित्र लेनेसे ग्राहकके रेलवे स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री डिलेवरी दी जायगी। (४) केवल २ या ४ चित्र पुस्तकोंके साथ या अकेले नहीं भेजे जाते, क्योंकि रास्तेमें टूट जाते हैं। (५) 'कल्याण' के साथ भी चित्र नहीं भेजे जाते।

कल्याणके तीसरे वर्षकी फाइल

४०० से ऊपर लेख और कविताएँ, सुन्दर ७२ चित्र और ११२८ पृष्ठ, मूल्य अजिल्दका डाक-महसूल-सहित केवल ४≡), सजिल्द ४॥≡)। (इसमें प्रसिद्ध 'भक्तांक' भी शामिल है जो अलग नहीं मिलता।)

यह फाइल कितनी उपादेय है, कुछ लेखकोंके नाम देखनेसे ही इस बातका पता लग सकता है—

महात्मा श्रीगान्धीजी, श्रीअरविन्द घोष, काकाकालेलकर, आचार्य श्रीआनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव हिन्दू-युनिवसिटी, काशी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल, दीनबन्धु श्री सी० एफ० एण्ड्रूज महोदय, श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी, हरिभक्त श्रीयादवजी महाराज, बम्बई, जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज प्रतिवादी भयङ्कर मठ बम्बई, सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार, बाबा राघवदासजी, स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, चौधरी श्रीरघुनन्दन-प्रसादसिंहजी, श्रीअनिलवरण राय पाण्डीचेरी, भिक्षु श्रीगौरीशंकरजी, रा० व० अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए०, श्रीअच्युतमुनिजी महाराज, व्याख्यानवाचस्पति श्रीदीनदयालुजी शर्मा, वाणीभूषण पं० श्रीनन्दकिशोरजी शुक्ल, श्रीहरि-भाऊजी उपाध्याय सम्पादक 'त्यागभूमि', श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०, श्रीनलिनी-कान्त गुप्त, पाण्डीचेरी आदि।

कल्याणके सातवें वर्षकी फाइल

(इसमें दुबारा छपा हुआ प्रसिद्ध 'ईश्वरांक' भी शामिल है जो अलग नहीं मिलता)

२९५ लेख, १३५ कविताएँ और १४४ सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित, पृष्ठ १४१८, मूल्य डाकव्ययसहित ४≡), सजिल्द (दो जिल्दोंमें) ५।-)

कल्याणके आठवें वर्षकी फाइल

(प्रसिद्ध श्रीशिवाङ्कसहित)

३५१ लेख, ११० कविताएँ और ३०२ सुन्दर चित्रोंसे विभूषित, पृष्ठ १४६६, मूल्य डाकव्ययसहित ४≡), सजिल्द (दो जिल्दोंमें) ५।-), अकेला श्रीशिवाङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृष्ठ ६६६, चित्र २८७, मूल्य ३), स० ३॥)

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

नोट—सेट सजिल्द भी मिला करती है। जिल्दका दाम १०×१५ का ॥≡), ७॥×१० का ॥), ५×७॥ का ≡) लिया जाता है। सजिल्द सेटका डाकखर्च ज्यादा लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होलीपर

याद करिये "भक्त प्रह्लाद" और "चैतन्य महाप्रभु"को ! कीर्तन करिये जगमंगलदातार भगवान्‌के पवित्र नामोंका ! प्रेमसे मिलिये अपने बन्धुओंसे ! आदर करिये सबकी माताओं और बहनोंका ! छोड़िये बुरी बातें बकना, दूसरोंको सताना, दूसरोंको कष्ट देकर स्वयं हँसना, फजूल खर्च करना। जलाइये अपने दुर्गुणोंको, अपनाइये सद्‌गुणोंको। दूसरोंको भी इसी प्रकार उनके पैर पड़कर समझाइये।

श्रीभगवन्नाम-जप

गत पौषके अंकमें प्रकाशित सूचनाके अनुसार फाल्गुन शुक्ला १५ तकके लिये १६ नामके (हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥) मन्त्र-जप करने-करानेकी चेष्टा कीजिये और संख्याकी सूचना भेजिये।

नाम-जप-विभाग
कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ २२३, चित्र ५ रंगीन, ९ सादा, एण्टिक कागज, अच्छी छपाई, सुन्दर टाइटल, मूल्य ॥=) सजिल्द ।॥=) मात्र।

जिन सज्जनोंकी माँगें अबतक लौटायी गयीं उनसे हम क्षमा माँगते हुए निवेदन करते हैं कि वे अब कृपाकर पुनः लिखकर मँगवा लें। पहले तीन खण्डोंकी तरह इसे भी पढ़कर आप आगेकी लीलाओंको पढ़नेके लिये उसी प्रकार उत्सुक रहेंगे !

इसमें प्रभुका वृन्दावन-गमन, जननी-दर्शन, विष्णुप्रियाको दर्शन, त्याग और वैराग्यके स्वरूप श्रीरूप और सनातनजी एवं रघुनाथदास, पठानोंको प्रेमदान, स्वामी प्रकाशानन्दजी आदिके बहुत सुन्दर-सुन्दर प्रसंग आये हैं। जिनकी शोभा चित्रोंसे और भी बढ़ गयी है।

भक्तोंकी महिमा कौन बखान सकता है, जिनके वशमें जगदीश रहते हैं। एक बार यह सम्पूर्ण जीवनी या यह खण्ड पढ़कर आनन्द लीजिये।

गोस्वामी तुलसीदासजी कृत

गीतावली

(पदोंके सरल अर्थसहित)

अनुवादक—श्रीमुनिलालजी

पृष्ठ ४६०, चिकना कागज, चित्र ४ रंगीन, ४ सादे, २२×२९ १६ पेजी साइज, अच्छी छपाई, सुन्दर टाइटल, मूल्य १) सजिल्द १।) मात्र।

श्रीरामायणकी तरह 'राम-लीला' इसमें भी श्रीगोसाईंजीने सात काण्डोंमें वर्णन की है। यह सम्पूर्ण छोटे-बड़े भजनोंमें लिखी है। इसमें भगवान्‌के रूप आदिका विशेष वर्णन है। एक प्रति मँगवाकर पढ़ें।

अन्य पुस्तकें

विनय-पत्रिका—अनेक चित्रोंसहित, सटीक, दूसरा नवीन संस्करण, मू० १) सजिल्द १।) मात्र।
मूल गोसाईं-चरित—वेणीमाधवदासकृत, सचित्र (कवितामें) श्रीतुलसीदासजीकी जीवनी। मू०-)।
हनुमान-बाहुक—सचित्र, सटीक, दूसरा संस्करण, मू० -)॥ मात्र। पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मननीय

सन्त-महात्माओंके जीवन-चरित्र

संग्रहणीय

चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी और द्विवेदी पं० इन्द्रनारायणजी द्वारा लिखित

भागवतरत्न प्रह्लाद—पृष्ठ-संख्या ३४६, एण्टिक कागज, सुन्दर साफ छपाई, ३ रंगीन और ५ सादे चित्र, भाषा सरल और अक्षर बड़े, सबके पढ़ने योग्य, मूल्य केवल १) सजिल्द १।)

देवर्षि नारद—भूमिका-लेखक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार—२ रंगीन और ३ सादे चित्र, पृष्ठ-संख्या २४०, एण्टिक कागज, सुन्दर साफ छपाई, मूल्य ।॥) सजिल्द १)

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—ज्ञान, वैराग्य और प्रेमके समुद्र महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत जीवनी, सम्पूर्ण पुस्तक पाँच खण्डोंमें समाप्त होगी।

पहला खण्ड—६ बहुरंगे चित्र, पृष्ठ-संख्या ३६०, मूल्य ।॥=) सजिल्द १=) मात्र।

दूसरा खण्ड—४ तिरंगे, ३ दुरंगे, २ इकरंगे—कुल ९ चित्र, पृष्ठ ४५०, मूल्य १=) सजिल्द १।=) मात्र।

तीसरा खण्ड—पृष्ठ-संख्या ३८४, चित्र ११ सम्पूर्ण बहुरंगे, मूल्य १) स० १।), छपाई सुन्दर, कागज एण्टिक।

चौथा खण्ड—पृष्ठ-संख्या २२४, चित्र रंगीन और सादे १४, मूल्य ॥=) स० ।॥=) अभी प्रकाशित हुआ है।

पाँचवाँ खण्ड—छप रहा है। मू० ।॥) स० १)

श्रीरामकृष्ण परमहंस—जीवनी और उपदेश। स्वामीजी श्रीचिदात्मानन्दजीद्वारा लिखित, उपदेश-संग्रहकर्ता श्रीबनवारीलालजी मुख्तार। ३ चित्र, ३०१ उपदेशवाक्योंसहित, पृष्ठ-संख्या २५०, मू० ।=) मात्र।

हरिभक्तिपरायण पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर द्वारा लिखित
[अनुवादक पं० श्रीलक्ष्मणनारायण गर्दे]

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र और ग्रन्थ-विवेचन—एण्टिक कागज, पृष्ठ ३५६, छपाई अच्छी, १ चित्र, मू० ।॥-) मात्र।

श्रीएकनाथ-चरित्र—सुन्दर छपाई, कागज एण्टिक, पृष्ठ २४०, एक चित्र, मूल्य केवल ॥)

श्रीतुकाराम-चरित्र—हालहीमें प्रकाशित हुआ है। ९ चित्र, पृष्ठ ६९४, अच्छा कागज, मू० १=) स० १॥)

पं० श्रीतुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश' द्वारा लिखित

भक्त-भारती—सुन्दर, सरल कवितामें ७ भक्तोंकी कथा, ७ चित्रोंसहित, मूल्य ।=)

एक सन्तका अनुभव—मोटा एण्टिक कागज, मूल्य -)

इनके सिवा श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारद्वारा सम्पादित भक्त-चरितमालाकी ९ पुस्तकोंमें अनेक भक्तोंकी सुन्दर-सुन्दर जीवनियाँ बहुत ही सरल, सुन्दर शब्दोंमें लिखी हुई हैं।

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

श्रीभगवन्नाम-जपकी सूचना

जिन सज्जनोंने हमारी प्रार्थनानुसार होलीतक नाम-जप करवाया एवं स्वयं किया है उनकी सूचनाएँ आ रही हैं। ग्यारह करोड़के लगभग जपकी सूचनाएँ आ चुकी हैं, और प्रतिदिन आ रही हैं। गाँवोंके नामसहित संख्या अगले अंकमें प्रकाशित करनेका विचार है।

—नाम-जप-विभाग

विनीत प्रार्थना

कुछ समयसे लगातार शरीर अस्वस्थ रहनेके कारण चिकित्सकोंकी सम्मतिके अनुसार मैं शीघ्र ही गोरखपुरसे बाहर जा रहा हूँ। अतएव सबसे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि अबसे गीताप्रेसके किसी भी विभाग, और 'कल्याण' के प्रबन्ध तथा सम्पादन-विभाग, किसीके भी सम्बन्धमें कोई सज्जन मेरे नामसे कोई पत्रादि न लिखें। व्यक्तिगत कोई अति आवश्यक बात हो तो मेरे नामसे ('सम्पादक', 'कल्याण' नहीं) गोरखपुरके पतेपर ही पत्र लिखनेकी कृपा करें। परन्तु पहलेके पत्रोंका तथा भविष्यमें आनेवाले पत्रोंका उत्तर देरमें पहुँचे तो कोई महानुभाव नाराज़ न हों। क्योंकि मैं कब किस हालतमें रहूँगा, इसका कुछ भी निश्चय नहीं है। अबतकके मेरे सारे अपराधोंके लिये, जो जान-अजानमें मुझसे बन पड़े हैं, मैं हाथ जोड़कर, और सभीके चरणोंमें सिर नवाकर क्षमा चाहता हूँ। और प्रार्थना करता हूँ कि सब साधु-महात्मा, महापुरुष, सिद्ध, साधक, विद्वान्, प्रेमी और सुहृद्गण कृपापूर्वक मुझे ऐसा आशीर्वाद दें जिससे मेरा चित्त केवल श्रीभगवान्‌की ओर ही लगा रहे।

दास

हनुमानप्रसाद पोद्दार

योगांकके लेख और चित्र जल्दी भेजिये।

इस बार 'शक्ति-अङ्क' प्रकाशित होनेमें बहुत विलम्ब हो गया था। अब 'योगाङ्क' के लेख, चित्र जितनी ही जल्दी आवेंगे उतनी ही जल्दी छपाई करनेमें सहायता मिलेगी। अतः प्रेमियोंसे निवेदन है कृपया लेख आदि जल्दी भेजें!

पता—कल्याण, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजीका 'गीतांक'

'कल्याण' में प्रकाशित विज्ञापनोंद्वारा आपको कल्याण-कल्पतरुके 'गीतांक' के निकल जानेकी सूचना मिल होगी। यह अंक बहुत मोटे ४० पौण्डके कागजपर साफ-सुन्दर छपा हुआ, अनेक बहुरंगे और सादे चित्रोंसहित बहुत ही सुन्दर हुआ है। इस अंकका मू० २॥) मात्र है। वार्षिक मूल्य ४॥) भेजकर ग्राहक बन जानेवालोंको इसी चन्दमें यह विशेषांक मुफ्त मिल जायगा।

अबतक लगभग १६०० ग्राहक बन चुके हैं। धार्मिक साहित्य और पारमार्थिक विचारोंके प्रेमी सज्जन जल्दी ग्राहक बनकर लाभ उठावें एवं इस प्रचार-कार्यमें हाथ बँटाकर हमारी सहायता करें।

जो निःस्वार्थ कृपालु प्रेमी सज्जन इसके ग्राहक बनाकर हमारी सहायता कर रहे हैं और की हैं उनके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं। उनकी कृपाका हम क्या बदला चुकावें?

जो सज्जन स्वार्थसहित परमार्थभावसे भी हमारी सहायता करें उनका भी हम बड़ा उपकार मानते हैं। उनकी कुछ सुविधाके लिये थोड़ा-सा कमीशन तीन ग्राहक बना देनेपर ॥) आठ आना प्रति ग्राहक दिया जाता है।

विज्ञापन बढ़ जानेके भयसे इस अंकपर आयी हुई अच्छी-अच्छी सम्मतियाँ हम यहाँ छाप नहीं रहे हैं, अलग कुछ पुस्तकाकार छपवा रहे हैं, जो सज्जन देखना चाहें उनकी सेवामें लिखनेसे भेजा जा सकेगा।

पिछले सालका अंग्रेजी 'ईश्वरांक'

का मूल्य २॥) पूरी फाइलका मूल्य ४॥) है।

निवेदक
व्यवस्थापक—कल्याण-कल्पतरु
गोरखपुर

कल्याणकी पुरानी फाइलें और विशेषांक

(ये सब धीरे-धीरे बिकते जाते हैं, संग्रह रखनेवाले सज्जन ध्यान दें)

१-तृतीय वर्षकी फाइल-भक्तांकसहित मूल्य ४≡) ... ... सजिल्द ४॥≡)
२-भक्तांक-मूल्य १॥) ... ... सजिल्द १॥≡)
३-रामायणांक-मूल्य २॥≡) ... ... सजिल्द २≡)
४-ईश्वरांक-मूल्य ३) ... ... सजिल्द ३॥)
५-आठवें वर्षकी फाइल-शिवांकसहित मूल्य ४≡) सजिल्द दो जिल्दोंमें ... ५।-)
६-शिवांक-मूल्य ३) ... ... सजिल्द ३॥)
७-शक्ति-अंक-मूल्य ३) ... ... सजिल्द ३॥)

४≡) भेजकर 'कल्याण' के चालू वर्षके ग्राहक बननेसे शक्तिअंक मुफ्त मिलता है।

व्यवस्थापक-कल्याण
गोरखपुर

गीताप्रेस, गोरखपुरमें मिलनेवाली अच्युतग्रन्थमाला, काशीकी पुस्तकें

१ भगवन्नामकौमुदी-संस्कृत टीकासहित ॥=)
२ भक्तिरसायनम्—संस्कृत टीकासहित ॥।)
३ शुल्वसूत्रम्—संस्कृत टीकासहित ।)
४ कात्यायनश्रौतसूत्रम्-संस्कृत टीकासहित ६)
५ प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणिः—(प्रथम भाग) संस्कृत टीकासहित २)
६ ,, —(दूसरा भाग) संस्कृत टीकासहित ... २।)
७ भक्तिरसामृतसिन्धुः—संस्कृत टीकासहित ३)
८ तिथ्यर्कः-संस्कृत ... १॥)
९ परमार्थसारः—संस्कृत टीकासहित ।=)
१० प्रेमपत्तनम्—संस्कृत ... १)
११ खण्डनखण्डखाद्यम्—भाषानुवादसहित २॥)
१२ काशी-केदार-माहात्म्यम्—भाषानुवादसहित २॥)
१३ सिद्धान्तबिन्दुः—भाषानुवादसहित १।=)
१४ प्रकरणपञ्चकम्—भाषानुवादसहित ॥)

इन पुस्तकोंमें कमीशन नहीं दिया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ श्रीहरिः ॐ

आपकी ग्राहक-संख्या क्या है ?

कृपाकर 'कल्याण' के रैपरपर पतेके पास लिखी हुई आपकी ग्राहक-संख्या याद कर लें अथवा कल्याणपर ही या आपकी नोटबुकमें या जहाँ आप ठीक समझें लिख लें और 'कल्याण' को पत्र लिखते समय या रुपया आदि भेजते अवश्य ही उसे लिखें, इससे हमें बड़ी सुविधा होगी और हम आपकी आज्ञाका पालन जल्दी कर सकते हैं।

निवेदक—व्यवस्थापक

कल्याण चैत्र संवत् १९९१ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–सन्त कौन है ? [कविता] (भगवतरसिकजी) ११८५
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ... ११८६
३–कल्याण ('शिव') ... ११८७
४–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) ... ११८९
५–करुणामय ! [कविता] (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री) ... ११९१
६–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ... ११९२
७–नामजापका प्रभाव (स्वामी श्रीसत्यानन्दजी) ११९९
८–विवेक-वाटिका १२००
९–बन्धन क्या है ? (श्रीशक्तिचरण विशारद) १२०१
१०–बोलशेविज्म और धर्म (श्रीबसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम० ए०) ... १२०४
११–दर्शन-चर्चा (विद्यामार्त्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री) १२०७
१२–गृहस्थके साधारण धर्म १२१०
१३–योगवाशिष्ठसार (श्रीकन्हैयालालजी मास्टर) १२१५
१४–तुलसीकृत रामायणमें करुणरस (श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा एम० ए०, एल-एल० बी०) १२१९
१५–सन्त-चरणोंका प्रभाव और उसका प्रत्यक्ष अनुभव (श्रीदेवीचरणजी निगम एम० ए०) १२२७
१६–दीनता [कविता] (म० श्रीबालकरामजी विनायक) १२२९
१७–भगवत्-प्रार्थना (बीकानेरनरेश महाराजा रायसिंहजीके भ्राता इतिहासप्रसिद्ध श्रीपृथ्वीराजजी कृत, संग्रहकर्त्ता तथा सम्पादक—श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी 'विशारद', तथा श्रीफकीरचन्दजी पुरोहित) ... १२३०
१८–एक बार [कविता] (श्रीमनमोहनस्वरूप 'सदाशिव', एम० ए०) १२३१
१९–श्रीराधाजी कौन थीं ? (हनुमानप्रसाद पोद्दार) १२३२
२०–गौरीशंकर [कविता] (श्रीराधागोविन्दजी मिश्र) १२३५
२१–ईश्वरका अनुभव (स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) १२३६
२२–कोटिशः प्रणाम हैं [कविता] (श्रीविनायकराव भट्ट) १२४०
२३–भक्त-गाथा १२४१
२४–संघशक्ति और जप (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) १२४७
२५–धर्मका यथार्थ तत्त्व (सि० म० श्रीसतीशदेव गोस्वामी) १२५०
२६–महात्मा घरमदासजी (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम० ए०) ... १२५२
२७–जीवन-झोली [कविता] (पं० श्रीब्रह्मानन्दजी शुक्ल शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, कविरत्न) १२५८
२८–संन्यासधर्मकी कठोरता (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) १२५९
२९–रघुनाथाष्टक [कविता] (श्रीगंगाविष्णु पाण्डेय, विद्याभूषण 'विष्णु') ... १२६३
३०–राम-नाम सार है [कविता] (श्रीगोविन्दप्रसादजी द्विवेदी, बी० ए०, एल० टी०) ... १२६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता डायरी सन् १९३५ की

कई दिनोंसे समाप्त हो गयी है। अतः इसके लिये आर्डर देनेवाले सज्जन आज्ञापालन करनेमें हमें असमर्थ जान कृपया क्षमा करें। अपने बुक्सेलरोंके पास हो तो उनसे ले सकते हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुर

चित्रोंके दाम बहुत घटा दिये

भगवान् राम-कृष्ण, शिव-विष्णु आदिके सुन्दर चित्र

घर और मन्दिर सजाने और दर्शन करनेके लिये लगानेको सीधे हमसे मँगवाइये या अपने चित्र बेचनेवाले दूकानदारोंसे लीजिये।

सूची और कीमत फाल्गुनके अङ्कमें छापी गयी है। अलग भी छपी हुई मिलती है। लिखनेसे सेवामें भेजी जा सकती है।

अधिक लेनेवालोंके लिये विशेष रियायत रक्खी गयी है। बेचनेके लिये लेकर दूकानदार अच्छा लाभ उठा सकते हैं। साथ-साथ धार्मिक भावोंका प्रचार तो होगा ही।

चित्रविभाग, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीरामचरितमानस

मानसपीयूषटीका

(श्रीअञ्जनीनन्दनशरण शीतलासहायजी सावन्त बी० ए०, एल-एल० बी० लिखित)

पृष्ठ लगभग ७०००, नौ जिल्दोंमें समाप्त।

पूरा सेट सजिल्द मूल्य ३६) महसूल अलग

पुस्तकविक्रेताओंके लिये पूरा सेट सजिल्द ३२) महसूल अलग

यह बृहत् टीका श्रीअयोध्याजीसे निकली थी, परन्तु अब श्रीशीतलासहायजी अपना समय मौन रहकर भजनमें अधिक बिताना चाहते हैं, उनसे पुस्तकें बेचनेका काम नहीं हो सकता, इसलिये उनकी तरफसे गीताप्रेसद्वारा बेचनेका प्रबन्ध किया गया है। अबतक मानसपर जितनी टीकाए निकली हैं, इसमें प्रायः उन सबका सार और अप्रकाशित प्रसिद्ध टीकाओंका सङ्कलन है। काशी-निवासी प्रसिद्ध रामायणी पं० रामकुमारजी कृत अप्रकाशित पूरी टीका इसमें है। इसके सिवा श्रीवन्दन पाठकजी, पाण्डेय रामबक्षजी, सन्तसिंहजी ज्ञानी, काष्ठजिह्वा स्वामीजी, बाबा हरिहरप्रसादजी, पं० शिवलालजी पाठक, पं० गणपतिजी उपाध्याय, बाबा हरिदासजी, बाबा रघुनाथदासजी आदिकी टीकाओंसे तथा विनायकी टीका, वीर कविजीकी टीका, बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी टीका आदिसे जहाँ जो सुन्दर भाव मिले हैं उनका संग्रह इसमें किया गया है। इनके अतिरिक्त पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी, रामायणी बाबा श्रीरामबालकदासजी, बाबा श्रीजानकीदासजी, रामायणी श्रीरामसुन्दरदासजी इत्यादिकी कथाएँ तथा प्रो० श्रीरामदासजी गौड़, लाला श्रीभगवानदीनजी आदिके विचार सुनकर लेखकने वर्षोंतक जो नोट लिखे थे वे भी यथास्थान इसमें दिये गये हैं। शब्दोंके अर्थ, उनकी व्युत्पत्ति, प्रमाणसहित कथाएँ, कठिन समस्याओंकी मीमांसा, मिलानेके लिये दोहे-चौपाइयोंसे मिलते हुए अन्यान्य ग्रन्थोंके श्लोक भी दिये गये हैं। विवादास्पद पाठका खुलासा किया गया है। यह टीका रामायण-प्रेमियोंको अवश्य पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सूचना

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका चैत्र बदीमें हृषीकेश पहुँचनेका विचार है। वहाँ वे सदाकी भाँति स्वर्गाश्रममें ठहर सकते हैं। वह स्थान भजन-ध्यान-सत्सङ्गके लिये बहुत उपयोगी है।

सन्त कौन है ?

इतने गुन जामें सो संत ।
श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमलाकंत ॥
हरिकौ भजन साधुकी सेवा सर्व भूतपर दाया ।
हिंसा लोभ दंभ छल त्यागै बिष सम देखै माया ॥
सहनसील आसय उदार अति धीरज सहित बिबेकी ।
सत्य बचन सबको सुखदायक गहि अनन्य ब्रत एकी ॥
इन्द्रीजित अभिमान न जाके करै जगतको पावन ।
भगवतरसिक तासुकी संगति तीनहुँ ताप नसावन ॥

—भगवतरसिकजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता डायरी सन् १९३५ की

कई दिनोंसे समाप्त हो गयी है। अतः इसके लिये आर्डर देनेवाले सज्जन आज्ञापालन करनेमें हमें असमर्थ जान कृपया क्षमा करें। अपने बुक्सेलरोंके पास हो तो उनसे ले सकते हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुर

चित्रोंके दाम बहुत घटा दिये

भगवान् राम-कृष्ण, शिव-विष्णु आदिके सुन्दर चित्र

घर और मन्दिर सजाने और दर्शन करनेके लिये लगानेको सीधे हमसे मँगवाइये या अपने चित्र बेचनेवाले दूकानदारोंसे लीजिये।

सूची और कीमत फाल्गुनके अङ्कमें छापी गयी है। अलग भी छपी हुई मिलती है। लिखनेसे सेवामें भेजी जा सकती है।

अधिक लेनेवालोंके लिये विशेष रियायत रक्खी गयी है। बेचनेके लिये लेकर दूकानदार अच्छा लाभ उठा सकते हैं। साथ-साथ धार्मिक भावोंका प्रचार तो होगा ही।

चित्रविभाग, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीरामचरितमानस

[illegible] पूरी सेट सजिल्द ३२) महसूल अलग

यह बृहत् टीका श्रीअयोध्याजीसे निकली थी, परन्तु अब श्रीशीतलासहायजी अपना समय मौन रहकर भजनमें अधिक बिताना चाहते हैं, उनसे पुस्तकें बेचनेका काम नहीं हो सकता, इसलिये उनकी तरफसे गीताप्रेसद्वारा बेचनेका प्रबन्ध किया गया है। अबतक मानसपर जितनी टीकाए निकली हैं, इसमें प्रायः उन सबका सार और अप्रकाशित प्रसिद्ध टीकाओंका सङ्कलन है। काशी-निवासी प्रसिद्ध रामायणी पं० रामकुमारजी कृत अप्रकाशित पूरी टीका इसमें है। इसके सिवा श्रीवन्दन पाठकजी, पाण्डेय रामबक्षजी, सन्तसिंहजी ज्ञानी, काष्ठजिह्वा स्वामीजी, बाबा हरिहरप्रसादजी, पं० शिवलालजी पाठक, पं० गणपतिजी उपाध्याय, बाबा हरिदासजी, बाबा रघुनाथदासजी आदिकी टीकाओंसे तथा विनायकी टीका, वीर कविजीकी टीका, बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी टीका आदिसे जहाँ जो सुन्दर भाव मिले हैं उनका संग्रह इसमें किया गया है। इनके अतिरिक्त पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी, रामायणी बाबा श्रीरामबालकदासजी, बाबा श्रीजानकीदासजी, रामायणी श्रीरामसुन्दरदासजी इत्यादिकी कथाएँ तथा प्रो० श्रीरामदासजी गौड़, लाला श्रीभगवानदीनजी आदिके विचार सुनकर लेखकने वर्षोंतक जो नोट लिखे थे वे भी यथास्थान इसमें दिये गये हैं। शब्दोंके अर्थ, उनकी व्युत्पत्ति, प्रमाणसहित कथाएँ, कठिन समस्याओंकी मीमांसा, मिलानेके लिये दोहे-चौपाइयोंसे मिलते हुए अन्यान्य ग्रन्थोंके श्लोक भी दिये गये हैं। विवादास्पद पाठका खुलासा किया गया है। यह टीका रामायण-प्रेमियोंको अवश्य पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

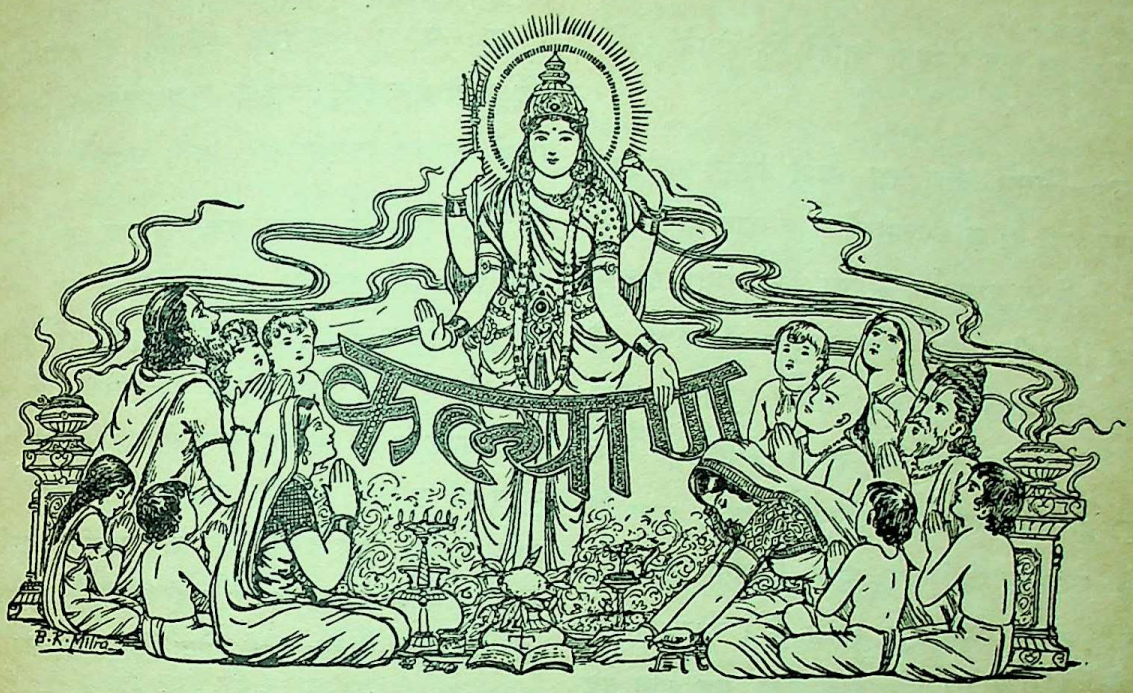

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दाराननवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, चैत्र १९९१, अप्रैल १९३५ | संख्या ९ पूर्ण संख्या १०५

सन्त कौन है ?

इतने गुन जामें सो संत ।
श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमलाकंत ॥
हरिकौ भजन साधुकी सेवा सर्व भूतपर दाया ।
हिंसा लोभ दंभ छल त्यागै बिष सम देखै माया ॥
सहनसील आसय उदार अति धीरज सहित बिबेकी ।
सत्य बचन सबको सुखदायक गहि अनन्य व्रत एकी ॥
इन्द्रीजित अभिमान न जाके करै जगतको पावन ।
भगवतरसिक तासुकी संगति तीनहुँ ताप नसावन ॥

—भगवतरसिकजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्र०—यह कब समझना चाहिये कि बोधकी प्राप्ति हो गयी ?

उ०—जिसमें जीव, ब्रह्म आदि किसी प्रकारका अहंभाव नहीं है; जो व्यवहारमें सब कार्य ठीक-ठीक करता है, किन्तु परमार्थतः सबका अत्यन्ताभाव देखता है तथा जिसकी दृश्यमें मिथ्यात्वबुद्धि भी निवृत्त हो गयी है उसे बोधवान् समझना चाहिये। जिसके 'कुछ हुआ है' अथवा 'कुछ नहीं है' ये दोनों ही भाव निवृत्त हो गये हैं वह बोधवान् है। 'कुछ हुआ है' इससे व्यवहारसत्तामें राग रहता है और 'कुछ नहीं हुआ है' इससे उसमें द्वेष रहता है। बोधवान्में ये दोनों ही नहीं होते। 'कुछ नहीं हुआ' यह बात वह केवल जिज्ञासुके लिये कहता है। क्योंकि 'हुआ है' अथवा 'नहीं हुआ' ये दोनों ही भाव अहंबुद्धिको लेकर रहते हैं। 'प्रपञ्च हुआ है' यह भाव अनात्म-बुद्धिसे होता है और 'नहीं हुआ' यह आत्मबुद्धिसे होता है। ये दोनों ही वृत्तिके कार्य हैं। परन्तु आत्मस्वरूप वृत्तिसे परे है। इसलिये बोधवान्में ये दोनों ही भाव नहीं रहते।

प्र०—इस प्रकारकी पूर्ण स्थिति हो जानेपर भी व्यवहारमें वृत्ति आदिसे तादात्म्य क्यों हो जाता है ?

उ०—बोधवान्का वृत्ति आदिसे कभी तादात्म्य नहीं होता। उसकी जो कुछ चेष्टा होती है वह नाटकवत् होती है। जिस प्रकार नाटकका निपुण पात्र सब प्रकारका अभिनय करते हुए भी अपनेको राजा, मन्त्री अथवा और कुछ कभी नहीं समझता उसी प्रकार बोधवान् भी बुद्धि आदिका अत्यन्ताभाव देखता हुआ सर्वदा अपनेको उनसे असङ्ग अनुभव करता है।

प्र०—परन्तु विद्यारण्य स्वामीने तो कहा है कि यदि कभी भोजनादिमें अपने शुद्ध स्वरूपकी विस्मृति भी हो जाय तो उससे कोई हानि नहीं है।

उ०—विस्मृति उसे कहते हैं जब हम किसी बातको प्रयत्न करनेपर भी स्मरण न कर सकें। स्वरूपकी विस्मृति इस प्रकारकी कदापि नहीं होती। वह तो ऐसी है जैसे किसी विद्वान्को यदि कोई श्लोक कण्ठस्थ हो तो वह अन्य व्यापारोंमें संलग्न रहते समय भी उसकी आवृत्ति नहीं करता रहता। उस समय उसकी वृत्ति दूसरी ओर लगी रहती है। इसलिये श्लोककी ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे श्लोक विस्मृत हो गया है। वह उसकी ओर चित्त ले जाते ही उसे स्मरण कर सकता है। इसी प्रकार अन्य व्यापारोंमें संलग्न रहनेके कारण यदि आत्माकार वृत्ति न भी रहे तो भी बोधवान्-की कोई हानि नहीं है, क्योंकि वह जब चाहे तभी अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव कर सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त तीव्र अभ्यासकी आवश्यकता है।

प्र०—वह अभ्यास किस प्रकारका होना चाहिये—यह बतलाइये।

उ०—अभ्यास दो प्रकारका है—(१) विवेक-कालीन और (२) बोधके पश्चात् किया जानेवाला। विवेककालीन अभ्यासका नाम ही निदिध्यासन है। निदिध्यासनका तात्पर्य यह है कि सजातीय प्रत्ययका प्रवाह और अनात्माकार वृत्तिका तिरस्कार किया जाय। इससे त्वं पदका शोधन होता है। फिर जब दृश्यका अत्यन्ताभाव अनुभव हो जाता है तब तत् और त्वं पदकी एकता होनेपर बोध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदिध्यासनमें अपनेको पञ्चकोशका साक्षी निश्चय किया जाता है; फिर जब अपनेको पञ्चभूतके साक्षीसे अभिन्न अनुभव करनेपर अखण्डाकार वृत्ति होती है तब बोधकी प्राप्ति कही जाती है। निदिध्यासनमें पञ्चभूत और पञ्चकोशके द्रष्टाओंमें भेद रहता है। इनका अभेद अनुभव हो जानेपर जो स्थिति होती है उसे निदिध्यासन नहीं कह सकते; वह तो ब्राह्मी स्थिति है।

उस समय उसे सारा प्रपञ्च मनोराज्य प्रतीत होता है। वह मनोराज्य शास्त्रीय और अशास्त्रीय दो प्रकारका है। जो अपठित होते हैं उन्हें अशास्त्रीय मनोराज्य होता है और जो पठित होते हैं उन्हें शास्त्रीय मनोराज्य रहता है। इस मनोराज्यकी निवृत्तिके लिये तथा ज्ञानरक्षा, तप, विसंवादाभाव, दुःखनाश और सुखप्राप्ति—इन पाँच प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये उसे हर समय नाम-रूपका बाध करते रहना चाहिये। ऐसा करते-करते जब वृत्ति स्थिर हो जाती है तब उसीको ब्राह्मी स्थिति कहते हैं।

कल्याण

किसी भी प्राणीको किसी प्रकारसे दुःख मत दो। दूसरेको दुखी करके सुखी होनेकी दुराशा छोड़ दो। दूसरेको दरिद्र बनाकर धनी बननेकी लालसा मत रक्खो। पता नहीं, तुम कब मर जाओगे। मरते ही तुम्हारा सारा मनोमहल ढह जायगा। यह मनुष्यका भ्रम है कि जो वह अधिक कालतक जीकर भोग भोगनेकी आशामें दूसरोंके भोगोंको लूटना या मारना चाहता है। मौतको सदा सिरपर सवार देखो और यह निश्चय समझो कि मौत आते ही तुम्हारा कहीं कुछ भी नहीं रहेगा।

मरनेके एक क्षण पहलेतक मनुष्य न मालूम कितने मनसूबे बाँधता है, घरमें उसका एक स्थान है, वह घरका एक मालिक या हिस्सेदार है; परन्तु जहाँ मौत आयी कि उसके सारे मनसूबे ज्यों-के-त्यों रह जाते हैं, उसका घरमें कहीं भी स्थान नहीं रहता।

घरकी जिन चीजोंको मेरी-मेरी कहते हो, जिन चीजोंको अपनी बनाना चाहते हो, उन सबसे तुम्हें जबरदस्ती अपना सम्बन्ध छोड़ देना पड़ेगा। अच्छी बात इसीमें है कि पहलेसे ही सावधान हो जाओ। और जिन वस्तुओंको आखिर छोड़ना ही है उनके लिये अन्याय, अधर्मका आश्रय लेना छोड़ दो। किसी वस्तुको अपनी मत समझो, किसी वस्तुका अहंकार न करो, किसी वस्तुकी कामना न करो, जगत्‌में बेपरवा रहो और मस्त हो जाओ। मस्तीकी मौत भी मौज ही होती है।

धन, नाम, कीर्ति, सम्मान कमानेकी चाह छोड़ दो। कमायी करो अच्छे आचरणोंकी, सद्‌गुणोंकी, वैराग्यकी, ज्ञानकी और भगवद्भक्तिकी। तुम्हारे पास बहुत धन है, परिवार भी बड़ा है, जगत्‌में तुम्हारा काफी अच्छा नाम है, लोग तुम्हारे पैर पूजते हैं; परन्तु यदि तुम्हारा अन्तःकरण मलिन है, तुम्हारे आचरण अपवित्र हैं, तुम्हारा मन और शरीर क्षणभंगुर भोगोंमें आसक्त है, तुम भोगोंको ही नित्य सत्य और सुखका साधन समझते हो और श्रीभगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारा किञ्चित् भी प्रेम नहीं है तो निश्चय समझ लो, तुम्हारा मनुष्यजीवन बिल्कुल व्यर्थ है और तुम्हारे इस जीवनका फल आगे चलकर तुम्हारे लिये बहुत ही कष्टमय होगा।

सदा अन्तःकरणको पवित्र बनानेमें लगे रहो। अपने आचरणोंको शुद्ध करो। सबके प्रति प्रेम करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका सत्कार और आदर करो। सबका हित करो, किसीका भी बुरा न चाहो। संसारके क्षणभंगुर भोगोंसे चित्तको हटाकर भगवान्‌में लगाओ। इस बातकी परवा छोड़ दो कि लोग तुम्हें क्या कहते हैं। लोग तो अपने-अपने मनकी कहेंगे। रागद्वेषका चश्मा जैसा होगा वैसा ही कहेंगे। उनकी प्रशंसामें भूलो मत, और उनकी निन्दासे घबराकर अपने लक्ष्यसे हटो मत। सब काम भगवान्‌की प्रीतिके लिये करो, और इस बातका सदा ध्यान रक्खो कि जिस कार्यमें किसी भी प्राणीका अहित है, वह कार्य भगवान्‌की प्रीतिके लिये नहीं हो सकता।

भोगोंकी बातें न अधिक करो, न अधिक सुनो; उनमें जितनी जरूरत हो, उतना ही मन लगाओ और उतनी ही उनके बारेकी बात करो। शेष समय अपने मन और वाणीको भगवान्‌की ओर ही लगाये रक्खो। शरीरसे जो कुछ करो, सब भगवान्‌की सेवा समझकर करो। घरमें अपनेको मालिक मत समझो, वरं एक सेवक समझो, और यथासाध्य ईमानदारीके साथ भगवत्सेवाके भावसे घरके काम करो। अपना व्यवहार दूसरेके घरमें कुछ समयके लिये टिके हुए अतिथिका-सा रक्खो। इस घरको अपना स्थायी घर, घरकी चीजोंको अपनी चीजें, घरके सेवकोंको अपने सेवक, और घरकी सम्पत्तिको अपनी सम्पत्ति मत समझ बैठो। सावधान, तुम्हारे व्यवहारसे किसीके दिलपर चोट न पहुँचे।

चित्तकी धाराका प्रवाह एक भगवान्‌की ओर ही रहे, इस बातके लिये सदा यत्न करते रहो; जगत्‌की ओर कहीं मुड़े तो वह भी भगवान्‌की ओर जानेके सीधे रास्तेकी खोजमें ही! कहीं जरा-सी भी गड़बड़ी दीखे तो तुरन्त प्रवाहको उस ओरसे वापस मोड़ लो। याद रक्खो—धन, जन, परिवार, शरीर, यश, सम्मान, कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायँगे। परलोकमें ये तुम्हारे काम नहीं आवेंगे, तुम्हें विपत्तिसे नहीं बचावेंगे। अतएव इनके लिये जीवनको मत गँवाओ। यदि भाग्यवश ये मिल गये तो सावधान रहो, कहीं तुमपर इनका नशा न चढ़ जाय,—तुम कहीं भगवान्‌के मार्गसे हट न जाओ। इनसे चिपटो मत; मनको सदा इनसे अलग रखनेकी चेष्टा करो, और हो सके तो इनका भी भगवत्प्रीतिमें ही उपयोग करो।

पता नहीं, शरीरका कब अन्त हो जाय, अतएव सदा तैयार रहो। जिसके आचरण शुद्ध हैं; जिसमें सद्‌गुणोंका विकास है; जिसका मन घरमें, परिवारमें, भोगोंमें नहीं अटकता; जो मनसे कभी भगवान्‌को नहीं भूलता और जो शरीरसे अपनेको सदा अलग, चेतन, नित्य और अविनाशी समझता है, बस, वही तैयार है। उसे मृत्युके समय रोना नहीं पड़ता।

जबतक शरीर स्वस्थ है, भोग भोगनेकी शक्ति है, भोगोंमें मन लगा है, मृत्यु सामने नहीं दिखायी देती, तबतक अवश्य ही बहुतोंको ऊपर लिखी बातें अनावश्यक और कड़वी लग सकती हैं। परन्तु एक दिन सभीको इन बातोंपर विचार करना पड़ता है और पहलेकी भूलका पछतावा उस समय बहुत ही भयानक होता है। पहलेसे ही विचार करके चेत जाओ तो अच्छी बात है।

धन, यौवन, रूप, पद, सम्मान, शक्ति, विद्या, वाग्मिता, याद रक्खो—मौतका विकराल मुँह दीखते ही ये सब चीजें विध्वंस हो जायँगी। इनसे कुछ भी नहीं होगा। अतएव इनकी प्राप्तिको जीवनका उद्देश्य मत बनाओ, और प्राप्ति होनेपर तनिक-से भी ऐंठो मत। यह चार दिनोंकी चाँदनी जरूर ही नष्ट हो जायगी।

"शिव"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

सविनय प्रणाम ।

आपका पत्र मिला । आप जो कभी-कभी प्रश्न लिख भेजते हैं, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। इसमें कष्ट मानने या नाराज होनेकी क्या बात है। बल्कि यह तो आपकी कृपा है जो आप मुझसे पूछते हैं; क्योंकि इसी बहाने मुझे भी भगवत्‌चर्चाका लाभ प्राप्त हो जाता है ।

वेतन कम होनेके कारण आपके घरका खर्च संकोचके साथ चलता है और ऋण चुकानेमें पैसा बिल्कुल ही नहीं दिया जाता, अवश्य ही यह विचारणीय प्रश्न है। मेरी समझमें ऋण-मुक्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करनेमें कोई दोष नहीं है। बल्कि किसी मनुष्य और देवतासे प्रार्थना करनेकी अपेक्षा भगवान्‌से प्रार्थना करना उत्तम है। किन्तु इस ऋणसे भी बढ़कर एक ऋण और हमारे सिरपर है, जिसके कारण हमें जन्म-मृत्युके फेरमें पड़ा रहना पड़ता है; और उस एक ऋणके अन्दर ही अन्य सब ऋण शामिल हैं तथा उसी एकके चुक जानेपर अन्य सब ऋण चुक जाते हैं। अतएव मेरी समझमें यदि ऋण-मुक्तिके लिये प्रार्थना करनी ही हो तो इस सांसारिक ऋणकी अपेक्षा उसी महान् ऋणके लिये प्रार्थना करना सबसे उत्तम है। जब उस ऋणसे मुक्ति मिल जायगी तब अन्य समस्त ऋणोंकी चिन्ता आप-से-आप दूर हो जायगी ।

इससे भी एक और उच्च भावना है, जिसे लोग सहसा नहीं समझ पाते और इसी कारण उसका अधिक विस्तार मैं नहीं कर रहा हूँ। वह यह है कि जन्म-मरणरूपी ऋणसे भी मुक्ति पानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना नहीं करनी चाहिये—जन्म-मरणसे छुटकारा पानेके लिये भी भगवान्‌से प्रार्थना करना निष्काम कर्म नहीं है। वास्तवमें सबसे उत्तम तो यही है कि हम केवल भगवान्‌की भक्ति करते रहें और उनकी आज्ञाओं-का पालन करते रहें। इसीको निष्काम कर्म कहा गया है। किन्तु ऐसा सहसा सबसे नहीं होता—हम किस उद्देश्यसे ऐसा करें यही समझमें नहीं आता। इसीसे एक महान् उद्देश्य—जन्म-मृत्युसे छुटकारा पानेका उद्देश्य सामने रखकर भगवान्‌की उपासना, उनसे इसके लिये प्रार्थना करनेकी बात कही गयी है और इस उद्देश्यको सामने रखकर प्रार्थना करनेमें कोई बुराई नहीं है ।

हाँ, यह प्रश्न अभी रह ही जाता है कि इस लौकिक ऋणके लिये क्या किया जाय, इसे कैसे चुकाया जाय ? इसके लिये भरसक न्याययुक्त तरीकेसे धन पैदा करके और अपने निर्वाहके लिये कम-से-कम खर्चकर जो बचे उससे चुकानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि हो सके तो अपने पास जो कुछ सम्पत्ति हो, जगह-जमीन, घर-द्वार, गहना-कपड़ा, उसे देकर साहूकारको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर भी यदि ऋण न अदा हो तो शान्ति और धैर्यके साथ तज्जन्य कष्टोंको सहन करना चाहिये। किन्तु प्रार्थना तो निरन्तर उस बड़े ऋणसे मुक्ति पानेके लिये ही करनी चाहिये। यह ऋण तो परिश्रम करके कुछ दिनोंमें चुक सकता है; घर-द्वार, धन-सम्पत्ति बेंच देनेसे भी पट सकता है; किन्तु वह ऋण अन्य किसी उपायसे नहीं चुक सकता, वह तो भगवान्‌की कृपापर ही निर्भर करता है और वह कृपा आर्त प्रार्थनाद्वारा प्राप्त हो सकती है ।

आपने ब्राह्मणोंके लिये गायत्रीका जप करना उत्तम बताया सो ठीक ही है । आपने जो अपने लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कामभावसे गायत्री जपना अच्छा लिखा, सो उसके अनुसार आपको अवश्य ही गायत्रीका जप निष्काम-भावसे करनेकी कोशिश करनी चाहिये। आप ईश्वरके सिवा दूसरे किसीको अपना आश्रय नहीं समझते, यह भी उचित ही है। वास्तवमें भगवान्‌के सिवा मनुष्यका दूसरा कोई आश्रय नहीं है। उन्हींपर पूर्ण विश्वास रखकर उनका भजन-पूजन करते रहना चाहिये।

गीतामें भगवान्‌ने अपने धर्मका पालन करते हुए मर जानेको भी कल्याणकारक बतलाया है, वह ठीक ही है। निष्कामभावसे अपना धर्म पालन करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अतएव जो मनुष्य निष्काम-भावसे अपने धर्मका पालन करता है वह अवश्य ही निःश्रेयसको प्राप्त करता है।

गीताके १८ वें अध्यायके ४२ वें श्लोकमें शम, दम, तप इत्यादि ब्राह्मणके कर्म बतलाये गये हैं। ये गुण तो ब्राह्मणोंमें स्वभावसिद्ध होने ही चाहियें। इनके अलावा आजीविका आदिके सम्बन्धमें, जिसका गीतामें जिक्र नहीं है, मनु आदि महर्षियोंने जो कुछ बतलाया है उसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ब्राह्मणोंके लिये मनुमहाराजने छः कर्म बतलाये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

'विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना और दान देना—ये छः कर्म ब्राह्मणोंके हैं।' इनमें विद्या पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना, ये आत्माके उद्धारके लिये सामान्य धर्म हैं। शेष तीन—विद्या पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना—ये कर्म जीविकासे सम्बन्ध रखते हैं। इन तीनोंमें विद्या पढ़ाकर और यज्ञ कराकर धन लेनेकी अपेक्षा याचना करना निन्द्य समझा गया है। किन्तु जो दान अपने-आप बिना माँगे प्राप्त हो और लेनेवाला केवल अपनी आवश्यकताके अनुसार ले तो वह दान अमृतके समान है। शिलोञ्छवृत्ति सबसे उत्तम है। किन्तु आजकल उसकी परिपाटी नष्ट हो गयी है। उन वृत्तियोंमें रहना असम्भव-सा है। अतएव यज्ञ कराकर, विद्या पढ़ाकर और बिना याचना किये यजमानकी दी हुई दक्षिणाके रूपमें धन लेकर जीविका चलाना ब्राह्मणके लिये सबसे उत्तम है। यदि ऐसा न हो सके तो बिना माँगे आवश्यकतानुसार दान ग्रहण करना भी आपके लिये उत्तम है।

आजकल घोर कलिकाल पृथ्वीपर विराज रहा है। ऐसे सङ्कटकालमें, सम्भव है, इन ब्राह्मणोचित कार्योंके द्वारा निर्वाह न हो सके। अतएव मनु आदि ऋषि-महर्षियोंने आपत्ति-कालका भी धर्म बताया है। उसको ग्रहण करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं। शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि यदि ब्राह्मणका कार्य ब्राह्मणवृत्तिसे न चले तो वह क्षात्रवृत्ति या वैश्यवृत्तिका अवलम्बन कर सकता है। देशकी जो वर्तमान स्थिति है, उसमें क्षात्रवृत्तिका पालन सम्भव नहीं—वह वृत्ति तो मानो इस समय लोप-सी ही हो गयी है। अतएव सब तरहसे विचार करनेपर आपके लिये वैश्य-वृत्ति ग्रहण करना उत्तम मालूम होता है। किन्तु व्यापार करनेके लिये आपके पास धन नहीं है। इसलिये इसके लिये अच्छा होगा कि नौकरी न करके किसीकी दूकानमें अपना हिस्सा रख लें, हिस्सा कामका ही हो और उसका परिमाण दूकानके मालिकके साथ यथोचित निश्चित कर लिया जाय। यदि ऐसा भी सम्भव न हो तो नौकरी करनेमें भी कोई हर्ज नहीं। किन्तु नौकरियोंमें यदि वेतन लेकर अध्यापनका काय मिले तो वह सबसे उत्तम है।

आपने लिखा कि मैं दान लेनेकी अपेक्षा नौकरी करके निर्वाह करना उत्तम समझता हूँ। यह बात आपने अपने स्वभाव और युक्तिके अनुसार ही लिखी है और एक दृष्टिसे उसे ठीक भी कहा जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। किन्तु सच पूछिये तो धर्मशास्त्रके अनुसार और मनु आदि ऋषि-महर्षियोंके विचारानुसार नौकरी भिक्षावृत्तिसे भी नीची है। ब्राह्मणके लिये नौकरीकी अपेक्षा भिक्षावृत्ति ही उत्तम है। वर्तमान समयमें भिक्षावृत्तिका प्रचलन उठ गया है, लोग इसका महत्त्व भूल गये हैं। और इस वृत्तिका आश्रय लेनेवाले लोग दूषित परान्न खानेके कारण गिरी हुई अवस्थामें दिखलायी देते हैं। इसीसे युक्ति बतलाती है कि इसकी अपेक्षा तो नौकरी करके ही पेट पालना उत्तम है। पुराने समयमें ब्राह्मणलोग जो दान लेते थे, जो भिक्षा ग्रहण करते थे, उसका लक्ष्य दाता या यजमानका कल्याण करना होता था। उनका ध्यान इसी बातपर रहता था कि दाता और यजमानका कल्याण हो, वे इसके द्वारा अपने निर्वाहकी बात नहीं सोचते थे। इसीसे उस समयमें यह वृत्ति युक्तिसे भी नौकरीकी अपेक्षा श्रेष्ठ मालूम होती थी। परन्तु आज भाव बदल गया है और इसलिये उसकी उपयोगिता भी नष्ट हो गयी है। अगर भाव ठीक हो जाय तो वह वृत्ति आज भी श्रेष्ठ ही है।

आपको शम, दम, तप, भजन-साधन इत्यादि स्वाभाविक धर्मोंको करते हुए माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदिका पालन तथा अपने निर्वाहके लिये न्यायसङ्गत उपायोंसे धन पैदा करनेकी कोशिश करते रहना चाहिये। यही तो भगवान्‌ने गीतामें अर्जुनसे कहा था—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

करुणामय !

जाना नहीं देव ! जगके झूठे वैभवपर फूला।
चिर-सुन्दर शिव सत्य तुम्हें तज मोहक भ्रममें भूला।
अब जाना निर्भ्रान्त, किन्तु फिर तुझमें उलझ गया मन।
कहो आज यह मुझे ज्ञानसे मोक्ष मिला या बन्धन?
अहे त्यागसे मिलनेवाले प्रणयी प्राणाधार!
जीवनका ही त्याग शेष है, कब आवोगे द्वार?
आया दूर प्रणयके मगमें विधुर वियोग तपाता।
स्वेदोंके मिस रोम-रोम है आँसू उष्ण बहाता।
भटक रहा हूँ बीहड़ वनमें ले अतृप्तिकी पीड़ा।
मंजिल कितनी दूर जहाँ वह मधुर मिलनकी क्रीड़ा?
श्वासोंके आगम-निर्गममें मृत्यु रही है झूल।
पूर्व विदाके मिल न सकी हा! प्रिय-चरणोंकी धूल।
आह! तुम्हारे लिये खो रहीं आँखें अपना पानी।
फिर भी हुई यहाँ आनेमें क्योंकर आना-कानी?
कबतक अमल आज्य-धारा-सी नयनोंसे बरसाऊँ?
अन्तरकी ज्वालामें कबतक हृदय-हविष्य जलाऊँ?
कब होगा इस महायज्ञका विघ्नरहित अवसान?
करुणामय! कब मुझे मिलेगा अमिट अमर वरदान?

—पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

प्रेमी भक्तोंकी महिमा

त्रिरूपभङ्गपूर्वकं नित्यदासनित्य-कान्ताभजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यं प्रेमैव कार्यम् ॥ ६६ ॥

६६–तीन रूपोंको भंगकर नित्य दास-भक्तिसे या नित्य कान्ताभक्तिसे प्रेम ही करना चाहिये, प्रेम ही करना चाहिये ।

स्वामी, सेवक और सेवा, अथवा पति, पत्नी और पतिसेवा इन तीन-तीन रूपोंको मिटाकर नित्य दास्य-भक्तिके द्वारा अथवा कान्ताभक्तिके द्वारा भगवान्‌से प्रेम ही करना चाहिये । दास्यभाव और कान्ताभाव इन दोनोंमें ही आगे चलकर भगवान्‌के साथ तन्मयता हो जाती है । निष्कामभावसे शरीर-मन-वाणी सब कुछ स्वामीके अर्पणकर एक अपने स्वामीको छोड़कर जगत्‌में दूसरे किसीको भी न जानना–यह दास्य-भक्तिका आदर्श है । और पति ही मेरा तन, मन, धन, गति, मति, आश्रय, जीवन, प्राण, धर्म, मोक्ष और भगवान् है; एक पतिके सिवा अन्य कोई पुरुष ही जगत्‌में नहीं है; पतिका धन मेरा धन, पतिका तन मेरा तन, पतिका मन मेरा मन, पतिकी सेवा मेरी सेवा, पतिका ऐश्वर्य मेरा ऐश्वर्य, पतिका मान मेरा मान, पतिका अपमान मेरा अपमान, पतिके प्राण मेरे प्राण—इस प्रकार एकमात्र पतिपरायणा पतिगत-प्राणा होकर निष्काम अनन्यभावसे निरन्तर सेवामें लगे रहना यह कान्ताभक्तिका आदर्श है । वास्तवमें दोनों एक ही हैं । दोनोंमें ही समता है । दोनोंमें ही अभिन्नता है । दास्यभक्तिमें भी सेवक अपना सब कुछ भुलाकर स्वामीके नामगोत्रवाला बन जाता है और कान्ताभक्तिमें तो अपने नामगोत्रको पतिके नामगोत्रमें मिलानेपर ही कान्ताभावकी प्राप्ति होती है । दास्य-भावके सम्बन्धमें श्रीगोसाईंजी महाराज कहते हैं—

मेरे जातिपाँति, न चहौं काहूकी जातिपाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको ।
लोक परलोक रघुनाथहीके हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको ॥
अति ही अयाने उपखाने नहीं बूझैं लोग,
साहहीको गोत, गोत होत है गुलामको ।
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहूके द्वार परौं जो हौं सो हौं रामको ॥

स्वामी और सेवकका कुलगोत्र एक हो गया । इस दास्यभावकी महिमा गाती हुई भगवती श्रीराधिकाजी भक्तवर उद्धवजीसे कहती हैं—

कृष्णभक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम् ।
श्रेष्ठा पञ्चविधामुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी ॥
ब्रह्मत्वादपि देवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि ।
अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० कृ० ९७ । ८-९)

'सब वरोंमें श्रेष्ठतम वर श्रीकृष्णभक्ति या श्रीकृष्ण-दास्य ही है । पाँच प्रकारकी श्रेष्ठ मुक्तियोंसे हरिभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । ब्रह्मत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, अमरत्व, अमृतप्राप्ति, सिद्धिलाभ—इन सभीसे श्रीहरिका दासत्व प्राप्त होना सुदुर्लभ है ।'

कान्ताभक्तिमें तो एकात्मता है ही—

प्रीति जो मेरे पीवकी बैठी पिंजर माहिं ।
रोम रोम पिउ पिउ करै 'दादू' दूसर नाहिं ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रीतमको पतियाँ लिखूँ जो कहुँ होय बिदेस ।
तनमें, मनमें, नैनमें, ताको कहा सँदेस ॥

कान्ता और कान्त तो घुलमिलकर एक हो जाते हैं—अतएव वहाँ त्रिरूपका भङ्ग आप ही हो जाता है। सूत्रकार कहते हैं, इस एकात्मताके आदर्शको सामने रखकर, इस भावको मनमें स्थान देकर दास्यभाव या कान्ताभावसे भगवान्‌के प्रति केवल प्रेम ही करो।

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ॥६७॥

६७–एकान्त (अनन्य) भक्त ही श्रेष्ठ हैं।

इससे पूर्व सूत्रके अनुसार भक्ति करनेवाला भगवान्‌का अनन्य भक्त ही सबमें श्रेष्ठ है। क्योंकि उसका तन, मन, धन सब कुछ परमात्माका हो जाता है। वह परमात्माका यन्त्रवत् होकर संसारमें रहता है। उसका आत्मा परमात्मासे मिल जाता है, उसका मन परमात्माके मनमें रम जाता है, उसके नेत्र सब जगह सर्वदा परमात्माको ही देखते हैं—

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि आप पथिक फिरि जाय॥
'कबिरा' काजर-रेखहू अब तो दई न जाय।
नैननि पीतम रमि रहा, दूजा कहा समाय॥
आठ पहर चौंसठ घरी मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींदहि ठौर न होय॥

कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥६८॥

६८–ऐसे अनन्य भक्त कण्ठावरोध, रोमाञ्च और अश्रुयुक्त नेत्रवाले होकर परस्पर सम्भाषण करते हुए अपने कुलोंको और पृथ्वीको पवित्र करते हैं।

अनन्य भक्तगण जब इकट्ठे होकर अपने प्राणस्वरूप प्रियतमकी चर्चा करते हैं तो उनका प्रेमसागर उमड़ पड़ता है। तब वे चेष्टा करनेपर भी नहीं बोल सकते, उनके कण्ठ रुक जाते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है, रोम-रोमसे प्रेमकी किरणधाराएँ निकलकर उस स्थानमें निर्मल प्रेमज्योति फैला देती हैं। उस समय वे भक्तगण प्रेमविह्वल होकर आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बहाते हुए परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। यह स्थिति बहुत ही दुर्लभ और परम पवित्र होती है, जिन भाग्यवानोंको यह अवस्था प्राप्त हो जाती है उन सबके कुल तो पवित्र होते ही हैं।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगतपूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीरपरायन जहँ नर उपज बिनीत॥

वरं उनके अस्तित्वसे पृथ्वी भी पवित्र हो जाती है। उस समय उन पवित्र प्रेमस्वरूप भक्तके तनसे स्पर्श की हुई जरा-सी हवा जिसके शरीरको स्पर्श कर लेती है, वह भी पवित्र हो जाता है। शास्त्रमें कहा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

'जिसका चित्त अपार संवित् एवं सुखके सागर परब्रह्ममें लीन हो गया है उसके जन्मसे कुल पवित्र, जननी कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥
(११। १४। २४)

प्रेमके प्रकट हो जानेसे जिसकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है, जो प्रेमावेशमें कभी जोर-जोरसे रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने और नाचने लगता है। ऐसा मेरा परम भक्त त्रिलोकीको पवित्र कर देता है।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि॥६९॥

६९–ऐसे भक्त तीर्थोंको सुतीर्थ, कर्मोंको सुकर्म और शास्त्रोंको सत्शास्त्र कर देते हैं।

तीर्थ पापी नर-नारियोंको निष्पाप और पवित्र करते हैं, परन्तु पापात्माओंके सतत समागमसे उनमें मलिनता आ जाती है। तीर्थोंकी वह मलिनता भक्तोंके समागमसे नष्ट होती है। दिलीपकुमार महाराज भगीरथके घोर तपसे प्रसन्न होकर वर देनेके लिये आविर्भूत हुई भगवती श्रीगङ्गाजीने उनसे कहा—'भगीरथ! मैं पृथ्वीपर कैसे आऊँ? संसारके सारे पापी तो आ-आकर मुझमें अपने पापोंको धो डालेंगे। परन्तु उन पापियोंके अपार पाप-पङ्कको मैं कहाँ धोने जाऊँगी इसपर आपने क्या विचार किया है?' इसके उत्तरमें भगीरथने कहा—

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥
(श्रीमद्भागवत ९।९।६)

'हे माता! समस्त विश्वको पवित्र करनेवाले विषयोंके त्यागी, शान्तस्वरूप, ब्रह्मनिष्ठ साधु-महात्मा आकर तुम्हारे प्रवाहमें स्नान करेंगे तब उनके अङ्गके सङ्गसे तुम्हारे सारे पाप धुल जायँगे; क्योंकि उनके हृदयमें समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीहरि निवास करते हैं।'

प्रचेतागण भगवान्की स्तुति करते हुए कहते हैं—

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः॥
(श्रीमद्भागवत ४।३०।३७)

'आपके जो भक्तगण तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये ही भूमिपर विचरण करते हैं उनका समागम संसार-भयसे भीत पुरुषको कैसे प्रिय नहीं होगा।'

धर्मराज युधिष्ठिर भक्तराज विदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं प्रभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥
(श्रीमद्भागवत १।१०।१०)

'हे प्रभो! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं, (पापियोंद्वारा कलुषित हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें विराजित भगवान् श्रीगदाधरके प्रभावसे पुनः तीर्थत्व प्रदान करा देते हैं।'

इसी प्रकार जिन शास्त्रोक्त कर्मोंको भक्तगण करने लगते हैं, वे ही सत्कर्म हो जाते हैं और वे जिस शास्त्रको आदर देते हैं, वही सत्शास्त्र माना जाता है। वरं यह कहना भी अत्युक्ति नहीं कि भक्त जिस जगह रहते हैं, जिस सरोवर या नदीमें स्नान करते हैं, वही तीर्थ बन जाता है; भक्त जो कुछ कर्म करते हैं, वही आदर्श सत्कर्म कहलाता है और भक्त जो कुछ उपदेश करते हैं वही सत्शास्त्र माना जाता है। उनका निवास-स्थान ही तीर्थ, उनके कर्म ही सत्कर्म और उनकी वाणी ही सत्शास्त्र है। तीर्थ, सत्कर्म और शास्त्रका रहस्य समझनेपर यह बात भलीभाँति समझमें आ जाती है।

तन्मयाः॥७०॥

७०–(क्योंकि) वे तन्मय हैं।

जैसे नदी समुद्रमें मिलकर समुद्र बन जाती है, इसी प्रकार भक्त भी अपना तन-मन-बुद्धि-अहंकार सब कुछ प्रियतम भगवान्के समर्पण कर भगवान्के साथ तन्मय हो जाता है। ऐसा भक्त साक्षात् भगवत्स्वरूप ही होता है, वह जहाँ रहता है वहाँका तमाम सूक्ष्म और स्थूल वातावरण शुद्ध हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये उसके समागममात्रसे तीर्थ, कर्म और शास्त्र पवित्र हो जाते हैं। ऐसे ही भक्तोंके द्वारा भगवान्, भगवन्नाम, भगवद्भक्तिकी महिमा बढ़ती है और इनके समागममें आनेवाले पापी-से-पापी नर-नारी भी घोर संसार-सागरसे अनायास ही तर जाते हैं।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥ ७१ ॥

७१–(ऐसे भक्तोंका आविर्भाव देखकर) पितरगण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथा हो जाती है।

भक्तोंका आविर्भाव सभीके लिये शुभ होता है, क्योंकि उनके सभी कर्म स्वाभाविक ही लोक-कल्याणकारी होते हैं। उनके प्रभावसे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा बढ़ती है, पितृकार्य और देव-कार्योंमें विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इससे धर्मपथसे डिगे हुए लोग पुनः धर्ममार्गपर आरूढ़ होकर यज्ञ, दान, श्राद्ध, तर्पण आदि कर्म करने लगते हैं जिससे देवता और पितरोंको बड़ा सुख मिलता है। भक्तिके प्रतापसे भक्तके आगे पीछेके कई कुल तर जाते हैं, इसलिये अपने कुलमें भक्तको उत्पन्न हुआ देखकर पितरगण अपनी मुक्तिकी दृढ़ आशासे हर्षोत्फुल्ल हो जाते हैं। पद्मपुराणमें कहा है—

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥

'पितृ-पितामहगण अपने वंशमें भगवद्भक्तका जन्म हुआ जानकर—यह हमारा उद्धार कर देगा, इस आशासे प्रसन्न होकर नाचने और ताल ठोकने लगते हैं।'

मचले हुए दर्शनाकांक्षी भक्त किसी भी बातसे सन्तुष्ट नहीं होते, अतः स्नेहमयी जननीकी भाँति उन्हें अपनी गोदमें खिलाकर सुखी करनेके लिये सच्चिदानन्दघन भगवान् दिव्य रूपमें साक्षात् प्रकट होते हैं। उनके प्रकट होते ही देवताओंका अहित करनेवाले असुरोंका विनाश आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार भक्तके आविर्भावको ही भगवान्के प्राकट्यमें कारण समझकर देवतागण भी नाचने लगते हैं। जबतक भगवान् या भगवान्के प्यारे धर्मात्मा भक्तोंका आविर्भाव नहीं होता तबतक पृथ्वीदेवी अनाथा रहती हैं। और जब भक्त प्रकट होते हैं तब बछड़ेके पीछे स्नेहवश दौड़नेवाली गौकी तरह भगवान् भी प्रकट हो जाते हैं, अतएव भक्तके आविर्भावसे ही पृथ्वी सनाथा हो जाती है।

नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधन-क्रियादिभेदः ॥ ७२ ॥

७२–उनमें (भक्तोंमें) जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादिका भेद नहीं है।

सूत्रकार यहाँ यह समझाते हैं कि भक्तिमें जाति, विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादिकी प्रधानता नहीं है। ब्राह्मण हो या शूद्र, पढ़ा-लिखा हो या बेपढ़ा-लिखा, सुन्दर हो या कुरूप, ऊँचे कुलका हो या नीच कुलका, धनवान् हो या दरिद्र और बहुत क्रियाशील हो या अक्रिय। जो अपना सर्वस्व प्रभुपर न्योछावरकर सतत उनका प्रेमपूर्वक स्मरण करनेमें अपने चित्तको तल्लीन कर देता है, उसीको भक्तिरूपी परम दुर्लभ धन मिल जाता है। निषादका जन्म नीच जातिमें हुआ था, सजन कसाई थे, शबरी गँवार स्त्री थी, ध्रुव अपढ़ बालक थे, विभीषण और हनुमानादि कुरूप और अकुलीन राक्षस तथा वानर थे, विदुर और सुदामा निर्धन थे, गोपीजन क्रियाहीन थीं, परन्तु इन सबने भक्ति और प्रपत्तिके प्रतापसे भगवान्का प्रेम प्राप्त किया और भगवान्के परमप्रिय हो गये। सर्व सत्कर्मोंकी फलरूपा भक्ति जिसके हृदयमें है, वही भक्त है, वही सर्वगुणसम्पन्न है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चाहे वह कोई हो। यही बात श्रीरामचरित-मानसमें कही गयी है—

सोइ सरबग्य गुनी सोइ दाता। सोइ महिमंडित पंडित ग्याता॥
धरमपरायन सोइ कुलत्राता। रामचरन जेहि कर मन राता॥
नीतिनिपुन सोइ परम सयाना। श्रुतिसिद्धान्त नीक तेहि जाना॥
सोइ कोबिद सोई रनधीरा। जो छलु छाड़ि भजइ रघुबीरा॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धरम बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगतिहीन नर सोहहि कैसे। बिनु जल बारिद देखिय जैसे॥

इसका यह तात्पर्य नहीं कि भक्त अपनेको सबसे ऊँचा और सर्वगुणसम्पन्न समझकर सबसे अपनी पूजा कराता है, या समाज, जाति, वर्ण और आश्रममें बड़ोंके साथ खानपान, विवाह, व्यवहार, रहन-सहन, आचार-विचार और कुलपरम्परा आदिमें अपने लिये समान अधिकारका दावा करता है। भक्त तो अभिमानका सर्वथा त्यागी है, फिर वह नया झूठा अभिमान लादकर ऐसा क्यों करने लगा? जो ऐसा करते हैं वे भक्त नहीं हैं। वर्णाश्रम तथा भक्तिमें भेद है। जो भक्तिके नाम-पर वर्णाश्रमकी मर्यादा नाश करना चाहते हैं, वे तो भक्तिपर लाञ्छन लगाते हैं। अतएव भक्तिमार्गपर चलने-वाले साधकोंको शास्त्रत्यागकी कभी भावना ही नहीं करनी चाहिये। अवश्य ही भक्तिके नाते जातिभेदके कारण भक्तको नीचा भी कदापि नहीं समझना चाहिये। वैष्णवशास्त्रोंमें इसीलिये भक्तोंमें जातिभेदबुद्धिको एक अपराध बतलाया है। *

---

* वैष्णवग्रन्थोंमें निम्नलिखित ६४ अपराध बतलाये गये हैं। इनपर ध्यान रखकर चलनेसे बहुत लाभ हो सकता है। १ श्रीभगवान्‌को कोई देवता या तत्त्वविशेष मानना, २ वेदोंमें ग्रन्थ या पौरुषेयबुद्धि, ३ भक्तोंमें जाति-भेदबुद्धि, ४ गुरुको साधारण मनुष्य समझना, ५ भगवान्‌की प्रतिमाको काठ, पत्थर, धातु, कागज या मिट्टी समझना, ६ भगवान्‌के प्रसादको साधारण खानेकी चीज समझना, ७ भगवान्‌के चरणोदकको साधारण जल समझना, ८ तुलसीको साधारण वृक्ष समझना, ९ गौको साधारण पशु समझना, १० भागवत और गीताको साधारण पुस्तक समझना, ११ भगवान्‌की लीलाओंको मनुष्यकी की हुई मानना, १२ सांसारिक प्रेम या स्त्रीसुखके साथ भगवान्‌की लीलाकी तुलना करना, १३ गोपियोंको (भगवान्‌के लिये) परनारी समझना, १४ रासलीलाको कामचेष्टा समझना, १५ भगवान्‌के महोत्सवके समय स्पर्शास्पर्शबुद्धि रखना, १६ ईश्वर और शास्त्रोंको न मानकर नास्तिक हो जाना, १७ सन्देहपूर्वक धर्मका आचरण करना, १८ धर्मके पालनमें आलस्य करना, १९ भक्तोंको बाहरी बातोंपर कसना, २० साधु-महात्माओंके गुण-दोषोंकी आलोचना करना, २१ अपनेको उत्तम समझना, २२ किसी भी देवता या किसी भी शास्त्रकी निन्दा करना, २३ भगवान्‌की मूर्तिके सामने पीठ देकर बैठना, २४ भगवान्‌की मूर्तिके सामने जूते पहनकर जाना, २५ भगवान्‌की मूर्तिके सामने माला धारण करना, २६ भगवान्‌की मूर्तिके सामने छड़ी लेकर जाना, २७ भगवान्‌की मूर्तिके सामने नीले कपड़े पहनकर जाना, २८ दाँतन-कुल्ला किये बिना जाना, २९ मलत्याग या मैथुनादिके बाद कपड़े बदले बिना मन्दिरमें प्रवेश करना, ३० भगवान्‌की मूर्तिके सामने हाथपैर फैलाना, ३१ भगवान्‌की मूर्तिके सामने पान खाना, ३२ भगवान्‌की मूर्तिके सामने जोरसे हँसना, ३३ कुचेष्टा करना, ३४ स्त्रियोंके चारों ओर घूमना, ३५ क्रोध करना, ३६ भगवान्‌की मूर्तिके सामने किसी दूसरेका अभिवादन करना, ३७ दुर्गन्धवाली कोई चीज खाकर दुर्गन्ध दूर हुए पहले मन्दिरमें जाना, ३८ मादक द्रव्य सेवन करना, ३९ किसीको अपमानित करना या मारना, ४० काम-क्रोधादिकी चेष्टा करना, ४१ अतिथि या साधुकी आवभगत न करना, ४२ अपनेको भक्त, धर्मात्मा, पण्डित या पुण्यवान् समझना, ४३ नास्तिक, व्यभिचारी, हिंसक, लोभी और झूठ बोलनेवाले मनुष्योंका सङ्ग करना, ४४ विपत्तिमें ईश्वरपर दोष लगाना, ४५ पापके लिये धर्म करना, ४६ किसीको किञ्चित् भी कष्ट देकर अपनेको धार्मिक समझना, ४७ स्त्री, पुत्र, परिवार, आश्रित, दीन और साधुका पालनपोषण न करना, ४८ किसी वस्तुको अपनी भोग्य समझकर भगवान्‌के निवेदन करना, या बिना निवेदन किये भोगना, ४९ अपने इष्टदेवके नामकी शपथ करना, ५० धर्म और भगवान्‌के नामको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतस्तदीयाः ॥७३॥

७३–(क्योंकि भक्त सब) उनके (भगवान्‌के) ही हैं ।

भक्त अपनी भक्तिके प्रभावसे भगवद्‌रूप ही हो जाते हैं, इसीलिये उनमें परस्पर भेदबुद्धि नहीं होती और उनमें कोई अपनेको किसी भी हेतुसे ऊँचा नहीं समझता ।

वाद-विवाद नहीं करना चाहिये

वादो नावलम्ब्यः ॥ ७४ ॥

७४–वाद-विवाद नहीं करना चाहिये ।

भक्तिके साधकोंके लिये यह सूत्र बड़े ही महत्त्वका है । भक्तको तर्कवितर्कमें पड़नेकी कोई भी आवश्यकता नहीं । यह समझना चाहिये कि मेरा तो हरेक क्षण अपने प्रियतम भगवान्‌के भजनके लिये समर्पण हो चुका, उसे दूसरे काममें लगानेका अधिकार ही नहीं है । फिर वह तर्कवितर्क करे भी किस बातकी । सृष्टि कब हुई, कैसे हुई, क्यों हुई, इसका मूल तत्त्व क्या है, इन सब बातोंको जाननेकी उसे जरूरत नहीं । उसने तो श्री-भगवान्‌को ही सब कुछ मान-जानकर अपना एकमात्र लक्ष्य बना लिया है । भगवान् अपना तत्त्व जब चाहेंगे, आप ही समझा देंगे । कब समझावेंगे, समझावेंगे या नहीं समझावेंगे, इस बातकी भी उसे कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिये । अपने प्रियतम भगवान्‌के चिन्तन-को छोड़कर दूसरी किसी वस्तुके चिन्तनकी उसके मनमें गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिये । और यह भी निश्चित है कि तर्कसे तत्त्वकी उपलब्धि भी नहीं होती । इसीलिये ब्रह्मसूत्रमें कहा है—'तर्काप्रतिष्ठानात् (२ । १ । ११)–तर्ककी प्रतिष्ठा नहीं है ।' कठोपनिषद्‌में कहा गया है—'नैषा तर्केण मतिरापनेया' (१ । २ । ९) । 'बुद्धिके तर्कसे उस तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती ।' वह सत्य तत्त्व तो शुद्धचित्त सात्त्विक पुरुषके सामने स्वयमेव आविर्भूत होता है । किसी अंशमें यह भी सत्य है कि 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः', परन्तु वह वाद दूसरा होता है । श्रद्धालु शिष्य जिज्ञासाभावसे गुरुके सामने तर्क उपस्थित करता है और गुरु उसकी शङ्काका निवारण कर और भी प्रबल तर्कसे उसे सिद्धान्त समझाते हैं । ऐसा वाद दूषित नहीं है । परन्तु जो वाद आग्रहपूर्वक होता है वह तो बुरा ही फल उत्पन्न करता है । और वादमें अपने मतका आग्रह हो ही जाता है । फिर सिद्धान्तका लक्ष्य छूट जाता है और व्यक्तिगत दोषनिरीक्षण, दोषारोपण और परस्पर गालीगलौज होने लगता है । विवेक नष्ट हो जाता है, क्रोध छा जाता है, वाणी बेकाबू हो जाती है और सदाके लिये वैर बँध जाता है । इसीलिये 'वादे वादे वर्द्धते वैरवह्निः' वादविवादसे वैरकी आग भड़क उठती है'—कहा जाता है । भक्तिके पथिकको तो इतनी फुरसत ही नहीं मिलनी चाहिये जिसमें वह वादविवाद कर सके । जहाँतक हो सके उसे

बेचकर धन कमाना, ५१ अपने इष्टदेवको छोड़कर दूसरेसे आशा करना, ५२ शास्त्रोंकी मर्यादाको तोड़ना, ५३ ब्रह्मज्ञान न होनेपर भी ब्रह्मज्ञानीके समान आचरण करना, ५४ सम्प्रदायभेदसे वैष्णवोंमें किसीको ऊँचा-नीचा समझना, ५५ देवताके समान आचरण करना, ५६ अवतारोंकी लीलाओंमें तारतम्य देकर उनकी निन्दा करना, ५७ दिल्लगी-में भी किसीको 'आप ही भगवान् हैं' ऐसा कहना, ५८ भगवान् किसीके मुखापेक्षी हैं, भूलकर भी ऐसा समझना, ५९ लोभवश किसीको भगवत्प्रसाद या चरणोदक देना, ६० भगवान्‌के चित्र, प्रतिमा या नामका अपमान करना, ६१ किसी भी जीवको किसी प्रकारसे कष्ट पहुँचाना, भय दिखलाना या किसीका अहित करना, ६२ तर्कवितर्कमें हार जाने या सिद्धान्त न कर सकनेपर आस्तिकताको त्याग देना, ६३ भगवान्‌के अवतारोंके जन्म-कर्मोंको साधारण समझना, ६४ भगवान्‌के युगलरूपमें द्वैतबुद्धि करना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कके स्थानसे अलग ही रहना चाहिये। यदि प्रारब्ध-वश कभी तर्कवादियोंसे समागम हो जाय तो उसे विनीतभाव धारणकर उनकी बात सुन लेनी चाहिये और बदलेमें कोई उत्तर देकर बात बढ़ानी नहीं चाहिये। 'अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति'—'जब आगमें ईंधन नहीं पड़ेगा तो वह आप ही बुझ जायगी।' कहनेवाले स्वयं ही थक जायँगे। अतएव भक्तके लिये सबसे भली चुप है। 'मौनं सर्वार्थसाधनम्'—यह वाक्य याद रखना चाहिये। दूसरेकी ऐसी बात सुने ही नहीं जिससे अपने इष्टमें, पथमें, विश्वासमें और साधन-में संशय हो जाय; और स्वयं किसीका जी दुखे, ऐसी कोई बात किसीसे कहे नहीं। दूसरेकी बात मौके-बे-मौके सुननी पड़े तो उसे सुन ले, परन्तु स्वयं तो तर्ककी इच्छासे, दूसरेको दबानेके लिये, अपना मत स्थापन करनेके लिये विवादमें उतरे ही नहीं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि श्रद्धाके साथ पूछनेवालेको कुछ न कहे, या मौका पड़नेपर बिना पूछे भी हितकी बात न कहे। मतलब तो यह है कि विवादमें न उतरे। अनावश्यक बोले ही नहीं, जब बिना बोले काम न चले तब आवश्यक समझकर इतना ही बोले जितनेसे काम चल जाय। बात बढ़ाकर न कहे, विवादके भावसे न कहे, किसीका विरोध न करे, किसीकी दिल्लगी न करे, किसीका दोष न बतावे, किसीके हृदयपर चोट न करे, अपनी या अपने मतकी बड़ाई न करे, किसीकी निन्दा न करे, कड़ुआ न बोले, बोलनेमें आशा या कामनाका भाव न रक्खे, जबानसे किसीको धोखा न दे, किसीके विश्वासमें शङ्का न पैदा करे। जो कुछ बोले सत्य, मधुर, प्रिय, अनुद्वेगकर और हितकर शब्द ही बोले; शेष समय भगवन्नाम-स्मरणमें लगा रहे। अनावश्यक एक शब्द बोलनेमें भी बड़ी हानि समझे, क्योंकि उतना समय व्यर्थ गया। उतने समयके लिये जीभसे नामजप छूट गया, और अनावश्यक शब्दका वाता-वरणमें जो असर हुआ, वह अलग। यह निश्चय रक्खे कि तर्क और वादविवादसे कभी भगवत्प्रेम, ज्ञान या भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती। तर्कसे तो अहङ्कार, द्वेष, क्रोध, हिंसा और वैरकी ही जमात इकट्ठी होती है। अतएव वादविवादसे सदा अलग रहे।

अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तरक सब त्यागी॥

अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजिअ राम, रनधीर करुनाकर सुंदर सुखद॥

बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च ॥७५॥

७५—क्योंकि (वादविवादमें) बाहुल्यका अवकाश है और वह अनियत है।

सूत्रकार कारण दिखाते हुए कहते हैं कि वाद-विवादमें उत्तर-प्रत्युत्तर होता है और वह बढ़ता ही जाता है। दोनों ओरसे अपने-अपने मतका समर्थन करनेमें शब्दोंकी झड़ी लग जाती है। जो बात भगवत्कृपासे ही जानी जा सकती है, वह तर्कसे मिल तो सकती ही नहीं। अतएव तर्कवितर्कका कोई सुफल भी नहीं होता। यदि विवादमें बोलते-बोलते थक जाने या समयपर तर्क याद न आनेसे किसी पक्षकी जीत हो जाती है तो वह भी सिद्धान्त नहीं माना जाता; क्योंकि वह सिद्धान्त है ही नहीं। अतएव विवादमें समय नष्ट न कर भक्तको सर्व प्रकारसे अपने भगवान्‌पर निर्भर रहते हुए निरन्तर निष्कपट और निष्काम भावसे परम श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का भजन करना चाहिये। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति तर्कसे नहीं होती। भक्तिसे ही होती है। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामजापका प्रभाव

(लेखक—स्वामी श्रीसत्यानन्दजी)

पुरातन कालसे उपासकजन नामोपासनाका प्रभाव वर्णन करते आये हैं। ऋषियों-महर्षियोंने नामोपासनाका बड़ा माहात्म्य वर्णन किया है। सन्तों और भक्तोंकी वाणियोंमें तो नामोपासनाका बहुत ही ऊँचा पद है। ध्यानी लोग नामके सहारेसे ही समाधिकी ऊँची-से-ऊँची भूमियोंपर सुखपूर्वक निर्विघ्नतासे पहुँच जाना बताया करते हैं। अनुभवी सन्तजन नामसे नामीको प्राप्त करना बहुत ही सरल, सहज और सुगम साधन बताते हैं।

नामोपासक अनुभवी गुरुसे यदि भगवान्‌का पतितपावन मङ्गलमय रामनाम ग्रहण करके जपा जाय तो उसका प्रभाव उपासक स्वयं समझने लग जाया करता है। गुरुमुखसे ग्रहण किया हुआ राम-नाम पहले-पहल कानोंपर पड़ता है, फिर जीभपर विलसने लगता है, तत्पश्चात् मनमें बसता जाता है और अन्तमें आत्मभावमें स्फुरित हो आता है। विधिसे ग्रहण करके आराधा हुआ रामनाम अनादिकालसे सोयी पड़ी हुई आत्मसत्ताको सहजसे अपने-आप ही जगा देता है।

निश्चयवान् उपासक जब श्रद्धासे नामका जप तथा ध्यान करता रहता है तो कालान्तरमें रामनाम जपना उसकी जीभ और मन दोनोंका काम नहीं रहता। रामनाम महामन्त्र तब उसकी अन्तरात्मामें गूँजने लग जाता है और वह अतिशय मृदु तथा मधुर स्वरसे गूँजने लग जाता है। वह अन्तरात्माकी ध्वनि सरस और सताल हुआ करती है। उस अपने अन्तरात्माके उच्चतम नादके प्रकट हो जानेपर उपासकके सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और उसकी सर्व चिन्ताएँ चूर हो जाती हैं। रामनामका मधुर नाद जब अन्तरात्मामें गूँज उठता है तब उपासकको अपने निजस्वरूपका भी साक्षात् हो जाता है, वह अपनी आत्मसत्ताको देहसे पृथक् साक्षात् कर लेता है।

ऊपर कहा अजपा जाप जब आप-ही-आप होता है तब उपासकको परम प्रसाद और अतुल प्रसन्नता तथा असीम सन्तोष उपलब्ध हो जाता है। वह तब स्वात्मामें ही रमण करता हुआ आनन्दमें मग्न रहा करता है। ऐसा नामोपासक संसारमें केवल वीतराग-वृत्तिसे, निष्पक्ष होकर विचरता रहता है। उसको किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं होती।

नामोपासनामें मग्न मनुष्य सच्चा कर्मयोगी बन जाता है। वह सभी काम कर्तव्य-बुद्धिसे किया करता है। नामोपासककी दृष्टि सदा भुवनभावन श्री-भगवान्‌में जमी रहा करती है, इस कारण वह श्री-रामकी लीलाका एक निमित्त ही बना रहता है। उसका योगक्षेमका तो श्रीराम विधान करते ही रहते हैं; परन्तु उसके कर्मकलापमें भी भगवान्‌की कला तथा प्रेरणा काम किया करती है। ऐसा भगवद्भक्त सदा भगवान्‌के रसीले राससे ही वास तथा विचरण करता हुआ स्वात्माको कृतकृत्य समझा करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-वाटिका

यह अक्षर (कभी नाश न होनेवाला) ही ब्रह्म है, अक्षर ही परम है, इस अक्षरको ही जानकर जो पुरुष जैसी इच्छा करता है, उसको वही प्राप्त होता है। इस अक्षर परमात्माका आश्रय ही श्रेष्ठ है। यह आश्रय सबसे उत्तम है। इस आश्रयका रहस्य जानकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है।

—उपनिषद्

* * *

जो सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धुगणोंमें, तथा धर्मात्मा और पापात्माओंमें समबुद्धि है, वह अति श्रेष्ठ पुरुष है।

—श्रीमद्भगवद्गीता

* * *

सब ओरसे मनको हटाकर भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेनेवाले भगवान्‌के प्रिय पुरुषमें यदि कोई दोष भी हो तो हृदयमें रहनेवाले सर्वेश्वर भगवान् उसे नष्ट कर देते हैं।

—श्रीमद्भागवत

* * *

सब प्राणियोंका यह अखिल भगवान् विष्णुका ही विस्तारमात्र है, अतएव ज्ञानी पुरुष सबको अपने साथ आत्मवत् अभेदरूपसे देखते हैं।

—श्रीविष्णुपुराण

* * *

चित्तसे निरन्तर परमात्म-तत्त्वका चिन्तन करते रहो, अनित्य धनकी चिन्ता छोड़ दो। क्षणभरके साधुसंगको भी भवसागरसे तारनेके लिये नौकास्वरूप समझो।

—श्रीशंकराचार्य

* * *

भोगोंमें रोगका भय है, कुलमें च्युत होनेका भय है, धनमें राजका भय है, मौनमें दीनताका भय है, बलमें वैरीका भय है, रूपमें बुढ़ापेका भय है, शास्त्रमें विवादका भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमें मृत्युका भय है, इसी प्रकार संसारकी सभी वस्तुओंमें मनुष्यको भय लगा है। केवल एक 'वैराग्य' में कोई भय नहीं है।

—भर्तृहरि

* * *

पाप नहीं करना चाहिये। पाप करनेवालेको पीछे पछताना पड़ता है। पुण्य करना चाहिये। पुण्य करनेवालेको पछताना नहीं पड़ता।

—भगवान् बुद्धदेव

* * *

संसार क्षणभङ्गुर और अनित्य है, यहाँ एक पलकका भी भरोसा नहीं; जो कुछ कल्याणका काम करना है, तुरन्त कर लो।

—दादूजी

* * *

गायका तुरन्तका जन्मा हुआ बच्चा जैसे बीसों बार गिरने-उठनेपर कहीं खड़ा हो सकता है, इसी प्रकार साधना करते समय साधक अनेक बार गिर पड़नेपर कहीं अन्तमें सिद्धि लाभ करता है।

—रामकृष्ण परमहंस

* * *

यदि मेरे दिलमें तीरकी नोक नहीं चुभती तो तीरका क्या दोष है ? क्योंकि मेरे दिलमें जो प्रेमकी आग जलती है, वह इतनी भड़क रही है कि उसमें लोहा भी पड़े तो वह गल जाता है।

—स्वामी रामतीर्थ

* * *

जो कोमल और दीनहृदय विरहसे व्याकुल है, उसीमें प्रभु निवास करते हैं।

—ईसामसीह

* * *

संसारके लोग मेरी जितनी चाहें, निन्दा करें, मैं इसका कुछ भी विचार नहीं करता। जिसके मुख है वह जो इच्छा हो सो कहे। मैं तो हरिरसमदमें मतवाला होकर कभी धरतीपर लोटता हूँ, कभी नाचता हूँ और कभी सो जाता हूँ।

—वासुदेव सार्वभौम

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धन क्या है ?

(श्रीशक्तिचरण विशारद)

न्धन ही स्वाधीनता और स्वाधीनता ही बन्धन है। बन्धनमें ही मुक्ति है और मुक्तिमें ही बन्धन है। यह सुननेमें भले ही विरुद्ध जान पड़ता हो, पर है सत्य बात। प्रकृति-बन्धन और प्रकृति-स्वाधीनता एक ही वस्तु है। यही मायाका खेल है। बन्धन और स्वाधीनताके स्वरूपका विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मनका बन्धन ही बन्धन है, देहका बन्धन बन्धन नहीं है। मनपर विजय ही स्वाधीनता और मनसे पराजय ही पराधीनता है। मनके बढ़नेसे मनुष्य नाशको प्राप्त होता है और मनके नाश होनेसे वह उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच जाता है। *

मन ही आत्माका चोर है अर्थात् मनुष्य मनके वशमें हो जानेपर नष्ट हो जाता है। इस मनको नाश करना अर्थात् मनके अनुसार चलनेके स्वभावको त्यागना ही मनुष्यका एकमात्र कार्य है †। दानादि जितने धर्मकार्य हैं, उनका तथा यम, नियम, वेद और कर्म सबका एकमात्र लक्ष्य है मनको वशमें करना। मनको वशमें करना ही परम योग है, क्योंकि जगत् मनके वशीभूत होकर ही चलता है। देवता भी मनके वशमें होते हैं। मन परम कठोर देवता है, इसे जो जीत लेता है वह देवाधिदेव है। *

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य सब प्रकारसे अपना नियन्त्रण करनेके लिये तैयार रहता है। मनकी अधिकांश (निषिद्ध) प्रेरणाओंका वह निषेध करता है, और कुछ प्रेरणाओं (विधि) में उसे लगना ही पड़ता है। इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य सदा ही विधि-निषेधके बन्धनसे अपनेको जकड़नेके लिये तैयार रहता है। उसका संयम ही प्राण, नियम ही जीवन, मनको वशमें करना ही एकमात्र लाभ, और मनके वशीभूत होना ही एकमात्र हानि होती है। मनके आदेशका पालन कभी नहीं करना चाहिये। प्रह्लादजीने हिरण्यकशिपुसे कहा था कि 'हे राजन्! आप अपने बाहुबलसे दशों दिशाओंको जीतकर अपनेको स्वतन्त्र मान रहे हैं। यह आपकी बड़ी भूल है। आप काम-क्रोधादिके वशमें हैं, अतएव मनको नहीं जीत सकते। इसी कारण आप मोहग्रस्त हैं, और आपका प्रताप मुझपर किसी प्रकार व्याप्त नहीं हो सकता +।

पराधीनता ही स्वाधीनता और स्वाधीनता ही पराधीनता है। अब इस बातको दृष्टान्तद्वारा

---

* मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो महोदयः।
शमनो नाशमभ्येति मनोशस्य हि शृङ्खला॥
(महो०)

† प्रबुद्धोऽस्मि प्रबुद्धोऽस्मि दुष्टश्चोरोऽयमात्मनः।
मनो नाम निहन्म्येनं मनसास्मि चिरं हृतः॥
(महो०)

* दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः॥
(श्रीमद्भा० ११। २३। ४६)

+ मनोषशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा
मनश्च नान्यस्य वशं समेति।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्
युनज्याद्वशे तं स हि देवदेवः॥
(श्रीमद्भा० ११। २३। ४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाया जाता है। जो सत्यके अधीन है और मिथ्यासे डरता है वह स्वाधीन है या पराधीन? जो चरित्रवान् है और व्यभिचारके नामसे ही काँप उठता है, उसे स्वाधीन कहेंगे या पराधीन? विधि-निषेध मानकर उसके वशमें होना ही स्वाधीनता है, और विधि-निषेधकी उपेक्षा करके मनके वशीभूत होकर चलना ही पराधीनता है।

यदि यह कहा जाय कि देहका बन्धन ही पराधीनता है, और देहके किसीके अधीन न होनेमें ही स्वाधीनता है तो देहका स्वाधीन होना कभी सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वह सदा-सर्वदा किसी-न-किसीके अधीन रहेगी ही। देह सदा ही क्षुधा, तृष्णा, निद्रा प्रभृतिके अधीन रहती है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। पैसेकी प्राप्तिके लिये भी ऐसा कोई काम नहीं है जिसे मनुष्य न करता हो। अतएव देह सदा पैसेके वशमें रहती है। अतएव जिसकी देह दूसरेके वशमें है, परन्तु मन दूसरेके वशमें नहीं है, वह दूसरेके अधीन होते हुए भी स्वाधीन है। परन्तु जिसकी देह दूसरेके वशमें नहीं है और मन दूसरेके वशमें है वह देखनेमें स्वाधीन होते हुए भी यथार्थमें पराधीन ही है।

मनको वशमें रखना ही स्वाधीनता और मनके वशमें होना ही पराधीनता है—यही सर्वज्ञ शास्त्रका आदेश है। अवश्य ही कलियुगकी सभ्यतामें इस सत्यको स्थान नहीं है। इसलिये आजकल स्वाधीनताका एक अपूर्व अर्थ किया जाता है। परन्तु वह अर्थ क्या है, समझमें नहीं आता। 'स्व' और 'अधीनता' इन दो शब्दोंसे स्वाधीनता शब्द बना है। अतएव 'स्व' शब्दके ऊपर ही स्वाधीनता शब्दका अर्थ निर्भर करता है। शास्त्रमें तो 'स्व' शब्दसे पुरुषका बोध होता है, परन्तु कलिकी सभ्यता इससे क्या समझती है, यह जानना बड़ा ही कठिन है।

इस कलियुगकी सभ्यतामें जो जितना ही उच्छृङ्खल होता है, जितना ही विधि-निषेधका उल्लङ्घन कर अपनी इच्छाका गुलाम बनकर चलता है, जितना ही काम-स्रोतमें अपने देहको प्रवाहित करता है, वह उतना ही स्वाधीन समझा जाता है। अतएव 'स्व' शब्दसे यहाँ काम, इच्छा वा उच्छृङ्खलता ही समझी जाती है। स्वाधीन देश कहनेसे देश अपने अधीन समझा जाता है, पुरुषके नहीं। इस प्रकार कलिकी सभ्यताके अनुसार स्वाधीनता शब्दके 'स्व' से काम, इच्छा, उच्छृङ्खलता और देश समझा जाता है, पुरुष कभी नहीं समझा जाता।

इस कलियुगके अर्थ-विपर्यय (उलटे अर्थ) को छोड़कर अब देखना चाहिये कि कालेय स्वाधीनता कौन-सी अपूर्व वस्तु है? अपनी इच्छानुसार चलनेसे, जो मनमें आवे वही करनेसे मनुष्य स्वाधीन होता है। परन्तु मनुष्यमें इच्छानुसार कार्य करनेकी शक्ति ही कितनी है? मनुष्य सदा ही सुखकी चेष्टामें घूमता है, परन्तु देखा जाता है कि उसको सर्वथा ही दुःख मिलता है। * रोग कौन चाहता है? पुत्र-शोक कौन माँगता है? मनःकष्टकी इच्छा कौन करता है? गरीब होना कौन चाहता है? कौन नहीं चाहता कि हम धन, मान, कुलमें श्रेष्ठ हों? पर कितने मनुष्योंकी इच्छा पूर्ण होती है? मनुष्य इच्छाका दास है। इच्छा मनुष्यकी दासी नहीं है। अतएव मनुष्यमात्र ही पराधीन हैं।

'स्वाधीन देश' का अभिप्राय क्या है? देश तो कभी देशके अधीन हो नहीं सकता। मिट्टी किस प्रकार शासन कर सकती है? देश देशके मनुष्यके अधीन भी नहीं हो सकता, क्योंकि जब

* सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः।
सदाप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः॥
(श्रीमद्भा० ७। ७। ४२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश सभी देशवासियोंके अधीन हो गया तब सब लोग मालिक हो गये, फिर अधीन कौन हुआ ? और यदि देश कुछ मनुष्योंके अधीन हुआ तो देशके सब मनुष्य स्वाधीन कैसे कहे जा सकते हैं ? कल्की बुद्धि इसे समझ नहीं सकती, इसलिये उदाहरण-से इसे स्पष्ट किया जाता है ।

आजकल देशकी स्वाधीनता संख्याशासनपर अवलम्बित रहती है । अर्थात् वोट (Vote) के द्वारा राज्यशासन करना ही स्वाधीनता है । इस वोट (Vote) के फलस्वरूप न्याय, अन्याय, धर्माधर्म छोड़कर लोग दल बनाते हैं और इस प्रकार अनेकों दलोंकी सृष्टि होती है । अपने दलका प्रस्ताव हो तो दलके सभी मनुष्योंको पराधीन होकर धर्माधर्म छोड़कर वोट देना ही पड़ता है । इस वोटके द्वारा जो दल जीतता है वही शासन करता है । देश सदा एक-न-एक दलके अधीन ही रहता है । जब एक दल सब दलोंको हरानेमें असमर्थ हो जाता है तब दो तीन चार दल मिलकर प्रधान बनते हैं।

जर्मनी स्वाधीन देश है, इसे सभी स्वीकार करेंगे । इस स्वाधीन देशमें आज नाज़ीदलकी प्रधानता है । वह अपनी इच्छानुसार अत्याचार कर रहा है और सब मनुष्य चुपचाप उसे सहते हैं । नाज़ीदलने कितने ही देशवासियोंकी सम्पत्ति बलपूर्वक छीन ली है, कितनोंको बेकार कर दिया है । कितनोंका धर्मनाश हो रहा है । यहाँतक कि यह घोषणा भी कर दी गयी है कि नाज़ीदलके विरुद्ध आचरण करनेवालोंको जेल भेज दिया जायगा और प्राणदण्डतककी सजा दी जायगी । अब यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या जितने जर्मन नाज़ीदलमें नहीं हैं वे स्वाधीन हैं ? और नाज़ीदलमें भी जो लोग इस प्रकारके घोर अधर्मके प्रतिकूल हैं क्या वे स्वाधीनतापूर्वक इस अघोर कर्ममें सहायक हो रहे हैं ? रूसकी दशा तो इससे भी गयी बीती है ।

कलिके मार्गमें स्वाधीनता न है और न हो सकती है । यह स्वाधीनता स्वाधीनता नहीं है । यह तो पराधीनता ही है । वस्तुतः जो जितना विधि-निषेधके अधीन है, जो जितना ही धर्मके अधीन होकर अधर्म त्याग करता है वह उतना ही स्वाधीन है । जो देश जितना ही धर्म मानता है वह उतना ही स्वाधीन है । यही मायाका खेल है, यही मायाका वैपरीत्य है । यह मायाका वैपरीत्य कैसा है सो विज्ञानसे सहज ही जाना जा सकता है । आजकल कोई देश स्वाधीन नहीं, सभी देश पराधीन हैं । इसलिये किसी देशमें सुख नहीं है । खानेके लिये यथेष्ट होते हुए भी मनुष्यको खाना नहीं मिल रहा है । कितने मनुष्य बेकार हो गये हैं, यह कहा नहीं जा सकता । इस जगद्व्यापी दुःखके प्रतिकारकी जितनी चेष्टा हो रही है, सब व्यर्थ होती है । शास्त्र कहते हैं कि अपने वशमें रहना सुख और दूसरोंके वशमें जाना ही दुःख है । * संसारके सब लोगोंको दुःख-सागरमें डालकर श्रीभगवान् मानो बतला रहे हैं कि सब देश ही पराधीन हैं । शास्त्र कहते हैं, अधर्मसे ही दुःख और धर्मसे ही सुख मिलता है । † इसलिये भगवान् ढिंढोरा पीटकर कह रहे हैं कि किसी भी देशमें धर्म नहीं है । इसी कारण जगत्में दुःख व्याप्त हो रहा है । (भारतेर साधनासे)

---

* सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।

† अधर्ममूलं वैगुण्यं वाग्वादीनां प्रजायते ।
अधर्माद्धि भवेच्छोको जनानां नान्यथा क्वचित् ॥
(चरक०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलशेविज्म और धर्म

(लेखक—श्रीबसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम० ए०)

बोलशेविकोंने संसारके धर्मोंको चुनौती दी है। उनका कथन है कि 'कुछ धूर्तोंने मिलकर धर्मकी आड़में मूर्खोंको फँसा रक्खा है—और ऐसे मूर्ख कम नहीं हैं। ऐसी ही मूर्ख जनता भावी जीवनके सुखोंकी मृगतृष्णामें पण्डे-पुरोहितों और महन्तोंको धन चढ़ाती है। धनकी इस आहुतिमें दीन-कंगालोंको भी छुटकारा नहीं और वे भी अपनी दरिद्रतामेंसे कुछ पैसे धर्मकी वेदीपर भेंट करते ही हैं। धर्मका प्रभाव बाधक नहीं होता तो गरीब जनता संगठित होकर समृद्धिशाली पुरुषोंकी सम्पत्तिपर बलात् अधिकार कर लेती—जैसा रूसमें हो रहा है। जनसाधारणपर धर्मके इस प्रभावका धनवानोंने बहुत अधिक आदर किया है, क्योंकि इसीके कारण वे सांसारिक सुख-भोगोंको चैनसे भोग रहे हैं। इसी हेतु वे धर्मशाला, मन्दिर, मठ आदि धर्म-स्थानोंको बनवानेमें दिल खोलकर धन लगाते हैं।'

परन्तु यदि निष्पक्ष भावसे संसारके प्रमुख धर्मोपदेशकोंके जीवनका अनुशीलन किया जाय तो उपर्युक्त दोषारोपका सहज ही खण्डन हो जाता है। ईसा, बुद्ध, शङ्कराचार्य अथवा चैतन्य महाप्रभु प्रभृति किसी प्रकारकी प्रवञ्चना और पाखण्डके साझीदार होंगे—यह बात कल्पनामें भी नहीं आती। निस्सन्देह उन्होंने एक परम सत्यका साक्षात्कार किया जिससे उन्हें परम आनन्दकी उपलब्धि हुई। उनकी यह आन्तरिक लालसा थी कि दूसरे भी इस आनन्दका अनुभव करें। धर्मके अनेक उपदेशकोंने सत्य और धर्मके हेतु जान-बूझकर गरीबी, प्रताड़ना और मृत्युतकका भी वरण किया। कष्टोंकी कसौटीपर ही धर्मोपदेशकोंकी परीक्षा बहुधा ली गयी और उसमें वे सर्वथा निश्चल और निरीह पाये गये। अवश्य ही यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि कुछ छद्मवेशी धूर्त उपदेशक भी हुए जिन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-साधनके लिये दूसरोंके श्रद्धा-विश्वासका अनुचित लाभ उठाया। परन्तु नकल तो सत्यकी बराबर होती ही रही है। इससे यह थोड़े ही सिद्ध हुआ कि सत्यका अस्तित्व ही नहीं है।

अस्तु, बोलशेविकोंका यह अभियोग—कि धर्म प्रवञ्चना और धूर्ततापर टिका हुआ है—निस्सार प्रमाणित किया जा सकता है। परन्तु उनकी कुछ दलीलें बड़ी विकट हैं। उनका कहना है कि 'पूजा-पाठ करने, और मन्दिर, गिर्जाघर आदि बनानेमें जो समय और शक्तिका व्यय होता है उसका सुन्दर उपयोग दीन-दुखियोंके कष्ट-निवारण, अस्पताल और पाठशालाएँ निर्माण करनेमें हो सकता है। यह मान भी लिया जाय कि मन्दिर और गिर्जेमें भगवान्का निवास है—फिर भी भगवान्की पूजा केवल पूजा करनेवालेके लिये ही इस लोक या परलोकमें सहायक सिद्ध होगी। जब संसारमें दरिद्रता और दुःखका हाहाकार मचा हुआ है तब समय और शक्तिको अपने निजी लाभमें लगाना स्वार्थ नहीं तो क्या है?' इसीलिये बोलशेविकोंने यह निश्चय कर लिया है कि मन्दिर या गिर्जे न रहें। राष्ट्रका सारा समय और सारी शक्ति यथासम्भव ऐहिक उन्नतिसाधनामें लगायी जाय। बोलशेविक लोग यह डंकेकी चोट कहते हैं कि यदि संसार वास्तवमें स्वार्थका परित्याग कर लोकमंगलकी साधनामें लगना चाहता है तो सभी राष्ट्रोंको उनके इसी आदर्शका अनुगमन करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलशेविकोंकी इस युक्तिको सही मान लेनेका अर्थ है—सभी धर्मोंका सर्वथा लोप। अतएव सभी धर्मोंके लिये यह आवश्यक है कि बोलशेविकोंके इन प्रमाणोंकी परीक्षा करके देखें और इनके प्रतिकारका मार्ग ढूँढ़ें। एक उत्तर है, जिसे सभी धर्म दे सकते हैं। मनुष्यके शारीरिक अभावकी अपेक्षा उसके आध्यात्मिक अभावका ध्यान विशेष होना चाहिये। इसीलिये अस्पताल और स्कूलकी अपेक्षा मन्दिर और गिर्जा बनवाना अधिक उपयुक्त है और उससे जनताको अधिक लाभ हो सकता है। शरीरसे सेवा करनेकी अपेक्षा प्रार्थना और पूजाद्वारा जगत्के कष्टको अधिक शीघ्र मिटाया जा सकता है। बोलशेविकोंका जो यह अभियोग है कि ईश्वरकी पूजा करना स्वार्थसाधन है—इसके सम्बन्धमें यही निवेदन करना है कि उन्हें उत्तम और निकृष्ट स्वार्थका अन्तर मान लेना चाहिये। यदि मनुष्य अपनी आत्माके वास्तविक लाभका ध्यान रखता है तो वह दूसरोंको हानि नहीं पहुँचा सकता; प्रत्युत दूसरे भी उसके आदर्शसे उत्साहित होंगे। ऐसे मनुष्यको आप स्वार्थी भले ही कहें, क्योंकि वह अपना सब समय भगवत्पूजनमें ही लगाता है जिसके द्वारा उसका परम कल्याण होगा; परन्तु यह एक बात तो है ही कि उसके आचरणसे जन-समाजकी शान्ति और उन्नति बढ़ेगी, इसलिये उसकी निन्दा नहीं की जा सकती। मनुष्यका दूसरोंसे संघर्ष तभी होता है जब वह अपने शरीर या भौतिक स्वार्थके लिये ही प्रयत्न करता है। इस प्रकारके स्वार्थ-साधनसे समाजमें एक क्षोभ उत्पन्न होता है, एक अशान्ति फैलती है और इसी हेतु वह यथार्थतः निन्द्य है। बोलशेविकोंने धार्मिक कृत्योंको स्वार्थ-साधनका नाम देकर वही किया जैसे किसी वस्तुका त्याग करनेके लिये ही उसे बुरा मान लिया जाय।

अन्य सभी धर्मोंने बोलशेविज्मके आक्रमणके प्रतिकारमें जो प्रमाण दिये हैं उनसे बढ़कर एक और प्रबल और विश्वसनीय प्रमाण है जो हिन्दूधर्म दे सकता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

इसका सरल अर्थ यही है कि आत्म-शुद्धिके उद्देश्यसे ही सत्कर्म किये जाते हैं। सत्कर्मका अर्थ दूसरोंका कष्ट-निवारण कदापि नहीं है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि परमात्मा परम न्यायशील और सर्वशक्तिमान् है। परमात्माकी इच्छाके बिना किसीको कोई कष्ट हो ही नहीं सकता, और परमात्मा किसीको कष्ट नहीं देना चाहता जबतक कि जीव अपने पूर्वकृत पापोंके कारण कष्टका भागी न बने। जो मनुष्य स्वयं दूसरोंके दुःख दूर करनेका बीड़ा उठाता है वह भगवान्को निर्दय और अशक्त मानता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सच्चे सत्पुरुष परोपकारमें प्रवृत्त न हों अथवा वे दान-पुण्य, परोपकार आदि सत्कार्यको ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध मानें। पिता स्नेहसे प्रेरित होकर अपने बच्चेको उसकी दुष्टताके लिये दण्ड दे सकता है! परन्तु जब कोई दूसरा व्यक्ति उस दण्ड पाये हुए बच्चेकी सहायता अथवा प्यार-पुचकार करने लगता है तो पिता रुष्ट नहीं होता! ठीक इसी प्रकार यद्यपि संसारके सभी लोग दैविक विपत्तिसे त्रस्त हैं, जिसे परमात्माने दण्डस्वरूप दिया है, फिर भी परमात्मा यह देखकर अप्रसन्न नहीं होता कि हम आर्त्तजनोंकी सहायता कर रहे हैं। प्रत्युत वह तो हमारे ऐसे कर्मोंसे प्रसन्न ही होता है! इसीलिये सभी धर्मोंमें दानका बहुत अधिक महत्त्व है, और उन्होंने इसे अनिवार्य कर्त्तव्य ठहराया है। परन्तु दान दिया जाय सच्ची नम्रता और श्रद्धाके साथ, न कि आत्म-प्रशंसा अथवा मान-बड़ाईके लिये। भूलकर भी मनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अभिमान न आने पावे कि हम ईश्वरके बिगाड़े हुए कामको सुधार रहे हैं। न यही समझ लेना चाहिये कि भगवान्‌द्वारा किये जानेवाले दीन-दुखियोंके दुःखनाशमें हम सहायक हो रहे हैं, अभावकी पूर्ति कर रहे हैं। हमलोगोंको तो यही सोचना चाहिये कि उस प्रभुके सेवकके रूपमें हम उसके आज्ञास्वरूप दीन-दुखियोंकी यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं—केवल यही सोचकर कि हमारे ऐसे कर्मसे उसे प्रसन्नता होगी।

एक और कारणसे भी हम अपने सत्कर्मोंको दूसरोंकी आर्त्तावस्था मिटानेका साधन नहीं मान सकते। हमारी दृष्टि बहुत ही सीमित-सङ्कुचित है। हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि वास्तवमें दूसरेका कल्याण किसमें है। हम ऐसा सोच सकते हैं कि दूसरेकी गरीबी दूर करके हम उसका उपकार करते हैं। परन्तु वास्तवमें यह अन्यथा हो सकता है। गरीबी मनुष्यके जीवनकी गतिको सम्पूर्णतः धार्मिक बना सकती है। दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि वह अभावोंसे मुक्त होकर भोग-विलासका दास बन जाय। हमारे लिये तो यही उचित है कि दूसरेके हितकी दृष्टिसे जो उचित प्रतीत हो उसे करें—इसके सिवा हम कर ही क्या सकते हैं? एक बातका सदा स्मरण रहना चाहिये कि हम जिसमें दूसरोंका हित मानते हैं उसमें उनका अहित भी हो सकता है। इसीलिये तो भगवती गीता बार-बार हमें चेताती है कि फलकी आसक्ति छोड़कर काम करो—'त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गम्'! हमें केवल अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये, फल परमात्माके हाथ सौंप देना चाहिये; वह हमसे हर तरहसे अधिक बुद्धिमान्, शक्तिशाली और दयालु है।

अच्छा काम भी बुरे ढङ्गसे किये जानेपर बुरा फल उत्पन्न कर सकता है। दान देना उत्तम है; परन्तु यदि उसमें दम्भ, अहङ्कार, हिंसा आ गयी और नास्तिकताको प्रोत्साहन मिला तो उससे भलाई-की अपेक्षा बुराई ही अधिक होगी। देखनेमें तो यही आता है कि बोलशेविकोंका परोपकारजन्य कार्य-कलाप इसी कोटिका है। उनका ईश्वरमें विश्वास नहीं है और न वे पुनर्जन्मको ही स्वीकार करते हैं। इस जीवनके ही सुख-दुःख उनके लिये सब कुछ हैं। इसीलिये परदुःखनिवारणका जो उनका कार्यक्रम है उसकी विशेषता है अत्युत्साह और हिंसा। साथ ही वे जीवनकी सुख-समृद्धि बढ़ानेके लिये ऐसे उपायोंका आश्रय ले रहे हैं जिनमें पवित्रता तथा सदाचारका कोई स्थान नहीं है। यदि बोलशेविक अपने उद्योगमें सफल हुए तो उसका अर्थ होगा जनसाधारणमें भोग-वासनाका अधिकाधिक विस्तार तथा आध्यात्मिक पतन। ऐसा प्रयोग हितकारी कैसे माना जाय?

जीवनका उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति। दान आदिके कार्य वहींतक मूल्यवान् हैं जहाँतक वे हमारे उद्देश्यमें सहायक हों। वे सहायक हैं, क्योंकि वे बुद्धिको पवित्र करनेवाले हैं। परन्तु इनसे भी बढ़कर सहायक कुछ दूसरे हैं। सबसे अधिक सहायक साधन तो भक्ति है। मन्दिर और गिर्जेमें प्रभुकी उपासनासे भक्तिमें सहायता मिलती है। इसीलिये परोपकारका कोई भी कार्य मन्दिर-गिर्जामें भगवत्पूजनके अभावकी पूर्त्ति नहीं कर सकता। बोलशेविकोंके धर्महीन आक्रमणका जवाब हिन्दूधर्म यही दे रहा है।

(कल्याण-कल्पतरुसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन-चर्चा

(लेखक—विद्यामार्त्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)

[गतांकसे आगे]

सांख्यशास्त्रके तत्त्वोंपर वैशेषिकोंकी दृष्टिका परिदर्शन

(सांख्यमतखण्डनपरक आलोचना)

(१) प्रकृति–सांख्यशास्त्रका प्रथम तत्त्व मूलप्रकृति है, उसकी स्थिति सत्कार्यवादके ऊपर निर्भर है। हमारी (वैशेषिकोंकी) दृष्टिमें सत्कार्यवाद आवश्यक नहीं, क्योंकि सभी कार्य प्रागभावके प्रतियोगी हैं। अर्थात् अपनी उत्पत्तिसे पहले सूक्ष्मरूपसे अपने कारणमें नहीं रहते।

(२) महत्तत्त्व–जब कि प्रकृति-तत्त्व अनावश्यक है तो उसी प्रकारसे बाईस तत्त्वोंका अव्यक्त स्वरूप महत्तत्त्व भी अनावश्यक है।

(३) अहङ्कार–प्रकृति और महत्तत्त्वके समान अहङ्कार भी मन आदि सोलह तत्त्वोंका अव्यक्त रूप है। अतएव अनावश्यक है। क्योंकि मन आदि सोलह तत्त्व अन्यथा सिद्ध हैं। अर्थात् मन परमाणुरूप होनेसे नित्य है और दश इन्द्रियाँ सब भूतजन्य हैं और भूतोंमें परमाणुरूप नित्य है, आकाश विभुरूप होनेसे नित्य है। ऐसे ही शब्द-तन्मात्र जन्य और अनित्य है। रूपादि चतुष्टय कहीं अनित्यमात्र[1] हैं और कहीं नित्यानित्यरूप[2] हैं। सर्वथा उनके अव्यक्त रूपके माननेकी कोई आवश्यकता नहीं। सत्कार्यवादमें मन आदि सोलह तत्त्वोंके अव्यक्त रूपकी स्थितिके लिये अहङ्कार और उसकी अव्यक्त रूपकी स्थितिके लिये महत्तत्त्व कल्पित होता है, इसी प्रकार महत्तत्त्वके अव्यक्त रूपकी स्थितिके लिये मूलप्रकृति मानी जाती है। जब कि किसी तत्त्वके अव्यक्त रूपकी कल्पनाकी आवश्यकता नहीं तो उन तीनों अव्यक्त तत्त्वोंकी कल्पना स्वयं निवृत्त हो जाती है।

(४) मन–मन परमाणुरूप है, इसीसे नित्य है। अतएव इसको अपने कारण अहङ्कारकी आवश्यकता नहीं। सुतरां–इसकी प्रकृति अहङ्कारकी कल्पना निर्मूल है।

(५) चक्षु–चक्षु यह तैजस है, इसका कारण तेज परमाणुरूपसे नित्य है। उसीकी द्व्यणुकादिरूप विकृतिसे सकल तैजस कार्य उत्पन्न होते हैं। अतएव उसको प्रकृत्यन्तरकी अपेक्षा नहीं है। अतएव उसकी सृष्टिके लिये भी मनके निदर्शनसे अहङ्कारतत्त्वकी कल्पना निर्मूल है।

(६) श्रोत्र–कर्णके छिद्रमें रहनेवाले आकाशका नाम श्रोत्र है। यह आकाशतत्त्वसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। एवं आकाश स्वयं नित्य पदार्थ है, अतः यह कारण-निरपेक्ष है। शेष पूर्ववत्।

(७) घ्राण–घ्राण इन्द्रिय पार्थिव है और पृथिवी परमाणुरूपसे नित्य है। शेष कार्यरूप पृथिवी उसीसे जन्य है, इस कारण इसको दूसरी प्रकृतिकी अपेक्षा नहीं।

(८) रसन–रसन इन्द्रिय जलतत्त्वसे उत्पन्न होती है और जल स्वयं परमाणुरूपसे नित्य है। इसलिये इसकी सिद्धिके लिये भी जलसे अतिरिक्त किसी तत्त्वकी कल्पना उपस्थित नहीं होती। शेष पूर्ववत्।

(९) त्वक्–त्वक् इन्द्रिय वायव है और वायु परमाणुरूपसे नित्य है। अतः सकल वायवीय कार्योंके अर्थ वायुसे अतिरिक्त तत्त्वकी कल्पना अयुक्त है।

(१०) वाक् १–
(११) हस्त २–
(१२) पाद ३–
(१३) गुद ४–
(१४) उपस्थ ५–

यह पाँचों इन्द्रियाँ पृथिव्यादि जिस भूतके जन्य शरीरमें होती हैं उसीसे जन्य होती हैं। यथा–अस्मदादि शरीर पार्थिव हैं, अतः अस्मदादि शरीरमें जो वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ हैं वे सभी पार्थिव हैं। एवं वरुणलोकमें शरीर जलीय हैं, वहाँपर उन शरीरोंमें यह वाक् आदि पाँच इन्द्रियाँ जलीय हैं, इसी तरह सूर्यलोकमें सब शरीर तैजस हैं और उनकी इन्द्रियाँ भी तैजस हैं। तथा वायुलोकमें शरीर और इन्द्रियाँ वायुके ही विकार हैं। इनके

---

(१) जैसे पृथ्वीमें है।

(२) जैसे जल आदिमें है। जलादि परमाणुमें नित्य और जलादि द्व्यणुक आदिमें अनित्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये किसी और प्रकृतिकी कल्पना उचित नहीं है। सुतरां पूर्वोक्त सब दश इन्द्रियाँ भौतिक हैं, इस कारण इनके मूलतत्त्व पञ्चभूत ही हैं, अहङ्कार नहीं।

(१५) शब्द—शब्दतत्त्व सम्पूर्ण ही अनित्य है, आकाशमें नित्यसम्बन्धसे रहता है। जैसे पृथिवीमें गन्ध, रूप-रस आदि गुण नित्यसम्बन्धसे रहते हैं, किन्तु वे पृथिवी-मय नहीं हैं, अपितु तत्त्वान्तर ही हैं, उसी प्रकार आकाशमें शब्द है। अर्थात्—आकाशमें नित्यसम्बन्धसे रहता हुआ भी शब्द आकाशका विकृतिरूप नहीं है। जैसे कि मृत्तिका-का घट अथवा सुवर्णके कटक-कुण्डलादि। वैशेषिककी दृष्टिमें पृथिवी, आकाशादि नित्य तत्त्वोंके समान कई अनित्य तत्त्व भी हैं। अर्थात् जो आदिमें भी नहीं हैं और अन्तमें भी नहीं हैं केवल मध्यप्रकाशी हैं ऐसे तत्त्व भी हैं जैसे—कर्म-पदार्थ और पृथिवीमें रहनेवाले रूप, रस आदि।

वेदान्ती लोग इसके बहुत ही विरुद्ध हैं—वे कहते हैं कि 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा'। अर्थात् जो वस्तु आदि और अन्त दोनों अवस्थाओंमें नहीं है वह वर्तमानमें भी नहीं है यथा—जलबुद्बुद। कुछ ही शब्द-तत्त्वको दोनों ही थोक मानते हैं। सांख्य कहते हैं—शब्द-तत्त्व अहङ्कारसे उत्पन्न होता है और वैशेषिक कहते हैं कि शब्दका मूल कारण कोई तत्त्व नहीं है। किन्तु किन्हीं दो स्थूल द्रव्योंके आघातसे या किसी कठोर वस्तुके टूटने-से, अथवा शब्दसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। शब्द यह एक स्वतन्त्र वस्तु है।

(१६) स्पर्श—सांख्य कहते हैं कि यह स्पर्श अहङ्कार-से उत्पन्न होता है। वैशेषिक कहते हैं कि स्पर्श भी स्वतन्त्र वस्तु है, किसी दूसरे पदार्थकी विकृति नहीं है। यह सर्वत्र ही पृथिवीमें विजातीय तेजस्-संयोगसे जन्य होता है। और जल, अग्नि, वायुके परमाणुओंमें स्पर्श नित्य रहता है, और उनके द्व्यणुकादिकोंमें भी जो स्पर्श रहता है वह अपने सजातीय अवयवगत परमाणुओंके स्पर्शसे जन्य है। सर्वथा यह अहङ्कारसे पैदा नहीं होता।

(१७) रूप—सांख्योंके मतमें यह अहङ्कारसे प्रकट होता है। और वैशेषिक कहते हैं—यह पृथिवीमें विजातीय तेजःसंयोगसे उत्पन्न होता है तथा जल और तेजके परमाणुओंमें नित्य है, अनित्य जल और तेजमें अनित्य है। अहङ्कारसे इसका कोई संसर्ग नहीं।

(१८) रस—रस पृथ्वी और जलमें रहता है। पृथ्वीमें पाकजन्य है। और जलके परमाणुओंमें नित्य है। उसके द्व्यणुकादिमें जो रस रहता है वह उसके अवयवरससे जन्य होता है। फलतः जलीय परमाणुगत रसको छोड़कर अन्य सब रस अनित्य ही होता है। ऐसी अवस्थामें ऐसा कोई रस नहीं निकलता जो अहङ्कारसे सम्बन्ध रखता हो।

(१९) गन्ध—यह पृथ्वीमात्रमें रहता है। और तेजः-संयोगजन्य है। अतः सम्पूर्ण ही अनित्य है। अहङ्कारसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह पाँचों तन्मात्रोंमें जो नित्य हैं, उनको तो कारणकी अपेक्षा ही नहीं। और जो इनमें अनित्य हैं, उनको भी उपादान-कारणकी अपेक्षा नहीं है। वे अपने आश्रयमें कहीं सजातीय तन्मात्रसे उत्पन्न होते हैं और कहीं तेजःसंयोगादिसे उत्पन्न हो जाते हैं, सर्वथा यह पञ्चतन्मात्र निरुपादान और पराश्रित होते हैं।

समवायिकारण और उपादानकारणका भेद

समवायिकारण सजातीय और विजातीय दोनों प्रकार-का होता है और उपादानकारण केवल सजातीय होता है। जैसे घटका समवायिकारण कपाल है। वहाँ घट और कपाल दोनों पार्थिव होनेसे सजातीय हैं। एवं कपाल-गन्धका भी समवायिकारण कपाल ही है। यहाँपर कपाल-की द्रव्यत्व जाति और गन्धकी गुणत्व जाति है। इसलिये गन्धात्मक कार्यका समवायिकारण कपाल विजातीय होता है। और उपादानकारण जैसे घटका मृत्तिका या पृथिवी है। किन्तु घटके गन्धका उपादानकारण घट या पृथिवी विजातीय होनेसे नहीं हो सकता, इसी रीतिसे पञ्चतन्मात्र जो जन्य हैं वे उपादानवर्जित कारणान्तरोंसे ही उत्पन्न हो जाते हैं। अतः सांख्योंकी दृष्टिसे उनको आकस्मिक कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं, क्योंकि वे असत्पदार्थकी उत्पत्ति नहीं मानते। किन्तु वैशेषिक कार्योत्पत्तिमें उपादानकारण-का कोई मूल्य नहीं समझते। उनका सिद्धान्त है कि—समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्तकारण इन तीनों ही कारणोंसे सम्पूर्ण कार्य उत्पन्न होते हैं—अर्थात् उनके मतमें कोई भी कार्य हो, उसकी उत्पत्तिके लिये पूर्वोक्त तीन कारण अपेक्षित होते हैं। परन्तु चतुर्थ कोई कारण नियत नहीं है। अर्थात् सर्वत्र कार्योत्पत्ति-स्थलमें उपादानकारणका लाभ न होनेसे उसको वे कारण नहीं मानते। प्रयोजन यह है कि उनके मतमें कार्य दोनों प्रकारका होता है, कोई सोपादान और कोई निरुपादान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपादानकार्योंका भी प्रमाणसे अनुभव होनेपर उनका अनादर या अस्वीकार नहीं कर सकते। इनके मतमें—पूर्वोक्त तीन कारणोंमें ही ऐसा सामर्थ्य है कि वे असत्कार्योंको भी उत्पन्न कर सकते हैं जिसमें कि उनकी योग्यता हो।

(२०) आकाश—यह स्वयं नित्य है, इसको किसी कारणकी अपेक्षा नहीं है। अतः वह आहंकारिक वा तन्मात्रजन्य नहीं है।

(२१) वायु—वायुके परमाणु नित्य हैं, अतः जन्य वायु सब सजातीय परमाणुओंसे ही उद्भूत हैं। अहङ्कारकी उनको कोई अपेक्षा नहीं।

(२२) तेज—तेजके परमाणु नित्य हैं, अतः जन्य तेज सब सजातीय परमाणुओंसे ही उत्पन्न हैं। अहङ्कारकी उनको कोई अपेक्षा नहीं।

(२३) जल—जलके परमाणु नित्य हैं, अतः जन्य जल सब सजातीय परमाणुओंसे ही बने होते हैं। अहङ्कारकी उनको कोई अपेक्षा नहीं।

(२४) पृथिवी—पृथिवीके परमाणु नित्य हैं, अतः जन्य पृथिवी सब सजातीय परमाणुओंसे ही बनी है। अहङ्कारकी उनको कोई अपेक्षा नहीं।

(२५) पुरुष—पुरुष उभय मतमें नित्य है। भेद तो यही है कि सांख्य आत्माको निर्गुण कहते हैं और वैशेषिक ज्ञानादि गुणवाला। इसमें उभय मतसे ही प्रकृति या अहङ्कार, किसीकी अपेक्षा नहीं है। तथा स्वतन्त्र तत्त्व है। तत्रापि दोनों मतोंका एतावन्मात्र भेद है कि—वैशेषिकके मतानुसार आत्मा अवस्थाविशेषमें सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारसे रहता है जैसे—संसारदशामें सगुण और मोक्षदशामें निर्गुण। एवं सांख्यके मतसे आत्मा सदा निर्गुण रहता है।

सांख्यशास्त्रके तत्त्वोंपर वैशेषिकोंकी दृष्टिका यह फलित निकलता है—(१) सांख्यके पचीस तत्त्वोंमेंसे मन आदि बाईस तत्त्व इनको भी अभिमत हैं। किन्तु उनकी उत्पत्ति का क्रम और स्वरूप उनके जैसा इनको स्वीकृत नहीं है। अर्थात् (सांख्यों) के मतमें उत्पत्तिका अर्थ प्रादुर्भावमात्र है और विनाशका अर्थ तिरोभाव। और (नैयायिकों) के मतमें उत्पत्तिका अर्थ अपूर्व सत्ता और विनाशका अर्थ ध्वंस है। (२) सांख्योंके मतमें सब इन्द्रियोंका प्रादुर्भाव विकासमात्र है। और इनके मतमें अपूर्व उत्पत्ति है। (३) सांख्योंके मतमें पञ्चतन्मात्र प्रादुर्भूत हैं और इनके मतमें कोई नित्य है कोई उत्पत्तिमान् है। (४) सांख्योंके मतमें पृथिव्यादि महाभूत तन्मात्रोंसे प्रादुर्भूत हैं और इनके मतमें पृथिव्यादि भूत तन्मात्रोंके आश्रय अथवा समवायि-कारण हैं। और इनमें प्राथमिक चार भूत अपने-अपने परमाणुओंसे उत्पन्न होते हैं, और सांख्याचार्यके मतमें प्रकृति, महत्तत्त्व और अहङ्कार—ये तीन तत्त्व हैं और यह उनको नहीं मानते।

सांख्योंकी कर्मेन्द्रियाँ

सांख्याचार्य वाक्, पाणि, पाद, गुद और उपस्थ इनको कर्मेन्द्रिय[1] (कर्मसाधनेन्द्रिय) मानते हैं। अर्थात् इनके मतमें जिस प्रकार चक्षुरादि पाँच इन्द्रियाँ ज्ञानको उत्पन्न करनेवाली ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इसी प्रकार वाक् आदि इन्द्रियाँ उच्चारण आदि कर्मके साधन होनेसे कर्मेन्द्रियाँ हैं।

नैयायिक कहते हैं कि इन्द्रियत्व[2] धर्म वहींतक जाता है जहाँतक कि ज्ञानसाधनता है, कर्मसाधन अङ्ग इन्द्रिय नहीं कहे जा सकते या उनको इन्द्रिय मानना उचित नहीं है। यदि ऐसा माना भी जावे तो कर्मसाधन पाँच ही नहीं प्रत्युत जितने शरीरके अङ्ग हैं सभी कर्मसाधन हैं। और सबको कर्मेन्द्रिय भी कहना चाहिये। जैसे कि यदि गुद मलके त्यागकर्मसे कर्मेन्द्रिय होता है तो मुख अन्न-ग्रहणकर्मसे क्यों न कर्मेन्द्रिय हो। एवं मुखमें जो दंष्ट्रा तथा दन्त हैं वे दशन (काटने) से और कण्ठ निगरण-कर्म (निगलने) से कर्मेन्द्रिय होना चाहिये। हाथों और पैरोंमें अँगुली, नख आदि अनेक भाग हैं जिनके और और कर्म भी हैं। सुतरां सांख्योंकी कर्मेन्द्रियोंकी गणना अपूर्ण और अनावश्यक है। वाक् आदि भी और अङ्गोंके समान शरीरके अवयवविशेष ही हैं, इन्द्रिय नहीं।

---

१ बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्मेन्द्रियाण्याहुः॥
(सां० का० २६)

२ 'शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञान-कारणमनःसंयोगाश्रयत्वमिन्द्रियत्वम्' इति सिद्धान्तमुक्तावल्याम्। तत्र शब्दस्तु उद्भूतविशेषगुणःश्रोत्रोत्पन्नो गृह्यते इति श्रोत्रस्योद्भूतविशेषगुणाश्रयत्वं भवति। अन्येषु चक्षुरादिषु नोद्भूतरूपादिकं तिष्ठति। तैस्तु घटादिद्रव्यवृत्तिरेव उद्भूत-रूपादिर्गृह्यते न तु स्वात्मवृत्तिरिति लक्षणे शब्देतरेति विशेषणम्। तथा वागादिषु इन्द्रियत्ववारणाय मनःसंयोगे ज्ञान-कारणत्वं विशेषणमिति ज्ञेयम्। शब्दभिन्नोद्भूतविशेष-गुणानाश्रयत्वं तु श्रोत्रेऽस्त्येवेति लक्षणसमन्वयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थके साधारण धर्म

धर्म शब्दकी व्युत्पत्ति 'धृञ् धारणे' धातुसे 'मनिन्' प्रत्ययके लगानेसे होती है। यथा–'ध्रियते अनेन इति धर्मः।' जो धारण करे वह धर्म। वेदविहित धर्मके यथार्थ स्वरूपका विचार करनेसे ज्ञात होता है कि धर्म शब्दका निरुक्तमें उक्त अर्थ 'नियम' है और धातुगत अर्थ 'धारण करना' है। इन दोनोंके मेलसे धर्म शब्दका यही अर्थ स्पष्ट होता है कि जिस नियमने इस जगत्को धारण कर रक्खा है, वह धर्म है। नियम एक नहीं, अनेक हैं; वैसे धर्म भी एक नहीं, अनेक हैं; यथा—वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, आपद्धर्म, इत्यादि। अनेक ऋषियोंने धर्मके अनेक प्रकारके लक्षण बताये हैं, किन्तु उन सबका मूल वेद है। भगवान् मनु कहते हैं—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ २।५॥

वेद (ऋग्, यजुः, साम और अथर्व, ये सब) धर्मका मूल है, उसी प्रकार वेदके जाननेवाले ऋषियोंकी कही हुई स्मृतियाँ और हारीतका कहा हुआ ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारका शील, सत्पुरुषोंका आचार (अर्थात् सदाचार) और मनका सन्तोष, ये चारों धर्ममें प्रमाण हैं।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥ ७॥

श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए धर्मको करता हुआ मनुष्य इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें सबसे उत्तम सुखको प्राप्त होता है।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥१०॥

श्रुतिको वेद और स्मृतिको धर्म शास्त्र कहते हैं। ये दोनों प्रतिकूल तर्कोंसे विचार करनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि सब धर्म इन दोनोंसे ही निकला है।

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥११॥

जो द्विज धर्मके मूल दोनों श्रुति और स्मृतिका अपमान करता है अर्थात् उन्हें नहीं मानता यह वेदकी निन्दाके हेतु अर्थात् कारणभूत तर्कशास्त्रके आश्रयसे नास्तिकके समान है और शिष्ट पुरुषोंसे द्विजोंके करने योग्य अध्ययन आदि कार्योंसे बहिष्कार करनेके योग्य है।

मनुके अनुसार धर्मके निम्न चार लक्षण हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥२।१२॥

वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्माका प्रिय—यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥१३॥

अर्थ और काम (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इन चार पुरुषार्थोंमेंसे दो, अर्थ अर्थात् धन और काम अर्थात् इच्छाकी पूर्ति) में नहीं आसक्त, अर्थात् अर्थ और कामकी इच्छासे रहित, मनुष्योंको यह धर्मका उपदेश है और जो धर्मको जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति सबसे अधिक प्रमाण है।

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
उभावपि हि तद्धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥१४॥

जहाँ श्रुतिमें परस्पर विरुद्ध अर्थोंका प्रतिपादन है वहाँ पण्डितोंने दोनों ही धर्म कहे हैं। अर्थात् दोनों बातें ही धर्म हैं। इसमें दृष्टान्त दिया गया है—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥१५॥

वेदमें लिखा हुआ है कि 'उदिते जुहुयात्' सूर्यके उदय होनेपर यज्ञ करे, 'अनुदिते जुहुयात्' सूर्यके उदयसे पहले अरुणकी किरणोंसे युक्त और थोड़े तारोंवाले समयमें यज्ञ करे और 'समयाध्युषिते जुहुयात्'—सूर्य और नक्षत्रवर्जित कालको समयाध्युषित काल कहते हैं, उस समयमें यज्ञ करे। इस प्रकार यज्ञके लिये परस्पर कालका विरोध पड़नेपर भी विकल्पसे अग्निहोत्रका होम होता है।

मनुस्मृतिमें धर्माचरणके योग्य देशका इस प्रकार वर्णन किया गया है—

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ १७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती और दृषद्वती नाम्नी देवनदियोंके बीचके प्रदेशका जो देश है उस देवताओंके बनाये हुए देशको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं।

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

वहाँ बहुधा शिष्ट पुरुषोंके उत्पन्न होनेसे उस देशमें ब्राह्मणसे लेकर वर्णसंकरोंतक परम्पराके क्रमसे चला आया हुआ आचार, सदाचार कहा जाता है।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः॥१२॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल (कान्यकुब्ज), शूरसेन (मथुरा) के देश ब्रह्मर्षि देश हैं जो ब्रह्मावर्त्तसे कुछ न्यून हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥२०॥

अर्थ—इस ब्रह्मर्षि (कुरुक्षेत्र आदि) देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे पृथिवीमें सब मनुष्य अपने-अपने चरित्र अर्थात् आचार सीखें।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥२१॥

उत्तर दिशामें स्थित हिमालय और दक्षिण दिशामें स्थित विन्ध्याचल नामक दोनों पर्वतोंके मध्यका देश और विनशन (सरस्वती नदीके गुप्त होनेके स्थान) से पूर्वकी ओर और प्रयागसे पश्चिमकी ओर जो देश है उसका नाम मध्यदेश है।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥ २२॥

पूर्वके समुद्रसे लेकर पश्चिमके समुद्रतक तथा उन्हीं दोनों हिमाचल और विन्ध्याचल पर्वतोंके बीचके भू-भागको पण्डित आर्यावर्त्त कहते हैं। इससे यह निश्चित होता है कि समुद्रके मध्यमें स्थित द्वीप आर्यावर्त्तमें नहीं हैं।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परम्॥२३॥

जहाँ कृष्णसार (काला) हरिण स्वभावसे बसता है वह देश यज्ञके योग्य जानना चाहिये। इससे अन्य म्लेच्छ देश है।

यह धर्म सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि नामके चार युगोंमें पृथक्-पृथक् प्रकारका होता है। यथा—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः॥८५॥

सत्ययुगमें और धर्म थे, फिर युगोंके ह्रासके अनुरूप त्रेता तथा द्वापरमें और ही हुए और कलियुगमें और ही हैं।

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥ ८६॥

यद्यपि तप, जप, यज्ञ, दान आदि सब शुभ कर्म सदा करनेके योग्य हैं तथापि सत्ययुगमें तप मुख्य था, त्रेता में आत्मज्ञान मुख्य था, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान मुख्य है।

जैसे चार युगोंके पृथक्-पृथक् धर्म हैं वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंके भी धर्म पृथक्-पृथक् प्रकारके हैं। यथा—

ब्राह्मणके धर्म

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥१।८७॥

वेदका पढ़ाना और पढ़ना, यज्ञका करना और कराना, दानका लेना और देना, ये छः धर्म-कर्म ब्राह्मणके हैं।

क्षत्रियके धर्म

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ ८८॥

प्रजाकी रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषय (गाना, नाचना आदि) में मन न लगाना, ये संक्षेपसे क्षत्रियोंके धर्म-कर्म हैं।

वैश्यके धर्म

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥८०॥

पशुओंकी रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, जलमें नाव वा जहाजोंसे और स्थलमें भारबरदारीसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापार करना, ब्याज लेना और खेती करना, ये वैश्यके धर्म-कर्म कहे हैं।

शूद्रके धर्म

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥ ९१॥

प्रभुने शूद्रको एक ही काम बताया कि वह द्वेषरहित होकर इन तीनों ही वर्णोंकी सेवा करे।

इसी प्रकार चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) के भी पृथक्-पृथक् धर्म कहे हैं, जिनको विस्तारके भयसे यहाँ नहीं लिखा है।

ये चारों ही आश्रम गृहस्थसे उत्पन्न होते हैं। शास्त्रोक्त रीतिसे क्रमके अनुसार अर्थात् प्रथम ब्रह्मचारी रहकर वेदाध्ययन करे। पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे, पीछे वानप्रस्थ और संन्यास ग्रहण करता हुआ पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है। इन चारों आश्रमोंमें गृहस्थ अग्निहोत्र आदिके करनेसे और ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यतिको भिक्षा आदिके देनेसे उनका पालन करता है, अतः वह श्रेष्ठ कहा गया है। जैसे सब नदी, नद आदिका जल अन्तमें समुद्रमें जाकर ठहरता है वैसे सब आश्रम गृहस्थके पास जाकर ठहरते हैं। इन चारों आश्रमवासियोंको दश प्रकारके धर्मका सदा सेवन करनेकी मनु महाराजकी आज्ञा है। यथा--

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥६।९२॥

१ धृति अर्थात् धीरज या सन्तोष, २ क्षमा अर्थात् सहनशीलता (कोई अपना बुरा करे तो भी पीछे बदला लेनेके लिये उसका बुरा नहीं करना), ३ दम अर्थात् मनका वशमें रखना (विकारके कारणभूत विषयोंके निकट होनेपर भी मनका नहीं बिगड़ना), ४ अस्तेय अर्थात् चोरी नहीं करना (अन्यायसे पराये धनका न लेना), ५ शौच अर्थात् पवित्रता (मिट्टी तथा जलसे शरीरकी पवित्रता), ६ इन्द्रियनिग्रह अर्थात् शम (विषयोंसे इन्द्रियोंका रोकना, ७ धी अर्थात् शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान, ८ विद्या अर्थात् आत्मज्ञान, ९ सत्य अर्थात् जैसी बात हो उसको यथार्थ कहना और १० अक्रोध अर्थात् रोष न करना (क्रोधका कारण होनेपर भी क्रोध न करना)-यह दश धर्मके लक्षण हैं।

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्॥२३॥

जो ब्राह्मण इन दश प्रकारके धर्मके स्वरूपोंको पढ़ते हैं और पढ़कर आत्मज्ञानकी सहायतासे अनुष्ठान करते हैं, वे ब्रह्मज्ञानके उत्कर्षसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होते हैं।

श्रीमद्भागवतमें सब वर्ण और आश्रमवासियोंके लिये निम्न तीस प्रकारके धर्म बताये गये हैं, यथा—

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनेनात्मविमर्शनम्॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥
(७।११।८-१२)

१ सत्य (सच बोलना), २ दया (किसीको दुखी देखकर उसके दुःखके हरणकी इच्छा[1]), ३ तप (तपस्या करना, व्रत-उपवास आदिका अनुष्ठान), ४ शौच (पवित्रता, वह दो प्रकारकी है, शरीरकी और मनकी, जो अभक्ष्य[2] पदार्थके न ग्रहण करने, अनिन्दित पुरुषोंका संग करने और अपने स्वधर्ममें स्थिति रखनेसे बनी रहती है), ५ तितिक्षा (सहनशीलता जो परापमानके सहन अथवा शीतोष्णादि द्वन्द्वोंके सहनसे होती है), ६ ईक्षा अर्थात् सत् और असत्का विचार, ७ शम[3] (इन्द्रियों-

१ यत्नादपि परक्लेशं हर्तुं या हृदि जायते।
इच्छा भूमिसुरश्रेष्ठ सा दया परिकीर्तिता॥
परायेके क्लेशको कोशिश कर दूर करनेके वास्ते हृदयमें जो इच्छा होती है उसे हे द्विजश्रेष्ठ ! दया कहते हैं।

२ अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितः।
स्वधर्मे च व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते॥
अभक्ष्य पदार्थका त्याग, अनिन्दित अर्थात् उत्तम सत्पुरुषोंकी संगति और स्वधर्ममें स्थिति शौच कहाता है।

३ अन्तरिन्द्रियदमनं शम इत्यभिधीयते।
अन्दरकी इन्द्रियोंके दमनको शम कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दमन[४]), ८ दम (मनका निग्रह), ९ अहिंसा (हिंसा न करना अर्थात् मन, वचन और कायासे किसीको पीड़ा न देना),१० ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययनके लिये यज्ञोपवीत-संस्कारके अनन्तर वीर्य-रक्षा), ११ दान[५] अर्थात् सात्त्विक दान (प्रत्युपकारके लिये नहीं, पवित्र देश, पुण्य काल और सत्पात्र ब्राह्मणको दिया हुआ दान), १२ स्वाध्याय[६] अर्थात् वेदाध्ययन, १३ सरलता अर्थात् सीधापन, १४ सन्तोष (भगवदिच्छासे जो कुछ मिल जाय उसीमें प्रसन्न रहना),१५ समदृष्टि (अर्थात् श्व-चाण्डालसे लेकर गो-ब्राह्मणतकमें उसी अन्तर्यामी ईश्वरके अंशभूत जीवको एक मानना, अथवा किसीका पक्षपात न करना और सबको समान समझना), १६ सेवा अर्थात् साधुसेवा, १७ ग्राम्य-ईहा-उपरम अर्थात् स्वाभाविक इच्छासे निवृत्ति (प्रवृत्ति-विषयक कर्मोंसे निवृत्ति), १८ नृणां विपर्ययेहेक्षणम्, अर्थात् मनुष्यकृत सब कर्मोंकी निष्फलताका ज्ञान, १९ मौन अर्थात् वाणीसे न बोलना अथवा वृथा वार्तालापका त्याग, २० आत्मविमर्शन अर्थात् आत्मविचार, २१ यथोचितरूपसे अन्न, फल, मिष्टान्न आदिको प्राणियोंमें बाँटकर खाना, २२ मनुष्योंमें अपनी आत्माके समान भाव रखना और उनमें अपने इष्टदेव परमात्माको देखने-की बुद्धि रखना, २३ महापुरुषोंको भी परम गतिके देने-वाले परमात्माका नाम और गुण सुनना और कीर्तन करना, २४ स्मरण करना, २५ हरि भगवान्‌की सेवा-पूजा करना, २६ होम करना, २७ प्रणाम करना, २८ अपने आपको हरिका दास समझना, २९ हरिको अपना सखा मानना, ३० और हरि भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर देना (अर्थात् अनन्यतया शरणागति स्वीकार करना) ये तीस लक्षणवाला धर्म सब कोटिके मनुष्योंके लिये साधारण धर्म है, जिसके पालनसे सर्वान्तर्यामी और सर्वस्व-रूप परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

महाभारतमें निम्न साधारण धर्म बताये गये हैं, यथा—

आनृशंस्यमहिंसा चाप्रमादः संविभागिता।
श्राद्धकर्मातिथेयं च सत्यमक्रोध एव च॥
स्वेषु दारेषु सन्तोषः शौचं नित्यानसूयता।
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृप॥

हे राजन्! १ क्रूरता न रखना, २ किसीको न सताना, ३ धार्मिक कार्यमें गफलत न रखना, ४ सबको बाँटकर खाना, ५ पितृीश्वरोंका श्राद्ध करना, ६ अतिथि-सत्कार करना, ७ सत्य बोलना, ८ क्रोध न करना, ९ अपनी स्त्री-में सन्तोष करना, १० पवित्रता रखना, ११ किसीसे ईर्ष्या न करना, १२ आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञानका विचार करते रहना १३, और कोई कुछ कटु कह दे तो भी उसे सहन कर लेना यह चारों वर्णोंके लिये साधारण धर्म हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें साधारण धर्मका इस प्रकारसे वर्णन किया हुआ है, यथा—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥
(१६।१-३)

१ अभय अथवा निर्डरता, २ अन्तःकरणकी शुद्धि, ३ ज्ञानयोग अर्थात् आत्मज्ञानके उपायोंमें निष्ठा रखना, ४ यथाशक्ति सत्पात्रको दान देना, ५ दम अर्थात् बाह्य

---

४ निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते।
बाहरकी इन्द्रियोंके जीतनेको दम कहते हैं।
अथवा—कुत्सितात् कर्मणो विप्र यच्च चित्तनिवारणम्।
संकीर्तितो दम इति॥
हे विप्र! निन्दनीय कर्मसे चित्तके रोकनेको दम कहते हैं।

५ दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥
दान देना ही चाहिये, इस प्रकार विचारपूर्वक पवित्र देश, पुण्य काल और ऐसे सत्पात्रको जो पीछे उपकार न कर सके जो दान दिया जाता है वह सात्त्विक दान कहाता है।

६ स्वाध्यायो जप इत्युक्तो वेदाध्ययनकर्मणि।
वेदाध्ययन नामक कर्म तथा जपको स्वाध्याय कहते हैं।

७ उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्॥
दिशा-जंगल जाते, मैथुन करते, लघुशंका करते, दतौन करते, स्नान करते और भोजनके समय (इन छः कर्म करते) मौन रखना चाहिये।

१ इसका यह तात्पर्य है कि शास्त्रमें वर्णित धर्मका आचरण निडर और निःशंक होकर करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियोंका वशमें रखना, ६ यज्ञ (श्रौत-स्मार्त यज्ञ, यथा अग्निहोत्र आदि श्रौत और देवयज्ञ आदि स्मार्तयज्ञ) करना, ७ स्वाध्याय अर्थात् वेद-पाठ, ८ तपस्या करना, ९ सरलता रखना, १० अहिंसा अर्थात् प्राणीमात्रको न सताना, ११ सत्यभाषण करना, १२ क्रोध नहीं करना, १३ त्याग अर्थात् परिग्रहका न रखना, १४ शान्ति अर्थात् विषयोंसे मनको रोकना, १५ किसीकी चुगली नहीं करना, १६ सम्पूर्ण प्राणीमात्रपर दया रखना, १७ लोभ नहीं करना, १८ नम्रता रखना, १९ बुरे कर्म करनेसे शर्माना, २० चपलता न करना, २१ तेज अर्थात् प्रभावशाली होना कि जिससे कोई स्त्री,बालक आदि तिरस्कार न कर सकें, २२ क्षमा रखना अर्थात् कोई कुछ कहे तो सुन लेना, २३ धीरज रखना, २४ अन्दर और बाहर पवित्रता रखना अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धिसे अन्दरकी पवित्रता, यथा असत्य न बोलना आदि, और बाहरकी पवित्रता—शरीरशुद्धि, यथा स्नान आदि, २५ द्रोह अर्थात् किसीको मारनेकी इच्छा नहीं रखना और २६ अति अभिमान न करना अर्थात् ऐसी बुद्धि न रखना कि मैं सर्वपूज्य हूँ । हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा अर्थात् शरीरके आरम्भ-समयमें पुण्यकर्मोंसे बँधी हुई कर्म-वासनामें जन्म लिये हुए पुरुषके ये लक्षण होते हैं, जो साधारण सनातन-धर्मके अन्तर्गत हैं ।

विष्णुपुराणमें समस्त वर्णोंके ये सामान्य धर्म कहे हैं, यथा—

दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता ।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर ।
अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ॥
(३ । ९ । ६-७)

१ समस्त प्राणियोंपर दया, २ सहनशीलता, ३ अमानिता, ४ सत्य, ५ शौच, ६ अधिक परिश्रम न करना, ७ मङ्गलाचरण, ८ प्रियवादिता, ९ मैत्री, १० निष्कामता, ११ अकृपणता और १२ किसीके दोष न देखना—ये समस्त वर्णोंके सामान्य गुण हैं ।

अध्यात्मरामायणमें निर्गुण-भक्तिके साधनोंका वर्णन करते हुए धर्मोंका उपदेश दिया गया है, यथा—

महता कामहीनेन स्वधर्माचरणेन च ।
कर्मयोगेन शस्तेन वर्जितेन विहिंसनात् ॥
मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया सङ्गेनासत्यवर्जनैः ॥
बहुमानेन महतां दुःखिनामनुकम्पया ।
स्वसमानेषु मैत्र्या च यमादीनां निषेवया ॥
वेदान्तवाक्यश्रवणान्मम नामानुकीर्तनात् ।
सत्सङ्गेनार्जवेनैव ह्यहमः परिवर्जनात् ॥
काङ्क्षया मम धर्मस्य परिशुद्धान्तरो जनः ।
मद्गुणश्रवणादेव याति मामञ्जसा जनः ॥
(७ । ७ । ६८—७२)

अपने धर्मका अत्यन्त निष्काम भावसे आचरण करनेसे, अत्युत्तम हिंसा-हीन कर्म-योगसे, मेरे दर्शन, स्तुति, महापूजा, स्मरण और वन्दनसे, सर्व प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे, असत्यके त्याग और सत्सङ्गसे, महापुरुषोंका अत्यन्त मान करनेसे, दुखियोंपर दया करनेसे, अपनी समताके पुरुषोंके साथ मैत्री करनेसे, यम-नियमादिका सेवन करनेसे, वेदान्तवाक्योंका श्रवण करनेसे, मेरा (परमात्माका) नाम-स्मरण करनेसे, सत्सङ्ग और सिधाईसे, अहङ्कारका त्याग करनेसे, मेरे भागवत धर्मोंके आचरण करनेकी इच्छाके कारण शुद्ध चित्तवाला पुरुष मेरे गुणोंके श्रवण करनेमात्रसे अति सुगमतासे मुझे प्राप्त कर लेता है ।

ऋषिवर्य नारदने निम्नलिखित वाक्योंमें गृहस्थ-धर्मका उपदेश दिया है, यथा—

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थो धर्म उच्यते ॥
परदारेष्वसंसर्गो धर्मस्त्रीपरिरक्षणम् ।
अदत्तादानविरमो मधुमांसविवर्जनम् ॥
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः ।
देहिभिर्देहपरमैः कर्तव्यो देहसम्भवः ॥

१ अहिंसा, २ सत्य बोलना, ३ प्राणिमात्रपर दया, ४ शम (इन्द्रियनिग्रह), ५ यथाशक्ति दान,—यह गृहस्थका धर्म कहा गया है ।

१ परायी स्त्रीसे बचना, २ अपनी धर्मपत्नीकी रक्षा करना, ३ बिना दिये कुछ न लेना (अर्थात् चोरी न करना), ४ । मद्य न पीना और ५ मांस न खाना—यह पाँच प्रकारका धर्म बहुत शाखा (विस्तार) वाला और सुखका करनेवाला है, (अतः अपनी देहको परम पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननेवाले देहधारियोंको अपने देहसे करने योग्य इस धर्मका आचरण करना चाहिये।

भगवान् औशन (शुक्राचार्य) ने निम्न गृहस्थधर्म बताया है, यथा—

कामं क्रोधं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम्।
द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालापनं तथा॥
परोपतापपैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।
सन्ध्यास्नानरतो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः॥
अनसूयो मृदुर्दान्तो गृहस्थः सम्प्रवर्तते।

१ काम (इच्छा), २ क्रोध, ३भय, ४ निद्रा (गफलत), ५ गाना, ६ बजाना, ७ नाचना, ८ जूआ, ९ लोगोंकी निन्दा, १० स्त्रियोंको देखना (ताकना) और ११ उनसे वार्त्तालाप, १२ दूसरेको दुःख देना, १३ चुगली करना—इन तेरह अधर्मोंसे यत्नपूर्वक बचना चाहिये।

१ नित्य सन्ध्या करना, २ स्नान करना, ३ ब्रह्मयज्ञ (ब्रह्म नाम वेदका पढ़ना और पढ़ाना), ४ ईर्षा न करना, ५ कोमलता रखना और ६ जितेन्द्रिय रहना—यह छः प्रकारके धर्म-कर्म करनेसे गृहस्थ-धर्मका पालन होता है।

भगवान् वेदव्यास कृष्णद्वैपायनने सर्व शास्त्रोंका साररूप यह वचन कहा है, यथा—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

'अठारह पुराणोंके सारभूत व्यासके ये दो वचन हैं, कि परोपकार करना पुण्य है और अन्यको पीड़ा देना पाप है। ओं तत्सत्।

योगवाशिष्ठसार

(लेखक—श्रीकन्हैयालालजी मास्टर)

(भाग ८ सं० ८ पृ० ११४३ से आगे)

५—उपशम-प्रकरण

जबतक मनुष्य अपने विचारसे अपना स्वरूप नहीं पहचानता तबतक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जो उत्तम कुलमें उत्पन्न निष्पाप, सात्त्विकी-राजसी जीव हैं उन्हींको विचार उपजता है और उस विचारसे वे अपने आपसे आपको पाते हैं। वे दीर्घदर्शी संसारके नाना प्रकारके आरम्भको विचारते हैं और विचारद्वारा आत्मपदको और परमानन्दसुखको प्राप्त होते हैं। तुम इस संसारके सत्य और असत्यको विचारकर असत्यका त्याग करो और सत्यका आश्रय करो। जो आदि, अन्त एकरस है, उसको सत्य जानो। जो आदि, अन्तमें नाशरूप है, उसमें जिसकी प्रीति है वह मूढ़ पशु है। मन ही उपजता और बढ़ता है एवं सम्यक् ज्ञानके उदय होनेसे मन निर्वाणको प्राप्त हो जाता है। सङ्कल्पसे रहित होना परम कल्याण है। वासना सब बन्धनोंका कारण है। स्वरूपको जानकर आत्मामें स्थित होनेसे हृदयका तम नष्ट हो जाता है, जो पुरुष पूर्व जन्मके भोगोंको भोगकर इस जन्ममें मुक्त होते हैं वे राजस-सात्त्विकी होते हैं। जिनका यह जन्म अन्तका होता है उनमें निर्मल गुण मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता और आर्यता आदि प्रवेश करते हैं। सब जीवोंपर दया करना मैत्री है, सदा प्रसन्न रहना सौम्यता है, हृदयमें सदा समताका भाव रहना और कोई क्षोभ न उठना मुक्तता है, यथाशास्त्र आचरण करना आर्यता है और ज्ञानका नाम ज्ञातव्यता है।

संसाररूपी एक वृक्ष है, उस वृक्षका मूल मन है, वह सङ्कल्परूपी जलसे विस्तारको प्राप्त हुआ है और सङ्कल्पके उपशम होनेसे नष्ट हो जाता है। मनरूपी शत्रु सदा भ्रम दिखाता है और विवेकसे नष्ट होकर उपशमको प्राप्त होता है। जब मनके मननका उपशम हो जाता है, तब कर्तव्यमें भी अकर्तव्य दीखता है। जो बाहर कर्ता है, परन्तु हृदयमें कर्तव्यका अभिमान नहीं रखता, वह धैर्यवान् पुरुष अनामयपदको प्राप्त होता है। तुम बाहरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कार्य करो, परन्तु निरन्तर आत्मस्वरूपमें स्थित रहो। सम्यक् बोध संसार-समुद्रसे पार करता है और असम्यक् बोध जड़तामें डालता है। बुद्धिसे मनुष्य सर्वात्मपदको प्राप्त होता है, जिसके पानेसे हर्ष-विषाद, सम्पदा-आपदा कोई नहीं रहती। जब बोधरूपी वायुसे अहङ्काररूपी मेघ आत्मरूपी सूर्यके आगेसे दूर हो जाता है, तब आत्मरूपी सूर्य यथार्थरूपमें भासता है। जब आर्जवादि गुणोंसे बुद्धि निर्मल होती है, तब शास्त्रके उपदेश और अभ्यास-वैराग्यद्वारा परमपदकी प्राप्ति होती है जो अतुलपद है। जो हेयोपादेय-बुद्धिसे रहित ज्ञानवान् है उस पुरुषको ये शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ये शक्तियाँ हैं—भोगोंमें नीरसता, देहाभिमानसे रहित निर्भयता, नित्यता, समता, पूर्ण आत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, निरिच्छता, निरहङ्कारता, अपनेको सदा अकर्ता जानना, इष्ट-अनिष्टकी प्राप्तिमें समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनन्दस्वरूप रहना, धैर्यसे सदा एकरस रहना, स्वरूपमें भिन्नवृत्तिका स्फुरण न होना, सब जीवोंसे मैत्रीभाव, सत्यबुद्धि, निश्चयात्मकरूपसे तुष्टि, मुदिता और मृदुभाषण। जिस पुरुषकी स्वरूपमें स्थिति हुई है और सुखदुःखमें समता है वह जो कुछ भी क्रिया करता है सो करता हुआ भी कुछ नहीं करता। मन जडरूप है और आत्मा चेतनरूप है, उसी चेतनकी सत्तासे जीव पदार्थोंको ग्रहण करता है। इसमें अपनी सत्यता कुछ नहीं है, मन आप असत्यरूप है, चेतनकी सत्ता पाकर जीता है और आत्मसत्तासे रहित उठ भी नहीं सकता।

मन आत्मसत्ताको भुलाकर जो कुछ करता है उस स्फुरणाको बुद्धिमान् कलना कहते हैं। जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है तब वह आत्मभावको प्राप्त होता है और प्रमादसे रहित आत्मरूप हो जाता है। शरीरमें जो स्पन्दशक्ति भासती है वही प्राणशक्ति है, और प्राणोंसे ही यह बोलता, चलता है। जब आत्मा और प्राणका स्फुरण इकट्ठा होता है, तब उसका नाम जीव होता है। मनके लीन करनेके दो उपाय हैं, एक तत्त्वज्ञान और दूसरा प्राणोंका रोकना। जब प्राणशक्तिका निरोध होता है और सत्य शास्त्रोंके द्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होता है तब मन लीन हो जाता है। हृदयकोशसे निकलकर जो बाहर जाता है और फिर बाहरसे भीतर आता है वह प्राण है, और जो वासनासे देश-देशान्तर भ्रमता है उसका नाम मन है। उसको वैराग्य और योगाभ्याससे वासनासे रहित करना और प्राणवायुको स्थिर करना ये दोनों उपाय हैं। जिस पुरुषने अपने मनको नहीं जीता वह दुर्बुद्धि है और अमृतको त्यागकर विष पान करता है। मैं आत्मा नहीं, जीव हूँ—इसी कल्पनाका नाम चित्त है और इससे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। जब यह निश्चय हुआ कि मैं आत्मा हूँ जीव नहीं, तो इसीका नाम चित्त-उपशम है। यह निश्चय होनेपर कि सब आत्मतत्त्व है, चित्त शान्त हो जाता है। जब चित्त संवित् आत्मसत्ताका त्याग करता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होता है, और जब चित्त उपजता है तब कलनारूप मल धारण करता है। वह चित्त बढ़कर मोह उपजाता है, मोह संसारका कारण होता है और तृष्णारूपी विषकी बेलि प्रफुल्लित होती है। उससे वह मूर्च्छित हो जाता है और आत्मपदकी ओर सावधान नहीं होता।

जिस मनुष्यरूपी वृक्षको तृष्णारूपी घुनने खा लिया उसकी पुण्यरूपी हरियाली नहीं रहती और वह प्रफुल्लित नहीं होता। तृष्णारूपी सर्पिणी महाविषसे पूर्ण होती है। वह सब जीवोंको दुःखदायिनी है, इससे उसको दूरसे त्याग करो। तृष्णावान् कदापि मुक्त नहीं होता।

वासनाका त्याग दो प्रकारका है—एकका नाम ध्येयत्याग और दूसरेका नाम नेयत्याग है। जीवन्मुक्त पुरुषके वासनाके त्यागका नाम ध्येयत्याग है और जिस पुरुषने मनसंयुक्त देहवासनाका त्याग किया है और उस वासनाका भी त्याग किया है वह नेयत्याग है। इस वासनाके त्यागसे पुरुष विदेहमुक्त कहलाता है। जिसकी वृत्ति सम्पूर्ण पदार्थोंमें सुषुप्तिकी नाईं हो गयी है, जिसका चित्त सदा जाग्रत् है और जो कलनाक्रिया-संयुक्त भी दृष्टि आता है परन्तु हृदयसे आकाशवत् निर्मल है, वह जीवन्मुक्त पूजनेयोग्य है। जो कुछ प्राकृत कर्म है उसको जो करता है परन्तु तृष्णा और अहङ्कारसे सर्वदा रहित है वह जीवन्मुक्त है।

जीवको चार प्रकारका निश्चय होता है। चरणोंसे लेकर मस्तकतक शरीरमें आत्मबुद्धि होना और माता-पितासे उत्पन्न हुआ जानना प्रथम निश्चय है। यह निश्चय बन्धनरूप है और यह असम्यक् दर्शन भ्रान्तिसे होता है। द्वितीय निश्चय यह है कि मैं सब भावों और पदार्थोंसे अतीत हूँ, केशके अग्रभागसे भी सूक्ष्म हूँ। यह निश्चय शान्तिरूप मोक्षको उपजाता है। जो कुछ जगजाल है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबमें मैं ही हूँ और आत्मारूप मैं अविनाशी हूँ, यह तीसरा निश्चय है और यह भी मोक्षदायक है। और चौथा निश्चय यह है कि मैं असत्य हूँ और जगत् भी असत्य है, इनसे रहित आकाशकी नाईं सन्मात्र है, यह भी मोक्षका कारण है। इनमेंसे प्रथम निश्चय बन्धनका कारण है और शेष तीनों मोक्षके कारण हैं और शुद्ध भावनासे उपजते हैं। जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है वे महात्मा पुरुष विवेकरूपी वनमें सदा विचरते हैं, बोधरूपी बागीचेमें स्थित रहते हैं, और संसारके पदार्थोंमेंसे न किसीमें दुखी होते हैं और न किसीमें आनन्दित होते हैं।

सब दुःखोंका कारण मन है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके रसकी आस्थाको सर्वदा सब ओरसे त्याग देना अर्थात् इन्हें नाशवान् और भ्रमरूप जानना, यही मनके जीतनेकी परम युक्ति है। यह युक्ति कठिन है, परन्तु अभ्यास और वैराग्यसे शीघ्र ही प्रकट होती है। परम पुरुषार्थ करके विषयसे विरक्त होना चाहिये, क्योंकि जबतक वैराग्य नहीं उपजता तबतक परम सुखकी देनेवाली मोक्षपदवी और संसारभयका नाश नहीं होता। उसकी युक्ति यह है कि प्रथम दिनके दो भाग भोगकर्म, देहके कार्य करो, एक भाग शास्त्रोंका श्रवण-विचार करो और एक भाग गुरुकी सेवा-टहल करो। जब कुछ विचारसंयुक्त मन हो तब आधा दिन वैराग्यसंयुक्त शास्त्रोंको विचारो और आधा ध्यान और गुरुके पूजनमें बिताओ। इस क्रमसे जीव ज्ञानकथाके योग्य होता है और शनैः-शनैः उत्तम पदकी भावना होती है। जब वह परमात्मज्ञानको प्राप्त होता है, तब कर्मकी फाँसीसे छूट जाता है। जीवको आत्मविश्रान्तिके सिवा और किसी युक्तिसे आनन्द नहीं प्राप्त होता। भोगोंके त्याग करने और परमार्थदर्शनके द्वारा वह ब्रह्म-पदमें विश्रान्त और परमानन्द मोक्षको प्राप्त होता है।

लोकमें मुक्ति दो प्रकारकी है, एक अदेह और दूसरी विदेह। जिस पुरुषकी बुद्धि देहादिसे असंसक्त है और जिसको ग्रहण-त्यागकी इच्छा नहीं और जो निरहङ्कार हुआ चेष्टा करता है उसको सदेह मुक्त जानो। जिसके देहादि सब नष्ट हो जायँ और फिर जन्म न धारण करे उसको विदेह मुक्त जानो। पहले पाँचों इन्द्रियोंको वश करो और चित्तको आत्मविचारमें लगाओ। अपने पुरुषार्थ-प्रयत्नसे इन्द्रियरूपी पर्वतको लाँघो, और फिर संसार-समुद्रसे तर जाओ। अपने ही अपनी आराधना और अर्चना करो, अपनेसे ही अपनेको देखो और अपने-आपमें स्थित हो। विचार और उपशम बिना भक्ति सिद्ध नहीं होती।

यह जो मायामय संसारचक्र है उसका नाभिस्थान चित्त है। जब वह चित्त वशमें हो, तब संसारचक्रका वेग रुक सकता है। जो कुछ सन्तों और शास्त्रोंने कहा है उसका बारंबार अभ्यास करना और संसारको मृग-तृष्णाका जल और स्वप्नवत् जानकर इससे वैराग्य करना, इन दोनों उपायोंसे चित्त स्थिर होगा और आत्मपदकी प्राप्ति होगी। भीतरको जाननेवाली जो साक्षी सत्ता है उसकी ओर वृत्ति रखना ही चित्तके स्थिर करनेका परम उपाय है। मनको मनसे मथो तो ज्ञानरूपी अग्नि निकलेगी, जो आशारूपी फाँसीको जला डालेगी। मनसे मनको छेदो अर्थात् अन्तर्मुखीकर स्थित करो। मनुष्यको विचारना चाहिये कि मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ, सब जगत् मेरे आश्रय है और मैं एक ही सबमें अनुस्यूत हूँ। ऐसा विचारकर विषयोंसे वृत्तिको निवृत्त करके, पद्मासन बाँध प्रणव अर्थात् अर्द्धमात्रा और अकार-उकार-मकारकी क्रमसे उपासना करो और प्राणायाम करके मात्राका ध्यान करो। अर्थात् अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव और अर्धमात्रा तुरीया इनका क्रमसहित ध्यान करो।

प्रथम अकारकी ध्वनिके साथ रेचक प्राणायाम करो। उससे प्राणवायु भीतरसे निकलेगी और हृदय शून्य और शुद्ध हो जायगा। देहाभिमानको त्यागकर पुर्यष्टकको सुषुम्णाके मार्गमें प्राप्त करो अर्थात् पुर्यष्टकको ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित करो। जबतक सुख रहे तबतक स्थित रहो और जब थक जाओ और पुर्यष्टकका वायु नीचेसे आवे तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि और ध्यानके साथ कुम्भक करो। जब सब प्राणवायुको आधारचक्रमें रोका जाय, न नीचे जावे और न ऊपर आवे, तो प्राण स्थित होंगे। इससे वह अग्नि निकलेगी जिससे मनुष्यका पाप-पुण्यरूपी शरीर जल जायगा। उसमें जबतक सुखपूर्वक रह सको तबतक स्थित रहो, फिर मकारकी ध्वनिसे रुद्रका ध्यान करके पूरक प्राणायाम करके सब स्थान वायुसे पूर्ण करो और अर्धमात्रा जो तुरीया पद है उसके दर्शनके निमित्त यत्न करो। नेत्रोंको आधा मूँदो और बाह्य विषयोंको त्यागकर इन्द्रियोंको भी त्याग करो और प्राण-अपानको मूल चक्रमें रोको। इससे नवों द्वार रोके जा सकते हैं। जब चञ्चल मन दौड़े तब वैराग्य और अभ्यासके बलसे फिर उसे रोको। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकारसे आत्मपदमें चित्तकी वृत्ति स्थित होगी और परमानन्दरूप अमृतमें मग्न होगी, जो अशब्द आनन्द है और परिणामसे रहित है।

जब सब इन्द्रियोंका प्रपञ्च शान्त होकर शुद्ध बोध हो जाय, भीतर-बाहरका व्यवधान मिट जाय और सब जगत् एकरूप होकर समाधि और उत्थान एक-सा हो जाय, तब समझो कि जो ऐसी दशाकी प्राप्ति है वही सत्तासामान्य है। वह देहके होते ही विदेहरूप है और उसको तुरीयातीत पद कहते हैं। जिसको ऐसा विवेक प्राप्त हो वह सब भ्रमसे मुक्त है। जो मैत्री, करुणा, अमानिता आदि गुणोंमें स्थित हुआ है और जिसका मन आत्मज्ञानसे शान्तिको प्राप्त हुआ है उसको समाधिस्थ कहते हैं। जिसमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं और जो निश्चयसे अपनेको अकर्ता जानता है उसको केवलीभावसे समाधिमें स्थित जानो। जिस चित्तसे वासना नष्ट होती है, उसको अचल स्थित कहते हैं, वह ध्यानमें केवलीभावमें स्थित होता है। जिस पुरुषके चित्तसे जगत्की आस्था निवृत्त हो गयी है और जो वीतशोक हो गया है वह स्वस्थ आत्मा है और उसको समाधिस्थ कहते हैं। जिसको जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् भासता है, वह समाहित-चित्त कहलाता है—जिस पुरुषकी आत्मपदमें प्रतीति हो गयी है और जो इन्द्रियोंसे कर्म भी करता है परन्तु हर्ष-शोकके वश नहीं होता, वह समाहितचित्त कहाता है। सब उपाधि तुच्छ मनमें उठती है और विचार करनेसे मनभाव नष्ट हो जाता है। विचारो कि मैं कौन हूँ, इन्द्रियाँ क्या हैं, जगत् क्या है और जन्म-मरण किसको कहते हैं। इस विचारसे जब तुम अपने स्वभावमें स्थित होगे तब तुमको हर्ष, शोक, क्रोध और राग-द्वेष चलायमान न कर सकेंगे। जब आत्मबोध होगा तब मन अपने मनको त्याग देगा और तुम सन्तापसे रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होगे।

जिस पुरुषको विवेकसे आत्ममहत्त्वका प्रकाश प्राप्त हो गया है वह संसारकी तुच्छ वृत्तिमें न डूबेगा। समाहित-चित्त इस जगत्-जालमें जो-जो कर्म करता है वह सुखरूप होता है। सङ्कल्पसे रहित जो परम विश्राम और परम उपशम समाधि है उसमें स्थित हो जिसका चित्त समाहित, नित्य तृप्त और सदा शान्तरूप है और जिसे यथार्थ ज्ञान हो गया है वह समाधिस्थ कहाता है। जिसके हृदयमें संसारकी सत्यतारूप क्षोभ नहीं है और जो निरहङ्कार है वह पुरुष समाधिस्थ कहाता है। ज्ञानीको चिन्मात्र तत्त्वका विस्मरण नहीं होता और उसको आत्माके सिवा कोई पदार्थ नहीं भासता। जिस ओर ज्ञानकी दृष्टि जाती है उसे वहाँ अपना आत्मा ही भासता है। राग, द्वेष, इच्छा, ग्रहण, त्याग जो कुछ विकार हैं उन सबसे रहित शुद्ध आत्म-तत्त्वमें स्थित हुए जिस पुरुषके मनसे वासना नष्ट हो गयी है वह उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपदको प्राप्त है और संसार-समुद्रसे तर गया है। जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है और नित्य चिदानन्दमें चित्तको लगाये हुए है वह सदा सुखी है। उसको किसी भी कालमें शोक नहीं होता। जिसके हृदयाकाशमें आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है उसीका जन्म और कुल सफल है।

मनुष्य और उपाय चाहे न करे, परन्तु एक उपाय तो उसे अवश्य करना चाहिये—वह देहको काष्ठ-लोष्ठवत् जानकर इसका अभिमान त्याग दे। विचार और अभ्याससे सदा सर्वत्र और सर्व कर्मोंके कर्ता चित्तको देहादिमें संसक्त न करे, केवल आत्मचेतनमें स्थित करे। किसी वस्तुको सत्य जानकर उसमें चित्त न लगावे, सब ओरसे चित्तको रोककर चेतनतत्त्वमें विश्राम करे। जब सबसे निराश होकर आत्मतत्त्वमें स्थित होगा तब वह विगतसङ्ग होगा। जीवका जीवत्व चला जायगा और वह केवल चिदात्मा होकर स्थित होगा। तब स्वाभाविक ही अद्वैतरूप तत्त्व भासेगा और उसे कोई भी क्रिया स्पर्श नहीं करेगी।

प्रथम जगत्में असत्-बुद्धि करनी चाहिये और अपने वाञ्छित इष्टदेवका ध्यान करना चाहिये—जब दीर्घ कालतक ध्यान होता है तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है, उससे प्राणोंका स्पन्द रुक जाता है। रेचक, पूरक और कुम्भक जो प्राणायाम हैं उनका जब अखेदचित्त होकर दृढ़ अभ्यास ध्यानसंयुक्त हो करे तो उससे भी प्राणोंका स्पन्द रुक जाता है। तालुमूलके साथ यत्नसे जिह्वाको तालु-घण्टासे लगा खेचरी मुद्रासे वायुको ऊर्ध्वरन्ध्रमें ले जानेसे भी प्राणवायुका स्पन्द रुक जाता है। नासिकाके अग्रमें जो द्वादश अङ्गुलपर्यन्त अपानरूपी चन्द्रमाका निर्मल स्थान आकाशमें है उसको ज्यों-का-त्यों देखे तो भी प्राण-स्पन्द रुक जाता है। जो भ्रूमध्य त्रिपुटीमें प्रकाशको त्यागकर जहाँ चेतनकला रहती है वहाँ वृत्ति लगावे तो उससे भी प्राणकला रुक जाती है। जो सर्ववासनाको त्यागकर हृदयाकाशमें चेतन संवित्का ध्यान करे तो भी चिरकालके अभ्याससे प्राणस्पन्द रुक जाता है। प्राण-वायुको रोककर वासनासे रहित हो जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ विचरो तो तुमको कोई बन्धन न होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा आनन्दरूप, आदि-अन्तसे रहित, प्रकाशरूप, सर्व, परमात्मतत्त्व है, इसी निश्चयको सम्यक् ज्ञान कहते हैं। सर्व संवेदन और सङ्कल्पसे रहित शुद्धसंवित् परमात्मा है, उसको जो जानता है वही परमात्माका जाननेवाला है। जिसको सब आत्मा ही भासता है वह सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है और वही मुक्तरूप है। जिनकी अभिमानरूपी गाँठ टूट गयी है वे पुरुष स्वतन्त्र स्थित होते हैं, उनको न कोई प्रारब्ध कर्म है न सञ्चित कर्म है और न वर्तमान कर्म है। तत्त्ववेत्ता सबसे मुक्त, स्वतन्त्र और स्वेच्छ विचरता है।

चित्तका नाश दो प्रकारका है—जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप हो जाता है और विदेहमुक्तका चित्त स्वरूपसे नष्ट हो जाता है। जो चित्त सत्पदार्थको प्राप्त हुआ है उस चित्तसे चिन्ता नाश हो जाती है—जैसे भूने दानेसे अङ्कुर नहीं उपजता। जब चित्त संसारसे विरक्त होकर सत्सङ्ग एवं सच्छास्त्रोंका श्रवण, मनन और स्वरूपका अभ्यास करता है तब वह अचित्त हो जाता है और ऐसी ही स्थितिमें परमानन्दकी प्राप्ति होती है और तभी पुरुष जीवन्मुक्त होकर विचरता है।

चित्तके दो बीज हैं—एक प्राणोंका स्फुरण और दूसरा वासनाका स्फुरण। जब दोनोंमेंसे एकका अभाव हो जाता है तब दोनों नष्ट हो जाते हैं। ये परस्पर कारणरूप हैं। प्राणस्पन्द और वासनाका बीज संवेदन है। जब शुद्ध संवित्मात्रसे संवेदनका त्याग हो जायगा तब वासना और प्राण दोनोंका स्फुरण नहीं होगा। प्रयत्नके द्वारा मनके सङ्कल्प-विकल्पको निवृत्त करो और अभ्यास और विचारके द्वारा विवेकका उपाय करो और भोगोंकी वासना दूरसे त्यागो। इन तीनोंके सम अभ्याससे तत्त्वज्ञान होता है। मनोनाश और वासनाक्षयका बारंबार अभ्यास करो, तब तुम शान्तिमान् होगे। प्राणोंको चाहे योगसे रोको, चाहे वासनाका त्याग करो।

जिसने तीर्थ, दान, जप और देवताओंकी पूजा की है और मन जीतनेका उपाय नहीं किया वह पशुओंके समान है। सब अनर्थ, इच्छा और आपदाका कारण सङ्ग है। सङ्गके त्यागसे मनुष्य मोक्षरूप और अजन्मा हो जाता है—इससे सङ्गको त्यागकर और जीवन्मुक्त होकर विचरो। इससे आत्मपदको पाकर फिर जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं आओगे।

तुलसीकृत रामायणमें करुणरस

(लेखक—श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा एम० ए०, एल-एल० बी०)

भरत और हैमलेट *

(भाग ८ संख्या ५ पृष्ठ ८५३ से)

(४) परिस्थिति और उसका प्रभाव

किसी मानवी चरित्रकी विस्तृत विवेचना करनेमें हम पुनरुक्तिसे सर्वथा बच नहीं सकते। कारण, मनुष्य एक सम्पूर्ण और सजीव यन्त्र है जिसमें चरित्रकी विशेषताओं और हृदय एवं मस्तिष्ककी भावनाओंका क्रिया और प्रतिक्रियारूपी संघर्षण होता रहता है। परन्तु यह सब एक ही केन्द्रके चारों ओर होता है। यह चेतावनी यहाँ इसलिये आवश्यक है कि पाठकोंको कहीं-कहीं हमारी विवेचनामें पुनरुक्तिका आभास दिखायी देगा, परन्तु यह स्मरण रहे कि दृष्टिकोण तो सदा भिन्न ही रहेगा। यह विभिन्नता

* हमारे कतिपय श्रीरामभक्त पाठकोंने लिखा था कि 'भरत और हैमलेटकी तुलना करनेवाले लेख 'कल्याण' में नहीं छपने चाहिये।' उनका ऐसा लिखना बहुत ही ठीक था। वस्तुतः श्रीभरतजीके साथ हैमलेटकी किसी अंशमें भी तुलना नहीं हो सकती। भरतजी साक्षात् भगवदंश हैं और परमात्मा श्रीरामके लीलाकार्यमें सहायक होकर प्रकट हुए हैं, और हैमलेट साधारण आदर्शवादी मानव है। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि भक्तोंके निर्भ्रान्त निश्चयके अनुसार श्रीभरतजीका चरित्र तो गोसाईं श्रीतुलसीदासजी महाराजका साधनाबलसे अनुभव किया हुआ ऐतिहासिक सत्य है और हैमलेटका सर्वथा काल्पनिक। ऐसी हालतमें इन दोनोंमें कोई तुलना हो ही नहीं सकती। यह लेख तो केवल इसी बातको दिखानेके लिये छापा जाता है कि काव्यकी दृष्टिसे भी श्रीरामचरितमानस महाकवि शेक्सपियरकी रचनाओंकी अपेक्षा कितना बढ़ा-चढ़ा और पूर्ण है। साथ ही इस बहाने भगवान् श्रीराम और श्रीभरतके लोककल्याणकारी पावन चरित्रोंका आनन्द भी किसी अंशमें पाठकोंको मिल ही जाता है। आशा है, भक्तपाठकगण हमारे इस निवेदनसे सन्तुष्ट हो जायँगे। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा पुनरुक्ति इसी प्रकारकी है जैसे एक ही प्राकृतिक दृश्यको अनेक स्थानोंसे देखनेमें प्रतीत होता है। कारण, कुछ बातें तो सदैव ही एक-सी रहती हैं परन्तु कुछ बातोंके भिन्न होनेसे प्रभावमें विभिन्नता हो जाती है।

अब हमें यह देखना है कि बाह्यरूपसे (objectively) परस्थितियोंकी उस समय क्या अवस्था थी जब हैमलेट और भरत रंगमञ्चपर आते हैं। हैमलेटके पिताका अन्त संशयजनक रीतिसे हुआ है और उसकी माता हैमलेटके उसी चचासे जो उपर्युक्त संशयका हेतु था, ऐसी शीघ्रतासे विवाह कर लेती है जो शिष्टाचारके सभी नियमोंके प्रतिकूल है। फिर यह वही चचा है जिसके कारण हैमलेट डेन्मार्कके राज्यसिंहासनसे भी वञ्चित रह गया। संक्षेपमें परिस्थितिका मुख्य स्वरूप यही था। और यह स्वरूप हैमलेटके लिये अवश्य ही निराशाजनक था। कोई भी मनुष्य ऐसी परिस्थितिमें पड़कर दुःख एवं आश्चर्यके वशीभूत हुए बिना नहीं रह सकता था, चाहे वह नैराश्यपूर्ण चिन्ता-रोग (melancholy) से बच भी जाता। इसीसे तो मेरा कथन है कि इस परिस्थितिमें तो आदर्शवादी होनेकी कोई विशेष आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु हैमलेटकी प्रशंसा इस कारण होती है कि उस तत्कालीन पाशविक सभ्यताके युगमें, जब भौतिकवादका ही डङ्का बज रहा था, ऐसी परिस्थितियाँ असाधारण न थीं और हैमलेटके चचाकी वक्तृतासे प्रकट है कि राज्यमन्त्रियोंने भी उसके विवाह और राज्य-ग्रहणके विषयमें अनुमति दे दी थी। फिर भी हैमलेटके विचार ऐसे सूक्ष्म एवं शुद्ध थे कि उसके हृदयको कड़ी ठेस लगे बिना न रही।

अयोध्याकी परिस्थिति बाह्यरूपसे भरतके लिये लाभदायक ही थी। रामसे छोटे होनेपर भी उन्हें युवराज-पद मिल रहा था और यह पद भी इस कारण मिल रहा था कि उनके पिताने कैकेयीको ऐसे वरदान दिये थे जिन्हें पूरा करना उनका कर्तव्य था। फिर वरदानोंका मूल कारण भी उनकी माताका वीरत्व या उनके नानाका कैकेयीके विवाहके समय प्रतिज्ञा करा लेना था। भौतिक आदर्शके दृष्टिकोणसे कोई बुराई भी नहीं दीखती। यही तो कारण है कि दशरथकी मृत्यु हो जानेपर भी कैकेयीको पहले-पहल कोई पश्चात्ताप नहीं होता और भरतके आगमन-पर वह उन्हें हर्षित दिखायी देती है। जब वह भरतको उदास देखती है तो उसे और कोई कारण नहीं सूझता और वह यही समझती है कि उसके नैहरमें कोई शोकप्रद घटना हुई। तुलसीदासजी कहते हैं—

सुतहिं सशोच देख मन मारे। पूछति नैहर कुशल हमारे॥

परन्तु वस्तुतः भरतके सोचका कारण तुलसीजीके शब्दोंमें यह था—

भरत दुखित परिवार निहारी। मानहु तुहिन बनज बन मारी॥

कैकेयीका हर्ष इतना पूर्ण था कि तुलसीदासजी उसे यों चित्रित करते हैं—

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहि भेंटि भवन लै आई॥

यहाँतक कि जब वह भरतको दुखी देखती है और भरत स्वयं उससे सीता और रामके सम्बन्धमें कुशल-प्रश्न करते हैं तब भी उसका उत्तर कुछ बहुत शोकपूर्ण नहीं है, प्रत्युत वह अपने कृत्योंकी प्रशंसा ही करती है और त्रुटियोंका भार विधातापर डालती है। उसका उत्तर कविके शब्दोंमें यों है—

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारी। भूपति सुरपति पुर पग धारी॥

कैकेयीके दृष्टिकोणसे परिस्थितिमें कितनी कम त्रुटि है, और उसका कारण भी विधाता ही है। अन्तिम पंक्तिमें सङ्केतरूपसे मानो वह यह भी कहती है कि दशरथ, जो केवल भूपति थे, अब सुरपतिके पुरमें पहुँच गये। मानो मृत्युसे उनका भी भला ही हुआ। अब तो यह स्पष्ट ही हो गया कि साधारण भौतिक दृष्टिकोणसे परिस्थितियोंमें कोई ज्यादा गड़बड़ न था और वे परिस्थितियाँ भरत और कैकेयीके लिये तो हितकर ही थीं। परन्तु भरत-जैसे सूक्ष्म आदर्शवादीपर क्या प्रभाव पड़ता है, उसका हृदयविदारक चित्र तुलसीदासजी यों खींचते हैं—

भरतहिं बिसरेहु पितु मरन सुनत राम बन गौन।
हेतु आपनो जानि जिय थकित रहे धरि मौन॥

आह! बेचारे भरतजी सन्न रह जाते हैं और उनके पास इस दुःखके पर्याप्त प्रकटीकरणके लिये शब्द ही नहीं हैं। इसीसे तो हम भरतके आदर्शवादकी प्रशंसा करते हैं कि उनके हृदयके प्रति वे परिस्थितियाँ दुःखका कारण होती हैं जो बहिरंग रीतिपर उनके लिये हितकर प्रतीत होती हैं। नहीं तो फिर आदर्शवाद ही क्या, और आध्यात्मिक सूक्ष्मताकी प्रशंसा ही क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब दोनों राजकुमारोंमें क्या समानता है, यह भी विचारणीय है। दोनोंके हृदयको परिस्थितियोंसे आघात पहुँचता है और दोनोंमें शोककी उत्पत्ति होती है। देश, काल और अवस्थाके अनुसार दोनोंमें विचारोंकी सूक्ष्मता और आदर्शवादिता है। दोनों कवियोंने अपने-अपने चरितनायकोंके करुणाजनक चित्र खींचे हैं। दोनों चित्र काव्यकलाके सौन्दर्यसे पूर्ण और हृदयविदारक हैं। दोनों राजकुमारोंमें और भी कई समानताएँ हैं। उदाहरणार्थ दोनों-की वक्तृताओंमें व्यङ्ग और कटाक्ष हैं और दोनोंका विश्वास स्त्रियोंपर नहीं रहा। दोनों नैराश्यपूर्ण शोकसे रुग्ण हैं।

परन्तु दोनोंमें अन्तर भी स्पष्ट है। बेचारे हैमलेटको कोई भी आधार न मिला और इसीलिये उसकी शारीरिक एवं मानसिक दशाएँ शोकातिरेकसे विकृत होकर रह जाती हैं। मैं श्रीअमरनाथ झाके इस विचारसे सहमत हूँ कि हैमलेटकी अकर्मण्यताका कारण उसके चरित्रकी कोई विशेष त्रुटि न थी प्रत्युत वही विकार था। उसकी जो भी क्रियाएँ हैं वे आकस्मिक प्रतीत होती हैं। भरतकी शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओंमें इतनी दृढ़ता थी कि वह परिस्थितिसे नितान्त पराजित नहीं हो गये। वह अपने कर्तव्यपर विचारकर तदनुसार ही कर्म भी कर सके। इसीलिये उनकी क्रियाओंमें केवल आकस्मिकता नहीं प्रत्युत विवेक भी है। फिर भरतकी भाषामें व्यङ्ग अवश्य है परन्तु कटु कटाक्ष और घृणाके उद्गार केवल उस वक्तृतामें है जो उन्होंने कैकेयीके प्रति की है। हैमलेटके कटाक्षोंमें प्रेमका लेश बहुधा नहीं है। परन्तु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस अन्तरका अधिकांश कारण यह है कि भरतको और सबसे सहारा मिला—केवल कैकेयी ही प्रतिकूल थी। इसके विरुद्ध हैमलेटकी सहायता करनेवाला विशेषतया केवल उसका मित्र होरेशियो था। भरतमें इतनी विवेकशक्ति शेष रही कि उन्हें केवल माताहीसे घृणा हुई और स्त्रीजातिके प्रति घृणा केवल शब्दोंमें ही रह गयी। मन्थराको भी पिटते हुए देख उन्हें दया आ ही गयी। परन्तु आह, हैमलेटका मानसिक स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया था कि वह पुष्पोंकी भाँति कोमल प्यारी ओफ़ेलियाके प्रति भी कटु भाषण करने और उसे त्याग देनेसे अपने-आपको न बचा सका। फिर भरतका प्रेम कौसल्या और सीताके प्रति इतना स्नेहपूर्ण है कि देखते ही बनता है। ओफ़ेलियाकी क़ब्रपर हैमलेटने कुछ भावोंको प्रकट अवश्य किया है पर वे आकस्मिक और बहुधा ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे वे पूर्व प्रेमकी स्मृतिके उन्मादमें कहे गये हों। फिर हैमलेटका धैर्य भी नैराश्य और शोकके कारण विदा हो गया था परन्तु भरतमें पर्याप्त धैर्य शेष था, यद्यपि शोकके कारण उनकी दशा 'जल-अलिगण' की-सी हो रही थी। इसीसे भरतके आदर्शवाद-की विजय होती है और साथ ही करुणरसकी काव्यमयी स्थिति भी बनी रहती है, इत्यादि इत्यादि।

अब हम उपर्युक्त विभिन्नताओं और समानताओंमेंसे प्रत्येककी विस्तृत व्याख्या करेंगे—

(अ) भावुकता

हैमलेटके समालोचकोंने यह कहा है कि उसकी भावु-कता उसके जीवनका अंश बन गयी है परन्तु फिर भी उसका प्रकटीकरण तभी होता है जब वह उसे रोक नहीं सकता, यही उसकी स्नायुसम्बन्धी निर्बलता (Nervous breakdown) का कारण है। वह दुःखको सहन करता था और प्रायः चुपचाप ही सहन करता था, और कभी-कभी स्वगत वार्ता भी करके रह जाता था। यह क्यों? उत्तर स्पष्ट है कि होरेशियोके सिवा और कोई उसका ऐसा मित्र न था जिससे वह अपने दिलकी बात कह सके और होरे-शियोसे भी उसे कोई प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिल सकी थी, इसीलिये उसका हृदय शोक-भारसे दबकर रह गया था। पहले तो वह अपना कार्यक्रम कुछ सोच भी सकता था पर अन्ततः वह शक्ति भी शेष न रही। भावगोपनका एक कारण यह भी था कि उसके चारों ओरके वातावरणमें जासूसी और शंकाका ही साम्राज्य था। इसीलिये सन्देहके कारण उसकी दशा वही थी जैसी 'नसीम' ने अपने इन शब्दोंमें 'गुलबकावली'के अन्तर्गत ताजुलमलूककी दशाका वर्णन किया है—

गोशेमें कोइ लगा न होवे,
खूशा * कोई ताकता न होवे।

यही तो कारण है कि हमारे हृदयमें हैमलेटकी त्रुटियों-से उसके प्रति घृणा न उत्पन्न हो, करुणा और दयाका ही भाव उत्पन्न होता है।

अब हम तनिक विस्तारके साथ भरतकी भावुकताके कुछ उदाहरणोंका वर्णन करेंगे। परन्तु उसके पूर्व एक

* गुच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक मर्मकी बातको भी यहीं कह देना उचित जान पड़ता है। रामायणमें नाटकके सभी गुण विद्यमान हैं परन्तु शेक्सपियरके नाटकोंकी भाँति कवि बिल्कुल छिपा हुआ नहीं है। इस अन्तरके कारण हैमलेट और अयोध्याकाण्डके प्रभावका अन्तर विचारणीय है। यवनदेशके नाटकोंमें जो काम 'कोरस' (Chorus !*) करता है वही अयोध्याकाण्डका कवि भी करता है और चरित्रों एवं घटनाओंकी आलोचना करता जाता है। इसीसे तो मैं बहुधा यह कहा करता हूँ कि तुलसीदासजी अपने कविताके स्वयं ही उत्तम आलोचक हैं। फलतः हमको ठीक शिक्षा मिलती जाती है। महाकवि शेक्सपियरकृत हैमलेट यदि विचारपूर्ण गम्भीरतासे पढ़ा जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि परिणाम यह निकलता है कि शेक्सपियर पाशविक स्वार्थवाद और ठोस भौतिक सभ्यताके प्रति हमारे हृदयमें घृणा उत्पन्न करना चाहता है और हैमलेटके प्रति करुणा। परन्तु क्योंकि कवि स्वयं रंगमञ्चपर हमारे समीप आकर स्पष्टतः कोई उपदेश नहीं करता तो परिणाम यह होता है कि साधारण जनता, जिसमें गम्भीर विवेकशक्ति नहीं हो सकती, यह मान बैठती है कि आदर्शवाद असफलताके ही लिये बना है, और इसी कारण पाश्चात्य जगत्में आदर्शवादका बहुधा मखौल उड़ाया जाता है। लोग यह कहते हैं कि हमारी अन्तरात्माका सोचविचार ही हमें कायर बना देता है।† ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो यह समझें कि भौतिक सभ्यतामें दोष है।‡

अब हम उपर्युक्त कथनके अनुसार भरतकी भावुकताके उदाहरण देते हैं।

(१) जब भरतने अपने पिताके मरणका हाल अपनी मातासे सुना तो उनकी जो दशा हुई उसका वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायहुँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं॥

ये पंक्तियाँ कितनी सुन्दर और हृदयविदारक हैं। पिताके प्रति प्रेम और भ्राता (राम) के प्रति श्रद्धा मानो उमड़ी पड़ती है—यह श्रद्धा जो अत्यन्त स्नेहपूर्ण है। भरत अपने आपको नितान्त असहाय समझते हैं। कारण, वह पिताके मरते समय मौजूद न थे और पिता उन्हें रामको सौंप न सके थे। 'चलत न देखन पायहुँ तोहीं' का पश्चात्ताप कितना स्वाभाविक है। यह सब होते हुए भी भरतमें धैर्य है, जैसा तुलसीदासजी लिखते हैं—

बहुरि धीर धरि उठे सँभारी।

और मातासे प्रश्न करते हैं—

कहु पितु मरन हेतु महतारी॥

भरतजी तभी चुप होकर सन्न रह जाते हैं जब उन्हें यह मालूम हो जाता है कि पिता-मरनका मूल कारण खुद ही हैं।

हेतु आपनो जानि जिय थकित रहे धरि मौन।

आह, कैकेयी तब भी यही समझती है कि यह शोक स्थायी नहीं और भरतको यों समझाना चाहती है—

तात राउ नहिं सोचन जोगू। बढ़ै सुकृत जस कीन्हेउ भोगू॥
जीवित सकल पुन्य फल पाये। अन्त अमरपति सदन सिधाये॥
अस अनुमान सोच परिहरऊ। सहित समाज राजपुर करऊ॥

मानो वह भरतको राज्यका प्रलोभन देकर प्रसन्न करना चाहती है। परन्तु भरत-जैसे आदर्शवादी शुद्ध-सूक्ष्म विचारवाले व्यक्तिपर उलटा ही असर होता है। उनके शोककी मात्रा कई गुनी बढ़ जाती है। जिन शब्दोंमें तुलसीजी उस शोकका वर्णन करते हैं और उसकी तुलनाके लिये जैसी अछूती मिसालें पेश करते हैं, वे अपने आप उदाहरण हैं। देखिये—

मनहु जरे पर लोन लगावति।

और—

पाके छत जनु लाग अँगारा।

(२) भरतजी जब शृंगवेरपुरके निकट पहुँचते हैं और निषादसे उन्हें परिचित कराया जाता है तो तुलसीदासजी उनकी दशाका वर्णन यों करते हैं—

राम सखा सुनि स्यन्दन त्यागा। चलेउ तुरत उमगत अनुरागा॥
करत दण्डवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाय।
मनहु लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदय समाय॥

यह चित्र कितना सुन्दर है। जो निषाद पहले ही रामका सखा बन चुका है उसके प्रति यह आदर-भाव

---

* गानेवालोंकी एक टोली होती थी जो बीच-बीचमें गान-रूपमें घटनाओं एवं चरित्रोंकी आलोचना करती जाती थी।

† Conscience makes cowards of us all.

‡ There is something rotten in the state of Denmark.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित ही है। जाति और अन्त्यजता प्रेम-सागरमें डूबकर विलीन हो जाती है। नहीं-नहीं, अनुरागके आवेशमें वैसे विचार मस्तिष्कमें आ ही नहीं सकते।

'तुरत' शब्द प्रकट करता है कि प्रभाव विद्युतवत् था, विचारकी गति ही न थी। दूसरी ओर भी प्रभाव वैसा ही पड़ा और वह निषाद जो तनिक पहले लड़नेपर तैयार था और जासूस बनकर आया था, भरतके प्रेमके हाथों बेदाम बिक गया। तुलसीदासजी लिखते हैं—

देखि भरतकर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

मानो निषादका सारा विरोध भरतके प्रेम-समुद्रमें डूब गया—वह प्रेम जिसके लिये कवि लिखता है—

प्रेम न हृदय समाय।

कवि इस बातपर बहुत ज़ोर देता है कि भरत और निषाद भगवान् रामके विश्राम-स्थानको 'करसों कर जोरे' जा रहे हैं और वह इस चित्रपर ऐसा मुग्ध है कि स्वयं लिखता है—

सोहत दिये निषादहिं लागू।

भरतजी तब प्रश्न करते हैं—

पूछत सखहि सो ठाँव दिखाऊ। नेकु नयन मन जरन जुड़ाऊ॥
जहँ सिय राम लखन निसि सोये। कहत भेर जल लोचन कोये॥

तुलसीदासजीद्वारा भरत-चरित्रके वर्णनसे हमें यह ज्ञात होता है कि भरतका शोक उस अन्तिम सीमातक पहुँच चुका है जिसे वह बारंबार 'जियकी जरन'—शब्दोंसे वर्णन करते हैं। अयोध्यामें भी उन्होंने कहा था कि—

बिन देखे रघुबीरपद जियकी जरन न जाय।

अब यहाँ नयन और मनकी जरनका वर्णन है। और इसीलिये अन्तमें जब भरतने प्रथम-प्रथम रामजीको देखा है तो उसका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं—

कर कमलन धनुसायक फेरत। जियकी जरन हरत हँसि हेरत॥

यद्यपि अभी रामने भरतको देखा नहीं है, अतः यह हास्य भरतसे सम्बद्ध नहीं है प्रत्युत अन्य उपस्थित जनोंसे।

फिर जब भरतजी निषादके साथ अभीष्ट स्थानपर पहुँच जाते हैं तो उस समयकी अवस्थाका वर्णन तुलसीदासजी यों करते हैं—

अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ 'दण्ड प्रनाम'।
कुश साथरी निहार सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन लाई॥*

अब यहाँपर भरत और हैमलेटका अन्तर स्पष्ट है। भरत तो रामकी साथरी देखकर भी उसे प्रणाम करते और इस प्रकार मानो रामका आदर करते हैं। पर अब हैमलेटने अपने पिताकी छाया देखी तो उसने कोई आदरसूचक कार्य नहीं किया प्रत्युत एक उन्मत्तकी भाँति ही क्रियाओं और वचनोंका प्रयोग करता रहा। इसीसे तो हमें वहींसे उसका पतन दीखता है और किसी सुन्दर तथा मनोहर भावका प्रकटीकरण नहीं होता। भावुकताके दृष्टिकोणसे भरतका यह चित्र इतना मनोहर है कि तुलसीदासजी उसका चित्रण 'वायस्कोपी' सूक्ष्मता एवं सरलताके साथ करते हैं—

चरन रेख रज आँखिन लाई। बनै न कहत प्रीति अधिकाई॥
कनकबिन्दु दुइ चारिक देखे। राखे शीश सीय सम लेखे॥

भरतकी यह सूक्ष्मदर्शिता कि छोटे-छोटे कनकबिन्दु भी नेत्रोंद्वारा खोज लिये, उनके प्रेमाधिक्यके ही कारण है।

तुलसीदासजी थोड़े ही शब्दोंमें भरतकी बाह्य एवं आन्तरिक अवस्थाका चित्र अत्यन्त सुन्दरताके साथ यों खींचते हैं—

सजल बिलोचन हृदय गलानी।

ऐसा ही भावुक पुरुष मानवी भावोंको निर्जीव पदार्थोंमें भी अनुभव करने लगता है। मानो उन भावोंको सम्पूर्ण प्रकृतिमें व्यापक पाता है। प्राकृतिक सौन्दर्य-सम्बन्धी कविताका मूल कारण यही भावुकता है। भरतजीमें इस समय यह भावुकता ऐसे कोमल और सुन्दर स्वरूपमें है कि जैसे वह स्वयं वियोगसे दुखी हैं वैसा ही अनुमान कनकबिन्दुओंके सम्बन्धमें भी करते हैं। भाव कितना मनोहर है, वह कविके इन शब्दोंसे प्रकट है—

श्रीहत सीय बिरह पति हीना। यथा अवध नरनारि मलीना॥

* चिह्नोंका यह आदर ही उस भावकी जड़ है जिसका प्रकटीकरण रूपान्तरोंके साथ, कहीं प्रेमिक और प्रेमिकाकी सहिदानीरूपमें, कहीं ऐतिहासिक घटनाओंके स्मारकरूपमें (जहाँ खँडहरोंतकका आदर होता है) और कहीं मूर्तिपूजा-रूपमें हुआ करता है। बहर-हाल यह हर जगह 'अति सनेह ही' है जो रूखे-सूखे तर्कसे परे है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमाकी सरलता एवं सामयिकता भी विचारणीय है। कितना नाटकीय सत्य है। आह! कनकबिन्दुओंमें भी अयोध्यावासियोंसे कम भावुकता न थी! एक सूक्ष्म संकेत और भी है और ऐसे संकेत ही तुलसीदासजीकी कविताका जीवन हैं। कनकबिन्दुसे प्रकट होता है कि सीताके शरीरपर गहने और सितारेके कामके कपड़े थे। ठीक भी है। सीताका वनवास किसी आदेशके कारण न था, अतः स्त्रियोचित स्वाभाविकता उनमें कुछ-न-कुछ बनी हुई थी। ऐसी कोमल स्त्रीका वनवास और भी दुःख-जनक है और फिर विधाताकी वह विडम्बना भी विचारणीय है कि वे कनकबिन्दु भी छूटते चले जाते हैं। सीताके जीवनके इस अन्तरकी ओर भरतका विचार गये हुए बिना न रहा। भरतजी कहते हैं—

पति देवता सुतीय मनि सीय साथरी देख।
बिहरत हृदय न हहरि करि पबिसे कठिन बिसेख॥

तत्पश्चात् भरतका ध्यान लक्ष्मणकी ओर भी जाता है—उनके वीरत्वकी ओर नहीं, प्रत्युत उनकी कोमलताकी ओर। इस समय यही स्वाभाविक भी है। भरतजी लक्ष्मणके विषयमें यों कहते हैं—

लालन जोग लखन सुठि लोने।

लालन, लखन और लोनेका अनुप्रास भी विचारणीय है। वह इतना सुन्दर, स्वाभाविक एवं भावुकतापूर्ण है कि रामायणमें ऐसे उदाहरण कम ही मिलेंगे। भरतजीका हृदय फटा जाता है और वह यों कहते हैं—

ते बन बसहिं बिपति सब भाँती। निदरै कोटि कुलिस यह छाती॥

हमें भरतके 'पबिसे कठिन' और 'कोटि कुलिश' शब्दोंसे जो उन्होंने अपने 'हृदय' और 'छाती' के सम्बन्धमें कहे हैं, हैमलेटकी उस स्वगत वार्ताका स्मरण होता है जिसमें उसने कहा है कि 'यह शरीर बहुत ठोस है.....।' दोनोंमें शोककी मात्रा समान ही है।

अब भरतका ध्यान रामकी ओर जाता है। पहले सुकुमार सीता, फिर लक्ष्मण और फिर रामकी ओर प्रेरित होनेका क्रम भी विचारणीय है। रामके सम्बन्धमें भरत कहते हैं—

बैरिहु राम बड़ाई करहीं। बोलन मिलन बिनय मन हरहीं॥

रामके समस्त जीवनका सार इतने संक्षिप्त और भावुकतापूर्ण शब्दोंमें रामायणमें भी और कहीं नहीं है। धन्य है प्रेमपूर्ण भरतकी काव्यमयी दृष्टि और तुलसीकी लेखनी! आह! स्रष्टाके संसारका कार्यक्रम कितना दुःखमय है कि ऐसे पुरुषको, जिसकी बड़ाई उसका शत्रु भी करे, उसकी एक माता ही वनको भेज दे और उसकी दशा यह हो—

ते सोवत कुस डासि महि,

इस अन्तरके अनुभवके बाद जब भरत माताके प्रति घृणापूर्ण शब्दोंका प्रयोग करते हैं तो हमारा हृदय उसकी पुष्टि करता है। यह कहते हैं—

धिक कैकेइ अमंगल मूला। भई प्रानप्रीतम प्रतिकूला॥

हम पहले ही कह चुके हैं कि भरत और हैमलेट दोनोंमें शोक और नैराश्यकी मात्रा एकही-सी थी, परन्तु भरतका मानसिक सन्तुलन अधिक दृढ़ था और उन्हें बाह्य सहायताएँ पर्याप्त मात्रामें मिलती जाती थीं। परन्तु बेचारा हैमलेट लगभग नितान्त असहाय था। देखिये न, यहाँ भी भरतको निषादकी सहायता मिलती और वह कैसे मनोहर शब्दोंमें उन्हें तसल्ली देता है—

बिधि बामकी करनी कठिन जेहि मात कीन्हीं बावरी।
तेहिं राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥
तुलसी न तुमसों राम प्रीतम कहत हौं सौंहैं किये।
परिणाम मंगल जान अपने आनिये धीरज हिये॥

कितने सान्त्वनापूर्ण शब्द हैं। रामके सिवा कैकेयीके कामकी ऐसी उदार आलोचना शायद ही किसीने की हो। फिर यह पहला मौका है जब भरतको ठीक-ठीक यह मालूम होता है कि रामके उदार हृदयमें इनके प्रति इतना प्रेम भरा हुआ है कि उनकी अनुपस्थितिमें भी उनकी सादर सराहना बार-बार की। ऐसे ही अवलम्बोंके कारण भरतका दिल टूटने नहीं पाता और उनका वह धैर्य बना रहता है जो उनके कर्तव्यपालनमें सहायक होता है। यहाँ भी तुलसीदासजी लिखते हैं—

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। ... ...

इत्यादि।

(३) हम इसके पूर्व ही भरतके आदर्शवादविषयक आध्यात्मिकतापूर्ण कलाविवेचनका वर्णन कर चुके हैं।

भरत पहले तो अयोध्यासे पैदल ही चल देते हैं परन्तु फिर कौशल्या माताके आग्रहसे श्रीगंगाजीके तटतक रथपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। परन्तु गंगाको पार कर लेनेपर फिर वह किसीकी नहीं सुनते और बराबर पैदल ही जाते हैं। भरतके इस निर्णयमें कितना सूक्ष्म सन्तुलन है। यहींसे रामने भी तो पैदल यात्रा प्रारम्भ की थी, अतः भरतने भी उसके विरुद्ध करना अपने सेवाधर्मके प्रतिकूल समझा। भरत अपने भावोंको स्वयं ही यों प्रकट करते हैं—

राम पयादे पाँव सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥
सिर बल जाउँ उचित अस मोरा। सबते सेवक धर्म कठोरा॥

विचार कितने भावुकतापूर्ण हैं और उनमें स्वकर्तव्य-पालनका कितना उच्च आदर्श है। हमारे लिये तो, जो ऐसे युगमें रहते हैं जहाँ चारों ओर 'अधिकार-अधिकार' का ही शोर मच रहा है, ऐसे विचारोंका समझना ही कठिन है।

इस भावुकताकी अवस्थाका कितना सुन्दर चित्रण निम्न दोहेमें है, जिसमें कुशल कविने भरतके प्रयाग-प्रवेशका वर्णन किया है—

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेस प्रयाग।
कहत राम-सिय राम-सिय उमँगि-उमँगि अनुराग॥

आगे फिर—

झलका झलकत पायन कैसे। पंकज कोस ओसकन जैसे॥

इस वर्णनको डबडबायी आँखों बिना कौन पढ़ सकता है?

महाकवि शेक्सपियरने भी हैमलेटका वर्णन करते समय कुछ ऐसा ही लिखा है। उसके कपड़े सब खुले हुए थे और सरपर हैट न थी। मोजे नीचेको गिरे हुए और उनके बन्द खुले थे। उसका रंग भी उसके पीले कुरतेकी तरह पीला था और उसके घुटने काँपते हुए टकरा रहे थे। उसकी दृष्टि ऐसी करुण थी कि वह मानो नरकके भयानक दृश्योंको देखकर छूट आया था और पुनः उन्हें हमारे समीप चरितार्थ करना चाहता था।*

*.....With his doublet all unbraced; foul'd,
No hat on his head: his stockings
Ungarter'd, and down-gyved to his ankle;
Pale as his shirt: his knees knocking each other,

And with a look so piteous in purport,
As if he had been loosed out of hell,
To speak of horrors, he comes before me.

दोनों चित्रोंमें भावुकता है, परन्तु भरतका चित्र सकरुण ही नहीं वरन सरस और सुन्दर भी है। उधर हैमलेटके चित्रमें 'करुण'-रसके साथ 'भयानक'-रसका इतना अधिक सम्मिश्रण है कि हमें नरककी घोर घटनाओंकी याद आये बिना नहीं रहती। इसी कारणसे तो जहाँ भरतके प्रति चारों ओरसे सहानुभूति ही उमड़ती हुई दीखती है यहाँ स्वयं हैमलेटकी प्रेमिका ही उससे भयभीत हो जाती है।

बस, अब हम यहींपर भरतकी भावुकताके उदाहरणों-को समाप्त करते हैं, नहीं तो हमें फिर वे सभी पद उद्धृत करने पड़ेंगे जिनमें भरतका वर्णन है, क्योंकि यों तो भरत भावुकताकी मूर्ति ही हैं।

उदाहरणोंकी तो समाप्ति कर दी गयी, परन्तु भरतकी भावुकताके सम्बन्धमें एक मार्मिक बात कहनी आवश्यक है। उस भावुकताका अर्थ केवल हृदयोद्गारोंके वशीभूत होना नहीं है, परन्तु उसमें ऐसा गाम्भीर्य है कि विचारशक्ति अपना काम बराबर करती रहती है। यही अवस्था उस समय भी बनी रहती है जब वह चित्रकूट पहुँच जाते हैं और रामसे उनका मिलाप हो जाता है। तुलसीदासने अत्यन्त मार्मिक शब्दोंमें यों कहा है—

निसि न नींद नहिं भूख दिन भरत बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच॥

कितना सुन्दर चित्र है। अयोध्याके और लोग तो राम-मिलनसे प्रसन्न हो वन-विहार कर रहे हैं, परन्तु भरतकी गम्भीर भावुकताका वेग अब भी कम नहीं, और उनका मस्तिष्क अब भी उसी चिन्तामें व्यस्त है कि राम कैसे लौटें। कारण, उनकी भावुकता केवल बाह्य मिलनपर समाप्त न हो सकती थी प्रत्युत उनके सामने तो वही प्रश्न था कि रामका राज्य उनको कैसे लौटाया जाय।

हमें इस प्रसङ्गमें आगे अभी बहुत कुछ लिखना है, अतः यहाँ अधिक व्याख्या न करेंगे। परन्तु हमारा निवेदन है कि वे लोग जो महाकवि शेक्सपियरकी कविताके इस गुणपर मुग्ध हैं कि वह अपने चरित्रोंकी आन्तरिक भावनाओंके कार्यक्रमको स्पष्ट कर देता है, वे इस स्थानके सभी पदोंपर विशेष ध्यान देनेकी कृपा करें जिनमें हमारे कविने भरतके आन्तरिक विचार-संघर्षणका स्पष्टीकरण किया है।

भरतकी भावुकताका अन्त मालीखूलिया (melancholia) में नहीं होने पाता। उसका विशेष कारण यह है कि रामकी सहानुभूतिपूर्ण भावुकतामें उसका प्रत्युत्तर मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। जब लक्ष्मणने यह सूचना दी कि भरत आ रहे हैं तो रामने उसे एक शुष्क दार्शनिककी भाँति नहीं सुना परन्तु उस मनुष्यकी भाँति, जिसमें मानवी भावुकता एवं दया पूर्णतः विद्यमान हैं। तुलसीदासजी लिखते हैं—

उठे राम सुन प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
बरबस लिये उठाय उर लाये कृपानिधान।
भरत रामकी मिलन लखि बिसरा सबहिं अपान॥

चित्र इतना भावपूर्ण है कि उसकी मस्तिष्कीय विवेचना होना ही कठिन है। वहाँ हृदयके प्रति हृदयका ही सम्बोधन था और परिणामस्वरूप भरतकी हृदयाग्नि शान्त हो चली थी। सीताकी सहानुभूति भी कुछ कम गहरी न थी, यद्यपि उसमें रामका-सा बाह्य स्पष्टीकरण न था। तुलसीदासजी लिखते हैं—

सीय असीष दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं॥

भाव कितना गम्भीर और उच्च है। शब्दोंका प्रयोग नहीं हुआ और न हो ही सकता था। परन्तु प्रेमकी भाषा ही और होती है जिसके समझनेमें कभी ग़लती नहीं होती। उस भाषाको भरतने विद्युत्वेगके साथ समझ लिया और उनका भय और शोक जाता रहा। तुलसीदासजी लिखते हैं—

सब बिधि सानुकूल लखि सीता। मे बिसोच उर अपडर बीता॥

आह! बेचारे हैमलेटके लिये तो ऐसी सहानुभूतियाँ प्राप्य ही न थीं, स्वयं उसकी माता और प्रेमिका भी उसके हृदयके तापको किसी अंशमें भी शान्त न कर सकीं और परिणाम यह हुआ कि वह ताप एक ऐसी प्रचण्ड ज्वालामें परिणत हो गया जिसमें हैमलेट और सभी लोग भस्मीभूत होकर रह गये!

एक प्रश्न

एक महानुभावने किसी रियासतसे 'कल्याण' कार्यालयद्वारा कई प्रश्न मेरे पास भेजे हैं। जिनमेंसे एक इसी प्रसङ्गका है। अतः उत्तर देना आवश्यक प्रतीत हुआ। प्रश्न यह है कि तुलसीदासजीने—

झलका झलकत पायन कैसे।

—वाला करुणाजनक चित्र जैसा भरतका खींचा है वैसा ही रामका क्यों नहीं खींचा?

प्रश्न अत्यन्त रोचक है, अतः संक्षिप्त उत्तर निम्नानुसार है—

(१) कविका मुख्य उद्देश्य जितना करुण-रस दशरथ और भरतके प्रति उत्पन्न करना है उतना अन्य किसीके प्रति नहीं। उन्हीं दोनोंपर वैसी घटनाओंका विशेष प्रभाव था। उन्हीं दोनोंमें अधिक स्वाभाविक भावुकता थी और इसीलिये वही दोनों कठिनाइयोंकी ठेसका अधिक अनुभव करते थे।

(२) हम पूर्व ही बर्नार्ड शा (Bernard Shaw) महोदयके उस कथनका उल्लेख कर चुके हैं जिसमें बतलाया गया है कि किसी व्यक्तिकी सबसे अधिक आनन्दपूर्ण अवस्था वह होती है जब वह यह अनुभव करता है कि उससे विश्वकी शक्तियाँ कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करा रही हैं। जो लोग रामको अवतार नहीं मानते, वे भी उन्हें कम-से-कम वैसा एक व्यक्ति तो अवश्य मानते हैं। इसीलिये अयोध्यासे चलते समय उनके हृदयमें आनन्द है। अगर कुछ शोक है तो दूसरोंका। अयोध्यासे कुछ दूर निकल जाने और सुमन्तसे विदा होनेके पश्चात् तो उपर्युक्त शोक भी प्रकटरूपमें न रह गया और प्रसन्नता ही अधिक स्पष्ट हो गयी। इस अन्तरको कविने स्वयं ही अनुभव कर एक स्त्रीके मुखसे इस प्रकार कहलाया है। भरत और शत्रुघ्नको चित्रकूट जाते हुए देखकर उस स्त्रीने अपनी सखीसे यों कहा है—

नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेह होत यहि भेदा॥

आह! रामकी प्रसन्नता और भरतके 'मानसखेदा' का कैसा उत्तम संकेतात्मक चित्र है।

साधारण अनुभव भी यही बताता है कि आनन्दकी अवस्थामें हमारा शरीर अधिक कष्ट सह सकता है। आगे चलकर हम देखेंगे कि जब भरत भी कुछ वैसे ही आनन्दकी अवस्थामें पहुँचे हैं तो उन्होंने स्वयं रामसे वनों एवं पर्वतोंके भ्रमणार्थ आज्ञा माँगी है और तब उनके पाँच दिनोंके भ्रमणमें कहीं भी 'झलके' का ज़िक्र नहीं है।

(३) रामको वन्यजीवनका अभ्यास पहलेहीसे था, क्योंकि वह कुछ कालतक विश्वामित्रजीके साथ रह चुके थे। फिर तुलसीदासजीने भरतका लालन-पालन बड़े दुलारका दिखाया है। भरतने स्वयं ही रामके वात्सल्यका उल्लेख करते हुए यों कहा है—

हारेहु खेल जितावत मोहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे लालन-पालनके पश्चात् प्रथम यात्रामें झलकोंका पड़ जाना नितान्त स्वाभाविक है।

(४) हिन्दू-सिद्धान्तानुसार विश्वकी शक्तियाँ केवल जड़ शक्तियाँ नहीं हैं प्रत्युत उनमें वह चैतन्य व्यक्तित्व है जिससे संसारका कार्य ठीक-ठीक चलता है। उन्हीं शक्तियोंको 'देव' कहा है। वे ही शक्तियाँ प्रारम्भमें भरतके प्रेमकी परीक्षा कर रही थीं, और क्योंकि भरत विश्वद्रोही रावणके मारनेके कार्यमें बाधा-सी डालने जा रहे थे, इसलिये पग-पगपर कठिनाइयाँ भी पैदा कर रही थीं। रामकी यात्रामें वे सभी शक्तियाँ उनकी सहायतापर उद्यत थीं। वह तो जब देवताओंके गुरुने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर यह भय दिखाया कि—

जो अपराध भक्तकर करई। राम-रोष पावक सो जरई॥

तब उन्होंने भरतके प्रति भी अपना व्यवहार बदला, और तब आगे भरतका मार्ग भी सुगम हो जाता है जिसका चित्रण—

किये जाहिं छाया जलद,

तथा—

'तस मग भयेउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात॥

इत्यादि शब्दोंमें किया गया है। (क्रमशः)

सन्त-चरणोंका प्रभाव और उसका प्रत्यक्ष अनुभव ❀

(लेखक—श्रीदेवीचरणजी निगम एम० ए०)

पाल ब्रण्टन साहब भारतवर्ष घूमने आये थे। यहाँ वे इस देशकी बहुत-सी गुप्त और विशेष बातोंको जानना चाहते थे। उन्हें जहाँ कहीं कोई मिलता, उससे तरह-तरहके प्रश्न करते। बहुत-सी बातें करते, और अपनी जिज्ञासाको अन्य प्रकारसे भी प्रकट करते थे। अपनी दशा उन्होंने एक अबोध बालककी ऐसी बना ली थी।

एक बार संयोगवश उन्हें मद्रासके पास एक तपस्वी साधु मिल गये। उनसे भी ब्रण्टन साहबने प्रश्न किये, और उचित अवसर समझकर अपने सन्देह भी उनसे कह सुनाये। साधुजीने उनके सब प्रश्न सुन लिये और उनसे कहा—'अगर आपको कहीं सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है तो वह केवल, रमणाश्रम ही में प्राप्त हो सकती है। आप वहाँ जाइये। आपको सन्तोष होगा।' यह कहकर साधुजी चुप हो गये।

ब्रण्टन साहब इसपर बड़ी सन्दिग्ध अवस्थामें पड़ गये। रमणाश्रमके सम्बन्धमें उन्होंने पहलेसे कई किंवदन्तियाँ सुन रक्खी थीं। इस कारण, उनकी तबियत वहाँ जानेके लिये कुछ हिचकिचाती थी। अन्तमें जब कुम्बकोणम्के श्रीशंकराचार्यजीने श्रीरमणाश्रमकी प्रशंसा की, और वहाँ जानेके लिये उनसे कहा, तब वे गये।

× × ×

प्रातःकालका समय था। एक जानकार आदमीको साथ लेकर वे रमणाश्रममें आ पहुँचे। आश्रममें शान्तिका साम्राज्य था। चारों ओरसे सन्नाटा छा रहा था। एक बड़े हालमें महर्षिजी चुपचाप पत्थरकी मूर्तिकी तरह निश्चल और निश्चेष्ट बैठे थे। नये आगन्तुकोंकी

* अन्य अंग्रेज़ोंकी भाँति, 'पाल ब्रण्टन' साहब भी भारतवर्षमें घूमने आये थे। इस यात्रामें उन्होंने श्रीरमणाश्रमके श्रीमहर्षिजी के दर्शन किये। वहाँपर उनकी जो दशा हुई, और जो सुख, शान्ति उन्हें प्राप्त हुई, उसका वर्णन उन्होंने "A search in Secret India" में बड़ी भाव-पूर्ण भाषामें किया है। उसीका हिन्दी रूपान्तर मैं कल्याणके पाठकोंके सामने उपस्थित करता हूँ। घटना हृदयङ्गम करने योग्य है। —लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहटसे वे ज़रा भी सचेत नहीं हुए। ब्रण्टन साहब महर्षिजीकी अवस्थाको सावधानीसे देखने लगे, और विचारने लगे।

'ऐं, यह क्या बात है? ये तो हमलोगोंके आनेसे उठे भी नहीं। इसके माने तो यही हैं कि इन्हें हमलोगोंके आनेका ज्ञान नहीं। ज्ञान होता तो कुछ तो इशारा करते। इनका शरीर तो पाषाणवत् स्थिर है। इनकी दृष्टि भी तो मेरी दृष्टिसे नहीं मिलती। इनकी आँखें तो किसी और ही वस्तुको देख रही हैं।

'मैं तो यह समझता था कि मनुष्यकी आँख देखकर मैं उसकी आत्मातकका हाल जान सकता हूँ। परन्तु महर्षिकी आँखोंसे मेरी आँखें सामना नहीं करतीं। मुझे चकाचौंध माल्म होती है।'

उन्हें इस तरहकी उधेड़बुनमें लगे हुए आधा घण्टा बीत गया। और धीरे-धीरे हालमें टँगी हुई घड़ीने पूरा घण्टा भी बजा दिया। वहाँकी शान्तिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इतने ही समयमें साहब भी ऐसी अवस्थामें हो गये कि उन्हें सामने बैठे हुए महर्षिके अलावा और किसीका कुछ ज्ञान न रहा।

महर्षिकी इस अवस्थापर दूसरा यूरोपियन न माल्म क्या-क्या सोचता। ढकोसला, ढोंग, लूटनेका तरीक़ा, आदि आदि बहुत-से शब्दोंमें वह इस अवस्थाका वर्णन करता। जाति-वश या संस्कार-वश, ब्रण्टन साहबके मस्तिष्कमें भी ऐसे विचारोंकी लहरें उठीं। परन्तु वे दूसरे ही क्षण शान्त होती गयीं।

वे फिर सोचने लगे—'इस मनुष्यमें कोई बात है। यह मुझे ज़बरदस्ती खींचकर अपनी ओर आकर्षित करता है। मैं दूसरी तरफ़ देख नहीं सकता हूँ। पहले तो मुझे एक तरहका तिरस्कार-सा प्रतीत होता था। मुझे दुःख था कि मैं आश्रममें आया, और किसीने मुझे पूछा नहीं, मेरा स्वागत नहीं किया। परन्तु वे भाव अब तो नष्ट हो गये।'

वे इसी भाँति और सोचते रहे। जब दूसरा घण्टा भी आधा बीतनेको आया, तब उनकी हालत कुछ सँभली। वे सचेत हुए, और उन्होंने इस बातका अनुभव किया कि उनके मनमें बड़ा भारी परिवर्तन हो रहा है। शान्तिदेवी बड़े वेगसे उनके अन्दर प्रवेश कर रही हैं। उनके सब प्रश्न, जो वे रेलपर बड़ी सावधानीसे लिखकर लाये थे, एक-एक करके विलीन हो चले। उन्होंने केवल यही जाना कि उनकी आन्तरिक व्यथाको धोती हुई, उनके व्याकुल हृदयको आनन्दित करती हुई, एक सुख और शान्तिकी नदी उनके अन्दर उमड़ आयी है।

वे विचारने लगे—'वे प्रश्न, वे सन्देह, जो मुझे प्रायः उद्विग्न कर दिया करते थे, आज कितने तुच्छ माल्म होते हैं। आज यह बात मुझे स्पष्ट भासती है कि यह बुद्धि स्वयं ही व्यर्थके प्रश्न खड़े कर देती है, और फिर उनको सिद्ध करनेके प्रयत्नमें अपनेको झगड़ेमें डाल देती है।'

प्रिय पाठको! साहब बहादुरकी दशा-परिवर्तनकी इतिश्री यहीं नहीं होती है। अब वे साहब कोरे साहब नहीं रहे। अब उन्होंने शान्तिदेवीकी गोदमें अपनेको अर्पित कर दिया। पूरे दो घण्टे बीत गये, किन्तु उन्हें इस भाँति समय जानेमें कोई परेशानी नहीं माल्म हुई।

वे फिर विचारने लगे—'क्या यह मनुष्य, नहीं नहीं महर्षि, कोई ऐसा प्रभाव चारों तरफ़ फैलाता है, जिससे आसपासका वातावरण उसीसे प्रभावित होता है। मैं अपनेको इस योग्य नहीं समझता हूँ कि मैं दूसरोंके आत्मिक बलको अपनेमें ग्रहण कर सकूँ।'

वे इसी भाँतिकी मानसिक तरंगोंसे आप्लावित हो रहे थे, जब उनके साथके आदमीने चुपकेसे उनके कानमें कहा—'आप तो महर्षिसे कुछ पूछने आये थे। अब आप मौन क्यों हो गये हैं?'

साहबने उसकी तरफ़ देखा, और धीरेसे कहने लगे—'शायद तुम यह समझते हो कि मैं अब इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। मैं अब उकता गया हूँगा। परन्तु यह बात नहीं है। मैं आज बहुत सुखी हूँ। मुझे कुछ नहीं पूछना है।'

× × ×

थोड़ा समय इस तरह बीत गया। महर्षिजीका समाधिसे उठनेका क्षण निकट आ गया। नीचेकी फ़र्शपर कुछ मूर्तियाँ साहबके सामने नाचने लगीं। साहबने कुछ दिव्य ध्वनियाँ सुनकर अपने कान पवित्र किये। धीरे-धीरे महर्षिकी आँखोंमें हरकत होने लगी, और वे साहबकी आँखोंके सामने हुईं। यह पहला अवसर था जो साहब महर्षिकी कृपादृष्टिके पात्र हुए। साहबने एक प्रश्न सुना— स्पष्ट सुना। उनसे कोई कहने लगा—'क्या यह सन्देहरूपी पिशाच अब भी तुमको सता रहा है? क्या अब भी तुम्हारा कोई प्रश्न उत्तर देनेको बाक़ी है? अब तो तुमने मङ्गलमयी शान्तिदेवीकी एक झाँकी देख ली है। इस शान्तिके लिये मनुष्य क्या, जीव समाज सदा लालायित रहता है।'

साहबने उत्तर देना चाहा। परन्तु वे गद्गद हो गये। उनके मुखसे वचन न निकला। प्यारे पाठको! उस समय, उनकी और भी जो अवस्था हुई उसे हम उन्हींके लिये छोड़े देते हैं। हमारी लेखनी इससे आगे अब मौन होना चाहती है।

× × ×

उस समयसे श्रीमहर्षिका जन्म-दिवस साहबके लिये एक बड़े उत्सवका विषय होता है। उस दिन बड़ी धूमधाम रहती है और बच्चे-बूढ़े सभी कुटुम्बके लोग उस आनन्दमें सम्मिलित होते हैं। अब साहब अकसर कहा करते हैं कि महात्माओंकी श्रीचरणोंकी ज्योतिके विषयमें ये साइन्सवाले कुछ नहीं जानते। एक दिन आयेगा, जब इन लोगोंको इस विषयकी भी जानकारी प्राप्त करनी पड़ेगी।

दीनता

श्रीकनकभवन निज मंदिरमें सिंहासनके दोनों जानिब।
काँचोंमें पानी-तेल भरा जलते थे दो दीपक वाजिब॥
जलने कुछ मनमें गर्व लिये यों कहा तेलसे 'हे प्रियवर!
बतला तू क्यों नीचे ढकेल नाचा करता मेरे सिरपर॥
मैं स्वच्छ हूँ तू मटमैला है, अतिशय निषिद्ध, मैं पावन हूँ।
सब जीवोंका मैं जीवन हूँ सबहीकी प्यास बुझावन हूँ॥
धरतीसे भी तो मेरे बिना नहिं नेक उपजता है दाना।
मेरी समताका भी तू नहीं क्यों बढ़कर इतना इतराना॥
क्या गुण तुझमें है मुझे बता जिसकी नोटिस श्रीहरिने ली।
मेरे ऊपर तेरा आसन दे करके तुझे बड़ाई दी॥'
तब विनय-प्रेमसे यों बोला वह तेल 'सुनो, मेरे भाई।
सर्वोपरि होनेका घमंड तुझमें है मुझमें हरुआई॥
सोचो तो सही कि बीज मेरा शकृतमय मिट्टीमें मिलकर।
जब उगा, बढ़ा, पनपा, फूला, औ लगा पकी छीमोंमें फर॥
तब काट-कूटकर कोल्हूमें मेरा सिर पेरा गया चिया।
उज्ज्वल प्रकाश अब देता हूँ उन सबको जिन्होंने कष्ट दिया॥'

बस इसी दीनतापर मेरी रीझें श्रीसहित बिहारीजी।
अभिमान नहीं हरिको भाता उनको अधीनता प्यारी जो॥

—बालकराम विनायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत-प्रार्थना

(बीकानेरनरेश महाराजा रायसिंहजीके भ्राता इतिहासप्रसिद्ध श्रीपृथ्वीराजजी कृत)

(संग्रहकर्ता तथा सम्पादक—श्रीमुरलीधर व्यास लालाणी 'विशारद', फकीरचन्द पुरोहित)

हरि जेम हलाड़े जिम हालीजे,कांय धणियां सूं जोर कृपाल।
मौळी दिवो दिवो छत्र माथे, देवो सो लेऊं सदयाल।
रोस करो भावे रलियावत, गज भावे खर चाढ गुलाम।
माहरे सदा ताहरी माहव रजा सजा सिर ऊपर राम।
मूझ उम्मेद बड़ो महमेहण, सिन्धुर पाषे केम सरे।
चीतारो खर सीस चित्र दे, किसूं पूतलियां पांण करै।
तू स्वामो पृथुराज ताहरो बलि बोजां को करै बिलाग।
रूड़ो जिको प्रताप रावलो भूंडो जिको हमीणो भाग ॥१॥

मैं हरि तजि गुण मानव्यां, जोड़े किया जतन्न।
जाणि चितः भ्रम बांधिया, गलि गाधाह रतन्न ॥२॥
प्रिथु जु मैं अवरापणे, गुण छड्डे गोपाल।
मणि गूंथे मोताहलां, मड़ गळ घाती माल ॥३॥
हरि परिहरि करि अवरसूं, जास बिलूंबी बाण।
तरु छंडे लागी लता पत्थरके गल जाण ॥४॥
तूंबी ही तारण समथ जल ऊपर पाखाण।
जगतारण तारिय तइ तह केहा बाखाण ॥५॥
खिण बसतां ऊजड़ करे, खिण ऊजड़ खिण बास।
यह जग अरहटकी घड़ी देख डर्यो प्रिथुदास ॥६॥
प्रिथु प्रभु पंथी प्रेमको नयने दीय दिखाय।
मो मन लगर तुरंग ज्यों ज्यों खंचे तिम जाय ॥७॥
जात वलै नहिं दीहड़ा, जिम गिर निरझरणाइ।
उठ रे आतम भजन कर, सुवे निचिन्ता काइ ॥८॥

हरि जिस प्रकार परिचालित करते हैं उसी प्रकार चलना पड़ता है। चाहे सरपर मौली रख दें अथवा दया करके छत्र धर दें उनकी मरजी; जो कुछ दें सो लेनेको तैयार हूँ। स्वामीके आगे कोई जोर थोड़े ही चलता है। स्वामी कृपा करें चाहे रूठ जावें, दासको हाथीपर चढ़ावें अथवा गधेपर; हे माधव ! आपकी कृपा और अकृपा दोनों ही मेरे लिये हमेशा शिरोधार्य ही हैं। हे सर्वशक्तिमान् ! मुझे तुम्हारी बड़ी उम्मेद है। आपकी सागरवत् कृपासे अलग रहकर मेरा निर्वाह कैसे हो सकता है। चित्रकार यदि किसी पुतलीके सिरपर गधेका शीश बना दे तो वह चित्रित पुतली क्या जोर कर सकती है। हे प्रभु ! तुम मुझ पृथ्वीराजके स्वामी हो और मैं तुम्हारा हूँ, हमारे इस सम्बन्धको भला कौन विच्छेद कर सकता है। मेरी जो भलाई होती है वह सब तो आपका प्रताप है और जो बुराई होती है वह मेरे ही मन्दभाग्यका कारण है।

मैंने हरिके गुणोंको छोड़कर साधारण मनुष्योंके गुणोंमें यत्नपूर्वक प्रीति जोड़ी, मानो पागलने अन्य उपयुक्त पात्रोंको छोड़कर गदहेके गलेमें अमूल्य रत्नको बाँध दिया। पृथ्वीराज कहते हैं, मैंने अज्ञानवश गोपालके गुणोंको छोड़ दिया और अन्य सांसारिक गुणोंका सेवन किया,मानों मणियुक्त मुक्तामालाको मृतक शरीरके गलेमें डाल दिया।

हरिके गुणोंको छोड़कर जिसकी वाणी अन्यत्र माया-लिप्त हो गयी तो मानो लता तरुके आधारको छोड़कर पत्थरके गले लग गयी है।

जब तुम्बी-जैसी तुच्छ वस्तु ही पत्थरको पानीके ऊपर तैरानेकी ताकत रखती है तब यदि ईश्वर जो सब संसारके स्वामी हैं भवसागरसे पार उतार दें तो इसमें कहना ही क्या।

कालका चक्र विचित्र है, क्योंकि यह अरहटकी शृङ्खलाकी तरह, जिसका पात्र एक क्षणमें भर जाता है और दूसरे ही क्षणमें खाली हो जाता है, बस्तीको क्षणभरमें उजाड़ कर देता है, और उजाड़को बसा देता है, जिसको देखकर मैं पृथ्वीराज डरता हूँ।

हे प्रभु ! मैं पृथ्वीराज आपका दास आपके प्रेम-पन्थका पथिक हूँ। इसे प्रज्ञाचक्षु दीजिये जिससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य प्रेमपथपर विचलित न हो, अन्यथा मेरा मन तो चपल तुरंगकी तरह चञ्चल हो रहा है और ज्यों-ज्यों मैं उसको खींचता हूँ त्यों-त्यों वह कुमार्गपर ही जाता है।

दिन एक बार जाकर वापस नहीं लौटते, जिस प्रकार पर्वतके झरने पर्वतसे निकलकर वापस नहीं लौटते। हे संसारी जीव! मोहनिद्रासे उठकर भजन कर, निश्चिन्त होकर क्यों सो रहा है।

एक बार

(लेखक—श्रीमनमोहनस्वरूप 'सदाशिव', एम० ए०)

एक बार,
एक बार, आओ तो॥
एक बार, कान्ह यार! चाँदमुख दिखाओ तो।
अमी रस चखाओ तो॥
आन कर रिझाओ तो।
एक बार आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ १॥

आओ तो,
आओ तो, एक बार॥
आओ तो, धाओ तो। यहींतक प्राणाधार!
प्रियतम! बस एक बार॥
आओ अपनाओ तो।
एक बार आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ २॥

मौन मीत!
प्रेम-गीत गाओ तो॥
नव पुनीत प्रीत रीत। आप ही सिखाओ तो।
बाँसुरी बजाओ तो॥
प्रेम-पथ लखाओ तो।
एक बार आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ ३॥

शोर शार,
हाहाकार हो चुका॥
मान, रार, विरह, ज्वार। सबका वार हो चुका।
बहुत देर रो चुका॥
विरद अब निभाओ तो।
एक बार आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ ४॥

प्राणप्राण!
प्राणदान दे लो ना॥
आन, बान, योग, ध्यान! सबहि ज्ञान ले लो ना।
प्रेमखेल खेलो ना॥
मायाहि रचाओ तो।
एक बार, आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ ५॥

कमलनैन!
एक सैन, मोर ओर॥
दिवस रैन, कहाँ चैन? जिसका हो मन चकोर।
तुमरे बिन, नित विभोर॥
आँखमें समाओ तो।
एक बार, आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ ६॥

प्रेमफाग,
विरह आग, एक बात॥
रोग राग, भोग भाग। जोग जाग, एक बात।
प्रेम पाग, एक बात,
'सदाशिव' सिखाओ तो।
एक बार, आओ तो॥ एक बार, कान्ह यार!
एक बार आओ तो॥ ७॥*

* इस संसारमें राग ही रोग है और जो भाग्यमें हो वही भोगना पड़ता है—इस भवस्वप्नसे जागना ही यथार्थ योग है, पर यह सब प्रेममें पगकर प्रेमीको मिलें—यही इच्छा प्रेमी भगवान्‌से करता है और यही पाठ सीखना उसे इष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराधाजी कौन थीं ?

हरदोईसे एक सज्जन लिखते हैं कि—

'कल्याण' में छप चुका है कि श्रीराधाजी श्रीभगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति या आदिशक्ति हैं। अगर श्रीभगवान्‌की आदिशक्ति श्रीराधाजी हैं तो श्रीरुक्मिणीजी कौन शक्ति हैं ? हम-जैसे लोग जैसे श्रीसीताजीको आदिशक्ति मानते हैं, वैसे ही श्री-रुक्मिणीजीको भी। श्रीराधाजीका नाम श्रीमद्भागवतमें कहीं नहीं है, अगर आदिशक्ति थीं तो ये भगवान्‌के साथ क्यों नहीं रहीं ? लौकिक रीतिसे इनसे विवाह होना चाहिये था।'

आपकी दूसरी शङ्का है—'गोपियोंका प्रेम शुद्ध कामरहित था या कैसा?'

और इन दोनों शङ्काओंका समाधान आप मुझसे 'कल्याण' द्वारा चाहते हैं।

आपके प्रश्नोंका उत्तर देना बहुत ही कठिन है; क्योंकि मेरे विश्वासके अनुसार श्रीराधाकृष्णतत्त्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत हैं जो अप्राकृत क्षेत्रमें, अप्राकृत मन-बुद्धि-शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें हुई थीं।* अप्राकृत लीलाको देखने, सुनने, कहने और समझनेके लिये अप्राकृत नेत्र, कर्ण, वाणी और मन-बुद्धि चाहिये। अतएव मुझ-सा प्राकृत प्राणी, प्राकृत मन-बुद्धिसे कैसे इस तत्त्वको जान सकता है और कैसे प्राकृत वाणीमें उसका वर्णन कर सकता है ? अतएव इस सम्बन्धमें मैं जो कुछ भी लिख रहा हूँ, उससे किसीको यह न समझना चाहिये कि मैं जो कहता हूँ यही तत्त्व है, इससे परे और कुछ नहीं है; न यह मानना चाहिये कि मैं किसी मतविशेषपर आक्षेप करता हूँ, या किसी तार्किकका मुँह बन्द करनेके लिये ऐसा लिखता हूँ, अथवा आग्रहपूर्वक अपना विश्वास दूसरोंपर लादना चाहता हूँ। मेरा यह कहना कदापि नहीं है कि मेरी लिखी बातोंको पाठक मान लें। मैं तो सिर्फ अपने विश्वासकी बात—शास्त्र और सन्तोंद्वारा सुनी हुई—अपने कल्याणके लिये लिख रहा हूँ। 'कल्याण' के प्रेमी जिन ग्राहक सज्जनने मुझको यह लिखनेकी आज्ञा दी, उनका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ; क्योंकि इसी बहाने मुझ क्षुद्रका थोड़ा-सा समय श्रीभगवान्‌की चर्चामें चला गया। मैं प्रश्नोत्तर और तर्कके लिये कोई बात नहीं लिख रहा हूँ। अतएव मेरी प्रार्थना है कि पाठकगण तर्क-बुद्धिका आश्रयकर मुझसे इसके सम्बन्धमें कोई प्रश्नोत्तरकी आशा कृपया न रक्खें। विवादमें तो मैं अपनी हार पहले ही स्वीकार कर लेता हूँ। क्योंकि मैं इस विषयपर तर्क करना ही नहीं चाहता। अवश्य ही मेरे विश्वासका बदलना तो अन्तर्यामी प्रभुकी इच्छापर ही अवलम्बित है।

परिपूर्णतम, परमात्मा, परात्पर, सच्चिदानन्दघन, निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य और सौन्दर्यके सागर, दिव्य सच्चिदानन्दविग्रह आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीराममें मैं कोई भी भेद नहीं मानता और इसी प्रकार भगवती श्रीराधाजी, श्रीरुक्मिणीजी और श्रीसीताजी आदिमें भी मेरी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। भगवान्‌के विभिन्न सच्चिदानन्दमय दिव्य लीला-विग्रहोंमें विभिन्न नाम-रूपोंसे उनकी ह्लादिनी शक्ति साथ रहती ही है। नाम-रूपोंमें पृथक्‌ता

* श्रीभगवान्‌के देहादि यदि उस मायाके कार्य पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित, प्राकृत होते जो माया आवरण-रूपा है, तो मायातीत, गुणातीत, आत्माराम मुनिगण भगवान्‌के सौन्दर्य, उनके अंग-गन्ध, उनकी चरणधूलिके लिये लालायित न होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीखनेपर भी वस्तुतः वे सब एक ही हैं। स्वयं श्रीभगवान्‌ने ही श्रीराधाजीसे कहा है—

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया ।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी ॥
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती ।
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती ॥
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती॥
× × ×
रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य कामिनी ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णखण्ड अ० १२६)

'हे राधे ! जिस प्रकार तुम गोलोक और गोकुलमें श्रीराधिकारूपसे रहती हो उसी प्रकार वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वतीके रूपमें विराजमान हो। तुम ही क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुकी प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो। तुम ही धर्मपुत्रकी कान्ता लक्ष्मी-स्वरूपिणी शान्ति हो। तुम ही भारतमें कपिलकी प्रिय कान्ता सती भारती हो, तुम ही द्वारकामें महालक्ष्मी रुक्मिणी हो। तुम्हारी ही छाया सती द्रौपदी है। तुम ही मिथिलामें सीता हो। तुम्हींको रामकी प्रिया सीताके रूपमें रावणने हरण किया था।'

भगवान्‌के दिव्यलीलाविग्रहोंका प्राकट्य ही वास्तवमें आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे ही है। श्रीभगवान् अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये अथवा उसका नवीन रूपमें आस्वादन करनेके लिये ही स्वयं अपने आनन्दको प्रेमविग्रहोंके रूपमें प्रकट करते हैं और स्वयं ही उनसे आनन्दका आस्वादन करते हैं। भगवान्‌के उस आनन्दकी प्रतिमूर्ति ही प्रेमविग्रहरूप श्रीराधारानीजी हैं, और यह प्रेमविग्रह सम्पूर्ण प्रेमोंका एकीभूत समूह है। अतएव श्रीराधिकाजी प्रेममयी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है वहीं आनन्द है। आनन्दरससार-का घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरससारकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधारानी हैं। अतएव श्रीराधा और श्रीकृष्णका विछोह कभी सम्भव ही नहीं। न श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण कभी रह सकते हैं और न श्रीकृष्णके बिना श्रीराधाजी। श्रीकृष्णके दिव्य आनन्दविग्रहकी स्थिति ही दिव्य प्रेमविग्रहरूप श्रीराधाजीके निमित्तसे है। श्रीराधारानी ही श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके जीवन हैं। दिव्य प्रेमरससारविग्रह होनेसे ही श्रीराधारानी महाभावरूपा हैं और वह नित्य-निरन्तर आनन्दरससार, रसराज, अनन्त ऐश्वर्य—अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्यनिधि, सच्चिदानन्दसान्द्राङ्ग, अविचिन्त्यशक्ति, आत्माराम-गणाकर्षी, प्रियतम श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करती रहती हैं। इस ह्लादिनी शक्तिकी लाखों अनुगामिनी शक्तियाँ मूर्तिमती होकर प्रतिक्षण सखी, सहेली, सहचरी और दूती आदि रूपोंसे श्रीराधाकृष्णकी सेवा किया करती हैं; श्रीराधाकृष्णको सुख पहुँचाना और उन्हें प्रसन्न करना ही इनका एकमात्र कार्य होता है। इन्हींका नाम श्रीगोपीजन है।

नित्य आनन्दमय, नित्य तृप्त, नित्य एकरस, कोटि-कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रह, पूर्णब्रह्म परमात्मामें सुखेच्छा कैसे हो सकती है ? यह प्रश्न युक्तिसंगत प्रतीत होनेपर भी इसीको सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। भाव और प्रेम परमात्मासे पृथक् वस्तु नहीं हैं। प्रेमाश्रयका भाव प्रेमविषयमें और प्रेम-विषयका भाव प्रेमाश्रयमें अनुभूत हुआ करता है। श्रीगोपीजन प्रेमका आश्रय हैं और श्रीकृष्ण प्रेमके विषय हैं। श्रीगोपियोंका अप्राकृत दिव्य भाव ही परब्रह्ममें दिव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखेच्छा उत्पन्न कर देता है। प्रेमका महान् उच्च भाव ही उस पूर्णकाममें कामना, नित्यतृप्तमें अतृप्ति, क्रियाहीनमें क्रिया और आनन्दमयमें आनन्दकी वासना जागृत कर देता है। अवश्य ही यह सुखेच्छा, कामना, अतृप्ति, क्रिया या वासना जड इन्द्रियजन्य नहीं है, इस मर्त्य जगत्‌की मायामयी वस्तु नहीं है। क्योंकि वह दिव्य आनन्द और दिव्य प्रेम अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण और श्रीराधारानी सदा अभिन्न हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि सन्ततम्।

(ब्रह्मवैवर्त० कृष्णखण्ड १४। ५८-५९)

'जो तुम हो, वही मैं हूँ। हम दोनोंमें किञ्चित् भी भेद नहीं है, जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति और पृथिवीमें गन्ध रहती है उसी प्रकार मैं सदा तुममें रहता हूँ।'

यही बात भगवान् श्रीराम और मिथिलेशकुमारी श्रीसीताजी, भगवान् श्रीमहाविष्णु और जगज्जननी महालक्ष्मी, भगवान् श्रीशङ्कर और महामाया श्रीगौरी-देवीके विषयमें समझनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण और माता श्रीरुक्मिणीके लिये भी यही बात है। अब रही श्रीराधिकाजीके विवाहकी बात, सो इस रूपमें इनका लौकिक विवाह कैसा? वृन्दावन-लीला ही लौकिक लीला नहीं है। लौकिक लीलाके हिसाबसे तो ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही श्रीकृष्ण व्रजका परित्याग कर मथुरा पधार गये थे। इतनी छोटी अवस्थामें स्त्रियोंके साथ प्रणयकी बात ही कल्पनामें नहीं आती। और अलौकिक जगत्‌में दोनों सर्वदा एक ही हैं। फिर भी भगवान्‌ने ब्रह्माजीको श्रीराधाजीके दिव्य चिन्मय प्रेमरससारविग्रहका दर्शन करानेका वरदान दिया था, उसकी पूर्तिके लिये एकान्त अरण्यमें ब्रह्माजीको श्रीराधाजीके दर्शन कराये, और वहीं ब्रह्माजीके द्वारा रसराज और महाभावकी विवाहलीला भी सम्पन्न हुई। ये विवाहिता श्रीराधाजी नित्य ही भगवान् श्रीकृष्णके संग रहती हैं। अवश्य ही छिपी रहती हैं। श्रीकृष्ण-कृपा होनेपर ही किन्हीं प्रेमी महानुभावको इस 'जुगल जोड़ी' के दुर्लभ दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका नाम प्रकटरूपमें नहीं आया है, यह सत्य है; परन्तु वह उसमें इसी प्रकार छिपा हुआ है जैसे शरीरमें आत्मा। प्रेमरससार-चिन्तामणि श्रीराधाजीका अस्तित्व ही आनन्दरससार श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेम-लीलाको प्रकट करता है। जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ श्रीराधा नहीं हैं, यह कहना ही नहीं बनता। तार्किकोंको नहीं, भक्तों और शास्त्रके सामने शिर झुकानेवालोंको तो भगवान्‌के ये वाक्य सदा स्मरण रखने चाहिये—

आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः॥
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
पूर्वान् सप्त परान् सप्त पुरुषान् पातयत्यधः।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्॥
अज्ञानादावयोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः।
पच्यन्ते नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृ० १५। ६७-७०)

'जो नराधम हम दोनोंमें (श्रीकृष्ण और श्रीराधामें) भेद-बुद्धि करता है वह जबतक चन्द्र-सूर्य रहते हैं, तबतकके लिये कालसूत्र नामक नरकमें रहता है। उसके पहलेके सात और पीछेके सात पुरुष अधोगामी होते हैं और उसका कोटि जन्मार्जित पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो नराधम अज्ञानवश हमलोगोंकी निन्दा करता है वह पापात्मा भी चन्द्र-सूर्यकी स्थितिकालतक घोर नरक भोगता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब रही गोपियोंके प्रेमके शुद्ध होनेकी बात। इसपर रासपञ्चाध्यायीका यह श्लोकार्द्ध स्मरण करना चाहिये।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।

'छोटे बालक जैसे अपने प्रतिबिम्बके साथ खेला करते हैं, वैसे ही रमेश भगवान्‌ने भी व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा की।' लीलारसमय आनन्दकन्द भगवान् स्वभावसे ही प्रेमवश हैं। अतएव उन्होंने प्रेमभावसे ही अपनी आनन्दस्वरूपा शक्तिद्वारा अपने ही प्रतिबिम्ब-रूप प्रेमस्वरूपा महाभागा गोपियोंके साथ क्रीड़ा की। उनका तो यह आत्मरमण था। और गोपियोंका इसमें श्रीकृष्णसुख ही एकमात्र उद्देश्य था। अतएव प्रेममयी गोपी और आनन्दमय श्रीकृष्णकी यह लीला सर्वथा कामगन्धशून्य थी। गोपियोंका प्रेम अत्युच्च पराकाष्ठाका भाव था। इसीसे उसे 'रूढ़ महाभाव' कहते हैं। इसमें निजेन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाके संस्कारकी भी कल्पना नहीं थी। यह इस जगत्‌की कामक्रीड़ा नहीं थी। यह तो दिव्य आनन्दमय, पवित्र प्रेममय जगत्‌की अति दुर्लभ रहस्यमय लीला थी, जिसका रसास्वादन करनेके लिये बड़े-बड़े देवता और सिद्ध महात्मागण भी लालायित थे। और कहा जाता है कि इसीलिये उन्होंने व्रजमें आकर पशु-पक्षियों तथा वृक्ष-लता-पताके रूपमें जन्म लिया था। श्रीगोपियोंके इस कामशून्य प्रेमभावको, श्रीकृष्णकान्ताशिरोमणि श्रीराधारानीके महाभावको और निजानन्दमें नित्यतृप्त परमात्मामें सुखेच्छा क्यों उत्पन्न होती है और कैसे उन्हें प्रेमरूपा शक्तियोंके साथ लीला करनेमें सुख मिलता है, इस बातको समझने-समझानेका अधिकार श्रीकृष्णगतप्राण, भजनपरायण, प्रेमी रसिक भक्तोंको ही श्रीकृष्णकृपासे प्राप्त होता है। मुझ-जैसा विषयी मनुष्य इसपर क्या कहे सुने? मेरी तो हाथ जोड़कर सबसे यही प्रार्थना है कि अपने मनकी मलिनताका आरोप भगवान्‌के पवित्र चरित्रोंपर कोई कदापि न करें और शङ्का छोड़कर जिसको भगवान्‌का जो नाम-रूप प्रिय लगता हो, जिसकी जिसमें रुचि हो, भगवान्‌के दूसरे नाम-रूपको उससे नीचा न समझकर बल्कि अपने ही इष्टदेवका एक भिन्न स्वरूप समझकर, अनन्यभावसे अपने इष्टकी सेवामें लगे रहें।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

गौरीशंकर

पार्वतीफणिबालेन्दुभस्मन्दाकिनीयुतः।
पवर्गरचितो देवो ह्यपवर्गप्रदायकः॥ १॥

आधे अधर बिंबनकौं पानकी ललाई तैं मात करैं आधे रँगे भस्मके सुरंगामें।
एकै कर्ण कर्णफूल राजत बहु वर्णनकौ, एक कान मुद्रा पड़ी सोभित भिखमंगामें॥
अलिक कंज आधे पै लाल बिंदु राजत हैं, आधे पै इन्दु-कान्ति अग्निके पतंगामें।
भनत सु 'मिश्र' परीं पटिया जटा आधी की आधी जटा शंकरकी तरंग लेत गंगामें॥ २॥

—राधागोविन्द मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरका अनुभव

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)

[गतांकसे आगे]

५–प्राणिमात्रके शरीरकी आन्तर रचना और आन्तरिक क्रियाका तनिक भी विचार करनेपर विश्वम्भरकी दयालुता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। प्राणियोंमें, किसी भी जातिके प्राणीमें अथवा मनुष्यके शरीरमें ऐसा कोई भी अवयव अनुभवमें नहीं आता जो सर्वथा अनुपयोगी हो। शरीरका प्रत्येक अवयव जीवनके लिये उपयोगी है। आन्त्रपुच्छ (Appendix) जैसे एक-दो अवयवोंका कार्य अभीतक डाक्टर नहीं समझ सके हैं; परन्तु ये सब जीवनके लिये उपयोगी हैं। अगर शरीरका कोई अवयव निकाल दिया जाय तो आरोग्य और सुखमें त्रुटि प्रतीत होती है। मनुष्यशरीर और सिंह-व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके शरीरके अवयवोंकी रचनामें भी परमात्माने आवश्यकतानुसार अन्तर रक्खा है। मनुष्योंके दाँत, नख, आमाशय, पित्ताशय, अँतड़ी, अस्थि और त्वचादि अवयव जैसे हैं, उनसे हिंसक प्राणियोंके भिन्न प्रकारके ही देखनेमें आते हैं। अगर मनुष्योंके दाँत और नाखूनके समान हिंसक पशुओंके भी दाँत और नाखून होते तो उन्हें भूखों मरना पड़ता। और हिंसक प्राणियोंके आमाशय और पित्ताशय कमजोर होते तो थोड़े ही समयमें उनकी पाचनक्रिया दूषित हो जाती और वे कालके गालमें समा जाते। अगर उनकी अँतड़ी मनुष्यकी अँतड़ीके समान बहुत लंबी रहती तो मलावरोध होकर आँतमें कीड़े पड़ जाते, और चञ्चलता भी कम रहती जिसके फलस्वरूप आहार कठिनाईके साथ मिलता। बाह्य त्वचा कमजोर रहती तो बाह्य आघात सहन करनेकी शक्ति भी कम हो जाती। अस्थि कमजोर होती तो अधिक चलना, दौड़ना, कूदना इत्यादि क्रियाओंमें त्रुटि आ जाती। इसी प्रकार अगर मनुष्योंको हिंसक पशुओंके समान अवयव मिलते तो उनमें अधिक क्रूरता और बुद्धिमन्दता रहती। इससे कहना पड़ेगा कि परमात्माने सोच-विचारकर ही प्राणियोंके अवयवोंमें अन्तर रक्खा है। अरबके रेगिस्तानमें मुसाफिरी करनेवाले ऊँट यात्राके पूर्व पेटके भीतरकी एक थैलीमें इतना पानी भर लेते हैं जो दो महीनेतक चलता है। फिर आवश्यकतानुसार वे उस जलको उपयोगमें लाते रहते हैं। यह सब रचना ज्ञानपूर्वक ही की हुई मालूम होती है। जिनके लिये जो हितकर हो, उनको वही देना—यह विवेक प्रकृतिमें कदापि नहीं हो सकता।

इसी प्रकार खाये हुए अन्नके साथ आमाशय-रस, थूक, पित्त, अग्निरसादि मिल जानेकी, फिर रसके शोषण होनेकी, मल-मूत्रादि निरुपयोगी भागके अलग होकर यथासमय बाहर निकल जानेकी और रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य इत्यादि बननेकी क्रिया नियम-पूर्वक होती रहती है। यदि एक छोटा-सा काँटा (विजातीय द्रव्य) शरीरमें घुस जाय तो काँटेके आस-पास सूजन हो जाती है और उसमें पीब पैदा हो जाता है। अगर इतनेपर भी सँभाल न हो तो शरीरकी उष्णता बढ़कर ज्वर आ जायगा। फिर घावके आसपासका मांस सड़ने लगेगा। प्रकृतिके कार्यकी दृष्टिसे तो शरीर और काँटा दोनों एक समान प्रकृतिरूप ही हैं, केवल चैतन्य-युक्त दृष्टिसे काँटा विजातीय है। शरीर जीवात्माके कारण जीवन्त है और काँटा जड़ है। ऐसी ज्ञानपूर्वक रचना दृष्टिगोचर होनेपर कहना पड़ता है कि सृष्टिका उत्पादक और रक्षक ईश्वर है, यह प्रकृतिका मनगढ़न्त रूपान्तर नहीं है। आन्तर अवयवोंका रंग देखा जाय तो उसमें भी विभिन्नता प्रतीत होती है। आमाशयका रंग गुलाबी, यकृत्का लाल, पित्ताशयका हरा-पीला, क्लोमका नीला, लघु अन्त्रका हल्का गुलाबी और बृहद् अन्त्रका रंग मैला पीला प्रतीत होता है। ऐसे ही मस्तिष्ककी रचना और उसके विभागोंके रंग-रूपादि तथा ज्ञानतन्तुओंकी क्रिया देखनेसे भी ऐसा सहज ही बोध होता है कि यह सब कृति किसी चेतन शक्तिद्वारा ज्ञानपूर्वक की हुई है।

६–मनुष्योंके हाथकी रेखाओंकी ओर दृष्टि डालनेपर भी ऐसी प्रतीति होती है कि इनकी रचना बुद्धिपूर्वक ही की गयी है। किसी भी दो मनुष्योंकी हस्तरेखाएँ पूर्णरूपसे एक समान नहीं प्रतीत होतीं। थोड़ा-बहुत अन्तर ज़रूर रहता है। यह भिन्नता किसी हेतुको ध्यानमें रखकर ही की गयी है। सामुद्रिक शास्त्र जाननेवाले रेखाओंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न-भिन्न फल बताते हैं। समय-समयपर नयी-नयी रेखाएँ भी बनती हुई प्रतीत होती हैं और उनके अनुसार भावी सुख-दुःखरूप फल भी बहुतोंके जीवनमें देखा गया है। नास्तिक लोग तो ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्रको गप्प ही समझते हैं; परन्तु उनके ऐसा समझनेसे ही सत्य शास्त्र कदापि असत्य नहीं हो सकते। हाथके अँगूठेकी रेखाओंमें भिन्नता होनेके कारण ही सरकार अपराधियोंके अँगूठेकी निशानी ले लेती है और इस निशानीके सहारे ही यह पता लग जाता है कि यह आदमी कौन है और पहले कितनी बार इसने अपराध किये हैं। यदि इन रेखाओंकी रचना केवल प्रकृतिका ही कार्य होता तो अवश्य ही दोषयुक्त रहता, इस प्रकार इतनी दक्षतापूर्ण रचना कदापि न होती।

७–संस्कृत-भाषाकी रचनाका अवलोकन करनेपर भी सर्वज्ञ ईश्वरकी महिमा समझमें आती है। वर्तमान समयमें विद्वानोंकी यह दृढ़ मान्यता है कि इस संसारमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं। वेदोंकी रचना संस्कृत-भाषामें है। संस्कृत-भाषासे पहले और कोई भाषा थी, बादमें क्रमशः विकास होते-होते संस्कृत हो गयी—ऐसा कोई भी प्रमाण आजतक नहीं मिला है। न किसी विद्वान्‌ने प्रमाणित तर्कद्वारा संस्कृत-से पहले किसी दूसरी भाषाकी सिद्धि की है। युगके आदि-कालसे ही सर्वसाधारण जनताकी बोलचालकी भाषा संस्कृत थी, ऐसा ही माना गया है। संस्कृत-भाषामें अक्षर, स्वर, व्यञ्जन, शब्दरचना इत्यादि सब नियमित हैं। संसारकी किसी भी भाषामें ऐसे सुन्दर नियम नहीं देखे जाते। इधर करीब तीन हजार वर्षसे साधारण जनताकी व्यावहारिक भाषा संस्कृतके स्थानमें दूसरी हो गयी है। इससे पहले संस्कृत-भाषामें ही सब व्यवहार होते थे, ऐसा इतिहासज्ञ विद्वानोंका कथन है। संस्कृत-साहित्य विशाल है। परन्तु संस्कृतमें यौगिक शब्द अधिक हैं और रूढ़ शब्द बहुत कम, जिससे आज भी नियमपूर्वक चाहे जितने नये-नये यौगिक शब्द बनाये जा सकते हैं, फिर भी समझनेवालोंको कोई दिक्कत नहीं हो सकती। संस्कृत शब्दकोष अनेक विद्वानोंको कण्ठस्थ है। यह सुविधा और किसी भी भाषामें नहीं है। पाश्चात्य अंगरेजी आदि भाषाओंमें 'डिक्शनरी' (शब्दकोष) की प्रत्येक नयी आवृत्तिके समय सैकड़ों नये शब्द बढ़ाने पड़ते हैं। संसारमें किसी एक मनुष्यको भी सारी डिक्शनरी कण्ठस्थ नहीं है। बँगला, मराठी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओंके बोलने और लिखनेकी पद्धति जो सौ वर्ष पूर्व थी, वह आज नहीं है, उसमें बहुत अन्तर हो गया है। किन्तु संस्कृत-भाषामें इतनी अधिक मर्यादा छिन्न-भिन्न नहीं हुई है। वेदकालके पश्चात् पाणिनि मुनिके समयतक कुछ अन्तर पड़ा था, परन्तु पाणिनिने व्याकरणकी नयी रचना करके स्थानभ्रष्ट शब्दोंको मर्यादाके अन्दर ले लिया और नयी अशुद्धि न हो, इसके लिये नियम बना दिये। अब यह विचारणीय है कि संस्कृत-भाषाकी रचना किसने की। साधारण जनताने मिलकर की अथवा किसी विद्वान्‌ने अपनी बुद्धिसे की। साधारण जनता यदि भाषा तैयार करती तो वह अनियमित होती। नियमके लिये तो ज्ञानकी आवश्यकता होती है। यदि यह कहें कि किसी एक विद्वान्‌ने या अनेक विद्वानोंने मिलकर इसे बनाया तो फिर यह प्रश्न उठता है कि बिना पढ़े-लिखे वे विद्वान् कैसे बन गये। इसलिये अन्तमें यह कहना पड़ेगा कि संस्कृत-भाषा ईश्वरप्रदत्त है। युगके आदिकालमें अन्य ग्रहोंमें रहनेवाले ऋषियोंने सर्वज्ञ, संसाररक्षक परमात्माकी आन्तर प्रेरणासे इस पृथ्वीपर जन्म लेकर संस्कृत-भाषा और अनादि-सिद्ध ज्ञानकी सम्पत्ति वेद जगत्‌को दिये।

अनेक विद्वानोंका ऐसा भी कहना है कि प्राचीन कालमें भी संस्कृत-भाषा साहित्य लिखनेके निमित्त केवल विद्वानोंकी भाषा थी, सब जनताकी साधारण बोलचालकी भाषा नहीं थी। इससे ऐसा कहना पड़ेगा कि संस्कृतकी रचना किसी विद्वान्‌ने की है। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। तीन हजार वर्ष पूर्व हमारे इस आर्यावर्त्त देशमें व्यावहारिक सब कार्योंमें जनता संस्कृत-भाषाका ही उपयोग करती थी; संस्कृतके सिवा अन्य कोई भाषा नहीं थी। पाली और मागधी भाषाएँ पीछे संस्कृतसे ही अपभ्रंश होकर निकली हैं। अगर देश-भाषा दूसरी होती तो पाली-मागधी-पर उस भाषाका भी प्रभाव अवश्य पड़ता। किन्तु उनके साहित्यपर अन्य किसी भाषाकी छाया नहीं दिखायी पड़ती। पाली और मागधीके अतिरिक्त अन्य देशोंकी भाषाओंपर भी संस्कृतका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अगर केवल विद्वानोंकी ही भाषा संस्कृत होती तो अन्य भाषाओंमें संस्कृतके अपभ्रंश शब्द नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्यमें किसी प्राचीन भाषाका नाम अथवा शब्द नहीं मिलता है। इसलिये संसारकी आद्य भाषा संस्कृतको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मानना पड़ेगा; और आद्य भाषा होनेके कारण उसे ईश्वरदत्त भी कहना ही पड़ेगा।

वेदोंके विषयमें कोई-कोई यह भी कह बैठते हैं कि 'वेदोंमें पहाड़, नदी, बादल, साँप, रोग आदिसे भयभीत होकर तथा भोलेपनके कारण उनके रहस्यको न समझ सकनेके कारण जो ऋचाएँ उन पूर्व पुरुषोंने बनायी हैं, उन्हें धर्मका अंश कैसे मान सकते हैं ? विभिन्न परिस्थितियों तथा तत्कालीन धार्मिक कृत्योंके वर्णन वेदोंमें भरे पड़े हैं। इन सबके संग्रह वेदको ईश्वरका बनाया हुआ मानना या उसे धर्मशास्त्र कहना प्रत्यक्ष भूल है। धार्मिक दृष्टिसे वेदोंका कोई मूल्य नहीं, वे तो इतिहास-ग्रन्थ हैं।'

इस प्रकारका विचार रखनेवाले लोग वास्तवमें वेदका कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। अगर वे नासदीयादि पारमार्थिक सत्यका बोध करानेवाले सूक्त देखें तो उन्हें सहज ही अपनी गलती समझमें आ जाय! ईश्वर और सत्यका स्वरूप बतलानेवाले ज्ञानपूर्ण उपदेश, हृदयके विक्षेप-दोषका शमन करनेवाले उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्डकी विधिको इतिहास कहना कितने आश्चर्यकी बात है! वेदके रचयिता पूर्वपुरुष भोले और कम बुद्धिवाले थे—यह न मालूम उन्होंने कैसे जान लिया। चाहे जो समझ लेने और कह डालनेकी तो कोई दवा ही नहीं है।

८—ऋतु-कालकी दृष्टिसे देशकी स्थितिका निरीक्षण करनेपर भी ईश्वरकी लीलाका अनुभव होता है। सब ऋतुओंका परिवर्तन नियमपूर्वक होता है। किसी भी ऋतुकी अनियमित प्रतीति नहीं होती। वर्षा ऋतुमें वृष्टि होनेके कारण अनेक छोटे-छोटे जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं, जिनमेंसे बहुत-से इतने छोटे होते हैं कि बिना यन्त्रकी सहायतासे दिखायी भी नहीं पड़ते। इनमेंसे अनेक जातिके जन्तु मनुष्योंके आरोग्यके नाशक होते हैं। ऐसे जन्तुओंका नाश करनेके हेतु साथ-ही-साथ मक्खियाँ भी बहुत परिमाणमें उत्पन्न होती हैं। जब ये जन्तु कम हो जाते हैं तब मक्खियोंको मारनेवाली मकड़ियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। कदाचित् कोई शंका करे कि ऐसे जन्तु—मक्खी, मकड़ी, मेढ़क, चूहे, साँप, बिल्ली इत्यादि सर्वज्ञ परमात्माने क्यों पैदा किये ? किन्तु यह शङ्का नासमझीकी है। परमात्माकी सृष्टिमें कुछ भी अनुपयोगी नहीं है; हम नहीं जानते, इससे क्या हुआ ? फिर पूर्वजन्मोंके संस्कारके अनुसार शरीर मिलता है। और प्राणिमात्रको पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। जबतक दुष्ट संस्कार रहेंगे तबतक पारमार्थिक ज्ञान मिल नहीं सकेगा। दुष्ट संस्कारोंको जलानेके लिये, वासनाओंका नाश करनेके लिये, सहनशीलता बढ़ानेके लिये ऐसे अनेक जन्मोंकी आवश्यकता रहती है। दुःख भोगे बिना और प्रतिकूल परिस्थितिका सामना किये बिना वास्तविक सुख नहीं मिलता। जब बालक विद्याध्ययनमें प्रेमपूर्वक अधिक परिश्रम करेगा, खेलने-कूदनेमें विद्याध्ययनका उपयोगी समय नहीं लगावेगा, तभी वह पण्डित बन सकेगा। जब किसान सूर्यकी गर्मी, वृष्टि, ठण्डी हवा इत्यादि सब बुद्धिपूर्वक सहन करते हुए खेतीमें परिश्रम करता है तब उसको फसल मिलती है। बिना दुःख भोगे सुख नहीं मिलता—यही नियम है। इस विषयका विशेष समाधान 'कर्मवाद' लिखते समय किया जायगा। क्योंकि इस शङ्काका सम्बन्ध कर्मवादसे ही है।

शरद् ऋतुमें जो-जो अन्न उत्पन्न होते हैं, वे सब प्रायः पित्तप्रकोप करनेवाले होते हैं। और इस पित्तप्रकोपको शमन करनेवाली पित्तपापड़ा आदि ओषधियाँ भी उसी शरद् ऋतुमें उत्पन्न हो जाती हैं। वसन्त ऋतुमें प्रायः कफका प्रकोप होता है। ऐसे समयपर कफशमनकारक कटु ओषधियाँ परमात्मा तैयार कर देते हैं। इन सब नियमोंको क्या प्रकृतिका स्वाभाविक कार्य कहा जायगा ? नियममें ज्ञान चाहिये; प्रकृति तो जड़ है। इसलिये अन्तमें ईश्वर-शरणको स्वीकार किये बिना छुटकारा ही नहीं है।

९—मनुष्योंके और प्राणिमात्रके शरीरमें विचार करनेवाला मन है, यह सब जानते हैं। इस मनके बलका विचार करनेसे सर्वव्यापक ईश्वरकी सिद्धि होती है। किसी व्यक्तिका मन कमजोर है और किसीका बलवान्। परतन्त्र पशुओंके मनसे स्वतन्त्र पशुओंका मन प्रायः बलवान् होता है। मनुष्योंमें भी परतन्त्रका मन प्रायः कमजोर हो जाता है। इसी तरह अनैतिक मनुष्यका मन भी कमजोर हो जाता है। परतन्त्रता और अनीतिसे मनका बल घट जाता है। परन्तु स्वतन्त्र रहकर प्रतिकूलताका सामना करनेसे और नीतिका आग्रहपूर्वक पालन करनेसे मनोबल बढ़ जाता है। साथ-ही-साथ धैर्य, साहस, उत्साह आदि गुणोंका भी विकास होता है। अनेक मनुष्य त्राटक, ध्यान, उपासनादि क्रियासे अधिक परिमाणमें मनोबल प्राप्त कर लेते हैं। अनेक व्यक्तियोंमें जन्मसिद्ध मनोबल प्रतीत होता है। मनोबलवालोंका अन्य व्यक्तियोंपर प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है। पाश्चात्य विज्ञानोंने मनोबल (Will-Power) विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। अपने देशमें प्राचीन योग और उपासनाके अनेक ग्रन्थ हैं और अर्वाचीन कालमें भी अनेक नये ग्रन्थ विद्वानोंने लिखे हैं। पाश्चात्य विद्वानोंके ग्रन्थोंमें मेस्मेरिज्म विद्याकी प्राप्तिके निमित्त अधिक प्रयत्न किया गया है। मेस्मेरिज्म सीखनेवालोंको पहले त्राटकका अभ्यास करना पड़ता है। त्राटक योगाभ्यासका एक छोटा-सा अङ्ग है। इस विद्याको जाननेवाले सब देशोंमें मनोबलके प्रयोग दिखाया करते हैं। ये लोग अनेक मनुष्योंके असाध्य रोगोंको भी सङ्कल्पसे दूर कर देते हैं। ये मेस्मेराइज किये हुए व्यक्तिको चीनी कहकर अफीम खिला सकते हैं और खानेवालेको चीनीका ही स्वाद आता है और गुण भी चीनीका ही होता है। ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके प्रयोग मेस्मेरिज्म जाननेवाले दिखाते हैं। एक महावतका छोटा-सा लड़का हाथीको बदमाशी करते हुए देखकर ज़ोरसे चिल्लाकर आवाज देता है, बस तुरन्त मदोन्मत्त हाथी कम्पित होकर आज्ञानुसार आचरण करने लगता है। लड़केकी अपेक्षा हाथीमें शरीर-बल अनेक गुना अधिक होनेपर भी केवल मनोबलकी कमीके कारण वह भयभीत हो जाता है। यह मनोबल कहाँसे मिलता है? प्रकृतिके परमाणुओंका रूपान्तर हो जानेसे सबके अन्दर मनोबल बढ़ जाता है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता। जब त्राटक और ध्यानद्वारा अथवा सदाचारका पालन करनेसे मनोबलकी वृद्धि होती है तब यह नहीं माना जा सकता कि बाहरसे प्रकृतिके परमाणु शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। अगर कोई यह कहे कि शरीरके भीतरके परमाणुओंमें स्वाभाविक परिवर्तन हो जानेसे मनोबल बढ़ जाता है तो यह भी ठीक नहीं मालूम होता। क्योंकि मनुष्यके शरीरसे हाथीका शरीर बहुत बड़ा और बलशाली होता है, किन्तु उसमें मनोबल मनुष्यकी अपेक्षा बहुत कम होता है। इसलिये ऐसा कहना पड़ेगा कि यह मनोबल सर्वव्यापक चैतन्यकी शक्तिसे ही मिला है। यदि सर्वव्यापक चैतन्यका अभाव होता तो जगत्में ज्ञान, मनोबल, विभिन्न नियमित रचनाएँ आदि कोई भी चीज देखनेमें न आती। और अफीम खिलाकर चीनीके स्वादका भान करा दिया जाय, शरीरमें चीनीका ही गुण हो, अफीमका असर न हो—इससे भी सर्वज्ञकी सङ्कल्पमयी सृष्टि सिद्ध होती है। सङ्कल्पसे यदि सृष्टि न बनी होती तो मेस्मेरिज्म विद्या जाननेवालों अथवा योगियोंके सङ्कल्पका प्रभाव अन्य व्यक्तियोंपर कुछ भी नहीं पड़ता। इस सत्यको विशेषरूपसे जाननेके लिये मानसशास्त्र (Psychology) और अध्यात्मशास्त्र (Philosophy) के अभ्यासकी आवश्यकता है।

अब अन्य रीतिसे मनका निरीक्षण करें। परस्पर व्यवहार करनेवाले मनुष्योंमें जबतक एक-दूसरेके प्रति पवित्र भाव रहता है तबतक वे व्यवहार सरलतासे करते रहते हैं। परन्तु जहाँ किसी व्यक्तिके हृदयमें किसी कारणसे परिवर्तन हुआ कि वही भाव तुरन्त दूसरेके मनमें भी आने लगता है। फिर दोनों एक-दूसरेकी भावना जान लेते हैं। परस्पर वार्तालापके समय भले ही शब्दोंसे वे मनोभाव छिपा लें; परन्तु हृदयसे हृदयका भाव वे नहीं छिपा सकते। अगर आप बालकोंकी तरफ प्रेमभरी दृष्टिसे देखें तो वे भी अपनी प्रसन्नता दिखावेंगे और क्रोधसहित देखें तो उनके कोमल मनपर भयका असर हो जायगा। आप अप्रसन्नता दिखावेंगे तो वे भी उदास हो जायँगे। ऐसी ही बातें पशुओंमें भी दिखायी देती हैं। जब वे किसीको मारनेके लिये आते हुए देखते हैं तो कम्पित होकर भाग जाते हैं। जब कोई प्रेम करनेवाला आता है तो वे भी अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। इन दृष्टान्तोंसे निश्चित होता है कि मनुष्य और प्राणिमात्रके भाव परस्पर समझमें आ जाते हैं। इसलिये हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि किसी सर्वज्ञके द्वारा ही परस्पर मनका सम्बन्ध ज्ञानपूर्वक जोड़ा गया है।

किसीने अपना अथवा दूसरेका मन नेत्रोंद्वारा देखा नहीं है। किसी डाक्टरने भी यन्त्रद्वारा नहीं देखा है। फिर भी यह सबका अनुभव है कि प्रेमीके मनके साथ अपने मनका समागम होता रहता है। यहाँतक कि दूर देशमें चले जानेपर भी अनेक बार एक ही समयपर एक-दूसरेका चिन्तन होता है और उसका असर शरीरपर भी पड़ता है, जिससे शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। किसी विरोधी विचारवाले व्यक्तिके मनके साथ अपना मन कभी नहीं मिलता। इस तरह जो स्वेच्छानुसार मनका संयोग-वियोग होता है, उसका आधार सर्वव्यापक पूर्ण सामर्थ्यवान् चैतन्य ही हो सकता है। अगर इसका हेतु प्रकृति होती तो यह संयोग-वियोग स्वाभाविक ही हुआ करता, स्वेच्छाका उसमें कोई स्थान न होता।

मन एक करण है। मनको प्रवृत्त करानेवाला कर्ता मनसे (करणसे) भिन्न होना चाहिये। मेरा मन दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर था, इसलिये मैंने नहीं सुना; मेरा मन दूसरी ओर था, इसलिये मैंने नहीं देखा; ऐसा प्रायः सब लोग अक्सर कहा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मन एक करण है। और जो करण है वह कदापि कर्ता नहीं हो सकता। कर्तारूप जीवात्मा मनसे भिन्न ही होगा। कर्ता अपनी इच्छासे ही ज्ञानपूर्वक क्रिया करता-कराता है। करणको क्रिया करनेमें कोई भी स्वतन्त्र नहीं कह सकता। यदि नास्तिक लोग विचार करके देखें तो वे भी स्पष्टरूपसे यह सत्य समझ सकेंगे कि केवल एक मनरूप करणका सम्यक् रूपसे विचार करनेपर देहली-दीपक-न्यायवत् प्रवर्तक आत्माका, और दूसरेके मनके साथ सम्बन्ध होनेके लिये सर्वव्यापक परमात्माका बोध, एक ही साथ हो जाता है।

१०—इतिहासका अध्ययन करनेसे भी रक्षक शक्तिका अनुभव होता है। जब यज्ञके बहाने भारतवर्षमें सर्वत्र भयङ्कर पशुसंहार होने लगा, तब गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए, जिन्होंने बौद्ध-धर्मका प्रचार करके हिंसामय यज्ञ-यागादि क्रिया बन्द करा दी। कालान्तरमें जब बौद्ध-सम्प्रदायमें वाममार्गकी तान्त्रिक क्रियाओंके नामपर भयङ्कर अनीति-पूर्ण क्रियाएँ होने लगीं तब शङ्कराचार्यने सनातन धर्मका प्रचार करके बौद्ध-धर्मको दबा दिया। सनातन धर्मावलम्बियोंमें भी जब शुष्क ब्रह्मज्ञानकी वृद्धि हुई तब रामानुजादि आचार्योंने समाजको भक्तिसुधाका पान कराया। ऐसे ही राजनैतिक इतिहासमें जब सत्रहवीं सदीमें औरङ्गजेब धर्मके नामपर भयङ्कर जुल्म करने लगा तब छत्रपति शिवाजी महाराज, गुरु गोविन्दसिंहजी, महाराणा राजसिंहजी और दुर्गादास राठौर—ये चार महारथी अलग-अलग प्रान्तोंमें पैदा हुए। यह नियम है कि आवश्यकता होनेपर अत्याचारका सामना करनेवाली शक्ति तैयार हो जाती है। ऐसा और भी अनेक समयोंमें प्राचीन कालमें हुआ है, यह इतिहाससे सब कोई सहज ही समझ सकते हैं। इस समय भी ऐसा ही हो रहा है। कहनेका मतलब कि सब समयमें सब देशोंमें प्रतिकूलताका सामना करनेके लिये तथा समाज और देशका रक्षण करनेके लिये एक अथवा अधिक व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं। इसे प्रकृतिका कार्य कहेंगे या ईश्वरकी अद्भुत लीला! अगर विपरीत भाव न रखकर थोड़ा भी विचार किया जाय तो सत्यकी झाँकी मिल सकती है।

११—संसारमें उन्नति और अवनति सब देशोंकी, सब सम्प्रदायोंकी और सब समाजोंकी होती रहती है। इसमें भी ईश्वरकृत नियमका अनुभव होता है। यह संसार चल है, किसीकी स्थिति सदा एक-सी नहीं रहती। सूर्य, पृथ्वी आदि मण्डल चल हैं, वायु बहता ही रहता है, जल नीचेकी ओर बहता रहता है, ऋतुओंका क्रमशः परिवर्तन होता रहता है और शरीरमें बाल्य, यौवनादि अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। इसी तरह उन्नति और अवनति भी क्रमशः होती रहती है। एक समय जो जाति राज्य कर रही थी, वही आज परतन्त्रता भोग रही है; जो जाति किसी समय परतन्त्र थी, वही आज दूसरोंपर प्रभुत्व कर रही है। अपने ही देशको देखिये, एक समय यह कितनी उन्नति कर गया था। सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियोंकी इसपर पूर्ण कृपा थी। उस समय संसारभरमें इसका गुणगान हो रहा था। किन्तु आखिरकार इसका सौभाग्य-सूर्य भी अस्ताचलकी ओर चल ही पड़ा। और अन्तमें इसकी जो अवस्था हुई, उसका पता हम सबको है ही। अब पुनः हम अपनी अवस्थाको समझने लगे हैं और पतनके गर्तसे निकलकर ऊँचे चढ़नेका प्रयत्न करने लगे हैं। कौन कह सकता है कि हम इसी अवस्थामें पड़े रहेंगे और हमारी उन्नति होगी ही नहीं? क्या यह सब कार्य जड प्रकृतिका है? थोड़ा विचार करनेपर ही इसके अन्दर भी ईश्वर-लीलाका दर्शन हो सकता है। (क्रमशः)

कोटिशः प्रणाम हैं

नील सरसीरुह समान श्याम जासु अंग, अति सुकुमार रमणीय छबिधाम हैं।
मंजु मुखचंद्रकी चकोर वाम ओर नित्य, प्रेममें विभोर जासु सीता अभिराम हैं॥
चारु चाप लंबित प्रलंब बाहु बीच जासु, रम्य कर-कंज लसैं सायक ललाम हैं।
ऐसे रघुवंशमणि पूज्य तुलसीके नाथ, महाराजा रामजीको कोटिशः प्रणाम हैं॥

—विनायकराव भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा

भक्त मनकोजी बोधला पटेल

भक्त मनकोजी बोधला बरारप्रान्तके प्रसिद्ध शहर धामनगाँवके पटेल थे। इनकी स्त्रीका नाम मामाताई था; मामाताईका बाहर-भीतर सभी सुन्दर था। वह पतिव्रता स्त्री तन-मनसे पतिका अनुसरण करती थी। इनके यमाजी नामक एक इन्द्रियनिग्रही एवं भोगोंमें वैराग्यवान् पुत्र था और भागीरथी नामकी सर्वसुलक्षणा एक कन्या। विषय-भोगोंसे चारोंका ही मन हटा हुआ था। रात-दिन भगवान् श्रीपण्ढरीनाथका भजन करना और घरके सब कामोंको उन्हींके प्रीत्यर्थ यथायोग्य सम्पादन करना इनका प्रिय कार्य था। घरमें काफी धन था, अनाजके कोठे भरे थे और गौशालामें गाय, भैंस और बैलोंकी कतार बँधा करती थी। प्रत्येक एकादशीके दिन बोधलाका पण्ढरपुर पहुँचकर भगवान्‌के दर्शन करनेका नियम था। एकादशीके दिन चन्द्रभागामें स्नान करके भगवान्‌के दर्शन करना, रात्रिको जागरण करना और द्वादशीके दिन चन्द्रभागाके तटपर ब्राह्मण-भोजन और गरीबोंको अन्न बाँटकर त्रयोदशीको घर लौट आना। यह नियम वर्षोंसे चला आता था। एक समय देशमें बड़ा भारी अकाल पड़ा; मनुष्य अन्न बिना, और पशु चारे बिना मरने लगे। सब भूतोंमें अपने भगवान्‌को देखनेवाले बोधलासे अब नहीं रहा गया। उन्होंने एकान्तमें अपनी पत्नी मामाताईसे कहा—'प्रिये! देशमें घोर अकाल पड़ा है। आज हमारे भगवान् दरिद्र और भूखे जीवोंका रूप धारण करके हमसे पूजा चाह रहे हैं। हमारे घरमें जो कुछ धन, जेवर और अन्न है, सब उन्हींका है। आज उन्हींकी चीजसे उनकी पूजा करनेका सुअवसर है। यह मौका हाथसे नहीं खोना चाहिये। भूखोंको अन्न, प्यासोंको पानी, पशुओंको चारा, नंगोंको कपड़ा, रोगियोंको दवा और निराश्रितों-को आश्रय देना ही भगवान्‌की सच्ची पूजा है। परन्तु इस पूजामें भी अभिमान नहीं होना चाहिये। किसी-का असत्कार न हो जाय, मीठी वाणीसे सबका सत्कार करते हुए भगवान्‌को यथायोग्य भेंट अर्पण करनी चाहिये। सबमें रमण करनेवाले मेरे राम इस पूजासे बड़े ही प्रसन्न होते हैं। अतएव तुम अभीसे इस पूजामें लग जाओ। तनिक भी देर करना इस समय अधर्म होगा।'

पतिकी आज्ञाका अनुसरण करनेवाली, निर्लोभा, सती मामाताईको पतिकी बातसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई, और वह खुले हाथों गरीब और दुखियोंकी सेवामें तन-मन-धनसे लग गयी। बोधलाका घर गरीब नर-नारियोंका आश्रयधाम बन गया। तमाम देशमें यह बात फैल गयी। चीनीपर चींटी और मक्खियोंकी तरह चारों ओरसे भूखे नर-नारियोंके झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे। और मामाताई बड़ी ही प्रसन्नताके साथ सत्कार-पूर्वक उनको अन्नवस्त्र बाँटने लगी। उसके उत्साह और आनन्दका पार नहीं था। इस तरह बहुत दिन बीत गये। बँटते-बँटते तो कुबेरका खजाना खाली हो जाता है, बोधलाका घर तो किस गिनतीमें था। अन्नके सारे गोदाम खाली हो जानेपर बोधलाने सम्पत्ति बेचनी शुरू की। उन्होंने अपने सारे गहने और जवाहिरात बेच दिये, और उसका अन्न खरीदकर गरीबोंको बाँट दिया। कपड़े और बरतन भी घरमें नहीं रक्खे। अन्तमें अपने खानेके लिये एक दिनका भी अन्न घरमें नहीं रह गया। पशुओंके लिये चारा नहीं रहा, तब पशुओंको भी बाँट दिया। दरिद्रतादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरे दलबलके साथ बोधलाके घरमें आ बिराजी। बोधला अपनी स्त्रीसहित मजदूरी करके अपना और बच्चोंका पालन करने लगे। इस अवस्थामें बोधला और उनकी पत्नी मामाताईको जो सन्तोष और आनन्द था, उसकी तुलना बड़े-बड़े महलोंमें रहनेवाले, सब प्रकार-के भोगोंसे सम्पन्न किसी भी महान् धनवान् व्यक्तिके आनन्दके साथ नहीं की जा सकती। बोधला और उनकी पत्नीका आनन्द सात्त्विक, निर्मल और आदर्श है, एवं उसका आधार महान् त्याग और भगवत्-सेवा है। परन्तु धनीके भोगानन्दकी भित्ति तो पापोंके कारणरूप क्षणभंगुर भोग और अभिमान हैं। भोगका आनन्द दूसरी जातिका है और त्यागका आनन्द उससे विलक्षण किसी दूसरी ही जातिका! भोगके आनन्दका पर्यवसान नरक और दुःखमें है, परन्तु त्यागके आनन्दकी परिसमाप्ति भगवान्‌के परमधाम और आत्यन्तिक नित्य परम आनन्दमें होती है। त्यागका आनन्द ही असली आनन्द है। भोगानन्द तो आनन्द-की छाया है—मायामात्र है। इसीलिये भगवान्‌के भक्त भोगी नहीं होकर त्यागी होते हैं। वे ज्ञानके अभिमान-से भी डरते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि अभिमानसे भगवान् नहीं मिलते। भगवान्‌की प्राप्ति तो प्रेमसे होती है, और प्रेम अभिमानके रहते होता नहीं। अस्तु! बोधलाके प्रेमसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने एकान्त-में उन्हें दर्शन दिये, जिससे उनका आनन्द और भी बढ़ गया।

एकादशीपर बोधलाको पण्ढरपुर जाना है, परन्तु उनके पास पैसा एक भी नहीं है; स्त्रीको बड़ी चिन्ता हुई। बोधलाने कहा—'तुम चिन्ता क्यों करती हो! मैं जङ्गलसे सूखी लकड़ियोंका एक बोझा ले जाऊँगा, और उसे पण्ढरपुरमें बेचकर अपना काम चला लूँगा।' यह कहकर नियमके सच्चे बोधलाजी चल पड़े। रास्तेमें सूखी लकड़ियोंको बटोरकर एक बोझा बाँधकर सिरपर रख लिया और निश्चिन्तभावसे प्रेमपूर्वक श्री-भगवान्‌के नामका कीर्तन करते हुए बोधला पण्ढरपुर पहुँचे। बोधलाके हृदयमें आज बड़ा ही आनन्द है। वे भगवान्‌की दयासे अपनेको भोगोंसे—मायासे मुक्त हुए जानकर फूले नहीं समाते। पण्ढरपुर पहुँचकर लकड़ियोंका बोझा तीन पैसेमें बेच दिया और पैसे लेकर चन्द्रभागाके तटपर पहुँचे। एक पैसा घाटिये-को दिया और दो पैसोंकी पूजाकी सामग्री लेकर भगवान्‌का दर्शन और पूजन किया। दिनभर उपवास और रातको जागरण करनेके बाद प्रातःकाल जङ्गलसे फिर एक लकड़ियोंका बोझा लाये और उसे तीन पैसेमें बेचकर चन्द्रभागाके किनारे गये और तीन पैसेका आटा लेकर नित्यके नियमानुसार ब्राह्मणको भोजन करानेकी इच्छासे ब्राह्मणकी बाट देखने लगे।

बैठे-बैठे दुपहरी हो गयी, कोई भी ब्राह्मण नहीं आया; उन्होंने कई ब्राह्मणोंसे कहा, परन्तु सूखा आटा लेना किसीने भी मंजूर नहीं किया। बोधला मन-ही-मन चिन्ता करने लगे, 'ठीक ही तो है, खाली आटा लेकर ब्राह्मण क्या करें, मेरे पास न नमक है, न तरकारी है, न घी है, न दाल है और दक्षिणाके लिये भी एक छदाम पास नहीं है। चन्द्रभागाके किनारेपर जहाँ बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंके साथ ब्राह्मणोंको खिलाने-वाले इतने धनी जमा हो रहे हैं, वहाँ मुझ गरीबका सूखा आटा कौन ब्राह्मण लेगा?' यों सोचते-सोचते बोधलाकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोधलाका हृदय इधर पसीजा, उधर भगवान् पिघल गये। और भक्तकी प्रेमभरी भेंट स्वीकार करनेके लिये बूढ़े दरिद्री ब्राह्मणके वेशमें भगवान् वहाँ प्रकट होकर बोधलासे कहने लगे—'अरे ओ भगत! मुझे बड़ी भूख लगी है, तेरे पास कुछ है तो मुझे जल्दी दे।' बोधलाने ब्राह्मणके वचन सुनकर भगवान्‌की बड़ी कृपा मानी, आखिर भगवान्‌ने ब्राह्मणको भेज तो दिया। उन्हें क्या पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि ब्राह्मणके वेषमें साक्षात् नारायण ही तुम्हारा प्रेमभरा आटा लेने आये हैं। बोधलाने सोचा, कहीं खाली आटेकी बात सुनकर यह भी नहीं लेंगे तो बहुत बुरा होगा, और कहा—'महाराज ! मेरे पास केवल थोड़ा-सा आटाभर है, और कुछ भी नहीं है।' भगवान्‌ने कहा, 'अरे भाई ! जो कुछ है सो जल्दी देता क्यों नहीं। मैं कहाँ दाल, चावल और घी, शक्कर माँगता हूँ। मुझे तो भूख लगी है, आटेकी बाटियाँ बनाकर अभी खाऊँगा। ला, जल्दी दे।' बोधलाने आटा दे दिया। बोधलाका नियम था कि वह ब्राह्मणको अपने सामने ही भोजन करवाते और दक्षिणा देकर विदा करते; परन्तु खाली आटा देकर आज बोधलाकी ब्राह्मणसे यह कहनेकी हिम्मत नहीं हुई कि महाराज ! यहीं बनाकर खा लीजिये। अन्तर्यामी भगवान् बोधलाके मनकी जान गये, और बोले—'भाई ! खड़ा क्या करता है। देखता नहीं, मैं भूखों मर रहा हूँ। जल्दी कहींसे दो-चार गोबरके कंडे माँगकर ला दे तो मैं अभी तेरे सामने ही बाटियाँ बनाकर खा लूँ।' बोधला मनोकामना पूरी हुई देखकर प्रसन्न हो गये, और यात्रियोंसे कुछ कंडे माँग लाये।

ब्राह्मणने चन्द्रभागामें स्नान किया और गीला कपड़ा पहने ही वह बाटियाँ बनाने बैठ गया। बोधला कहींसे आग माँग लाये। ब्राह्मणने आटा सानना शुरू किया। धन्य है ! सर्वलोकमहेश्वर भगवान्, जो समस्त ऐश्वर्यके आधार हैं, लक्ष्मीजी जिनकी चरणसेवासे क्षणभर भी हटना नहीं चाहतीं, बड़े-बड़े महापुरुष जिनके नामका स्मरण होनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं, वेदज्ञ ऋषि वेदमन्त्रोंसे जिनके प्रीत्यर्थ अग्निमें आहुतियाँ दिया करते हैं, आज वही भक्तके दिये हुए आटेको अपने हाथों सान रहे हैं। भगवान्‌की यह बान ही है, इसीलिये तो वे विदुरके सागपात और शबरीके बेरोंपर रीझ पड़े थे। प्रेमसे अर्पित किया हुआ एक-एक पत्ता उन्हें प्रिय होता है। वे स्वयं घोषणा ही कर रहे हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९। २६)

'पत्र, पुष्प, फल, जल, जो कुछ भी भक्त प्रेमपूर्वक मेरे अर्पण करता है, उस प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पदार्थ मैं स्वयं प्रकट होकर भोग लगाता हूँ।'

महालक्ष्मी ब्रह्माण्डके ऐश्वर्यकी अधीश्वरी हैं, उनकी कृपा बिना किसीको कुछ भी नहीं मिलता, परन्तु प्रभुके प्यारे भक्तोंकी अर्पण की हुई दुर्लभ वस्तुमें तो वह भी हिस्सा बँटानेको ललचाया करती हैं। देवी रुक्मिणीजीने सुदामाजीके चावलोंकी कनी भगवान्‌के हाथोंसे छीन ली थी। आज यहाँ भी रुक्मिणीजीका जी ललचाया। चट बिना दाँतकी बुढ़िया बनकर बूढ़े ब्राह्मणके बगलमें आ बिराजीं। और कहने लगीं, 'मुझे छोड़कर अपने यजमानका दिया हुआ अन्न क्या आप अकेले ही खायँगे ?' भगवान् मुस्कुरा दिये। रसोई बनने लगी।

बोधलाने सोचा, इस आटेसे तो एक ही आदमीका पेट भरना मुश्किल था, अब ये दो क्या खायँगे ? उन्हें पता नहीं था कि सारे विश्वका पेट भरनेवाले विश्वम्भर यही हैं। बाटियाँ बनीं। लक्ष्मीजीके हाथसे बनी हुई वे बाटियाँ अमृतको भी लजानेवाली थीं। भगवान्‌की आज्ञासे तीन पत्तलें परसी गयीं। भगवान्‌ने कहा—'भगतजी ! तुम भी साथ ही प्रसाद पाओ।' बोधलाने सोचा—'इन दोनोंहीका पेट नहीं भरेगा। मैं क्या खाऊँगा।' उन्होंने कहा—'भगवन् ! आप और माताजी भोजन करें। मैं बचा-खुचा जूठन-प्रसाद पा लूँगा।' भगवान्‌ने रहस्यभरी हँसी हँसकर कहा—'अच्छी बात है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगन्नायक और जगज्जननी दोनोंने भर पेट खाया, और बोधलाके देखते-ही-देखते वहाँसे अदृश्य हो गये। बोधलाकी पत्तल बाटियोंसे भरी थी। वह आश्चर्यमें डूब गया। उसे निश्चय हो गया कि ब्राह्मणरूपमें साक्षात् मेरे स्वामी ही पधारे थे। वह गद्गद हो गया और प्रसाद पाकर स्तुति करता हुआ मन्दिरमें पहुँचा।

मन्दिरमें जाकर बोधलाने भगवान्‌के दर्शन किये तो उसे स्पष्ट जान पड़ा कि भगवान् मुस्कुरा रहे हैं। बोधलाने गद्गद होकर कहा—'भगवन्! धन्य है आपकी कृपा; आप प्रेमके सामने और कुछ भी नहीं देखते। इसीसे तो बड़े-बड़े धनियोंकी विशाल चतुर्विध भोग्य सामग्रीको छोड़कर आप प्रेमवश मेरे सूखे आटेपर रीझ गये। आपने मुझे कृतार्थ कर दिया।'

भगवान्‌ने कहा, 'भाई! मैं तो सभी जगह जाना चाहता हूँ, परन्तु बड़ी-बड़ी जेवनारोंमें मुझको पूछता ही कौन है?' बोधलाने कहा—'महाराज! ऐसा भी कहीं हो सकता है?' भगवान् बोले—'अच्छा, कल ही यह कौतुक देखना। अमुक सेठके यहाँ कल हजार ब्राह्मण जिमाये जायँगे, उनके लिये तरह-तरहकी मिठाइयाँ आजसे ही बन रही हैं। ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया जा रहा है। मैं भी वहाँ जाऊँगा, तुम दूर खड़े तमाशा देखना।' बोधलाने कहा—'अच्छी बात प्रभु!'

दूसरे दिन ठीक समयपर बोधला वहाँ जा पहुँचे। देखा, पंक्तियाँ लगी हैं, हजार पत्तलें परसी गयी हैं, सेठके मुनीम निमन्त्रित ब्राह्मणोंको सूचीमें नाम देख-देखकर बैठा रहे हैं। सेठजी खड़े हैं, कोई फालतू आदमी न आ जाय, इस निगरानीमें! इतनेमें ही वही बूढ़ा कुबड़ा ब्राह्मण कमरमें एक टाटका टुकड़ा लपेटे लाठी टेकता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने सेठसे कहा—'सेठजी! बड़ी भूख लगी है।' सेठजीने कहा—'आपको निमन्त्रण थोड़े ही मिला था, यहाँ तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंको छोड़कर और कोई नहीं जीम सकता।' ब्राह्मणने कहा—'सेठजी! गरीब हूँ, बहुत ही भूखा हूँ। आपके यहाँ तो पूरे हजार ब्राह्मण भोजन करेंगे, एक ज्यादा ही हो गया तो क्या है?' सेठजीने जरा घुड़ककर कहा—'नहीं, नहीं, यों बिना बुलाये आनेवाले भिखमंगोंको खिलाने लगें तो फिर पता ही क्या लगे? जाओ जाओ! यहाँ कुछ नहीं मिलेगा।' ब्राह्मणने कहा—'भूखके मारे प्राण जा रहे हैं, चला नहीं जाता, मैं तो खाकर ही जाना चाहता हूँ।' यों कहकर ब्राह्मण एक पत्तलपर जाकर बैठ गया, यह देखकर सेठजी जामेसे बाहर हो गये। उन्होंने पुकारकर कहा—'है कोई! इस बुढ़ऊको पकड़कर बाहर तो निकालो।' जमादार दौड़े, बूढ़े ब्राह्मणको पकड़कर लगे घसीटने। ब्राह्मणने कहा—'भूखों मर रहा हूँ, भाई रहम करो।' सेठजीका गुस्सा और भी बढ़ गया, उन्होंने कहा—'निकालो धक्के देकर बाहर! इसका बाप यहाँ रकम जमा करवा गया था सो यह उसे लेने आया है। कम्बख़्त कहींका। बड़ा शैतान है, मनसे ही जाकर पत्तलपर बैठ गया है, मानो बापका घर है।' बोधला दूर खड़े तमाशा देख रहे थे; सेठके चौकीदारोंने ब्राह्मणको घसीटकर बाहर निकाल दिया।

ब्राह्मण बाहर निकलकर बोधलाकी ओर देखकर मुस्कराया और बोला—'देखा न? यहाँ हम-सरीखोंको कौन जिमाता है, अच्छा अब दूसरा तमाशा देख!' देखते-ही-देखते बड़े जोरकी आँधी आयी। छप्पर उड़ गया, पत्तलें कहीं उड़ गयीं, मिठाई नष्ट हो गयी, ब्राह्मण जान लेकर भागे। सेठका ब्राह्मणभोजन विध्वंस हो गया। भगवान्‌ने कहा—'प्यारे बोधराज! मैं अभिमानी और दम्भी मनुष्योंका पक्वान्न ग्रहण नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता, मुझे तो तुझ-सरीखे भक्तकी दी हुई रूखी-सूखी रोटी प्यारी लगती है। अभिमानका फल तैंने देख ही लिया।' बोधलाको भगवान्‌की कृपा प्राप्त हुई, वह निहाल हो गये।

भगवान्‌को प्रणामकर बोधला तीसरे दिन अपने गाँवकी ओर चले। दो दिनोंसे कुछ खाया नहीं था, भूख-प्यासके मारे प्राण व्याकुल थे। विश्वम्भर भगवान्‌से भक्तका दुःख नहीं सहा गया। उन्होंने तो भक्तके योगक्षेमका ठेका ही ले रक्खा है। बात-की-बातमें रास्तेमें एक सुन्दर बाग लग गया। स्वयं वैकुण्ठनाथ माली बने, और जगज्जननी महालक्ष्मी रुक्मिणीजी मालिन! कुआँ चलाने लगे। बोधलाने वहाँ पहुँचकर देखा, 'यह नया बगीचा कब लग गया। मैं तो इस रास्ते बीसों बार गया-आया हूँ, यहाँ तो एक पेड़ भी नहीं था।' मायाने काम किया। बोधलाने सोचा, 'भूल गया होऊँगा।' बोधला भूख-प्यासके मारे व्याकुल थे, परन्तु दूसरोंके बगीचेमें कैसे जायँ? अतएव समदुःखसुखी बोधला भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए आगे बढ़े। मालिन बनी हुई रुक्मिणीजीने सिरपर छाकका छबड़ा उठाया। उसमें थीं रोटियाँ, ताजा दूध, और नाना प्रकारके मधुर फल! जल्दीसे बोधलाके पास पहुँचकर और छबड़ा एक ओर रखकर मालिनने विनम्र स्वरसे कहा—'भगतजी! आप हारे-थके मालूम होते हैं, बगीचेमें चलकर जरा विश्राम कर लीजिये। वहाँ मालिक आपकी बाट देख रहे हैं। यह छाक मैं अभी लायी हूँ कुछ खा-पीकर जाइये। आप पण्ढरीनाथके यात्री हैं, इसीलिये मालिकने भक्तिपूर्वक आपको बुलाया है। वे बैलोंको देख रहे हैं, नहीं तो खुद ही आते। अपनी चरणरजसे हमारी झोंपड़ी पवित्र कीजिये।' बोधला माँके मधुर वचनोंको सुनकर गद्गद हो गये। वह बगीचेमें गये, चतुर मालीने उनका बड़ा ही सत्कार किया और रोटी, दूध, फल आदि खिलाकर ठण्डा पानी पिलानेके बाद विदा किया। बोधला ज्यों ही बगीचेसे बाहर निकले कि सारा बगीचा और माली-मालिन जादूकी तरह अदृश्य हो गये। बोधलाको कृपानाथकी कृपाका एक और प्रत्यक्ष प्रमाण मिला! वह गद्गद स्वरसे भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए घर पहुँचे।

इस बार बोधलाकी खेती बहुत अच्छी हुई है। खूब जुवार फली है। बोधला खेतकी रखवालीपर बैठे हैं। इतनेमें देखा, कुछ चिड़ियाँ जुवार चुग रही हैं। बोधला उन्हें उड़ाने चले, परन्तु दूसरे ही क्षण मनमें आया कि जो भगवान् एक बीजसे तमाम फलियोंको जुवारसे भर देते हैं, इन चिड़ियोंको भी तो उन्हीं भगवान्‌ने भेजा है, फिर मैं इन्हें क्यों उड़ाऊँ? यह सोचकर बोधला निश्चिन्त मनसे बैठकर कीर्तन करने लगे। चिड़ियाँ चुग-चुगाकर अपने-आप उड़ गयीं। थोड़ी देर बाद मामाताई खेतमें आयी। उसने देखा, खेत कुछ उजड़ा है, सोचा कि स्वामीने भिखारियोंको सिट्टे तोड़ दिये होंगे। घरमें दरिद्र तो था ही, स्त्रीके मनमें विश्वासकी कमीसे कुछ खिन्नता-सी आयी। उसने कहा—आप यों खेत भी भिखमंगोंको लुटा देंगे तो फिर हमलोग क्या खायँगे, और कैसे लगान चुकाया जायगा। अगर अब आपने किसीको अपने हाथसे तोड़कर एक भी सिट्टा दे दिया तो आपको पण्ढरीनाथकी शपथ है। स्त्री इतना कहकर चली गयी।

बोधला खेतमें बैठे थे; यात्रियोंका एक दल पण्ढरपुर जा रहा था। साधु भूखे थे। उन्होंने कहा, 'भगतजी! आपने अकालके समय हमलोगोंके प्राण बचाये थे। आज हमें बड़ी भूख लगी है, आप उचित समझें तो दो-चार सिट्टे तोड़ दें, हमलोग आगमें भूनकर खा लेंगे।' बोधलाने कहा—'मेरी साध्वी स्त्रीने मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शपथ दिलवा दी है, अतः मैं तो नहीं तोड़ूँगा। आप स्वयं भले ही तोड़ लें।' खुली आज्ञा पाकर साधु खेतमें घुस पड़े, सैकड़ों साधु थे। बात-की-बातमें सारा खेत साफ हो गया। बोधला निश्चिन्त चित्तसे भगवान्‌का गुण गा रहे थे। साधु तो खा-पीकर चलते बने। पीछेसे बोधलाका लड़का अपनी माता-सहित आया। और खेतको उजाड़ देखकर दोनोंको बड़ा दुःख हुआ। परन्तु वह दुःख था क्षणिक ही। जब उन्होंने बोधलाके मुखसे सुना कि पण्ढरीके भूखे यात्रियोंने अन्न खाया है, तो खेतका अन्न बहुत अच्छे काममें लगा जानकर वे भी सन्तुष्ट हो गये! धन्य!

गाँवमें खबर फैल गयी कि बोधलाके खेतमें कुछ भी नहीं रहा। लोग तरह-तरहकी आलोचना करने लगे। किसीने कहा—'बोधला बड़ा भक्त है, उसकी दयालुतासे भगवान् उसपर राजी हैं।' दूसरेने कहा—'तभी तो भगवान् उसे मनमाना दे भी देते हैं।' पाँचों अँगुली एक-सी नहीं होतीं, गाँवमें बोधलासे डाह करनेवाले कुछ दुष्ट प्रकृतिके लोग भी थे। उनमेंसे एकने कहा—'देखेंगे, भगवान् अबकी उसे किस तरह बचाते हैं; लगानका रुपया चुकाते समय बच्चा-जीकी आँखें खुल जायँगी।' दुष्टोंने षड्यन्त्र रचा। लगान-अफसरसे जाकर कहा कि 'जबतक बोधलाका लगान नहीं चुकेगा, तबतक हमलोग भी कुछ नहीं देंगे, इसलिये पहले उससे लगान वसूल किया जाय।' उन्होंने गाँवमें भी सबसे कह दिया कि जो कोई हमारे इस प्रस्तावसे सहमत न हो वह पहले बोधलाका लगान चुका दे। अफसरने हवलदारको बोधलाके घर भेजा और लगानके रुपये जल्दी देनेको कहा। बोधलाके घरमें न रुपया था, न जेवर और न अन्न ही था। वह लगान कहाँसे चुकाते। कलका वादा करके हवलदारको विदा किया। मामाताईके पास कुछ पैसे थे, उन्हें लेकर वह रातको नगाउ नामक एक साहुकारिनके घर गये और बोले कि 'माता! ब्याजके पैसे पहले लेकर मुझे इतने रुपये उधार दो।' उसने स्वीकार कर लिया और कल सवेरे ले जानेको कहा। उसने धरतीमें रुपये गाड़ रक्खे थे परन्तु जब उसने सुना कि बोधलाके खेतमें कुछ भी नहीं रहा है तब रुपये डूबनेकी सम्भावनासे उसका भी मन बदल गया, उसने दूसरे दिन सवेरे बोधलाको सूखा जवाब दे दिया। गाँवमें और कोई साहूकार नहीं था। बोधला अब क्या करे। चुपचाप भगवान्‌के नाम-गुणोंका चिन्तन करते हुए बोधला रुपये उधार लेनेकी गरजसे रलेरास नामक समीपके गाँवको गये। इधर लोगोंने हल्ला कर दिया कि 'बोधला भाग गया।'

हवलदार कुर्की लेकर आ गया और उसने मामाताईको दोनों बच्चोंसहित घरसे बाहर निकालकर घरके ताला लगा दिया और गाय-बकरियोंको भी कुर्क कर लिया। भक्तकी इस विपत्तिको भगवान् पण्ढरीनाथ अब नहीं सह सके। उन्होंने धामण गाँवके 'बिठ्या महार' का रूप धारण किया और रुपये लेकर लगान-अफसरके पास जाकर नम्रतासे अभिवादन किया और कहा कि 'सरकार! ये लगानके रुपये मनकोजी बोधराज पटेलने भेजे हैं। इन्हें लेकर रसीद दीजिये।' अफसरने रुपये गिन-कर रसीद दे दी। घरका ताला खुलवा दिया गया, कुर्की उठ गयी। अब गाँववालोंको भी लाचार होकर सब लगान तुरन्त भरना पड़ा—परन्तु उनको बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था कि इस तंगीके समय बोधलाको इतने रुपये कहाँसे मिल गये?

बोधलाको रलेरासमें रुपये उधार मिल गये। वह रुपये लेकर अफसरके पास पहुँचे। और देरसे पहुँचनेके लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगे। अफसरने कहा—'अभी तुम्हारा भेजा हुआ 'बिठ्या महार' रुपये दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। तुम्हारे घरवालोंने रुपये भेज दिये होंगे। जाकर पता लगाओ।' बोधलाने सोचा घरमें तो एक पैसा भी नहीं था, लगानके रुपये भरनेको कहाँसे आते। उन्होंने आकर घरपर पूछा तो मामाताईने कहा कि 'हमें तो कुछ भी पता नहीं है, हमने तो समझा कि आपने ही कहींसे लाकर रुपये भरे हैं तभी कुर्की उठी है।' तब विठ्या महारको बुलाकर पूछा तो उसने कहा, 'मेरे पास तो एक छदाम भी नहीं है, मैं आपका लगान कहाँसे भरता। फिर मैं तो आज घरसे बाहर भी नहीं निकला।'

अब बोधला समझ गये कि यह सारी लीला मेरे श्यामसुन्दरकी है। बोधला, मामाताई और उनकी दोनों सन्तान भगवान्‌के प्रेममें मस्त होकर नाचने लगे। लोगोंने आश्चर्यसे देखकर आकर कहा कि बोधलाका खेत जुवारसे भरा है!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

संघशक्ति और जप

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

बहुत-से आदमी मिलकर जब किसी एक कार्यको सम्पन्न करनेके लिये तत्पर होते हैं, तो उस जनसमूहको संघ कहते हैं; और उनके सम्मिलित बलका ही नाम 'संघशक्ति' है। संघमें सभी तरहके आदमी होते हैं, कुछ उत्साही होते हैं तो कुछ डरपोक एवं कम उत्साही; कुछ कमजोर होते हैं, तो कुछ बलवान्। कुछ दुबले-पतले भी होते हैं, साथ ही कुछ मोटे-ताजे भी होते हैं। किन्तु संघमें रहनेसे सभीका निर्वाह हो जाता है, कमजोरोंको अपने बलवान् साथियोंसे शक्ति प्राप्त होती है, डरपोक आदमी अपने निर्भय और उत्साही साथियोंकी देखादेखी वीरताका काम कर जाते हैं। अशक्त पुरुष संघकी सहायतासे सशक्त बन जाते हैं। एक दुबले-पतले फौजी डाक्टरका कहना था कि वैसे मुझसे मील दो मील भी कठिनतासे चला जाता था, किन्तु जब फौजका बैंडबाजा बजता और सभी सिपाही एक साथ बैंडबाजेके स्वरमें स्वर मिलाकर मार्चिंग करते हुए चलते तब दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मीलतक यों ही चले जाते और मुझे मालूम ही नहीं होता था कि कितना चला। थकानका नाम नहीं, सब उत्साहमें भरे चले जाते थे।

यह कविकल्पना नहीं है, यह प्रत्यक्ष बात है। एकता बड़ी-बड़ी मजबूत बेड़ियोंको बात-की-बातमें तोड़ देती है।

हमने ऐसा सुना था कि कोई बहुत सुप्रसिद्ध गायक दिल्लीके रेलके पुलके नीचे बैठे गाना गा रहे थे। जब उनके ताल, स्वर और लय तीनों मिल गये तो पुलपर चलती हुई डाकगाड़ी रुक गयी। तीनोंके सम्मिलनसे जो सुमधुर मोहक शक्ति निकली उसने जड़-चेतन सभीको मोहित कर लिया। ऐसा भी सुननेमें आया है कि बड़े-बड़े पुलोंपरसे फौजके लोग बैंडके साथ मार्चिंग करते हुए नहीं निकलते, क्योंकि उनकी सम्मिलित स्वर-लहरीसे जो पुलकी चीजें आपसमें मिली हुई हैं, वे अलग-अलग हो जायँगी और पुल टूट जायगा। यह कोई असम्भव बात नहीं। ताल, स्वर, लय और रागको मिलाकर मेजपर रक्खे हुए काँचके ग्लासको टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाले गायकोंको तो अभी लोगोंने देखा है। इन बातोंको जाने दीजिये। एक स्वरसे जब छोटे-छोटे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चे अपनी मीठी वाणीसे स्तुति-प्रार्थना करते हैं, तब हृदयमें कैसा एक अपूर्व भाव उठता है। अन्तःकरण स्वतः ही उस स्वरलहरीके साथ खिंचने लगता है। यह सब संघशक्तिका ही प्रभाव है।

संघके लिये यह आवश्यक नहीं कि स्थूल शरीरोंके मिलनेसे ही संघशक्ति उत्पन्न हो। एक-से भावोंके मिलनेसे भी वही शक्ति उत्पन्न हो सकती है, बल्कि भावोंके सम्मिलनसे शीघ्र और अत्यन्त प्रबल शक्ति उत्पन्न होती है। मिलन-वियोग, राग-द्वेषका सम्बन्ध मनसे है। मनसे जो जिसके पास है, वह दूर रहते हुए भी निकटतम है और जो मनसे दूर है, वह समीप रहते हुए भी न होनेके बराबर है। इसी भावको लक्ष्य करके यह दोहा कहा गया है—

कुमुदिनि तो जलमें रहे, चंदा बसे अकास।
जो जन जाके मन बसे, सो जन ताके पास॥

संसारमें भावोंसे ही जगत्का सम्पूर्ण व्यापार हो रहा है। जिस आकाशमण्डलको हम पोल और खाली समझते हैं, वह खाली नहीं है, भरा है। पोल नहीं है ठूँस-ठूँसकर भरा हुआ है, उसमें एक तिलभर भी जगह खाली नहीं। भले और बुरे भावोंसे यह पूरा आकाशमण्डल रुँध रहा है। तुम्हारे मनमें जैसे भाव प्रबल होंगे, वायुमण्डलमेंसे वैसे ही भावोंको खींच लेंगे। मनुष्य जो भी कुछ सोचता रहता है, उसके वे भाव आकाशमण्डलमें भर जाते हैं। अच्छे विचारवाले आकाशमण्डलमेंसे अच्छे भावोंको खींच लेते हैं। बुरे विचारवालोंके पास बुरे विचार पहुँच जाते हैं। इसी लिये घोर जङ्गलमें बैठे हुए वे एकान्तवासी तपस्वी महापुरुष भी जगत्का बड़ा भारी उपकार करते हैं जो एकान्तमें बैठकर जगत्के कल्याणकी इच्छासे माया-मोह और राग-द्वेषसे रहित होकर सद्विचारोंको वायुमण्डलमें छोड़ते रहते हैं।

उदाहरणके लिये ले लीजिये, जैसे हमने कोई शब्द मुखसे निकाला, तो निकालते समय जो भी शब्द हम बोले वे संसारके कोने-कोनेमें फैल गये। वायु-लहरियोंने उसे बखेर दिया। यदि किसी यन्त्रकी सहायतासे वे शब्द बिखरने न पावें और सीधे रोक लिये जायँ तो प्रयागमें बातें करनेसे आप बम्बईमें बैठे-बैठे सुन सकते हैं। टेलीफोनमें यही तो होता है।

बिना तारके तारसे समाचार कैसे जाते हैं। बहुत ऊँचे लट्ठोंपर एक यन्त्र रहता है, उसमेंसे जिधरको समाचार भेजना होता है, उस दिशाको लक्ष्य करके घण्टी बजाते हैं। वह घण्टीकी आवाज वायुकी लहरों-के साथ उस यन्त्रसे टकराती है। रेलकी पटरियोंके किनारे-किनारे जो तार लगे रहते हैं उन लट्ठोंपर एक चीनीका गुम्बज-सा रहता है, उसी पारके गुम्बजमेंसे जब वे शब्दलहरी लगती हैं, तब उसके सहारे दो बिजलीके कुछ टुकड़े-से पड़े रहते हैं, वे टुकड़े लहरों-के टकरानेसे एक हो जाते हैं तब आप जो भी कुछ कहते हैं, उन शब्दोंकी प्रतिध्वनियाँ बिना किसी यन्त्रके सहारेसे आकाशमें होकर उस यन्त्रसे टकराती हैं। तब आप मजेसे प्रयागके किलेके बेतारके लट्ठोंपर चढ़कर विलायतके लट्ठोंपर बैठे हुए पुरुषसे बातें कर सकते हैं। यदि उन दोनोंके बीचमें कोई और व्यव-धान पड़ गया तो बातें न हो सकेंगी। महायुद्धके जमानेमें लोग ऐसा करते कि शत्रुपक्षकी बातें जानने-के लिये हवाई जहाजोंकी सहायतासे बेतारके तारोंको बीचमें ही रोक लेते। तब लोग इशारेसे समाचार भेजने लगे कि कोई रोक भी ले तो हमारा कुछ मतलब न समझ सके।

ये बिना तारके तार फिर भी यन्त्रोंकी अपेक्षा रखते हैं, किन्तु हमारा मन स्वतः ही एक ऐसा यन्त्र है कि इसे दूर समाचार भेजनेमें कुछ भी देर नहीं लगती। किन्तु शर्त यह है कि जिसके पास समाचार भेजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय वह मन भी शुद्ध और निर्मल हो। मायाका व्यवधान होनेसे हम दूसरे मनकी बातें ठीक-ठीक नहीं सुन सकते। यदि बीचमेंसे मायाका पर्दा हट जाय और दो मन शुद्ध होकर आपसमें भावोंका आदान-प्रदान करें तो बड़ी आसानीसे एक दूसरेकी बातें समझ सकते हैं। दूर-दूरपर बैठे हुए बहुत-से पुरुष परस्पर किसी एक भावमें साथ ही निमग्न हो सकते हैं, एक दूसरोंको उसके भाव और विचारोंसे काफी मदद मिल सकती है।

हमने सुना है कि कोई एक ऐसी पारमार्थिक संस्था है कि उसके सदस्य किसी एक नियत समयपर जहाँ भी कहीं होते हैं, वहीं बैठकर एक दूसरोंके भावोंकी सहायतासे एक ही सुखका आस्वादन करते हैं। जैसे निश्चय है कि मंगलवारके दिन ३ बजेसे ४ बजेतक श्रीरामजीकी पुष्पवाटिकाभ्रमणकी लीला-का रसास्वादन करना है, तो उस दिन मंगलवारको उस सभाके सदस्य चाहे जहाँपर भिन्न-भिन्न स्थानोंपर हों, घड़ीमें ठीक ३ बजते ही वे बैठ जायँगे और भगवान् लक्ष्मणजीके साथ किस प्रकार महाराज जनककी पुष्पवाटिकामें गये, किस प्रकार वहाँ सीता-जी आयीं, आदि इन दृश्योंका चित्र अपने हृदयपटल-पर अङ्कित करने लगेंगे। सभी उस समय ऐसे ही विचारोंमें निमग्न हो जायँगे। एक दूसरेको इससे सहायता मिलती है और कहते हैं उन्हें इससे अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है।

यह बात कुछ नयी हो सो बात नहीं, प्राचीन कालमें भी लोग इस प्रकारके भावोंका आदान-प्रदान करते थे। पहले ये यन्त्रोंकी बनी घड़ियाँ नहीं थीं, लोग सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंसे काम लेते थे। हमारी दोनों-तीनों समयकी सन्ध्याएँ क्या हैं, जब ठीक सूर्य अस्त होनेको हों या उदय होनेको हों, उस समयका नाम सन्ध्याकाल है। प्राचीन आर्य अपने सभी आवश्यक कार्योंको छोड़कर उस समय सन्ध्या करने बैठ जाते थे। उस समयकी उपासनामें सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलानेवाले पुरुषोंको एक दूसरेके भावोंसे शक्ति प्राप्त होती थी, तभी तो असमयकी सन्ध्याके लिये असफला और बन्ध्या वधूकी उपमा दी गयी है।

इसी प्रकार भगवन्नामजप और कीर्तनमें भी एक दूसरेके भावोंसे बहुत मदद मिल सकती है। गत माघशुक्ला १३ (१६ फरवरी) से झूसी (प्रयाग) में कुछ साधकोंने मिलकर—

पय अहार फल खाइ जपु, राम नाम षट मास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास॥

इस दोहेके अनुसार ६ महीनेतक मौनी फलाहारी होकर—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामन्त्रका निरन्तर जप-कीर्तन आरम्भ किया है। जो भाई किसी विशेष कार्यवश घर नहीं छोड़ सकते और घरपर रहकर भी वे इस षाण्मासिक नामजपयज्ञमें मनसे सम्मिलित होना चाहते हैं, वे केवल अपना पता और कबसे सम्मिलित हुए और कितने बजेसे कितने बजेतक जप-कीर्तन करते हैं, केवल इसकी सूचना दे दें तो यहाँसे सहयोगी भाव भेजनेमें सहायता मिलेगी। इससे उन्हें भी लाभ होगा और हमलोगोंको भी लाभ होगा। जो भाई इस तरह करके रहना चाहें वे इसकी सूचना मुझे दे दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मका यथार्थ तत्त्व

(लेखक—सि० म० श्रीसतीशदेव गोस्वामी)

ध्रियते+यः—स धर्मः । अर्थात् धारणार्थक धृ धातुसे 'धर्म' शब्दकी व्युत्पत्ति हुई है । व्यष्टि और समष्टिरूपमें अर्थात् व्यक्तिगत और सामाजिकरूपमें जो सनातन और शाश्वत नीतिसमूह लोकस्थितिको मंगलकी शृंखलामें धारण करके रखता है, वही उस लोकस्थितिका या मानवसमाजका धर्म है । वेदादि शास्त्रोंमें सत्य, दया, शान्ति और अहिंसा—इन चार वृत्तियोंका वर्णन धर्मके चार चरणोंके रूपमें किया गया है । मनुसंहितामें कहा गया है—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥
(मनुः)

अर्थात् वेदविद् पण्डितोंको ज्ञात, रागद्वेषसे रहित, साधुओंद्वारा सेवित एवं अपने हृदयमें श्रेयरूपसे अनुभूत जो है, वही धर्म है ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥
(मनुः)

अर्थात् अखिल वेद, वेदविद् पुरुषोंकी स्मृति और शील या चरित्रगत गुण, साधुओंका आचार तथा आत्मतुष्टि ये सब धर्मके मूल अथवा प्रमाणस्वरूप हैं ।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥
(मनुः)

अर्थात् वेद, स्मृति, सदाचार एवं आत्माका प्रिय—इन चारको धर्मका लक्षण कहा गया है । जो इन चारोंको यथार्थ रूपमें जानते हैं उनको—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(मनुः)

अर्थात् धृति, क्षमा, दम (मनका निग्रह), अचौर्य, शौचाचार तथा बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह या वशीकरण, ज्ञान, विद्या, सत्य तथा अक्रोध—इन दस प्रकारके धर्मके लक्षणोंसे 'अलङ्कारके समान' सुशोभित होना अत्यन्त आवश्यक है । महर्षि वेदव्यासने महाभारतमें लिखा है—

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवति सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥

अर्थात् 'केवल धर्मसे ही अर्थ, सुख आदि जो कुछ सांसारिक लोगोंके लिये आवश्यक है, वह सब प्राप्त होता है । एकमात्र धर्म ही संसारका सार है ।' यदि निश्चितरूपसे उसका पालन किया जाय तो एकमात्र धर्मसे अर्थ, काम, मोक्ष ये त्रिवर्ग भी प्राप्त हो जाते हैं । चतुर्वर्गका आदि या प्रथम स्थान तो धर्म है ही । अतएव इससे प्रमाणित होता है कि जिससे अभ्युदय होता है और परमकल्याण होता है वह एकमात्र धर्म ही है ।

धर्म स्मृति और श्रुतिके द्वारा दो भागोंमें विभक्त होकर अनादि कालसे चला आ रहा है । प्रथम स्मृति है । पुरुष-परम्पराक्रमसे जिन वेदानुगत सुनीतियोंके मार्गसे लोग जीवन-निर्वाह करते हैं और इस प्रकार लोक-स्थितिको धारण किये रहनेके कारण जिन्हें विशेषरूप-से धर्म कहा गया है, उन सब सुनीतियोंको स्मरण करके ऋषियोंने जो शास्त्रपद्धति बनायी है, उसका नाम स्मृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह अतीत कालकी द्योतक है। द्वितीय श्रुति है—जो अतीन्द्रिय, परम सूक्ष्म, योगशक्तिके द्वारा ग्राह्य है अर्थात् जिसे शक्तिके द्वारा अलौकिक सत्य उपलब्ध होता है, उसके द्वारा सङ्कलित अनादि कालकी अक्षय ज्ञानरत्नराशिको ही वेद कहते हैं। इसीका दूसरा नाम श्रुति है। अनादि कालसे तत्त्वोपदेश श्रुत होते आ रहे हैं, उन्हींका नाम श्रुति है। यह वर्तमान कालका द्योतक है। स्मृति रजोगुण—कर्मप्रधान उपदेशके द्वारा स्तव, स्तुति, याग, यज्ञ, पूजा, पार्वण, श्राद्ध, तर्पण आदि कर्मोंकी शिक्षा देती है और इनकी समष्टिको कहते हैं संहिता और ब्राह्मण, जैमिनि-प्रणीत कर्म-मीमांसा या पूर्वमीमांसा। श्रुति सत्त्वगुण—ज्ञानप्रधान उपदेशके द्वारा मुख्यतः आत्मा, ब्रह्म, सृष्टि इत्यादि दार्शनिक तत्त्वसमूहका प्रतिपादन करती है। इनका नाम उपनिषद् और वेदव्यास-प्रणीत वेदान्तशास्त्र है। वास्तवमें 'वेदान्त' शब्दसे प्रधानतः उपनिषदोंका ही बोध होता है। 'वेदान्त' का अर्थ है 'वेदका अन्त' अर्थात् वेदका शेष भाग। वेदका प्रथम भाग स्मृति या कर्मकाण्ड और उसके बाद श्रुति या ज्ञानकाण्ड है। इसीसे ज्ञानकाण्डका नाम है वेद-अन्त। अथवा जिस ज्ञानको प्राप्त कर लेनेपर याग-यज्ञ आदि वैदिक कर्मानुष्ठानका अन्त अर्थात् अवसान हो जाता है उसी-का नाम वेदान्त है। अथवा वेदके अन्दर जो असल तत्त्व है वही वेदान्त है। हिन्दूसमाजमें ये दो प्रकार-के धर्म अनादि कालसे प्रचलित हैं। महामुनि वाल्मीकिने योगवासिष्ठके निर्वाण-प्रकरणमें लिखा है—

नैयायिकैरितरथा तादृशैः परिकल्पिता।
अन्यथा कल्पिता सांख्यैश्चार्वाकैरपि चान्यथा॥
जैमिनीयैश्चार्हतैश्च बौद्धैर्वैशेषिकैस्तथा।
अन्यैरपि विचित्रैस्तैः पाञ्चरात्रादिभिस्तथा॥
सर्वैरेव च गन्तव्यं तैः पदं पारमार्थिकम्।
विचित्रदेशकालोत्थैः पुरमेकमिवाध्वगैः॥
(योगवासिष्ठ)

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥
(महिम्नःस्तोत्र)

अर्थात् जैमिनि, गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, वेदव्यास, बौद्ध, चार्वाक, पाञ्चरात्रादिके मत भिन्न-भिन्न होनेपर भी सबका मुख्य गन्तव्य स्थान एक है, इसमें सन्देह नहीं। रुचिकी विचित्रताके कारण चाहे जिसने चाहे जो पथ अवलम्बन किया है, वह पथ सीधा हो या टेढ़ा ही क्यों न हो, सबका गन्तव्य स्थल एक है, जिस तरह सब नदियोंका, चाहे सीधे बहनेवाली हो या टेढ़ी, मिलन-स्थान एक समुद्र ही है।

यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं स तु पश्यति।
तञ्चावति स भूत्वासौ तद्ग्रहं समुपैति तम्॥
(योगवासिष्ठ)

अर्थात् 'गुरु जिसको जिस रूपमें परमतत्त्व दिखावें, वह उसी रूपमें ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करता है। ब्रह्म उसी भावको धारण कर उसकी रक्षा करता है। वही भाव उसे प्राप्त होता है, अर्थात् उसके चित्त-को परिपूर्ण कर रखता है।' ब्रह्म अनन्तस्वरूप है; अनन्त रूपमें मायामुग्ध मनुष्य उन्हें पकड़ नहीं पाता। जिसने जिस रूपमें उसको देखा है, उसने यथायोग्य गुरुकी दृष्टिसे ठीक ही देखा है। इसीसे हम प्रत्येक देशमें, प्रत्येक जातिमें, प्रत्येक युगमें, प्रत्येक धर्ममें अथवा आध्यात्मिक तत्त्वमें इतनी विचित्रता देखते हैं। अनन्त सत्यका इस प्रकार वैचित्र्यमय प्रकाश ही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा सत्य है।

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा धरमदासजी

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम० ए०)

क और वेदको मथकर सन्तोंने सार-तत्त्व निकाला। आत्मानुभवके उस दिव्य प्रकाशमें जगत्‌की कोई सत्ता ही नहीं रही। समस्त नाम-रूपमें एक ही नाम और एक ही रूप रह गया। आत्मामें दृष्टि जब डूबी तो सब कुछ परमात्मरूप ही हो गया। वह दृष्टि जहाँ गयी वहाँ केवल हरि ही था। भीतर जब साक्षात्कार हो गया तो बाहरका कोई प्रश्न ही न रहा। सारी लड़ाई, सारी विषमता और विरोध तो भीतरको लेकर ही है। मनको जीत लिया तो संसारको जीत लिया।

नैनन आगे ख्याल घनेरा।
जेहि कारन जग डोलत भरमे,
सो साहेब घट लीन्ह बसेरा॥
का साँझा का प्रात सबेरा,
जहँ देखूँ तहँ साहेब मेरा॥
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है,
साहेब घटमें कीन्हा डेरा॥
साहेब कबीर एक माला दीन्हा,
धरमदास घट हो बिच फेरा॥

धरमदासजी कबीरके प्रधान शिष्योंमें थे। कबीरकी अटपटी परन्तु तत्त्वभरी 'बानी' धरमदासके हृदयमें चुभ-सी गयी। धरमदासजीने देखा कि कबीर जो कुछ कह रहे हैं वह अनुभवके रसमें सराबोर है। कबीर पढ़े-लिखे तो थे नहीं और काम भी करते थे जुलाहेका। साधारण वेश और गँवारू बोली देखकर बहुत लोग कबीरको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। परन्तु सन्त-महात्माओंको इसकी क्या चिन्ता? वे तो न 'पन्थ' चलाना चाहते हैं और न शिष्य-परम्परा ही छोड़ जाना चाहते हैं। कबीरमें जो निर्भीकता, दृढ़ता और अक्खड़पन था उसके कारण भी लोग कबीरसे ऊबते-से थे। परन्तु जिसपर परमात्मा दया करता है उसकी आँखें खोल देता है। कबीरके दर्शन पाकर धरमदास-जी प्रेम-विभोर होकर गा उठे—

आज घड़ी अनंदकी सतगुरु आये मोरे धाम हो।
आये गुरुदेव सजन पठयो, भयो हरष अपार हो॥
सकल सुंदर साजि आरत होत मंगलचार हो॥
दियो दरसन मन लुभायो, सुन्यो बचन अमोल हो।
अछय छाया सघन घनकी करत हंस कलोल हो॥
दया कीन्हो निर्गुन दीन्हो, आपनी करि सैन हो।
भक्ति मुक्ति सनेही सजनै, लियो परथम चीन्ह हो॥
भये कलमल दूर तनके, गई तपन नसाय हो।
अटल पंथ कबीर दीन्हा, धरमदास लखाय हो॥

धरमदासजीको सबसे पहले कबीरका दर्शन मथुरामें हुआ था। देखते ही धरमदासकी श्रद्धा उमड़ पड़ी। परन्तु सन्तोंकी लीला भी तो बड़ी विचित्र है। धरमदास-को अपनाना था, इसीलिये कबीर अचानक उन्हें छोड़-कर काशी चले गये। स्वभावतः ही धरमदास व्याकुल हो तड़फड़ाने लगे। आध्यात्मिक पिपासाकी यह विकलता बड़ी ही दुर्लभ वस्तु है—

नैन दरस बिन मरत पियासा।
तुमहीं छाड़ि भजूँ नहिं औरै, नाहिं दूसरी आसा।
आठों पहर रहूँ कर जोरी, करि लेहु आपन दासा॥
निसु बासर रहूँ लवलीना, बिनु देखे नहिं बिस्वासा।
धरमदास बिनवै कर जोरी, देहु निज लोक निवासा॥

प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक बार ऐसा अवसर अवश्य आता है जब उसे परमात्माका संकेत स्पष्ट-रूपमें मिलता है। यदि उसने उस संकेतको ठीक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक जान लिया और तदनुकूल अपना जीवन बना लिया तब तो मनुष्यजीवन धन्य हो ही गया। परन्तु हम तो संसारमें इतने चिपटे हुए हैं कि इससे परे कोई वस्तु है या नहीं, यह ध्यान भी नहीं होता। जगत्‌को भला कौन भोग सका? कितने आये और चले गये—संसार उनकी भोग-बुद्धिपर व्यङ्गपूर्ण अट्टहास कर रहा है।

धरमदासके हृदयकी ज्वाला उत्कट और सच्ची थी। वे कबीरकी खोजमें काशी पहुँचे। उन्होंने कबीरको गुरुरूपमें वरण किया और अपनी सारी धन-दौलत लुटा दी और काशीमें ही कबीर साहेबकी शरणमें रहने लगे। कबीरके परमधाम सिधारनेके अनन्तर धरमदासजीको उनकी गद्दी मिली और वे बरसोंतक कबीरमतका उपदेश करते रहे। धरमदासजीके जन्म और निधनकी कोई निश्चित तिथि नहीं मिलती। लोगोंका अनुमान है कि लगभग १४८० वि० संवत्‌में उनका जन्म और लगभग वि० सं० १६०० के उन्होंने शरीरत्याग किया। १२० वर्षकी अवस्था उनके दृढ़ संयमको देखते हुए अधिक नहीं है।

धरमदासजीकी 'शब्दावली' में उनकी अगाध गुरु-भक्ति, अप्रतिम भगवत्-प्रेम और एकान्त अध्यात्म-निष्ठा शब्द-शब्दमें भरी पड़ी है। धरमदासजी एक बड़ी ही ऊँची श्रेणीके आत्मदर्शी सन्त थे और लगभग चार सौ वर्ष हो चुकनेपर भी, आज भी उनकी बानी चन्दनके समान शीतल और अमृतके समान मधुर प्रतीत होती है; आज भी उसमेंसे एक अपूर्व विद्युत्-धारा-सी छूट रही है जिसके स्पर्शमें आ जानेपर काई लगा हुआ हृदय भी चमक उठता है, मुर्देमें भी प्राण आ जाता है और हम जीवनके विविध प्रश्नोंपर एक चिरनवीन परन्तु परम पुरातन दृष्टिसे विचार करने लगते हैं। अस्तु।

सन्तमतमें सच्चे गुरुको खोजकर उसकी शरणमें जाना ही पहली सीढ़ी है। गुरु पाना बड़ा ही दुर्लभ है। जिसने सच्चा गुरु पा लिया उसका काम बन गया, उसका जीवन कृतार्थ हो गया। श्रीगुरुके चरणोंकी नख-द्युति हमारे कोटि-कोटि जन्मोंकी संस्कारगत वासनाको नष्ट करके हमें सच्चे अध्यात्मपथमें प्रेरित कर देती है। गुरु ही हमें गोविन्दसे मिला सकता है। धरमदासजी सद्‌गुरुकी महिमा गाते-गाते कभी थके नहीं—

गुरु मोहि खूब निहाल कियो।
बूड़त जात रहे भवसागर पकरिके बाँहि लियो।
चौदह लोक बसैं जम चौदह, उनहुँसे छोरि लियो॥

गुरुने मुझे खूब ही निहाल कर दिया। संसार-सागरमें मैं बहा जा रहा था, गुरुने मेरी बाँह पकड़-कर मुझे उबार लिया। उन्होंने ही कृपा कर मुझे यमके फन्देसे सदाके लिये छुड़ा लिया। हृदयकी घुण्डी खोलकर गुरुने प्रीतमसे साक्षात्कार करा दिया और मैं सदाके लिये निहाल हो गया। सच्चे गुरुका मिलना परमात्माकी विशेष दयाका शुभचिह्न है—

मोरे पिया मिले सत ग्यानी।
ऐसन पिय हम कबहुँ न देखा, देखत सुरत लुभानी॥
आपन रूप जब चिन्हा बिरहिन, तब पियके मन मानी॥
जब हंसा चले मानसरोवर, मुक्ति भरै जहँ पानी।
कर्म जलायके काजल कीन्हा, पढ़े प्रेमकी बानी॥
धरमदास कबीर पिय पाये, मिट गइ आवा जानी॥

गुरु तो स्वयं भगवान्‌का स्वरूप है। उसे देखते ही हृदय गुलाम बन गया। जब अपने सत्य स्वरूपका बोध हुआ तभी पियको मैं अच्छी लगी। गुरुकी दयासे आत्मा अपने परमपुरुषमें मिल गयी। उस आनन्दका क्या कहना? मुक्ति—मुक्ति तो वहाँ चेरी बनकर पानी भरती है। कर्मोंका बन्धन स्वयं छिन्न-भिन्न हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। कर्मोंका आश्रय तो अविद्या ही है। जब स्वयं अविद्या ही मिट गयी तो कर्मोंका क्या पूछना? वहाँ तो बस प्रेम-ही-प्रेम है। जब सच्चे 'प्रीतम' को पा लिया तो आवागमनका झगड़ा कैसा?

गुरुमुखसे प्राप्त 'नाम' ही साधकका सर्वस्व है। नामके रसमें साधक सदैव छका रहता है। लोक-परलोककी सुध उसे क्यों रहे? वह तो बस 'नाम' में ही मस्त है। रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते नाम-की धुन लगी हुई है—

नाम रस ऐसा है भाई।
आगे आगे दाहि चलै पाछे हरियर होइ।
बलिहारी वा बृच्छकी, जड़ काटे फल होइ॥
अति कड़ुवा खट्टा घना रे, वाको रस है भाई।
साधत साधत साध गये हैं, अमली होय सो खाई॥
सूँघतके बौरा भये हो, पीयतके मरि जाई।
नाम रस्स जो जन पिये, धड़पर सीस न होई॥
संत जवारिस सो जन पावै जाको ग्यान प्रगासा।
धरमदास पी छकित भये हैं, और पिये कोइ दासा॥

'नाम' एक विचित्र चिनगारी है। आगे-आगे यह संसारके सघन वनको जलाता जाता है और पीछेसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी वाटिका हरी-भरी होती आती है। 'नाम' के द्वारा ही संसार-वृक्षकी जड़को काटा जा सकता है। संसारको काट चुकनेपर ही तो जीवनका फल प्राप्त होगा। नाम बड़ी कठिन वस्तु भी है। सहज ही इसका रस पीनेको नहीं मिलता। प्रारम्भमें तो यह बहुत ही कड़ुआ और खट्टा प्रतीत होता है; पीते नहीं बनता। परन्तु जिसने इसे साध लिया उसने तो अपने आँगनमें कल्पवृक्ष लगा लिया। 'नाम' का रस सूँघते ही हृदय प्रेममें पागल हो जाता है; पीते ही अहङ्कार भस्म हो जाता है, मैं-पन मिट जाता है। जिसने नामरस पी लिया उसके धड़पर सिर नहीं रहता। शरीरके साथ जो हमारा मोह है, इस शरीरको ही जो हम 'मैं-मैं' समझे हुए हैं, यही सारे दुःखोंका कारण है। नामरस पी लेनेपर इस झूठे 'मैं' की मृत्यु हो जाती है और सच्चे 'मैं' के दर्शन होते हैं। सन्तसमागमका अमृतरस तो उसे ही प्राप्त होगा जिसका अन्तस् ज्ञान-प्रकाशसे जगमगा रहा है। धरमदासजी तो नामके रसको पीकर छके हुए हैं। यदि और कोई प्रभुका दास हो वह आकर पी ले—द्वार सबके लिये खुला है; केवल शर्त है सिरकी। सिर देकर कोई भी नामरस पी ले—

चरन कँवल सतगुरु दिया, हम सीस चढ़ाई।

सन्तोंने जगत्के अनित्य और असुख रूपको खूब ठोंकबजाकर देख लिया है। इस कच्चे घड़ेका क्या भरोसा? पानीका बूँद पड़ा नहीं कि यह गला नहीं। इस शरीरमें जो हमारी ममत्व-बुद्धि है वही सारे अनर्थका मूल है। इस जगत्को 'अपना' कहकर जो हम इससे चिपटे हुए हैं यही भारी भ्रम है। इस भ्रमको मिटाये बिना तत्त्वज्ञान कैसा? भक्ति और ज्ञान दोनोंमें ही जगत्का जगत्रूप मिट जाता है। जगत्की उपासना करे वह भक्त या ज्ञानी कैसा? भक्तके लिये तो 'वासुदेवः सर्वमिति'—सब कुछ केवल वासुदेव हो जाता है; ज्ञानीके लिये 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—सब कुछ ब्रह्म ही है। जगत्के लुभावने रूपमें जो फँसा वह गया। यह जादू तो विषभरा कनक घट है। जगत्को भोगनेके लिये सुखकी आकांक्षासे जिसने पैर बढ़ाया वह ऐसे खन्दकमें गिरा जहाँसे कोटि-कोटि जन्मोंमें भी उसका उद्धार नहीं हो सकता। मानव-जीवनका तो परमफल है प्रभुका स्मरण। हरिका स्मरण बना रहे, नित्यनिरन्तर उसीका चिन्तन होता रहे, मन उसके रंगमें रँग जाय, उसके अतिरिक्त कुछ रह न जाय—मेरा अहं भी स्वयं वासुदेवरूप हो जाय, फिर क्या पूछना? परन्तु इसके लिये आवश्यकता है विषयोंकी ओरसे दृढ़तापूर्वक मनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोड़कर हरिचरणोंमें लगानेकी। यह तभी सम्भव है जब हम संसारको इसके असली रूपमें देखें—

थोरे दिनकी जिंदगी, मन चेत गँवार ॥
कागदके तन पुतरा, डोरा साहेब हाथ।
नाना नाच नचावहीं, नाचै संसार ॥
काच माटीके घइलिया, भरि लै पनिहार।
पानी परत गल जावही, ठाढ़ी पछिताय ॥
जस धूआँके धरोहरा, जस बालूके रेत।
हवा लगे सब मिटि गये, जस करतब प्रेत ॥
ओछे जलके नदिया हो, बहै अगम अपार।
उहाँ नाव नहिं बेरा हो, कस उतरब पार ॥
धरमदास गुरु समरथ हो, जाको अटल अपार।
साहेब कबीर सतगुरु मिले आवागवन निवार ॥

अथाह समुद्रकी छातीपर कागजकी नाव बही जा रही है। रस्सी प्रभुके हाथ है। 'वह' जैसा नाच नचाता है वैसा ही नाचना पड़ता है। हम मूर्खता और अहङ्कारवश अपनेको 'कर्ता' मान बैठते हैं; करनेवाला तो केवल हमारा सिरजनहार ही है; उसीके हाथमें हमारा समग्र जीवन-सूत्र है, वह चाहे जैसा नाच नचावे। यह हमारा शरीर, जिसका हमें इतना अभिमान है, एक कच्चे घड़ेके समान है; जरा-सी ठेस लगी, एक बूँद पानी पड़ा और यह गया! परमात्माने दयाकर हमें यह मनुष्यका शरीर दिया—इसे पाकर भी फिर नरकका सामान इकट्ठा करना कितनी मूर्खता है! जिसे भी मनुष्यका देवदुर्लभ शरीर मिल गया वह मुक्तिका अधिकारी हो गया। मुक्तिका अधिकारी नरककी तैयारीमें जीवनभर तल्लीन रहे—यह कितने आश्चर्यकी बात है। मृत्युका तो किसीको कभी स्मरण ही नहीं होता। ऐसा मालूम होता है मानो हम अमर होकर आये हैं। नित्य हम 'रामनाम सत्य है' का दृश्य देखते हैं, परन्तु 'रामनाम' की सत्यता हमारे भीतर पैठती नहीं।

धुएँके धौरहरका क्या आसरा? हवा बही और यह मिटा! यह संसार विषयोंका महासागर है—इससे तरनेके लिये केवल परमात्माकी कृपा और नाम ही नाव है। जिस प्रकार जादूगर कठपुतलीको जो नाच नचाना चाहे वही नाच वह नाचती है उसी प्रकार हमें भी बड़ी प्रसन्नता और उल्लासके साथ प्रभुके संकेतपर मस्ती और अदाके साथ नाचना चाहिये। कहीं इस अभिनयमें ममत्व न आ जाय! वह जहाँ भेजे, जैसे रक्खे उसीमें अपनी परम प्रसन्नता और कल्याण-भावना होनी चाहिये। वास्तवमें हम नाच तो रहे हैं निरन्तर उसी एक 'सूत्रधार' के संकेतपर—हम भले ही उस संकेतको स्पष्ट अनुभव करें या न करें। जो अपने जीवनकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक श्वासमें परमात्माकी प्रेरणाका अनुभव करते हैं वे हर दशा और हर नृत्यमें हरिके स्पर्शका सुख अनुभव करते हैं। विधानमें ही स्वयं विधाता आकर हमारे प्रत्येक पलको अपने रूप-रस-गन्ध-स्पर्शसे ओतप्रोत कर रहा है—

कागदकी नइया बनी हो डोरी साहेब हाथ।
जौने नाच नचैहैं हो नाचब वोही नाच ॥

जगत्‌की ओरसे मुँह मोड़कर परमात्मपथमें चलनेवालेके लिये महात्मा धरमदासजीके उपदेश बड़े ही अनमोल हैं—

सब्द बिचार नाम धर दीपक लै उर बारो हो।
जुगन जुगनकै अरुझनि, छनमें निरुवारो हो ॥
पंथे चलो गरीब होय, मद मोह निवारो हो।
साहेब नैन निकट बसै सत दरस निहारो हो ॥
आपे जगत जिताइकै मन सबसे हारो हो।
जवन बिधि मनुआ मरै सोइ भाँति सम्हारो हो ॥

'नाम' का दीपक जलाकर हृदयमें प्रकाश कर लिया और प्रीतमके दर्शन हो गये तब युग-युगकी उलझन स्वयं एक क्षणमें सुलझ गयी। जगत्‌की दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमपर न पड़े इसलिये बहुत गरीब होकर पथमें चले। अध्यात्मपथमें अहंकारकी गुञ्जाइश है ही नहीं। मद और मोह ही तो संसारमें भरमानेवाले हैं। इन्हें जब जीत लिया तो बीचका आवरण भंग हो गया और आँखें हर समय हर स्थानमें, सोते-जागते उसे ही देखने लगीं। संसारके साथ सङ्घर्षमें न लगकर मनको संसारसे मोड़ लेना चाहिये और जीते हुए मनको मनमोहनमें लगाना सरल हो जायगा।

मन जब अविचलरूपसे प्रभुमें लगने लगा तो फिर अब क्या पूछना?

राते माते रहो बहुत जनि बोलो हो।
निरखत परखत रहो, पलक जनि खोलो हो॥
रजनीके दिहल किवार, सत कुंजी खोलो हो।
ते उँजियारिमें बैठि, निर्भय होइ खेलो हो॥

वहाँ मधुकी धार बह रही है। उसे पीकर छके रहो। अब बोलना क्या? आँखें बन्द हैं—भीतरकी छबि देख-देखकर गद्गद होते रहो। तमोगुणको पैठने न दो; सत्यका द्वार खोलकर प्रकाश-राज्यमें प्रविष्ट हो जाओ और वहाँ निर्भय होकर हरिसे हिलो मिलो!

एक बार भी, यदि एक क्षणके लिये भी मन पूरा-पूरा पिघल गया और हरिका रूप उसमें ओत-प्रोत हो गया तो सदाके लिये ही उस अपरूपमें निवास हो गया। एकान्तरूपसे उसी एककी चाह रह गयी; और सभी चाह इस एक चाहमें समा गयी। उस समय तो हृदयकी बस एक ही कातर पुकार है—

साहेब चितवो हमरी ओर।
हम चितवैं तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर॥
औरनको तो और भरोसो, हमैं भरोसो तोर॥

मैं तो तुम्हारी ओर एक दृष्टिसे देख रहा हूँ, तुम मुझपर अपनी दृष्टि डालतेतक नहीं। हाय! तुम्हारा यह पत्थरका कठोर हृदय!! सब ओरसे निराश होकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ, तुम्हारा ही भरोसा, एक-मात्र तुम्हारा ही आसरा और सहारा रह गया है—मेरे लिये तो तुम्हारे सिवा कोई है ही नहीं! प्रभुकी 'कठोरता' (!) भी कितनी मधुर, कितनी आकर्षक है!

इस कठिन दुर्गम पथपर चलते-चलते साधक थकता नहीं। बीच-बीचमें उसे जो 'झाँकी' मिलती जाती है उससे उसका उत्साह अधिकाधिक बढ़ता जाता है। चलते-चलते कभी-कभी वह 'अपने' को सर्वथा खो देता है—

साहेब देखों तेरी सेजरिया हो।
लाल महलकै लाल कँगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो।
लाल पलँगके लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो॥
लाल साहेबकी लालिनि मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो।
धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरुके चरन बलहरिया हो॥

यहाँ निम्नलिखित दोहा स्वयं स्मरण हो आता है—

लाली मेरे लालकी, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल॥

कैसी विचित्र बात है कि हम सब कुछ खोजें परन्तु अपने प्रीतमको खोजनेका अवकाश ही न पावें? भोगोंकी वेदीपर भगवान्‌को चढ़ाकर हम मदमत्त हाथीकी भाँति घूम रहे हैं—

साँझ भई पिया बिना अकुलानी।
देस देस ढूँढ़ि फिरि आई, लोक-लोक मैं छानी।
कोइ न खोजै पिय अपनेको झुंड-की-झुंड गुमानी॥

जगत्‌का जो सुख-भोग है वह हमें परमात्मसुख-भोग-से वञ्चित रख रहा है। जगत्‌की ओरसे मुख मोड़ लेनेपर ही परमात्मपथमें चलना सम्भव है। दोनों एक साथ नहीं सधते। एक आत्मदर्शी महात्माके इस सम्बन्धमें बड़े ही अनमोल अनुभव हैं—

"Man's life is a paradox. Somehow he is placed in between sense-pleasures and Divine pleasures. He must use his

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

endowed reason to distinguish between the real soul pleasures and the pseudo-pleasures of the senses. If the devotee becomes addicted to sense-pleasures, his consciousness becomes caged behind the screen of bodily sensations and he cannot comprehend the superior pleasures of ecstasy in spirit. 'Do away with attachment to the sense, if you want to feel the joy of Heavenly consciousness vibrating in every cell of the ether'."

मनुष्यका जीवन एक विचित्र पहेली है। एक ओर विषयोंका सुख है और दूसरी ओर अध्यात्मसुख। वास्तविक आनन्द और झूठे सुखमें विवेकद्वारा भेद समझकर सत्य सुखकी उपलब्धिमें लगना चाहिये। यदि साधक भौतिक सुखमें लिपट गया तो उसकी आत्मा एक पिंजड़ेमें बँध गयी और वह परमात्मसुखको क्या जानने लगा? यदि दिव्य आध्यात्मिक आनन्दकी उपलब्धि चाहते हो तो विषय-सुखकी आसक्तिसे मुक्त हो जाओ। वह परमात्मसुख एक-एक अणुमें ओतप्रोत हो रहा है। आवश्यकता है मोहका आवरण हटाकर एकान्त भावसे परमात्मदर्शन और भगवन्मिलनकी आकुल उत्कण्ठाकी।

साधनाके पथमें चलते हुए बहुधा साधकको अपनी बुराइयों और दुर्बलताका अत्यधिक स्मरण हो आता है, परन्तु वह निराश नहीं होता। उसका जब यह दृढ़ विश्वास है कि हरिने मेरी बाँह पकड़ ली है तो वह भला जगत्की भयानकतासे परास्त क्यों हो? वह और भी अधिक आतुरताके साथ हरिका स्मरण करता है—

साहेब मोरि बँहियाँ सम्हारि गहो।
गहिरी नदिया नाव झाँझरी बोझा अधिक भई।
मोह लोभकी लहर उठत है नदिया झकोर बही॥
तुमहिं बिगारो तुमहिं सँवारो, तुमहिं भँडार भरी।
अब चाहो तब पार लगाओ, नहिं तो जात बही॥
कुमति काटिके सुमति बढ़ावो, बल बुधि ज्ञान दई।
मैं पापी बहु बेरी चूकूँ, तुम मेरी चूक सही॥

यहाँ गिरिधरकी एक कुण्डलिया सहज ही स्मरण हो आती है—

नैया मेरी तनक-सी, बोझी पाथर भार।
चहुँ दिसि अति भौंरे उठत, केवट है मतवार॥
केवट है मतवार, नाव मँझधारहिं आनी।
आँधी उठी प्रचंड, तेहुँपर बरसत पानी॥
कह गिरिधर कविराय नाथ हो तुमहिं खेवैया।
उठै दयाको डाँड़, घाटपर आवै नैया॥

एक बार 'प्रीतम' के दर्शन हो चुके हैं। मैंने समझा यह सुख अब मिटनेका नहीं। परन्तु संसारसे मेरा वह सुख देखा न गया। वह बीचमें आ टपका। मेरा वह 'सुख' छिन गया। अब तो यह जगत्-ही-जगत् रह गया। हरिकी वह झाँकी जाने कहाँ विलीन हो गयी। परन्तु रह-रहकर एक हूक उठती है—

हमरी उमिरिया होरी खेलनकी,
पिय मोसे मिलिके बिछुरि गयो हो॥
पिय हमरे हम पियकी पियारी,
पिय बिच अंतर परि गयो हो॥
पिया मिलै तब जियों मोरी सजनी,
पिय बिना जियरा निकरि गयो हो॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी,
बीच डगर पिय मिलि गयो हो॥
धरमदास बिरहिन पिय पावै,
चरन कँवल चित गहि रहो हो॥

उस 'आनन्द' का जहाँ चस्का लगा कि संसारके सभी रस नीरस हो गये। जगत्में क्या शक्ति कि अब हमें प्रीतमसे वियुक्त कर सके। भूलसे मैं संसारको पूजता था, अब भ्रम मिट गया और हृदयके सिंहासनपर हरिजी विराज रहे हैं—

झरि लागै महलिया गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै,
लहर उठै सोभा बरनि न जाय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्न महलसे अमृत बरसै,
प्रेम अनँद होइ साधु नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अँधियरिया,
धन सतगुरु जिन दिया है बताय॥

सन्तोंकी आध्यात्मिक स्थितिका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। शब्दोंमें उस आनन्दका वर्णन क्या हो? वह तो स्वसंवेद्य है, गूँगेका गुड़ है। जिनके लिये यह जगत् रह ही नहीं गया; जो सर्वत्र, सर्वदा, भीतर बाहर, ऊपर नीचे, दायें बायें, हर घड़ी, हर ठौर केवल हरिका ही दर्शन करते हैं, उसीका स्पर्श करते हैं, उसीका रसास्वादन करते हैं और उसी रसमें स्वयं छके रहते हैं उनके सुखका वर्णन कोई करे भी कैसे? जो हमारा वास्तवमें गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण और सुहृद् है उससे जब 'परिचय' हो गया, जब सर्वलोकमहेश्वर ही हमारे परम सुहृद् हो गये तब क्या चिन्ता, कैसा द्वन्द्व? इन आत्मदर्शी सन्त-महात्माओंकी बानीसे कुछ देरके लिये भी यदि हृदयका कल्मष मिट जाय तो अपनेको धन्य मानना चाहिये।

बहुत पहले एक महात्माको खँजड़ीपर गीत गाते सुना था, मुझे वह बहुत भाया। पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद आज समझ सका हूँ कि वह पद धरमदासजीका था। वह यों है—

कहँवासे जिव आइल, कहँवा समाइल हो।
कहँवा कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो॥
निरगुनसे जिव आइल, सगुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो॥
एक बुंदसे काया महल उठावल हो।
बुंद परे गलि जाय, पाछे पछितावल हो॥
हंस कहे भाइ सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतन दिदार, बहुर नहिं पाइब हो॥
इहवाँ कोइ नहिं आपन, केहि सँग बोलै हो।
बिच तरवर मैदान, अकेला (हंसा) डोलै हो॥
लख चौरासी भरमि, मनुख तन पाइल हो।
मानुख जनम अमोल, अपनसों खोइल हो॥
साहेब कबीर सोहर गावल, गाइ सुनावल हो।
सुनहू हो धर्मादास, एही चित चेतहु हो॥

यदि वस्तुतः हम इसे समझकर हृदयङ्गम कर लें तो फिर इस अनमोल मनुष्यशरीरका पाना सुफल हो गया, हमारा जीवन धन्य हो गया, हम सर्वथा निहाल हो गये, क्योंकि 'नहिं ऐसो जनम बारंबार'!

जीवन-झोली

(लेखक—पं० श्रीब्रह्मानन्दजी शुक्ल शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, कविरत्न)

(१)

विश्ववन्द्य! करुणाधन! सबको देते हो मुँहमाँगा दान।
अपने याचकको तुम जगमें करते हो शुभ-कीर्ति प्रदान॥
लेकर जीवनकी झोलीको आया हूँ तव द्वार निदान।
विश्वप्रेम-मुक्ता-भिक्षासे भर दो आज इसे भगवान॥

(२)

दुर्गुण-गुणसे सींकर स्वामी! कपट-कुपटकी झोली।
पाप-चूर्णसे पूर्ण निरन्तर कम्पित करमें तोली॥
भव-बन्धनमें बँधकर अबतक जगकी गली टटोली।
आज सफल कर दो जीवनधन! मेरी जीवन-झोली॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संन्यासधर्मकी कठोरता

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

छोटे हरिदासको स्त्री-दर्शनका दण्ड

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य ।
संदर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त! हन्त! विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥*
(श्रीचैतन्यचन्द्रोदयना० ८ । २४)

सचमुच संसारके आदिसे सभी महापुरुष एक स्वरसे निष्किञ्चन भगवद्भक्त अथवा ज्ञाननिष्ठ वैरागीके लिये कामिनी और काञ्चन—इन दोनों वस्तुओंको विष बताते आये हैं। उन महापुरुषोंने संसारके सभी प्रिय लगनेवाले पदार्थोंका वर्गीकरण करके समस्त विषय-सुखोंका समावेश इन दो ही शब्दोंमें कर दिया है। जो इन दोनोंसे बच गया वह इस अगाध समुद्रके परले पार पहुँच गया, और जो इनमें फँस गया वह मँझधारमें डुबकियाँ खाता बिलबिलाता रहा। कबीरदासने क्या ही सुन्दर कहा है—

चलन चलन सब कोइ कहे, बिरला पहुँचे कोय ।
एक 'कनक' अरु 'कामिनी', घाटी दुरलभ दोय ॥

यथार्थमें इन दो घाटियोंका पार करना अत्यन्त ही कठिन है, इसीलिये महापुरुष स्वयं इनसे पृथक् रहकर अपने अनुयायियोंको कहकर, लिखकर, प्रसन्न होकर, नाराज होकर तथा भाँति-भाँतिसे घुमा-फिराकर इन्हीं दो वस्तुओंसे पृथक् रहनेका उपदेश देते हैं। त्याग और वैराग्यके साकार स्वरूप महाप्रभु चैतन्यदेवजी भी अपने विरक्त भक्तोंको सदा इनसे बचे रहनेका उपदेश करते और स्वयं भी उनपर कड़ी दृष्टि रखते। तभी तो आज त्यागि-शिरोमणि श्रीगौरका यशःसौरभ दिशा-विदिशाओंमें व्याप्त हो रहा है। व्रजभूमिमें असंख्यों स्थान महाप्रभुके अनुयायियोंके त्याग-वैराग्यका अभीतक स्मरण दिला रहे हैं।

पाठक महात्मा हरिदासजीके नामसे तो परिचित ही होंगे। हरिदासजी वयोवृद्ध थे और सदा नाम-जप ही किया करते थे। इनके अतिरिक्त एक दूसरे कीर्तनिया हरिदास और थे। वे हरिदासजीसे अवस्थामें बहुत छोटे थे, गृहत्यागी थे और महाप्रभुको सदा अपने सुमधुर स्वरसे संकीर्तन सुनाया करते थे। भक्तोंमें वे 'छोटे हरिदास' के नामसे प्रसिद्ध थे। वे पुरीमें ही प्रभुके पास रहकर भजन-संकीर्तन किया करते थे।

प्रभुके समीप बहुत-से विरक्त भक्त पृथक्-पृथक् स्थानोंमें रहते थे। वे सभी भक्तिके कारण कभी-कभी प्रभुको अपने स्थानपर बुलाकर भिक्षा कराया करते थे। भक्तवत्सल गौर उनकी प्रसन्नताके निमित्त उनके यहाँ चले आते थे और उनके भोजनकी प्रशंसा करते हुए भिक्षा भी पा लेते थे। वहींपर भगवानाचार्य नामके एक विरक्त पण्डित निवास करते थे। उनके पिता सतानन्दखाँ घोर संसारी पुरुष थे, उनके छोटे भाईका नाम था गोपाल भट्टाचार्य। गोपाल श्रीकाशीजीसे वेदान्त पढ़कर आया था। उसकी बहुत इच्छा थी कि मैं प्रभुको अपना पढ़ा हुआ शारीरक भाष्य सुनाऊँ, किन्तु वहाँ तो सब श्रीकृष्णकथाके श्रोता थे। जिसे जगत्का प्रपञ्च समझना हो और जीव-ब्रह्मकी एकताका निर्णय करना हो, वह वेदान्तभाष्य सुने अथवा पढ़े। जहाँ श्रीकृष्णप्रेमको ही जीवनका एकमात्र ध्येय माननेवाले पुरुष हैं, जहाँ भेदाभेदको अचिन्त्य बताकर उससे उदासीन रहकर श्रीकृष्णकथाको ही प्रधानता दी जाती है, वहाँ पदार्थोंकी सिद्धिके प्रसङ्गको सुनना कोई क्यों पसन्द करेगा? अतः स्वरूप गोस्वामीके कहनेसे वे भट्टाचार्य महाशय अपने वेदान्तज्ञानको ज्यों-का-त्यों ही लेकर अपने निवास-स्थानको लौट गये। आचार्य भगवानजी वहीं पुरीमें रह गये। उनकी स्वरूप दामोदरजीसे बड़ी घनिष्ठता थी। वे बीच-बीचमें कभी-कभी प्रभुका निमन्त्रण करके उन्हें भिक्षा कराया करते थे।

* महाप्रभु चैतन्यदेव सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहते हैं—खेदके साथ कहना पड़ता है कि जो लोग इस असार संसाररूपी समुद्रके उस पार जाना चाहते हैं और जिनका भगवान्के भजनकी ओर झुकाव हो चला है, ऐसे निष्किञ्चन भगवद्भक्तके लिये स्त्रियों और विषयी पुरुषोंका स्वेच्छासे दर्शन करना विष खा लेनेसे भी बुरा है अर्थात् स्त्रियों और विषयी लोगोंके संसर्गकी अपेक्षा विष खाकर मर जाना सर्वश्रेष्ठ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगन्नाथजीमें बने-बनाये पदार्थोंका भोग लगता है और भगवान्‌के महाप्रसादको दूकानदार बेचते भी हैं। किन्तु जो चावल बिना सिद्ध किये कच्चे ही भगवान्‌को अर्पण किये जाते हैं, उन्हें 'प्रसादी' या 'अमानी' अन्न कहते हैं, उसका घरपर ही लोग भात बना लेते हैं। भगवानजीने घरपर ही प्रभुके लिये भात बनानेका निश्चय किया।

पाठकोंको सम्भवतः शिखि माहितीका नाम स्मरण होगा, वे श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें हिसाब-किताब लिखनेका काम करते थे। उनके मुरारी नामका एक छोटा भाई और माधवी नामकी एक बहिन थी। दक्षिणकी यात्रासे लौटनेपर सार्वभौम भट्टाचार्यने इन तीनों भाई-बहिनोंका प्रभुसे परिचय कराया था। ये तीनों ही श्रीकृष्णभक्त थे और परस्पर बड़ा ही स्नेह रखते थे। माधवी दासी परम तपस्विनी और सदाचारिणी थी। इन तीनोंका ही महाप्रभुके चरणोंमें दृढ़ अनुराग था। महाप्रभु माधवी दासीकी गणना राधाजीके गणोंमें करते थे। उन दिनों राधाजीके गणोंमें साढ़े तीन पात्रोंकी गणना थी—(१) स्वरूप-दामोदर, (२) राय रामानन्द, (३) शिखि माहिती और आधे पात्रमें माधवीदेवीकी गणना थी। इन तीनोंका महाप्रभुके प्रति अत्यन्त ही मधुर श्रीमतीजीका-सा सरस भाव था।

भगवानाचार्यजीने प्रभुके निमन्त्रणके लिये बहुत बढ़िया महीन शुक्ल चावल लानेके लिये छोटे हरिदासजीसे कहा। छोटे हरिदासजी माधवी दासीके घरमें भीतर चले गये और भीतर जाकर उनसे चावल माँगकर ले आये। आचार्यने विधिपूर्वक चावल बनाये। कई प्रकारके शाक, दाल, पना तथा और भी कई प्रकारकी चीजें उन्होंने प्रभुके निमित्त बनायीं। नियत समयपर प्रभु स्वयं आ गये। आचार्यने इनके पैर धोये और सुन्दर-स्वच्छ आसनपर बैठाकर उनके सामने भिक्षा परोसी। सुगन्धियुक्त बढ़िया चावलोंको देखकर प्रभुने पूछा—'भगवान! ये ऐसे सुन्दर चावल कहाँसे मँगाये?'

सरलताके साथ भगवानजीने कहा—'प्रभो! माधवी-देवीके यहाँसे मँगाये हैं?'

सुनते ही महाप्रभुके भावमें एक प्रकारका विचित्र परिवर्तन-सा हो गया। उन्होंने गम्भीरताके साथ पूछा—'माधवीके यहाँसे लेने कौन गया था?'

उसी प्रकार उन्होंने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे हरिदास गये थे।'

यह सुनकर महाप्रभु चुप हो गये, और मन-ही-मन कुछ सोचने लगे। पता नहीं, वे हरिदासजीकी किस बातसे पहलेसे ही असन्तुष्ट थे। उनका नाम सुनते ही वे भिक्षासे उदासीन-से हो गये। फिर कुछ सोचकर उन्होंने भगवान्‌के प्रसादको प्रणाम किया और अनिच्छापूर्वक कुछ थोड़ा-बहुत प्रसाद पा लिया। आज वे प्रसाद पाते समय सदाकी भाँति प्रसन्न नहीं दीखते थे, उनके हृदयमें किसी गहन विषयपर द्वन्द्वयुद्ध हो रहा था। भिक्षा पाकर वे सीधे अपने स्थानपर आ गये। आते ही उन्होंने अपने निजी सेवक गोविन्दको बुलाया। हाथ जोड़े हुए गोविन्द प्रभुके सम्मुख उपस्थित हुआ। उसे देखते ही प्रभु रोषके स्वरमें कुछ दृढ़ताके साथ बोले—'देखना, आजसे छोटा हरिदास हमारे यहाँ कभी न आने पावेगा। यदि उसने भूलमें भी हमारे दरवाजेमें प्रवेश किया तो फिर हम बहुत अधिक असन्तुष्ट होंगे। मेरी इस बातका ध्यान रखना और दृढ़ताके साथ इसका पालन करना।'

गोविन्द सुनते ही सन्न रह गया। वह प्रभुकी इस आज्ञाका कुछ भी अर्थ न समझ सका। धीरे-धीरे वह प्रभुके पाससे उठकर स्वरूप गोस्वामीके पास चला गया। उसने सभी वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। सभी प्रभुकी इस भीषण आज्ञाको सुनकर चकित हो गये। प्रभु तो ऐसी आज्ञा कभी नहीं देते थे। वे तो पतितोंसे भी प्रेम करते थे, आज यह बात क्या हुई? वे लोग दौड़े-दौड़े हरिदासके पास गये और उसे सब सुनाकर पूछने लगे—'तुमने ऐसा कोई अपराध तो नहीं कर डाला जिससे प्रभु इतने क्रुद्ध हो गये?' इस बातके सुनते ही छोटे हरिदासका मुख सफेद पड़ गया। उसके होश-हवास उड़ गये। अत्यन्त ही दुःख और पश्चात्तापके स्वरमें उसने कहा—'और तो मैंने कोई अपराध किया नहीं; हाँ, भगवानाचार्यके कहनेसे माधवी दासीके घरसे मैं थोड़े-से चावलोंकी भिक्षा अवश्य माँग लाया था।'

सभी भक्त समझ गये कि इस बातके अन्दर अवश्य ही कोई गुप्त रहस्य है। प्रभु इसीके द्वारा भक्तोंको त्याग-वैराग्यकी कठोरता समझाना चाहते हैं। सभी मिलकर प्रभुके पास गये और प्रभुके पैर पकड़कर प्रार्थना करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे—'प्रभो! हरिदास अपने अपराधके लिये हृदयसे अत्यन्त ही दुखी हैं। उन्हें क्षमा मिलनी चाहिये। भविष्यमें उनसे ऐसी भूल कभी न होगी। उन्हें दर्शनोंसे वञ्चित न रखिये।'

प्रभुने उसी प्रकार कठोरताके स्वरमें कहा—'तुमलोग अब इस सम्बन्धमें मुझसे कुछ भी न कहो। मैं ऐसे आदमीका मुख भी देखना नहीं चाहता जो वैरागीका वेष बनाकर स्त्रियोंसे सम्भाषण करता है।'

अत्यन्त ही दीनताके साथ स्वरूप गोस्वामीने कहा—'प्रभो! उनसे भूल हो गयी। फिर माधवीदेवी तो परम साध्वी भगवद्भक्तिपरायणा देवी हैं, उनके दर्शनोंके अपराधके ऊपर इतना कठोर दण्ड न देना चाहिये।'

प्रभुने दृढ़ताके साथ कहा—'चाहे कोई भी क्यों न हो! स्त्रियोंसे बातें करनेकी आदत पड़ना ही विरक्त साधुके लिये ठीक नहीं। शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा है कि अपनी सगी माता, बहिन और युवती लड़कीसे भी एकान्तमें बातें न करनी चाहिये। ये इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि अच्छे-अच्छे विद्वानोंका मन भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं।' प्रभुका ऐसा दृढ़ निश्चय देखकर और उनके स्वरमें दृढ़ता देखकर फिर किसीको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ।

हरिदासजीने जब सुना कि प्रभु किसी भी तरह क्षमा करनेके लिये राजी नहीं हैं, तब तो उन्होंने अन्न-जल बिल्कुल छोड़ दिया। उन्हें तीन दिन बिना अन्न-जलके हो गये, किन्तु प्रभु अपने निश्चयसे तिलभर भी न डिगे। तब तो स्वरूप गोस्वामीजीको बड़ी चिन्ता हुई। प्रभुके पास रहनेवाले सभी विरक्त भक्त डरने लगे। उन्होंने नेत्रोंसे तो क्या, मनसे भी स्त्रियोंका चिन्तन करना त्याग दिया। कुछ विरक्त स्त्रियोंसे भिक्षा ले आते थे, उन्होंने उनसे भिक्षा लाना ही बन्द कर दिया। स्वरूप गोस्वामी डरते-डरते एकान्तमें प्रभुके पास गये। उस समय प्रभु स्वस्थ होकर कुछ सोच रहे थे। स्वरूपजी प्रणाम करके बैठ गये। प्रभु प्रसन्नतापूर्वक उनसे बातें करने लगे। प्रभुको प्रसन्न देखकर धीरे-धीरे स्वरूप गोस्वामी कहने लगे—'प्रभो! छोटे हरिदासने तीन दिनसे कुछ नहीं खाया है। उसके ऊपर इतनी अप्रसन्नता क्यों? उसे अपने कियेका बहुत दण्ड मिल गया, अब तो उसे क्षमा मिलनी चाहिये।'

प्रभुने अत्यन्त ही स्नेहके साथ विवशताके स्वरमें कहा—'स्वरूपजी! मैं क्या करूँ! मैं स्वयं अपनेको समझानेमें असमर्थ हूँ। जो पुरुष साधु होकर प्रकृतिसंसर्ग रखता है और उनसे सम्भाषण करता है, मैं उससे बातें नहीं करना चाहता। देखो, मैं तुम्हें एक अत्यन्त ही रहस्यपूर्ण बात बताता हूँ, इसे ध्यानपूर्वक सुनो और सुनकर हृदयमें धारण करो। वह यह है—

श्रृणु हृदयरहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां
न खलु न खलु योषित्सन्निधिः संनिधेयः।
हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरग्रैः
पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम्॥*
(सु० र० भां० ३६५। ७२)

इसलिये भैया, मेरे जाने, वह भूखों मर ही क्यों न जाय, अब मैं जो निश्चय कर चुका उससे हटूँगा नहीं।' स्वरूपजी उदास मनसे लौट गये। उन्होंने सोचा—'प्रभु परमानन्दपुरी महाराजका बहुत आदर करते हैं; यदि पुरी उनसे आग्रह करें, तो सम्भवतया वे मान भी जायँ।' यह सोचकर वे पुरी महाराजके पास गये। सभी भक्तोंके आग्रह करनेपर पुरी महाराज प्रभुसे जाकर कहनेके लिये राजी हो गये। वे अपनी कुटियामेंसे निकलकर प्रभुके शयनस्थानमें गये। पुरीको अपने यहाँ आते देखकर प्रभु उठकर खड़े हो गये और उनकी यथाविधि अभ्यर्चना करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। बातों-ही-बातोंमें पुरीजीने हरिदासका प्रसंग छेड़ दिया और कहने लगे—'प्रभो! इन अल्प शक्तिवाले जीवोंके साथ ऐसी कड़ाई ठीक नहीं है। बस, बहुत हो गया, अब सबको पता चल गया; अब कोई भूलसे भी ऐसा व्यवहार न करेगा। अब आप उसे क्षमा कर दीजिये और अपने पास बुलाकर उसे अन्न-जल ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दीजिये।'

---

* मैं तुमसे हृदयके रहस्यको बतलाता हूँ, जिसकी सभी ऋषि-मुनियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसे सुनो—(विरक्त पुरुषोंको) स्त्रियोंकी सन्निधिमें नहीं रहना चाहिये, नहीं रहना चाहिये; क्योंकि हरिणीके समान सुन्दर नेत्रोंवाली कामिनी अपने तीक्ष्ण कटाक्षबाणोंसे बड़े-बड़े महापुरुषोंके चित्तको भी, जो शान्तिके कवचसे ढँका हुआ है, शीघ्र ही अपनी ओर खींच लेती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं, प्रभुने उसका और भी पहले कोई ऐसा निन्द्य आचरण देखा था या उसके बहाने सभी भक्तोंको घोर वैराग्यकी शिक्षा देना चाहते थे। हमारी समझमें आ ही क्या सकता है! महाप्रभु पुरीके कहनेपर भी राजी नहीं हुए। उन्होंने उसी प्रकार दृढ़ताके स्वरमें कहा—'भगवन्! आप मेरे पूज्य हैं, आपकी उचित-अनुचित सभी प्रकारकी आज्ञाओंका पालन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ; किन्तु न जाने क्यों, इस बातको मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। आप इस सम्बन्धमें मुझसे कुछ भी न कहें।'

पुरी महाराजने अपने वृद्धपनेके सरल भावसे अपना अधिकार-सा दिखाते हुए कहा—'प्रभो! ऐसा हठ ठीक नहीं होता। जो हो गया, सो हो गया; उसके लिये इतनी ग्लानिका क्या काम? सभी अपने स्वभावसे मजबूर हैं।'

प्रभुने कुछ उत्तेजनाके साथ निश्चयात्मक स्वरमें कहा—'श्रीपाद! इसे मैं भी जानता हूँ कि सभी अपने स्वभावसे मजबूर हैं। फिर मैं ही इससे कैसे बच सकता हूँ। मैं भी तो ऐसा करनेके लिये मजबूर ही हूँ। इसका एक ही उपाय है; आप यहाँ सभी भक्तोंको साथ लेकर रहें, मैं अकेला अलालनाथमें जाकर रहूँगा। बस, ऊपरके कामोंके निमित्त गोविन्द मेरे साथ वहाँ रहेगा।' यह कहकर प्रभुने गोविन्दको जोरोंसे आवाज दी और आप अपनी चद्दरको उठाकर अलालनाथकी ओर चलने लगे। जल्दीसे उठकर पुरी महाराजने प्रभुको पकड़ा और कहने लगे—'आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं, आपकी माया जानी नहीं जाती। पता नहीं, क्या कराना चाहते हैं। अच्छी बात है, जो आपको अच्छा लगे वही कीजिये। मेरा ही यहाँ क्या रक्खा है? केवल आपके ही कारण मैं यहाँ ठहरा हुआ हूँ। आपके बिना मैं यहाँ रहने ही क्यों लगा? यदि आपने ऐसा ही निश्चय कर लिया है, तो ठीक है। अब मैं इस सम्बन्धमें कभी कुछ न कहूँगा।' यह कहकर पुरी महाराज अपनी कुटियामें चले गये, प्रभु फिर वहीं लेट गये।

जब स्वरूप गोस्वामीने समझ लिया कि प्रभु अब किसीकी भी न सुनेंगे तो वे जगदानन्द, भगवानाचार्य, गदाधर गोस्वामी आदि दस-पाँच भक्तोंके साथ छोटे हरिदासके पास गये और उसे समझाने लगे—'उपवास करके प्राण गँवानेसे क्या लाभ? जीओगे तो भगवन्नाम-जाप करोगे; स्थानपर जाकर न सही, जब प्रभु जगन्नाथजीके दर्शनोंको जाया करें, तब दूरसे दर्शन कर लिया करो। उनके होकर उनके दरबारमें पड़े रहोगे तो कभी-न-कभी वे प्रसन्न हो ही जायँगे।'

कीर्तनिया हरिदासजीकी समझमें यह बात आ गयी, उसने भक्तोंके आग्रहसे अन्नजल ग्रहण कर लिया। वह नित्यप्रति दर्शनोंको मन्दिरमें जाते समय दूरसे प्रभुके दर्शन कर लेता और अपनेको अभागी समझता हुआ कैदीकी तरह जीवन बिताने लगा। उसे खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था, किसीसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती थी, गाना-बजाना उसने एकदम छोड़ दिया। सदा वह अपने असद्व्यवहारके विषयमें ही सोचता रहता। होते-होते उसे संसारसे एकदम वैराग्य हो गया। ऐसा प्रभुकृपाशून्य जीवन बिताना उसे भार-सा प्रतीत होने लगा। अब उसे भक्तोंके सामने मुख दिखानेमें भी लज्जा होने लगी। इसलिये उसने इस जीवनका अन्त करनेका ही दृढ़ निश्चय कर लिया।

एक दिन अरुणोदय कालमें वह उठा। प्रभु उस समय समुद्र-स्नान करनेके निमित्त जाया करते थे। स्नान-को जाते हुए प्रभुके उसने दर्शन किये और पीछेसे उनकी पदधूलिको मस्तकपर चढ़ाकर और कुछ वस्त्रमें बाँधकर श्रीनीलाचलसे चल पड़ा। काशी होता हुआ वह त्रिवेणी-तटपर पहुँचा। जहाँपर गङ्गा-यमुनाके सितासित सलिलका सम्मिलन होता है, उसी स्थानपर धारामें खड़े होकर उसने उच्चस्वरसे कहा—'जिस शरीरने महाप्रभुकी इच्छाके विरुद्ध बर्ताव किया है, हे माता जाह्नवी! हे पतितपावनी श्रीकृष्णसेविता कालिन्दी माँ! दोनों ही माता मिलकर इस अपवित्र शरीरको अपने परम पावन प्रवाहमें बहाकर पावन बना दो। हे अन्तर्यामी प्रभो! यदि मैं जीवनमें कुछ भी थोड़ा-बहुत सुकृत किया हो, तो उसके फलस्वरूप मुझे जन्म-जन्मान्तरोंतक आपके चरणोंके समीप रहनेका सौभाग्य प्राप्त हो।' यह कहकर वह जोरोंसे प्रवाहकी ओर लपका। उसकी प्रार्थनाको पूर्ण करनेके निमित्त दोनों ही माताएँ एक होकर अपने तीक्ष्ण प्रवाहके साथ बहाकर उसके शरीरको साथ ले गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई गौड़ीय वैष्णव भक्त उसकी इन बातोंको सुन रहा था, उसने नवद्वीपमें आकर श्रीवास पण्डितसे यह समाचार सुनाया। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'हरिदासने ऐसा कौन-सा दुष्कर्म कर डाला ?'

रथयात्राके समय सदाकी भाँति वे इस बार भी अद्वैताचार्य आदि भक्तोंके साथ नीलाचल पधारे, तब उन्होंने प्रभुसे पूछा—'प्रभो ! छोटा हरिदास कहाँ है ?'

प्रभुने हँसकर कहा—'कहीं अपने दुष्कर्मका फल भोग रहा होगा।'

तब उन्होंने उस वैष्णवके मुखसे जो बात सुनी थी, वह कह सुनायी। इसके पूर्व ही भक्तोंको हरिदासजीकी आवाज एकान्तमें प्रभुके समीप सुनायी दी थी, मानो वे सूक्ष्म शरीरसे प्रभुको गायन सुना रहे हों। तब बहुतोंने यही अनुमान किया था कि हरिदासने विष खाकर या और किसी भाँति आत्मघात कर लिया है और उसीके परिणाम-स्वरूप उसे प्रेतयोनि प्राप्त हुई है या ब्रह्मराक्षस हुआ है, उसी शरीरसे वह प्रभुको गायन सुनाता है। किन्तु कई भक्तोंने कहा—'जो इतने दिन प्रभुकी सेवामें रहा हो और नित्य श्रीकृष्णकीर्तन करता रहा हो, उसकी ऐसी दुर्गति होना सम्भव नहीं। अवश्य ही वह गन्धर्व बनकर अलक्षित भावसे प्रभुको गायन सुना रहा है।' आज श्रीवास पण्डितसे निश्चितरूपसे हरिदासजीकी मृत्युका समाचार सुनकर सभी-को परम आश्चर्य हुआ और सभी उनके गुणोंका बखान करने लगे। प्रभुने दृढ़तायुक्त प्रसन्नताके स्वरमें कहा—'साधु होकर स्त्रियोंसे संसर्ग रखनेवालोंको ऐसा ही प्रायश्चित्त ठीक भी हो सकता है। हरिदासने अपने पापके उपयुक्त ही प्रायश्चित्त किया।'*

रघुनाथाष्टक

(लेखक—श्रीगंगाविष्णु पाण्डेय, विद्याभूषण 'विष्णु')

पाप भारसे भूमि, थरथर जब कँपने लगी,
हुई जन्मकी धूम, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥१॥
भ्राताओंके साथ, बालकेलि करने लगे,
पकड़ पिताका हाथ, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥२॥
पितृ-वचनको मान, चले शीघ्र वनको गये,
किया न फिर जलपान, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥३॥
लिये धनुर्दृढ़ बाण, निर्भय हो घूमा किये,
चौदह वर्ष प्रमाण, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥४॥
मुनियोंका आदेश, पालन करते ही रहे,
कर यतियोंका वेष, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥५॥
मर्यादाके सेतु, श्वेत पताका सुयशकी
नरवर दया निकेत, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥६॥
किये अनेकों काम, भूमण्डलपर प्रकट हो,
'विष्णु' सकलगुणधाम, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥७॥
करते हैं नित ध्यान, योगीजन जिसका सदा,
है भक्तोंका प्राण, जय जय श्रीरघुनाथकी ॥८॥

* गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ५) से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम-नाम सार है

(लेखक—श्रीगोविन्दप्रसाद द्विवेदी, बी० ए०, एल० टी०)

(१)

लोचन चकोर जिस चंद्रवदनके बने,
जिसके वियोगमें बहाई अश्रुधार है।
स्नेहदीप जिसका जलाया मनोमन्दिरमें,
सौंपा निज जीवनका जिसे अधिकार है॥
जिसपै चढ़ाया निज प्राणरत्न उपहार,
जिसके प्रमोदमें तू मुदित अपार है।
अंतमें न साथ वह सहतो चिताका भार,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

(२)

आये परिजन बन ठग-चोर तेरे द्वार,
हितकर मान उन्हें सौंपा घर-बार है।
डाला स्नेहबन्धनका जटिल गलेमें हार,
देख अनाचार भी उठाया दुखभार है॥
निज अविचारवश प्राणतक वार दिया,
जाना यही प्यारका उचित उपहार है।
अंतमें न परिवार सुनता पुकार कुछ,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

(३)

मान सुकुमार क्षीरधारसे ही सींचा तन,
किया उपचार तौ भी मिटा न विकार है।
खोले दश द्वार निज इसने विहार हेतु,
कर अनाचार कहा यही सदाचार है॥
ऋजु व्यवहारमें भी कपट अपार किया,
उरमें निहार लो कि कैसा अंधकार है।
अंतमें न साथ यह देगा पंच तत्त्व भार,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

(४)

कौड़ी देख मलकी न निकला नकार कभी,
छल अंगीकार कर पाया अधिकार है।
विभवानुसार तेरे लोभका प्रसार हुआ,
दाय बंधुको भी मार बनता उदार है॥
करें अपसार दार परिवार धन विन,
अर्थके विवश वारवनिताका प्यार है।
कालके कुठारको न रोकेगा कनकभार,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

(५)

मुखसे उचार, यदि चाहता है बेड़ा पार,
भव-पारावारका वही तो कर्णधार है।
उरमें तू धार तज दीनता अपार निज,
दीन अश्रुधार देख दौड़ता उदार है॥
करुणावतार, शिव-वायुसुतकंठहार,
मनके विकारका परम उपचार है।
काशी-मुक्तिद्वार, भक्तिभामिनीका प्राणाधार,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

(६)

एरी सुकुमारि! क्यों निहारती है बार-बार,
मनको बनाया मैंने पुण्य हरिद्वार है।
लोचन-प्रहार अब दुखद अपार मुझे,
मेरे उरक्षतमें तू डालती क्यों क्षार है॥
तेरे अपसारको ही मानता हूँ उपकार,
तज अभिसार तेरा रुचता न प्यार है।
हरि-परिचारमें न कर अपचार अब,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

(७)

नर-तन धार क्यों न तजता अपार मोह,
तेरा कामचार तेरे हेतु असिधार है।
नंदन-विपिनमें भी खोजता है मलागार,
मनमें जो धारता तू विषयोंका प्यार है॥
अवधकुमार तज मारका जो दास बना,
तज रत्नहार किया काच अंगीकार है।
यम तेरे अनाचारका न लेगा करभार,
'गोविंद' विचार एक राम-नाम सार है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

श्रीगीता-परीक्षा-समिति, गोरखपुर संवत् १९९१ वि० का परीक्षा-फल

उत्तमा द्वितीय खण्ड

द्वितीय श्रेणी—१

उत्तमा प्रथम खण्ड

उत्तीर्ण—५, ८

मध्यमा

प्रथम श्रेणी—४, ५, २२, २४, २५, २७, ३६, ४२, ७२, ९३, १३३, १४७, १६९, १७०, १८५, १८६, १८८, १८९, १९०, १९६, २०५, २०९, २२३।

द्वितीय श्रेणी—१, २, ६, ८, १५, १७, १८, २०, २१, २३, २८, ३३, ३४, ३५, ३९, ४०, ५२, ५३, ५५, ५६, ५८, ७१, ७५, ७६, ७७, ७८, ९६, ९७, १००, १०१, १०३, १०६, १०९, १२६, १२८, १३०, १३४, १३७, १३८, १३९, १४०, १४५, १४६, १४८, १५५, १५९, १६१, १६८, १७४, १८०, १८३, १८४, १९३, १९५, १९७, १९८, २००, २०३, २०४, २१५, २२४, २२५, २२६।

तृतीय श्रेणी—४१, १०२, १०४, १५८, १७८।

उत्तीर्ण—१४, १६, २६, २९, ३०, ३२, ४३, ४५, ४६, ४८, ५७, ६०, ७३, ८०, ८२, ८३, ८४, ८७, ८८, ९०, ९१, ९२, ९९, १०५, १०७, ११९, १२३, १२४, १३२, १३५, १५१, १५७, १६०, १७३, १७६, १७७, १८१, १८२, १८७, १९२, १९४, २०८, २१०, २११, २१३, २१६, २१७, २१८, २२०, २२२।

प्रथमा

प्रथम श्रेणी—१, ५, ६, ७, ११, १६, ३९, ४१, ५८, ५९, ६०, ६३, ७१, ७४, ७५, ८०, ८२, ८४, ८५, ९३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११९, १२१, १२५, १२६, १२८, १२९, १३१, १३२, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४६, १४७, १४८, १५०, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६५, १६६, १६९, १७०, १७१, १७३, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, २१५, २१७, २१९, २२०, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२९, २३०, २३१, २३७, २५६, २५७, २५८, २६१, २६२, २६३, २६४, २६६, २७१, २७३, ३२१, ३२३, ३३०, ३३५, ३५४, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३७६, ३७९, ३८१, ३८२, ३८४, ३८६, ३९०, ४०१, ४२६, ४२९, ४६१, ४६७, ४६९, ४८०, ४८८, ४९१, ४९९, ५०२, ५०३, ५०५, ५०७, ५०९, ५११, ५३०, ५३१, ५३३, ५४५, ५५०, ५५३, ५५६, ५५७, ५५८, ५५८क, ५६१, ५७५, ५७६, ५७८, ५७९, ५८३, ५८४, ५८५, ५८९, ५९६, ५९७, ६००, ६०२, ६०३, ६०४, ६०६, ६०९, ६१०, ६१७,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६१९, ६२८, ६३६, ६४१, ६४४, ६४७, ६५०, ६५४, ६५५, ६५७, ६६१, ६६२, ६६५, ६६८, ६६९, ६७०, ६७२, ६७३, ६७४, ६७६, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८८, ६९१, ६९३, ६९५, ६९७, ७००, ७१०, ७११, ७१२, ७१७, ७१८, ७२०, ७२२, ७२७, ७५०, ७८२, ७८४, ७८५, ८०६, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८३०, ८३१, ८५०, ८५२, ८५४, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६९, ८७०, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८४, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०७, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९२०, ९३७।

द्वितीय श्रेणी—१५, १८, ४०, ४७, ५१, ५५, ५६, ५७, ६८, ७२, ७८, ७९, ११८, १२२, १२७, १३३, १८७, १९१, १९३, १९४, १९९, २२२, २३३, २३५, २६९, २७०, २८२, २९४, २९७, ३०३, ३२२, ३२६, ३२९, ३३१, ३३३, ३३८, ३३९, ३५५, ३६१, ३६२, ३६५, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७७, ३८०, ३८५, ३९१, ३९२, ३९४, ३९६, ३९७, ३९९, ४००, ४०३, ४२५, ४२८, ४६२, ४६४, ४६६, ४८४, ४८७, ४९२, ५०४, ५०६, ५१२, ५१३, ५५२, ५५४, ५५५, ५६०, ५६२, ५६३, ५७७, ५८०, ५८१, ५९०, ६२०, ६२३, ६२६, ६३०, ६३३, ६३५, ६३५ अ, ६३८, ६३९, ६४५, ६४९, ६५१, ६५२, ६५३, ६५८, ६५९, ६६०, ६६४, ६६७, ६८१, ६८७, ६९४, ६९६, ७०४, ७०५, ७०७, ७०८, ७०९, ७१५, ७१९, ७२४, ७२५, ७२६, ७२८, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४४, ७५२, ७५४, ७५५, ७६५, ७६८, ८२८, ८२९, ८३२, ८३३, ८३६, ८३९, ८४१, ८४९, ८५१, ८५५, ८६७, ८७१, ८८३, ८८९, ८९०, ९०८, ९१०, ९१६, ९३६, ९३८, ९४०।

तृतीय श्रेणी—१२०, २८१, ३४२, ३४५, ३७१, ३७३, ६०१, ६११, ६२२, ६३४, ६८९, ७८६, ७८७, ९०९, ९३४।

उत्तीर्ण—२, १०, १९, ३१, ९०, ९५, ९६, ९७, १०८, १२४, १६३, १६४, १६८, १८६, १८९, १९०, १९६, २०८, २३४, २४१, २८०, २८३, २८७, २८८, २९३, ३०२, ३११, ३१७, ३१८, ३२०, ३२४, ३२८, ३५१, ३६४, ३६६, ४०६, ४१५, ४३२, ४४५, ४७५, ४७७, ४९०, ४९५, ५००, ५०१, ५०८, ५१४, ५१५, ५१७, ५१८, ५२४, ५३२, ५३४, ५३८, ५७४, ६२५, ६३२, ६४३, ६४६, ६६३, ६६६, ६७५, ७०६, ७२९, ७४२, ७४६, ७५१, ७५३, ७५६, ७५७, ७५९, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६६, ७७०, ७७६, ७८८, ८०८, ८१०, ८३८, ८४०, ८४२, ८४५, ८४७, ८४८, ८८६, ९२५, ९३०, ९३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीहरिः
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकें

१-श्रीमद्भगवद्गीता—शांकरभाष्य, सरल हिन्दी-अनुवाद, इसमें मूल भाष्य है और भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है। श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके उद्धृत प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है, भाष्यके पदोंको अलग-अलग करके लिखा गया है और गीतामें आये हुए हरेक शब्दकी पूरी सूची है। पृष्ठ ५१९, ३ चित्र, मू० साधारण जिल्द २॥) ... पक्की जिल्द २॥।)

२-श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७०, बहुरंगे ४ चित्र १।)

३-श्रीमद्भगवद्गीता—गुजराती टीका, गीता १।) वालीकी तरह ... ... १।)

४-श्रीमद्भगवद्गीता—मराठी टीका, गीता १।) वालीकी तरह ... ... १।)

५-श्रीमद्भगवद्गीता—(श्रीकृष्ण-विज्ञान) अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद (सचित्र) पृ० २७५, मोटा एण्टिक कागज, गीताके श्लोकोंके सामने ही कवितामें अनुवाद छपा है। दो सुन्दर चित्र भी हैं। मू० ॥।) स० १)

६-श्रीमद्भगवद्गीता—प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≡) ... सजिल्द ॥।=)

७-श्रीमद्भगवद्गीता—बंगला टीका, हिन्दी गीता ॥≡) वालीकी तरह, मूल्य १) ... सजिल्द १।)

८-श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी, प्रधान विषय और त्यागसे भगवत्-प्राप्ति नामक निबन्धसहित, साइज मझोला, मोटा टाइप, ३३२ पृष्ठकी शुद्ध छपी और अच्छे कागजकी सचित्र पुस्तकका मू० ॥) स० ॥≡)

९-गीता—साधारण भाषा-टीका, त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य =)॥ सजिल्द ≡)॥

१०-गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य ।-) ... ... सजिल्द ।≡)

११-गीता—भाषा, इसमें श्लोक नहीं हैं। केवल भाषा है, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र भी लगा है, मू० ।) सजिल्द ।=)

१२-गीता—मूल ताबीजी साइज २×२॥ इञ्च सजिल्द ... ... =)

१३-गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... ... =)

१४-गीता—७॥×१० इञ्च साइजके दो पन्नोंमें सम्पूर्ण ... ... -)

१५-गीता-सूची (Gita-List)—संसारकी अनुमान २००० गीताओंका परिचय ... ... ॥)

१६-श्रीविष्णुपुराण—हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ चित्र, पृष्ठ ५४८, मू० २॥) ... सजिल्द २॥।)

१७-अध्यात्मरामायण—(सातों काण्ड) सम्पूर्ण, मूल और हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ रंगीन चित्र, मूल्य साधारण जिल्द १॥।) ... ... कपड़ेकी जिल्द २)

१८-प्रेम-योग—सचित्र, लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा एण्टिक कागज, मू० १।) सजिल्द १॥)

१९-विनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मू० १) सजिल्द १।)

२०-गीतावली—सरल हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ चित्र, अनुवादक—श्रीमुनिलालजी, मू० १) सजिल्द १।)

२१-श्रीतुकाराम-चरित्र—पृष्ठ ६९४, चित्र ९, अभी छपा है, मू० १≡) ... सजिल्द १॥)

२२-श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी इतनी बड़ी जीवनी अभी हिन्दीमें कहीं भी नहीं छपी। यह ५ खण्डोंमें पूर्ण हुई है। पृष्ठ ३६०, मूल्य ॥।=) सजिल्द १=) मात्र।

२३- ,, ,, (खण्ड २)—९ चित्र, ४५० पृष्ठ। पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ। मू० १=) सजिल्द १।=)

२४- ,, ,, (खण्ड ३)—११ चित्र, ३८४ पृष्ठ, मू० १) ... सजिल्द १।)

२५- ,, ,, (खण्ड ४)—१४ चित्र, अभी छपा है, अवश्य पढ़िये। मू० ॥=) सजिल्द ॥।=)

२६- ,, ,, (खण्ड ५)—१० चित्र, अभी छपा है। मू० ।॥) ... सजिल्द १)

२७-तत्त्व-चिन्तामणि भाग १—सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ४०६, एण्टिक कागज, मू० ॥=) सजिल्द ॥।-)

२८- ,, ,, २—सचित्र, लेखक— ,, ,, पृष्ठ ६३०, एण्टिक कागज, मू० ॥।=) सजिल्द १=)

२९-भागवतरत्न प्रह्लाद—३ रंगीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द १।)

३०-श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र—(सचित्र) महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्तकी जीवनी और उपदेश, मूल्य ... ॥।-)

३१-विष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य, हिन्दी-अनुवाद-सहित सचित्र मू० ... ... ॥=)

३२-एकादश स्कन्ध—(श्रीमद्भागवत) सचित्र हिन्दी-टीका-सहित। यह स्कन्ध बहुत ही उपदेशपूर्ण है। मू० ॥।) स० १)

३३-देवर्षि नारद—२ रंगीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर अक्षर, मू० ॥।) ... सजिल्द १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४–नैवेद्य–(सचित्र) लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृ० ३५०, मू० ॥=) ... सजिल्द ॥-)
३५–तुलसीदल–(सचित्र) लेखक— ,, पृष्ठ २९२, मूल्य ॥) ... सजिल्द ॥=)
३६–श्रीएकनाथ-चरित्र–(सचित्र) प्रसिद्ध महान् भगवद्भक्तकी बड़ी सुन्दर जीवनी, पृष्ठ २४०, मूल्य ॥)
३७–दिनचर्या–(सचित्र) उठनेसे सोनेतक करने योग्य धार्मिक नित्यकर्मकी बातोंका वर्णन है। इसमें अनेक स्तोत्र, भजन, वर्ण और आश्रम-धर्म आदिकी बातें भी जोड़ दी गयी हैं। पुस्तक रुचिकर है। मूल्य ॥)
३८–श्रुति-रत्नावली–(सचित्र) लेखक–श्रीभोलेबाबाजी, वेद और उपनिषदोंके चुने हुए मन्त्रोंका अर्थसहित संग्रह। मू० ॥)
३९–Mind: Its Mysteries and Control (By Swami Sivananda Saraswati) as. 8
४०–विवेक-चूडामणि–(सचित्र) मूल श्लोक और हिन्दी-अनुवाद-सहित, पृष्ठ २२४, मूल्य ।≡) सजिल्द ॥=)
४१–श्रीरामकृष्ण परमहंस–(सचित्र) जीवनीके साथ-साथ ३०१ उपदेशमय वचनोंका संग्रह भी है। पृष्ठ २५०, मू० ।≡)
४२–भक्त-भारती (७ चित्र) कवितामें सात भक्तोंके चरित्र ।≡)
४३–भक्त बालक—५ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४४–भक्त नारी—६ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४५–भक्त-पञ्चरत्न—५ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४६–आदर्श भक्त—७ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४७–भक्त-चन्द्रिका–७ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४८–भक्त-सप्तरत्न–७ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
४९–भक्त-कुसुम–६ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
५०–प्रेमी भक्त–६ चित्रोंसे सुशोभित ।–)
५१–यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ–३ चित्रोंसे सुशोभित ।)
५२–गीतामें भक्ति-योग (सचित्र) ले०–श्रीवियोगी हरिजी।–)
५३–श्रुतिकी टेर–(सचित्र) ले०–श्रीभोलेबाबाजी ।)
५४–परमार्थ-पत्रावली–श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कल्याणकारी ५१ पत्रोंका स्वर्ण-संग्रह ।)
५५–माता—श्रीअरविन्दकी अंग्रेजी पुस्तक (Mother) का हिन्दी-अनुवाद ।)
५६–ज्ञानयोग–इसमें जानने योग्य अनेक पारमार्थिक विषयोंका सुन्दर वर्णन है ।)
५७–व्रजकी झाँकी–वर्णनसहित लगभग ५० चित्र ।)
५८–श्रीबदरी-केदारकी झाँकी (सचित्र) ।)
५९–प्रबोध-सुधाकर (सचित्र) सटीक ≡)॥
६०–मानव-धर्म–ले०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ≡)
६१–साधन-पथ—ले०— ,, (सचित्र) =)॥
६२–गीता-निबन्धावली =)॥
६३–वेदान्त-छन्दावली–ले०—श्रीभोलेबाबाजी =)॥
६४–अपरोक्षानुभूति–मूल श्लोक और अर्थसहित =)॥
६५–मनन-माला–सचित्र, भक्तोंके कामकी पुस्तक है =)॥
६६–भजन-संग्रह प्रथम भाग सं०–श्रीवियोगी हरिजी =)
६७– ,, दूसरा भाग ,, =)
६८– ,, तीसरा भाग ,, =)
६९– ,, चौथा भाग ,, =)
७०– ,, पाँचवाँ भाग (पत्र-पुष्प) =)
७१–चित्रकूटकी झाँकी (२२ चित्र) =)
७२–स्त्रीधर्म-प्रश्नोत्तरी (नये संस्करणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) =)
७३–The Immanence of God(By Malaviyaji) as.2
७४–सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय –)॥
७५–गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग –)॥
७६–मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थसहित –)॥
७७–हनुमानबाहुक सचित्र, सटीक –)॥
७८–आनन्दकी लहरें (सचित्र) –)॥
७९–गोपी-प्रेम (सचित्र) –)॥
८०–मनको वश करनेके उपाय (सचित्र) –)॥
८१–गीताका सूक्ष्म विषय, पाकेट-साइज –)॥
८२–ईश्वर–लेखक–पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय –)॥
८३–मूल गोसाईं-चरित –)॥
८४–श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश, २ रंगीन चित्र –)
८५–त्यागसे भगवत्प्राप्ति (सचित्र) –)
८६–ब्रह्मचर्य–ले०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार –)
८७–भगवान् क्या हैं ? –)
८८–समाज-सुधार –)
८९–आचार्यके सदुपदेश –)
९०–एक सन्तका अनुभव –)
९१–सप्त-महाव्रत)॥
९२–हरेरामभजन २ माला)॥
९३–विष्णुसहस्रनाम–मूल, मोटा टाइप)॥। सजिल्द –)॥
९४–रामगीता–मूल, अर्थसहित)॥
९५–सेवाके मन्त्र)॥
९६–सीतारामभजन)॥
९७–प्रश्नोत्तरी–श्रीशंकराचार्यकृत (टीकासहित))॥
९८–सन्ध्या (हिन्दी-विधि-सहित))॥
९९–बलिवैश्वदेव-विधि)
१००–पातञ्जलयोगदर्शन (मूल))
१०१–गीता द्वितीय अध्याय अर्थसहित, पाकेट-साइज)
१०२–धर्म क्या है ?)
१०३–दिव्य सन्देश)
१०४–श्रीहरि-संकीर्तन-धुन)
१०५–कल्याण-भावना ले०–श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या आधा पैसा
१०६–लोभमें पाप आधा पैसा
१०७–गजलगीता
१०८–श्रीरामायणांक, १६७ चित्र, ५१२ पृष्ठ मू० २॥≡) स० ३≡)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (पाँचवाँ खण्ड)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी चारु चरितावलीका यह अन्तिम खण्ड अपने कृपालु तथा प्रेमी पाठक-पाठिकाओंकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए आज हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। यह खण्ड कितना उपादेय है ? इसका प्रकाशन कितना आवश्यक था ? इसे वे ही जान सकते हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थरत्नके पिछले चार खण्डोंको देखा है और जो महाप्रभुके जीवन-सम्बन्धी शेष घटनाओंकी जिज्ञासासे इस खण्डकी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। इस खण्डमें महाप्रभुकी अलौकिक क्षमाशीलता, विरोधियोंके प्रति सम्मानके भाव, दिव्य भावोन्माद, कृष्णान्वेषण, उन्मादावस्थाकी अद्भुत आकृति, लीलासंवरण आदि एक-से-एक रोचक विषयोंका वर्णन, तथा उनके वियोग-पीड़ित भक्तों और सती-शिरोमणि श्रीविष्णुप्रियाजीकी दयनीय दशाका चित्रण ऐसी मर्मस्पर्शिनी एवं सजीव भाषामें किया गया है कि जिसको पढ़कर हृदयमें करुण-रसकी धारा बरबस उमड़ पड़ती है। इसमें महाप्रभुके वृन्दावनस्थ छः शिष्योंका परिचय और प्रसंगानुकूल अन्यान्य ज्ञातव्य विषयोंका भी समावेश करके लेखकने इस खण्डको पिछले खण्डोंकी अपेक्षा और भी सुन्दर, महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी बना दिया है। कागज, छपाई-सफाई सभी उत्तम हैं। चार रंगीन और छः सादे चित्र भी हैं। २८० पृष्ठकी ऐसी अनमोल पुस्तकका मूल्य भी लागतमात्र अर्थात् अजिल्दका ।।।) और सजिल्दका १) रक्खा गया है।

जिन सज्जनोंने इस पुस्तकके अन्य भागोंको अभी देखनेका कष्ट नहीं किया है, उनसे भी हमारा साग्रह अनुरोध है कि वे कम-से-कम इस खण्डको ही पढ़कर महाप्रभुके दिव्य जीवनसे शिक्षा लें और अपने जीवनको पवित्र तथा सफल बनावें।

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)–पृष्ठ ३६०, चित्र ६, मूल्य ।।।=) सजिल्द ... १=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)–पृष्ठ ४५०, चित्र ९, मूल्य १=) सजिल्द ... १।=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ३)–पृष्ठ ३४४, चित्र ११, मूल्य १) सजिल्द ... १।)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ४)–पृष्ठ २२४, चित्र १४, मूल्य ।।=) सजिल्द ... ।।।=)

पाँचों खण्डोंकी पूरी अजिल्द सेट ४।=) बाद कमीशन ।)।।। बाकी ३।।।–)। पैकिंग डाकखर्च १)।।। कुल ४।।।=)
पाँचों खण्डोंकी पूरी सजिल्द सेट ५ जिल्दोंमें ५।।=) बाद कमीशन ।।≡)। बाकी ४।।।=)।।। पैकिंग डाकखर्च १।)। कुल ६≡)

Mind: Its Mysteries and Control.

Part I.

By Swami Sivananda Saraswati.

The author's name is too well-known among those interested in spiritual literature to require any introduction. His masterly exposition of intricate problems connected with *Yoga* and *Vedanta* in popular and homely language has won for him a place of honour among the writers of the present day. The present work is a small treatise consisting of nearly 200 pages and printed on double crown 28 lb. paper and deals *inter alia* with the nature (स्वरूप), aspects, laws and functions (Vrittis) of the mind, the various states and habits of the mind, the Doshas or faults of the mind and how to remove them, the relation of mind with body, the way how to control and concentrate the mind and ultimately to turn it inward and destroy it, which is the ultimate end of all true philosophy. The author has thus presented in a small and handy volume the various secrets of Yogic and Vedantic *Sadhana* and given practical hints on meditation and other spiritual exercises, and valuable suggestions regarding diet and other particulars connected with *Sadhana*. The book is thus very useful for all aspirants, control of mind being an essential requisite for all Sadhakas. The utility of the book has been enhanced by appending at the end a small glossary of difficult Sanskrit words which have unavoidably found place in it. The volume has been priced at *annas eight* only, which is very nominal having regard to the number of pages and the importance of the subject-matter. Those who want to tread the path of God-realization would do well to purchase a copy without loss of time.

GITA PRESS,
Gorakhpur. (INDIA)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Registered No. A. 1724

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सुपाठ्य अमूल्य पुस्तकें

भाषाटीकासहित संस्कृत शास्त्र-ग्रन्थ

श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्य–सरल हिन्दी अनुवादसहित, मूल भाष्यके सामने ही अर्थ लिखनेसे पढ़ने और समझनेमें बहुत सुगमता है। श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके उद्धृत प्रमाणोंका भी सरल अर्थ दिया गया है। अन्तमें गीतामें आये हुए हर एक शब्दकी पूरी सूची दी गयी है। साइज २२×२९ आठपेजी, पृष्ठ सं० ५२०, ३ चित्र, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया जिल्द २।॥) ।

श्रीविष्णुपुराण–आठ सुन्दर चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही हिन्दी अनुवाद, साफ-सुथरी छपाई, टाइप नये, सुन्दर और बड़े। इसमें अन्य विषयोंके साथ भूगोल, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राजवंश आदिका बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन आ गया है। श्रीभगवान्‌की भक्तिसे ओतप्रोत इस सुन्दर ग्रन्थकी पृष्ठ सं० लगभग ५५०, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द २।॥) ।

श्रीअध्यात्मरामायण–दूसरा नवीन संस्करण, प्रत्येक काण्डमें असली आर्ट पेपरपर छपा एक-एक अति सुन्दर चुना हुआ चित्र, कुल चित्र ८, साइज २२×२९ आठपेजी, कागज चिकना, पृष्ठ सं० ४०२, मूल्य साधारण जिल्द १।॥), कपड़ेकी जिल्द २) मात्र ।

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध–सचित्र, सटीक। श्रीभगवान्‌की दिव्य लीलाओंसे भरपूर इस पावन ग्रन्थमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अनन्य भक्त उद्धवको, योगीश्वरोंद्वारा राजा निमिको, श्रीनारदजीद्वारा वसुदेवजीको आदि अनेक भक्ति, ज्ञान, वैराग्यपरक दिव्य उपदेशोंका वर्णन है। पृष्ठ सं० ४२०, मूल्य ।॥) सजिल्द १)।

विष्णुसहस्रनाम शाङ्करभाष्य–डिमाई आठपेजी, पृष्ठ २७५, एक तरफ भाष्य, दूसरी तरफ हिन्दी अर्थ, समझनेमें सुगमता, कागज चिकने, छपाई साफ, मूल्य ॥=) मात्र ।

विवेकचूडामणि–मूल श्लोक, हिन्दी अनुवादसहित, श्रीशङ्कराचार्यजीका एक चित्र, पृष्ठ सं० २२४, मूल्य केवल ।≋) सजिल्द ॥=) ।

श्रुतिरत्नावली–प्रधान-प्रधान श्रुतियोंका अर्थसहित संग्रह, मन्त्र-सूची-सहित पृष्ठ सं० २८४, मूल्य ॥) ।

प्रबोधसुधाकर–विषय-भोगोंकी तुच्छता और आत्मसिद्धिके उपायप्रदर्शक छोटा-सा ग्रन्थ, पृष्ठ सं० ८०, मूल्य ≋)॥

अपरोक्षानुभूति–श्रीशङ्कराचार्यकृत वेदान्तका एक छोटा-सा ग्रन्थ, सचित्र, मूल्य =)॥

मनुस्मृति–केवल दूसरा अध्याय हिन्दी अनुवादसहित, मूल्य केवल –)॥

रामगीता–मूल और अर्थसहित, मूल्य)॥।

प्रश्नोत्तरी–श्रीशङ्कराचार्यकृत। बड़ी ही उपादेय पुस्तिका है। सानुवाद मूल्य)॥ मात्र ।

सन्ध्या–विधिसहित, मूल्य)॥ मात्र ।

इनके सिवा श्रीमद्भगवद्गीताके गद्यपद्यमय अनेक छोटे-बड़े संस्करण अन्वय, पदच्छेद, टिप्पणी, भाषा-टीका-सहित आदि एवं अन्य पुस्तकोंकी जानकारीके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये ।

पता–**गीताप्रेस, गोरखपुर**

[चित्र-सूची अलग मुफ्त मिलती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीहरिः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका ग्राहकनम्बर इस स्थानपर नोट कर लें।
प्रत्येक पत्रव्यवहार आदिके समय अवश्य लिखें।

ग्राहकनम्बर

कल्याण वैशाख संवत् १९९२ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–दर्शनकी उत्कण्ठा [कविता] (तुलसीदासजी) १२६५
२–बाबाके वचनामृत (सं० और प्रे०—श्रीनकुलेश्वर मजूमदार विद्यानिधि, बी० ए० ए० टी० सी०) १२६६
३–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश (प्रेषक—डाक्टर श्रीमोहनजी) ... १२६८
४–कल्याण ('शिव') १२६९
५–मम ओर [कविता] (श्रीमती राजकुमारीजी 'रमा') १२६९
६–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) १२७०
७–अन्तर्दृष्टि [कविता] (पं० श्रीरमाशङ्करजी मिश्र 'श्रीपति') १२७२
८–सुगम साधन-पथ (गङ्गोत्तरी-निवासी दण्डिस्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती) ... १२७३
९–श्रीसीतारामनामकी महिमा (श्रीरणधीरप्रसादसिंहजी) १२७६
१०–विवश बंदी [कविता] ('माधव') ... १२७८
११–विचार-तरंग (श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी 'विशारद') १२७९
१२–श्रीभगवन्नाम-जप (नाम-जप-विभाग) ... १२८०
१३–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) १२८१
१४–मयूरशिखा [कविता] (मन्नूलाल झुड़ेले) १२९७

पृष्ठ-संख्या

१५–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) १२९८
१६–सफल जन्म [कविता] (सन्त दयालुदासजी) १३०३
१७–हिन्दूशास्त्रके कुछ सार सिद्धान्त (श्रीशक्तिचरण विशारद राजवैद्य) १३०४
१८–दर्शन-चर्चा (विद्यामार्त्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री) १३१०
१९–संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन (एक साधु) १३१४
२०–ईश्वर और स्वेच्छाचार (श्रीहरिकोशलजी) १३१७
२१–ईश्वरका अनुभव (स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) १३२१
२२–आदिकवि महर्षि वाल्मीकि (पं० श्रीमायादत्तजी पाण्डेय शास्त्री) १३२६
२३–स्पर्श (श्रीउदयानन्दजी सरस्वती) ... १३३०
२४–यह संसार ! (श्रीविद्यानन्द श्रीवास्तव एम० ए०, एल० टी०) १३३१
२५–भक्त-गाथा (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) १३३३
२६–चेतावनी [कविता] (स्व० महाराजसाहब चतुरसिंहजी उदयपुर मेवाड़, प्रे०—श्रीजगदीशजी) १३३८
२७–भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज (एक भक्त) १३३९

भूलसुधार और क्षमाप्रार्थना

चैत्रके अङ्कमें पृष्ठ १२१० पर 'गृहस्थके साधारण धर्म' शीर्षक लेखमें लेखक पं० श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा राबीच बी० ए० का नाम भूलसे छपना रह गया है। पाठक इस भूलको सुधार लें और लेखक महोदय इस भूलके लिये कृपया क्षमा करें।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी गीताएँ छपीं ?

६, २५० **श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्य हिन्दी-अनुवाद-सहित**—सचित्र; मूल्य साधारण जिल्द २॥), कपड़ेकी जिल्द २॥।); दूसरा संस्करण; साइज २२×२९, ८ पेजी, पृष्ठ ५१९; चिकना मोटा कागज, शुद्ध छपाई, विशेष बात—भाष्यमें आये हुए उद्धरणोंके अंक परिश्रमपूर्वक खोजकर दिये गये हैं। अन्तमें गीताके समस्त पदोंकी सूची भी जोड़ दी गयी है। अनुवादक हैं—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका।

६६, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता मूल, पदच्छेद, अन्वय और सरल भाषाटीकासहित**—सचित्र, मूल्य सजिल्द १।) आठवाँ संस्करण; सा० १८×२२, आठ पेजी, पृ० ५७०, चिकना मोटा कागज, साफ-शुद्ध छपाई। विशेषता—गीताके प्रधान विषयोंकी सूची, प्रत्येक श्लोकके विषयकी सूची एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति नामक निबन्ध भी इसमें लगाया गया है। अर्थ बहुत ही सरल ढंगसे सजाकर सबके समझने योग्य रक्खा है। इतनी सस्ती गीता और नहीं मिलेगी।

५, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—गुजराती अनुवाद-सहित; सब बातें १।) वाली हिन्दी गीताकी तरह। गुजराती भाइयोंके बड़े ही कामकी है। मूल्य १।)

२, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—मराठी अनुवाद-सहित; इसमें भी सभी विषय १।) वाली हिन्दी गीताकी तरह हैं। अनेक विद्वानोंने इसकी प्रशंसा की है। मू० १।)

२२, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—सभी विषय १।) वाली गीताकी तरह। कागज पतला और साइज छोटा एवं अक्षर महीन हैं। मू० ॥≈), सजिल्द ॥।≈), तीसरा संस्करण, साइज २२×२९, १६ पेजी, पृष्ठ ४६८, विशेषता—इसमें गीताके प्रधान विषय प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें एवं प्रत्येक श्लोकका विषय उसी श्लोकके पास ही छापा गया है। कम दामके खयालसे यह बड़ी अच्छी है।

४, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—बंगला अनुवाद-सहित। सभी बातें ॥≈) वाली हिन्दी गीताकी तरह। कागज अच्छा, छपाई साफ, बंगला जाननेवालोंके कामकी है। मूल्य १) सजिल्द १।)

१२, २५० **श्रीमद्भगवद्गीता**—मूल श्लोक और सरल अर्थसहित, सचित्र, मोटे अक्षर, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≈), (तीसरा संस्करण छप रहा है) आकार २०×३०, १६ पेजी, पृष्ठ ३१६, चिकना कागज, विशेषता—गीताजीके प्रधान विषयोंकी अनुक्रमणिका और त्यागसे भगवत्प्राप्ति नामक निबन्ध-सहित। इसपर अनेक लोगोंकी सुन्दर-सुन्दर सम्मतियाँ आयी हुई हैं।

२०, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—मूल श्लोकमात्र, मोटे अक्षर, पाठ करनेवालोंके लिये बड़े कामकी है। मूल्य ।-) सजिल्द ।≈), चौथा संस्करण, आकार २२×२९, १६ पेजी, गुटकेकी तरह खुलनेवाले ९६ पृष्ठ।

१, ३७, ५००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१, ३७, ५००
३०, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—केवल भाषा, साधारण मोटे अक्षर, संस्कृत न पढ़ सकनेवालोंके लिये। मूल्य ।) मात्र, सजिल्द ।=), आकार २०×३०, १६ पेजी, पृष्ठ २००, (पाँचवाँ संस्करण छप रहा है), अन्तमें गीताकी श्लोक-सूची भी दी गयी है।

४, ८०, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—मूल श्लोक और साधारण भाषाटीकासहित, आकार छोटा २२×२९, ३२ पेजी, टिकाऊ चिकना कागज, पृष्ठ ३५२, मूल्य =)॥ मात्र, सजिल्द ==)॥, ऊपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका चित्र भी है। गीता-महिमा, गीताके प्रधान विषयोंकी सूची, त्यागसे भगवत्-प्राप्ति नामक लेख-सहित। साफ-शुद्ध-सुन्दर छपाई। (चौदहवाँ संस्करण छप रहा है) विशेषता—शुद्धताके लिये कहीं कोई भूल पायी जाती है तो हमारी सब पुस्तकोंकी तरह इसमें भी हाथसे बना दी जाती है। यह जितनी बिकी है उतनी और कोई भी गीता कहीं-की भी नहीं बिकी। पाठ करने, बाँटने, दान देने, पढ़ानेके लिये बड़ी उत्तम है।

९४, ९०० **श्रीमद्भगवद्गीता**—और **श्रीविष्णुसहस्रनाम**, मूल श्लोकमात्र, चार सादे चित्र, साइज ३२ पेजी, पृष्ठ १३२, चिकना कागज, सजिल्द, मूल्य =) मात्र, दशवाँ संस्करण। केवल पाठके लिये कामकी है, बाँटनेके लिये भी अच्छी है।

६०, ००० **श्रीमद्भगवद्गीता**—मूल श्लोकमात्र, बहुत छोटा २×२॥ इञ्च साइज, पृष्ठ २९६, सजिल्द, सचित्र, इतनी छोटी होते हुए भी छपाई साफ, सुन्दर और पढ़ने योग्य है। मूल्य =) मात्र। जेबके एक कोनेमें पड़ी रह सकती है। गीता-माहात्म्य, करन्यास, ध्यान आदि भी छापे गये हैं।

५, २५० **श्रीमद्भगवद्गीता—श्रीकृष्ण-विज्ञान** अर्थात् मूल श्लोक और हिन्दी पद्यानुवाद, सचित्र, मूल्य ॥।) सजिल्द १), मोटा एण्टिक कागज, पृष्ठ २५०, इस पद्यानुवादकी प्रशंसा बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानोंने की है। विशेषता—एक तरफ श्लोक और दूसरी तरफ उसके सामने ही हिन्दी पद रखे गये हैं। अनुवादक हैं—पुरोहित श्रीरामप्रतापजी।

८, ०७, ६५०

इनके अलावा ९५७५० गीता-डायरी एवं एक २) की गीता और एक ॥) की गीता एवं एक मूल गीता जिनके संस्करण अब बन्द हो गये हैं, और एक दो पेजी गीता -) वाली इन सबको मिलाकर ९, ००, ००० (नौ लाख) से ऊपर गीताएँ छप चुकी हैं। गीताका दूसरा अध्याय, सूक्ष्म विषय, प्रधान विषय आदिका अलग प्रचार होता रहा है।

आपको इनमेंसे कोई पुस्तक चाहिये तो लिखनेकी कृपा करें। और भी अनेक प्रकारकी धार्मिक पुस्तकें छपी हैं। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

पता—**गीताप्रेस, (विक्रयविभाग)**
पो० आ० गीताप्रेस,
गोरखपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीशक्ति-अंक

प्रायः समाप्त

अब केवल १००-१२५ वार्षिक ग्राहकोंको ही श्रीशक्ति-अंकसहित पिछले सब अंक देकर ग्राहक बना सकते हैं, क्योंकि बीचके कुछ अंक समाप्त हो चुके हैं। केवल शक्ति-अंक अलग भी १५० ही के लगभग है। लेनेवाले जल्दी करें।

"कल्याण", गोरखपुर

श्रीहरिः

कल्याणके ग्राहक बनानेवाले सज्जनोंसे

'कल्याण' पर आपकी जो इतनी कृपा है, 'कल्याण' को विशाल ईश्वरीय धर्मके ऊँचे और पवित्र भावोंका प्रचार करनेवाला, अपनी ही प्रिय वस्तु समझकर इसके प्रचारमें आप जो प्रेमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं, इसके लिये हम आपके हृदयसे कृतज्ञ हैं। यह भगवान्‌की निष्काम सेवा है। भगवान्‌की प्रेरणासे होनेवाली आप-सदृश महानुभावोंकी निष्काम सहायतासे ही 'कल्याण' के ग्राहक बढ़ रहे हैं और इसका प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है। धर्मप्रेमी सज्जन इसका और भी अधिक प्रचार चाहते हैं और विशेष लगनके साथ चेष्टा भी कर रहे हैं। प्रचारकी वृद्धिके लिये तो सारा संसार—एक विशाल क्षेत्र पड़ा है। अतएव प्रेमी महानुभावोंसे निवेदन है कि वे विशेष उत्साहपूर्वक इस बार भी ग्राहक बनानेकी चेष्टा करें।

निवेदक—व्यवस्थापक

आपको एक निवेदन

गत आश्विनमें "जब श्रीशक्ति-अङ्क" प्रकाशित होकर वी० पी०से जिन कृपालु ग्राहकोंकी सेवामें भेजा गया उनमेंसे लगभग ३५०० वी० पी० वापस आ गयी अतः "कल्याण" को लगभग १५००) रुपयोंकी यह हानि उठानी पड़ी। इसके सिवा वापस आये हुए अङ्क भी कुछ खराब हो गये। कार्यालयका काम भी बढ़ गया। अस्तु।

आपकी सेवामें इस बार और एक मास पहले ही मनिआर्डर फार्म भेजकर यह प्रार्थना की जाती है कि आप कृपापूर्वक अपना एवं अपने मित्रोंका चन्दा यथाशीघ्र मनिआर्डरद्वारा ही भिजवाकर हमें हानिसे बचावें। "कल्याण" का लाभ आपका ही लाभ है।

वी० पी० से "योगांक" मँगवानेवालोंको अंक देरसे मिलेगा, और भी कई प्रकारकी अड़चनें आती हैं जो समय-समयपर आपकी सेवामें निवेदन की जाती रही हैं। मनिआर्डरसे रुपया भेजनेमें आपको "योगांक" पहले मिलेगा और हमें भी सुविधा होगी। खर्च दोनोंमें समान है।

"योगांक" की छपाई प्रारम्भ हो गयी है। अबकी बार शायद यह जल्दी ही प्रकाशित हो सकेगा। विषयोंके नाम, लेखकोंके नाम, चित्रोंके नाम आदि अगले अंकमें छापे जा सकते हैं।

प्रेमी ग्राहकोंको अपने मित्रोंको कल्याणके ग्राहक बनानेके लिये छपे हुए मनिआर्डर फार्म भेजे जा सकते हैं। कृपया लिखकर अनुगृहीत करें।

मैनेजर—कल्याण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सस्ते धार्मिक दर्शनीय चित्र

कागज-साइज १८×२२ इञ्चका बड़ा चित्र नेट दाम =)

ब्लाक-साइज १५ इञ्च चौड़ा, १९ इञ्च लम्बा।

विश्वविमोहन श्रीकृष्ण (रंगीन)

इतने बड़े रंगीन चित्र हिन्दुस्तानके छपे हुए प्रायः बहुत कम मिलते हैं। एक मँगानेपर मूल्य, डाकव्यय, पैकिंगसहित ॥।) लगता है, २ का ॥।=), ३ का १=), इकट्ठे मँगानेमें और भी सुभीता रहेगा।

कागज-साइज १५×२० इञ्चके बड़े चित्र।

सभी चित्र बढ़िया आर्ट पेपरपर सुन्दर छपे हुए हैं।

सुनहरी-नेट दाम प्रत्येकका =)

युगलछबि

रंगीन-नेट दाम प्रत्येकका =)

श्रीनन्दनन्दन
श्रीवृन्दावनविहारी
श्रीविश्वविमोहन
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
श्रीव्रजराज
लक्ष्मीनारायण
श्रीविष्णुभगवान्
श्रीलक्ष्मीजी
कमला
श्रीध्रुव-नारायण
श्रीरामचतुष्टय
रामदरबार
राम-रावण-युद्ध
सावित्री-ब्रह्मा
श्रीविश्वनाथजी
श्रीशिवपरिवार
शिव-बरात
शिव-परिछन
शिव-विवाह
प्रदोषनृत्य
श्रीजगज्जननी उमा
श्रीचैतन्यका संकीर्तन-दल
महासंकीर्तन

६ चित्र मँगानेपर पैकिंगमें चोंगा लगाना पड़ता है, जिससे डाकखर्च बढ़ जाता है। सोचकर मँगाना चाहिये। १२ मँगानेसे डाकखर्चका सुभीता है।

कागज-साइज १०×१५ इञ्च

(छोटे ब्लाकोंसे ही केवल बड़े कागजपर बार्डर लगाकर छापे हैं)

सुनहरी चित्र, नेट दाम ⌐) प्रतिचित्र

युगलछवि | तन्मयता

बहुरंगे चित्र, नेट दाम)॥। प्रतिचित्र

कौसल्या-नारायण
श्रीरामचतुष्टय
अहल्योद्धार
वृन्दावनविहारी
मुरली-मनोहर
गोपीकुमार
राधाकृष्ण
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
व्रज-नव-युवराज
कौरव-सभामें विराट् रूप
श्रीकृष्णार्जुन
श्रीशेषशायी भगवान् विष्णु
श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी (चतुर्भुजी)
श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी (अष्टादशभुजी)
श्रीविष्णुभगवान्
कमलापति-स्वागत
लक्ष्मीनारायण
देवदेव भगवान् महादेव
शिवजीकी विचित्र बारात
शिव-परिछन
शिव-परिवार
पञ्चमुख परमेश्वर
लोककल्याणार्थ हलाहलपान
गौरीशंकर
जगज्जननी उमा
देवी कात्यायनी
पवन-कुमार
ध्रुव-नारायण
श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु

कागज-साइज ७॥×१० इञ्च

सुनहरी चित्र, नेट दाम)॥। प्रतिचित्र

श्रीरामपञ्चायतन
श्रीराम-सीता पुष्प-वाटिकामें
युगलछवि
कंसका कोप
बँधे नटवर
वेणुधर
बाबा भोलेनाथ
मातङ्गी
दुर्गा

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुरंगे चित्र, नेट दाम)।। प्रतिचित्र

श्रीरामचतुष्टय (भगवान् श्रीरामरूपमें)
सदाप्रसन्न राम
कमललोचन राम
श्रीरामके चरणोंमें भरत
भगवान् श्रीरामचन्द्र
श्रीरामावतार
भगवान् श्रीरामकी बाललीला
भगवान् श्रीराम और काकभुशुण्डि
अहल्योद्धार
गुरु-सेवा
पुष्पवाटिकामें श्रीसीताराम
परशुराम-राम
श्रीसीताराम (रामायणांक)
रामकी कौशल्यासे विदाई
कौशल्या-भरत
लक्ष्मण-कोप
अनसूया-सीता
श्रीराम-प्रतिज्ञा
राम-शबरी
श्रीरामका रामेश्वर-पूजन
सुबेल-पर्वतपर श्रीरामकी झाँकी
राम-रावण-युद्ध
पुष्पकारूढ़ श्रीराम
मारुति-प्रभाव
श्रीसीताराम (शक्तिअंक)
श्रीशिवकृत राम-स्तुति
श्रीसीताजीकी गोदमें लव-कुश
भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
राधाकृष्ण
व्रजराज
वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
विश्व-विमोहन श्रीकृष्ण
बाँकेविहारी
श्रीश्यामसुन्दर
मुरलीमनोहर
भक्तमनचोर

श्रीनन्दनन्दन
आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र
गोपीकुमार
व्रज-नव-युवराज मोहन
भक्तभावन भगवान् श्रीकृष्ण
देवकीजी
साधु-रक्षक श्रीकृष्ण (वसुदेव-देवकीको कारागारमें दर्शन)
मथुरासे गोकुल
गोकुलगमन
तृणावर्त-उद्धार
वात्सल्य
माखन-प्रेमी बालकृष्ण
गो-प्रेमी श्रीकृष्ण
मनमोहनकी तिरछी चितवन
भवसागरसे उद्धारक भगवान् श्रीकृष्ण
बकासुर-उद्धार
अघासुर-उद्धार
कृष्ण-सखा-सह वन-भोजन
वर्षामें श्रीकृष्ण-बलराम
राम-श्यामकी मथुरा-यात्रा
योद्धा श्रीकृष्ण
बन्धन-मुक्तकारी भगवान् श्रीकृष्ण
जगत्-पूज्य श्रीकृष्णकी अग्रपूजा
शिशुपाल-उद्धार
समदर्शी श्रीकृष्ण
शान्ति-दूत श्रीकृष्ण
मोह-नाशक श्रीकृष्ण
भक्त (भीष्म) प्रतिज्ञा-रक्षक श्रीकृष्ण
अश्व-परिचर्या
श्रीकृष्णका अर्जुनको पुनः ज्ञानोपदेश

जगद्गुरु श्रीकृष्ण नं० २
नृग-उद्धार
परमधाम-गमन
ध्यानमग्न शिव
पञ्चमुख परमेश्वर
मदन-दहन
शिव-विवाह
उमा-महेश्वर
शिव-परिवार
जगज्जननी उमा
प्रदोष-नृत्य
हलाहल-पान
पाशुपतास्त्रदान
श्रीहरि-हरकी जल-क्रीडा
श्रीकृष्णकी शिव-स्तुति
भगवान् विष्णुको चक्रदान
काशी-मुक्ति
सदाशिव
भक्त व्याघ्रपाद
शिव-ताण्डव
गौरीशंकर
श्रीविष्णुरूप और श्रीब्रह्मारूप के द्वारा श्रीशिवरूपकी स्तुति
श्रीविष्णु
कमलापति-स्वागत
शेषशायी लक्ष्मीनारायण
भगवान् मत्स्यरूपमें
भगवान् कूर्मरूपमें
भगवान् वराहरूपमें
भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी गोदमें भक्त प्रह्लाद
भगवान् वामनरूपमें
भगवान् परशुरामरूपमें
भगवान् बुद्धरूपमें
लार्ड बुद्ध
भगवान् कल्किरूपमें

भगवान् ब्रह्मारूपमें
ब्रह्मा-सावित्री
भगवान् दत्तात्रेयरूपमें
भगवान् सूर्यरूपमें
भगवान् गणपतिरूपमें
भगवान् अग्निरूपमें
भगवान् शक्तिरूपमें
महागौरी
महाकाली
महासरस्वती
महालक्ष्मी
नारी-शक्ति
देवी कात्यायनी
देवी कालिका
देवी कूष्माण्डा
देवी चन्द्रघण्टा
देवी सिद्धिदात्री
षोडश माता
भीष्मपितामह
कर्णका चक्का छुड़ाना
अजामिल-उद्धार
सुआ पढ़ावत गणिका तारी
निमाई-निताई
श्रीचैतन्यका संकीर्तन-दल
प्रेमी भक्त सूरदासजी
गोस्वामी तुलसीदासजी
मीरा (कीर्तन)
मीराबाई (जहरका प्याला)
प्रेमी भक्त रसखान
ऋषिआश्रम
महासंकीर्तन
संजय-धृतराष्ट्र
ध्यानावस्थित शिवजी
सेवक श्रीकृष्ण
महालक्ष्मीजीका आविर्भाव

एकरंगे चित्र, दाम)। प्रतिचित्र नेट दाम

श्रीकृष्ण-सुदामाकी गुरु-सेवा | कर नवनीत लिये | महात्मा सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज-साइज ५×७॥ इञ्च

बहुरंगे चित्र, दाम)। प्रतिचित्र नेट दाम

श्रीविष्णु
शेषशायी
सदाप्रसन्न राम
कमललोचन राम
विश्वविमोहन श्रीकृष्ण
वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
आनन्दकन्द श्रीकृष्ण
गोपीकुमार
व्रज-नव-युवराज
श्यामसुन्दर

सुदामा और श्रीकृष्णका प्रेममिलन
अर्जुनको गीताका उपदेश
मोहन
अर्जुनको चतुर्भुजरूपका दर्शन
ध्रुवनारायण
समुद्रमें पत्थरोंसे दबे प्रह्लादका उद्धार
भगवान् नृसिंहकी गोदमें प्रह्लाद

पवन-कुमार
भगवान्‌की गोदमें भक्त चक्रिक
श्रीश्रीचैतन्य
भक्त धन्ना जाटकी रोटियाँ भगवान् ले रहे हैं
गोविन्दके साथ गोविन्द खेल रहे हैं
भक्त गोपाल चरवाहा
मीराबाई (कीर्तन)
भक्त जनाबाई और भगवान्

भक्त जगन्नाथदास भागवतकार
श्रीहरिभक्त हिम्मतदासजी
भक्त वालीग्रामदास
भक्त दक्षिणी तुलसीदासजी
भक्त गोविन्ददास
ऋषि-आश्रम
भक्त मोहन और गोपाल भाई
परमेष्ठी दर्जी
कमला
भुवनेश्वरी

चित्रोंके दाम

चित्र बेचनेके नियमोंमें परिवर्तन हो गया है। दाम बहुत घटा दिये गये हैं, अब नीचे लिखे प्रकारसे दाम लिय जायँगे। आशा है इस सुविधासे लोग लाभ उठावेंगे।

साइज और रंग	१ से ११ तक प्रति चित्र	१२ से ९९ तक प्रति दर्जन	१०० से ४९९ तक प्रति सैकड़ा	५०० से ९९९ तक प्रति पाँच सौ	९९९ से ऊपर प्रति एक हजार
१८×२२, रंगीन	≡)	१।=)	१०)		
१५×२०, सुनहरी	≡)	१।=)	९)	४०)	७५)
१५×२०, रंगीन	=)	॥।≡)	७)	३२)	६०)
१०×१५, सुनहरी	-)	॥-)	३)	१३)	२५)
१०×१५, रंगीन	)॥।	।=)॥।	२॥)	११)	२०)
७॥×१०, सुनहरी	)॥।	।=)॥।	२॥)	११)	२०)
७॥×१०, रंगीन	)॥	।)॥	२)	८)	१५)
५×७॥, रंगीन	)।	=)।	१)	५)	१०)

एक सुविधा

१५×२० साइज़के सुनहरे और रंगीन २४ चित्रोंके सेटकी नेट कीमत १॥≡)॥ पैकिङ्ग)॥ डाकखर्च ॥≡) कुल लागत २।≡) लिये जायँगे।

१०×१५ साइज़के सुनहरे और रंगीन ३१ चित्रोंके सेटकी नेट कीमत ।॥-)। पैकिङ्ग -)॥। डाकखर्च ॥-) कुल १॥) लिये जायँगे।

७॥×१० साइज़के सुनहरे, रंगीन और सादे १४५ चित्रोंके सेटकी नेट कीमत २।-)॥। पैकिङ्ग -)॥ डाकखर्च ॥≡)॥। कुल ३≡) लिये जायँगे।

५×७॥ साइज़के रंगीन ३५ चित्रोंका नेट दाम ।-)॥ पैकिंग)॥ डाकखर्च ।-) कुल ॥≡) लिये जायँगे।

१५×२०, १०×१५, ७॥×१०, ५×७॥ के चारों सेटकी नेट कीमत ५।) पैकिङ्ग ≡) डाकखर्च २।) कुल ७।≡) लिये जायँगे।

नोट—सेट सजिल्द भी मिला करती है। जिल्दका दाम १०×१५ का ॥=), ७॥×१० का ॥), ५×७॥ का ≡) लिया जाता है। सजिल्द सेटका ज्यादा डाकखर्च लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र बेचनेके नियम

इससे पिछली चित्र-सूचियोंको रद्द समझें, आर्डर इस सूचीके अनुसार देनेकी कृपा करें।

ये रेट हमारे स्टाकमें छपे हुए तैयार चित्रोंके हैं, किसीके लिये खास तौरपर उनके बताये अनुसार छापकर देनेके नहीं। तैयार चित्रोंमेंसे भी जब कोई चित्र समाप्त हो जाता है, तब हम भेज सकनेमें असमर्थ होते हैं।

(१) चित्रका नाम जिस साइजमें दिया हुआ है वह उसी साइजमें मिलेगा, आर्डर देते समय देख लें। समझकर मँगवावें। (२) पुस्तकोंके साथ मालगाड़ीसे चित्र मँगानेपर कुल मालका चित्रोंकी क्लासका किराया देना पड़ता है, इसलिये ३०) की पुस्तकोंके साथ नेट प्राइस कम-से-कम १०) का चित्र लेनेवालेको चित्र फ्री डिलेवरी दिया जायगा, नहीं तो विशेष भाड़ा ग्राहकोंको देना होगा, आर्डर देते समय इस नियमको समझ लें। (३) १००) के चित्र लेनेसे ग्राहकके रेलवे स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री डिलेवरी दी जायगी। (४) केवल २ या ४ चित्र पुस्तकोंके साथ या अकेले नहीं भेजे जाते, क्योंकि रास्तेमें टूट जाते हैं। (५) 'कल्याण' के साथ भी चित्र नहीं भेजे जाते।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

गङ्गाप्रेमियोंसे नम्र निवेदन

प्रयागके प्रोफेसर श्रीदयाशङ्करजी दुबे एम० ए०, एल-एल० बी० श्रीगङ्गाजीके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखनेका विचार कर रहे हैं। इसके लिये गङ्गोत्रीसे गङ्गासागरसङ्गमतकके २५ नकशे तैयार किये जा चुके हैं।

श्रीगङ्गाजीके प्रेमियोंसे वे नम्र निवेदन करते हैं कि—

(१) यदि वे श्रीगङ्गाजी अथवा उसकी सहायक नदियोंके किनारेके किसी ग्राम या महत्त्वपूर्ण स्थानोंसे परिचित हों तो उसका संक्षिप्त वर्णन मेरे पास नीचे लिखे पतेसे भेजनेकी कृपा करें। इस वर्णनमें प्राकृतिक दृश्यों, घाटों, देवस्थानों, प्राचीन और नवीन मन्दिरों तथा ऐतिहासिक बातोंको स्थान देना आवश्यक है। साथमें यह भी बतलाना आवश्यक है कि वह स्थान किस जिलेमें है, किसी बड़े नगरसे कितनी दूर है, नदीके किस किनारेपर है, और रेलद्वारा तथा सड़कसे उस स्थानको किस प्रकार पहुँच सकते हैं।

(२) यदि उनके पास श्रीगङ्गाजीके सम्बन्धमें कोई प्रकाशित या अप्रकाशित कविता या स्तोत्र हो तो उसे मेरे पास भेज दें।

(३) यदि उनके पास श्रीगङ्गाजी या उसकी सहायक नदियोंके किनारेके किसी दर्शनीय स्थान (मन्दिर, घाट, प्राकृतिक दृश्य) का फोटो या चित्र हो तो उसे मेरे पास अवश्य भेज देनेकी कृपा करें। फोटो या चित्रोंमें किनारेके दृश्योंका महत्त्व प्रकट होना आवश्यक है।

(४) यदि उनके पास श्रीगङ्गाजीके किनारे रहनेवाले किसी महात्मा, साधु, सन्त, वीर या प्रसिद्ध पुरुषका फोटो हो तो वे उसे भी उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र-सहित मेरे पास भेजनेकी कृपा करें।

(५) इन पुस्तकोंको उत्तम तथा और भी अधिक उपयोगी बनानेके लिये योग्य सम्मति भी देनेकी कृपा करें।

जो सज्जन मुझे इस ग्रन्थके लिखनेमें उपर्युक्त किसी भी तरहसे सहायता देनेकी कृपा करेंगे उनका शुभ नाम पुस्तकमें सधन्यवाद प्रकाशित कर दिया जायगा और प्रकाशित होनेपर पुस्तक भी उनको बिना मूल्य भेज दी जायगी। जो सज्जन फोटो या चित्र भेजनेकी कृपा करेंगे उनको, यदि वे लेना स्वीकार करेंगे, तो उसका उचित खर्च भी भेज दिया जायगा। यदि वे चाहेंगे तो ब्लाक बन जानेपर फोटो या चित्र सधन्यवाद वापस भी कर दिये जायँगे।

पता—

दयाशङ्कर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी०
अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, वैशाख १९९२, मई १९३५ | संख्या १०
पूर्ण संख्या १०६

दर्शनकी उत्कण्ठा

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?

राजिवदल-नयन कोमल कृपा-अयन, मयननि बहु छवि अंगनि दूरति ॥ १ ॥

सिरसि जटाकलाप पानि सायक चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।

'तुलसिदास' रघुबरकी सोभा सुमिरि, भई है मगन नहि तनकी सूरति ॥ २ ॥

—तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबाके वचनामृत

(सं० और प्रे०—श्रीनकुलेश्वर मजूमदार विद्यानिधि, बी० ए०, ए० टी० सी०)

[श्रीश्रीभार्गव शिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजी काशीमें एक बड़े भारी सर्वशास्त्रनिष्णात सिद्ध महात्मा हो गये हैं। इनके सेवक इन्हें एक ही साथ भृगु, शिव और रामके अवतारस्वरूप और ज्ञान, भक्ति एवं योगकी प्रतिमूर्ति मानते थे। इसीसे इनका उपर्युक्त नाम पड़ गया था। परन्तु सर्वसाधारणमें आप 'बाबा' नामसे ही विख्यात थे। जिनको 'बाबा' के श्रीचरणोंकी शरण लेनेका सौभाग्य मिला है वे ही जानते हैं कि बाबा कितनी उच्च कोटिके महापुरुष थे। काशीके वर्त्तमान प्रसिद्ध महात्मा श्रीहरिहरस्वामीजीके नामपर स्थापित श्रीहरिहरविद्यालयके हेडमास्टर भक्तप्रवर श्रीनकुलेश्वर मजूमदार विद्यानिधि, बी० ए० महोदय बाबाके कृपापात्र शिष्य हैं। आपपर बाबाकी बड़ी कृपा थी और समय-समय बाबाने आपको अनेक उपदेश दिये थे। उन्हींमेंसे कुछ उपदेशोंको 'बाबा' के वचनामृतके नामसे श्रीमजूमदार महोदयने 'कल्याण' के पाठकोंके लाभके लिये कल्याणमें प्रकाशनार्थ भेजनेकी कृपा की है। आशा है पाठक महात्माके वचनामृतसे अवश्य लाभ उठावेंगे। —सम्पादक]

प्रश्न—मनुष्य सबसे बढ़कर सुखी कब होता है?

उत्तर—जब उसे भगवान्‌के दर्शन होते हैं।

प्र०—भगवान्‌के दर्शन किसको होते हैं?

उ०—जो निर्मल होता है।

प्र०—निर्मल कैसे हुआ जा सकता है?

उ०—जो निर्मल हैं उनका संग करनेसे।

प्र०—निर्मल कौन हैं?

उ०—जो परम पवित्र भगवान्‌का संग प्राप्त करते हैं, वे महापुरुष साधुगण ही निर्मल हैं।

प्र०—साधुसंग कैसे मिलता है?

उ०—बहुत जन्मोंके पुण्यवशतः भगवान्‌की दयासे ही साधुसंग होता है।

प्र०—भगवत्संग कैसे मिलता है?

उ०—साधु या महापुरुषोंका संग करनेपर उनकी दयासे सहज ही भगवत्संग प्राप्त होता है।

प्र०—साधुसंग किसे कहते हैं?

उ०—साधु या महापुरुषके पास बैठ रहनेसे ही साधुसंग नहीं होता। उनके पास या दूर रहनेका कोई अर्थ नहीं है। उनके प्रति भक्ति और विश्वास होना चाहिये। उनको मनन करना चाहिये। किसी-किसीको साधुके समीप बैठे रहनेपर भी असली साधुसंग नहीं होता और किसी-किसीको दूर रहनेपर भी वास्तविक साधुसंग हो जाता है। इसीलिये शास्त्रने कहा है—

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
हृदये यदि न स्थितः समीपस्थोऽपि दूरतः॥

परन्तु जो साधुको मनन नहीं कर सकता, वह यदि केवल साधुके पास बैठा रहे तो उसको साधुसंगका पूर्ण फल प्राप्त न होनेपर भी उसका विशेष उपकार होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। साधुके पास बैठते-बैठते, सदा ज्ञान और भक्तिकी बातें सुनते-सुनते साधुसंगके माहात्म्यसे उसके देह और मनके अणु-परमाणु बदल जायँगे और वह बिल्कुल नया जीवन प्राप्त कर लेगा। यही तो साधुसंगका माहात्म्य है।

प्र०—साधुसंग करनेसे क्या होता है?

उ०—यदि कोई क्षणभर भी वास्तविक साधुसंग कर लेता है वह उसके लिये भवसागरसे तरनेके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौका हो जाता है। मोक्षके चार दरवाजे हैं, उनमें एक साधुसंग है। सन्तजनके दर्शन, स्पर्श और संगसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य निर्मल हो जाता है। इसीलिये कहा जाता है—

क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका।

यह ठीक है। क्षणकालके भी साधुसंगका फल अमोघ है। सूर्यके सामने जाओगे तो गरमी लगेगी ही, प्रकाश मिलेगा ही। हाँ, शरीर ढककर गये तो फिर गये ही क्या? इसी प्रकार जो साधुके समीप जाते हैं, वास्तविक साधुसंग करते हैं, वदन ढककर नहीं रखते, उनके वदनपर साधुके ज्ञान और भक्तिकी आभा पड़ेगी ही, उनकी पापबुद्धि कम होगी ही; कम-से-कम क्षणभरके लिये तो वे देवत्वको प्राप्त हो ही जायँगे।

अतएव साधुसंग क्षणभरका होनेपर भी अमोघ फल देता है। पारसके स्पर्शसे लोहा सोना होता है, परन्तु साधुरूप पारस जिससे छू जाता है वह तो पारस ही हो जाता है।

प्र०—साधु कौन है?

उ०—जिसके लिये कुछ भी साधन करना बाकी नहीं रहा, जिसने सब साधनोंको सम्पन्न कर लिया है, वही साधु है। जानते हो ऐसी अवस्था किसकी होती है? जिसका भगवान्‌में पूर्ण प्रेम या पूर्ण भक्ति होती है।

प्र०—पूर्ण भक्ति किसे कहते हैं?

उ०—केवल भगवान्‌की सेवा ही तुमको अच्छी लगे, उनकी सेवा किये बिना रह न सको इसलिये सदा सेवामें ही लगे रहो, उनके चिन्तनको छोड़कर एक निमेषके लिये भी तुम्हारे हृदयमें दूसरा कोई चिन्तन न आवे, और जब 'मैं सेवा करता हूँ' यह भाव घड़ीभरके लिये भी तुम्हारे हृदयमें न जागने पावे और अवशरूपसे केवल उनकी सेवा ही अच्छी लगती है, सेवा किये बिना रहा नहीं जाता, इसलिये जब शरीर-मन-वाणीसे अपनेको उनके चरणोंमें अर्पण कर दोगे, तब उनके चरणोंमें 'पूर्ण भक्ति' होगी।

जिसका भीतर और बाहर समान हो गया है वह भक्त है। अर्थात् जो आँखें मूँदनेपर हृदयमें केवल श्रीसीतारामजीकी मूर्ति ही देखता है और आँखें खोलनेपर बाह्य जगत्‌में भी जो श्रीसीतारामजीको देखता है; इस प्रकार जो भीतर-बाहर केवल भगवान्‌के रूपको ही देखता है वह भक्त है। वह बाह्य जगत्‌की प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌के अस्तित्वका अनुभव कर आनन्दमें विभोर होकर आँखें मूँदता है, और आँखें मूँदनेपर हृदयमें भी केवल भगवान्‌की ही मूर्तिको देखकर और भी आनन्दमग्न होता है। क्या भीतर और क्या बाहर, वह तो भगवान्‌के सिवा और कुछ भी नहीं जानता, कुछ भी नहीं देखता। वह भीतर-बाहर सदा ही आनन्दमयको देखकर आनन्दमग्न रहता है। इसीको भीतर-बाहर समान कहते हैं, इसीका नाम भक्ति है। जिसकी ऐसी स्थिति हो गयी है वही भक्त है।

जिसकी ऐसी पूर्ण भक्ति होती है वह अपनेको भगवान्‌के ऊपर ही निर्भर करता है। वह विपत्ति पड़नेपर भगवान्‌की ओर देखेगा, रोग होनेपर भगवान्‌की ओर देखेगा, औषध और वैद्यकी ओर नहीं। सूर्य जैसे कभी शीतल नहीं हो सकता, इसी प्रकार जो ठीक-ठीक भगवान्‌पर अपनेको निर्भर करता है, उसको कभी दुःख नहीं हो सकता।

प्र०—हाथ-पैर रहते पुरुषार्थ न करके, काम न करके, केवल भगवान्‌के ऊपर निर्भर रहना क्या कापुरुषताका लक्षण नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ०—नहीं ! यह कापुरुषता नहीं है, यही यथार्थ पुरुषकार है। ऐसा पुरुषकार करनेके लिये बड़ी शक्ति चाहिये। साधारण मनुष्यमें ऐसी शक्ति नहीं होती, इसलिये वह इस पुरुषकारको नहीं कर सकता। पुरुषकार किसे कहते हैं ? पुरुषत्वके अवलम्बनको, पुरुषके आश्रयको। पुरुष कौन है ? एक भगवान् ही पुरुष हैं, या उनका संग पाकर जो भगवत्स्वरूप हो गये हैं वे महापुरुष साधुगण पुरुष हैं। और सब तो प्रकृति है। अतएव भगवान्‌के प्रति या किसी परम भक्त महापुरुषके प्रति पूर्णरूपसे निर्भर करना ही श्रेष्ठ पुरुषकार है।

प्र०—बहुत-से लोग भगवान्‌पर निर्भर करते हैं, कितने ही महापुरुषोंपर निर्भर करते हैं, तब भी वे दुःख क्यों भोगते हैं ?

उ०—यदि निर्भर करके भी दुःख भोगते हैं तो यही समझो कि निर्भरता ठीक नहीं हुई है। उसमें कुछ कसर है। जो सर्वशक्तिमान् हैं, उनका ठीक-ठीक आश्रय ले लेनेपर क्या कभी दुःख रह सकता है ?

प्र०—क्या करनेसे भगवान्‌में मन जा सकता है ?

उ०—भगवान्‌को प्रेम करनेसे। जो जिससे प्रेम करता है, उसकी ओर मन जाता है। सती स्त्री पतिको प्यार करती है, इसीसे उसका मन सदा पतिकी ओर ही जाता है। वह रसोईघरमें बैठी-बैठी भोजन बनाती है, और वहींसे चोरकी तरह चुपचाप झाँक-झाँककर पतिको देखती है। इसी तरह जो भगवान्‌से प्यार करते हैं, वे कामकाज करते हुए—लिखना-पढ़ना करते हुए ही, जैसे सती स्त्री अपने मनको पतिकी ओर रखती है, वैसे ही भगवान्‌की ही ओर मन लगाये रखते हैं और मौका मिलते ही भगवत्कथा सुनते हैं, भगवत्-ग्रन्थ पढ़ते हैं, स्तव-पाठ करते हैं और नाम-जप करते हैं।

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

(प्रेषक—डाक्टर श्रीमोहनजी)

प्र०—नामकीर्तनमें सबकी निष्ठा क्यों नहीं होती ?

उ०—जिस प्रकार स्कूलमें दो सौ लड़के पढ़ते हैं परन्तु परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं दो-चार ही। हाँ, बार-बार प्रयत्न करनेपर और भी उत्तीर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार नामकीर्तनमें सबकी निष्ठा एकदम नहीं होती, बार-बार नामकीर्तन करते रहनेसे निष्ठा हो जाती है।

नामकीर्तन करनेसे मनुष्यकी तदाकार वृत्ति हो जाती है। जो रामनाम-कीर्तन करते हैं वे रामको प्राप्त होते हैं तथा जो कृष्णनामका कीर्तन करते हैं वे कृष्णको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार सब हिन्दू, मुसलमान, ईसाई ईश्वरको प्राप्त होते हैं।

जिस मनुष्यको कुत्तेसे अधिक प्रेम हो और वह अपना सारा समय तथा ध्यान उसीमें लगाये रहे तो वह फिर कुत्तेकी योनिको ही प्राप्त होता है अर्थात् अगले जन्ममें वह कुत्ता बनता है। इसी प्रकार जो पहरेदार सूअरोंका पहरा देते हैं और उनका ध्यान हर समय उसीमें लगा रहता है वे फिर सूअरकी योनिमें ही जन्मते हैं। तथा जिन मनुष्योंका साधुओंसे अधिक प्रेम होता है और जो साधुसेवी अधिक होते हैं वे अगले जन्ममें अवश्य साधु बनते हैं।

संकीर्तनयज्ञमें सब भाग ले सकते हैं, जो कर्मकाण्डकी यज्ञशालामें जानेसे वर्जित हैं ऐसे समस्त लोग भी संकीर्तनमहायज्ञमें भाग ले सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

काम, क्रोध, लोभ, असत्य, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, वैर, अभिमान, नास्तिकता आदि दोष तुम्हारे स्वभावमें नहीं हैं। ये बाहरी हैं, इनको भूलसे तुमने अपने अन्तःकरणमें स्थान दे रक्खा है, ये चोर हैं, बटमार हैं, हिंसक हैं, तुम्हारे शत्रु हैं। मित्र बनकर मनमें बैठे हुए तुम्हारा सत्यानाश कर रहे हैं। इन्होंने तुम्हें भ्रममें डालकर तुम्हारी ऐसी समझ कर दी है मानो मन इनका अपना घर ही है। मनमें यह रहेंगे ही। बात ऐसी नहीं है। अतएव सावधान हो जाओ और अपने स्वरूपको सँभालो।

× × ×

तुम परमात्माके सजातीय हो, परमात्माके सनातन अंश हो, दोष और विकारोंसे रहित हो, बड़े बलवान् हो। इन शत्रुओंके शत्रुस्वरूपको समझकर इनपर अपना बल प्रयोग करो और इन्हें सदाके लिये अपने मनमेंसे निकाल दो।

× × ×

निश्चय करो, मैं परम शुद्ध हूँ, सर्वथा विकाररहित हूँ, मुझमें काम-क्रोधादि आ ही नहीं सकते। मुझमें ये बिल्कुल नहीं हैं। यदि कहीं लुके-छिपे दिखायी दें तो तुरन्त मार डालनेकी धमकी दो और अपना बल दिखाकर इन्हें डराकर भगा दो। निश्चय रक्खो, ये तभीतक रहते हैं जबतक तुम इनके सामने अपना शक्तिमान् रूप प्रकट नहीं करते। जहाँ तुम्हारे यथार्थ रूपको इन्होंने देखा, वहीं ये सब भाग जायँगे।

× × ×

तुम पूर्णकाम हो, अतएव तुममें कामना नहीं हो सकती। तुम्हारा कोई पराया नहीं है, इससे तुमको किसीपर क्रोध नहीं हो सकता। तुम नित्यतृप्त आनन्दमय हो, इससे तुममें लोभ नहीं रह सकता। तुम सत्यस्वरूप हो, अतएव असत्यकी छाया भी तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकती। ईर्षा, द्वेष, मत्सर और वैर तो दूसरेसे ही होते हैं। सबमें एक ही आत्मतत्त्व पूर्ण है, तब इनको स्थान ही कहाँ है? अभिमान किसी वस्तु-का होता है, तुममें कोई वस्तु है ही नहीं, फिर अभिमान कहाँसे आता? नास्तिकता तो आत्माके नित्य अस्तित्वमें है ही कहाँ? सोचो-विचारो, और इन दोषोंको जल्दी-से-जल्दी निकालकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थिर हो जाओ।

'शिव'

मम ओर !

दयामय ! देखिये मम ओर।
परम विशाल दुःखकी सरिता, दीखे ओर न छोर ॥ध्रुव॥
नाविक निर्बल नैया जर्जर, पवन चलत झकझोर।
करुणामय ! अब पार लगाओ, करके करुणा-कोर॥
अंधकार छाया है चहुँदिसि, गरज रहे घन घोर।
दीनबंधु भवभयहारी प्रभु, विनय करूँ कर जोर॥
भगवन् ! अब मत देर लगाओ, जल्दी आओ दौर।
कोइ नहीं है साथी मेरा, तन, मन, धन, सब चोर॥
जगमें सब मतलबके संगी बिन मतलब मुख-मोर।
'रमा' विकल हो तुम्हें पुकारै, सुनिये अवधकिशोर !!

—राजकुमारी 'रमा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

माननीय सज्जन !

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था। मैं कई दिनोंतक बाहर दौरेपर था, इधर स्वास्थ्य भी कम ठीक है, ऐसे ही कारणोंसे उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया है, आशा है कि आप कृपया क्षमा करेंगे। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये आप जो प्रयत्न कर रहे हैं सो ठीक ही है। स्वप्नद्वारा हानि होती है सो आहार और विचारादिकी अशुद्धि ही इसमें मुख्य कारण समझा जाता है। आपको अपने आहार, विचारादिके विषयमें फिर विचार करना चाहिये। क्योंकि शास्त्रोंमें कामकी उत्पत्तिका मूल संकल्प ही बताया गया है—

काम जानामि ते मूलं सङ्कल्पात् किल जायसे।
सङ्कल्पे तु मया त्यक्ते कथं त्वं जायसे पुनः॥

श्रीशङ्कराचार्यजीका कथन है—

कामस्य विजयोपायं सूक्ष्मं वक्ष्याम्यहं सताम्।
संकल्पस्य परित्याग उपायः सुलभो मतः॥
सङ्कल्पानुदये हेतुर्यथा भूतार्थदर्शनम्।
अनर्थचिन्तनं चाभ्यां नावकाशोऽस्य विद्यते॥

(सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह ६२, ६७)

इसलिये शुद्ध संकल्पसे ही इसका नाश होता है। रात्रिमें शयन करते समय श्रीगीताजीके श्लोकोंका पाठ करते हुए और उनके अर्थका चिन्तन करते हुए सोना चाहिये। इससे रात्रिके संकल्प पवित्र रहते हैं। विषयोंमें वैराग्य, उपरामता और हर समय ईश्वर-चिन्तन करते रहनेसे दिनके संकल्प पवित्र रहते हैं।

(२) आप छः घण्टे भजनमें बैठते हैं सो बहुत उत्तम है। मनकी उधेड़-बुन मिटानेके लिये गायत्रीका जप करते समय मन्त्रके अर्थका ध्यान बार-बार करना चाहिये। प्रत्येक मन्त्रके जपके समय अर्थकी आवृत्ति करते रहना चाहिये। अथवा गायत्रीके मन्त्रको कागज या दफ्तीपर लिखकर सामने टाँग दिया जाय और जपते समय बार-बार उसे पढ़ा जाय एवं मनमें अर्थका ध्यान किया जाय। अथवा अपने मानसिक इष्टदेवके मस्तकपर मनके द्वारा मन्त्रको चन्दनसे लिखकर बार-बार पढ़ा जाय। इन साधनोंसे मनका एकाग्र होना सम्भव है।

(३) भजन करते समय दो प्रधान विघ्न उपस्थित होते हैं (१) निद्रा (२) स्फुरण (विक्षेप) अर्थात् मनमें नयी-नयी उधेड़-बुनका बार-बार उठना। इन दोनोंको मिटानेके लिये दूसरे प्रश्नके उत्तरमें लिखे उपायोंके अनुसार मन्त्र और उसके अर्थका ध्यान करना चाहिये। इससे ये विघ्न दूर होकर मन टिक सकता है।

(४) भजन करनेसे कोई व्याधि नहीं होनी चाहिये, यह आपका विश्वास ठीक है। यदि काकतालीय-न्यायवत् किसीके कुछ हो भी जाती हो तो भजन करनेवालेको इसका कोई विचार नहीं करना चाहिये। सभीको ऐसी कोई तकलीफ देखनेमें नहीं आती है।

(५) आत्मामें प्रसन्नता, उत्साह और एकाग्रताके साधन इस प्रकार हैं—पद-पदपर अपने ऊपर ईश्वरकी पूर्ण दयाका दर्शन करनेसे उत्साह और प्रसन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। प्रत्येक सुख और दुःखकी प्राप्तिमें उस सुख-दुःखको ईश्वरका विधान समझनेसे उत्साह और प्रसन्नता बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और ज्यों-ज्यों उत्साह एवं प्रसन्नता बढ़ती जाती है त्यों-ही-त्यों ईश्वरकी दयाका रहस्य भी अधिकाधिक समझमें आता है। चित्तकी एकाग्रता-के लिये सबसे उत्तम उपाय अभ्यास और वैराग्य है। संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंमें आसक्ति न रहनेका नाम वैराग्य है, और गुण एवं प्रभाव-सहित परमेश्वरके स्वरूपचिन्तनके लिये पुनः-पुनः प्रयत्न करनेका नाम अभ्यास है।

(६) प्राणायामके अभ्याससे, एवं गुण और प्रभाव-सहित ईश्वरके स्वरूपका ध्यान करनेसे मनकी चञ्चलताका नाश हो सकता है। एवं सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंपर दया करके सब भूतोंके हितमें रत होनेसे मत्सरता-बुद्धिका नाश हो सकता है।

(७) बुद्धिको कुशाग्र और तीक्ष्ण करनेके लिये सत्पुरुषोंका संग एवं सत्-शास्त्रोंका विचार करना चाहिये। निष्काम कर्मयोग और उपासनाके द्वारा पवित्र होनेसे बुद्धिमें कुशाग्रता और तीक्ष्णता आती है और स्मरणशक्ति बढ़ सकती है। ब्रह्मचर्यका पालन इसमें विशेष सहायक होता है।

(८) आयु यद्यपि नियत रहती है पर अनुचित आहार-विहार एवं दुराचारसे वह घट सकती है तथा हठसे मरनेकी कोशिश करनेपर अकालमृत्यु भी हो सकती है। इसी प्रकार शुद्ध आहार-विहार-सेवन, एवं ब्रह्मचर्यके पालन और योगके साधनसे आयुका बढ़ना भी सम्भव है।

(९) अधिक-से-अधिक एक घण्टा व्यायाम स्नानके एक घण्टा पहले या पीछे करना स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद है।

(१०) भगवान्‌के तत्त्वको जाननेवाले पुरुषोंद्वारा भगवान्-के नाम, रूप, गुण और लीलाके रहस्य तथा प्रभाव और तत्त्वको समझनेसे भगवान्‌में अतिशय श्रद्धा होकर अनन्य प्रेम हो जाता है। श्रीगौराङ्ग, मीराबाई आदिकी तरह भगवान्‌को ही सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ मानने और समझनेसे भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो सकता है।

(११) ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए शनैः-शनैः अभ्यास करनेसे अर्थात् धूपमें थोड़ी-थोड़ी धूप सहते-सहते और इसी तरह थोड़ा-थोड़ा शीत सहन करते-करते आदत हो जाती है और फिर शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें आसनजित् होनेसे भी ऐसी स्थिति होनेके लिये कहा है।

(१२) अष्टाङ्गयोगमार्गके अनुसार साधन करनेवाले योगियोंका दशम द्वार 'ब्रह्मरन्ध्र' खुलता है। इस अष्टाङ्गका वर्णन महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनके दूसरे और तीसरे पादमें किया है। दशम द्वार-के न खुलनेसे कोई हानि नहीं है, और खुलनेसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है। अकस्मात् काकतालीय न्यायवत् अन्य किसी पुरुषकी भी ऐसी मृत्यु हो सकती है। गीताके ८ वें अध्यायके १२-१३ श्लोकमें भी इसका वर्णन है। यह कोई नियम नहीं है कि मुक्ति-मार्गमें जानेवाले सभी पुरुषोंके ब्रह्मरन्ध्र भेदन होकर ही प्राण जायँ। यहाँ भी प्राण ब्रह्ममें विलीन हो सकते हैं।

(१३) सिद्धियाँ अनन्त हैं। उनमें आठ मुख्य हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। इनका वर्णन योगदर्शनके तीसरे पादमें, भागवत एकादश स्कन्धमें और हठयोगप्रदीपिका आदिमें है। इस समय इनकी जानकारीवाले सिद्ध योगी देखनेमें नहीं आते। इनकी प्राप्तिका उपाय इनके जाननेवाले योगियों-द्वारा तत्पर होकर साधनके लिये कोशिश करनेसे ही प्राप्त होना सम्भव है। कल्याण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गमें चलनेवाले पुरुषोंके लिये सिद्धियाँ बाधक बतायी गयी हैं। इसलिये परमार्थके साधकको इस झंझटमें नहीं पड़ना चाहिये। मुझको इनका कुछ भी अनुभव नहीं है।

(१४) कुण्डलिनी शक्तिके विषयमें मेरा अभ्यास नहीं है। मैं इस विषयमें पूर्णरूपसे नहीं लिख सकता। कल्याणके 'शक्ति-अङ्क'के इस विषयके लेख पढ़ सकते हैं और हठयोगप्रदीपिका आदि ग्रन्थोंमें एवं इस विषयके जानकार योगियोंद्वारा इसे जान सकते हैं।

(१५) सुषुम्नानाडीका विषय बड़ा गहन है। शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे इसका वर्णन मिलता है। इस विषयमें योगदर्शनके प्रथम पादमें 'विशोका वा ज्योतिष्मती' सूत्रकी व्याख्या (व्यासभाष्य) देखनी चाहिये। प्रश्नोपनिषद् एवं और भी योगविषयक शास्त्रोंमें यह विषय आया है।

सुषुम्नानाडी परम शान्ति और परमानन्दको देनेवाली है। इसके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। पत्रद्वारा इसका साधन समझाना कठिन है।

(१६) अच्छे योगियों और महात्माओंके दर्शन अधिकतासे कहाँ होते हैं इसका मुझे पता नहीं है। प्रथम तो योगी और महात्मा होते ही कम हैं। जो हैं, उनका भी मिलना कठिन है और मिलनेपर पहचानना भी कठिन है। उत्तराखण्डमें एवं गंगाकिनारे ऐसे पुरुष सुने जाते हैं। श्रद्धा होनेपर भगवान् और महापुरुषोंकी दयासे उनके दर्शन होते हैं।

(१७) ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होनेका उपाय पूछा सो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंकी सेवा और संगसे, एवं परमेश्वरकी नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक अनन्यभक्ति करनेसे परमेश्वरकी दयासे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होती है। गीताके इन श्लोकोंको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
(४।३४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
(१०।९—११)

इस प्रकार आपके प्रश्नोंका उत्तर है। और कुछ पूछना हो तो निःसंकोच पूछनेकी कृपा करेंगे।

अन्तर्दृष्टि

मोरि मुख हरिसों सुख न लह्यो;
विषय वासनाके वन भरमत, अन्त दवारि दह्यो।
जित न जात मतिमान बिसरि कहुँ, वाही गैल गह्यो; तजि अति सुखद सुगम आगम पथ, संकट विषम सह्यो।
कुगति भई केतिक, भव-वारिधि बूड़त तिरत बह्यो; सुख दुख जनम मरणके झटकन झटका खात रह्यो।
जन-रञ्जन भव-भय-भञ्जन जे, वेद पुराण कह्यो; ते श्रीपति-पद निदरि मूढ़ मन, तैं निज सुगति चह्यो।

—रमाशङ्कर मिश्र 'श्रीपति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगम साधन-पथ

(लेखक—गङ्गोत्तरी-निवासी दण्डिस्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती)

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्प्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुङ्गवानाम् ।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

अच्छा,—पूछता हूँ,—कलियुगके कामकिङ्कर रिपुपरवश अन्नगतप्राण अल्पायु जीवोंकी मुक्तिका क्या उपाय है ? कलिके अल्पायु जीवोंको किस पथसे अग्रसर होना चाहिये ? नाना देश हैं, नाना जातियाँ हैं, नाना सम्प्रदाय हैं—अनेक मनुष्य अनेक पथ दिखाते हुए चलते हैं । अतएव कलिके अल्पायु जीवोंके लिये 'सुगम साधन-पथ' क्या है ?

तर्काऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥
—(गरुडपुराण, पूर्व० १०९)

अनन्त जगत्में अनन्त मनुष्योंके अनन्त प्रकारके मत हैं । किसीके मतके साथ किसीका भी मेल नहीं। कोई आस्तिक है तो कोई नास्तिक; कोई ज्ञानी है तो कोई अज्ञानी; कोई संयमी है तो कोई असंयमी; कोई द्वैतवादी है तो कोई अद्वैतवादी;—इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतोंके विचित्र मनुष्य विभिन्न प्रकारके मतोंका प्रचार करते हैं । कोई कहता है, 'कर्म करो, बहुत जल्द भगवान्का सान्निध्य प्राप्त हो जायगा'; कोई कहता है, 'ज्ञान प्राप्त करो, ज्ञानद्वारा भगवत्-सान्निध्य प्राप्त होगा' और कोई कहता है, 'भगवान्की भक्ति करो, भक्तिद्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है' इत्यादि । इन नास्तिक-आस्तिक, द्वैतवादी-अद्वैतवादी प्रभृति असंख्य सम्प्रदायोंकी जो सृष्टि और परिपुष्टि हुई है, इसका कारण और कुछ भी नहीं, अन्तःकरणके भेदके कारण ही यह सब हुआ है । विभिन्न सम्प्रदायोंके अन्दर जो इस प्रकार सर्वदा द्वन्द्व-कोलाहल चल रहा है उसका भी कारण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । कितने युग-युगान्तरोंसे देशविशेषमें, जातिविशेषमें, सम्प्रदायविशेषमें, शास्त्रविशेषमें कितने वाद-विवाद, कितने तर्क-वितर्क, कितने लड़ाई-झगड़े होते आ रहे हैं, उनकी कोई सीमा नहीं । कितने नये-नये धर्म-सम्प्रदाय, कितने नये-नये शास्त्र-समुच्चय, कितने प्रकारके वाग्-वितण्डा पृथ्वीके जन्मकालसे चले आ रहे हैं; किन्तु उन सब शास्त्रोंकी जटिलता, उन सम्प्रदायोंकी टेढ़ी चाल आज भी दूर न हुई;—धर्मके वास्तविक मर्मका संशयरहित निर्णय आज भी मनुष्य नहीं कर पाया है । चिरकालसे ही धर्मके विषयमें तर्क चल रहा है और तद्विषयक अनेक प्रकारकी श्रुतियाँ भी हैं, फिर भी धर्मका तत्त्व गुफामें छिपाये हुए खजानेकी तरह अत्यन्त गुप्त है; कोई भी उसे स्थिर न कर सका । इस प्रकार जो मनुष्य-बुद्धिके लिये अगम्य है, उसका निश्चय करनेमें क्षुद्र मनुष्यके चञ्चल मस्तिष्क-की क्षीणबुद्धि किस तरह समर्थ हो सकती है ? फिर उस दुरधिगम्य विषयकी आलोचना करनेमें,—उस 'अवाङ्मनसगोचरम्' तत्त्वकी खोज करनेमें इतना वाग्-वितण्डा, इतना तर्क-वितर्क, इतना लड़ाई-झगड़ा क्यों ? यह नाश हो जानेवाला माटीका क्षुद्र पुतला—जो प्रकृतिके क्षणिक फुफकारसे ही ढह जाता है, जलकी बूँदोंके गिरते ही क्षणभरमें गल जाता है—सृष्टिकुशल विश्वस्रष्टा विधाताके खेलका यह पुतला क्षुद्र मनुष्य उस अनन्त दुरवगाह अतल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रकी सीमा खोजनेका प्रयास क्यों करता है ? जो कभी निश्चित नहीं हुआ, जो कभी निश्चित नहीं होगा, जो कभी निश्चित होनेवाला नहीं है, उसकी मीमांसाके लिये तर्क-वितर्क करना क्या इस अति तुच्छ कीटानुकीट क्षुद्र मनुष्यके लिये सम्भव है ?

अतएव धर्मके गुह्य तत्त्वके लिये मस्तिष्कको परेशान करनेकी कोई जरूरत नहीं, जटिल शास्त्रोंकी मीमांसा करनेके लिये वाद-विवादमें चित्तको अशान्त करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं; कौन पथ सुगम है, कौन दुर्गम है, इसका विचार करनेमें समय नष्ट करनेसे भी कोई लाभ नहीं। क्योंकि, कलिके मनुष्य ज्ञानसागरसे बहुत दूर चले गये हैं, अभी उसके पिछले भागतक भी नहीं पहुँच सके हैं। अतएव महाजन जिस पथका अवलम्बन कर चुके हैं, उसी पथका अनुसरण करके उन्हें धर्मका पालन करना उचित है। सुनिये केन्द्रस्थानपर पहुँचे हुए, बेला-भूमिको लाँघे हुए लोग क्या कहते हैं—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न दूष्यति॥
(पद्मपुराण स्वर्ग० २७)

'जिस मार्गसे पिता-पितामहगण गये हैं, वही मार्ग सन्मार्ग है, वही सज्जनसम्मत मार्ग सबके लिये गन्तव्य पथ है। वह पथ यदि लोगोंकी रुचिके विरुद्ध भी हो तो भी उस पथका परित्याग करना उचित नहीं। क्योंकि उस पथपर चलनेसे कोई भी दोष नहीं होता।'

जन्मसे ही मनुष्य सदुपदेश, सत्‌शिक्षा पाता आ रहा है। पिता, पितामह, गुरुजन—बचपनसे ही—अपनी सन्तानको सत्‌शिक्षा, सदुपदेश देते रहते हैं। सत्‌शिक्षा देनेकी मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मन कितना भी कलुषित क्यों न हो, सत्‌शिक्षा—ज्ञानालोक बीच-बीचमें सभीके हृदयमें उद्भासित होता है। किन्तु कितने आश्चर्यकी बात है बचपनसे ही सत्‌शिक्षा, सदुपदेश प्राप्त करके भी मनुष्य सत्पथपर नहीं चलता! पद-पदपर पथभ्रष्ट होता है, बार-बार उलटे मार्गपर चलने लगता है;—सारी सत्‌शिक्षाएँ, समस्त सदुपदेश न मालूम कहाँ उड़ जाते हैं! धर्मकी बातें अधिकांश लोगोंको ही अप्रिय मालूम होती हैं। जो युवक, विद्यार्थी हैं—वे तो सोचते हैं कि इन बातोंको सुननेका अभी उनके लिये समय ही नहीं आया है। किन्तु शास्त्र कहते हैं—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमखिलं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषां कार्यः प्रयत्नो महान्
सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥
(गरुडपुराण उ० १४)

'जबतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जबतक बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति कायम है, जबतक आयु शेष नहीं हुई है, तभीतक बुद्धिमान् मनुष्यको आत्मकल्याणके लिये पूरा-पूरा जतन करना चाहिये। घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदनेसे क्या होगा ?'

वृद्धोंके पास जाइये, वे लोग भी धर्मकी बातसे अप्रसन्न ही होते हैं; उनके दिन पूरे होनेको आ गये हैं, सिरहाने खड़ा महाकाल खिलखिलाकर हँस रहा है, परन्तु इस बातको वे लोग बिल्कुल पसन्द नहीं करते। वे जानते ही नहीं कि—

भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदृष्टे
व्याधौ चिकित्साविनिवर्त्तिते च।
देहे च बाल्यादिवयोऽन्विते च
कालावृतोऽसौ लभते धृतिं कः॥
(गरुडपुराण पूर्व० १०८)

'जिसके घरमें साँप दिखायी दे गया, जिसका रोग असाध्य हो गया, जिसका शरीर बचपन, जवानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बुढ़ापा भोग चुका है, उसपर निश्चय ही कालका आक्रमण हो चुका है, इसमें सन्देह नहीं। ऐसी अवस्थामें भला कौन निश्चिन्त बैठ सकता है ?'

जो लोग मौज-शौकमें मतवाले हो रहे हैं, उनके पास जानेपर वे तो यही समझेंगे कि ये हमारे मौज-मजोंको बिगाड़ने आये हैं। किन्तु शास्त्र कहते हैं—

निःशङ्कं किं मनुष्याः कुरुत परहिते युक्तमग्रे हितं य-
न्मोदध्वं कामिनीभिर्मदनशरहता मन्दमन्दातिदृष्टाः।
मा पापं सङ्कुरुध्वं द्विजहरिपरमाः सम्भजध्वं सदैव
आयुर्निःशेषमेति स्खलति जलघटी मृत्युभूतच्छलेन ॥
(गरुडपुराण पूर्व० ११)

'हे मनुष्य ! तुम सदा निःशङ्क होकर यह क्या करते हो ? क्यों मदन-बाणसे घायल होकर मन्द-मन्द हँसीसे युक्त दृष्टिके द्वारा कामिनियोंके साथ आमोद-प्रमोद करनेमें लग रहे हो ? परलोकके रास्तेकी ओर तो तनिक भी नहीं देखते। आगेके लिये तुमने क्या सोचा है ? अब और अधिक पाप मत करो, भगवान् और ब्राह्मणोंके सेवक बनकर सर्वदा भजन करो। देखते नहीं हो, तुम्हारी उम्र प्रतिक्षण क्षय हो रही है ? घटीयन्त्रके समान मृत्यु सर्वदा विद्यमान है।'

पढ़े-लिखे, बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली पुरुषोंके पास जाइये, वहाँ तो आपको यही मिलेगा कि धर्म नीची श्रेणीके लोगोंके लिये है, वह मन्द बुद्धिवालोंके लिये है। वे यह नहीं समझते कि—

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः
श्रुतञ्च शीलञ्च गुणाश्च सर्वे।
अपक्वकुम्भे निहिता इवापः
प्रयान्ति देहेन समं विनाशम् ॥
(पद्मपुराण भूमिखण्ड ६६)

'कुटुम्बके लिये चिन्तातुर पुरुषका शास्त्रज्ञान, शील, गुण सब कुछ कच्चे घड़ेमें भरे हुए जलके समान देहके साथ ही नष्ट हो जाता है।' उनके पीछे चलनेवाले लोग उन्हींकी ओर अङ्गुलीसे इशारा करके दिखा देते हैं कि वे ही तो प्रतिष्ठावाले ज्ञानी हैं; वे ही तो हमारे आदर्श हैं।

मनुष्य स्वयं अपनी हीनता, दुर्बलता और नगण्यता समझ सकता है। इतना समझनेकी शक्ति उसमें है; और यह शक्ति है, इसी कारण उसका धर्म है। पशुओंमें यह शक्ति नहीं है—पशु अपने साथ सत्यकी तुलना नहीं कर सकता,—इसीसे वह उसका धर्म नहीं है। जो लोग पिता-पितामहोंके सदुपदेश मानकर, सब कामोंके अन्दर रहकर, संसारी ताप-ज्वालाके भीतर रहकर, पुत्र-परिजन—आत्मीय स्वजनोंसे घिरे हुए बड़े भारी परिवारको लेकर, दुश्चिन्तारूपी छुरीके आघातसे—अभावकी तीव्र ताड़नासे आठों पहर लहू-लुहान होकर, अन्तमें विवेक-बुद्धिका अनुसरण कर कर्मबन्धनको तोड़कर महाजनोंके पथका अनुसरण कर सके हैं, वे लोग धन्य हो गये हैं, उनका जन्म सार्थक हो गया है, और वे इस अपार अगम संसार-सागरको पार कर गये हैं। क्या याद नहीं है—हरिश्चन्द्र, दाता कर्ण, युधिष्ठिर, सीता, सावित्री, दमयन्तीकी लोमहर्षण जीवनियाँ ? वे लोग एक समय देवताकी तरह पूजित और समादृत हुए थे। कालका अङ्क सुशोभित करके वह एक युग चला गया;—और आज ? हम नगण्य उनके उस पवित्र आसनको कलुषित करने बैठे हैं। अतएव यदि पुत्र-परिजन—आत्मीय स्वजनोंसे घिरकर, बड़ा भारी परिवार फैलाकर इहलोकमें अभ्युदय एवं पर-लोकमें परमसुख—परमशान्ति, स्थायी आनन्द प्राप्त करनेकी अभिलाषा तुम्हें हो तो—बस, जिस रास्तेसे महाजन—महापुरुष गये हैं, उसी पथका अनुसरण करो।

(अपूर्ण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसीतारामनामकी महिमा

(लेखक—श्रीरणधीरप्रसादसिंहजी)

(स्वानुभूतिका एक संस्मरण)

'सीताराम' नाम कितना मीठा, कितना प्यारा तथा कितना शक्तिदायक है इसका वर्णन करनेकी वास्तवमें मुझमें सामर्थ्य नहीं। सन्तोंकी कृपा और स्वबुद्धिकी प्रेरणासे हृदयने इस नाम-रसकी मधुरताका कुछ स्वाद अवश्य चक्खा, नाम-मन्त्रकी बलवर्द्धिनी शक्तिका भी कुछ अनुभव किया, पर हृदयके उमड़ते हुए भावोदधिको व्यक्त करनेके लिये शब्दोंपर आधिपत्य नहीं। जब समर्थ भक्त तुलसीने भी अन्तमें यही कह दिया कि 'राम न सकहिं नाम-गुन गाई' तो फिर मैं किस गिनतीमें हूँ? मैं तो आज केवल अपने अनुभवके बलपर 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंसे यह विनम्र निवेदन करनेका साहस कर सका हूँ कि जो मनुष्य अपनी भलाई और उन्नतिके इच्छुक हों, जिन्हें मनुष्यजीवनका पूरा-पूरा लाभ उठाना हो, जो सांसारिक दुःखोंसे सदाके लिये छुटकारा चाहते हों तथा जो इस जीवनको आनन्दमय बनानेके अभिलाषी हों उन्हें चाहिये कि इस 'सीताराम' नामका, इस परम पवित्र मन्त्रका, जिस तरह हो सके, अधिक-से-अधिक जप करें, मुँहसे करें, मनसे करें, हृदयसे करें। इस नामसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं, कोई तन्त्र नहीं; कोई ज्ञान नहीं, कोई धर्म नहीं; कोई साधन नहीं, कोई शक्ति नहीं। जप करते-करते जब उसमें चित्त लग जाता है तो उसी रूपमें भगवान्‌का दर्शन होता है, दर्शन क्या, बातें भी होने लगती हैं। फिर साधक सब कष्टोंसे छुटकारा पाकर सिद्ध बन जाता है। जीवनकी समस्त कठिनाइयोंसे मुक्त होकर मृत्युका भी सानन्द आलिङ्गन करता है। यह नाम मँझधारकी प्रखरतम धारासे भी पार करके ही छोड़ता है। इस संसारसागरसे त्राण पानेके लिये इस नामसे बढ़कर अन्य तरणी नहीं। शक्ति और शक्तिमान् एक ही वस्तु हैं। सृष्टिके शृङ्गार, भाग्यशाली मनुष्यको, भगवान्‌ने कैसी सुन्दर जीभ दी है! इससे रामनामका जप करनेसे उसे अवश्य ही अयोध्यानाथ दीनानाथका दर्शन हो सकता है। फिर तो वह कहाँ-से-कहाँ पहुँच जायगा, क्या-से-क्या हो जायगा! भक्तकी कितनी पावन अभिलाषा हुई कि—

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥

अर्थात् 'हे रसके मर्मको समझनेवाली तथा सदैव मीठेको प्यार करनेवाली जीभ! नारायणके नामरूपी अमृतका हमेशा पान किया कर!'

अब मैं अपनी वह रामकहानी भी सुना देना चाहता हूँ जिसके आधारपर मैंने 'सीताराम' नामको भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें 'मंगलभवन अमंगलहारी' कहनेका साहस किया है।

अभी थोड़े दिनोंकी बात है कि मैं पाँच महीनेतक सख्त बीमार था। खूनी बवासीरसे इस तरह खून आ रहा था कि मुझे अपना अन्त समीप आया जान पड़ा। किन्तु भगवान्‌की दयासे जब रोगका जोर कुछ कम हुआ तो मैंने तुरन्त 'सीताराम' नामका जप और उच्चारण इस तरह करना प्रारम्भ किया कि फिर और किसी बातका ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अपने मनमें मैं नहीं आने देता था। फिर क्या था—'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।' शरीरमें दिन दूना रात चौगुना बल आने लगा, सूखी खाँसी ढीली हो गयी। आज लगभग तीन ही महीनेके बाद मैं अपनेको पूरा स्वस्थ पाता हूँ। क्यों न हो, भगवान्‌के कृपापात्रके लिये तो 'गोपद सिन्धु अनल सितलाई' और 'गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही' की बात तीनों कालमें अक्षरशः सत्य है।*

आरामकी तलब है तो बस एक काम कर।
आ रामकी शरणमें दिला राम राम कर॥

भगवद्भक्तके लिये कुछ अज्ञेय भी नहीं रह जाता। भगवान्‌की कृपासे उसे वह दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिसके द्वारा वह सब कुछ देख तथा जान सकता है। महाभारतयुद्धके अवसरपर मोहग्रस्त अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदान करके ही योगेश्वर श्रीकृष्णने अपने विराट् स्वरूपका दर्शन कराया था। एक ऐसे ही दिव्य दृष्टि-सम्पन्न श्रीसीतारामोपासक महात्माके साथ कुछ समय-तक रहनेका सौभाग्य मुझ दीनको भी हुआ है। इनकी पहली ही भेंटमें इनकी दिव्य दृष्टि-सम्पन्नता-का जो प्रत्यक्ष अनुभव मुझे हुआ तथा इसका जो प्रभाव मेरे हृदयपटपर पड़ा वह इस क्षुद्र जीवनके लिये अमिट हो गया। उस अवसरपर जो घटना घटी उसे अपने प्रेमी पाठकोंके सम्मुख रखनेके लोभको संवरण करना मेरे लिये नितान्त असम्भव है। हृदयके आह्लादका वेग सचमुच ही अबाध होता है।

भारतविख्यात तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीसीता-रामशरण भगवानप्रसाद रिटायर्ड असिस्टेण्ट इन्सपेक्टर ऑफ़ स्कूल्स, बिहार, 'श्रीरूपकलाजी' महाराजके नामसे 'कल्याण' के प्रायः सभी प्रेमी पाठक परिचित हैं। अभी 'कल्याण'के गताङ्कमें एक प्रेमीने इनके कुछ उपदेशोंको प्रकाशित कराया है। कहते हैं श्रीरूपकलाजी महाराजको भगवान्‌का साकार दर्शन कई बार हुआ था। मुझ दीनको इनके साथ रहनेका पर्याप्त सौभाग्य प्राप्त हुआ है तथा मुझ दासपर आपकी बड़ी कृपा थी। पहले पहल आजसे लगभग नौ-दस वर्ष पूर्व श्रीजानकी-नवमीके अवसरपर मैं इनके दर्शनार्थ श्रीअवध गया। जानकीनवमी वैशाख शुक्ल नवमीको मनायी जाती है। इस दिन वह महात्मा खास-खास प्रेमियोंको जिनमें छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े प्रेमी सम्मिलित रहते थे, श्रीजानकीजीको समर्पण करते थे और उनसे गलेसे मिलते थे। महात्मा रूपकलाजीमें स्वभावतः मेरा बड़ा प्रेम था, बड़ी श्रद्धा थी किन्तु अफसोस! वे मुझसे नहीं मिले। बस, मेरे मनमें यह विचार आया कि हे ईश्वर! या तो श्रीरूपकलामें मेरी श्रद्धा जाननेकी शक्ति नहीं है या मेरा प्रेम ही झूठा है। इसे सोचते हुए मेरी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। मैंने किसीसे कुछ नहीं कहा। मेरे बड़े भाई बाबू राजेन्द्रप्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी० भी मेरे साथ ही थे, उनसे भी मैं कुछ नहीं बोला। मन-ही-मन सोचता रहा। श्रीसीतारामनामपर विश्वास करके जल्दी-जल्दी इस नामका स्मरण करने लगा। रह-रहकर मनमें यही विचार आता था कि यदि रामनाममें शक्ति होगी तो महात्माजी अवश्य ही मुझको बुलाकर मिलेंगे। आखिरकार यही हुआ। महात्माजीने एक आदमी भेजा कि रणधीरप्रसाद-को बुलाओ। हालाँ कि उनसे मेरी यह पहली ही भेंट थी। मेरे पहुँचते ही उन्होंने मुझे गलेसे लगा लिया और कहा 'तुमको इतनेहीपर ऐसी करुणा

* यह तो श्रीभगवन्नामकी बहुत ही कम महत्त्वकी बात है। श्रीभगवान्‌के नामसे तो वह परम वस्तु मिलती है, जिसके लिये बड़े-बड़े तपस्वी, ऋषि-महर्षि और देवता तरसा करते हैं—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गयी ।' अब तो गद्‌गद् हो गया । क्या कहूँ कि क्या-से-क्या हो गया । रामनामके जपसे ऐसा हुआ या महात्माजीकी कृपासे, इसका हाल ईश्वर ही जानें । 'रामते अधिक रामकर दासा।'

इस रामनाममें मेरी दृढ़ताके एक कारण मेरे मित्र बाबू कृष्णचन्द्रजी मुंसिफ भी हैं । शब्दों-द्वारा कह नहीं सकता कि मैं उनका कितना ऋणी हूँ । मङ्गलमयसे उनके लिये मेरी मङ्गलकामना है ।

जिस 'सीताराम' नामने मुझे अभी कालके मुखसे बचाया है उसकी महिमा वर्णन करनेकी अक्षमताको मैंने स्पष्टरूपेण प्रारम्भमें ही स्वीकार किया है । अब तो मुझे इस जीवनमें यश, वैभव या सुखकी कोई इच्छा शेष नहीं है । अब तो एक-मात्र यही अभिलाषा शेष रह गयी है कि मीराकी तरह इस नश्वर शरीरके रोम-रोमसे यही ध्वनि झङ्कृत होती, इस क्षणभङ्गुर जीवनके कण-कणसे यही आवाज निकलती कि 'मेरो तो सीताराम नाम दूसरो न कोई ।' बस, अब हृदय एकमात्र इसीके लिये तड़प रहा है—

दयामय ! वह दिन कितनी दूर है ?

विवश बंदी

कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?
पिय हैं खड़े द्वारपर कैसे 'आओ भीतर' बोलूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

शत-शत जनमोंके संस्कार बँधे हैं मेरे पगमें ।
अगणित पाप और अपराध खड़े हैं मेरे मगमें ॥
इन्हें चीर, मैं बंदी कैसे हियका सौदा तौलूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

आज अचानक आये हैं मेरे प्राणों-के-प्राण ।
रोम-रोममें उत्कंठा है, कण-कणमें कल्याण ॥
किन्तु आज भी कैसे हियके काले घब्बे धो लूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

श्वास-श्वासमें तेरी गति है, प्राण-प्राणमें तान ।
अणु-अणुमें तेरा कंपन है, तेरा ही मधु-गान ॥
किन्तु आज इस लाचारीमें कैसे तुझसे बोलूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

बहुत हटाया, हट न सका, यह बार-बार गिरता है ।
तेरे मेरे बीच प्राण ! यह झिलमिल-सा हिलता है ॥
युग-युगकी इस विषम हारको प्यारे ! कैसे तौलूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

मिटना, मिट-मिटकर बनना, बन-बनकर मिट-मिट जाना ।
यही हृदयने सीखा है, पापोंमें सदा नहाना ॥
है गहरा डूबा, इसपर भी बोलो क्या मैं बोलूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

लाख करूँ, यह हट न सकेगा मेरे हटे-हटाये ।
प्रतिपल घना हुआ जाता है-मेरे घटे-घटाये ॥
हाय ! विवश बंदीकी आहोंमें अब सर्वस खोलूँ ?
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

मुझे अनावृत करनेकी ठानी है तूने ठान ।
अवगुंठन यह रह न सकेगा-तेरा है अभिमान ॥
एक बार पिय ! इसे हटा दो, मैं देखूँ औ बोलूँ !
कैसे घूँघटका पट खोलूँ ?

—'माधव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-तरंग

(लेखक—श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी 'विशारद')

१-प्रियतमके पावन पुष्पोद्यानमेंसे सुन्दर सुगन्धित गुलाब-पुष्प चयन करके प्रियतमके चरण-प्रान्तमें समर्पण करनेके लिये ले गया।

२-प्रियतमके मूल्यवान् मौलिभूषणके हीरक-कणकी प्रस्फुटित होती हुई शुभ्र ज्योतिने मनको उत्साह-उद्वेलित कर दिया और मैंने ललचाये हुए लोचनयुगल उसी ओर लगा दिये।

३-क्षणभरके लिये पक्षियोंने पक्षियोंसे एवं पुष्पोंने पुष्पोंसे मूक सम्भाषण किया।

४-प्रियतमकी मन्द-मन्द माधुरी मुस्कान और चञ्चल चितवनने वस्त्रावरणोंको विदीर्णकर चोरकी नाईं चतुरतापूर्ण चित्त चुरा लिया और मुझे स्तम्भित कर दिया।

५-प्रियतमको खिलवाड़ सूझी और मुझे ऐसी अवस्थामें भी ढकेल दिया। मैं पड़ गया। पतनसे पत न चली जाय अतएव वस्त्रोंको झाड़कर उठा और भेंटके सुमनसंग्रहको सुमन होकर बटोरने लगा।

६-हैं, यह क्या! सुमन सौन्दर्यशून्य होकर अनन्तमें अन्त हो गये। मैंने प्रियतमकी ओर सकरुण दृष्टि डाली और सहसा मेरे मुखसे निकल पड़ा—'यह कैसा अद्भुत परिहास?'

७-प्रियतम मन्द मन्द मुस्कराये। विद्युत् प्रकाशके अनन्तर शब्द-सुमनोंकी वृष्टि हुई और दिशाएँ मुखरित हो उठीं—

'मेरी भेंटसामग्रीके नष्ट होनेका दुःख मुझे होना चाहिये न कि तुम्हें?'

८-मैं सकपका गया और बोला—'भेंट मेरी ओरसे आपको समर्पित की गयी थी न कि आपकी ओरसे आपको।'

९-वे बोले—'दोनों दशाओंमें उसका स्वामी तो मैं ही ठहरा।'

१०-मैंने कहा—'निस्सन्देह'।

११-वे बोले—'तो फिर स्वामीकी वस्तुपर किसीका क्योंकर अधिकार हो सकता है?

१२-मैंने निरुत्तर होकर अपनी पराजय स्वीकार की तथा लोचनयुगलसे उनके श्रीचरणोंमें मुक्ताकण समर्पण करते हुए आग्रहपूर्वक युगल पादाम्बुज ग्रहण कर प्रार्थना की—'प्राणवल्लभ! भविष्यमें तुम मेरी भेंटकी सुमनाञ्जलिको अवश्य स्वीकृत करना एवं तद्गत सुमनोंको अपने पावन पादारविन्दोंके शीतल प्रश्रयमें स्थान देते हुए उन्हें पूर्ण सुरभित होनेका सुअवसर प्रदान करना। देखना, कहीं इस अकिञ्चनकी प्रार्थनाको भूल मत जाना।'

१३-वे हँसे और बोले—'यह तुम्हारा निरा मोह है। सच पूछो तो तुम्हारी प्रणय-परीक्षा थी। किन्तु जब तुम किसी भी प्रकारसे मुझसे सम्बन्धित हो चुके हो तो मुझे भी तुम्हारी प्रार्थनाका अवश्य ध्यान रखना होगा।'

१४-मेरे हृदयमें प्रेम उमड़कर नेत्रोंके मार्गसे अपने उत्पादकके पावन पादारविन्दोंको पखारने लगा। मैंने कहा 'प्रभो! मेरी परीक्षा? मैंने कब अपने आपको आपके समक्ष परीक्षार्थीके रूपमें उपस्थित करनेकी धृष्टता की है? और फिर, परीक्षामें तो, उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण हो जानेका खटका लगा ही रहता है। मुझे तो केवल जैसे-तैसे अपनी चरण-शरण प्रदान कीजिए, क्योंकि केवल यही एक ऐसी परीक्षा है जिसमें उत्तीर्ण तो उत्तीर्ण होता ही है अनुत्तीर्ण भी उत्तीर्ण ही होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जप

इस बार भी पौषसे होलीतक सोलह नामके दस करोड़ मन्त्र-जपके लिये प्रार्थना की गयी थी, हर्षका विषय है कि अबतक १५२४०८७०० मन्त्र-जपकी सूचनाएँ निम्नलिखित २४० स्थानोंसे आ चुकी हैं। अभी सूचनाएँ आ रही हैं। इसके बाद आनेवाली सूचना ज्येष्ठके अङ्कमें स्थानोंके नामोंसहित प्रकाशित होगी। जिन सज्जनों और माताओंने स्वयं नाम-जप करके तथा दूसरोंको प्रेरणा करके नाम-जप करवाया उन सबके हम कृतज्ञ हैं।

नाम-जप-विभाग

अमृतसर, अहमदाबाद, अनूपगढ़, अजमेर, अलीगढ़, अन्धेरी, असौआ, अलीराजपुर, अमेठी, अमोरी, अगवानपुर,—आबू, आजमगढ़,—इकलेरा, इन्दोर, इलकल,—उमरेठ,—ऊमरी, ऊटगिर, ऊनाई,—एटा, एकसंबा,—कलकत्ता, कल्याण, कराँची, कटक, कोसीकलाँ, काशीपुर, कैलास, कटनी, कसारहट्टा, काशी, करौली, कसिया, कैराना, कोपरा, केम्बे, कौंच, कानपुर, काशीरामपुर, कामठी, कुडाल, कहानी, करजण, कपावणाज, कालागुजराँ,—खोडपुर, खंभात, खैराबाद, खजूरगाँव,—गोरखपुर, गढ़वाल, गाजणा, गढ़वासीटोला, गोंडल, गया, गुजरांवाला, गजना, गुन्नौर,—चन्दौसी, चम्पारन, चनौद, चौमू, चकई, चित्रगुप्तआश्रम,—छिन्दवाड़ा, छबासर,—जौनपुर, जगनेर, जेतपुरा, जालना, जोशीमठ, जलालाबाद, जसोवालवी, जिहुली, जबलपुर, जूनागढ़, जम्बुसर, जगराओं, जालौन,—झेलद, झाँसी,—टाइगरकेम्प,—डभोई, डलहौजी, डालटनगंज, डिभाई, डोरण्डा,—ढोलाना,—तुरकौलिया,तालागंजा,तीसा,तिगरी, तालबंडीखुर्द,—दिल्ली, दिलकुसा, दतिया, दहेवान, दुद्धी, दुलारपुर, दलीपपुर,—धामनगाँव, धर्मपुर, धांगधा, धूनाघाट, धुंधुड़ा—नाथद्वारा, नीकोरू (अफ्रीका), नानीबजार, नेपाल, नांदुरा, नियाजीपुर, नरसिंहपुर, नंवासरी, नोहर, नजीबाबाद, नैहटी, निपान्याहुरहुट, नयागाँव, नागपुर,—प्रयाग, पेटलाद, पीपलरावा, पालमू, पिपरिया, पसान, पिथोरगढ़,—फिरोजाबाद, फतेहगढ, फरूखाबाद,—बीकानेर, बनचारी, बरगद्धा, बड़गाँव, बड़दल, बालापुर, बडवा, बलिया, बाढ़ापुर, बभनान, बीसाबजेड, बाघोडिया,—बैरी महिपालपुर, बासिम, बहादुरपुर, बंबई, बिनेका, बड़ोदा, बेलगाँव, बैहर, बडकाराजपुर, बरेली,—भावनगर, भुरंगाभारी, भुजकच, भौंरा, भवाना,—मुरादाबाद, मौजामटेला, मूसानगर, मौलवीगंज, मतिमाजरा, मथुरा, मेहमदाबाद, महेवरी, मकसूदनगढ, मगरधा, मैनपुर, मलसीसर, मदरास, मेरठ,—रायपुर, राजकोट, रतलाम, रेहल्ल, रतनगढ, रींवा, रमखिरिया, रामपुर, रामवाड़े, रावसिंहनगर, रतनगढ़ (बीकानेर), रंगून, रामगढ, रनौद, रतनपुर,—लखनऊ, लालपुर, लखनादौन, लेदुवाछावनी; लेकोड़ो, लतीफपुर, लोहाधार, लाखतोली,—वीनागंज, वाड़ी, विलासपुर, वीरमगाँव, विहारशरीफ, वागेश्वर, वालोदबाजार, वैतूल, विल्हौर, वीरमगाँव, वढ़वाण,विजैपुर,—श्येनपोंग,शिवसागर,—सुठालिया, सतसाला, सांवेर, सिद्धपुर, समस्तीपुर, सधार, सीकर, ससराम, सरदारशहर, साँडवा, सहावन, सातोदड़, सीधी, सूरत, सांगाखेडखुर्द, सम्बलपुर, सरमालिया, सिंदवाहा, संतना, सुचानकोटली, सिआनी, सतजंड़ा सिकारपुर,—हिम्मतपुर, हलद्वानी, हिमतपुर, हरदोई, हरौनी, हिमतनगर, हृषीकेश, होसंगाबाद, हरिपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[गतांकसे आगे]

भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधक-कर्माण्यपि करणीयानि ॥ ७६ ॥

७६–(उस प्रेमा-भक्तिकी प्राप्तिके लिये) भक्ति-शास्त्रका मनन करते रहना चाहिये और ऐसे कर्म भी करने चाहिये जिनसे भक्तिकी वृद्धि हो ।

भक्ति चाहनेवालोंको न कोई ग्रन्थ देखना चाहिये और न कोई कर्म करना चाहिये ऐसी बात नहीं है । उनको तर्क-वितर्कका त्याग करके बार-बार ऐसे ग्रन्थोंको अवश्य देखना चाहिये जिनमें भगवान्‌की भक्तिका निरूपण हो, भक्तिका माहात्म्य हो, भक्तिके साधन बतलाये गये हों, भगवान्‌के प्यारे भक्तोंके पुण्य-चरित्रोंकी कथाएँ हों, और भक्तिके वशमें होकर रहनेवाले भगवान्‌के प्रभाव, रहस्य और गुणोंका वर्णन हो । ऐसे भक्तिशास्त्रोंके अध्ययनसे, महात्मा भक्त सन्तोंकी वाणियोंके श्रवण और पठनसे भगवान्‌के प्रति प्रेमा-भक्तिका उदय होता है । हाँ, भक्ति चाहने-वाले पुरुषोंको ऐसी पुस्तकें कभी नहीं पढ़नी-सुननी चाहिये जिनमें श्रीभगवान्‌का और भक्तिका खण्डन हो, उनका महत्त्व कम बतलाया गया हो और भक्तों-की निन्दा हो, अथवा जिनमें लौकिक विषयोंकी महत्ताका ही वर्णन हो । ऐसी पुस्तकें भी उन्हें लाभ-दायक नहीं होतीं जिनमें भगवान्, भक्ति और भक्तों-का महत्त्व न हो । इसके सिवा राग-द्वेष, काम-क्रोध और वैर-विरोध उत्पन्न करनेवाला साहित्य तो छूना भी नहीं चाहिये । इसीलिये ऐसा कहा गया है कि—

यस्मिन् शास्त्र पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते ।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥

'जिस शास्त्र या पुराणमें भगवान्‌की भक्ति न दिखलायी दे, ब्रह्माके द्वारा कहा हुआ होनेपर भी उसको नहीं सुनना चाहिये ।'

साथ ही कर्म भी ऐसे करने चाहिये, जिनसे भक्ति-की जागृति और वृद्धि हो । भक्तिकामी पुरुषको निषिद्ध (पाप) कर्मोंका तो बिल्कुल ही त्याग कर देना चाहिये । जो विषयोंकी आसक्तिवश पापकर्मोंको नहीं छोड़ना चाहता और भक्त भी कहलाना चाहता है वह या तो स्वयं भ्रममें है या जान-बूझकर भ्रम फैलाना चाहता है ।

भक्तिकी प्राप्तिमें सहायक कर्मोंमें प्रधान निम्न-लिखित हैं—

१–अपने वर्ण और आश्रमके धर्मोंका यथासम्भव पूरा पालन । ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी-के लिये त्यागपूर्ण आचरण और गृहस्थके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ माता-पिता, स्त्री-पुत्र-परिवार आदि आश्रित जनोंका प्रेम और सत्कारपूर्वक पालन, न्याय और सत्यपूर्वक जीविका-निर्वाह एवं शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप आदि ।

२–सदाचारका पालन ।

३–सत्सङ्ग और भगवद्गुणानुवादका श्रवण, चिन्तन और कीर्तन ।

४–भगवन्नामका जप, स्मरण और कीर्तन ।

५–भगवत्-पूजन, स्तुति-प्रार्थना और नमस्कार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—सन्त-भक्तोंकी सेवा और श्रद्धापूर्वक उनकी आज्ञाका पालन।
७—तीर्थसेवन
८—दीन प्राणियोंपर दया और यथासाध्य तन-मन-धनसे उनकी सेवा।
९—सब कर्मोंको भगवान्‌के प्रति अर्पण।
१०—सब प्राणियोंमें भगवान्‌को देखनेका अभ्यास।

श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥
आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥
मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम्।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम्॥
मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः॥
एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम्।
मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते

(श्रीमद्भागवत ११। १९। २०—२४)

'मेरी अमृतके समान कल्याणमयी कथामें श्रद्धा, निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन, मेरी पूजामें पूर्ण निष्ठा, स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति, मेरी सेवामें निरन्तर आदर, सब अंगोंसे मुझको नमस्कार, मेरे भक्तोंका विशेषरूपसे पूजन, सब प्राणियोंमें मुझे देखना, मेरे लिये ही सारे लौकिक कर्म करना, बात-चीतमें केवल मेरे ही गुणोंकी चर्चा करना, मनको मुझमें ही अर्पण कर देना, समस्त कामनाओंको छोड़ देना, मेरे लिये धन, भोग और सुखोंको त्याग देना और मेरे ही लिये यज्ञ, दान, होम, जप, तप और व्रतादि शास्त्रोक्त कर्मोंको करना। हे उद्धव! आत्मनिवेदन-पूर्वक इन धर्मोंके द्वारा मेरी उपासना करनेसे मनुष्यों-को मेरी प्रेमरूपा भक्ति प्राप्त होती है। फिर उनको कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रह जाता।'

प्रबुद्ध नामक योगीश्वरने महाराजा निमिसे प्रेम-रूपा भक्तिकी प्राप्तिके साधन इस प्रकार बतलाये हैं—

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥
तत्र भागवतान्धर्मांश्छिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमायया नुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥
सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥
सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित्॥
श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥
श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥
इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम्॥
एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। ३। २१—३१)

'जिसको अपना परम कल्याण जाननेकी इच्छा हो, उसे वेदके ज्ञाता और परब्रह्ममें स्थित शान्त-स्वरूप गुरुकी शरण जाना चाहिये। और गुरुको ही आत्मा एवं इष्टदेव समझकर निष्कपटभावसे उनकी सेवा करके उन भागवत धर्मोंको सीखना चाहिये जिनसे अपने आपको दे डालनेवाले परमात्मा हरि प्रसन्न हो जाते हैं। मनसे सब विषय-भोगोंमें वैराग्य, साधु-महात्माओंका सङ्ग, सब प्राणियोंके प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथायोग्य (दीनोंके प्रति) दया, (समान अवस्था-वालोंसे) मित्रता और (बड़ोंके प्रति विनयका व्यवहार,) तन-मन-धनसे पवित्र रहना, कष्ट सहकर भी अपने वर्णाश्रमधर्मका पालनरूपी तप करना, शीत, उष्ण आदिको सहना, व्यर्थ बातचीतका त्याग या भगवान्-का मनन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें समभाव, सर्वत्र सब जीवोंमें अपने आपको तथा ईश्वरको देखना, एकान्तमें रहना, घर आदिको अपना न मानकर भगवान्का मानना, शुद्ध साधारण वस्त्र पहनना, जो कुछ भी मिले उसीमें सन्तोष मानना, भगवान्का गुण गानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा रखना, दूसरे शास्त्रोंकी निन्दा न करना; मन, वाणी और कर्मोंका संयम; सत्यभाषण; मन और इन्द्रियोंको वशमें रखना; अद्भुत लीला करनेवाले श्रीहरिके जन्म-कर्म और गुणोंका श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना; भगवान्के लिये ही सब विहित कर्म करना; यज्ञ, दान, तप, जप आदि सदाचार; अपने प्रिय लगनेवाले सब पदार्थ और स्त्री, पुत्र, घर तथा प्राणोंको भी परमात्माके अर्पण कर देना। और इस प्रकार भगवान् ही जिनके आत्मा और स्वामी हैं ऐसे भक्तोंसे मित्रता करना; जड-चेतन जीवोंकी, मनुष्योंकी और उनमें भी साधु-स्वभाववाले महापुरुषोंकी विशेषरूपसे सेवा करना; परस्परमें भगवान्के पवित्र यशका कथन करना और इस भगवद्गुणगानके द्वारा ही परस्पर प्रीति, तुष्टि और दुःखोंकी निवृत्ति करना—ये सब साधन सद्गुरुके समीप रहकर सीखने चाहिये। इस प्रकार बर्ताव करनेवाले और पापसमूहके नाशक श्रीहरिका स्वयं स्मरण करने और दूसरोंसे करानेवाले भक्तोंके हृदयमें इस साधनरूपा भक्तिके द्वारा प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उनका शरीर पुलकित हो जाता है। वह फिर प्रेममग्न हो जाता है।'

इस प्रकार श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामायण आदि भक्तिप्रधान ग्रन्थोंके श्रवण-पठनसे तथा उपर्युक्त प्रकारसे सत्संग, नाम-जप, नाम-कीर्तनादि भक्तिवर्धक सत्कार्योंके भगवत्प्रीत्यर्थ करनेसे भक्तिकी वृद्धि होती है। भक्तको सदा साधुस्वभाव और सत्कार्योंमें ही रत होना चाहिये। तभी उनकी भक्ति बढ़ती है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्यारे भक्तोंके लक्षण बतलाते हुए कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥
(१२। १३—२०)

'जो किसी भी जीवसे द्वेष नहीं रखता, जो सबका मित्र और दयालु है। जो ममता और अहङ्कारसे रहित, सुखदुःखोंकी प्राप्तिमें समभाववाला और क्षमाशील है। जिसका चित्त निरन्तर मुझमें लगा है, जो सदा सन्तुष्ट है, मन और इन्द्रियोंको जीते हुए है, मुझमें दृढ़निश्चयी है और जिसने अपने मन, बुद्धिको मुझे सौंप रक्खा है वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे किसी जीवको उद्वेग नहीं होता और जो स्वयं किसीसे उद्विग्न नहीं होता। जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगोंसे छूटा हुआ है वह भक्त मुझको प्रिय है।

जिसको किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है; जो शुद्ध, चतुर और उदासीन है; जो दुःखोंसे मुक्त है और 'मैं करनेवाला हूँ' इस अभिमानसे किसी कार्यका आरम्भ नहीं करता (सब कुछ भगवान्‌का ही किया मानता है) वह मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न कुछ चाहता ही है। जो शुभ और अशुभ किसी भी कर्मको आसक्ति और फलकी इच्छासे नहीं करता वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

जो शत्रु-मित्रमें, मान-अपमानमें और सर्दी-गर्मी तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें समानभाव रखता है; जिसकी (मुझको छोड़कर) किसी भी पदार्थमें आसक्ति नहीं है। जो निन्दास्तुतिको समान समझता है, जो चित्त तथा वाणीसे केवल मेरा ही मनन और कथन करता है और जो किसी भी प्रकार जीवननिर्वाह होनेमें सन्तोष रखता है। जिसका अपना कोई घर नहीं है अर्थात् जो घरमें ममत्वरहित है या जो घर-द्वार सबको भगवान्‌के मान चुका है, वह स्थिरबुद्धि भक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

जो श्रद्धावान् पुरुष मेरे ही परायण होकर उपर्युक्त धर्ममय अमृतका भलीभाँति सेवन करते हैं वे भक्त तो मुझको अत्यन्त ही प्रिय हैं।'

श्रीभगवान्‌के बतलाये हुए ये लक्षण सिद्ध भक्तोंमें तो स्वाभाविक होते हैं और भक्तिके साधकोंको इन्हें अपना आदर्श मानकर इनके अनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

इस प्रकार भक्तिशास्त्रके अध्ययन-मननसे तथा भक्तिको बढ़ानेवाले साधनोंमें लगे रहनेसे भक्तको योगिजनदुर्लभ प्रेमरूपा भक्तिकी प्राप्ति होती है।

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमपि व्यर्थं न नेयम् ॥ ७७ ॥

७७—सुख, दुःख, इच्छा, लाभ आदिका (पूर्ण) त्याग हो जाय ऐसे कालकी बाट देखते हुए आधा क्षण भी (भजन बिना) व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्तिकी सिद्धि होनेपर सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि सारे द्वन्द्व स्वयमेव मिट जाते हैं और फिर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती। परन्तु ऐसे शुभ समयकी केवल बाट ही देखी जाय और साधन कुछ भी न किया जाय तो वर्तमान हीन दशाका विनाश होकर अचानक वैसी शुभ दशा अपने-आप प्राप्त होगी ही कैसे? फिर, मनुष्यके जीवनका एक क्षणका भी पता नहीं है, न मालूम किस पलमें प्रलय हो जाय, कब मृत्यु आ जाय; इसलिये 'अमुक स्थिति हो जानेपर भगवान्‌का भजन करूँगा' ऐसी धारणाको छोड़ देना चाहिये और अभी जो जिस अवस्थामें है, उसे इसी अवस्थामें भगवान्‌की कृपाका आश्रय करके साधना आरम्भ कर देनी चाहिये। आधे क्षणके लिये भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। कबीरजी कहते हैं—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पलमें परलै होयगी, फेरि करैगा कब॥

पलक मारते-मारते मृत्युके ग्रास बन जाओगे, फिर कब करोगे। यह मत समझो कि 'अभी छोटी उम्र है, खेलने-खाने और विषय भोगनेका समय है; बड़े-बूढ़े होनेपर भजन करेंगे।' कौन कह सकता है कि तुम बड़े-बूढ़े होनेसे पहले ही नहीं मर जाओगे। मौतकी नंगी तलवार तो सदा ही सिरपर झूल रही है। इसपर एक दृष्टान्त है। एक भ्रमर था, वह कमलके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर बैठा कमलका रस पी रहा था और उसकी सुगन्धसे मस्त हो रहा था; इतनेमें सन्ध्या हो आयी। सूर्यके छिपते ही कमल सङ्कुचित हो जाता है; अतएव कमल बन्द हो गया और मोटे-मोटे शाल और सीसमके पेड़ोंको छेद डालनेकी ताकत रखनेवाला भ्रमर विषयासक्तिके कारण उसके अन्दर ही रह गया, और विचार करने लगा—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

'रात बीत जायगी, प्रातःकाल होगा, सूर्य उदय होंगे और जब उनकी किरणोंके पड़ते ही कमल फिर खिल जायगा, तब मैं इसमेंसे निकल जाऊँगा। इतने आनन्दसे मकरन्दरसका आस्वादन करता रहूँ।' वह यों विचार कर ही रहा था कि इतनेमें एक मतवाले हाथीने आकर कमलको उखाड़कर मुँहमें डाल लिया और कमलके साथ ही भौंरा भी हाथीके दाँतोंमें पिस गया। उसके मनका मनोरथ मनहीमें रह गया। अतएव इन विचारोंको तो छोड़ ही देना चाहिये कि अमुक काम होनेपर भजन करेंगे। प्रथम तो मनमानी कामनाओंकी पूर्ति होती ही नहीं और यदि होती है तो एक कामनाकी पूर्ति अनेकों नये-नये अभावोंको साथ लेकर आती है, फिर उनकी पूर्तिके प्रयत्नमें लग जाना पड़ता है। अपूर्ण और अभावमय क्षणभङ्गुर सांसारिक पदार्थोंसे कभी पूर्ण तृप्ति हो ही नहीं सकती। कितनी ही प्राप्ति हो जाय, रहेगा अभाव ही, और अभावके दुःखसे जलते हुए ही विषयकामी मनुष्यको मर जाना पड़ेगा। इसलिये विषयोंकी पूर्ण प्राप्ति और विषयोंके भोगसे पूर्ण तृप्ति हो जाय ऐसे समयकी आशा छोड़कर पहलेसे ही भजनमें लग जाना चाहिये।

इसके सिवा एक बात और विचारणीय है कि आज अच्छे संगसे हमारे मनमें भगवान्‌को या भगवान्‌की भक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा हुई है, और हमने क्षणभरके लिये अपने जीवनका ध्येय भगवत्-प्राप्ति माना है; परन्तु हम विचार करते हैं कि अमुक स्थिति हो जानेपर इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये साधन किया जायगा। क्या हमारा यह विचार धोखेका नहीं है? प्रथम तो यही निश्चय नहीं कि अमुक स्थिति प्राप्त हो, और फिर यह कौन कह सकता है कि तबतक हमारा ध्येय नहीं बदल जायगा। परन्तु यदि आज हम अपने ध्येय भगवत्प्राप्तिके साधनमें लग जाते हैं तो साधन-मार्गमें ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे त्यों-त्यों हमारा उसमें विशेष अनुराग होगा, लाभ भी प्रतीत होगा और अभ्यास भी दृढ़ होता जायगा। इसके विपरीत यदि हम केवल ध्येयमात्र मानकर ही चुप रह जाते हैं तो दूसरे ही क्षण, दूसरा संग मिलनेपर हमारा यह ध्येय बदल जायगा। इसलिये कालकी प्रतीक्षा न कर अभीसे भजन-साधन आरम्भ कर देना चाहिये। सत्संगसे प्राप्त सदिच्छाके सुअवसरको खो नहीं देना चाहिये। स्वास्थ्य भी सदा अच्छा रहेगा, यह भी निश्चय नहीं है। जबतक स्वास्थ्य ठीक है तभीतक साधन-भजन होता है। स्वास्थ्य बिगड़ जानेपर, इन्द्रियोंके अशक्त हो जानेपर और बुढ़ापा आ जानेपर, यदि पहले पूरा अभ्यास नहीं किया गया है तो भजनमें मन ही नहीं लगेगा। महाराजा भर्तृहरिने इसीलिये कहा है—

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥
(वैराग्यशतक)

'जबतक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा नहीं आया है, इन्द्रियोंकी शक्ति पूरी बनी हुई है, आयुके दिन शेष हैं, तभीतक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह यत्न कर लेना चाहिये। घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदनेसे क्या होगा ?'

इसीलिये भक्तगण भगवान्‌के शरण होकर पुकारा करते हैं—

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद ! त्वं रक्ष रक्षाधुना॥

'आयु प्रतिदिन देखते-देखते नष्ट हो रही है, जवानी बीती जा रही है, गये हुए दिन लौटकर नहीं आते, काल जगत्‌को खा रहा है, लक्ष्मी जलके तरंगकी भाँति चञ्चल है और जीवन तो बिजलीकी चमकके समान अस्थिर है; अतएव हे शरण देनेवाले प्रभु ! मुझ शरणागतकी तुम अभी रक्षा करो।'

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

'हे कृष्ण ! तुम्हारे पदकमलरूपी पिंजरेमें मेरा यह मनरूपी राजहंस आज ही प्रवेश कर जाय। प्राण निकलनेके समय जब कफ, वायु और पित्तके बढ़नेपर कण्ठ रुक जायगा, उस समय तुम्हारा स्मरण कहाँसे होगा ?'

अतएव जरा-सा भी काल भगवान्‌के भजनके बिना नहीं बिताना चाहिये। जो समय भगवद्भजनमें जाता है वही सार्थक है, शेष सब व्यर्थ है। समयका मूल्य समझकर एक-एक साँसको खूब सावधानीके साथ कंजूसके परिमित पैसोंकी भाँति केवल भगवच्चिन्तनमें ही लगाना उचित है। भजनहीन काल ही वास्तवमें हमारे लिये भयङ्कर काल है। वही सबसे बड़ी विपत्ति है। कह हनुमान बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न कीर्तयेत्॥

'जो घड़ी या एक क्षण भी श्रीभगवान्‌के कीर्तन बिना बीत गया उसीको सबसे बड़ा नुकसान, अज्ञान और मोह जानना चाहिये।'

भगवान्‌के भजनके लिये किसी भी सुभीतेके समयकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। नहीं तो हमारा अमूल्य मनुष्यजीवन ही वृथा नष्ट हो जायगा। भगवान्‌का भजन ही मनुष्यजीवनका सर्वोत्तम और आदरणीय कर्म है। भजन करते-करते भगवान्‌की कृपासे एक दिन हमारे सारे सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंका अपने आप ही नाश हो जायगा, और भगवत्प्रेमकी निर्मल ज्योतिसे हमारा हृदय जगमगा उठेगा; सब दिशाएँ और सारा ब्रह्माण्ड उस निर्मल शीतल स्निग्ध ज्योतिसे भर जायगा, और तब हमारे आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहेगी।

वस्तुतः भक्तका काम तो यह सोचना भी नहीं है कि भजनका क्या परिणाम होगा; उसका काम तो केवल प्रेमपूर्वक भजन ही करना है। प्रेमके लिये ही प्रेम करना है, भजनके लिये ही भजन करना है। भजन करना उसका स्वभाव ही बन जाता है, भजन बिना उससे रहा ही नहीं जाता। वह सब कुछ सह सकता है, किन्तु भजनका वियोग उसके लिये असह्य है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥
(११। २। ५३)

'यदि भगवान्‌के भक्तसे कहा जाय कि तुम आधे क्षण या आधे निमेषके लिये भी भगवच्चरणोंका चिन्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ दो और त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवको ले लो, तो वह इस बातको स्वीकार नहीं करता। उसका चित्त-रूपी भ्रमर तो अचञ्चलरूपसे भगवान्‌के उन चारु चरणकमलोंमें ही लगा रहता है, जिनको निरन्तर ध्यानपूर्वक खोजनेपर भी देवता नहीं पा सकते। ऐसा वह भक्त कुछ भी नहीं चाहता।' वह बार-बार कातरकण्ठसे यही कहता है कि—

मुझे न मोक्ष चाहिये, न ज्ञान चाहिये, न वैभव चाहिये, न ऋद्धि-सिद्धि चाहिये और न महान् कीर्ति ही चाहिये। किसी भी योनिमें जाना पड़े, कुछ भी हो, इसकी भी तनिक-सी चिन्ता नहीं। बस, हे मेरे प्रियतम! तुम्हारे चरणोंमें मेरा प्रेम, बिना किसी हेतुका प्रेम, पगला प्रेम, अन्धा प्रेम, प्रेममय प्रेम, प्रियतममय प्रेम दिनोंदिन बढ़ता ही रहे।

जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन।

श्रीशङ्कराचार्य जगज्जननीरूपा भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं।

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्र्याणि परिपालनीयानि ॥७८॥

७८–(भक्तिके साधकको) अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय सदाचारोंका भलीभाँति पालन करना चाहिये।

छिहत्तरवें सूत्रमें भक्तिको बढ़ानेवाले कर्मोंका आचरण करनेकी बात कही गयी है। इस सूत्रमें उन क्रियाओं और सद्‌गुणोंमेंसे पाँच प्रधान आचारोंका नाम निर्देश करके सूत्रकार इनके पालनकी अत्यन्त आवश्यकता-का प्रतिपादन करते हैं।

दैवी सम्पत्तिके गुण भक्तका बाना है। जहाँ भक्ति है वहाँ दैवी सम्पत्तिका होना अनिवार्य है। कुछ लोग भूलसे ऐसा कह दिया करते हैं कि 'भक्ति करो; भक्त-में सद्‌गुण न हों तो न सही। मनुष्य चाहे जितने पाप करे; बस, भक्त हो जाय; फिर कोई परवा नहीं।' परन्तु उनका यह कथन वैसे ही युक्तिविरुद्ध है जैसे यह कथन कि 'सूर्य उदय हो जाय, फिर वहाँ अन्धकार भले ही बना रहे।' जहाँ सूर्य उदय हो गया, वहाँ अन्धकार न रहकर प्रकाश छा ही जाता है। इसी प्रकार जहाँ भक्तिरूपी सूर्यका उदय हो गया है वहाँ उसका प्रकाशरूप दैवी सम्पत्ति अवश्य फैल जायगी। यह किसी अंशमें सत्य है कि भगवत्प्राप्त महात्मा भक्त पुरुषोंके बाहरी आचरणोंसे उनकी परीक्षा नहीं होती। परन्तु कुछ गुण तो ऐसे हैं ही जिनका उनमें प्रकट रहना अत्यन्त ही आवश्यक है। आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। उन्हीं गुणोंमें ये पाँचों गुण भी हैं। जिस पुरुषमें ये गुण न हों, वह यदि कदाचित् साधु या भक्त भी हो तो भी उससे डरना ही चाहिये। बल्कि अधिकांशमें तो इन गुणोंसे रहित मनुष्य साधु या भक्त होते ही नहीं। अपनी परीक्षा तो साधकको इन्हीं गुणोंके आधारपर करनी चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि यदि भगवान्‌का चिन्तन और दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है तो हमारी भक्तिमार्गमें उन्नति हो रही है; यदि जगत्‌का चिन्तन होता है और दैवी सम्पत्ति नहीं बढ़ रही है तो हमारी उन्नति नहीं हो रही है एवं यदि विषयोंका चिन्तन बढ़ रहा है और आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है तो हमारी निश्चय ही अवनति हो रही है। भगवान्‌का प्रेमपूर्वक चिन्तन भक्तका धर्म है और दैवी सम्पदाके गुण उसकी जीवन-पद्धति है। वह सब कुछ छोड़ देता है, परन्तु इन दोनोंको नहीं छोड़ता। अवश्य ही लीलामय भगवान्‌को आज्ञा या रुचिके अनुसार सिद्ध भक्तको कहीं-कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनपद्धति बदलनी पड़ती है। परन्तु वह नियम नहीं है, अपवाद है। यह निश्चय है कि वह किसी प्रकारकी भी आसक्ति, ममता, कामना, वासना, अहंकार या मोहवश जीवनपद्धतिको नहीं बदलता। जहाँ किसी कारणवश किसी समय उसकी जीवनपद्धतिमें और उसके स्वाभाविक स्वधर्म भगवत्प्रेममें विरोध आता दीखता है वहीं भगवान्‌की आज्ञा लेकर वह अपने स्वधर्मकी रक्षाके लिये नीतिको छोड़ देता है। ऐसे ही स्थलोंके लिये—भरत, प्रह्लाद, विभीषण, श्रीगोपीजन आदिके उदाहरण मिलते हैं, जहाँ उन्होंने भगवान्‌के लिये माता, पिता, भाई और पति आदिकी आज्ञाओंका उल्लङ्घन किया है। परन्तु वहाँ भी देखा जाय तो सदाचार-नीतिका त्याग नहीं हुआ है। प्रेमधर्मके पालनार्थ भक्तोंने प्रायः स्वयं ही कष्ट सहा है। उस अवस्थाकी बात दूसरी है जिसमें सारे विधि-निषेधोंका भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण हो जाता है। परन्तु स्मरण रहे, वह समर्पण होता है, किया नहीं जाता। विधि-निषेधोंका बोझ उस बावले भक्तके सिरसे उतार लिया जाता है, वह जानकर नहीं उतारता। और उस मस्तीमें भी उसमें कोई दुर्गुण रहता हो सो बात नहीं है। परन्तु यहाँ तो साधककी चर्चा हो रही है और साधकको बड़ी ही सावधानीके साथ शास्त्रविहित सद्‌गुणों और सदाचारोंका रक्षण और पालन करना चाहिये। सूत्रकारने जिन पाँच गुणोंका नाम लिया है उनका स्वरूप यों संक्षेपमें समझना चाहिये।

अहिंसा—शरीर, मन और वाणीसे किसी भी जीवको किसी प्रकारसे वर्तमान या भविष्यमें दुःख नहीं पहुँचाना, वरं सदा सबको सुखी बनानेकी चेष्टामें लगे रहना।

सत्य—जैसा देखा, सुना या समझा हो, वचन, लेखन या संकेतसे ठीक वैसा ही दूसरेको समझानेकी नीयत रखना। वाणीसे ऐसे ही शब्दोंका उच्चारण करना जो सत्य हों, और साथ ही मधुर और हितकारी भी हों। कुछ लोग सत्यभाषणमें कठोर भाषाका प्रयोग आवश्यक समझते हैं और अभिमानवश कह बैठते हैं कि हम तो सत्य कहनेवाले हैं, चाहे उससे किसीका जी दुखी हो या सुखी! परन्तु ऐसी बात नहीं है। द्वेष, वैर, निन्दा, चुगली आदि भावोंसे बचाकर वाणीको अपने और दूसरेके हितकी दृष्टिसे सदा मधुरता और सत्यमें ही सनी रखनी चाहिये। जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी प्रकाश देनेवाली होनेके साथ ही शीतल भी होती है, इसी प्रकार भक्तकी वाणी भी सत्य और मधुर—प्रकाशक और शान्ति-दायक होनी चाहिये। जिससे दूसरेका अहित होता हो वह सत्य भी वाञ्छनीय नहीं है।

शौच—बाहरी और भीतरी दोनों प्रकारके शौचकी आवश्यकता है।

बाहरी—

(क) जल, मिट्टी आदिसे शरीरको पवित्र रखना।

(ख) दूसरेका स्वत्व न छीनकर सत्यतापूर्वक निर्दोषरूपसे कमानेकी चेष्टा कर धनको शुद्ध रखना।

(ग) शुद्ध स्थानमें शुद्ध, स्नान किये हुए मनुष्य-द्वारा, शुद्ध निरामिष अन्नसे बनाये हुए पदार्थोंको भगवदर्पण कर भोजनको शुद्ध करना।

(घ) शुद्ध, निष्कपट और प्रेमपूर्ण बर्तावसे व्यवहारको शुद्ध रखना।

(ङ) अतिथिसत्कार और भगवन्नामकी ध्वनिसे घरको पवित्र रखना।

(च) शास्त्रविहित आचरणोंसे अन्य सभी बाह्य कर्मोंको शुद्ध रखना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतरी—दम्भ, वैर, अभिमान, आसक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, शोक, पापचिन्तन, व्यर्थ विषयचिन्तन आदि दोषोंको मनमें यथासाध्य न आने देकर सरलता, प्रेम, विनय, वैराग्य, अद्वेष, प्रसन्नता, सच्चिन्तन और भगवच्चिन्तनके द्वारा मनको पवित्र रखना।

दया—दुखी मनुष्य घरका या दूसरा हो, मित्र हो या शत्रु हो, उसको दुःखकी दशामें देखकर बिना किसी भेद-भावके मनका व्याकुल हो जाना और यथासाध्य कष्ट सहकर तथा त्याग करके भी उसके दुःखको दूर करनेकी चेष्टा करना। यह भाव सभी जीवोंके प्रति होना चाहिये और सभी कालमें होना चाहिये। जिस क्रियासे जीवोंका अहित होता हो और उन्हें दुःख पहुँचता हो, उन क्रियाओंको त्याग देना चाहिये। इसी प्रकार देश या समाजमें जिन प्रथाओं और कृत्योंसे जीवोंका अहित होता हो, उन्हें बन्द करानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

आस्तिकता—ईश्वर और शास्त्रोंपर प्रत्यक्षकी तरह पूर्ण विश्वास होना चाहिये। भगवान् हैं, सर्वव्यापी हैं, सर्वेश्वर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं, परम दयालु हैं, परम सुहृद् हैं, भक्तवत्सल हैं, दीनबन्धु हैं और सदा सर्वत्र विराजमान हैं, इन बातोंपर विश्वास करते ही सारे पाप-ताप अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं। भगवान्‌में विश्वास करनेकी आवश्यकता सबसे पहले और सबसे अधिक है। भगवान्‌के अस्तित्व और उनके प्रभाव तथा गुणोंपर विश्वास हो जायगा तो मन स्वतः ही भगवान्‌की ओर लग जायगा। मनुष्यको जो कुछ चाहिये, भगवान् सभीका भण्डार है। ज्ञान चाहिये, भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं; प्रेम चाहिये, भगवान् प्रेममय हैं; आनन्द चाहिये, भगवान् आनन्द-घन हैं; वैराग्य चाहिये, भगवान् परम विरागमय हैं; धन चाहिये, धनकी स्वामिनी लक्ष्मीजी अपनी चञ्चलताको छोड़कर निरन्तर उनकी चरणसेवा करती हैं; ऐश्वर्य चाहिये, सारा जगत् उन्हींके ऐश्वर्यके एक कणका प्रकाश है; यश चाहिये, यशकी धारा वहींसे निकलती है; सारांश यह कि संसारमें हम जो कुछ भी सौन्दर्य, माधुर्य, प्रेम, स्नेह, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, धन, भोग, सुख आदि देखते हैं, और इन सब वस्तुओंके सम्बन्धमें जहाँतक हमारी ऊँची-से-ऊँची कल्पना होती है वह सब कुछ भगवान्‌के एक क्षुद्र अंशमें ही रह जाता है। हमारे इस जगत्‌के पदार्थ और पदार्थोंकी हमारी कल्पना उस अखिल सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्यादि सद्गुण-सागरकी एक बूँदकी भी बराबरी नहीं कर सकती। जो इस प्रकार भगवान्‌को जान लेता है और विश्वास कर लेता है वह भगवान्‌को छोड़कर आधे क्षणके लिये भी दूसरी ओर मन नहीं लगा सकता, और न वह जगत्‌के क्षणिक भोगोंके उदय और विनाशमें हर्ष और शोकको ही प्राप्त होता है। अवश्य ही आस्तिकतामें विश्वास सच्चा होना चाहिये। भगवान्‌की सत्ताके विश्वासमें हमें प्रह्लादका इतिहास सदा याद करना चाहिये। हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे सैकड़ों हजारों दुर्दान्त दानव बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रह्लादको मारने दौड़ते हैं। वह कहता है—

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः।
दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि च॥
(विष्णुपुराण १। १७। ३३)

'अरे दैत्यो! मेरे भगवान् विष्णु इन शस्त्रोंमें भी हैं, तुमलोगोंमें भी हैं और मुझमें भी हैं, वे सब जगह हैं। इस परम सत्यके प्रभावसे तुम्हारे इन शस्त्रास्त्रोंका मुझपर कोई असर न हो!'

दैत्योंके शस्त्र व्यर्थ हो गये, उनके आघातसे प्रह्लादको तनिक भी वेदना नहीं हुई।

विषधर सर्पोंमें और उनके विषमें, विशालकाय मतवाले हाथियोंमें और उनके वज्रके समान दाँतोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रह्लादने अपने भगवान्‌को देखा। प्रह्लादका उनसे कुछ भी नहीं बिगड़ा। प्रह्लादको आगमें डाला गया, अग्निमें उसे भगवान्‌की नवनीलनीरदमूर्ति दिखायी दी। उसने कहा—

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशास्मुखानि॥
(विष्णुपुराण १। १७। ४७)

'हे तात! पवनसे प्रेरित यह अग्नि भी मुझे नहीं जलाता। मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं, मानो मेरे चारों ओर कमलके पर्दे टँगे हों।'

प्रह्लादको मारनेके लिये पुरोहितोंने 'कृत्या' उत्पन्न की और जब प्रह्लादको मारनेमें निष्फल होकर कृत्याने पुरोहितोंको ही मार डाला, तब प्रह्लाद बोले—

यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः।
विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
(वि० पु० १। १८। ४०-४१)

'सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वगत और अक्षय विष्णुभगवान्‌को मुझे मारनेकी चेष्टा करनेवालोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहित जी जायँ।'

प्रह्लादकी दृढ आस्तिकतासे पुरोहित जी उठे।

अन्तमें हिरण्यकशिपुके पूछनेपर प्रह्लादने बड़ी दृढताके साथ, अडिग निश्चयसे; छाती ठोंककर कहा—'हाँ, मेरे प्रभु सर्वत्र हैं, इस खम्भेमें भी हैं।' और अपने सेवकके इस वाक्यको प्रत्यक्ष सत्य करनेके लिये भगवान् खम्भेको चीरकर प्रकट हो गये। कैसा निश्चय और कैसा अद्भुत परिणाम! यह है आस्तिकता।

भक्तोंको यथासाध्य आस्तिक बने रहनेकी और आस्तिकतामें निरन्तर अग्रसर होनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

सूत्रकारने 'आस्तिक्य' के साथ 'आदि' शब्द जोड़कर दैवी सम्पदाके अन्यान्य दैवी गुणोंकी ओर सङ्केत किया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें दैवी सम्पत्तिके ये छब्बीस गुण बतलाये गये हैं। भगवान् कहते हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥
(गीता १६। १-३)

'हे भारत! निर्भयता, अन्तःकरणकी शुद्धि, भगवान्‌के स्वरूपमें निरन्तर दृढ़ स्थिति (आस्तिकता), दान, इन्द्रियसंयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता, त्याग, शान्ति, किसीकी निन्दा या चुगली न करना, सब प्राणियोंपर दया, लोभरहित होना, कोमलता, ईश्वर और शास्त्रविरुद्ध कर्मोंमें लज्जा, अचञ्चलता, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोहिता और अभिमानशून्यता—ये सब गुण दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषमें रहते हैं।' यह दैवी सम्पत्ति भक्तमें ही रहती है। इसीलिये भक्तोंको 'देव' कहा गया है।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
विष्णुभक्तः[1] स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः॥
(पद्मपुराण)

१ यहाँ 'विष्णुभक्त' शब्दसे शास्त्रानुसार भगवान्‌के किन्हीं भी नामरूपका सात्त्विक भक्त समझना चाहिये। भगवान्‌के नामरूपोंमें भेद मानना तो अपराध ही माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इस जगत्‌में दो प्रकारके जीव हैं। एक दैव और दूसरे आसुर। जो भगवान्‌के भक्त हैं, वह देव हैं; जो भक्त नहीं हैं, वही आसुर हैं।'

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ॥ ७९ ॥

७९–सब समय, सर्वभावसे निश्चिन्त होकर (केवल) भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये।

यह सूत्र बड़े ही महत्त्वका है। इसमें देवर्षिने प्रेममार्गी भक्तके भगवद्भजनका बड़ा ही सुन्दर प्रकार बतलाया है। वास्तवमें जो पुरुष भगवान्‌के दिव्य गुण, रहस्य और प्रभावको यथार्थरूपसे जान लेता है; जानना दूर रहा, सन्तोंद्वारा सुनकर उसपर विश्वास कर लेता है, वह भगवान्‌को छोड़कर किसी भी कालमें मन-वाणी-शरीरसे दूसरा काम नहीं कर सकता। भगवान् शङ्कर कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जिन्ह जाना। तिन्ह हि भजन तजि भावन आना॥

दरिद्र मनुष्यको कहीं पारस मिल जाय तो वह दूसरी ओर क्यों ताकेगा? एकमात्र भगवान् ही परमतत्त्व हैं, भगवान् ही सबकी गति हैं, भगवान् ही सर्वाधार हैं; भगवान् ही सर्वशक्तिमान्, सकल दिव्य गुणनिधान, सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यकी निधि, ज्ञान और वैराग्यके स्वरूप, आनन्द-कन्द-विग्रह हैं और इतना सब होते हुए भी वे हमारे परम सुहृद् हैं, हमें गले लगानेके लिये सदा हाथ पसारे खड़े-खड़े हमारी बाट देखा करते हैं—इस बातको जान लेनेपर सकामी या अकामी, विषयी या मुमुक्षु, साधक या सिद्ध, कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान्‌को छोड़कर एक क्षणार्धके लिये भी दूसरेको भजे? हम नहीं भजते, इसका कारण यही है कि हमने उनके प्रभावको जाना नहीं है। सुना है तो उसपर विश्वास नहीं किया है। देवर्षि कहते हैं कि विश्वास करो, और निरन्तर मन-वाणी-शरीरसे केवल उन्हीं परम प्रियतम भगवान्‌का भजन करो; मनसे सारी चिन्ताओंको दूर कर दो। समस्त चिन्तनोंसे चित्तको मुक्त कर दो। जैसे छोटा शिशु माँकी गोदमें जाकर निश्चिन्त हो जाता है, ऐसे ही प्रभुके दास बनकर निश्चिन्त हो जाओ। जिसके रखवारे राम हैं, उसे किस बातकी चिन्ता होनी चाहिये। सब कुछ छोड़कर, सबकी आशा त्यागकर, भगवान्‌के सामने सबको तुच्छ मानकर, उस दिव्यातिदिव्य मधुर सुधा-रसके सामने जगत्‌के सारे रसोंको फीका समझकर, उस कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन, सौन्दर्यसार श्यामसुन्दरके स्वरूपके सामने जगत्‌की समस्त रूप-राशिको नगण्य मानकर उसीके भजनमें लग जाओ। चित्तको उसीके अर्पण कर दो। सब प्रकारसे उसीपर निर्भर हो जाओ। मनसे उसीका स्मरण करो, बुद्धिसे उसीका विचार करो, वाणीसे उसीके गुणानुवाद गाओ, कानोंसे उसीके गुण और लीलाओंको सुनो, जीभसे उसीके प्रसादका रस लो, नासिकासे उसीकी पदपद्मपरागगन्धको सूँघो, शरीरसे सर्वत्र उसीके स्पर्शका अनुभव करो, नेत्रोंसे उसी छबिधामकी छबिको सर्वत्र सर्वदा देखो, हाथोंसे उसीकी सेवा करो, तन-मन-धन सब उसीके अर्पण कर दो।

जबतक तुम जगत्‌के पदार्थोंको अपने मानते रहोगे, उनमें ममत्व रखोगे, तबतक कभी निश्चिन्त नहीं हो सकोगे; ये नाशवान् क्षणभङ्गुर परिवर्तनशील पदार्थ कभी तुम्हें निश्चिन्त नहीं होने देंगे, इनपरसे ममत्व और आसक्तिको हटा लो; ये जिनकी चीजें हैं, उन्हें सौंप दो; बस, जहाँ तुमने इनको भगवान्‌के समर्पण किया कि वहीं निश्चिन्त हो गये। फिर न नाशका भय है, न अभावकी चिन्ता है और न कामनाकी जलन है। और जहाँ निश्चिन्त होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजनमें लगे कि वहीं तुम्हें उस दिव्य आनन्द-माधुर्य-सौन्दर्यसागरकी झाँकी बीच-बीचमें दीखने लगेगी, फिर तुम्हारा चित्त दूसरी ओर जाना ही नहीं चाहेगा। ऐश्वर्यकी ओर दृष्टि ही नहीं जायगी—और कहीं ऐश्वर्यकी कोई वासना रह भी गयी तो समस्त ऐश्वर्योंका खजाना उनके चरणोंमें ही तुम्हें मिल जायगा। इसीलिये विषयासक्तिरूपी व्यभिचारको त्यागकर उस एकमात्र प्राणाराम प्रियतम प्रभुकी प्यारी पतिव्रता पत्नी बन जाओ। इसीलिये श्रीसुन्दर-दासजी महाराजने कहा है—

पतिहीसूँ प्रेम होय, पतिहीसूँ नेम होय,
पतिहीसूँ छेम होय, पतिहीसूँ रत है।
पति ही है जग्य-जोग, पति ही है रसभोग,
पतिहीसूँ मिटै सोग, पतिहीको जत है॥
पतिहीको ग्यान-ध्यान, पतिहीको पुन्न-दान,
पति ही है तीर्थस्नान, पतिहीको मत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं,
'सुन्दर' सकल बिधि, एक पतिब्रत है॥
जलको सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान,
मनि बिनु अहि जैसे जीवत न लहिये।
स्वातिबिंदुको सनेही प्रगट जगत माँहिं,
एक सीप दूसरो सु चातकहु कहिये॥
रबिको सनेही पुनि कमल सरोवरमें,
ससिको सनेही हू चकोर जैसे रहिये।
तैसे ही 'सुन्दर' एक प्रभुसूँ सनेह जोर,
और कुछ देखि काहू और नाहि बहिये॥

भगवान् स्वयं आज्ञा करते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(गीता १८। ६५-६६)

'हे अर्जुन! तुम मुझमें ही मन लगाओ, मेरे ही भक्त बनो, मेरी ही पूजा करो, मुझको ही नमस्कार करो, फिर निश्चय मुझको ही प्राप्त होओगे—यह मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो। दूसरे सारे धर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल एक मेरे ही अनन्य शरण हो जाओ। मैं तुमको सारे पापोंसे आप ही छुड़ा दूँगा, तुम चिन्ता न करो!'

भगवान्‌का इतना प्रतिज्ञायुक्त आश्वासन पाकर भी यदि हम सर्वदा सर्वभावसे निश्चिन्त होकर भगवान्‌को नहीं भजते तो हम-सरीखा अभागा और कौन होगा?

अतएव इसी बातमें अपना परम कल्याण समझकर, उठते-बैठते, सोते-जागते, सर्वदा सब कार्योंमें हमें श्रीभगवान्‌की पवित्र सत्ताके दर्शन करते हुए, हानि-लाभ और जन्म-मरणकी चिन्ताको छोड़कर, निश्चिन्त अनन्य चित्तसे श्रीहरिका ही भजन-कीर्तन करना चाहिये।

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्॥ ८०॥

८०—वे भगवान् (प्रेमपूर्वक) कीर्तित होनेपर शीघ्र ही प्रकट होते हैं और भक्तोंको अपना अनुभव करा देते हैं।

इससे पहले सूत्रके अनुसार अनन्य भजन करनेसे भगवान् शीघ्र ही साक्षात् प्रकट होकर भक्तको अपने स्वरूपका अनुभव करा देते हैं। यहाँ 'आविर्भवति' शब्दसे भगवान्‌का अखिल दिव्य सौन्दर्य-माधुर्य-रससार साकाररूपमें प्रकट होना समझना चाहिये। वस्तुतः निर्गुण-सगुण और निराकार-साकारमें कोई भेद नहीं है। वही मन-बुद्धिके अगोचर ब्रह्म हैं, वही सृष्टिकर्ता सगुण निराकार विभु हैं, वही जगदात्मा हैं, वही श्रीराम और श्रीकृष्ण हैं, वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशिव, महाविष्णु, महादेवी हैं; वही यह विराट् पुरुष हैं। उनसे भिन्न कुछ है ही नहीं। जब रसीले, हठीले भक्तके प्रेमका आकर्षण होता है तब वह अपनी दिव्याह्लादिनी शक्तिको निमित्त बनाकर दिव्य चिन्मय वस्त्र, माला, गन्ध, आयुध, आभूषणादि-से सुसज्जित सौन्दर्यनिधिरूपमें प्रकट होकर भक्तको कृतार्थ करते हैं।

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगतप्रेमबस सगुन सो होई॥

परन्तु यह बात नहीं है कि यह रूप जगत्-प्रसविनी मायाद्वारा निर्मित होता है। इसमें सभी चीजें दिव्य, शुद्ध, नित्य, चिन्मय और भगवत्स्वरूप होती हैं। इसीसे इस दिव्य रसमय स्वरूपके सामने आते ही आत्मज्ञानी मुनियोंके मरे हुए मन भी जीवित होकर इस स्वरूपकी एक-एक वस्तुपर मुग्ध हो जाते हैं। जिन इन्द्रियोंके विकाररूप रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शसे मुमुक्षु-अवस्थामें ही चित्त उपराम हो जाता है उन्हीं रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शके प्रति मुनियों और आत्मज्ञानियोंका आकर्षित होना यह सिद्ध करता है कि भगवान्के दिव्य स्वरूपके ये रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शादि विषय मायाके कार्य त्रिगुणोंसे उत्पन्न नहीं हैं। ये सर्वगुणसम्पन्न और सदा निर्गुण प्रभुके स्वरूप ही हैं। इसीसे मुनिगण इनपर मोहित हो जाते हैं। इसीलिये वेदान्तके प्रधान आचार्य श्री-शङ्कराचार्य भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कहते हैं—

ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः।
शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्त्तित्रयात्
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा॥

'जिन्होंने ब्रह्माजीको अनेक ब्रह्माण्ड, प्रत्येक ब्रह्माण्ड-में अलग-अलग अद्भुत ब्रह्मा, वत्सोंसहित समस्त गोप तथा विभिन्न ब्रह्माण्डोंके सब विष्णुस्वरूपोंको दिखाया, जिनके चरणोदकको श्रीशम्भु अपने सिरपर धारण करते हैं वे श्रीकृष्ण त्रिमूर्ति (ब्रह्माण्डोंमें विभिन्न स्वरूपोंसे शासन करनेवाले अंशावतार ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से अलग ही कोई अविकारिणी सच्चिदानन्द-मयी नीलिमा हैं।'

एक बार दिव्य वैकुण्ठलोकमें भगवान् श्रीमहा-विष्णुके समीप नित्य आत्मनिष्ठ सनकादि ऋषि पधारे। ज्यों ही वे भगवान्के सामने पहुँचे और उनके स्वरूपकी ओर देखा कि मुग्ध हो गये। भगवान्की सुन्दरता देखते-देखते उनके नेत्र किसी प्रकार तृप्त ही नहीं होते थे। भगवान्के सौन्दर्यने ही उन्हें मोहित किया हो सो नहीं, प्रणाम करते समय कमलनयन श्रीहरिके पादपद्मपरागसे मिली हुई तुलसी-मञ्जरीकी सुगन्ध वायुके द्वारा नासिका-मार्गसे ज्यों ही मुनियोंके अन्तरमें पहुँची कि उन नित्य अचलरूपसे ब्रह्मानन्दका अनुभव करनेवाले मुनियोंका हृदय क्षुब्ध हो गया, उस सुगन्धकी ओर खिंच गया, उसपर मोहित हो गया और आनन्दसे उनके रोमाञ्च हो आया—

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥
(श्रीमद्भागवत ३। १५। ४३)

यही हाल भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणके स्वरूपको देखकर ब्रह्मविद्वरिष्ठ ज्ञानिश्रेष्ठ विदेह जनकका हुआ—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह बिदेह बिसेखी॥
प्रेममगन मन जानि नृप, करि बिबेक धरि धीर।
बोलेउ मुनिपद नाइ सिर, गदगद गिरा गँभीर॥

उस रूपराशिके सामने आते ही विदेहका ज्ञान मानो मूर्छित हो गया, देहकी सुधि जाती रही,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखोंमें आँसू आ गये। जनकजीने देखा, यह क्या हो गया! बालकोंके सौन्दर्यपर—नेत्रोंके विषयपर जनकके मनमें मोह कैसा? विवेकसे, धीरजसे अपनेको सँभाला; परन्तु पूछे बिना नहीं रहा गया। विश्वामित्र-जीके चरणोंमें प्रणामकर राजाने बोलना चाहा, परन्तु विवेक हृदयकी द्रवताको दूर नहीं कर सका; बोलते-बोलते ही वाणी गद्गद—और भरी-भरी हो गयी! राजाने अपनी हालतका बयान करते हुए क्या पूछा, जरा सुनिये—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक।
मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।
उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मन मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
तातें प्रभु पूछौं सतिभाऊ।
कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अतिअनुरागा।
बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

मुनिने मुस्कराते हुए राजाके अनुमानका समर्थन किया।

इस प्रकार जिस स्वरूपको बार-बार देखकर भी देखनेकी इच्छा बढ़ती ही रहती है, वह कुछ विलक्षण ही वस्तु है। संसारमें कोई पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसे बार-बार देखनेपर भी देखनेकी इच्छा बढ़े। अनुभव तो यह कहता है कि जिस वस्तुके देखनेकी इच्छा प्रबल होती है, उसके मिलनेपर प्रथम दर्शनमें तो बड़ा ही आनन्द होता है; पर फिर ज्यों-ज्यों वह दर्शन सुलभ होता जाता है त्यों-ही-त्यों उसके प्रति आकर्षण कम होता चला जाता है। परन्तु भगवान्‌का सौन्दर्य ऐसा है कि उसे देखते-देखते कभी तृप्ति ही नहीं होती। ज्यों प्रेमी भक्तका प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता रहता है त्यों ही भगवान्‌की सौन्दर्यछटा भी प्रतिक्षण अधिकाधिक बढ़ती ही रहती है। पल-पलमें नया-नया सौन्दर्य, अधिकाधिक आकर्षक माधुरी दिखायी देती है। ऐसा वह भगवान्‌का स्वरूप मायिक नहीं होता। वह सर्वथा दिव्य होता है, और जिस क्षण वह भक्तके सामने उसके प्रेमके आकर्षणसे प्रकट होता है उसी क्षण उसे दिव्यभावापन्न करके अपने स्वरूपका अनुभव करा देता है। जबतक वह माधुरी सामने रहती है, तबतक भक्त किसी दिव्य राज्यमें रहता है। उसका सब कुछ दिव्य हुआ रहता है। उस कालमें वह सिवा भगवान्‌के माधुर्यके और कुछ भी नहीं देखता, सुनता। वह तन्मय हो जाता है। और उसे भगवान्‌का यथार्थ अनुभव हो जाता है।

भक्ति सर्वश्रेष्ठ है

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ॥८१॥

८१—तीनों सत्योंमें भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।

त्रिसत्य कायिक, वाचिक और मानसिक सत्यको कहते हैं। देवर्षि नारदजीको तीनों सत्योंसे भक्तिकी श्रेष्ठताका अनुभव हो चुका है। अतएव वे बार-बार यह घोषणा करते हैं कि भक्ति ही श्रेष्ठ है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। उपनिषद्‌में भी इसी प्रकार घोषणा की गयी है—

सर्वोपायान् परित्यज्य भक्तिमाश्रय। भक्तिनिष्ठो भव, भक्तिनिष्ठो भव। भक्त्या सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति भक्त्यासाध्यं न किञ्चिदस्ति।

(त्रिपादविभूतिनारायणोपनिषद्)

'सब उपायोंको छोड़कर भक्तिका ही आश्रय लो। भक्तिनिष्ठ होओ, भक्तिनिष्ठ हो जाओ। भक्तिसे सब सिद्धियाँ सफल हो जाती हैं। ऐसी कोई बात नहीं है जो भक्तिसे न होती हो।' मुक्ति भी मिलती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिदाता भगवान् सगुणरूपसे भी साथ खेलते हैं। स्वयं भगवान्‌के श्रीमुखके वचन हैं—

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। १९)

'हे उद्धव! जैसे जोरसे जली हुई अग्नि काठके ढेरको भस्म कर डालती है वैसे ही मेरी भक्ति सब (छोटे-बड़े) पापोंके समूहको जला देती है।'

भक्तके साधनकी रक्षा भगवान् करते हैं, और उसके फलस्वरूप अपनी प्राप्ति भी आप ही करवा देते हैं। और सबका इसमें अधिकार है। अतएव भक्तिसे श्रेष्ठ और क्या होगा? भगवान्‌ने इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भी जगह-जगह भक्तिकी प्रशंसा की है। और बारहवें अध्यायमें तो भक्तको 'युक्ततम' तक कह दिया है। इसीलिये यहाँ देवर्षि नारद ताल ठोंक-ठोंककर मुक्तकण्ठसे वज्रगम्भीरस्वरसे घोषणा करते हैं कि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है, भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्तिवात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्तितन्मयतासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति॥ ८२॥

८२—यह प्रेमरूपा भक्ति एक होकर १ गुणमाहात्म्यासक्ति, २ रूपासक्ति, ३ पूजासक्ति, ४ स्मरणासक्ति, ५ दास्यासक्ति, ६ सख्यासक्ति, ७ कान्तासक्ति, ८ वात्सल्यासक्ति, ९ आत्मनिवेदनासक्ति, १० तन्मयतासक्ति और ११ परमविरहासक्ति, इस प्रकारसे ग्यारह प्रकारकी होती है।

जो महात्माजन प्रेमरूपा भक्तिकी पूर्णताको पहुँच जाते हैं, उनमें तो यह सभी आसक्तियाँ रहती हैं। जैसे श्रीव्रजगोपियोंमें थीं, जिनका उदाहरण देवर्षि नारदजी पहले दे चुके हैं। सबका विकास नहीं होता तो अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे केवल एक, या एकाधिक भावोंसे भगवान्‌के साथ प्रेम किया जाता है। प्रेम एक ही वस्तु है, इसलिये इन प्रेमियोंमें, प्रेमासक्तिके भेदसे किसीमें ऊँच-नीचकी भावना नहीं करनी चाहिये।

इन भिन्न-भिन्न आसक्तियोंसे भगवान्‌को भजनेवाले असंख्य भक्त हो गये हैं। उदाहरणके लिये कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं—

१-गुणमाहात्म्यासक्त भक्त-देवर्षि नारद, महर्षि वेदव्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य, काकभुशुण्डि, शेष, शाण्डिल्य, भीष्म, अर्जुन, परीक्षित, पृथु, जनमेजय आदि।

२-रूपासक्त भक्त-मिथिलाके नर-नारी, राजा जनक, दण्डकारण्यके ऋषि, व्रजनारियाँ आदि।

३-पूजासक्त भक्त-श्रीलक्ष्मीजी, राजा पृथु, अम्बरीष, श्रीभरतजी आदि।

४-स्मरणासक्त भक्त-प्रह्लादजी, ध्रुवजी, सनकादि।

५-दास्यासक्त भक्त-श्रीहनूमान्‌जी, अक्रूरजी, विदुरजी आदि।

६-सख्यासक्त भक्त-अर्जुन, उद्धव, सञ्जय, श्रीदाम, सुदामादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७-कान्तासक्त भक्त-अष्ट पटरानियाँ आदि ।

८-वात्सल्यासक्त भक्त-कश्यप-अदिति,सुतपा-पृश्नि, मनु-शतरूपा, दशरथ-कौसल्या, नन्द-यशोदा, वसुदेव-देवकी आदि ।

९-आत्मनिवेदनासक्त भक्त-श्रीहनूमान्‌जी, राजा अम्बरीष, राजा बलि, विभीषणजी, शिवि आदि ।

१०-तन्मयतासक्त भक्त-याज्ञवल्क्य, शुक, सनकादि ज्ञानीगण अथवा कौण्डिन्य, सुतीक्ष्ण आदि प्रेमी मुनिगण ।

११-परमविरहासक्त भक्त-उद्धव, अर्जुन, व्रजके नर-नारी ।

श्रीगोपीजनोंमें ग्यारहों प्रकारके प्रेमका विकास था । परन्तु उपर्युक्त भक्तोंमें एक-एक प्रकारके ही प्रेमका विकास था सो बात नहीं है । जिस भावकी प्रधानता थी उसीमें उनका नाम लिख दिया गया है ।

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्ग-विष्णुकौण्डिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्वि-भीषणादयो भक्त्याचार्याः ॥ ८३ ॥

८३-कुमार (सनत्कुमारादि), वेदव्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनूमान्, विभीषण आदि भक्तितत्त्वके आचार्यगण लोगोंकी निन्दा-स्तुतिका कुछ भी भय न कर एकमतसे ऐसा ही कहते हैं (कि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है) ।

देवर्षि नारद भक्तितत्त्वके प्रधान-प्रधान आचार्योंका मत देकर अपने कथनकी पुष्टि करते हैं । ये सभी महापुरुष भक्तितत्त्वके ज्ञाता और आचार्य हुए हैं । सनत्कुमार नित्य 'हरिः शरणम्' मन्त्रका जाप करते रहते हैं और भक्तिमार्गके प्रधान प्रवर्तक हैं । भगवान् श्रीवेदव्यासने अठारहों पुराणोंमें भक्तिको ही मुख्य बतलाया है, उनका श्रीमद्भागवत तो भक्तिकी खानि ही है । श्रीशुकदेवजीकी भक्तिका क्या कहना ? भक्तिरसप्रधान श्रीमद्भागवत उन्हींके मुखसे निकला हुआ सुधासमुद्र है । महर्षि शाण्डिल्यके भक्ति-सूत्र ही उनके भक्तितत्त्वके एक प्रधान आचार्य होनेका प्रमाण दे रहे हैं । महर्षि गर्गकी गर्गसंहितामें भक्तिका प्रवाह बहता है । महर्षि विष्णु प्रधान स्मृतिकार थे । एक विष्णुस्वामी प्रसिद्ध भक्तिसम्प्रदायके आचार्य हुए हैं । कौण्डिन्यजीने तन्मयतासक्तिमें सिद्धि प्राप्त की थी ऐसा माना जाता है । भगवान् शेषजी तो दिन-रात सहस्र मुखोंसे हरिगुण-गान ही करते हैं । आप दास्यभावके परम आचार्य हैं । दासस्वरूप लक्ष्मणके रूपमें आपने ही अवतार लिया था । उद्धवजी महाराज भगवान् श्रीकृष्णके प्रधान सखा थे । आरुणिको निम्बार्कका नामान्तर मानते हैं, आप युगल स्वरूपके उपासक थे । राजा बलि सर्वात्मनिवेदनासक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप हैं, इनके भक्तिबलसे भगवान्‌ने स्वयं इनका द्वारपाल बनना स्वीकार किया था । प्रातःस्मरणीय भक्तराज श्रीहनूमान्‌जीका दास्यभाव प्रसिद्ध है । महाभाग विभीषणजीने भक्तिके प्रतापसे भगवान् श्रीरामचन्द्रका सख्य प्राप्त किया था । इन भक्तिशास्त्रके सभी आचार्योंने लोगोंकी निन्दा-स्तुतिकी कुछ भी परवा न कर भक्तिकी महिमा गायी है और अपने जीवनद्वारा भक्तिकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की है । इन्हींके मतके अनुसार श्रीनारदजी भी निर्भय होकर भक्तिका डंका बजा रहे हैं ।

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्दत्ते च प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभत इति ॥ ८४ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८४–जो इस नारदोक्त शिवानुशासनमें विश्वास और श्रद्धा करते हैं वे प्रियतमको पाते हैं, वे प्रियतमको पाते हैं।

अबतक भक्तिशास्त्रकी व्याख्या करके अब सूत्रकार उसका फल वर्णन करते हैं। देवर्षि कहते हैं कि जो इस मेरे कहे हुए परम कल्याणमय उपदेशपर या भक्तितत्त्वके आदि आचार्य साक्षात् भगवान् श्रीशिवजी-के किये हुए उपदेशपर विश्वास और श्रद्धा करते हैं वे भगवान्‌को 'प्रियतम' रूपसे प्राप्त करते हैं। विश्वास और श्रद्धा हुए बिना तो कुछ भी नहीं होता। संशयात्माका तो पतन ही होता है—'संशयात्मा विनश्यति'। फिर, विश्वास और श्रद्धा करनेसे ही उसके लिये साधन होता है, अतएव विश्वास और श्रद्धा करके भक्ति करनी चाहिये। अन्यान्य साधनोंद्वारा भगवान् अन्यान्य रूपोंमें प्राप्त होते हैं, परन्तु भक्तिद्वारा तो वे 'प्रियतम' रूपमें मिलते हैं। यह प्रेम ही पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमें मोक्षका भी संन्यास हो जाता है। यही जीवनका परम फल है।

बोलो भक्ति, भक्त और भगवान्‌की जय!

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

'मयूरशिखा'

किती दूर नभ देश अधर जहँ छए सजल घन कारे।
किती दूर अलि! धरा जितै नाचत मयूर मतवारे॥
है अहेतुकी प्रेम सजनि! फिर जन्म तहइँ तुम लीनों।
तातें जो सुखसार नेह-मग, तेहि चलिबे चित दीनों॥

सदा न पै छाए रहैं सजनि! मेघ नभ माहिं।
कबहुँ दुपहरी जेठकी परसत अंग तपाहिं॥

सो बिचार आधार प्रेमको सत्य सदा थिर प्यारो।
जाके कृपा अंगको कछु एक रूप सजल घन कारो॥
जो अनंत करुणा जलधर जेहि प्रेम सकल सुख सारो।
तासों नेह लगाय सजनि! तेहि कर आपुनपौ हारो॥

जे घन दर्शनसों सजनि! करिकें शीतल नैन।
हरत ताप तन बाहिरी देत कछुक मन चैन॥
तिन घनश्याम सुरति सदा तन मन प्रान जुड़ाय।
अंतर ताप हरे अली! चिदानंद सरसाय॥

प्रेरित सदा समीर संग जे घन शीतल जल बरसें।
आर्त पुकार प्रभंजन सों वे नित करुणाजल सरसें॥
तापतप्त वसुधामें जे घन नव अंकुर उपजावें।
हिय मरुथल भवताप तयो जे प्रेमांकुर लहरावें॥

सुरति भएँ घनस्यामकी भले लगत घनस्याम।
बिना सुरति घनस्यामकी सब जग काम निकाम॥

सो विचार निरधार सखी घन छए देख अंबरमें।
जगी सुरति घनस्याम सजनकी बिरह पोर भइ उरमें॥
जहँ जनमी तहँ संग त्याग निरमोही सजनि! भइँ हो।
सदा अचल सुधि लाय लालकी तेहि सुख मगन रहीं हो॥

श्रीबिहारथल ललनके, पावन हृदयानंद।
तहँ बासा कीन्हों हिये धारी सुरति अमंद॥
सरल होय राखो न कहुँ भीतर बाहिर कोर।
बनी अमानी दीन अति सब जगसों मुख मोर॥
पूरनकाम कृपालुके प्रेम प्रेमनी वीर!।
तजो कामना भावसों सुमरे श्रीबलबीर॥

भइँ मत्त नेहा लगाय, हिय अमिट श्याम रँग राँचो।
सह न सके तुव विरह, ललन भये प्रकट नेह लखि साँचो॥
धरनि परी लीन्हीं उठाय करकमल परस प्रभु कीन्हों।
तुम-सीं और तिनै मिलाय सुंदर सुमुकुट रचि लीन्हों॥
बिंद्राबिपनांबरबिहारि दामनि पीतांबर धारी।
कृपाबारिधर ललन कृपाजल सींचि शीश निज धारी॥
एकमात्र आधार विश्वके आश्रय अंतिम गति जो।
भइँ कृतारथ बीर पाय तुम सुखसागर लालन सो॥

दीन पच्छधर मुरलिधर प्रेम पच्छधर लाल।
मोरपच्छधर भये प्रभु सुंदर मदनगुपाल॥

—मन्नूलाल मुड़ेले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

आत्मामें प्रकाशरूपता

हे राजन् ! आनन्दस्वरूप आत्माके प्रकाशसे यह सब चराचर जगत् प्रतीत होता है। आनन्द-स्वरूप आत्माको सूर्य अथवा चन्द्र प्रकाश नहीं देते। तारागण, अग्नि, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन तथा शब्दादि विषय भी आत्माको प्रकाश नहीं दे सकते। जैसे घटपटादि पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले दीपकको घटपटादि पदार्थ प्रकाश नहीं दे सकते, इसी प्रकार सूर्यचन्द्रादि आत्माको प्रकाश नहीं देते। आत्मा स्वयं अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। स्वयंप्रकाश आत्मा यद्यपि इन्ध-नामक अपरोक्ष नामसे कथन करने योग्य था तो भी अग्नि आदि सात्त्विक देव आत्माको इन्ध ऐसे अपरोक्ष नामसे कथन नहीं करते किन्तु इन्द्र ऐसे परोक्ष नामसे कथन करते हैं, क्योंकि सात्त्विकी पुरुष तामसी पुरुषोंके समान अपने गुरु तथा माता-पिता आदि वृद्धोंको साक्षात् देवदत्तादि नामोंसे नहीं बुलाते किन्तु आचार्य आदि परोक्ष नामोंसे ही बुलाते हैं। सात्त्विक स्वभाववाली स्त्रियाँ भी अपने पति तथा श्वशुरादि वृद्धोंको साक्षात् नामोंसे नहीं बुलातीं, किन्तु स्वामी आदि परोक्ष नामोंसे व्यवहार करती हैं। सात्त्विक मनुष्योंमें मातापिता तथा गुरुका यदि कोई साक्षात् देवदत्तादि नाम लेता है, तो सात्त्विक पुरुष अप्रसन्न होते हैं। जब सात्त्विक पुरुषोंको ही परोक्ष नाम प्रिय लगता है, तो अग्नि आदि सात्त्विक देवता परोक्षप्रिय हों, इसमें तो कहना ही क्या है? इसी कारण परोक्षप्रिय अग्नि आदि देवता आनन्द-स्वरूप आत्माको इन्ध ऐसे अपरोक्ष नामसे कथन नहीं करते किन्तु इन्द्र ऐसे परोक्ष नामसे कथन करते हैं।

इन्द्र नामक परमात्मा जाग्रत् अवस्थामें वागादि इन्द्रियोंको अपने अधीन करके दक्षिण नेत्रमें रहता है। जैसे इन्द्र स्वर्गमें वैजयन्त नामके गृहमें रहता है और देवोंके अर्पण किये हुए नाना प्रकारके भोगोंको भोगता है, इसी प्रकार परमात्मा भी जाग्रत् अवस्थामें दक्षिण नेत्ररूप गृहमें वास करता है और वागादि देवोंके अर्पण किये हुए रूपरसादि नाना प्रकारके विषयोंको भोगता है। जैसे वैजयन्त नामक प्रासादमें इन्द्र रहता है तथा उसकी स्त्री इन्द्राणी वैजयन्तके पासके दूसरे गृहमें रहती है, इसी प्रकार जाग्रत् अवस्थामें परमात्मारूप इन्द्र दक्षिण नेत्रमें रहता है और इन्द्राणी वाम नेत्रमें रहती है। नाना प्रकारके स्थूल भोगोंका भोगने-वाला परमात्मा इन्द्र कहलाता है। इन्द्ररूप भर्ता-के साथ विविध प्रकारसे विहार करती हुई होनेसे इन्द्राणी विराट् कहलाती है। जैसे दक्षिण नेत्रमें स्थित इन्द्र नामक पुरुष वागादि इन्द्रियोंका अधिष्ठाता है, इसी प्रकार वाम नेत्रमें रहनेवाली इन्द्राणी भी वागादि इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री है। दश अक्षरवाले छन्दको विराट् कहते हैं और इन्द्राणी भी वागादि दश इन्द्रियोंके साथ तादात्म्य सम्बन्धवाली होनेसे विराट् कहलाती है। अथवा 'अन्नं विराट्' इस श्रुतिमें भोग्यरूप अन्नको विराट् कहा है। जाग्रत् अवस्थामें परमात्मा इन्द्राणी तथा इन्द्ररूपसे सब जीवोंके वाम तथा दक्षिण नेत्रमें रहता है। परमात्मारूप इन्द्र समष्टि-रूपसे एक है और व्यष्टि उपाधियोंसे भ्रान्त पुरुषोंको अनेक प्रकारका भासता है। इसलिये हे जनक ! जिस अवस्थामें इन्द्र नाना प्रकारके स्थूल भोगोंको भोगता है, उस अवस्थाका नाम जाग्रत् अवस्था है। जाग्रत् अवस्थामें परमात्मा इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोक्तारूपसे तथा भोग्य इन्द्राणीरूपसे सब शरीरों-में रहकर सब व्यवहार करता है। जिस अवस्थामें परमात्मा इन्द्र तथा इन्द्राणीरूपसे भिन्न-भिन्न स्थानोंमें वास करता है, वह अवस्था वैश्वानररूप विश्वका स्वरूप कहलाती है। जिस अवस्थामें परमात्माका इन्द्र तथा इन्द्राणी रूपसे एक स्थानमें वास होता है उस समय हिरण्यगर्भरूप तैजस तथा ईश्वररूप प्राज्ञ कहाता है। हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा-रूप तैजसका स्वरूप तथा ईश्वररूप प्राज्ञका स्वरूप मैं तुमसे कहता हूँ, उसको सुनो।

तैजस तथा प्राज्ञकी विलक्षणता

हे जनक! जैसे इन्द्र तथा इन्द्राणी वैजयन्तको त्यागकर क्रीड़ार्थ एकान्त स्थानमें जाते हैं, इसी प्रकार परमात्मारूप इन्द्र तथा इन्द्राणी भी दक्षिण-वाम नेत्रोंमेंसे क्रीड़ार्थ हृदयरूप एकान्त स्थानमें जाते हैं। इस हृदयको दहरविद्यामें ईश्वररूप कहते हैं। इसीको सुषुप्तिका स्थान कहा है। हृदयकमल-कर्णिकाका जो लाल वर्णका मांसपिण्ड है, वह परमात्मारूप इन्द्रइन्द्राणीके भक्षण करने योग्य अन्न है। हृदयकमल जिन केसर-जैसी नाड़ियोंके जालसे जुड़ा हुआ है, वह नाड़ियोंका जाल परमात्मा-रूप इन्द्रइन्द्राणीका वस्त्र है, उसमें जो सुषुम्णा नामक नाड़ी है वह हृदयदेशमेंसे निकलकर मूर्धस्थानमें होती हुई ऊपरको ब्रह्मलोकपर्यन्त जाती है, वह परमात्मा-रूप इन्द्र इन्द्राणीके जाने-आनेका राजमार्ग है। जब परमात्मारूप इन्द्र सुषुम्णा नाड़ीरूप मार्गसे शरीर-के बाहर निकलता है, तब वह देवयानमार्गमें होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जब परमात्मा-रूप इन्द्र शरीरके अन्दर घूमता है, तब सुषुम्णा नाड़ी-की शाखाओंरूप दूसरी नाड़ियोंके मार्गद्वारा हृदय-देशमेंसे निकलकर दक्षिण नेत्रमें आता है। जैसे एक ही वृक्षकी अनेक शाखाएँ होती हैं, इसी प्रकार शरीररूप वृक्षकी अनेक नाड़ियाँ शाखा-समान हैं। ये नाड़ियाँ एक केशके हजार भाग किये जायँ, इतनी सूक्ष्म हैं। इन्द्राणीसहित परमात्मारूप इन्द्र जब नाड़ियोंके मार्गसे हृदयाकाशमें जाता है, तब वह सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है। इन्द्राणीसहित परमात्मारूप इन्द्र जब इन नाड़ियोंके मार्गमें वर्तता है, तब स्वप्नावस्था-को प्राप्त होता है। इन्द्राणीसहित परमात्मारूप इन्द्र जाग्रत् अवस्थामें वामदक्षिण नेत्रोंमें रहता है और शब्दस्पर्शादि स्थूल विषयोंको भोगता है, इसलिये परमात्मारूप इन्द्रको विद्वान् स्थूलभुक् कहते हैं। व्यष्टि स्थूलशरीरके अभिमानी परमात्मारूप इन्द्रको विश्व नामसे भी पुकारते हैं; जाग्रत् अवस्थाको त्यागकर स्वप्न अवस्थामें नाड़ीरूप स्थानोंमें रहकर मनोमय सूक्ष्म विषयोंको भोगता है, इसलिये परमात्मारूप इन्द्रको सूक्ष्मभुक् कहते हैं। व्यष्टि सूक्ष्मशरीरका अभिमानी परमात्मारूप इन्द्र तैजस कहलाता है। इन्द्राणीसहित परमात्मा-रूप इन्द्र स्वप्नावस्थाको त्यागकर जब हृदयाकाशमें सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है, तब वहाँ वासना-मय अत्यन्त सूक्ष्म भोगोंको भोगता है; इसलिये परमात्मारूप इन्द्रको अत्यन्त सूक्ष्मभुक् कहते हैं। सुषुप्ति अवस्थामें परमात्मारूप इन्द्र आनन्दस्वरूप अन्तर्यामीके साथ अभेद भावको प्राप्त होता है, इसलिये आनन्दभुक् कहलाता है। व्यष्टि कारण-शरीरके अभिमानी परमात्मारूप इन्द्रको प्राज्ञ कहते हैं। हे राजन्! सम्यक् विचारसे देखा जाय तो सुषुप्ति अवस्थामें परमात्मारूप इन्द्र अभोक्ता है, क्योंकि सुख-दुःखके ज्ञानका नाम भोग है। सुषुप्तिमें बुद्धिके लय होनेसे वहाँ सुख-दुःखका ज्ञान सम्भव नहीं है, इसलिये सुषुप्तिमें आत्मा अभोक्ता है।

जनक—हे भगवन्! सुषुप्ति अवस्थामें यदि आत्मा अभोक्ता हो तो पूर्वमें आपने कहा था कि हृदयाकाशमें स्थित रक्त वर्णवाला मांसपिण्ड इन्द्राणीसहित परमात्मारूप इन्द्रका अन्न है और नाड़ियोंका समूह वस्त्र है, यह कैसे हो सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य–हे राजन्! सुषुप्ति अवस्थामें परमात्मा-रूप इन्द्र मांसपिण्डरूप अन्नका भक्षण करता हो, और नाड़ीरूप वस्त्रोंको धारण करता हो ऐसा मेरा अभिप्राय नहीं है। मेरा अभिप्राय यह है कि जिस पुरुषका मन बाह्य विषयोंकी वासनाओंमें अत्यन्त चञ्चल हो, उसको मनकी एकाग्रता करने-के लिये अन्न-वस्त्रादि सामग्रीसहित परमात्मा इन्द्रका ध्यान करना चाहिये। ध्यानसे पुरुषका मन एकाग्र हो जाता है; इसलिये इन वचनोंका तात्पर्य आत्माके ध्यानमें है, भोगमें नहीं। सुषुप्ति अवस्थामें आत्मा अपने साक्षीरूपसे सब दुःखोंके अभावका अनुभव करता है, इसलिये उसको आनन्दभुक् तथा अत्यन्त सूक्ष्मभुक् कहा है। इसलिये सुषुप्ति अवस्थामें आत्माका आनन्दभुक्-पना तथा अत्यन्त सूक्ष्मभुक्पना मुख्य नहीं है, किन्तु गौण है।

हे राजन्! जैसे इन्द्र पूर्वादि दिशाओंका अधिपति है, इसलिये पूर्वादि दिशाओंको अपनेसे अभिन्न मानता है; इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्थामें आत्मारूप इन्द्र अन्तर्यामी ईश्वरके साथ अभेदको प्राप्त होकर पूर्वादि दश दिशाओंसे अभिन्न होता है। दृष्टान्तरूपसे जैसे देवराज इन्द्रका पूर्वादि दिशाओंके साथ जो अभेद है, वह वास्तविक नहीं है परन्तु अभिमानसे है; इसी प्रकार परमात्मारूप इन्द्र सब जगत्का उपादान कारण है, इसलिये जैसे मृत्तिकारूप कारण घटरूप कार्यके अन्तर्व्यापक है, और घटरूप कार्यसे अभिन्न है, इसी प्रकार परमात्मारूप इन्द्र भी दिशा आदि सर्व प्रपञ्चका अन्तर्व्यापक है तथा सब जगत्से अभिन्न है।

ईश्वरमें जगत्की कारणता

हे राजन्! सुषुप्ति अवस्थामें रहा हुआ माया-विशिष्ट ईश्वर आकाशादि पञ्च महाभूतोंका कारण है। जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके शरीरोंका तथा दिशा, कालादि सर्व स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्चका भी वही कारण है। समान स्वभाववाले पदार्थोंका ही परस्पर कार्य-कारणभाव होता हो, ऐसा नियम सर्वत्र सम्भव नहीं है; क्योंकि निरवयव तथा रूपादिसे रहित आकाशमें जैसे सावयव और रूपवाले मेघ-विद्युत् आदिकी कारणता जाननेमें आती है; इसी प्रकार सत् चित् आनन्दस्वरूप परमात्मामें भी असत्, जड़, दुःख-रूप प्रपञ्चकी कारणता प्रतीत होती है। समान स्वभाववाले पदार्थोंके परस्पर कार्य-कारणभावका नियम परिणामी उपादान कारणमें होता है, विवर्त उपादान कारणमें यह नियम नहीं होता। परमात्मा सब जगत्का विवर्त उपादान कारण है। अथवा शुद्ध परमात्मामें जगत्की कारणता नहीं है, किन्तु मायाविशिष्ट परमात्मामें है। इसलिये माया असत्, जड़ तथा दुःखरूप होनेसे उसका असत्, जड़ दुःखरूपपना कार्य प्रपञ्चमें दिखायी देता है।

परमात्मा जाग्रत् अवस्थामें दक्षिण नेत्रमें रह-कर अपने स्वप्रकाशरूपसे सूर्यादि सकल जगत्को प्रकाश देता है, स्वप्नावस्थामें स्वप्नके पदार्थोंको प्रकाश देता है और सुषुप्ति अवस्थामें हृदयाकाशमें रहकर दिशादि सर्व जगत्के साथ अभेदभावको प्राप्त होता है। परमात्मा ही सर्व भूत-भौतिक प्रपञ्चकी उत्पत्ति करता है। परमात्मा तेरा, मेरा और अन्य सब प्राणियोंका आत्मारूप है। जैसे एक ही महाकाश घट-मठादि उपाधियोंके भेदसे घटाकाश, महाकाश आदि भेदको प्राप्त होता है; इसी प्रकार एक ही परमात्मा शरीरादि उपाधियों-के भेदसे भिन्न-भिन्न जाननेमें आता है। जैसे उपाधियोंका किया हुआ भेद आकाशके वास्तविक-पनेको निवृत्त नहीं करता, उसी प्रकार उपाधियों-के किये हुए भेदसे आत्माका वास्तविक एकपना निवृत्त नहीं होता।

हे राजन्! संसाररूपी वनसे भयभीत हुए अधिकारीको एक अद्वितीय आत्मा ही जानने योग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अद्वितीय आत्माका साक्षात्कार ही गन्तव्य आत्माकी प्राप्तिका राजमार्ग है। आत्मज्ञानरूप मार्गमें चलनेसे तुमको आत्मरूप गन्तव्य स्थानकी प्राप्ति होगी। यह अद्वितीय आत्मा मन तथा वाणीका विषय नहीं है; इसलिये मैं साक्षात् तुमसे उसका साक्षात् स्वरूप कहनेमें समर्थ नहीं हूँ, और तुम भी उसको साक्षात् ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हो। अनात्म पदार्थोंके निषेधसे विद्वान् पुरुष आत्माको लखाते हैं, और सूक्ष्म बुद्धिवाला अधिकारी कुशाग्र बुद्धिसे अपने आत्माका लक्ष कर भी लेता है। वही निषेध मैं तुमको दिखलाता हूँ, सावधान होकर सुनो!

परमात्मामें प्रपञ्चका अभाव

हे राजन्! आनन्दस्वरूप आत्मा भाव तथा अभावरूप धर्मोंसे रहित है। घटादि पदार्थोंके समान भावरूपसे तथा अभावरूपसे तुम्हें आत्माको न समझना चाहिये। जैसे आकाश मेघ-विद्युत् आदि भाव पदार्थरूप नहीं है, इसी प्रकार उनका अभावरूप भी नहीं है; इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्मा प्रपञ्चरूप तथा प्रपञ्चका अभावरूप नहीं है, परन्तु भावाभाव पदार्थोंसे विलक्षण है। जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके अज्ञानसे रज्जुमें सर्प दिखायी देता है, इसी प्रकार आत्मारूप अधिष्ठानके अज्ञानसे यह अभावरूप जगत् स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु जब अधिष्ठानरूप आत्माका साक्षात्कार होता है, तब सब जगत् आत्मारूप अधिष्ठानमें लयभावको प्राप्त हो जाता है।

आनन्दस्वरूप आत्मा नेत्रादि बाह्य साधनोंसे तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार आदि अन्तःकरणसे जाननेमें नहीं आता। आनन्दस्वरूप आत्मा अगृह्य है। जिस पदार्थको नेत्रादि ग्रहण करते हैं, वह पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय होता है; परन्तु जिस पदार्थको नेत्रादि ग्रहण नहीं कर सकते, वह प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय नहीं होता। जैसे घटादि पदार्थोंको नेत्रादि ग्रहण करते हैं, इसलिये घटादि प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय हैं। जो पदार्थ प्रमाणका विषय होता है, वह प्रमेय भी होता है। आनन्दस्वरूप आत्माको नेत्रादि इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं, इसलिये आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय न होनेसे अप्रमेय है। स्वर्गादि अतीन्द्रिय पदार्थ यद्यपि नेत्रादि बाह्य साधनोंका विषय नहीं हैं, तो भी मनरूप इन्द्रियका विषय हैं। यदि स्वर्गादि अतीन्द्रिय पदार्थोंमें मनरूप साधनकी विषयता न हो, तो स्वर्गादि पदार्थ अतीन्द्रिय हैं, ऐसा ज्ञान मनमें न होना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि अनुमान तथा शब्दकी सहायतासे मन स्वर्गादि अतीन्द्रिय पदार्थोंको विषय करता है। जैसे स्वर्गादिमें प्रमाणकी विषयता है, इस प्रकार आत्मामें प्रमाणकी विषयता नहीं है।

आत्माके बिना प्रमा-अप्रमाज्ञानकी असिद्धि

हे राजन्! अबाधित अर्थको विषय करनेवाला प्रमाज्ञान होता है और बाधित अर्थको विषय करनेवाला अप्रमाज्ञान होता है। प्रमाज्ञानके साधन प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं, तथा अप्रमाज्ञानका साधन अप्रमाण है। प्रमाज्ञानसे उत्पन्न हुए तथा अप्रमाज्ञानसे उत्पन्न हुए ज्ञानका ज्ञानतारूप फल है। प्रमाज्ञानके विषय घटादि पदार्थ हैं और अप्रमाज्ञानके विषय सीप, चाँदी आदि हैं। प्रमाण, अप्रमाण, प्रमा, अप्रमा, प्रमाजन्य ज्ञानतारूप फल, अप्रमाजन्य ज्ञानतारूप फल, प्रमाज्ञानका विषय और अप्रमाज्ञानका विषय, ये आठ जड पदार्थ हैं। ये आठों जड पदार्थ अपनी सिद्धिके अर्थ आत्माका आश्रय करते हैं। स्वप्रकाश आत्माके बिना जड प्रमा आदिकी सिद्धि नहीं होती। ये आठों जड़ पदार्थ साक्षी आत्माके विषय होनेसे विषयरूपसे सब समान ही हैं। जो पुरुष इन आठ प्रमाणादिकी विलक्षणता मानते हैं, वे पुरुष साक्षी आत्माकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणादिमें विषयता नहीं जानते, इसलिये प्रमाणादिको परस्पर विलक्षण कहते हैं। जैसे नेत्रवाले पुरुषको दूध श्वेत वर्णवाला दीखता है किन्तु वही दूध अन्धे पुरुषको किसी प्रकारके रंग-वाला नहीं दीखता, इसी प्रकार भेदवादी भ्रान्त पुरुषोंको उनकी दृष्टिसे प्रमाणादिमें नाना प्रकारकी विलक्षणता दीखती है। अद्वैतवादीकी दृष्टिसे तो सब प्रमाणादि आत्माके विषय हैं, इसलिये साक्षी आत्माकी विषयतारूपसे सब प्रमाणादि समान हैं। जो वादी अप्रमाणको मानते हैं उनसे पूछना चाहिये कि वह अप्रमाण किसी अप्रमाणसे सिद्ध है, अथवा किसी प्रमाणसे सिद्ध है? यदि वे अप्रमाणसे अप्रमाणकी सिद्धि मानें तो जैसे अप्रमाणसे सिद्ध हुए सीपीको रूपा कहनेवाला पुरुष भ्रान्त है, इसी प्रकार अप्रमाणसे सिद्ध अप्रमाणको सिद्ध माननेवाला भी भ्रान्त है। इसलिये अप्रमाणसे अप्रमाणकी सिद्धि नहीं होती। प्रमाण-से अप्रमाणकी सिद्धि माने, तो वह भी सम्भव नहीं है क्योंकि मिथ्या अर्थके विषयको ही अप्रमाण कहा जाता है। अप्रमाण मिथ्या अर्थको जो प्रमाण विषय करे, तो वह प्रमाण भी अप्रमाण हो जाय। यदि वादी ऐसा कहे कि जो जिस अर्थको विषय करता है वह उस अर्थकी सिद्धिमें प्रमाण होता है, इसलिये अप्रमाणको विषय करनेवाला प्रमाण भी अप्रमाणकी सिद्धिमें प्रमाण माना जाता है, तो वादीका यह कहना भी सम्भव नहीं है। क्योंकि जो वस्तु जिस अर्थको विषय करती है वह उस अर्थकी सिद्धिमें प्रमाण होती है, ऐसा नियम यदि माना जाय तो सीपके रूपेको विषय करने-वाले अप्रमाणको भी प्रमाण मानना चाहिये। यदि वादी अपनी इच्छानुसार ऐसा माने, तो 'यह प्रमाण है, यह अप्रमाण है', यह उसका कथन ही व्यर्थ हो जाय। और चक्षु इन्द्रिय रूपको ग्रहण करती है, गन्धको ग्रहण नहीं करती; इसलिये रूपकी अपेक्षासे चक्षु इन्द्रियमें प्रमाणता है, और गन्धकी अपेक्षासे चक्षु इन्द्रियमें अप्रमाणता है। इसी प्रकार घ्राण इन्द्रिय में गन्धकी अपेक्षासे प्रमाणता और रूपकी अपेक्षा-से अप्रमाणता है। इसी प्रकार सब प्रमाणोंमें किसी अर्थकी अपेक्षासे प्रमाणता होती है और किसीकी अपेक्षासे अप्रमाणता होती है। नियमसे प्रमाणपना तथा अप्रमाणपना किसी प्रमाणमें नहीं है। इसलिये 'यह प्रमाणरूप है, यह अप्रमाणरूप है' ऐसा वादीका कहना व्यर्थ है। प्रमाणसे अप्रमाण-की सिद्धि माननेमें जैसे मिथ्या रज्जुके सर्पको तथा सीपीके रूपेको विषय करनेवाला ज्ञान अप्रमाण है, इसी प्रकार अप्रमाणको विषय करने-वाला प्रमाण भी अप्रमाणरूप होगा। इसलिये प्रमाणसे अप्रमाणकी सिद्धि नहीं होती। जैसे अप्रमाण अप्रमाणसे अथवा प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, इसी प्रकार प्रमाण भी प्रमाणसे अथवा अप्रमाणसे सिद्ध नहीं होता। क्योंकि यदि प्रमाणसे प्रमाणका ग्रहण होता हो, तो यह प्रश्न होता है कि वह ग्राहकप्रमाण प्रथमके ग्राह्यप्रमाणसे अभिन्न है अथवा भिन्न है? यदि ग्राहकप्रमाण ग्राह्य-प्रमाणसे अभिन्न माना जाय तो वह अपने ग्रहणमें आप ही अपेक्षारूप होगा, इसलिये आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होगी। और यदि ग्राहकप्रमाण ग्राह्यप्रमाणसे भिन्न माना जाय, तो उस ग्राहकप्रमाण-की किसी अन्य प्रमाणसे सिद्धि माननी होगी। यदि ऐसा मानें कि अपनेसे ही ग्राहकप्रमाणकी सिद्धि होती है, तो अपनी सिद्धिमें अपनी अपेक्षा-रूप आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होती है। और यदि ऐसा मानें कि प्रथमके ग्राह्यप्रमाणसे ग्राहकप्रमाण-की सिद्धि होती है, तो प्रथम प्रमाणको अपनी सिद्धिमें दूसरेकी अपेक्षा और दूसरेको अपनी सिद्धिमें प्रथम प्रमाणकी अपेक्षारूप अन्योन्याश्रय दोषकी प्राप्ति होती है। यदि दूसरा प्रमाण अपनी सिद्धिके लिये तीसरेकी अपेक्षा करे, तो उस तीसरे प्रमाणकी अपनेसे सिद्धि होती है, या दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाणसे सिद्धि होती है अथवा प्रथम प्रमाणसे सिद्धि होती है, यह कहना चाहिये। यदि तीसरे प्रमाणकी अपनेसे सिद्धि मानी जाय तो आत्माश्रय दोष प्राप्त होता है, यदि दूसरे प्रमाणसे तीसरेकी सिद्धि मानी जाय तो अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होता है। और प्रथम प्रमाणसे तीसरे प्रमाणकी सिद्धि मानी जाय तो प्रथम प्रमाणकी दूसरे प्रमाणसे सिद्धि मानी जायगी और दूसरेकी तीसरेसे सिद्धि मानी जायगी और तीसरेकी फिर प्रथमसे सिद्धि मानी जायगी, इस प्रकार चक्रके समान भ्रमणरूप चक्रिका दोषकी प्राप्ति होगी। यदि तीसरे प्रमाणकी सिद्धिके लिये चौथा प्रमाण माना जायगा तो चौथे प्रमाणकी सिद्धिके लिये पाँचवाँ प्रमाण मानना पड़ेगा, इस प्रकार प्रमाणोंकी धारा माननेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी। इसलिये प्रमाणसे प्रमाणकी सिद्धि नहीं होती। यदि अप्रमाणसे प्रमाणकी सिद्धि, यह दूसरा पक्ष माना जाय तो अप्रमाणका विषय होनेवाला प्रमाण भी अप्रमाणरूप हो जायगा। इसलिये अप्रमाणसे प्रमाणकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे प्रमाण तथा अप्रमाणके स्वरूपकी सिद्धि नहीं होती, इसी प्रकार प्रमा-अप्रमाके स्वरूपकी सिद्धि नहीं होती। क्योंकि प्रमा-ज्ञान प्रमाज्ञानसे सिद्ध है अथवा अप्रमाज्ञानसे सिद्ध है? इसी प्रकार अप्रमाज्ञान अप्रमाज्ञानसे सिद्ध है अथवा प्रमाज्ञानसे सिद्ध है? इत्यादि विकल्पोंमें पूर्वोक्त सब दोष प्राप्त होते हैं। इसलिये प्रमाज्ञान तथा अप्रमाज्ञानका स्वरूप सिद्ध नहीं हो सकता। और प्रमाण अप्रमाणके भेदसे तथा प्रमा-अप्रमा ज्ञानके भेदसे ज्ञानतारूप फलका भेद होता है। प्रमाण-अप्रमाणका भेद तथा प्रमा-अप्रमाका भेद उपर्युक्त युक्तियोंसे सम्भव नहीं है, इसलिये प्रमा तथा अप्रमाजन्य ज्ञानतारूप फलका भी भेद सम्भव नहीं है। प्रमाणसे तथा प्रमाज्ञानसे घटादि विषयोंकी सिद्धि होती है। प्रमाण तथा प्रमाज्ञानका भेद घटादि विषयोंके भेदका साधकरूप है किन्तु प्रमाण तथा प्रमाज्ञान उपर्युक्त युक्तियोंसे अप्रमाणरूप हैं, इसलिये अप्रमारूप ज्ञानसे घटादि विषयोंके भेदकी सिद्धि नहीं हो सकती। यदि अप्रमाज्ञानसे विषयकी सिद्धि होती है, तो 'यह सर्प है' इस अप्रमाज्ञानसे रज्जु तथा सर्पकी भी सिद्धि होनी चाहिये। किन्तु 'यह सर्प है', ऐसे अप्रमाज्ञानसे रज्जुके सर्पकी सिद्धि नहीं होती। इसलिये प्रमाणादिके समान घटादि विषयोंका भेद भी सम्भव नहीं है। (क्रमशः)

सफल जन्म

मौसर मिनखा देह मिल्यो है मत कोई गाफिल रहज्यो रे।
खूटा स्वास बहुरि नहिं आवै राम राम भज लीज्यो रे॥
जानत है सिर मोत खड़ी है चलणो साँझ सवेरो रे।
पाँच पचीसूँ बडे जोरावर लूटत है जिव डेरो रे॥१॥
नर नारायण सहर मिल्यो है जामें सूँज अपारा रे।
राम कृपा कर तोहि बसायो यामें काज तुम्हारा रे॥२॥
जनम जनमका खाता चूकै हुय मन रामसनेही रे।
रामदास सतगुरुके सरणै जनम सफल कर लेही रे॥३॥

—सन्त दयालुदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दूशास्त्रके कुछ सार सिद्धान्त

(लेखक—श्रीशक्तिचरण विशारद राजवैद्य)

१—जो शास्त्र नहीं मानता वह भगवान्‌को नहीं मानता—शास्त्र भगवद्वाक्य है, शासन करना उसका काम है। अतएव जो शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है वह भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन करता है। वह भक्त होते हुए भी अवैष्णव है।

२—अविचारित विश्वास—शास्त्रमें बिना विचार किये हुए विश्वास करना समस्त कल्याणका मूल है। शास्त्रवचन कदापि मिथ्या नहीं हो सकते, इस प्रकारके निश्चय ज्ञानको अविचारित विश्वास कहते हैं। जहाँ शास्त्रवचन युक्तिविरुद्ध प्रतीत होते हों वहाँ अपनी युक्तिकी परवा न करके शास्त्रवचनको ही निर्भ्रान्त सत्य मानना अविचारित विश्वास है। जो मनुष्य शास्त्रका उल्लङ्घन करके मनमाना आचरण करता है उसका कोई कर्म सफल नहीं होता[1]। न तो उसे इहलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है और न परलोकमें गति मिलती है। शास्त्रविधानसे ही कार्याकार्यकी व्यवस्था करनी चाहिये[2]। शास्त्रको मानकर जो चेष्टा की जाती है वह शास्त्रीय चेष्टा कहलाती है, और उससे परमार्थकी प्राप्ति होती है। शास्त्रविरुद्ध चेष्टा या कर्मको उच्छास्त्रचेष्टा कहते हैं। इससे परम अनर्थ होता है।[3] जो शास्त्रवाक्यमें सन्देह करता है उसको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। अतएव सदा शास्त्रमें विश्वास रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये[4]।

३—नास्तिकताके समान कोई पाप नहीं है—शास्त्र-वचनमें अविचारिता अर्थात् विचाररहित विश्वासका नाम आस्तिकता है, तथा शास्त्रवचनकी सत्यतापर तनिक भी सन्देह करना नास्तिकता है[5]। नास्तिकताके तुल्य दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता[6]।

४—अहङ्कारसे नास्तिकता, असत्य और पाप उत्पन्न होता है—सब अनर्थोंका एकमात्र कारण अहङ्कार है। मोहसे अहङ्कार और अहङ्कारसे संसार उत्पन्न होता है। जिसने अहङ्कारको दूर कर दिया उसके लिये मोह भी नहीं है और संसार भी नहीं है[7]। अहङ्कारसे असत्य प्रकट होता है, और अहङ्कारहीसे धर्मनाश होता है[8]। समस्त शास्त्र कण्ठ कर लेनेपर भी अहङ्कारके कारण मनुष्य भगवान्‌को उसी प्रकार नहीं जान सकता जिस प्रकार कड़छी रसमें डूबी

---

१ यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(गीता १६। २३)

२ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
(गीता १६। २४)

३ उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं मतम्।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्॥
(मुक्तिको० २। १)

४ असंशयवतां मुक्तिः संशयाविष्टचेतसाम्।
न मुक्तिर्जन्मजन्मान्ते तस्माद्विश्वासमाप्नुयात्॥
(मैत्रेय० २। १६)

५ श्रौते स्मार्ते च विश्वासस्तदास्तिक्यमुदाहृतम्॥
(श्रीजाबाल० २। ५)

६ पातकेषु परं ज्ञेयं पातकं नास्तिकग्रहः।
(चरक०)

७ मोहमूलोऽस्त्यहङ्कारः संसारस्तत्समुद्भवः।
अहङ्कारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः॥
(देवी०)

८ अहङ्कारावृतं विश्वं सम्बद्धमनृतेन हि।
मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं स्यादहङ्कृतिः॥
(देवी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहनेपर भी उसके स्वादको नहीं पा सकती।[1] अहङ्कार-से नास्तिकता उत्पन्न होती है, नास्तिकतासे अज्ञान और अज्ञानसे सारे पाप उत्पन्न होते हैं।

५–दीनतासे अहङ्कार मिट सकता है– अहङ्कारका त्याग दीनताके द्वारा ही हो सकता है।[2] हम कुछ नहीं समझ सकते हैं, हमारी बुद्धि ठीक नहीं है, हम भलेको बुरा और बुरेको भला समझते हैं—इस प्रकारके ज्ञानको दीनता कहते हैं।[3] यह दीनता ही सब प्रकारके ज्ञानका मूल है। श्रुति कहती है—'जो मनुष्य कहता है कि मैं समझता हूँ, वह कुछ नहीं समझता; और जो कहता है कि मैं कुछ भी नहीं समझता, वही सब कुछ समझता है।[4]' जो ज्ञानका अभिमानी है उसको अज्ञानी जानना चाहिये। इस प्रकारकी दीनताकी प्राप्तिके लिये शास्त्र और गुरुमें अविचारित विश्वासका होना आवश्यक है। गुरुके बिना कभी ज्ञान नहीं हो सकता।[5] भ्रान्त जीवके उद्धारके लिये स्वयं श्रीभगवान् गुरुरूपसे उपस्थित होते हैं।[6] गुरुको भगवान्‌के रूपमें भाग्यशाली पुरुष ही देख सकता है, मन्दभाग्य पुरुष नहीं देख सकता।[7]

६–भगवान्‌की इच्छासे ही सब कुछ होता है– श्रीभगवान्‌की इच्छा ही सब वस्तुओंका कारण है। श्रीभगवान्‌की पूर्ण कृपा नहीं होनेसे ज्ञान भी नहीं हो सकता।[8] जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और नाश सब भगवत्-इच्छासे ही होते हैं। उन्हींकी इच्छासे पवन चलता है, सूर्य उत्ताप देता है, इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलाती है और यम जीवोंका नाश करता है।[9] उनकी इच्छाके बिना अग्नि जला नहीं सकती, जल डुबा नहीं सकता, साँप काट नहीं सकता, बीमारी हो नहीं सकती और मृत्यु भाग जाती है।[10]

जिस प्रकार जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और नाश श्रीभगवान्‌की इच्छासे होता है उसी प्रकार उनकी इच्छासे ही जगत्‌की सब वस्तुएँ अपने स्वरूपमें स्थित होती हैं। अर्थात् जो वस्तु जैसी है वह उसी रूपमें रहती है और वैसा ही कार्य करती है। श्री-भगवान्‌की इच्छासे कभी-कभी एक वस्तु दूसरे वस्तुके तुल्य कार्य करती है। उनकी इच्छासे कभी विष अमृतका कार्य करता है, और अमृत विषका कार्य

---

१ अधीत्य चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राण्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा॥
(मुक्तिको० २। ६५)

२ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना॥
(भा० मा०)

३ तस्मादिष्टमेव अनिष्टमिव भाति। अनिष्टमेव इष्टमिव भाति। अनादिसंसारविपरीतभ्रमात्। (त्रिपादविभूति० अ० ५)

४ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥
(केन० २। ३)

५ यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटिभिस्तत्त्वज्ञानं न विद्यते॥
(त्रिपादविभूति० अ० ५)

६ गुरुरूपी स्वयं कृष्णः शिष्यानां हितकाम्यया॥

७ श्रीगुरुं परतत्त्वाख्यं भास्वन्तं चक्षुरग्रतः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति अन्धाः सूर्यमिवोदितम्॥
(ब्र० ४। ४३। ७१)

८ प्रज्ञया त्वां विजानाति ईश्वरानुगृहीतया॥ (महोप० २५)

९ मन्द्रयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मन्द्रयात्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मन्द्रयात्॥
(श्रीमद्भा० ३। २५। ४२)

१० पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं
गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने
गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति॥
(श्रीमद्भा० ७। २। ४०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है अर्थात् विष खिलानेसे जीवनकी रक्षा होती है और अमृत खिलानेसे मृत्यु होती है।[1]

७—मनुष्य भगवान्‌के हाथकी कठपुतली है—सारी वस्तुएँ जडवत् श्रीभगवान्‌के अधीन हैं अर्थात् जिस प्रकार जड वस्तु स्वयं कुछ नहीं कर सकती, उसी प्रकार मनुष्य प्रभृति चेतन जीव भी कुछ नहीं कर सकते। जिस प्रकार कुम्हारके हाथमें मृत्तिका और बढ़ईके हाथमें काठ होता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्‌के हाथमें मनुष्य है; वे जिसको जैसा चाहते हैं बनाते हैं।[2]

८—संसार मायासे सृष्ट है और विपरीत गुणवाला है—मनुष्य चेतन होते हुए भी अचेतन है, यह बात बहुत उलटी मालूम होती है। जगत् मायासे सृजा गया है और मायाका स्वरूप ही वैपरीत्य है अर्थात् मायासे सभी वस्तुएँ अन्यथा हो जाती हैं।[3] इस विपरीत ज्ञानको जानना ही असली ज्ञानकी कुञ्जी है। इसी कारण शास्त्रका आदेश है कि शास्त्र और गुरुमें अविचारित विश्वास करो, तब तुम्हें ज्ञान होगा। अर्थात् उच्छृङ्खल विचारके त्यागनेसे ही यथार्थ विचार और ज्ञानकी प्राप्ति होगी। अतएव अपनेको जडवत् जानकर शास्त्रके अनुसार चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार दीन बननेसे ज्ञान होता है, अपनेको अज्ञानी समझनेसे ज्ञान होता है, और इसी प्रकार चाण्डाल अस्पृश्य होकर भी पूजनीय होता है।

९—मनुष्यजीवनका उद्देश्य मोक्ष है—मायासे वैपरीत्य अर्थात् उलटी सृष्टि हुई, वैपरीत्यसे मोह अर्थात् धोखा उत्पन्न हुआ, और मोहसे संसार उत्पन्न हुआ। अर्थात् धोखेसे चिरकालतक आना-जाना या पुनः-पुनः जन्म-मृत्यु होते हैं।[4] इस आवागमनके बन्द होनेका नाम मुक्ति है। जैसे चक्रके साथ लगा हुआ पदार्थ उसके साथ रहनेसे घूमता है और उससे अलग होते ही उसका घूमना बन्द हो जाता है, उसी प्रकार संसारचक्रमें जीव अज्ञान या मोहवश बार-बार घूमता है, और अज्ञानके नष्ट हो जानेपर संसारसे छुटकारा पा जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।[5] संसारसे मुक्त होना ही मनुष्य-जीवनका एकमात्र लक्ष्य है। जो मनुष्य मनुष्यजीवन प्राप्तकर मुक्ति-प्राप्तिसे वञ्चित रहता है, उसे शास्त्र आत्मघाती कहते हैं।[6] आत्महत्याका पाप सबसे बढ़कर होता है।

१०—कर्मफल (सञ्चित और प्रारब्ध)—संसारी जीव अपने-अपने कर्मफलके अनुसार जन्म ग्रहण करते हैं।[7] कर्मफलका कभी नाश नहीं होता। उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है।[8] मनुष्य एक देहमें

---

१ विषायतेऽमृतं कुत्र विषं चाप्यमृतायते।
विषत्वममृतत्वं च जायते हीश्वरेच्छया॥
ईश्वरस्य वशे सर्वं चराचरमिदं जगत्।
कटाक्षेण विभोस्तस्य स्वरूपेणावितिष्ठति॥

२ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
(गीता १८। ६१)

३ युगपद् विपरीतत्वं मायाया एकलक्षणम्।
अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो-
रेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः॥
(श्रीमद्भा० ६। ४। ३२)

४ पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्टान्येव ततो मया।
जातश्चैव मृतश्चैव जन्मापायो पुनः पुनः॥
(गर्भो० ३३)

५ सकृज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यात् सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरुः।
(तेजोबिन्दु० २। ४२)

६ ये कैवल्यमसम्प्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम्।
त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते॥
(श्रीमद्भा० ११। ५। १६)

७ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
(श्रीमद्भा० १०। २४। १३)

८ नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मान्तरशतैरपि।
मद्भक्त्या तद्धहु स्वल्पं विपरीतमभक्तितः॥
(आदि०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितने कर्म करता है, उन्हें उसी देहसे नहीं भोग सकता। इस प्रकार जो कर्म जमा होते रहते हैं वे सञ्चित कर्म कहलाते हैं। इस सञ्चित कर्मके बहुत थोड़े अंशको भोगनेके लिये मनुष्य जन्म लेता है और वह थोड़ा अंश उस देहका 'प्रारब्ध' कहलाता है। जिसके भोगनेके लिये जीवनका प्रारम्भ होता है, वही उसका प्रारब्ध है।[1] ज्ञानसे सञ्चित कर्म नष्ट होता है, प्रारब्ध नहीं। बिना ज्ञान हुए क्या प्रारब्ध और क्या सञ्चित—किसी प्रकारके भी कर्मका नाश नहीं होता। श्रीभगवान्‌के चरणारविन्दमें भक्ति करनेसे अशुभ कर्मफल नष्ट होते हैं और अभक्ति होनेसे बढ़ते हैं।

११—सङ्ग सब कर्मोंसे प्रबल होता है—मनुष्यके सब कर्मोंसे सङ्ग ही प्रबल है।[2] यह बात सुननेमें उलटी मालूम होती है, परन्तु दृष्टान्तोंसे यह स्पष्ट हो जाती है। रेल और मोटरमें रक्खे हुए पदार्थ द्रुतगामी घोड़ेसे भी जल्दी जाते हैं। जब नाव नदीमें डूबने लगती है तो उसके साथ ही उसपर चढ़े हुए आदमी भी डूब जाते हैं। घरमें आग लगनेपर उसमें रहनेवाले भी जल जाते हैं। मोटरके धक्का लगकर उलटनेसे उसपर चढ़े हुए मनुष्य भी गिर जाते हैं। ऊपर पत्थर आदि कठिन वस्तुके गिरनेसे मनुष्यके अंग चूर-चूर हो जाते हैं, परन्तु घासका बोझ गिरनेसे उतनी चोट नहीं लगती। संसारकी सृष्टि इस सङ्गसे ही हुई है। अतएव सङ्ग सबसे प्रबल है, इसमें सन्देह नहीं।

१२—सत्सङ्ग और असत्सङ्ग—सङ्ग दो प्रकारके होते हैं—सत् और असत्। सत्सङ्ग श्रेयस्कर और असत्सङ्ग प्रेयस्कर होता है;[3] अर्थात् सत्सङ्गसे केवल कल्याण होता है और असत्सङ्ग केवल प्रिय होता है। जो प्रिय है, अच्छा लगता है वह असत् है।[4] जिससे मनुष्यका परम कल्याण होता है, मनुष्य मुक्तिपथमें अग्रसर होता है वह सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग न होनेसे असत्सङ्ग अवश्य होगा। असत्सङ्ग दो प्रकारका होता है—पहला सत्सङ्गके विपरीत सङ्ग और दूसरा सत्सङ्गका अभाव। इन दोनोंसे ही हानि होती है। जो असत्सङ्ग सत्सङ्गसे विपरीत होता है उससे बहुत हानि होती है। सत्सङ्गसे अतिरिक्त, परन्तु सत्सङ्गसे विरुद्ध न होनेवाला जो असत्सङ्ग है उससे कम हानि होती है।

१३—सत्सङ्गके तीन प्रकार—सत्सङ्ग तीन प्रकारका होता है—साधुसङ्ग अर्थात् भक्तसङ्ग, भगवत्सङ्ग और आचार। इन तीनोंमें भक्तसङ्ग सबसे उत्तम और बहुत ही प्रबल होता है। इस कारण सत्सङ्गसे बहुधा भक्तसङ्ग ही समझा जाता है। सत्सङ्गके बिना मनुष्यका कल्याण कभी नहीं हो सकता।[5] कोटि-कोटि जन्म पुण्य करनेपर भी सत्सङ्ग अर्थात् भक्तसङ्ग नहीं मिलता है, परन्तु कोटि-कोटि जन्मके पुण्यसे जब भाग्योदय होता है अर्थात् श्रीभगवान्‌की कृपा होती है तभी भक्तसङ्ग मिलता है। भक्तसङ्गके मिलने-

---

१ भुञ्जन् प्रारब्धमखिलं सुखं वा दुःखमेव वा।
(अ० रा० अयो० ४। ४१)

२ प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
(श्रीमद्भा० ३। २५। २०)

३ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते॥
(कठ० १। २। २)

४ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥
(गीता १८। ३७)

५ रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥
(श्रीमद्भा० ५। १२। १२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अज्ञान, मोह, अहङ्कार प्रभृति नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें विवेक अर्थात् भले-बुरेका ज्ञान होता है।[1] भक्तमाहात्म्य ही ऐसा है कि श्रीभगवान्‌का भक्त बननेसे अस्पृश्य चाण्डाल भी साक्षात् भगवान्‌के तुल्य हो जाता है। और वह श्रीभगवान्‌के तुल्य पूज्य हो जाता है।[2]

१४–भगवत्सङ्ग, शास्त्रचर्चा, नामस्मरण और गुण-कीर्तन–भक्तसङ्गसे ही यथार्थ भगवत्सङ्ग होता है। जबतक भक्तकी कृपा नहीं होती तबतक श्रीभगवान्‌से यथार्थ सम्बन्ध नहीं होता। तथापि प्रत्येक मनुष्य यथासाध्य शास्त्रचर्चा, नामस्मरण, जप और अन्तमें भगवद्-गुणानुवाद कर सकता है। संसार-यात्राके लिये दिन-रात घूमना अत्यन्त अनुचित है। शास्त्रमें धर्म, अर्थ और कामको त्रिवर्ग, तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको चतुर्वर्ग कहते हैं। संसारके अर्थ और कामकी तो बात ही क्या, धर्मके निमित्त भी अतिकृच्छ्र अर्थात् अत्यन्त श्रम, अत्यन्त प्रयत्न या अत्यन्त चेष्टा नहीं करनी चाहिये।[3] परमार्थके लिये प्रतिदिन कुछ समय अलग रखना उचित है, उसी समयमें शास्त्रचर्चा आदि करना चाहिये। संसारका काम करते हुए भी बहुधा नामस्मरण किया जा सकता है।

१५–गुणानुवाद या गुणकीर्तन–श्रीभगवान् भक्त-की रक्षाके लिये जो चरित्र करते हैं उसीको भगवद्-गुण या श्रीभगवान्‌की लीला कहते हैं। भगवान्‌के इसी प्रकारके गुणोंका गान गुणानुवाद कहलाता है। यह गुणानुवाद लाखों गुना अधिक फलदायक होता है।[4] इस गुणानुवादके लिये ही मनुष्यको जिह्वा प्राप्त हुई है। पशुके जिह्वासे गुणानुवाद नहीं हो सकता, यही पशु और मनुष्यमें विशेषता है। जो मनुष्य श्रीभगवान्‌का गुणानुवाद नहीं करता उससे बढ़कर दुर्बुद्धि कोई नहीं है। वह पापिष्ठ स्वर्गपर चढ़नेकी सीढ़ी पाकर मूढ़तावश उससे वञ्चित रह जाता है।[5]

१६–आचार–तीनों प्रकारके सत्सङ्गमें आचार सर्वसाध्य है, अतएव इन तीनोंमें आचार सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। आचारका पालन करना प्रत्येक मनुष्यके अपने अधीन है। आचार ही धर्म है, आचार ही तपस्या है और आचार ही ज्ञान है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आचारसे प्राप्त न हो।[6] आचारसे आयु, यथेष्ट सन्तान और अक्षय धनकी प्राप्ति होती है, आचार दुर्लक्षणका नाश करता है।[7] जो मनुष्य सब शास्त्रोंका जाननेवाला होकर भी आचारसे भ्रष्ट है उसे पतित समझना चाहिये।[8] वह किसी शुभ कर्मके

---

१ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन
सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै।
ज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार-
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः॥
(श्रीमद्भा० मा० २। ७६)

२ न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

३ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम्॥
(श्रीमद्भा० ७। १४। १०)

४ नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः॥
(श्रीमद्भा० ६। २। १२)

५ जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥
(श्रीमद्भा० ७। १। ६)

६ आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानं आचारात् किं न साध्यते॥
(मनु० १। १०८)

७ आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
(मनु० ४। १५६)

८ यः स्वाचारपरिभ्रष्टः साङ्गवेदान्तगोऽपि चेत्।
स एव पतितो ज्ञेयो सर्वकर्मबहिष्कृतः॥
(बृ० ना०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेका अधिकारी नहीं है। सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता ही क्यों, भक्त भी आचारभ्रष्ट होनेपर पतित हो जाता है।[1] अतएव हिन्दूमात्रको उचित है कि आचारके गुणोंका स्मरण कर तपस्याके स्थानमें आचारका यथासाध्य पालन करे।

१७–असत्सङ्ग भी तीन प्रकारका होता है–सत्-सङ्गके समान असत्सङ्ग भी तीन प्रकारका होता है—नारीसङ्ग, अनाचार और व्यर्थ कर्म। आचारके गुणोंको देखकर अनाचारके दुर्गुणोंका सहज ही ज्ञान हो सकता है। मन्दभाग्य और मन्दबुद्धि मनुष्यका समय रातको निद्रामें और दिनको वृथा कार्योंमें बीतता है।[2] समय वृथा नष्ट करना भारी अपराध है। समय ही जीवन है। यदि प्रतिदिन चार घण्टेके हिसाबसे समय वृथा कार्योंमें नष्ट किया जाय तो छः वर्षमें एक वर्ष निकल जाता है अर्थात् छः वर्षके जीवनमें एक वर्ष व्यर्थ हो जाता है। अतएव वृथा कर्म करना आत्महत्याके तुल्य है।

१८–नारीसङ्ग सत्यानाशका हेतु है–नारीसङ्गके तुल्य परमार्थनाशक वस्तु और कुछ नहीं है। शङ्कराचार्य कहते हैं कि नरक जानेका एक ही द्वार है—नारी।[3] नारीसङ्ग, और नारीसङ्ग करनेवालेके सङ्गसे जिस प्रकारका मोह और संसारबन्धन होता है वैसा और किसी प्रकारके सङ्गसे नहीं होता।[4] संसारकी पुष्टिके लिये मनुष्यको मोहित करनेके उद्देश्यसे मायासे नारी उत्पन्न हुई है। अतएव जिस प्रकार अग्निमें पतंगादि जल जाते हैं उसी प्रकार नारीसङ्गसे मनुष्य भी क्षणकालमें विनाशको प्राप्त हो जाता है।[5] जिसका मन स्त्रीसङ्गमें आसक्त है, जिसे स्त्रीसङ्ग प्रिय है, उसकी तपस्या, उसका त्याग, उसकी विद्या, उसका एकान्त-सेवन और उसका मौन सब व्यर्थ है।[6] नारीसङ्ग इतना भयानक होता है कि सर्वज्ञ शास्त्र भी आज्ञा देते हैं कि अपनी माता, भगिनी और कन्यासे भी अकेलेमें नहीं मिलना चाहिये। इन्द्रियाँ बहुत प्रबल होती हैं, ये विवेकी पुरुषकी भी बुद्धिको भ्रष्ट कर देती हैं।[7] माया भी नारीरूपसे ही मनुष्यके पास उपस्थित होती है। बुद्धिमान् मनुष्य उसे मृत्युरूप समझता है। जिस प्रकार तृणसे ढँके कूपसे अलग रहना होता है, उसी प्रकार नारीसे सर्वदा अलग रहना चाहिये।[8] मृग जैसे व्याधके गीतसे मोहित होकर मृत्युमुखमें पतित होता है मनुष्य उसी प्रकार नारीसङ्गसे मोहित होकर विनाशको प्राप्त होता है।[9] (भारतेर साधनासे)

---

१ हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानरतोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते॥
(बृ० ना०)

२ मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य मन्दायुषस्तथा वयः।
ह्रियते निद्रया नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः॥

३ द्वारं किमेकं नरकस्य—नारी।

४ न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः॥
(श्रीमद्भा० ३। ३१। ३६)

५ यत्सङ्गात्संक्षयं याति पुमानग्निगतो यथा।
रचिता देवमायेयं विमोहाय नृणामिह॥
(आदि० ५७)

६ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥
(श्रीमद्भा० ११। २६। १२)

७ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥
(श्रीमद्भा० ९। १९। १७)

८ योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता।
तामीक्षेदात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम्॥
(श्रीमद्भा० ३। ३१। ४१)

९ दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा॥
(श्रीमद्भा० २। ३१। ४३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन-चर्चा

(लेखक—विद्यामार्त्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)

[गतांकसे आगे]

सांख्योंकी भूतोत्पत्ति

(सांख्यमतखण्डन)

सांख्योंके मतमें आकाशादि महाभूत शब्द-स्पर्शादि तन्मात्रोंसे उत्पन्न होते हैं। एवं ये पाँच तन्मात्र या रूप, रस आदि लिङ्गशरीरके एक भाग हैं। और लिङ्गशरीर प्रतिपुरुष सृष्टिके आरम्भमें अलग-अलग उत्पन्न होकर महाप्रलयपर्यन्त स्थायी रहता है। ऐसी अवस्थामें प्रति-पुरुषके लिङ्गशरीरके भागरूप तन्मात्रोंसे पृथिवी आदि महाभूत हों तो प्रतिपुरुष ही पृथिवी आदि महाभूतोंकी सृष्टि होनी चाहिये, किन्तु ऐसी स्थिति प्रत्यक्षविरुद्ध है। हाँ, ऐसी कल्पना की जा सकती है कि सृष्टिके आदिकालमें जब लिङ्गशरीर उत्पन्न होते हैं उसी समय सब लिङ्ग-शरीरोंके तन्मात्रोंसे परमाणुओंके रूपमें पृथिवी आदि भूत उत्पन्न होकर उनसे मिलकर महापृथिवी आदिके रूपमें एक-एक महाभूत उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु सर्वसाधारण जीवोंके प्रयोज्य पृथिवी आदिकी उत्पत्ति प्रतिपुरुष जुदे-जुदे लिङ्गशरीरोंके भागोंसे हों, ऐसी कल्पना गौरवग्रस्त होती है। अर्थात् प्रथम सब जीवोंको एक-एक वस्तु अलग-अलग करके बाँट देना और उनसे उनको लेकर एक साधारण वस्तुको बनाना, अपने घरके सामनेसे पृथिवीकी प्रदक्षिणा करके घरमें घुसनेके समान है। प्रयोजन यह है कि लिङ्गशरीरकी उत्पत्तिसे पूर्व कोई ऐसा क्रम रखना चाहिये जिससे स्वातन्त्र्येण महाभूतोंकी उत्पत्ति हो।

वेदान्तियोंने जो लिङ्गशरीर माना है उसमें वे तन्मात्रोंके स्थानमें पाँच प्राणोंको मिलाते हैं। उस कल्पनामें भूतोत्पत्तिमें यह पूर्वोक्त आपत्ति नहीं आती। कारण, उस कल्पनामें तन्मात्र लिङ्गशरीरके अङ्ग नहीं होते और स्वतन्त्र-तासे भूतोंके कारण बन जाते हैं। सांख्योंके मतमें पाँचों प्राण अन्तःकरणत्रयकी सामान्य वृत्तियाँ (कर्म) हैं। इनको वे लिङ्गशरीरमें अवयवरूपसे नहीं गिनते। इन दोनों मतोंमें वेदान्तियोंका मत सुगम है। क्योंकि कोई वस्तु जब किसी विशेष वस्तुके साथ संयुक्त हो जाती है या उसका अङ्ग ही हो जाती है तो वह स्वतन्त्र कार्योंको नहीं कर सकती। जैसे—आप एक डंडेको गाड़ीमें बाँध दीजियेगा तो फिर उससे अलग कार्य नहीं ले सकेंगे। इस प्रकार तन्मात्र लिङ्गशरीरमें संयुक्त होकर पृथिवी आदि भूतोंको उत्पन्न नहीं कर सकते।

यदि रूप, रस आदि तन्मात्र लिङ्गशरीरोंकी उत्पत्तिमें पर्याप्त ही नहीं किन्तु उनसे उर्वरित भी रहते हैं तो उनसे पृथिवी आदि भूतोंकी उत्पत्ति भी हो सकती है। इसमें वह पूर्वोक्त आपत्ति नहीं रह जाती।

वैशेषिक दर्शनपर सांख्योंकी दृष्टि

(वैशेषिकमतखण्डन)

जिस प्रकार सांख्यदर्शनकार पचीस तत्त्वोंको मानते हैं, उसी प्रकार वैशेषिक आचार्य सप्तपदार्थवादी हैं। उनके मतमें (१) द्रव्य (२) गुण (३) कर्म (४) सामान्य (५) विशेष (६) समवाय और (७) अभाव ये सात पदार्थ हैं।

---

१ प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥
(सां० का० २२)

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः।
(सां० का० ३८)

२ पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादि सूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्॥
(सां० का० ४०)

३ सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि, अवयवाश्च ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति॥
(वे० सा० ४१)

४ स्वालक्षण्यं वृत्तिलयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च॥
(सां० का० २९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांख्य कहते हैं कि इनके प्रथम तीन (द्रव्य, गुण, कर्म) पदार्थोंमें हमको भी आंशिक प्रतिपत्ति है । किन्तु शेष उनके अभिमत सामान्य आदि चार पदार्थोंमें कोई स्वारस्य नहीं दिखायी देता । इस सबका स्पष्टीकरण यही है कि नव द्रव्योंमें काल और दिशा; गुणोंमें संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग और भावना ये बारह गुण; एवं सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये चार पदार्थ सांख्यदृष्टिसे मान्य नहीं हैं । यथा—अग्नि, पृथिवी, जल, वायु, आकाश, आत्मा और मन, ये सात द्रव्य हमको भी स्वीकृत हैं और काल तथा दिशा, ये दो द्रव्य वैशेषिकोंके कल्पित हैं । इनमें कोई प्रमाण नहीं; क्योंकि जिन उपाधियोंमेंसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके भेद एवं जिन उपाधियोंसे वे प्राची आदि दिशाओंके भेद कल्पित करते हैं उन्हीं उपाधियोंसे काल और दिशाके सब प्रयोजन निकल जाते हैं । इसी प्रकार संख्या आदि गुण भी कल्पित हैं, तात्त्विक नहीं; क्योंकि संख्यामें द्वित्व आदि सब संख्याओंको वे भी अपेक्षाबुद्धिजन्य होनेसे अनित्य मानते हैं । अतएव—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ।

—इस न्यायसे वे स्वयं अतत्त्व सिद्ध होते हैं । एकत्व संख्याको भी वे नित्यमें नित्य और अनित्यमें अनित्य कहते हैं । जब एक घटमें जो एकत्व संख्या रहती है वह घटके नाश होनेपर नष्ट हो जाती है, तो जिस प्रकार घटका नील, पीत आदि रूप उसके अवयवोंमें उपलब्ध होता है, उसी प्रकार उसके अवयवोंमें एकत्व संख्याको भी उपलब्ध होना चाहिये था । क्योंकि वह उसके अवयवोंमें नहीं मिलती, इसलिये वास्तवमें वह अपनी कोई सत्ता नहीं रखती । सुतरां एकत्व संख्या वहाँ कल्पनामात्र ही है, तत्त्वतः नहीं । जब वह अनित्यद्रव्यमें सिद्ध नहीं होती तो उसको नित्यद्रव्यमें मानना भी वैसा ही है । क्योंकि उस (द्रव्य) के अतिरिक्त एकत्व संख्या माननेमें व्यवहारसे अन्य कोई प्रमाण नहीं, और व्यवहार व्यवहारकी सिद्धिके अतिरिक्त अपनी कोई वास्तविकता नहीं रखता । वह सत् और असत् दोनों प्रकारके पदार्थोंमें देखा जाता है, इसीसे वह पदार्थकी सत्तामें स्वातन्त्र्यसे प्रमाण नहीं हो सकता ।

वैशेषिकके प्रति सांख्यकी उक्ति

हे वैशेषिक ! आपने जो हमारे दर्शनके तत्त्वोंपर दृष्टि डाली है वह हमारे और आपके दोनों दर्शनोंके हितका साधन है । दर्शनशास्त्रपर जितनी दृष्टि डाली जाय उतना ही उसके चमत्कारका आविष्कार होता है । इसलिये आपने जो हमारे दर्शनके प्रकृति, महत्तत्त्व और अहङ्कार, इन तीन तत्त्वोंकी आलोचनामें अनावश्यकता और उनकी कल्पनामें क्लेश जिस रीतिसे दिखाया है यह अवश्य ही प्रशंसनीय है । किन्तु हमारे दर्शनका जो—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

—इस वाक्यमें कहा हुआ बीजन्याय है, हमारे शास्त्रमें आरम्भसे समाप्तिपर्यन्त कहीं भी इसका परिवर्जन नहीं किया गया है, प्रत्युत सर्वत्र ही इसका पूर्णरूपसे पालन किया गया है । इसी पूर्वोक्त बीजन्यायका रूपान्तर या प्रस्फुटरूप 'सत्कार्यवाद' है ।

आपने हमारे इस सत्कार्यवादको हटाकर असत्कार्यवादकी कल्पना की, और उसके पालनके लिये उसका सहायक परमाणुवाद खड़ा किया । इस परमाणुवादमें पृथिवीतत्त्वकी स्थितिके लिये पार्थिव परमाणु अलग माने जाते हैं एवं जल, अग्नि और वायु इनकी सिद्धिके लिये जलीय, आग्नेय तथा वायवीय परमाणु पृथक्-पृथक् स्वीकार करने पड़ते हैं । तथा आकाश, काल, दिक् और मन—ये परस्परस्वतन्त्र नित्य तत्त्व मानने पड़ते हैं । यह हुई आपके एक द्रव्यपदार्थकी कथा । किन्तु इतना ही नहीं, आपके जो गुण आदि छः पदार्थ और हैं, वे भी ऐसी बातोंसे शून्य नहीं हैं । जब आप हमारी एक मूलप्रकृति और अपने पार्थिव परमाणु आदि अनन्त पदार्थरूप प्रकृतियोंको ध्यानमें रखकर तुलना करेंगे तो आपको पता चलेगा कि आपकी कल्पना हमारी कल्पनासे कितनी गुरुतर है । अर्थात् उन (वैशेषिकों) के मतमें कोई तत्त्व या वस्तु अपनी सत्ताके लिये किसी विजातीय तत्त्वकी कोई अपेक्षा नहीं रखती किन्तु जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं सब अपने सजातीय तत्त्वसे ही उत्पन्न होती हैं । जैसे—पार्थिव कार्य पृथिवीतत्त्वसे एवं आग्नेयादि कार्य अग्नि आदि सजातीय तत्त्वोंसे उत्पन्न होते हैं, परन्तु ये अपने इस सिद्धान्तको अपने स्वीकृत पदार्थोंकी उत्पत्तिमें सर्वथा पालन नहीं कर सके हैं । जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, ये पाँच गुण, जिनको सांख्य 'तन्मात्र' शब्दसे स्मरण करते हैं, कार्यरूप सब आकस्मिक सिद्ध होते हैं। अर्थात् पृथिवीमें विजातीय तेजः-संयोगसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श—ये चारों गुण उत्पन्न होते हैं। वहाँपर रूप, रस आदिका उनकी उत्पत्तिसे पहले कोई सजातीय तत्त्व नहीं। प्रयोजन यह है कि पहलेसे पृथिवी और अग्नि दो वस्तुएँ उनकी उत्पत्तिके लिये रहती हैं, वे द्रव्यपदार्थ हैं। सुतरां इनके असत्कार्यवादके अनुसार ये आकस्मिक तत्त्व ही ठहरते हैं। यदि इनके इस असत्कार्यवादमें विजातीय दो तत्त्वोंके संघर्षसे विजातीय कोई तृतीय तत्त्व उत्पन्न हो सकता है तो इनको इतने स्वतन्त्र तत्त्वोंका जमघट्ट बाँधना वृथा ही है।

जगद्विख्यात तार्किकोंका तर्क यहाँपर बिल्कुल ही उपहासास्पद है—अविद्यामें गोता खा रहा है, जिससे कि ये (तार्किक) इतने स्वतन्त्र तत्त्वोंको मानकर भी तन्मात्रोंका कोई ठिकाना नहीं बाँध सके। यदि ये किन्हीं दो तत्त्वोंके सम्बन्धसे किसी विजातीय तत्त्वकी उत्पत्ति माननेके लिये भी तैयार हैं तो किन्हीं आवश्यक दो ही तत्त्वोंको मान सकते हैं। और उन्हींसे अन्य तत्त्वोंकी असदुत्पत्ति भी मान लें। जैसे कि सत्कार्यवादी कहते हैं—

पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।

और यदि और भी आगे अपनी कल्पनाको कष्ट देना चाहें तो क्या वे एक ही तत्त्वका महाभाग्य नहीं मान सकते, जिससे सम्पूर्ण ही जगत् हो जावे।

बात यह है कि इनका असत्कार्यवाद वहाँतक सह्य हो सकता है जहाँतक कि कोई वस्तु अपने सजातीय तत्त्वसे उत्पन्न हो? जैसे मिट्टीके पिण्डसे कोई घड़ा बनाता है, उसको नष्ट करके वह हाथी बनाता है, उसको मिटाकर वह घोड़ा बनाता है, उसको नष्ट करके जो चाहे आकृति खड़ी कर सकता है; किन्तु मृत्तिका न नष्ट होती है और न अपने स्वरूपको ही बदलती है। आकृतिमात्र यहाँ असत्कार्य है। अर्थात्—

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

इस श्रुतिके वाचारम्भणके विषयको छोड़कर अन्य प्रकारसे किसी कार्यकी कल्पना खड़ी नहीं हो सकती।

सांख्य—आपने जो रूप आदि गुणोंकी उत्पत्तिमें असत्कार्यवाद दिखाया है वह घट-पट आदि कार्योंकी उत्पत्तिसे विलक्षण प्रकारका है, जो कि तार्किकोंके लिये लज्जाजनक है।

अर्थात् आपको ऐसा कोई प्रकार निकालना चाहिये था जो घट-पट आदि कार्योंकी उत्पत्तिमें और रूप, रस आदिकी उत्पत्तिमें समान हो। यदि ऐसा कोई नियम है तो सांख्यका सत्कार्यवाद ही है, आप चाहें तो वैसा कुछ स्वीकार कर सकते हैं। हम जहाँतक देखते हैं, यही प्रतीत होता है कि सत्कार्यवाद और परमाणुवाद दोनोंमें सत्कार्यवाद ही कई लाघवोंसे मान्य ठहरता है।

आप परमाणुवादमें जगत्की उत्पत्तिसे पूर्व पृथिव्यादिके परमाणुओंकी स्थिति मानते हैं और फिर उनसे द्व्यणुकादि क्रमसे घट आदि अन्त्यावयवी तथा महा-पृथिवीपर्यन्त कार्योंकी उत्पत्ति मानते हैं, जिसमें एक घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होनेमें परमाणुके कालसे घटकी उत्पत्तितक अनन्त क्षणोंकी कल्पना तथा अनन्त द्व्यणुकादिकी उत्पत्तियाँ माननी पड़ती हैं। और हमारे सत्कार्यवादमें सभी कार्य उत्पत्तिसे पहले अपनी-अपनी स्वतन्त्र बीजावस्थामें रहते हैं। और आविर्भावकालमें अपने स्थूलरूपमें आ जाते हैं। इनको अपनी सत्तामें किसी वस्त्वन्तरके साहाय्यकी अपेक्षा नहीं होती। सीधे अपने ही सूक्ष्मरूपसे स्थूलरूपमें आ जाते हैं। जैसे वटके बीजसे वट ही सीधा उत्पन्न हो जाता है। आपके असत्कार्यवादमें अपूर्व वस्तुके उत्पन्न होनेमें एवं 'घटके कारणसे पट क्यों नहीं उत्पन्न होता?' इत्यादि आपत्तियोंके उत्तर देनेमें योग्यता आदि उपायोंपर विश्वास दिलानेके अनन्त कष्ट उठाने पड़ते हैं।

इसी प्रकार आपके अन्यान्य स्वीकृत पदार्थों और उनके सम्बन्धमें आपके माने हुए सिद्धान्तोंपर विचार करते हैं तो एक आलोचनात्मक शास्त्रान्तर ही बन जाता है। किन्तु यदि संक्षेपमें दो-चार बातोंको कह भी दें तो आपको अपनी तार्किकताके महत्त्वका पता भी चल जाय कि यह अपनी सत्तामें कहाँतक दृढ़ता रखती है। देखें तो सही—आप घट आदि विभिन्न पदार्थोंकी

१ पंगु और अन्ध दोनों मिलकर जैसे समूचे आदमीका कार्य कर लेते हैं, उसी प्रकार जड प्रकृति और चेतन पुरुष दोनोंके संयोगसे सब सृष्टि हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्तिके लिये मूलकारण परमाणुओंको मानते हैं। और हम सभी कार्योंके अव्यक्त या सूक्ष्मरूपको कारण मानते हैं। आपके परमाणु जिस प्रकार नित्य हैं, हमारे सत्कार्य भी नित्य हैं; किन्तु आगे चलकर विचारेंगे तो प्रतीत होगा कि एक हमारे सत् घटके स्थानमें आपको कितने परमाणु मानने पड़ते हैं तथा संसारके सम्पूर्ण कार्योंको उपस्थित करनेके लिये परमाणुओंकी अवस्थासे घट आदिके रूपमें लानेतक कितनी अवस्थाओंकी कल्पनाएँ करनी पड़ती हैं। एवं विशिष्ट-विशिष्ट रूपोंके लिये साधारण कारणोंको विशेष-विशेष कार्यके अभिमुख करनेमें कितनी प्रतिकूल युक्तियोंका सामना करना पड़ता है, और अदृष्ट आदिपर कितना निर्भर रहना होता है। हमारे सत्कार्यवादमें इसके लिये कोई भी आपकी जैसी दुष्कल्पना करनी नहीं पड़ती।

क्या सचमुच ही आप रूप, रस आदि जन्य गुणोंके लिये कोई ऐसा उपाय रखते हैं जैसा कि घट आदिकोंके लिये ?

जब कि यह बात यथार्थ है, तो आपके सृष्टिके नियम सर्वथा ही शिथिल हैं। उदाहरणतः—आप द्रव्य आदि पदार्थोंकी घोषणा करते हैं, उनमें कर्म आदि पाँच पदार्थ समूचे ही आपकी कल्पनाके अतिरिक्त किसी वस्तुका अवलम्बन नहीं रखते। हाँ, यद्यपि उनमें कर्मपदार्थ सर्व-प्रत्यक्ष और सर्वमान्य है, तो भी वे कहाँसे आते हैं और कहाँ जाते हैं, इसका उत्तर आपके सारे घरको देखनेपर भी कोई नहीं मिलता। ऐसे उदाहरणोंको देखकर तो आपसे शून्यवादियोंका सिद्धान्त ही अच्छा प्रतीत होता है। वे विलक्षण-विलक्षण मार्गोंमें आपके समान न भटकते ही फिरते हैं और न उनको किसी कार्यके लिये अपने नियमका परिवर्तन ही करना पड़ता है।

इन्द्रियोंकी उत्पत्तिमें वैशेषिकोंसे सांख्योंका प्रत्यवस्थान

(वैशेषिकमतखण्डन)

सांख्य—आप मानते हैं कि चक्षु आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ पृथिवी आदि पाँच महाभूतोंसे उत्पन्न होती हैं। जैसे—पृथिवीसे घ्राण, जलसे रसन, तेजसे चक्षु, वायुसे त्वक्, आकाशसे श्रोत्र। अर्थात् घ्राणेन्द्रिय, जिसके द्वारा गन्ध-गुणका ज्ञान होता है, पृथिवीसे शरीरके साथ उत्पन्न होती है। उसकी उत्पत्तिसे पूर्व उसका कोई बीजस्वरूप अव्यक्त रूप नहीं रहता, अथवा यों समझिये कि उसका कोई सूक्ष्म रूप नहीं रहता, जैसे कि घटका कपालोंमें।

इसी प्रकार रसनेन्द्रियका सूक्ष्म रूप जलमें नहीं रहता, जैसे ओलेका पानीमें। चक्षुःइन्द्रियका सूक्ष्म रूप अग्निमें नहीं रहता, जैसे वह्निपुञ्जका रूप वह्निमें। और त्वक्-इन्द्रियका रूप वायुमें नहीं रहता, जैसे वात्या (वायुचक्र) का रूप वायुमें नहीं रहता।

यद्यपि श्रोत्रेन्द्रिय, जो इनमें पाँचवीं और शब्दके ज्ञानका साधन है, उसकी अत्यन्त उत्पत्ति नहीं होती, प्रत्युत वह आकाशरूप होनेसे अपनी उत्पत्तिसे पूर्व भी रहती है, तथापि उसका कोई विशेष आकार नहीं रहता, केवल कानकी पुड़िया या दोनेकी उत्पत्तिसे उसकी उत्पत्ति मानी जाती है। और उसीके आकारसे वह आकारवाली भी है, स्वातन्त्र्यसे उसका कोई आकार नहीं। सर्वथा ये सब इन्द्रियाँ भूतजन्य हैं और उनकी उत्पत्तिसे पूर्व इनका कोई सूक्ष्मरूप विशेष आकार नहीं है।

इस मतपर हम (सांख्यलोग) इस प्रकार विरोध करते हैं—जैसे वृक्ष, लता आदि स्थावर अपने बीजमें सूक्ष्मरूपसे (अव्यक्तरूपसे) रहते हैं और क्रमसे पृथिवीमें जमकर बड़े और बड़ेसे भी बड़े आकारमें पुष्प, फल आदिसे विस्तृत हो जाते हैं। अर्थात् वट, निम्ब और कदम्ब आदि वृक्ष आपसमें विभिन्नजातीय होकर अपनी-अपनी जातिमें बाल्य, यौवन, वृद्धताकी अवस्थामें भी मूलसे चोटीतक पहलेके समान ही सब अङ्गोंमें शरीरके परिमाण-के परिवर्तन होनेपर भी समान आकृतिवाले ही रहते हैं। उनकी आकृतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, जिससे कि औरके स्थानमें और ही समझा जावे। किन्तु जैसा उनके अङ्गोंका अवस्थान, स्थिति या बनावट है, वैसा ही प्रत्येक अवस्थामें बना रहता है। इसीसे जो वट आदि वह है, वही वट आदि प्रतीत होता रहता है। इसी प्रकार और-और प्राणियोंमें भी देखा जाता है। जैसे मनुष्यके बीजसे मनुष्य और गौके बीजसे गौ तथा पक्षीके बीजसे पक्षी होते हैं। तात्पर्य यह कि वृक्ष आदिके समान ही नियमसे चक्षु, श्रोत्र आदि अङ्गोंवाले पहले-जैसी आकृतिवाले, पहलेके ही समान बनावटवाले उन्हीं-उन्हीं जातियोंके शरीर पैदा होते हैं; किन्तु मनुष्यके बीजसे पशु और पशुके बीजसे मनुष्य कभी पैदा नहीं होते। इसीलिये प्राणीके शरीरमें रहनेवाली चक्षु आदि इन्द्रियाँ शरीरके अन्य अवयवोंके साथ अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्तिसे पहले सूक्ष्मरूपमें व्यक्त अवस्थाके समान ही पहली अवस्था (अव्यक्त-अवस्था) में भी वैसे ही आकार-में और उसी स्थानपर रहती हैं, अन्यथा संस्थानोंके आकारोंमें विपर्यय होता। यदि ऐसा कहा जाय कि कर्मफलके भोगके लिये अदृष्ट ऐसा करता है, तब यह आपत्ति उपस्थित होती है कि समर्थ अदृष्ट और और प्रकारके शरीरोंसे कर्मफलका भोग क्यों नहीं करवाता। इसलिये इन्द्रियोंवाली आकृति नित्य ही है और अदृष्ट नित्यवस्तुके करनेमें समर्थ नहीं है। अन्यथा आत्मा आदिको भी अदृष्ट ही बना दे। घटादि अनित्य वस्तु ही मृदादिसे अदृष्टवश निर्मित हो सकती है। अथवा अदृष्ट साधारण कारण हो सकता है। पर साधारण कारण असाधारण कारणके बिना कार्य साधन नहीं कर सकता, जैसे—घटोत्पत्ति मृत्तिकामात्रसे कुलालके बिना नहीं हो सकती। ऐसा होनेपर इन्द्रियोंकी उत्पत्तिमें उनके अव्यक्त-रूपके अतिरिक्त कोई असाधारण कारण दिखायी नहीं देता, जो कि सजातीय कार्योंको सिद्ध करे; इसलिये शरीरके साथ ही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। यह आप (वैशेषिकों) का सिद्धान्त निःसार ही है (अदृष्टकी कारणता भी अगतिक गति है)। बस अब हम आपसे विदा होते हैं और कहने-सुननेके लिये क्षमा माँगते हैं। नमस्कार ! फिर मिलेंगे।

(क्रमशः)

संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन

(लेखक—एक साधु)

श्री परमात्मदेव तथा उनके भक्तोंकी कृपा और आज्ञासे आज मैं यहाँ संन्यासी साधकोंके आचरण और कीर्तनके सम्बन्धमें उन भावोंको लिखनेकी चेष्टा करता हूँ जो मुझे प्रिय लगते हैं। यद्यपि मैं अपनेको लिखने और इस तरह उपदेश-आदेश देनेका किसी तरह भी अधिकारी नहीं मानता, और न मुझसे ऐसे आचरण पूरी तौरसे बनते ही हैं, तथापि मुझको ऐसे शास्त्रीय तथा सन्तोंके आदरणीय आचार-विचार कुछ प्रिय मालूम होते हैं, इसीलिये ऐसी चर्चामें समय बिताना अपना अहोभाग्य समझकर कुछ प्रयास कर रहा हूँ। आशा करता हूँ, मेरे अन्यान्य साधक भाई भी ऐसे विचार यदा-कदा प्रकट करेंगे। क्योंकि ऐसा करनेसे मुझ-सरीखे लोगोंको उनके विचार पढ़नेको मिलेंगे और उन भाइयोंका भी कुछ समय सच्चर्चामें बीतेगा। सन्त-महात्मा तथा शास्त्रों-के वचनोंके अनुसार सत्संगमें सुने हुए और ग्रन्थोंमें पढ़े हुए जो कुछ विचार मैं यहाँ लिखता हूँ, उनमें यदि कोई बात अनुचित हो तो विज्ञ महानुभाव अपना ही बालक समझकर मुझे क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

साधकको हर्ष, शोक, काम, क्रोध आदिसे अलग रहनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिये। कम-से-कम इनके वशीभूत तो कभी नहीं होना चाहिये। उसमें भी मुझ-जैसोंको तो राग-द्वेषस्वरूप कामिनी और काञ्चनसे उसी तरह डरना चाहिये जैसे साधारण लोग भूत, प्रेत, सर्प, व्याघ्रादिसे डरते हैं और यह समझना चाहिये कि जिस क्षण कामिनी-काञ्चनमें संन्यासी साधककी आसक्ति हुई कि बस, उसी क्षण उसका पतन हो गया।

यह कभी नहीं समझना चाहिये कि राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि अन्तःकरणके धर्म हैं। ये धर्म नहीं हैं, विकार हैं। जो इनको अन्तःकरणके धर्म समझ लेता है वह शरीर-नाश होनेतक अन्तःकरण रहनेके कारण इनका भी रहना अनिवार्य मानता है; फलतः वह अपनेको ज्ञानी मानकर भी ऐसा समझ लेता है कि राग-द्वेष, काम-क्रोधादि तो जबतक अन्तःकरण है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तबतक रहेंगे ही, मेरा इनसे क्या सम्बन्ध है ? वास्तवमें ऐसा समझना भ्रम ही है। जो ऐसा समझता है और राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिसे बचनेकी कोशिश नहीं करता, वह ज्ञानी तो दूर रहा, अच्छा साधक भी नहीं है।

यह निश्चय समझ रखना चाहिये कि सच्चे ज्ञानीमें वस्तुतः काम-क्रोध आदि दोष रहते ही नहीं। जिसे खूब अच्छा बोलना आता है, जो शास्त्रवाक्योंद्वारा ब्रह्मका सुन्दर निरूपण कर सकता है अथवा जो ज्ञानपर अच्छे-अच्छे तर्कप्रधान निबन्ध लिख सकता है, वह ज्ञानी ही है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। ये सब बातें तो ग्रन्थोंके पढ़नेसे हो सकती हैं। नाटकमें भी शुकदेवका पार्ट किया जा सकता है। ज्ञानी तो वह है जो अज्ञानके समुद्रसे सर्वथा तर गया। राग-द्वेष, काम-क्रोधादि अज्ञानमें ही हैं। ज्ञानमें तो इनका लेश भी नहीं।

जो लोग वास्तविक ब्राह्मी स्थितितक पहुँचनेसे पहले ही केवल पुस्तकीय ज्ञानके आधारपर अपनेको ज्ञानी मान बैठते हैं और विधि-निषेधसे मुक्त समझकर साधन छोड़ बैठते हैं, वे प्रायः गिर ही जाते हैं। क्योंकि अज्ञान है तबतक इन्द्रियोंके भोगोंमें आसक्ति है ही, और पाप होनेमें प्रधान कारण भोगोंकी आसक्ति ही है। फिर, जहाँ काम-क्रोधादि ही अन्तःकरणके अनिवार्य धर्म मान लिये जायँ, वहाँ तो कहना ही क्या ? अतएव मुझ-जैसे साधकोंको तो बड़ी ही सावधानीके साथ दुर्गुणोंसे बचते रहनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये। अपनेको राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभादि दोषोंसे हरदम बचाते रहना चाहिये। संन्यासाश्रममें तो साधकको कभी भूलकर भी स्त्री और धनके साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध न जोड़ना चाहिये। इनका संग ही न करना चाहिये। जो सिद्ध महापुरुष हैं, उनमें तो कोई ऐसा दोष रह ही नहीं सकता।

यह स्मरण रखना चाहिये कि ढोंगी ज्ञानीकी अपेक्षा अज्ञानी रहना अच्छा है; उसको पापोंसे डर तो रहता है। ढोंगी तो जान-बूझकर ढोंगकी रक्षाके लिये भी पाप करता है। अतएव ढोंगको कभी कल्पनामें भी न आने देना चाहिये; सच्चा संन्यासी बनना चाहिये। और—

यावदायुस्त्वया वन्द्यो वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतेरेवैष निश्चयः॥

(तत्त्वोपदेश ८६)

——आचार्यचरणोंकी इस उक्तिके अनुसार शास्त्र-की विधिको सर्वदा मानते रहना चाहिये। संन्यासीके पालन करनेयोग्य कुछ धर्म ये हैं——गृहस्थोंका संग न करे। स्त्रीकी तो तस्वीर भी न देखे। धनका स्पर्श न करे। किसीके साथ कोई नाता न जोड़े। किसी भी विषयमें ममत्व न करे। मान-बड़ाई स्वीकार न करे। वैराग्यकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करे। इन्द्रियोंको संयममें रक्खे। वस्तुओंका संग्रह न करे। जमात न बनावे। घर न बाँधे। व्यर्थ न बोले। ब्रह्मचर्य धारण करे। काम-क्रोध-लोभादिसे सदा मुक्त रहे। किसीसे द्वेष न करे। किसीमें राग न करे। नित्य आत्मचिन्तन या भगवत्स्मरणमें ही लगा रहे।

जो संन्यासी अपने इस संन्यास-धर्मका पालन नहीं करता वह प्रायः गिर जाता है। अतएव अपने आश्रम-धर्मका पूरा पालन करना चाहिये। विधि-निषेधसे परे पहुँचे हुए महापुरुषोंके द्वारा भी लोकसंग्रहार्थ आदर्श शुभ कर्म ही हुआ करते हैं।

अगर भक्त बननेकी चाह हो तो भगवान्‌के शरण होकर भगवान्‌का सतत भजन करते रहना चाहिये। धन, मान, बड़ाई आदिकी चाहको मनमें न आने देना चाहिये। लोग भक्त समझें या कहें, इस बातकी परवा छोड़ ही देनी चाहिये। भगवान्‌का नाम और गुणकीर्तन प्रेमसे करते रहना चाहिये। जहाँ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक बने, अपनी भक्तिको प्रकट नहीं होने देना चाहिये। लोग हमारी पूजा करें, हमारा सम्मान करें, ऐसा अवसर ही नहीं आने देना चाहिये। मान-बड़ाईसे सदा सावधानीसे बचते रहना चाहिये। स्त्रीका और स्त्रीसंगियोंका संग तो कभी नहीं करना चाहिये। धनका लोभ मनमें न आने देना चाहिये। प्रतिष्ठाको तो शूकरीविष्ठा ही समझना चाहिये।

कीर्तन करना चाहिये, खूब कीर्तन करना चाहिये; परन्तु करना चाहिये श्रीभगवान्‌के प्रीत्यर्थ, लोकरञ्जनके लिये नहीं। लोकरञ्जनका कीर्तन बाह्य हो जायगा। कीर्तन करनेवालेके मनमें यह दृढ़ भाव निश्चयरूपसे होना चाहिये कि मेरे भगवान् निश्चय ही यहाँ मौजूद हैं और मैं उन्हींके सामने उन्हींके प्रीत्यर्थ उनके नाम-गुण गा रहा हूँ। भगवान्‌के नाम-गुणोंके अर्थका चिन्तन करते हुए,—भगवान्‌का ध्यान करते हुए कीर्तनमें मस्त हो जाना चाहिये। यदि ऐसा भाव न हो तो इस प्रकारका अभ्यास ही करना चाहिये। परन्तु ऐसा कभी न सोचना चाहिये कि मेरे इस कीर्तनसे लोगोंको—देखने-सुननेवालोंको प्रसन्नता हुई या नहीं, उनका मन मेरी ओर आकर्षित हुआ या नहीं। भगवान्‌के नाममें श्रद्धा कीजिये, प्रेम कीजिये और श्रद्धा तथा प्रेममें सानकर ही भगवान्‌के नामका उच्चारण कीजिये। फिर आपके मुखसे निकला हुआ एक ही नाम चमत्कार उत्पन्न कर देगा। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीमुखसे निकला हुआ एक ही नाम सुननेवालेको पागल कर देता था; क्योंकि उस नामके साथ श्रीचैतन्यकी प्रेमशक्ति भरी रहती थी।

एक बात और याद रखनी चाहिये। भगवान्‌का कीर्तन करनेवालोंको सदाचारी होना ही चाहिये, दैवी सम्पत्तिवान् बनना ही चाहिये। जो भगवान्‌का नाम लेकर नाचता-गाता है, परन्तु जिसके आचरण शुद्ध नहीं हैं, उससे जनतापर अच्छा असर नहीं पड़ता। लोग उसको आदर्श मानकर आचरणोंकी ओर ध्यान नहीं देते, जिससे दूसरे लोगोंको कीर्तन तथा कीर्तन करनेवालोंपर, यहाँतक कि उनके कीर्तनीय भगवान्‌पर भी आक्षेप करनेका अवसर मिल जाता है। अतएव हमें अपनी जिम्मेवारी समझनी चाहिये। कहीं हमारे आचरणसे पवित्र संकीर्तन और हमारे भगवान्‌पर कोई कलंक न लगाने पावे। वास्तवमें पवित्र संकीर्तन और भगवान्‌पर तो कलंक लग ही नहीं सकता। तथापि कहनेके लिये भी हमारे दोषसे ऐसा क्यों होना चाहिये?

आचरण शुद्ध नहीं है तो भी कीर्तन करना चाहिये, परन्तु एकान्तमें। आचरणोंकी शुद्धिके लिये भगवान्‌के सामने रोना चाहिये। भगवान्‌से भीख माँगनी चाहिये। परन्तु सावधान! संकीर्तनके नामपर दुराचरणको कभी छिपाना नहीं चाहिये और दुराचारका समर्थन तो किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये।

संकीर्तनके नामपर वर्ण और आश्रमके कर्मोंकी अवहेलना या उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। स्वधर्मको पालते हुए ही कीर्तन करना चाहिये। ज्ञानकी, वैराग्यकी, सदाचारकी, वर्णाश्रमधर्मकी और सन्ध्या-गायत्रीकी संकीर्तनके नामपर कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये; बल्कि इनको अवश्यपालनीय समझना चाहिये, इन सबका आदर करना चाहिये और यथा-योग्य शास्त्रविधानके अनुसार पालन करना चाहिये।

संकीर्तनके नामपर पक्षपात या भगवान्‌के नामोंमें ऊँच-नीच-बुद्धि और दलबन्दी नहीं करनी चाहिये। संकीर्तनका संगठन अवश्य करना चाहिये, परन्तु दलबन्दी नहीं। सरल पवित्र निष्कपट निष्काम अनन्य प्रेमभावसे भगवान्‌के पवित्र नामोंको स्वयं गाना चाहिये और दूसरोंको ऐसा करनेके लिये प्रेरणा करनी चाहिये। परन्तु यथासाध्य उपदेशक, नेता अथवा आचार्य नहीं बनना चाहिये। पूजा, सत्कार, मान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ाई आदिसे सदा अपनेको बचाते रहना चाहिये। धन और स्त्रीके लालचमें तो कभी पड़ना ही नहीं चाहिये।

संकीर्तनके समय मुक्तकण्ठसे भगवान्‌के नामोंका घोष करना चाहिये। ज्ञान, विद्वत्ता, पद, धन आदिके अभिमानमें चुप नहीं बैठ रहना चाहिये। खड़ा कीर्तन होता हो तो संकोच छोड़कर खड़े हो जाना चाहिये। कहीं हमारे किसी आचरणसे भगवन्नामसंकीर्तनका अपमान न हो जाय। परन्तु नाचना चाहिये प्रेमावेश होनेपर ही, लोगदिखाऊ नहीं। कलाका नृत्य दूसरी चीज है एवं प्रेममय भगवन्नामकीर्तनका दूसरी।

याद रखना चाहिये, भगवन्नामकीर्तन बहुत ही आदरणीय और ऊँचा साधन है। इसका ऊँची-से-ऊँची भावनासे साधन करना चाहिये; ऊँचे-से-ऊँचे आचरणोंसे युक्त होकर कीर्तन करना चाहिये। पवित्र पुरुषोंद्वारा किये हुए भगवन्नामकीर्तनकी ध्वनि जहाँतक पहुँचेगी वहाँतकके समस्त जीवोंका अनायास ही कल्याण हो सकता है।

ईश्वर और स्वेच्छाचार

(लेखक—श्रीहरिकोशलजी)

इस अनन्त ब्रह्माण्डमें जड-चैतन्य सब अपने-अपने मार्गपर चल रहे हैं। न कोई किसी-का ऐब निकालता है और न कोई अपने कर्तव्यसे दिल चुराता है। सब जीवधारियोंमें बुद्धिका दम भरनेवाला, सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य ही ऐसा है जो अपनेको उन्नतिपथपर चलानेके बहाने भ्रष्टमार्गगामी होकर अपना पतन कर रहा है। ज्ञानका सहारा लेकर अभिमानवश अपनी मनमानी करना चाहता है। इसीलिये इसने पञ्च-महाभूतकी मिट्टीपलीद कर दी है, और फलस्वरूप अपनेको इतना पराधीन बना लिया है कि एक मील पैदल चलना भी इसके लिये असम्भव-सा हो रहा है। थोड़ी-सी ठण्डसे इसे निमोनिया होता है, और जरा-सी गरमीसे लू लगती है। छोटे-छोटे कीड़ोंसे अपने स्वास्थ्यको खराब कर रहा है। 'हाथीको वशमें करनेवाला' मलेरियाके कीड़ोंसे मर जाता है। मतलब यह कि इसने प्रकृतिके ऊपर अत्याचार करके अपनेको अनाचारी बना लिया है।

हमने मानवजातिकी प्रारम्भिक अवस्थामें लीलामय-की लीला देखी। विश्वका विस्तार, जड-चेतनका चमत्कार, सूर्य-चन्द्रका प्रकाश, तारोंकी चमक और पर्जन्यका परिभ्रमण देखा। साथ ही जन्म-मरण, सुख-दुःख और विनाशके विकासपर विचार किया। इससे हमलोगोंका निर्मल हृदय भगवान्‌की अनन्त लीला देखकर भक्तिसे परिप्लुत हो गया। और प्राणिमात्रमें, यहाँतक कि जड-चेतनमय विश्वमें, ईश्वरकी शक्तिका दर्शन किया और विश्वमैत्रीके जलसे मानवजीवन-तरुको सींचकर उसकी सघन छायामें प्राणिमात्रको शान्ति प्रदान की। भक्तलोगोंने ईश्वरकी स्मृतिमें, प्रार्थनामें मनको मग्न रखकर आनन्दमय जीवनयापन किया। उन्हें पेट भरनेके लिये साधारण अन्न, ताजा फल और थनदुहे दूधहीकी आवश्यकता थी। उसके लिये उस समय उन्हें किसीका गला नहीं घोंटना पड़ता था और न किसी दूसरे देशसे युद्धकी आयोजना ही करनी पड़ती थी।

ज्यों-ज्यों ज्ञानाभिमानकी वृद्धि होने लगी—लोग अपने पैरोंपर खड़े होने लगे, त्यों-त्यों अपने लाभके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोभमें पड़ने लगे। जिससे प्राणिमात्र त्रस्त हो गये और आज पेट भरनेके लिये 'नानायोनिसमुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः' की स्थितिमें वर्तमान हैं।

ईश्वर मन और बुद्धिसे परे है। यद्यपि ईश्वरने अखिल विश्वको उत्पन्न किया है तो भी यह बात तो निर्विवाद माननी पड़ती है कि ईश्वरसम्बन्धी विचारोंका स्रष्टा मनुष्य ही है; उन विचारोंमें भेद होनेसे ईश्वर ही नहीं है, यह मान लेना नासमझीसे कम नहीं है।

आजकल पढ़े-लिखे लोगोंमें ईश्वरविरोधी विचारोंका प्रवाह बढ़ रहा है। कई देशोंमें, जैसे रूसमें तो ईश्वरका बहिष्कार ही कर दिया गया है। हमारे भारतवर्षमें भी ईश्वरविरोधी विचारोंका प्रचार होने लगा है।

सूर्यको सूर्य नहीं माननेसे या उसपर धूल फेंकनेसे सूर्यका कुछ भी अपकार नहीं होता। न तो सूर्यका अस्तित्व खतरेमें पड़ता है, और न वह गँदला ही होता है। हाँ, वह धूल जब जमीनपर गिरती है तब उन्हीं भले आदमियोंकी आँखोंमें गिरकर उन्हें अन्धा बना देती है और पीड़ा पहुँचाती है। यही दशा ईश्वरविरोधियोंकी होती है।

ईश्वरको माननेमें दया, क्षमा, परोपकार और उदारता आदि दिव्य शक्तियोंके विकासके साथ-ही-साथ मनुष्यमें भक्तिकी भावनाका अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है। न उसे हारनेका रंज होता है और न जीतकी प्रसन्नता होती है। उसका स्वार्थ परमार्थके रूपमें परिणत हो जाता है, और वह सेवा और त्यागकी अवधितक चला जाता है।

ईश्वरविरोधी मण्डलका कथन है कि संसारमें ईश्वरके नामपर खूनकी नदियाँ बह गयीं, बड़े-बड़े अत्याचार हुए, दीन-दुर्बल अबलाओंको भी असंख्य अत्याचारोंकी चक्कीमें पिस जाना पड़ा और वह धर्मके नामपर, ईश्वरके नामपर। इसलिये ईश्वर और धर्मके नामपर होनेवाले अत्याचारोंसे बचनेका सरल उपाय ईश्वर और धर्मका बहिष्कार ही है।

ईश्वरविरोधी लोगोंको हम दो विभागोंमें बाँट सकते हैं—

(१) जो नीच स्वार्थवश ईश्वरके नामपर जनताको धोखा देते हैं। जिन्होंने स्वार्थवश धन-मान आदिकी इच्छासे धर्मग्रन्थोंके झूठे अर्थ किये और अपने स्वार्थी विचारोंको दूसरोंपर जबरदस्ती लादा, उनसे मनवाया। जिन्होंने इन्कार किया उनको दबाया, डराया; यही नहीं, परिस्थितिके अनुसार जो कुछ बन पड़ा सब किया। धर्मके नामपर जीवहिंसा, चोरी, लूट, व्यभिचार आदितक वैध समझे गये। भोले-भाले सीधे लोगोंको ईश्वर और धर्मके नामपर धोखा दिया गया, समझके अन्धे और गाँठके पूरे और पाप करते हुए ही सहजमें मुक्तिकी आशा रखनेवालोंकी मनोवृत्तिसे फायदा उठानेके लिये धूर्त लोगोंके इस प्रकारके षड्यन्त्र चलते रहे। यह पहले भी था, अब भी है और भविष्यमें भी रहेगा। मनुष्य स्वार्थका दास बनकर क्या नहीं कर सकता है? एक प्रकारके तो ईश्वरविरोधी ये हैं।

(२) दूसरे ईश्वरविरोधी लोगोंका मण्डल वह है जो उपर्युक्त धूर्तोंकी कृतियोंके उदाहरण दे-देकर और आधिव्याधिग्रस्त जनतामें इन भावनाओंका प्रचार कर रहा है कि ईश्वर, धर्म दोनों मिथ्या हैं; इन्होंने विधवाओंको जलाया, कत्लें करायीं, व्यभिचार फैलाया, बड़े-बड़े युद्ध कराये और लोगोंकी मनोवृत्तिको गुलामीके बन्धनमें बाँध दिया। वे अपनेको एक समाज-विशेषका अंग समझने लगे, महान् मानवजाति उनके लिये अछूत समझी गयी। अपनी संस्कृतिके सिवा सब लोग नारकीय, काफिर हैं; वे हमारे शत्रु हैं। ये अवगुण जिस धर्म और ईश्वरके माननेसे आये उस धर्म और ईश्वरको आज पूर्णरूपसे नष्ट क्यों न कर दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सत्य है कि धोखेबाजोंकी कृतियोंसे, धार्मिक झगड़ोंसे और खून-खराबीसे कुछ सहृदय लोगोंके हृदयोंमें भयंकर आग जल रही है, वे लोग सुधारपर तुले हुए हैं। वे इस सर्पोंसे भरे हुए समाज-मन्दिरको आगसे जलाकर भस्म करना चाहते हैं। वे इसके गाटर, ईंटे, पत्थर, लकड़ी और चूनेके एक-एक कणतकको भस्मीभूत करनेपर तुले हुए हैं। कहते हैं कि देखें अब ये सर्प कहाँ जायँगे? अब हम नयी ईंटोंसे, नये सामानसे मकान बनायँगे, उसमें ये सर्प कहाँसे आ सकेंगे?' परन्तु इस आवेग और आवेशसे क्या होगा। एक मन्दिरके ध्वंसपर दूसरा मन्दिर बनेगा, और उसमें नये ढंगके नये-नये साँप उत्पन्न हो जायँगे। यही तो हो रहा है। संहारकोंके नवीन मन्दिरोंमें भी आज साँप दिखायी देने लगे हैं, वे साँप भी नये हैं और पहलोंसे अधिक भयंकर हैं।

रूसने ईश्वर और धर्मका खात्मा कर दिया है। वहाँका हाल सुनिये। अब पुरोहितों और पण्डोंके व्यभिचारसे स्त्रियोंका पिण्ड छूट गया। परन्तु एक रँगीला युवक मीठी-मीठी बातें करके एक युवतीको फुसलाता है, दोनों मिलकर शामको थानेमें नाम लिखा आते हैं कि हमने अपनेको विवाहित समझा है। आनन्दसे दो-चार दिन बितानेके बाद पुरुष अपनी स्थिति खतरनाक समझने लगता है और थानेमें जाकर उक्त विवाहको तलाकरूपमें परिणत कर देता है। बेचारी युवतीपर गर्भस्थ बच्चेकी आफत आ पड़ती है। उस बच्चेको भी मारे-मारे फिरनेको बाध्य होना पड़ता है। इस प्रकार मनचले युवक कई बच्चे छोड़कर नया-नया आनन्द ढूँढ़ते फिरते हैं। इधर स्त्रियोंके एक बच्चा हुआ कि फिर दूसरे पुरुषका मिलना मुश्किल हो जाता है। फिर या तो बेचारीको पुरुषोंकी खुशामद करनी पड़ती है और या फिर जाल रचना पड़ता है। कहाँ तो स्त्रीजाति अपने प्रेमके लिये हँसती-हँसती सब कठिनाइयोंको झेलती है और पुरुषोंसे कभी भी वैवाहिक प्रस्ताव नहीं करती। अपनी सन्तानके लिये गर्व करती है। और कहाँ कुसंस्कृतिके कारण पुरुषोंकी खुशामद करती है, उन्हें जालमें फँसाती है। आज 'अ' से प्रेम है, कल 'क' से, परसों अलिफ और नरसों 'ई' से। रूसमें वेश्यालय उठ गये हैं, परन्तु समस्त स्त्रीजाति ही वेश्याके रूपमें परिणत हो चली है। पतनकी पराकाष्ठा है। स्वतन्त्रताके नामपर मातृजातिका घोर पतन है। इने-गिने वृद्ध नेताओंको यह पद्धति अखरने लगी है। और बच्चोंका प्रश्न तो रूसकी जनताको भी आज किंकर्तव्यविमूढ-सा कर रहा है। देखें, वे लोग आगे कहाँतक बढ़ते हैं? यह एक उदाहरण है, ऐसे ही अनेकों हैं।

लड़ाई-झगड़ा और रक्तपात, रूसकी क्रान्ति, यूरोपका पञ्चवर्षीय महासमर, चीन-जापानका झगड़ा, मजदूर-धनवानोंके झगड़े, इटली-अफ्रिकाकी कलह और रूस तथा अन्य राष्ट्रोंकी अनबन, यही नहीं, भावी समरकी तैयारी, यह सब क्या ईश्वर और धर्मके नामपर है? जारकी कत्ल, नादिरशाहपर गोलीबार, औरंगजेबके हाथसे अपने लोगोंकी दुर्गति, इनमें कौन-सा धार्मिक तथ्य था। क्या वे झगड़े अब कम हो गये हैं?

धोखेबाजी, जुआ, व्यापारिक चालबाजी, जासूसी, सभ्यतापूर्ण चोरी और डकैतियाँ, रिश्वत और नये-नये देशोंको जीतनेकी इच्छा, पतियोंको मारनेकी स्कीमें, यह सब पण्डे-पुजारियोंकी धोखेबाजीसे बढ़कर नहीं है?

मनुष्यकी स्वार्थबुद्धि, व्यक्तिगत लोभ और मनुष्यतासे पतन ही इन कुकृत्योंमें प्रधान कारण है। ये ही अवगुण समाजमन्दिरके विषधर सर्प हैं, इन्हें मारनेके लिये मन्दिर जलानेके बजाय कुशिक्षारूपी बिलको परमार्थरूपी ईंटोंसे मूँद देना चाहिये। सुशिक्षारूपी नेवले पालकर समाजमन्दिरमें घुमाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असल बात यह है कि मनुष्यजातिने मनुष्यताको खो दिया। मनुष्यताहीन प्राणीका उदाहरण देकर धर्म तथा ईश्वरको कलङ्क लगानेके बजाय हमें मनुष्यताको प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। ईश्वरमें भक्ति रखकर दया, क्षमा, परोपकार, उदारता, त्याग, संयम, सत्य आदि सद्गुणोंकी वृद्धि करनेके साथ-साथ लोभ, मोह, पाखण्ड आदिको जीतना चाहिये।

यह बात निर्विवाद सत्य है कि संसारके सभी मनुष्य धर्मात्मा, दयालु, सदाचारी तथा महाशय नहीं हुआ करते। दुष्ट प्रकृतिके लोग अपनी दुष्टतासे बाज नहीं आवेंगे। वे परिस्थितिके अनुसार वेष बदल-बदलकर धोखा देनेको तैयार हो जायँगे।

आज भी हमलोग धोखेबाजोंको दण्ड देते हैं। धोखेबाज सभी जगह पाये जाते हैं। जहाँ उनकी दशा सुरक्षित होती है, वहीं भले आदमी-से बने बैठे रहते हैं। किन्तु जहाँ उन्हें अपना मार्ग कण्टकाकीर्ण मालूम होता है, वहाँ वे षड्यन्त्री बन जाते हैं। राजनीति, समाजनीति आदि सभी जगह ऐसे षड्यन्त्री रहते हैं। इससे क्या राज्य और समाजको नष्ट कर देना चाहिये? और यह तैमूरलंगी आजतक किसीने नहीं की। हाँ, सुधार करते आये हैं और भविष्यमें भी ऐसा ही करनेकी संसार कोशिश करता रहेगा। हमें भी धर्मके माननेवालोंके कुविचारोंको दूरकर उनका सुधार करना चाहिये।

खेद है कि ऐसा न करके आज लोग धर्म और ईश्वरका विरोधी मण्डल बनाकर समाजमें अनाचार फैलानेकी कोशिश करते हैं। दर्शनशास्त्री, ब्रह्मज्ञानी और विज्ञानवेत्तालोग अपनेको समर्थ समझने लगते हैं और अपनी समझतकके संसारको निराधार पाकर अपने तर्कके सहारे स्याह-सफेद एक करने लगते हैं। इन लोगोंके मायाजालमें पड़कर आज संसार बधिकरस्थ गायके सदृश छटपटा रहा है। ईश्वर और धर्मके पीछे डण्डा लेकर चलनेका नतीजा आचारपर पड़ेगा। आचारभ्रष्टतासे ही आज संसार तबाह हो रहा है। चरित्रहीनताके कारण आज सब ओर—व्यक्तियोंमें और राष्ट्रोंमें एक दूसरेका गला दबानेकी कोशिशें हो रही हैं। ईश्वरविरोधी मण्डलका विश्वास ईश्वरमें नहीं हो तो उसे चाहिये कि वह संसारको उच्च चरित्रकी शिक्षा दे, आचार-धर्मकी शिक्षा दे। दया और प्रेमके सच्चे उदाहरण जनताके सम्मुख रक्खे। और आचार-धर्मके विरोधीके लिये दण्डकी व्यवस्था करे। वास्तवमें ऐसा ईश्वर और धर्मको माननेसे ही हो सकेगा।

ईश्वरके विश्वाससे ही भक्तिके विचार उत्पन्न होते हैं। भक्तिके ब्रह्मानन्दके आनन्दको वही जानता है जिसने कभी ईश्वरकी सच्चे दिलसे आराधना की है। ऐसे लोगोंने ही विश्वकी भलाईके यत्न किये हैं। शेष लोगोंने तो अपने विचार दूसरोंपर लादनेका यत्न किया या प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर अपने प्रतिद्वन्द्वीको नेस्तनाबूद करनेके लिये अपना गुट्ट तैयार किया, उससे चाहे समाजविशेषका लाभ हो गया हो। इसलिये संसारके उपकारके लिये ईश्वर तथा धर्मके बहिष्कारकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि इनका आदर करते हुए ही सदाचारकी शिक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता है। स्वेच्छाचारसे तो दुःख बढ़ेगा ही!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरका अनुभव

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)

[गतांकसे आगे]

१२-संसारके सब जीवोंके कल्याणके लिये परमात्माने नियम बनाये हैं। प्राणिमात्रको परमात्मा सत्यके निकट पहुँचनेके लिये सामर्थ्य प्रदान करता है। अगर विपरीत बुद्धि छोड़कर, ईश्वरीय नियमानुसार निरीक्षण किया जाय तो यह बात सहज ही समझमें आ सकती है।

आस्तिकवादी इस संसारको अनादि मानते हैं। अनादिका अर्थ है आदि यानी उत्पत्तिरहित। किसकी उत्पत्ति नहीं, इस पृथ्वीकी अथवा पृथ्वीवासी मनुष्यादि प्राणियोंकी? इस पृथ्वीकी उत्पत्तिका निश्चित काल मालूम न होनेपर भी यह मानना ही पड़ेगा कि इसकी उत्पत्ति किसी अज्ञात भूतकालमें हुई थी। कारण, किसी भी कार्यको हम अनादि नहीं कह सकते और पृथ्वी भी एक कार्य ही है। वनस्पति, पशु, पक्षी और मनुष्यादि सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशका अनुभव तो हमें बराबर हो ही रहा है। तो फिर संसार अनादि है, इसका क्या मतलब? जीवात्मा—जो परब्रह्मका अंश है—अनादि है और कार्यरूप विनाशी पृथ्वी, सूर्यादि मण्डल और प्राणिमात्रके शरीरका उपादान कारणरूप प्रकृति भी अनादि है। परन्तु दोनोंमें अन्तर यह है कि जीवात्मा अपरिणामी नित्य है और प्रकृति परिणामी नित्य है। परिणामी तत्त्वको अपरिणामी तत्त्वका आधार होना चाहिये। नित्य, अविचल, अपरिणामी आधारके बिना परिणामी प्रकृतिकी नित्यता सिद्ध नहीं हो सकती। प्रकृतिके जिस परमाणुसमुदायसे इस ब्रह्माण्ड (सूर्यादि मण्डल, पृथ्वी और प्राणिमात्र) की उत्पत्ति हुई है, उसी परमाणु-समुदायसे इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिसे पहले अनन्त बार ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और नाश हो चुका है। प्रकृतिमेंसे कोई भी सृष्टि पहली बार नहीं हुई। ऐसे कार्यरूप जगत्के अनन्त बार उत्पन्न होने और नष्ट हो जानेपर भी चैतन्य (ईश्वर और आत्मा) तथा कारणरूपा मूल प्रकृति अनादि होनेके कारण सृष्टिको अनादि माना है। कार्यरूपा सृष्टिको अनादि नहीं माना है। प्रवाहरूपसे तो सृष्टिको अनादि कह सकते हैं; किन्तु केवल उत्पत्तिका अभाव कहकर वर्तमान सृष्टिको किसी भी विद्वान्ने अनादि नहीं माना है। और सृष्टिका जब-जब आरम्भ होता है तब-तब नये-नये जीवात्माओंकी उत्पत्ति नहीं होती। परन्तु पूर्व सृष्टिके अनुशयी (प्रकृतिका आश्रय करके सुप्तावस्थामें पड़े हुए) जीवात्माओंमेंसे जिन-जिनकी विश्रान्तिका समय पूर्ण हो जाता है और उनके जन्म लेनेका समय प्राप्त होता है, उन-उनकी उत्पत्ति पुनः-पुनः होती रहती है। वास्तविक दृष्टिसे यह उत्पत्ति नहीं वरं पुनरागमनमात्र है, और जीवोंके पूर्वजन्मार्जित संस्कारोंके अनुसार उन्हें मनुष्ययोनि या इतर योनि, सुख-दुःख और ज्ञानकी न्यूनाधिकता प्राप्त होती रहती है।

प्राणिमात्र कर्म करनेमें स्वतन्त्र है; परन्तु फल भोगनेमें परतन्त्र है। किये हुए कर्मोंका फल भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकता। इस कारण कर्मोंके अनुसार न्यूनाधिक सुख-दुःख प्रतीत होते हैं। सुख-दुःख भोगते-भोगते सबको दुःखसे छूटनेकी इच्छा भी हो जाती है। परन्तु दुःख कैसे दूर हो, यह सब कोई नहीं जान सकते। केवल सदाचारी और पुण्यात्मा व्यक्तियोंको ही ईश्वरकी शरणमें जानेकी इच्छा होती है, जिससे वे सर्वदा ध्यानादि क्रिया करते हुए ईश्वरीय नियमके अनुसार सत्यकी ओर अग्रसर होते रहते हैं और अन्तमें सांसारिक दुःखोंसे छूट जाते हैं। जिस तरह सेवन करनेवालोंकी सर्दी दूर करने और भोजन पका देनेके लिये तथा सेवन न करनेवालोंकी सर्दी दूर न करने और भोजन न पका देनेके लिये हम अग्निको अन्यायी या पक्षपाती नहीं कह सकते, उसी तरह भक्ति, ध्यानादिके द्वारा सत्यका विशेष साक्षात् हो जाने तथा दुःखसे मुक्ति मिल जानेके कारण परमात्माको भी खुशामदपसन्द नहीं कह सकते। जब कोई अधिकारी मनुष्य ज्ञानपूर्वक ध्यानादि क्रिया करके सत्यके अधिक निकट पहुँचता है तो उसके हृदयसे राग-द्वेष, भय, क्रोध, ईर्ष्या, असत्य, अनीति, दुराचार और हिंसादि वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और दया, उदारता, क्षमा, प्रेम, भक्ति, धैर्य, शान्ति, सत्यपरायणता इत्यादि धार्मिक वृत्तियाँ बढ़ जाती हैं। इस तरह धीरे-धीरे दुष्ट वासनाओंका नाश हो जाता है, मन विषयसेवनसे उपराम हो जाता है और सत्य अनुभवजन्य ज्ञान बढ़ जाता है। संसारमें इस तरहके अनेक व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखे जाते हैं। किन्तु कुवृत्तियोंका नाश, सद्वृत्तियोंका विकास, विषयासक्तिसे उपरामता और ज्ञानकी वृद्धि—यह सब एक ही जन्ममें मातृ पितृ-प्रदत्त संस्कारके अनुसार नहीं हो जाता। यदि माता-पिताके गुण अथवा उपदेश ही पूर्णतः सन्ततिमें आते, अथवा प्रकृतिके स्वभावसे सहज ही हृदयका विकास हो जाता तो कालिदास, शेक्सपियर, बालगङ्गाधर तिलक, छत्रपति शिवाजी, नेपोलियन बोनापार्ट, अकबर, औरङ्गजेब, महात्मा गान्धी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर इत्यादि व्यक्तियोंके समान ही उनकी सन्ततिमें भी गुण देखे जाते अथवा अन्य समयोंमें भी ऐसे व्यक्ति संसारमें देखे जाते, किन्तु ऐसा नहीं होता। क्या कारण है कि आजतक कालिदासके समान दूसरा कोई कवि नहीं हुआ? तिलक और गान्धीजीके सब पुत्रोंमें उनके समान ही गुण सर्वांशमें क्यों नहीं आये? छत्रपति शिवाजीके समान बल-पौरुष और चतुराई उनके पुत्रोंमें क्यों नहीं आयी? इसका कारण केवल यही कहा जायगा कि यह अन्तर उनके पूर्व जन्मके संस्कारोंके कारण ही देखा जाता है। इन पूर्व जन्मके दुष्ट संस्कारोंका क्रमशः नाश और शुभ संस्कारोंकी वृद्धि ईश्वरकी कृपा और भक्तिके बिना नहीं होती। जिसको हम महान् दुराचारी समझते हैं, वे भी किसी-न-किसी समय साधुवृत्तिवाले हो जाते हैं। वे इस जन्ममें अथवा भावी जन्ममें विषयोंसे उपराम होकर ईश्वरके मार्गमें लग जायँगे और उन्हें भगवान् आगे बढ़नेका सामर्थ्य देंगे—इसमें सन्देह नहीं। इन सब बातोंसे भगवान्‌की लीला सहज ही समझमें आ जाती है।

१३—पृथ्वीपर मनुष्योंके कल्याणके निमित्त सुवर्णादि धातु और नाना प्रकारके वनौषध आवश्यकतानुसार उत्पन्न किये गये हैं। इस सृष्टिमें अनेक प्रकारकी धातुओं और रत्नोंकी खानें हैं। इन सबकी उत्पत्ति उपयोगके अनुसार न्यूनाधिक परिमाणमें होती है। जैसे लोहेका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें होता है, इसलिये उसकी उत्पत्ति भी अन्य सब धातुओंकी अपेक्षा अत्यधिक परिमाणमें होती है। यदि इतने अधिक परिमाणमें लोहेकी पैदाइश न होती, केवल सुवर्णके बराबर ही होती तो निर्धन मनुष्योंको जीवन-निर्वाह करनेमें बहुत कष्ट होता, और यदि लोहेकी उत्पत्ति बिल्कुल न होती और सुवर्ण अधिक परिमाणमें निकलता तो भी सुवर्ण मृदु धातु होनेके कारण लोहेके अभावमें उसका उपयोग करनेमें असुविधा ही होती।

दूसरी दृष्टिसे, धनिकवर्गके निमित्त आरोग्य-शास्त्रके अनुसार सुवर्ण राजयक्ष्मा, ज्ञानतन्तुओंकी विकृति, उष्णता और सन्निपातादि अनेक रोगोंका नाशक प्रथमश्रेणीका औषध माना गया है तथा मानसशास्त्रकी दृष्टिसे भी सुवर्ण दूषित विचारोंके असरसे रक्षा करता है। अगर शरीरपर विद्युत्पात होता हो तो वह शीघ्र सुवर्णमें आकर्षित हो जायगा और इस तरह शरीरकी रक्षा हो जायगी। इस तरह गुणाधिक्यके कारण परमात्माने सुवर्णको न्यून परिमाणमें उत्पन्न किया है। ऐसे ही हीरा, मणि-माणिक्यादि रत्नोंमें रासायनिक गुण सुवर्णादि सब धातुओंकी अपेक्षा विशेष परिमाणमें है तथा मानसशास्त्रकी दृष्टिसे उन्हें धारण करनेमात्रसे ही शरीरके अनेक रोगोंसे तथा प्रतिकूल ग्रहोंकी विद्युत्‌के सम्बन्धसे प्राणतत्त्वमें आनेवाली विकृतिसे रक्षा हो जाती है। इस तरह सुखभोगके पदार्थ केवल धनिकवर्गके लिये होनेके कारण कम परिमाणमें उत्पन्न किये गये हैं और सर्वसाधारण जनताकी जीवनरक्षाके लिये उपयोगी पदार्थ पृथ्वीके सब देशोंमें अधिक परिमाणमें स्रष्टाने पैदा किये हैं। प्याज, लहसुन आदि आरोग्य-शास्त्रकी दृष्टिसे अधिक शारीरिक श्रम करनेवालोंके लिये बड़े महत्त्वकी ओषधियाँ हैं, इस हेतु ये बहुत अधिक उत्पन्न की गयी हैं। परन्तु साथ-ही-साथ इनमें कामोत्तेजक और निद्राविर्द्धक गुण तथा उग्र दुर्गन्धकी योजना भी कर दी है, जिससे सत्त्वगुणी वृत्तिवाले इनका उपयोग कम करें और साधारण वर्गको इनकी प्राप्तिमें अधिक सहूलियत रहे। इस रीतिसे सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर यह सहज ही बोध हो जाता है कि सृष्टिकी रचना ज्ञान-पूर्वक की गयी है।

१४—नास्तिक लोग ईश्वरके विरुद्ध एक दलील यह देते हैं कि 'पृथ्वीकी बनावटपर जब हम दृष्टि डालते हैं तो हमें बड़ी गड़बड़ी दिखायी पड़ती है। कहीं तो हिमालय-जैसा ऊँचा और बर्फसे ढका हुआ पहाड़ है; कहीं जैसलमेरका-सा जलशून्य रेगिस्तान। कहीं बड़ी-बड़ी झीलें भरी पड़ी हैं और कहीं लोग पानीके अभावमें प्यासे मरते हैं।' किन्तु इन बातोंमें जो उन्हें दोष दिखायी पड़ता है, वह केवल इसलिये कि वे विपरीत दृष्टिसे ही देखते हैं। एक दृष्टिसे जो गुण मालूम होता है वही अन्य दृष्टिसे दोष भी प्रतीत होने लगता है। जैसे शवको शीघ्र जला देना धर्म-शास्त्र, रूढ़ि और आरोग्य-शास्त्रकी दृष्टिसे अति हितकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता है; परन्तु आयुर्वेद पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिये शवको चीरकर प्रत्येक अवयवका ज्ञान सम्पादन करना हितकर है। इसलिये उनकी दृष्टिमें बिना चीर-फाड़ किये शवको शीघ्र जला देना दोषरूप प्रतीत होता है। खादी पहनना भारतकी दीन दशा जाननेवाले देश-भक्तों और परोपकारी धर्मात्माओंकी दृष्टिमें महान् पुण्य कर्म है; परन्तु इस रहस्यको न जाननेवाले, केवल विपरीत अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे देखनेवाले लोगोंको यह हानिकर प्रतीत होता है। ऐसे ही ये लोग विपरीत दृष्टिसे निरीक्षण करते हैं, ईश्वरीय नियमके अनुसार विचार नहीं करते। बिहारके भूकम्पके पश्चात् जगत्के बुद्धिमान् मनुष्योंकी समझमें यह बात आ गयी है कि इस पृथ्वीका अनेक ग्रहोंसे सम्बन्ध है; पृथ्वी और अन्य सब ग्रह विद्युत्के गोले हैं। वायरलेस, टेलीग्राम आदि विद्याने विद्युत्की सर्वव्यापकता सिद्ध कर दी है। इस विद्युत्का प्रभाव विशेषतः पर्वतोंके बर्फसे ढके हुए शिखरोंपर ही पड़े, नीचेके भागमें विद्युत्का आघात कम लगे, इसके लिये पर्वतोंके ऊँचे-ऊँचे शिखर उपयोगी हैं। अनेक रोगग्रस्त व्यक्तियोंके लिये रेगिस्तानका शुष्क वातावरण लाभदायक है। संसारमें नाना प्रकारकी मनोवृत्तियाँ होनेसे बहुतोंके लिये जङ्गलका वास, बहुतोंके लिये पर्वतपर निवास करना हितकर है। मनका संयम करते हुए पारमार्थिक सत्यका अभ्यास करनेवालोंके लिये तथा आयुर्वेदका अध्ययन करनेवालोंके लिये पर्वतपर वास करना विशेष लाभदायक है। ऐसे-ऐसे अनेक लाभ विचार करनेपर मालूम हो सकते हैं और ऐसा भी हो सकता है कि वर्तमान समयमें अनेक लाभ हमारी समझमें न भी दीखें और कालान्तरमें संसारको ज्ञात हों अथवा सम्भव है मनुष्यकी बुद्धि मर्यादित होनेके कारण कभी भी समझमें न आवें। जब अनुकूल दृष्टिसे विचार किया जायगा तब सब कार्योंमें ज्ञानमयी कृति प्रतीत होगी, प्रकृतिका मनगढ़न्त परिणाम नहीं दिखायी देगा। इस पृथ्वीपर समुद्र, पर्वत, रेगिस्तान आदि सब कुछ हेतु सामने रखकर बनाये गये हैं, कुछ भी निरुपयोगी नहीं है। अतिवृष्टि अथवा दुष्कालसे जो ऐसे लोगोंको हानि प्रतीत होती है, यह भी एक भूल ही है। मनुष्य आलसी और परावलम्बी न बने, सृष्टिनियमको विशेषरूपसे जाननेके लिये तथा अपनी जीवनरक्षाके लिये प्रयत्न करे, इस दृष्टिसे यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा जो ईश्वरकृत प्रतिकूलताएँ हैं, वे सभी अति हितकर हैं। अतिवृष्टि और अनावृष्टिसे रक्षा पानेके निमित्त संसारमें ज्यौतिष और वायुशास्त्रका आविष्कार किया गया है। ऐसे ही अन्य अनेक प्रकारकी प्रतिकूल परिस्थितियोंके द्वारा अनेक सत्य-रहस्यका बोध जगत्को हुआ है।

अनावृष्टि और अतिवृष्टिका सम्बन्ध व्यक्तिगत प्रारब्ध, देशकी उन्नति-अवनति और कालमहिमाके साथ है। व्यक्तिगत प्रारब्धके विषयमें 'कर्मवाद' में लिखा जायगा। देशकी उन्नति-अवनतिके विषयमें पहले लिखा जा चुका है। देशकी उन्नतिके समय प्रायः अधिक अनुकूलता और अवनतिमें अधिक प्रतिकूलता होती है। कालमहिमाके विषयमें यहाँ संक्षेपमें विचार किया जा रहा है।

कालमहिमाका प्रभाव प्रायः सबसे पहले राजाके हृदयपर पड़ता है, पश्चात् प्रजापर होता है। इसलिये शास्त्रकारोंने लिखा है कि—

सर्वे राजाश्रिता धर्मा राजा धर्मस्य धारकः।

'राजाके आश्रित सब धर्म रहते हैं; राजा ही धर्मको धारण करता है।' इस संसारमें जब अनुकूल काल आता है तब राजा प्रायः नीतिज्ञ होते हैं और प्रतिकूल समय आनेपर भयङ्कर जुल्म करनेवाले पैदा होने लगते हैं। साथ-ही-साथ पृथ्वी भी मन्दफला हो जाती है। जब राजाकी नीतिपर दुष्ट कालका असर होता है तब देशपर अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ आ जाती हैं। जिस साल धूमकेतु दिखायी देता है उस साल राजा लोगोंमें अधिक मरण, नाना प्रकारके रोग, लड़ाई या अन्य उपद्रव खड़े हो जाते हैं। १९१८ से पहले बरारकी जमीनमें अन्नादिकी जैसी उत्पत्ति होती थी वैसी उसके बाद अभीतक प्रायः सोलह वर्षोंमें नहीं हुई है। यह आँखों देखी हुई बात है; भावकी न्यूनता और टैक्सकी अधिकताके कारण, आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो, जमीन-आसमानका अन्तर हो गया है। इसी तरह भारतके अनेक प्रान्तोंमें फसलकी पैदावार कम हो गयी है। १९१८ के पहले जगत्के सब देशोंके धनिकोंपर बहुत-सा धनमद चढ़ गया था। १९१८ के बाद उस स्थितिने पलटा खाया; अनेक राज्य और धनिकोंने सम्पत्ति दबाकर दिवाला निकाला; परस्पर लेन-देनमें अविश्वास हो गया और जगत्में व्यापार पहलेकी अपेक्षा चतुर्थांशसे भी कम हो गया। इस तरह मनुष्यसमाजकी मनोवृत्तिमें जो परिवर्तन हुआ, यह कालमहिमा ही कही जायगी; यह प्रकृतिका स्वभाव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ शताब्दी पहले भारतमें स्थान-स्थानपर बारम्बार गृहकलहका दृश्य दिखायी पड़ता था। अब १९ वीं शताब्दीके आरम्भसे यह रोग यूरोपमें भी फैल गया है। जबतक शूद्रवर्गके रक्तशोषक साइन्सका मटियामेट नहीं हो जाता तथा पाप-वृत्तिसे प्राप्त की हुई लक्ष्मी विष्णु भगवान्‌के पास समुद्रमें नहीं चली जाती तबतक यूरोपमें आन्तर विग्रहका शमन नहीं होगा और न पुनः शान्ति स्थापित होगी। यह नियम संसाररक्षक ईश्वररचित है। प्रकृति जड होनेके कारण उसमें नियमकी उत्पत्ति और रक्षणका ज्ञान नहीं है।

जीवात्माओंको सत्यकी ओर अग्रसर होनेके लिये सांसारिक प्रतिकूलताओंको सहन करके मनोबल प्राप्त करना चाहिये। प्रतिकूलताके सहारेके बिना मनोबल नहीं प्राप्त हो सकता। अगर मनोबलकी प्राप्तिके लिये इतना कष्ट सहना भारी मालूम होगा तो फिर भावी सुखसे हम वञ्चित हो जायँगे। जिस तरह मुसाफिरी करनेके समय अगर कोई आवश्यक सामग्री इस खयालसे साथ न ले कि उनकी देख-रेख कौन करेगा, तो उसे रास्तेमें अन्य प्रकारकी प्रतिकूलताएँ सहन करनी पड़ेंगी, उसी तरह यदि मनोबलकी प्राप्तिके लिये कष्ट नहीं उठाया जायगा तो आगे चलकर अधिक दुःख भोगना पड़ेगा। इस दृष्टिसे प्रतिकूलता जीवात्माके लिये लाभदायक प्रतीत होती है, प्रतिकूलता केवल दुःखका हेतु नहीं है। सब देशोंमें जो प्रतिकूलता और अनुकूलता मिली हुई दिखायी देती है उससे भी जीवात्माओंका कल्याण होता है। केवल सांसारिक विचित्रताको देखकर ही, उसके मूल कारणका कुछ भी विचार न कर, यों ही अण्ट-सण्ट धारणा बना लेना एक प्रकारकी मूर्खता ही है।

अकालके समय अनेक मनुष्य, पशु-पक्षी मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। जबतक इसका सत्य हेतु नहीं मालूम होगा तबतक अविवेकी लोग इसके लिये ईश्वरको दोषी ठहरायेंगे। किन्तु सत्यका बोध हो जानेपर उनकी धारणा बदल जायगी। यहाँपर एक उदाहरण लेकर विचार करें। दूर देशमें गये हुए एक धनिकको उसके घरसे आये हुए एक नौकरने यह समाचार कहा कि आपके पुत्रको विषम ज्वर आया था; वह बेचारा खानेके लिये बहुत ही रोता-चिल्लाता था। परन्तु आपकी धर्मपत्नीने उसे तीन दिनोंतक कुछ भी खानेको नहीं दिया, वह केवल जल देती रही। चौथे रोजसे थोड़ा-थोड़ा दूध देना आरम्भ किया है। इस समाचारके साथ ही नौकरने अपनी ओरसे टिप्पणी की कि बच्चा विषम ज्वरसे तो दुःखी था ही, साथ ही अन्न नहीं मिलनेसे वह और भी थक गया है। माता नाराज होकर अपने ही बच्चेके प्रति अपना हृदय इतना कठोर बना ले, यह तो मैंने आपहीके घरमें देखा। अब हम विचार करें कि नौकरके इस विचारमें दोष है या नहीं? विषम ज्वरमें यदि माता बालकपर दया और प्रेम करके उसे खानेको दे देती तो विषम ज्वर सन्निपातका रूप धारण कर लेता और इस तरह उसकी जान भी सङ्कटमें पड़ जाती। अविवेकी नौकर अथवा अबोध बालक ऊपरी दया अथवा प्रेमका भयङ्कर परिणाम नहीं जाननेके कारण इसे माताका दोष मान सकता है; किन्तु विवेकी सज्जन जो यह जानते हैं कि विषम ज्वरमें उपवास कराना लाभदायक है, कभी दोषारोपण नहीं करेंगे। ऐसे ही अकाल आदि आपत्तियोंसे जीवात्माओंकी नाना प्रकारकी दूषित वासनाएँ जल जाती हैं, मनोबल बढ़ता है और उनमें भक्ति करके पारमार्थिक मार्गमें अग्रसर होनेकी प्रवृत्ति पैदा होती है। आस्तिकवादके अनुसार शरीरनाशके साथ जीवात्माका निधन नहीं होता; चैतन्य तो अनादि है और अनुभव भी ऐसा ही होता है।

प्रकृति परिणामी है; उसमें सदा रूपान्तर होता रहता है। परन्तु इस संसारमें कार्यमें भी पुनः कारण-भावकी प्राप्ति देखी जाती है। ऐसे परिवर्तनके लिये अपरिणामी नित्य आधारकी आवश्यकता है। आधारके बिना स्वयं प्रकृतिका परिणाम या परिवर्तन नहीं हो सकता। जैसे, एक बीज पृथ्वीमें बोया गया, तब बीजके भीतर निगूढ़ अवस्थामें वर्तमान चेतना-शक्तिने पञ्चभूतके कार्य-रूप मिट्टीमेंसे रूपान्तर कर, पोषक रसको आकर्षित कर वृक्ष-रूप शरीरकी रचना की। अनन्तर वृक्षके फलोंको मनुष्योंने खाया, जिससे आन्तर शक्तिने सूक्ष्म भाग लेकर उसका उपयोग शरीर-वृद्धिमें किया और स्थूल भागको मलमूत्रके रूपमें बाहर निकाल फेंका। इस मल-मूत्रादि दूषित पदार्थको वायु, वर्षा और आतपादिने व्यापक चैतन्यशक्तिके बलसे पुनः पञ्चभूतका रूप दे दिया। यह परिवर्तन-रूप क्रिया चैतन्यके आधारपर हुई। अपरिणामी आधारके बिना यह रूपान्तर नहीं हो सकता। पाश्चात्त्य तत्त्ववेत्ताओंने पहले सृष्टिका मूल उपादान कारण सत्तर-बहत्तर एलीमेण्ट्सको माना था; परन्तु अब वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी एक ही तत्त्वको मानते हैं। उस तत्त्वका नाम उन्होंने 'प्रोटाइल' रखा है। हमारे प्राचीन शास्त्रकार संसारका मूल कारण प्रकृतिको मानते हैं। यह प्रकृति 'प्रोटाइल' का भी कारण है, या प्रकृति और प्रोटाइल एक ही चीज है, केवल नाममात्रका ही भेद है, इसका निश्चय भविष्य कालपर निर्भर करता है। अभी हम प्रकृति और प्रोटाइल-को एक ही चीज मान सकते हैं। पाश्चात्त्य विद्वानोंका मत है कि वर्तमान सब ब्रह्माण्डोंका किसी-न-किसी समय भविष्यमें नाश होगा और वे प्रोटाइल-अवस्थाको प्राप्त होंगे। इस कारण-भावकी प्राप्तिके लिये उन्होंने स्थिर आधाररूप चेतनको भी स्वीकार किया है। चैतन्यके आधारके बिना मूल कारण-भावकी प्राप्ति नहीं हो सकती। और पुनः प्रकृति-रूप कारणमें क्रिया होकर नियमपूर्वक सृष्टिरचना भी नहीं हो सकती।

नास्तिक लोग पाश्चात्त्य विद्वानोंके लेखोंपर मोहित होकर अक्सर भौतिक शास्त्रकी खूब बड़ाई गाते हैं। किन्तु उन्हें जानना चाहिये कि भौतिक शास्त्रकी शोध अभीतक अपूर्ण ही है और भविष्यमें पूर्णता प्राप्त कर लेगी यह भी कहना असम्भव है। क्योंकि मनुष्यकी बुद्धि मर्यादित है। मर्यादित बुद्धि अमर्यादित अनन्त तत्त्वको कदापि नहीं जान सकती। हाँ, केवल इतना कह सकते हैं कि जितनी नयी-नयी शोधें हों और उनका सदुपयोग किया जाय तो उससे जगत्को लाभ पहुँच सकता है। भौतिक शास्त्रकी अपूर्णताका एक दृष्टान्त हम यहाँ देते हैं। सहस्रपुटी अभ्रक भस्मकी परीक्षा भौतिक रसायनशास्त्र (Chemistry) के अनुसार करनेपर उसमें और गोबर या लकड़ीकी राखमें कोई अन्तर दिखायी नहीं पड़ता। परन्तु जीवन-रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे सहस्रपुटी अभ्रक भस्म सैकड़ों रोग दूर करनेवाली एक दिव्य ओषधि है। सिंगरफ, द्विगुणगन्धकजारित रससिन्दूर और षोडश-गुणगन्धकजारित रससिन्दूर, इन सबको रसायन-शास्त्र एक समान ही बतलाता है; परन्तु इनके गुणमें बहुत अन्तर देखा जाता है। हिङ्गुलमेंसे निकले हुए पारदका और बुभुक्षित पारदका पूर्ण चन्द्रोदय-रस भौतिक शास्त्रकी दृष्टिसे एक होनेपर भी शरीरपर जो उनके परिणाम होते हैं, उनमें जमीन-आसमानका अन्तर हो जाता है। ऐसे अपूर्ण शास्त्र-पर विश्वास करके पारमार्थिक सत्य सिद्धान्तकी अवहेलना करना भूलके सिवा और क्या कहा जा सकता है? ऐसे सज्जनोंसे, जो केवल इसी शास्त्रपर विश्वास करते हैं, मेरी प्रार्थना है कि वे एक बार कड़ुई दवा सेवन करनेकी तरह अध्यात्मविद्याका भी अभ्यास करें और फिर सत्यासत्यका निर्णय करें।

ईश्वरपर विश्वास न करनेवालोंका एक तर्क यह है कि 'मृत्युके सम्बन्धमें जब कोई नियम नहीं है तब यह मान लेना कि इसका नियन्त्रण किसी शक्तिके हाथमें है, पागलपन-के अतिरिक्त और क्या है? यदि किसी साधारण शासकको भी मृत्युका नियन्त्रण प्राप्त होता तो वह कोई-न-कोई नियम अवश्य बना लेता। नियमका अभाव तथा प्लेग, हैजा आदिका एक ही स्थानपर टूट पड़ना यह सिद्ध करता है कि ईश्वर नामकी कोई चीज नहीं है।'

प्लेग, हैजा अथवा अन्य रोगोंसे एक साथ ही अनेक लोगोंका मरना, भूकम्प, ज्वालामुखी पर्वतके उद्गार, अग्नि-काण्ड और जलप्रवाहादिसे अनेक जीवोंका एक साथ नाश हो जाना, ग्रह टूट जानेसे करोड़ों प्राणियोंका विनाश हो जाना, सूर्यमण्डलका नाश हो जानेसे ग्रहोंसहित असंख्य प्राणियोंका जीवन खो बैठना, कभी बालक, कभी युवा और कभी वृद्धका स्वर्गवास हो जाना—यह सब अनियमित या अनायास हो जाता है, यह कहना प्रलापमात्र है। हम केवल यही कह सकते हैं कि हमें उस नियमका पूर्णरूपसे बोध नहीं है। समुद्रमें ज्वार-भाटा बराबर नियमपूर्वक होता रहता है। यह क्यों होता है और कैसे होता है, इसका पता न्यूटनने लगाया। किन्तु इससे पहले जब जगत्को यह सब मालूम नहीं था, उस समय भी ज्वार-भाटा नियम-पूर्वक ही होता था। इसी तरह मरणके विषयमें आजतक हमें कोई नियम नहीं मालूम हुआ, इसलिये हम इसे नियम रहित नहीं कह सकते।

मृत्यु दो प्रकारकी होती है—(१) कालमृत्यु और (२) अकालमृत्यु। पूर्ण आयु भोगनेपर जो मृत्यु होती है, उसे कालमृत्यु और आयु शेष रहनेपर भी एकाएक कोई दुर्घटना या विघ्न उपस्थित हो जानेपर जो मृत्यु होती है, उसे अकालमृत्यु कहते हैं। जिस तरह कोई लालटेन बारह घण्टेतक जलने लायक तेल भरा रहनेपर भी अचानक तीक्ष्ण वायुका झोंका लग जानेपर पाँच दस मिनटमें ही बुझ जाती है, उसी तरह किसी विशेष कारणसे अकाल-मृत्यु होती है। अनेक प्रकारकी अकालमृत्युओंसे बचनेके लिये ओषधि, मन्त्र, योगाभ्यास, भक्ति, दान, सदाचारादि अनेक साधन शास्त्रकारोंने बताये हैं। प्रलय (ग्रहमण्डलका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाश) या महाप्रलय आदिसे बचनेके साधन नहीं बताये गये हैं। परन्तु इनसे भी जीवोंका कल्याण ही होता है, अनेक भूत जन्मोंकी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। अन्य दृष्टिसे विचार करें तो अकालमृत्युसे जीवित व्यक्तियोंका कल्याण दिखायी देगा। इस तरह सब प्रकारकी मृत्युका कोई-न-कोई हेतु और नियम है; यदि पूर्णरूपसे नियमका बोध न भी हो तो भी हम इसे केवल प्रकृतिकी स्वच्छन्द वृत्ति नहीं कह सकते। सृष्टिकी सब क्रियाएँ ज्ञानपूर्वक ही चल रही हैं।

सृष्टिकार्य नास्तिकोंकी दृष्टिसे प्रकृतिका स्वाभाविक परिणाम है और आस्तिक इसे ईश्वररचित कहते हैं। वास्तवमें सृष्टि प्रकृतिकी ही रचना है, परन्तु चैतन्यके आधारपर बनी है। जैसे जीवित मनुष्यके मनमें इच्छा होनेपर उसके हाथ-पैरमें नियमित क्रिया होती है, किन्तु मृत शरीरमें न इच्छा होती है, न कोई नियमित क्रिया, वैसे ही चैतन्यके सम्बन्धके हेतुसे इच्छा उत्पन्न होकर पीछे सृष्टिकी रचना होती है। सृष्टिमें सब क्रियाएँ नियमित देखी जाती हैं, इसका विस्तृत वर्णन ऊपर हो चुका है। इसलिये हम इसे प्रकृतिका मनगढ़न्त परिणाम नहीं कह सकते।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि

(लेखक—पं० श्रीमायादत्तजी पाण्डेय शास्त्री)

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्॥

'महर्षि प्रचेताके पुत्र महर्षि वाल्मीकिको हम प्रणाम करते हैं जो कि रामचरितरूपी अमृतके समुद्रको निरन्तर पीते हुए भी तृप्त नहीं होते थे।' मनुस्मृति आदि कतिपय आप्त ग्रन्थोंके आधारपर यह बात निश्चित है कि प्रचेता स्वयम्भू ब्रह्माजीके अयोनिज पुत्र थे [मनु० अ० १ श्लो० ३५] उन्हींके पुत्र महर्षि वाल्मीकि (जिनका बचपनका नाम इस नामकी अत्यन्त प्रसिद्धिके कारण अब नहीं मिलता है) हुए।

उपक्रम

आज हम महामहिम महर्षि वाल्मीकिके लोकपावन चरितको कल्याणके भावुक भद्र पाठकोंके समक्ष लेकर उपस्थित हुए हैं। हमारा यह ध्यान है कि इसे पढ़कर सत्पुरुषोंके न्यायप्रिय हृदयोंमें यह भ्रान्तभावना कभी न आने पावेगी कि महर्षि वाल्मीकि अन्त्यजकुलोत्पन्न थे। जैसा कि आजकल कुछ लोग गाते फिरते हैं—

'बाल्मीकि भङ्गीके गुण गाते चतुर सुजान हैं।'

साथ ही इस चरितलेखका प्रयोजन एक पवित्र घटनाद्वारा श्रीरामनामके त्रिभुवनपावन माहात्म्यका वर्णन करना है। अस्तु।

जन्म और बाल्यकाल

श्रीरामायणके स्वाध्यायकी प्राचीन परम्पराके अनुसार उपर्युक्त श्लोक स्वाध्यायके आरम्भ तथा अन्तमें अवश्य पढ़ा जाता है। जिसका यह अर्थ है कि—

सृष्टिका वह समय महाशक्तिसम्पन्न महर्षियोंकी प्रकृतिसे विलक्षण अद्भुत लीलाओंका युग था। तप और योगबलके द्वारा योषा और वृषसम्बन्धी वैदिक विज्ञानकी विचित्रताके आधारपर यथापूर्व सृष्टिके निर्माण और प्रसारकी धुनमें सभी ब्रह्मपुत्र ऋषिगण लगे हुए थे। बहुत कालान्तरमें प्रचेताजीने भी एक अयोनिज बालक उत्पन्न किया। संसारी मोहकी आसक्ति न होनेके कारण उस बालककी ओर कुछ ध्यान न देकर प्रचेताजी अपने तपमें ही संलग्न हो गये। बालक वाल्मीकि कुछ बलसम्पन्न होनेपर वनोंमें घूमने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबतक मनु, दक्ष और कश्यपादि ऋषियोंकी सृष्टिका खूब प्रसार हो गया था। बालक वाल्मीकि भटकता फिरता भीलोंके गिरोहमें जा मिला। वह प्रभावशाली सुन्दर बालक था। उसे अपने जीवनके पवित्र पथको बतानेवाला गुरु अबतक प्राप्त नहीं हुआ था। अकस्मात् वह शूद्र जातिके बालकोंमें जा मिला और अपने बाल्यकालको बिताकर जवानीकी उस अवस्थामें पहुँच गया जिसमें विद्या और विवेकसम्पन्न मनुष्यका भी हृदय अस्थिर हो उठता है। हमारे चरितनायकने भी तारुण्यकी तरङ्गधाराओंमें बहकर कई अनुचित कार्य किये। ग्राम तथा नगरवासियोंको लूटना, वन्य पशुओंको मारना, बटोहियोंको तंग करना आदि उनकी आजीविकाके प्रकार बन गये। इसी प्रकार वाल्मीकिके जीवनके दिन बीतने लगे।

कायापलट

महर्षि वाल्मीकिजीके जीवनचरितके सम्बन्धमें बहुत कुछ खोज करनेपर भी हमें अबतक केवल एक अध्यात्मरामायण ही प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ मिलता है कि जिसके आधारपर लोग उन्हें अबतक लुटेरा व्याध मानते रहे और हमने भी यह जीवनचरित लिखना आरम्भ किया है। किन्तु वाल्मीकि प्रचेता ऋषिके ही पुत्र थे यह बात तो ध्रुव सत्य है। इसमें अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। किन्तु वाल्मीकि भङ्गी जातिमें उत्पन्न थे इसमें कोई प्रमाण कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। आज हम उसी अध्यात्मरामायणके वृत्तान्तको पाठकोंके सामने रख रहे हैं।

वनवासके अवसरपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूट पर्वतपर महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर गये थे। अनेक ऋषिगणोंसे युक्त तथा विविध मृगपक्षियोंसे भरे हुए अनेक प्रकारसे फल-फूलोंसे सदा लदे रहनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित उस आश्रममें जाकर श्रीरामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणसहित वाल्मीकिको प्रणाम किया।

प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः।
गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रमं ऋषिसङ्कुलम्॥
तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम्॥
ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया।

(अध्यात्म रा० अयो० स० ६ श्लो० ४३-४५)

महर्षि वाल्मीकिने भी नयनाभिराम रामको देखकर अत्यन्त आनन्दित हो उनका सत्कार किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीद्वारा अपने निवासयोग्य स्थान पूछे जानेपर महर्षि वाल्मीकिजीने एक बड़े तात्त्विक एवं रहस्यपूर्ण वर्णनके द्वारा श्रीरामचन्द्रके निवासयोग्य स्थान बतलाये। उनमेंसे एक स्थान यह भी बतलाया कि—

निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां
त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम्।
त्वन्नामकीर्त्या हृतकल्मषाणां
सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे॥६३॥

'हे राम! नित्य योगाभ्यासके द्वारा जो आत्मनिष्ठ एवं आत्मज्ञ हैं और आपके चरणोंकी सेवामें संलग्न हैं एवं आपके पवित्र नामोच्चारणसे जिनके पाप दूर हो चुके हैं, उनके हृदयकमल ही सीतासमेत आपके निवासयोग्य स्थान है।'

आत्मकथा

श्रीरामजीके मधुर नामके माहात्म्यका वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि आत्मकथा कहते हैं कि हे राम! मैं एक अधम एवं पापकर्ममें लिप्त मनुष्य था। मैं केवल जन्ममात्रसे ब्राह्मण था किन्तु मेरा आचरण शूद्रोंका-सा था। मैं छोटी अवस्थामें भीलोंके बीच पला और बड़ा हुआ और चोरोंके साथ जा मिला। मैंने शूद्र स्त्रीमें सन्तान भी उत्पन्न किये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः ।
जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥६५॥
ततश्चौरैः समागम्य चौरोऽहमभवं पुरा ॥६६॥

सप्त ऋषियोंका दर्शन

मैं प्रतिदिन धनुषबाण लेकर प्राणियोंका संहार करता था, न मालूम किस पुण्यके प्रभावसे मैंने एक दिन बहुत बड़े वनके बीचमें सात ऋषियोंको देखा, जो कि सूर्यके समान प्रकाशमान एवं चन्द्रके समान शान्त और शीतल थे। उनके वस्त्राभरण आदि वस्तुओंको लूटनेके लिये मैं उनके पीछे दौड़ा। शान्त और निर्भ्रान्त मुनियोंने मुझे देखकर कहा कि 'किमायासि द्विजाधम !' हे नीचकर्मा ब्राह्मण ! हमारे पीछे किस लिये आ रहे हो ? मुझे आश्चर्य हुआ कि क्या मैं ब्राह्मण भी हूँ तथापि मैं बोला, 'हे सज्जनो ! मैं आपलोगोंसे कुछ लूटकर लेना चाहता हूँ।'

मुनि—इससे तुझे क्या लाभ होगा ?

मैं—मेरी स्त्री और बालक भूखे हैं उनकी रक्षाके लिये मैं ऐसा करता हूँ।

मुनि—यदि ऐसा है तो जा अपने कुटुम्बको पूछ आ।

मैं—क्या पूछ आऊँ ?

मुनि—प्रत्येकसे यह पूछना कि मैं रोज-रोज जो कुछ पापका सञ्चय कर रहा हूँ उस पापके तुमलोग भी भागी हो या नहीं।

मैं—ठीक ! तबतक आप भाग जायेंगे।

मुनि—(हँसकर) अरे बेसमझ, हमलोग असत्य नहीं बोलते। तेरे आनेतक हम अवश्य बैठे रहेंगे।

मैं ऋषियोंके दर्शनमात्रसे प्रभावित एवं शुद्ध अन्तःकरण हो गया था, उनकी बातपर विश्वास करके चल दिया। घरपर आकर मैंने सबसे उसी प्रकार पूछा जैसा कि ऋषियोंने कहा था। परन्तु स्त्री और बालक सब यही बोले कि—

पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभोगिनः ॥७४॥

'पापके तो तुम्हीं जिम्मेवार हो, हम तो केवल खाने-पीने और मौज उड़ानेवाले हैं।' यह सुनकर मैं तुरन्त वहीं पहुँचा जहाँपर वे दयाके सागर सातों ऋषि बैठे थे। मेरे मनकी भावना बदल चुकी थी। आते ही मैंने धनुषबाण आदि अपनी व्याधकर्मकी सामग्रीको तोड़-फोड़कर फेंक दिया और उन ऋषियोंके चरणोंमें लाठीकी तरह गिर गया। मैंने अत्यन्त दुखी होकर अपने पापोंकी क्षमाका उपाय पूछा। दयालु ऋषि बोले—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः।

अरे उठ ! तेरा भला हो, साधु पुरुषोंका समागम सफल ही हुआ करता है। देख, तेरे लिये कुछ उपदेश देते हैं जिससे तेरा उद्धार हो जायगा। उस समय सब ऋषि आपसमें विचार करने लगे कि 'है तो यह सब तरहसे पापी किन्तु अधम होते हुए भी द्विज है और अपना त्राण चाहता है इसलिये इसको सत् उपदेश देना ही चाहिये। तदनन्तर हे राम ! मुझको सत् मन्त्रका अपात्र समझकर उन्होंने मुझको तुम्हारा नाम उलटा करके बता दिया और कहा कि जबतक हमलोग यहाँपर लौटकर न आवें तबतक इसे एकाग्र होकर सदा जपते रहना—

इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्।
एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥८०॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप।

'मरा' मन्त्रका अखण्ड जप

वाल्मीकिजी कहते हैं कि—हे राम ! उन महर्षियोंने मुझे उपदेश दिया। मैं तत्काल उसी स्थानपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठकर उसीके अनुसार जप करने लगा। अब मेरे अवलम्बन वे ही दो अक्षर थे। मेरे मन बुद्धि चित्त अहङ्कारका अब एक ही लक्ष्य था। मुझे उन दो अक्षरोंके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं सूझता था।

अहं यथोपदिष्टस्तैस्तथाकरवमञ्जसा।
जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥८२॥
एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः।
सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥८३॥

हे आनन्दकन्द राम! इस प्रकार उन दो अक्षरोंको रटते हुए एक स्थानमें निश्चल तथा सर्व प्रकारके बाह्य संगसे रहित मेरे शरीरके ऊपर चारों ओरसे मिट्टीकी बाँबी लग गयी; केवल मुखके आगे श्वासके वेगके कारण एक छिद्र रह गया। इस पवित्र नामके प्रतापसे मृत्युको मेरे सामने आनेका साहस ही नहीं हुआ। मृत्यु तो बाह्य विषयोंके संसर्गमें है, जब कि सर्वसङ्गनिवृत्त होकर आत्माका उस पवित्र नामसे अटूट सम्बन्ध हो गया तो फिर मृत्युको कहाँ अवसर है?

ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन्।

तदनन्तर हजार युगोंके बीत जानेपर वे ही दयालु ऋषि वहाँ आये और दूरसे ही 'म राम राम राम राम' का उच्चारण सुनकर प्रसन्न होकर ऋषियोंने मुझसे कहा—

मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः॥८४॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्कर।
मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥८५॥
वल्मीकात्सम्भवो यस्माद् द्वितीयं जन्म तेऽभवत्।
इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यां गतिं रघुकुलोत्तम ॥८६॥

हे मुनीश्वर! अब तुम बाहर निकलो। मैं भी यह सुनकर कुहरेके मध्यसे सूर्यकी तरह बाँबीसे बाहर निकला। फिर मुनिगण बोले—हे तपस्वी! अब तुम निर्दोष हो गये हो और यह तुम्हारा वल्मीकसे दूसरा जन्म हो चुका है इससे अब तुम महर्षि वाल्मीकि नामसे विख्यात होओगे। हे रामचन्द्र! ऐसा कहकर वे सातों ऋषि देवलोकको चले गये और मैं तुम्हारे नामके प्रभावसे इस उत्तम अवस्थाको प्राप्त हुआ। और आज सीता तथा लक्ष्मणसमेत तुमको अपनी बाह्य आँखोंसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

अद्य साक्षात्प्रपश्यामि लक्ष्मणेन च सीतया ॥

अनन्तरकी एक घटना

वाल्मीकीय रामायणके प्रारम्भमें दूसरा सर्ग ग्रन्थोपक्रमरूपसे लिखा गया है। जिसमें महर्षि वाल्मीकिके काव्यमय जीवनका श्रीगणेश प्रकट किया गया है। ध्यान रहे कि अब वे वाल्मीकि निरक्षर वाल्मीकि नहीं हैं, अब उन्हें सरहस्य समस्त वेदोंका ज्ञान है। उनके आश्रममें सहस्रों ब्रह्मचारी वेदादि सत् शास्त्रोंका स्वाध्याय करते हैं। जपनियमतपः-स्वाध्यायपरायण धर्मानुगामी सत्पुरुषोंसे पूर्ण महर्षि वाल्मीकिका आश्रम अत्यन्त पावन एवं शान्त है। आज महामहिम महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें हिंसक जन्तु भी सब प्रकार वैरभाव छोड़कर रहते हैं।

एक दिनकी बात है कि महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाजके साथ तमसा नदीके तटपर स्नानके निमित्त गये। आप अनेकविध वृक्षलताओंसे मण्डित तटभूमिकी शोभा निहारते हुए कुछ दूरतक चले गये। इतनेमें आपने एक क्रौञ्च पक्षीके एक जोड़ेको देखा जो एकान्तमें अपने सरस प्रेमपूर्ण दाम्पत्य जीवनके आनन्दका अनुभव कर रहा था। उसी समय किसी एक व्याधने उस जोड़ेमेंसे पुरुषको मार डाला। खूनसे लथपथ होकर छटपटाता हुआ वह सारस मर गया। उसकी वियोगिनी भार्या अत्यन्त दुःखित होकर करुण स्वरसे रोने लगी। यह दशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख महर्षि वाल्मीकिके करुणापूर्ण हृदयसे सहसा पद्यमयी सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ। आप बोले—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥
(वा० रा० बा० का० स० २ श्लो० १५)

'हे निषाद! तुझे अनन्त कालतक शान्ति प्राप्त न हो, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च पक्षीके प्रेममग्न जोड़ेमेंसे एकको मार डाला है।' इस शापवाणीके निकलनेपर महर्षि वाल्मीकि स्वयं विस्मित होकर विचार करने लगे कि—मैंने इस पक्षीकी समवेदनामें यह क्या कह डाला है? यह तो एक विलक्षण समाक्षर पद्य-सा बन गया है। उस पद्यको दोहराते हुए वे भरद्वाजके पास आये। शिष्य भरद्वाजको जब वाल्मीकिने उक्त श्लोक सुनाया तो उन्होंने भी वह पद्य ग्रहण कर लिया। वाल्मीकिने इस पद्यके प्रसङ्गमें कहा कि—

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।

इस प्रकार इस सर्वप्रथम लौकिक पद्यमयी कविताका प्रादुर्भाव महर्षि वाल्मीकिकी जिह्वासे ही हुआ। आश्रममें आकर जब महर्षि वाल्मीकि उसी श्लोकका चिन्तन कर रहे थे, अकस्मात् सर्वलोक-पितामह भगवान् ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। सर्वविध सत्कार करनेके अनन्तर वाल्मीकिजीने इस श्लोकके विषयमें पूछा, तब ब्रह्माजीने कहा—हे ऋषे! आपको इस पद्यके विषयमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। मेरी इच्छासे ही इस लौकिक छन्दोमयी वाणीका प्रादुर्भाव हुआ है। अब तुम इसी छन्दमें श्रीरामचन्द्रजीके चरितका वर्णन करो। इस विषयमें अविदित बात भी तुमको विदित हो जायगी और तुम्हारी वाणी इस काव्यमें किंचित् भी झूठी न होगी।

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकिके सब शिष्य उक्त श्लोकको बार-बार पढ़ने लगे और इससे उनकी वाक्-सिद्धि होने लगी। उसी दिनसे यह प्रसिद्ध हुआ कि इस श्लोकको नित्य पढ़नेवालेको सरस्वती शीघ्र सफल होती है। तदुपरान्त महर्षि वाल्मीकिजीने भगवान् रामचन्द्रजीका पवित्र चरित्र काव्यमय वाणीमें यथार्थरूपसे वर्णन किया। इस प्रकारके पावन चरित्रवाले महर्षि वाल्मीकिजीके चरितको कलियुगके मनुष्य निन्दित बनानेका उद्योग करते हैं यह उन लोगोंकी बड़ी भारी भूल है। इस अपराधके लिये हिन्दूमात्रको लज्जित होना पड़ेगा।

स्पर्श

मेरे प्रभु!

मानव-हृदयसे तृष्णा-अन्धकारको नष्टकर उसमें कैवल्यकी धारा बहाओ! अज्ञानकी शुष्क मरुस्थलीको अपने आलोकअंशसे परिप्लावित करो!

नौका डगमगा रही है!

सुहावनी सन्ध्या, भयावनी रात हो गयी!

अर्चन-शृङ्गार प्रस्तुत है!

अब?

इस मायाजालसे निकालकर अपने चरणोंमें बुला लो! मानस-पथ संयुक्त होने दो और मेरी वेदनाकी कमाई—आरतीके 'हार' को तरह स्वीकृत करो!... कृतकृत्य करो मेरे प्रभु!

कोई कुछ माँगता है, कोई कुछ! प्रत्येक हृदयमें तृष्णा और लालसा जल रही है। अनादिकालसे यह विश्व, तुम्हारी दया-दृष्टिकी प्रतीक्षा करता आया है। तुम्हारी कृपाकोरके उस सजीव-स्पर्शसे संसारकी प्रत्येक भावना पूर्ण हो सकती है। मेरी भी एक भावना है। वह, यह कि क्या कभी यह अधम भी तुम्हारे पद-पङ्कजका अमृतपान कर सकेगा?

कर सकेगा या नहीं?

बताओ—बताओ मेरे प्रभु!

—उदयानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संसार !

(लेखक—श्रीविद्यानन्द श्रीवास्तव एम० ए०, एल० टी०)

यह जगत् परमात्माकी अपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष क्यों है ? क्योंकि अपनेको छिपाना और कलाको प्रकट करना ही कलाकारका उद्देश्य है। यह जगत् ईश्वरकी एक कला है। सभी दूसरी कलाएँ उस कलासे अनुप्राणित हैं। सभी कलाओंका मूलस्रोत होनेके कारण यह वस्तुतः सब कलाओंकी कला है। सौन्दर्यबुद्धिसे तो यह (जगत्) सभी कलाओं-को मात करता है। कलाके प्रधान अङ्ग क्या हैं—इसपर विचार करें।

कलाकी श्रेष्ठता तो सर्वप्रथम उसकी मौलिकतामें है। यह अनुकृति न होकर क्रियाशील, वेगवती होनी चाहिये। कलाविद्की कल्पनाका शिखर है—मौलिकता। मौलिकता ही कलाकी चूड़ामणि है। वह कला हमें कदापि आकृष्ट नहीं कर सकती जिसके समान हमने पहले ही कुछ देख लिया है। इस दृष्टिसे ईश्वरकी कला अद्वितीय है, अनूठी है। यह सर्वथा मौलिक है, अभूतपूर्व है और इसका स्रोत कलाविद्की कल्पना ही है; क्योंकि इसकी बराबरीका हमें कहीं दीखता नहीं।

ललितकलाका एक दूसरा प्रधान गुण है उसकी सजीवता। कलामें सजीवता न हुई तो कुछ न हुआ। यदि उसके पात्र निर्जीव, निष्क्रिय और धुँधले हैं तो वह कला दोषपूर्ण कही जायगी। यदि किसी चित्रको देखकर हमें कागज़ और ब्रशकी ही याद आने लगी तो उस चित्रका बनना व्यर्थ हुआ। उसका उद्देश्य पूरा न हुआ। केवल 'कला' के नामपर बिकनेवाली वस्तुओंसे कहीं बढ़कर वास्तविक कला है। जीवनकी स्फुरणा ही कलामें प्राण भरती है। सच्ची कला कलाकारके गतिशील व्यक्तित्वसे ओत-प्रोत होती है। शेक्सपियरके नाटकोंको पढ़ते समय हम यह भूल जाते हैं कि उसके नायक काल्पनिक हैं। हम उन्हें सजीव मूर्त्तिमान्‌रूपमें देखने लगते हैं। उनके साथ हमारी सहानुभूति ठीक उसी प्रकार हो जाती है जैसे जीवित व्यक्तियोंके साथ। संक्षेपमें, कहनेका तात्पर्य यह है कि किसी कलाकी सफलता उसकी सजीवता पर है। यह विश्व केवल सजीव-सा नहीं है अपितु जीवनमय है। जहाँ देखिये जीवनकी धारा प्रवाहित हो रही है! हम इसमें यह सर्वथा भूल जाते हैं कि यह जगत् एक कल्पना मात्र है। कलाकारकी यही सफलता है!

कलाका दूसरा प्रधान अङ्ग, जो सर्वोपरि है, वह है इसकी सुन्दरता। जो सुन्दर न हो वह कला कैसी ? कलाके प्रत्येक नियमविधानका उसमें भले ही पालन न हुआ हो परन्तु वह कला क्या जो हृदयको स्पर्श न करे ? कलाका प्रधान उद्देश्य हृदयको मुग्ध कर देना ही है। कलाका प्राण है भावना, संवेदन। वेदनाहीन व्यक्ति कलाकार कैसे हो सकेगा ? संवेदन ही कलाका सौन्दर्य है। सौन्दर्यका प्राण, सुन्दरताकी आत्मा यही है। बाह्यरूपमें तो शिल्पी अपनी कलाको स्फुट करनेके लिये विविध उपायोंको काममें लाता है। प्रभावशाली उपायोंसे दो वस्तुओंमें अन्तर दिखलाकर भी वह अपना काम साधता है। रंगोंमें विविधता और अन्तर चित्रकी शोभाको बढ़ा देते हैं। स्वरोंमें चढ़ाव-उतारसे एक अपूर्व मादकता आ जाती है। विषमता और सङ्घर्षके कारण अभिनय-में सुन्दरता आ जाती है। विश्वकी कलामें प्रत्येक चरित्रमें भावका प्रवाह अनवरतरूपमें चल रहा है और विषमता प्रत्येक पगपर देखी जाती है। जीवन और मृत्यु, प्रकाश और अन्धकार, प्रचुरता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव, सुख और दुःख, हर्ष और विषाद—ये सभी साथ-ही-साथ हैं।

कलाका दूसरा प्रधान अङ्ग है—इसकी ध्वनि, इसका व्यङ्ग्य (Suggestiveness)। कलाकी कोई वस्तु स्पष्ट कुछ कहनेकी अपेक्षा व्यङ्ग्य और ध्वनि-द्वारा सङ्केत करती है। किसी बातके सम्बन्धमें यह शिक्षा देनेकी अपेक्षा केवल उपस्थित करके रह जाती है। नग्नतामें सौन्दर्य कहाँ? सौन्दर्यको अनावृत नहीं करना चाहिये। रूपको खोल नहीं डालना चाहिये। यह तो हमें एक कल्पनाके समुद्रमें छोड़ जाय—इसीमें इसकी सफलता है। इसके कुछ अङ्ग तो खुले हों परन्तु अधिकांशका अनावरण तो वे ही कर सकते हैं जो इसमें डूबें, इसका रसास्वादन करें। यदि सारी बातें खोल दी जायँ, और यदि उसे समझने अथवा आनन्द लेनेके लिये किसी कल्पनाकी आवश्यकता न हो, तो कम-से-कम उसका आधा सौन्दर्य तो नष्ट ही हो गया, व्यर्थ ही गया! केवल उपदेश ही नहीं अपितु कला भी ज्ञातसे अज्ञातकी ओर ले जाती है—यही उसका सिद्धान्त है। यह विश्व जो भगवान्‌की कला है—सब खुला हुआ नहीं है। जिसे जितनी ही कल्पना-शक्ति है वह उतना ही अधिक इसे समझ सकता है; उतना ही अधिक रसास्वादन कर सकता है। इस विश्व-कलाको समझनेके लिये सबसे ऊँची कल्पना चाहिये; क्योंकि यह सबसे ऊँची कल्पनाकी उपज है। कलाकी सुषमा गँवार क्या समझे? गँवारोंके लिये यह संसार भद्दा और दुःखमय है! और यही संसार सन्तों और ऋषियोंके लिये आनन्द और उमङ्गका आगार है।

इस कलाकी एक और विशेषता है। यह कला सभी कलाओंको अन्तर्भूत कर लेती है। मेघों, नदियों और पहाड़ोंमें चित्रकारी, कोयल और पपीहेमें सङ्गीत, जीवनके नाटकका दुःखान्त और सुखान्त अभिनय, प्रेममें कविता, लहरोंमें नृत्य, दर्शनमें कल्पना!—इस प्रकार सभी तरहकी कलाएँ 'संसार' में सन्निहित हैं। यह विश्व-कला है।

अन्तमें, सभी कलाएँ आनन्दमें डुबा लेती हैं। कलाका चरम उद्देश्य यह आनन्द ही है, न कि कोई भौतिक लाभ। आनन्द सौन्दर्य-बुद्धिका धर्म है। कलाकी अनुभूति भी सौन्दर्य-बुद्धिसे होती है। दुःखान्त अभिनयसे भी हमें आनन्द ही होता है; सुखान्त अभिनयसे भी अधिक आनन्द दुःखान्तमें है। हम उन्हें पढ़ते हैं और आनन्द पाते हैं। करुणा कलाके सौन्दर्यको बढ़ा देती है। हलका (साधारण) साहित्य जो हमें हँसाता है—साधारण पुरुषोंके लिये ही है। हमारी साहित्यिक साधना जितनी ही ऊँची उठती जाती है उतना ही अधिक हम बाह्य जगत् और दिखावटसे ऊपर उठते जाते हैं। हम भावोंके सङ्घर्ष, विरोध, विषमता, त्याग आदि भावोंका अनुशीलन करते हैं—क्योंकि ये ही उच्च काव्य तथा नाटकके लक्षण हैं। मैकबेथका जीवन भले ही दुखी हो, हैमलेटका जीवन भले ही तिरस्कृत हो, ऑथेलोका जीवन भले ही घृणित हो परन्तु शेक्सपियर और उसके पाठक तो जीवनपर एक परम उच्च भूमिका-से दृष्टिपात करते हैं। बर्न्सका जीवन स्वतः निकृष्ट भले ही हो, परन्तु उसके दुःखी जीवनने ही उसे अमर कर दिया। इसी प्रकार हमारे परम कलाकार (परमात्मा) का उद्देश्य उसके दुःखान्त अभिनयोंमें परम महान् है। दुःखान्तोंमें ही भगवान्‌की कुशलता-का अधिक परिचय मिलता है; जीवनकी सुखान्तता तो निरर्थक है। हममेंसे अधिकांश इस बातको नहीं समझते। हम अपनेहीको मैकबेथ और ऑथेलो समझ लेते हैं—यह भूल जाते हैं कि मैकबेथ और ऑथेलो शेक्सपियरके मस्तिष्कसे भिन्न कोई वस्तु नहीं हैं—अपितु वे तो शेक्सपियरकी सर्वोत्कृष्ट कल्पनाकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि हैं। दुःखान्त नाटक ही शेक्सपियरकी प्रखर बुद्धिके परिचायक हैं—इन नाटकोंमें ही शेक्सपियरकी चूड़ान्त कल्पना निखरी है। इन दुःखान्त नाटकोंके कारण ही शेक्सपियर अमर हो गया। कलाकी दृष्टिसे सुखान्तकी अपेक्षा दुःखान्तको अधिक महत्ता दी जाती है। इस बातको हम भलीभाँति तभी समझते और हृदयङ्गम करते हैं जब कलाके मूल-स्रोतका पता लगाते और यह स्मरण रखते हैं कि कला कलाकारकी कल्पना है।

हम संसारको ठीक-ठीक तभी समझ सकते हैं जब हम इसे एक ललित कलाके रूपमें देखें और इसे भगवान्‌की कल्पना समझें। तात्पर्य यह कि जीवनके सुखान्त-दुःखान्तका आनन्द उठानेके लिये यह आवश्यक है कि हम संसारसे ऊपर उठें और तभी हम जीवनके रंगमें विविधता, और जीवनके स्वरमें चढ़ाव-उतारका भाव समझ सकते हैं। यही सबसे ऊँची संस्कृति है, और परमात्माकी इस परम दिव्य कलाके सामने समस्त अन्य कलाएँ कुछ नहींके समान हैं। (कल्याण-कल्पतरुसे)

भक्त-गाथा

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

भक्त गणेशनाथ

छत्रपति शिवाजी महाराजके समयकी बात है। बालाघाट जिलेमें सरसी और उज्जैनी नामक शहरोंके पास एक छोटा-सा गाँव था। वहीं भक्त श्रीगणेशनाथका जन्म हुआ। बचपनसे ही गणेशनाथका भगवद्विषयोंमें अपार अनुराग था। इनके माता-पिता परम वैष्णव थे और इसीसे बच्चेकी शिक्षा-दीक्षा भी ऐसी ही हुई कि सयाना होनेपर हरिके चरणोंमें स्वाभाविक सहज प्रीति हो। स्तन-पान कराते समय ही माँ, कृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव, दामोदर कह-कह बच्चेकी चुम्मियाँ लिया करती, मानों दूधके साथ ही वह अपने बच्चेको श्रीकृष्णप्रेमका अमृत पिला रही है। माताके दूधके साथ ही जिन्हें हरिरस पीनेका सौभाग्य प्राप्त है वे वास्तवमें बड़भागी हैं क्योंकि उस समयका पिया हुआ प्रेम रोम-रोममें ओत-प्रोत हो जाता है और समस्त जीवनको प्रभुमय कर देता है; अन्यथा भगवान्‌में विश्वास होना बड़ी ही दुर्लभ बात है। यह तो पूर्व जन्मके किसी महान् पुण्यका फल ही मानना चाहिये—

महाप्रसादे गोविन्दे नाम्नि ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कह रहे हैं—'भगवान्‌के महाप्रसादमें, भगवान्‌में, भगवन्नाममें, ब्रह्म अथवा ब्रह्मवेत्ता या वेदोंमें और वैष्णव पुरुषोंमें थोड़े पुण्यवालोंका विश्वास नहीं होता।'

गणेशनाथ जब थोड़े सयाने हुए तो माँ उनके पैरोंमें पैजनी पहना देती, हाथोंमें घुँघुरूदार पहुँची बाँध देती और बालोंमें मोरकी पंख खोंस देती और बड़े ही प्रेमसे करताल बजाकर गाती जाती—

राम राघव! राम राघव! राम राघव! रक्ष माम्।
कृष्ण केशव! कृष्ण केशव! कृष्ण केशव! पाहि माम्॥

माँ गाती जाती और गणेशनाथ नाचते जाते! बीच-बीचमें स्वयं भी 'लाम लाघव' बोलते जाते और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलकारियाँ देते जाते। यह प्रायः नित्यकी बात थी। इसने गणेशनाथके संस्कारगत भगवद्भक्तिको अत्यन्त दृढ़ कर दिया। बचपनसे ही गणेशनाथका हृदय हरि-नामका रसिक हो गया!

जिसपर परमात्मा दया करता है उसे सर्वतोभावेन अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेके लिये संसारके समग्र बन्धन छिन्न-भिन्न कर देते हैं। गणेशनाथ कठिनाईसे बोलने-समझने योग्य हुए थे कि उनके माता-पिताका देहान्त हो गया। परन्तु जिसे परमात्माके चरणोंमें कुछ भी विश्वास हो गया उसे संसारकी कोई भी विपदा डिगा नहीं सकती। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।

गणेशनाथ क्यों घबड़ाते? जिसके मस्तकपर प्रभुका हाथ है उसे किस बातकी चिन्ता? जो दुःख देता है वही दुःखमें सँभालता भी है। वास्तवमें इसे 'दुःख' कहना संसारी मनुष्योंकी मूढ़ता ही है। विषयोंका अभाव तथा विषय सेवन करनेकी शक्तिके अभावको ही हम मूढ़जन दुःख कहते हैं। यह भूल नहीं तो क्या है। हमें तो यह समझना चाहिये कि यह प्रभुका संकेत है, वह अपनी ओर हमें आकृष्ट करनेके लिये यह निमन्त्रण भेज रहा है। हमें इस दिव्य निमन्त्रणको स्वीकारकर सर्वभावेन प्रभुकी शरणमें जाना चाहिये क्योंकि शाश्वत शान्ति एकमात्र हरिकी गोदमें ही है।

गणेशनाथको भगवन्नामका रस मिल ही चुका था। वे इस आपदाको प्रभुका प्रसाद मानकर पहलेसे भी अधिक प्रेमसे हरिनाम लेते और मस्त रहते। आस-पास साधु-महात्माओंके जो थोड़े आश्रम थे वहाँ जाकर गणेशनाथ भगवन्नामकीर्त्तन किया करते। सत्संगमें उनका जी ऐसा रमता कि वे फिर इसे छोड़ अन्यत्र कहीं जाना पसन्द ही नहीं करते! रात-दिन हरिनामरसमें छके रहते।

जिस सत्संगकी महिमा शास्त्रों और मुनियोंने गायी है और गाते-गाते अघाये नहीं वह कितनी दुर्लभ है! भगवत्कृपासे संसारकी नाना योनियोंमें भरमनेवाले पुरुषके बन्धनका जब नाश होनेका समय आता है तब ही उसे सत्संग प्राप्त होता है। और जब साधुसमागम होता है तभी साधुओंके शरण्य, कार्य-कारणोंके नियन्ता परमेश्वरमें मति स्थिर होती है। श्रीमद्भागवतका श्लोक है—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः॥
(१०।५१।५५)

सत्संग पाकर भगवद्भक्ति खिल उठती है। साधुओंका समागम पाकर गणेशनाथकी भक्ति उमड़ आयी। वे रात-दिन भगवन्नाम-जप करते और विलज्ज होकर भगवान्‌का नाम जोर-जोरसे लेकर नाचते, गाते, हँसते, रोते! उन्होंने काठके कुण्डल धारण कर लिये और एक ही लंगोटी पहनकर रहने लगे। कड़ाकेका जाड़ा, गर्मी या वर्षामें भी वे बस एक लंगोटी ही पहने रहते और सदैव प्रेमभरी वाणीसे हरिनामसंकीर्त्तन किया करते! वे भगवान्‌की मूर्त्तिके सामने प्रेमविभोर होकर नाचा करते और करुणाभरे शब्दोंमें अपने देवताके चरणोंमें प्रार्थना करते—

संसारकूपे पतितो ह्यगाधे
मोहान्धपूर्णे विषयातिसक्तः।
करावलम्बं मम देहि नाथ
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

इस संसाररूपी अगाध समुद्रमें डूबते विषयासक्त मुझ अधमको अपने हाथोंका सहारा देकर, हे नाथ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप उबार लीजिये ! हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! मैं आपकी शरण हूँ ।

अब गणेशनाथके लिये बस एक ही काम रह गया--और वह था प्रेमपूर्वक भगवन्नामकीर्त्तन । दिनको वे पासके जङ्गलमें चले जाया करते और वहाँ एकान्तमें खूब जोर-जोरसे कीर्त्तन करते । सन्ध्या समय गाँवकी ओर लौटते और हरि-कथा सुनाते । भगवान्‌की लीलामें जिसे रस आने लगता है उसे संसारके अन्य सभी रस फीके लगते हैं । भगवान्‌की लीलाओंमें जो आनन्द है वह संसारमें कहाँ मिले ? गजेन्द्र-मोक्ष और द्रौपदी-चीर-हरणकी कथा सुनाते समय गणेशनाथ सारी सुध-बुध खोकर गद्गद् कण्ठसे आर्त्तभावसे रो पड़ते--

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥

बीच-बीचमें विशिष्ट भावाविष्ट होकर वे नाचने लगते और सारी जनता प्रेम-विह्वल होकर उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाने लगती ! नामसङ्कीर्त्तनका रस बड़ा ही अनोखा है । जिसे एक बार इसका मजा आया फिर वह जन्म-जन्मान्तरके लिये नामका दास हो गया ! श्रीमद्भागवतमें ऐसे नामप्रेमी भक्तोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है । नामसङ्कीर्त्तन करनेके कारण जिसका प्रभुके पाद-पद्मोंमें दृढ़ अनुराग उत्पन्न हो गया है, जिसका चित्त प्रेमसे द्रवीभूत हो गया है ऐसा भक्त पागलकी भाँति कभी तो ज़ोरसे खिलखिलाकर हँसता है, कभी दहाड़ मारकर रोता है, कभी रोते-रोते हू हू कर चिल्लाने लगता है, कभी गाने लगता है और कभी संसारकी कुछ भी परवा न करते हुए आनन्दके उद्वेगमें नृत्य करने लगता है । कभी जोरोंसे चीत्कार करने लगता है, कभी भगवान्‌की मञ्जुल मूर्त्तिका ध्यान करने लगता है, कभी लोगोंके चरण पकड़-पकड़कर उनकी वन्दना करता है, फिर बार-बार लम्बी साँसें छोड़ने लगता है और लोक-लज्जाकी कुछ भी परवा न करता हुआ जोरोंसे हे हरि ! हे जगत्पते ! हे नारायण ! इस प्रकार उच्चारण करने लगता है ।

संसारके कोई भी नियम तन-मनकी सुधि बिसरे हुए ऐसे प्रेमी भक्तपर लागू नहीं होते । वह तो रथाङ्गपाणि भगवान्‌के चक्रपाणि, गोपिजनवल्लभ, राधारमण आदि सुन्दर सुमनोहर नामोंका तथा उनके अर्थोंका गान और उनकी अलौकिक दिव्य-दिव्य लीलाओंका सङ्कीर्त्तन करता हुआ श्रेष्ठ भक्त निर्लज्ज और निरीह होकर निःसङ्गभावसे पृथ्वीपर विचरण करता है ।

श्रीमद्भागवतमें कहा है--

शृण्वन्सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥
(११ । २ । ३९)

साधनाके पथमें सबसे विकट विघ्न है मान-प्रतिष्ठा ! बड़े ऊँचे-से-ऊँचे महात्मा अपनी साधना मान-प्रतिष्ठा, पूजा-बड़ाईकी बलिवेदीपर चढ़ा देते हैं । मान-बड़ाई मीठी छूरी है, विषरस भरा कनकघट है । जहाँ एक बार भी मान-बड़ाईकी बात सुनकर साधकका हृदय पिघला, जहाँ अपनी प्रतिष्ठामें रस मिलने लगा वहीं साधकका पतन हो गया ! इसीलिये साधनाके पथमें पग-पगपर सावधानीकी आवश्यकता है । सावधानी ही साधना है । साधकको बराबर देखते रहना चाहिये कि कहीं उसके हृदयमें--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं किसी कोनेमें लुक-छिपकर काम तो नहीं बसा हुआ है ? उसे बराबर अपने ऊपर चौकसी रखनी चाहिये और भगवान्‌का आश्रय रखते हुए सदा दुर्गुणोंसे बचते रहना चाहिये। यदि भगवान्‌का दृढ़ आश्रय बना रहा तो विपदाएँ और विषमताएँ कुछ नहीं कर सकतीं। एक बातका सदा ध्यान रखा जाय—कहीं संसारका कोई भी प्रलोभन हृदयको लुभा न ले। अस्तु।

गणेशनाथने संसारसे दृढ़ वैराग्य धारण कर लिया और सुख-दुःख, मान-अपमान, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे परे हो गये। उन्हें काञ्चन-कामिनीके प्रति इतनी उदासीनता हुई कि वे इनकी ओर देखतेतक नहीं थे। सुन्दर वस्त्र, सुस्वादु भोजन और धन सम्पत्तिकी ओरसे तो उन्होंने आँखें फेर लीं ही।

एक बार छत्रपति शिवाजी तीर्थयात्राके लिये पण्ढरपुर गये। साधु गणेशनाथका नाम सब लोग जानते ही थे। शिवाजी महाराज गणेशनाथके दर्शन करनेके लिये गणेशनाथके चरणोंमें पधारे। उस समय गणेशनाथजी कीर्त्तनमें संलग्न थे। उन्हें क्या पता था कि कौन आया और कौन गया ! सारी सुध-बुध खोकर गणेशनाथ पैरोंमें घुँघुरु बाँधकर नाचते रहे और भगवन्नामकीर्त्तन करते रहे। रात बहुत बीत गयी। कीर्त्तन समाप्त हुआ। शिवाजीने गणेशनाथजीके चरणोंमें अपना मुकुट रखकर और हाथ जोड़कर बड़े ही आदर-विनयके साथ कहा—महाराज ! आज कृपाकर मेरे खीमेमें पधारिये और वहीं रातको विश्राम कीजिये। इस मान-प्रतिष्ठाको देखकर गणेशनाथका हृदय रो उठा। परन्तु शिवाजीका आग्रह भी अटल था। जब गणेशनाथजीने देखा कि गये बिना काम न चलेगा तो उन्होंने एक तदबीर सोची। उन्होंने बहुत-से कंकड़ चुन लिये और उन्हें अपने वस्त्रके छोरमें बाँध लिया। शिवाजीको यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ और जब उन्होंने इसका कारण पूछा तो भक्त गणेशनाथने कहा—'भगवान्‌का नाम लेनेके लिये।'

मान-प्रतिष्ठाकी लपटें जब घेरने लगें तो भगवान्‌के नामका आश्रय लेना चाहिये और जोर-जोरसे भगवन्नामका जप करने लगना चाहिये। संसारके प्रलोभनोंसे परमात्मा ही बचा सकता है और उसका हाथ तो सर्वत्र, सर्वदा भक्तके मस्तकपर है ही। गणेशनाथजी जब शिवाजीके खीमेमें पहुँचे तो देखते क्या हैं कि फूलोंकी सेज बिछी हुई है, इत्र-पान रखा हुआ है और भिन्न-भिन्न प्रकारके पकवान-मिठाई परोसी हुई रखी है। गणेशनाथका हृदय सन्न हो गया ! वे सोचने लगे—हाय ! मैं इनके बीचमें क्यों फँसा ! जिस प्रकार कोई शेर गायके एक छोटे बछड़ेको पकड़कर अपनी माँदमें ले जाता है और बछड़ा भयभरी दृष्टिसे शेरको बार-बार देखता है और भाग जानेके लिये समय और राह देखता है उसी प्रकार भक्त भी मान-प्रतिष्ठाकी राक्षसीसे डरते हैं और उससे पल्ला छुड़ानेके लिये भगवान्‌से आर्त्त प्रार्थना करते हैं।

गणेशनाथको भला इस सुख-भोगसे क्या करना था ! उन्हें तो वहाँ नरककी दारुण यन्त्रणा मालूम हुई और रातभर राम-राम करके उन्होंने समय काटा। फूलकी सेजपर कंकड़ बिखेर दिये, और एक-एकको चुनकर हरिका नाम लेते रहे और भगवत्स्मरण-कर-करके आँसू बहाते रहे। नींद भला उन्हें कैसे आती ! प्रातःकाल जब शिवाजी गणेशनाथजीके दर्शनके लिये पुनः आये तो देखा कि गणेशनाथजी रोते-रोते कंकड़ चुनते जाते हैं और भगवान्‌का नाम लेकर पुनः बिखेरते जाते हैं। शिवाजीने हाथ जोड़कर बहुत श्रद्धा-विनयसे पूछा—'महाराज ! रात सुखसे नींद तो आयी, किसी प्रकारकी असुविधा तो नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई।' गणेशनाथजीने स्नेहाकुल शब्दोंमें कहा—'हाँ, आजकी रात मेरी सुफल रही—रातभर हरिस्मरण होता रहा—इससे बढ़कर कौन-सा सुख है?' इसके उपरान्त महात्मा गणेशनाथजीने विषय-सुखोंकी तुच्छता और भगवत्सुखकी श्रेष्ठताको बहुत ही प्रेमभरे शब्दोंमें शिवाजीको समझाया। अब शिवाजीकी आँखें खुलीं। गणेशनाथने अश्रुपूर्ण गद्गद् वाणीमें कहा—

कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम्।
अये कृष्ण स्वामिन्! मधुरमुरलीवादनविभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

यमुनाजीका सुन्दर पुलिन हो, वृन्दावनके सुन्दर वनोंमें वंशी बजाते हुए हलधर और सुदामा आदि प्यारे गोपोंके साथ आप विचरण कर रहे हों, हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे मदनमोहन! ओ मेरे चितचोर! मेरे ऐसे दिन कब आवेंगे जब मैं तुम्हारी इस प्रकार-की छबिको हृदयमें धारण किये पागलोंकी भाँति कृष्ण-कृष्ण चिल्लाता हुआ अपने जीवनके सम्पूर्ण समयको निमिषकी नाईं बिता दूँगा?

शिवाजीने हाथ जोड़कर क्षमा-याचना की। इसपर गणेशनाथजीने कहा—

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु त्यक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥

धर्मका आचरण करो और विषयवासनारूपी जो लोकधर्म हैं उन्हें छोड़ दो। सत्पुरुषोंका निरन्तर संग करो और हृदयसे भोगोंकी इच्छाको निकालकर बाहर फेंक दो। दूसरोंके गुण-दोषोंका चिन्तन करना एकदम त्याग कर दो। श्रीहरिकी सेवा-कथारूपी जो रसायन है उसका निरन्तर पान करते रहो। बस, इसीको मैंने तो मनुष्यमात्रका कर्तव्य समझा है।

गणेशनाथजीने अब देखा कि संसारमें उनकी कीर्त्ति-ख्याति बढ़ रही है जो उनकी साधनाकी बाधक है अतएव उन्होंने सब कुछ छोड़-छाड़कर जंगलमें रहना ही उचित समझा। साधनामें एक क्षणका भी अन्तराय साधु-महात्माओंको सह्य नहीं होता। अब गणेशनाथजी जंगलमें एकान्तवास करने लगे। वहाँ वे अहर्निश प्रभुका नाम-कीर्तन किया करते। उनके मधुर कीर्तनका प्रभाव इतना सुन्दर पड़ा कि वहाँके जंगली पशु-पक्षी भी उनके आस-पास जुट जाते और विमुग्ध दृष्टिसे उनका कीर्तन देखते तथा उनकी तालमें ताल मिलाकर बड़े ही प्रेमसे गाते—

हरे राम! हरे राम! राम राम! हरे हरे!
हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! कृष्ण कृष्ण! हरे हरे!!

गणेशनाथजीकी भक्ति-सुरभिसे समस्त वन मँह-मँह हो गया। लोग उन्हें स्वयं 'पाण्डुरंग' कहने लगे। उन दिनों ऐसी बात हो गयी थी कि गणेशनाथ जिसे भी स्पर्श कर देते वही प्रभुप्रेममें पागल हो जाता! ऐसे दीवानोंकी संख्या बढ़ती गयी। कुछ लोगोंको मजाक सूझा! वे गणेशनाथके पास जाकर कहने लगे कि आपको हम तभी सिद्ध महात्मा समझें जब आप इस वृक्षको अपना शिष्य बनावें। गणेशनाथको उस व्यङ्गसे क्या करना था? परन्तु होनी कुछ और थी, कीर्तनकी धुनमें जब मस्त होकर नाचने लगे तो अचानक उनका हाथ उस पुराने वृक्षको स्पर्श कर गया। लोगोंने देखा कि सूखा हुआ पुराना वृक्ष पुनः हरा हो गया। गणेशनाथजीने कहा—यह बेचारा पुराना वृक्ष बहुत दिनोंसे भूखा तड़प रहा है, इसे भोजन देना चाहिये और उस समय वहाँ जो कुछ अन्न-जल था वह सब देनेके लिये जैसे ही हाथ बढ़ाया तो लोगोंने देखा कि वृक्षकी धड़ एक जगह ऐसे खुल गयी मानो ग्रास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेनेके लिये मुँह खोला है। लोग आश्चर्यमें पड़ गये और पुनः गणेशनाथके साथ मिलकर 'विट्ठल' 'विट्ठल' गाने लगे।

प्रभुके प्रेममें मतवाले जिस स्थानमें रहते हैं वहाँके परमाणुओंमें ही कृष्ण-प्रेम भरा रहता है और वहाँ सभी कुछ हरि ! हरि ! की तालपर नाचता रहता है ! एक बार गणेशनाथजी कीर्तन कर रहे थे—गाते-गाते वे बेसुध हो गये और खूब जोर-जोरसे विट्ठल-विट्ठल, हरि-हरि, गोविन्द-गोविन्द चिल्लाने लगे ! अब क्या था। वहाँके पत्थर भी आपसमें खूब जोरसे मिले और लोगोंने देखा और सुना कि वे भी गणेशनाथके कीर्तनसे मुग्ध होकर आनन्दमग्न होकर नाच रहे हैं। समस्त प्रकृति प्रभुके रासमें सम्मिलित होनेके लिये आनन्द और प्रेमसे विभोर होकर नाच उठती थी। प्रभुके नामका यही प्रभाव है। संसारके सभी प्राणी—चर-अचर इस अमृतको पीनेके लिये व्याकुल हैं—जब-तक हमें इस नामका अमृत नहीं मिलता तभीतक सारी दौड़-धूप है—हरिके रसमें सराबोर हो जानेपर तो बस सब कुछ हरि-ही-हरि हो जायगा और उसी समय हम अधिकाधिक प्रेमसे नामका रस लेते हुए, प्रभुको साक्षात् देखते हुए, भीतर-बाहर उसे ही देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श करते हुए गाते रहेंगे—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

गणेशनाथ तथा अन्यान्य भक्तोंके चरित्र-श्रवण-मनन-का यही तो परिणाम है। भक्तोंके चरित्रसे हृदय पवित्र होकर हरिका निरन्तर निवासस्थान हो जाता है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

चेतावनी

(रचयिता—स्व० महाराजसाहब चतुरसिंहजी उदयपुर मेवाड़)

आवागमन मिटानको, नाम नेह रस चाख।
लाख जतन कर राख तन, अंत होयगो राख॥
बरतन काची गार ज्यों, गरत न लागे वार।
क्यों नरतनको पायकर, करत न राम सँभार॥
अरुझ्यो दार अगारमें, भज्यो न नंदकुमार।
अंतसमें पछिताय है, अंत समैकी बार॥
घड़ी घड़ी निरखे घड़ी, बढ़ी कामकी चाह।
वहै घड़ी तोको खड़ी, सुधि आवै की नाँह॥
चाहे कोटि कलानकी, मुख पै कीजे बात।
जानत सबकी जानकी, सदा जानकीनाथ॥
कीनो का करिबो कहा, करे कहा सो ढूँढ।
भूले फूले मत फिरे, मरिबो मर्‌यो न मूढ॥

प्रेषक—श्रीजगदीशजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज

(लेखक—एक भक्त)

मङ्गलाचरण

हे निम्बार्क दयानिधे गुणनिधे हे भक्तचिन्तामणे हे आचार्यशिरोमणे मुनिगणैरामृग्यपादाम्बुज ।
हे सृष्टिस्थितिपालनप्रभवने हे नाथ मायाधिप हे गोवर्द्धनकन्दरालय विभो मां पाहि सर्वेश्वर ॥

सत्य है, वस्तुके खो जानेपर ही उसका मूल्य समझमें आता है, कितनी भी कीमती क्यों न हो परन्तु जबतक वह हमारे सामने रहती है तबतक हम उसकी महानताका अनुभव नहीं कर सकते।

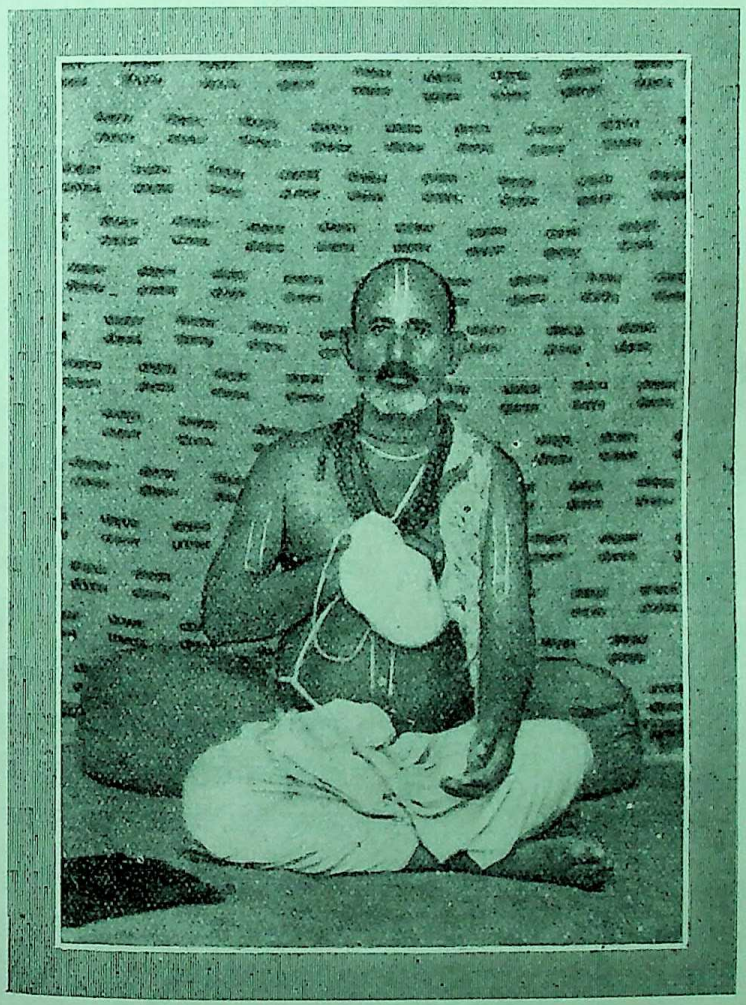

इसी दृष्टान्तका कटु अनुभव हमें इन दिनों बार-बार हो रहा है। वह दिन हमें कलकी तरह याद है, जब श्रीमहाराज अपने भजनस्थानपर बैठकर सेठ श्रीबसन्तलाल आदिको सदुपदेश दिया करते थे, और हम उन उपदेशोंको यह समझकर नहीं सुनते थे कि श्रीमहाराज नित्य ही उपदेश देते हैं और देते रहेंगे। किन्तु आज यह लिखनेमें भी अत्यन्त कष्ट होता है कि उन कर्ण और आत्माको पवित्र करनेवाले अमृतमय शब्दोंका इस नश्वर संसारमें अभाव हो गया है। ऋषियोंने इस संसारकी उपमा समुद्रसे दी है। यदि ध्यानसे देखा जाय तो यह उपमा इसके लिये बहुत उपयुक्त है। जिस तरह समुद्रमें वायुवेगसे असंख्य तरङ्गें उत्पन्न होकर फिर उसीमें विलीन होती हैं, उसी प्रकार इस संसारसागरमें भी अनन्त जीवोंका जन्म और मरण होता ही रहता है। इसके अतिरिक्त समुद्रमें जैसे महाभयङ्कर विष और प्राणदायी अमृत दोनों प्राप्य हैं उसी तरह संसारमें भी ऐसे-ऐसे दुष्ट लोग रहते हैं जिनका नाम लेते भी हृदय काँपता है और साथ ही ऐसे महात्मा पुरुष भी होते हैं जिनका स्मरण होते ही चित्तमें पवित्रता और शान्तिका अनुभव होता है। समय परिवर्तनशील है, इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तनशील समयके वशवर्ती होकर ऐसे पुण्यकर्मा महानुभाव भी इस असार संसारमें उत्पन्न होकर अपने चरित्र और सदुपदेशोंसे इस दुःखमय संसारको धन्य करके फिर अन्तर्हित हो जाते हैं । आज हम एक ऐसे ही सच्चे महात्माके जीवन-सम्बन्धी कुछ घटनाओंपर प्रकाश डालते हैं, जिनका जीवन अत्यन्त ही पवित्र और आदर्श था । प्रायः वयोवृद्ध कहा करते हैं कि मरुभूमिमें बहुत कम आदमी श्रीराधेश्यामके नामसे परिचित थे । परन्तु आज इन महात्माके चरित्रप्रभावसे साधारणसे लेकर विशेष व्यक्तितक प्रायः सभी अपने बच्चोंका राधेश्याम नाम रखनेमें गौरवका अनुभव करते हैं । इतना ही नहीं, इन वर्षोंमें जो नवीन मकान बने हैं उनपर भी पवित्र श्रीराधेश्याम नामकी छाप पायी जाती है । ठीक है, महात्माओंके चरित्रका प्रभाव कुछ-न-कुछ तो पड़ता ही है ।

हमारे चरितनायक महात्मा राजपूतानानिवासी थे । खेतड़ी नामक उपराज्यके अन्तर्गत चिड़ावा नामक प्रसिद्ध ग्राम है । इसी सौभाग्यशाली ग्राम-में श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्रचन्द्रदर्शितमतमार्तण्डविद्वद्धौरेय भक्तशिरोमणि श्रीराधिकादासोपनामक पण्डित रामप्रसादजी महाराजने गौड़वंशोद्भव पण्डित लच्छीरामजी मिश्रके घर संवत् १९३३ माघ मासकी कृष्णा अष्टमी रविवारको दिनके लगभग चार बजे शुभ जन्म ग्रहण किया था । ईश्वरके अनुग्रहसे या कोपसे आपकी माताका देहान्त इनके प्रसवकालमें ही हो गया था । किसीको इनके बचने और जीवित रहनेकी आशा न थी किन्तु 'जाको राखे साइयाँ मार न सकिहैं कोय' के अनुसार महात्माजीकी बुआने इनको प्रथम स्तन्य पान कराया । उन्हीं दिनों महात्माजीकी बुआके भी सन्तान हुई थी । इसलिये दयामयी पिताकी बहिनने ही इनके पालन पोषणका भार अपने ऊपर ले लिया । परन्तु कुछ दिनों बाद ही बुआजीको विशेष कार्य होनेसे ससुराल जाना पड़ा । तब स्नेहोत्कर्षके कारण ईश्वरकी कृपासे वृद्धावस्थामें इनकी स्नेहमयी दादीजीके स्तनोंमें दुग्धका सञ्चार हो गया और इस तरह हमारे महात्माजीका विचित्र शिशुकाल समाप्त हुआ ।

भगवान् बड़े भक्तवत्सल हैं, जो कुछ भी करते हैं अपने भक्तकी हितदृष्टिसे ही करते हैं । जिस तरह अबोध बालक भ्रमवश अग्नि और सर्पको पकड़नेको दौड़ता है तो उसके हितेच्छु माता-पिता उसे ऐसे कार्योंसे रोक देते हैं । इसी प्रकार परमपिता परमात्माने भी मरुभूमिके रत्न इन महात्माजीका मन कुटुम्बके मोहसे हटा दिया और बचपनसे ही आप विरक्तका-सा जीवन बिताने लगे । महात्माजी जब आठ वर्षके थे तभीसे आप चिड़ावाके प्रसिद्ध मन्दिर श्रीकल्याणरायजीके नित्यप्रति दर्शन करनेको जाया करते और भगवान्‌से अनेक प्रार्थनाएँ करते । अन्तमें कहते कि हे कृपालु ! सारे संसारका भला करके मेरा भी भला करना । सत्य है 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'; आगे होनेवाली भक्तिका पूर्वरूप पहलेहीसे होने लग गया था । भक्तिके क्रममें श्रीकेशव काश्मीरी महाचार्यने लिखा है—

आदौ दैन्यं हि सन्तोषः परिचर्या ततः परम् ।
ततः कृपा च सत्सङ्गोऽप्यसद्धर्मारुचिस्ततः ॥
कृष्णे रतिस्ततो भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेमलक्षणा ।
प्रादुर्भावे भवेदस्याः साधकानामयं क्रमः ॥

अर्थात् 'प्रेमलक्षणा भक्ति उदय होनेका यह क्रम है—पहले दैन्य, फिर सन्तोष, परिचर्या, कृपा, सत्सङ्ग, असद्धर्मोंमें अरुचि और तब श्रीकृष्णमें रति, फिर वह प्रेमलक्षणा भक्ति उदय होती है ।'

हमारे पूज्य महात्माजीमें उपर्युक्त सभी लक्षण पाये जाते थे । भक्तिके उदयमें नरसी मेहता, मीराबाई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुकाराम, ज्ञानदेव आदिकी बातें आजतक प्रसिद्ध हैं। श्रीभगवन्नामकी शक्तिके विषयमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं कि—

राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥

और भी बहुत-सी उक्तियाँ हैं—

कलियुग केवल नाम अधारा। प्रभु सुमिरो उतरो भव पारा ॥

श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्धमें वर्णन किया है कि—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

हमारे महात्माजी भी इसी प्रकार परम भक्त और नामरसिक थे।

हरिनामकीर्तन और भगवद्भक्तिका माहात्म्य अनेक शास्त्रोंमें मिलता है, किन्तु समयाभावके कारण आधुनिक जीव उन्हें नहीं देख सकते। यह विचारकर श्रीमहात्माजीने भगवन्नाम, भगवद्भक्ति, भक्तमहिमा आदि विषयोंपर १ गङ्गाशतक, २ संस्कृत भजनरत्नावली, ३ भाषा भजनरत्नावली, ४ वैराग्यसुधाविन्दु, ५ भक्तिसुधाविन्दु, ६ विज्ञानसुधाविन्दु, ७ हरिनामोपदेश, ८ हरिजनमहिमोपदेश, ९ भक्तनामावली, १० श्रीमत्सद्गुरुजीवनचरित्र. आदि ग्रन्थोंकी रचना की। यह सब पुस्तकें मुद्रित हैं। इनके सिवा सिद्धान्तसुधाविन्दु, भक्तमन्दाकिनी, श्रीमदाचार्यस्तुति आदि दो-तीन पुस्तकें अमुद्रित भी हैं। श्रीमहात्माजी सिद्धान्तषट्पदी, विनयपद्यावली और श्रीकृष्णपरत्व यह तीन पुस्तकें और लिख गये हैं। वे शीघ्र छप सकती हैं। श्रीमहात्माजीकी बनायी हुई इन पुस्तकोंके मनन करनेसे जीवका कल्याण हो सकता है। इन्हींकी कृपासे सेकसरिया संस्कृतपाठशाला चड़ावामें सन्ध्याको हरिनामसङ्कीर्तन हुआ करता है।

महात्माजी मातृहीन होनेसे कुटुम्बकी ओर कम ध्यान रखते थे। आप प्रायः पढ़नेमें ही तल्लीन रहा करते थे। आपके विद्यागुरुओंके नाम इस प्रकार हैं—पं० स्नेहीरामजी, न्यायकेसरी पं० रामजी लालजी, पं० श्रीरामेश्वरजी मिश्र, पं० श्रीगणेशनारायणजी, ज्योतिषके गुरु पं० घनश्यामदासजी और श्रीरूढ़मलजी पुजारी। यों तो आपने जिनसे एक अक्षर पढ़ा उनमें भी गुरुभाव रखते थे, जैसे पं० शुकदेवजी। आप कहा करते थे कि चार-पाँच दिनोंतक मैं गुरुदेव श्रीशुकदेवजीके पास पढ़ने गया था। उपर्युक्त महानुभावोंकी असीम कृपासे महात्माजी शीघ्र ही व्याकरण, न्याय और ज्योतिषके बड़े विद्वान् हो गये। महात्माजी श्रीराधेश्यामके अनन्य भक्त थे, दैन्यभावका आपमें पूरा विकास था, इसीलिये आप शास्त्रसम्बन्धी प्रतिभाको सदैव गुप्त रक्खा करते थे। गुप्त रखनेका कारण ठीक ही था, जैसे श्रीभगवतरसिकजीने अपनी वाणीमें लिखा है कि—

कुं० बिद्या रूप महत्त्व कुल, धन जोबन अभिमान।
छः कंटक देखै जहाँ, रहे न भक्ति निदान ॥
रहे न भक्ति निदान स्याँग सब नगर नारिके।
बिषयिन हाथ बिकाय नहीं रिझवन भतारके ॥
जग बंचनके हेत सब गुण सीखै अरु बिद्या।
भगवत भक्ति बिकाय कहा कीन्हों पढ़ बिद्या ॥

और भी किसी कविने कहा है कि—

प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा गौरवं रौरवोपमम्।
अभिमानं सुरापानं त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥

इन्हीं कारणोंको हृदयमें रखते हुए आपने अपने विद्याचमत्कारको पूर्णरूपसे संसारके सामने नहीं आने दिया।

यद्यपि मारवाड़ीसमाजकी बालविवाहसम्बन्धी प्रथाके अनुसार महात्माजीका विवाह भी छोटी अवस्थामें ही हो गया था, परन्तु सांसारिक कार्य आपके भक्तिमार्गमें कुछ भी बाधक नहीं हो सके। श्रीमहात्माजीको दूसरोंपर भारस्वरूप होकर रहना सदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बुरा मालूम होता था। यद्यपि श्रीमहात्माजीके पिताकी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक थी तथापि श्रीमहात्माजीको केवल बीस वर्षकी ही अवस्थामें जीविकोपार्जनके लिये कटिबद्ध हो जाना पड़ा। चार वर्ष तो अनियमितरूपसे आप यत्र-तत्र कार्य करते रहे, पश्चात् संवत् १९५७ से मलसीसर श्रीजानकीदासजी झुँझनूवालाकी पाठशालामें लगभग दो वर्षतक अध्यापन-कार्य करते रहे। फिर रामगढ़के प्रसिद्ध सेठ राधाकृष्णजी पोद्दारके सुपुत्रोंको लगभग छः मास रामगढ़ रहकर पढ़ाया। आपने एक दिन व्रजवासके लिये श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रार्थना की तो दूसरे दिन ही अचानक सेठोंके पुत्रोंसहित आपको श्रीमथुरा जानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। आपकी वह मारवाड़ी भाषाकी प्रार्थना यह थी—

भवसिन्धु डूब रह्यो दीनबन्धु तुम आकर क्यों नहिं हेरो।
चोरासी लाख सो जूग कूग रहि बाकि जहाँ नहिं फेरो॥
मैं भ्रमत-भ्रमत भवजाल भयो बेहाल माल लियो मेरो।
कामादि शत्रु बल पाय आय कीनो हिय माहीं डेरो॥
अब तो कर करुणा नाथ साथ ल्यो व्याकुल भयो बहुतेरो।
तुम सुनो श्याम सुखरासो, अँखिया दोउ दरश पियासी॥
पारब्रह्म पूरण पुरुषोत्तम नाथ आप मैं चेरो॥
॥ भव० ॥१॥

गजराज पड़ो अति भीर नीरमें करत युद्ध जब हार्‌यो।
जौभर ही बाहर रही सूँड तब हरि हरि नाम पुकार्‌यो॥
सुन टेर करी तुम म्हैर फेरके चक्र ग्राहके मार्‌यो।
अब धनी बनी क्या घनो दासको जो नहिं आय उबार्‌यो॥
तुम दीननके हितकारी, गुण गाय गाय श्रुति हारी।
श्रीनन्दकुँवर वृषभानुसुता दोउ हियमें करो बसेरो॥
॥ भव० ॥२॥

जो अपराधी जानत मोय तो क्यूँ कालिय राख्यो।
जिन मार-मार फण बार-बार श्रीअङ्गनको रस चाख्यो॥
सिरधार चरण हंकार भार कियो दूर कूर मन माख्यो।
कर नृत्य कियो है सनाथ भयो खगनाथ पूज्य भय नाख्यो॥
ऐसे भक्त कई तुम त्यारे, क्यों मोसे दीन बिसारे॥
तुम मनकी जाननहार बार क्यूँ करो हरो जगझेरो॥
॥ भव० ॥३॥

है 'राधादास' अजान मान तजि नाथ भयो अब तेरो।
प्रभु झूल रही दरियाव नाव भरि आव डरै मन मेरो॥
अब पार करो सरकार अहो इखत्यार तुम्हें सब केरो।
तुम जानत हो सब बात मात क्यूँ कियो उपकार घनेरो॥
तुम सब प्रकार मम स्वामी, मैं कुटिल दीन खल कामी॥
भवभीत चरणमें आय छिप्यो अब तुम ही शरणो मेरो॥
॥ भव० ॥४॥

भगवान्‌की असीम कृपासे श्रीमथुराजीमें श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरमें श्रीमान् सेठोंके पुत्रोंको पढ़ाने लगे। फिर वहाँसे आप जैनियोंको पढ़ानेके लिये रतलाम, भडौंच चले गये। लगभग एक वर्ष वहाँ रहे। तदनन्तर वहाँसे श्रीप्रेमसरोवरपर श्रीलक्ष्मीनारायणजीकी पाठशालामें विद्यार्थियोंके अध्यापनार्थ रहने लगे। लगभग सं० १९६० में प्रेमसरोवरकी पाठशालामें पढ़ानेके समय ही श्रीगह्वरवनमें रहनेवाले महात्मा श्रीरणछोड़दासजीसे आपने मन्त्रदीक्षा ग्रहण की। महात्मा श्रीरणछोड़दासजीकी कृपासे आपको पुत्रप्राप्ति भी हुई। आप भक्तनामावली पृष्ठ ५४ में लिखते हैं कि 'जब मैं प्रेमसरोवरपर श्रीलक्ष्मीनारायणजीकी पाठशालामें विद्यार्थियोंको अध्यापन करा रहा था तब आपके दर्शनार्थ गह्वरवनमें गया था। मुझको तो पुत्रेच्छा नहीं थी तथापि स्वयं कृपा करके मुझको पुत्रदानार्थ अचानक हाथमें आयी हुई श्रीजीकी बीड़ी आपने मुझे दी जिससे दसवें मास ही पुत्रकी प्राप्ति हुई। इस विषयमें मुझको विशेष आश्चर्य तो यह हुआ कि बिना किसी मनुष्यके लाये अचानक श्रीजीकी बीड़ी आपके हाथमें कैसे आयी!' श्रीमहात्माजीके वर्तमान समयमें दो कन्या और एक पुत्र, ऐसे तीन सन्तान हैं।

लगभग सं० १९६५ में अपनी बड़ी पुत्रीका विवाह करनेके लिये लौटकर चिड़ावा आये। विवाहके पहले ही श्रीश्यामसुन्दरकी कृपासे चिड़ावानिवासी प्रसिद्ध सेठ श्रीरङ्गलालजी बसन्तलालजी सेकसरियाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनमें श्रीमहात्माजीको देखते ही इच्छा उत्पन्न हुई कि श्रीमहात्माजीको यहीं अध्यापकके रूपमें रक्खा जाय तो उत्तम हो। सेठोंने अपनी निजी पाठशाला स्थापित की और महात्माजीको उसमें अध्यापकका कार्य सौंपा गया। आप श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायके परम वैष्णव थे। भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंमें प्रायः आपसमें द्वेष रहा करता है, किन्तु आप इस नियमके नितान्त अपवाद थे। आप वैष्णव होते हुए भी किसी अन्य देवके प्रति न तो अश्रद्धा रखते थे, न किसी तरहकी विद्वेष-भावना ही आपके मनमें थी। प्रत्युत कहा करते थे कि 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।' धन्य है, सच्ची महानुभावता इसीका नाम है।

आपकी दिनचर्या बड़ी ही विचित्र थी। आप रात्रिके लगभग तीन बजे, कभी-कभी दो बजे ही उठ जाते थे और लघुशङ्कादिसे निवृत्त हो हाथ-पैर धोकर भजन करने बैठ जाते थे। बादमें करीब दस बजे भजनसे उठकर शौचादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर फिर भजनमें बैठ जाते थे। इधर एक विद्यार्थी महात्माजीके सब कर्मोंसे निवृत्त होनेके पहले ही लगभग दिनके तीन बजे श्रीगोपालजीका प्रसाद तैयार कर लिया करता था। तब आप अपना मोन तोड़ते थे और प्रसाद पाते थे। भजनसमयमें यदि कोई विशेष कार्य होता तो लिखकर या संस्कृतभाषामें बोलकर सम्पादन करते थे। आप नित्य एक लाख हरिनामके जप करनेका संकल्प करते थे। आपका यह भी एक दृढ नियम था कि श्रीभगवान्‌के अर्पण किये बिना जलतक भी ग्रहण नहीं करते थे और प्रसादके नामसे तो विषतकसे भी नहीं हिचकते थे। आपने कुछ सज्जनोंको वैष्णवदीक्षा भी दी जिनके नाम निम्नाङ्कित हैं—

पं० चतुर्भुजजी महात्मा, पं० सीतारामजी पलड़िया, पं० विश्वेश्वरलालजी सुपोलवाले, पं० घनश्यामदासजी वैद्य—सिवाँना, पं० दुर्गादत्तजी शर्मा—झाडोदा, सेठ फूलचन्दजी कानूड़िया।

महात्माजीके सुपुत्र नन्दकिशोरजी तथा आपके पौत्र राधाशरण तथा बाई कमलादेवीने भी आपसे ही वैष्णवदीक्षा ग्रहण की थी। पाठक! संसारमें एक-से-एक अधिक महात्मा हो चुके हैं, परन्तु उनमेंसे प्रायः सभीने गृह त्याग किया है, किन्तु हमारे चरितनायक पं० रामप्रसादजी उपनाम राधिकादासजी घरमें रहते हुए भी सच्चे त्यागी बने रहे। संन्यासी होनेपर भी संसारमें न फँसना कठिन जरूर है, परन्तु संसारमें रहकर भी संसारका न होना तो अत्यन्त कठिन है। महाभारतमें एक जगह लिखा है कि उस मनुष्यके विषयमें चोर और साहूकारका निर्णय नहीं हो सकता जिसके आगे सदा ताला बन्द रहा है। सच्ची परीक्षा तभी होती है जब खजाना खुला हो और मनुष्यके मनमें पापका प्रवेश न हो। कर्म करते हुए भी कर्मके फलको न चाहना अत्यन्त कठिन है। जिस तरह कमल जलमें रहकर भी जलमें नहीं भीगता उसी तरह सन्त भी संसारमें रहते हुए संसारमें नहीं फँसते। यही साधारण मनुष्य और महात्माओंमें अन्तर है।

वैसे तो श्रीमहाराज प्रतिवर्ष दो बार अर्थात् श्रावण और फाल्गुनमें वृन्दावन अवश्य जाया करते थे, किन्तु श्रीवृन्दावनवाससे पूर्वके पाँच वर्षोंमें तो आपका ध्यान श्रीवृन्दावनकी तरफ विशेष आकर्षित हो गया था। दो वर्षोंमें श्रीमहाराजको अपने शरीर-पातकी शङ्का हो गयी थी। अतः आपने निरन्तर श्रीवृन्दावनमें रहना ही निश्चय कर लिया था। सं० १९८९ के चैत्र मासमें श्रीमहाराज रुग्ण हो गये और साधारण चिकित्सासे कुछ लाभ नहीं हुआ। श्रीमहाराजका मन औषध ग्रहण करनेका कम था, परन्तु सेठोंके विशेष आग्रह तथा और भक्तोंके कहनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार आपने दवा लेनी आरम्भ की किन्तु ईश्वरेच्छा और ही थी। आपके रुग्ण होनेसे आपकी धर्मपत्नी और पुत्र तथा सेठ गोरखरामजी तथा द्वारकाप्रसादजी आपके पास वृन्दावन चले गये और महात्माजीकी सेवा करने लगे। महात्माजीकी आज्ञानुसार वहाँपर महीनों पहले आठ पहरका हरिकीर्तन होने लगा और कलियुगमें भी सत्ययुगका-सा समय आ गया। आपने श्रीवृन्दावनवास होनेके पचीस दिन पहलेसे चिरमौनव्रत धारण कर लिया था और श्रीराधेश्याम शब्दके अतिरिक्त अन्य समस्त शब्दोंका उच्चारण करना त्याग दिया था। मौनावस्थामें एक बार आपने स्लेट-पर लिखा कि सात दिन रासलीला तथा सात दिन श्रीमद्भागवतकी कथा अच्छे सुयोग्य विद्वानोंसे होनी चाहिये। महात्माजीके कथनानुसार सात दिन रासलीला तथा सात दिन श्रीमद्भागवतका पठन निर्विघ्न हुआ। इस तरह सच्चे योगीका जीवन व्यतीत करते हुए श्रीमहाराज-का सं० १९८९ श्रावण शुक्ला १३ को प्रातःकाल ९ बजे श्रीवृन्दावननिकुञ्जवास हो गया और हमारी दृष्टिमें सदाके लिये एक दुर्लभ महापुरुषका अभाव हो गया। श्रीमहात्माजीने जिस समय अपनी मानवलीला संवरण की, उस समय उस स्थानमें श्रीप्रभुकी ऐसी अद्भुत लीला देखनेमें आयी कि कुछ लिखनेमें नहीं आता; वहाँपर तुलसीजीका थाँबला था तथा श्रीराधे-श्यामके चित्र लगे हुए थे। आप सिधारे उस समय एक ऐसी अलौकिक सुगन्धका विकास हुआ कि मानो आकाशसे अदृष्ट पुष्पवृष्टि हुई हो, या श्रीभगवान् स्वयं पधारे हों और उनके श्रीअङ्गकी दिव्य गन्ध हो। उस समय श्रीमहात्माजीकी सेवामें जो शिष्य थे और उन्होंने जो सेवा की सो सर्वथा सराहनीय है। ईश्वर उनकी श्रद्धाभक्ति बढ़ावें और साथ ही महात्माजीके परिवारको भी अपनी भक्ति दें।

[मुझे भी भक्तप्रवर पं० रामप्रसादजीके चरणदर्शनका सौभाग्य कई बार हुआ था। वास्तवमें आपकी भक्ति बहुत ही ऊँची थी। श्रीराधेकृष्णका नाम लेते ही आपकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आते थे। दीनताकी तो आप मूर्ति ही थे। भगवान्‌का नाम लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति आपकी दृष्टिमें भक्त था। आप बड़े भारी विद्वान् और ब्राह्मण होनेपर भी भक्तमात्रके चरणरजको ग्रहण करना चाहते थे। हृदय ऐसा सरल और शुद्ध था कि आपकी दृष्टिमें शायद ही किसीका दोष दीखता था। मैंने कई बार परीक्षा करके दैवी सम्पत्तिका विशेष विकास आपमें देखा। श्रीराधेश्यामके नाम और लीलापर आप मुग्ध थे। परन्तु भगवान्‌के किसी भी स्वरूपसे आपको अरुचि नहीं थी। सुना है एक बार कहीं श्रीरामलीला हो रही थी। आप देखने पधारे। भगवान् श्रीराम, श्रीलक्ष्मण तथा माता सीताजीके स्वरूपोंको देखते ही आप प्रेमावेशमें बेसुध हो गये। आपने श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये। औरोंकी दृष्टिमें वह रामलीलाके एक बालक थे, परन्तु आपकी दृष्टिमें साक्षात् भगवान् श्रीराम ही थे। आप स्तवन करने लगे। उस दिन रामलीला रुक गयी। परन्तु असली रामलीला तो हो ही गयी। आपकी साधुता, श्रीकृष्णैकपरायणता, नामप्रेम, विनय आदिका जब-जब स्मरण होता है तब-तब हृदयमें पवित्रताका अनुभव होता है। मेरे प्रति आपका बड़ा ही स्नेह था। और इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्

कुछ उपनिषद् मूल, मूलार्थ, शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थसहित लगभग १५ दिनमें छपकर तैयार हो सकते हैं ।

ईशावास्योपनिषद् सचित्र पृ० ५२ मू०	...		≡)
केनोपनिषद्(पद-भाष्य, वाक्य-भाष्य दोनोंसहित) स० पृ० १४६			॥)
कठोपनिषद् सचित्र पृ० १७८	....	....	॥-)
मुण्डकोपनिषद् सचित्र पृ० १३२	....	....	।≡)
प्रश्नोपनिषद् सचित्र पृ० १३०	....	....	।≡)

पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद् भाष्य खण्ड १) मू० २।-)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीशिवाङ्क—सपरिशिष्टाङ्क

पृष्ठ ६६६, चित्र २८७, मूल्य ३), सजिल्द ३॥)

इस विशेषांकसहित वर्ष भरकी पूरी फाइल, लेख ३५१, कविताएँ ११०, चित्र ३०२, पृष्ठ १४६६, मूल्य ४≡), सजिल्द ५।-) (दो जिल्दोंमें) ।

श्रीरामायणाङ्क (दूसरा संस्करण)

रामायणांकका गेटप, छपाई, सफाई, कागज आदि सुन्दर हैं ।
रामायणांकमें अनेक महात्माओं, देशी-विदेशी विद्वानोंके लेख हैं ।
रामायणांकमें रामलीला एवं दर्शनीय तीर्थोंके अनेक सुन्दर चित्र हैं ।
रामायणांकका मूल्य २॥≡), पृष्ठ ५०० से ऊपर और चित्र १०० से ऊपर हैं, जिल्द बँधा हुआ लेनेसे ३≡) लगेगा ।

पता—कल्याण कार्यालय, गोरखपुर

अंग्रेजी 'ईश्वरांक'

(God Number)

मू० २॥) स० ३), पूरी फाइलसहित ४॥) स० ५।)

पता—कल्याण-कल्पतरु, गोरखपुर

सब विशेषाङ्कोंमें डाकखर्च हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Regd. No. A. 1724.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The 'Gita Number'

of

The 'Kalyana-Kalpataru.'

The "Kalyana-Kalpataru" by the grace of God entered the second year of its existence in January last and the inaugural Special Number for this year is now available to the public under the title of "Gita Number." It is almost as voluminous as the "God Number" of the previous year and contains over 250 pages of closely printed matter and about a dozen of beautiful illustrations, most of which are tri-coloured. There are a good number of thought-provoking and soul-stirring articles on some of the most important topics bearing on the 'Bhagavadgita' from distinguished scholars and thinkers of this country as well as abroad, embracing different faiths such as Hinduism, Islam, Christianity, Zoroastrianism and so on. The contributors include, among others, eminent personages like H. H. Jagadguru Sri Sankaracharyaji Maharaj of Puri, Sri Aurobindo of world-wide fame, Pandit Madan Mohan Malaviya, Mahatma Gandhi, Sadhu T. L. Vaswani, Dr. F. Otto Schrader, Dr. I. J. S. Taraporewalla, Dr. M. H. Syed and Acharya A. B. Dhruva.

The price of the 'Gita Number' is Rs. 2/8/-only. The subscribers for the whole year will get this splendid volume along with eleven ordinary numbers with two multi-coloured illustrations in each, for Rs. 4/8/-only. Lovers of the Gita should avail themselves of this golden opportunity at an early date.

EXTRACTS FROM THE REVIEWS AND OPINIONS ON THE "GITA NUMBER"

...The volume irresistibly attracts at once the eye, mind and soul of the reader..... —*The Vision.*

...We have no doubt that the volume is sure to infuse indomitable spirit in the minds of those who peruse it.

—*The Indian States Gazette.*

...It is clearly seen that you are building an everlasting monument for yourself by such precious and most edifying publications year after year. It requires no proof that you are purifying the mind of India by your noble publications.

—*Mahamahopadhyaya Dr. R. Shamasastry, B. A., Ph. D., 'Arthsastravisarada'.*

Exceedingly beautiful and charming. Each of its pages is full of matters fit to be kept enshrined in the closet of memory and to be translated into action in our everyday life.

—*Swami Asangananda, Vice-President, The Ramakrishna Mission (Ceylon Branch), Colombo.*

...I am most happy that such a rich gift of commentary (of the Gita) close up to the present moment is now available.

—*Dr. James H. Cousins, Kulapati, Madanapalle College.*

THE MANAGER,
'Kalyana-Kalpataru',
Gorakhpur. (INDIA)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥
गीता अ० ३२-३३

ज्येष्ठ
१९९२

भाग ९
अङ्क ११.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन जय सियराम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥

[संस्करण २७५००]

वार्षिक मूल्य
भारतमें ४≡)
विदेशमें ६॥=)
(१० शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ।)
विदेशमें ।≡)
(८ पेंस)

Edited by Hanumanprasad Poddar.
Printed and published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press, Gorakhpur U. P. (India)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

ग्राहक नम्बर

प्रत्येक कृपालु प्रेमी पाठक महाशयकी सेवामें हम बार-बार प्रार्थना करते आये हैं कि वे अपना-अपना ग्राहक नम्बर नोट कर लें और पत्र-व्यवहार करते या रुपया भेजते समय अवश्य लिखें परन्तु अब भी कई पत्र और मनिआर्डर बिना ग्राहक नम्बरके आते हैं अतः हमारी पुनः विनम्र प्रार्थना है कि सब सज्जन अपना ग्राहक नम्बर जो "कल्याण" के रैपरपर उनके पतेके पास लिखा रहता है अवश्य नोट कर लें और हमसे कोई भी व्यवहार करते समय अवश्य लिखें।

"कल्याण"

कल्याण ज्येष्ठ सं० १९९२ की

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
१–विरह [कविता] (श्रीपरमानन्ददासजी)	१३४५
२–स्त्रीधर्म (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...	१३४६
३–शिव-स्तव [कविता] (श्रीजगन्नाथजी मिश्र गौड़ 'कमल') ...	१३६०
४–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोले-बाबाजी)	१३६१
५–दर्शन-चर्चा (विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)	१३६६
६–चित्रकूटधामकी यात्राके विचित्र अनुभव (श्री 'शील')	१३६८
७–ईश्वरका अनुभव (स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)	१३७२
८–दयाकी भीख (दयाका पात्र एक अबोध बालक)	१३७७
९–भक्त बलदेवदास (पं० श्रीहनूमान्‌जी शर्मा)	१३८२
१०–शक्ति-तत्त्व (मण्डलेश्वर स्वामीजी श्रीकृष्णानन्द गिरिजी महाराज) ...	१३८४
११–राम-दर्शन [कविता] (सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार) ...	१३८९
१२–वाह प्रेम ! (प्रेम) ...	१३९०
१३–तुम धन्य हो प्रभो ! (श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम')	१३९०
१४–स्वामी रामतीर्थकी आध्यात्मिक मस्ती (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र एम० ए० 'माधव')	१३९१
१५–भक्तरत्न प्रह्लादकी आदर्श शिक्षाप्रणाली (मि० ना० विश्वनाथ अय्यर एम० ए०, एल० टी०)	१३९५
१६–आध्यात्मिक जीवन (श्रीअनिलवरण राय)	१४०२
१७–गुणोंका आडम्बर [कविता] (पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र) ...	१४०७
१८–भक्त-गाथा (शास्त्री श्रीमङ्गलजी उद्धवजी पुरोहित)	१४०८
१९–मेरा लक्ष्य [कविता] (श्रीसुखरामजी चौबे 'गुणाकर')	१४१३
२०–सुगम साधन-पथ (गङ्गोत्तरीनिवासी दण्डि-स्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती) ...	१४१४
२१–विनाशके पथपर ! (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	१४१७
२२–श्रीराम-नाम-महिमा [कविता](श्रीसुखराम-जी चौबे 'गुणाकर')	१४२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतज्ञता

"कल्याण" पर दयामय भगवान्‌की दया और आपलोगोंका जो प्रेम है उसके लिये "कल्याण" तो कृतज्ञ है ही, हिन्दीसंसार भी उसे भूलनेवाला नहीं। लेखक, प्रचारक और प्रेमी ग्राहक अनुग्राहक महाशय जिस उच्च भावसे इसकी निस्स्वार्थ सहायता कर रहे हैं वह हिन्दीके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगी। आप सबकी सद्‌भावना और सहायतासे "कल्याण" कभी कुछ घाटे और कभी कुछ मुनाफेमें चलकर अपना आकार बढ़ाता हुआ समयपर आपकी सेवामें उपस्थित होता रहा है। "कल्याण" ने एक बातकी चाह आप प्रेमियोंसे सदा की है और आपमेंसे अनेक प्रेमियोंने उस चाहको पूरा भी किया है। इसके लिये "कल्याण" उनका अत्यन्त आभार मानता है।

"कल्याण" की वह 'चाह' धन-दौलत या अन्य किसी वस्तुकी नहीं है, वह केवल इसी साधारण बातकी है कि, यदि आप "कल्याण" को अच्छा समझते हैं और उसके प्रचार एवं विस्तारकी जरूरत समझते हैं तथा उससे कुछ लाभ मानते हैं तो उसका अधिक-से-अधिक प्रचार हो, ऐसी चेष्टा कीजिये। प्रचार ग्राहक बढ़नेसे ही होता है। अतएव—

सदाकी वह चाह इस बार भी आपके सामने उपस्थित होती है।

प्रत्येक ग्राहक महोदय "कल्याण" के दो-दो नये ग्राहक बना दें। वे जिनको ग्राहक बनावेंगे उनको सालभरतक "कल्याण" द्वारा अनेकों सन्तों और विद्वानोंके उत्तम-उत्तम धार्मिक लेख, दर्शनीय चित्र और अनेक बहुमूल्य विचार मिलते रहेंगे जो स्वाभाविक ही सुखशान्तिके कारण होंगे।

आपके द्वारा अपने मित्रोंकी यह अच्छी सेवा ही होगी। आशा है कि "कल्याण" की यह 'चाह' आपके लिये भाररूप न होकर उत्साहवर्धक ही होगी।

छपे हुए मनिआर्डर फार्म हमसे मँगवा लें।

सन्त महात्मा, विद्वान् लेखक, प्रचारक और प्रेमी ग्राहक अनुग्राहक महानुभावोंकी "कल्याण" पर जो कृपा है उसके लिये हृदयसे पुनः सबको साधुवाद !

विनीत

व्यवस्थापक—"कल्याण"—गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

आवश्यकता है

हजारों
एजेण्टोंकी

जो कल्याणके इन भावोंका प्रचार करें।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ १॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ २॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥ ३॥

उमा जे रामचरणरत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं विरोध॥ ४॥

एक भरोसो एक बल, एक आश विश्वास।
स्वाति बूँद रघुनायक, चातक तुलसीदास॥ ५॥

हरि-माया-कृत दोष-गुण, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मनमाहिं॥ ६॥

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम॥ ७॥

मत्कर्मकृन् मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डवः॥ ८॥

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥ ९॥

कमीशनमें क्या मिलेगा ?

परम कल्याण।

कौन देगा ?

कल्याणके निधान।

शीघ्र ही अलिखित आवेदन पत्र भेजिये !

पताः—कल्याणधाम।

C/o हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेमतें प्रकट होहि मैं जाना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

पुराने और नये ग्राहकोंको सूचना

(१) यह नवें वर्षका ११ वाँ अंक है। आगामी आषाढ़के बारहवें अंकमें इस सालका मूल्य समाप्त हो जायगा। दशवें वर्षका पहला अंक 'योगांक' होगा। विवरण अलग दूसरे सूचनापत्रमें पढ़िये।

(२) जो सज्जन वार्षिक मूल्य भेजकर सालभरके लिये ग्राहक बनेंगे, उन्हें ३) का 'योगांक सपरिशिष्टांक' दशवें वर्षके पहले-दूसरे अंकके रूपमें यों ही मिल जायगा। बाकी १=) में ही १० महीनोंतक हर महीने ८० पृष्ठका सचित्र 'कल्याण' मिलता रहेगा।

(३) स्थायी ग्राहकोंको और आगामी वर्षके नये ग्राहकोंको चन्देके रुपये ४=) (चार रुपये तीन आने) मनीआर्डरद्वारा बहुत जल्दी भेज देने चाहिये। मनीआर्डर भेजने और वी० पी० मँगानेमें खर्च तो बराबर ही लगेगा। परन्तु मनीआर्डर भेजनेवालोंको 'योगांक' रजिष्ट्रीसे बहुत जल्दी मिल जायगा, लेकिन वी० पी० मँगानेवालोंको महीने-डेढ़-महीनेतक राह देखनी होगी। सब प्रतियाँ पहले बिक गयीं तो शायद निराश होना पड़े।

(४) जिन प्रेमी सज्जनोंने निःस्वार्थभावसे 'कल्याण' के ग्राहक बनाये और बना रहे हैं, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं, इस समय उन सबको विशेष चेष्टा करके पुराने ग्राहकोंके रुपये भिजवाने चाहिये। तथा नये ग्राहक बनाने चाहिये।

(५) इस बारका 'योगांक' बहुत ही उपादेय, सर्वाङ्गसुन्दर, शिक्षाप्रद और संग्रहमें रखनेयोग्य होगा। अतः ग्राहक बननेवालोंको बहुत जल्दी रुपये भेजने चाहिये।

(६) ग्राहकोंको चाहिये कि वे मनीआर्डरके कूपनमें अपने ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो नया ग्राहक शब्द लिखें। नहीं तो 'योगांक' देरसे पहुँचना सम्भव है। ऐसी दशामें हम जिम्मेवार न होंगे।

(७) ध्यान रखना चाहिये कि 'कल्याण' का नया वर्ष श्रावणसे आरम्भ होता है।

(८) जिन सज्जनोंको ग्राहक न रहना हो वे कृपापूर्वक पहलेसे कार्ड लिखकर हमें सूचना दे दें ताकि व्यर्थ वी० पी० भेजकर नुकसान न उठाना पड़े।

मैनेजर, 'कल्याण' गोरखपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

'कल्याण' का

अविद्या, अभिमान, राग, द्वेष, अभिनिवेश, क्लेश, रोग, वियोग,
संशय और शोकके नाश

और

स्वास्थ्य, सुख, आनन्द, ज्ञान, प्रेम और परमात्माकी प्राप्तिके अनेकों अनुभवपूर्ण गुप्त
साधनों और रहस्योंसे विभूषित सबके लिये

उपादेय और सुन्दर

योगाङ्क

बहुत ही अद्भुत और दुष्प्राप्य सामग्रियोंसे पूर्ण होकर निकलनेवाला है।

ग्राहकोंको चाहिये

रुपये मनीआर्डरसे तुरन्त भेज दें

(मनीआर्डर-फार्म सबको मिल ही चुके हैं)

इस योगाङ्कमें योगेश्वर भगवान्‌की कृपासे बहुत ही उपयोगी लेखों तथा चित्रोंका संग्रह हुआ है।

इस अङ्कमें क्या रहेगा ?

(१) योगके विविध स्वरूप—राजयोग, लययोग, मन्त्रयोग, ध्यानयोग, हठयोग, भक्ति-योग, प्रेमयोग, कुण्डलिनीयोग आदिका साधनसहित वर्णन।
(२) योगके विविध अङ्गोंका वर्णन।
(३) ज्ञानयोग, प्रेमयोग और भक्तियोग-तत्त्वोंका वर्णन।
(४) योगकी सिद्धियोंका तथा उनकी प्राप्तिके साधनोंका वर्णन।
(५) ध्यानयोग और समाधियोगका सविस्तर वर्णन।
(६) चित्तको वशमें करनेके उपायोंका वर्णन।
(७) आसन, प्राणायाम आदिका सविस्तर वर्णन।
(८) मेस्मेरिज्म और हिपनाटिज्मका वर्णन।
(९) यौगिक पद्धतिसे रोगनाशके उपाय।
(१०) योगाश्रमोंका वर्णन।
(११) योगी महात्माओंके जीवनचरित्र।
(१२) विविध योगोंके तथा योगीश्वर भगवान् शिव, योगेश्वर भगवान् कृष्ण, नारद, याज्ञवल्क्य, शुकदेव, पतञ्जलि आदिके तथा सप्तज्ञानभूमिका, नवधा भक्ति, अष्टाङ्ग-योग, अवस्थाचतुष्टय, योगमाया, कुण्डलिनी, षट्चक्र, आसन, यौगिक व्यायाम आदिके अनेकों रङ्गीन तथा सादे चित्र।
(१३) आचार्य, योगी और महात्माओंके चित्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगाङ्कके लेखकोंमें बहुत बड़े-बड़े अनुभवी सन्त महात्मा और विद्वान् महानुभाव हैं। योगाङ्कके पढ़नेसे योगके अनेकों रहस्योंका पता लगेगा और दर्शनीय चित्रोंसे योगधारणा दृढ़ होगी। इसके लेख और चित्र सभी सम्प्रदायों और सभी देशवासियोंके लिये बड़े कामके होंगे, पृष्ठसंख्या भी परिशिष्टाङ्कसहित ७०० के लगभग होगी। चित्र तो सैकड़ों होंगे।

परिशिष्टाङ्क (भाद्रपदकी संख्या) सहित मूल्य ३) (डाकमहसूलसमेत) है। पुराने-नये ग्राहकोंको वार्षिक मूल्य ४॥) बहुत शीघ्र मनीआर्डरसे भेज देना चाहिये।

योगाङ्क (श्रावणकी संख्या) और परिशिष्टाङ्क (भाद्रपदकी संख्या) अलग-अलग नहीं मिलेंगे। दोनों साथ ही ३) में मिलेंगे। इस बार ठीक समयपर निकालनेकी चेष्टा की जा रही है। जिनको ग्राहक न रहना हो वे सज्जन कृपा करके एक कार्ड लिखकर जरूर सूचना दे दें।

योगाङ्कके कुछ लेखकोंके नाम

इस अङ्कमें जिन महानुभावोंके लेख छपे हैं या छपनेकी सम्भावना है उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य, जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्य, सर्वस्वामीजी श्रीउड़ियाबाबाजी, श्रीतपोवनजी, श्रीअसङ्गानन्दजी, श्रीकृष्णानन्दजी, श्रीजयेन्द्रपुरीजी, श्रीपुरुषोत्तमतीर्थजी, श्रीआनन्दस्वरूपजी, श्रीगंगेश्वरानन्दजी, श्रीदयानन्दजी, श्रीअभेदानन्दजी, श्रीशिवानन्दजी, श्रीमहेन्द्रवालयतीन्द्रजी, श्रीरघुवराचार्यजी, श्रीकृष्णप्रेमजी, श्रीनिगमानन्दजी, श्रीएकरसानन्दजी, श्रीसहजानन्दजी, श्रीगोपालचैतन्यदेवजी, श्रीनित्यानन्दजी, श्रीविद्यानन्दजी, श्रीकुवलयानन्दजी, श्रीअरविन्द, स्वामी हरनामदासजी, बालयोगीबालस्वामीजी, श्रीसाहेबजी महाराज, मध्वाचार्य श्रीदामोदरजी शास्त्री, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराज, महामहोपाध्याय पं० गंगानाथजी झा, पं० पंचानन तर्करत्न, महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण, पं० श्रीगिरधरजी शर्मा, पं० श्रीभवानीशङ्करजी, डा० श्रीभगवानदासजी, पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी, पं० श्रीरामदयाल मजूमदार एम० ए०, के० एस० रामस्वामी शास्त्री, डा० बालकृष्णजी कौल, डा० विनयतोष भट्टाचार्य एम० ए०, श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य एम० ए०, श्रीक्षितिनाथ सेन, श्रीसुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, श्रीसाखरे महाराज, देवर्षि पं० रमानाथजी, पं० श्रीमथुरानाथजी भट्ट, बाबा राघवदासजी, श्रीअनिलवरण राय, श्रीनलिनीकान्त गुप्त, श्रीजयरामदासजी 'दीन', श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीअटलविहारी घोष एम० ए०, डा० महेन्द्रनाथ सरकार, विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री, डा० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, श्रीहिमांशुविजयजी, पं० श्रीनारायण शास्त्रीजी वरखेड़कर, श्रीहीरेन्द्रनाथ दत्त एम० ए०, श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार, डा० दुर्गाशङ्करजी नागर, श्रीचिन्ताहरण चक्रवर्ती एम० ए०, श्रीप्रभातचन्द्र चक्रवर्ती एम० ए०, श्रीनकुलेश्वर मजूमदार एम० ए०, डा० ऑटो श्राडर जर्मनी, रे० अर्थर मैसी इङ्गलैण्ड, रे० एडविन ग्रीव्स इङ्गलैण्ड, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, श्रीनरदेवजी शास्त्री, श्रीउपेन्द्रचन्द्र दत्त एम० ए०, श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, श्रीबटुकनाथजी उपाध्याय एम० ए०, श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम० ए०, श्रीभीखनलालजी आत्रेय एम० ए०, श्रीपीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, आचार्य श्रीबालकृष्णजी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीतारकनाथजी सान्याल, म० श्रीबालकरामजी विनायक, श्रीसम्पूर्णानन्दजी, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत, आदि-आदि। स्थानाभावसे थोड़े ही नाम दिये जा सके हैं।

स्थानाभावके कारण चित्रोंके नाम नहीं दिये जा सकते।

व्यवस्थापक—
'कल्याण' गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्

नीचे लिखे उपनिषद् मूल, मूलार्थ, शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थसहित छपकर तैयार हैं—

ईशावास्योपनिषद् सचित्र पृ० ५२ मू०	....	....	....	≡)
केनोपनिषद् (पद-भाष्य, वाक्य-भाष्य दोनोंसहित) सचित्र पृ० १४६				॥)
कठोपनिषद् सचित्र पृ० १७८	....	....	....	॥-)
मुण्डकोपनिषद् सचित्र पृ० १३२	....	....	....	।≡)
प्रश्नोपनिषद् सचित्र पृ० १३०	....	....	....	।≡)

पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) मू० २।-)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

हमारी पुस्तकें अपने गाँवमें ही खरीदनेसे सस्ती पड़ेंगी

आजकल डाक-महसूल इतना बढ़ा हुआ है कि पुस्तकोंके साधारण-से पारसलपर आठ आना, छः आना, चार आना प्रति रुपया खर्च पड़ जाता है और ग्राहकोंको पुस्तकें बहुत महँगी पड़ती हैं। इससे हमारा निवेदन है कि जो सज्जन पुस्तकें लेना चाहें वे अपने गाँवके बुक्सेलरोंसे लेनेका प्रयत्न करें। इसमें उनको भी कई प्रकारका फायदा होगा।

यदि आपके गाँवमें हमारी पुस्तकें मिलनेकी सुविधा न हो तो आप सीधा हमें आर्डर भेजिये। हम आपका छोटा आर्डर भी पाकर प्रसन्न होंगे।

विनीत—**व्यवस्थापक-गीताप्रेस**

निवेदन

पुस्तक-लेखक महोदयकी सेवामें

हमारे पास प्रकाशनार्थ स्वीकृत की हुई अनेक पुस्तकें पिछले कई वर्षोंसे छापनेको पड़ी हुई हैं।

समयके अभाव और कार्यकी अधिकताके कारण उन सबका प्रकाशन निकट भविष्यमें जल्दी हो सकना सम्भव नहीं। हाँ, धीरे-धीरे काम हो रहा है। अतः हम ऐसी स्थितिमें कोई नयी पुस्तक लेकर उसे विना छापे पड़े रखना अच्छा नहीं समझते। इसलिये, विनीत प्रार्थना है कि कोई सज्जन हमें प्रकाशनार्थ पुस्तक भेजनेका श्रम न उठावें और इसके लिये हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

किसी विषयमें कुछ लिखना-पूछना चाहें तो पत्र-व्यवहार व्यवस्थापकके नामसे ही करें।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीशक्ति-अङ्क

इस वर्षके कुछ अङ्क (तीसरा, छठा) समाप्त हो जानेके कारण अब इस वर्ष और ग्राहक नहीं बनाये जा सकते। कृपालु प्रेमी ग्राहकगण या तो केवल "श्रीशक्ति-अङ्क" (जो प्रायः १०० ही बचा है) लेकर सन्तोष करें या आगामी "योगाङ्क" से ही ग्राहक बननेकी कृपा करें। ये सौ अङ्क बिक जानेके बाद इतना बड़ा अङ्क पुनः छपनेकी आशा प्रायः नहीं है।

"श्रीशक्ति-अङ्क" का मूल्य ३) मात्र है सजिल्दका ३॥) डाकखर्च हमारा।

मैनेजर—**कल्याण, गोरखपुर**

श्रीभगवन्नामजप

गताङ्कमें सोलह नामके मन्त्रजपकी सूचना निकल चुकी है, उसके बाद २९७४६६५० मन्त्रजपकी सूचना निम्नलिखित स्थानोंसे और आयी है। शेगाँव, नवादा, सरकड़ा, धर्मपुर, टाँडा, चरखारी, मियाँगंज, फर्रुखाबाद, बाडी, हसुआ, सम्मुखिया, बाँका, तलागङ्ग, अटक, अहमदाबाद, मरतबान, शाहजहाँपुर, बड़ोदा, सिलाव, कुर्राचित्तरपुर, जोधपुर, मोरान, सूरतगढ़, सीरीपुर, शर्फुद्दीनपुर, नडियाद, काकूपुर, सफीपुर, नरसिंहगढ़, बेलखेरियापुरा, कानपुर, माढेरी चाँदा, राजकोट, ईगुई, राजापुर, कोराराखुर्द, सधार, पिहानी, फतहगढ़, पक्कापुल, मालथोन, नेपाल, परताबगढ़।

कुल मिलाकर १८२१५५३५० मन्त्रका जप हुआ है। इनके नाम जोड़नेपर २९१४४८५६०० होते हैं, जिन महानुभावों और माताओं एवं बहिनोंने नाम-जप किया-कराया है उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। भगवान्‌के नामजपसे महान् लाभ होता है। इस बातपर विश्वास रखकर यथासाध्य अधिक-से-अधिक नाम-जप प्रेम और निष्कामभावसे ध्यानपूर्वक करने-करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। ध्यान न हो तो केवल नाम-जप ही करना चाहिये।

नाम-जप-विभाग

आपका मनिआर्डर

एक अङ्क और निकलनेके बाद आपका इस वर्षका चन्दा समाप्त हो जायगा।

पिछले अङ्कमें की गयी प्रार्थनाके अनुसार आगामी वर्षके चन्देके मनिआर्डर आने शुरू हो गये हैं, उसमें लिखे लाभ और सुविधाको विचारकर जिन ग्राहक महाशयोंने अभी मूल्य नहीं भेजा हो वे समय रहते ही मनिआर्डरसे भेजनेकी कृपा करें। फार्म उनको मिल ही चुका है।

विनीत—**व्यवस्थापक—कल्याण**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, ज्येष्ठ १९९२, जून १९३५ | संख्या ११ पूर्ण संख्या १०७

विरह

कौन रसिक है इन बातनकौ ।
नंद-नँदन विन कासों कहिये सुन री सखी मेरो दुख या मनकौ ॥ १ ॥
कहाँ वह जमुना पुलिन मनोहर कहाँ वह चंद सरद रातिनकौ ।
कहाँ वह मंद सुगंध अमल रस कहाँ वह षटपद जलजातनकौ ॥ २ ॥
कहाँ वह सेज पौढ़िबौ बनकौ फूल बिछौना मृदु पातनकौ ।
कहाँ वह दरस-परस 'परमानँद' कोमल तन कोमल गातनकौ ॥ ३ ॥

—श्रीपरमानन्ददास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीधर्म

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

स्त्रीधर्मके विषयमें न तो मुझे विशेष ज्ञान है और न मैं अधिकारी ही हूँ तथापि कतिपय मित्रोंका आग्रह होनेके कारण अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कुछ लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ।

स्वतन्त्रताके लिये स्त्रियोंकी अयोग्यता

स्त्री-जातिके लिये स्वतन्त्र न होना ही सब प्रकारसे मङ्गलदायक है। पूर्वमें होनेवाले ऋषि-महात्माओंने स्त्रियोंके लिये पुरुषोंके आधीन रहनेकी जो आज्ञा दी है वह उनके लिये बहुत ही हितकर जान पड़ती है। ऋषिगण त्रिकालज्ञ और दूरदर्शी थे। उनका अनुभव बहुत सराहनीय था। जो लोग उनके रहस्यको नहीं जानते हैं वे उनपर दोषारोपण करते हैं और कहते हैं कि ऋषियोंने जो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता-का अपहरण किया यह उनके साथ अत्याचार किया गया। ऐसा कहना उनकी भूल है। परन्तु यह विषय विचारणीय है। स्त्रियोंमें काम, क्रोध, दुःसाहस, हठ, बुद्धिकी कमी, झूठ, कपट, कठोरता, द्रोह, ओछापन, चपलता, अशौच, दयाहीनता आदि विशेष अवगुण होनेके कारण वे स्वतन्त्रताके योग्य नहीं हैं। तुलसीदासजीने भी स्वाभाविक कितने ही दोष बतलाये हैं—

नारि स्वभाव सत्य कबि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥

अतएव उनके स्वतन्त्र हो जानेसे—अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार आदि दोषोंकी वृद्धि होकर देश, जाति, समाजको बहुत ही हानि पहुँच सकती है। इन्हीं सब बातोंको सोचकर मनु आदि महर्षियोंने कहा है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि॥
बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम्॥

(मनु० ५। १४७-१४८)

'बालिका और युवती वा वृद्धा स्त्रीको भी (न स्वतन्त्रतासे बाहरमें फिरना चाहिये और) घरोंमें भी कोई कार्य स्वतन्त्र होकर नहीं करना चाहिये। बाल्यावस्थामें स्त्री पिताके वशमें, यौवनावस्थामें पतिके अधीन और पतिके मर जानेपर पुत्रोंके आधीन रहे, किन्तु स्वतन्त्र कभी न रहे।'

यह बात प्रत्यक्ष भी देखनेमें आती है कि जो स्त्रियाँ स्वतन्त्र होकर रहती हैं वे प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं। विद्या, बुद्धि एवं शिक्षाके अभावसे भी स्त्री स्वतन्त्रताके योग्य नहीं है।

वर्तमान कालमें स्त्री-शिक्षाकी कठिनाई

स्त्री-जातिमें विद्या एवं शिक्षाका भी बहुत अभाव है। इनके लिये शिक्षाका मार्ग भी प्रायः बन्द-सा हो रहा है और न अति शीघ्र कोई सरल राह ही नजर आती है। कन्या एवं स्त्रियोंको यदि पुरुषोंद्वारा शिक्षा दिलायी जाय तो प्रथम तो पढ़े-लिखे मिलनेपर भी अच्छी शिक्षा देनेवाले पुरुष नहीं मिलते। उनके स्वयं सदाचारी न होनेके कारण उनकी शिक्षाका अच्छा असर नहीं पड़ता वरं दुराचारकी वृद्धिकी ही शङ्का रहती है, शङ्का ही नहीं प्रायः ऐसा देखनेमें भी आ जाता है कि जहाँ कन्याओं और स्त्रियोंको पुरुष शिक्षा देते हैं वहाँ व्यभिचारादि दोष घट जाते हैं। जहाँ स्त्रियोंके साथ पुरुषोंका सम्बन्ध देखनेमें आता है वहाँ प्रायः दूषित वातावरण देखा जाता है। कहीं-कहीं तो उनका भण्डाफोड़ हो जाता है, और कहीं-कहीं नहीं भी होता। स्कूल, कॉलेज, पाठशाला, अबलाश्रम, थियेटर, सिनेमाकी तो बात ही क्या है, कथा, कीर्तन, देवालय और तीर्थस्थानादिका भी वातावरण स्त्री-पुरुषोंके मर्यादाहीन सम्बन्धसे दूषित हो जाता है। इसलिये स्त्री-पुरुषोंका सम्बन्ध जहाँतक कम हो, उतना ही हितकर है।

यदि स्त्रियोंके द्वारा कन्या एवं स्त्रियोंको शिक्षा दिलायी जाय तो प्रथम तो विदुषी, सुशिक्षिता स्त्रियोंका प्रायः अभाव-सा ही है। इसपर कोई मिल भी जाय तो सदाचारिणी होना तो अत्यन्त ही कठिन है। शिक्षा-पद्धतिको कुछ जाननेवाली होनेपर भी स्वयं सदाचारिणी न होनेसे उनका दूसरोंपर अच्छा असर होना सम्भव नहीं। आज भारतवर्षमें सैकड़ों कन्या-पाठशालाएँ हैं, परन्तु यह कहना बहुत ही कठिन है कि उनमेंसे एक भी पूर्णतया हमारे सनातन-आदर्शके अनुसार सञ्चालित हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन कालकी स्त्री-शिक्षा

पूर्वकालमें जिस शिक्षापद्धतिसे शिक्षिता होकर बहुत-सी अच्छी सदाचारिणी, विदुषी, सुशिक्षिता स्त्रियाँ हुआ करती थीं वह शिक्षापद्धति अब प्रायः नष्ट हो गयी है। पहले जमानेमें कन्याएँ पिताके घरमें ही माता-पिता-भाई-बहिन आदि अपने घरके ही लोगोंद्वारा, एवं विवाहके उपरान्त ससुरालमें पति आदिके द्वारा अच्छी शिक्षा पाया करती थीं। वर्तमान कालकी तरह कहीं बाहर जाकर नहीं। इसीलिये वे सदाचारिणी और सुशिक्षिता हुआ करती थीं। कन्याओंके गुरुकुल, पाठशाला और विश्वविद्यालयका उल्लेख श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणादिमें कहीं नहीं पाया जाता। लड़कोंके साथ लड़कियोंके पढ़नेकी बात भी कहीं नहीं पायी जाती। उस समय ऊपर कहे अनुसार घरहीमें शिक्षाका प्रबन्ध किया जाता था या किसी विदुषी स्त्रीके पास अपने घरवालोंके साथ जाकर भी शिक्षा ग्रहण की जाती थी। जैसे श्रीरामचन्द्रजीके साथ जाकर सीताजीने अनसूयाजीसे शिक्षा प्राप्त की थी। उस कालमें बड़ी-बड़ी सुशीला, सुशिक्षिता विदुषियाँ हुई हैं जिनके चरित्र आज भी हमारे लिये आदर्श हैं।

हमें भी इस समय स्त्रियोंके लिये शिक्षा और विद्या पानेका प्रबन्ध अपने घरोंमें ही करनेकी कोशिश करनी चाहिये। हर एक भाईको अपने-अपने घरोंमें धार्मिक पुस्तकोंके आधारपर अपने-अपने बाल-बच्चों और स्त्रियोंको नियमित-रूपसे शिक्षा देनी चाहिये।

प्रथम मनुष्यमात्रके सामान्य धर्मकी एवं स्त्रीमात्रके सामान्यधर्मकी शिक्षा देकर फिर कन्याओंके लिये, विवाहिता स्त्रियोंके लिये एवं विधवा स्त्रियोंके लिये अलग-अलग विशेष धर्मकी शिक्षा देनी चाहिये।

मनुष्यमात्रके कर्तव्य

मनुष्यमात्रके सामान्य धर्म संक्षेपसे निम्नलिखित हैं—स्त्रियोंको इनके भी पालन करनेकी कोशिश करनी चाहिये। महर्षि पतञ्जलिने यम-नियमके नामसे और मनुने धर्मके नामसे ये बातें बतायी हैं।

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।'

(योगदर्शन २। ३०)

किसी प्राणीको किसी प्रकार भी किञ्चित्मात्र तकलीफ न देनेका नाम अहिंसा है।

यम

न अधिक और न कम अपने मनके अनुभवका जैसा-का-तैसा भाव निष्कपटतापूर्वक प्रकट कर देनेका नाम सत्य है।

किसी प्रकार भी किसीकी वस्तुको न चुरानेका नाम अस्तेय है।

सब प्रकारके मैथुनोंका त्याग करके वीर्यकी रक्षा करनेका नाम ब्रह्मचर्य* है

शरीरनिर्वाहके अतिरिक्त भोग्य पदार्थोंका संग्रह न करनेका नाम अपरिग्रह है।

ये पाँच यम हैं। इन्हींको महाव्रत भी कहते हैं।

'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।'

(योगदर्शन २। ३२)

बाहर और भीतरकी पवित्रताका नाम शौच है।

नियम

देवेच्छासे प्राप्त सुख-दुःखादिमें सन्तुष्ट रहनेका नाम सन्तोष है।

मन और इन्द्रिय-संयमरूप धर्म-पालनके लिये कष्ट सहन करनेका नाम तप है।

ईश्वरके गुणोंका कीर्तन एवं शास्त्रोंके अध्ययनका नाम स्वाध्याय है।

ईश्वरके नामका जप और उसके स्वरूपका ध्यान ईश्वरप्रणिधान है। ये पाँच नियम हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६। ९२)

धर्मके दश लक्षण

भारी दुःख आ पड़नेपर भी बुद्धिके विचलित न होने और धैर्य धारण करनेका नाम धृति है।

अपकार करनेवालेसे बदला लेना न चाहनेका नाम क्षमा है।

मनको वशमें करनेका नाम दम है।

अस्तेय और शौचका अर्थ ऊपर लिखा ही है।

इन्द्रियोंको वशमें करनेका नाम इन्द्रिय-निग्रह है।

---

* मनसा वाचा कर्मणा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वथा मैथुनं त्यागो ब्रह्मचर्यं परिकीर्तितः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्त्विक बुद्धिका नाम धी है।

सत्य और असत्य पदार्थके यथार्थ ज्ञानका नाम विद्या है।

सत्यका अर्थ भी ऊपर दिया जा चुका है।

मनकी प्रतिकूलतामें वृत्तियोंके उत्तेजित न होनेका नाम अक्रोध है।

इनके सिवा ईश्वरभक्ति, योग्यता और शक्तिके अनुसार सेवा करना, काम-क्रोध-लोभ-मोहादि दुर्गुणोंका त्याग, लज्जा, शील, समता, सन्तोष, दया, सरलता, शान्ति, कोमलता, निर्भयता आदि सद्गुणोंका सेवन, चोरी, जारी, झूठ, कपट, हिंसा आदि दुराचारों एवं मादक वस्तुओंका तथा पर-निन्दा आदि दुर्व्यसनोंका त्याग करना मनुष्य-मात्रका कर्तव्य है।

शास्त्रोंमें मनुष्यमात्रके लिये आत्माके उद्धारके प्रायः तीन उपाय बतलाये हैं—कर्म, उपासना और ज्ञान। उनमें ज्ञानका मार्ग कठिन होनेके कारण स्त्रियोंके लिये कर्म और उपासना—ये दो ही सरल, सुसाध्य हैं। अतएव स्त्रियाँ निष्कामभावसे कर्म और उपासना करके ही शीघ्र आत्माका उद्धार कर सकती हैं।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि अपने-अपने कर्मोंके द्वारा ईश्वरको पूजकर मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८। ४६)

अतएव स्वार्थका त्याग करके सभी स्त्रियोंको उत्तम कर्मोंका आचारण निष्कामभावसे करना चाहिये। निष्काम-भावसे सदाचारका पालन करनेसे शीघ्र ही आत्माका कल्याण हो सकता है।

जिस आचरणसे यावन्मात्र जीवोंको सुख पहुँचे उसीका नाम सदाचार है।

स्त्रीमात्रके कर्तव्य

कर्म

प्रथम तो नैहर और ससुरालवालोंके साथ उत्तम आचरणका अभ्यास करें। घरमें जो बड़े स्त्री-पुरुष हों उनकी सेवा, उनसे शिक्षाका ग्रहण, नित्य उनके चरणोंमें प्रणाम और उनकी आज्ञाका पालन करें। समान अधिकारवालोंसे प्रेमका व्यवहार करके प्रीति बढ़ावें और छोटोंका वात्सल्यभावसे पालन करें एवं खान-पान, लेन-देन आदिमें स्वार्थका त्याग करके सबके साथ सम व्यवहार करें। वस्त्राभूषण एवं खान-पान आदिके पदार्थ जो बाहरसे आ प्राप्त हों या घरमें ही तैयार किये जायँ उनमें सबसे उत्तम पदार्थ यदि नैहरमें निवास हो तो माता-पिता, भाई-बहिन, भौजाई-भतीजे आदिको मिले ऐसी कोशिश करें। अपने और अपने बालकोंके लिये नहीं। यदि माता-पिता, भाई-भौजाई इत्यादि विशेष आग्रह करें और उनकी प्रसन्नताके लिये चीज स्वीकार करनी ही पड़े तो जहाँतक हो वे देना चाहें उससे कम लेकर ही स्वयं सन्तोष एवं प्रसन्नता प्रकट करें एवं उनको भी सन्तोष करावें। बिना दिये एवं बिना उनकी मर्जी कोई भी चीज़ अपने या अपने बालकोंके लिये न तो माँगे ही और न लेनेकी इच्छा ही करें। यदि माता-पिता, भाई-भौजाईसे छिपाकर कोई वस्तु देवें तो वह उनके सन्तोषके लिये भी न लें एवं भाई-भौजाईकी मर्जी बिना प्रकटमें भी कोई चीज दें तो वह भी स्वीकार न करें क्योंकि संसारमें त्याग ही सबसे बढ़कर, मूल्यवान्, महत्त्व-पूर्ण मुक्तिदायक पदार्थ है।

इसी प्रकार यदि ससुरालमें हो तो सास-ससुर-जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी, फूफी-ननद आदि एवं उनके बालकोंको उपयुक्त उत्तम पदार्थ देकर बचे हुए पदार्थ अपने पति, पुत्र, नौकरादिको देकर सबके बाद सीता, सावित्री, द्रौपदी*, दमयन्तीकी तरह आप ग्रहण करें।

अपनी निजी चीज पीहर या ससुरालके दूसरे लोग काममें लावें तो अपना अहोभाग्य समझें और आनन्द मानें। यही नहीं, वह उनकी सेवामें लगे इसके लिये कोशिश भी करें तथा इस प्रकारकी सेवा करके किसीके आगे प्रकाश न करें, दूसरोंके अधिकारकी चीज स्वयं लेनेके लिये कभी इच्छा एवं कोशिश न करें।

देवरानी, जेठानी, ननद आदिके बालकोंका अपने बालकोंकी अपेक्षा भी अधिक लाड़ और प्रेम करें। बालक थोड़ेमें ही प्रसन्न हो जाते हैं और बालकोंकी प्रसन्नता उनके माता-पिताको लाड़-चाव करनेवालेके प्रति कृतज्ञ बना देती है। इससे घरमें बड़ा प्रेम और सद्भाव रहता है।

पीहर या ससुरालमें सेवा-शुश्रूषा एवं रसोई-चौका-बर्तन आदि गृहकार्य तथा सीना-पिरोना-कातना आदि

* स्त्रीशिक्षाके विषयमें द्रौपदीने सत्यभामाको महाभारत वनपर्व अध्याय २३३-२३४ में जो कहा है वह देखना चाहिये। यह विषय गीताप्रेससे प्रकाशित 'नैवेद्य' नामक पुस्तकमें भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पकार्य या और कोई भारी कठिन काम आ प्राप्त हो तो सबसे पहले उत्साहके साथ उसको परमधर्म समझकर स्वयं करनेकी चेष्टा करें। दूसरे करते हों तो उनसे प्रेमाग्रहपूर्वक छीनकर भी स्वयं ही करनेकी चेष्टा करें। 'काममें अगाड़ी और भोगमें पिछाड़ी' वाली कहावतको अक्षरशः चरितार्थ कर दिखा दें। इस प्रकारका निःस्वार्थभावका कर्तव्य-पालन ही शीघ्र आत्माका कल्याण करनेवाला है।

कोई काम दूसरे पाँच आदमियोंके साथ मिलकर करें तो उसकी सफलताका श्रेय सत्यकी रक्षा करते हुए स्वयं न लेकर दूसरोंको ही देनेका प्रयत्न करें। तथा कुछ बिगड़ जाय तो नम्रतापूर्वक स्वयं अपना ही दोष कायम करें।

सबको यथायोग्य मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा दें किन्तु इन्हें मुक्तिमें बाधक समझकर स्वयं स्वीकार न करें। हित और सुखकर पदार्थ एवं कार्यको दूसरोंको देनेकी और कष्टप्रद एवं अधिक परिश्रमके कार्य और अपेक्षाकृत अल्प मूल्यवाले पदार्थ अपने लिये लेनेकी सदा कोशिश रखें। गृहकार्य, सेवा, उपकार करके न किसीको कहें और न उसे मनमें ही रखें। अपने द्वारा की हुई भलाई और दूसरों द्वारा की हुई अपनी बुराईको भूल जायँ किन्तु दूसरेके द्वारा किये गये उपकारको कभी न भूलें। सबके साथ प्रेमका व्यवहार और सम्मानपूर्वक बातचीत करें। अपने साथ अनुचित व्यवहार करनेवालेके साथ भी ईर्षा, क्रोध, द्वेष, घृणा आदिसे रहित होकर उसका हित करनेकी कोशिश करें। इस प्रकारके व्यवहारसे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और स्वामी भी अनुकूल बन जाते हैं किन्तु ऐसा व्यवहार स्वामीको अनुकूल बनानेके उद्देश्यसे नहीं, अपना कर्तव्य समझकर ही करना चाहिये।

पीहर या ससुरालमें जो गृहकार्य सफाई आदि आवश्यक हो उसको बिना पूछे ही करने लग जायँ। भोजनादिके विषयमें ऐसा व्यवहार करना चाहिये—बलिवैश्वदेव होनेके बाद प्रथम तो अतिथिको भोजन कराना चाहिये। उसके बाद वृद्ध, बालक, रोगी, गर्भिणी स्त्री, प्रसूतिका, नव विवाहिता वधू आदिको भोजन कराना चाहिये। फिर घरके पुरुषोंको उनके बाद नौकर आदि सबको भोजन कराके स्वयं भोजन करना श्रेष्ठ माना गया है, गृहिणी स्त्रियोंके लिये यही यज्ञशिष्ट समझा गया है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

'यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठलोग सब पापोंसे छूटते हैं और जो पापीलोग अपने शरीरपोषणके लिये ही पकाते हैं वे तो पापको ही खाते हैं।' बने हुए पदार्थों-मेंसे अच्छे-अच्छे पदार्थ अपने या अपने घरवालोंके लिये बचा लिये जायँ तो वे यज्ञसे बचे हुए नहीं वरं बचाये हुए हैं। इसलिये वे विषके समान हैं। बचाया हुआ भोजन करने-वाले पापके भागी होते हैं। अतएव अपने या अपने पति-पुत्रादिके लिये भी श्रेष्ठ पदार्थ अलग बचाकर नहीं रखने चाहिये। रसोईमें बने पाँच पदार्थोंमेंसे लोगोंके भोजन करते-करते अपने लिये थोड़े या दो तीन ही पदार्थ बच जायँ और वे भी स्वरूप और स्वाद और रसमें उतने अच्छे नहीं हैं किन्तु यज्ञशिष्ट होनेके कारण वे अमृतके तुल्य हैं।

अतिथि देवताके समान होता है। उसको प्रेमयुक्त सेवा और भोजनादिसे सदा सन्तुष्ट करना चाहिये। अतिथि-सेवा गृहस्थका एक मुख्य धर्म माना गया है। किये गये खर्च और मेहनत बराबर होनेपर भी प्रेमपूर्वक की गयी सेवा बड़ी लाभदायक होती है और बिना प्रेम की हुई सेवा परिश्रममात्र है।

मनु आदि स्मृतिकारोंने विवाहकी विधिको ही वैदिक संस्कार, पति ही गुरु, पतिगृहमें निवास ही गुरुकुलवास और गृहकार्यको ही स्त्रियोंके लिये अग्निहोत्र बताया है।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

(मनु० २। ६७)

शास्त्रमें बताये अनुसार कार्य करनेसे ही स्त्री कल्याण-को प्राप्त होती है। अतएव ऊपर लिखे शास्त्रोक्त कार्य करनेके लिये स्त्रियोंको सदा तत्पर रहना चाहिये।

साध्वी स्त्रियोंको इस बातपर भी विशेष ध्यान देना चाहिये कि घरमें किसी प्रकार कलह, लड़ाई-झगड़ा न होने पावे क्योंकि कलह साक्षात् कलियुगकी मूर्ति है। जहाँ कलह होती है वहाँ क्रोध और क्लेशकी वृद्धि होकर बड़ा अनर्थ हो जाता है। कोई-कोई तो उत्तेजित होकर कुएँमें गिरकर फाँसी लगा कर या जहर-विष खाकर कालकी ग्रास बन जाती हैं। काल, क्लेश, कल्पना, कलि इन सबकी उत्पत्ति कलहसे होती है इसलिये सुख चाहनेवाली स्त्रियोंको चाहिये कि इसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घरमें प्रवेश ही नहीं होने दें । कलह धन, धर्म और कुलको नाश करनेवाली अग्नि है । यह इसलोक और परलोकको कलङ्क लगानेवाली है । इसलिये इसका सूत्रपात होते ही प्रेमभरे विनययुक्त हितकारक सरल ठण्ढे वचनरूपी जल सींचकर इस कलह-अग्निको तुरन्त बुझानेकी चेष्टा करनी चाहिये । इस प्रकारका व्यवहार करनेवाली स्त्री मनुष्योंके द्वारा ही नहीं देवताओंद्वारा भी पूजनीया बन जाती है । उसे मनुष्य न समझकर देवी समझनी चाहिये ।

स्त्रियोंको जहाँतक हो सके घरका सारा काम स्वयं करनेकी चेष्टा करनी चाहिये । घरके कामके लिये जहाँतक हो बाहरके किसी स्त्री-पुरुषकी आवश्यकता न पड़े ऐसी चेष्टामें सदा रहना चाहिये । जिन घरोंमें रसोइया आदिसे रसोई और नौकर आदिसे गृहकार्य कराये जाते हैं उन घरोंकी स्त्रियाँ प्रायः कर्महीनता और निर्लज्जताको प्राप्त हो जाती हैं । उनमेंसे कोई-कोई तो अपने धर्मको भी खो बैठती हैं और अपने पीहर, ससुरालको कलङ्कित बनाकर लोक-परलोक भ्रष्ट कर लेती हैं ।

स्त्रियोंको उचित है कि प्रसन्नचित्त होकर घरके कामोंमें कुशलता और घरकी सामग्रियोंकी भलीभाँति सँभाल, कम खर्च करना, धन और आय-व्ययका हिसाब रखना, अतिथि-सेवा, सन्तानकी उत्पत्ति और पालन, धर्मकार्य और सेवामें रति, सीना-पिरोना, चर्खा कातना, चक्की पीसना, चौका-बर्तन आदि सभी काम स्वयं कर्तव्य समझ करके प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे करें । इससे वे इस लोकमें यश पाती हैं और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त करती हैं ।

तम्बाकू, भाँग, मदिरादि मादक वस्तुओंका सेवन दुर्जनोंका संसर्ग, पतिके वियोगमें रहना, इधर-उधर स्वतन्त्रतासे घूमना, दूसरोंके घरमें रहना, असमयमें सोना ये छः बातें स्त्रियोंके लिये मनुजीने भारी दोष बताये हैं । अतः सभी स्त्रियोंको सावधानीपूर्वक इनसे बचकर रहना चाहिये ।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ॥

(मनु ९ । १३)

स्त्रियोंको थियेटर-सिनेमा, विवाह, सभा, समुदाय, होली आदिमें पुरुषसमाजके सामने या स्त्रियोंके समुदायमें भी गाना, बजाना, नाचना, बुरे गीत आदि कार्य नहीं करने चाहिये क्योंकि ऐसे कार्यसे उनमें कामोद्दीपन होकर उनके नष्ट-भ्रष्ट होनेकी सम्भावना है । देवर, भानजे, जँवाई, ननदोई, बहनोई आदिके साथ एकान्तमें या समुदायमें हँसी-मसखरी, अश्लील बात करना महापाप है । स्त्रियोंको अपने पतिके अतिरिक्त दूसरे पुरुषका दर्शन, स्पर्श, भाषण, और उसके साथ एकान्तवासादि भी नहीं करना चाहिये । विशेष आवश्यकता हो तो नीची नजर रखकर उनको पिता और भाईके समान समझकर किसी अच्छी स्त्री, बालक आदिको साथमें रखकर पवित्र बातें करनेमें दोष नहीं है । किन्तु अकेले पुरुषके साथ एकान्तमें कभी वार्तालाप या वास नहीं करना चाहिये, चाहे पिता, भाई, पुत्र ही क्यों न हों; क्योंकि इन्द्रियोंका समुदाय बलवान् है, वह बुद्धिमानोंको भी मोहित कर देता है । अतः सदा सावधान रहना चाहिये ।

समता

समता ही अमृत है और विषमता ही विष है । इसलिये सबके साथ समताका ही व्यवहार करना चाहिये । जो चीज तुम अपने लिये उत्तम समझती हो उसको सबके लिये उत्तम समझकर जिसको देना उचित समझो उसको भेद-भाव न रखकर समभावसे दो । जो चीज तुम अपने लिये खराब समझती हो उसको सबके लिये खराब समझकर किसीको भी मत दो । घरमें बने या बाहरसे आये हुए भोजनादि पदार्थ भेद-भावको छोड़कर सबको समभावसे प्रदान करो यानी जो भोजनादिकी सामग्री तुम अपने पतिको प्रदान करती हो वही आये हुए अतिथि और नौकरादिको भी दो ।

चोरी, जारी, झूठ, कपट आदि बुरे कर्मोंका कतई त्याग करके दान, तप, तीर्थ, व्रत, सेवा और गृहकार्य आदि उत्तम कर्मोंको फल और आसक्तिको त्यागकर निष्कामभावसे अभिमानरहित होकर एवं कर्तव्य समझकर करो । गृहकार्यके बनने-बिगड़नेमें हर्ष-शोक मत करो । संयोगसे अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थ एवं सुख-दुःखादिके प्राप्त होनेपर उनमें भी राग-द्वेष मत करो । उसको ईश्वरका भेजा हुआ पुरस्कार समझकर प्रसन्नचित्तसे स्वीकार करो । इस प्रकार करनेसे समत्वभावकी प्राप्ति होती है और समता ही अमृत है । निन्दा-स्तुति और मान-अपमान तथा वैरी और मित्रमें भी समबुद्धि रक्खो । इस प्रकार करनेसे सारे पाप, क्लेश और दुःखोंसे छूटकर परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति होती है । मुक्त पुरुषके लक्षणोंको बतलाते हुए भगवान्‌ने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(गीता १४। २४-२५)

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ, दुःख-सुखको समान समझनेवाला है तथा, मिट्टी पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है तथा जो मान और अपमानमें सम है एवं मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष, गुणातीत कहा जाता है।'

ऊपर निष्कामभावसे कर्म करनेके द्वारा कल्याणके प्राप्त होनेकी कुछ बातें कहीं। अब ईश्वरकी उपासनाके विषयमें संक्षेपसे लिखा जाता है। ईश्वरकी भक्तिमें सभीका अधिकार है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

उपासना

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(९। ३२)

अतएव सभी स्त्रियोंको निष्कामभावसे ईश्वरकी अनन्य भक्ति करनी चाहिये। ईश्वरकी शरण एवं अनन्य भक्तिसे उसका दर्शन, उसके तत्त्वका ज्ञान और उसकी प्राप्ति हो सकती है। (गीता अ० ११। ५४) अनन्य भक्ति यह है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११। ५५)

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये (सब कुछ मेरा समझता हुआ) यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करनेवाला है और मेरे परायण है अर्थात् मुझको परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्तिके लिये तत्पर है तथा मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम गुण प्रभाव और रहस्यके श्रवण कीर्तन मनन ध्यान और पठन-पाठनका प्रेमसहित निष्कामभावसे निरन्तर अभ्यास करनेवाला है और आसक्तिरहित है अर्थात् स्त्री, पुत्र और धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थोंमें स्नेहरहित है और सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें वैरभावसे रहित है ऐसा वह अनन्य भक्तिवाला पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

ईश्वरकी अनन्य भक्ति—अव्यभिचारिणी भक्ति, अनन्य शरण वस्तुतः एक ही बात है। भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति शरणके लक्षण बतलाते हुए कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(गीता ९। ३४)

केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामें ही अनन्य प्रेमसे नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वरको ही श्रद्धा-प्रेम-सहित निष्कामभावसे नाम, गुण और प्रभावके श्रवण, कीर्तन, मनन और पठन-पाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो तथा मेरे स्वरूपका मन, वाणी और शरीरके द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमसे विह्वलतापूर्वक पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणोंसे सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेवको विनयभावपूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर, इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्माको मेरेमें एकीभाव करके मुझको ही प्राप्त होगा।

अतएव स्त्रियोंको प्रातःकाल उठकर ईश्वर-स्मरण करके शौच-स्नान आदि क्रियाओंसे निपटकर पीहरमें माता-पिता आदिकी, ससुरालमें सास-ससुर, पति आदि बड़ोंकी पूजा, उनको नमस्कार और उनकी सेवाका कार्य करना चाहिये। तदनन्तर ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये। एकान्त स्थानमें आसनपर बैठकर पवित्र होकर करुणा और प्रेमभावपूर्वक प्रफुल्लित मनसे भगवान्‌की स्तुति करके फिर उस सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् विज्ञानानन्दघन निराकार परमात्माका ध्यान करना चाहिये। यदि साकार भगवान्‌में प्रेम हो तो करुणाभावसे उनका आह्वान करके प्रभाव और गुणोंके सहित उनके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। निराकार-सहित साकारका ध्यान किया जाय तो और भी उत्तम है। परन्तु निराकारके तत्त्वको न समझे तो केवल साकारका ही ध्यान किया जा सकता है। फिर ध्यानावस्थामें भगवान्‌को आये हुए समझकर प्रेममें मुग्ध हो जाना चाहिये। बादमें सावधान होनेपर भगवान्‌की मानसिक यानी मनसे सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामग्रियोंको रचकर पूजा करनी चाहिये।* मनसे ही भगवान्‌के भोग लगाकर उनकी आरती करनी चाहिये। फिर मन-ही-मन भगवान्‌की स्तुति गाकर भगवान्‌में अनन्य प्रेम होनेके लिये और उनके साक्षात् दर्शनके लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। उसके बाद गुण और प्रभावसहित भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन करते हुए ही गृह-कार्य करनेकी आदत डालनी चाहिये। पीसते, पोते, चौका-बरतन करते अर्थात् प्रत्येक काम करते समय उनके नामका जप और स्वरूपका चिन्तन निरन्तर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

नवधा भक्ति

श्रीमद्भागवतमें प्रह्लादने अपने पिताके प्रति भक्तिके लक्षण बतलाये हुए नौ भेद कहे हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीलाओंको प्रभावसहित प्रेमपूर्वक राजा परीक्षितके अनुसार सुननेका नाम श्रवणभक्ति, और शुकदेव, नारदादिकी भाँति वाणीसे उच्चारण करने या दूसरोंके प्रति कहनेका नाम कीर्तनभक्ति, ध्रुव-प्रह्लादादिकी तरह मनसे चिन्तन करनेका नाम स्मरणभक्ति है।

उस प्रभुके चरणोंकी भरत और लक्ष्मीके अनुसार सेवा करनेका नाम पादसेवनभक्ति है और उसके स्वरूपकी मानसिक या पार्थिव धातु आदिकी मूर्तिकी गुण और प्रभावसहित राजा पृथु और अम्बरीषके माफिक पूजा करना अर्चनभक्ति है।

अक्रूर एवं भीष्मादिकी भाँति नमस्कार और प्रणाम करना वन्दनभक्ति है।

लक्ष्मण और हनुमान् आदिकी भाँति दासभावसे आज्ञाका पालन करना दास्यभक्ति है।

अर्जुन और उद्धवकी तरह सखाभावसे उसके अनुकूल चलना सख्यभक्ति है।

राजा बलिकी भाँति सर्वस्व अर्पण कर देना आत्मनिवेदनभक्ति है।

इन ऊपर बतलायी हुई नव प्रकारकी भक्तियोंमेंसे एकको भी अच्छी प्रकार धारण करनेसे प्रायः सभी भक्तियाँ अपने-आप आ जाती हैं इसलिये इनमेंसे एकका भी भली प्रकार पालन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति सहजमें ही हो सकती है। यह भक्तिका विषय स्थान सङ्कोचके कारण केवल सगुण-साकारके विषयमें ही बहुत संक्षेपसे बतलाया गया है। सभी स्त्रियोंको अपना जो इष्ट हो उस देवी या देवको परमेश्वर समझकर उपर्युक्त भक्ति निष्काम-प्रेमभावसे सभी अङ्गोंसहित करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार करनेसे अपने इष्टदेवका साक्षात्कार होकर परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

कुरीतियाँ

स्त्रियोंमें स्वाभाविक ही बहुत-सी कुरीतियाँ हैं, उनका त्याग कर देना चाहिये। जैसे किसी स्त्रीके सन्तान नहीं होती है तो वह सन्तानके लिये ठगोंके पंजेमें पड़कर निषिद्ध चीजोंका भक्षण एवं जादू-टोना आदि अनेक निकृष्ट क्रियाओंका सम्पादन कर लिया करती हैं। किसीका बालक बीमार होता है तो वह मूर्ख स्त्रियोंके बहकानेसे मूर्खताके वश हो भंगीसे झाड़ा दिवाना तथा किसी नीच विधर्मी पुरुषसे थुथकारा डलवाना यानी थुकाना और निषिद्ध चीजोंका खिलाना-पिलाना आदि अनेक लोक-परलोकको नाश करनेवाली क्रियाएँ कर लिया करती हैं; तथा लड़कोंकी रक्षाके लिये देवी-देवता, जात-झड़ूला भी बोलती-करती हैं किन्तु यह विचारनेका विषय है, सिरके बाल देवताको चढ़ाना न तो धर्म है और न कोई इससे देवी-देवता ही खुश होते हैं। यह केवल स्त्रियोंकी मूर्खता है। आप बताइये, यदि कोई मनुष्य कहे कि आप हमारा उपकार करें तो हम उसके बदलेमें आपके घरपर जाकर बाल बनवावेंगे तो क्या आप हड्डीके समान अपवित्र बालोंको अपने घरपर बिखेरने या डालनेसे खुश हो सकते हैं? यदि नहीं तो फिर देवता भी इससे कैसे खुश होंगे? झड़ूला आदि षोडश-संस्कारोंमेंसे चूड़ाकर्म नामक एक संस्कार है, इसकी शास्त्रोंमें जो विधि लिखी है उसके अनुसार ही इसका सम्पादन करना चाहिये। इसी प्रकार कर्णवेध-संस्कार जो आजकल मनोकल्पित रीतिसे 'प्रयोजन' के नामपर प्रचलित है वह भी शास्त्रविधिके अनुसार होना चाहिये। और भी संस्कार यथाशक्ति शास्त्रोक्त रीति अनुसार करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। शास्त्रोक्त सारे देवी-देवताओं-की पूजा शास्त्रानुकूल निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ की जाय तो सबसे उत्तम समझी जा सकती है।

* गीताप्रेससे प्रकाशित 'श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश' नामक पुस्तकमें मानसिक पूजाकी विधि लिखी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े शोककी बात है कि बहुत-से शास्त्रोक्त कर्म भोली-भाली स्त्रियोंने नष्ट करके अनेक कुरीतियाँ चला दी हैं। बहुत-सी नयी कल्पित बातें भी खड़ी कर दी हैं, जैसे विवाहमें टूँटिया करना, चाक पूजना, जूआ खेलना, गन्दे गीत गाना इत्यादि। इनका सुधार करना चाहिये।

अपने घरवाला कोई किसी मृतकके साथ श्मशान जाकर आता है तो कुछ भोली स्त्रियाँ उसको एक दिनके लिये अपने घरमें नहीं आने देतीं। यदि आने देती हैं तो दूध या मिठाई खानेको नहीं देतीं। उनको यह वहम होता है कि ऐसा करनेसे इसके प्रेत लग जायगा। इस प्रकारका मूर्खतापूर्ण व्यवहार तो अपने घरवालोंके साथ करती हैं। यदि कोई दूसरे घरका आदमी मृतकपर मुण्डन करवाकर कार्यवश घरमें आना चाहता है और घरमें कोई बालक उत्पन्न हुआ होता है या कोई बीमार होता है तो उसका घरमें आना हानिकर समझती हैं। इस तरह बात-बातमें अनेक प्रकारके वहमोंका भूत घुस गया है। इसे हम कहाँतक लिखकर निवेदन करें। अतएव माता और बहिनोंको इन कुरीतियोंको हटानेके लिये जी-तोड़ परिश्रम करना चाहिये।

बहुत-सी स्त्रियाँ तो अपने बालकोंको यज्ञोपवीत भी नहीं दिलातीं। वे कह दिया करती हैं कि इसके चाचेने जनेऊ ली थी वह दो वर्ष बाद मर गया। भला, बताइये क्या यह जनेऊका फल हो सकता है? जनेऊ लेनेसे तो अच्छी शिक्षा ही मिलती है। जिसके पालनसे मनुष्य पवित्र और दीर्घजीवी हो सकता है। यज्ञोपवीत एक उत्तम संस्कार है। इसलिये त्रैवर्णिकोंको अपने बालकोंको यज्ञोपवीत अवश्य दिलाना चाहिये।

स्त्रियोंके लिये पर्दा रखना एक लज्जाका अङ्ग है।

पर्दा

बहुत-से भाई लोग इसको स्वास्थ्य, सभ्यता और उन्नतिमें बाधक समझकर हटानेकी जी-तोड़ कोशिश करते हैं, यह समझना उनकी दृष्टिमें ही ठीक हो सकता है किन्तु वास्तवमें पर्देकी प्रथा अच्छी है और पूर्वकालसे चली आती है। राजपूताना आदि देशोंमें जहाँ पर्देकी प्रथा है, वहाँकी स्त्रियोंके स्वास्थ्यको देखते हुए कौन कह सकता है कि पर्देसे स्वास्थ्य बिगड़ता है। स्वास्थ्य बिगड़नेमें स्त्रियोंकी अकर्मण्यता प्रधान है, न कि पर्दा। स्त्रियोंकी सभ्यता तो लज्जामें है न कि पर्दा उठाकर पुरुषोंके साथ घूमने-फिरने, मोटर आदिमें बैठने या थियेटर-सिनेमा आदिमें जानेमें। जो स्त्रियाँ सदासे पर्दा रखती आयी हैं उनमें उसके त्यागसे निर्लज्जताकी वृद्धि होकर, व्यभिचार आदि दोष आकर उनके नष्ट-भ्रष्ट होनेकी सम्भावना है जो महान् अवनति या पतन है।

कन्याओंके कर्तव्य

कन्याओंको प्रातःकाल उठकर ईश्वरस्मरण, शौच, स्नान करनेके बाद माता, पिता, भाई, भौजाई आदि घरके पूज्य लोगोंको नमस्कार-प्रणाम आदि करना एवं उनसे उत्तम विद्या पढ़नी और उत्तम शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और उनकी आज्ञाका पालन तथा उनकी सेवा, सीना-पिरोना, कातना आदि गृहकार्य और शिल्पकार्य सीखना तथा गृहशुश्रूषा करनी चाहिये। ससुरालमें जाकर सबके साथ कैसे सद्व्यवहार करना, सेवा करना और शुश्रूषा करना इन सारी बातोंकी शिक्षा अपने घरवालोंके उपदेश और चरित्रोंद्वारा ग्रहण करनी चाहिये। बुरी लड़की-लड़कोंका संग न करना एवं किसीके साथ मार-पीट, लड़ाई-झगड़ा, गाली-गुप्ता एवं दुर्व्यवहार न करना और दूसरे लड़कोंके साथ खेलना-कूदना भी नहीं चाहिये। उत्तम आचरण और सुशील स्वभाववाली स्त्रियों और लड़कियोंका साथ करना चाहिये। व्यर्थ बकवाद, दूसरोंकी निन्दा, व्यर्थ चेष्टा, चाय, भाँग आदि नशीली वस्तुओंका सेवन इत्यादि बुरे व्यसनोंकी आदत नहीं डालनी चाहिये। बिस्कुट, बर्फ, सोडावाटर, लेमोनेड, विलायती औषध आदिका सेवन नहीं करना चाहिये, विलायती औषधमें लहसुन, प्याज, मदिरा, मांस, चर्बी आदितकका प्रायः ही मिश्रण रहता है। इससे धर्म, धन और स्वास्थ्यकी भी हानि होती है। खट्टा, चरपरा, पान, सुपारी आदिकी भी आदत नहीं डालनी चाहिये। बालकपनसे ही हाथके बुने देशी कपड़े पहननेकी एवं काँच आदिकी पवित्र चूड़ियाँ पहननेकी आदत डालनी चाहिये। विलायती और मीलके बुने कपड़े और लाख तथा हाथी-दाँतकी बनी चूड़ियोंका कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये। लाखकी चूड़ियोंमें बहुत हिंसा होती है और वे अपवित्र भी हैं।

खाने, पीने और खेल-कूद आदिमें मन न लगाकर बुद्धि, ज्ञान और विवेक आदिकी वृद्धिके लिये विद्या एवं धार्मिक पुस्तकें पढ़ने, सुनने और बाँचनेका अभ्यास करना चाहिये। शरीर, कपड़े, घरकी पवित्रताके लिये सफाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मनको पवित्र बनानेके लिये अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य आदि उत्तम आचरणोंका पालन करना चाहिये। शरीरमें बल बढ़ानेके लिये बरतन आदिका मलना, घरको झाड़ना-बुहारना, आटा पीसना, चावल कूटना, जल भरना, बड़ोंकी सेवा-शुश्रूषा आदि परिश्रमके काम करने चाहिये। कन्याओंके लिये यही उत्तम व्यायाम है, इनसे शरीरमें बलकी वृद्धि एवं मनकी पवित्रता भी होती है। शारीरिक और मानसिक कष्ट सहने आदिकी आदत डालनी चाहिये। पूर्वमें बताये हुए पुरुषोंके और स्त्री-जातिके सामान्य धर्मोंको सीखनेकी भी कोशिश करनी चाहिये। बड़ों और दूसरोंके कहे हुए कठोर वचनोंको भी शिक्षा मानकर प्रसन्नतासे सुनना और उनमें शिक्षा हो सो ग्रहण करनी चाहिये। कड़वे और अप्रिय वचनोंमें भी हित खोजना चाहिये। देवी और देवताओंका पूजन, साधु-महात्मा, ज्ञानी और ब्राह्मणोंका सदैव सत्कार करना चाहिये। ऊपर बताये हुए सारे काम ईश्वरको याद रखते हुए ही करनेका स्वभाव बनाना चाहिये।

अपने भाई-बहिन आदिके साथ प्रेमपूर्वक रहने एवं उनका प्यार करने और लालन-पालन करनेकी सभी बातें सीखनी और करनी चाहिये जिससे आगे चलकर अपनी सन्तानका भी पालन कर सके।

कन्याको उचित है कि पिता या पिताकी सलाहसे भ्राता एवं पिताका देहान्त होनेके उपरान्त केवल भ्राता जिस पुरुषके साथ विवाह कर दे उसकी आजीवन सेवा एवं आज्ञाका पालन करे और पतिका देहान्त होनेके बाद भी उसके बताये हुए व्रतका कभी उल्लंघन न करे। क्योंकि मनु आदि महर्षियोंने कन्याके धर्म बताते हुए कहा है—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥

(मनु० ५। १५१)

विवाहिता स्त्रियोंके कर्तव्य

विवाहिता स्त्रीके लिये पातिव्रतधर्मके समान कुछ भी नहीं है इसलिये मनसा-वाचा-कर्मणा पतिके सेवापरायण होना चाहिये। स्त्रीके लिये पतिपरायणता ही मुख्य धर्म है। इसके सिवा सब धर्म गौण हैं। महर्षि मनुने साफ लिखा है कि स्त्रियोंको पतिकी आज्ञा बिना यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी न करने चाहिये। स्त्री केवल पतिकी सेवा-शुश्रूषासे ही उत्तम गति पाती है एवं स्वर्गलोकमें देवता लोग भी उसकी महिमा गाते हैं।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

(मनु० ५। १५५)

जो स्त्री पतिकी आज्ञा बिना व्रत, उपवास आदि करती है वह अपने पतिकी आयुको हरती है और स्वयं नरकमें जाती है—

पत्यौ जीवति या तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति॥

इसलिये पतिकी आज्ञा बिना यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत आदि भी नहीं करने चाहिये, दूसरे लौकिक कर्मोंकी तो बात ही क्या है। स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ है, पति ही व्रत है, पति ही देवता एवं परम पूजनीय गुरु भी पति ही हैं। ऐसा होते हुए भी जो स्त्रियाँ दूसरेको गुरु बनाती हैं वे घोर नरकको प्राप्त होती हैं। जो लोग परस्त्रियोंके गुरु बनते हैं याने परस्त्रियोंको अपनी चेली बनाते हैं वे ठग हैं। वे इस पापके कारण घोर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। आजकल बहुत-से लोग साधु-महन्त और भक्तोंके वेशमें बिना गुरुके मुक्ति नहीं होती ऐसा भ्रम फैलाकर भोली-भाली स्त्रियोंको मुक्तिका झूठा प्रलोभन देकर उनके धन और सतीत्वका हरण करते हैं और घोर नरकके भागी बनते हैं। उन चेली बनानेवाले गुरुओंसे माताओं और बहिनोंको खूब सावधान रहना चाहिये। ऐसे पुरुषोंका मुख देखना भी धर्म नहीं है। मनु आदि शास्त्रकारोंने स्त्रियोंकी मुक्ति तो केवल पातिव्रतसे ही बतलायी है। गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥
मन वच कर्म पतिहि सेवकाई। तियहि न यहि सम आन उपाई॥
बिनु श्रम नारि परमगति लहई। पतिव्रत धर्म छाँडि छल गहई॥

वही स्त्री पतिव्रता है जो अपने मनसे पतिका हित-चिन्तन करती है, वाणीसे सत्य, प्रिय और हितके वचन बोलती है, शरीरसे उसकी सेवा एवं आज्ञा-पालन करती है। जो पतिव्रता होती है वह अपने पतिकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करती। वह स्त्री पतिसहित उत्तम गतिको प्राप्त होती है और उसीको लोग साध्वी कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥

(मनु० ५ । १६५)

स्त्रियोंके लिये इस लोक और परलोकमें पति ही नित्य सुखका देनेवाला है ।

अनृताद्यृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥

(मनु० ५ । १५३)

इसलिये स्त्रियोंको किञ्चित्मात्र भी पतिके प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिये । जो नारी ऐसा करती है यानी पतिकी इच्छा और आज्ञाके विरुद्ध चलती है उसको इस लोकमें निन्दा और मरनेपर नीच गतिकी प्राप्ति होती है ।

पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुणाई ॥

इस प्रकार पतिकी इच्छाके विरुद्ध चलनेवालीकी ही यह गति लिखी है तो जो नारी दूसरे पुरुषोंके साथ रमण करती है उसकी घोर दुर्गति होती है इसमें तो बात ही क्या है ?

पतिवंचक परपतिरति करही । रौरव नरक कल्प शत परही ॥

अतः स्त्रियोंको जाग्रत्की तो बात ही क्या स्वप्नमें भी परपुरुषका चिन्तन नहीं करना चाहिये । वही उत्तम पतिव्रता है जिसके दिलमें ऐसा भाव है—

उत्तमके अस बस मनमाहीं । स्वप्नेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥

पति यदि कामी हो, शील एवं गुणोंसे रहित हो तो भी साध्वी यानी पतिव्रताको ईश्वरके समान मानकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये । महर्षि मनुने भी कहा है—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥

(मनु० ५ । १५४)

अपमान तो अपने पतिका कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि जो नारी अपने पतिका अपमान करती है वह परलोकमें जाकर महान् दुःखोंको भोगती है ।

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना । नारि पाव यमपुर दुख नाना ॥

पुरुषों और स्त्रियोंके जो सामान्य धर्म बतलाये हैं उनका भी पालन करना चाहिये । पातिव्रतधर्मके रहस्यको जाननेवाली स्त्रियोंको अपने पतिसे बड़ों—सास, ससुरादिकी पतिके समान ही सेवा-पूजा और आज्ञापालन करनी चाहिये क्योंकि वे पतिके भी पति हैं । पातिव्रतधर्मके आदर्शस्वरूप सीता-सावित्री आदिने ऐसा ही किया है । जब सावित्री अपने पतिके साथ वनमें गयी तब पतिकी आज्ञा होनेपर भी सास-ससुरकी आज्ञा लेकर ही गयी थी । श्रीसीताजी भी श्रीरामचन्द्रजीके साथ माता कौसल्यासे आज्ञा, शिक्षा और आशीर्वाद लेकर ही गयी थीं ।

साध्वी स्त्रियोंको उचित है कि अपने लड़के-लड़कियोंको आचरण एवं वाणीद्वारा उत्तम शिक्षा दें । माता-पिता जो आचरण करते हैं बालकोंपर उनका विशेष असर पड़ता है । अतः स्त्रियोंको झूठ-कपट आदि दुराचार एवं काम, क्रोध आदि दुर्गुणोंका सर्वथा त्याग करके उत्तम आचरण करने चाहिये । बहुत-सी स्त्रियाँ लड़कियोंको 'राँड' और लड़कोंको 'तू मर जा' 'तेरा सत्यानाश हो जाय' इत्यादि कटु और दुर्वचन बोलती हैं एवं उनको भुलानेके लिये 'मैं तुझे अमुक चीज मँगवा दूँगी' इत्यादि झूठा विश्वास दिलाती हैं और 'बिल्ली आयी' 'हाऊ आया' इत्यादि झूठा भय दिखाती हैं । इनसे बहुत नुकसान होता है अतएव ऐसी बातोंसे स्त्रियोंको बचना चाहिये । बालकका दिल कोमल होता है अतः उसमें ये बातें जम जाती हैं और वह झूठ बोलना, धोखा देना आदि सीख जाता है एवं अत्यन्त भीरु और दीन बन जाता है । बालकोंके दिलमें वीरता, धीरता, गम्भीरता उत्पन्न हो ऐसे ओज और तेजसे भरे वचनोंद्वारा उनको आदेश देना चाहिये । उनमें बुद्धि और ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये सत्शास्त्रकी शिक्षा देनी चाहिये । बालकोंको गाली आदि नहीं देनी चाहिये । क्योंकि गाली देना उनको गाली सिखाना है । गन्दे-कड़वे अपशब्दोंका प्रयोग भी नहीं करना चाहिये । सङ्गका बहुत असर पड़ता है । पशु-पक्षी भी सङ्गके प्रभावसे सुशिक्षित और कुशिक्षित हो जाते हैं । सुना जाता है कि मण्डन मिश्रके द्वारपर रहनेवाले पक्षी भी शास्त्रके वचन बोला करते थे । देखा भी जाता है कि गाली बकनेवालोंके पास रहनेवाले पक्षी भी गाली बका करते हैं । अतः सदा सत्य, प्रिय, सुन्दर और मधुर हितकर वचन ही बहुत प्रेमसे धीमे स्वरसे और शान्तिसे बोलने चाहिये । बालकोंके सम्मुख पतिके साथ हँसी-मजाक एवं एक शय्यापर सोना-बैठना कभी नहीं करना चाहिये । जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं वे अपने बालकोंको व्यभिचारकी शिक्षा देती हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परपुरुषका दर्शन, स्पर्श, एकान्तवास एवं उसके चित्रका भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। लोभ, मोह, शोक, हिंसा, दम्भ, पाखण्ड आदिसे सदा बचकर रहना चाहिये। और उत्तम गुण एवं आचरणोंके लिये गीता, रामायण, महाभारत एवं सती साध्वी स्त्रियोंके चरित्र पढ़नेका अभ्यास रखना चाहिये और उनके अनुसार ही बालकोंको शिक्षा देनी चाहिये।

बच्चोंको खिलाने-पिलाने इत्यादिमें भी अच्छी शिक्षा देनी चाहिये। मदालसाने अपने बालकोंको बाल्यावस्थामें ही ज्ञान और वैराग्यकी शिक्षा देकर उन्हें उच्च श्रेणीके बना दिया था। बच्चे बुरे बालकों एवं बुरे स्त्री-पुरुषोंका सङ्ग करके कुशिक्षा ग्रहण न कर लें, इसके लिये माता-पिताको विशेष ध्यान रखना चाहिये। हाथके बुने स्वदेशी वस्त्र स्वयं पहनने और बालकोंको भी पहनाने चाहिये। बच्चोंको ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनका प्रेम शृङ्गारादिमें न होकर उत्तम शिक्षा आदिमें हो।

बालकोंको गहने पहनाकर नहीं सजाना चाहिये। इससे स्वास्थ्यकी हानि एवं कहीं-कहीं प्राणोंकी भी जोखम हो जाती है। बल बढ़नेके लिये व्यायाम और बुद्धिकी वृद्धिके लिये विद्या एवं उत्तम शिक्षा देनी चाहिये। थियेटर-सिनेमा आदि देखनेका व्यसन और मादक वस्तुओंका सेवन करनेकी आदत न पड़ जाय इसके लिये भी माता-पिताको ध्यान रखना चाहिये। लड़की और लड़केके खान-पान, लाड़-प्यार और व्यवहारमें भेदभाव नहीं रखना चाहिये। प्रायः स्त्रियाँ खान-पान, लाड़-प्यार और दुःख-सुख, मरण आदिमें भी लड़कोंके साथ जैसा व्यवहार करती हैं, लड़कियोंके साथ वैसा नहीं करतीं। उनका अपमान करती हैं। जो स्त्रियाँ इस प्रकार अपने ही बालकोंमें विषमताका व्यवहार करती हैं उनसे समताकी आशा कैसे की जा सकती है? इस प्रकारकी विषमतासे इस लोकमें अपकीर्ति और परलोकमें दुर्गति होती है। अतः बालकोंके साथ समताका ही व्यवहार रखना चाहिये।

बहुत-सी स्त्रियाँ भूत, प्रेत, देवता, पीर आदिका किसीमें आवेश समझकर भय करने लग जाती हैं। यह प्रायः फजूल बात है। ऐसी बातपर कभी वहम—विश्वास नहीं करना चाहिये। इस प्रकारकी बातें अधिकांशमें तो हिस्टीरिया आदिकी बीमारीसे होती हैं। बहुत-सी जगह जान-बूझकर ऐसा चरित्र किया जाता है। कभी-कभी बहम या भयसे भी आवेश-सा आ जाता है। अतः इनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। यह सब वाहियात बातें हैं। इसलिये स्त्रियोंको जादू-टोना, आखा दिखाना, झाड़-फूँक, मन्त्र आदि अपने या अपने घरवालोंपर नहीं करवाने चाहिये एवं ऐसा करनेवाली स्त्रियोंका सङ्ग भी नहीं करना चाहिये।

वेश्या, व्यभिचारिणी, लड़ाई-झगड़ा करनेवाली, निर्लज्ज और दुष्टा स्त्रियोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। परन्तु उनमें घृणा और द्वेष भी नहीं करना चाहिये। उनके अवगुणोंसे ही घृणा करनी चाहिये। बड़ोंकी, दुखियोंकी और घरपर आये हुए अतिथियोंकी एवं अनाथोंकी सेवापर विशेष ध्यान देना चाहिये।

यज्ञ, दान, तप, सेवा, तीर्थ, व्रत, देवपूजन आदि पतिके साथ उसकी आज्ञाके अनुसार उसके सन्तोषके लिये अनुगामिनी होकर ही करें स्वतन्त्र होकर नहीं।

पतिका जो इष्ट है वही स्त्रीका भी इष्ट है अतः पतिके बताये हुए इष्टदेव परमात्माके नामका जप और रूपका ध्यान करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये पति ही गुरु है। यदि पतिको ईश्वरकी भक्ति अच्छी न लगती हो तो पिताके घरसे प्राप्त हुई शिक्षाके अनुसार भी ईश्वरकी भक्ति बाहरी भजन, सत्संग, कीर्तन आदि न करके गुप्तरूपसे मनमें ही करें। भक्तिका मनसे ही विशेष सम्बन्ध होनेके कारण यह जहाँतक बन सके गुप्तरूपसे ही करनी चाहिये क्योंकि गुप्त-रूपसे की हुई भक्ति विशेष महत्त्वकी होती है।

पति जो कुछ भी कहे उसका अक्षरशः पालन करे किन्तु जिस आज्ञाके पालनसे पति नरकका भागी हो उसका पालन नहीं करना चाहिये। जैसे पति काम, क्रोध, लोभ, मोहवश किसीके साथ व्यभिचार करने, किसीको विष पिलाने, जानसे मारने, भ्रूणहत्या, गोहत्या आदि घोर पाप करनेके लिये कहे तो वह नहीं करें। ऐसी आज्ञाका पालन न करनेसे अपराध भी समझा जाय तो भी पतिको नरकसे बचानेके लिये उसका पालन नहीं करना चाहिये, जिस कामसे पतिका परम हित हो वह काम स्वार्थ छोड़कर करनेकी सदा चेष्टा रखनी चाहिये।

विधवा स्त्रियोंकी सेवापर विशेष ध्यान देना चाहिये क्योंकि अपने धर्ममें रहनेवाली विधवा देवीके समान है। उसकी सेवा-शुश्रूषा करने, उसके साथ प्रेम करनेसे स्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लोकमें सुख और परलोकमें उत्तम गति पाती है। जो स्त्री विधवाको सताती है वह उसकी हायसे इस लोकमें दुखिया हो जाती है और मरनेपर नरकमें जाती है।

ऊपर बताये हुए पातिव्रतधर्मको स्वार्थ छोड़कर पालन करनेवाली साध्वी स्त्री इस लोकमें परमशान्ति एवं परम आनन्दको प्राप्त होती है और मरनेके बाद परमगतिको प्राप्त होती है।

विधवाओंके कर्तव्य

पतिके शान्त होनेके बाद विधवा स्त्रीको उचित है कि जिस प्रकार पतिकी जीवित अवस्थामें उसके मनके अनुकूल आचरण करती थी उसी प्रकार उसके मरनेपर भी करना चाहिये। धर्मका ऐसा आचरण करनेवाली स्त्री पतिके मरनेपर भी साध्वी कहलाती है और वह उत्तम गतिको प्राप्त होती है। वह पवित्र पुष्प, मूल और फलोंद्वारा अपने शरीरका निर्वाह करती हुई पवित्रताके साथ अपना जीवन बितावे। परपुरुषके दर्शन, भाषण, चिन्तनकी बात तो दूर रही उसका नाम भी उच्चारण न करे।

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥
आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥

(मनु० ५। १५७-१५८)

पवित्र पुष्प-मूल-फलोंसे अर्थात् उन्हें भोजनकर अपनी देहको चाहे दुर्बल कर दे, परन्तु पतिके मरनेपर दूसरेका नाम भी न ले। पतिव्रता स्त्रियोंके सर्वोत्तम धर्मको चाहनेवाली विधवा स्त्री मरणपर्यन्त क्षमायुक्त नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यसे रहे अर्थात् पुत्र न होनेपर भी पुत्रके लिये पर पुरुषका सङ्ग न करे।

इस प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई विधवा स्त्री साध्वी पतिव्रता स्त्रीके अनुसार पतिके उत्तम लोकोंको प्राप्त होती है। केवल फल-मूलादिसे काम न चले तो साधारण शाक-अन्नद्वारा एक समय भोजन करके जीवन धारण करे। यदि ऐसा करके न रहा जाय तो दोनों समय भी हल्का और अल्पाहार कर ले। किन्तु मादक और अपवित्र एवं कामोद्दीपक पदार्थोंका कभी सेवन न करे तथा घृत, दूध, चीनी, मसाला आदिका भी जहाँतक हो त्याग करे क्योंकि ये भी उत्तेजक हैं। कर्तव्य समझकर निष्कामभावसे पालन किया हुआ धर्म परमगतिको प्राप्त कराता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

अतः विधवा स्त्रियोंको निष्कामभावसे पतिव्रता स्त्रियोंकी भाँति पतिके मरनेके बादमें भी पतिको जिस कार्यमें सन्तोष होता था वही कार्य करके अपना काल व्यतीत करना चाहिये। वर्तमान समयमें कई भाई जिनको शास्त्रका अनुभव नहीं है विधवा स्त्रियोंको फुसलाकर उनका दूसरा विवाह करवा देते हैं किन्तु शास्त्रोंमें कहीं विधवाविवाहकी विधि नहीं है। मनुजी कहते हैं—

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥

(मनु० ९। ६५)

क्योंकि पिता तो कन्यादान दे चुका अतः उसका अब फिर दान देनेका अधिकार नहीं और पति मर चुका ऐसी अवस्थामें कौन किसको दान दे? इसलिये शास्त्रकारोंने इसका घोर निषेध करते हुए कहा है कि कन्याका दान एक बार ही होता है।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥

(मनु० ९। ४७)

असलमें तो स्त्री-पुरुषोंके लिये आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन करना ही सर्वोत्तम है परन्तु ऐसा होना असम्भव-सा है। इसलिये शास्त्रकारोंने विवाह करनेकी आज्ञा दी है। किन्तु साथमें यह भी आज्ञा दी है कि जो एक सन्तान उत्पन्न होनेके बाद आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करता है वह भी अत्युत्तम है। इस व्यवस्थाको देखते विधवाविवाहकी तो बात भी नहीं चलायी जा सकती। अतएव जिस स्त्रीका पति और जिस पतिकी स्त्री शान्त हो जाय उनको तो ब्रह्मचर्यसे ही रहना चाहिये, ब्रह्मचर्यका पालन इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला और परमशान्ति एवं आनन्द देनेवाला है। जो लोग विधवाओंको विषय-सुखका प्रलोभन दिखाकर उनके मनको खराब करते हैं वे वास्तवमें उनकी आत्माका पतन करनेवाले हैं अतएव उन लोगोंकी बातोंपर अपना कल्याण चाहनेवाली स्त्रियोंको कभी ध्यान नहीं देना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो स्त्री ईश्वरके रहस्यको जानती है वह पतिकी मृत्युपर भी दुःखित नहीं होती क्योंकि वह समझती है कि ईश्वर जो कुछ करता है वह भलेके लिये ही करता है। वह पतिकी मृत्यु-सरीखे शोकमें भी ईश्वरकी दयाका दर्शन करती रहती है। भारी पापका फल पतिकी मृत्यु है और पापके फलके उपभोगसे पाप शान्त होता है। ईश्वरने भारी पापसे मुक्त होनेके लिये एवं भविष्यमें पापसे बचनेके लिये तथा नाशवान् क्षणभङ्गुर भोगोंसे मुक्ति पानेके लिये और अपनेमें अनन्य भक्ति करनेके लिये एवं हमारे हितके लिये ही हमें यह दण्ड देकर हमपर अनुग्रह किया है। इस प्रकार पद-पदपर दुःखमें भी ईश्वरकी दयाका अनुभव करनेवाली स्त्री ईश्वरकी अनन्य भक्ति करके परमगतिको प्राप्त हो जाती है। अतः माताओं और बहिनोंको ईश्वरके द्वारा दिये हुए दुःखोंमें भी दयाका दर्शन करते हुए उसकी अनन्य भक्ति करनी चाहिये।

ऊपर बताये हुए पुरुष और स्त्रियोंके सामान्य धर्मका पालन करना एवं क्षणस्थायी इन्द्रियोंके भोगोंका त्यागकर संयमसे रहना चाहिये।

प्रातःकाल शौच, स्नान आदि करके अपने घरमें ही एकान्त स्थानमें जप, तप, पूजा, पाठ, स्तुति, ध्यान आदि ईश्वरकी भक्ति करें। उसके बाद बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी सेवा एवं उनकी आज्ञाके अनुसार गृहकार्य ईश्वरको याद रखते हुए ही करें। माता कुन्तीकी तरह गृह-कार्य एवं बड़ोंकी सेवामें ही दिन बितावें, उसीको अपना परम धन एवं धर्म समझें। जब सेवा एवं गृहकामसे छुट्टी पावें तब एकान्तमें बैठकर अनन्य मनसे ईश्वर-भक्तिमें लगें किन्तु एक क्षण भी निकम्मी न रहें क्योंकि उत्तम कर्म ही परमधन है, इस प्रकार निष्कामभावसे की हुई सेवाद्वारा स्त्री सारे पापोंसे छूटकर उत्तम गति पाती है।

स्त्रियोंकी दृष्टि स्वाभाविक ही पुरुषोंकी तरफ चली जाती है। इसके निरोधके लिये विशेष संयम रखना चाहिये। यदि स्वभावके दोषके कारण भूलसे भी किसी पुरुषका दर्शन हो जाय तो या तो उस दिन एक समय ही भोजन करें या ईश्वरके नामका जप और अधिक करें।

ससुरालमें या पीहरमें जहाँ कहीं रहना हो अपने घरके पुरुषोंकी आज्ञामें ही रहना चाहिये, घरके बाहर तो उनकी आज्ञा बिना जाना ही न चाहिये परन्तु घरमें रहकर भी उनकी आज्ञानुसार ही कार्य करना चाहिये। क्योंकि स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्रता सर्वथा निषिद्ध है। स्वतन्त्रतासे उनका पतन हो जाता है। जो स्त्री स्वतन्त्रतासे बाहर फिरती है वह दूषित वातावरणको पाकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

सभी स्त्रियोंको अपने पिता, भाई, पति, देवर, जेठ और पुत्रके बिना कथा, कीर्तन, भजन, सत्सङ्ग, व्याख्यान, मन्दिर, तीर्थ और किसी भी धार्मिक संस्था या स्थानमें भी कभी अकेली नहीं जाना चाहिये, क्योंकि आजकल बहुत-से धार्मिक स्थानोंमें भी स्थानके अधिकारी लोग धन, गहने और धर्मका अपहरण करने, एवं और भी भारी अत्याचार करने लग गये हैं। स्त्रियोंके लिये पतिके मरनेके बाद भी पतिके अतिरिक्त गुप्त या प्रकटरूपसे गुरु बनाना, उनकी सेवा करना, दूसरे पुरुषोंका उच्छिष्ट खाना, उनकी पूजा करना, घरवालोंसे छिपकर उनको रुपये देना, उनके साथ एकान्तवास करना सर्वथा निषिद्ध है। इसलिये इन बातोंसे स्त्रियोंको विशेष सावधान रहकर बचना चाहिये। क्योंकि आजकल बहुत-सी स्त्रियाँ मन्दिर, तीर्थ, गङ्गास्नान और सत्संग आदिका बहाना लेकर असदाचरण करती हैं। इसी बहाने बाहर निकलकर उन चेली बनानेवाले ठगोंके पञ्जेमें पड़कर धन, जेवर और सतीत्वको नष्ट कर देती हैं। इस समय तो शास्त्रविपरीत बहुत-से वैश्य, शूद्र और चमार-तक भी अपनी जीविका छोड़कर साधु और भक्तोंके वेशमें तीर्थों आदिपर रहकर स्त्रियोंसे सेवा करवाते हैं और गुप्तरूपसे उनसे धन मँगवाते हैं, उनके कण्ठी बाँधते हैं, उनको गुरुमन्त्र देते हैं, उनसे पैर पुजवाते हैं, उनके स्थानपर जाकर या उनको अपने स्थानपर बुलवाकर कथा, कीर्तन, सत्संगके बहाने अनेक प्रकारसे जाल बिछाकर भोली-भाली स्त्रियोंका धन और सतीत्व हरते हैं।

विधवा बहिनोंके लिये तो एकमात्र ईश्वर ही पति और ईश्वर ही गुरु है। उस परमपूजनीय सर्वव्यापी सगुण-निर्गुण-रूप परमात्माकी अपने हृदयरूपी मन्दिरमें चिन्मय दिव्य मनोहर मूर्तिका ध्यान एवं पूजन करना सर्वोत्तम है। यदि ऐसा न हो सके तो सर्वव्यापी परमात्माके निराकार स्वरूपकी सर्वदेशमें या अपने इष्टदेवके दिव्य मूर्तिकी बाहर देशमें मनसे स्थापना करके उस मानसिक दिव्य मूर्तिकी मानसिक ही पूजा करनी चाहिये। यदि ऐसा न बन पड़े तो मीराबाईकी तरह अपने घरमें ही इष्टदेव परमात्माकी धातु आदिकी मूर्ति या चित्र रखकर उसकी सेवा, पूजा करनी चाहिये और उसीपर ध्यान जमाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीहर या ससुरालमें घरमें कोई निकटवर्ती पुरुष न हो अथवा होकर भी भोजन-वस्त्रादि देकर पालन न करे तो ऐसे विपत्तिकालमें भी उनकी सेवा करते हुए ही गृह-शिल्प या मेहनत-मजदूरी आदिद्वारा अपने शरीरका निर्वाह करें, परन्तु काम, क्रोध, लोभ और मोहके वशीभूत होकर अपने धर्म और लज्जाका कभी त्याग न करें। अपने पीहर और ससुरालवालोंको कलङ्क लगे और अपना लोक-परलोक नष्ट हो ऐसा कार्य भारी आपत्ति आ पड़नेपर भी न करें।

पलंग, रंगीन वस्त्र, आभूषण, शृङ्गार एवं ऐश-आराम, स्वाद और भोगका एकदम त्याग कर दें। शृङ्गार करनेवाली स्त्रियोंके सङ्गका राग और द्वेषसे रहित होकर यथाशक्ति त्याग करें; क्योंकि वह ज्ञान, वैराग्य, ईश्वर-भक्ति एवं तपमें बाधा डालनेवाला है। गाने-बजाने, नाच-विवाह आदि कार्योंसे बचकर रहें। तप-उपवास आदिको यथाविधि धारण-पालन करें।

फालतू बातचीत एवं व्यर्थ चेष्टा करके अपने अमूल्य समयको न बितावें। मृत्युको नजदीक समझकर सारा समय अपने कल्याणके कार्यमें ही लगानेकी कोशिश रखें। मन और इन्द्रियोंका संयम एवं यम-नियमादि सामान्य धर्मोंके पालनपर ध्यान रखते हुए ईश्वरके भक्ति-परायण होकर पवित्रताके साथ अपना जीवन बितावें।

उपर्युक्त प्रकारसे जीवन बितानेवाली विधवा स्त्री देवताओंद्वारा भी पूजनेके योग्य होती है। इस प्रकारकी पवित्र स्त्रियोंकी सेवा करनेवाले पुरुष भी पवित्र हो जाते हैं। जिन घरोंमें ऐसी स्त्रियाँ वास करती हैं वे घर भी पवित्र समझे जाते हैं।

पुरुषोंका स्त्रियोंके साथ व्यवहार

माताओं और बहिनोंके दोषोंको दिखाते हुए हमने बहुत-सी बातें लिखी हैं किन्तु पुरुषोंके दोषोंकी तरफ देखा जाय तो उनमें इनसे भी कहीं अधिक दोष मिलेंगे। परन्तु स्त्रियोंका विषय होनेके कारण उनके सुधार और ज्ञानके लिये इतनी बातें लिखी हैं। अपेक्षाकृत देखा जाय तो सभी स्त्रियाँ पुरुषोंके साथमें सेवादिका व्यवहार करती हैं पर बदलेमें पुरुष उनके साथ वैसा नहीं करते। कोई-कोई तो बात-बातमें अपनी स्त्रियोंका अपमान करते हैं, उनको गालियाँ देते हैं और मार-पीटतक भी करने लग जाते हैं। यह मनुष्यताके बाहरकी बात है। उन भाइयोंसे हमारा नम्र निवेदन है कि स्त्रियोंके साथ अमानुषिक व्यवहार कदापि न करें। इस प्रकारके व्यवहारसे इस लोकमें अपकीर्ति और परलोकमें दुर्गति होती है।

कोई-कोई भाई लोभके वशीभूत होकर अपनी कन्या-को वृद्ध रोगी, मूर्ख, अंगहीन आदि अपात्रोंके प्रति दे देते हैं। वे देने और लेनेवाले दोनों कन्याके जीवनको नष्ट करते हैं और स्वयं नरकके भागी होते हैं। अतः ऐसे पापोंसे मनुष्यको अवश्य बचकर रहना चाहिये।

स्त्रियोंके साथ सत्कारपूर्वक अच्छा व्यवहार करना चाहिये। स्त्रियोंका जहाँ सत्कार होता है वहाँ सब देवता निवास करते हैं। जहाँ सत्कार नहीं होता है वहाँ सारे कर्म निष्फल हो जाते हैं। जब घरमें कोई पुरुष बीमार पड़ता है तो उसके लिये जितनी कोशिश होती है उतनी जब कोई स्त्री बीमार पड़ती है तब नहीं होती। यह विषमताका व्यवहार विषके समान फल देनेवाला है। अतः पुरुषोंको उचित है कि स्त्री-पुरुष सबके साथ समताका व्यवहार करें।

स्त्रियोंमें जो कई प्रकारके दोष दिखाये गये हैं उनका कारण भी अधिकांशमें पुरुष ही हैं। क्योंकि पुरुष स्त्रियोंके साथ बुरा व्यवहार करते हैं अतः उनको पुरुषोंसे ही बुरी शिक्षा प्राप्त होती है। यदि पुरुष स्त्रियोंके साथ अपना व्यवहार सुधार लें तो उनका बहुत-सा सुधार होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि यह न्याय है कि जब कोई किसीके साथ अच्छा व्यवहार करता है तो दूसरा भी उसके साथ अच्छा ही व्यवहार करता है।

विधवा स्त्रियोंके साथ तो पुरुषोंका व्यवहार प्रायः निन्दनीय ही है। उसके सुधारकी बहुत ही आवश्यकता है। जिसका पति मर जाता है वह बेचारी अनाथा हो जाती है, उसका लोग कहीं आदर नहीं करते, न पीहरमें न ससुरालमें! बहुत-से पुरुष अपनी पत्नियोंके वशमें होकर धर्म पालने-वाली सुशीला विधवा स्त्रीके साथमें भी सद्व्यवहार नहीं करते और न उसका पालन-पोषण ही करते हैं। प्रथम तो इस घोर कलिकालमें विधवाका धर्म रहना स्वाभाविक ही कठिन है तिसपर कोई रखना चाहती है तो उसको मदद देना तो दूर रहा बल्कि लोग अनेक प्रकारके सङ्कटोंमें डालनेकी चेष्टा करते हैं। इसमें कोई-कोई तो दुःखित होकर धर्मको छोड़ देती है। अतएव जिनके घरमें विधवा स्त्री हो उन मनुष्योंको स्वयं संयमसे रहकर उनको संयम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिक्षा देनी चाहिये । ऐश-आराम-भोगोंको तुच्छ समझकर स्वयं उत्तम आचरणोंको करते हुए उनको क्रियाके द्वारा सीख देनी चाहिये । उनकी तन-मन-धनसे मदद करनी चाहिये । विशेष मदद न दे सकें तो उनके स्वत्वपर तो बुरी नीयत कभी न करनी चाहिये । बहुत-से लोग तो ऐसे देखे गये हैं जो पुत्र, भाई आदिके मरनेके बाद उनकी स्त्रियोंके धनपर अधिकार जमाकर उनपर झूठा-सच्चा कलङ्क लगाकर उनको भोजनतक भी नहीं देते और कोई-कोई तो लोभमें आकर धन छीननेके लिये निकालनेतककी चेष्टा करते हैं । उस दुखियाकी हायसे उनका यह लोक और परलोक नष्ट हो जाता है । उन पुरुषोंको ईश्वरकी तरफ और मृत्युकी तरफ खयाल करके इस राक्षसी कर्मसे विरत होना चाहिये । यह लेख स्त्रियोंके विषयका होनेके कारण पुरुषोंके विषयको यहाँ विशेष नहीं लिखकर संक्षेपसे ही कुछ निवेदनमात्र किया है ।

लेख बड़ा होनेके संकोचसे स्त्रियोंके विषयमें भी विस्तारपूर्वक बातें नहीं लिखी जा सकी हैं । अतः इसमें कोई त्रुटि रह गयी हो तो पाठकगण क्षमा करें ।

शिव-स्तव

शिव, सदानन्द शशि-शेखर !
शितिकण्ठ, शिवापति, शम्भो ,
भूतेश सर्वसंपत्कर !!
नागेन्द्र-हार-आभूषित
कैलाश-शिखर-अधिवासी ।
मन्दार-मुकुल-दल-पूजित
शंकर, महेश, अबिनासी !!
धृत पाणि पिनाक, दिगम्बर ।
शिव, सदानन्द शशि-शेखर !!

ब्रह्मेन्द्र रुद्र सुर संस्तुत
करि-चर्म-वसन वपु धारी ।
मन्दाकिनि मौलि तरंगित
अघ-ओघ विनाशनकारी ॥
कर्पूर गौर योगीश्वर ।
शिव, सदानन्द शशि-शेखर ॥

है वास प्रलय-पावकका
त्रिविलोचन तृतीय नयनमें ।
मन्मथ जल छार हुआ था
जिसके खुलते ही क्षणमें ॥
भैरव-स्वरूप प्रलयंकर ।
शिव, सदानन्द शशि-शेखर !!

अपने ताण्डवसे करते
तुम भयोद्रेक त्रिभुवनमें ।
कहलाते परम उदासी
शव-भस्म लपेटे तनमें ॥
फिरते ओढ़े बाघम्बर ।
शिव, सदानन्द शशि-शेखर !!

मंजीर पाद युग शोभित
तेजोमय जटा-कलापी ।
डमरूका शब्द सुहावन
है भुवन-भुवनमें व्यापी ॥
कालान्तक, विभो, महेश्वर ।
शिव, सदानन्द शशि-शेखर ॥

जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

[मणि १०]

चक्षु आदिकी अप्रमाणता

हे राजन् ! जो वादी चक्षु आदि प्रमाणोंसे विषयकी सिद्धि माने, उससे पूछना चाहिये कि चक्षु आदि प्रमाण जिस समय घटादि विषयोंको ग्रहण करते हैं, उसी समय चक्षु आदिमें प्रमाणता है, अथवा स्वभावसे ही प्रमाणता है ? यदि वादी प्रथम पक्ष माने तो चक्षु आदि प्रमाणोंसे घटादि विषयोंकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि प्रथम घटादि विषय हों तो पीछे चक्षु आदि प्रमाणोंमें प्रमाणता सिद्ध हो; अथवा प्रथम चक्षु आदि प्रमाणोंमें प्रमाणता सिद्ध हो, तो पीछे घटादि विषयोंकी सिद्धि हो। इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष आता है। जहाँ यह दोष प्राप्त हो, वहाँ किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती। चक्षु आदि प्रमाणोंमें स्वभावसे प्रमाणता है, यह दूसरा पक्ष मानें, तो जैसे चक्षु आदि प्रमाणोंमें स्वभावसे प्रमाणता है, इसी प्रकार अप्रमाणमें भी स्वभावसे प्रमाणता क्यों न हो ? यदि वादी ऐसा कहे कि चक्षु आदि प्रमाणोंमें जो प्रमाणता है, वह स्वभावसे है और अप्रमाणमें स्वभावसे प्रमाणता नहीं है क्योंकि मलादि दोषवाले चक्षु आदिको अप्रमाण कहा है। अप्रमाणमें दोष ग्रहण करनेवाला जो प्रमाण है, उस प्रमाणसे अप्रमाणमें अप्रमाणता सिद्ध होती है; इसलिये अप्रमाणमें स्वभावसे प्रमाणता सिद्ध नहीं हो सकती। यह कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि जैसे दोष ग्रहण करनेवाले प्रमाणसे अप्रमाणमें अप्रमाणता सिद्ध होती है, इसी प्रकार दोषग्राहक प्रमाणमें दोषको ग्रहण करनेवाले दूसरे प्रमाणसे भी दोषग्राहक प्रमाणमें भी अप्रमाणता सिद्ध होती है। यदि वादी कहे कि अप्रमाणमें दोषके ग्रहण करनेवाले प्रमाणसे जब दोषकी प्रतीति होती है, तब अप्रमाणता सिद्ध होती है और दोषग्राहक प्रमाणमें किसी प्रमाणसे दोषकी प्रतीति नहीं होती, बल्कि उलटा अनुपलब्धि प्रमाणसे दोषग्राहक प्रमाणमें दोषके अभावकी ही प्रतीति होती है; इसलिये अप्रमाणके दोषग्राहक प्रमाणमें अप्रमाणता सम्भव नहीं है। वादीका यह कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि अप्रमाणमें दोषको ग्रहण करनेवाले प्रथम प्रमाणमें दोषके अभावको ग्रहण करनेवाला अनुपलब्धि प्रमाण, प्रमाणरूप होकर दोषके अभावको ग्रहण करता है अथवा अप्रमाणरूप होकर दोषके अभावको ग्रहण करता है, यह कहना चाहिये। इनमेंसे प्रथम पक्ष सम्भव नहीं है। श्रुतिरूप अलौकिक प्रमाण छोड़कर प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि नामके छः प्रमाण दोषकी शङ्कावाले हैं, इसलिये स्वभावसे उन प्रत्यक्षादिमें प्रमाणता सम्भव नहीं है। जब प्रत्यक्षादि प्रमाणोंमें दोषके अभावका ज्ञान होता है, तब उन प्रत्यक्षादिको प्रमाणता होती है। इसलिये दोषग्राहक प्रमाणमें दोषाभावको ग्रहण करनेवाले अनुपलब्धि प्रमाणकी सिद्धिके लिये अनुपलब्धि प्रमाणमें दोषाभावको ग्रहण करनेवाला कोई अनुपलब्धि प्रमाण मानना चाहिये। यह अनुपलब्धि प्रमाण प्रथमके अनुपलब्धि प्रमाणसे भिन्न है या अभिन्न है, यह कहना चाहिये। यदि वादी अभिन्न कहे, तो आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होती है। यदि भिन्न कहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो दूसरे अनुपलब्धि प्रमाणमें दोषाभावको कौन-सा अनुपलब्धि प्रमाण ग्रहण करता है? यदि वादी प्रथमके अनुपलब्धि प्रमाणसे दूसरे अनुपलब्धि प्रमाणमें दोषाभावका ग्रहण माने तो अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होता है। यदि वादी दूसरे अनुपलब्धि प्रमाणमें दोषाभावके ग्रहण करनेको तीसरा अनुपलब्धि प्रमाण मानेगा तो तीसरे अनुपलब्धि प्रमाणमें दोषाभावका ग्रहण किस अनुपलब्धि प्रमाणसे होता है, यह कहना चाहिये। यदि तीसरेमें प्रथम अनुपलब्धि प्रमाणसे दोषाभावका ग्रहण हो, तो चक्रिका दोष प्राप्त होगा। यदि तीसरे अनुपलब्धि प्रमाणमें दोषाभावका ग्रहण करनेके लिये चौथा अनुपलब्धि प्रमाण तथा चौथेके लिये पाँचवाँ माना जायगा तो प्रमाणोंकी धारारूप अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी। इसलिये अनुपलब्धि प्रमाण प्रमाणरूप होकर दोषाभावको ग्रहण करता है, यह प्रथम पक्ष सम्भव नहीं है। और अनुपलब्धि प्रमाण अप्रमाणरूप होकर दोषग्राहक प्रमाणमें दोषाभावको ग्रहण करता है, यह दूसरा पक्ष भी सम्भव नहीं है; क्योंकि अप्रमाणका विषय अप्रमाण ही होता है, इसलिये अप्रमाणरूप अनुपलब्धि प्रमाणका विषय जो दोषाभावविशिष्ट प्रमाण है, वह भी अप्रमाण होगा। इससे सिद्ध होता है कि जो वादी आत्माको प्रकाशरूप नहीं मानता, उस वादीके मतानुसार प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे घटादि विषयोंकी सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि उपर्युक्त युक्तियोंसे प्रत्यक्षादि प्रमाण ही सिद्ध नहीं हो सकते। इसलिये घटादि विषयोंकी तथा प्रमा-अप्रमारूप ज्ञानकी भी सिद्धि नहीं हो सकती।

प्रमाण, प्रमा तथा फल इन तीनोंकी सिद्धिमें कोई प्रमाण है या नहीं? यदि प्रमाण न हों तो नृशृंगके समान प्रमाणादि अत्यन्त असत्य माने जायँ, और यदि उनकी सिद्धिमें प्रमाण हों, तो जो पदार्थ प्रमाणके विषय होते हैं, वे ही प्रमेय होते हैं। इसलिये प्रमाण, प्रमा तथा फल, इन तीनोंमें घटादि पदार्थोंके समान प्रमेयरूपता प्राप्त होगी। यदि वादी इसमें इष्टापत्ति करे, तो यह प्रमाण, यह प्रमा, यह फल और यह प्रमेय इन चारोंका भेद अयुक्त हो जायगा। इसलिये प्रमाणादिकी सिद्धि नहीं होती। जैसे आकाशमें मूढको गन्धर्वनगर दीखता है, वस्तुतः नगर आकाशमें नहीं है किन्तु मूढकी कल्पनासे सिद्ध है। इसी प्रकार यह प्रमाण, यह प्रमा, यह फल तथा यह प्रमेय, यह चार प्रकारका भेद केवल वादीकी कल्पनामें है। कल्पित पदार्थ सब साक्षी आत्मासे प्रकाश्य होते हैं। जैसे कल्पित स्वप्न पदार्थ साक्षी आत्मासे प्रकाश्य हैं, इसी प्रकार कल्पित प्रमाणादि भी साक्षी आत्मासे सिद्ध हैं। दोषजन्य दृष्टिसे जिस अधिष्ठानमें जो पदार्थ प्रतीत होता है, उस अधिष्ठानमें वह पदार्थ वस्तुतः नहीं होता। जैसे पुरुषके वेशको धारण करनेवाली स्त्रीमें दोषजन्य दृष्टिसे पुरुषपना दिखायी देता है परन्तु वह पुरुषपना स्त्रीमें वस्तुतः नहीं है। इसी प्रकार दोषजन्य दृष्टिसे रज्जुमें जो सर्प भासता है, वह सर्प वास्तविक नहीं होता। इसी तरह दोषजन्य दृष्टिसे वादियोंको प्रतीत होते हुए प्रमाण, प्रमा, फल तथा विषय, ये चारों भेद वास्तविक नहीं हैं।

जनक—हे भगवन्! यदि प्रमाण, प्रमा, फल तथा विषय, इन चारोंको कल्पित मानेंगे, तो उन प्रमाणादिसे लोकका व्यवहार ही सिद्ध न होगा, इसलिये प्रमाणादिको मानना योग्य ही है।

याज्ञवल्क्य—हे राजन्! इस शङ्काका यही समाधान है कि कल्पित अर्थसे व्यवहारकी सिद्धि नहीं होती हो तो प्रमाणादिको सत्य मानना चाहिये, किन्तु लौकिक व्यवहार तो मिथ्या अर्थसे भी सिद्ध हो सकता है। जैसे कल्पित रज्जु सर्पको विषय करनेवाले 'यह सर्प है' ऐसे मिथ्या ज्ञानसे भय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मादि व्यवहार होता है, इसी प्रकार कल्पित प्रमाणादिसे लोकका व्यवहार हो सकता है। इसलिये प्रमाण, अप्रमाण, प्रमा, अप्रमा इत्यादि सर्व जड जगत् साक्षी आत्माका विषय है। जैसे दीपकसे प्रकाश्य घटादि पदार्थ प्रकाशक दीपकको विषय नहीं कर सकते, इसी प्रकार साक्षी आत्मासे प्रकाश्य प्रमाणादि प्रकाशक साक्षी आत्माको विषय नहीं कर सकते।

जनक—हे भगवन्! यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका आत्मा विषय नहीं है, तो भी श्रुतिप्रमाणका विषय आत्मा है। क्योंकि 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' अर्थात् उपनिषत्-प्रमाणसे जानने योग्य पुरुषरूप आत्माका स्वरूप मैं आपसे पूछता हूँ। इस श्रुतिमें उपनिषत्-प्रमाणजन्य ज्ञानकी विषयता आत्मामें कही है। फिर आत्मा प्रमाणका विषय क्यों नहीं है?

याज्ञवल्क्य—हे राजन्! आत्माके सिवा सब जड जगत् मिथ्या है, इसलिये आत्मा जड श्रुतिरूप प्रमाणका विषय नहीं है। और आत्मा स्वप्रकाश है, इसलिये आत्मा श्रुतिरूप प्रमाणका भी विषय नहीं है। किन्तु हितकारिणी श्रुति माताके समान मुमुक्षुजनोंको आत्मामें स्थूल, सूक्ष्म जगत्का आरोप करके जगत्के निषेधवाले अर्थसे आत्माका बोधन करती है। भाव यह है कि श्रुति-प्रमाणजन्य अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानसे आत्माका प्रकाश नहीं होता किन्तु उस वृत्तिज्ञानसे आत्माके आवरणकी निवृत्ति होती है। इस आवरणमात्रकी निवृत्तिको ग्रहण करके श्रुतिमें आत्माको उपनिषत् प्रमाणका विषय कहा है। इसलिये स्वप्रकाश साक्षी आत्मा किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, वह स्वतः सिद्ध है। प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अर्थके निश्चय करनेवाले ज्ञानके आश्रय तो प्रमाता है। उस प्रमाताके आश्रयसे प्रमाण, अप्रमाण, प्रमा, अप्रमा, फल तथा प्रमेय इत्यादि भेद सिद्ध होता है। आश्रयरूप प्रमाता सिद्ध हुए विना प्रमाणादिका भेद सिद्ध नहीं होता, इसलिये प्रमाणादिकी सिद्धिके लिये प्रमाताकी सिद्धि अवश्य होनी चाहिये।

प्रमाताकी असिद्धि

हे राजन्! वेदान्तसिद्धान्तमें प्रमाताके स्वरूपभूत स्वप्रकाश चैतन्यसे प्रमाताकी सिद्धि कही है क्योंकि वेदान्तसिद्धान्तमें अन्तःकरणविशिष्ट चैतन्यका नाम प्रमाता है। और अन्तःकरणविशिष्ट चैतन्य शुद्ध चैतन्यसे भिन्न नहीं है, इसलिये स्वप्रकाश चैतन्य प्रमाताका स्वरूप है, इसीसे प्रमाताकी सिद्धि होती है। स्वप्रकाश आत्मा विना प्रमाताकी सिद्धि नहीं होती। यदि वादी 'मैं हूँ' ऐसे ज्ञानसे प्रमाताकी सिद्धि माने तो उससे पूछना चाहिये कि उसी प्रमाताके आश्रय रहे हुए 'मैं हूँ' ऐसे ज्ञानसे उस प्रमाताकी सिद्धि होती है अथवा दूसरे किसी प्रमाताके आश्रय रहे हुए 'मैं हूँ' इस ज्ञानसे? इन दोनोंमें अन्तका पक्ष मान्य नहीं है क्योंकि जैसे देवदत्त नामक पुरुष अपनेसे भिन्न किसी यज्ञदत्त नामक पुरुषको जाननेका अनुभव करता है। जैसे कि 'मैं यज्ञदत्तको जानता हूँ', उसी प्रकार इस प्रमाताको 'मैं जानता हूँ' ऐसा अनुभव होना चाहिये किन्तु ऐसा अनुभव किसीको नहीं होता, वरं 'मैं आत्माको—अपनेको जानता हूँ' ऐसा अनुभव सब जीवोंको होता है। इसलिये अन्य प्रमाताके आश्रित ज्ञानसे अन्य प्रमाताकी सिद्धि नहीं होती। और प्रमाताके आश्रित 'मैं हूँ' ऐसे ज्ञानसे प्रमाताकी सिद्धि होती है, इस प्रकारका प्रथम पक्ष भी सम्भव नहीं है क्योंकि क्रियामें कर्ता और कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे छेदनरूप क्रियाका कर्ता पुरुष है और काष्ठादि कर्म हैं। इसी प्रकार 'मैं हूँ' इस ज्ञानरूप क्रियाका कर्ता तथा कर्म भिन्न-भिन्न होना चाहिये। एक ही प्रमाता ज्ञानरूप क्रियाका कर्ता तथा कर्म सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, इसलिये अपने आश्रय रहे हुए ज्ञानसे प्रमाताकी सिद्धि नहीं होती। यदि वादी ऐसा कहे कि आत्मा स्वभावसे ज्ञानरहित जड़ है, इसलिये वह जान नहीं सकता किन्तु मनके सम्बन्धसे आत्मामें उत्पन्न हुए ज्ञानको पाकर चेतन भावको प्राप्त हुआ आत्मा अपने आपको जानता है। ऐसा कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि वादीके कथनानुसार जैसे घट स्वभावसे जड है, इसी प्रकार आत्मा भी स्वभावसे जड है। जैसे मनके सम्बन्धसे ज्ञानगुणवाला हुआ आत्मा अपनेको जानता है, इसी प्रकार मनके सम्बन्धसे ज्ञानगुणवाला हुआ घट भी अपनेको क्यों नहीं जानता ? इसलिये वादीका कथन असंगत है। यदि वादी कहे कि आत्माके साथ मनका संयोगसम्बन्ध है और घटके साथ मनका संयोगसम्बन्ध नहीं है, इसलिये घट अपनेको नहीं जानता। तो वादीका ऐसा कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि नैयायिकोंके मतानुसार मन परम अणु परिमाणवाला और नित्य है और जो पुरुष मुक्त हो जाता है, उसके शरीरादि नष्ट हो जाते हैं, किन्तु उसके मनका नाश नहीं होता, इसलिये बद्ध अज्ञानी जीवके मनका सम्बन्ध यद्यपि घटादिसे नहीं हो सकता, तो भी पूर्वमें मुक्त हुए पुरुषके मनके साथका सम्बन्ध घटादिमें सम्भव है, इसलिये घटादिको भी अपना ज्ञान होना चाहिये। आत्माको स्वभावसे जड माननेवालेके मतसे घटादि जड पदार्थोंकी तथा आत्माकी किञ्चित् भी विशेषता सिद्ध नहीं होगी। इसलिये उसके मतानुसार घटादि जड पदार्थ भी आत्मा होने चाहिये। यदि कोई ऐसा कहे कि घटादिमें तथा आत्मामें जडपना तो समान है परन्तु घटादि तो परिच्छिन्न तथा मूर्त हैं और आत्मा विभु और अमूर्त है, इसलिये घटादिको आत्मरूपता सम्भव नहीं है। वादीका यह कहना भी असम्भव है, क्योंकि नैयायिकके मतानुसार जैसे आत्मा विभु तथा अमूर्त है, इसी प्रकार आकाश, काल तथा दिशा ये तीनों भी विभु तथा अमूर्त द्रव्य हैं। इसलिये आत्मासे विलक्षण घटादि पदार्थोंमें यद्यपि आत्मरूपता सम्भव नहीं है तो भी आकाशादिमें आत्मरूपता होनी चाहिये। यदि वादी ऐसा कहे कि जैसे आत्माके साथ मनका सम्बन्ध ज्ञानका कारणरूप है, इसी प्रकार शरीरका सम्बन्ध भी ज्ञानका कारणरूप है। आकाशादिका शरीर नहीं है इसलिये आकाशादिकी अपेक्षा आत्मामें शरीरका सम्बन्ध अधिक है, इसलिये आत्माको ज्ञान होता है, आकाशादिको नहीं होता, वादीका यह कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि नैयायिकके मतानुसार आकाश, काल, दिशा और आत्मा ये चार द्रव्य विभु हैं। और सर्व मूर्त द्रव्यके साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसको नैयायिक विभु कहते हैं, इसलिये जैसे मूर्त द्रव्य शरीरके साथ आत्माका सम्बन्ध है, इसी प्रकार आकाश, काल और दिशा इन तीनोंका भी शरीरके साथ सम्बन्ध है। इसलिये आकाशादिमें भी आत्मरूपता होनी चाहिये।

यदि वादी स्वभावसे आत्माको जड माने तो उसके मतानुसार आत्माका और घटादि विषयोंका परस्पर भोक्ताभोग्यसम्बन्ध तथा उपकार्य-उपकारकभाव सम्बन्ध नहीं घटेगा, क्योंकि जैसे घटादि पदार्थ स्वभावसे जड हैं, इस प्रकार वादीके मतमें आत्मा भी स्वभावसे जड है और पूर्वोक्त रीतिसे आगन्तुक ज्ञानका कारणरूप मनःसंयोगादि घटादिमें भी है, इसलिये आत्मा जैसे कर्ता-भोक्ता है, इसी प्रकार घटादि जड पदार्थ भी कर्ता-भोक्ता होने चाहियें परन्तु घटादि जड पदार्थोंको कोई भी कर्ता-भोक्ता नहीं मानता। यदि वादी ऐसा कहे कि प्रत्यक्षरूप दृष्टि तथा अनुमितिरूप दृष्टि जिसमें होती है, वह कर्ता-भोक्ता कहलाता है। आत्मामें ये दोनों दृष्टियाँ हैं किन्तु घटादिमें नहीं हैं, इसलिये आत्मा कर्ता-भोक्ता है। वादीका वह कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि आत्मामें कर्ता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोक्तापनेकी सिद्धिके लिये दृष्टिको या तो आत्माका स्वरूपभूत मानना पड़ेगा अथवा आत्माका धर्मभूत मानना पड़ेगा। प्रथम पक्ष ज्ञानरूप दृष्टिको आत्माकी रूपता हम भी मानते हैं। दृष्टि आत्माका धर्मरूप है, यह दूसरा पक्ष सम्भव नहीं है क्योंकि धर्म तथा धर्मीका परस्पर भेद होता है इसलिये दृष्टिरूप धर्ममें प्रकाशरूपता होनेपर भी धर्मीरूप जड आत्मामें प्रकाश सम्भव नहीं है। जैसे कि पुत्र पण्डित होनेसे पिता पण्डित नहीं होता, इसी प्रकार वादीकी मानी हुई दृष्टि धर्मीरूप आत्मासे भिन्न है, इसलिये वह दृष्टि आत्माकी सिद्धि नहीं कर सकती। और आत्मारूप धर्मीकी सिद्धि न होनेसे ज्ञानरूप दृष्टिकी भी सिद्धि सम्भव नहीं है। यदि वादी कहे कि धर्मरूप दृष्टिसे धर्मीरूप आत्माकी सिद्धि नहीं होती किन्तु स्वप्रकाशरूपसे अथवा दूसरे किसी प्रमाणसे आत्माकी सिद्धि होती है और उसीसे आत्माके धर्मरूप दृष्टिकी भी सिद्धि होती है। वादीका यह कहना भी भ्रमरूप है क्योंकि जब स्वप्रकाशरूपसे अथवा किसी दूसरे प्रमाणसे आत्माकी सिद्धि होती है, तो आत्मामें दृष्टि मानना ही निष्फल है। यदि वादी आत्मामें दृष्टिको माने तो उससे पूछना चाहिये कि जिससे पदार्थका ज्ञान हो, इस प्रकारके अर्थको मानकर चक्षु आदिके समान करणरूप दृष्टि प्रमाणरूप है, अथवा ज्ञानरूप दृष्टि प्रमाणरूप है? इनमें प्रथम पक्ष असम्भव है क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी ही अभीतक सिद्धि नहीं हुई, इसलिये प्रमाणरूप दृष्टिसे आत्माकी सिद्धि तुम नहीं कर सकते। जब दृष्टिजन्य ज्ञानमें प्रमापना सिद्ध हो, तब वादीकी मानी हुई प्रमाणरूप दृष्टिमें प्रमाणता सिद्ध हो क्योंकि प्रमाज्ञानके करणको प्रमाण कहते हैं। इसलिये वह दृष्टि अपनेमें प्रमाणताकी सिद्धिके लिये अपनेसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें प्रमाको ग्रहण करनेवाले किसी दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा करेगी। दूसरा प्रमाण भी अपनी सिद्धिके लिये तीसरे प्रमाणकी अपेक्षा करेगा। इस प्रकार धारा माननेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी। इसलिये करणरूप हुई दृष्टि प्रमाण नहीं हो सकती। अब ज्ञानरूप हुई दृष्टिको प्रमाण माननेमें शङ्का है कि वह प्रकाशरूप दृष्टि प्रकाशरहित है, परप्रकाश्य है अथवा स्वयंप्रकाश है? इनमेंसे प्रथम पक्ष सम्भव नहीं है, क्योंकि जैसे प्रकाशसे रहित प्रमाणरूप नहीं है, इसी प्रकार प्रकाशसे रहित दृष्टि भी प्रमाणरूप नहीं हो सकती। यदि प्रकाशरहित दृष्टिको प्रमाण मानोगे, तो अप्रकाशरूप घट भी प्रमाण मानना चाहिये। दृष्टि परप्रकाश्य है, यह दूसरा पक्ष भी सम्भव नहीं है क्योंकि जैसे घट परप्रकाश्य है, इसलिये प्रमाणरूप नहीं है, इसी प्रकार दृष्टि भी परप्रकाश्य होनेसे प्रमाणरूप नहीं है। प्रमाणरूप दृष्टिको परप्रकाश्यरूप माननेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होती है क्योंकि एक प्रमाणरूप दृष्टि दूसरीसे प्रकाश्य, दूसरी तीसरीसे, इस प्रकार प्रमाणोंकी धारा चली जायगी। प्रमाणरूप दृष्टि स्वयंप्रकाश्य है, ऐसा कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि श्रुतिके प्रमाणसे रहित केवल शुष्क तर्कसे वादी अर्थकी सिद्धि करना चाहता है और लौकिक दृष्टान्त बिना तर्कसे किसी अर्थकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये प्रमाणदृष्टि स्वयंप्रकाश्य है, इसमें लौकिक दृष्टान्त कहना चाहिये। और इस जगत्में ऐसा कोई पदार्थ है नहीं, जो आप प्रकाशरूप क्रियाका कर्ता हो, और आप ही प्रकाशरूप क्रियाका कर्म हो, इसलिये प्रमाणरूप दृष्टिको स्वयंप्रकाशता सम्भव नहीं है। प्रमाणरूप दृष्टिको आत्मासे भिन्न मानकर दृष्टिको स्वयंप्रकाश माननेवालेसे पूछना चाहिये कि स्वयंप्रकाश दृष्टि जुगनूके समान अपने स्वरूपमात्रको ही प्रकाशती है अथवा सूर्यके समान सर्व पदार्थोंको प्रकाशती है? इनमें प्रथम पक्ष सम्भव नहीं है क्योंकि जैसे जुगनू किसी पदार्थको नहीं प्रकाशता किन्तु केवल अपना ही प्रकाश करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, इसी प्रकार यह दृष्टि भी अपनेसे भिन्न किसी पदार्थका प्रकाश नहीं करेगी, इसलिये इससे किसी पदार्थकी सिद्धि ही नहीं होगी। सूर्यके समान यह दृष्टि सर्व पदार्थोंको प्रकाशती है, यह दूसरा पक्ष भी सम्भव नहीं है क्योंकि जो दृष्टि सर्व पदार्थोंकी प्रकाशक हो तो एक पदार्थके ज्ञानके समय सर्व पदार्थोंका ज्ञान होना चाहिये किन्तु एक पदार्थके ज्ञानसे सर्व पदार्थोंका ज्ञान किसीको नहीं होता, इसलिये दृष्टि सर्व पदार्थोंका प्रकाश नहीं करती। (क्रमशः)

दर्शन-चर्चा

(लेखक—विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री)

(गतांकसे आगे)

सांख्य-वैशेषिक

(वैशेषिकमत-खण्डन)

सांख्य–(कुशल प्रश्नके अनन्तर)–कहिये कुछ और भी सुनावें।

वैशेषिक–अवश्य।

सांख्य–अच्छा तो 'पारिमाण्डल्य' शब्दकी शक्ति या उसका अर्थ सुनिये। अर्वाचीन सब पण्डित एकमतसे यही कहते हैं कि—'पारिमाण्डल्य' नाम अणु परिमाणका है और यह एक पारिभाषिक शब्द है। जैसा कि—

(क) प्रशस्तपादभाष्य–'अणुपरिमाणं द्विविधम्, नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणुमनःसु तत्पारिमाण्डल्यम्। अनित्यं द्व्यणुक एव।'

(ख) न्यायकन्दली–'पारिमाण्डल्यं सर्वापकृष्टं परिमाणम्।'

(ग) न्यायसिद्धान्तमुक्तावली–'पारिमाण्डल्यमणुपरिमाणम्।' (का० १५)

(घ) दिनकरभट्ट–'अप्रसिद्धत्वात्पारिमाण्डल्यपदार्थं निर्वक्ति पारिमाण्डल्यमिति।'

ये सभी विद्वान् ख्यातकीर्ति वैशेषिक शास्त्रके ग्रन्थकर्ता हैं। इन सभी आचार्योंने यही कहा है कि—'पारिमाण्डल्य' नाम अणु परिमाण या सबसे जघन्य परिमाणका है। और इसी प्रकार इनके ग्रन्थोंके ऊपरसे असंख्य तार्किक पठन-पाठन करते हुए निकल गये हैं और जा रहे हैं जो कि नित्य ही अपनी प्रखर प्रतिभासे बालकी खाल उतारनेमें बड़ा पाटव प्रकट करते गये हैं। दुर्भाग्यसे यह एक 'पारिमाण्डल्य' शब्द ही नित्य सामने आनेपर भी उनकी खरादपर नहीं चढ़ा, नहीं तो कोई ऐसी बात भी न थी। इससे और भी किसीने इसपर कोई विशेष आलोचना नहीं की। इस स्थानमें यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि कहींपर तृणकी ओटमें भी पहाड़ रह जाता है। अतः इसमें कोई आश्चर्य भी न मानना चाहिये। इसीसे इतने बड़े प्रतिष्ठित समूहके सामने उसके प्रतिकूल हमारा मुख खोलना क्षन्तव्य हो सकता है। वास्तवमें न यह पारिभाषिक शब्द ही है और न अणु परिमाणका नाम ही है, किन्तु गो, अश्व, पुरुष, हस्ती इत्यादि शब्दोंके समान अनादिकालीन सिद्ध संकेत है। आपामर और यनितापर्यन्त जानते हैं कि 'मण्डल' नाम गोल-गोल वस्तुका है। जैसे कि लोग कहते हैं सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल, पृथ्वीमण्डल इत्यादि। इसके साथ एक (परि) शब्द और जुड़ा हुआ है, जो वस्तुके सर्वदिक् घेरेका बोधक है। जिससे कि शास्त्रज्ञ पुरुषोंकी बुद्धिपर अत्यन्त परदा नहीं डाल सकता। व्याकरणमें सभी पढ़ लेते हैं कि—परितः सर्वतः इत्यर्थः। सुतरां परिमण्डल कहनेसे सर्वथा गोलका नाम हो सकता है, जिसमें तीव्र तर्कसे भी कहीं किसी प्रकारका वैषम्य सिद्ध न हो। एवं 'परिमण्डल' शब्दसे ही 'पारिमाण्डल्य' शब्दकी सृष्टि होती है। जिसका अर्थ परिमण्डलका धर्म पारिमाण्डल्य परिमण्डलत्व या (गोलाई) होता है। हम भी इस 'पारिमाण्डल्य' शब्दके चक्रमें बहुत कालसे पड़े रहे कि सब पण्डितगण ऐसे पारिभाषिक शब्दके प्रयोगमें किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसका पान करते हैं जो कि 'अणु परिमाण' इस प्रसिद्ध शब्दका प्रयोग न करके इस क्लिष्ट शब्दके पीछे पड़े हैं। इस चिन्ताने बहुत दिनोंतक मनके ऊपर घेरा रक्खा किन्तु सुदैवका अवसर आया और उसी चिन्ताके साथ वैशेषिक-सूत्रका पाठ करते हुए "नित्यं परिमण्डलम्" यह सूत्र सामने आया। बस क्या था! सूत्रने एकदम विद्युत्का काम किया। शरीरमें रोमाञ्च और हर्षका सञ्चार-ही-सञ्चार हुआ। इस सूत्रका पाठ अनेक बार ही वाणी और मनके साथ हुआ पर इस क्षण-जैसा कभी चमत्कार नहीं हुआ था। बस जाना! ओहो! यह पारिमाण्डल्य, यह पारिमाण्डल्य। लीजिये अब तो मन-ही-मन व्याख्या होने लगी। पारिमाण्डल्य एक गुणविशेष है, जो नित्य सम्बन्धसे द्रव्य-पदार्थमें ही रहता है और द्रव्य—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नौ (९) हैं। इनमें पृथ्वी आदि चार द्रव्योंके परमाणु आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नित्य द्रव्य हैं। इनमें आकाश, काल, दिशा और आत्मा ये चार द्रव्य विभु (व्यापक) हैं और शेष पाँच परमाणुरूप हैं।

किसी पृथ्वी आदि द्रव्यके किसी ईंट आदिका तोड़ना आरम्भ करें और वहाँतक तोड़ें कि जिसका तर्कसे भी खण्ड न हो, उसका वह अन्तिम रूप परमाणु है। उसमें ध्यानसे सतर्क होकर विचारें कि उसमें क्या कोई किसी दिशामें वैषम्य हो सकता है? उत्तर मिलेगा कि नहीं। वही अखण्डरूप परमाणु कहलाता है। जो वस्तु सखण्ड होगी वह अवश्य ही वैषम्ययुक्त होगी। कोई भी अवयव-युक्त वस्तु देखिये, यत्किञ्चित् वैषम्यसे खाली नहीं मिलेगी। वास्तवमें परमाणुगत वैषम्यको अविषय होनेसे किसी उपायसे भी दूर नहीं किया जा सकता। सर्वथा पारिमाण्डल्य नामसे जो गोलाई है, वह परमाणुओंमें हो सकती है। यही अवस्था मनकी भी है, क्योंकि वैशेषिकमतमें वह परमाणु-रूप है, और इसीसे वह नित्य है।

एवं आकाश आदि विभु द्रव्योंपर भी ध्यान दीजिये। देखिये जब हम आकाशपर ध्यान देते हैं कि वह कैसा है? क्या वह मलमलके थान-जैसा है या पर्वत-जैसा है, या समुद्र-जैसा है? नहीं नहीं!! जिस वस्तुका अन्त नहीं या कहीं भी अभाव नहीं वह सर्वथा गोल सिद्ध होगा। जिसमें अन्य अनित्य द्रव्योंके समान लम्बाई-चौड़ाई नहीं है, वह परिमण्डल है, उसकी गोलाईको ही पारिमाण्डल्य कहते हैं। यह बात मार्मिक बुद्धिसे देखनेयोग्य है। क्या अब आप सिंहावलोकन-बुद्धिसे देखेंगे कि कणाद मुनिने किस समाधिमें यह सूत्र मुखसे उच्चारण किया था—

'नित्यं परिमण्डलम्'

क्या आपने समझ लिया कि जो पारिमाण्डल्यको अणु परिमाण समझते हैं, वे पारिमाण्डल्यके यथार्थ अर्थको नहीं बतलाते हैं? क्या परब्रह्म परमात्मा आकाश, काल और दिशा जीवात्मा ये सब अणु परिमाण हैं? नहीं। इसके समर्थनमें एक स्मृति भी सुनिये—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

ध्यानसे देखेंगे तो प्रतीत होगा कि यहाँपर अखण्ड शब्द परि शब्दके अर्थको किस चमत्कारके साथ स्पष्ट करता है जो एक साथ ही सारे सन्देहोंको बहा देता है। कहिये तो आपके साथी बड़े-बड़े लोग सूत्रकारके मतसे कितनी दूर-पर अन्धकारमें भ्रान्त फिरते हैं।

वास्तवमें कोई ब्रह्मके स्वरूपको पूछे कि वह कैसा है? तो इस स्मृतिसे बढ़कर और कोई वचन मिलना दुर्लभ ही है। क्योंकि इससे उत्तम और ऐसा कोई विशेषण ब्रह्मका नहीं है, जिसको मनुष्य खयालमें ला सके।

वैशेषिकदर्शनके मतमें आकाश, काल, दिशा और सब जीवात्मा इनमें कोई भी ब्रह्मसे छोटा नहीं है, अतएव इन सबका परिमाण परम महत् है तथा ये सभी विभु (व्यापक) और परिमण्डल हैं, एवं इनका परिमाण भी पारिमाण्डल्य या अखण्डमण्डलता है। इससे सिद्ध हुआ कि जो पारिमाण्डल्यको अणु परिमाणमात्र समझते हैं, वे यथार्थ नहीं समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकूटधामकी यात्राके विचित्र अनुभव

सच्ची घटना

(लेखक—श्री 'शील')

(१)

दो पहरकी धूपमें कल-कल निनाद करती हुई पावन मन्दाकिनीकी सरस धारामें हाथ-मुँह धोकर आनन्द-पूर्वक सती अनसूयाजी इत्यादिके पूजनोपरान्त हम सबने उन पवित्र वृक्षोंकी छायामें भोजन किया। सन्ध्या होनेसे पूर्व ही स्थानपर पहुँचना है इस विचारसे हमलोग शीघ्र ही लौट पड़े। तनिक दूर चलकर लगभग एक सौ नब्बे सीढ़ी चढ़कर श्रीहनूमान्‌जी-का मन्दिर था। गुरुजनोंकी आज्ञा प्राप्त कर हमलोग ऊपर चढ़े। इधर-उधर कन्दराएँ दीख पड़ीं। मेरा हृदय आनन्द एवं उत्साहसे उमड़ पड़ा। किन्तु साथ ही वेदना-के आर्त्तनादमें वह हर्ष तुरन्त विलीन हो गया। मैंने सोचा, कल हमलोगोंको जाना है। सुना है, इस पवित्र स्थानपर रात्रिको शङ्खकी ध्वनि आती है। धूनियाँ दीख पड़ती हैं, एवं 'राम-राम' का शब्द सुनायी पड़ता है। कभी-कभी ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंके दर्शन भी हो जाते हैं, जिससे फिर मनुष्यका संसारमें भटकना समाप्त हो जाता है। यदि मैं भी एक रात यहाँ रह सकता! किन्तु मुझे यहाँ कौन रहने देगा? मेरा ऐसा भाग्य कहाँ? यह विचार आते ही अपनी अवस्थापर एवं गुरुजनोंका साथ मेरी लालसामें कितना बाधक है, यह विचारकर मैं उदास हो गया, मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। आँसू पोंछकर आगे बढ़ा। जहाँपर पहाड़ीका एक सिरा समाप्त होता था, वहींपर एक बड़ी गुफा थी। उसमें कुछ राखके ढेर पड़े थे। ऐसा जान पड़ता था कि किसीने यहाँ धूनी रमायी थी। गुफा बिल्कुल खुली थी और उसका बाहरी भाग प्रकाशमय था। कुछ दूर चलनेपर गुफा समाप्त-सी हो जाती थी एवं वहाँसे दूसरी बहुत छोटी कन्दराका प्रारम्भ था। हमलोग वहाँतक गये। आगे जानेका साहस न कर लौट आये। भ्रातृगण एक ओर बैठकर यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यकी मीमांसा करने लगे। मैं उसी स्थानपर गुफाके एक पत्थरके सहारे खड़ा होकर उस सँकड़ी कन्दराकी ओर लालायित नेत्रोंसे देखने लगा। सहसा फिर हृदयमें वेदना जाग उठी। दुर्भाग्य निश्चय हो जानेपर भी एक हूक निकल ही गयी। यों ही रोते-रोते मैंने कहा 'प्रभो! मुझे विश्वास है कि इस पवित्र कन्दरामें कोई महा-पुरुष हैं। यहाँका वातावरण यही कह रहा है। महात्मा तो सहृदय एवं करुणामय होते हैं। क्या इस पामरकी करुण पुकार नहीं सुनेंगे? नाथ! क्या यहाँसे जानेसे दो क्षण पहले दर्शन नहीं दे सकते?' आँसू धरतीपर गिर रहे थे, हृदयकी पुकार शरीरमें रोमाञ्च उत्पन्न कर रही थी। इस मस्तीमें सारी कन्दरा भगवान्‌का विश्रामस्थान-सा जान पड़ने लगा! सहसा अन्दरवाली कन्दराका अन्धकार अधिक काला हो गया—ऐसा जैसा कि सिनेमाहालमें चित्रपट प्रारम्भ होनेसे पूर्व हो जाता है और साथ ही चित्रपट भी प्रारम्भ हो गया। आह! लेखनीमें इतनी शक्ति कहाँसे लाऊँ? वाणीमें इतना गाम्भीर्य कौन दे सकेगा कि जिससे मैं संसारको विश्वास दिला सकूँ कि मैंने जो कुछ देखा था वास्तवमें उसका प्रारम्भ वैसे ही हुआ था, जैसे उस अँधियारे सिनेमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालमें चित्रपटका दर्शन होता है ? उस अँधियारेमें द्वारसे तनिक दूरपर तीन फण लहरा रहे थे। उनका रंग था चाँदी-जैसी उज्ज्वल धातुके समान, नहीं, उससे भी अधिक उज्ज्वल ! रह-रहकर तीनों शिर सूर्यकिरणकी भाँति जगमगा उठते थे। अपनी विजयपर मेरा हृदय नाच उठा। हृदयने कहा, दौड़कर गुफामें घुस जा, किन्तु नेत्र उस जगमगाहटके देखनेमें ऐसे लीन थे कि पैर न उठा। श्रद्धा-जल नेत्रोंसे बह रहा था। नतमस्तक होकर मैंने प्रणाम किया। तीनों फण नीचे झुके, मानो आशीर्वादका शुभ-सन्देश सुना रहे थे। मैंने दोनों भाइयोंको भी बुला लिया। उन दोनोंने भी यह दृश्य देखा। पश्चिमी विद्याका प्रभाव रहा होगा, इसीसे वे कुछ क्षणोंतक शङ्का, विचार एवं उद्विग्नतासे उस ओर देखते रहे। अन्तमें स्वयं 'जय हो' कहते हुए उन्होंने भी प्रणाम किया। एक बार फिर तीनों फण झुके और फिर लहराने लगे। हृदयका उत्साह दूना हो गया। सहसा एक परिवर्तन दीख पड़ा। रह-रहकर बीच-वाले फणके स्थानपर एक जटाधारी, कुण्डल धारण किये हुए, तेजपुञ्ज शिव-समान आकृति दीख पड़ने लगी। अब तो हृदयमें विश्वासकी सरस धारा बह चली। सहसा सात-आठ यात्रियोंने प्रवेश करते हुए प्रश्न किया–'इसमें क्या है ?' मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। साधारणतः वे यात्री भी उस सँकड़ी कन्दरातक चले गये एवं उदास मनसे लौट आये। विचित्रता यह है कि जिस समय वहीं कन्दराके समीप खड़े वे लोग कह रहे थे कि 'गुफा है, भीतर जाकर देखें तब मालूम हो' उसी समय हम तीन प्राणी उस विचित्र दृश्यका दर्शन कर रहे थे !

चलनेकी पुकार हुई और दो क्षण पूर्व सूर्य-प्रकाश-के समान चमकनेवाली तीनों मूर्तियाँ भी पूर्वकी भाँति उसी भयानक-से अन्धकारमें विलीन हो गयीं। समय नहीं था। मैं खिन्न मन लिये नीचे चला आया। भगवान् जानें, यह सब क्या था ! जब यह विचार आता है कि दुःखी हृदयकी करुण पुकार एवं जाने कितने दिनोंकी लगनका फल अथवा मेरे प्रति उस पावन यात्राकी उद्देशपूर्तिमात्र थी, तब तो हृदय गद्गद् हो उठता है परन्तु दूसरे ही क्षण हृदयकी विचित्र दशा हो जाती है। क्या मुझ-जैसे पामर—जिसका जीवन वास्तवमें पतनकी ही आराधना करता हो, जिसे विश्वास, श्रद्धा, एवं परमार्थ सब कोसों दूरसे चमकनेवाले धुँधले-से दीपककी भाँति जान पड़ते हों उसपर कोई महापुरुष अथवा स्वयं भगवान् ही ऐसी कृपा क्यों करेंगे ?

सुना है गोकुल, वृन्दावन, चित्रकूट इत्यादि लीला-धामोंमें प्रायः प्रभुकी ऐसी अद्भुत लीलाएँ हुआ ही करती हैं, इसीसे इस स्थानसे चलकर आगे एक अन्य घटना हुई थी–इतनी ही विचित्र, उसका भी सम्पूर्ण विवरण देता हूँ।

(२)

अनसूया-धामसे लौटनेपर फटिकशिला, श्री-प्रमोदवन, श्रीसरसावन, इत्यादि स्थानोंके दर्शन करते हुए मुख्य स्थानपर रात्रिसे पूर्व ही आ जानेका विचार हुआ। साथमें एक अति बूढ़ा पथ-प्रदर्शक (Guide) था। हम सब भाई-बहिन इत्यादि मिलकर छः प्राणी उसीके सहारे चल दिये। हाँ, न जाने कहाँसे साथमें दो कुत्ते भी हो लिये थे।

चार अथवा छः मील चलकर न जाने क्या विचार कर उस बूढ़े पथ-प्रदर्शकने साधारण पथ छोड़ दिया। सम्भवतः इसी विचारसे कि किसी पगडण्डी-द्वारा जल्दी राह समाप्त हो जावेगी। विकट जङ्गलका प्रारम्भ होनेको था। वास्तविक पथ पीछे छूट गया था। पगडण्डी भी न जाने कहाँ चली गयी। सहसा दोनों कुत्ते पुनः प्रकट होकर विभिन्न प्रकारसे उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर न जाकर दूसरी ओर जानेका संकेत करने लगे। किन्तु उनकी कौन सुनता था। अन्तमें हताश होकर वे दोनों उसी स्थानसे न जाने किस ओर चले गये।

प्रतिक्षण वनकी विकटता बढ़ती जाती थी। गाइड महोदय थे तो बूढ़े किन्तु ग्राम्य जीवनके प्रभावसे इतने तेज चलते थे कि हमलोग उनकी चालको पहुँचना असम्भव-सा जानते थे। वे बहुत आगे थे। पूज्य मामाजीका आदेश पाकर मैंने उन्हें पुकारा। उनके पास पहुँचकर देखा वे बहुत घबराये-से खड़े थे। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि ठीक पगडण्डी न पाकर वे रास्ता भूल गये हैं। हमलोग एक विकट एवं निर्जन स्थानमें बिल्कुल अकेले थे। राहका कहीं भी पता न था। इतनी दूर आ गये थे कि पीछेका रास्ता भी गुम हो गया।

हमलोग कुछ कहें-सुनें, इस विचारसे गाइड देवताने अपने साहसका परिचय देते हुए अनजाने ही एक ओर चलना निश्चय किया। बोले 'इसी ओर तो 'फटिकशिला' है। उसी सीधमें मैं चलता हूँ।' तनिक-सी पगडण्डी सामने थी, उसीके सहारे हमलोग उनके पीछे-पीछे चल पड़े किन्तु थोड़ी-सी दूर चलकर अन्तमें वह भी समाप्त हो गयी। अब चारों ओर विकट वनके अतिरिक्त और कुछ भी न था। केवल छः-सात असहाय प्राणी खड़े यहाँसे निकलनेकी बात सोच रहे थे। गाइड निराश होकर मन्द गतिसे चलने लगा। किन्तु वहाँ तो किसी विशाल हाथीके जानेसे पैरसे रौंदी हुई बड़ी-बड़ी घासका ही रास्ता था। जाते कहाँ? उसे देखकर मैं भी भयभीत हो उठा। यदि किसी साधारण एवं प्रभावरहित स्थानके ऐसे विकट स्थलमें असहाय प्राणी खड़े होते तो न जाने कितने सिंह एक साथ उनपर कूद पड़ते? मैंने भयपूर्ण नेत्रोंसे पूज्य मामाजीकी ओर देखा, वे परम पूज्य भक्त हैं, उनका विश्वास, श्रद्धा एवं सेवकभाव सराहनीय है। गुरुभक्तिकी तो वे सजीव मूर्ति ही हैं। इस घटनासे कई बार पूर्व निर्जन स्थानोंपर हमलोगोंके यों ही परिहासमें भयजनक दृश्यकी रचनामात्रपर वे गद्गद् कण्ठ एवं अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कह उठते थे 'अहा! ऐसा अवसर तो आवे। देखो न, श्रीगुरुदेवके साथ इस स्थानपर तो चारों ओर श्रीरघुनाथजी धनुष-बाण लिये लक्ष्मणजी और सीताजीके सहित खड़े हैं।' साथ-ही-साथ अपने प्रभुका नर-शरीरसे उस स्थानके कष्ट सहना उन्हें उसी समय स्मरण हो आता और वे बिलख-बिलखकर रोने लगते। हाँ, उसी विश्वासपूर्ण मधुर भावनाको लेकर उन्होंने मुझसे कहा 'क्यों चिन्ता करते हो? यह भी कोई भयका स्थान है? रघुनन्दन स्वामी स्वयं उपस्थित होकर सब सँभाल लेंगे।' और बस इन्हीं शब्दोंमें सब कुछ भरा था। यदि विश्वास एवं भक्तिका कुछ भी महत्त्व है तो दो पग आगे यही सब हुआ।

निर्जन स्थान, विकट वन, राहका पता नहीं, हताश हो मन्द गतिसे वृक्षोंको हाथोंसे हटाते रास्ता बनाते हमलोग चल दिये। फिर एक बार पूज्य मामाजीने नेत्रोंमें विश्वासके पावन आँसू भरकर वही शब्द दुहरा दिये। सहसा शब्द-ध्वनि सुन पड़ी। मैं सहम-सा गया। दो लम्बे-चौड़े मनुष्य, नंगे बदन सिरपर पगड़ी पहने हाथमें घास काटनेका हँसिया लिये बड़ी मधुर हँसी हँसे! आह! उन घसियारेकी मूर्ति, किन्तु उनपर वह मधुर हँसी देखने योग्य थी। दोनों भाई जान पड़ते थे। एक श्याम शरीरके अधेड़ अवस्थाके एवं कुछ गम्भीर, दूसरे बीस-बाइस वर्षके गौरवर्णवाले अति चपल। हँसते हुए वे उस बूढ़े गाइडको रोककर पूछ रहे थे क्यों! फटिकशिलाका यही रास्ता है? हमलोग भी समीप आ गये। उसी प्रकार मधुर हँसी हँसकर उन्होंने पूछा, 'कहाँ जाओगे?'—भगवान् जानें वह सब क्या था किन्तु छोटे युवककी वह बाँकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसी एवं इस प्रकार खड़े होना कि मानो ब्रह्माण्डका काम उन्हींके हाथमें हो, नहीं भूलता। सबने घबड़ाकर उत्तर दिया 'फटिकशिला।' हँसकर उन्होंने कह दिया इधर तो रास्ता नहीं है। फिर तनिक ठहरकर उन्होंने एक दूसरेकी ओर देखा। फिर मुस्कुराकर कहा 'अच्छा, इस तरफसे चले जाओ, आगे रास्ता मिल जायगा। यों तो बहुत दूर आ गये हो।' उसी घबराहटमें गाइडके साथ हम सब आगे बढ़ गये। दोनों व्यक्ति खड़े थे और मुस्कुरा भी रहे थे। पूज्य मामाजीने पूछा, 'आपलोग यहाँ कैसे?' उत्तर मिला यों ही घास काटने चले आये थे। आपलोग अनसूयाजीसे आ रहे थे, दर्शन हो गये।' एक बार हँसकर वे अपने काममें लग गये। किन्तु हँस-हँसकर जाते हुए यात्रियोंको देखना अधिक सिद्ध था अथवा वे केवल अपने काममें ही लगने जा रहे थे—यह बताना कठिन है।

दस-बीस गज जाकर मामाजी कुछ चेते। किसी वेदनायुक्त वाणीमें बोले 'भाई! राम-लक्ष्मणके दर्शन तो हो गये। श्रीसीताजीके दर्शन बाकी रहे।' लड़कोंने सुनी बात अनसुनी कर दी। इतना विश्वास किसे? वे भी चुप हो गये।

फिर रास्ता समाप्त-सा हो गया। फिर वही विकट वन—उससे भी अधिक। बूढ़ेने निराश होकर कह दिया 'भाई! मैं फिर रास्ता भूल गया।' सब लोग हताश हो गये। किन्तु तनिक आगे और बढ़े। एक ओर उसी सघन वनसे न जाने किधरसे एक देवी लाल धोती पहने, सिरपर घासकी गठरी रक्खे, हाथमें हँसिया लिये गम्भीरताकी मूर्ति बनी चली आ रही थी। सहसा मामाजीकी वाणीसे इतना ही निकला 'अरे, तुम तो सीताजी हो।' उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। पूछा, 'तुमलोग यहाँ कैसे आ गये?' यात्राका सब हाल बताया गया। सुनकर 'अरे, यह तो बड़ा धोखा हुआ' कहकर वे तनिक पीछे होकर पूज्य मामाजीसे कुछ वार्तालाप करने लगीं, बात यात्राके सम्बन्धमें थी। फिर कहा 'अच्छा चलो, मैं रास्ता बताये देती हूँ।' मामाजीने पुनः वही कहा 'तुम तो सीता हो।' हँसकर उन्होंने केवल इतना कहा 'अरे, हम तो आप लोगनके दरसनका चले आएन। तुम लोग अनसुइयाधामसे आवत रहौ।' गाइड महोदयसे नहीं रहा गया—बोले 'तुम हियाँ घास कटती रहौ।' उन्होंने हँसकर 'हाँ' कर दिया। दो-चार बातें करनेके उपरान्त उन्होंने कहा 'जाओ, किनारे-किनारे इधरसे चले जाओ। अब रास्ता नहीं खोवेगा।' वे एक ओर चल दीं। हमलोग भी घटनाकी चर्चा करते चल दिये। फिर आसानीसे ही अन्य स्थानों एवं अति दुर्लभ जिनके दर्शन सन्ध्याको होते उन पूज्य श्रीस्वामी रामनारायण ब्रह्मचारीके सहजमें ही दर्शन प्राप्त कर फिर बिना भटके हमलोग स्थानपर पहुँच गये।

विश्वासमूर्ति पूज्य मामाजीको उसी रूपमें—अपनी भक्तिके अनुसार—श्रीरघुनाथजीके पावन दर्शनका ही विश्वास है। यहाँ जिससे भी अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे वे यह घटना कहते हैं वही विह्वल हो कहता है 'बड़े भाग्य थे। आपने चरण क्यों नहीं पकड़ लिये?' इसपर उन्हें भी बड़ी पीड़ा-सी होती है—'भाग्यमें नहीं था। वहाँ जब खड़े थे तब ज्ञान ही नहीं रहा था' कहकर वे चुप हो जाते हैं।

किन्तु भगवन्! मेरे प्रति तो यह सब विचित्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है। हृदयकी विचित्र एवं अनिश्चित दशाके कारण कभी विषाद, कभी हर्ष एवं कभी शान्ति-लाभ-सा होने लगता है। किन्तु एक निश्चय मत जानकर हृदयमें शान्ति होगी।*

ईश्वरका अनुभव

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)

[गतांकसे आगे]

नास्तिक लोग इस विषयपर कभी विचार नहीं करते कि जब ईश्वर कोई नहीं है, तब इस संसारमें अनेक प्रकारके वृक्ष-लतादि, अनेक जातिके प्राणी तथा मनुष्य कैसे उत्पन्न हुए। सम्भवतः वे लोग डार्विन और हक्सले आदिके जडाद्वैतके अनुसार विकासवादको मानते हैं। वे इस बातपर विश्वास करते हैं कि पहले छोटे-छोटे जन्तु उत्पन्न हुए, अनन्तर विकास होते-होते बन्दर और बन्दरसे मनुष्य बन गये। किन्तु इसमें शंका यह होती है कि इधर इतिहासकालके प्रायः तीन-चार हजार वर्षोंमें उन बन्दरोंमेंसे कोई मनुष्य बना है या नहीं अथवा अन्य जन्तुओंमेंसे कोई बन्दर बना है या नहीं ? अन्य किसी तरहके पशुओंमेंसे कोई दूसरी जातिका पशु बन गया है या नहीं ? वैसे ही मनुष्योंमेंसे विकसित होकर अन्य कोई प्राणी बना है या नहीं ? अगर इतने दिनोंके इतिहासकालमें ऐसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ तो हम यह कैसे मान लें कि प्राचीन भूतकालमें ही ऐसा हुआ था ? अगर किसी समयमें ऐसा एकाध परिवर्तन हुआ भी हो तो इसी कारण हम उसको प्रकृतिका स्वाभाविक परिणाम नहीं कह सकते। अगर प्रकृतिका ऐसा स्वभाव हो तो जातिपरिवर्तन निरन्तर होते ही रहना चाहिये था। अतएव अगर किसी समयमें एकाध परिवर्तन हुआ हो तो उसका कोई दूसरा ही कारण कहना पड़ेगा।

माता-पितासे भिन्न विचार रखनेवाले सन्तान अनेक समय उत्पन्न होते हैं, कभी न्यून बुद्धिवाले, कभी अधिक बुद्धिवाले और कभी विरोधी विचारवाले भी देखनेमें आते हैं। किसी समय किसी एक स्थानमें एकाध व्यक्ति ऐसे अद्भुत बुद्धिबलवाले उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके मुकाबलेके दूसरे आदमी सैकड़ों वर्षोंतक नहीं देखे जाते। पुनः इन महापुरुषोंकी सन्तति साधारण मनुष्योंके ही समान होती है। इसे क्या प्रकृतिका स्वभाव कहेंगे ? प्रकृतिके स्वभावमें किसी एक समय अचानक परिवर्तन हो जाना, फिर नियमानुसार बन जाना, यह कैसे हो सकता है ? सत्य तो यह है कि कर्मफलके अनुसार परमात्माके बनाये हुए नियमसे जीवात्माओंको शुभाशुभ योनि, ज्ञान, सुख, दुःख, अनुकूलता आदि प्राप्त होते हैं। भगवान् आपत्तिके समय संसारमें असाधारण व्यक्तिको भेजकर संसारकी मर्यादाका रक्षण करते हैं तथा मनुष्य-समाजको उन्नत बनाते हैं।

बहुतेरे लोग यह कह बैठते हैं कि 'जब हम-जैसे नास्तिक लोग भगवान्‌के अस्तित्वपर ही हमला करते हैं तब वह किसी आसमानी विज्ञप्तिके द्वारा हमारे भ्रमोंका निराकरण क्यों नहीं करता ?' और 'यदि हम यह मान भी लें कि ईश्वर एक शासक है जिसकी निगरानीमें संसारकी सारी व्यवस्था हो रही है तो विचार करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कोई ऐसा अदृश्य शासक है, तो अवश्य ही अव्वल दर्जेका मूर्ख है। हम तो यही कहेंगे कि ईश्वरकी कल्पना अज्ञानके कारण हुई है और यह केवल धोखा देनेवाला ढोंग है।'

किन्तु ऐसे लोगोंको यह समझना चाहिये कि इनके हमला करनेसे ही ईश्वरका अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता। और भ्रम दूर करनेके लिये आसमानी विज्ञप्तिकी भी जरूरत नहीं। क्योंकि विचार परिवर्तनशील है। पाश्चात्य भौतिक

* एक सज्जन अपने कुछ घरके लोगोंके साथ गतवर्ष आश्विनमें दशहरेके शुभ अवसरपर श्रीचित्रकूटकी यात्रा करने गये थे। वहाँ उन्होंने कुछ आश्चर्यजनक दृश्य देखे, उन्हींका यह वर्णन है। घटना सच्ची है। वे चाहते हैं कि इन घटनाओंका रहस्य कोई उन्हें समझा दे। इसपर मेरा तो इतना ही निवेदन है कि इन घटनाओंका क्या रहस्य है सो तो भगवान् जानें परन्तु जहाँतक मेरा विश्वास है यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि सच्चे महात्मा और भगवान् सदा ही रहते हैं और उन्हींकी कृपासे सौभाग्यवश उनके पुण्यदर्शन भी हो सकते हैं अतएव ऐसी घटनाओंकी सत्यतापर सन्देह न करके दृढ़ विश्वास करनेमें ही लाभ है। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याके ग्रन्थोंको देखनेसे जैसे इन लोगोंके पहलेके विचारोंमें बहुत परिवर्तन हो गया है उसी तरह पुनः जब सत्य तत्त्वका साक्षात्कार होगा तब इनके ये नास्तिक विचार आप ही बदल जायँगे।'

हाँ, जबतक सत्यका ग्रहण नहीं होगा और विपरीत भावना बनी रहेगी, तबतक ये स्वयं वैसे ही अपने आपको नुकसान पहुँचाते रहेंगे, जैसे सूर्यपर धूल फेंकनेवालोंकी आँखोंको उन्हींकी फेंकी हुई धूल नुकसान पहुँचाती है।

अब हम इस विषयका विचार करें कि ईश्वर मूर्ख है या पूर्ण ज्ञानी? पापियोंको शीघ्र दण्ड नहीं मिलता और न उनके विचारोंमें परिवर्तन ही होता है, इसी बातको देखकर प्रायः ऐसे लोगोंके मनमें भ्रम पैदा होता है। इस संसारको देखनेके लिये दृष्टि तीन प्रकारकी है—(१) आरोपित दृष्टि, (२) कार्यरूपा दृष्टि और (३) कारणरूपा दृष्टि। आरोपित दृष्टि ग्राह्य और त्याज्य अथवा विधि और निषेध-भेदसे दो प्रकारकी है। जैसे एक युवती स्त्री है; उसको पिता, बन्धु, पुत्र और पति क्रमसे पुत्री, भगिनी, माता और पत्नी दृष्टिसे देखते हैं, और विपरीत बुद्धिवाले दुराचारी मनुष्य कुदृष्टिसे देखते हैं। स्त्री तो एक ही है; किन्तु देखनेवाले अपने-अपने हृदयके भाव और सम्बन्धके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंका आरोप कर लेते हैं। कुटुम्बियों और सम्बन्धियोंके भाव भी आरोपित हैं, परन्तु व्यवहारमें वे उपादेय माने गये हैं। और दुष्टका आरोपी भाव व्यवहारमें निषिद्ध होनेके कारण हेय माना गया है। इसी तरह अन्य दृष्टिविषयक उदाहरणसे समझिये।

किसी एक धनी पुरुषने अपने पिताकी एक सोनेकी मूर्त्ति बनवायी। वह धनी अपनी आरोपित दृष्टिके कारण उस मूर्त्तिमें पिता-बुद्धि रखता है; स्वर्णकार उसे सुवर्णरूप (प्रकृतिकी कार्यरूपा) दृष्टिसे देखता है; और पदार्थ-तत्त्वज्ञानी तत्त्वदृष्टिसे उसे प्रकृतिरूप जानता है। आरोपित और कार्यरूपा दृष्टि व्यवहारोपयोगी है; परन्तु तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे अनुपयोगी है। और कारणरूपा तत्त्वदृष्टि तत्त्वज्ञानके लिये उपयोगी है। सृष्टिके मूल तत्त्वका विचार करनेके समय व्यावहारिक सङ्कुचित दृष्टिका त्याग करके तत्त्वज्ञानोपयोगी कारणरूपा दृष्टि ग्रहण करनी चाहिये तथा भूत, वर्तमान और भविष्यकालके परस्पर सम्बन्ध, सृष्टिहेतु और नियमपर भी लक्ष रखना चाहिये। अब इस विषयपर उदाहरणों-द्वारा युक्तिसे विचार कीजिये। मान लीजिये कि किसी धनी मनुष्यके हाथमें फोड़ा हुआ है, जिससे उसे बड़ा कष्ट हो रहा है। वह फोड़ा चिरवानेके लिये एक अनुभवी सर्जनके पास जाता है। डाक्टरको भी उसकी व्यथा देखकर दुःख होता है; किन्तु उस समय वह आपरेशन नहीं करता, और कहता है अभी फोड़ेके पकनेमें तीन दिन और लगेंगे। जबतक फोड़ा पक नहीं जाता तबतक आपरेशन नहीं हो सकता। अभी काट देनेसे जहर नाड़ियोंमें रह जायगा और पीछे उससे बड़ी भारी हानि होगी। रोगी चिल्लाकर कहता है कि 'साहब, रोग बढ़ रहा है; अभी आपरेशन नहीं होगा तो मेरा शरीर आधा हो जायगा। और व्यापारकी ओर ध्यान न दे सकनेके कारण तबतक आर्थिक हानि भी बहुत हो जायगी।' परन्तु डाक्टर अपनी रायपर कायम रहता है। अब हम विचार करें कि डाक्टरकी दृष्टिसे कार्य करनेमें रोगीका विशेष हित है या रोगीकी दृष्टिसे कार्य करनेमें? दोनोंमेंसे किसकी दृष्टिको हम यथार्थ कहेंगे? बुद्धिमान् मनुष्य तुरन्त उत्तर देंगे कि डाक्टरकी ही सलाह उचित है और रोगीका कथन अविवेकपूर्ण है। इसी तरह अपक्व दुष्टवृत्तिको दबाकर मनका विकास होनेमें प्रतिबन्ध खड़ा करना ठीक नहीं है।

फोड़े अनेक प्रकारके होते हैं। कुछ फोड़े—व्रण (Ulcers) साधारण पीड़ा देनेवाले होते हैं और शरीरमें थोड़े परिमाणमें विकृति उत्पन्न कर देते हैं। अर्बुदों (Tumours) में रक्तार्बुद (Sarcoma) और मांसार्बुद (Cancers) दीर्घ कालपर्यन्त भयङ्कर दुःख देते हैं, और सारे शरीरमें अत्यधिक नुकसान पहुँचाते हैं। एक प्रकारका फोड़ा—चिप्प (Whitlow) अँगुलीके नखके नीचे मासमें कीलकी तरह उत्पन्न होता है। यह रोग साधारण माना जाता है और अधिक भागमें विकार भी नहीं पैदा करता। किन्तु पकनेके समय यह असाधारण व्यथा पहुँचाता है। फोड़े शरीरके एक देशमें होनेपर भी अनेक भागोंमें अथवा सारे शरीरमें विकार और वेदना उत्पन्न करते हैं। किन्तु सृष्टिके नियमानुसार ठीक फोड़ा निकलनेके समय ही शरीरके अन्य भागोंकी रक्षाके लिये स्वास्थ्यके लिये हितकारी रोग-निरोधक शक्ति (Immunity) रक्तमें उत्पन्न हो जाती है। बाहरसे इस क्रियाका पता नहीं चलता, फिर भी आयुर्वेद या शरीरशास्त्र (Anatomy) जाननेवाले लोग इस रोग-निरोधक शक्तिकी क्रियाके परिणामको अच्छी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हैं। साथ ही रोगी भी शरीरके अन्य भागोंमें होनेवाली विक्रियाको दूर करनेवाली ओषधि सेवन करता और ऊपरसे फोड़ेपर भी दवा लगाता है। डाक्टरके कथनमें विश्वास रखकर वह इस दृष्टिसे उपचार कराता रहता है कि थोड़े अधिक समयतक इसी सिलसिलेमें दर्द सहन करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु भविष्यमें फिर कोई गड़बड़ी पैदा न हो। इसलिये वह रोगकी गति और अपनी शारीरिक शक्तिके अनुसार आवश्यक समयतक धीरे-धीरे दवा कराता रहता है। इसी तरह चोर, डाकू आदि अपने अधर्माचरणके कारण स्वयं शारीरिक और मानसिक दुःख भोगते हैं और अपनी शक्तिके अनुसार संसारको भी त्रास पहुँचाते रहते हैं। जिस तरह फोड़ेके समय शरीरके अन्दर रक्षिका शक्ति उत्पन्न होती है, उसी तरह संसारकी जनता अनेक उपायोंका आश्रय लेकर ऐसे लोगोंसे अपनी तथा समाजकी रक्षाका यथाशक्ति प्रयत्न करती है और साथ ही औषध-सेवनके समान परमात्मा संसारके लोगोंको रक्षाके निमित्त मनोबल और बुद्धिबल प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त परमात्मा रोगके बाह्योपचारके अनुसार यथासमय सृष्टिसंरक्षणके लिये आवश्यक कर्तव्य भी करते हैं।

जिस तरह इस शरीरको हम अपना शरीर मानते हैं, उसी तरह यह संसार—ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर है। ईश्वर इस ब्रह्माण्डरूप शरीरका शरीरी है और इस तरह हम ब्रह्माण्ड या सृष्टिको ईश्वरका ही स्वरूप कहेंगे। इस ब्रह्माण्डको हम समष्टि शरीर भी कह सकते हैं; क्योंकि यह अनेक व्यष्टि जीवसमुदायका संग्रह है। इस तरह व्यक्ति समष्टिका—भगवान्‌के शरीरका एक अंश है। इसलिये जिस तरह हम रोग दूर करनेके लिये प्रयत्न करते हैं, उसी तरह ईश्वर भी बराबर प्रयत्न करते रहते हैं और शनैः-शनैः यथोचित उपचार करते हैं। आरम्भमें शरीरके परमाणु किसी निमित्तसे शल्यरूप बनकर अन्तमें फोड़ा हो जाता है; फिर अपनी स्वच्छन्द वृत्तिके अनुसार अपने स्थानमें दोष-सञ्चय करता है और अन्तमें शरीरके अन्य भागोंमें भी विकार उत्पन्न कर देना शुरू कर देता है। इन सब बातोंको जानते हुए भी रोगी फोड़ेकी निष्ठुर वृत्तिको सहन करता रहता है, और उस स्थानकी शुद्धि और शरीररक्षाके निमित्त आन्तर-बाह्योपचार करता हुआ उस फोड़ेको परिपक्व-स्थितिमें लाता है। उसके बाद सर्जनके द्वारा उसे कटवा डालता है। इस क्रमसे उसे फोड़ेके स्थानमें अधिक कष्ट पहुँचता है; परन्तु भावी कल्याणके निमित्त यह आवश्यक कर्म करना ही पड़ता है। इस तरह थोड़ा नुक्सान होता हुआ दिखायी देनेपर भी उसे वास्तविक लाभ ही माना जाता है। इसी तरह एक क्षुद्र परमाणुके समान पामर प्राणी किसी निमित्तको लेकर स्वच्छन्द बन जाते हैं और संसारके संरक्षणके नियममें विघ्न उपस्थित करते हैं। किन्तु भगवान् भी बराबर उनकी गतिविधिपर दृष्टि रखता हुआ शनैः-शनैः उनकी दवा करता है। अनीतिमान् पुरुषोंको नीतिमान् बनाने और संसारकी मर्यादा कायम रखनेके लिये अनीतिमानोंको शनैः-शनैः कष्ट पहुँचाता है, जैसे आपरेशन-से रोगीका वास्तविक लाभ होता है इसी प्रकार अनीति-मान्‌का कल्याण भी ईश्वरी नियमानुसार कष्ट उठानेमें है। इस क्रियामें ईश्वरकी क्रूरता देखना बुद्धिका ही दोष है। भगवत्-क्रियाको समझे बिना भगवान्‌को अन्यायी आदि कहना अज्ञानता ही है।

एक दूसरे उदाहरणके द्वारा पुनः विचार करें। एक कुटुम्बमें चार भाई हैं और उनके सब मिलाकर छोटे-छोटे दस-बारह बालक हैं। उनमें एक-दो वर्षका बालक अत्यन्त मधुरभाषी, प्रसन्नमुख और सुन्दर है, जिसपर सब लोगोंका असाधारण प्रेम है। दिनभर सब लड़के इस बालकके साथ प्रेमपूर्वक खेला करते हैं। परन्तु यह बालक कभी-कभी नाराज होकर किसी बड़े लड़केको मार देता है। जब वह लड़का रोने लगता है तो माता आकर बड़े लड़केको समझाकर शान्त कर देती है और उसे छोटेको न मारनेका उपदेश दे देती है। परन्तु उसका उपदेश व्यर्थ ही होता-सा दिखायी देता है; क्योंकि वह बारम्बार किसी-न-किसी-को ठोंक देता है। माताको अन्य लड़कोंका कष्ट देखकर दुःख होता है; किन्तु वह छोटे बच्चेपर एकाएक कड़ा शासन करना भी नहीं चाहती। क्योंकि वह जानती है कि अबोध बालककी कोमल मनोवृत्तियोंको बलात्कार दबा देना महापाप है। मनोवृत्तिका पूर्ण विकास निर्भयताकी स्थितिमें ही होता है। अगर बाल्यावस्थामें ही भय दिखला-कर मनको निर्बल बना दिया जाय तो वह फिर जन्मभर निर्बल ही रह जाता है। संसारके महापुरुषोंका जीवन-चरित्र देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि उनके माता-पिताओंने शैशवावस्थामें उन्हें बिल्कुल निर्भय और स्वतन्त्र रखा था; इसीसे वे इतने महान् हो सके थे। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचकर वह माता अपने छोटे बच्चेको दबानेकी चेष्टा नहीं करती। किन्तु अनेक अज्ञानी मनुष्य उस मातापर इसके लिये दोषारोपण करते हैं, तो इससे क्या बुद्धिमान् मनुष्य भी उसे दोषी कहेंगे? इसी तरह चोर, डाकू आदि मनुष्योंको भी दयालु परमात्मा तुरन्त दण्ड नहीं देते।

यहाँपर सम्भवतः कोई यह शङ्का करे कि चोर, डाकू आदि तो आयुमें बड़े हैं, बालकके साथ उनकी समता कैसी? परन्तु यह शङ्का, स्थूल दृष्टिसे ठीक होनेपर भी, अविचारपूर्ण है। ईश्वर और आत्मा अनादि हैं। जबतक जीवकी बुद्धिका पूर्ण विकास नहीं हो जाता, जबतक वह उस परमवस्तु, परमज्योतिका अनुभव नहीं प्राप्त कर लेता तबतक उम्र अधिक होनेपर भी उसका मन शैशवावस्थामें ही है। भगवान्‌के लिये वह निरा-नादान बालक ही है। और उसके द्वारा होनेवाला अन्याय और अनीति दुष्ट मनोवृत्तियाँ हैं, वृत्तियोंका परिपाक होनेपर इनका रूपान्तर हो जायगा और फिर वे ईश्वराभिमुखी हो जायँगी। हाँ, उसकी मनोवृत्तियोंका परिपाक चाहे एक जन्ममें ही हो जाय या अनेक जन्मोंमें हो। वे परिपक्व होकर रूपान्तरित अवश्य होंगी, यह निश्चित है। वर्तमान समयमें जो दुराचारी प्रतीत होते हैं, उनमेंसे कोई इसी जन्ममें सदाचारी बन जायँगे, कोई आगामी एक या अनेक जन्मोंमें बनेंगे। प्राणिमात्रको एक-न-एक दिन मनुष्य-योनिमें आकर, अनेक जन्म लेकर, सदाचारी बनकर, अन्तमें ईश्वराभिमुख होना होगा। जो जीव पशु-पक्षीकी योनिसे मनुष्ययोनिमें आते हैं उन्हें आरम्भमें सदाचार और दुराचारके परिणामका उतना ज्ञान नहीं होता। धीरे-धीरे कई जन्मोंमें जब उनके मनका पूरा विकास हो जाता है, अनेक बार दुराचारका दुष्परिणाम भोग चुकते हैं, तब वे दुराचारसे दूर रहनेकी इच्छा करने लगते हैं। फिर धीरे-धीरे दुर्वृत्तिको छोड़कर अन्तमें महान् ईश्वरभक्त बन जाते हैं। हम आस्तिकलोग इस सत्यपर पूर्ण विश्वास करते हैं और इस कारण कभी हताश-निराश नहीं होते और न ईश्वरको दोष ही देते हैं।

फिर नास्तिकलोग भी इतना तो मान ही लेंगे कि जब अनाचारकी वृत्ति बढ़ती जाती है तब साथ-ही-साथ अनेक मनुष्योंमें उसके प्रतिकारकी वृत्ति भी उतनी ही बलवान् होती जाती है और अन्तमें अत्याचारीका नाश भी हो जाता है। इसका प्रमाण इतिहासमें हमें हर युगमें देखनेको मिलता है।

यहाँपर कोई यह शंका कर सकता है कि दुष्ट मनोवृत्तिका रूपान्तर शुभवृत्तिमें कैसे हो सकता है? इसका समाधान हम एक उदाहरण देकर करेंगे। एक धनी आदमीके यहाँ एक सज्जन मेहमान आये। उस धनी व्यक्तिके बागके मालीने उन सज्जनसे कहा कि कुछ दिन बाद मैं इस बागके बड़े मीठे आम खिलाऊँगा। उन्होंने कहा—मुझे तो कल-परसों चला जाना है; अगर खिलाना हो तो अभी खिलाओ। बागवान्‌ने कहा—अभी तो आम कच्चे होनेके कारण खट्टे हैं, पकनेपर स्वादिष्ट होंगे। इसपर उन्होंने पूछा—वाह! जो आम आज खट्टे हैं, वे थोड़े दिन बाद मीठे कैसे हो जायँगे? अब आप सोचिये कि मालीका कहना ठीक है या मेहमानका? आप सब अच्छी तरह जानते हैं कि अनेक फल कच्ची अवस्थामें खट्टे, कड़ुए या कसैले होते हैं; किन्तु पक जानेपर उनमें मधुर रस पैदा हो जाता है। इसी तरह स्वतन्त्र या स्वच्छन्द वृत्ति परिपाक-कालमें कटु और खट्टे फलके मधुर रसके रूपमें रूपान्तर होनेकी तरह ईश्वरगामिनी हो जाती है।

इस संसारमें ईश्वरगामिनी वृत्ति स्वाभाविक है, अनादि है; वह मनुष्य-हृदयका विकार नहीं है। संसारके किसी भी देशको देखिये, प्राचीन-से-प्राचीन भूतकालका निरीक्षण कीजिये; सहज ही यह सत्य आपकी समझमें आ जायगा। ब्राह्मणोंने अपने स्वार्थके लिये भारतमें ईश्वरका अस्तित्व माना है, यह कहना अविचारपूर्ण है। भारतके सिवा अन्य देशोंमें और ऐसे देशोंमें भी जिनका सम्बन्ध भारत या अन्य सभ्य देशोंसे नहीं था, ईश्वर और धर्मका अस्तित्व पाया गया है। वहाँपर हम किसे दोषी ठहरावेंगे? १४९३ई० में जब कोलम्बसने अमेरिका-खण्डका पता लगाया तो वहाँपर भी ईश्वर और धर्म मौजूद थे; अफ्रिकामें जब यूरोपियन पहले-पहल गये तो वहाँ भी ईश्वर देखनेमें आया। आस्ट्रेलियामें जब अङ्गरेज पहुँचे, उस समय उसका सम्बन्ध किसी देशसे नहीं था। किन्तु वहाँ भी ईश्वरका साम्राज्य था। वास्तवमें यदि हम विचार करें तो पता चलेगा कि मनुष्योंमें ईश्वरकी कल्पना पीछे अज्ञान-वश नहीं घुस पड़ी है; वरं वह मनुष्यमात्रमें जन्मसिद्ध है।

कोई मनुष्य यह कह सकता है कि वर्तमान समयमें चोर, डाकू इत्यादि जो हानि संसारको पहुँचा रहे हैं वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी वृत्तिके विकाससे होनेवाले भावी लाभकी अपेक्षा बहुत अधिक है। इसलिये उन्हें तुरन्त दण्ड दे देना चाहिये अथवा उनकी वृत्ति अभी बदल देनी चाहिये। किन्तु यह शङ्का भी दीर्घदृष्टिसम्पन्न उच्च विचारवालोंकी नहीं है। संसार अनादि, अनन्त है। अनादि माननेका हेतु हम ऊपर समझा चुके हैं। इसी प्रकार इस संसारका अन्त भी नहीं है। कालान्तरमें अपनी इस पृथ्वीका नाश हो जायगा, परन्तु पुनः उसी प्रकृतिके परमाणुओंमेंसे नयी रचना होकर सृष्टिका आरम्भ हो जायगा। इस तरह बार-बार सृष्टि और लय-रूप रूपान्तर होता रहेगा। ऐसे अनादि अनन्त संसारको देखनेकी दो प्रकारकी दृष्टि है—(१) व्यावहारिक वर्तमानकालीन व्यक्तिगत दृष्टि और (२) अनन्त युगोंवाली समष्टिदृष्टि। पहली दृष्टिसे हमें ऐसा मालूम होता है कि चोरी, डकैती, खून तथा अन्यान्य दुष्कार्योंसे संसारकी हानि हो रही है। और ऐसे अधर्मोंसे अपनी, समाजकी और देशकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी करना चाहिये। परन्तु यह व्यक्तिगत दृष्टि व्यवहारमें जीवात्माके लिये उपयोगी है। अगर अनन्त युगवाली समष्टिदृष्टिसे हम तत्त्वतः विचार करें तो हमें मालूम होगा कि ईश्वरको इन दुष्ट मनोवृत्तियोंको रोकनेके लिये प्रयत्न करनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। भले ही व्यावहारिक दृष्टिसे जीव यथासाध्य रोकनेका प्रयत्न करें।

इस संसारके स्थूल और सूक्ष्म दो स्वरूप हैं। ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ अनुभवमें आता है, वह स्थूल स्वरूप है। व्यावहारिक दृष्टिवाले केवल इस स्थूल स्वरूपको ही सत्य मानते हैं। दूसरा मनोमय स्वरूप है जो उन्नत मन (ज्ञान-नेत्र) द्वारा जाना जाता है। सूक्ष्म संसारमें अनेक विचारोंके संस्कार अनादि कालसे भरे पड़े हैं। सूक्ष्म संसार देखनेवाली दृष्टि—अनन्त युगवाली समष्टिदृष्टिके अनुसार यह संसार केवल मनोवृत्ति-रूप है। अधिक मनोबल (Will Power) वाले मनुष्य अपने दृढ़ संकल्पानुसार संसारमें अन्य व्यक्तियोंको हानि-लाभ पहुँचा सकते हैं; यहाँतक कि प्राणियोंके अतिरिक्त जड जगत्पर भी, ईश्वरी नियमसे अविरुद्ध, अपने संकल्पका असर पहुँचा सकते हैं। योगविद्या और मेस्मेरिज्मके द्वारा संसारको यह सत्य मालूम हो गया है। अध्यात्मशास्त्र एक कदम और आगे बढ़कर कहता है कि विचार अथवा संकल्पसे ही इस सृष्टिको स्थूल रूपकी प्राप्ति हुई है। सृष्टि संकल्परूप ही है; और संकल्पके आधारपर ही ब्रह्माण्ड स्थित है। मनोविज्ञानके उपर्युक्त सत्य सिद्धान्तके आधारपर यह निश्चय होता है कि भूतकालके जो विचार परिणामको नहीं प्राप्त हुए हैं, उनका वर्तमान समयके व्यक्तियोंके विचारोंके साथ सम्बन्ध है और जबतक विचार परिणामको नहीं प्राप्त हो जाते तबतक उनका नाश नहीं होता। आकाशके वातावरणमें वे विचार संस्काररूपसे, अदृश्यरूपमें वर्तमान रहते हैं। जब कोई अधिकारी मनुष्य उन विचारोंमेंसे किसी विचारके अनुकूल हृदयवाला बन जाता है तब वह विचार उसके मस्तिष्कमें प्रवेश कर जाता है। यही कारण है कि किसी पवित्र स्थानमें जानेपर अक्सर पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं और मन प्रसन्न हो जाता है; और किसी अपवित्र स्थानमें जानेपर इसके विपरीत अकारण ही मन उदास हो जाता है अथवा कुविचार मनमें उत्पन्न होते हैं। बड़े-बड़े विद्वान् जो नयी शोध करते हैं, वह सृष्टिमें पहले-पहल आविष्कार होता है—ऐसी बात नहीं। वास्तवमें वह सत्य पहले कई बार संसारको मालूम हो चुका था। केवल हम उसे भूल गये थे। मान लीजिये कि अचानक भूकम्पके कारण यूरोप या अमेरिकाखण्ड पृथ्वीपरसे लोप हो जाय अथवा जल-प्रलयमें सारी पृथ्वी ही नष्ट हो जाय; तो क्या साथ-साथ पृथ्वीपरकी सब विद्याएँ—सत्य रहस्य सब नष्ट हो जायँगे ? कदापि नहीं। स्थूलरूपसे उन विद्याओंका प्रचार संसारमें नहीं दिखायी पड़ेगा; किन्तु उनके संस्कार वातावरणमें वर्तमान रहेंगे, और कालान्तरमें जब-जब उन सत्य सिद्धान्तोंको ग्रहण करने योग्य अधिकारी पुरुष पैदा होंगे तब-तब उनके द्वारा पुनः उनका ज्ञान संसारको प्राप्त होता जायगा। इस अनन्त कालकी दृष्टिद्वारा सृष्टिका विचार करनेपर सर्वत्र प्राणिमात्रके प्रति परमात्माकी कृपाका अनुभव होगा; कहीं भी अन्धाधुन्धपना, अनियमितता, हानि, नाशादि नहीं प्रतीत होंगे। व्यक्तिगत व्यावहारिक दृष्टिसे देखनेपर दुष्कर्मोंसे जितनी हानि होती हुई मालूम होती है, उससे अनेक गुना अधिक लाभ अनन्तकालकी दृष्टिद्वारा मनका विकास होकर प्राचीन सत्यके संस्कारोंको वातावरणमेंसे ग्रहण करके संसारको देनेमें होगा। दुष्ट मनोवृत्तिका प्रवाह कालान्तरमें बदल जाता है और मन बलवान् होकर प्राचीन विद्याओंका साक्षात्कार करता है। इसलिये अन्तमें कहना पड़ेगा कि यदि ईश्वर वर्तमानकालीन तुच्छ दृष्टिका आश्रय लेकर चोर, डाकू आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनीतिमान् व्यक्तियोंको दण्ड दे देते तो जगत्में अधिक मात्रामें अपूर्णता रह जाती। माता आरम्भमें शिशुको गोदमें रखती है; किन्तु बड़ा होनेपर भी यदि वह बच्चेको कभी चलने न दे, गिरनेके भयसे बराबर गोदमें ही रखे, तो वह एकदम निर्बल हो जायगा और उसके अङ्गका विकास नहीं होगा। इसी तरह यदि ईश्वर सब समय क्षुद्र दृष्टिके अनुसार रक्षण करते रहें तो विरोधी वृत्तिका सामना करनेका बल संसारसे नष्ट हो जायगा और इस तरह एक प्रकारकी अपूर्णता ही रह जायगी।

कोई मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि जब ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं तब संसारमेंसे वह अज्ञान और दुःखको शीघ्र क्यों नहीं दूर कर देते। किन्तु ऐसा प्रश्न कोई समझदार व्यक्ति नहीं कर सकता। एक उदाहरण लेकर इसपर भी विचार करें। एक बैरिष्टर साहबसे उनके पाँच-सात वर्षके लड़केने कहा—'पिताजी! मुझे पढ़नेके लिये स्कूलमें भेजनेकी क्या जरूरत है? दस-पन्द्रह वर्षोंतक स्कूल, कालेज आदिमें जाने, धन खर्च करने और पढ़ने-लिखनेमें सिरपच्ची करनेसे क्या लाभ? आप दो-चार दिन प्रयत्न करके मुझे बैरिष्टरी पढ़ा दीजिये; बस, मैं भी कमाने लगूँगा।' इसपर बैरिष्टर साहबने हँसकर उत्तर दिया—'बेटा! तुम अभी इसे नहीं समझ सकते; क्योंकि तुम्हारी बुद्धिका विकास नहीं हुआ है। इसके लिये स्कूलमें जाकर क्रमसे विद्याध्ययन करना ही हितकर है। बुद्धि परिपक्व हुए बिना बैरिष्टरीका अभ्यास नहीं हो सकता। विद्याके जिन संस्कारोंका संग्रह पन्द्रह वर्षमें होनेवाला है वह दो-चार दिनोंमें कदापि नहीं हो सकता। सृष्टिके नियमके विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता।' इसी तरह ईश्वर नियम-विरुद्ध अपरिपक्व मनोवृत्तिवाले अनधिकारी जीवोंको असमय पारमार्थिक सत्य नहीं दे सकते। सर्वशक्तिमान्का अर्थ नियमविरुद्ध कार्य करनेवाला नहीं है। ऐसी कल्पना कर लेना ही मूर्खता है।

इस रीतिसे अनुकूल युक्ति और तर्कद्वारा विचार करनेपर ईश्वरकी सिद्धि होती है। ईश्वर ढोंग नहीं है; वरं ऐसा विपरीत दर्शन होना बुद्धिका ही दोष है। हम विरुद्ध भावना रखनेवाले लोगोंसे अनुरोध करेंगे कि वे अपनी बुद्धिकी शुद्धि करें, जिससे उन्हें सत्यकी प्राप्ति हो।

दयाकी भीख

(लेखक—दयाका पात्र एक अबोध बालक)

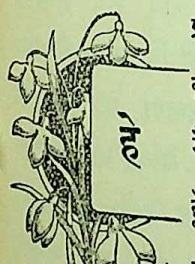

हे प्रभो! मुझपर आपकी कितनी कृपा है? कितनी दया है? क्या मैं इसकी कल्पना भी कर सकता हूँ? नहीं, आपकी कृपाके सदृश इतनी कल्पनाशक्ति ही मुझमें नहीं है। हे भगवन्! मेरी मूर्खता तो देखिये कि मैं आपकी कृपाकी थाह लेना चाहता हूँ—जानना चाहता हूँ कि अभीतक आपने मुझपर कौन-कौन-सी कृपा की है! मैं आँखें होते हुए भी अन्धा हूँ। पग-पगपर होनेवाली आपकी कृपाका अनुभव न करना मूर्खता नहीं है तो क्या है? अब आप ही मेरे हृदयमें कुछ प्रेरणा करें जिससे मैं आपकी दयाका कुछ महत्त्व समझ सकूँ। मुझे तो आपका ही भरोसा है—

सीतापति रघुनाथजी, तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाजको, सूझै ठौर न और॥

मैंने आपके भक्तोंसे सुना है कि भगवान्की जितनी कृपा अपने ऊपर समझी जाती है उससे कहीं अधिक ही होती है। और उस अधिकतक पहुँच जानेपर कृपाकी सीमा और बढ़ जाती है। कृपाकी असीमता-का छोर आता ही नहीं। हाँ, एक अवस्था ऐसी होती है जिसमें भक्तकी दृष्टिमें केवल कृपा-ही-कृपा रह जाती है; परन्तु यह बात तुम्हारी कृपासे ही अनुभव करनेकी है, कहने-सुननेकी नहीं!

हे प्रभो! ऐसा समय कब आवेगा जब मैं आप-की कृपाका अनुभव कर सकूँगा? कब उस कृपाके द्वारा मेरी हालत बिल्कुल पलट जावेगी—स्थिति ही दूसरी हो जावेगी। आज जहाँ मैं जरा-से दुःखमें पड़-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर कराह उठता हूँ, रो देता हूँ और हाय-हाय करने लगता हूँ, वहीं उस समय भयङ्कर-से-भयङ्कर दुःखमें भी आपकी कृपाके शुभ दर्शनकर—केवल दुःख ही नहीं सहता रहूँगा, बल्कि—उसमें एक अजीब आनन्दका अनुभव करूँगा।

आपने पहले-पहल मुझपर—

कबहुँक करि करुणा नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

इस कथनके अनुसार मुझे मनुष्य-शरीर देकर असीम कृपा की। बादमें दुःखदायी गर्भागारसे निकाला। साथ ही मेरे हितके लिये माँके स्तनोंमें दूध और हृदयमें मेरे प्रति ममता कूट-कूटकर भर दी। आपकी कृपाका हाथ सदा ही मुझपर रहा।

आपने मुझे अपना काम करने और पूजा करनेको हाथ, चलने-फिरने तथा सत्संगमें जानेको पैर, आपके एवं महात्माओंके दर्शन करनेको आँखें, प्रिय, सत्य एवं पवित्र वाणी बोलने और आपके नाम-गुणोंका कीर्त्तन करनेको मुँह और आपके गुणानुवाद सुननेको कान प्रदान किये हैं। यह सब आपकी कृपा ही तो है, पर नाथ! मैं इसे कहाँ समझता हूँ—कहाँ मानता हूँ? मैं तो पैरोंको बुरे स्थानोंमें ले जाकर, आँखोंसे परस्त्री एवं परदोष दर्शनकर, मुँहसे गन्दी, असत्य उद्वेगप्रद बातें बोलकर और अपने झूठे गुणोंकी डींग हाँककर और कानोंसे अपनी बड़ाई तथा परनिन्दा सुनकर इस आपकी की हुई कृपाका दुरुपयोग ही कर रहा हूँ। मेरी मति क्यों मारी गयी है? मैं क्यों आपकी कृपाकी क़द्र नहीं करता? प्रभो! प्रभो!! मुझपर कृपा करो! मेरी बुद्धिमें पूर्ण रीतिसे यह बात जमा दो कि आपकी मुझपर पूर्ण कृपा है।

जब दुःखका पहाड़ आ गिरता है, किसीका आश्रय नहीं रहता, सभी लोग नफरत करते हैं, तब एक बड़ेसे-बड़ा नास्तिक भी उस अनदेखे, अनजाने मालिकके लिये रोकर श्रद्धापूर्वक पुकार उठता है—'हे राम! अब तो तू ही बचा!' तुरन्त आप उसके लिये दौड़ पड़ते हैं। उस समय यदि लक्ष्मीजी भी रोकें तो आपका रुकना असम्भव हो जाता है। उस समय तो बस आपको अपने भक्तकी ही चिन्ता सताने लगती है। आपको खयाल ही नहीं रहता कि उसने पहले आपका कितना अपमान, कितना तिरस्कार किया है एवं कितने पाप किये हैं। उसके तो सभी पाप आपके स्मरणमात्रसे ही नष्ट हो गये—जल गये। आप शीघ्र-से-शीघ्र जाकर उसकी सहायता करते हैं, उसे पुचकारते हैं और उसके आँसूतक सहर्ष अपने पीताम्बरसे पोंछते हैं। धन्य प्रभु! आप कितने दयालु हैं? आपका हृदय दयासे कितना ओत-प्रोत है इसकी हम पामर प्राणी कल्पना भी नहीं कर सकते। हम अदूरदर्शी मूढ़ अपने हितके लिये विचार किया करते हैं—उसके बारेमें सोचा करते हैं पर इतना नहीं जानते हमारा परम हित करनेवाला परम प्यारा सुहृद् सदा-सर्वदा हमारी फिक्र रखता है। हमें चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं, वह अपने आप सब सम्हाल लेगा। हमारा काम तो इतना ही है कि सबका आश्रय त्यागकर केवल उसीका आश्रय ग्रहण करें—केवल उसीका भरोसा रक्खें। हे प्रभो! मैं यह नहीं चाहता कि आप मुझ अकेलेपर ही दया करें; हम सभी आपकी दयाका रहस्य जानें और हम सब आपके भक्त बन जायँ। हममेंसे एक भी ऐसा न रहे जो आपका भक्त न हो, जिसे आपकी दयापर पूर्ण विश्वास न हो।

अहा! दुःखमें ही आपकी कृपाकी चाह होती है; या यों कहिये कि दुःखरूपमें ही आपकी कृपाका श्रीगणेश होता है। बस, दुःख आपकी कृपा ही है। हे मेरे प्यारे दुःख! तुम कहाँ हो? मुझपर क्यों नहीं दलबल लेकर चढ़ाई करते? क्यों नहीं अपना सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोझ लेकर मुझपर गिर पड़ते ? माता कुन्तीने तो भगवान्‌से तुम्हींको वरदानमें माँगा था। किसी भक्तने कहा है—

सुखके माथे सिल पड़ो, (जो) नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी, (जो) पल पल नाम जपाय॥

हे प्रभो ! अब तो आप दया करके बस, मुझे दुःख ही दो। मैं ऐसे सज्जनस्वभावका नहीं हूँ जो दुःखरहित अवस्थामें आपको याद करूँ। मुझे तो आप दुःखमें ही याद आते हैं।

हा ! आजकल हम मूढ़ दुःखको ही विपत्ति समझते हैं—उसे ही सबसे बड़ी बुरी चीज समझते हैं, पर यह बात नहीं है, सबसे बड़ी विपत्ति तो परमात्माका स्मरण न होना ही है। परम भक्त श्रीहनुमान्‌जीके वाक्य स्मरण रखने योग्य हैं—

कह हनुमान बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

दुःखको बड़ा क्यों माना गया है, इसीलिये कि उसमें भगवान्‌का स्मरण होता है।

हे प्रभो ! विषय-भोगके बाद जो पश्चात्ताप होता है, जो कष्ट उठाना पड़ता है वह आपकी दया ही तो है। यदि आप उसमें दुःख एवं पश्चात्ताप नहीं रखते तो हमारी न जाने क्या दशा होती ? कभी आपका नाम भी नहीं लेते। आज हम विषयोंसे बार-बार दुःख उठानेपर भी उन्हें नहीं छोड़ते, उनसे जरा भी घृणा नहीं करते। जब हमपर दुःख आ पड़ता है तब तो नाथ ! हम आपसे प्रार्थना करते हैं, मनमें निश्चय करते हैं कि अब विषय कभी न भोगेंगे। पर जहाँ वह दुःख दूर हुआ कि फिर उसीमें आसक्त हो जाते हैं। उस समय यह ध्यान नहीं रहता कि जब इसका परिणामस्वरूप दुःख मिलेगा तब रोवेंगे, क्षमा माँगेंगे और फिर विषयोंके त्याग करनेका निश्चय करेंगे। हे प्रभो ! हमारे मनमें विश्वास क्यों नहीं होता कि—

बुझै न काम अगिनि तुलसी बहु बिषयभोग अरु घी ते।

तुलसीदासजीके इस वाक्यका रहस्य कब हमारी समझमें आवेगा ?

आपकी बड़ी भारी दया है कि ऐसे पापमय कलियुगमें भी अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा मौजूद हैं. पर नाथ ! हम फिर भी उनके उपदेशोंपर विश्वास नहीं करते। जैसा वे कहते हैं वैसा आचरण नहीं करते। हमारी नीचता तो यहाँतक बढ़ जाती है कि हम आपको प्राप्त हुए भक्तोंमें भी दोषकी ही खोज करते हैं।

सुनते हैं, आपने अमुक मनुष्यपर कृपा की, अमुकको दर्शन दिये, पर भगवन् ! हमें इस बातपर विश्वासतक नहीं होता। हमारी बुद्धि तो यहाँतक मारी गयी है कि आपके दर्शनोंमें भी हमारा विश्वास नहीं रहा ! हम यह माननेको तैयार नहीं कि आपके दर्शन हो सकते हैं। हममेंसे कुछ लोग तो ऐसे हैं जिन्हें आपके अस्तित्वतकमें भी विश्वास नहीं है। नाथ ! ऐसे लोगोंको देखकर आपको दया तो अवश्य ही आती होगी, अपनी सन्तानोंकी यह हालत देखकर दुःख तो जरूर होता होगा। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि जिससे हम अबोध बालकोंका किसी तरह उद्धार हो जाय ? किसी प्रकार आपमें पूर्ण श्रद्धा हो जाय ? और आपको भी अपने बच्चोंको दुःखी हालतमें देखकर जो दुःख होता है वह मिट जाय। आप हमारे हैं और हम आपके हैं। हमारा दुःख आपका और आपका दुःख हमारा है। यदि ऐसी बात है तो क्या आपसे अपना यह कष्ट दूर नहीं किया जाता, आप अपनेको ही सुखी नहीं बना सकते ? प्रभो ! प्रभो !! क्या सोच रहे हो ? हमारा दुःख दूर करो ! इसीसे आपका दुःख भी दूर होगा ! हम सबके सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभो ! एक बार अधिकारी-अनधिकारीकी मीमांसा छोड़कर मनमोहनरूपमें प्रकट तो हो जाओ। फिर देखें कि हमें आपमें कैसे विश्वास नहीं होता। जो हम आज स्त्रियोंके मुँह देखते फिरते हैं वही रूपके लोभी हम, आपके उस बड़े-बड़े ऋषि-मुनि-तपस्वियोंतकको मोहित करनेवाले रूपको देखकर, देखें कैसे स्थिर रह सकते हैं ? बस, इतनीही-सी तो बात है !

हे नाथ ! हम सब बातोंके लिये कष्ट उठाते हैं, रोते हैं और उसकी प्राप्तिकी पूरी-पूरी चेष्टा करते हैं, पर आपके लिये क्यों नहीं कष्ट उठाते, क्यों नहीं रोते और प्राणपणसे चेष्टा क्यों नहीं करते ? हम विषयोंके प्राप्त करनेके लिये सहर्ष कष्ट उठा लेते हैं। उनके भोगका दुःखरूपी परिणाम पराधीनतावश लाचार होकर सह लेते हैं किन्तु आपकी प्राप्तिके लिये जरा-सा दुःख क्यों नहीं सह सकते ? हम रातभर बीमार होकर बिस्तरपर पड़े तड़प सकते हैं, पर रातको आधे घण्टे भी आपका नाम जपते हुए आपके विरहमें नहीं तड़प सकते ! रातभर नाच-गान देख-सुन सकते हैं, हमें कीर्तनमें नींद आ जाती है।

हम किसी सुन्दर वस्तुको देखते हैं तो न तो उसकी तारीफ करते हैं जिसने हमें आँखें दी है और न उस सुन्दर चीज़के बनानेवालेकी ही याद करते हैं। हम सिनेमा देखने जाते हैं तो सिनेमा-कम्पनीकी बड़ाईका पुल बाँध देते हैं पर जिसने हमें आँखें दीं जिससे ऐसा दृश्य देखनेको मिला, जिन एक्टे्सोंके अन्दर उसने अपनी सुन्दरताका कुछ अंश दिया, उसे भक्तिके नातेसे न सही, बल्कि इस नातेसे भी क्या कभी याद करते हैं ? हम कानोंसे ग्रामोफोनके अच्छे-अच्छे गाने सुनते हैं, उसकी बड़ाई भी करते हैं, परन्तु क्या हमने कभी उस कान देनेवालेकी भी तारीफ की है ? क्या कभी उसको भी याद किया है जिसने ऐसी सुरीली आवाज गायकोंके गलेमें भरी ? हम अपने नंगे पैरोंमें जूते पहनते हैं तो चमारतककी तारीफ करते हैं, किन्तु हाय ! अफसोस, प्रभु ! आपकी नहीं। हम कपड़े बनानेपर दर्जीकी भी बड़ाई करते हैं लेकिन भगवान्‌की बड़ाई, जिन्होंने मनुष्य-शरीर-सा उत्तम कपड़ा अजीब ढंगसे सीकर दिया है—नहीं करते। हाय री कृतघ्नता !

हे भगवन् ! आपकी सबसे बड़ी कृपा यह भी है कि आप हमें अपनी मुँहमाँगी वस्तु नहीं देते, वही देते हैं जिससे वस्तुतः हमारा परम हित होता है। आप भक्तकी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं। आपका दावा है कि 'न मे भक्तः प्रणश्यति।' नारदजी शील-निधि राजाकी कन्यापर आसक्त हो जाते हैं। उससे विवाह करनेके लिये आपसे आपहीके समान सुन्दर रूप माँगते हुए कहते हैं—

जेहि बिधि होइ नाथ हित मोरा। करउ सो बेगि दास मैं तोरा॥

धन्य है प्रभो ! इसके उत्तरमें आप कहते हैं—

जेहि बिधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥
इहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ।.....॥

धन्य भक्तवत्सलता ! नारदजीने तो आपसे केवल हित (जो वास्तवमें अहित था) चाहा था, बल्कि आपने उनका हित ही नहीं परम हित कर दिया। उन्हें सुन्दर रूप न देकर कुत्सित रूप दे दिया जिससे उनकी रक्षा हो गयी।

दूसरी आपकी एक कृपा यह भी है कि आप भक्तका अभिमान नहीं रहने देते—

सुनहु रामकर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवकपर ममता अति भूरी॥
जिमि सिसुतनु ब्रण होइ गुसाँई। मातु चिराव कठिनकी नाई॥

यदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी, गनइ न सो सिसुपीर॥
तिमि रघुपति निज दासकर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजसि भ्रम त्यागि॥

हे प्रभो! आपको धन्य है। आप हम सबकी केवल माता ही नहीं पर परम माँ हैं। माता तो अज्ञान, मोह अथवा कभी-कभी स्वार्थके वशमें होकर अपनी सन्तानका अहित भी कर सकती है, लेकिन हे माँ! तुम तो केवल स्नेहमयी माँ हो। तुम्हारे द्वारा अपने बच्चोंका अहित हो ही नहीं सकता।

कोई बड़े-से-बड़ा पापी भी हो और वह सच्चे दिलसे आपकी शरण हो जाय तो आप उसके सब पिछले पापोंको नष्ट करके अपना प्रिय भक्त बना लेते हैं। बच्चा चाहे सोकर आवे, माँकी गोद तो उसके लिये सदा खुली ही रहती है। हमें तो केवल आपके सामने आ जानेमात्रकी जरूरत है, फिर तो आप अपने वचन—

सनमुख होहिं जीव मोहि जबहीं। कोटि जनम अघ नासौं तबहीं

—के अनुसार सब कुछ सँभाल लेंगे।

हे नाथ! आपकी सबसे बड़ी कृपा यह भी है कि आपको साधारण-से-साधारण, नीच-से-नीच जीव भी जिस भावसे भजता है उसी भावसे आप भी उसे भजते हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

कुछ लोग आपके प्रभावको न जाननेके कारण इस बातको लेकर तर्क तथा प्रश्न करते हैं कि ग्राहसे लड़ते हुए हाथीने तो आपका आधा ही नाम लिया था; आप भी उसका आधा नाम ले लेते। इसका समाधान तो यही है कि भक्त अपनी शक्तिसे आपकी तरफ अग्रसर होता है और आप अपनी शक्तिसे। इधर भक्त अपनी प्रेमकी एक बूँद लेकर आपकी ओर चलता है, उधर आपकी तरफसे सारा प्रेमसागर उमड़ पड़ता है और उस बूँदको अपनेमें मिला लेता है। जैसे, किसी चींटी और गरुड़में मित्रता हो गयी। इधरसे चींटी चली और उधरसे गरुड़। चींटी तो थोड़ी ही दूर चली कि गरुड़ आ पहुँचे। ऐसे ही किसी रंक और राजामें दोस्ताना हो गया। दोनों एक दूसरेसे मिलने चले। गरीब अपनी झोंपड़ीसे पैदल चला, उधरसे राजासाहब-की मोटर शीघ्र ही आ पहुँची। राजा गरीबके यहाँ रूखा-सूखा ज्वार-बाजरा ही खाता है और रंक राजाके यहाँ मेवा-पकवान। हे प्रभो! जब हम आपके इस—

जो मोहि भजै भजौं मैं वाकौ।

—वाले स्वभावको समझ जाते हैं तो कितना आनन्द होता है! फिर तो हमें आपके सिवा और कुछ सूझेगा ही नहीं। परन्तु यह होगा तभी जब हमें आपपर और आपके वचनोंपर विश्वास होगा!

परन्तु हे मेरी आनन्ददायिनी माँ! क्या अविश्वासी बच्चे स्नेहमयी माँकी दयाके पात्र नहीं हैं? वे तो विशेष पात्र हैं। उनपर दया करो! एक बार सबको अपनी आनन्दमयी गोदमें स्थान दो! जो गोदमें न आना चाहें उन्हें भी एक बार उठा लो! बच्चा माँकी गोदमें नहीं जाता तब भी माँ तो प्रेमवश पुचकारकर, उसे चूमकर अपनी गोदमें ले ही लेती है। यदि हम आपको भूले भी हैं तो आपकी मायाके द्वारा ही। क्यों आपने अपने बच्चोंको ऐसे मोहक खिलौने दे रक्खे हैं जिन्हें पाकर वे तुम्हें भूल जायँ, जिन्हें पाकर उनमें आसक्त हो जायँ?

माँ! आपकी कृपाने पापी-से-पापीको भी बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी मूल्यके, बिना किसी रुकावटके जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र सूर्य आदिका इच्छानुसार लाभ उठानेका अधिकार दे रक्खा है। धन्य है माँ! आपकी महिमा अपार है। आपकी दया अपार है। यह आपका अबोध बालक आपकी कृपासे अपनी इस बेतुकी बोलीमें स्वयं अपने लिये और आपके अन्य बच्चोंके लिये दीन प्रार्थना करता है कि सबको एक बार अपने दिव्य दर्शन देकर अपनी आनन्दमयी गोदमें बिठा लो। भाइयो! एक बार सब प्रेमसे बोलो आनन्दमयी माँ और उसकी असीम दयाकी जय !!

भक्त बलदेवदास

(लेखक—श्रीहनूमानजी शर्मा)

संवत् १८९८ के वैशाखमें जयपुर राज्यके अन्तर्गत नीमका थाना निजामतके समीप गाँवड़ी गाँवमें भक्त बलदेवदासने जन्म लिया था। आप जातिके गौड़ ब्राह्मण थे। छोटी अवस्थामें माता-पिताके मर जानेसे बहुत वर्षोंतक निराश्रय और संकुचित अवस्थामें रहे। पीछे पास ही गणेश्वर गाँवमें उनको एक मन्दिरकी पूजाका काम मिल गया। चरीभर चून माँग लाना और भोग लगाकर खा लेना—यही वहाँ काम था—और यही उस मन्दिरकी जीविका थी। ठाकुरजीका नाम सीतारामजी था, उनकी चरणचौकीपर कई शालग्रामजी भी थे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि देहातके जनशून्य मन्दिरकी अबतक अनेक बार नारदजी पूजा करते थे और बुहारी या सफाई सम्भवतः वायुसे होती थी।

सम्भव है, इस प्रकारके पूजनादिसे ठाकुरजी कई वर्षोंसे कुण्ठित रहे हों और बलदेवदास-जैसे अधेड़ निरक्षर और सद्धर्तावादिसे अनभिज्ञ किन्तु भक्त व्यक्तिको भी अकेले होनेकी दशामें उत्तम, अनुकूल और आवश्यक मान लिया हो। यही कारण है कि एक अदृष्टपूर्व अपरिचित सेवा-कार्यके साधनभूत मन्दिरमें प्रवेश करते ही बलदेवदासका मन प्रेम-पुलकित हो गया और वह बड़ी प्रीतिके साथ सेवा-पूजाका कार्य करने लगे, पूजा क्या थी—एक कटोरेमें सम्पूर्ण शालग्रामोंको जलमग्न करके निकाल लेना, उनको सीतारामजीके समीप बिठा देना—प्रत्येक मूर्तिके चन्दन और तुलसी लगा देना; और प्रसाद अर्पण करके आरती कर देना, यही पूजा थी। इसीमें सीतारामजीको पञ्चोपचार, षोडशोपचार या राजोपचारादिका आभास होता था।

बलदेवदास अविवाहित थे। जनशून्य मन्दिरमें अकेले रहते थे। जवानीका झोंका सीतारामकी संलग्नतामें निकल गया था, और मनकी एकाग्रता यथाक्रम बढ़ आयी थी। अतः बलदेवदासने सीतारामजीको ठाकुरजी मान लिया। वे उनकी धातुमय मूर्तिमें चैतन्यका अनुभव करने लगे और उसी मूर्तिमें भगवान्‌का होना मानने लगे। यह भाव उनके लिये स्वाभाविक हो गया। वह उनकी सेवा-पूजा कुछ विशेष अनुरागसे करने लगे। ठाकुरजीके लिये केसर, चन्दन, धूप, दीप या पुष्पादि लाना, वस्त्राभूषण बनवाना, कुछ अच्छे पदार्थ (चुपड़ी हुई रोटी, मुट्ठीभर शक्कर और दहीका कटोरा) भोग लगाना—उसीको आप स्वयं खा लेना—शेष रोटी भूखे-प्यासेको देते रहना और सायं-प्रातः तन्मय होकर आरती करना आदि बलदेवदासके स्वाभाविक काम हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब वह इन कामोंको स्वामिभक्त, श्रद्धावान् सेवककी तरह मन लगाकर सुचारुरूपसे करने लगे और ठाकुरजीको प्रत्यक्ष समझने लगे। धीरे-धीरे उनका भाव यहाँतक बढ़ गया कि अपनी अभीष्ट-सिद्धि आदिके लिये भी वे ठाकुरजीसे ही कहने लगे और यथाक्रम सब काम होने भी लगे। मन्दिर सुधरवाया, उसे बड़ा बनवाया, बगीचा लगवाया, पोशाकें बनवायीं और बर्तन-बासन भी मँगवाये। लोग पूछते कि 'यह कहाँसे मँगवाये' तो उत्तर मिलता कि 'मेरे ठाकुरजी-ने मँगवाये—या करवाये हैं।' गणेश्वरमें गालव ऋषि-का आश्रम है। वहाँ कोई चार सौ वर्षसे स्वच्छतम सुमिष्ट गरम जलकी बड़ी धारा गोमुखद्वारा अहोरात्र अविच्छिन्न गिरती है। पर्वादिके अवसरोंमें दूर देशके हजारों यात्री वहाँ स्नानार्थ जाते हैं और वास्तवमें वह है भी अद्वितीय तीर्थस्थान।

परम्परागत निवास रहनेके अनुरोधसे इन पंक्तियों-का लेखक भी कई वर्षोंतक गणेश्वर रह आया है, और बलदेवदासजीकी आन्तरिक कृपा एवं उनकी भगवद्भक्तिका (कई बार समक्षमें रहकर) अनुभव कर आया है। यह आँखों देखी बात है कि बलदेव-दास अपने ठाकुरजीको वास्तवमें बोलते-चालते और कार्य करते मानते थे। और कई बार कई कामोंके लिये ठाकुरजीको आग्रह और नरमाईसे कहते, और कई बार रूखे भावसे या नाराज होकर भी कहते थे। किन्तु ईश्वर-कृपासे उनकी संपूर्ण कार्य-सिद्धि स्वतः होती रहती थी। उदाहरण लीजिये—

(१) एक दिन बलदेवदासने ठाकुरजीसे कहा कि—'घी समाप्त हो गया है—इसका बन्दोबस्त करना नहीं तो रूखी रोटी खानी पड़ेगी।' दूसरे दिन घी बिल्कुल नहीं था। बलदेवदासने दो रूखी रोटियाँ भोगमें रख दीं और पास ही पहरूदारकी भाँति आप स्वयं भी बैठ गये (मानो ठाकुरजी खा रहे हैं, और रूखी रोटी उनके कण्ठोंमें अटकती हुई या गड़ती हुई जा रही है)। बलदेवदास जरा नाराज होकर बोले कि 'मैंने कल ही कह दिया था, घी नहीं है। अब क्यों कुढ़ते हो, जैसी हैं वैसी खा लो, पानीके साथ गले उतार लो, आप ही पेट भर जायगा।' अस्तु। दूसरे दिन माँगकर लाये हुए आटेमें एक रुपया मिल गया, उसको लेकर वह ठाकुरजीके पास गये और उलहना देने लगे कि 'अगर यही रुपया कल दे देते तो रूखी रोटियोंसे कण्ठ क्यों छिलते?'

(२) एक बार गणेश्वरमें सप्ताह-यज्ञकी समाप्ति हुई थी। बलदेवदासको भी बुलावा गया। उनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। वह ठाकुरजीसे कहने लगे—'इज्जत बिगड़ानेके लिये बुलावा भी क्यों मँगवाया?' उसी क्षण एक पोटली नजर आयी जिसमें ग्यारह रुपये थे। बलदेवदास हँसी-खुशी सप्ताहके भेंट कर आये।

(३) एक बार उनको स्वयं सप्ताह-यज्ञ करानेकी इच्छा हुई। भीखके आटेको बचाकर इकट्ठा किया। एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाकर सप्ताह आरम्भ करवा दिया। ईश्वर-कृपासे सब काम श्रीमानोंके समान सम्पन्न हुए, और गाँवभरको भोजन दिया गया।

इन सब कामोंके लिये बलदेवदास भगवान्‌को प्रत्यक्ष मानते थे और जिस भाँति भोले बालक अपनी अभीष्ट-सिद्धिमें तात, मात, भ्रातादिको मुख्य मानकर हर्षित होते हैं उसी भाँति बलदेवदास भी 'हमारे ठाकुरजीने यह किया—वह किया' आदि करते रहते थे। अस्तु। इस प्रकार भगवान्‌में अमिट श्रद्धा रखने-वाले बलदेवदास जन्मभर सच्चे ब्रह्मचारी और भगव-द्भक्त रहकर संवत् १९६८ में परलोक पधार गये। और अपने परिवारादिके बदलेमें भगवान्‌की मूर्ति और धन, यश आदिके बदलेमें उपर्युक्त पंक्तियाँ छोड़ गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति-तत्त्व

(लेखक—मण्डलेश्वर स्वामीजी श्रीकृष्णानन्द गिरिजी महाराज)

जीव अनादिपरिकल्पित अविद्याकृत आभासको अविद्याके द्वारा भ्रान्तिवश स्वस्वरूप मानकर उसके ही आश्रित सञ्चित कर्मोंमें फलोन्मुख किञ्चित् कर्मोंके फलको भोगनेके लिये ईश्वर-शक्तिसे प्रेरित होकर चतुर्दश भुवनकी यात्रा करता है। वह शुभ कर्मोंके फलभोगके लिये देवलोकमें पहुँचता है। जहाँ अनन्त कोटि पूर्वजन्मकृत पुण्योंके प्रभावसे प्राप्त देवविग्रह जिस-जिस दिव्य भोगका सङ्कल्प करते हैं वही पदार्थ सङ्कल्पमात्रसे उन्हें प्राप्त हो जाते हैं और वे उन पदार्थोंके दर्शनमात्रसे ही परितृप्त हो जाते हैं[1] तथा अमर-अजर होकर दिव्य सुखोपभोग करते हैं।[2] वहाँसे वह जीव असंख्य जन्मोपार्जित शुभ कर्मोंके फलोन्मुख होनेपर भगवच्छक्तिकी प्रेरणासे ब्रह्मलोकमें पहुँचता है, जहाँका अधिपति समस्त भूतोंका पितामह ब्रह्मा विराजमान है। वह अद्भुत आकृति पुरुष पद्मसिंहासनपर स्थित चारों दिशाओंको अपने चतुर्मुखके दिव्य आलोकसे आलोकित करता है। और उस आलोकके प्रभावसे वह उस सत्य-लोकमें बैठा हुआ ही पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त चौदह भुवनोंमें स्थित समस्त भूतोंके शुभाशुभ कर्मोंको देखता है तथा उन कर्मोंके अनुसार फलभोगके लिये सङ्कल्प-मात्रसे ही उन्हें जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज आदि योनियाँ प्रदान करता है। वही ब्रह्मा सब देवताओंसे प्रथम उत्पन्न है और समस्त भूत-योनिका आदिकारण है।[3] वह जब समस्त देवोत्पत्तिके पूर्व सङ्कल्प करता है कि मैं एकसे बहुत हो जाऊँ तो जीवोंके कर्मफलभोगके लिये सृष्टि तैयार हो जाती है।[4]

उस दिव्यलोकमें ही ब्रह्माकी अद्भुत शक्ति देखकर जीवको यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि वह अलौकिक शक्ति क्या है जिसके भ्रूविलासमात्रसे यह प्रपञ्च रचा जाता है। परन्तु सत्यलोकमें कर्म-फलको भोग लेनेपर उसका अधःपतन होता है और वह फिर कर्मानुसार मर्त्यलोकमें जन्म लेता है।[5] श्रुति कहती है—

तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाभ्रं भवति ॥५॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति, त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥६॥ तद्य इह रमणीय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा अथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकर-योनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥७॥ (छा० उ० ५। १०)

त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वाराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति। (छा० उ० ६। ९। ३)

अर्थात् अपने पुण्यकर्मोंके अनुसार स्वर्गादिका भोग कर निकृष्ट कर्मोंके भोगके लिये जीव पुनः मनुष्यादि लोकोंको प्राप्त होता है। पहले वासनामय शरीरसे आकाशको प्राप्त होता है, फिर वायुको, धूमको (मेघकी पूर्वावस्थारूप), अभ्रको क्रमशः प्राप्त होकर फिर जलरूपसे पृथ्वीपर बरसता है, वही फिर धान, जौ, ओषधि, वनस्पति, तिल, माष आदि अन्नोंके रूपमें आता है। फिर वह बड़ी ही कठिन अवस्थाको प्राप्त होता है, जो-जो प्राणी उस अन्नको खाता है और जो स्त्रीकी योनिमें वीर्य सिञ्चन करता है वही-वही वीर्य रज-मिश्रित होकर माताके गर्भसे शरीरभावको प्राप्त होता है। जो पूर्व जन्मकृत शुभ कर्मयुक्त शोभनाचरण प्राणी होते हैं वे पवित्र ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि तथा वैश्ययोनिमें जन्म लेते हैं, यदि अशुभ कर्मयुक्त कुत्सित-चरणयुक्त होते हैं तो कुत्तेकी योनि, शूकरयोनि, चाण्डाल-योनि, व्याघ्र, सिंह, वृक, वराह, कीट, पतंग, दंश, मशक आदि योनियोंको प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार जीव अनादिकालसे असंख्य बार विविध

---

(१) देवा नाश्नन्ति न पिबन्ति दृष्ट्वैव तृप्यन्ति—(श्रुति)। (२) अमरा निर्जरा देवाः—(अमरकोष)। (३) ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता। (४) एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय—(श्रुति)।

(५) 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' तथा 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन' (गीता)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योनियोंमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारके दुःखोंका अनुभव करता है। कीटादि योनियोंमें नाना प्रकारकी नारकीय यन्त्रणाओंको सहता है, तब कहीं दैवयोगसे पूर्व जन्मके पुण्यके उदयसे विवेक-वैराग्यादि साधनोंका धाम, मोक्षका द्वार, चौरासी लाख योनियोंका मुकुट-मणि मनुष्य-देह प्राप्त होता है। इस प्रकारका मनुष्य-देह संसारमें अनेक बार प्राप्त होता है परन्तु इसके महत्त्वको न समझकर अहङ्कारसे उन्मत्त पुरुष अपने हानि-लाभका विचार न करके इसे संसारके विषय-भोगरूपी समुद्रमें फेंक देता है और अघटितघटनापटीयसी नारायणी शक्तिके ज्ञानका साधन पाकर भी उससे अपने आप वञ्चित रह जाता है। यह कितने दुःखकी बात है ? भगवान् आद्य शङ्कराचार्य कहते हैं—

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यः स्वात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधीः
स आत्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्॥

अर्थात् 'जो मनुष्य किसी प्रकार दुर्लभ मनुष्यजन्म, उसमें भी पुरुषशरीर और वह भी वेदाधिकारी द्विजका शरीर पाकर अपनी मुक्तिके लिये प्रयत्न नहीं करता, वह मूर्ख और आत्मघाती है तथा असत्का ग्रहण करके अपने ही हाथों अपना नाश करता है।' और भी ऐसे पुरुषकी निन्दा शास्त्रने अनेक प्रकारसे की है, जैसे—

दुर्लभो मानुषो देहो ब्राह्मदेहस्तु दुर्लभः।
ब्राह्मदेहं समासाद्य येन मुक्तौ न यत्यते॥
पर्वताग्रं समासाद्य स्वदेहं पातयेदधः॥

अर्थात् 'मनुष्य-शरीर दुर्लभ है, और ब्राह्मणका शरीर तो उससे भी दुर्लभ है। जो ब्राह्मणका शरीर पाकर मुक्तिके लिये यत्न नहीं करता है वह मानो पर्वतशिखरपर पहुँचकर अपने शरीरको नीचे गिराकर आत्मघात करता है।

गीतामें श्रीभगवान् कहते हैं—

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

अर्थात् 'प्रज्ञावान् योगियोंके कुलमें जन्म पाना बहुत ही दुर्लभ है।' ऐसे मानवशरीरको पाकर भी जो इसे सफल नहीं करता उसका जन्म व्यर्थ है। परन्तु बिना देवात्म-शक्तिकी कृपाके अल्पज्ञ और अल्पशक्ति मनुष्यके लिये इस संसार-सागरसे पार पाना बड़ा ही कठिन है। श्रीभगवान् भी कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मेरी इस त्रिगुणात्मिका अलौकिक मायाको पार करना बहुत कठिन है। परन्तु जो अनन्य भावसे मेरी शरणमें आ जाते हैं वे इस मायाको पार कर सकते हैं।' परन्तु भगवान्की शरणागतिका मार्ग बिना सद्गुरुके कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसीलिये श्रुति भगवती कहती हैं—

'आचार्यवान् पुरुषो वेद'

अर्थात् सद्गुरुकी कृपासे ही पुरुष भगवान्को जानता है।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान् नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

अर्थात् 'द्विज इन चतुर्दश भुवनोंको कर्मरचित जानकर वैराग्यको प्राप्त हो और देवात्मशक्तिके ज्ञानके लिये समिधा हाथमें लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जावे।' अतएव साधनसम्पन्न महापुरुषोंका समागम करना चाहिये, यह सत्संग ही विवेककी उत्पत्तिका परम साधन है और यह भगवान्की परम कृपासे ही मिलता है।

गोसाईं तुलसीदासजीने कहा है—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

और सत्संग प्राप्त करके—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

अर्थात् 'देवात्मशक्तिके ज्ञानकी प्राप्ति गुरुकी, सन्तोंकी सेवा करता हुआ प्रणिपात (साष्टांग प्रणाम) और प्रश्नोत्तरके द्वारा करे। तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष इसी प्रकारके श्रद्धालु मुमुक्षुको ज्ञानका उपदेश करते हैं।' अनेक महापुरुषोंसे प्रश्न करनेका अभिप्राय यह है कि अनेक यत्नशील पुरुषोंमें कोई एक तो परमेश्वरकी शक्तिके परमतत्त्वको जानता ही होगा। क्योंकि गीतामें आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीभगवान् कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

अर्थात् 'सहस्रों मनुष्योंमें कोई एक परमेश्वरके तत्त्वको जाननेके लिये यत्न करता है और यत्न करनेवाले सहस्रोंमेंसे कोई विरला ही मदनुगृहीत पुरुष यथार्थरूपसे मुझे तत्त्वतः जानता है ।' ऐसे ब्रह्मस्वरूप महात्माका दर्शन अनेकों जन्मोंके पुण्यके प्रभावसे और परमेश्वरके परम अनुग्रहसे ही होता है । परन्तु जब दर्शन हो जाता है तो उनके कृपा-कटाक्षगत होते ही मनुष्यके अनन्त जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है । श्रुति भी कहती है—

यस्यानुभवपर्यन्ता दृष्टिस्तत्त्वे प्रवर्त्तते ।
तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥
खेचराः भूचराः सर्वे ब्रह्मविद्दृष्टिगोचराः ।
सद्य एव प्रमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः ॥

शास्त्रान्तरमें भी कहा है—

महतामवलोकनञ्च यत् क्षणमात्रेण भवेच्च सिद्धिदम् ।
नहुषो व्यजहाद्भुजङ्गतां यमसूनोरवलोकनात्पुरा ॥

अर्थात् 'जिस पुरुषकी दृष्टि ब्रह्मसाक्षात्कारपर्यन्त पहुँच गयी है उस ब्रह्मवेत्ताके दृष्टिगत हुए खेचर (आकाश-में विचरनेवाले), भूचर (पृथ्वीपर विचरनेवाले) प्राणी अनन्तकोटि जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ।'

महापुरुषोंके दर्शनसे पापीसे भी पापी प्राणी नीच योनिसे छूट जाता है । महाराज युधिष्ठिरकी दृष्टि पड़ते ही राजा नहुष अजगरके शरीरसे मुक्त हो गये हैं ।

ऐसे सद्गुरुको प्राप्तकर ही मुमुक्षु पूछता है कि,

कथं बन्धः कथं मोक्षो विद्याविद्ये उभे च के ।
क आत्मा परमात्मा च तयोरैक्यं कथं वद ॥

अर्थात् 'हे गुरुदेव ! बन्धन क्या है, मोक्ष किसे कहते हैं, विद्या और अविद्या क्या वस्तु है, जीवात्मा परमात्माका स्वरूप क्या है तथा उनकी एकता कैसे हो सकती है ? सो कहिये ।' तब गुरुदेव प्रसन्न होकर उसे समझाते हैं और सद्गुरुके द्वारा ही पुरुषको अखिल ब्रह्माण्डके व्यवहार-का कारण मालूम होता है । वह जानता है कि—

भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

अर्थात् 'आत्मशक्तिके भयसे ही वायु आदि नियम-पूर्वक अपनी क्रियामें लगे रहते हैं, उसी परमेश्वरी शक्तिके भयसे सूर्य उदय होता है, इन्द्र, चन्द्र, मृत्यु सभी उसके भयसे दौड़ते रहते हैं । उसी शक्तिको—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।

ऋषियोंने ध्यान-योगके द्वारा अपने (शक्तिके) त्रिगुणोंसे आच्छादित देखा था । वही आत्मशक्ति अपनी मायासे भक्तोंकी उत्कट उपासनासे प्रेरित होकर भक्तोंके संकट हरनेके लिये विराट् आदि अनेक रूपोंको धारण करती है । उन्हीं रूपोंमेंसे परमेश्वरके प्रधान राम कृष्णादि दश रूप हैं । श्रुति भी कहती है—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति ॥

माया, अविद्या, प्रकृति, शक्ति, सामर्थ्य, सत्ता, अव्याकृत आदि नाम उसी एक ईश्वरीय शक्तिके हैं । शुद्ध सत्त्वगुणप्रधान ईश्वरकी उपाधि होनेसे उस शक्तिका नाम माया पड़ता है और मलिन सत्त्वगुणप्रधान जीवकी उपाधि होनेसे उसका नाम अविद्या है । प्रलयकालमें गुणोंकी साम्यावस्थासे वही प्रकृति कहलाती है । उत्पत्ति, प्रलय, जीवभाव, ईश्वरभाव तथा जीवोंके भोगके अनुरूप स्थानादि समस्त कार्योंके करनेमें समर्थ होनेके कारण उसे सामर्थ्य-सत्ता कहते हैं । कार्यकी विभिन्नताके कारण एक ही शक्तिके अनेक नाम हो जाते हैं । श्रुति भी कहती है ।

मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

अर्थात् 'मायाको ही प्रकृति कहते हैं और यह माया-शक्ति जिस अधिष्ठानकी सत्तासे प्रतीत होती है उस परमेश्वरका नाम मायावी है । उस परमेश्वरके अवयवभूत इस आत्मशक्तिसे ही सर्व जगत् व्याप्त है ।' ब्रह्मसूत्रमें भी लिखा है—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुरोधात् ।

अर्थात् 'यह परमात्मदेव ही इस चराचर जगत्की प्रकृति है, उपादान कारण है, सूत्रस्थ चकारसे जगत्का निमित्त कारण भी मायाशक्तिप्रधान परमेश्वर ही है। क्योंकि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातं भवति ।

उसी देवात्मशक्तिके ज्ञानसे कभी नहीं सुने हुए, नहीं देखे हुए, नहीं जाने हुए सर्व पदार्थ सुने, देखे और जाने जाते हैं। इसमें एक दृष्टान्त है—महर्षि उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतु जब गुरुकुलमें भेदबोधक शास्त्रोंको खूब तर्कवितर्कपूर्वक अध्ययन करके घर लौटे तो अभिमानवश उन्होंने अपने माता-पिताको दण्डवत्-प्रणामादिरूप अभिवादन नहीं किया । उद्दालकने विचारा कि 'विद्याफलं स्यादसतो निवृत्तिः' अर्थात् विद्यासे तो मनुष्यमें अहंकारादि असत्की निवृत्ति होनी चाहिये, परन्तु श्वेतकेतुमें यह बात नहीं पायी जाती । भेदबोधक शास्त्रोंके अध्ययनसे इसके अन्तःकरणका खलभाव अभी दूर नहीं हुआ अतएव इसके अहंकारके नाशके लिये इसको अभेदज्ञान होना चाहिये । ऐसा विचारकर उन्होंने श्वेतकेतुसे पूछा—'हे पुत्र, वह एक वस्तु कौन है जिसके ज्ञानसे सब कुछ जाना जा सकता है ।' श्वेतकेतु इसका कुछ भी उत्तर नहीं दे सका, तब उद्दालकने कहा कि हे पुत्र, जिस प्रकार घट, शराव (सकोरा) आदिके उपादान कारण मिट्टीके ज्ञान होनेसे यह जाना जाता है कि यह सारे पदार्थ मिट्टी हैं, जिस प्रकार कटक, कुण्डलादि अपने उपादान स्वर्णसे पृथक् नहीं हैं उसी प्रकार यह प्रपञ्च अपने अभिन्न निमित्तोपादान कारण ईश्वरसे अलग नहीं है । श्रुति कहती है—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमात्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ।

अर्थात् 'यह दृश्यमान स्थावर-जङ्गम प्रपञ्च उत्पत्तिसे पूर्व एक और अद्वितीय था, वह आत्मा ही था ।' तथा—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधय ओषधिभ्योऽन्नमन्नाद्रेतो रेतसो भूतानि प्रजायन्ते ।'

अर्थात् 'उसी ईश्वराभिन्न आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथिवी, पृथिवीसे ओषधियाँ, ओषधियोंसे अन्न, अन्नसे रेत (वीर्य), और वीर्यसे सारे प्राणी उत्पन्न हुए ।' भगवान् व्यासदेव भी कहते हैं—

'जन्माद्यस्य यतः ।'

अर्थात् इस जगत्की उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिससे होता है वही ब्रह्म है । श्रुति कहती है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ।

वरुण अपने पुत्र भृगुको ब्रह्मका उपदेश करते हुए उसका लक्षण बतलाते हैं—जिससे यह समस्त भूत उत्पन्न होते हैं, जिसकी सत्तासे जीते हैं और मरकर जिसमें लीन होते हैं वही समस्त भूतोंका उपादान कारण ब्रह्म है । वही अपनी आत्मशक्तिसे सर्व जगत्में व्याप्त है ।

श्रीभगवान् गीतामें कहते हैं—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

अर्थात् 'हे अर्जुन, तुम्हारे ज्ञानके लिये बहुत क्या कहें, मैं अपनी देवात्मशक्तिसे इस चराचर प्रपञ्चको व्याप्त करके स्थित हूँ ।' यह देवात्मशक्ति परमेश्वरसे भिन्न नहीं है । क्योंकि श्रुति कहती है—

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥

अर्थात् मनसे यह जान लेना चाहिये यहाँ (चराचर प्रपञ्चमें) नाना कुछ नहीं है, जो यहाँ नाना देखता है वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है । जिस प्रकार 'राहुका शिर' कहनेसे राहु और शिर दोका बोध नहीं होता बल्कि एक ही वस्तुका बोध होता है उसी प्रकार परब्रह्म और उसकी शक्ति भी दो पदार्थ नहीं बल्कि दोनों एक ही हैं । जिस प्रकार एक ही महाकाश घट-उपाधिसे घटाकाश, मठ-उपाधिसे मठाकाश, जल-उपाधिसे जलाकाश आदि संज्ञाको प्राप्त होता है वैसे ही एक ही ब्रह्म स्त्रीके शरीरसे स्त्रीसंज्ञा, पुरुषके शरीरसे पुरुषसंज्ञा और पशुके शरीरसे पशुसंज्ञाको प्राप्त होता है । जैसे श्रुति कहती है—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥

देवीभागवत और देव्युपनिषद्में सर्वसृष्टिका कारण देवीको ही माना है—

सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवी साब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यञ्चाशून्यञ्च । (श्रुति)

अर्थात् 'किसी समय समस्त देवोंने देवीसे प्रश्न किया कि हे देवी, तेरा स्वरूप क्या है और यह स्थावर-जङ्गमरूप प्रपञ्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किससे उत्पन्न होता है ? उसने उत्तर दिया मैं व्यापक ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ, मुझसे ही स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति-पुरुषात्मक यह जगत् उत्पन्न हुआ है।

यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।
दुर्गात्सन्त्रायते यस्माद्देवी दुर्गेति कथ्यते॥
प्रपद्ये शरणं देवीं दुं दुर्गे दुरितं हर।
अद्य तां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्॥
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्॥

अर्थात् जिससे परे कुछ नहीं है वही दुर्गा है, दुर्ग अर्थात् संसारसमुद्रसे सन्त्राण करती है इसी कारण उसे दुर्गा कहते हैं। हे देवी, मैं तेरे शरणमें हूँ। हे दुर्गे, मेरे दुरितोंका नाश कर। मैं भयभीत हुआ संसारसमुद्रसे तारनेवाली और दुराचारका नाश करनेवाली और कठिनतासे प्राप्त होनेवाली देवीको नमस्कार करता हूँ।

इसी प्रकार सूर्यपुराणमें वही शक्ति सूर्यरूपसे, शिव-पुराणमें शिवरूपसे और विष्णुपुराणमें विष्णुरूपसे वर्णित हुई है। नामभेद है, वस्तुतत्त्व एक ही है। श्रुति कहती है—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन।
तज्जलानिति शान्त उपासीत।

अर्थात् 'निश्चय ही यह सब कुछ ब्रह्म ही है, यहाँ नाना कुछ नहीं है। वही प्रपञ्चका उत्पन्न करनेवाला, रक्षा करनेवाला और इसको अपनेमें लीन करनेवाला है, ऐसा समझकर उसीकी शान्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिये। शास्त्र कहता है—

हरिरेव जगज्जगदेव हरि-
र्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरो भवसागरमुद्धरति॥

उपादान कारण और कार्यका सर्वथा अभेद होता है। अतएव परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ यह जगत् परमेश्वरका स्वरूप ही है। परमेश्वर और जगत्में कुछ भी भेद नहीं है। इस प्रकार जगत्को जो ब्रह्मरूप देखता है वह पुरुष मुक्तिपदका अधिकारी है और संसारसागरसे पार हो जाता है। इस प्रकारका ब्रह्मज्ञानी पुरुष संसारमें विरला ही होता है। इसी कारण श्रीभगवान् कहते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

अर्थात् वासुदेव ही सब कुछ हैं, ऐसा ज्ञान रखनेवाले महात्मा बड़े ही दुर्लभ होते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि—

'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'

अर्थात् मैं ज्ञानीको आत्मा ही समझता हूँ। श्रुति कहती है—

सकलमिदमहञ्च वासुदेवः
परमपुमान् परमेश्वरः स एकः।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते
हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात्॥

यमराज अपने दूतोंको उपदेश करते हैं कि हे दूतो! जिसके हृदयमें भगवान् अनन्तका निवास हो जाता है उसकी ऐसी बुद्धि हो जाती है कि, यह समस्त प्रपञ्च तथा मैं परमेश्वर-का ही स्वरूप हूँ, उस पुरुषको दूरसे ही त्यागकर तुम लोग चले जाना। क्योंकि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

उस परावर परमेश्वरके साथ अभेददृष्टि होते ही इस जीवके हृदयमें जड़-चेतनकी ग्रन्थि टूट जाती है, मैं जन्मता-मरता हूँ, मैं पापी हूँ, पुण्यात्मा हूँ, इस प्रकारके उसके सब संशय नष्ट हो जाते हैं, तथा उसके प्रारब्ध-कर्मोंके अतिरिक्त सञ्चित और आगामी समस्त कर्मोंका नाश हो जाता है। और प्रारब्धकर्मोंका नाश तो भोगके द्वारा ही वह कर डालता है—

प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः।

ऐसे ज्ञानी पुरुषका सूक्ष्म शरीर लोकान्तरमें गमन नहीं करता किन्तु यहाँ ही अपने-अपने कारण आकाशादि भूतोंमें विलीन हो जाता है। श्रुति कहती है—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते।
तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य इति॥

अर्थात् ज्ञानी पुरुषकी विदेहकैवल्यमुक्तिमें केवल स्थूल शरीर छूटनेतकका ही विलम्ब है, फिर तो जन्म-मरणरूपी संसारचक्रमें वह नहीं आता। 'न स पुनरावर्तते' अर्थात् उसका संसारचक्रमें पुनः आना नहीं होता है। ऐसे ज्ञानी पुरुषके लिये श्रुति कहती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

जिस समय ब्रह्मज्ञानी पुरुष समस्त भूतोंको अपने आत्मस्वरूप देखता है, उसी समय उस एकत्व देखनेवाले पुरुषके शोक और मोहकी निवृत्ति हो जाती है। और विभु आत्मामें परिच्छिन्न भावको देखना ही जन्म-मरणरूपी महान् दुःखका हेतु होता है। श्रुति भी कहती है—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।

अर्थात् जो वस्तु व्यापक है वही सुखरूप है और जो वस्तु परिच्छिन्न है वही दुःखस्वरूप है। इसलिये मैं छोटा-बड़ा हूँ, सुन्दर-असुन्दर हूँ ब्राह्मण-क्षत्रिय हूँ, वैश्य-शूद्र हूँ, जन्मता-मरता हूँ, पापी-पुण्यात्मा हूँ, आत्मामें इस प्रकारके परिच्छिन्न भावको छोड़कर मैं सर्वभूतोंमें व्यापक एक अन्तरात्मा हूँ, ऐसी भावनाके दृढ़ होते ही परिच्छिन्न पदार्थके वियोगजन्य शोककी निवृत्ति हो जाती है। श्रुति भी कहती है—

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥

समस्त नाशवान् शरीरोंमें नाशरहित तथा आकाशादिकोंसे भी महान् व्यापक आत्माका निश्चय करके धीर पुरुष अर्थात् आत्मज्ञानी शोक नहीं करता है। तथा—

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म
पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं
ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥

सर्वदा मुक्त यह व्यापक आत्मा ही पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण दिशाओंमें तथा नीचे-ऊपर सर्वत्र विश्वमें पूर्ण है। ऐसी भावना रखनेवाला पुरुष ही त्रिलोकीमें पूज्य है और वह संसारके समस्त यज्ञ-दानादि पुण्य कार्य कर चुका है। यथा—

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलं दत्ता च सर्वावनि-
र्यज्ञानाञ्च कृतं समस्तमखिला देवाश्च सन्तर्पिताः ।
संसाराच्च समुद्धृता स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ॥

सर्वात्मदृष्टि पुरुषको विहित या निषिद्ध कुछ भी कर्त्तव्य कर्म करना शेष नहीं रहता है। श्रीभगवान् भी कहते हैं—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥

अर्थात् जिसकी आत्मामें ही रति है, जो पुरुष आत्मामें ही तृप्त है और आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है उसके लिये कोई कार्य शेष नहीं रहता।

राम-दर्शन

(लेखक—सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार)

अगर मैं राम प्यारेके गलेका हार हो जाता।
तो मुमकिन था कि मुझ पापीका भी उद्धार हो जाता ॥
श्रद्धासे गर कभी मैं भी प्रभूका नाम जप लेता।
तो मिस्ले बाल्मीकी-सा जगतसे पार हो जाता ॥
अगर शबरी-सी भी थोड़ी मुहब्बत रामसे होती।
तो क्या आश्चर्य हासिल मुझको भी दीदार हो जाता ॥
विभीषणकी तरह मेरी लगन गर रामसे होती।
तो मुमकिन था कि मेरा दूर सब आजार हो जाता ॥
अगर हनुमानके मानिन्द भक्ती रामकी करता।
तो इसमें शक नहीं उनको मेरा भी प्यार हो जाता ॥
अगर तुलसी-सी चाह जो हृदयमें मेरे हो जाती।
तो मित्रो राम-दर्शन भी मुझे कै बार हो जाता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाह प्रेम !

प्रेम ही जीवन है। बिना प्रेमके कोई भी इस संसारमें नहीं रह सकता। हम किसी-न-किसीसे प्रेम करते ही हैं—कोई अपने परिवारसे, कोई धनसे, कोई नामसे, कोई देशसे तो कोई मनुष्यमात्रसे। हाँ, सन्त-महात्मा भी प्रेम करते हैं। वे भी प्रेमके रोगके रोगी होते हैं। बिना प्रभुप्रेमके उनसे एक क्षण भी नहीं जिया जा सकता।

वाह प्रेम ! तेरी बलिहारी ! तू सबको नचा रहा है ! तेरे जादूसे आजतक कोई भी नहीं बचा ! तुझमें जिसने जितनी गहरी डुबकी लगायी वह उतना ही मतवाला बना ! उसने सब कुछ लुटाया और अन्तमें वह स्वयं ही प्रेम हो गया।

—प्रेम

तुम धन्य हो प्रभो !

जब पृथ्वी और सारी प्रकृति उष्णताके मारे उबलने लगती है; समस्त भूमण्डलपर गर्मीका मुकाबिला करनेवाला जब कोई नहीं दीखता; और इसपर रहने-चाले चराचर जीवादि गर्मीके मारे अकुलाकर त्राहि-त्राहि पुकार उठते हैं; तब ?

तब, तुम्हारी दयासे, तुम्हारे एक कटाक्षमात्रसे इन्द्रदेवको झुककर बिना किसी हिचकिचाहटके—बिना किसी चीं-चपटके अपने स्वाधीन मेघोंको आज्ञा देनी पड़ती है। ऐसा जान पड़ता है मानो वह तुम्हारी पावन आज्ञाकी बाट ही जोह रहा हो।

और फिर ? फिर, समस्त नभमण्डल काले-काले बादलोंसे छा जाता है। कदाचित् उसे गर्व होने लगता है कि उसमें भी कुछ शक्ति है। और उस शक्तिके द्वारा वह पवन-वेग साथ लेकर पृथ्वीको जल-प्लावित कर देता है; और शायद उस गर्वकी उधेड़-बुनमें वह भयङ्कर गगनभेदी नाद करता और अपने जोम—अपने उठते हुए जोशकी सूचना नभमण्डलसे पृथ्वीपर पहुँचाता है। इस पहुँचानेमें शायद विद्युत् प्रकाश करके यदा-कदा उसका साथ दे देती है।

किन्तु यह भी सह्य नहीं। एक बार पुनः धरा तुम्हारी पवित्र शरण लेती है। जब सारे भूमण्डलपर जलराशिका साम्राज्य दीखता है और जब नव-प्रस्फुटन-कार्यमें वह जल यत्किञ्चित् हानि करना प्रारम्भ करने लगता है तब तो तुम्हारी दृष्टि उस शरणागतपर जा पड़ती है। और इशारा होनेके पूर्व ही मेघराजको अपना प्रसारकार्य बन्द कर देना पड़ता है। इस प्रकार एक नूतन सृष्टिका आविर्भाव होता है।

फिर तो शारदी शोभा अपनी मनोरम छटा फैला-कर प्राणिमात्रको उस अखण्ड जलराशिकी उथल-पुथलके पश्चात् नवीनरूपसे शान्ति प्राप्त कराती तथा वह नयी अनुभूति लेकर तुम्हारी सेवामें उपस्थित होती है।

किन्तु यह भी तो नहीं रहती। वह शीत भी तो अपना प्रचण्ड वेग लेकर सृष्टिपर अपना अखण्ड साम्राज्य जमाना चाहता है और जब उसकी ऐहिक लीलाका वेग उस जलको—उस द्रवित पदार्थको दृढ़-रूप करते दीखता है तब तो तुम्हारी पुनीत आज्ञासे भगवान् भास्कर अपनी प्रचण्ड मयूखोंसे उसका संहार कर देते हैं।

तुम धन्य हो प्रभुवर ! तुम्हारी वह लीला भी धन्य है ! अगम्य है नाथ ! पाहि ! पाहि !!

—प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी रामतीर्थकी आध्यात्मिक मस्ती

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी मिश्र एम० ए० 'माधव')

भगवत्प्रेमकी साधना भी एक अजीब नशा है। जहाँ एक बार लौ लगी कि लगी। प्रेमकी एक नन्हीं-सी चिनगारी हृदयमें प्रवेश करते ही सब कुछ आत्मसात् कर लेती है। हृदय-के भीतर हरिजी जब पूरी तरह दीख जाते हैं तब तो बाहर, वसुन्धराके कण-कणमें भी केवल वही वह रह जाते हैं—जहाँ आँखें जाती हैं वहीं प्रभुजी मुसकाते हुए खड़े रहते हैं। प्रेमका रस जब पूरी तरह रोम-रोममें भिन गया तब संसारमें प्रेमदेवके सिवा रह ही क्या गया ?

अजब तेरा कानून देखा खुदाया !
जहाँ दिल दिया फिर वहीं तुझको पाया !!
जो तुझ पै फिदा दिल हुआ एक बारी।
उसे प्रेमका तूने जलवा दिखाया॥
तेरी पाक सीरत् का आशिक हुआ जो।
वही रँग रँगा फिर जो तूने रँगाया॥

प्रभु-प्रेमके ऐसे दीवानोंके दर्शन दुर्लभ ही हैं। चैतन्य और मीरा, ईसा और मंसूर संसारमें कितने हुए ? ऐसे प्रेमियोंकी जिसपर दृष्टि पड़ी वही प्रेममें पागल हो गया। वे जहाँ रहते हैं वहाँके परमाणुओंमें ही कृष्ण-प्रेम भरा रहता है ! उनका स्पर्श ही संक्रामक है। उनके चरणोंको चूमकर पृथ्वी भी अपना भाग्य सराहती है। वायु उनके स्पर्शमें आकर प्रभु-प्रेमकी खुशबूसे मँह-मँह हो उठती है।

अभी इस बीसवीं सदीमें प्रभुका एक ऐसा दीवाना संसारमें आया था जो राम बादशाहके नामसे प्रख्यात है। किस सन्में कहाँ उसका जन्म हुआ और कब कहाँ उसकी मृत्यु हुई ये बातें अप्रासंगिक होंगी क्योंकि ऐसे प्रेम-दीवाने तो न कहीं आते हैं न कहीं जाते हैं। जो बादशाहोंके बादशाहमें एक होकर रहा वह बराबर रहा—वह भला मिटेगा कैसें ? वह ललकार कर कहता है—

न है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजू है,
कि वहदतमें साक़ी न सागर न बू है !!
मिलीं दिलको आँखें जभी मारफतकी,
जिधर देखता हूँ, सनम रू बरू है !!
गुलिस्तांमें जाकर हर इक गुलको देखा,
तो मेरी ही रंगत व मेरी ही बू है !!
मेरा तेरा उट्ठा, हुए एक ही हम,
रही कुछ न हसरत न कुछ आरजू है !!

परमात्माको जो सर्वत्र देखता है, जो सर्वदा उसी एकको देखता है वही उस प्रेममदमें छके रहनेके कारण बोल उठेगा—

जैसे तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले।
सब छान बीन कर ले, हर तौर दिल जमा ले !
राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।
याँ यों भी वाह वा है औ वों भी वाह वा है !!
जीता रक्खे तू हमको या तनसे सर उतारे।
अब राम तेरा आशिक कहता है यों पुकारे॥
राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।
याँ यों भी वाह वा है औ वों भी वाह वा है !!

एक दिन सन्ध्या समय रावी नदीके पार वनमें स्वामी रामतीर्थ घूम रहे थे। आकाशपर घनघोर घटा छा रही थी। काले-काले बादलोंको देखकर तो आप कुछ देर समाधिस्थ-से रहे और फिर बड़े जोरसे रोकर कहने लगे—'हे कृष्ण ! हे घनश्याम ! हे श्यामसुन्दर ! ये श्यामरंगके बादल आपका रंग है। ये मुझे व्याकुल कर रहे हैं। प्यारे ! इतना क्यों तरसाते हो ? बताओ तो सही कौन-से कुञ्जमें तुम छिपे हुए हो ? अरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल ! तू ऊँचाईसे बहुत कुछ देख सकता है, फिर बता मेरा कृष्ण कहाँ है ? अच्छा मैं समझ गया ! तूने उसके वियोगकी व्यथामें अपना श्यामवर्ण बना रखा है। क्या मुझे उस प्यारे कृष्णका दर्शन प्राप्त न होगा ? यह संसार बिना उस कृष्ण-दर्शनके काट खायगा ! ये वियोगकी व्यथा किसके आगे रोऊँ ? हे कृष्ण ! तुम्हारे लिये मित्र और सम्बन्धियोंसे मुख मोड़ा, संसारकी लाज-शरम छोड़ी—किन्तु तुम्हारे नाज़-नखरोंका ठिकाना ही नहीं। तुम्हारे सिवा मेरा कौन है ?'

'अरी कोयल ! तेरी आवाज़में यह हृदयवेधकता कहाँसे आयी ? क्या तूने उस वंशीवालेको देख लिया है ? जान पड़ता है तू उससे आवाज उधार लायी है। तूने उस कृष्ण प्यारेको देख लिया है। सच बता, वह हमसे कब और किस तरकीबसे मिलेगा ? अरी आँखो ! यदि तुम श्यामको नहीं देख सकती हो तो अभी फूट जाओ ! अरे हाथो ! यदि तुम कृष्ण प्यारेके चरणोंको नहीं छू सकते तो मैं तुम्हें रखकर क्या करूँगा ? गल जाओ ! मर जाओ·····!!' यह कहते-कहते बिलख-बिलखकर रोने लगे। आँसुओंसे कपड़े तरबतर हो गये। रोना बन्द ही नहीं होता था ! मूर्छित हो गये !

मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं देह हुआ तू प्राण हुआ !
अब कोई यह न कह सके, मैं और हूँ तू और है !!

सन्ध्या हो चली है। हिमालयमें एक छोटी-सी पहाड़ी-पर राम बैठा है। विचित्र दशा है। न तो उसे उदासी नाम दे सकते हैं, न शोक और न दुःख ही। सांसारिक पुरुषोंवाला यह हर्ष भी नहीं है। उसे जागता नहीं कह सकते, सोया भी नहीं कह सकते, कदाचित् यह उन्मत्त हो ! परन्तु यह तो सांसारिक उन्माद नहीं है। क्या रस-भीनी अवस्था है ! दूरके वृक्षोंमेंसे घड़ियाल और शङ्खकी ध्वनि आने लगी है। कदाचित् कोई मन्दिर है ! आरती हो रही है। वह देखो, सामने ऊँची पहाड़ीकी चोटीसे दो-तीन फीट-की ऊँचाईपर त्रयोदशीका चन्द्रमा भी अपना शीतल प्रकाशमान मुखड़ा लिये आ रहा है। क्या यह आरती-में सम्मिलित होने आया है ? सम्मिलित क्यों ! यह तो अपने दमकते हुए प्रकाशमान मुखकी ज्योति बनाकर अपने आपको सदाशिवपर वार रहा है। आरती-रूप बन रहा है। आहा ! सारी प्रकृति आरतीमें सम्मिलित हो गयी ! चारों ओरसे कैसी ध्वनि आने लगी ? ऐ चाँद ! तू आगे बढ़ जानेवाला कौन है ? प्यारे ! अकेला मत रह ! अपनी हड्डियों और तन-बदनको आगकी तरह सुलगाकर तेरी तरह 'राम' अपने आपको इस आरतीमें क्यों न वार डालेगा ?

मेरे प्यारेका यह भी प्यारा है।
मेरी आँखोंका यह भी तारा है !!

जिस प्यारेके घूँघटमेंसे कभी हाथ, कभी पैर, कभी आँख, कभी कान कठिनाईसे दिखायी देता था, दिल खोलकर उस दुलारेका आलिङ्गन प्राप्त हुआ ! हम नंगे, वह नंगा; छाती-पर-छाती है। ऐ हाड़-चामके जिगर और कलेजे ! तुम बीचमेंसे उठ जाओ ! भेद-भाव हट ! फासले भाग ! दूरी दूर हो ! हम यार, यार हम ! यह शादी है कि शादी-मर्ग—आनन्दमयी मृत्यु ! आँसू क्यों छमाछम बरस रहे हैं ?····· क्या यह विवाहकालकी झड़ी है अथवा मनके मर जानेका मातम ? संस्कारोंका अन्तिम संस्कार हो गया ! इच्छाओंपर मरी पड़ी ! दुःख-दरिद्र उजाला आते ही अँधेरेकी तरह उड़ गये। भले-बुरे कर्मोंका बेड़ा डूब गया।

आँसुओंकी झड़ी है कि अभेदताका आनन्द दिलाने-वाली वर्षाऋतु ! ऐ सिर ! तेरा होना भी आज सुफल है ! आँखो ! तुम भी धन्य हो गयी। कानो ! तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थ भी पूरा हुआ ! यह आनन्दमय मिलाप मुबारक हो, मुबारक हो, मुबारक हो।

दीवाना अम दीवाना अम बा अक्लो-हुश बेगाना अम्।

मैं पागल हूँ, मैं पागल हूँ, बुद्धि और होशसे परे हूँ ! मैं स्वतन्त्र हूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ, शोकसे नितान्त दूर हूँ, संसाररूपी बुढ़ियाके नखरे और हावभावसे मैं नितान्त मुक्त और परे हूँ। ऐ संसाररूपी बुढ़िया ! यह सुन, नखरे-टखरे मत कर ! तुझमें मेरा चित्त आसक्त नहीं। ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

प्रेमके अथाह समुद्रमें राम सर्वत्र प्रेम-ही-प्रेम देख रहे हैं—

जिस तरफ अब निगाह जावे है !
आब ही आब नजर आवे है !!

जिस ओर हम दौड़े वह सब दिशाएँ तेरी ही देखीं अर्थात् सब ओर तू ही था। और जिस स्थानपर हम पहुँचे, वह सब तेरी ही गलीका सिरा देखा ! जिस उपासनाके स्थानको हृदयने प्रार्थनाके लिये ग्रहण किया, उस हृदयके पवित्र धामको तेरी भ्रूका झुकाव देखा—अर्थात् उस स्थानपर तू ही झाँकता दृष्टिगोचर हुआ। समस्त संसारके प्यारोंकी मस्त आँखोंमें हमने जब देखा तो तेरी जाइभरी नरगिस (आँख) देखी ! तुझको हँसते हुए देखकर मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ ! पर प्यारे ! अधर और दाँतोंपर बलिहार !!

मैं पिया ! तोरे रँगमें समाय रही !
और रँग मोहे काहे प्रिय होवे, प्रीतम-रँगमें लुभाय रही !
मैं पिया ! तोरे रँगमें समाय रही !!
रँग वही, रँगरेज वही, मैं चटक चुनरिया रँगाय रही !
मैं पिया ! तोरे रँगमें समाय रही !!
हमरे पिया हम पिय की री सजनी, पियापर जियरा गँवाय रही !
मैं पिया ! तोरे रँगमें समाय रही !!

अमृतकी मदिराका प्याला मदिरा पिलानेवालेके हाथसे मैं अत्यन्त अनुरागके साथ लेनेकी खोजमें हूँ और उसके प्रेममें नाचता हूँ। खुल्लमखुल्ला मैं यह कहता हूँ, और अपने इस कहनेसे प्रसन्न होता हूँ कि मैं प्रेमी पुरुष हूँ और लोक-परलोक दोनोंसे विमुक्त हूँ।

मैं मस्तीमें पागल हुआ फिरता हूँ और संसारकी चिन्ता नहीं करता। मैं दुःखोंसे बिल्कुल भयभीत नहीं हूँ; आनन्दसे यह स्वर 'तन तलमला तला-तला' गाता रहा हूँ। जो कुछ संसारमें है, मुक्त पुरुषोंके लिये निषिद्ध है। हमारी सामग्री और सामान इस आकाशके नीचे केवल सन्तोष है।

सहजोने ऐसे प्रेमोन्मादका एक बहुत सुन्दर चित्र खींचा है—

प्रेम-दिवाने जे भये, मन भे चकनाचूर।
छके रहैं, घूमत रहैं, सहजो देखि हुजूर॥
प्रेम-दिवाने जे भये, कहैं बहकते बैन।
'सहजो' मुख हाँसी छुटै, कबहूँ टपकै नैन॥
प्रेम-दिवाने जे भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट॥
प्रेम-दिवाने जे भये 'सहजो' डगमग देह।
पाँव परै कितकी कहूँ, हरि सँवारि तब लेह॥
कबहूँ हकधक ह्वै रहैं उठैं प्रेमहित गाय।
'सहजो' आँख मुँदी रहै, कबहूँ सुधि ह्वै जाय॥
मनमें तो आनँद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहूके संग हैं, सहजो ना कोइ संग॥

'राम बादशाह' कहा करते थे—'मैं शहंशाह राम हूँ। मेरा सिंहासन तुम्हारा हृदय है। मेरी आवाजमें तुम्हारी आवाज है—तत्त्वमसि ! तत्त्वमसि !! तू ही है वह, तू ही है वह !

No Sin, no grief, no pain,
Safe in my happy Self,
My fears are fled, my doubts are Slain,
My day of triumph Come.

मुझे पाप-सन्तापसे क्या नाता ? दुःखोंसे मेरा क्या सम्बन्ध ? मैं अपनी आत्मामें स्वच्छन्द हूँ, सर्वथा सुरक्षित हूँ। मेरे भय भाग गये, मेरी शङ्काएँ मिट गयीं, मेरी विजयके दिन आ गये !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़की चोटीपर किस जोरसे ॐ ! ॐ !! ॐ !!! की ध्वनि सुनायी दे रही है। अरे पिछली रातके सोनेवालो ! क्या यह कूक तुम्हारे पास नहीं पहुँची ? तुम्हारी नींद अभीतक नहीं खुली ? बादलो ! जाओ, संसारभरमें ढिंढोरा पीट दो, 'ॐ' ! बिजली ! दौड़ो ! प्रकाशके अक्षरोंमें लिखकर दिखा दो, 'ॐ' !!! प्रभात-का बेला है। खुदमस्तीमें झूमता हुआ 'राम' जा रहा है। मौजमें किसी समय नाचने लगता है और किसी समय ॐ ॐ ॐ की तान छेड़ने लगता है।

जित देखूँ तित भरया जाम !
पी पी मस्ती आठों याम ॥
नित्य तृप्त सुख-सागर नाम।
गिरे बने हम तो आराम !!
देखा-सुना खपाना काम।
तीन लोकमें है विश्राम !!
क्या सोचे क्या समझे राम।
तीन काल जिसको निज धाम !!

इस मस्तीमें बस राम-ही-राम रह गया है और कुछ है ही नहीं—'राम' नाच रहा है—

नाचूँ मैं नटराज रे, नाचूँ मैं महाराज !
सूरज नाचूँ, तारे नाचूँ, नाचूँ बन महताब रे।
ज़र्रा नाचूँ, समुद्र नाचूँ, नाचूँ मोघरा काज रे ॥
तन तेरेमें मन हो नाचूँ, नाचूँ नाड़ी नाड़ रे।
बादर नाचूँ, वायु नाचूँ, नाचूँ नदी अरु नाव रे ॥
गीत राग सब होवत हरदम, नाचूँ पूरा साज रे।
घर लागो रँग, रँग घर लागो, नाचूँ पाया ताज रे ॥
मधुवा लब, बदमस्तीवाला, नाचूँ पी-पी आज रे।
रामही नाचत, रामही बाजत, नाचूँ हो निरलाज रे ॥

हृदयमें शान्ति है और दिलमें मस्ती। खुशीसे राम-का हृदय भरा हुआ है और आँखें आनन्दके अमृतसे लबालब भरी हुई हैं। आनन्दके मारे आँसू टपक रहे हैं और रोम-रोम खड़े हो रहे हैं, गला रुक रहा है।

रिमझिम रिमझिम आँसू बरसें, यह अबर बहारें देता है !
क्या ख़ूब मजेकी बारिशमें वह लुत्फ़ वसलका लेता है !!
किश्ती मौजोंमें डूबे है, बदमस्त उसे कब खेता है !
यह गर्क़ाबी है जी उठना, मत झिझकौ, उफ़ ! बरबादी है !
क्या ठंढक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आज़ादी है !!

× × ×

जब उमड़ा दरिया उल्फ़तका, हर चार तरफ़ आबादी है।
हर रात नई इक शादी है, हर रोज मुबारकबादी है॥
क्या ठंढक है, क्या राहत है, क्या शादी है, आज़ादी है॥

प्रेममदका नशा अत्यन्त चढ़ा हुआ है, इसलिये अब चाहे कोई कुछ कहे, सारा संसार तो तुच्छ हो रहा है। पर यह नशा पागल मनुष्यकी पशु-वृत्तिके समान नहीं है। हे जगत्के रोग ! तू अब रुख़सत हो। हे भूख-प्यास ! तुम दोनों मेरे पाससे परे हटो। यह जगह कोई कबूतरखाना, अर्थात् तुम्हारे रहने-सहनेका घर नहीं है। आहा ! सौन्दर्यकी तेज ज्वाला कैसी भड़की हुई है। अब किस परवानेकी शक्ति है कि इसके आगे पर भी मार सके ! सूर्य हो चाहे चन्द्र, पाठशाला हो चाहे बाग और पर्वत—इन सबमें अपनी ही सुन्दरता तरंगें मार रही हैं—अन्य किसी रूपकी नहीं। हे मेरे प्राणो ! इस देहसे उठकर रामके स्वरूपमें लीन हो जाओ। और देह ऐसी हो जाय जैसी बदरीनारायणजीकी मूर्ति कि जिसमें बालकवत् चेष्टा भी नहीं है।

बसा है दिलमें मेरे वह दिलबर, है आईनामें खुद आईनागर !
अजब तहय्युर हुआ यह कैसा ? कि यार मुझमें मैं यारमें हूँ !!

रामका शरीर गंगा बहाये लिये जा रही है और राम मस्तीमें ॐ ! ॐ !! की ध्वनि कर रहा है। आज भी हिमालयके वन-पर्वत, गिरि-गह्वरमें स्वामी रामकी ध्वनि गूँज रही है। अमेरिका, जापान और मिश्रवाले आज भी उस बादशाहको स्मरण कर भगवत्प्रेममें पागल होकर कह उठते हैं—

O Grave ! where is thy victory ?
O Death ! where is thy Sting ?*

* श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज लिखित 'ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराजका जीवनचरित' नामक ग्रन्थके आधारपर। यह ६५० से अधिक पृष्ठोंकी पुस्तक श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग लखनऊसे २॥) में मिलती है। पुस्तक पढ़ने और मनन करने योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तरत्न प्रह्लादकी आदर्श शिक्षाप्रणाली

(लेखक—मि० ना० विश्वनाथ अय्यर एम०ए०, एल०टी०)

भक्तरत्न प्रह्लाद हमारे सामने एक आदर्शके रूपमें स्थित हैं। उनके अनन्यप्रेम, दृढ़ भक्ति तथा अनिर्वचनीय विश्वाससे उनके हृदयमें इतनी अधिक सहनशीलता और धैर्यका उत्पादन हुआ था कि कठिन-से-कठिन दण्ड, क्रूर-से-क्रूर वेदनाएँ भी उनका कुछ न कर सकीं। पितृप्रेरित वेदनाओंकी ज्वालासे तप्त स्वर्णकी भाँति अति उज्ज्वल रूपमें निकलकर भक्तरत्न प्रह्लादने नास्तिकाधम हिरण्यकशिपुके सामने सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी तथा सर्वशक्तिमान् श्रीनृसिंह भगवान्‌को खंभसे प्रकट कराकर इस प्रकार दर्शन कराया जिस प्रकार आजकल वैज्ञानिक प्रयोगशालामें प्राकृतिक तत्त्वोंका प्रत्यक्ष कराया जाता है।

हम भक्त प्रह्लादको विशेषरूपसे इसीलिये स्मरण करते हैं कि उन्होंने षण्डामर्कको ईश्वर-विमुख शिक्षाका घोर विरोध किया था। यहाँ हमें विचार करना है कि उनकी आदर्श शिक्षाप्रणालीका अनुकरण (जिसका अवलम्बन उन्होंने अपने सहपाठियोंके सामने किया था) सुचारुरूपसे व्यावहारिक ढंगपर हम आजकल कर सकते हैं या नहीं। क्या आजकलके अध्यापक षण्डामर्कको तरह अपने शिष्योंको नारायणसे पराङ्मुख करनेवाले मार्गमें भटका नहीं रहे हैं? क्या 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' के अनुसार हम अपनी सन्तानको अत्यन्त गर्हित लौकिक शिक्षा पानेके लिये बलपूर्वक हिरण्य-शुल्क-प्रदानरूपी हिरण्याक्ष तथा हिरण्य-सम्पादन-रूपी हिरण्यकशिपुका दास नहीं बना रहे हैं?

मात पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरे सोइ धरम सिखावहिं॥
ग्रह सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥

अस्तु, यह अत्यन्त आवश्यक है कि भक्तरत्न प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीके आधारपर हम एक ऐसे शिक्षाक्रमको काममें लावें जो अनुभवसिद्ध हो और अध्यापकोंके लिये अनुकरणीय हो। यहाँ हमें याद रखना चाहिये कि आधुनिक शिक्षाप्रणालियोंके अच्छे-से-अच्छे क्रम भी दक्षिणामूर्ति गुरुके उसी प्राचीन आदर्शकी ओर जा रहे हैं जिसका संकेत इस श्लोकमें किया गया है—

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याः संछिन्नसंशयाः॥

सारी आधुनिक प्रणालियाँ इसी बातपर जोर देती हैं कि अध्यापकका काम केवल मौखिक उपदेश नहीं है और न उनका यह कर्तव्य है कि छात्रोंके नैसर्गिक विकासपर अपनी छाप डालकर उनकी प्राकृतिक उन्नतिमें बाधा डालें; बल्कि उनका कर्तव्य यह है कि मध्यस्थ होकर छात्रोंकी प्रवृत्तियोंका अन्वेषण करें और उन्हें ऐसी परिस्थितियोंके बीचमें रक्खें जिनसे उनकी आन्तरिक शक्तियोंका स्वयमेव विस्तृत विकास हो। डा० माण्टीसरी (Dr. Montessori) का यह दावा है कि उनकी शिक्षाप्रणालीके द्वारा बच्चोंका ऐसा नैसर्गिक विकास होता है कि पढ़ना, लिखना तथा साधारण हिसाब लगाना उन्हें खेल-सा मालूम होता है। डाल्टन प्लान (Dalton Plan) के अनुयायी कहते हैं कि उनकी शिक्षाप्रणालीसे साधारण स्कूलोंकी निःसार मौखिक शिक्षाप्रणालीकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे ढंगसे और विस्तृतरूपसे छात्र पाठ्य-विषयोंका ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रॉजेक्ट मेथड (Project Method) वाले भी अपनी शिक्षाप्रणालीकी उपयोगिताको नाना प्रकारसे सिद्ध करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन आधुनिक शिक्षाप्रणालियोंकी सफलता किस मूल तत्त्वपर निर्भर करती है ? प्रत्येक शिशु ईश्वरका अंश है, परमात्माका अंश है। कितने जन्मोंकी परिपक्व अनुभूति सञ्चित कर्मके रूपमें उसके साथ विद्यमान रहती है । अतएव किसी छात्रके सामने अपने बड़प्पन या ज्ञानका रोब जमाना अध्यापकके लिये दुस्साहसमात्र है। उन्हें यह याद रखना चाहिये कि छात्र वस्तुतः बालकृष्ण परमात्मा हैं, मायाके आवरणसे जीवात्मा बनकर वह अपनी वास्तविकताको भूल गया है। दक्षिणामूर्तिके आदर्शके अनुसार अध्यापकका यह कर्तव्य है कि अपने छात्रको ऐसे आध्यात्मिक तथा आरोग्यवर्धक सत्संगमें बैठावे जिससे उसमें स्वयं ही अष्टाङ्गयोगसाधनकी प्रेरणा हो और उसकी पारमार्थिक शक्तियोंका विकास हो। बहुत सम्भावना है कि समयानुसार बिजलीघरके डैनिमो-की तरह उसकी आध्यात्मिक शक्तियाँ विकासकी परिपक्वावस्थाको प्राप्त हो जायँ। अध्यापकका काम 'सत्' रूपी बटनका दबाना है, शिष्य तत्काल सर्व-कलापारङ्गत ज्ञानी हो जायगा। 'चित्' रूपी बटन दबानेसे वह सर्वशक्तिसम्पन्न होकर सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की सेवामें तत्पर हो जायगा । और 'आनन्द' रूपी बटन दबानेसे वह अखण्ड तथा अनन्य प्रेमका भण्डार हो जायगा। यही चिन्मुद्राका रहस्य है जिसकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित श्लोकके द्वारा होती है—

मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वं युवानं
वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः।
आचार्येन्द्रं वरकलितचिन्मुद्रयानन्दमूर्तिं
स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥

यही भक्त प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीका आध्या-त्मिक तत्त्व है। इस शिक्षाक्रमको व्यवहारमें लाकर अनुभवसिद्ध बनानेके उपाय ये हैं—

(१) राम, कृष्ण, ईसा, अल्लाह, बुद्ध, अग्नि, महावीर, ॐ इत्यादिकी पवित्र मूर्तियोंसे सदा खेलना।

(२) मिट्टी, लकड़ी, दफ्ती या धातु-निर्मित पटरियों-पर इन पवित्र नामोंको खोदकर या काटकर उनमें कुंकुम, फूल या इमलीके बीज या कौड़ियोंसे भरना । ॐ, आमीन या बिस्मिल्लाह—एक नामपर नित्यप्रति नियमित समयतक लिखवाना या रंग भरना।

(३) आदर्श महात्माओं तथा वीरोंके चरित्रोंका अभिनय ।

(४) मिट्टी, मोम, कागज, ग्लास्टिसेन, पत्थर, स्लायड चाकू (Slyed knife), लकड़ी, गूँधा हुआ आटा आदिकी सहायतासे ईश्वरके पवित्र नामों तथा विग्रहोंका बनाना।

(५) बालकोंकी उत्कण्ठाप्राप्त बुद्धिको भगवान्‌के अति सुन्दर चित्रों, प्रतिमाओं या विग्रहोंके प्रति आकर्षित कराना । तथा यात्रा या स्काउटिंगमें भी उन्हें नैसर्गिक तथा प्राकृतिक सौन्दर्यकी ओर आकर्षित कराना।

(६) स्काउटिंग या सेवासमितिके परोपकार, परहितचिन्तन, पशु-पक्षी, बाल-वृद्ध तथा अनाथ रोगीकी सेवामें बालकोंको सर्वदा सावधानी तथा पटुताके साथ तत्पर कराना।

(७) बालकोंको उच्चकोटिके संगीत-कीर्तन तथा भजनमें लगाना।

(८) आध्यात्मिक तथा आभ्यन्तरिक शक्तियोंके विकासके लिये विशेष प्रबन्ध करना। दण्ड, भर्त्सना, जुर्माना आदिका सर्वथा त्याग करना।

यद्यपि ये आठों उपाय एक दूसरेपर अवलम्बित हैं, तथापि बालकोंके क्रमिक विकासके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका नियमित क्रम बनाया जा सकता है। प्रह्लादकी शिक्षा उनकी गर्भस्थितिसे ही प्रारम्भ हुई थी। महर्षि नारदकी वीणातन्त्रीसे उत्पन्न उच्चकोटिके भगवद्भजन तथा हृदयको आह्लादित करनेवाली गानविद्यासे गर्भस्थित शिशुके कोमल भावोंपर इतना प्रभाव पड़ा कि बाल्यावस्थासे ही वे भागवतधर्मोंमें लीन हो गये।

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।

इस आध्यात्मिक अनुभवसे हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि उच्चकोटिके सङ्गीत, कीर्तन तथा भजनका प्रबन्ध प्रत्येक घरमें, गाँवमें, मोहल्लेमें, शहरमें होना अत्यावश्यक है जिससे गर्भस्थित शिशुओंपर, माताकी गोदमें लेटनेवाले बच्चोंपर, रास्तेमें खेलनेवाले लड़कोंपर इतना प्रभाव पड़े कि वे अपने आध्यात्मिक मूल स्वरूपकी ओर अग्रसर हों। शिशुओंकी यह नैसर्गिक प्रवृत्ति है कि वे खिलौनेसे खेला करते हैं। यदि पवित्र मूर्तियाँ उन्हें विभिन्न ज्ञानेन्द्रियोंके साहचर्यके साथ खेलनेके लिये प्राप्त हों तो निश्चय ही वे भक्त चन्द्रहास, भक्त चण्डिकेशके समान आत्मानन्दमें नाच उठेंगे। बचपनके आरम्भमें ही पढ़ने-लिखनेका अभ्यास किया जाता है, और उस समय प्रत्यक्ष वस्तुओंकी सहायतासे शिक्षा देना अत्यन्त लाभप्रद होता है। यदि इस प्रत्यक्ष प्रणालीसे श्रीहरिहरादिकी मूर्तियोंके पवित्र नामोंसे निरन्तर अभ्यास कराया जाय तो निश्चय ही आध्यात्मिक उन्नतिका बीज बपन होगा। इसके बाद लड़के एक अभिनयकी दुनियामें विचरते हैं। यदि भक्तरत्न, दानवीर, धर्मवीर, शस्त्रवीर, त्यागवीर, सेवावीर आदि पुरुषोंकी कथाओंको दृश्यकाव्यके रूपमें लाकर बालकोंके द्वारा उनका अभिनय कराया जाय तो निःसन्देह उनके मन, वाणी और कर्ममें उन भक्तरत्न तथा शूरवीर पुरुषोंके प्रशंसनीय गुणोंका उदय होने लगेगा। पूजनीय मूर्तियोंके नाम तथा प्रतिमाओंको विविध प्रकारके माध्यम (Medium) में हस्तलाघवके द्वारा उतरवानेसे कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके साथ मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार—अन्तःकरणचतुष्टय सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की पूजामें लग जाते हैं। ललित कलाओंकी विशेषताओंसे पूर्ण पूजनीय मूर्तियों, प्रतिमाओं या चित्रोंपर मन्त्रमुग्ध होनेकी आदत यदि लड़कोंमें डाली जाय तो उनमें अति सूक्ष्म ललितकला-सम्बन्धी भाव जागृत होकर युवावस्थाके लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे। स्काउटिंग या सेवाधर्ममें लड़कोंको उत्साहपूर्वक प्रवृत्त करानेसे युवावस्थामें उनमें ममता और स्वार्थके बीज लुप्त हो जायँगे और वे सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी भगवान्‌के भक्त बन जायँगे। तबतक प्रह्लादरूपी युवकोंमें उच्चतम, श्रेष्ठ, ईश्वर-सम्बन्धी कीर्तनकी धुन या गीतका चस्का इतना बढ़ जाना चाहिये कि जिससे वे अपने साथियोंके हृदयको आकर्षित कर सकें। ऐसा नहीं होना चाहिये कि प्रयत्नके अभावसे बालककी आन्तरिक शक्तियोंका विकास न हो और उसके स्वरूपानुसन्धानमें रुकावट हो।

भक्तरत्न प्रह्लादकी आदर्श शिक्षाप्रणालीके अन्तिम ध्येयकी प्राप्तिके लिये निम्नलिखित रीतिसे मनन, चिन्तन तथा आचरण करना चाहिये—

'हे भगवन्! मेरे प्राण आपपर न्योछावर हैं; मैं तन, मन, धनसे आपके चरणकमलोंके शरणागत हूँ। मेरा सारा समय, दिन-रात, निमेषोन्मेष सब आपको ही अर्पण है। मेरा प्रत्येक क्षण आपके ही गुणगानमें लगे।

'मेरे हाथ आपके ही काममें लगे रहें। आपकी प्रेममयी प्रेरणासे ही इनका सञ्चालन हुआ करे। मेरे पैरोंको भी कृपया आप अपनाइये। आपहीकी सेवाके लिये इनकी द्रुतगति तथा सुन्दर आयोजन हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरी वाक्शक्ति आपकी ही हो और आपका ही गुणगान सदा किया करे। मेरे ओठोंको भी आप ले लें और आपके ही इशारे वे हिला करें।

'मेरा सोना-चाँदी—सर्वस्व आपको ही समर्पण है, मैं एक रत्तीभर भी अपने लिये न रक्खूँगा। मेरे मन, बुद्धि, चित्त आदिकी प्रत्येक वृत्ति तथा शक्तिको भी आप अपनी इच्छाके अनुसार प्रेरित कीजिये।

'मेरी क्रियाशक्ति-उत्पादिनी निश्चयात्मिका बुद्धि-को आप लीजिये, अभीसे यह आपकी हो जाय, मेरी न रहे। मेरे हृदयको भी ले लीजिये, यह आपका हो जाय। यह आपका ही राजसिंहासन हो।

'हे मेरे भगवन्! मेरे प्रेमको भी आप ले लीजिये। मैं आपके चरणोंमें ही अपना सर्वस्व न्योछावर करता हूँ। मुझे भी ले लीजिये, सदा मेरा सब कुछ आपका ही रहे।'

भक्त प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीके तत्त्व पातञ्जल-योगसूत्रोंमें इस प्रकार प्रदर्शित हुए तथा महर्षि व्यास-द्वारा समझाये गये हैं—

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्। (योग० २।४५)

ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यथा सर्व-मीप्सितमवितथं जानाति देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे वा। ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानाति।

जो तन, मन, धनसे और मन, वाणी, कर्मसे ईश्वरके शरण हो जायगा उसकी सारी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जायँगी और वह ऐसा सकलकलापारङ्गत हो जायगा कि भूत, भविष्यत्, वर्तमानकी सब जगह-की नाना वस्तुओंका ज्ञान उसे करतलामलकवत् हो जायगा। उसकी सर्वोत्तम सूक्ष्मबुद्धि पूर्वजन्मकी बातोंकी भी गवेषणा कर सकेगी।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (३।१)

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (३।२)

यथाभिमतध्यानाद्वा (१।३९)

तस्य वाचकः प्रणवः। (१।२७)

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी। (१।३५)

ये पाँचों सूत्र भक्त प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीके प्रथम पाँच तत्त्वोंके मूल आधार हैं। इन सूत्रोंकी व्याख्या व्यासजी इस प्रकार करते हैं—

नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्रे इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा। (३।१)

तस्मिन् देशे ध्येयावलम्बनस्य प्रत्ययस्यैकता-नता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्। (३।२)

यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत्। तत्र लब्धस्थिति-कमन्यत्रापि स्थितिपदं लभते इति। (१।३९)

नासिकाग्रे धारयतोऽस्य वा दिव्यगन्ध-संवित्सा गन्धप्रवृत्तिः, जिह्वाग्रे दिव्यरससंवित्, तालुनि रूपसंवित्, जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित्, इत्येताः प्रवृत्तय उत्पन्नाश्चित्तं स्थितौ निबध्नन्ति, संशयं विधमन्ति, समाधिप्रज्ञायां च द्वारि तिष्ठन्ति।...तथा च सति श्रद्धावीर्यस्मृति-समाधयोऽस्याप्रतिबन्धेन भविष्यन्तीति।

चित्तवृत्ति-निरोधके लिये अपने मनको किसी पवित्र बाह्य वस्तुपर धारण करो। ऐसी वस्तुका चुनाव व्यक्तिगत संस्कार, मनोभाव तथा स्थितिपर निर्भर करता है। ऐसी वस्तुओंमें ॐ नाम सर्वोत्तम है। चित्तकी धारणाको किसी एक हृदयग्राही वस्तुपर प्रतिष्ठित करनेसे चित्तविक्षेप करनेवाले सब विघ्न दूर हो जाते हैं। जब सभी ऐन्द्रिय चेष्टाएँ एक ही पवित्र मूर्तिपर न्योछावर कर दी जाती हैं तब सारे संशय दूर हो जाते हैं। सब प्रकारकी आन्तरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा गुप्त शक्तियाँ अर्थात् श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि आदिका उदय हो जाता है।

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।
मैत्र्यादिषु बलानि। (३।२३)

ये दो सूत्र प्रह्लादशिक्षाप्रणालीके छठे तत्त्वके मूल आधार हैं।

तत्र सर्वप्राणिषु सुखसम्भोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्। दुःखितेषु करुणाम्। पुण्यात्मकेषु मुदिताम्। अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्। एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते। ततश्च चित्तं प्रसीदति। प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते। मैत्रीं भावयित्वा मैत्रीबलं लभते। दुःखितेषु करुणां भावयित्वा करुणाबलं लभते। पुण्यशीलेषु मुदितां भावयित्वा मुदिताबलं लभते।

व्यासजीकी व्याख्याका सारांश यह है कि समस्त चराचर प्राणियोंकी सेवामें कार्यकुशलताके साथ लग जानेसे विश्वप्रेमकी सारी आत्मोन्नतिकारिणी शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं।

भक्त प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीके इन सूत्रोंको कोई नास्तिक भले ही तिरस्कारकी दृष्टिसे देखे और इसे प्रमत्तप्रलाप समझे। परन्तु उसे इन आध्यात्मिक तत्त्वोंका परिशीलन पक्षपातरहित होकर करना चाहिये तथा इसे कुछ समयतक कार्यरूपमें परिणत करके परीक्षा करनी चाहिये। दक्षिण भारतमें बहुतेरे वृद्ध मनुष्योंको ऐसी प्रत्यक्ष घटनाएँ याद हैं जिनमें 'हरिः ॐ नमो नारायणाय सिद्धम्' इस मन्त्रका अक्षरारम्भके पूर्व बार-बार भलीभाँति अभ्यास करानेसे बालकोंमें ऐसी तन्मयता देखी गयी है और उनके हृदयमें इन अक्षरोंका ऐसा प्रभाव पड़ा है कि घण्टों बालकोंमें न खानेकी सुध रही है, न पीनेकी और न आराम करनेकी! बलपूर्वक भोजन करनेसे भी उन्हें उसकी रुचि और स्वादका कुछ भी ध्यान नहीं रहता है। घीके स्थानपर नीमका तेल परोसनेपर उसे ही घी मानकर उन्होंने खा लिया है और उसे घी ही समझा है। बिना नमकका भोजन भी उन्हें स्वादिष्ट लगा है। ऐसे बालकोंके लिये अन्तमें एक ऐसा समय आ जाता है कि शुद्ध ज्ञानकी धारा उनके नस-नसमें प्रवाहित होने लगती है और वे एकाग्रचित्तसे सारी विद्याओंको शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। चार वेद, छः शास्त्र, दश उपनिषद्, अठारह पुराण, चौंसठ कलाएँ उनके लिये साधारण बात हो जाती हैं। वे इन विद्याओंमें ऐसे पारङ्गत हो जाते हैं और असिधाराव्रतमें भी वे सफल हो जाते हैं। शास्त्रार्थोंमें कठिनाइयोंको तृणवत् लाँघते हुए वे विजय प्राप्त करते हैं। आजकलकी पतनावस्थामें भी दक्षिण भारतमें ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् मिलते हैं, जिन्हें चारों वेद आद्योपान्त कण्ठाग्र हैं और उनके प्रत्येक पदोंकी व्याख्या जो विशदरूपसे कर सकते हैं। तथा उनकी ज्ञानकी महिमा दशों दिशाओंमें व्याप्त है।

सच बात तो यह है कि भगवान्‌के पवित्र नामोंपर, उनकी मनोहारिणी मूर्तियोंपर तथा आत्मोन्नतिकारी वस्तुओंपर निरन्तर ध्यान करनेसे बालक सहज ही आज्ञाचक्र या भ्रूमध्यमें यौगिक धारणा करने लगता है। अचानक पारमार्थिक पूर्वस्मृतिकी स्फूर्ति उसके नस-नसमें फैल जाती है। और भूत, भविष्यत्, वर्तमानके सारे ज्ञानकी स्फूर्ति उसके आत्मामें होने लगती है। फिर पिष्टपेषण या चर्वितचर्वणकी कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरणके लिये पाँच वर्षकी अवस्थाके बालक ध्रुवकी जीवनीपर ध्यान दीजिये। उन्होंने किस शिक्षा-क्रमका अनुसरण किया था? देवर्षि नारदसे मन्त्रोपदेशकी दीक्षा मिली। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के द्वादशाक्षर मन्त्रपर कुछ ही महीनों ध्यान करनेसे उस नन्हें-से बालकके भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी शक्ति आ गयी कि वह दैवी तपश्चर्याके योग्य बन गया। धीरे-धीरे उसका खाना-पीनातक बन्द हो गया, एक पैरके अँगूठेके ऊपर खड़े होकर अपनी तपोनिष्ठाके प्रभावसे स्वर्ग, मर्त्य, पातालमें उसने सर्वतोमुखी क्रान्ति पैदा कर दी। छः महीनेके अन्तमें भक्तोंपर निःसीम करुणा करनेवाले भगवान्‌ने उसे साक्षात् दर्शन देकर उसमें ज्ञानका प्रवाह तथा अनन्त शक्तियोंका सञ्चार कर दिया और वह बालक पुकार उठा—

योऽन्तःप्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीके अनुसार चलनेवाले बालकोंपर जो आध्यात्मिक प्रभाव होता है उसका दिग्दर्शन हम अत्र एक दृष्टान्तके द्वारा करेंगे। जीवात्मा एक बीजके समान होता है। जैसे बीजमें वृक्षकी सारी शक्तियाँ मौजूद होती हैं, उसी प्रकार जीवात्मामें भी परमात्माकी सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता तथा अपरिमेय ज्ञान मौजूद है। बीज बिना आवश्यक उपकरणोंके उग नहीं सकता, उसी प्रकार जीवात्मामें 'अहं ब्रह्मास्मि' का उच्चतम ज्ञान तबतक वास्तवमें विकसित नहीं होता, जबतक उसके लिये आवश्यक उपकरण प्राप्त न हों और सद्‌गुरुकी कृपा न हो। ऊसरमें बोये हुए बीज उग नहीं सकते, उसी प्रकार जीवात्माका पूर्ण ज्ञान उदरम्भरी-विद्याके द्वारा नहीं हो सकता और न उसकी आन्तरिक शक्तियोंका विकास ही हो सकता है। बीजके उगनेके लिये उपजाऊ भूमिकी आवश्यकता होती है। तथा समय-समयपर खाद, सिंचाई, विषैली घासोंका बाहर निकालना, खुली हवा और सूर्यकी किरणोंकी भी आवश्यकता पड़ती है। और तब कहीं बढ़ते-बढ़ते बीज अपने पूर्ण विकासको प्राप्त होता है और अन्तमें विशाल वृक्षके रूपमें परिणत हो जाता है। इसी प्रकार जीवात्माके विकासके लिये भी उपयुक्त सत्सङ्ग तथा आत्मोद्धारक उपकरणोंकी आवश्यकता होती है। माता-पिताका यह कर्तव्य है कि वे इनकी प्राप्तिके लिये उद्योग करें। दक्षिणामूर्तिरूपी आचार्यका कर्तव्य यह है कि जीवात्मारूपी बीजको इस प्रकार बोवे तथा उसकी ऐसी सिंचाई और रक्षा करे कि परमात्मारूपी खुली हवासे तथा सूर्यकी रोशनीरूपी ज्ञानके प्रकाशसे अष्टाङ्गयोगका साधन सफलताके साथ उत्तरोत्तर बढ़ता रहे। इस प्रकार जीवात्मा पूर्ण विकासको प्राप्त होगा और उसमें सर्वाङ्गीण प्रेम, सर्व कलाओंका सूक्ष्म ज्ञान तथा सर्व शक्तियोंका प्रसार करनेवाली सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।

अन्तमें हमें इस बातपर विचार करना है कि भक्त प्रह्लादकी शिक्षाप्रणालीका प्रबन्ध आजकलके विद्यालयोंमें कैसे किया जा सकता है? गीताप्रेस, गोरखपुरके 'कल्याण' पत्रसञ्चालकोंके हाथमें ऐसा शक्ति-सुदर्शनचक्र है जिसके द्वारा इसका प्रबन्ध सुचारुरूपसे हो सकता है। प्रथम तथा द्वितीय सूत्रके नियमानुसार विशेष-विशेष धार्मिक खिलौने तथा माण्टीसरीकी शिक्षाप्रद सामग्रियाँ वे तैयार करा सकते हैं। बहुत सस्ते दामोंमें ऐसी वस्तुओंका वितरण देशभरके स्कूलोंमें कराया जाय, और ऊँट और गधेकी कहानियोंकी कुत्सित पाठ्य पुस्तकोंका बहिष्कार करके भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार और शूरताके विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाली सुन्दर पुस्तकोंका प्रचार हो। भक्त तथा वीरोंकी सुन्दर जीवनियोंसे उपयुक्त दृश्य-काव्य लिखाकर, उनमें भगवद्भजनसम्बन्धी गीतोंका समावेश करके सुन्दर उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन गीताप्रेसद्वारा हो सकता है। ऐसी पुस्तकोंका अध्ययन करनेपर भक्त तथा वीरोंकी भाँति सोचने, मनन करने और आचरण करनेसे उनके उदाहरण बालकों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मनमें भलीभाँति जम जायँगे। गीताप्रेससे प्रकाशित पवित्र मूर्तियोंके सुन्दर चित्रोंके नमूनेसे मिट्टी, मोम, कागज, पत्थर, लकड़ी आदिमें आकृति उतरवायी जा सकती है। यूरोपीय तथा पूर्वकालीन भारतकी ललित कलाओंके विकासके अध्ययनसे हमें मालूम होता है कि Leornado Da Vinci जैसे चित्रकार 'मेरी माता' की मूर्तियोंमें कैसे मन्त्र मुग्ध हो जाते थे, और दक्षिण भारतीय वास्तुकला तथा मूर्तिकलाविशारद कितने ही दैवी विग्रहों तथा मन्दिरोंका निर्माण करते थे। आजकलके स्काउटिंग सेवाधर्ममें, जो प्रत्येक स्कूलोंमें अनिवार्य हो गया है, इस प्रकारका सुधार होना चाहिये—

(१) विनय-पत्रिकाका अनुकरण करके कलिकाल-ग्रसित समस्त जीवोंके उद्धारके लिये लगातार भजनके रूपमें ईश्वरसे विनम्र प्रार्थना।

(२) जङ्गली जानवरोंकी बोलीकी नकल करनेके नियमको हटाकर उच्च स्वरसे धार्मिक भजन तथा हृदयको आह्लादित करनेवाले आलाप।*

(३) सदा अपने आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य तथा अन्य जीवोंके मोक्षके लिये प्रयत्न करना।

(४) ईश्वर-सेवा, देश-सेवा, राज-सेवा, समाज-सेवा तथा चराचररूपी परमात्माकी सेवा नित्य विधि-पूर्वक करना-कराना।

(५) प्रकृतिकी खुली वैदिक शिक्षाओंका अध्ययन विधिनिषेधरहित होकर करना।

(६) अपने शत्रुओंके भी आध्यात्मिक उन्नतिका प्रयत्न करना।

(७) अन्त्यज, अपाहिज तथा दरिद्रनारायणोंके साथ सहृदयतापूर्वक मिलना तथा उनकी सेवा करना।

(८) अपनी आत्मोन्नतिके लिये विशेष प्रयत्न-पूर्वक तत्पर रहना।

इस प्रकारके सुधारोंसे स्काउटिंग या सेवाधर्म सब प्रकारसे सफल हो सकता है।

भक्त प्रह्लादके शिक्षाक्रममें शिष्यका क्या स्थान है और क्या कर्तव्य है, इसका कुछ उल्लेख करके यह लेख समाप्त किया जायगा। इसके लिये उपनिषद् तथा गीताकी निम्नलिखित शिक्षाओंका अनुसरण करना चाहिये—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

आध्यात्मिक विकासके बलसे शिष्यका ज्ञान चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हो, बालकोंके सदृश अहंमन्यताका प्रकट करना निरी मूर्खता है। खेद है कि आजकलकी शिक्षाप्रणालीमें प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवाका बिल्कुल ही अभाव है। साष्टाङ्ग प्रणामके साथ सद्गुरुके सामने शरणागत भावसे विनय करनेकी आदत बढ़ानी चाहिये। उसकी जिज्ञासा तथा मुमुक्षा इतनी प्रबल होनी चाहिये कि जिससे यह कथन—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

सार्थक हो। गुरुकी निरन्तर शुश्रूषा तथा भिक्षाटनका नियम बालकोंके लिये पुनः प्रचलित होना चाहिये। गुरुकी शुश्रूषामें निरन्तर तत्पर रहनेसे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

यह तत्त्व चरितार्थ हो जायगा। भिक्षाटन ही सबसे उत्तम शुल्क है। यही आध्यात्मिक स्वास्थ्य-वर्द्धिनी मधुकरी है।

* तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः। तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक जीवन

(लेखक—श्रीअनिलवरण राय)

आध्यात्मिकता क्या है ?

आजकल आध्यात्मिक जीवनके सम्बन्धमें अनेकोंने अनेक भ्रान्त धारणाएँ धारण कर ली हैं। इसका एक कारण तो यह है कि आधुनिक मनोभाव (modern mentality) पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षाके द्वारा गठित हुआ है। पाश्चात्त्य देशोंमें आध्यात्मिक जीवनके सम्बन्धमें जैसी विचित्र धारणाएँ हैं, उन्हीं सबने हमारे शिक्षित समाजमें भी अपना घर बना लिया है। दूसरी ओर, हमारे देशमें जिन लोगोंने पाश्चात्त्य शिक्षा नहीं पायी है, या जिनपर उस शिक्षाका प्रभाव नहीं पड़ा है, उन लोगोंने भी अधिकांशमें धर्म-सम्बन्धी जितने गतानुगतिक बाहरी आचार-व्यवहार हैं, उन्हींको आध्यात्मिक जीवनका मूलतत्त्व मान लिया है। भारतमें आध्यात्मिक जीवनके नामपर प्रचलित घोर तामसिकता-के विरुद्ध स्वामी विवेकानन्दने जो आजीवन संग्राम किया, हमारे देशके शिक्षित समाजमें उसका बहुत कुछ आदर हुआ है। परन्तु स्वामीजीकी आध्यात्मिकता किस बातमें है, उनकी जीवन-सम्बन्धी निगूढ़ शिक्षा क्या है, यह बात आज दिन भी लोगोंकी समझमें ठीक-ठीक तरहसे नहीं आयी। इस विषयमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सेवाश्रम स्थापित करके तमोग्रस्त भारतमें वह एक नये युगकी सूचना कर गये। पर संसारमें सेवाश्रमोंकी क्या कमी है ? इस कार्यमें भारत आज भी जड़वादी पाश्चात्त्य देशोंसे बहुत ही पिछड़ा हुआ है, यद्यपि एक समयमें बौद्ध-संघोंके द्वारा भारत-ने ही संसारको सेवाधर्मकी दीक्षा दी थी। आजकल जितने ईसाई-मिशन संसारभरमें सेवाकार्य कर रहे हैं वे उसी प्राचीन बौद्ध-मिशनकी प्रतिच्छाया हैं। दरिद्र-नारायणकी सेवा, पीडितोंकी शुश्रूषा, देशका कल्याण-साधन, संसारका कल्याण-साधन—ये सब बड़े महान् कार्य हैं, इन सबके द्वारा हमारे शरीर और मनकी शक्ति विकसित होती है, हृदय विशाल होता है, हम संकीर्ण स्वार्थपरतासे ऊपर उठकर साम्य और मैत्रीका भाव प्राप्त करते हैं। परन्तु आध्यात्मिक जीवन इतना-सा ही नहीं है; ये सब बातें तो उपकरणमात्र हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अध्यात्म-जीवनके लिये एक हद-तक आगे बढ़ सकता है। आध्यात्मिक जीवनकी मूल बात तो हमारी देह, प्राण, मन, बुद्धिके परे जो आत्मा है उसमें है। जिस आत्माके द्वारा हम भगवान्-के साथ एक हैं, उसी आत्माको जानना, उसी आत्मा-की शक्ति और ज्योतिके द्वारा देह, प्राण, मनको ऐसे शुद्ध और रूपान्तरित करना कि सब भगवत्-ज्ञान, भगवत्-शक्ति, भगवत्-आनन्दसे परिपूर्ण हो उठें, यही आध्यात्मिक जीवनकी मूल बात है। उस आत्माको मन-बुद्धिके तर्कके द्वारा नहीं जान सकते, अविश्रान्त-कर्मके द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकते। श्रीरामकृष्णने कहा है, 'जबतक मनके द्वारा विचार किया जाता है तबतक नित्यके पास नहीं पहुँचा जा सकता। जब विचार बन्द हो जाता है तब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। इस मनके द्वारा आत्माको नहीं जान सकते। आत्माके द्वारा ही आत्माको जान सकते हैं।' किन्तु हमने तो पाश्चात्त्य शिक्षाके प्रभावमें आकर यही सीखा है कि मन-बुद्धिके द्वारा ही हम लोगोंको सब कुछ देखना होगा, समझना होगा। पाश्चात्त्य मतके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिकता मन-बुद्धिकी एक उच्चतर, सूक्ष्मतर क्रियाके सिवा और कुछ भी नहीं है। हमारे देशके भी अधिकांश लोग आज इसीको आध्यात्मिकता समझते हैं। श्रीरामकृष्णका दृष्टान्त और उनके उपदेश देशके सामने रहनेपर भी लोग अपने मनमें आध्यात्मिकताके विषयमें ऐसी भ्रान्त धारणाका पोषण करते रहें, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। स्वामी विवेकानन्दको छोड़कर जिस तरह श्रीरामकृष्णको नहीं समझा जा सकता, उसी तरह श्रीरामकृष्णसे अलग करके पाश्चात्य एक्टिविज़्म (Activism) या कर्मवादके आदर्शके रूपमें विवेकानन्दको समझनेकी चेष्टा करनेसे हम पद-पदपर भूल ही करेंगे।

मनुष्य बुद्धिजीवी पशु (rational animal) है, उसकी मन-बुद्धि ही उसकी विशेषता है जो पशुओंमें नहीं। यही उसका मनुष्यत्व है। मन-बुद्धिके युक्ति-तर्कको हम हेय नहीं कहते। कारण, इसी युक्ति-तर्क-की सहायतासे आधुनिक विज्ञानने जो-जो बातें ढूँढ़ निकाली हैं और अब भी निकाल रहा है—उनसे मनुष्यके अशेष कल्याणका मार्ग उन्मुक्त हो गया है। किन्तु साथ ही इस विज्ञानकी चमक-दमकने हमारी आँखोंको बहुत कुछ अन्धा भी बना दिया है। जिस समय संसार इस महान् सत्यको सम्पूर्णरूपसे भूल रहा था कि मनुष्य मनुष्यत्व (और पशुत्व) को छोड़कर देवत्व भी लाभ कर सकता है, मन-बुद्धिके तमसाच्छन्न क्षीण आलोकसे ऊपर उठकर आत्माकी दिव्य ज्योतिके अन्दर भी प्रतिष्ठित हो सकता है और केवल इसी रूपसे मानव-जाति, मानव-समाजकी प्राचीन कालसे चली आयी हुई समस्त समस्याओंका पूर्ण समाधान हो सकता है, ठीक उसी सन्धिक्षणमें संसारको वास्तविक कल्याणका मार्ग दिखलानेके लिये श्रीरामकृष्णका आविर्भाव हुआ। हमलोग यदि उनकी वाणीको ग्रहण नहीं करेंगे तो यह हमारे लिये, सारे जगत्के लिये दुर्भाग्यकी बात होगी। कारण मन-बुद्धिकी चेष्टाके द्वारा, अविश्रान्त कर्मतत्परता (Activism) के द्वारा मनुष्य कितनी दूरतक क्या कर सकता है, इसकी चरम सीमा दिखाकर आज पाश्चात्य जगत् एकदम दिवालिया बन गया है। संसारभरमें आज जो सङ्कट (Crisis), जो विकट समस्या उपस्थित है, उसका वास्तविक निवारण, वास्तविक समाधान किसीको नहीं मिल रहा है! इसीसे आज जड़वादी पाश्चात्य जगत्से उसीके अपने स्वरमें यह घोषित हो रहा है कि—"To have peace we must undergo something like a spiritual revolution." अर्थात्, अब तो तभी शान्ति हो सकती है जब कोई महान् आध्यात्मिक क्रान्ति हो। इस युगोपयोगी आध्यात्मिकताके निगूढ़ तत्त्वको समझानेके लिये श्रीरामकृष्णका आविर्भाव हुआ था। स्वामी विवेकानन्दके विषयमें वह कहा करते थे कि—'ऐसा होनेपर (अर्थात् अपनी अपूर्व शक्तियोंको आध्यात्मिक योगमें न लगानेकी हालतमें) नरेन्द्र* अन्य सब नेताओंकी तरह एक नवीन मत और एक नवीन दलकी सृष्टिमात्र करके संसारमें ख्याति-लाभ कर जायगा; किन्तु वर्तमान युगकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये जिस उदार आध्यात्मिक तत्त्वकी उपलब्धि और प्रचारकी आवश्यकता है उसे प्रत्यक्ष करना और उसकी प्रतिष्ठामें सहायता करके जगत्का यथार्थ कल्याण करना उसके द्वारा सम्भव नहीं होगा'—(श्रीश्रीरामकृष्ण-लीला-प्रसङ्ग)। किन्तु स्वामी विवेकानन्द के कार्योंका पूरा हिसाब लेनेका समय अभी नहीं आया है। हाँ, 'वर्तमान युगकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये जिस उदार आध्यात्मिक तत्त्वकी उपलब्धि और प्रचार' की आवश्यकताकी बात श्रीरामकृष्ण बार-बार कह गये हैं, उसको अच्छी तरह समझनेका समय अवश्य आ गया है।

* स्वामी विवेकानन्दका पूर्वाश्रमका नाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस तरह आजीवन सन्ध्या-आह्निक, जप-तप, गङ्गा-स्नान आदि करनेपर भी भगवान् नहीं मिलते, अध्यात्म-जीवन नहीं प्राप्त होता, उसी तरह अविश्रान्त देशहितकर, जनहितकर कार्योंमें लगे रहनेपर भी अध्यात्म-तत्त्वकी उपलब्धि नहीं होती। देश, काल, पात्र-विशेषके लिये इन सबका प्रयोजन है, उपयोग है, किन्तु मूल वस्तुको प्राप्त किये बिना इन सबके अन्दर जन्म-जन्म चक्कर ही काटते रहना पड़ता है, इनसे ऊपर नहीं उठते बनता। वह मूल वस्तु है आत्माका उद्‌बोधन। अहङ्कारके मोहको छोड़कर, वासनाके पाशको छिन्न करके जो अनन्य भावसे केवल भगवान्‌को ही चाहते हैं, वे यथासमय भगवत्-स्पर्श लाभ करते हैं और उस स्पर्शसे ही होता है उनके आत्माका उद्‌बोधन। एक बार वह स्पर्श जिसे मिल जाता है, उसके अन्दर अध्यात्म-सिद्धि सहस्र-दल-कमलकी तरह एकके बाद एक दल खोलकर अपने आप प्रस्फुटित हो उठती है। चाहिये अहंभावका त्याग और अनन्यभावसे भगवान्‌की प्रार्थना। धर्म-कर्म-की तरह ही सब कर्मोंके भीतर हमारा अहं छिपा रहता है, गुप्तरूपसे रहकर अपने हाथ-पाँव फैलाता है। याग-यज्ञ, जनसेवा, देशसेवा आदिके द्वारा हम यश, मान, प्रतिष्ठा चाहते हैं। जब हम दरिद्रनारायण-की सेवा करके गौरवान्वित होते हैं तब हम मानो संसारमें दारिद्र्यको चिरस्थायी करना चाहते हैं। इस अहंभावसे अत्यन्त महान् चरित्रवाले व्यक्ति भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर पाते। यह अहंभाव आत्माको, भगवान्-को आच्छादित कर रखता है। अहंभावसे छुटकारा पानेके लिये दृढ़ संकल्पके साथ कठोर साधना करनेकी आवश्यकता है। इस विषयमें श्रीरामकृष्णने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें निर्देश किया है—'....कहो कि हे ईश्वर, मेरे विषय-कर्म कम कर दो, क्योंकि भगवन्, देखता हूँ कि अधिक काम जुट जानेसे मैं तुम्हें भूल जाता हूँ। मनमें समझता हूँ कि निष्काम कर्म कर रहा हूँ, किन्तु वह सकाम हो उठता है। व्रत, तप, दान आदि जितना ही अधिक करने जाता हूँ उतनी ही लोकमान्य बननेकी इच्छा प्रबल हो उठती है।' आगे फिर कहते हैं—'तुम कहते हो, 'संसारका उपकार' करेंगे। तो क्या संसार इतना-सा ही है! और तुम कौन हो जो संसारका उपकार करोगे? साधनाके द्वारा भगवान्‌का साक्षात्कार करो, उन्हें प्राप्त करो। जब वह शक्ति देंगे तब सबका भला कर सकोगे; अन्यथा नहीं।'*

आजकलके इस कर्मवाद (Activism) के युगमें श्रीरामकृष्णका यह उपदेश बहुत-से लोगोंको बड़ा कड़वा मालूम होता है। स्वामी विवेकानन्दके कर्ममय जीवनका बाहरी भाव ही उन्हें दिखायी देता है। भारत लगातार तीन हजार वर्षतक जीवनके सब क्षेत्रोंमें, राष्ट्रमें, समाजमें, शिल्पमें, वाणिज्यमें, साहित्य-में अपूर्व कर्मशक्ति, सृष्टि-शक्ति दिखाकर काल-प्रभाव-से अवसन्न हो पड़ा था। उस अवसन्नताको छोड़कर वह फिर कर्ममय जीवनकी ओर झुक रहा है, यह शुभ लक्षण है। परन्तु उसके साथ ही यह भी देखना होगा कि भारतकी जो प्राचीन शक्ति आध्यात्मिकता है, जिसके कारण सैकड़ों उत्थान-पतनोंके अन्दर भी वह अपने वैशिष्ट्यको सुरक्षित रक्खे हुए है, जगत्‌को वास्तविक कल्याणका मार्ग दिखानेका सामर्थ्य और योग्यता प्राप्त कर सका है—उस शक्तिकी अवहेलना करके वह अब पाश्चात्त्य जगत्‌का व्यर्थ अनुकरण करनेमें न लगे, परधर्म ग्रहण करनेके मारात्मक मोहमें

* जर्मनी बार-बार रणकी भीषण तैयारियाँ करता है संसारकी भलाईके लिये। अंगरेजोंका संसारभरमें विस्तृत साम्राज्य है संसारकी भलाईके लिये। जापान समूचे एशियामें अपनी लपलपाती हुई जिह्वा फैला रहा है संसार-की भलाईके लिये। भगवत्-स्पर्श-शून्य उग्रकर्म शक्तिके द्वारा संसारकी भलाईके नामपर कितना अहित हो रहा है—'उग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः'!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़कर अपनेको भूल न बैठे। साधारण लोगोंमें कर्म-त्यागकी शिक्षाका प्रचार करनेसे उनके अन्दर बुद्धि-भेद उत्पन्न होता है। वे लोग ऊपरकी चढ़ाईमें अग्रसर नहीं हो पाते, तामसिकताको ही वैराग्य, संन्यास आदि बड़े-बड़े नाम देकर अपनालेते हैं। इसीलिये गीतामें कहा है—

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥

'जो लोग अज्ञानी हैं, कर्ममें आसक्त हैं, उनका बुद्धिभेद मत करो (अर्थात् कर्मसे दूसरी ओर ले जाकर उनकी बुद्धि विचलित मत करो); ज्ञानी व्यक्ति भगवान्के साथ युक्त होकर ज्ञानके साथ सब तरहके कर्म करें और इस तरह उन्हें कर्ममें लगाये रहें।' भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सब कर्मोंको करके मनुष्योंके सामने कर्ममय जीवनका आदर्श रख गये हैं। किन्तु उनका कर्म साधारण मनुष्यका कर्म नहीं, वह ज्ञानी-का कर्म, योगीका कर्म, दिव्य कर्म था। जिन्होंने अध्यात्मजीवन लाभ किया है, उनके लिये ही भगवान्-की तरह दिव्य कर्म करना सम्भव है। सब लोग उस दिव्यजीवन, दिव्य कर्मके अधिकारी नहीं, और अधिकारीके सिवा दूसरेको इसकी शिक्षा देना विपत्ति-जनक है—यही भारतकी चिरकालीन नीति है। परन्तु इसी कारणसे साधारण मन-बुद्धिके जीवनको ही अध्यात्मजीवन और साधारण राजसिक कर्मको ही कर्म-योग समझना भूल है। साधारण लोगोंका बुद्धिभेद न हो, इसलिये स्वामी विवेकानन्द जो कर्मजीवनका उपदेश देते थे, उससे हमारे अन्दर बहुतेरे लोगोंका बुद्धिभेद हो गया है, हमने सेवाधर्मको ही अध्यात्मजीवनकी पराकाष्ठा मानना सीख लिया है।

जो अध्यात्मजीवन लाभ कर चुके हैं, वे कर्म नहीं करेंगे, यह नहीं। संसारके जितने भी आवश्यक कर्म हैं, वे सब वे कर सकते हैं, 'जोषयेत्सर्वकर्माणि।' परन्तु इन कर्मोंको करते हुए उन्हें साधारण मनुष्यकी तरह अज्ञानके वशमें होकर, अहंकारके द्वारा चालित होकर पद-पदपर भूलना-भटकना नहीं पड़ता। उस समय वे अपनी अन्तर्दृष्टिसे देख सकते हैं कि कब कौन कर्म करना होगा, किस रूपमें करना होगा, उसका फलाफल क्या होगा। भगवत्-शक्तिके सज्ञान यन्त्रके रूपमें वह जगत्में भगवान्की इच्छा पूरी करते हैं और यही कर्मका वास्तविक कौशल है—'योगः कर्मसु कौशलम्'। किन्तु इस कौशलको अधिकारमें लाना सहज नहीं। कर्मयोगीके दृष्टान्त राजा जनक हैं। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—'अकस्मात् ही कोई राजा जनक नहीं बन सकता। राजा जनकने निर्जन स्थानमें बड़ी तपस्या की थी।' दो दिन साधना करके, अथवा किसी तरहकी अध्यात्म-साधना, योग-साधना बिना किये ही, 'बिना डंठलके फूलके समान अपने-आप विकसित' जो लोग महापुरुष या अवतार बन बैठते हैं—और इस तरहके अवतार ही आज देशभरमें जहाँ-तहाँ देखे जाते हैं—उन्होंने अध्यात्मजीवनको एक दिल्लगी कायम किया है! संसारमें शुद्ध वस्तुमात्रकी नकल हुआ करती है। किन्तु इसी कारण यदि हम शुद्ध वस्तुका आदर करना न सीखें तो यह हमारा परम दुर्भाग्य है। शुद्ध आध्यात्मिक जीवन कैसे पहचाना जाता है, यह श्रीरामकृष्ण बता गये हैं—अपने दिव्य जीवन और उपदेशोंके द्वारा हमारे हाथोंमें आध्यात्मिक जीवनकी कसौटी ही दे गये हैं।

शुद्ध आध्यात्मिक जीवन बाहरकी चीज नहीं, भीतरकी चीज है। बाह्यतः कौन क्या करता, नहीं करता, 'किमासीत व्रजेत किम्,' इससे उसकी आध्यात्मिकताका परिचय नहीं मिलता। जिसने आत्माका पता पा लिया और जो उसके अन्दर प्रतिष्ठित हो गया वही आध्यात्मिक है। इस तरहका व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब तरहकी वासना—कामनासे मुक्त, सब तरहके अहंभावसे मुक्त, सुख-दुःखमें, जय-पराजयमें, मान-अपमानमें समतायुक्त, सब अवस्थाओंमें आत्माकी शान्तिमें, ज्योतिमें, आनन्दमें निमग्न रहता है। किन्तु ये सब हैं भीतरके लक्षण, बाहरके किसी भी मानदण्डसे इसका मापन नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति सब कर्मोंका परित्यागकर ईंट-पत्थरकी तरह निश्चल हो जाता है, वही इस अवस्थाको प्राप्त होता है, यह बात नहीं। और यह अवस्था प्राप्त करनेसे ही मनुष्य ईंट-पत्थरके समान एकदम निर्वाक्, निष्पन्द, निष्क्रिय हो जाता है, यह भी नहीं, प्रत्युत भीतरकी इस शान्ति और समताकी इस अवस्थासे जो कर्म स्वतः सम्पन्न होता है वही होता है दिव्य कर्म। इस अवस्थामें मनुष्यका अपना कोई कर्म नहीं रहता, अपना कोई लाभ नहीं रहता, कोई इच्छा नहीं रहती, इसीसे भगवद्-इच्छा, भगवत्-प्रेरणा अबाधगतिसे उसके भीतरसे होकर काम करती है और उसीमें उसके सब कर्म अभ्रान्त, अजेय, जगत्के लिये परम कल्याणकारक होते हैं! मनुष्यके अन्तःकरणको क्षण-क्षणमें कितनी-कितनी चिन्ताएँ व्यापती हैं, कितने संकल्प उठते हैं, उन सबको भगवद्वाणी, भगवन्निर्देश मान लेनेके समान विपत्तिजनक और कोई बात नहीं। संसारमें नाना प्रकारकी अदृश्य अशुभ शक्तियाँ काम करती हैं, वे सब समय ही मनुष्यको भगवत्-मार्गसे, कल्याणके पथसे भ्रष्ट करनेमें ही लगी रहती हैं। हमारे सामान्यसे किसी भी छिद्रके रास्तेसे ये हमारे भीतर प्रवेश करती हैं, नाना प्रकारकी मूर्तियाँ धारणकर, नाना प्रकारसे बहकाकर ये हम लोगोंको भुलावेमें डाल देती हैं। हम लोग उन्हींको भगवान्की वाणी मान लेते हैं, क्योंकि वे हमारे अहंकार, हमारी कामना-वासनाके अनुरूप ही होती हैं। यश, मान, धन, प्रतिष्ठा—यह सब हमारे हाथमें देकर वे हमारा सर्वनाश कर डालती हैं। इस तरह उन्होंने कितने ही अग्रगामी साधकोंको पथभ्रष्ट किया है। इसी तरह उन्होंने इतने दिनोंसे संसारमें अपना राज्य, अमङ्गलका राज्य अटूट बना रक्खा है, जो कुछ सत्य, सुन्दर, शुभ है सबको विकृत, कलुषित बना डाला है। इसी कारण अध्यात्म-पथके साधकको बड़ी सावधानीके साथ चलना पड़ता है, सब प्रकारकी वासनाओं, कामनाओंको चुन-चुनकर आधारसे बाहर निकाल फेंकना पड़ता है। और कभी कहीं वे छिपकर हमारा सर्वनाश न कर डालें, असुरकी वाणीको ही भगवान्की वाणी बतलाकर भ्रान्ति उत्पन्न न कर सकें, इसीलिये उपयुक्त गुरुकी सहायता सब तरहसे आवश्यक होती है। आन्तरिक निष्ठा, धैर्य, अध्यवसायके साथ श्रीगुरुके निर्देशके अनुसार जो दृढ़ सङ्कल्प होकर साधना करते हैं, यथासमय वे ही अध्यात्म-जीवन लाभ करते हैं। और एक बार जो इस जीवनके अन्दर प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके पतनकी फिर आशंका नहीं रहती, वह चाहे जहाँ रहे और चाहे जो करे, भगवान्के साथ उसका परम ज्योतिर्मय, आनन्दमय मिलन अटूट रहता है—

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।

जो इस तरहकी भगवत्-कृपा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले पापका त्याग करना होगा, सात्त्विक, सदाचारी, पुण्यवान् होना होगा। किन्तु सदाचार भीतरकी चीज है, बाहरकी नहीं। मनुष्य जब सत्त्वगुणके द्वारा रज और तमको संयत करता है, तब वह सदाचारी, पुण्यवान् होता है। यह है आभ्यन्तरिक क्रिया। बाहर कौन क्या करता है, नहीं करता है, किसको स्पर्श करता है, किसका अन्न खाता है, इन सब बातोंके ऊपर पाप-पुण्य निर्भर नहीं करता। देखना होगा कि वह काम, क्रोध या लोभके द्वारा चालित होता है या नहीं। यदि अन्तर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इन सबका कोई प्रभाव न हो तो बाहरकी कोई वस्तु मनुष्यको कलुषित नहीं कर सकती। और जो भीतर इन सब चीजोंको जुटाये रहता है और केवल बाहरकी शुचिता, पवित्रताको सब कुछ मान लेता है वह गीताकी भाषामें 'मिथ्याचारी' है—उसका वह आचार निष्फल है। आजकल हमारे कुछ भाई इसी मिथ्याचारको ही आध्यात्मिक जीवन मान बैठे हैं और गला फाड़-फाड़कर इसीका प्रचार कर रहे हैं। गीता कहती है—काम, क्रोध, लोभ ये ही तीनों पापके मूल हैं—नरकके द्वार हैं। जिस व्यक्तिने सत्त्वगुणके द्वारा, ज्ञानबुद्धिके द्वारा परिचालित होकर इन सबको संयत किया है, वही सदाचारी, वही पुण्यात्मा है। पर आध्यात्मिक जीवन इसके भी परे है। कारण मन-बुद्धिके द्वारा काम, क्रोध प्रभृतिको कुछ अंशोंमें वशमें रक्खा जा सकता है, सम्पूर्णरूपसे जय नहीं किया जा सकता। जरा-सा भी छिद्र मिलते ही चाहे जब वे अपना बदला चुका सकते हैं—इस तरह कितने साधु-संन्यासियोंका पतन हुआ इसकी कोई गणना नहीं! श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि सत्त्वगुण सीढ़ी-की अन्तिम पैड़ी है, इसको भी पारकर ऊपर छतपर जाना है। इस अन्तकी पैड़ीको लाँघकर ऊपर उठना मनुष्यके अपने बसकी बात नहीं—यदि भगवान् स्वयं कृपा करके ऊपर न उठा लें तो उस दिव्य अध्यात्म-जीवनके भीतर कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता—इसीलिये इस अन्तिम पैड़ीपर आकर श्रीभगवान्‌के निकट पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण करनेकी आवश्यकता होती है, सब कर्तव्यों, सब नीतियोंको छोड़कर केवल उनका कृपाप्रार्थी होकर उनके श्रीचरणमें शरण लेनी होती है। यही गीताकी परम शिक्षा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गुणोंका आडम्बर

कोऊ कहैं चाहे करौ कोटि यत्न मिलिहै न
बिन गुनगनके कबहुँ वह पुण्य-धाम।
मेरे जान जाहि तोहिं रीझिबो रुचत नाथ!
ताके हेतु काहू काल गुनगनको न काम॥
'राजहंस' कृत्रिम सजाव न सुहात तुम्हैं
चीरहू हरन कीन्हो याही सीख दै ललाम।
गुनगन बेअरथ जो पै अप्रसन्न तुम
गुनगन बेअरथ जो पै हौ प्रसन्न श्याम!॥

—बलदेवप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा

भक्त जलारामजी

(लेखक—शास्त्री श्रीमङ्गलजी उद्धवजी पुरोहित)

गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा । पापं तापं च दैन्यं च हन्ति सन्तो महाजनाः ॥

वस्तुतः ऐसे सत्पुरुष इस कराल कालमें भी प्रायः प्रकट होते रहते हैं । भक्त, महात्मा और ज्ञानीजनोंका उद्गम-स्थान यह आर्यावर्त्त कभी इनसे सर्वथा खाली नहीं हो सकता । आज हम जिस वीतराग भक्तका चरित्र-चित्रण करने जा रहे हैं, इनका जन्मस्थान सौराष्ट्र-देशके वीरपुर गाँवमें था । इनका जन्म लोहाणा क्षत्रियकुलमें हुआ था । इनके पिताका नाम था प्रधान और माताका राजबाई । उन दम्पतिके बड़े पुत्रका नाम बोधाभाई था । प्रथम पुत्रके जन्मसे पाँच वर्ष पीछे ठाकुरके गृहमें रघुवरदास नामक एक महात्मा अतिथि आये । प्रधान ठाकुरने उन महात्माका खूब आतिथ्य किया । महात्माने प्रसन्न होकर ठाकुरसे वरदान माँगनेको कहा । ठाकुरने अपने वंशमें भी महात्माओंकी सेवा करनेवाला एक पुत्र वरदानमें माँगा । महात्मा प्रसन्नचित्तसे 'तथास्तु' कहकर यात्रार्थ निकल गये ।

सत्पुरुषोंके वचन अन्यथा नहीं होते । प्रभुकी अगाध लीला है । संवत् १८५२ के कार्तिक शुक्ल ७, सोमवारको राजबाईके उदरसे एक पुत्रका जन्म हुआ । इनका नाम जलाराम रखा गया । बाल्यकालसे ही जलारामजी तेजस्वी थे । पुत्रके ऊपर माता-पिताका अद्भुत प्रेम था । महात्माके आशीर्वादसे उत्पन्न हुए भक्त जलारामजी बचपनसे ही सदाचार-पालन, सत्पुरुषोंकी सेवा, सत्सङ्ग और नामजप करने लगे ।

थोड़े ही समय बाद जलारामजीके माता-पिताने परलोकप्रयाण किया । जलारामजीके पोषक-वर्गमें केवल वालाजी नामक एक चचा ही थे । उनके कोई पुत्र न था । इसलिये उन्होंने जलारामजीको अपने साथ रख लिया । जलारामजीको चचाने दूकानका काम सौंप रखा था । अतएव वह भगवच्चिन्तनपरायण होकर दूकानका काम करते हुए ही भगवत्सेवा भी किया करते थे । 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' ही उनके जीवनका आदर्श था । इस कारण बालसूर्यकी किरणकी तरह जलारामजीका सुयश चारों ओर फैलने लगा ।

(२)

एक दिनकी बात है, प्रातःकालका समय था, ब्राह्मण शिवालयमें वेदमन्त्रोंसे पूजन कर रहे थे, भक्तजन हरिनामका उच्चारण कर रहे थे, काम-धन्धेवाले मनुष्य अपने-अपने कार्यमें मस्त थे और वैश्यवर्ग अपनी-अपनी दूकानोंको झाड़ रहा था । इसी समय साधुओंकी एक मण्डली गाँवमें आयी । अच्छे-अच्छे व्यापारियोंसे साधुओंने सीधेकी याचना की; परन्तु प्रातःकाल होनेके कारण किसीने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया । बोहनीके वक्त देनेका नाम किसको सुहाता ? साधु लोग अब निराश होकर जाने लगे । तब किसीने उनसे कहा—'महाराज ! इस बाजारमें जलारामकी दूकान पूछो । वह भक्तोंकी सेवा किया करता है । यहाँ और कोई नहीं आपकी सुनेगा ।'

साधुमण्डली पूछती हुई आखिर वहाँ पहुँची । मण्डलीके मुखियाने पूछा—'जला भगतकी दूकान यही है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आपके दासकी यही दूकान है महाराज। क्या आज्ञा है?' जलारामजीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

'जलाराम! अगर तेरी इच्छा हो, तो सब सन्तोंके लिये पक्का सीधा दे दे। हमलोग वृन्दावनसे आ रहे हैं और गिरनारकी यात्रा करने जा रहे हैं। यहाँसे भोजन करके चलनेका विचार है' सन्तने कहा।

साधु-महात्माओंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करनेका जलारामजीका नित्यका नियम था। इसे देखकर बगलका एक बनिया इनको बड़ी क्रूर दृष्टिसे देखा करता और मन-ही-मन कुढ़कर कहा करता, 'यह जलिया बाला चाचाकी दूकानका सत्यानाश कर डालेगा।' फिर आज तो साधुओंकी इस जमातको देखते ही वह और भी जल-भुन गया। जलारामजीने अपने सहज स्वभावके अनुसार साधुओंके लिये आटा, दाल, चावल आदि सामान तौल दिया। साधुओंके पास घीका कोई पात्र नहीं था, इसलिये जलारामजीने अपने ही लोटेमें पाँच सेर घी भर दिया और वह घी तथा गुड़ स्वयं उठाकर साधुओंके ठहरनेकी जगह पहुँचानेके लिये चल पड़े। बगलका बनिया यह सब देख रहा था। जलारामजीको जाते देख वह तुरन्त बाला चाचाके पास पहुँचा और सारा हाल सुनाकर उसने कहा कि 'चाचाजी, जल्दी चलो और देखो, जलिया सारी दूकान साधुओंको लुटाये देता है।'

बाला चाचा शीघ्र ही दूकानकी ओर चल पड़े। मार्गमें ही उनकी मुलाकात जलारामजीसे हो गयी। चचाका स्वभाव जलारामजीसे छिपा नहीं था अतएव चचाको देखते ही जलारामजी सूख गये। उन्होंने मनमें सोचा, 'आज चचाजी अवश्य दण्ड देंगे। खैर, जैसी रामकी इच्छा।' इतनेमें बाला चाचा पासमें पहुँच गये। उनके नेत्रोंसे क्रोधके मारे मानो अङ्गारे झर रहे थे। उन्होंने कड़ककर पूछा—'जलिया, इस धोतीमें क्या जलाया है?' सत्यवादी जलारामजीके मुखसे मानो किसीने जबरन् कहला दिया—

'काठके टुकड़ोंके अतिरिक्त और क्या जलाया जाता है चचाजी?'

'और इस लोटेमें?'

'इसमें जल है।'

चचाजीने गुड़की गठरी खोलकर देखी तो उसमें सचमुच काठके टुकड़े ही थे और लोटा जलसे भरा था। इस दृश्यको देखकर उस बनिये तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियोंको बड़ा विस्मय हुआ। चचाजीका क्रोध एकदम काफ़ूर हो गया। उन्होंने पूछा—'कहाँ जा रहा है?'

'चचाजी! इस गाँवके बाहर एक साधु-मण्डली आयी है। उसके लिये यह सामान पहुँचाने जा रहा हूँ।'

'अच्छा' कहकर चचाजी दूकानपर चले गये और जलारामजी साधुओंके पास पहुँचे। कहना न होगा साधुओंके पास जानेपर घी और गुड़ अपने मूल स्वरूपमें ही बदल गये। भगवान् क्या नहीं कर सकते? जलारामकी वाणी भी झूठी नहीं हुई और चचाका सन्देह भी दूर हो गया।

इस घटनासे भक्तजीके हृदयमें कितना आनन्द हुआ होगा, इसका अनुमान स्वयं पाठक लगा सकते हैं। भक्तवत्सल भगवान्को अपने भक्तके लिये कितनी व्यवस्था करनी पड़ती है! जलारामजी तो और भी उत्साहके साथ साधु-सेवा करने लगे।

(३)

'जलाराम किसका नाम है?' आगन्तुक एक साधुने दूकानदारोंसे प्रश्न किया।

'बगलकी ही दूकान जलारामकी है।' उसी द्वेषी बनियेने उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु जलारामकी दूकानपर आये। भक्तजीने उन्हें देखते ही नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और पूछा—'क्या आज्ञा है महाराज ?'

'भक्तराज ! वस्त्रके बिना दुःख पा रहा हूँ। एक टुकड़ा वस्त्र साफीके लिये दे दे।'

जलारामजीने प्रसन्न होकर खादीके थानमेंसे पाँच हाथका एक टुकड़ा फाड़कर दे दिया। साधु प्रसन्न होकर बाजारमें 'जलारामकी जय' पुकारते हुए चले गये।

दुर्जन स्वयं दुःख उठाकर भी सत्पुरुषोंको बाधा पहुँचानेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते। वे सदा इसी फिराकमें रहते हैं कि कब कोई मौका हाथ लगे और अपना यह दुष्ट काम बनाया जाय। आज उस द्वेषी बनियाको मौका मिला। उसने विचार किया—'अब देखें जलिया कौन-सा उपाय करता है ? खादी-का थान बीस हाथ था। बाला चचाको प्रत्यक्ष दिखाऊँगा कि इसी तरह यह सब कुछ उड़ा देता है।'

दूसरे दिन बाला चचा दूकानपर आये। जलारामजी अभीतक साधुसेवासे निवृत्त नहीं हुए थे। वह बनिया भी आज और दिनोंसे पहले ही दूकानपर आ डटा था। आज अपनी सफलताकी उसे पूरी आशा थी। उसने बाला चचाको अकेले दूकानपर देखकर कहा—'चचाजी ! आप कभी मेरा कहना नहीं सुनते। आज जरा खादीका थान तो देख लो। ऐसे ही आपका सब कुछ मुफ्तमें चला जाता है।'

तबतक जलारामजी भी आ गये। चचाने वस्त्र नापना शुरू किया। 'यह क्या ?' आश्चर्यके साथ चचाने कहा, 'यह थान तो बीस ही हाथका था अब पचीस हाथ कैसे हो गया ?' उन्होंने फिर नापा; किन्तु वही पचीस-का-पचीस हाथ निकला। उस बनियेने फिर भी दबती जबानसे कहा—'चचाजी ! चार-पाँच हाथ····साधुको····· ।'

'तू चुप रह; तू मेरे जलियासे द्वेष रखता है। चल यहाँसे।' बीचमें ही चचाजी बोल उठे। बनिया चुपचाप चला गया, उसने भक्तिका प्रभाव जाना और उस दिनसे जलारामजीको न सतानेकी उसने प्रतिज्ञा कर ली।

(४)

मनुष्य स्वयं गुणवान्, बुद्धिमान् और सावधान क्यों न हो, यदि उसकी धर्मपत्नी सद्गुणवती नहीं हो तो उसका यश संसारमें उतना नहीं बढ़ सकता। जिस तरह गाड़ीमें दोनों पहिये समान और दृढ़ होनेकी जरूरत है, उसी तरह संसार चलानेके लिये स्त्री-पुरुष दोनोंके योग्य होनेकी आवश्यकता है। ईश्वर-कृपासे जलारामजीको पत्नी भी अपनी ही तरह धार्मिक बुद्धिवाली मिली थी। उनकी स्त्रीका नाम था वीरबाई। वीरबाई स्वभावसे सुशीला और पतिव्रता थीं। जिस तरह भक्तजी रामभजनमें मस्त थे उसी तरह वीरबाई भी भजनमें और पतिसेवामें लीन रहती थीं।

कुछ दिनोंसे भक्तजीके मनमें यह चिन्ता हो रही थी कि 'मेरा बर्ताव चचाजीको अच्छा नहीं लगता, ऐसी दशामें मैं क्या करूँ ? क्या अलग हो जाऊँ ? किन्तु मेरा निर्वाह कैसे होगा ?' इसी बीच एक दिन गीता पाठ करते समय उनकी दृष्टि नवें अध्यायके इस श्लोकपर पड़ी—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

भक्तजी जाग उठे। हरि ! हरि !! यह क्या ? स्वयं भगवान् ही आज्ञा दे रहे हैं। तो फिर मैं क्यों भ्रममें पड़ा हूँ ? क्या प्रभु मेरे आधार नहीं ? भक्तजी रोमाञ्चित हो गये। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। दूसरे ही दिन जलारामजी बालजी चचासे अलग हो गये और अन्नदान, साधुसेवा और सत्संग निश्चिन्त होकर करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन एक अत्यन्त वृद्ध साधुने दरवाजेपर आकर आवाज लगायी, 'क्यों जलाराम ! क्या हो रहा है ?' भक्तजी उस समय भजनमें तन्मय हो रहे थे, नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बह रही थीं, वाणीसे भगवद्गुणगान हो रहा था।

आवाज सुनते ही वह उठ पड़े और बाहर आकर देखा, एक सफेद बालोंवाले कृशशरीर अत्यन्त वृद्ध सन्त लाठीके सहारे दरवाजेपर खड़े हैं, जलारामजी उन तेजपुञ्ज वृद्ध महात्माके चरणोंपर गिर पड़े। साधुने आशीर्वाद दिया, 'तेरा कल्याण हो।' भक्तजीने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! भोजन तैयार है।'

'मैं भोजन नहीं चाहता।' साधुने कहा।

'किन्तु हमारे यहाँसे यदि कोई साधु बिना भोजन किये चले जाते हैं तो हम भी उस दिन भोजन नहीं करते।' भक्तजीने कहा।

परन्तु महात्माने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'भक्त ! मैं गिरनार जा रहा हूँ; तेरा नाम सुनकर आया हूँ। वृद्धावस्था है, श्रम बहुत मालूम हो रहा है। नारायण-नारायण····।'

इतना कहकर महात्माजी चलने लगे, चलते ही पैर अखड़ाकर गिर पड़े। वे मूर्छित हो गये।

भक्तदम्पति उनकी सेवामें लग गये। चार घड़ी बाद महाराजको होश हुआ। तब जलारामजीने उनसे भोजन करनेके लिये फिर प्रार्थना की। 'मैं भोजन नहीं चाहता' वह बोल उठे।

युगल भक्त बिना अन्नजलके चार दिनोंतक महात्माजीकी सेवा करते रहे। आखिर जलारामजीने पुनः निवेदन किया, 'महाराज ! दासका कोई अपराध हो तो कृपया क्षमा कीजिये और भोजन कर लीजिये। देखिये, चार दिनोंसे हमने भी भोजन नहीं किया है।'

फिर भी महाराजने जीभ नहीं हिलायी। 'मौनं सर्वार्थसाधनम्' के ही अनुसार आचरण किया।

फिर वीरबाईने प्रार्थना की, 'महाराज ! भोजन किये बिना मैं आपको जाने न दूँगी।'

'देखो भक्तजनो ! मुझे भोजन नहीं करना है। बस, मुझे जानेकी अनुमति दो।' इतना कहकर महात्माने झोली-डण्डा उठा लिया।

'आपको जो इच्छा हो वह खुशीसे माँगिये; यह दास आपकी इच्छा पूरी करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करेगा। किन्तु इस तरह वापस न जाइये महाराज !' जलारामजीने कहा।

'क्या तू देगा ? जलाराम ! कहना सहज है, पर करना कठिन है। न बोलनेमें नौ गुण हैं।'

'महाराज ! यह देह क्षणिक है। इस देहका कर्तव्य ही साधुसेवा है। इस देहसे यदि आपकी इच्छा पूरी न हो तो यह जन्म ही वृथा हो जाय।'

'देगा ? अवश्य देगा ?'

'अवश्य दूँगा महाराज !'

'भक्तराज ! वृद्धावस्था बड़ी बुरी है। मैं न चल सकता हूँ और न भोजन कर सकता हूँ। अब मेरे भजनमें भी भङ्ग होनेकी सम्भावना है।'

'तो फिर यहाँ ही····ठहर····।'

'नहीं भक्त ! मैं यहाँ रहना नहीं चाहता। एकान्त ही मुझे पसन्द है।'

'तो फिर क्या इच्छा है ?' जलारामने आर्त्त स्वरमें पूछा।

'भक्तराज ! मेरी सेवा करनेके लिये अपनी स्त्री दे दे, ईश्वर तेरा कल्याण करेगा। नारायण ! नारायण !!'

दाम रहै नहिं धाम रहै नहिं नाम सदा रणछोड़ रहेगो।

—प्रसिद्ध दीवान रणछोड़जीका यह पद सहसा भक्तजीको याद हो आया। वह बोल उठे—'भगवान् करे सो भला।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलारामजीकी अवस्था उस समय केवल तीस वर्षकी थी। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पतिव्रता पत्नीकी ओर देखकर कहा—'सती ! यही कसौटी है। सुनार स्वर्णको अग्निमें तपाता है, पीटता है, छेदता है तब वह खरा समझा जाता है। अब तुम मेरी सेवा छोड़कर वृद्ध पितामहसदृश तेजपुञ्ज शरीर इन महात्माजीके साथ जाओ और इनकी सेवा करके भगवान्‌को प्रसन्न करो।'

'आपका आज्ञापालन ही मेरा धर्म है नाथ !' दृढ़तापूर्वक इतना कहकर वीरबाई वृद्ध साधुको हवा करने लगी।

बात फैलते कितनी देर लगती है ? सारे गाँवमें इस बातका हल्ला मच गया। कोई उन साधुको दाम्भिक, कपटी और बदमाश बताने लगा, तो कोई जलारामको ही इस करनीके लिये धिक्कारने लगा। जो धार्मिक मनुष्य थे, उन्हें इसमें किसी ईश्वरी लीलाकी झलक दीखने लगी। परन्तु लोग क्या कहते हैं, इससे जलारामजीको क्या मतलब ? उन्हें तो मतलब था उससे जो उन्हें करना था। उनकी आज्ञा हुई और वीरबाईने यह कहकर विदा माँगी—'नाथ ! मेरा अपराध क्षमा करना। अब आपकी सेवाका अधिकार कब होगा ? ..... ।' इतना कहते-कहते उसका गला भर आया और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

'सती ! चिन्ता मत करो। इन महात्माकी सेवा ही प्रभुसेवा है। आज ही तुमने अपने धर्मका पालन किया है।' भक्तराजने कहा।

भक्तजी वृद्ध साधुके चरणोंमें गिर पड़े और उन्होंने प्रेमाश्रुओंसे उनका पादप्रक्षालन किया। फिर उठकर पूछा—'और कुछ इच्छा है महाराज ?'

'नहीं, नहीं जलाराम ! मैं सन्तुष्ट हो गया। ईश्वर तेरा कल्याण करेगा। नारायण ! नारायण !' करते हुए वीरबाईके साथ महात्माजीने वहाँसे प्रस्थान किया।

धन्य आर्यावर्त ! धन्य है तेरी अचल टेक और तेरा सत्य ! सीता, अनसूया, तारा, द्रौपदी और मीरा-जैसी भक्त सती नारियोंसे ही तेरा मुख उज्ज्वल है। सती और यती (भक्त) के कारण ही तू जगद्-वन्द्य है।

× × ×

वृद्ध साधु और सती वीरबाई दोनों चलते-चलते एक गहन अरण्यमें पहुँचे। महात्माने सतीसे कहा—'सती ! थोड़ी देर यहाँ ठहरो, मैं जल पीने जा रहा हूँ। मेरे डण्डे और झोलीका ख्याल रखना और जबतक मैं न लौटूँ तबतक किसी दूसरेको मत देना।'

सतीने कहा—'महाराज ! कृपा करके शीघ्र लौटना, जङ्गल भयानक है।'

'तू निडर होकर बैठ।' इतना कह महात्माजी चल दिये।

एक, दो.....चार घण्टे बीत गये; पूर्णिमाका दिन था, आखिर सूर्यनारायणने अपनी जगहपर चन्द्रमाको नियुक्तकर अवकाश ग्रहण किया, पक्षिगण अपने-अपने घोंसलेको लौटने लगे; परन्तु महात्माजी नहीं लौटे। वीरबाई उनका रास्ता देखते-देखते थक गयी और अन्तमें निर्जन वनमें बैठी करुण स्वरोंसे भगवान्‌का स्मरण करने लगी, उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

'माता ! आप इस स्थानपर कहाँसे आ गयीं ?' गौओंको चराकर घर वापस जानेवाले एक चरवाहेने पूछा। वीरबाईने सारी घटना सुना दी। चरवाहेने पीछे लौटनेका आग्रह किया। किन्तु वीरबाईने स्वीकार नहीं किया। चरवाहा निरुपाय होकर वीरपुर गया और उसने सारा हाल जलारामजीको सुनाया। जलारामजी तथा गाँवके कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ जङ्गलमें आये और वीरबाईको अपने साथ वीरपुर ले आये। महात्माजीका झोली और डण्डा लेकर वीरबाई घर लौट आयी !

झोली और डण्डा छोड़कर महात्माजी तो अन्तर्धान हो गये; परन्तु भक्तराजकी महिमा बहुत बढ़ा गये। उस दिनसे पुनः जलारामजी वीरबाईके सहयोगसे साधुसेवा और सत्सङ्ग और भी उमङ्गके साथ करने लगे। किन्तु तबसे अन्ततक उन्होंने दृढ़तापूर्वक त्यागवृत्तिको ही धारण करना उत्तम समझा। और दोनों पति-पत्नी आजन्म शीलव्रतका पालन करते रहे।

वृद्ध महात्माकी दी हुई झोली और डण्डा अबतक वीरपुर गाँवमें मौजूद है। लोगोंका अनुमान है कि वह वृद्ध महात्मा और कोई न थे, स्वयं श्रीहरि ही भक्त-दम्पति की परीक्षा करनेके लिये पधारे थे। वास्तवमें उन भक्तोंका जीवन पूर्ण धार्मिक, सत्यपरायण था, ईश्वरके प्रति उनमें अगाध श्रद्धा थी, 'निर्ममो निरहंकारः' की तो मानो वे सजीव मूर्ति ही थे। ऐसी दशामें यदि उन श्रेष्ठ भक्तोंकी परीक्षा स्वयं सरकारने आकर की हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं !

(५)

जलारामजीने अपने यहाँ एक अन्नसत्र—सदाव्रत खोल दिया, जहाँ अनेकों भूखे नरनारियोंको भोजन मिलने लगा। उसी समयमें संवत् १९३४ का भयङ्कर अकाल पड़ा था। ऐसे कठिन कालमें भी श्रीहरि-कृपासे वह अन्नसत्र यथावत् चलता ही रहा।

अन्तमें अच्छा सुयश प्राप्तकर संवत् १९३७ में माघ कृष्ण दशमीके दिन भक्तराजने साकेत-निवास किया। परन्तु आज भी जनताको ज्ञान देनेके लिये उनकी कीर्तिमयी देह वर्तमान है और आगे भी रहेगी।

अब हम यह प्रार्थना करके इस चरित्रको समाप्त कर रहे हैं कि हम सब बराबर ऐसे महात्माओंके गुणानुवाद गाते रहें और ऐसे सन्त-महात्मा जगत्के कल्याणके लिये सदा इस पवित्र भारत-भूमिपर उत्पन्न होते रहें।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

मेरा लक्ष्य

रामहीको रोम-रोम रमाके रहूँगा मैं तो—
रसनासे राम-रस रसाको चखाऊँगा।
हिलूँगा-मिलूँगा, खेल खेलूँगा-खिलाऊँगा—
जी खोल-खोल राम-खूबी खलक सुनाऊँगा॥
संकट बिकट क्यों न कैसा ही निकट आवे—
रामकी कृपासे झट उसे पलटाऊँगा।
रट लूँगा रामहीकी, घट लूँगा रामहीको—
राममें 'गुणाकर' हो भिन्नता भुलाऊँगा॥

—सुखराम चौबे 'गुणाकर'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगम साधन-पथ

(लेखक—गङ्गोत्तरीनिवासी दण्डिस्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती)

महाजनोपदिष्ट पथ क्या है, और कितने हैं ?

अच्छा,—पूछता हूँ, यदि पुत्र-परिजन, आत्मीय-स्वजनसे सम्पन्न होकर, बृहत् संसार खड़ा करके, इस लोकमें अभ्युदय और परलोकमें चरम सुख—चिरशान्ति—स्थायी आनन्द, मुक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा होनेपर 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' का अनुसरण करना चाहिये, तो वह शास्त्रनिर्दिष्ट, महाजन-प्रदिष्ट पथ क्या है और कितने प्रकारका है ?'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा गया है कि—शास्त्रमें दो प्रकारके पथ बतलाये गये हैं—प्रवृत्तिकारण और निवृत्ति-कारण । जीव आरम्भमें दुःखके कारणभूत प्रवृत्तिमार्गमें विचरण किया करते हैं; क्योंकि यह पथ आरम्भमें स्वच्छन्दतापूर्ण, प्रसन्नतापूर्ण और विरोधशून्य मालूम होता है । वे मधुलोभमें एकदम अशेष क्लेश भोग करते हुए भी अपनेको सुखी समझते हैं । वे यह नहीं विचार कर पाते कि वह परिणाममें नाशका कारण और जन्म-मृत्यु-जरा आदि दुःखका घर है । अर्थात् विषयान्ध, विह्वल, कलिके काम-दुर्मद जीव आरम्भमें प्रवृत्तिमार्गमें विचरण करके, समृद्धिकी उच्च सीमापर उपस्थित होकर, यौवनके माधुर्यसे मुग्ध होकर, असार आयुकी उन्मत्ततामें यौवनविकसित मोहके वशमें 'आपाततः प्रियदर्शतापरिणामकालभुजङ्गिनी' विलासिनीके विलासमें आसक्त होकर पुत्र-परिजन-आत्मीय-स्वजनमें एकदम अनुरक्त और उनके भरणपोषणमें निरन्तर निरत होकर धनोपार्जनपरायण होकर संसार खड़ा करके, गगनभेदी धवल अट्टालिकामें निवास करके—मैं ही ईश्वर हूँ, मैं भोगसम्पन्न हूँ, मैं सिद्ध हूँ, बलवान् हूँ, सुखी हूँ, बड़ा धनी हूँ, बड़े कुटुम्ब-परिवारवाला हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है ? (गीता अ० १६) यह सोचकर अपनेको सुखी समझते हैं; किन्तु वह परिणाममें अशेष दुःखका आकर है, यह नहीं समझ पाते । जब आधि-व्याधि, शोक-तापके घात-प्रतिघातसे, परिदृश्यमान संसारकी यातनासे, विषय-व्याधिके सहस्र वृश्चिक-दंशनसे कातर हो जाते हैं; अथवा जब संसारकी दुर्भावना-दुश्चिन्ता-रूपी छुरीके आघातसे, अभाव-दरिद्रताकी तीव्र ताड़नासे आठों पहर रुधिराक्त होकर, अशेष दुःखरूपी निर्मम कोड़े-की मारसे निरन्तर क्लिष्ट तथा मथित होते हैं; अथवा जब विश्वरंगमञ्चके जीवनावसानरूप दृश्यकी शेष यवनिकामें आ उपस्थित होते हैं, जीवनकी सीमापर पहुँच जाते हैं, आत्यन्तिक चेष्टा-सम्भूत भोग्य विषय छोड़कर किसी अज्ञात प्रदेशमें जाना होगा, यह समझते हैं, तब यह समझकर कि इस दुःखकी परिणति नहीं है, वे बेहोश हो जाते हैं । इस प्रकार सब जीव आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक दुःख भोगकर मृत्युके बाद किये हुए शुभाशुभ कार्योंके फल-स्वरूप, कोई सुकृतिके बल मनुष्ययोनिमें, अथवा कोई अशुभ कर्मके फलसे तिर्यक्योनिमें बारम्बार जन्म ग्रहण करके अशेष क्लेश भोग करते हैं । जीव अनेक जन्मोंतक स्वकर्मविपाकवश नाना योनियोंमें भ्रमण करते हैं और अन्तमें लाखों जीवोंमेंसे कोई एक त्रितापहारी भगवान् श्रीहरिकी कृपासे अपार भवसागर पार होनेका परमोपाय साधुसङ्ग प्राप्त करता है । नाना योनियोंमें भ्रमण करनेवाला जीव जब सौभाग्य उदय होनेपर साधुसङ्गरूप उज्ज्वल दीपशिखाके प्रकाशमें मुक्तिका मार्ग देखता है, तब वह भवबन्धन दूर करनेके लिये प्रयत्न करता है । उसके बाद अनेक जन्मोंतक यम-नियमादि अष्टांगयोगका अभ्यास, कठोर कष्टकर उग्र तपसाधन और कभी अनशन, कभी अर्द्धाशन, कभी जलाशन, कभी पर्णाशन अथवा कभी वायुभक्षण करके विघ्नशून्य, उत्कृष्ट, सुखप्रद मुक्तिमार्ग प्राप्त करता है । अर्थात् एकजातीय वस्तु क्रमशः बृहत्तरकी ओर आकृष्ट होती है, यही जगत्का साधारण नियम है । जीव भी उसी नियमके वशवर्ती होकर सतत ईश्वरकी ओर तेजीसे जा रहा है । क्योंकि ईश्वर और जीव एक जातिके हैं । समस्त जीव ब्रह्मकी जातिके हैं । किन्तु ब्रह्मकी जातिके होनेसे ही ब्रह्म नहीं है । सागर और ओसकणके एकजातीय होनेपर भी ओसकण सागर नहीं है । सागर और ओसकणमें जो भेद है, ईश्वर और जीवमें भी वही भेद है । ओसकण महार्णवके एक भागका भी तत्त्व जाननेमें असमर्थ है । किन्तु फिर भी वह ओसकण महान् समुद्रके प्रेममें प्रमत्त होकर—घोर आकर्षण-के बलसे सर्वदा सागरकी ओर दौड़ा जा रहा है । जबतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सागरमें जाकर नहीं मिल जायगा तबतक उसकी गति नहीं रुकेगी, तबतक उसके हृदयमें शान्ति नहीं होगी। परन्तु असंख्य ओसकण एक दिन सागरमें मिलेंगे, एक कण भी निराश नहीं होगा। आज हो, कल हो, सौ वर्ष, हजार वर्षके अन्तमें हो, ओसकणका परिणाम है—सागरमें मिल जाना। काल-क्रमसे जो कण नदी-वक्षमें गिरता है, वह अनुकूल स्रोतकी सहायतासे अनायास थोड़े समयमें जाकर समुद्रमें मिल जाता है। और जो कण मरुस्थलमें, गिरिगह्वरमें गिरता है, वह भापके रूपमें उड़कर मेघरूपमें परिणत होकर, युगयुगान्तरतक घूम-फिरकर, अन्तमें समुद्रमें मिलता है। अतएव जिस तरह सागर और ओसकण एक पदार्थ होनेपर भी सागर ओसकणका आदि-कारण और लयस्थान है, उसी तरह जीवात्मा और परमात्मा एक-जातीय होनेपर भी परमात्मा जीवात्माके आदिकारण और लयस्थान हैं। ब्रह्म-विन्दु जीवात्मा भी अनादि-अनन्त परमात्माके आकर्षणसे सर्वदा ब्रह्म-समुद्रकी ओर वेगसे जा रहा है। कर्मवश कोई पुण्यरूप स्रोतकी सहायतासे थोड़े समयमें, अथवा कोई पापके प्रलोभनमें पड़कर युग-युगान्तर नाना योनियोंमें घूम-फिरकर अन्तमें आदिकारण ब्रह्ममें लीन होता है।

ब्रह्म जीवको आकर्षित करते हैं, 'कर्म' उसमें बाधा उपस्थित करता है। कर्मवश जीव पुनः-पुनः घूमकर संसारमें आ गिरता है। एक ओर ब्रह्म जीवको खींच रहे हैं; दूसरी ओर कर्म उसे खींच रहा है। दोनों आकर्षणोंके बीचमें जीव सर्वदा घूमते हुए कभी ऊपर चढ़ता है और कभी नीचे गिरता है। केन्द्राभिकर्षिणी शक्ति और केन्द्रापसारिणी शक्तिके कारण जिस तरह चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और पृथिवी अनन्त आकाशकी गोदीमें घूमते हैं, जीवकी अवस्था भी प्रायः वैसी ही है। उपासनाकी सहायतासे जब जीवका कर्मबन्धन ढीला हो जाता है तब ब्रह्मका आकर्षण प्रबल हो जाता है और जीव क्रमशः जगत्के मूल कारण ब्रह्मके समीप पहुँच जाता है। इसीको कहते हैं मुक्ति। इस मुक्तिको प्राप्त करनेके तीन मार्ग हैं। देवीभागवत (७। ३७) में मुक्तिविधायिनी भगवती हिमालयसे कहती हैं—

हे नगेन्द्र! मुक्तिप्राप्तिके लिये तीन पथ कहे गये हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। किन्तु उक्त तीनों योगोंमें भक्तियोग ही अनायास-साध्य है। क्योंकि यह भक्तियोग बिना द्रव्य खर्च किये और बिना शारीरिक प्रयत्न किये केवल मनोवृत्तिके द्वारा ही किया जा सकता है। अतएव इस भक्तियोगको ही सुलभ जानना चाहिये। श्रीमद्भागवत (११। २०) में भगवान् उद्धवसे कहते हैं—

'हे उद्धव! मनुष्योंका मङ्गल करनेकी इच्छासे मैं पहले तीन प्रकारके योग अर्थात् मुक्तिमार्ग बतला चुका हूँ—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। कल्याणसाधनके इन तीन प्रकारके मार्गोंके अतिरिक्त और दूसरा उपाय कहीं भी नहीं है। उनमेंसे, जो लोग संसारके शुभाशुभ कर्मसमूहको दुःखप्रद मानकर संसारके सब कर्मोंके फल-समूहसे विरक्त हैं, ऐसे वैराग्यरसिक कर्मत्यागी विरागवान् पुरुषोंके लिये ज्ञानयोग है, एवं जो लोग इन सबमें दुःख-बुद्धिशून्य हैं, जिन्हें उन सबके फलसमूहसे विरक्ति नहीं है, उनके लिये कर्मयोग सिद्धि देनेवाला है। और किसी भाग्योदयके कारण जिस पुरुषको मेरी कथामें श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है, जिसे कर्मफलसे विरक्ति नहीं है और न जिसे उनमें आसक्ति है, ऐसे पुरुषके लिये भक्तियोगको सिद्धि देनेवाला समझो।'

इस देवीभागवत और श्रीमद्भागवतकी युक्तियोंसे मालूम होता है कि कलिकालमें कर्मयोग और ज्ञानयोगका साधन करना कलिके कामकिङ्कर अन्नगतप्राण जीवोंके लिये साध्यातीत है। कलिके अन्नगतप्राण अल्पायु जीवोंके लिये केवल अनायाससाध्य विष्णुसायुज्यकारी भक्तिमार्ग ही मुक्तिप्रद है। शास्त्र कहते हैं—

सत्यादित्रियुगे बोधो विरागो मुक्तिसाधकौ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी॥

(पद्मपुराण उत्तर० १९२)

सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीनों युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके देनेवाले थे; परन्तु कलियुगमें वैसा नहीं। क्योंकि कलिके कामदुर्मद मनुष्योंका मन विषयसुखके लिये सर्वदा बेहाल रहता है, विशेषकर कलिके मनुष्य अल्पायु होते हैं, और अन्नपर ही उनका जीवन निर्भर करता है। ये ज्ञानरसिक अथवा वैराग्यरसिक नहीं हो सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये कलिके लिये केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करानेवाली कही गयी है। यदि इस भक्तिमार्गपर कलिके मनुष्य चलें तो उनके पतन या पदस्खलनकी आशङ्का नहीं रहती।

इस भक्तिमार्गके स्तर-स्तरमें साधुसङ्ग प्राप्त होता रहता है; साधुसङ्ग प्राप्त होनेसे, साधुमुखसे अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णकी अपार लीला—अपार खेल—अनन्त महिमा सुननेसे चित्तशुद्धि होती है; चित्तशुद्धि होनेपर निर्मल हृदयाकाशमें वैराग्य-सूर्य उदित होता है, वैराग्यके बलसे संसारके पुत्र-परिजन—आत्मीय-स्वजन, विषय-विभव, धन-सम्पत्ति आदिके प्रति जो आसक्ति है, वह शिथिल हो जाती है। आसक्तिसे मुक्त हो जानेपर हृदय भक्तिरससे सराबोर हो जाता है, भगवत्प्रेममें मन उन्मत्त हो उठता है। उस समय साधकके साधन-मार्गमें जितनी बाधाएँ होती हैं, वे सब दूर हो जाती हैं और साधक प्रेममयकी ओर खिंच जाता है। उस समय साधककी क्षुद्र स्वार्थकी संकीर्णता दूर भाग जाती है, मैं-पनका अहंकार प्रेमसागरमें विलीन हो जाता है, क्षुद्र मनुष्य-जीवन उस समय असीम उदार अनन्त नीलाकाशकी तरह विस्तृत हो जाता है, मन विशाल वारिधिके उन्मुक्त उच्छ्वासकी तरह आकुल आवेगसे विश्वको प्लावित करके अनन्तकी ओर चल पड़ता है। उस समय साधकके लिये और कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रह जाता; उस समय आत्मस्थित तन्मय साधक सच्चिदानन्दमयमें आश्रय लेकर चिद्घनरसका आस्वादन करनेमें मग्न रहते हैं; उसी समय उनके अहंकारका मूलोच्छेद होता है; आधिभौतिक आदि त्रयतापका शमन हो जाता है और सब कर्मोंका अवसान हो जाता है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

यथाग्निना हेममलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २५)

'जिस प्रकार सोना आगमें तप जानेपर अपना मैलापन छोड़ देता है और पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार साधकका जीवात्मा मेरी भक्तिके संयोगसे कर्मवासनाका त्याग करके मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है।' वही अवस्था मुक्ति या मोक्ष है। अतएव—

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ।

(नारदसूत्र ८। १)

भक्तिसाधन सबसे अधिक सुलभ है। देवर्षि नारदने पूर्व अनुवाकमें भक्तिकी अनन्त महिमाका वर्णन किया है; पीछे कोई यह समझे कि ऐसी दुर्लभ वस्तुको प्राप्त करना अत्यन्त कष्टकर होगा।—पुण्यसञ्चय किये बिना—कठिनता, कठोरतापूर्वक आत्मलीन हुए बिना—अथवा पूर्ण पवित्र प्रज्ञा उत्पन्न हुए बिना भक्ति प्राप्त करना दुर्लभ होगा; और उसके लिये अनेक ध्यान-धारणाकी आवश्यकता होगी; इसीसे कृपा करके उन्होंने इस सूत्रमें कहा है—'हे साधक! भक्तिकी महिमा अपार होनेपर भी वह अत्यन्त सुलभ है। उसे प्राप्त करना अत्यन्त सुलभ और सहज है।' यदि कहो कि भक्ति सहज है, तो इसका प्रमाण क्या है? इसीसे कहते हैं कि—

प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयंप्रमाणत्वात्।

(नारदसूत्र ८। २)

इसके लिये दूसरा कोई प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं; क्योंकि वह स्वयं प्रमाणस्वरूप है। जो भगवान्से प्रेम करते हैं, वे ही जानते हैं कि भक्ति करनेमें कोई कष्ट नहीं, बल्कि आनन्द है। क्योंकि—

शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च।

(नारदसूत्र ८। ३)

यह शान्ति और परमानन्दरूपा है। भक्ति अत्यन्त सहज है; क्योंकि यह शान्तिरूपा है। जो भगवान्की भक्ति करते हैं, उनकी सब चिन्ताएँ, सब भावनाएँ दूर हो जाती हैं, किसी तरह कोई भी उनके प्राणोंमें अशान्ति नहीं उत्पन्न कर सकता। 'परमानन्दस्वरूप' क्यों? क्योंकि समस्त आनन्दके आधारस्वरूप जो भगवान् हैं, उनसे प्रेम करनेपर अपार आनन्दसागरमें डूब जाना पड़ता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाशके पथपर !

हौरसे एक सज्जन बड़ी ही करुणापूर्ण भाषामें पंजाबके पढ़े-लिखे युवक-युवतियोंमें फैलते हुए व्यभिचारकी चर्चा करते हुए इस पापसे समाजके बचनेका उपाय पूछते हैं। आप लिखते हैं 'हमारा पतन हो गया, हमारे राम-लक्ष्मण और भीष्मार्जुनका आदर्श आज नष्ट हो गया। सीता-सावित्रीका नाम लेते जी काँपता है; हमारी ज़बान उनका नाम लेने लायक नहीं रही।.....दूसरे प्रान्तोंका तो मुझे पता नहीं परन्तु पंजाबमें खास करके लाहौरमें आज जो कुछ हो रहा है, उसे देख-सुनकर दिलके टूक-टूक हुए जा रहे हैं। मेरी आँखोंसे आँसू कभी सूखते नहीं।.....धर्मका खयाल जाता रहा, विवाहका बखेड़ा क्यों किया जाय यह भाव बढ़ रहा है, जवान लड़कियोंमें भी यह भाव फैल रहा है, कालेज युवक-युवतियोंके परस्परके आकर्षणके केन्द्र हैं और सीनेमा या सीनेमाका बहाना मिलनका। उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। अनेकों क्वाँरी लड़कियाँ गर्भवती हो रही हैं, भ्रूणहत्याएँ भी होती हैं। आजकल सन्तति-निरोधके कृत्रिम उपायोंके सहज हो जानेसे तो अनर्थ और भी बढ़ गया है। अब तो कोई डर ही नहीं रहा। चारों ओर स्वतन्त्रताके नामपर मर्यादाके नाशका नंगा नाच हो रहा है। अदूरदर्शी जवान लड़के और लड़कियाँ मनमानी कर रहे हैं, भागने-भगानेकी वारदातें भी बढ़ रही हैं। क्या-क्या लिखूँ, एक-एक घटनाके लिये हृदयमें आग सुलग रही है।..... ऐसा कोई उपाय बतलाइये, जिसमें यह पापका प्रवाह रुके। समाजमें यह पाप घर कर गया है, ऊपरसे नहीं मालूम होता परन्तु अन्दरकी हालत बहुत ही बुरी है।.....'

पता नहीं, पत्रलेखक महोदयका कथन कहाँतक सत्य है; परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसमें आंशिक सत्यता तो अवश्य ही होगी। कुछ अतिशयोक्ति भले ही हो। ये भाई बहुत ही दुखी मालूम होते हैं, सम्भव है किसी घटनाका इनपर असर पड़ा हो। मैं इस बारेमें कुछ लिखना नहीं चाहता था परन्तु इन्होंने बहुत ही आग्रहपूर्वक आज्ञा दी है इसलिये लिखना पड़ता है। वास्तवमें आज हमारे नौजवानोंकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही है। विचार करनेपर इस बुराईमें मुख्यतया निम्नलिखित कारण जान पड़ते हैं।

१—स्कूल-कालेजोंकी धर्महीन पढ़ाई।

२—यूरोपीय सभ्यता—संस्कृतिका प्रभाव।

३—स्कूल-कालेजोंमें लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ाया जाना।

४—युवती-विवाह।

५—सीनेमाओंका—विशेषतः टाकी सीनेमाओंका बढ़ता हुआ प्रचार।

६—विलासिता, फैशन, आरामतलबी और आलस्य।

७—शारीरिक सौन्दर्यका महत्त्व और रूप-प्रतियोगिताका प्रचार।

८—सभी बातोंमें स्त्रियोंका स्वतन्त्रता और समानताका दावा।

९—सन्तान-निरोधके कृत्रिम उपायोंका प्रचार।

१०—सुधारोन्मत्तता।

अब इनपर संक्षेपमें कुछ विचार करें।

भारतवर्षका प्राण धर्म है, धर्मज्ञानही शिक्षाका मुख्य विषय है, धर्मज्ञानहीन मनुष्य आर्य सभ्यतामें पशु माना जाता है। परन्तु आजकी शिक्षामें धर्मका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं नामनिशान भी नहीं है। केवल अर्थकरी विद्या वास्तविक विद्या नहीं है। फिर आज तो यह विद्या अर्थकरी भी नहीं रह गयी। युनिवरसिटियोंसे प्रत्येक वर्ष हजारों विद्यार्थी डिग्रियाँ पाकर निकलते हैं और फिर उन्हें कहीं नौकरी भी नहीं मिलती। वर्तमान शिक्षाक्रम तो इस दृष्टिसे भी लाभदायक सिद्ध नहीं हो रहा है। धर्मको तो इस शिक्षाक्रमने उड़ा ही दिया है। इस शिक्षाका ही यह परिणाम है कि आज धर्मके नामसे भी पढ़े-लिखे होनेका अभिमान करनेवाले लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं। जहाँ धर्मभाव लुप्त होगा, वहाँ संयम नहीं रहेगा और संयमके नाशसे व्यभिचार फैलेगा ही!

वर्तमान शिक्षाका एक बहुत बुरा परिणाम यह हुआ है कि भारतवासियोंकी अपने पूर्वपुरुष, अपने साहित्य, अपनी सभ्यता और संस्कृति एवं अपनी सारी त्यागमयी जीवनप्रणालीके प्रति अश्रद्धा हो गयी है। देशकी गुलामी इस मनकी गुलामीसे कहीं कम खतरनाक होती है। शारीरिक परतन्त्रता प्रयाससे सहज छूट सकती है परन्तु इस मानसिक परतन्त्रताका छूटना शारीरिक स्वतन्त्रताकी हालतमें भी बहुत कठिन है। भारतवासियोंने अपना मन पाश्चात्य संस्कृतिके हाथ बेच दिया। इसीसे आज बात-बातमें हमें उनकी सभ्यता अच्छी लगती है। उनके साहित्यपर हमारी श्रद्धा बढ़ रही है, उनके महात्माओंको ही हम वास्तविक महात्मा मानते हैं, हमारे धर्मग्रन्थोंकी बात भी यदि उनकी वाणीसे या कलमसे परिष्कृत होकर (बिगड़कर) हमें मिलती है तो हम उसे मान लेते हैं। अपना मस्तिष्क तो हमने उनकी गुलामीके लिये सौंप दिया। परिणाम यह हुआ रीति-नीति, वेशभूषा, बोलचाल, विवाह-शादी, व्यवहार-बर्ताव सभी बातोंमें आज हम उनकी नकल करनेमें ही अपनेको धन्य समझते हैं। पुरानी चालके मनुष्योंको तो अन्ध-विश्वासी बतलाया जाता है परन्तु आजकल पाश्चात्योंकी यह अन्धनकल इतनी बढ़ गयी है कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं रही। महात्मा गान्धीजीके प्रभावसे वेशभूषामें कुछ सादगी या भारतीयता आयी है, परन्तु मन तो अभी उसी ओर खिंचे चले जा रहे हैं। इस संस्कृतिका प्रभाव हमारे नौजवानोंपर सबसे अधिक पड़ा। कारण स्पष्ट है; होश सँभलते ही स्कूलोंमें गये, और वहाँके नौजवान गुरु—मास्टरोंसे—जिनमेंसे अधिकांश अपना मन और मस्तिष्क बहुत अंशमें पाश्चात्य संस्कृतिको अर्पण कर चुके हैं—वैसी ही शिक्षा मिली। फिर कालेजमें भरती हुए; धर्मग्रन्थोंका कहीं अक्षर भी पढ़नेको नहीं मिला। यदि कहीं मिला तो वह पाश्चात्य और पाश्चात्य सभ्यताके भक्त विद्वानोंके द्वारा विकृत किया हुआ। धर्मज्ञान प्राप्त ही नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि इन्हें पुराना सोना भी लोहा दीखने लगा। पुराने गुलाबमें भी नाबदान-की बदबू आने लगी। क्योंकि दृष्टि और नाक ही बदल गया। इसीका परिणाम आज हमारी लड़कियों-पर भी पड़ रहा है और पढ़-लिखकर वे भी उसी साँचेमें ढल रही हैं। इस सभ्यताके प्रभावके कारण धर्म, लज्जा, शील, मर्यादा, भोगोंसे वैराग्य, परमार्थ-साधन आदि बातें मनोंमेंसे निकल गयीं; व्यभिचार-वृद्धिमें यह भी एक प्रधान कारण है।

बालविवाहसे समाजकी हानि हुई और होती है, परन्तु उस बालविवाहका परिवर्तन जिस 'युवती-विवाह' और 'विवाहकी अनावश्यकता' के रूपमें हो रहा है, यह तो और भी भयङ्कर है। बालविवाह-में बुराई थी और है, बालविवाहकी प्रथाका बहुत दुरुपयोग हुआ और अब भी हो रहा है, इसलिये उसका निषेध आवश्यक था और अब भी है। परन्तु उसमें एक बड़ा भारी लाभ अन्तर्हित था जो अब नष्ट हो रहा है। हिन्दूधर्मके अनुसार विवाह एक धार्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार है। दो आत्माओंका परस्पर सात्त्विक मिलन है। उसमें कामवासनाको स्थान नहीं है। वहाँ धर्म है, रूपपर मोह नहीं है। इसी उद्देश्यसे लड़के और लड़कियोंके माता-पिता और अभिभावक अपने कुल, धर्म और आचारके अनुकूल घर ढूँढ़कर सम्बन्ध करते थे। उसमें लड़के और लड़कियोंकी उम्र, स्वभाव आदि तो अवश्य ही देखे जाते थे। यहाँतक कि बालकोंके माता-पितातकके स्वभावका पता लगाया जाता था और परीक्षा की जाती थी। दोनोंका जीवन सुखमय रहे, इस बातके लिये पूरा ध्यान रक्खा जाता था। अवश्य ही दहेजकी प्रथाका विकृत रूप हो जानेसे तथा अन्य कई कारणोंसे माता-पिताद्वारा वर-कन्याके चुनावमें दोष आ गये तथापि वह लाभ तो बहुत अंशमें था ही। जिस दिन सगाई हुई, और लड़के लड़कियोंको इस बातका जब पता लगा तभीसे उनका परस्पर स्नेहसूत्र बँध जाता था। ममत्व बढ़ता जाता था। यह निश्चय उन दोनोंके मनमें हो ही जाता था, हम दोनों पति-पत्नी हो गये। अतएव प्रेम बढ़ता था और किसी कारणसे दूसरी किसी ओर देखनेकी गुंजाइश बहुत ही कम हो जाती थी। कोर्टशिपकी कल्पना भी उनके मनमें नहीं आने पाती थी। इस प्रकार माता-पिताद्वारा किये जानेवाले निश्चित सम्बन्धमें उच्छृङ्खलता और रूपपर मोहको स्थान नहीं था। भूल वहाँ भी होती थी परन्तु बच्चोंके भावी हितकी चिन्तामें लगे हुए माता-पिता आदि अभिभावकगण किसी आवेगके वशमें न होकर शान्तचित्तसे निर्णय करते थे। उन्हें अपने कर्तव्यका खयाल रहता था। उनके अन्दर सब तरहसे 'बराबरकी जोड़ी' ढूँढ़नेकी एक सुन्दर पवित्र भावना काम करती थी। इससे उनके निर्णयमें भूल कम होती थी। परन्तु जवान उम्रमें पहुँचे हुए युवक-युवती भाँति-भाँतिके आवेगोंके वशमें होकर आवेशवश जो परस्पर चुनाव करते हैं, उसमें बड़ी भारी भूल हो जानेकी सम्भावना है। भूलें भी होती हैं, जिनके परिणाममें या तो उनका जीवन मृत्युकालपर्यन्त दुखी रहता है अथवा उन्हें तलाकका मार्ग ढूँढ़ना पड़ता है। मेरी समझमें 'कोर्टशिप' 'जाती पसन्दगी' की प्रथाने ही तलाकके कानूनकी सृष्टि की है। यहाँ भी यही दशा रही तो तलाकका पापताण्डव होगा ही। अस्तु, लड़कोंका बड़ी उम्रमें विवाह करनेकी चर्चाने ज्यों जोर पकड़ा, त्यों ही लड़कियोंके लिये भी ऐसा ही विचार आने लगा। लड़कियाँ भी युवती होनेतक कुमारी रहने लगीं। इसीका परिणाम यह हुआ जिससे हमारे पत्रलेखक भाई आज दुःखके आँसू बहा रहे हैं।

उच्च शिक्षाप्रचारके लिये तो पुकार मची ही हुई थी। लड़कोंके साथ ही उदार महानुभावोंकी शुद्ध भावनाके दानसे और प्रचारकोंकी सदिच्छासे लड़कियोंको उच्च शिक्षा दिलानेकी व्यवस्था हुई। उच्च शिक्षासे तात्पर्य बी० ए०, एम० ए० की डिग्रियोंसे ही है। इसके लिये लड़कियाँ भी कालेज जाने लगीं। धर्महीन पढ़ाई, धर्ममें अश्रद्धा, युवा अवस्था और संयमकी शिक्षाका अभाव तो था ही, फिर जवान लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ना, काठ और आगके संयोगकी भाँति बुराई पैदा करनेमें बहुत ही सहायक हुआ। इसीके साथ एक बीमारी लड़कियों-में फैशनकी बढ़ी; विलासिताने जोर पकड़ा। आरामतलबी तो इस शिक्षाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। किसान या दूकानदारका लड़का अँगरेजी पढ़कर खेती या दूकानदारी नहीं कर सकता। कई प्रकारके जूते, क्रीम, लोशन, स्नो, साबुन, पाउडर, चश्मा, फोटोग्राफी सामान आदि कई ऐसी चीजोंकी उसे आदत हो जाती है जो उसके जीवनको आलसी, खर्चीला और आरामतलब बना देती हैं। यह रोग हमारी लड़कियों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो और भी जोरसे बढ़ रहा है । पढ़ी-लिखी लड़कियाँ घरका काम न सीखती हैं, न करना चाहती हैं । उनसे उनको घृणा है । फैशन बनाना, सजना, अखबार पढ़ना,—उपन्यास और काव्य पढ़ना, फोटो उतारना, लेख लिखना, सभाओं और जलसोंमें जाना आदि इतने काम उनके बढ़ गये हैं कि अब घरके कामोंके लिये उन्हें फुरसत भी नहीं मिलती । सुना जाता है अकेले पंजाबसे करोड़ों रुपये वार्षिक सौन्दर्यके सामानके लिये विदेश जाते हैं । फैशन और आरामतलबीसे कामुकता बढ़ती है, यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है ।

इसके बाद सीनेमाने तो बड़ा ही अनर्थ किया । समाजमें दुराचार फैलानेका काम सीनेमाओंके द्वारा बड़े जोरसे हो रहा है । जबतक बोलनेवाले चित्रपट नहीं थे, तबतक कुछ खैर थी । परन्तु सवाक् चित्र-पटोंका प्रचार जबसे हुआ तबसे तो दिनोंदिन खराबी बढ़ती ही जा रही है । यह सत्य है कि चित्रपट एक कला है और कलाका विस्तार देशकी उन्नतिका सूचक है । परन्तु विचार यह करना है कि जिस कलाके विस्तारसे देशके हृदयमें क्षय रोगका उदय होता हो, जो कला देशके युवक-युवतियोंको शारीरिक और मानसिक संक्रामक व्याधियोंसे ग्रस्त कर परिणाम-में कराल कालके ग्रास बनानेमें और उनके आदर्श पवित्र चरित्रको नाश करनेमें सहायता करती हो, वह कला तो वस्तुतः काल ही है । फिर यह भी प्रश्न है कि कलाकी दृष्टिसे कहाँ कितना प्रचार हो रहा है ? सीनेमा-कम्पनियोंके मालिकोंमें कितने ऐसे हैं जो कलाके लिये इस व्यवसायको करते हैं । मेरी समझमें शायद ही कुछके हृदयोंमें कलाकी उन्नतिका ध्यान होगा । अधिकांशका ध्यान तो धनकी ओर है । धन आता है उन्हीं चित्रपटोंसे जिनको ज्यादा लोग देखना चाहें; और ज्यादा लोग उन्हीं चित्रपटोंको देखना चाहते हैं (कुछ तो ऐसी प्रवृत्ति स्वाभाविक है ही और कुछ सीनेमाओंद्वारा बढ़ रही है) जिनमें सुन्दर युवती स्त्रियोंके अर्धनग्न अंगोंके प्रदर्शनयुक्त पार्ट और शृंगारके गायन हों । इसीलिये नयी फिल्मकम्पनियाँ बड़े-बड़े वेतनोंपर नयी-नयी सुन्दरी युवतियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर लाती हैं, इनमें अधिकांश वेश्या और अर्धवेश्याएँ ही होती हैं । धार्मिक भावोंवाली युवती कुलकन्याएँ तो लाज-शर्मको तिलाञ्जलि देकर परपुरुषोंके साथ मिलकर उनके अंगोंका स्पर्शतक होने देकर खुले अङ्गोंसे नाट्य दिखलानेको क्यों आने लगीं ? [दुःख है कि कुछ समयसे भले घरोंकी लड़कियोंमें भी फिल्मकम्पनियोंमें नाचनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है, यह और भी पतनका चिह्न है] अधिकतर लज्जा छोड़ी हुई वेश्याएँ ही होती हैं । और सनातनधर्मियोंको तो रोना चाहिये कि उनके आलस्य, अविवेक एवं धर्महीनताके कारण व्यर्थ ही कुमारी या मिस कहलानेवाली अर्धवेश्याओंके द्वारा प्रातःस्मरणीया जगज्जननी सीता, जो परपुरुषका अंग स्पर्श होनेके डरसे श्रीहनूमान्‌जीके साथ लंकासे लौटनेको तैयार नहीं हुई थीं, और भगवती योग-माया राधा, सती सावित्री, पार्वती, दमयन्ती और द्रौपदी आदिके निर्लज्ज पार्ट होते हैं !! निर्लज्ज इसीलिये कि उन्हें तो फिल्मकम्पनियोंके मालिकोंकी नमकहलाली करनेके लिये अभिनयमें खुले अङ्ग दिखलाकर और हावभाव बताकर दर्शकोंके चित्तको खींचना है और इसमें उन्हें कोई लज्जा है नहीं । बहुत बुरी बात तो यह है कि इससे दर्शकोंका चित्त केवल चित्रपट देखनेके लिये ही नहीं खिंचता, उन युवतियोंकी ओर भी बुरी वासना उनके मनमें उत्पन्न होती है । जिसका परिणाम पतनके सिवा और कुछ नहीं है । इसी प्रकार दर्शिकाओंके मनोंमें भी बुरी भावनाएँ आती हैं । लज्जा छूटती है, और अमर्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उच्छृङ्खलताकी भावनाएँ बढ़ती हैं। इसीका परिणाम व्यभिचार है, और इसीसे भले घरोंकी लड़कियाँ भी आज धनके लोभसे या मानसिक विकारोंकी प्रेरणासे कुल-मर्यादाको मिटाकर कलाके नामपर और क्रान्तिका बहाना बताकर फिल्मकम्पनियोंमें भर्ती होनेके लिये ललचा रही हैं। भगवान् ही जानें, इसका कितना बुरा फल होगा ! [चित्रपटोंकी अधिकतासे गरीब देशकी जो आर्थिक हानि हो रही है वह भी बड़ी ही भीषण है]।

इसीके साथ पाश्चात्त्य जगत्की नकल करते हुए आजकल हमलोग भी शारीरिक सौन्दर्यको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देने लगे हैं। यूरोपमें रूपकी हाट लगती है। वहाँ सुन्दरी स्त्रियोंके सौन्दर्यकी प्रतियोगिता होती है। उसमें जो सबसे अधिक सुन्दरी साबित होती है उसको इनाम मिलता है, और उसके सौन्दर्यकी ख्याति समाचारपत्रोंद्वारा देशदेशान्तरोंमें फैल जाती है। फल यह होता है कि उसका रूप बहुत-से लोगोंका मन बिगाड़नेमें कारण बनता है। कुछ लोगोंका कहना है कि इस रूपप्रतियोगिताके प्रचारका उद्देश्य स्त्रियोंके स्वास्थ्यको सुधारना है। चाहे यह उद्देश्य रहा हो परन्तु आजकल जो कुछ हो रहा है वह तो बड़ा ही बीभत्स है। उससे तो समाजका मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। इनाम और नामके लोभसे युवतियाँ अपने शीलसङ्कोचको छोड़कर कामुक पुरुषोंके सामने अपने रूप-यौवनको बड़े ही निर्लज्जभावसे कसौटीपर रखती हैं। वे ऐसा शृङ्गार और वेशभूषा बनाती हैं कि जिससे उनके अङ्गोंका सौन्दर्य खुला दीख पड़े। स्त्रियोंके लिये शृङ्गार वर्जित नहीं है, परन्तु वह है एक निर्दिष्ट सीमाके अन्दर। स्त्री पतिकी प्रसन्नताके लिये ही, उसके प्रीति-उत्पादनके लिये ही शृङ्गार करती है। और इस शृङ्गारमें भी सब अवस्थाओंमें अङ्ग खुले नहीं रक्खे जाते। जो शृङ्गार राह चलते लोगोंको सौन्दर्य दिखानेके लिये होता है, और जिसमें शरीरका अधिकांश अनावृत (खुला) रखना आवश्यक होता है, उसको पतनके सिवा और क्या कहा जाय ? ऐसा तो रूपको बेचकर जीविका चलानेवाली वेश्याएँ भी नहीं करतीं। इस रूपप्रतियोगितासे स्त्रियोंकी मर्यादा मिट्टीमें मिल रही है, वे अपने एक विशिष्ट स्थानसे नीचे—बहुत नीचे गिर रही हैं। यह पवित्र शीलवती नारीजातिका घोर पतन है। खेद है कि यह विष भारतवर्षमें भी फैल रहा है। कुछ दिनों पहले सुना था, पंजाबमें ऐसा एक रूपका बाजार लगा था। इस अवस्थामें भी व्यभिचार नहीं बढ़ेगा तो कब बढ़ेगा।

इसके सिवा स्वतन्त्रता और समान अधिकार तथा सुधारके नामपर आज जो अनर्गल अनाचार हो रहा है, उससे तो सुधारकी जगह संहार ही हो रहा है। आजकल जड़को काट डालना ही सुधार समझा जाता है। इस सुधारोन्मत्तताने भी दुराचारके पथपर समाजके युवक-युवतियोंको अग्रसर करनेमें बड़ी भारी सहायता पहुँचायी है।

सुधारमें भी संयमकी आवश्यकता है। असंयमपूर्ण सुधारसे जितना नाश होता है उतना सुधार न होनेसे नहीं होता। आज असंयमपूर्ण सुधारकी भयावनी धारा सब ओर बह रही है। इसमें किसी भी पुरानी मर्यादा, सद्भावना और सात्त्विकताको स्थान नहीं है। बस, विध्वंस—केवल विध्वंस !! इस विध्वंसकी चिनगारीका यह दुष्ट फल है कि हमारी सती, सदाचारिणी, शील-सङ्कोचवती, पुण्यचरित्रा और धर्मभीरु, देवपूजिता कुलकन्याएँ मोहवश आँखें मूँदकर नारकीय अग्निकुण्डमें कूदनेको तैयार हो रही हैं और हम उन्मत्त इसे मान रहे हैं—उन्नति !!!

मेरे विचारसे इस पापसे बचनेके उपाय ये हैं—यद्यपि कालकी प्रतिकूलतासे कठिनता बहुत है परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावधानीके साथ उत्साहपूर्वक अनवरत चेष्टा की जाय तो बहुत अंशमें यह बढ़ता हुआ पाप कम हो सकता है।

१—यथासाध्य शिक्षाक्रममें धार्मिक और सदाचार-सम्बन्धी पुस्तकें रखवाना।

२—प्राचीन कथाओं, उपदेशों और युक्तियोंद्वारा भारतीय सभ्यताके महत्त्वका प्रचार करना।

३—स्कूल-कालेजोंमें लड़के-लड़कियोंको एक साथ नहीं पढ़ाना।

४—कन्याओंको अँगरेजीकी उच्च शिक्षा दिलानेका मोह छोड़ देना।

५—ईश्वर और धर्ममें श्रद्धा बढ़े ऐसे साहित्य और विचारोंका प्रचार करना।

६—यथासाध्य सीनेमा आदि न देखना; और उनकी बुराइयोंसे घरको तथा समाजको बचाये रखनेकी चेष्टा करना।

७—अपने जान-पहचानमें कोई लड़की चित्रपटमें नाट्य करना चाहे तो उसे समझा-बुझाकर उसकी बुराइयाँ समझाकर रोकना।

८—माता-पिता या अभिभावकोंको यह ध्यान रखना जिसमें युवती होनेके पहले ही लड़कीका विवाह कर दिया जाय।

९—यथासाध्य लड़कोंको भी बहुत बड़ी उम्रतक कुँआरे न रखना। मैंने विश्वस्त सूत्रसे सुना था कि भारतवर्षके एक प्रसिद्ध बड़े नगरकी सरकारी युनिवरसिटीके छात्रोंमें ६० प्रतिशत अविवाहित लड़के बुरी बीमारियोंसे ग्रसित हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अरण्यवासी विषयत्यागी विरक्त पुरुषोंके हृदयमें भी जब दुःसङ्गवश विकार उत्पन्न हो जाता है, तब आजकलके विलासितापूर्ण अमर्यादित, धर्मभयशून्य वातावरणमें, फैशन और सजावटमें सने हुए, शृङ्गारकी कविताएँ और नाटक-उपन्यास पढ़नेवाले, कृत्रिम उपायोंसे सन्तति-निरोधकी सुविधा रहते, साथ-साथ रहनेवाले युवक-युवतियोंसे सर्वथा पवित्र बने रहनेकी आशा रखना, उनकी शक्तिसे अधिक आशा करना है—दुराशामात्र है। अतएव योग्य वयमें उनका विवाह कर देना उत्तम है।

१०—पढ़नेवाली लड़कियोंमें भी फैशन न आवे, और वे घरका काम-काज खुद कर सकें ऐसी आदत माता-पिताको खुद आदर्श बनकर उनमें डालनी चाहिये। उन्हें घरका काम सिखाना और उनसे कराना चाहिये। फैशन, विलासिता, आलस्य, आरामतलबीको विषैले भावोंसे उन्हें बराबर बचाना चाहिये। याद रखना चाहिये कि गृहस्थसञ्चालनमें निपुण शील और चरित्रवती कर्तव्यपरायणा स्त्री ही वास्तवमें शिक्षिता है, कई भाषाओंको जाननेवाली नहीं।

११—रूपप्रतियोगिताके विचारोंका घोर विरोध करना चाहिये। कम-से-कम भारतीय संस्कृति-की दृष्टिसे तो यह बहुत ही बुरी बात है। बाजारमें बैठकर रूप बेचनेवाली वेश्याओंसे भी यह व्यवहार नीचा है, क्योंकि यह भले घरोंकी कुललनाओंद्वारा किया जाता है। हमारी आदरणीया माता और बहिनोंको इसकी बुराइयाँ समझकर इससे दूर रहना चाहिये, इतना ही नहीं, ऐसे आयोजन इस देशमें न होने पावें ऐसी चेष्टा करनी चाहिये।

१२—जो वास्तवमें सुधार करना चाहते हैं, वे महानुभाव संयम और धीमी चालसे चलनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा करें। डालियोंके सुधारके लिये पेड़की जड़ न उखाड़ें। ऐसा उपदेश न करें जिसमें भोगोंकी प्रवृत्ति जोर पकड़े। इन्द्रिय-भोगोंके लिये सन्तति-निरोधके कृत्रिम उपायोंको काममें लानेकी कभी सलाह न दें। ये उपाय अप्राकृतिक हैं और दोषयुक्त हैं तथा व्यभिचारकी वृद्धिमें बड़े ही सहायक हैं। बीमारी, दरिद्रता आदि कारणोंसे सन्तति-निरोधकी आवश्यकता होती है परन्तु उसका भी असली इलाज संयम ही है।

इसी प्रकार सभी विधवा बहिनोंको भी भोगोंके अभावमें दुःखोंके चित्र दिखलाकर उनके मनको न बिगाड़ें, उन्हें संयमके मार्गसे च्युत न करें। विधवामात्र ही संयमसे नहीं रह सकती ऐसा मानना उचित नहीं है। वातावरणके दोषसे ही विकार उत्पन्न होता है। आज भी सैकड़ों पवित्र विधवाएँ हैं, उनके पवित्र शीलव्रतपालनके आत्मविश्वास और उनकी प्रबल इच्छाशक्तिको कमजोर न करें।

ऐसे साहित्य और चित्रोंका प्रचार न करें जिनसे स्त्री-पुरुषोंके विषय-भोगकी प्रवृत्तिको उत्तेजना मिलती हो। (खेद है कि आजकल बहुत-से साहित्यिक और चित्रपटसम्बन्धी पत्रोंमें युवती स्त्रियोंके छायाचित्र बहुत अधिक मात्रामें छपते हैं, जिनका परिणाम अच्छा नहीं हो रहा है। सम्मान्य सम्पादक महोदयोंकी सेवामें मेरा नम्र निवेदन है कि वे एक बार इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें।) फैशनके दोष और सादगीके गुण उनके सामने रक्खें और पाश्चात्त्य संस्कृतिके पीछे—आँखें बन्द करके बह जानेकी सलाह कृपया कभी न देवें।

यह मेरी हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना है; आज्ञा नहीं। मुझे इसीमें सच्चा सुधार दीख पड़ता है। ऐसा मेरे दृष्टिकोणके कारण ही हो सकता है। मैं आपलोगोंकी नीयत और ईमानदारीपर किसी प्रकारका सन्देह या दोषारोपण नहीं करता हुआ नम्रतापूर्वक आपके सामने मेरे ये विचार विचारार्थ रखता हूँ। इनमें जो अच्छे मालूम हों उनपर विचार करें, शेष तो मेरे विचार मेरे पास ही रहेंगे। कहीं कटूक्ति आ गयी हो तो क्षमा करें।

१३—जो सज्जन इन विचारोंके अनुकूल हों उनको चाहिये कि समाचारपत्रों तथा सामाजिक और साहित्यिक मासिक पत्रोंद्वारा इन भावोंका प्रचार करनेकी चेष्टा करें। धर्महीन शिक्षा, यूरोपकी सामाजिक संस्कृति, लड़के-लड़कियोंकी सहशिक्षा, लड़कियोंको अँगरेजीकी उच्च शिक्षा, युवतीविवाह, फैशन और विलासिता, वर्तमान चित्रपट, सौन्दर्यप्रतियोगिता, सन्तान-निरोधके कृत्रिम साधन और सुधारके नामपर होनेवाले संहारके दोष नम्रता और प्रेमके साथ युक्तिपूर्ण शब्दोंमें सबके सामने बार-बार रक्खें और इनके विपरीत गुणोंके युक्तिपूर्ण लाभ बतलावें।

ऐसा होगा तो आपलोग दुराचारके पथपर जाते हुए हमारे समाजके जीवनस्वरूप हमारे हृदयके टुकड़े और हमारी आँखोंके तारे कोमलहृदय लड़के-लड़कियोंको विनाशके भड़कीले पथसे हटाकर सदाचारके सुहावने पथपर ला सकेंगे।

इसमें मैंने जो कुछ लिखा है, किसीका दिल दुखानेके लिये कुछ भी नहीं लिखा है। वस्तुस्थिति जैसी कुछ मेरे ध्यानमें आयी, उसीका दिग्दर्शन करवाया गया है। इसमें मेरी भूल भी हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूलोंके लिये मैं पहले ही क्षमा चाहता हूँ, वास्तवमें मैं ऐसा अनुभवी और दूरदर्शी मनुष्य नहीं हूँ जो समाजसुधारके लिये यथार्थ उपाय बता सकूँ। सम्भव है मेरा यह निरीक्षण और परीक्षण ही सदोष हो, परन्तु मुझे अपने विचारोंमें इस समय कोई सन्देह नहीं है। अन्तमें मेरा एक निवेदन है कि इस सम्बन्धमें मुझसे कोई सज्जन लिखा-पढ़ी न करें, और न 'कल्याण'में ही कुछ लिखनेका अनुरोध करें। इन भाईके विशेष आग्रहसे ही मैंने अपने विचार लिखे हैं।

क्षमाप्रार्थी,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीराम-नाम-महिमा

(रु०—श्रीसुखरामजी चौबे 'गुणाकर')

बने रेफ़-अनुस्वार विराजे हैं वर्णोंके जो सिरपर।
छत्र-मुकुट-मणिसे दिपते हैं ये दोनों सुन्दर हितकर॥टेक॥
व्यञ्जनादिमें बसा हुआ है जैसे सुस्वर वर्ण अकार।
उसी भाँतिसे बसे हुए हैं ये भूपर सबके सरदार॥
जैसे एक सभी अंकोंमें समा रहा है भेद-विसार।
तैसे ही ये सबमें व्यापक हैं प्यारे गुणके आगार॥
अमृत, आम, इमरती, मिश्री इनके द्वारा हैं प्रियतर॥१॥

त्यों ब्रह्मा, विश्वम्भर, सुरवर और महेश्वर सर्व प्रधान।
इन दोनोंके युत होनेपर माने जाते सकल जहान॥
मुद्रा, मुहर तथा मरकत मणि रखें सुरक्षित जन धनवान।
क्योंकि इन्होंमें दोनों ये नित रहें परम प्रिय मोद-निधान॥
कृष्ण, विष्णु, वम, ओम् ब्रह्मसे इनका उच्चारण सुखकर॥२॥

नाम-वर्णको करो चौगुना पीछे उसमें पाँच मिलाव।
फिर दुगुना कर देओ सत्वर बाद आठका भाग लगाव॥
बचे रहेंगे ये दो ही प्रिय जिनमें शिवका उत्कट भाव।
त्रयगुण, त्रयसुर, अग्नि, भानु, शशिमें व्यापक हैं सरल स्वभाव॥
प्रकृति-पुरुष कहते हैं कोविद भक्त कहें प्रिय सिय-रघुवर॥३॥

'र' कहनेसे उदर दबकता 'म' से फिर वह जाता फूल।
इसी भाँति जो कहो निरंतर होयँ दूर रोगादिक शूल॥
यदि 'मथुरा' 'विश्राम' आदिसे जुदे रहें ये हो प्रतिकूल।
'थू' 'विष' सत्वर शब्द मनोहर हो जावेंगे मटियामूल॥
राम-नामको सदा 'गुणाकर' जपकर जावेगा भव-तर॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ श्रीहरिः ❀

परीक्षा-फल श्रीरामायण-प्रसार-समिति, गोरखपुर संवत् १९९१ वि०

उत्तमा द्वितीय खण्ड

द्वितीय श्रेणी—१, २, १५
तृतीय श्रेणी—५, २१
उत्तीर्ण—३, ११, १८

उत्तमा प्रथम खण्ड

द्वितीय श्रेणी—१, २२, २३, २४, ३२, ४१, ४२, ७३ अ, ८०
उत्तीर्ण—२, ९, १३, १७, १८, २०, २१, २५, ४३, ४४, ४५, ५०, ७३, ७८, ७९, ८१

मध्यमा

प्रथम श्रेणी—६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, ५८, ७८, ७९, ९२, ९८, १०१, १२७, ३५६, ३५८, ३७२, ३७३, ३८०, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०५, ४१०, ४११, ४१२, ४१८, ४१९, ४७५, ४७७।

द्वितीय श्रेणी—१, १३, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २९, ३३, ५६, ६७, ६९, ७६, ७७, ८०, ८८, ८९, ९४, ९९, १०२, १०५, १०६, १०७, १०९, ११४, ११६, १२०, १२४, १२५, १२६, १४३, १५३, १६०, १६१ १६२, १६३, १६४, १६६, १६७, १६८, १७०, १७१, १७४, १७६, १७७, २०२, २०३, २११, २१४, २१५, २१७, २२१, २२७, २२९, २३६, २३७, २३८, २३९, २४५, २५१, २५४, २५५, २५६, २५७, २६८, २६९, २७१, २८९, २९५, २९६, २९८, ३०१, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१३, ३२४, ३२८, ३३५, ३३६, ३५७, ३५९, ३६१, ३६३, ३६५, ३७५, $\frac{३७५}{२}$, ३७८, ३९१, ४०३, ४०४, ४०७, ४०९, ४१५, ४१७, ४२१, ४४०, ४४८, ४५०, ४५९अ, ४६४, ४६५, ४७२, ४७३, ४७४, ४७८, ४८३, ४८४, ४९५, ४९९, ५०४।

तृतीय श्रेणी—२, २८, ६१, ८६, ११०, ११३, ११५, १४०, १४२, १४४, १४५, १४७, १४८, १४९, १५०, १५४, १५९अ, १६५, १६९, १७८, १८०, १८३, १८४, २०१, २०६, २१३, २२२, २३५, २४१, २४३, २६३, २७०, २८६, २८७, २९७, ३२३, ३२५, ३२७, ३२९, ३३२, ३३३, ३३४, ३३९, ३४५, ३४६, ३४७, ३५०, ३५३, ३५५, ३७१, ३७६, ४०८, ४१३, ४१६, ४२०, ४२२, ४३०, ४३२, ४३८, ४४२, ४४५, ४७१।

उत्तीर्ण—४, २७, ३४, ५१, ६०, ६३, ७१, ७२, ७५, ८२, ८४, ८५, ९१, ९३, ९५, ९७, १००, १०४, १११, ११७, ११९, १२१, १२३, १३२, १३३, १५६, १५८, १५९, १७२, १७३, १७५, १७९, १८२, १८५, १८६, १८७, १८८, १९०, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २५८, २५९, २६२, २६७, २७७, २९०, ३११, ३५२, ३५४, ३६४, ३६८, ३६९, ३७०, ३७७, ४०६, ४२३, ४३१, ४३६, ४३७, ४५९, ४६३, ४७०, ५००।

प्रथमा

प्रथम श्रेणी—७०, ८८, ९१, ९३, ९६, ९७, २०६, २२१, २२२, २२९, २५०, २६४, २६९, २७३, २८२, २९३, ३२२, ३२५, ३३५, ३३७, ३४१, ३४२, ३४६, ३५३, ३५६, ३५७, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६५, ३६७, ३६८, ३६९, ३७१, ३७४, ३७७, ३८२, ३८५, ३८६, ३९३, ३९४, ३९७, ३९९, ४०१, ४१३, ४१५, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४४०, ५८३, ५८४, ५८५, ५९१, ६०३, ६०९, ६१०, ६११, ६३०, ६३५, ६३६, ६३९, ६४९, ६५५, ६५८, ६६०, ६६१, ६६५, ६८१, ६९२, ६९४, ६९८, ७०२, ७११, ७१४, ७३९, ७४८, ७५९, ८०६, ८४३, ८४८, ८५०, ८५७,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८७८, ८९१, ९४४, ९५६, ९९१, ९९२, ९९४, ९९५, ९९८, ९९९, १०००, १०९०, १०९३, १०९४, ११३०, ११४९ ११५४, ११५७, ११८४, १२०१, १२०५, १२०६, १२०७, १२०८, १२२५, १२२६, १२२७, १२४६, १२५३, १२६७, १२८१, १३४४, १३४५, १३४६, १३४७, १३५२, १३६३, १३६७, १३६८, १३६९, १३७०, १३७१, १३७२, १३७५, १४३३, १४४४, १४५२, १५२१, १५२६, १५३२, १५३२ अ, १५३३, १५७१, १५७२, १५७७, १५८०, १५८२, १५८३ ।

द्वितीय श्रेणी—४, ५, ९, १२, १८, २२, २३, ३८, ४०, ४१, ४२, ४५, ५२, ५३, ५५, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६७, ६८, ६९, ७३, ७५, ७८, ८१, ८५, ८६, ९५, ९८, ९९, १००, १०३, १०४, १०५, १०८, ११०, ११७, १२१, १२२, १२८, १२९, १३०, १३२, १३५, १३७, १४१, १४३, १४४, १४५, १४६ अ, १४९, १५१, १६२, १७४, २१०, २११, २१२, २१३, २१६, २२७, २३४, २३५, २३९, २५८, २६२, २६३, २६६, २६८, २७०, २७६, २७८, २७९, २८०, २८५, २९६, ३१२, ३३६, ३७०, ३७८, ३९१, ३९५, ३९७ अ, ४००, ४११, ४१८, ४१९, ४३०, ४४१, ४४४ ४५४, ४५७, ४५८, ५६७, ५७१, ५७२, ५७९, ५८२, ५८६, ५८७, ५९२, ५९४, ६०४, ६२७, ६३३, ६३४, ६५६, ६५७, ६८२, ६८५, ६९०, ६९१, ६९६, ६९७, ७०१, ७०३, ७१२, ७१३, ७१८, ७१९, ७३२, ७३५, ७४०, ७४४, ७४७, ७५१, ७५३, ७५६, ७५८, ७६१, ७७७, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८९, ७९१, ७९३, ७९८, ७९९, ८००, ८०२, ८०४, ८१२, ८१३, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२७, ८३२, ८३५, ८४४, ८४६, ८४९, ८५१, ८५९, ८६०, ८६१, ८६७, ८७७, ८७९, ८८३, ८८९, ८९६, ८९८, ९०४, ९०५, ९१४, ९२१, ९३३, ९४०, ९४३, ९४८, ९५०, ९५१, ९५२, ९५७, ९५८, ९६४, ९६८, ९७०, ९८१, ९८४, ९८७, ९८९, ९९६, १००१, १००३, १०१०, १०११ अ, १०१९, १०२२, १०२३, १०२७, १०३६, १०३९, १०४१, १०४४, १०४७, १०५४, १०५८, १०६०, १०६१, १०६३, १०६५, १०६६, १०७०, १०७२, १०७७, १०७८, १०८१, १०८२, १०८३, १०८५, १०९१, ११२३, ११४०, ११४१, ११४३, ११४४, ११४५, ११४६, ११५१, ११५२, ११५३, ११५५, ११५६, ११५८, ११५९, ११६४, ११६५, ११८६, ११८८, ११९१, ११९६, ११९७, ११९९, १२००, १२०३, १२०४, १२०९, १२१८, १२३६, १२३७, १२३८, १२४७, १२४८, १२५८, १२६०, १२६६, १२६८, १२७१, १२७३, १२७७, १२७८, १२७९, १२९७, १३३९, १३४८, १३५३, १३६२, १३६६, १३७३, १३७४, १३८०, १३८७, १३९९, १४००, १४०२, १४०५, १४१२, १४१३, १४१५, १४२१, १४२३, १४२५, १४२६, १४२९, १४३४, १४३५, १४३६, १४४०, १४४२, १४४६, १४४७, १४४८, १४६९, १४७३, १४८८, १४९९, १५०६, १५०८, १५२३, १५२७, १५२८, १५३४, १५५३, १५७४, १५७६, १५७८, १५७९ ।

तृतीय श्रेणी—६, १३, २४, २५, ४४, ५४, ५६, १०१, १०२, १०७, १०९, ११२, १२०, १२५, १२७, १५०, १६६, १९७, ३३०, ३५०, ४४७, ४४९, ४५०, ४५६, ५६०, ५८९, ५९८, ६२५, ६३७, ६८६, ७००, ७३२ अ, ७३६, ७५७, ७६०, ७६२, ७६३, ७७०, ७९४, ८१५, ८२५, ८६३, ८६९, ८८८, ९००, ९०१, ९०६, ९०८, ९११, ९२४, ९२७, ९२८, ९३९, ९५४, ९६६, ९७९, ९८२, ९९०, १००८, १०१८, १०४२, १०४६, १०५०, १०५३, १०६४, ११३७, ११४८, ११६०, ११६१, ११६२, ११८५, ११८७, ११९४, १२१०, १२१२, १२१३, १२१४, १२१७, १२३०, १२३९, १२४०, १२४३, १२४४, १२४५, १२४९, १२५०, १२५६, १२५९, १२६३, $\frac{१२७१}{२}$, १२७६, १२९९, १३८१, १३८८, १३९४, १३९५, १३९६, १३९७, १४०१, १४१७, १४३२, १४६६, १५३१, १५४५, १५४७, १५४८, १५५०, १५८४, १५८५ ।

उत्तीर्ण—८, २०, २६, ३७, ८७, १०६, ११३, ११८, १२३, १३८, १४८ अ, १५४, १६७, १६८, १६९, १७२, १७७, १७९, १८७, १९५, २०४, २०९, २१० अ, २१४, २१५, २१८, २१९, २२०, २२३, २२४, २२५, २२८, २३१, २३८, २५५, २६०, २६५, २६७, २७१, २७२, ३००, ३०३, ३११, ३१३, ३१९, ३२०, ३२४, ३३१, ३५४, ३५८, ४१२, ४१७, ४२०, ४२१, ४२२, ४४५, ४५२, ४५३, ४५५, ५८८, ५९०, ५९३, ६१४, ६१९, ६२४, ६२६, ६३१, ६३२, ६४२, ६४४, ६४६, ६८४, ६९५, ७३१, ७३३ ७५२, ७६४, ७७५, ७७९,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८०७, ८११, ८२१, ८३८, ८५२, ८५४, ८७१, ८८०, ८८२, ८९९, ९०९, ९१५, ९१८, ९२३, ९४६, ९६३, ९७१, ९८८, १००५, १००७, १०३८, १०४०, १०४३, १०५६, १०५७, १०७१, १०७३, १०७४, १०७५, ११००, १११८, ११२९, ११३०, ११३२, ११३३, ११३४, ११३५, ११३६, ११४२, ११४७, ११६३, १२३२, १२५१, १२६४, १३७७, १३७९, १३८४, १३८६, १३९१, १३९२, १३९३, १३९८, १४०९, १४१४, १४१६, १४१९, १४२०, १४२२, १४३०, १४३७, १४३९, १४९२, १४९६, १५०२, १५४९, १५५१, १५८६ ।

शिशु-परीक्षा

प्रथम श्रेणी–२७, २८, २९, ३०, ३७, ४३, ४८, ४९, ९२, १०९अ, १३३, १७३, १८०, १८९, २००, २११, २१५, २३९, २६०, २६५, २८७, २९२, ३१३, ३१५, ३१६, ३२४, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३५३, ३६०, ४६५, ४९५, ४९७, ५०९, ५११, ५१४, ५१९, ५३३, ५३८, ५४९, ५७९, ५८१, ५८३, ५८४, ५८६, ५९०, ५९१, ६०६, ६०८, ६११, ६१५, ६२४, ६२५, ६२६, ६३५, ६३६, ६३७, ६३९, ६४०, ६४२, ६४६, ६४७, ६४८, ६५०, ६५१, ६५६, ६७४, ६७५, ६७७, ६८०, ६९८, ७२४, ७२५, ७३७, ७९२, ७९३, ७९४, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०२, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८२८, ८९६, ९०४, ९०५, ९१७, ९३२, ९३३, ९४६, ९८६, १००३, १००४ १००७, १००८, १०१०, १०१४, १०५८, १०६०, १०६१, ११३३, ११३४, ११३५, ११३६, ११३८, ११३९, ११४०, ११४१, ११४२, ११४३, ११४४, ११४५, ११४६, ११४८, ११४९, ११५०, ११५५, ११५७, ११५८, ११५९, ११६०, ११६३, ११६४, ११६५, ११६६, ११६७, ११६८, ११७०, ११७२, १२०९, १२११, १२५३, १२६४, १२६९, १२७१, १३००, १३०५, १३०८, १३१२, १३१६, १३२४, १३३५, १४१६, १४३९, १४४३, १४४४, १४४५, १४४६, १४७६, १४७८, १४८०, १४८२, १४८४, १४८५, १४८८, १४९०, १४९३, १४९५, १४९७, १४९८, १५००, १५०१, १५०२, १५०८, १५१२, १५१५, १५१८, १५२१, १५३४, १५३५, १५३६, १५३७, १५३८, १५३९, १५४०, १५४२, १५४४, १५५२, १५६०, १५६२, १५६३, १५६७, १५६९, १५७५, १५७६, १५७७, १५८०, १५८६, १५८७, १५९१, १६१०, १६११, १६१५, १६१९, १६४१, १६४५, १६४६, १६४७, १६४८, १६५०, १६५२, १६७०, १६७२, १७१२, १७१५, १७१७, १७१८, १७२०, १७२२, १७२४, १७२५, १७२६, १७२७, १७४२, १७४४, १७४५, १७५६, १७६५, १७६६, १७७५, १७८७, १७९५, १८१०, १८१४, १८२२, १८२३, १८२५, १८२७, १८३७, १८५८, १८६०, १८६२, १८६३, १८७८, १८८२, १८९५, १९३९, १९४५, १९९१, २०००, २००२, २००३, २००६, २००७, २०२४, २०२७, २०२८, २०२९, २०३०, २०४६, २०७०, २०७३, २०७४, २०७५, २०७६, २०७७, २०८१, २०८४, २०८५, २०९५, २०९६, २०९७, २१०९, २११३, २१२४, २१२९, २१८१, २१९४, २१९७, २१९९, २२०३, २२०४, २२०८, २२१७, २२२१, २२२६, २२३७, २२४८, २२८२, २२८४, २२९४, २२९५, २२९७, २२९८, २३१२, २३३७, २३४०, २३४१, २३५२, २३५३, २३८१, २३८२, २३८३, २३८६, २३८८, २३९१, २३९३, २३९४, २३९५, २३९७, २४०९, २४२४, २४५६, २४६०, २४७३, २४७६, २४९०, २४९२, २४९४, २४९८, २५००, २५०३, २५२९, २५३०, २५३१, २५३२, २५३७, २५३८, २५४१, २५४३, २५४४, २५४५, २५४६, २५४७, २५४८, २५५०, २५५१, २५५२, २५५३, २५५४, २५८१, २५८२, २५८३, २५८५, २६१०, २६२०, २६५४, २६५५, २६५९, २६७०, २६८५, २७४२, २७६४, २७६६, २८१३, २८१६, २८१८, २८२८, २८३२, २८३३, २८६८, २८८०, २८८१, २८८२, २९०६, २९०८, २९१२, २९४४, २९४५, २९४९, २९५३, २९६४, २९६५, २९६७, २९६९, २९७१, २९७२, २९७६, २९७८, २९८०, २९८३, २९८५, २९८६, २९८७, २९८९, २९९०, २९९१, २९९२, २९९३, २९९४, २९९६, ३०००, ३०७५ ।

द्वितीय श्रेणी–३५, ४४, ५०, ५५, ६५, ७०, ७६, ९४, ९७, १००, १११अ, ११७, १२२, १२३, १२७, १२९, १३२, १४७, १५७, १५८, १५९, १६१, १६२, १६५, १७४, १७६, १८१, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १९०, १९३, १९४, १९६, १९७, १९८, १९९, २०१, २०२, २०५, २०६, २०८, २०९, २१०, २१३, २१५अ, २१७,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२०, २२३, २२५, २२८, २३१, २३२, २४१, २४४, २५१, २५३, २९१, २९४, ३०१,
३०३, ३१४, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३३२, ३४०, ३४१, ३४८, ३४९, ३५५, ३५६,
३५७, ३५८, ३६३, ३६५, ३६८, ३६९, ३७१, ३७२, ३८०, ३८२, ३८३, ३८७, ३९४,
४०९, ४१७, ४३३, ४३८, ४३९, ४४६, ४५०, ४५९, ४७८, ४८७, ४९६, ४९८, ५०२,
५०३, ५०५, ५०६, ५१०, ५१२, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७,
५४०, ५४३, ५४८, ५५१, ५५४, ५५५, ५६०, ५६१, ५६२, ५६४, ५६५, ५६९, ५७२,
५७६, ५७७, ५७८, ५८०, ५८२, ५८५, ५८९, ५९२, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८,
५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०५, ६०७, ६०९, ६१२, ६१३, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९,
६२०, ६२१, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६४३, ६४४, ६४५, ६४९, ६५५, ६६५, ६६६,
६८९, ६९२, ६९३, ६९४, ६९९, ७००, ७०१, ७०३, ७१०, ७११, ७१७, ७४८, ७५०,
७७३, ७७४, ७८१, ७८४, ७९५, ८०१, ८०३, ८११, ८१७, ८२३, ८३२, ८५७, ८७८,
९०१, ९०६, ९०९, ९११, ९१२, ९१४, ९१५, ९१६, ९१९, ९३४, ९३५, ९३७, ९३८, ९३९, ९५०,
९५१, ९५२, ९५७, ९५८, ९६८, ९८०, ९८२, ९८३, ९८९, ९९२, ९९६, ९९७, १००१, १००६, १००९,
१०११, १०१३, १०२८, १०७६, १०७७, १११२, ११२७, ११३२, ११३७, ११४७, ११५२, ११५३, ११५४,
११६१, ११६२, ११६९, ११७१, ११७३, ११७४, ११७५, ११७६, ११८३, ११८४, ११९२, १२१०, १२१९,
१२२३, १२२४, १२२७, १२५६, १२५९, १२७३, १२७५, १२७६, १२७७, १२७९, १२८०, १२८७, १२९०,
१२९५, १२९९, १३०२, १३०७, १३०९, १३१०, १३१३, १३१८, १३१९, १३२०, १३२१, १३२३, १३४७,
१३५५, १३५८, १३६३, १३६४, १३६८, १३७६, १३८२, १३८४, १३८६, १३८८, १३९५, १३९९, १४००,
१४०१, १४०२, १४०४, १४०५, १४०६, १४०७, १४१०, १४११, १४१५, १४१९, १४२०, १४२२, १४३५,
१४४०, १४५५, १४५६, १४६७, १४७०, १४७१, १४७४, १४७९, १४९१, १५०४, १५०६, १५०९, १५१६, १५१७,
१५१९, १५२०, १५२२, १५२५, १५२८, १५२९, १५३१, १५३२, १५३३, १५४३, १५५१, १५७३, १५९२,
१५९५, १५९६, १५९७, १६००, १६१२, १६१३, १६१६, १६१७, १६१८, १६२२, १६२३, १६३१, १६३२,
१६३६, १६३७, १६३८, १६४०, १६४४, १६४९, १६५३, १६५५, १६५७, १६५९, १६६०, १६६१, १६६९,
१६७७, १६८२, १६९६, १७१३, १७१४, १७२८, १७३२, १७३४, १७३८, १७४३, १७५९, १७६०, १७६१,
१७७४, १७७८, १७८२, १७८३, १७८५, १७८६, १८००, १८१५, १८३१, १८३५, १८५५, १८५६, १८५७,
१८६१, १८७२, १८७३, १८७४, १८८३, १८८५, १८८६, १८८९, १८९०, १८९२, १८९६, १९१९, १९२१,
१९२३, १९३०, १९३३, १९३४, १९३५, १९३६, १९४४, १९४६, १९५३, १९७९, १९८४, १९८५, १९८८,
१९९०, १९९३, १९९४, २००१, २००४, २००५, २००८, २००९, २०२६, २०३१, २०३२, २०३४, २०३५,
२०३८, २०३९, २०४१, २०४२, २०४५, २०६१, २०६२, २०७८, २०८०, २०८३, २०८७, २०९८, २१०१,
२१०४, २१११, २११२, २१२७, २१२८, २१३१, २१३२, २१३३, २१३४, २१३५, २१३६, २१३७, २१३८,
२१३९, २१४०, २१४१, २१५९, २१६३, २१६७, २१६८, २१८२, २१८८, २१९२, २१९५, २१९८, २२०१,
२२०२, २२०५, २२०६, २२०९, २२१५, २२१८, २२३२, २२३९, २२४४, २२४५, २२४६, २२४७, २२४९,
२२५५, २२५८, २२६५, २२७२, २२७४, २२७५, २२७९, २२८५, २२८६, २२८७, २२८८, २२८९, २२९१,
२२९३, २२९६, २३०३, २३०४, २३०५, २३०६, २३०७, २३०८, २३१४, २३१६, २३१८, २३२०, २३२१, २३२२,
२३२४, २३२५, २३२६, २३२९, २३३०, २३३८, २३३९, २३४३, २३४६, २३४८, २३४९, २३५४, २३५५,
२३५७, २३७६, २३७७, २३७८, २३७९, २३८०, २३८४, २३८७, २३८९, २३९२, २३९९, २४००, २४०२, २४०३,
२४०४, २४०५, २४०७, २४०८, २४१०, २४१५, २४१६, २४१७, २४१८, २४१९, २४२१, २४२६, २४२८,
२४२९, २४३१, २४३२, २४३३, २४३४, २४३६, २४३७, २४३८, २४३९, २४४०, २४४१, २४४२, २४४३,
२४४५, २४४७, २४४८, २४४९, २४५०, २४५५, २४५७, २४५८, २४५९, २४६२, २४६३, २४६६, २४६७,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४६९, २४७२, २४७९, २४८४, २५०६, २५१६, २५१८, २५२०, २५३३, २५३४, २५३५, २५३६, २५४०,
२५४२, २५४३, २५४६, २५४९ अ, २५५४, २५५५ अ, २५५६, २५५६ अ, २५५९, २५५७ अ, २५५८ अ,
२५५९ अ, २५६० अ, २५६१ अ, २५६२, २५७४, २५७५, २५७७, २५७९, २५८०, २५८४, २६००, २६०५,
२६०९, २६१४, २६१७, २६२१, २६२२, २६२३, २६२९, २६३०, २६३२, २६३५, २६३९, २६४३, २६४४,
२६४६, २६४८, २६६५, २६६६, २६७१, २६७५, २६७७, २६८६, २६९९, २७०६, २७२०, २७२१, २७२४,
२७३२, २७३७, २७३८, २७४०, २७४१, २७४३, २७४४, २७४५, २७४८, २७४९, २७५०, २७५१, २७५५,
२७५६, २७५७, २७५८, २७५९, २७६०, २७६१, २७६२, २७६३, २७६७, २७६८, २७६९, २७७१, २७७२,
२७९३, २७९४, २७९५, २७९६, २७९७, २७९९, २८०१, २८०२, २८०३, २८०४, २८०७, २८०९, २८१०,
२८१४, २८१९, २८४४, २८४५, २८४६, २८६६, २८७४, २८८३, २८८६, २८८७, २८८८, २८८९, २८९२,
२८९३, २८९६, २८९७, २८९८, २८९९, २९००, २९०३, २९०५, २९११, २९२०, २९२७, २९२९, २९३०,
२९३१, २९४८, २९५१, २९५९, २९६०, २९६१, २९६६, २९६८, २९७४, २९८१, २९९७, ३००२, ३००६,
३००७, ३००९, ३०१०, ३०१२, ३०१४, ३०२१, ३०३७, ३०४१, ३०४२, ३०४४, ३०५७, ३०६३, ३०६४,
३०६५, ३०६६, ३०६८, ३०६९, ३०७०, ३०७१, ३०७२, ३०७४, ३०७७, ३०७८।

तृतीय श्रेणी–४, २२, २६, ३८, ६३, ६४, ६६, ७२, ७४, ८८, ९५,
९९, १०३, १०६, १०७, १०८, ११५, ११८, १२१, १५०, १६४, १७१, १७७, १८२,
१९२, २०३, २०४, २१४, २२२, २३०, २४०, २४३, २४८, २६४अ, २८०, ३०७, ३२३,
३३५, ३३६, ३३९, ३४२, ३४५, ३४७, ३५०, ३७०, ३९३, ३९९, ४१३, ४२३, ४२४,
४२७, ४४०, ४४७, ४४८, ४५१, ४५४, ४६४, ४७४, ४७६, ४८०, ४९९, ५०८, ५२६,
५४६, ५४७, ५५६, ५५९, ५६३, ५६७, ६२९, ६६१, ६७१, ६८२, ६८३, ६९०, ७०९, ७२६,
७२९, ७५४, ७७$\frac{1}{2}$, ८४४, ८४६, ८४७, ८४९, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४,
८६६, ८६९, ९०३, ९०८, ९१३, ९२९, ९४२, ९४८, ९४९, ९५४, ९६७, ९७१, ९७४, ९७६,
९७७, ९८७, ९८८, १०००, १०४३, १०४७, १०५४, १०५७, १०६४, १०७२, १०७५, १०७८, १०८०,
१०९५, १०९७, ११०९, ११३०, ११५६, ११७७, ११७८, ११७९, १२२०, १२२२, १२३१, १२३७, १२४१, १२४५,
१२४६, १२५०, १२५२, १२६२, १२६३, १२९१, १३०३, १३२२, १३४३, १३४८, १३७७, १३७८, १३८०, १३८१,
१३८५, १३८७, १३९०, १३९७, १३९८, १४०३, १४०८, १४१४, १४१८, १४२१, १४४१, १४४९, १४५२,
१४६८, १४८३, १४९६, १४९९, १५०५, १५०७, १५२३, १५६५, १५७२, १५८१, १५८२, १५८८, १५८९,
१५९०, १५९३, १५९४, १६०६, १६१४, १६२५, १६२६, १६५४, १६५६, १६५८, १६६३, १६६६, १६८१,
१६८३, १६९३, १७०१, १७०५, १७५७, १७८४, १७८९, १७९२, १७९७, १८०८, १८१२, १८२०, १८२६,
१८४५, १८४९, १८६९, १८७१, १८७५, १८७९, १८८१, १९०१, १९०७, १९१०, १९१२, १९१५, १९२०,
१९२२, १९२७, १९३२, १९४८, १९७८, १९८१, १९८९, १९९२, १९९६, १९९७, १९९९, २०४३, २०५९,
२०६४, २०६५, २०६६, २०८८, २०९३, २०९४, २१०३, २११६, २११९, २१२०, २१२२, २१२३,
२१६०, २१६२, २१६६, २१६९, २१७१, २१७२, २१७८, २१७९, २१८६, २१८७, २१९०, २१९१, २१९६,
२२३४, २२३८, २२४३, २२५३, २२६३, २२६९, २२७७, २३३३, २३४४, २३४७, २३५१, २३५९, २३६०,
२३७०, २३७४, २३७५, २३९०, २३९६, २४०१, २४०६, २४११, २४१२, २४१३, २४२३, २४४४, २४४६,
२४५१, २४५२, २४५४, २४६१, २४६५, २४७०, २४७१, २५०५, २५०८, २५११, २५१७, २५४४, २५४७, २५५१,
२५५५, २५५८, २५६०, २५६१, २५६३, २५९९, २६०२, २६०४, २६०६, २६०७, २६१५, २६१८, २६३१,
२६३३, २६३६, २६४०, २६४१, २६४५, २६४७, २६५३, २६५६, २६५७, २६८९, २६९०, २६९१, २६९३,
२६९७, २६९८, २७०२, २७०३, २७०७, २७२२, २७२५, २७५२, २७५४, २७७७, २७८८, २७९०, २७९१,
२७९८, २८२१, २८२५, २८३१, २८४९, २८५०, २८५८, २८६४, २८६५, २८९०, २८९४, २९०२, २९२८, २९४६,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९५०, २९५२, २९५५, २९७३, २९७५, २९७७, २९७९, २९८४, ३००३, ३००४, ३००५, ३०१५, ३०३०, ३०३१, ३०३५, ३०३९, ३०४०, ३०४३, ३०४५, ३०५५, ३०६०, ३०७३ और ३१०६ ।

उत्तीर्ण–२०, २४, ३३, ३४, ३६, ४५, ४६, ४७, ६२, ६८, ७१, ७७, ७९, ८१, ८९, ९६, १०१, ११०, ११६, १४०, १४२, १५३, १६३, १६६, १७२, १७५, २२७, २३३, २३५, २७०, २७१, २७२, २७५, २७८, २८१, २८२, २८५, २९५, २९६, ३०४, ३१०, ३१२, ३१९, ३६४, ३८९, ३९२, ३९६, ४०२, ४१०, ४११, ४१४, ४२५, ४४१, ४५२, ४५३, ४६०, ४६९, ४७१, ४७२, ४८५, ४८९, ५००, ५०४, ५४४, ५४५, ५५३, ५५७, ५७४, ५९३, ६०४, ६१४, ६५९, ६५९अ, ७१२, ७५२, ७६३, ७७६, ७८०, ७९१, ८१२, ८२२, ८२९, ८३०, ८८२, ८८७, ८९२, ८९३, ८९४, ८९९, ९००, ९०२, ९१०, ९४३, ९४४, ९४५, ९५३, ९५९, ९८४, ९९४, १००२, १०१२, १०१५, १०१८, १०१९, १०२०, १०२२, १०२३, १०२४, १०२६, १०३३, १०७३ १०७४, १०८१, १०८४, १०८५, १०९३, १०९४, ११०४, १११९, १११५, १११७, ११९३, ११९४, १२०७, १२१८, १२४२, १२६८, १२७२, १३२८, १३४५, १३४९, १३५२, १३५३, १३५४, १३५६, १४२५, १४५७, १४५८, १४६६, १४८६, १४८७, १४९२, १४९४, १५२४, १५५०, १५५६, १५७९, १५८५, १६३३, १६६७, १६७९, १६८७, १६९२, १७१०, १७६७, १७७०, १७७२, १७८८, १७९१, १७९४, १७९६, १८०१, १८२८, १८५९, १८६६, १९०९, १९११, १९१३, १९५८, १९६५, १९६६, १९६९, १९७२, २०१२, २०१८, २०१९, २०४०, २०४४, २०५६, २०६०, २०६७, २०६८, २०७९, २०८२, २०९२, २१००, २१४४, २१४६, २१५१, २१५२, २२००, २२१९, २२३०, २२६०, २२६८, २२७१, २२८१, २३०१, २३०९, २३१५, २३१७, २३२३, २३३५, २३४२, २३५६, २३६८, २३६९, २३७३, २४८५, २५१३, २५२८, २५४८, २५८६, २५८७, २५९२, २५९३, २५९८, २६३४, २६५८, २६६८, २६७३, २६७८, २७०४, २७०५, २७४७, २७८९, २८२२, २८२७, २८२९, २८४१, २८६७, २८७८, २८९१, २९०४, ३०६१ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (पाँचवाँ खण्ड)

श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी चारु चरितावलीका यह अन्तिम खण्ड अपने कृपालु तथा प्रेमी पाठक-पाठिकाओंकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए आज हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। इस खण्डमें महाप्रभुकी अलौकिक क्षमाशीलता, विरोधियोंके प्रति सम्मानके भाव, दिव्य भावोन्माद, कृष्णान्वेषण, उन्मादावस्थाकी अद्भुत आकृति, लीलासंवरण आदि एक-से-एक रोचक विषयोंका वर्णन, तथा उनके वियोग-पीड़ित भक्तों और सती-शिरोमणि श्रीविष्णुप्रियाजीकी दयनीय दशाका चित्रण ऐसी मर्मस्पर्शिनी एवं सजीव भाषामें किया गया है कि जिसको पढ़कर हृदयमें करुण-रसकी धारा बरबस उमड़ पड़ती है। इसमें महाप्रभुके वृन्दावनस्थ छः शिष्योंका परिचय और प्रसंगानुकूल अन्यान्य ज्ञातव्य विषयोंका भी समावेश करके लेखकने इस खण्डको पिछले खण्डोंकी अपेक्षा और भी सुन्दर, महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी बना दिया है। कागज, छपाई-सफाई सभी उत्तम हैं। चार रंगीन और छः सादे चित्र भी हैं। २०० पृष्ठकी ऐसी अनमोल पुस्तकका मूल्य भी लागतमात्र अर्थात् अजिल्दका ।॥) और सजिल्दका १) रक्खा गया है।

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—पृष्ठ ३६०, चित्र ६, मूल्य ।॥=) सजिल्द ... १=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)—पृष्ठ ४५०, चित्र ९, मूल्य १=) सजिल्द ... १।=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ३)—पृष्ठ ३४४, चित्र ११, मूल्य १) सजिल्द ... १।)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ४)—पृष्ठ २२३, चित्र १४, मूल्य ॥=) सजिल्द ... ॥=)

पाँचों खण्डोंकी पूरी अजिल्द सेट ४।=) बाद कमीशन॥)॥। बाकी ३॥।—)। पैकिंग डाकखर्च १)॥। कुल ४॥।=)
पाँचों खण्डोंकी पूरी सजिल्द सेट ५ जिल्दोंमें ५॥=) बाद कमीशन ॥≥)। बाकी ४॥।=)॥। पैकिंग डाकखर्च १।)। कुल ६≥)

गोस्वामी तुलसीदासजीकृत
गीतावली
(पदोंके सरल अर्थसहित)

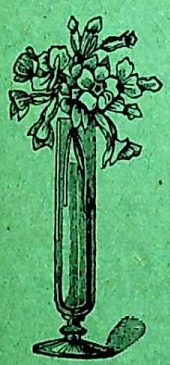

पृष्ठ ४६०, चिकना कागज, चित्र ४ रंगीन, ४ सादे, २२×२९ १६ पेजी साइज, अच्छी छपाई, सुन्दर टाइटल, मू० १) स० १।)

श्रीरामायणकी तरह 'राम-लीला' इसमें भी श्रीगोसाईंजीने सात काण्डोंमें वर्णन की है। यह सम्पूर्ण छोटे-बड़े भजनोंमें लिखी है। इसमें भगवान्‌के रूप आदिका विशेष वर्णन है। एक प्रति मँगवाकर पढ़ें।

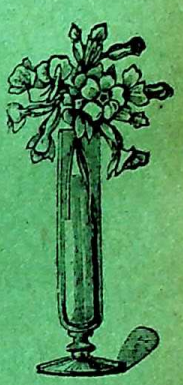

विनय-पत्रिका—अनेक चित्रोंसहित, सटीक, दूसरा नवीन संस्करण, मू० १) सजिल्द १।) मात्र।
मूल गोसाईं-चरित—वेणीमाधवदासकृत, सचित्र (कवितामें) श्रीतुलसीदासजीकी जीवनी मू०-)।
हनुमान-बाहुक—सचित्र, सटीक, दूसरा संस्करण, मू० -)॥ मात्र।

गोपी-प्रेम

(लेखक—हनुमानप्रसाद पोद्दार)

पृष्ठ ५८, सचित्र, सुन्दर छपाई, मू० -)॥ डेढ़ आनामात्र

गोपी-प्रेमका विषय यों तो अवर्णनीय है, पर लेखकने अपनी मति-अनुसार उसे लिखनेका प्रयत्न किया है। यह लेख जब कल्याणमें निकला था तब लोगोंको बहुत ही भाया था। फिर कुछ बढ़ाकर 'तुलसीदल' नामक पुस्तकमें भी शामिल किया गया था। यहाँतक कि एक दूसरे पत्रमें भी छप गया। पर कुछ माननीय सज्जनोंके इसे पुस्तकाकार छापनेके आग्रहसे यह अब अलग छापा गया है। वास्तवमें इसे पढ़नेसे आप आनन्दित होंगे; क्योंकि प्रेमका विषय ही ऐसा है, दूसरे श्रीगोपियोंके प्रेमकी तो बात ही क्या ? इसमें व्रजके कवियोंकी सुन्दर कविताएँ और पद भी बहुत हैं।

मिलनेका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Mind: Its Mysteries and Control.

Part I.

By Swami Sivananda Saraswati.

This is a small treatise consisting of nearly 200 pages, printed on double crown 28 lb. paper and deals *inter alia* with the nature (स्वरूप), aspects, laws and functions (वृत्ति) of the mind, the various states and habits of the mind, the Doshas or faults of the mind and how to remove them, the relation of mind with body, the way how to control and concentrate the mind and ultimately to turn it inward and destroy it, which is the ultimate end of all true philosophy. The author has thus presented in a small and handy volume the various secrets of Yogic and Vedantic *Sadhana* and given practical hints on meditation and other spiritual exercises, and valuable suggestions regarding diet and other particulars connected with *Sadhana*. The book is thus very useful for all aspirants, control of mind being an essential requisite for all *Sadhakas*. The utility of the book has been enhanced by appending at the end a small glossary of difficult Sanskrit words which have unavoidably found place in it.

Those who want to tread the path of God-realization would do well to purchase a copy without loss of time.

Price 8 annas.

The Immanence of God.

By

Pandit Madan Mohan Malaviya.

The above is a small tract of 48 pages printed on thick paper. Contains beautiful ideas on the greatness and all-pervasiveness of God, presented in a simple lucid and homely style which is so characteristic of the revered author. The booklet is a masterly exposition of the Hindu-conception of God, based on the Vedas, the Smritis and the Puranas and deals with the subject in all its bearings fully yet succinctly. It breathes throughout a spirit of unique tolerance and broadmindedness which is a notable feature of Sanatana Dharma and distinguished it from all the other religion of the world and has a stamp of the author's own personality imprinted on it. The book should reach the hands of all who are interested in the broadcasting of theistic ideas and the glorification of God.

Price 2 annas.

The Gita Press, Gorakhpur (India).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी कल्याणके ग्राहक बनने-बनानेका आर्डर फार्म

ORDER FORM.

To

The Manager,

The Kalyana-Kalpataru.

Gita Press,
GORAKHPUR.

Dear Sir,

1. Please forward per V. P. P.

.....Sets of Kalyana-Kalpataru Vol. 1. 1934 (complete file of 12 numbers including God Number) Priced Rs. 4/8/0. Post free.

.....Sets of Kalyana-Kalpataru Vol. 1. 1934 (complete file of 12 numbers including God Number) Cloth Bound, Priced Rs. 5/4/0. Post free.

.....Copies of God Number of Kalyana-Kalpataru 1934, Priced Rs. 2/8/0. Post free.

.....Copies of God Number of Kalyana-Kalpataru 1934, Cloth Bound, Priced Rs. 3/0/0. Post free.

.....Copies of Gita Number of Kalyana-Kalpataru 1935, Priced Rs. 2/8/0. Post free.

.....Copies of Gita Number of Kalyana-Kalpataru 1935, Cloth Bound, Priced Rs. 3/0/0. Post free.

2. Please register $\frac{\text{my}}{\text{my friend's}}$ name as an annual subscriber and send by V. P. P. for $\frac{\text{Rs. 4-8-0}}{\text{Rs. 5-0-0}}$ all the Numbers published since January 1935 including Gita Number $\frac{\text{unbound}}{\text{cloth bound}}$ and send subsequent numbers to the following address:—

_____

_____

_____

_____

(Signed) _____

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कल्याणके ढंगपर ही अंग्रेजी "कल्याण-कल्पतरु" दो सालसे प्रकाशित हो रहा है। इस वर्ष उसके लगभग १२०० ग्राहक और बनाये जा सकते हैं। प्रथम वर्षकी फाइलें भी बची हुई हैं। इसके ग्राहक बननेके लिये आर्डरफार्म भेजा जा रहा है जो सज्जन स्वयं बनना चाहें या अपने मित्रोंको बनाना चाहें उनका नाम पता भरकर फार्म हमें भेजनेकी कृपा करें।

Approved for the use of educational institutions and public libraries by the Departments of Public Instruction of the United and Central Provinces, Assam, and a number of Indian States.

The Kalyana-Kalpataru

(English Edition of the 'Kalyan')

An illustrated monthly for the propagation of spiritual ideas and love of God.

Editor— C. L. Goswami, M. A., Shastri.

Controlling Editor—Hanumanprasad Poddar.

(SECOND YEAR)

Annual Subscription—Inland Rs. 4/8 Foreign 10 Sh.

Subscribe now and have the special Gita-Number free.

Reviews and opinions of some prominent journals and eminent scholars on the "Kalyana-Kalpataru."

—The Amrit Bazar Patrika writes:—

> ...The sober and respectable periodical may well claim to be the most attractive new-comer in the Hindu world.....The aim of the enterprising promoters is the diffusion of Spirituality.....

—The Indian States Gazette writes:—

> ...We find the articles interestingly written in an easy style to be understood even by ordinary people. We are sure, the volume and the magazine will be of distinct use to all, and opine that this must be in the hands of one and all who are interested in and are seekers after 'Truth'. The production deserves to be read and read with reverence, by every man in India and abroad. It contains an exhaustive survey of the mystic revelations of our holy Ṛṣis of yore and forms an integral lesson to all lovers of Religion in the West and this country.

—The Times of Assam writes:—

> ...The God-Number of the Kalyana-Kalpataru...strikes us as a valuable document for all interested in Theology and upholding the cause of religion. It contains highly thoughtful articles from the pen of distinguished thinkers of all demoniacions throwing light on their respective religions...It does not uphold a narrow view of religion but emphasises the truth of all religions.

Manager, The Kalyana-Kalpataru'

GITA PRESS, GORAKHPUR (India).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Regd. No. A. 1724.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपरमात्मने नमः

आपको आवश्यकता है—

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार और धर्मकी; घर-परिवार और संसारके पवित्र प्रेमकी; लोक-परलोकका सरल-सीधा मार्ग बतलानेवालेकी; भय, शोक, चिन्ता, आसुरी स्वभावके दुर्गुणोंसे छुड़ानेवालेकी; समता, शान्ति, निश्चिन्तता, प्रेम और परमानन्द देनेवालेकी ।

दुनियामें रहते हुए इन सबकी प्राप्तिका सुगम मार्ग—सहज-साधन बतानेमें—

'तत्त्व-चिन्तामणि'

—आपकी सहायता कर सकती है ।

एक पुस्तक मँगवाकर जरा पढ़कर देखिये, आपकी विचार-धारा पलटती है या नहीं ?

इसके लेखक हैं—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

मोटा एण्टिक कागज, साफ सुन्दर छपाई, बड़े अक्षर, भगवान्‌के २ मनोहर चित्र, प्रथम भाग (पृ० ३५०, दो चित्र) मू० ॥=), सजिल्द ॥।—) (यह ८००० छप चुकी है) ।

द्वितीय भाग (पृ० ६३२, सचित्र) मू० ॥।=) सजिल्द १=) (नयी ही छपी है)

यह पुस्तक सदा सबके कामकी है ।

विशेष जानकारीके लिये पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये ।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

माननीय लेखकों और कवियोंसे प्रार्थना

'योगाङ्क' के लिये अब भी कृपालु लेखक और कवि अपनी-अपनी रचनाएँ भेज रहे हैं। 'योगाङ्क' की सारी सामग्री प्रेसमें दी जा चुकी है। सिवा चित्रोंके अङ्क लगभग छप चुका है। इस अवस्थामें अब आये हुए लेख और कविताएँ न छप सकेंगी। स्थानाभावके कारण पहलेके आये हुए लेख और कविताएँ भी सब नहीं छप सकीं। अतएव कृपालु लेखकों और कवियोंसे सादर निवेदन है कि वे 'योगाङ्क' के लिये अब कोई रचना भेजनेका कष्ट न करें।

विनीत—**सम्पादक**

कल्याण आषाढ़ संवत् १९९२ की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–भगवान्‌की प्रतिज्ञा [कविता] (श्रीसूरदासजी) १४२५
२–मिल और नीलसे हानि (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १४२६
३–कल्याण ('शिव') १४३०
४–श्रीमती विष्णुप्रियादेवी (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) १४३३
५–प्रेम (एक प्रेमका भिखारी) ... १४३८
६–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) १४४१
७–मुक्ति, निर्वाण और भगवत्प्राप्ति (एक दीन) १४४९
८–मानसिक जपका हजारगुना फल (परमहंस स्वामी नारायणदासजी महाराज) ... १४५२
९–बाबाके वचनामृत (सं० और प्रे० श्रीनकुलेश्वर मजूमदार, 'विद्यानिधि', बी० ए०) ... १४५५
१०–उत्तरकाशीके स्वामी कैवल्याश्रम (स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती) १४५९
११–प्रार्थना [कविता] (महात्मा श्रीजयगौरीशङ्कर सीतारामजी) १४६४
१२–आध्यात्मिक या रूहानी जीवनका तत्त्व क्या है? (श्रीआर० आर० खन्ना, रजिस्ट्रार, लखनऊ यूनिवर्सिटी) १४६५
१३–ईश-वन्दना [कविता] (श्रीजगदीशजी) १४६८
१४–बलदेव पखावजी (श्रीगोपीवल्लभजी कटिहा) १४६९
१५–प्रेमयोगाञ्जलि [कविता] (श्रीविनायकरावजी भट्ट) १४७०
१६–नारी दासी है या रानी? ('उज्ज्वलभारत'से) १४७१
१७–आत्मविचार (श्रीसूर्यभानुजी जैन) ... १४७५
१८–समाधिनिष्ठ (बहिन श्रीजयदेवीजी) ... १४७६
१९–सुधातरङ्ग (श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी) १४७९
२०–राम [कविता] (सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार) १४८०
२१–तुलसीकृत रामायणमें करुणरस (श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०) ... १४८१
२२–जीवनग्रन्थि तथा कर्म (पं० श्रीलालजी राम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी०) ... १४८८
२३–अन्तिम सन्देश [कविता] (काजी अशरफ महमूद) १४९१
२४–आश्रमोंका रहस्य (पं० श्रीप्रयागदत्तजी शुक्ल) १४९२
२५–है भूतका-सा डेरा [कविता] (सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार) ... १४९३
२६–भक्त-गाथा (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) १४९४
२७–सुखकी खोजमें (पं० श्रीभैरवदत्तजी) ... १४९९
२८–विवेक-वाटिका १५०२
२९–मनोवृत्तिपर अधिकार [कविता] (म० श्रीबालकरामजी विनायक) ... १५०३

प्रेमदर्शन या भक्तिसूत्र

देवर्षि नारदरचित

[टीका—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार कृत]

यह भक्ति-विषयक श्रेष्ठ ग्रन्थ "कल्याण" में निकलता रहा है। अनेक सज्जनोंके आग्रहसे अब कुछ बढ़ाकर पुस्तकाकार छापा गया है। इसमें **तीन चित्र** भी लगा दिये गये हैं एवं **नारदजीकी संक्षिप्त जीवनी** भी जोड़ दी है। २०० पेज, सुन्दर छपाई, मूल्य प्रचारार्थ केवल ।-) सबके पढ़ने और प्रचार करने योग्य बहुत सस्ता है।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

पुराने और नये ग्राहकोंकी सेवामें निवेदन

(१) यह नवें वर्षकी १२ वीं यानी अन्तिम संख्या है, इस अंकमें सभी पुराने ग्राहकोंका सालाना चन्दा पूरा हो गया है।

(२) दशवें वर्षका पहला अंक योगांक होगा। योगांक परिशिष्ट भाद्रपदके अंकसहित एक प्रतिका मूल्य ३) होगा, परन्तु पुराने और नये ग्राहकोंको अधिक कीमत नहीं देनी पड़ेगी, उन्हें सहजमें न मिलनेवाली बड़ी सुन्दर चीज सालाना चन्दा ४॥) देनेपर यों ही मिल जायगी।

(३) पुराने और नये ग्राहकोंको चन्देके रुपये ४॥) मनीआर्डरद्वारा जल्दी भेज देने चाहिये। नहीं तो वी० पी० जानेमें बहुत देर हो जायगी। मनीआर्डर-फार्म भेजा जा चुका है। सुविधाके लिये इस महीने फिर भेज रहे हैं।

(४) जिन महानुभावोंने कल्याणके ग्राहक बनाये हैं और बना रहे हैं, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। कल्याणके प्रचारद्वारा भगवान्‌के कार्यमें सहायता देकर वे सज्जन बड़ा ही उपकार कर रहे हैं। इस बार उन सबको विशेष चेष्टा करके नये सालके लिये ग्राहक बनाने चाहिये।

(५) इस बार योगांक बहुत ही शिक्षाप्रद, मनोहर, संग्रहणीय और दुर्लभ सामग्रियोंसे भरा हुआ होगा। ग्राहक बननेवालोंको बहुत जल्दी करनी चाहिये।

(६) ग्राहकोंको चाहिये कि अपने मनीआर्डरके कूपनमें पूरा नाम, पता, गाँव, डाकघर और जिलेका नाम साफ अक्षरोंमें लिखें। पुराने ग्राहक अपने ग्राहक-नम्बर जरूर लिखें। नये ग्राहक 'नया' शब्द लिखें, नहीं तो कल्याण देरसे पहुँचेगा।

(७) कल्याणके साथ पुस्तकों और चित्रोंकी माँग न लिखें और न कल्याणके मूल्यके साथ पैसे ही भेजें। 'कल्याण' के साथ डाकके नियमानुसार और चीजें नहीं भेजी जा सकतीं। पुस्तक और चित्रोंके लिये मैनेजर गीताप्रेसको लिखें।

(८) सभी प्रेमी ग्राहक-अनुग्राहकोंसे प्रार्थना है कि प्रत्येक सज्जन और प्रत्येक बहिन कम-से-कम दो-दो नये ग्राहक बना देनेकी चेष्टा अवश्य करें।

(९) 'कल्याण' का नया वर्ष श्रावण कृष्ण ११ से शुरू होता है। पूरे सालके ही ग्राहक बनाये जाते हैं। बीचसे ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(१०) सजिल्द योगांक लगभग प्रकाशित होनेके एक महीने बाद भेजा जा सकेगा, अतएव सजिल्द लेनेवाले ग्राहक धैर्य रक्खें।

(११) जिन सज्जनोंको ग्राहक नहीं रहना हो वे कृपापूर्वक पहलेसे एक कार्ड लिखकर हमें जरूर सूचना दे दें ताकि व्यर्थ वी० पी० भेजकर नुकसान नहीं उठाना पड़े। आपके तीन पैसेके खर्चसे कल्याण-कार्यालयके कम-से-कम छः आने पैसे बच जायँगे।

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

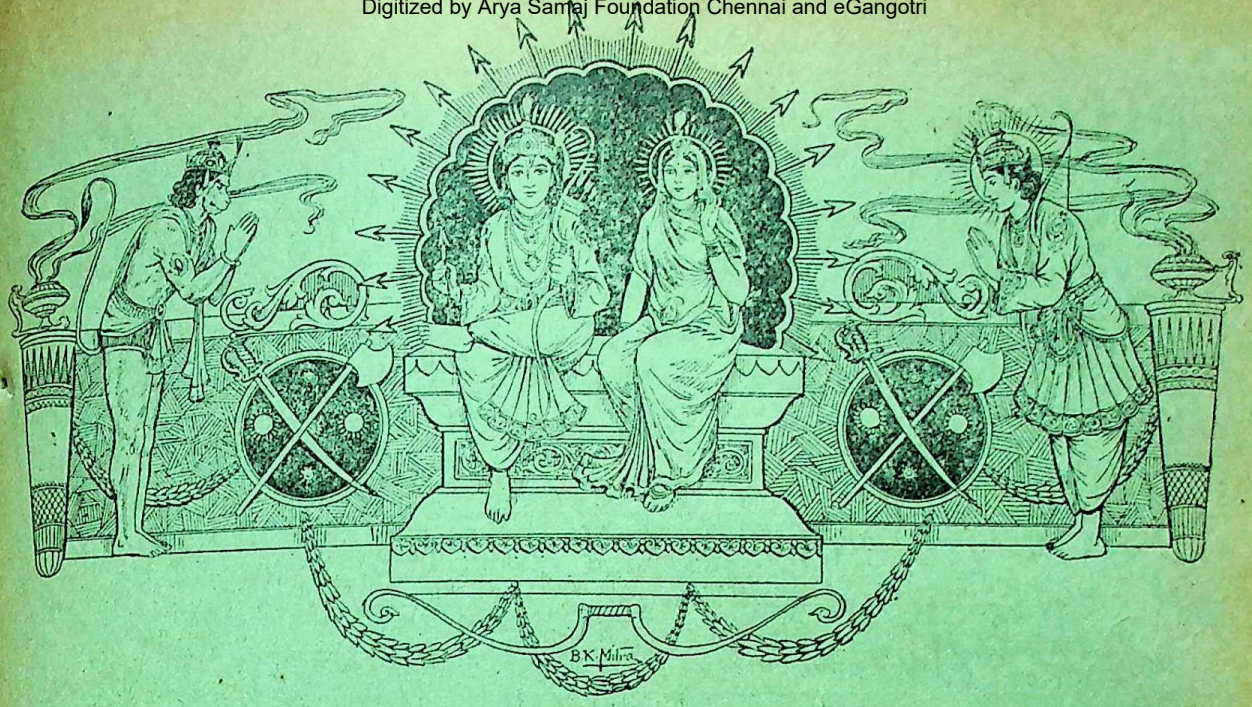

श्रीरामायणांक

अनेक प्रेमियोंके आग्रहसे 'रामायणांक' पुनः छप गया था। मूल्य वही २॥≋) ही रक्खा गया है। पृष्ठ पाँच सौसे ऊपर और सैकड़ों चित्र हैं। आपके संग्रहमें एक प्रति अवश्य रक्खें।

रामायणांकका गेटप, छपाई, सफाई, कागज और बाइण्डिंग सब सुन्दर हैं।

रामायणांकमें श्रीरामजीकी लीलाओंके अनेक सुनहरी, बहुरंगे, सादे चित्र एवं अनेक पवित्र तीर्थ अयोध्या, प्रयाग, काशी, चित्रकूट, पञ्चवटी, रामेश्वर, जनकपुर, शृंगवेरपुर आदिके दर्शनीय चित्र हैं। रामायणकालीन भारतके कई भौगोलिक मानचित्र भी हैं।

रामायणांकमें अनेक महात्माओं, देशी-विदेशी विद्वानों और रामायणप्रेमियोंके लेख हैं।

रामायणांक—सुखमय जीवनका अमोघ साधन है।

आजतक कल्याणके सिवा इतने बड़े किसी भी सामयिक पत्रको दुबारा छपकर आपकी सेवा करनेका अवसर नहीं मिला। यदि आप इस बार इस अङ्कको न अपना सकेंगे तो समझ लीजिये कि एक उत्कृष्ट वस्तुसे वञ्चित रह जायँगे, क्योंकि इसके शीघ्र तीसरी बार छपनेकी आशा हम अभी आपको नहीं दिला सकते। अतः खरीदनेमें शीघ्रता करें।

कुछ सम्मतियाँ पढ़िये—

.....सुन्दर, सस्ता और उपयोगी निकला है।.....पढ़नेसे.....अनेक ज्ञातव्य बातोंका पता चल जाता है। .....अङ्क संग्रहणीय है। भारत (इलाहाबाद)

लेख बड़े-बड़े विद्वानोंकी लेखनियोंसे लिखे गये हैं। कई लेख तो भारतसे भिन्न देशोंसे भी मँगवाये गये हैं। .....लेख प्रायः सब तथ्यपूर्ण एवं जानकारीसे भरे हुए हैं।.....कई सहस्र रुपया व्यय करना पड़ा होगा फिर भी इसका मूल्य केवल २॥≋) रक्खा गया है.....। अवश्य संग्रह करना चाहिये। आर्यमित्र (आगरा)

.....विषयोंकी व्यापकताकी दृष्टिसे तो रामायणपर यह अद्वितीय ग्रन्थ सिद्ध होगा। .....सच्ची लगनके बिना ऐसे गुरुतर कार्य सिद्ध नहीं होते। हमें विश्वास है कि पाठकगण इस.....से पूरा लाभ उठावेंगे। प्रताप (कानपुर)

.....'रामायणांक' हिन्दी-जगत्की एक स्थायी सम्पत्तिके रूपमें सदा आदर पाता रहेगा—.....। अपने ढंग-का अद्वितीय ग्रन्थ है, साथ ही 'कल्याण' नामको सार्थक करता है।.....हमारी प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीसे अपील है कि वह इस विशेषांकको मँगवाकर अवश्य पढ़ें, इससे 'लोकलाहु परलोक निबाहू' दोनों साधनाएँ सफल होंगी। माधुरी (लखनऊ)

पता—व्यवस्थापक, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दाम घटा दिया Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri दाम घटा दिया

श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीकृष्ण-विज्ञान)

मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद

सचित्र, सुन्दर मोटा एण्टिक कागज, दाम १) से घटाकर ।।।), सजिल्द १।) से १) कर दिया है।

कुछ सज्जनोंकी सम्मतियाँ देखिये—

जयपुर कौन्सिलके मेम्बर पुरोहितकुलभूषण रायबहादुर श्रीमान् पं० गोपीनाथजी एम० ए०, सी० आई० ई० की सम्मति।

श्रीकृष्ण-विज्ञानको पढ़ा। यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। गीताके अनेक हिन्दी-अनुवाद देखे गये। वे सब साम्प्रदायिक हैं और कृष्ण-विज्ञान पूर्णरूपसे पक्षपातरहित है और यही इसका उत्तम गुण है। अन्यान्य अनुवादोंमें यह भी देखा गया है कि अनुवादक जहाँपर मूल श्लोकके आशयतक नहीं पहुँचे वहाँपर अनुवाद या तो सर्वथा मूलके विरुद्ध या पूर्ण निरर्थक है। इसके अतिरिक्त बहुधा अनुवाद मूलसे न्यूनाधिक भी हैं। श्रीकृष्ण-विज्ञान इन त्रुटियोंसे रहित है। हिन्दीके पद्यमय अनुवाद अबतक जो मेरे देखनेमें आये हैं वे मिश्रित भाषामें हैं। केवल श्रीकृष्ण-विज्ञान ही आजकलकी खड़ी प्रचलित भाषामें देखा गया है। इस अनुवादको जहाँ-तहाँसे मैंने मूल ग्रन्थसे मिलाया है और सर्वथा याथातथ्य पाया है। एक श्लोकका अनुवाद एक ही छन्दमें किया गया है और जहाँतक हो सका है मूलसे न्यूनाधिक शब्दोंका प्रयोग कहीं नहीं किया है। मूलके छोटे श्लोकका अनुवाद आजकलकी खड़ी बोलीके छोटे छन्दमें और बड़े छन्दका बड़े छन्दमें बहुत सुन्दर और प्रशंसनीय रीतिपर किया गया है। मेरी सम्मतिसे प्रकृत हिन्दीके उत्तमोत्तम ग्रन्थभण्डारमें श्रीकृष्ण-विज्ञान भी एक अनुपम रत्न है। जिसके पठन, पाठन और मनन करनेसे मनुष्यमात्रके लिये धर्मार्थ-काम-मोक्षकी सिद्धि सुलभ हो जाती है।

हिन्दीके प्रसिद्ध आचार्य सरस्वतीके भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकी सम्मति।

गीताके मुख्य भावार्थको बड़े सरल शब्दोंमें व्यक्त किया है। मूलका मतलब न छोड़ते हुए उन्होंने ऐसे शब्द प्रयोग किये हैं कि गीताका आशय समझनेमें कठिनाई नहीं होती। देखिये—

मर जानेसे स्वर्ग मिलेगा जय होनेसे भूतलराज। इससे निश्चय ही भारत! तू हो जा खड़ा युद्धको आज॥
विजय-पराजय, हानि-लाभ, सुख-दुःख सभीको जान समान। फिर प्रवृत्त हो जा तू रणमें पाप नहीं होगा मतिमान!॥

एक तो भाषा बोलचालकी, दूसरे सरल और सुन्दर शब्दोंका प्रयोग; फिर मूल ग्रन्थके मुख्यार्थका यथेष्ट सन्निवेश। बस, अनुवादमें और चाहिये क्या? अतएव मेरी सम्मतिमें यह अनुवाद संग्रहणीय ही नहीं, आदरणीय भी है। हिन्दीमें किये गये जितने गीतानुवाद मेरे देखनेमें आये हैं उन सबकी अपेक्षा यह अनुवाद अधिक सरस, सरल और भावव्यञ्जक है।

स्व० पण्डितवर श्रीचन्द्रधर शर्माजी गुलेरी बी० ए० की सम्मति।

अनुवाद बहुत सुपाठ्य है, मूलके प्रकृत अर्थको ठीक-ठीक दर्शाता है। यह अनुवाद अपने गुणोंसे स्वयं प्रतिष्ठित है, जो यह है वह यही है। भाषामें सरसता और सरलता है, पढ़ते समय भाव कहीं अटकता नहीं जैसे कि कई अनुवादोंमें अटकता है। मूलसे मिलाकर भी पढ़ा और यों भी पढ़ा, फिर पढ़ा और फिर पढ़ा, बहुत ही भाया। प्रशंसनीय है। अनुवाद मूलके विरुद्ध न जावे, न घटे, न बढ़े, फिर सरसता हो, कविता हो, भाषा प्राञ्जल हो, जो स्वतन्त्र कविताके तरह पढ़ी जा सके—इन सब बातोंको बहुत अच्छी तरह निबाहा गया है।

रायबहादुर श्रीयुत पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाकी सम्मति।

यह अनुवाद बड़ा ही मनोहर हुआ है, हिन्दीमें गीताके और भी छन्दोबद्ध अनुवाद छपे हैं परन्तु इसकी समता एक भी नहीं कर सकता, प्रत्येक हिन्दूके घरमें यह पुस्तक अवश्य रहनी चाहिये।

और भी अनेक सुन्दर-सुन्दर सम्मतियाँ आयी हैं।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर सुपाठ्य अमूल्य पुस्तकें

भाषाटीकासहित संस्कृत शास्त्र-ग्रन्थ

श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्य–सरल हिन्दी अनुवादसहित, मूल भाष्यके सामने ही अर्थ लिखनेसे पढ़ने और समझनेमें बहुत सुगमता है। श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके उद्धृत प्रमाणोंका भी सरल अर्थ दिया गया है। अन्तमें गीतामें आये हुए हर एक शब्दकी पूरी सूची दी गयी है। साइज २२×२९ आठपेजी, पृष्ठ सं० ५२०, ३ चित्र, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया जिल्द २॥।)।

श्रीविष्णुपुराण–आठ सुन्दर चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही हिन्दी अनुवाद, साफ-सुथरी छपाई, टाइप नये, सुन्दर और बड़े। इसमें अन्य विषयोंके साथ भूगोल, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राजवंश आदिका बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन आ गया है। श्रीभगवान्‌की भक्तिसे ओतप्रोत इस सुन्दर ग्रन्थकी पृष्ठ सं० लगभग ५५०, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द २॥।)।

श्रीअध्यात्मरामायण–दूसरा नवीन संस्करण, प्रत्येक काण्डमें असली आर्ट पेपरपर छपा एक-एक अति सुन्दर चुना हुआ चित्र, कुल चित्र ८, साइज २२×२९ आठपेजी, कागज चिकना; पृष्ठ सं० ४०२, मूल्य साधारण जिल्द १।।।), कपड़ेकी जिल्द २) मात्र।

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध–सचित्र, सटीक। श्रीभगवान्‌की दिव्य लीलाओंसे भरपूर इस पावन ग्रन्थमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अनन्य भक्त उद्धवको, योगीश्वरोंद्वारा राजा निमिको, श्रीनारदजीद्वारा वसुदेवजीको आदि अनेक भक्ति, ज्ञान, वैराग्यपरक दिव्य उपदेशोंका वर्णन है। पृष्ठ सं० ४२०, मूल्य ।।।) सजिल्द १)।

विष्णुसहस्रनाम शाङ्करभाष्य–डिमाई आठपेजी, पृष्ठ २७५, एक तरफ भाष्य, दूसरी तरफ हिन्दी अर्थ, समझनेमें सुगमता, कागज चिकने, छपाई साफ, मूल्य ॥=) मात्र।

विवेकचूडामणि–मूल श्लोक, हिन्दी अनुवादसहित, श्रीशङ्कराचार्यजीका एक चित्र, पृष्ठ सं० २२४, मूल्य केवल ।≥) सजिल्द ॥=)।

श्रुतिरत्नावली–प्रधान-प्रधान श्रुतियोंका अर्थसहित संग्रह, मन्त्र-सूची-सहित पृष्ठ सं० २८४, मूल्य ॥)।

प्रबोधसुधाकर–विषय-भोगोंकी तुच्छता और आत्मसिद्धिके उपायप्रदर्शक छोटा-सा ग्रन्थ, पृष्ठ सं० ८०, मूल्य ≥)॥

अपरोक्षानुभूति–श्रीशङ्कराचार्यकृत वेदान्तका एक छोटा-सा ग्रन्थ, सचित्र, मूल्य =)॥

मनुस्मृति–केवल दूसरा अध्याय हिन्दी अनुवादसहित, मूल्य केवल –)॥

रामगीता–मूल और अर्थसहित, मूल्य)।।।

प्रश्नोत्तरी–श्रीशङ्कराचार्यकृत। बड़ी ही उपादेय पुस्तिका है। सानुवाद मूल्य)॥ मात्र।

सन्ध्या–विधिसहित, मूल्य)॥ मात्र।

इनके सिवा श्रीमद्भगवद्गीताके गद्यपद्यमय अनेक छोटे-बड़े संस्करण अन्वय, पदच्छेद, टिप्पणी, भाषा-टीका-सहित आदि एवं अन्य पुस्तकोंकी जानकारीके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

पता–**गीताप्रेस, गोरखपुर**

[चित्र-सूची अलग मुफ्त मिलती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्

नीचे लिखे उपनिषद् मूल, मूलार्थ शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थसहित छपकर तैयार हैं—

ईशावास्योपनिषद् सचित्र पृ० ५२ मू० .... =)
केनोपनिषद् (पद-भाष्य, वाक्य-भाष्य दोनोंसहित) सचित्र पृ० १४६ मू० ॥)
कठोपनिषद् सचित्र पृ० १७८ मू० .... ॥-)
मुण्डकोपनिषद् सचित्र पृ० १३२ मू० .... ।=)
प्रश्नोपनिषद् सचित्र पृ० १३० मू० .... ।=)

पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) मू० २।-)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीमद्भगवद्गीता (मराठी-अनुवाद-सहित)

इसका कुछ परिचय यह है—

आकार डिमाई आठ पेजी, पृष्ठ ५७०, मोटा-चिकना कागज, भगवान्‌के ४ सुन्दर बहुरंगे चित्रोंमें एक नया चित्र बहुत ही सुन्दर है। हाथसे बुने हुए देशी कपड़ेकी सुन्दर जिल्द, मूल्य केवल १।) मात्र, डाकखर्च अलग, छपाई शुद्ध-सुन्दर, मूल श्लोक, पदच्छेद, अन्वय, सरल अर्थ और यत्र-तत्र टिप्पणियाँ, संक्षिप्त माहात्म्य, गीताकी महिमा, अध्यायोंके प्रधान विषयोंकी सूची, प्रत्येक श्लोकके विषयकी सूची, त्यागद्वारा भगवत्प्राप्ति नामक उपयोगी निबन्ध भी जोड़ दिया गया है। छपाईका ढंग बड़ा सुन्दर है। प्रत्येक मूल पदके सामने ही उसका मराठी अर्थ छपा है, इससे संस्कृतका अर्थ ठीक-ठीक समझमें आ सकता है। एक पुस्तक मँगानेवालोंको कमीशन काटकर मूल्य १-)॥, डाकखर्च ॥=), पैकिंग)॥ और मनीआर्डर फीस =) कुल १॥।=) होते हैं। कई सज्जनोंके साथ मिलकर अधिक पुस्तकें मँगवानेसे खर्च कम पड़ेगा।

किर्लोस्कर—मोठा टाईप व स्पष्ट छपाई यामुळें अगदीं नवख्या अभ्यासूला स्वतः च गीतेचा परिचय करून घेण्यास हें पुस्तक छान झालें आहे.····किमतीच्या मानानें पुस्तक फारच स्वस्त दिसतें.

नवाकाळ—····डेमी हें आकाराचें पुस्तक असूनहि किंमत सवा रुपया ही अगदीं माफक आहे. गीतेच्या अर्था कडे लक्ष मुखून पारायण करणारांना ही प्रत संग्राह्य वाटल्याशिवाय रहाणार नाहीं।

हमारा नया बड़ा सूचीपत्र छप गया है, जिन सज्जनोंको जरूरत हो वे लिखकर मँगवा लेनेकी कृपा करें।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मननीय संग्रहणीय

सन्त-महात्माओंके जीवन-चरित्र

चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी और द्विवेदी पं० इन्द्रनारायणजीद्वारा लिखित

भागवतरत्न प्रह्लाद—पृष्ठ-संख्या ३४६, एण्टिक कागज, सुन्दर साफ छपाई, ३ रंगीन और ५ सादे चित्र, भाषा सरल और अक्षर बड़े, सबके पढ़नेयोग्य, मूल्य केवल १) सजिल्द १।)

देवर्षि नारद—भूमिका-लेखक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार—२ रंगीन और ३ सादे चित्र, पृष्ठ-संख्या २४०, एण्टिक कागज, सुन्दर साफ छपाई, मूल्य ।।।) सजिल्द १)

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीद्वारा लिखित

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—ज्ञान, वैराग्य और प्रेमके समुद्र महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत जीवनी, सम्पूर्ण पुस्तक पाँच खण्डोंमें समाप्त हुई है।

पहला खण्ड—६ बहुरंगे चित्र, पृष्ठ-संख्या ३६०, मूल्य ।।।=) सजिल्द १=) मात्र।

दूसरा खण्ड—४ तिरंगे, ३ दुरंगे, २ इकरंगे—कुल ९ चित्र, पृष्ठ ४५०, मूल्य १=) सजिल्द १।=) मात्र।

तीसरा खण्ड—पृष्ठ-संख्या ३८४, चित्र ११ सम्पूर्ण बहुरंगे, मूल्य १) स० १।), छपाई सुन्दर, कागज एण्टिक।

चौथा खण्ड—पृष्ठ-संख्या २२४, चित्र रंगीन और सादे १४, मूल्य ॥=) स० ।।।=)

पाँचवाँ खण्ड—पृष्ठ २८०, चित्र रंगीन ४, सादे ६, मू० ।।।) स० १)

श्रीरामकृष्ण परमहंस—जीवनी और उपदेश। स्वामीजी श्रीचिदात्मानन्दजीद्वारा लिखित, उपदेश-संग्रहकर्ता श्रीबनवारीलालजी मुख्तार। ३ चित्र, ३०१ उपदेशवाक्योंसहित, पृष्ठ-संख्या २५०, मू० ।=) मात्र।

हरिभक्तिपरायण पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरद्वारा लिखित
[अनुवादक पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे]

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र और ग्रन्थ-विवेचन—एण्टिक कागज, पृष्ठ ३५६, छपाई अच्छी, १ चित्र, मू० ।।।-) मात्र।

श्रीएकनाथ-चरित्र—सुन्दर छपाई, कागज एण्टिक, पृष्ठ २४०, १ चित्र, मूल्य केवल ॥)

श्रीतुकाराम-चरित्र—हालहीमें प्रकाशित हुआ है। ९ चित्र, पृष्ठ ६९४, अच्छा कागज, मू० १=) स० १॥)

पं० श्रीतुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश' द्वारा लिखित

भक्त-भारती—सुन्दर, सरल कवितामें ७ भक्तोंकी कथा, ७ चित्रोंसहित, मूल्य ।=)

एक सन्तका अनुभव—मोटा एण्टिक कागज, मूल्य -)

इनके सिवा श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारद्वारा सम्पादित भक्त-चरितमालाकी ९ पुस्तकोंमें अनेक भक्तोंकी सुन्दर-सुन्दर जीवनियाँ बहुत ही सरल, सुन्दर शब्दोंमें लिखी हुई हैं।

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये। पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अवश्य पढ़िये ! Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri सुन्दर अवश्य पढ़िये !

शिक्षाप्रद पुस्तकें

स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सर्वोपयोगी सचित्र, संक्षिप्त भक्त-चरित-मालाके

नये-नये सुवासित पुष्प

[सम्पादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार]

१—**भक्त बालक**—४ रंगीन और १ सादा चित्र, एण्टिक कागज, सुन्दर छपाई, पृष्ठ ८०, मू० ।-); इसमें बालक भक्त गोविन्द, मोहन, धन्ना, चन्द्रहास और सुधन्वाकी भक्तिरसपूर्ण कथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगता है। बार-बार भगवान् और उनके प्रभावका स्मरण होता है।

२—**भक्त नारी**—३ रंगीन और ३ सादे चित्र, एण्टिक कागज, पुष्ट टाइटल, पृष्ठ ८०, मू० ।-); इसमें भक्तिमती शबरी, मीराबाई, जनाबाई, करमैतीबाई और तपस्विनी रबियाकी प्रेमभक्तिसे पूर्ण बड़ी ही रोचक गाथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते हृदय आनन्दसे भर जाता है। चित्त भगवान्‌की ओर तेजीसे दौड़ने लगता है।

३—**भक्त-पञ्चरत्न**—४ रंगीन और २ सादे चित्र, एण्टिक कागज, दोरंगा सुन्दर टाइटल, पृष्ठ ९८, मू० ।-); इसमें भक्त रघुनाथ, भक्त दामोदर, गोपाल चरवाहा, भक्त शान्तोबा और नीलाम्बरदासके परमपावन चरित्र हैं। इनको पढ़ते-पढ़ते हृदय द्रवित होकर बार-बार आँसू निकल पड़ते हैं।

४—**आदर्श भक्त**—७ चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ ११२, मू० ।-); इसमें राजा शिवि, राजा रन्तिदेव, भक्त अम्बरीष, पितामह भीष्म, पाण्डव अर्जुन, विप्र सुदामा और चक्रिक भीलकी कथाएँ हैं।

५—**भक्त-चन्द्रिका**—सुन्दर रंगीन ७ चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ ९६, मू० ।-); हालहीमें छपी है; इसमें साध्वी सखूबाई, महाभागवत श्रीज्योतिपन्त, भक्तवर विट्ठलदासजी, दीनबन्धुदास, भक्त नारायणदास और बन्धु महान्तिकी सुन्दर भक्तिभावपूर्ण गाथाएँ हैं। पढ़नेसे आत्माको बड़ी शान्ति मिलती है।

६—**भक्त-सप्तरत्न**—सात सुन्दर बहुरंगे चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ १०५, अभी नयी छपी है, मू० ।-); इसमें दामाजी पन्त, मणिदास माली, कूबा कुम्हार, परमेष्ठी दर्जी, रघु केवट, रामदास चमार और सालवेगकी सुन्दर उपदेशप्रद कथाएँ हैं। पढ़कर चित्तको बड़ा सुख मिलता है।

७—**भक्त-कुसुम**—६ तिरंगे चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ ९१, नयी ही छपी है, मू० ।-); इसमें जगन्नाथदास, हिम्मतदास, बालीग्रामदास, दक्षिणी तुलसीदास, गोविन्ददास और हरिनारायणके सरस, भावपूर्ण जीवन-चरित्र हैं।

८—**प्रेमी भक्त**—७ चित्र, एण्टिक कागज, पृष्ठ १०३, नयी छपी है, मू० ।-); इसमें भक्त बिल्वमङ्गल, जयदेव, श्रीरूप-सनातन, हरिदास और रघुनाथदासकी प्रेम-भक्तिरससे सनी हुई त्यागपूर्ण महान् जीवनियाँ हैं।

९—**यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ**—३ चित्र, पृष्ठ-संख्या ९२, हालहीमें प्रकाशित हुई है, मू० ।); इसमें साध्वी रानी एलिज़ाबेथ, साध्वी कैथेरिन, साध्वी गेयों और साध्वी लुइसाकी सुन्दर उपदेशप्रद जीवनियाँ हैं।

ये बूढ़े-बालक, स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने योग्य, बड़ी सुन्दर और शिक्षाप्रद पुस्तकें हैं। पढ़ने-सुननेसे आनन्द तो होता ही है, साथ ही हृदयका मल नष्ट होकर प्रेमभक्तिका अंकुर भी दृढ़तासे जम जाता है। एक-एक प्रति अवश्य पास रखने योग्य है।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विशेष जानकारीके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोपयोगी ! सबके पढ़ने लायक !!

आध्यात्मिक आनन्दप्रद पुस्तकें

भगवन्नाम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-समन्वित लेखोंसे परिपूर्ण

परमार्थ-ग्रन्थमालाकी सुन्दर नौ मणियाँ—

(१) **तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ (सचित्र)**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका । पृष्ठ ३५०, दो सुन्दर चित्र, मूल्य ॥≈) सजिल्द ॥।८)

···पुस्तकमें धर्मका भाव बड़ा जागरूक है, प्रत्येक पृष्ठसे सचाई और सात्त्विकी श्रद्धा प्रकट होती है।···लेख तो अमृतरूप हैं। —माधुरी

(२) **मानव-धर्म**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार । पृष्ठ ११२, अच्छा कागज, मूल्य केवल ≈)

···इसमें धर्मकी आवश्यकता, धृति, क्षमा आदि विषयोंपर प्राचीन गाथाओंको लेकर अच्छा विवेचन किया गया है।···भाषा बहुत ही सरस है। —सम्मेलन-पत्रिका

(३) **साधन-पथ**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार । पृष्ठ ७२, भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर चित्र, मूल्य ≈)॥ मात्र ।

···साधन-पथ पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ।···साधकोंके लिये सच्चा पथ-प्रदर्शक है।···अवश्य ही अपने पास रखकर सदा अध्ययन करते रहना चाहिये। —स्वामी विज्ञानहंसजी

(४) **तुलसीदल**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सम्पादक-कल्याण । बढ़िया कागज, मनोहर चित्र, सुन्दर छपाई, सचित्र, पृष्ठ २९५, मूल्य ॥) स० ॥≈)

···'तुलसीदल'···देखा···सभी ग्रन्थ अच्छा है—उसमें जो संस्कृत और हिन्दी पद्य उद्धृत हैं, एक-से-एक अच्छे हैं—पर सूरदासजी और नन्ददासजी तथा चैतन्य-चरितामृतके पद्य अत्युत्तम सात्त्विक भावोत्पादक हैं। पृ० २२२ पर सहचारी दोषोंसे विविक्त विमुक्त गुणोंका गोपियोंमें जो संग्रह आपने कर दिया है, यह विशेष विलक्षण और अपूर्व है। —डा० भगवानदासजी एम० ए०, डी० लिट्

(५) **माता**—ले० श्रीअरविन्द, अनुवादक—पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे । मोटा एण्टिक कागज, खूबसूरत टाइटल, साफ-सुथरी अत्युत्तम छपाई, मू० ।) मात्र ।

(६) **परमार्थ-पत्रावली**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका । पृष्ठ १४४, एण्टि कका गज, मूल्य ।) मात्र । ये पत्र लोगोंकी साधन-सम्बन्धी पूछ-ताछके उत्तरमें लिखे हुए हैं । साधनहीन जनोंको चेतावनी है।

(७) **नैवेद्य**—ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार । २८ लेख और ६ कविताओंका सचित्र सुन्दर ग्रन्थ, छपाई-कागज बढ़िया, पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥≈) स० ॥८) मात्र ।

···'नैवेद्य' सचमुच नैवेद्य है।···इसे पढ़कर तृप्त हो जायँगे।—रायबहादुर अवधवासी लाला सीतारामजी बी०ए०

(८) **ईश्वर**—ले० महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय । पृष्ठ ३२, एण्टिक कागज, सुन्दर आवरण पृष्ठ, मूल्य केवल ≈)। मात्र ।

(९) **तत्त्व-चिन्तामणि भाग २**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका । पृष्ठ ६३२, मोटा एण्टिक कागज, सुन्दर छपाई-सफाई, सचित्र मूल्य केवल ॥।≈), सजिल्द १≈) मात्र ।

···प्रत्येक निबन्धका विषय पवित्र और गम्भीर है। भाषा परिमार्जित और सुबोध है।—किशोरीदासजी वाजपेयी

The book will be of immense help to those who want to practise religion in life. —Prabuddha Bharat.

वे पुस्तकें सरल हिन्दी-भाषामें उच्च आध्यात्मिक उपदेश और विचारपूर्ण, गम्भीर लेखोंसे परिपूर्ण हैं । सर्व-साधारणको इनका विचारपूर्वक मनन करके यथासाध्य लाभ उठाना चाहिये। पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताप्रेस, गोरखपुरमें मिलनेवाली अच्युतग्रन्थमाला, काशीकी पुस्तकें

१ भगवन्नामकौमुदी-संस्कृत टीकासहित ॥=)
२ भक्तिरसायनम्—संस्कृत टीकासहित ॥।)
३ शुल्बसूत्रम्—संस्कृत टीकासहित ।)
४ कात्यायनश्रौतसूत्रम्-संस्कृत टीकासहित ६)
५ प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणिः—(प्रथम भाग) संस्कृत टीकासहित २)
६ ,, —(दूसरा भाग) संस्कृत टीकासहित ... २।)
७ भक्तिरसामृतसिन्धुः—संस्कृत टीकासहित ३)
८ तिथ्यर्कः-संस्कृत ... १॥)
९ परमार्थसारः—संस्कृत टीकासहित ।=)
१० प्रेमपत्तनम्—संस्कृत ... १)
११ खण्डनखण्डखाद्यम्—भाषानुवादसहित २॥)
१२ काशी-केदार-माहात्म्यम्—भाषानुवादसहित २॥)
१३ सिद्धान्तबिन्दुः—भाषानुवादसहित १।=)
१४ प्रकरणपञ्चकम्—भाषानुवादसहित ॥)

इन पुस्तकोंमें कमीशन नहीं दिया जाता।

श्रीरामचरितमानस

मानसपीयूषटीका

(श्रीअञ्जनीनन्दनशरण शीतलासहायजी सावन्त बी० ए०, एल-एल० बी० लिखित)

पृष्ठ लगभग ७०००, नौ जिल्दोंमें समाप्त।

पूरा सेट सजिल्द मूल्य ३६) महसूल अलग

पुस्तकविक्रेताओंके लिये पूरा सेट सजिल्द ३२) महसूल अलग

यह बृहत् टीका श्रीअयोध्याजीसे निकली थी, परन्तु अब श्रीशीतलासहायजी अपना समय मौन रहकर भजनमें अधिक बिताना चाहते हैं, उनसे पुस्तकें बेचनेका काम नहीं हो सकता, इसलिये उनकी तरफसे गीताप्रेसद्वारा बेचनेका प्रबन्ध किया गया है। अबतक मानसपर जितनी टीकाएँ निकली हैं, इसमें प्रायः उन सबका सार और अप्रकाशित प्रसिद्ध टीकाओंका सङ्कलन है। काशी-निवासी प्रसिद्ध रामायणी पं० रामकुमारजी कृत अप्रकाशित पूरी टीका इसमें है। इसके सिवा श्रीवन्दन पाठकजी, पाण्डेय रामबक्षजी, सन्तसिंहजी ज्ञानी, काष्ठजिह्वा स्वामीजी, बाबा हरिहरप्रसादजी, पं० शिवलालजी पाठक, पं० गणपतिजी उपाध्याय, बाबा हरिदासजी, बाबा रघुनाथदासजी आदिकी टीकाओंसे तथा विनायकी टीका, वीर कविजीकी टीका, बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी टीका आदिसे जहाँ जो सुन्दर भाव मिले हैं उनका संग्रह इसमें किया गया है। इनके अतिरिक्त पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी, रामायणी बाबा श्रीरामबालकदासजी, बाबा श्रीजानकीदासजी, रामायणी श्रीरामसुन्दरदासजी इत्यादिकी कथाएँ तथा प्रो० श्रीरामदासजी गौड़, लाला श्रीभगवानदीनजी आदिके विचार सुनकर लेखकने वर्षोंतक जो नोट लिखे थे वे भी यथास्थान इसमें दिये गये हैं। शब्दोंके अर्थ, उनकी व्युत्पत्ति, प्रमाणसहित कथाएँ, कठिन समस्याओंकी मीमांसा, मिलानेके लिये दोहे-चौपाइयोंसे मिलते हुए अन्यान्य ग्रन्थोंके श्लोक भी दिये गये हैं। विवादास्पद पाठका खुलासा किया गया है। यह टीका रामायण-प्रेमियोंको अवश्य पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रेमी ग्राहकोंको सूचना

इस अंकमें आपका इस सालका मूल्य समाप्त हो गया। इसके बाद अब दसवें वर्षका प्रथमांक 'श्रीयोगांक' होगा, जो बहुत ही उपदेशप्रद, मनोरञ्जक और अनेक प्रकारकी योगसाधन-सम्बन्धी नयी-नयी सामग्रियोंसे सुसज्जित रहेगा। यदि आपने अभी आगामी वर्षके लिये वार्षिक मूल्य नहीं भेजा हो तो कृपाकर अब मनीआर्डरद्वारा तुरन्त ४≡) (चार रुपये तीन आने) भेज दीजिये। मनीआर्डरका फार्म वैशाखके अंकके साथ आपको भेजा गया है। योगांक और उसका परिशिष्टांक—भाद्रपदका अंक दोनों साथ ही रहेंगे। दोनोंमें लगभग ७०० पृष्ठ और लगभग २०० बहुत ही सुन्दर और दुर्लभ चित्र रहेंगे। मूल्य ३) होगा। सालभरके लिये ग्राहक बननेवालोंको ४≡) में ही योगांकके सिवा दस अंक और मिल जायँगे। एक अंकके दाम।) होते हैं, इस हिसाबसे दस अंकोंके २॥) बाद देनेपर परिशिष्टांकसहित योगांक ग्राहकोंको सिर्फ १॥≡) में ही मिल जाता है। यों अलग योगांक लेनेवालोंकी अपेक्षा ग्राहक बननेवाले सज्जनोंको १।-) का फायदा रहता है। योगांककी थोड़ी ही प्रतियाँ अधिक छप रही हैं। अतएव ग्राहकोंको बहुत जल्दी रुपये भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये। इस बार भी शायद खुली प्रतियाँ बहुत बिकें। इसलिये नये ग्राहकोंको तो रुपये भेजनेमें तनिक भी देर नहीं करनी चाहिये। जिनके पहलेसे रुपये आ जायँगे उनको योगांक निकलते ही भेजा जायगा। रही-सही वी० पी० बहुत पीछे जायगी। योगांक बहुत ही जल्दी बिक जानेकी सम्भावना है—इसलिये जल्दी ग्राहक न बननेवालोंको योगांक यदि दुबारा न छपा तो शायद मिलना मुश्किल हो जायगा। यह बात याद रखनी चाहिये।

भगतन काज लाज हिय धरिकैं पाँय पियादे धायौ।
जहँ-जहँ भीर परे भगतनपै तहँ-तहँ होत सहायौ॥
जो भगतनसों बैर करत है सो निज बैरी मेरो।
देख बिचार भगतहित कारन हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीत भगत अपनेकी हारे हार बिचारों।
'सूरश्याम' जो भगत-बिरोधी चक्र सुदर्शन मारों॥

—सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताप्रेस, गोरखपुरमें मिलनेवाली अच्युतग्रन्थमाला, काशीकी पुस्तकें

१	**भगवन्नामकौमुदी**–संस्कृत टीकासहित	॥=)	
२	**भक्तिरसायनम्**—संस्कृत टीकासहित	॥।)	
३	**शुल्बसूत्रम्**—संस्कृत टीकासहित	।)	
७	**भक्तिरसामृतसिन्धुः**—संस्कृत टीकासहित	३)	
८	**तिथ्यर्कः**–संस्कृत ...	१॥)	
९	**परमार्थसारः**—संस्कृत टीकासहित	।=)	

टीकासे तथा विनयकी टीका, वीर कविजीकी टीका, बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी टीका आदिसे जहाँ जो सुन्दर भाव मिले हैं उनका संग्रह इसमें किया गया है। इनके अतिरिक्त पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी, रामायणी बाबा श्रीरामबालकदासजी, बाबा श्रीजानकीदासजी, रामायणी श्रीरामसुन्दरदासजी इत्यादिकी कथाएँ तथा प्रो० श्रीरामदासजी गौड़, लाला श्रीभगवानदीनजी आदिके विचार सुनकर लेखकने वर्षोंतक जो नोट लिखे थे वे भी यथास्थान इसमें दिये गये हैं। शब्दोंके अर्थ, उनकी व्युत्पत्ति, प्रमाणसहित कथाएँ, कठिन समस्याओंकी मीमांसा, मिलानेके लिये दोहे-चौपाइयोंसे मिलते हुए अन्यान्य ग्रन्थोंके श्लोक भी दिये गये हैं। विवादास्पद पाठका खुलासा किया गया है। यह टीका रामायण-प्रेमियोंको अवश्य पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

प्रसिद्धान् सिद्धान् वा शिशुतरुणवृद्धानपि जनानुदारान् वा दारानन्नवरतमाराधनपरान् ।
चिदानन्दात्मेयं भुवनजननी संविदमला हरन्ती हृच्छल्यान्नयति किल कल्याणपदवीम् ॥

वर्ष ९ | गोरखपुर, आषाढ़ १९९२, जुलाई १९३५ | संख्या १२ पूर्ण संख्या १०८

भगवान्‌की प्रतिज्ञा

हम भगतनके भगत हमारे ।
सुन अर्जुन परतिग्या मोरी यह ब्रत टरत न टारे ॥
भगतन काज लाज हिय धरिकैं पाँय पियादे धायौ ।
जहँ-जहँ भीर परे भगतनपै तहँ-तहँ होत सहायौ ॥
जो भगतनसों बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख बिचार भगतहित कारन हाँकत हौं रथ तेरो ॥
जीते जीत भगत अपनेकी हारे हार बिचारों ।
'सूरश्याम' जो भगत-बिरोधी चक्र सुदर्शन मारों ॥

—सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल और नीलसे हानि

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

र्तमान युग प्रायः यन्त्रयुग हो रहा है, जहाँ देखिये वहीं यन्त्रका साम्राज्य है। बड़े-से-बड़े राष्ट्रोंसे लेकर मामूली खाने-पीने-पहिननेतककी वस्तु आज यन्त्रके आश्रित है। परन्तु इस यन्त्रसे दुनियामें जो दुःख-का दावानल धधक उठा है, उसे देख-सुनकर हृदय काँप उठता है। यन्त्र प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षरूपसे अबाधित गतिसे मानव-प्राणियोंके सुखका सतत संहार कर रहा है। मानवेतर प्राणियोंकी तो यन्त्रको कोई परवा ही नहीं है। यह इस प्रकारका संहारक पदार्थ है कि जो मानवसंहारी असुरोंसे भी किसी अंशमें बढ़ गया है। आज संसारमें जो चारों ओर पेटकी ज्वालासे जलते हुए प्राणियोंका हाहाकार मच रहा है, करोड़ों मनुष्य बेकार हो रहे हैं, असंख्य नर-नारी विविध रोगोंसे ग्रस्त हैं, कर्मशील मानव अकर्मण्य और आलसी बन गये हैं—इसका एक प्रधान कारण यह भयानक यन्त्रविस्तार भी है। यान्त्रिक सभ्यताका यदि इसी प्रकार विस्तार होता रहा तो सम्भवतः एक समय ऐसा आवे, जब कि सब प्रकारसे धर्म-कर्म-शून्य होकर मनुष्य ही मनुष्यका घातक बन जाय। प्रकारान्तरसे तो यह स्वरूप अब भी प्रत्यक्ष ही है।

खेदका विषय है कि ऋषि-मुनि-सेवित पवित्र भारतभूमिमें भी यन्त्रका विस्तार दिनोंदिन बढ़ रहा है। पहले तो कपड़े और पाटकी ही मिलें थीं, जिनसे गरीबोंका एकमात्र गृह-उद्योग चर्खा तो नष्ट हो ही गया था। अब छोटी-बड़ी सब तरहकी मिलें बन रही हैं, जिनमें ग्राम-उद्योगका बचाखुचा स्वरूप भी नष्ट हो रहा है। स्त्रियाँ धान कूटकर काम चलाती थीं, अब चावलोंकी मिलें हो गयीं। गरीब विधवा बहिनें आटा पीसकर अपना और अपने बच्चोंका पेट भरती थीं, अब गाँव-गाँवमें आटा पीसनेवाली कलकी चक्कियाँ बैठ गयीं। तेलियोंके कोल्हूको मिलोंने प्रायः हड़प लिया। चीनीका सबसे बड़ा गरीबोंका रोजगार तो मिलोंके द्वारा बड़ी ही बुरी तरहसे मारा गया। अब कपड़े धोनेका काम भी मशीनोंसे शुरू हो गया है, जिससे बेचारे गरीब धोबियोंकी रोटी भी मारी जानेकी सम्भावना हो गयी है। यह तो निश्चित है कि सैकड़ों-हजारों आदमियोंका काम जहाँ एक मिलसे होगा, वहाँ लोगोंमें बेकारी ही फैलती दृष्टि आती है। बेकारीमें असहाय होकर, अपने और परिवारकी पेटकी ज्वालासे पीड़ित होकर, इच्छा न होनेपर भी परिस्थिति-में पड़कर, मनुष्यको किस-किस प्रकारसे बुरे कर्म करने पड़ते हैं और कहीं-कहीं तो परिवार-का-परिवार आँसुओंसे तन-वदनको धोता हुआ चुपचाप एक ही साथ जीवन-लीला समाप्त कर लेता है। इस बातका पता बेकारोंको तो प्रायः है ही, अखबार पढ़नेवाले लोग भी ऐसी घटनाओंसे अनजान नहीं हैं।

साथ ही हाथकी बनी चीजोंमें जो जीवनी शक्ति, एक विशिष्ट सौन्दर्य, धर्मकी एक पवित्र भावना रहती है, वैसी मिलके बने पदार्थोंमें ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलती। प्राकृतिक और कृत्रिममें अथवा असली और नकलीमें जो भेद रहता है, वही भेद प्रायः इनमें भी समझना चाहिये। आटे और चावलको ही लीजिये, जाँतेमें हाथसे पिसे आटे और ढेकीसे कुटे चावलमें जो जीवनीशक्ति रहती है, बल और आरोग्यवर्धक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्व रहता है, मिलके पिसे आटे या मिलके कुटे चावलमें प्रायः वैसा नहीं रहता। घर फूँककर रोशनी देखनेकी भाँति, अवश्य ही उनका कृत्रिम सौन्दर्य तो बढ़ ही जाता है।

अभी बेरी-बेरी रोगके सम्बन्धमें जाँच-पड़ताल होनेपर, यह बात निश्चित हो चुकी है कि इस रोगके उत्पन्न और विस्तार होनेमें आटा, चावल आदि मिलोंके पिसे-कुटे पदार्थ ही विशेष कारणरूप हैं। यही हाल चीनीका है। जो जीवन-तत्त्व ग्रामोंके हाथसे बने गुड़में है, उससे अनेकों हिस्से कम हाथ-की बनी चीनीमें है और मिलकी बनी चीनीमें तो कहा जाता है कि जीवन-तत्त्व (विटामिन) प्रायः नहींके समान है। यही हाल तैल इत्यादि वस्तुओंका समझना चाहिये। चीनीकी मिलोंमें सीरेकी, धान-कलोंमें चावलके पानीकी तथा मिलके चावलसे बने हुए भातकी दुर्गन्धसे स्वास्थ्यकी भयानक हानि होती है। ऐसी अवस्थामें इन वस्तुओंके प्रचारसे देशके स्वास्थ्यका कितना अधिक ह्रास होगा, इसपर विचार करनेसे भविष्य बहुत ही भयानक प्रतीत होता है।

मिलोंके अधिक प्रचारसे मशीनोंकी खरीदीमें विदेशमें जो धन जाता है उसकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। साथ ही मिलोंमें काम करनेवाले गरीब मजदूर भाई-बहिनोंके स्वास्थ्यकी ओर यदि देखा जाय तो उसमें भी बड़ी हानि मालूम होती है। मिलोंसे किसानोंकी जो हानि हो रही है, वह भी हृदय हिला देनेवाली है। मनुष्येतर प्राणियोंका अर्थात् छोटे-मोटे जीवोंका, कीड़े-मकोड़ोंका जो संहार होता है, उसकी तो कोई संख्या ही नहीं है। दुःख है कि आज मनुष्यने अपने स्वार्थ-साधनके लिये इतर प्राणियोंके तो जीवनका मूल्य ही नहीं मान रक्खा है। सम्भव है कि विविध कला और विद्याओंमें निष्णात भारतीय ऋषि-मुनि और विद्वानोंने यन्त्रोंके दुष्परिणामको जानकर ही उनका आविष्कार और प्रचार नहीं किया था। आज तो ऐसी दशा हो गयी है कि मिलोंके बने हुए पदार्थोंका व्यवहार करना दूषित प्रतीत होनेपर भी, उसका छोड़ना कठिन हो गया है। हमारे व्यापारमें, हमारी आजीविकाके साधनमें और हमारी घर-गृहस्थीमें मिलका इतना अधिक प्रवेश हो गया है कि दोष प्रतीत होनेपर भी सहसा उसे निकाल देना असम्भव नहीं तो बहुत ही कठिन है। मेरा तो यहाँपर यही निवेदन है कि मिलके दोषोंको समझकर, जहाँतक बन पड़े हमलोगोंको मिलोंसे कम सम्बन्ध रखना चाहिये। वर्तमान परिस्थितिको देखते, न तो यही कहा जा सकता है कि मिलोंके सञ्चालक सहसा सब मिलोंको बन्द कर दें और न मिलोंसे सम्बन्धित व्यापार छोड़ना और सम्पूर्णरूपसे घरको मिलकी चीजोंसे रहित करना ही सम्भव है। शनैः-शनैः यह काम करना चाहिये। जहाँतक हो सके मिलोंसे सम्बन्ध हटाकर, ग्राम-उद्योगोंसे सम्बन्ध जोड़ना, उनको पुनर्जीवित करना और उनका विस्तार करना प्रत्येक सहृदय देशवासीका अपने देश, जाति, धर्म और स्वास्थ्यके लाभके लिये अति आवश्यक कर्तव्य है।

खास करके उन लोगोंसे निवेदन है कि जो अपने व्यक्तिगत जीवनमें और अपने घरोंमें मिलोंकी बनी वस्तुओंका व्यवहार करना आवश्यक समझते हैं या करते हैं। ये भाई-बहिन यदि मिलकी बनी वस्तुओंके बदले हाथकी बनी वस्तुओंका व्यवहार करना आरम्भ कर दें—अवश्य ही ऐसा करनेमें उन्हें अपनी शौकीनीकी वासनाको और बाहरी सजावटके प्रलोभनको कुछ कम करना होगा—तो सहज ही मिलका विस्तार कम हो सकता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राम-उद्योगकी श्रीवृद्धि होनेसे फलस्वरूप गरीब भाई-बहिनोंकी जीवन-रक्षा, देशके स्वास्थ्यकी उन्नति, देशके धनका संरक्षण, बेकारीका नाश, आलस्य और अकर्मण्यताका लोप और धर्मकी वृद्धि हो सकती है।

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हाथसे बनी वस्तुओंका निर्माण करनेमें जितनी धार्मिक भावना रहती है, उतनी मिलके काममें नहीं रह सकती। उदाहरणस्वरूप चीनीको ही लीजिये। आजकल चीनीको चमकदार बनानेके लिये उसमें नील दी जाती है। हमारे शास्त्रोंके अनुसार नील सर्वथा हानिकर, धर्मनाशक और अशुभको पैदा करनेवाली है। सर्वज्ञ ऋषि-मुनियोंने इस विषयपर क्या लिखा है और कहाँतक नीलके व्यवहारमें हानि बतलायी है, इसका पता नीचे उद्धृत किये हुए कुछ श्लोकोंसे लग सकता है—

एकपङ्क्त्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक्।
यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः॥
यस्य पटे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते।
त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः॥
(अत्रिसंहिता २४४-२४५)

'भोजनके निमित्त एक ही पंक्तिमें पृथक्-पृथक् बैठे हुए अनेकों मनुष्योंमेंसे यदि एक मनुष्य भी नील-का व्यवहार करे तो वे सभी अपवित्र हो जाते हैं। उस समय जिसके साधारण या रेशमी वस्त्रमें नीलसे रँगा हुआ अंश दीख जाय उसे त्रिरात्रव्रत करना चाहिये और उसके साथ बैठनेवाले शेष मनुष्य उस दिन उपवास करें।'

पालनाद् विक्रयाच्चैव तद्वृत्त्या चोपजीवनात्।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति॥
(अङ्गिरःस्मृति)

'नीलकी खेती, विक्रय और उसीकी वृत्तिद्वारा जीविका चलानेसे ब्राह्मण पतित हो जाता है, फिर तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे वह शुद्ध होता है।'

नीलीदारु यदा भिन्द्याद् ब्राह्मणस्य शरीरकम्।
शोणितं दृश्यते तत्र द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥
(आपस्तम्बस्मृति ६। ६)

'यदि ब्राह्मणका शरीर नीलकी लकड़ीसे बिंध जाय और रक्त निकल आवे तो वह चान्द्रायणव्रतका आचरण करे।'

नीलीवृक्षेण पक्वं तु अन्नमश्नाति चेद् द्विजः।
आहारवमनं कृत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥
(अङ्गिरःस्मृति)

'यदि ब्राह्मण नीलकी लकड़ीसे पकाया हुआ अन्न भोजन कर ले तो उस आहारका वमन करके पञ्चगव्य लेनेसे वह शुद्ध होता है।'

भक्षेत्प्रमादतो नीलीं द्विजातिस्त्वसमाहितः।
त्रिषु वर्णेषु सामान्यं चान्द्रायणमिति स्थितम्॥
(अङ्गिरःस्मृति)

'यदि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) असावधानतावश नील-भक्षण कर लें तो तीनों द्विजातियोंके लिये सामान्यरूपसे चान्द्रायणव्रत करना बतलाया गया है।'

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपदीयते।
नोपतिष्ठति दातारं भोक्ता भुङ्क्ते तु किल्बिषम्॥
(अङ्गिरःस्मृति)

'नीलसे रँगे हुए वस्त्रको धारण करके जो अन्न दिया जाता है वह दाताको नहीं मिलता और उसे भोजन करनेवाला भी पाप ही भोगता है।'

मृते भर्तरि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत्।
भर्ता तु नरकं याति सा नारी तदनन्तरम्॥
(अङ्गिरःस्मृति)

'पतिदेवके मर जानेपर जो स्त्री नीलमें रँगा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्त्र धारण करती है उसका पति नरकमें जाता है, उसके बाद वह स्त्री भी नरकमें ही पड़ती है।'

नील्या चोपहते क्षेत्रे सस्यं यत्तु प्ररोहति।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

(अङ्गिरःस्मृति)

'नील बोनेसे दूषित हुए खेतमें जो अन्न पैदा होता है वह द्विजातियोंके भोजन करनेयोग्य नहीं होता, उसे खा लेनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये।'

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
पञ्चयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात्॥

(आपस्तम्बस्मृति ६। ३)

'नीलमें रँगे वस्त्रको धारण करनेसे मनुष्यके स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण और पञ्चयज्ञ सभी निष्फल हो जाते हैं।'

रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित्।
पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति॥

(आपस्तम्बस्मृति ६। ५)

'यदि कभी रोमकूपोंद्वारा नीलका रस अन्दर चला जाय तो ब्राह्मण पतित हो जाता है और फिर तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है।'

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

(आपस्तम्बस्मृति ६। ८)

'नीलसे रँगे हुए वस्त्रद्वारा यदि अन्न लाया जाय तो वह द्विजातियोंके भोजनयोग्य नहीं रह जाता, उसे खा लेनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये।'

उपर्युक्त ऋषि-वाक्योंसे नीलका सर्वथा अपवित्र होना एवं पाप और दुःखोंकी उत्पत्तिमें कारण होना तथा अन्तःकरणको दूषित करके अध्यात्ममार्गसे गिरानेवाला होना सिद्ध है। आजकल हमलोग प्रायः न तो शास्त्रके वाक्योंका अध्ययन ही करते हैं और न उनपर विश्वास ही; इसी कारणसे मनमाना आचरण करने लगे हैं। धोबियोंतकसे कपड़ेकी चमकके लिये कपड़े धुलवानेमें नील दी जाती है। वस्त्रके किनारे और वस्त्रोंका नीला-काला तो शौकीनीका अङ्ग हो गया है। चीनीके साथ मिलकर अब तो नील हमारे पेटोंमें भी जाने लगी, अतएव केवल पवित्रताका विज्ञापन देखकर ही हमें नहीं भूलना चाहिये। ऋषिवाक्योंके अनुसार पवित्रताकी जाँच करनी चाहिये और जहाँतक बने अपवित्र वस्तुओंका तन-मनसे त्याग करना चाहिये।

इसी प्रकार मिलके बने हुए वस्त्रोंपर प्रायः पशुओंकी चर्बीसे पालिस की जाती है, शायद ही कोई ऐसी मिल हो जिसमें चर्बीका उपयोग न होता हो। इसके लिये प्रतिवर्ष लाखों निरीह, निरपराध और मूक पशुओंका बध होता है। ऐसी अवस्थामें मिलके वस्त्रोंका व्यवहार करनेसे धर्म, जाति, पवित्रता, स्वास्थ्य, धन आदि सभीका नाश होता है। अतएव जहाँतक हो सके मिलके वस्त्रोंका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

तीन बातोंसे सदा बचो—१ अपनी तारीफ, २ दूसरेकी निन्दा और ३ परदोषदर्शन ।

तीन बातें ध्यान रखकर करो—१ ईश्वरका स्मरण, २ दूसरोंका सम्मान और ३ अपने दोषोंको देखना ।

तीन बातें सदा सोचो—१ भगवान्‌का प्रेम कैसे प्राप्त हो ? २ दुखियोंका दुःख कैसे दूर हो ? ३ हृदय पापशून्य कैसे हो ?

तीन बातोंपर सदा अमल करो—१ सत्य, २ अहिंसा और ३ भगवान्‌का नामजप ।

तीन बातोंसे सदा अलग रहो—१ परचर्चासे, २ वादविवादसे और ३ नेतागिरीसे ।

तीनोंपर सदा दया करो—१ अबलापर, २ पागलपर और ३ राह भूले हुएपर ।

तीनोंपर दया न करो—१ अपने पापपर, २ आलस्यपर और ३ उच्छृङ्खलतापर ।

तीनोंको सदा वशमें रक्खो—१ मन, २ उपस्थ इन्द्रिय और ३ जीभ ।

तीनोंके सदा वशमें रहो—१ भगवान्‌के, २ धर्मके और ३ शुद्ध कुलाचारके ।

तीनोंसे सदा मुक्त रहो—१ अहङ्कारसे, २ ममतासे और ३ आसक्तिसे ।

तीनसे सदा सच्चे रहो—१ धनसे, २ काछसे और ३ जबानसे ।

तीनपर ममता करो—१ ईश्वरपर, २ सदाचारपर और ३ गरीबोंपर ।

तीनसे सदा डरते रहो—१ अभिमानसे, २ दम्भसे और ३ लोभसे ।

तीनके सामने सदा नम्र रहो—१ गुरु, २ माता और ३ पिता ।

तीनसे सदा प्रेम करो—१ ईश्वर, २ धर्म और ३ देश ।

तीनको सदा हृदयमें रक्खो—१ दया, २ क्षमा और ३ विनय ।

तीनका सदा सेवन करो—१ सन्त, २ सत्-शास्त्र और ३ पवित्र भूमि ।

तीनको हृदयसे निकाल दो—१ राग, २ द्वेष और ३ मत्सर ।

तीन व्रतोंका पालन करो—१ परस्त्रीसेवनका त्याग, २ परधनका त्याग और ३ असहायोंकी सेवा ।

तीन उपवास करो—१ एकादशी, २ पूर्णिमा और ३ अमावस्या ।

तीन बातोंमें शङ्का न करो—१ शास्त्रवचन, २ गुरुवचन और ३ शुद्ध मनकी प्रेरणा ।

तीनका भरणपोषण करो—१ माता-पिता, २ स्त्री-बच्चे और ३ दीन-दुखी ।

तीनका सङ्ग छोड़ दो—१ व्यभिचारीका, २ जुआरीका और ३ लबारीका ।

तीन प्रकारके लोगोंसे दूर रहो—१ नास्तिकसे, २ माता-पिता-गुरुका द्रोह करनेवालेसे और ३ सन्त पुरुषोंकी निन्दा करनेवालेसे ।

तीनकी दशापर विशेष ध्यान रक्खो—१ विधवा स्त्री, २ अनाथ बालक और ३ दबे हुए और पराश्रित प्राणी ।

तीनकी आवश्यकताओंपर विशेष ध्यान दो—१ मूकप्राणी, २ संसारत्यागी संन्यासी और ३ कुछ भी न माँगनेवाले अतिथि ।

तीनकी परवा न करो—१ धर्मपालनके लिये कष्टकी, २ दूसरेका कष्ट दूर करनेके लिये धनकी और ३ रोगीकी सेवामें अपने शरीरकी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन आदमियोंको मत रोको—१ जल्दी छूटनेवाली रेलमें चढ़नेकी इच्छावाले मुसाफिरको, २ दूसरोंकी सेवा करनेवालेको और ३ दाताको ।

तीन कामोंमें खूब जल्दी करो—१ भजनमें, २ दानमें और ३ शास्त्रके अभ्यासमें ।

तीन कामोंको ढीलमें छोड़ दो—१ मुकदमेबाजीको, २ विवादको और ३ किसीके दोषनिर्णयको ।

तीन आवेशोंके समय कोई भी क्रिया करनेसे रुक जाओ—१ क्रोधके समय, २ कामवासनाके समय और ३ लोभके समय ।

तीनोंका सम्मान करो—१ वृद्धका, २ ब्राह्मणका, और ३ निर्धनका ।

तीनोंका सदा हृदयसे आदर करो—१ भगवान्‌के विग्रहका, २ सन्त-महात्माका और ३ सत्‌शास्त्रका ।

तीनोंके सामने नम्र रहो—१ गुरुजन, २ विद्वान् और ३ राजपुरुष ।

तीन कामोंको खूब मन लगाकर करो—१ भजन, २ भगवान्‌का ध्यान और ३ सत्सङ्ग ।

तीन आँसुओंको पवित्र मानो—१ प्रेमके, २ करुणाके और ३ सहानुभूतिके ।

तीन आँसू अपवित्र मानो—१ शोकके, २ क्रोधके और ३ दम्भके ।

तीन बननेसे बचो—१ महन्त, २ दीक्षा देनेवाले गुरु और ३ मालिक ।

तीन बननेमें सुख मानो—१ अज्ञात सेवक, २ व्यर्थ निन्दाका पात्र और ३ परसुखके साधन ।

तीन बातोंका दुराग्रह न करो—१ सम्प्रदायका, २ वेषका और ३ अपने मतका ।

तीन बातोंका सदा सत्‌आग्रह रक्खो—१ सत्यका, २ धर्मका और ३ सच्चरित्रताका ।

तीन कामोंसे कम सम्पर्क रक्खो—१ सभासमिति, २ अखबारनवीसी और ३ दलबन्दी ।

तीन न बनाओ—१ शिष्य, २ जमात और ३ मठ ।

तीन बनाओ—१ धर्मशाला, २ कुआँ और ३ देवमन्दिर ।

तीन चीजें लगाओ—१ वृक्ष, २ प्याऊ और ३ अन्नक्षेत्र ।

तीनोंसे घृणा न करो—१ रोगीसे, २ निर्धनसे और ३ नीची जातिवालेसे ।

तीनसे घृणा करो—१ पापसे, २ अभिमानसे और ३ मनकी मलिनतासे ।

तीन जगह न जाओ—१ वेश्यालय, २ जुवाड़खाना और ३ कलालके घर ।

तीन जगह रोज जाओ—१ देवमन्दिर, २ सन्तकी कुटिया और ३ आजीविकाके स्थान ।

तीनसे मज़ाक न करो—१ अंगहीनसे, २ विधवा या अनाथसे और ३ दीन-दुखी प्राणीसे ।

तीनको प्रतिदिन प्रणाम करो—१ ईश्वर, २ माता-पिता, पति आदि गुरुजन और ३ सन्त-महात्मा ।

तीन बातोंको मनकी उन्नतिके लिये रोज नियमसे करो—१ स्वाध्याय, २ ध्यान और ३ अपने मानसिक दोषोंका स्मरण ।

तीन बातें स्वास्थ्यके लिये रोज नियमसे करो—१ शुद्ध वायुमें घूमना, २ नियमित आहार-विहार और ३ कुपथ्यका त्याग ।

तीन चीजोंसे ज्ञान मिलता है—१ श्रद्धा, २ तत्परता और ३ इन्द्रियसंयम ।

तीन नरकके दरवाजोंमें कभी मत घुसो—१ काम, २ क्रोध और ३ लोभ ।

तीन आवश्यक साधन करो—१ समता २ संयम और ३ सब प्राणियोंके हितकी चेष्टा ।

तीनको गुरु न बनाओ—१ स्त्रीसेवीको, २ धनके लालचीको और ३ दाम्भिकको ।

तीनका चिन्तन न करो—१ स्त्रीका, २ धनका, और ३ नास्तिकका ।

तीनका चिन्तन नित्य करो—१ भगवान्‌का, २ सन्तवाणीका और ३ वैराग्यका ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन मुख्य साधन करो—१ वैराग्य, २ अभ्यास, और ३ भगवान्‌की कृपापर विश्वास ।

तीन महान् शक्तियोंका आश्रय ग्रहण करो—१ भगवान्‌की शरणागति, २ भगवत्कृपा और ३ आत्मशक्ति ।

तीनपर विश्वास करो—१ भगवान्‌की दयापर, २ आत्माकी शक्तिपर और ३ सत्य शुद्ध आचरणपर ।

तीनपर आस्था न करो—१ कूटनीतिपर, २ दुराचारपर और ३ असत्यपर ।

तीन बातोंको भूल जाओ—१ अपने द्वारा किया हुआ किसीका उपकार, २ दूसरेके द्वारा किया हुआ अपना अपकार और ३ धन-मान-साधन आदिके कारण अपनी ऊँची स्थिति ।

तीन बातोंको याद रक्खो—१ अपने द्वारा की हुई दूसरेकी बुराई, २ दूसरेके द्वारा किया हुआ अपना उपकार और ३ धन-मान-जीवन आदि सब अनित्य और विनाश होनेवाले हैं यह निश्चय ।

तीन न बनो—१ कृतघ्न, २ दाम्भिक और ३ नास्तिक ।

तीन बनो—१ नम्र, २ सरल और ३ ईश्वरमें विश्वासी ।

तीनका आश्रय करो—१ ईश्वरका २ आत्माका और ३ निरभिमान पुरुषार्थका ।

तीन बातोंको मत देखो—१अपने गुण, २ दूसरोंके दोष और ३ जीवोंकी रतिक्रीड़ा ।

तीन बातोंको देखो—१ अपने दोष, २ दूसरोंके गुण और ३ महात्माओंके आदर्श त्यागपूर्ण आचरण ।

तीनका खण्डन न करो—१दूसरेके इष्टका, २ दूसरेके शास्त्रका और ३ अपने निश्चयका ।

तीनका मण्डन न करो—१ केवल प्रारब्धका, २ अकर्मण्यताका और ३ शास्त्रविरोधी आचरणका ।

तीन प्रकारके वचन बोलो—१ सत्य, २ हितकारी और ३ मधुर ।

तीन प्रकारके वचन न बोलो—१ असत्य, २ अनिष्ट करनेवाले और ३ कड़ुए ।

तीन बातोंके लिये जबान खोलो—१ भगवद्गुणानुवाद, २ आवश्यक सत्य वचन और ३ परोपकार ।

तीनसे सदा स्नेहपूर्ण बर्ताव करो—१ अपनी पत्नीसे, २ अपने अधीन कर्मचारियोंसे और ३ गरीबोंसे ।

तीनकी सेवामें अपना सौभाग्य समझो—१ माता-पिताकी, २ सन्त-महात्माकी और ३ दुखी जीवोंकी ।

तीनकी सेवामें आवश्यकता होनेपर कभी सङ्कोच न करो—१ मित्रकी, २ अपनी पत्नीकी और ३ अतिथिकी ।

तीन बातोंको गुप्त रक्खो—१ साधन, २ धन और ३ मैथुन ।

तीन बातोंको प्रकट कर दो—१ अपने पाप, २ दूसरेके गुण और ३ परोपकारके साधन ।

तीन बातोंको मत खोलो—१ पराया छिद्र या ऐसी बात जिससे किसीका अनिष्ट होता हो, २ अपने पुण्यकी बात और ३ गुप्त शुभ मन्त्रणा ।

तीनोंको सिर चढ़ाकर सुखी होओ—१ महापुरुषों और भक्तोंकी चरणरज, २ तीर्थजल और ३ अपनी निन्दा ।

तीनको पाकर कभी न फूलो—१ मान, २ परनिन्दा और ३ अपनी बड़ाई ।

तीनकी कामनामें न फँसो—१ धन, २ पुत्र और ३ सम्मान ।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती विष्णुप्रियादेवी

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

गौरशक्तिं महामायां नवद्वीपनिवासिनीम्। विष्णुप्रियां सतीं साध्वीं तां देवीं प्रणतोऽस्म्यहम्॥*

(प्र० द० ब्र०)

यह विश्व महामाया शक्तिके ही अवलम्बसे अवस्थित है। शक्तिहीन संसारकी कल्पना ही नहीं हो सकती। सर्वशक्तिमान् शिव भी शक्तिके बिना शव बने पड़े रहते हैं। जब उनके अचेतन शवमें शक्तिदेवीका सञ्चार होता है, तभी वे शवसे शिव बन जाते हैं। शक्ति प्रच्छन्न रहती है और शक्तिमान् प्रकट होकर प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है। यथार्थमें तो उस शक्तिकी ही साधना कठोर है। वनवासी वीतरागी विरक्त तपस्वियोंकी अपेक्षा छिपकर साधना करनेवाली सती-साध्वी, शक्तिरूपिणी देवीकी तपस्याको मैं अधिक श्रेष्ठ मानता हूँ। हृदयपर हाथ रखकर उस सतीकी तपश्चर्याकी कल्पना तो कीजिये, जो संसारमें रहकर भी संसारसे एकदम पृथक् रहती है। उसका सम्पूर्ण संसार पतिकी मनोहर मूर्तिमें ही सन्निहित हो जाता है। उसकी सभी इन्द्रियोंके व्यापार, चित्त और मनकी क्रियाएँ एकमात्र पतिके ही लिये होती हैं। पतिके रूपका चिन्तन ही उसके मनका आहार बन जाता है। अहा! कितनी ऊँची स्थिति होती होगी, क्या कोई शरीरको सुखाकर ही अपनेको कृतकृत्य समझनेवाला तपस्वी इस भयङ्कर तपस्याका अनुमान लगा सकता है?

भगवान् बुद्धदेवके राज्य-त्यागकी सभी प्रशंसा करते हैं, किन्तु उस साध्वी गोपाका कोई नाम भी नहीं जानता जो अपने पाँच वर्षके पुत्र राहुलको संन्यासी बनाकर स्वयं भी राजमहलका परित्याग करके अपने पति भगवान् बुद्धदेवके साथ भिक्षुणीवेषमें द्वार-द्वार भिक्षा माँगती रही। परमहंस रामकृष्णदेवके वैराग्यकी बात सभीपर विदित है, किन्तु उस भोली बाला शारदादेवीका नाम बहुत कम लोग जानते हैं जो पाँच वर्षकी अबोध बालिकाकी दशामें अपने पितृगृहको परित्याग करके अपने पगले पतिके घरमें आकर रहने लगी। परमहंसदेवने जब प्रेमके पागलपनमें संन्यास लिया था, तब वह जगन्माता पूर्ण युवती थी। अपने पतिके पागलपनकी बातें सुनकर वह लोकलाजकी कुछ भी परवा न करके अपने संन्यासी स्वामीके साथ रहने लगी। कल्पना तो कीजिये। युवावस्था, रूपलावण्ययुक्त परम रूपवान् पुरुषकी सेवा, सो भी एकान्तमें और वह भी पादसेवाका गुरुतर कार्य। परम आश्चर्यकी बात तो यह है कि वह पुरुष भी परपुरुष नहीं अपना सगा स्वामी ही है, जिसपर भी किसी प्रकारका विकार मनमें न आना। क्या ऐसी घोर तपस्या पञ्चाग्नि तापने और शीतमें सैकड़ों वर्षोंतक जलमें खड़े रहनेवाली तपस्यासे कुछ कम है? अहा! ऐसी सती-साध्वी देवियोंके चरणोंमें हम कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं। महाप्रभुका साधन सभी भक्तोंके समक्षमें हुआ, इससे भक्तोंके द्वारा वह संसारको विदित हो गया, परन्तु श्रीविष्णुप्रियाजीकी साधना घरके भीतर एक गहरे कोनेमें, नर-नारियोंकी दृष्टिसे एकदम अलग हुई, इसलिये वह उतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी। उनकी साधनाका जो भी कुछ थोड़ा-बहुत समाचार मिलता है, उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या कोई भी व्यक्ति इस प्रकारकी कठोरता कर सकता है? अबला कही जानेवाली नारी-जातिके द्वारा क्या इतनी तीव्रतम तपस्या सम्भव हो सकती है? किन्तु इसमें अविश्वासकी तो कोई बात ही नहीं। अद्वैताचार्यजीके प्रिय शिष्य ईशान नागरने प्रत्यक्ष देखकर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अद्वैत-प्रकाश' में इसका उल्लेख किया है। उस कठोरताकी कथाको सुनकर तो कठोरताका भी हृदय फटने लगेगा। बड़ी ही करुण कहानी है!

* नवद्वीपमें निवास करनेवाली श्रीगौराङ्गदेवकी शक्ति महा-मायास्वरूपिणी सती-साध्वी श्रीविष्णुप्रियादेवीको मैं प्रणाम करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्रभु संन्यास लेकर गृहत्यागी वैरागी बन गये, उससे उस पतिप्राणा प्रियाजीको कितना अधिक क्लेश हुआ होगा, यह विषय अवर्णनीय है। मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात है। एक बार वृन्दावन जाते समय केवल विष्णुप्रियाजीकी ही तीव्र विरहवेदनाको शान्त करनेके निमित्त क्षणभरके लिये प्रभु अपने पुराने घरपर पधारे थे। उस समय विष्णुप्रियाजीने अपने संन्यासी पतिके पादपद्मोंमें प्रणत होकर उनसे जीवनालम्बनके लिये किसी चिह्नकी याचना की थी। दयामय प्रभुने अपने पादपद्मोंकी पुनीत पादुकाएँ उसी समय प्रियाजीको प्रदान की थीं और उन्हींके द्वारा जीवन धारण करते रहनेका उपदेश किया था। पतिकी पादुकाओंको पाकर पतिपरायणा प्रियाजीको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई और उन्हींको अपने जीवनका सहारा बनाकर वे इस पाञ्चभौतिक शरीरको टिकाये रहीं। उनका मन सदा नीलाचलके एक निभृत स्थानमें किन्हीं अरुण रंगवाले दो चरणोंके बीचमें भ्रमण करता रहता। शरीर यहाँ नवद्वीपमें रहता, उसके द्वारा वे अपनी वृद्धा सासकी सदा सेवा करती रहतीं। शचीमाताके जीवनका एकमात्र अवलम्बन अपनी प्यारी पुत्रवधूका कमलके समान म्लान मुख ही था। माता उस म्लान मुखको विकसित और प्रफुल्लित करनेके लिये भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ करतीं। पुत्रवधूके सुवर्णके समान शरीरको सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सजातीं। प्रभुके भेजे हुए जगन्नाथजीके बहुत ही मूल्यवान् पट्टवस्त्रको वे उन्हें पहनातीं तथा और भी विविध प्रकारसे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करतीं। किन्तु विष्णुप्रियाजीकी प्रसन्नता तो पुरीके गम्भीरा मन्दिरके किसी कोनेमें थिरक रही है, वह नवद्वीपमें कैसे आ जाय। शरीर तो उसके एक ही है, इसीलिये इन वस्त्राभूषणोंसे विष्णुप्रियाजीको अणुमात्र भी प्रसन्नता न होती। वे अपनी वृद्धा सासकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं करना चाहती थी। प्रभुके प्रेषित प्रसादी पट्टवस्त्रका अपमान न हो, इस भयसे वे उस मूल्यवान् वस्त्रको भी धारण कर लेतीं, और आभूषणोंको भी पहन लेतीं किन्तु उन्हें पहनकर वे बाहर नहीं जाती थीं।

प्रभुका पुराना भृत्य ईशान अभीतक प्रभुके घरपर ही था। शचीमाता उसे पुत्रकी भाँति प्यार करतीं। वही प्रियाजी तथा माताजीकी सभी प्रकारकी सेवा करता था। ईशान बहुत वृद्ध हो गया था, इसीलिये प्रभुने वंशीवदन नामक एक ब्राह्मणको माताकी सेवाके निमित्त और भेज दिया था। ये दोनों ही तन-मनसे माता तथा प्रियाजीकी सभी सेवा करते थे। प्रियाजीके पास काञ्चना नामकी एक उनकी सेविका सखी थी, वह सदा प्रियाजीके साथ ही रहती और उनकी हर प्रकारकी सेवा करती। दामोदर पण्डित भी नवद्वीपमें ही रहकर माताकी देख-रेख करते रहते और बीच-बीचमें पुरी जाकर माताजी तथा प्रियाजीका सभी संवाद सुना आते। विष्णुप्रियाजी उन दिनों घोर त्यागमय जीवन बिताती थीं। दामोदर पण्डितके द्वारा प्रभु जब इनके घोर वैराग्य और कठिन तपका समाचार सुनते तब वे मन-ही-मन अत्यधिक प्रसन्न होते।

विष्णुप्रियाजीका एकमात्र अवलम्बन वे प्रभुकी पुनीत पादुकाएँ ही थीं। अपने पूजागृहमें वे एक उच्चासनपर उन पादुकाओंको पधराये हुए थीं और नित्यप्रति धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा किया करती थीं। वे निरन्तर—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इसी महामन्त्रको जपती रहतीं। उन्होंने अपना आहार बहुत ही कम कर दिया था, किन्तु शचीमाताके आग्रहसे वे कभी-कभी कुछ अधिक भोजन कर लेती थीं।

पुत्रशोकसे जर्जरित हुई वृद्धा माताका हृदय फट गया था। पुत्रकी दिव्योन्मादकारी अवस्था सुनकर तो उसके घायल हृदयमें मानो किसीने विषसे बुझे हुए बाण वेध दिये हों। एक दिन माताने अधीर होकर भक्तोंसे कहा—'निमाईके विरहदुःखकी ज्वाला अब मेरे अन्तःकरणको तीव्रताके साथ जला रही है, अब मेरा यह पार्थिव शरीर टिक न सकेगा, इसलिये तुम मुझे भगवती भागीरथीके तटपर ले चलो।' भक्तोंने जगन्माताकी आज्ञाका पालन किया, और वे स्वयं अपने कन्धोंपर पालकी रखकर माताको गङ्गाकिनारे ले गये। पीछेसे पालकीपर चढ़कर विष्णुप्रियाजी भी वहाँ पहुँच गयीं। पुत्रशोकसे तड़फड़ाती हुई माताने अपनी प्यारी पुत्रवधूको अपने पास बुलाया। उसके हाथको अपने हाथसे धीरे-धीरे पकड़कर माताने कष्टके साथ पुत्रवधूका माथा चूमा और उसे कुछ उपदेश करके इस नश्वर शरीरको त्याग दिया। शचीमाताके वैकुण्ठगमनसे सभी भक्तोंको अपार दुःख हुआ। सासकी क्रिया कराकर प्रियाजी घर लौटीं। अब वे नितान्त अकेली रह गयी थीं। ईशान मातासे पहले ही परलोकवासी बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका था, उसे अपनी स्नेहमयी माताका यह हृदय-विदारक दृश्य अपनी आँखोंसे नहीं देखना पड़ा। घरमें वंशीवदन था, और दामोदर पण्डित भी गृहके कार्योंकी देख-रेख करते थे। विष्णुप्रियाजीका वैराग्य अब और भी अधिक बढ़ गया, अब वे दिनरात्रि अपने प्राणनाथके विरहमें तड़फती रहती थीं। अभीतक माताके वियोगका दुःख कम नहीं हुआ था कि प्रियाजीको यह हृदयविदारक समाचार मिला कि श्रीगौर अपनी लीलाको संवरण करके अपने नित्यधामको चले गये। इस दुस्सह समाचारको सुनकर तपस्विनी विष्णुप्रियाजी, कटे हुए केलेके वृक्षके समान भूमिपर गिर पड़ीं। उन्होंने अन्न-जलका एकदम परित्याग कर दिया। स्वामिनी-भक्त वंशीवदन ऐसी दशामें कैसे अन्न ग्रहण करता। वह प्रियाजी-का मन्त्रशिष्य भी था, इसलिये उसने भी अपने मुँहमें अन्नका दाना नहीं दिया। भक्तोंने आकर भाँति-भाँतिकी विनती की, किन्तु प्रियाजीने अन्न-जल ग्रहण करना स्वीकार ही नहीं किया। जब स्वप्नमें आकर प्रत्यक्ष श्रीगौराङ्गदेवने उनसे अभी कुछ दिन और शरीर धारण करनेकी आज्ञा दी, तब उन्होंने थोड़ा अन्न ग्रहण किया।

एक दिन प्रियाजी भीतर शयन कर रही थीं, वंशी-वदन बाहर बरामदेमें सो रहा था। उसी समय स्वप्नमें उन्होंने देखा—मानो प्रत्यक्ष श्रीगौराङ्ग आकर कह रहे हैं—'जिस नीमके नीचे मैंने माताके स्तनका पान किया था, उसीके नीचे मेरी काष्ठकी मूर्ति स्थापित करो, मैं उसीमें आकर रहूँगा।' विष्णुप्रियादेवी उसी समय चौंककर उठ बैठीं, प्रातःकाल होनेको था, वंशीवदन भी जाग गया और उसने भी उसी क्षण ठीक यही स्वप्न देखा था। जब दोनोंने परस्पर एक दूसरेको स्वप्नकी बात सुनायी, तब तो शीघ्र ही दारुमयी मूर्तिकी स्थापनाका आयोजन होने लगा। वंशीवदनने उसी नीमकी एक सुन्दर लकड़ी काटकर बढ़ईसे एक बहुत ही सुन्दर श्रीगौराङ्गकी मूर्ति बनवायी। पन्द्रह दिनमें मूर्ति बनकर तैयार हो गयी, वंशीवदनने लोहेकी सलाकासे उसपर अपना नाम खोदा। जब वस्त्राभूषण पहनाकर श्रीगौराङ्गविग्रह-को सिंहासनपर पधराया गया, तब सभीको उसमें प्रत्यक्ष श्रीगौराङ्गके दर्शन होने लगे। वंशीवदनने दूर-दूरसे भक्तोंको बुलाकार खूब धूमधामसे उस मूर्तिकी प्रतिष्ठा की और एक बड़ा भारी भण्डारा किया। देवी विष्णुप्रियाजीने श्रीविग्रहकी नित्य-नैमित्तिक पूजाके निमित्त अपने भाई तथा भाईके पुत्र यादवनन्दनको मन्दिरमें नियुक्त किया। श्रीविष्णुप्रियाजी नित्यप्रति मन्दिरमें दर्शन करनेके निमित्त जाया करती थीं और वंशीवदन भी उस मनोहर मूर्तिके दर्शनोंसे परम प्रसन्न होता था। वह मूर्ति अबतक श्रीनवद्वीपमें विराजमान है और उसके गोस्वामी पुजारी उन्हीं श्रीयादवनन्दनाचार्यके वंशजोंमेंसे होते हैं। आजकल वे सभी श्रीमान् और धन-सम्पन्न हैं, भक्तोंमें वे महाप्रभुके श्यालकवंश गोस्वामी बोले जाते हैं।

कुछ कालके अनन्तर वंशीवदन भी इस असार संसारको परित्याग करके परलोकवासी बन गये। अब प्रियाजीकी सभी सेवाका भार वृद्ध दामोदर पण्डितके ही ऊपर पड़ा। अपने प्रिय शिष्यके वियोगसे प्रियाजीको अत्यधिक क्लेश हुआ, और अब उन्होंने घरसे बाहर निकलना भी बन्द कर दिया। पहले अँधेरेमें काञ्चनाके साथ गङ्गा-स्नान करनेके निमित्त घाटपर चली जाती थीं, अब घरमें ही गङ्गाजल मँगाकर स्नान करने लगीं। कोई भी पुरुष उनके दर्शन नहीं कर सकता था। उन्होंने वैसे तो पर-पुरुषसे जीवनभरमें कभी बातें नहीं कीं, किन्तु अब उन्होंने भक्तोंको भी दर्शन देना बन्द कर दिया। शामके समय पर्देकी आड़मेंसे भक्तोंको उनके चरणोंके दर्शन होते थे, उन अरुण रंगके कोमल चरण-कमलोंके दर्शनसे ही भक्त अपनेको कृतकृत्य समझते।

श्रीमद् अद्वैताचार्यजी अभीतक जीवित थे। वृद्धावस्था-के कारण उनका शरीर बहुत ही अधिक जर्जरित हो गया था। उन्होंने जब प्रियाजीके ऐसे कठोर तपकी बात सुनी तब तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य ईशान नागरको प्रियाजी-का समाचार लेनेके निमित्त नवद्वीप भेजा। शान्तिपुरसे नागर महाशय आये। यहाँ दामोदर पण्डित और श्रीवास पण्डितसे मिलकर उन्होंने जगन्माता श्रीविष्णुप्रियाजीके दर्शनोंकी इच्छा प्रकट की। दामोदर पण्डित ईशान नागरको प्रियाजीके अन्तःपुरमें ले गये और वे प्रियाजीके चरणकमलोंके दर्शनोंसे कृतार्थ हुए। उन दिनों प्रियाजीका तप अलौकिक हो रहा था। वे सदा पूजामन्दिरमें ही बैठी रहतीं। एक पात्रमें चावल भरकर सामने रख लेतीं और दूसरे पात्रको खाली ही रखतीं। प्रातःकाल स्नान करके वे महामन्त्रका जप करने बैठतीं। एक बार—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—यह सोलह नामोंवाला मन्त्र कह लिया और एक चावल उस खाली पात्रमें डाल दिया। इस प्रकार तीसरे पहरतक वे निरन्तर जप करती रहतीं। जपकी संख्याके साथ डाले हुए उतने ही चावलोंको तीसरे पहर बनातीं। उनमें न तो नमक डालतीं और न दाल बनातीं। बस, उन्हींमेंसे थोड़े-से चावल भोग लगाकर प्रसादरूपमें स्वयं पा लेतीं, और शेष थोड़े-से भक्तोंको प्रसाद बाँटनेके निमित्त थालीमें छोड़ देतीं, जिसे काञ्चना भक्तोंमें बाँट देती। पाठक, अनुमान तो लगावें। बत्तीस अक्षरवाले इस मन्त्रको जपनेसे कितने चावल तीसरे पहरतक होते होंगे, उन्हें ही बिना दाल-सागके पाना और प्रसादके लिये शेष भी छोड़ देना। अल्पाहारकी यहाँ हद हो गयी। ईशान नागरने अपने 'चैतन्यप्रकाश' नामक ग्रन्थमें स्वयं वर्णन किया है—

विष्णुप्रिया माता शचीदेवीर अन्तर्धाने।
भक्त-द्वारे द्वाररुद्ध कैला स्वेच्छाक्रमे॥
तार आज्ञा बिना ताने निषेध दर्शने।
अत्यन्त्य कठोर व्रत करिला धारणे॥
प्रत्यूषेते स्नान करि कृताह्निक हय्या।
हरिनाम करि किछू तण्डुल लइया॥
नाम प्रति एक तण्डुल मृत-पात्रे राखय।
हेन मते तृतीय प्रहर नाम लय॥
जपान्ते सेइ संख्यार तण्डुल मात्र लय्या।
यत्न पाक करे मुख वस्त्रेते बान्धिया॥
अलवण अनुपकरण अन्न लय्या।
महाप्रभुर भोग लगाय काकुति करिया॥
विविध विलाप करि दिया आचमनी।
मुष्टिक-प्रसाद मात्र भुञ्जेन आपनि॥
अवशेष प्रसादान्न बिलाय भक्तेरे।
एछन कठोर व्रत के करिते पारे॥

अर्थात् 'शचीमाताके अन्तर्धान हो जानेके अनन्तर श्रीविष्णुप्रियादेवी भक्तोंके द्वारा अपने घरके किवाड़ बन्द करा लेती थीं। द्वार खुलवाने न खुलवानेका अधिकार उन्होंने स्वयं ही अपने अधीन कर रक्खा था। उनकी आज्ञाके बिना कोई भी उनके दर्शन नहीं कर सकता था। उन्होंने अत्यन्त ही कठोर व्रत धारण कर रक्खा था। प्रातःकाल नित्यकर्मोंसे निवृत्त होकर वे हरिनाम-जप करनेके निमित्त कुछ चावल अपने सम्मुख रख लेती थीं और प्रति मन्त्रपर एक-एक चावल मिट्टीके पात्रमें डालती जाती थीं, इस प्रकार वे तीसरे पहरतक जप करती थीं। फिर तीसरे पहर यत्नपूर्वक वस्त्रसे मुखको बाँधकर उन चावलोंका पाक करती थीं। बिना नमक और बिना दाल-शाकके उन चावलोंका महाप्रभुको भोग लगाती थीं, भाँति-भाँतिके स्नेहवचन कहतीं, स्तुति-प्रार्थना करके विविध भाँतिके विलाप करतीं, अन्तमें आचमनी देकर भोग उसारतीं और उसमेंसे एक मुट्ठीभर चावल प्रसाद समझकर पा लेतीं। शेष बचा हुआ प्रसाद भक्तोंमें वितीर्ण कर दिया जाता था। इस प्रकारका कठोर व्रत कौन कर सकेगा?' सचमुच कोई भी इस व्रतको नहीं कर सकता। श्रीगौराङ्गकी अर्धाङ्गिनी! सचमुच तुम्हारा यह व्रत तुम-जैसी तपस्वीकी प्रणयिनीके ही अनुरूप है। माता! तुम्हारे ही तपसे तो गौर-भक्त तप और व्रतका कठोर नियम सीखे हैं। हमारी माताएँ तुम्हें अपना आदर्श बना लें तो यह अशान्तिपूर्ण संसार स्वर्गसे भी बढ़कर सुखकर और आनन्दप्रद बन जाय।

श्रीईशान नागरने प्रियाजीका सभी वृत्तान्त अपने प्रभु अद्वैताचार्यसे जाकर कहा। आचार्यने सुनकर कुछ अन्यमनस्कभावसे कहा—'अच्छा, जैसी श्रीकृष्णकी इच्छा।'

अवधूत नित्यानन्दजी भी जाह्नवी और वसुमती नामकी अपनी दोनों गृहिणियोंको छोड़कर परलोकवासी बन चुके थे। वसुमतीकी गोदमें वीरचन्द्र नामक एक पुत्र था, जाह्नवीकी गोद खाली थी। जाह्नवीदेवी पढ़ी-लिखी और देश-कालको समझनेवाली थीं। पतिके पश्चात् वे ही भक्तोंको मन्त्रदीक्षा देती थीं। उनका आजतक कभी श्रीविष्णुप्रियाजीसे साक्षात्कार नहीं हुआ था। अपने पति अवधूत नित्यानन्दके द्वारा वे विष्णुप्रियाजीके गुणोंको सुनती रहती थीं। अब जब उन दोनोंने विष्णुप्रियाजीके ऐसे कठोर तपकी बात सुनी तब तो श्रीविष्णुप्रियाजीके दर्शनोंकी उनकी इच्छा प्रबल हो उठी। वे दोनों शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर आयीं और वहाँसे अद्वैताचार्यकी गृहिणी श्रीसीतादेवीको साथ लेकर विष्णुप्रियाजीके दर्शनोंको चलीं। नवद्वीपमें वे वंशीवदनके घर आकर उतरीं। इस बातको हम पहले ही बता चुके हैं कि वंशीवदन इस असार संसारको सदाके लिये त्याग गये थे, उनके चैतन्यदास और निताईदास ये दो पुत्र थे। बड़े पुत्रके उन दिनों एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम घरवालोंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र रक्खा था। आगे चलकर ये ही रमाई पण्डितके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमें वंशीवदनका अंश माना जाता है।

विष्णुप्रियाजीने अवधूतकी धर्मपत्नियोंके आगमनका समाचार सुना। उन्होंने उन बेचारियोंको पहले कभी नहीं देखा था। हाँ, वे सुना करती थीं कि अवधूत अब गृहस्थी बनकर रहते हैं। प्रियाजी बाहर तो निकलती ही नहीं थीं। किन्तु जब उन्होंने अवधूतकी गृहिणियोंका और सीता-देवीका समाचार सुना, तब तो अपने प्रिय शिष्य वंशीवदनके घर जानेमें कोई आपत्ति न समझी। वंशीवदन उनके पुत्रके समान था, वंशीवदनका पुत्र चैतन्यदास भी प्रियाजीके चरणोंमें अत्यधिक भक्ति रखता था। उसके घरको कृतार्थ करने और उसके पुत्र रामचन्द्रको देखने तथा सीतादेवी आदिसे मिलनेके निमित्त प्रियाजी चैतन्यदासके घर पधारीं। चैतन्यदासका घर प्रियाजीके घरके अत्यन्त ही समीप था। प्रियाजीके पधारनेसे परिवारके सभी लोगोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। नित्यानन्दजीकी गृहिणी जाह्नवीदेवीने उठकर विष्णुप्रियाजी-का स्वागत किया। दोनों ही महापुरुषोंकी अर्धाङ्गिनी सगी दो बहिनोंके समान परस्पर हृदयसे हृदय मिलाकर मिलीं। तब जाह्नवीदेवी एकान्तमें प्रियाजीको लेकर उनसे स्नेहकी बातें करने लगीं। जाह्नवीने स्नेहसे प्रियाजीके कोमल करको अपने हाथमें लेते हुए कहा—'बहिन! तुम इतना कठोर तप क्यों कर रही हो? इस शरीरको सुखानेसे क्या लाभ? इसी शरीरसे तो तुम हरिनाम ले सकती हो। बहिन! तुम्हारी ऐसी दयनीय दशा देखकर मेरी छाती फटी जाती है। मेरे पति महाप्रभुकी आज्ञासे अवधूतवेष छोड़कर गृहस्थी बन गये। उन्हें इतनी कठोरता अभीष्ट नहीं थी। मेरे पति मुझसे अन्तिम समयमें कह गये थे, शरीरको कष्ट देना ठीक नहीं है। बहुत कठोरता कामकी नहीं होती।'

धीरे-धीरे आँखोंमें आँसू भरकर प्रियाजीने कहा—'बहिन! तुम अपने पतिकी आज्ञाका पालन करो। मेरे पति तो भिक्षुक बनकर, भिक्षापर निर्वाह करके, स्त्रियोंके स्पर्शसे दूर रहकर घोर तपस्वीकी तरह जीवनभर रहे। उन्होंने अपने शरीरको कभी सुख नहीं पहुँचाया। मैं तो जितना बन सकेगा, शरीरको सुखाऊँगी।' इतना कहते-कहते प्रियाजी रुदन करने लगीं।

इसके अनन्तर उन्होंने जाकर सीतादेवीके पैर छुए। सीतामाताने उनके हाथ पकड़ते हुए कहा—'तुम गौराङ्गकी गृहिणी हो, जगन्माता हो, तुम मेरे पैर मत छुओ।' विष्णुप्रियाजी अधीर होकर वृद्धा सीतामाताकी गोदमें लुढ़क गयीं। सीतामाताने उनके सिरको गोदीमें रखते हुए कहा—'इस कमलवदनको देखकर ही मैं गौराङ्गके दुःखको भूल जाती हूँ। विष्णुप्रिये! तुम इतनी कठोरता मत करो। मेरे वृद्ध पति तुम्हारे इस कठोर व्रतसे सदा खिन्न-से रहते हैं।' विष्णुप्रियाजीके दोनों कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु निकल रहे थे। सीतामाता उन्हें अपने अञ्चलसे पोंछ देतीं और उसी क्षण वे फिर भर आते। सीतादेवीके वस्त्र भीग गये, किन्तु विष्णुप्रियाजीके नेत्रोंका जल न रुका। रोते-रोते उन्होंने सबसे विदा ली। जाह्नवीदेवीने पूछा—'बहिन! अब कब भेंट होगी?'

अपने आँसुओंसे जाह्नवीदेवीके वक्षःस्थलको भिगोती हुई विष्णुप्रियाजीने कहा—'अब मिलना क्या? जब दैवकी इच्छा होगी।' इतना कहते-कहते प्रियाजीने रोते-रोते जाह्नवीदेवी और वसुमतीदेवीका आलिङ्गन किया, सीतामाताके पैर छुए और वे घरको चली आयीं।

अब विष्णुप्रियाजीका वियोग दिनोंदिन अधिकाधिक बढ़ने लगा। अब वे दिन-रात रोती ही रहती थीं। काञ्चना उन्हें श्रीचैतन्यलीलाएँ सुना-सुनाकर सान्त्वना प्रदान करती रहती, किन्तु विष्णुप्रियाजीका हृदय अपने पतिके पास पतिलोकमें जानेके लिये तड़फ रहा था। इसलिये रातदिन उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा ही प्रवाहित होती रहती।

फाल्गुनी पूर्णिमा थी, चैतन्यदेवके जन्मका दिवस था। विष्णुप्रियाजीकी अधीरता आज अन्य दिनोंकी अपेक्षा अत्यधिक बढ़ गयी थी। वे पगलीकी तरह हा प्राणनाथ! हा हृदयरमण! हा जीवनसर्वस्व! कहकर लंबी-लंबी साँसें छोड़ती थीं। काञ्चना उनकी ऐसी दशा देखकर चैतन्यचरित्र सुना-सुनाकर सान्त्वना देने लगी किन्तु आज वे शान्त होती ही नहीं थीं, थोड़ी देरके पश्चात् उन्होंने कहा—'काञ्चने! तू यादवको तो बुला ला, आज मैं उनकी मूर्तिके भीतरसे दर्शन करना चाहती हूँ।'

काञ्चनाने उसी समय आज्ञाका पालन किया। वह जल्दीसे यादवाचार्य गोस्वामीको बुला लायी। आचार्यने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिरके कपाट खोले। लंबी-लंबी साँस लेती हुई वस्त्रसे शरीर ढककर विष्णुप्रियादेवीजीने मन्दिरमें प्रवेश किया और थोड़ी देर एकान्तमें रहनेकी इच्छासे किवाड़ बन्द करा दिये। यादवाचार्यने किवाड़ बन्द कर दिये। काञ्चना द्वारपर खड़ी रही। जब बहुत देर हो गयी, तब काञ्चनाने व्यग्रताके साथ आचार्यसे किवाड़ खोलनेको कहा। आचार्यने डरते-डरते किवाड़ खोले। बस, अब वहाँ क्या था, श्रीविष्णुप्रियाजी तो अपने पतिके साथ एकीभूत हो गयीं। उसके पश्चात् फिर किसीको श्रीविष्णुप्रियाजीके इस भौतिक शरीरके दर्शन नहीं हुए। मन्दिरको शून्य देखकर काञ्चना चीत्कार मारकर बेहोश होकर गिर पड़ी, सभी भक्त हाहाकार करने लगे। हा गौर! हा विष्णुप्रिये! की करुणाभरी ध्वनिसे दिशा-विदिशाएँ भर गयीं। भक्तोंके करुणाक्रन्दनसे आकाशमण्डल गूँजने लगा।*

प्रेम

(लेखक—एक प्रेमका भिखारी)

आसक्ति और वैराग्य दो विरोधी गुण हैं। प्रेममें आसक्ति और वैराग्य दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं। प्रेमीको स्वाभाविक ही सब विषयोंसे वैराग्य हो जाता है और भगवान्‌से परमासक्ति। भक्त-का राग न तो विषयोंमें है और न वैराग्यमें ही। वैराग्यकी चाहना भी भक्तको नहीं होती। वैराग्यकी चाहतकके लिये उसके हृदयमें स्थान नहीं रहता। वह वैराग्यका भी वैराग्य कर देता है।

प्रेमी प्रेमास्पदके गुण देखकर ही प्रेम नहीं करता। उसका आधार केवल गुण और प्रभाव ही नहीं रहते। गुण और प्रभावके आधारपर जो प्रेम किया जाता है वह उसके (गुणप्रभावके) कम होनेपर घट भी सकता है।

जिससे मनुष्यका राग होता है उसके दोष भी गुण मालूम पड़ते हैं और जिसके प्रति द्वेष होता है उसके गुण भी दोष दीखते हैं। जिसके प्रति पहले राग था उसके प्रति द्वेष हो जानेपर उसके कर्म जो पहले अच्छे मालूम होते थे अब बुरे प्रतीत होने लगते हैं या वे वास्तवमें अच्छे ही थे और द्वेषदृष्टि हो जानेसे उसके विरुद्ध खराब दीखते हैं या बुरे होनेपर भी रागदृष्टिसे उस समय अच्छे जान पड़ते हों।

प्रेमका पहचानना बड़ा कठिन है। मनुष्य यदि प्रेमके स्वरूपको देख ले तो उसे भगवत्प्राप्ति हो जाय किन्तु ऐसा होना कठिन है क्योंकि वह प्रेमके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता और मनमें न मालूम होते हुए भी जरा-सी कामना रह सकती है।

प्रेममें भी अद्वैत है। प्रेमका अद्वैत पूर्ण रागका फल है और वह (ज्ञानका) अद्वैत पूर्ण रागके अभावका।

प्रेमी भक्तसे किसी प्रकारका पाप नहीं हो सकता। उससे अपने प्यारे प्रियतमका स्वाभाविक ही अपने आप सदा चिन्तन होता रहता है। भगवान्‌के प्रेम-रससे वह तृप्त नहीं होता। प्रेमामृत जितना पिया जाय उतनी ही उसकी प्यास अधिक बढ़ती रहती है। प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। प्रेममें कहीं भी तृप्ति नहीं होती। पूर्ण अतृप्ति ही प्रेमका सौन्दर्य है और ज्ञानमें पूर्ण तृप्ति ही ज्ञानका सौन्दर्य है।

दास्यभाव धीरे-धीरे सख्यमें परिणत हो जाता है। ऐसे ही वात्सल्य, माधुर्य क्रमशः एक दूसरेमें पलट जाते हैं। यह वह रस है जो घटना जानता ही नहीं निरन्तर बढ़ता ही रहता है।

ज्यों-ज्यों डूबै श्याम रँग त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।

* गीताप्रेससे प्रकाशित श्रीचैतन्यचरितावलीके पाँचवें खण्डसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनको प्राणोंका भय है उन्हें इस पथपर आनेका अधिकार नहीं है और न विषयप्रेमीको। प्रेमका पन्थ धधकती ज्वाला है, उसमें सब कुछ स्वाहा करना पड़ता है। सब कुछ स्वाहा करनेपर वह अपना फल प्रकट करता है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, लोक और परलोकका जहाँ स्वाभाविक समर्पण होता है उस स्थितिका नाम प्रेम है। जिस विषयसे, जिस व्यक्तिसे हम प्रेम चाहते हैं उसके अनुकूल परमाणु, वातावरण या अनुकूल वायुमण्डलमें रहना विशेष लाभदायक है। इसलिये जो कोई साधनका तत्त्व जानता हो उसे अपना हाथ पकड़ा दे, उसके साथ-साथ चले और विरोधी संगका त्याग करे। भगवत्-सिद्धिमें सन्देह करना महा रोग है। विश्वास हुए बिना भगवान्‌की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। कहा भी है—'संशयात्मा विनश्यति'।

प्रेममें सबसे बड़ी बाधा अपने सुखकी चाह है। यहाँ तो नित्य अतृप्ति ही तृप्ति है। एक और महत्त्वकी बात है कि प्रेमी अपनेको प्रेमी नहीं सुनना चाहता। हाँ, भक्तको यह कहा जा सकता है कि तुम्हारा भगवान् बड़ा प्रेमास्पद है। वह अपने प्रेमास्पदकी तारीफसे खुश होता है। प्रेम प्रेमीको बतलाता रहता है कि तेरे अन्दर प्रेमकी कमी है—तू अति प्रेमशून्य है। 'वह प्रेमी नहीं' यह बात वह उसके अनुभवसे ही कहता है, शिष्टाचारसे नहीं।

भक्तकी सारी इन्द्रियाँ प्रेममुखी हो जाती हैं। वह सदा कानोंसे भगवन्नाम तथा प्रियतमके गुण, आँखोंसे उसको, उसके चित्र एवं उसकी लीलाएँ, चित्तसे उसका चिन्तन, जिह्वासे उसका स्मरण तथा गुणगान और अपने करोंको उसकी सेवामें लगा देता है।

भगवान्‌के चरणोंका सौन्दर्य अद्‌भुत है। उनके एक नखका सौन्दर्य देख ले तो पागल हो जाय। एक नववधू गोकुलमें आयी। सन्ध्याके समय गोधूलिसे पहले ही सब स्त्रियाँ भगवान् कृष्णके दर्शनको सब कामकाज छोड़ दौड़-दौड़कर अपने द्वारपर खड़ी हो जाती हैं। नववधू पूछती है 'तुम इस प्रकार पागल होकर क्यों दौड़ी जाती हो। कृष्णमें ऐसी क्या विशेषता है।' वे उत्तर देती हैं—'अभी तुझे मालूम नहीं, मालूम पड़नेपर अपने आप समझ जायगी। उस समय हम भी देखेंगी कि तुम अपनेको किस तरह वशमें रखती हो' सब चली जाती हैं।

कृष्णकी वंशी बजी। नववधू उस समय चिराग जला रही थी। उसका चित्त खिंचा, ध्यान लग गया। उसे इसकी कुछ याद ही नहीं रही कि उसकी अंगुली दीपककी लौमें जल रही है। कुछ समयतक यही दशा रही। सखियोंने आकर देखा तो कहा कि 'वाह! हमें ज्ञान देती थी और स्वयं अपनी क्या दशा है मालूम ही नहीं।' यह शब्द सुनकर उसे चेत हुआ और अपनी हालतपर शर्मा गयी।

इसी प्रकार जबतक हमने भगवान्‌को देखा नहीं है तभीतक बातें करते हैं। पर जब उसकी परमरूप माधुरीका पान करेंगे और मधुर मुरलीका स्वर सुनेंगे तब तो विचित्र ही दशा हो जायगी।

जहाँ विश्वास होता है वहीं लगन होती है और संयम भी होता है। विश्वास रखना चाहिये कि हम नीच हैं, पापी हैं, चाहे कुछ भी हैं, पर भगवान् हमारे हैं। श्रद्धामें पूज्य बुद्धि रहती है। श्रद्धा होकर सफलतामें देर होना असम्भव है।

प्रेम तो बढ़ता ही जाता है। उसका बढ़ना कहीं शेष नहीं होता। जब सच्चा प्रेम हो जाता है तब गुणप्रभावको जाँचनेकी बुद्धि नहीं रहती। स्वार्थ वहीं-तक रहता है जहाँतक उससे कुछ मिलनेकी आशा रहती है और जहाँ स्वार्थ समाप्त होता है वहाँसे प्रेमका आरम्भ होता है—जहाँ कुछ मिलनेकी इच्छा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती वहाँसे प्रेमका श्रीगणेश होता है। प्रेमका अधिकारी वही है जो कामनाके राज्यसे बाहर निकल जावे। यह भी कामना नहीं रहनी चाहिये कि भगवान्‌को प्राप्त कर लेनेपर उनसे कुछ ले लेंगे। केवल आँखोंके आँसुओंसे प्रेम नहीं समझा जाता। हृदयके आँसू चाहिये। जहाँ भगवान्‌की भक्ति होती है वहाँ दैवी सम्पत्ति अवश्य रहती है। दोनोंका सदा-सदैव साथ रहता है। किसी प्रकारसे भी हो सन्त (भक्त) का सङ्ग हो उससे अवश्य लाभ होता है।

हमको चाहिये कि हम अपने हृदयको सूना बनावें जिससे भगवान् उसमें आकर रहें (काम-क्रोधादि डाकुओंको भगवान्‌के बलपर दृढ़तापूर्वक लड़कर निकाल दें), कहीं-कहीं भगवान् स्वयं जबरदस्ती भी हृदयरूपी मकानको खाली करवाकर उसमें रहते हैं, पर इसमें भी पूर्णरूपसे भगवान्‌पर छोड़ना पड़ता है। भगवान्‌से प्रार्थना करें—'तुम्हारे घरमें डाकू घुस गये हैं निकाले नहीं निकलते। अब आप ही कृपाकर इन्हें निकालो।'

सच्ची व्याकुलता होनी चाहिये। वह मिले तो प्राण रहें नहीं तो प्राण तड़फड़ाने लगें, ऐसी अवस्था यदि एक क्षण भी हो जाती है तो भगवान्‌के दर्शन उसी समय हो जाते हैं। भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये विरहाग्नि जल उठनी चाहिये। दर्शनमें विलम्ब है इसका कारण श्रद्धा और प्रेमकी कमी ही है। हमें चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धा और भक्ति बढ़ावें।

प्रेमीको संयोगमें वियोग और वियोगमें संयोग रहता है। (संयोगमें विरहका अभाव होनेसे वियोग और वियोगमें स्मरणजन्य विरहरूपी योग रहता है।) बुरी बातका असर जितनी जल्दी होता है अच्छीका उतनी जल्दी नहीं। मन भगवान्‌के सिवा किसीका मनन न करे। जो कुछ भी करो भगवान्‌के अर्पण करके करो। भगवान्‌के लिये करो।

प्रेमी अपनेको सुन्दर नहीं समझता। उसकी सारी सुन्दरता तो प्रेमास्पदमें ही है। 'दूसरे मुझको सुन्दर देखें—समझें' यह छिपी हुई कामाभिलाषा है। जो अपनेको सुन्दर समझता है उसका जल्दी बिगाड़ होता है।

स्वार्थ और प्रेममें विरोध है, जैसे रात-दिनमें। हमें सदा सावधान रहना चाहिये कि कहीं प्रेममें मोह न आ जाय। गुरुको अथवा किसीको भगवान्‌से बढ़कर माननेमें आपत्ति नहीं, किन्तु 'भगवान्' माननेमें आपत्ति है। रामका नाम रामसे बढ़कर इसलिये है कि वह रामका नाम है। गुरुकी सेवासे भी भगवान् मिल सकते हैं। गुरु क्यों बड़ा है, इसलिये कि वह भगवान्‌को मिला देता है।

मनुष्य अपनेको अहङ्कारसे कहता है कि मैं साधक हूँ। प्रेमसे अवश्य भगवान् मिलते हैं पर मिलना उनपर निर्भर है। हमें केवल उनसे मिलनेकी उत्कण्ठा चाहिये। भगवान्‌की चाहसे भगवान्‌के प्रेमकी चाह बड़ी है। भगवत्-प्रेम भगवान्‌से बड़ा है, भगवान् नहीं मिलें तो कोई परवा नहीं किन्तु प्रेम न छोड़े। उसे निरन्तर बढ़ावे। आजकल साधकके लिये खास जिम्मेवारी है कि अपने आचरणोंको उत्तम-से-उत्तम करे।

भगवान् यहीं हैं और हमारे हैं ऐसा निश्चय समझो। भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते हैं। (अन्तमें मेरी यही प्रार्थना है कि) 'आप सब मिलकर मुझे आशीर्वाद दें जिससे भगवान्‌के चरणोंमें मेरा प्रेम हो। यह मैं आपलोगोंसे भीख माँगता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणके आगामी विशेषाङ्क

योगाङ्क

में

क्या रहेगा ?

योगियोंके चमत्कारपूर्ण अनुभव, सिद्ध महात्माओंके अनमोल उपदेश, साधकोंके स्फूर्तिदायक विचार, विद्वानोंकी ओजस्वी लेखनीका प्रसाद, सैकड़ों रंगीन तथा सादे चित्र—और

सबसे बड़ी बात होगी योगसाधनाके विभिन्न मार्गोंका सचित्र विवरण

जिसमें

अविद्या, अभिमान, राग, द्वेष, अभिनिवेश, रोग, वियोग, संशय और शोकके नाश

और

स्वास्थ्य, सुख, आनन्द, ज्ञान, प्रेम और परमात्माकी प्राप्तिके अनेकों अनुभवपूर्ण गुप्त साधनों और रहस्योंका समावेश रहेगा ।

यह विशेषाङ्क भगवान् योगेश्वरकी कृपासे सबके लिये उपादेय और सुन्दर तथा बहुत ही अद्भुत और दुष्प्राप्य सामग्रियोंसे पूर्ण होगा ।

ग्राहक तुरन्त रुपये मनीआर्डरसे भेज दें

'योगाङ्क'में किस प्रकारकी सामग्री होगी ?

(१) योगके विविध स्वरूप—राजयोग, लययोग, मन्त्रयोग, ध्यानयोग, हठयोग, भक्तियोग, प्रेमयोग, कुण्डलिनीयोग आदिका साधनसहित वर्णन ।
(२) योगके विविध अङ्गोंका वर्णन ।
(३) ज्ञानयोग, भक्तियोग और प्रेमयोग-तत्त्वोंका वर्णन ।
(४) योगकी सिद्धियोंका तथा उनकी प्राप्तिके साधनोंका वर्णन ।
(५) ध्यानयोग और समाधियोगका सविस्तर वर्णन ।
(६) चित्तको वशमें करनेके उपायोंका वर्णन ।
(७) आसन, प्राणायाम आदिका सविस्तर वर्णन ।
(८) मेस्मेरिज्म और हिपनाटिज्मका वर्णन ।
(९) यौगिक पद्धतिसे रोगनाशके उपाय ।
(१०) योगाश्रमोंका वर्णन ।
(११) योगी महात्माओंके जीवनचरित्र ।
(१२) विविध योगोंके तथा योगीश्वर भगवान् शिव, योगेश्वर भगवान् कृष्ण, नारद, याज्ञवल्क्य, शुकदेव, पतञ्जलि आदिके तथा सप्तज्ञानभूमिका, नवधा भक्ति, अष्टाङ्गयोग, अवस्थाचतुष्टय, योगमाया, कुण्डलिनी, षट्चक्र, आसन, यौगिक व्यायाम आदिके अनेकों रङ्गीन तथा सादे चित्र ।
(१३) आचार्य, योगी और महात्माओंके चित्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगाङ्कके लेखकोंमें बहुत बड़े-बड़े अनुभवी सन्त महात्मा और विद्वान् महानुभाव हैं। योगाङ्कके पढ़नेसे योगके अनेकों रहस्योंका पता लगेगा और दर्शनीय चित्रोंसे योगधारणा दृढ़ होगी। इसके लेख और चित्र सभी सम्प्रदायों और सभी देशवासियोंके लिये बड़े कामके होंगे, पृष्ठसंख्या भी परिशिष्टाङ्क-सहित ७०० के लगभग होगी। चित्र तो सैकड़ों होंगे।

परिशिष्टाङ्क (भाद्रपदकी संख्या) सहित मूल्य ३) (डाकमहसूलसमेत) है। पुराने-नये ग्राहकोंको वार्षिक मूल्य ४॥) बहुत शीघ्र मनीआर्डरसे भेज देना चाहिये।

योगाङ्क (श्रावणकी संख्या) और परिशिष्टाङ्क (भाद्रपदकी संख्या) अलग-अलग नहीं मिलेंगे। दोनों साथ ही ३) में मिलेंगे। इस बार ठीक समयपर निकालनेकी चेष्टा की जा रही है। जिनको ग्राहक न रहना हो वे सज्जन कृपा करके एक कार्ड लिखकर जरूर सूचना दे दें।

योगाङ्कके कुछ लेखकोंके नाम

इस अङ्कमें जिन महानुभावोंके लेख छपे हैं या छपनेकी सम्भावना है उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य, जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्य, सर्वस्वामीजी श्रीउड़ियाबाबाजी, श्रीतपोवनजी, श्रीअसङ्गानन्दजी, श्रीकृष्णानन्दजी, श्रीजयेन्द्रपुरीजी, श्रीपुरुषोत्तमतीर्थजी, श्रीरामवल्लभाशरणजी, श्री-आनन्दसरूप साहेबजी महाराज, श्रीगंगेश्वरानन्दजी, श्रीदयानन्दजी, श्रीअभेदानन्दजी, श्रीशिवानन्दजी, श्री-महेन्द्रबालयतीन्द्रजी, श्रीरघुवराचार्यजी, श्रीकृष्णप्रेमजी, श्रीनिगमानन्दजी, श्रीएकरसानन्दजी, श्रीसहजा-नन्दजी, श्रीगोपालचैतन्यदेवजी, श्रीनित्यानन्दजी, श्रीविद्यानन्दजी, श्रीकुवलयानन्दजी, श्रीअरविन्द, स्वामी हरनामदासजी, बालयोगीबालस्वामीजी, पं० मध्वाचार्य श्रीदामोदरजी शास्त्री, पं० श्रीगीतानन्दजी शर्मा, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराज, म० म० पं० गंगानाथजी झा, म० म० पण्डितप्रवर श्रीपंचानन तर्करत्न, म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण, पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा, पं० श्रीभवानीशङ्करजी, श्रीशिवपुत्रस्वामी सिद्धारूढ मठ, डॉ० श्रीभगवानदासजी, राजरत्न प्रो० श्रीमाणिकराव, पं० द्वारका-प्रसादजी चतुर्वेदी, श्रीनारायणस्वामीजी, पं० श्रीरामदयाल मजूमदार एम० ए०, श्री श्रीधर मजूमदार एम० ए०, दीवान बहादुर के० एस० रामस्वामी शास्त्री, डॉ० बालकृष्णजी कौल, डॉ० श्री आई० जे० एस० तारापोरवाला, डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य एम० ए०, श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य एम० ए०, श्रीक्षितिनाथ सेन, श्रीसुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, श्रीसाखरे महाराज, देवर्षि पं० रमानाथजी शास्त्री, साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी भट्ट, बाबा राघवदासजी, श्रीअनिलवरण राय, श्रीनलिनीकान्त गुप्त, श्रीजयरामदासजी 'दीन', श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीमित्रसेनजी महाराज, श्रीअटलविहारी घोष एम० ए०, डॉ० महेन्द्रनाथ सरकार, विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री, श्रीमतिलाल राय, डॉ० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार, श्रीहिमांशुविजयजी, पं० शिरोमणि श्रीनरसिंहाचार्यजी वरखेडकर, श्रीहीरेन्द्रनाथ दत्त एम० ए०, सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार, डॉ० दुर्गाशङ्करजी नागर, श्रीचिन्ताहरण चक्रवर्ती एम० ए०, श्रीप्रभातचन्द्र चक्रवर्ती एम० ए०, पी० आर० एस०, श्रीनकुलेश्वर मजूमदार एम० ए०, डॉ० एफ्० ऑटो श्राडर जर्मनी, रे० अर्थर मैसी, इङ्गलैण्ड, रे० एडविन ग्रीव्स, इङ्गलैण्ड, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, श्रीनरदेवजी शास्त्री, श्रीउपेन्द्रचन्द्र दत्त एम० ए०, श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, श्रीबटुकनाथजी शर्मा साहित्योपाध्याय एम० ए०, श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम० ए०, श्रीभीखनलालजी आत्रेय एम० ए०, डी० लिट्, डॉ० श्रीपीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, एम० ए०, डी० लिट्, आचार्य श्रीबालकृष्ण-जी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल, श्रीतारकनाथजी सान्याल, म० श्रीबालकरामजी विनायक, श्रीसम्पूर्णानन्दजी, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया, श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत, पं० श्री श्रीधर विनायक माण्डवगणे, आदि-आदि। स्थानाभावसे थोड़े ही नाम दिये जा सके हैं।

स्थानाभावके कारण चित्रोंके नाम नहीं दिये जा सकते।

व्यवस्थापक—
'कल्याण' गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

आत्मामें प्रमाणकी अविषयता

हे राजन्! जीवको घटादि पदार्थोंका ज्ञान किसी कारण विना स्वतन्त्र उत्पन्न नहीं होता, परन्तु चक्षु आदि प्रमाणके घटादि पदार्थोंके साथ संयोगसम्बन्धरूप कारणकी अपेक्षासे घटादि पदार्थोंका ज्ञान उत्पन्न होता है, इस प्रकारकी प्रक्रिया माननेवाले वादीसे पूछना चाहिये कि आत्मा कर्ता तथा भोक्ता है, यह ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसे हुआ है अथवा अनुमान प्रमाणसे? वादी प्रथम पक्ष माने तो सम्भव नहीं है क्योंकि वादीके मतानुसार प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकारका है—एक बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाण और दूसरा आन्तर प्रत्यक्ष प्रमाण। मन आन्तर प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है और बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाण पाँच प्रकारके हैं—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन तथा घ्राण। इन पाँचोंमेंसे श्रोत्र, रसन तथा घ्राण—ये तीन इन्द्रियाँ द्रव्यको विषय नहीं करतीं, किन्तु क्रमसे शब्द, रस तथा गन्ध—इन तीन गुणोंको विषय करती हैं। आत्माको द्रव्य माननेसे श्रोत्र, रसन तथा घ्राण इन तीन प्रमाणोंसे द्रव्य आत्माका कर्ता-भोक्तारूप ज्ञान नहीं हो सकता, और चक्षु और त्वक् ये दो इन्द्रियाँ द्रव्यको ग्रहण करती हैं, तो भी जिस द्रव्यमें उद्भूत रूप तथा उद्भूत स्पर्श होता है, उसी द्रव्यको वे ग्रहण करती हैं, अन्य द्रव्यको ग्रहण नहीं करतीं। आत्मामें उद्भूत रूप और उद्भूत स्पर्श है नहीं, इसलिये चक्षु तथा त्वक् इन्द्रियोंसे आत्माका कर्ता-भोक्तारूप ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मामें इन्द्रियजन्य ज्ञानकी विषयता नहीं है, यह केवल युक्तिसे सिद्ध नहीं है किन्तु श्रुतिसे भी सिद्ध है, जैसे कि—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू-
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।

'स्वयम्भू परमात्माने नेत्रादि इन्द्रियोंको बहिर्मुख रचा है; इसलिये वे नेत्रादि इन्द्रियाँ घट-पटादि बाह्य पदार्थोंको देखती हैं, अन्तरात्माको नहीं देख सकतीं। अर्थात् जिस-जिस पदार्थमें बाह्यपना है, उस-उस पदार्थसे नेत्रादिका सम्बन्ध होता है; बाह्यपने विना नेत्रादिका सम्बन्ध नहीं हो सकता। आत्मामें बाह्यपना नहीं है, इसलिये आत्मासे नेत्रादिका सम्बन्ध नहीं हो सकता। और संयोगादि सम्बन्ध विना नेत्रादि इन्द्रियाँ किसी भी पदार्थका ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकतीं। इसलिये आत्मा कर्ता-भोक्ता है, ऐसा ज्ञान नेत्रादिसे नहीं हो सकता। आत्मा कर्ता-भोक्ता है, इस प्रकारका ज्ञान मनरूप आन्तर प्रत्यक्ष प्रमाणसे वादी माने, तो भी सम्भव नहीं है। क्योंकि 'कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा' इस श्रुतिमें इच्छा, सङ्कल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, भय तथा वृत्तिज्ञान, इन सबका मनको उपादानकारण कहा है। जो उपादानकारण होता है, वह कभी करण नहीं होता। जैसे घटका उपादानकारण मृत्तिका, घटका करणरूप नहीं हो सकती, इसी प्रकार वृत्तिका उपादानकारणरूप मन ज्ञानका करण नहीं हो सकता; इसलिये आत्मा कर्ता-भोक्ता है, यह ज्ञान मनको नहीं हो सकता। यदि इस ज्ञानकी उत्पत्ति नेत्रादिके सम्बन्धसे वादी माने तो नेत्रादि इन्द्रियोंका सम्बन्ध स्थूल शरीरके साथ है, इसलिये स्थूल शरीरमें यदि यह ज्ञान हो, तो असुरोंको मोह उत्पन्न करनेके लिये देहात्मवादी चार्वाकके मतके प्रवर्तक बृहस्पतिके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतकी प्राप्ति वादीको बलात्कारसे होगी। इसलिये आत्मा कर्ता-भोक्ता है, यह ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणसे सम्भव नहीं है। और आत्मा कर्ता-भोक्ता है, यह ज्ञान अनुमानादि प्रमाणोंसे होता है—यह मानना भी युक्त नहीं है; क्योंकि अनुमान, उपमान तथा शब्द—इन तीन प्रमाणोंका मूल कारण प्रत्यक्ष प्रमाण है। जब प्रत्यक्ष प्रमाण आत्माके ज्ञानमें करण नहीं है, तो अनुमानादि प्रमाण कैसे हो सकते हैं! नहीं हो सकते।

ऐतरेय उपनिषद्में आत्माको द्रष्टा, श्रोता, मन्ता तथा विज्ञाता कहा है। दर्शनके कर्ताका नाम द्रष्टा है, श्रवण करनेवालेका नाम श्रोता है, मनन करनेवालेका नाम मन्ता है और जाननेवालेका नाम विज्ञाता है। इस श्रुतिसे आत्मामें कर्तापना सिद्ध होता है। वादीका यह कथन भी ठीक नहीं है; क्योंकि जैसे यह श्रुति आत्माको द्रष्टा, श्रोता, मन्ता तथा विज्ञाता बताती है, इसी प्रकार यही श्रुति आत्माको अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता तथा अविज्ञाता भी बताती हुई कर्तापनका निषेध भी करती है। आत्माको अकर्तारूप बोधन करनेवाली श्रुति मुख्य है और आत्माको कर्ता बोधन करनेवाली श्रुति भ्रान्त पुरुषोंके सिद्ध किये हुए आत्मामें कर्तापनका अनुवाद करती है, इसलिये वह श्रुति अपना अर्थ सिद्ध नहीं करती। भाव यह है कि फलवाले और लौकिक प्रमाणसे अज्ञात अर्थका बोध करनेसे श्रुतिमें प्रमाणता है। कर्ता-भोक्तारूपसे आत्माको सब लोग जानते हैं, इसलिये ऐसे ज्ञानसे किसी फलकी प्राप्ति नहीं होती, किन्तु उलटा जन्म-मरणादिरूप अनर्थ प्राप्त होता है। इसलिये कर्ता-भोक्तारूप आत्माके बोधनमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं है। आत्मा अकर्ता तथा अभोक्ता है, ऐसे ज्ञानसे अज्ञानसहित सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिरूप फलकी प्राप्ति होती है। इसलिये आत्माका अकर्ता-अभोक्तारूपसे बोधन करनेमें श्रुतिका तात्पर्य है, इसलिये श्रुतिप्रमाणसे आत्माका कर्ता-भोक्तापन सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार प्रत्यक्षादि किसी प्रमाणसे आत्माका ज्ञान नहीं होता, किन्तु स्वयंप्रकाशरूपसे आत्माका ज्ञान होता है। सम्यक् विचारसे देखा जाय तो किसी अनात्म पदार्थका भी उपर्युक्त युक्तियोंसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञान नहीं होता, फिर निर्गुण परमात्माके ज्ञानमें प्रत्यक्षादि प्रमाण कैसे कारण हो सकते हैं! नहीं हो सकते।

आत्माका स्वरूप

हे राजन्! श्रुति तो आत्माको अगृह्य कहती है, आनन्दस्वरूप आत्मा सर्व प्राणियोंका आत्मा होनेसे हनन क्रियाकी कर्मतारूप शीर्णताको नहीं प्राप्त होता। सर्व मूर्तिमान् तथा भेदवान् पदार्थ अपने अवयवोंकी शिथिलतारूप शीर्णताको प्राप्त होते हैं। जैसे वस्त्रादि पदार्थ मूर्तिमान् तथा भेदवान् हैं, इसलिये अवयवोंकी शिथिलतारूप शीर्णताको प्राप्त होते हैं। आत्मामें मूर्तिमान्पन तथा भेद ये दोनों धर्म नहीं हैं, इसलिये आनन्दस्वरूप आत्मा शीर्णताभावको प्राप्त नहीं होता। इसलिये श्रुति आत्माको अशीर्य कहती है।

आत्मामें असङ्गता—हे जनक! संगवान् सर्व पदार्थोंको दूसरे पदार्थोंके सङ्गसे दोषकी प्राप्ति होती है। जैसे स्वभावसे शीतल स्पर्शवाला जल अग्निके सङ्गसे उष्ण हो जाता है तथा स्वभावसे शीतोष्ण स्पर्शसे रहित वायुमें अग्निके संगसे उष्णता और जलके संगसे शीतलता प्राप्त होती है। असङ्ग पदार्थमें किसी दोषकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे कि असङ्ग आकाशमें मेघ-विद्युदादि दोषोंकी प्राप्ति नहीं होती। मूर्तिमान् तथा परिच्छिन्न सर्व पदार्थ संगवान् होते हैं, मूर्तिमान् तथा परिच्छिन्न जलादिक पदार्थ अग्नि आदिके संगको प्राप्त होते हैं। किन्तु आत्मा मूर्तिमान् तथा परिच्छिन्न नहीं है, इसलिये आत्माका किसी पदार्थके साथ सङ्ग नहीं होता और सङ्गके अभावसे आत्मा किसी भी पदार्थके दोषको प्राप्त नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयोगादि सम्बन्धका नाम सङ्ग है और किञ्चित् काल भी दूसरे पदार्थके स्वरूपके समान स्थिति होनी, यह सङ्गका फल है। जैसे उष्ण स्पर्शवाले अग्निके साथ जलका संयोगसम्बन्ध होनेसे वह जल कुछ समयतक अग्निके समान उष्ण स्पर्शवाला हो जाता है। आत्मा तो सजातीय, विजातीय तथा स्वगत, इन तीनों भेदोंसे रहित है; इसलिये दूसरे पदार्थोंके साथ आत्मा संयोगादि सम्बन्धरूप फलको प्राप्त नहीं होता और तादात्म्यरूप सङ्गके फलको भी प्राप्त नहीं होता। संगवान् वस्त्रादि पदार्थ बन्धनरूप फलको तथा परिणामरूप फलको अवश्य प्राप्त होते हैं। वस्त्रादि पदार्थोंके उपादानकारण तन्तु आदिके परस्पर विभागसे तथा नाशसे वस्त्रादि पदार्थोंका नाश भी अवश्य होता है। या तो वस्त्रादि पदार्थोंका धीरे-धीरे नाश होता रहता है, अथवा जल्दी नाश हो जाता है। आनन्दस्वरूप आत्मा असङ्ग होनेसे बन्धन, परिणाम अथवा विनाशको प्राप्त नहीं होता। आनन्दस्वरूप आत्मा सर्व विशेषभावसे रहित तथा मन, वाणीका अविषय है। हे जनक! ऐसा तुरीय आत्मा तुमको ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य—गन्तव्य है, सर्व जीवोंके आत्मारूप, भयसे रहित, अद्वितीय और आनन्दस्वरूप ब्रह्मको अपने आत्मारूपसे जाननेसे तुम अभय ब्रह्मको प्राप्त हुए हो; इसलिये अब तुम संसाररूपी शूलसे भयको नहीं प्राप्त होगे। तात्पर्य यह है कि अपनेसे भिन्न परिच्छिन्न ग्रामादिकी प्राप्ति जैसे गमनरूप क्रियासे होती है, इस प्रकार सर्वत्र व्यापक ब्रह्मकी प्राप्ति किसी गमनरूप क्रियासे नहीं होती, किन्तु आत्मरूपसे ब्रह्मका ज्ञान होना ही ब्रह्मप्राप्ति है।

आत्मज्ञानका फल

जनक—हे भगवन्! आत्माका ज्ञान होनेसे जीवका संसाररूप शूलका भय कैसे निवृत्त हो जाता है?

याज्ञवल्क्य—हे जनक! सब जीवोंको दूसरे पदार्थके ज्ञानसे भय होता है, इसलिये दूसरे पदार्थका ज्ञान भयका कारण है। दूसरे पदार्थका ज्ञान जबतक है, तबतक अद्वितीय आत्माका ज्ञान नहीं होता। अद्वितीय आत्माके ज्ञानसे विद्वान्का दूसरे पदार्थका ज्ञान निवृत्त हो जाता है, इसलिये द्वैतज्ञानरूप कारणके अभावसे विद्वान्के भयकी निवृत्ति हो जाती है। श्रुति भगवती कहती है—'द्वितीयाद्वै भयं भवति'—'द्वितीय पदार्थके ज्ञानसे जीवको भयकी प्राप्ति होती है।' यह पदार्थ मेरे दुःखका साधन है, इस प्रकारकी प्रतिकूलताका ज्ञान जिस पदार्थमें होता है उस पदार्थसे जीवको भयकी प्राप्ति होती है। जैसे सिंह-सर्पादिमें जब जीवको प्रतिकूलताका ज्ञान होता है, तब उसको सिंह-सर्पादिसे भय होता है। द्वैतज्ञानसे उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रतिकूलतावाला है और वही भयका कारण है। आनन्दस्वरूप आत्मामें किसीको प्रतिकूलताका ज्ञान नहीं होता, किन्तु सब जीवोंको आत्मामें अनुकूलताका ज्ञान होता है। जिस पुरुषको अनुकूल आत्माका सर्वत्र व्यापकरूपसे ज्ञान होता है, उसको किसी पदार्थसे भय नहीं होता। प्रतिकूलताका ज्ञान द्वैतज्ञान बिना नहीं होता, इसलिये द्वैतपन ही प्रतिकूलताके ज्ञानका कारण है। अद्वैत ब्रह्ममें द्वैतपन नहीं है, किन्तु वह अभय, विज्ञान, आनन्दरूप तथा सर्व भेदोंसे रहित है। अद्वितीय ब्रह्म तुमसे भिन्न नहीं है, किन्तु तुम्हारा स्वरूप ही है। मैं, तुम तथा सर्वभूत ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं किन्तु ब्रह्मरूप ही हैं। इसलिये भेदरहित अद्वितीय ब्रह्मको श्रुति भगवती अभय कहती है। जैसे गन्धर्वनगर आकाशसे भिन्न नहीं है, इसी प्रकार यह सर्व जगत् आत्मासे भिन्न नहीं है। जैसे आकाशमें गन्धर्वनगर होनेपर भी वास्तविक नहीं है किन्तु मायाकल्पित है, इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्मामें जगत्की स्थिति होनेपर भी वास्तविक नहीं है किन्तु माया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पित है। जैसे आकाशरूप अधिष्ठानमें गन्धर्व-नगर पूर्वमें नहीं था, न अब है और न भविष्यमें होगा, इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्मामें यह जगत् पूर्वमें नहीं था, न वर्तमानमें है और न भविष्यमें होगा।

जनक—हे भगवन्! यदि आनन्दस्वरूप आत्मा-में तीनों कालमें जगत् नहीं है तो फिर लोगोंको भिन्न-भिन्न रूपसे क्यों प्रतीत होता है?

याज्ञवल्क्य—हे राजन्! जैसे आकाशमें यद्यपि तीनों कालमें गन्धर्वनगर नहीं है तो भी भ्रान्त पुरुषोंको जैसे स्थूल तथा सूक्ष्मरूपसे तथा जड-चैतन्यरूपसे उसका ज्ञान होता है, इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्मामें यद्यपि तीनों कालमें जगत् नहीं है तो भी अज्ञानी जीवोंको भ्रान्तिसे स्थूल-सूक्ष्म तथा जड-चैतन्यरूपसे उसकी प्रतीति होती है। जाग्रत् अवस्थामें रथ, अश्व, हस्ति आदि पदार्थोंकी उत्पत्तिके देश-कालादि साधनोंका स्वप्नावस्थामें अभाव होनेपर भी जैसे एक स्वप्न-द्रष्टा पुरुष रथ, अश्व, हस्ति इत्यादि अनेक भावों-को प्राप्त होता है, इसी प्रकार देश-कालादि साधनोंसे रहित एक ही परमात्मा अनेक प्रकारके जगत्-भावोंको प्राप्त होता है। जैसे स्वप्नसे जाग्रत् हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थोंको नहीं देखता, इस-लिये जाग्रदवस्था स्वप्नावस्थाको नाश करनेवाली है, इसी प्रकार आत्माके साक्षात्कारसे यह सब जगत् नष्ट हो जाता है। अद्वितीय आत्माका तुमको साक्षात्कार हुआ है, इसलिये हे राजन्! अब तुम संसाररूप शूलसे भयको नहीं प्राप्त होगे।

देवी—हे वत्स! इस प्रकार जब याज्ञवल्क्यने जनक राजाको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया तो मुनिको देने योग्य किसी प्रकारकी दक्षिणा अपने पास न देखकर जनक इस प्रकार विचार करने लगा—

जनक—(मनमें) मुनिने मुझको आत्मज्ञानकी प्राप्ति करायी है, इसलिये उनको दक्षिणारूपसे मैं क्या दूँ? यदि मैं स्त्री, पुत्र, धन, राज्य तथा सेना-सहित अपना शरीर गुरुदक्षिणारूपसे दे दूँ, तो भी वह आत्मज्ञानके समान नहीं है। ब्रह्मविद्याके उपदेशसे शिष्यको आत्मज्ञान देनेवाले गुरुको समुद्रपर्यन्त सुवर्णसे भरी समस्त पृथिवी गुरु-दक्षिणारूपसे दे दे तो भी वह आत्मज्ञानके समान नहीं है। अनेक जन्मोंमें किये हुए ब्रह्मचर्यादि साधनवाले देहधारी जीवको भी आनन्दस्वरूप आत्मा दुर्लभ है तथा तीनों कालोंमें आत्माके लाभसे बढ़कर दूसरा लाभ नहीं है। श्रुति भगवती कहती है—'आत्मलाभान्न परं विद्यते'—आनन्दस्वरूप आत्माके लाभसे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई लाभ नहीं है, आनन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति ही परम लाभ है। ऐसे दुर्लभ आत्माकी प्राप्ति करानेवाले गुरुको पुत्र, स्त्री, धन, राज्य, पृथिवी इत्यादि अनात्म पदार्थोंकी दक्षिणा देनी योग्य नहीं है। स्वर्ग-में देवोंको जीतकर तथा पातालमें नागोंको जीतकर स्वर्ग, भूमि तथा पाताल—ये तीनों लोक यदि मैं याज्ञवल्क्य गुरुको दक्षिणामें दे दूँ तो भी वह दक्षिणा आत्मज्ञानके समान नहीं है। तात्पर्य यह है कि याज्ञवल्क्यने मुझको आत्माकी प्राप्ति करायी है, जो आत्मा अपरिच्छिन्न, नित्य, आनन्दस्वरूप तथा दुर्लभ है, आत्माके समान संसारमें दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। पुत्र, स्त्री, धन, राज्य तथा तीनों लोक इत्यादि सर्व पदार्थ परिच्छिन्न, अनित्य, दुःखरूप तथा सुलभ हैं। आत्माकी प्राप्तिके समान दक्षिणा कोई नहीं है। इतना विचारकर जनक राजा-को एक बात स्मरण हो आयी, इसलिये वह हर्षयुक्त हो कहने लगा—

जनक—(प्रत्यक्ष) हे भगवन्! आपके गुरु सूर्य भगवान् सर्व देहधारी जीवोंके बाहर विचरनेवाले हैं तथा सर्व जीवोंके नेत्रोंको रोकनेवाले अन्धकार-को नाश करके सर्व जीवोंके व्यवहारकी सिद्धि करनेवाले हैं। सूर्य भगवान्के महत् उपकारसमान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई पदार्थ न देखनेसे देहधारी जीव उनको दीपक-मात्र अर्पण करते हैं और उनके गुरु सूर्य भगवान् उस दीपकमात्रसे ही प्रसन्न होते हैं। उन्हीं सूर्य भगवान्‌के आप शिष्य हैं। जैसे सूर्य भगवान् जीवके अन्धकारका नाश करते हैं, इसी प्रकार आत्मज्ञानकी प्राप्तिसे शिष्योंके अज्ञानरूप अन्धकार-को आप नष्ट करते हैं; इसलिये आप सूर्यके समान हैं तथा सर्व कामनाओंसे रहित हैं। आपके गुरु सूर्य भगवान् दीपकमात्रसे जीवोंपर प्रसन्न होते हैं, इसी प्रकार आप भी मेरी दी हुई स्वल्प दक्षिणासे प्रसन्न होइये!

हे वत्स! पश्चात् जनक आशीर्वाद, सर्वस्व तथा नमस्कार इन तीन प्रकारकी अल्प दक्षिणा देनेका निश्चय करके कहने लगा—

जनक—हे भगवन्! आपने स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण इन तीन शरीरोंको त्यागकर तुरीय—चौथे अभयरूप ब्रह्मका उपदेश किया है। आपके उपदेशसे मुझे अभयरूप ब्रह्मकी प्राप्ति हुई है। जिस अभयरूप ब्रह्मकी मुझे प्राप्ति हुई है वही अभयरूप ब्रह्म आपको प्राप्त हो, यह आशीर्वाद-रूप दक्षिणा मैं आपको देता हूँ! और काल भगवान्‌ने जीवरूपी पक्षीके बन्धनके लिये अज्ञान-रूप सूत्रसे काम-क्रोधादि गाँठवाला 'मैं' और 'मेरा' ऐसा अभिमानरूप जाल रचा है। इस जालरूपी पाशसे मुझ दुखी-दीनको आपने कृपा करके मुक्त किया है, इसलिये आपके उपकारके समान मैं क्या दक्षिणा दूँ? विदेह नामका मेरा देश, मिथिला नामकी मेरी नगरी, स्त्री, पुत्र तथा सर्व पदार्थोंसहित मैं आपका दास हूँ। श्रुति-स्मृतिमें ब्रह्मविद्याके उपदेश करनेवाले गुरुको पिता कहा है तथा शिष्यको पुत्र कहा है और जबतक पिता विद्यमान है, तबतक पुत्रका धनमें अभिमान नहीं होता। इस प्रकार शास्त्ररीतिको देखते हुए राज्यादि सर्व पदार्थ मैंने आपको दिये हैं, इस प्रकारका वचन कहना भी मेरे सामर्थ्यसे बाहर है। मुझसे लेकर यह सर्व राज्यादि पदार्थ आपके हैं। जब आपकी आज्ञा विना मैं भोजन करनेको भी समर्थ नहीं हूँ, तो राज्यादि सब पदार्थ आपकी आज्ञा विना किस प्रकार भोग सकता हूँ! नहीं भोग सकता। इसलिये सर्वस्व आपका है। ब्रह्मके उपदेश करनेवाले आपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ। आप सर्व मुनियोंमें श्रेष्ठ, वेद-मन्त्रको प्रकट करनेवाले साक्षात् सूर्य भगवान्‌के शिष्य तथा साक्षात् परमेश्वररूप हैं, ऐसे आपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ।

जब इस प्रकारके आशीर्वाद, सर्वस्व तथा नमस्काररूप तीनों प्रकारकी दक्षिणा जनकने ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्यको दी तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए और कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे जनक! विदेह देशसे लेकर तुम्हारे शरीरपर्यन्त सर्व राज्यादि पदार्थ मेरे हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है; किन्तु एक गुरु-दक्षिणा मैं तुमसे माँगता हूँ, वह तुम्हें मुझको देनी चाहिये। हे राजन्! तुम्हारा चित्त अग्नि आदिकी उपासनामें अत्यन्त तत्पर है तथा तुम्हारा चित्त राज्यव्यवहारमें अत्यन्त आसक्त है, इसलिये मेरा यह कथन है कि मैंने जिस ब्रह्मविद्याका तुमको उपदेश किया है उसको तुम कुछ दिनमें भूल जाओगे। मेरे कथनका तात्पर्य यह है कि अग्नि आदिकी उपासनासे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसलिये ब्रह्मलोककी इच्छा आत्मज्ञानमें भावी प्रति-बन्ध करनेवाली है और राज्यादि पदार्थोंमें आसक्ति इस आत्मज्ञानमें वर्तमान प्रतिबन्ध करनेवाली है—इन दो प्रतिबन्ध करनेवालोंके विद्यमान होनेपर आत्मज्ञानरूप कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। इस-लिये मेरा ब्रह्मसम्बन्धी उपदेश कभी भूल न जाओ, यह गुरुदक्षिणा तुम मुझको दो! यह विदेह देश, मिथिलापुरी तथा सर्व राज्यादि पदार्थ मेरे हैं और तुम भी मेरे हो, इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यादि सर्व पदार्थ अपने पास रहने दो ! हे राजन् ! अब मैं आश्रमको जाता हूँ। कुछ काल पीछे मैं तुम्हारे पास फिर आऊँगा।

जब मुनिने इस प्रकार कहा तो जनक, अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यादि सब सभाने उनसे वहाँ रहनेके लिये बहुत प्रार्थना की; परन्तु मुनि एकान्तसुखकी इच्छावाले होनेसे, उनका कहना न मानकर अपने आश्रमको चले गये। उनके गये पीछे कुछ कालतक राज्यकार्यमें चित्त लगानेसे और अग्नि आदि देवोंकी उपासनामें तत्पर होनेसे मुनिके उपदेशको राजा भूल गया। पश्चात् लोगोंके मुखसे तथा अपनी दिव्य दृष्टिसे राजा जनकका वृत्तान्त जानकर याज्ञवल्क्य अपने मनमें इस प्रकार कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—(मनमें) राजा मेरे उपदेशको भूल गया है। यदि मैं राजा जनकके पास जाऊँगा तो भी बिना प्रसङ्ग मैं कुछ सम्भाषण नहीं कर सकूँगा। यदि मैं सम्भाषण करूँगा भी तो पहले मैंने जिस ब्रह्मविद्याका उपदेश किया है, उसी विद्याका मैं फिर उपदेश करूँगा। इसलिये मुझे चाहिये कि योगक्षेमादि पूछे बिना ही मैं वहाँ जाकर बैठ जाऊँ। ऐसा होनेसे राजा स्वयं ही प्रसङ्गानुसार कुछ-न-कुछ प्रश्न करेगा।

ऐसा विचारकर याज्ञवल्क्य मुनि राजा जनककी सभामें गये। मुनिको आया हुआ देखकर सब सभासहित जनक राजा उठकर खड़ा हुआ और अर्घ्यपाद्यादिसे उनका पूजन करके सिंहासनपर उनको बैठाया। उस समय सभामें अनेक प्रकारकी कथाओंका प्रसङ्ग चल रहा था। कोई विद्वान् वैश्वानरी विद्याका प्रसङ्ग चला रहे थे। वैश्वानरी विद्यामें राजा अत्यन्त ही कुशल था। इसलिये सभामें बैठे हुए सर्व ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंसे वह इस प्रकार कहने लगा—

जनक—हे सभाजनो ! नाना प्रकारके फल-वाली तथा ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाली वैश्वानरी विद्या मैं सम्यक् प्रकारसे जानता हूँ। इसलिये इस सभामें विद्यमान सर्व विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंमेंसे जो वैश्वानरी विद्यामें कुशल हो वह निःशंक होकर मुझसे प्रश्न करे, मैं उसका उत्तर दूँगा। अथवा मैं जो प्रश्न करूँ, उसका वह उत्तर दे !

जब जनक राजाने इस प्रकार कहा, तो सब सभामें कोई विद्वान् ऐसा नहीं था कि जो राजासे प्रश्न कर सके अथवा राजाके प्रश्नका उत्तर दे सके। इसलिये सभामेंसे कोई भी न बोला, सब मौन धारण करके बैठे रहे। ऐसा देखकर याज्ञवल्क्य मुनि अपने पूर्वसङ्कल्पको त्यागकर वैश्वानरी विद्यासम्बन्धी प्रश्न राजासे पूछने लगे। जनक राजा भी अनेक प्रकारसे उनके प्रश्नोंका उत्तर देने लगा। जब इस प्रकार जनक राजाने सर्व वैश्वानरी विद्या मुनिसे कही तो वे राजाका बुद्धिकौशल देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और इस प्रकार कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे राजन् ! मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ, जो तुम्हारी इच्छा हो वह वरदान तुम मुझसे माँगो !

मुनिके इस प्रकार कहनेसे राजा अपनेको कृतार्थ मानकर मनमें विचार करने लगा—

जनक—(मनमें) मैं इनसे कामप्रश्नरूप वर माँगूँ ! क्योंकि पूर्वमें इन्होंने मुझको ब्रह्मविद्याका जो उपदेश किया था, उस उपदेशको मन्दबुद्धिवाला मैं भूल गया हूँ। जैसे पूर्वके किये हुए किसी पुण्यकर्मके प्रभावसे प्राप्त हुए चिन्तामणिको कोई मन्दबुद्धि भाग्यहीन पुरुष खो दे, इसी प्रकार मैं भी मुनिके किये हुए उपदेशको भूल गया हूँ। यह मुझसे महान् अपराध हुआ है। उस अपराधकी निवृत्तिका उपाय बहुत ही दुर्लभ है, तो भी पूर्वके किसी पुण्यकर्मके प्रभावसे उस अपराधकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवृत्तिका उपाय यह कामप्रश्नरूप वरदान मुझे प्राप्त हुआ है। हस्ति, अश्व, सुवर्ण, स्त्री, पुत्र इत्यादि मनुष्यधन प्रचुर मेरे पास है और कर्मोपासनारूप देवलोकका धन भी मेरे पास है। मनुष्यधन तथा देवधनकी मुझे इच्छा नहीं है किन्तु एक आत्मज्ञानकी ही मुझे इच्छा है। परम आत्मज्ञान भी मुझे पूर्वमें प्राप्त हुआ था, परन्तु अपनी मूर्खतासे मैंने उसको भुला दिया। मेरे किसी पूर्व पुण्यकर्मके प्रभावसे मुझपर प्रसन्न होकर मुझको कामप्रश्नरूप वरदान देते हैं; उस वरद्वारा मैं अपना आत्मज्ञान ही प्राप्त कर लूँ, यही उत्तम है।

ऐसा विचारकर राजाने कामप्रश्नरूप वरदान माँगा। महात्मा याज्ञवल्क्य जनककी सभामें सुवर्णादिकी प्राप्तिके लिये तो कुछ आये ही न थे, किन्तु राजाको आत्मज्ञान स्मरण करानेके लिये ही आये थे। इसलिये उन्होंने राजाको कामप्रश्नरूप वरदान दे दिया। चाहे जबतक प्रश्न किये जाना, इसका नाम कामप्रश्न है, इस वरके मिलनेसे राजा जनक बहुत प्रसन्न हुआ और अपने मनमें विचार करने लगा—

जनक—(मनमें) यद्यपि याज्ञवल्क्य मुनि अत्यन्त क्षमावान् हैं, इसलिये चन्दनके समान शीतल स्वभाववाले हैं। तो भी चन्दनको अतिशय घिसनेसे उसमेंसे अग्नि उत्पन्न हो जाती है, इसी प्रकार बारंबार प्रश्न करनेसे जैसे शाकल्य ब्राह्मणकी दुर्गति हुई थी इसी प्रकार कहीं मेरी भी दुर्गति न हो जाय, इस शङ्कासे मैं बारंबार मुनिसे प्रश्न नहीं कर सकता। किन्तु यह मेरी शङ्का दूर हो गयी है, क्योंकि मैंने मुनिसे कामप्रश्नरूप वर माँग लिया है। यदि मेरा प्रश्न असङ्गत होगा, तो भी मुनि मुझपर क्रोध नहीं करेंगे।

इस प्रकार मनमें विचारकर राजा जनक निःशंक होकर प्रश्न करने लगा—

आत्मा स्वयंज्योति

जनक—हे मुनि! जाग्रदवस्थाको प्राप्त हुआ स्थूलसूक्ष्मसंघात पुरुष किस ज्योतिसे भास्यमान होता है? यह आप कृपा करके मुझसे कहिये।

याज्ञवल्क्य—हे जनक! जाग्रदवस्थामें पुरुष आदित्यरूप ज्योतिसे भास्यमान होता है।

जनक—हे मुनि! जगत्का प्राणरूप जो आदित्यरूप ज्योति है, जब वह अस्तभावको प्राप्त हो जाता है तब पुरुषका कौन ज्योति होता है?

याज्ञवल्क्य—हे जनक! आदित्यके अस्तभावको प्राप्त होनेपर पुरुषका चन्द्रमारूप ज्योति होता है।

जनक—हे मुनि! जब चन्द्रमा भी अस्तभावको प्राप्त हो जाता है, तब पुरुषका कौन ज्योति होता है?

याज्ञवल्क्य—हे जनक! जब चन्द्रमा अस्त हो जाता है, तब अग्नि ज्योतिरूप है।

जनक—हे भगवन्! जब अग्नि अस्त हो जाता है, तब पुरुषका कौन ज्योति होता है?

याज्ञवल्क्य—हे जनक! अग्नि अस्त होनेके बाद पुरुषका वाक् ज्योतिरूप होता है। हे जनक! आदित्य, चन्द्रमा तथा अग्नि इन तीनों ज्योतियोंसे पुरुष सर्प तथा कण्टक आदिसे रहित अनुकूल स्थानको देखकर स्थित होता है; वहाँसे क्षेत्रादिमें जाता है और वहाँ इस लोकके सुखके साधन कृषि आदि कर्म करता है। घरमें जाकर पुरुष परलोकके सुखके साधन दानादि कर्म करता है। इस प्रकार अनेक प्रकारके व्यवहार आदित्य आदि ज्योतियोंके द्वारा पुरुष करता है। आदित्यादि ज्योतियोंके प्रकाश विना अन्धकारमें किसी व्यवहारकी सिद्धि नहीं होती। इसलिये आदित्य, चन्द्रमा तथा अग्निमें ज्योतिपना है। जिस स्थानमें आदित्यादि इन तीन ज्योतियोंका प्रकाश नहीं होता, वहाँ अत्यन्त गाढ अन्धकार होता है और अपना हाथ भी दिखायी नहीं पड़ता। ऐसे गाढ अन्धकारमें बैठना, उठना आदि व्यवहार वाक् ज्योतिसे होता है। अर्थात् अन्धकारमें स्थित पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब दूसरेसे कहता है कि पूर्व दिशामें बहुत सुन्दर स्थान है, वहाँ जाकर आप आसन लगाओ, तब वह पुरुष उसकी वाणी सुनकर वहाँ जाकर आसनादि व्यवहार करता है। इसलिये जैसे आदित्यादि तीन ज्योति लोगोंके गमनागमन आदि व्यवहारोंमें साधक हैं, इसलिये ज्योति कहलाते हैं, इसा प्रकार अन्धकारमें वाणी भी गमन-आगमनादिरूप व्यवहारमें साधक है, इसलिये वाणी भी ज्योति कहलाती है।

जनक—हे भगवन्! आपने जाग्रत् अवस्थामें ये चार ज्योति कहीं; परन्तु इन चारोंका स्वप्नावस्थामें लय हो जाता है, तो स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म-संघातरूप पुरुषका कौन ज्योति होता है जिससे स्वप्नावस्थाका सब व्यवहार सिद्ध होता है? यदि आप ऐसा कहें कि स्वप्नावस्थामें यद्यपि आदित्यादि ज्योतियोंका लय हो जाता है, तो भी उस अवस्थामें मनका लय नहीं होता, इसलिये स्वप्नावस्थामें मन ही पुरुषका ज्योति है, तो यह आपका कथन नहीं बनता। क्योंकि जाग्रदवस्थामें नेत्रादि इन्द्रियाँ विद्यमान होनेपर भी जैसे आदित्यादि ज्योतियोंके प्रकाश बिना वे इन्द्रियाँ किसी पदार्थका प्रकाश नहीं कर सकतीं। इसलिये घटादि पदार्थोंके ग्रहणमें जैसे नेत्रादि इन्द्रियोंको आदित्यादिके प्रकाशकी अपेक्षा है, इसी प्रकार घटादि पदार्थोंके ग्रहण करनेमें मनको भी नेत्रादि इन्द्रियोंकी अपेक्षा है। नेत्रादि इन्द्रियों बिना मन किसी पदार्थको ग्रहण नहीं कर सकता; और नेत्रादि इन्द्रियाँ स्वप्नमें लयको प्राप्त हो जाती हैं, इसलिये स्वप्नमें मनको ज्योति-रूपता सम्भव नहीं है। जैसे घट-शरावादि कार्योंका उपादान कारण मृत्तिका है, इसी प्रकार स्वप्नावस्थामें रथादि पदार्थोंका तथा रथादि आकार-वाले वृत्तिज्ञानका उपादानकारण मन है। इसलिये मनसे भिन्न कोई अन्य प्रकाश स्वप्नके पदार्थोंका प्रकाशक होना चाहिये। यदि स्वप्नावस्थामें अविद्याको रथादि पदार्थोंका उपादान कारण माना जाय तथा जाग्रदवस्थामें सङ्कल्प करनेवाले मनको करण माना जाय, तो भी जैसे जाग्रदवस्थामें नेत्रादि करणोंको आदित्यादिके प्रकाशकी अपेक्षा है, इसी प्रकार स्वप्नमें मनरूप करणको भी किसी प्रकाशकी अपेक्षा होनी चाहिये। किन्तु स्वप्नमें आदित्यादि ज्योति तथा नेत्रादि इन्द्रियाँ होती नहीं, तो भी स्वप्नावस्थामें जाग्रदवस्थाके समान गमन, आगमन आदि व्यवहार होता है। इसलिये स्वप्नावस्थामें विद्यमान मन जिस ज्योतिकी सहायतासे पदार्थोंका ग्रहण करता है, वह मनके ऊपर अनुग्रह करनेवाला ज्योति कौन है?

याज्ञवल्क्य—हे जनक! स्वप्नमें पुरुषका जो आत्मा है, वही स्वयंज्योति है। आत्मा मृत्तिकाके समान स्वप्नके पदार्थोंके उपादान-कारणरूप मनका साक्षी है। इसी परमात्माका पूर्वमें मैंने तुमसे इन्ध तथा इन्द्र नामसे वर्णन किया था। जैसे जाग्रदवस्थामें आदित्यादि ज्योतियोंसे गमन, आगमन आदि सर्व व्यवहार होता है, इसी प्रकार स्वप्नावस्थामें आत्मारूप ज्योतिसे पुरुष गमन-आगमनादि सर्व प्रकारका व्यवहार करता है। इसलिये स्वप्नमें मन आदिका साक्षी आत्मा स्वयंज्योति है। जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंमें आत्मा तो सर्वदा विद्यमान है। जाग्रदवस्थामें भी आत्माका ज्योतिपना सम्भव है, तो भी श्रुतिने जाग्रदवस्था-को छोड़कर स्वप्नावस्थामें ही उसको ज्योतिरूप क्यों कहा है—इस शङ्काका यह समाधान है कि जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंमें यद्यपि आत्माका ज्योतिपन समान है, तो भी जाग्रदवस्थामें आदित्यादि चार ज्योति विद्यमान हैं, इसलिये जाग्रदवस्थामें आदित्यादि ज्योतियोंसे गमन, आगमन आदि सर्व व्यवहार होता है, अथवा आत्मारूप ज्योतिसे व्यवहार होता है, इस प्रकार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्णय अल्प बुद्धिवाले मनुष्योंको नहीं हो सकता। और स्वप्नावस्थामें आदित्यादि चारों ज्योतियोंका लय हो जाता है, एक आत्मा ही शेष रहता है; इसलिये अल्प बुद्धिवालोंको स्वयंज्योति-रूप आत्माका निश्चय करानेके लिये श्रुतिने स्वप्नावस्थामें आत्माको स्वयंज्योति कहा है। जब अधिकारी स्वप्नावस्थामें आत्माका स्वयं ज्योतिरूपसे निश्चय कर लेता है, तो जाग्रदवस्थामें भी स्वयंज्योति आत्माको जान सकता है।

(क्रमशः)

मुक्ति, निर्वाण और भगवत्प्राप्ति

(लेखक—एक दीन)

मुकुति निरादरि भगति लुभाने।

भगवद्वाक्य है कि मेरे भक्त मेरे द्वारा मुक्ति दी जानेपर भी उसे ग्रहण नहीं करते; क्योंकि उसके मिलनेपर वे मेरी सेवासे वञ्चित हो जाते हैं।[1] भक्तकी दृष्टिमें भगवत्सेवा मुक्तिसे बहुत उत्कृष्ट है। भगवत्सेवा क्या है? श्रीभगवान् जिस विशेष कार्यमें प्रवृत्त हैं, उसी भगवत्कार्यमें अहङ्कारको त्यागकर उनकी दिव्य शक्तिद्वारा अपनेको प्रेरित समझकर निष्कामभावसे योग देना ही यथार्थ भगवत्सेवा है। अब दूसरा प्रश्न यह होता है कि श्रीभगवान् किस विशेष कार्यमें प्रयुक्त हैं, जिसमें योग देना भगवत्सेवा है? प्रत्येक जीवात्मा श्रीभगवान्का प्रिय अंश है, किन्तु मायाबद्ध है। श्रीभगवान्की यही इच्छा और महत्कार्य है कि प्रत्येक जीवात्मा मायाका अतिक्रमण करके श्रीभगवान्के दिव्य गुण, सामर्थ्य, ऐश्वर्य आदिको (जो बीजरूपमें उसमें निहित हैं) प्रकाशित करे और श्रीभगवान्में आत्मनिवेदन करे। आत्मनिवेदन करनेके बाद वह श्रीभगवान्के यन्त्रीरूप हाथमें निवेदितात्मा यन्त्रकी भाँति बन जाता है और तबसे उसके द्वारा श्रीभगवान् स्वयं अपना कार्य करते हैं। यही मनुष्यजीवन और सृष्टिका मुख्योद्देश्य है और इसकी पूर्त्ति करवाना श्रीभगवान्का महत्कार्य है। इसीकी अपने और दूसरोंमें पूर्त्ति करना और करवाना भक्त साधकोंकी भगवत्सेवा है। दैवी सम्पत्ति[2] और ज्ञानके लक्षणों[3]की प्राप्तिसे इस भगवदुद्देश्यकी पूर्त्ति होती है। अतएव इनकी स्वयं प्राप्ति करना और दूसरोंको भी प्राप्त करानेकी चेष्टा करना यथार्थ भगवत्सेवा है।

गीतामें इसीको धर्मसंस्थापन और अधर्मका नाश कहा है, जो श्रीभगवान्का मुख्य कार्य है[4]।

श्रीभगवान्का महत्कार्य

जब कि श्रीभगवान् सृष्टिके हितसाधनके निमित्त सतत कार्यमें संलग्न हैं और इसके लिये वे समय-समयपर अवतार भी धारण करते हैं, ऐसी हालतमें भक्त साधकका उनकी सेवा त्यागकर, मुक्ति लेकर, कर्मसे अवकाश ले लेना एक प्रकारका उच्च स्वार्थ है और यह भक्तिके, जिसमें स्वार्थ-त्याग मुख्य है, विरुद्ध है। इस कारण भक्तोंकी दृष्टिमें मुक्ति हेय है। श्रीभगवान्के

१. देखिये भागवत पु० स्क० ३ अ० २९। १३।
२. भगवद्गीता अ० १६ श्लोक १ से ३ तक।
३. भगवद्गीता अ० १३ श्लोक ८ से १२ तक।
४. गीता अ० ४ श्लोक ७ और ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ एकनिष्ठता होनेके कारण उनकी सृष्टिलीलाके रहते उसमें योग देना और अवकाश (प्रलय) के समय अवकाश लेना ही साधक भक्तका कर्तव्य है।

भक्तिकी श्रेष्ठता

साधारण योगसाधन, तपस्या आदिद्वारा त्रिगुणमयी मायासे मुक्ति मिल सकती है। केवल सांख्यज्ञानकी निष्ठासे अहङ्कार, ममता, वासना आदिको त्याग देनेसे निर्वाणकी प्राप्ति हो सकती है। ऐसे मुक्त पुरुष त्रिलोक अर्थात् स्वर्गके भी ऊपर जाकर आवागमन, जन्ममरण आदि संसृतिसे मुक्त हो सकते हैं। किन्तु, जब कि श्रीभगवान् अपने उद्देश्य सृष्टिहितसाधनकी पूर्तिमें लगे हुए हैं, जिसमें सेवाकी दृष्टिसे योग देना साधकोंका परम कर्तव्य है, उसका तिरस्कार कर जो साधक मुक्ति ग्रहण करते हैं, उन्हें परम शान्ति नहीं मिलती; क्योंकि इस तरह उन्हें भगवत्प्राप्ति नहीं होती। परम शान्ति तो मुक्तिके त्यागसे मिलती है, जैसा कि गीताका कथन है—'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'। परम शान्ति केवल श्रीभगवान्‌के चरणकमलमें है, जो केवल चरणप्रविष्ट होनेसे मिलती है, अन्यथा त्रिगुणका अतिक्रमण करनेपर भी उसका मिलना असम्भव है। यह चरणप्राप्ति श्रीप्रह्लादकथित भक्तिकी साधना अवलम्बन करनेसे होती है। श्रीप्रह्लादने श्रीनृसिंह भगवान्‌से कहा कि 'मुझको नरककी यातनाका भी भय नहीं है, क्योंकि मेरा चित्त आपके चरणमें संलग्न है। यही कारण है कि नरकसे भी त्राण दिलानेकी प्रार्थना मैं नहीं करता। मुझको तो चिन्ता उन लोगोंकी है जो विषयभोगमें लिप्त रहते हुए आपसे विमुख हैं। मैं ऐसे लोगोंको दुःखसागरमें छोड़कर अकेले मुक्ति लेना नहीं चाहता। मैं उन लोगोंको जो आपसे विमुख हैं, आपके चरणोंमें लगानेकी सेवा करना चाहता हूँ। क्योंकि इसके बिना उनका दुःख कदापि दूर न होगा। देव और मुनि भी केवल अपना स्वार्थ चाहते हैं, दूसरोंके हितकी परवा नहीं करते।'* भक्तप्रवर प्रह्लादकी यह उक्ति ही यथार्थ भगवत्सेवा है और यही भगवान्‌का महत्कार्य है जिसमें वह प्रवृत्त रहते हैं। इस सेवाकी पूर्तिके बिना यथार्थ भक्त साधकको विश्राम कहाँ? जैसा कि श्रीहनुमान्‌जीने कहा—'रामकाज कीन्हें बिना मोहि कहाँ बिस्राम॥' यही श्रीराम-कार्य है।

परहितसाधनका लक्ष्य

शोक है कि आजकल साधक भक्त परहितनिरत होना नहीं चाहते, जो भक्तका मुख्य लक्षण है—'रामभगत परहितनिरत, परदुखदुखी दयाल।' वे केवल अपना व्यक्तिगत कल्याण चाहते हैं और इसी कारण अपनी मुक्ति ही उनका परम लक्ष्य होता है। ऐसे साधकोंको मुक्ति तो मिलती है, किन्तु भगवत्प्राप्ति नहीं होती। एक उच्च साधक मुक्तिके निमित्त व्याकुल थे। उनसे स्वप्नमें एक महात्माने कहा कि तुम मन्त्र लो, इसके द्वारा मुक्ति शीघ्र मिल जायगी। वह बहुत बड़े गुरुभक्त थे। उन्होंने महात्मासे कहा कि मैं आपके मन्त्रको बिना अपने गुरुकी आज्ञाके ग्रहण नहीं कर सकता, यद्यपि इससे मुक्ति ही क्यों न मिले। और यह कहकर उन्होंने मन्त्र ग्रहण नहीं किया। जब उन्होंने इस स्वप्नकी बात अपने गुरुदेवसे कही तो उन्होंने कहा—'रात्रिमें महात्मागण भ्रमण करते हैं और उत्तम तथा शुद्ध साधकको दीक्षाद्वारा सहायता करते हैं। यदि तुम मन्त्र ग्रहण कर लेते तो मुक्ति अवश्य मिल जाती, किन्तु मन्त्रका त्याग कर तुमने बहुत अच्छा किया। कारण मुक्ति मिलनेसे भगवत्प्राप्ति न होती।'

भक्तिसाधना

भगवत्प्राप्ति केवल सब भावसे श्रीभगवान्‌के शरणा-

* देखिये भागवत पु० स्क० ७ अ० ६ श्लोक ४३ और ४४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत होनेसे होती है, जिसके लिये शरीर, इन्द्रिय, मन, वचन, प्राण, बुद्धि और आत्मातकको अर्पण करना होता है। ऐसा अर्पण तभी सम्भव है जब ममता और अहङ्कार मिटकर श्रीभगवान्‌में अनुराग हो और निष्काम भगवत्सेवामें प्रवृत्ति हो। इसके लिये आवश्यक है कि विचार-विवेकके द्वारा शरीर, मन आदि अनात्म उपाधिमें अहंकार न रखकर शुद्ध आत्मामें स्थित हों और विषयसे वैराग्य होनेके कारण इन्द्रिय और मन शुद्ध और शान्त हो जायँ। भोजन केवल शरीरकी रक्षाकी दृष्टिसे किया जाय, स्वादके निमित्त कदापि नहीं। स्त्रीको देखकर पवित्र जगन्मातृ-भाव आवे अर्थात् स्त्रीमात्र जगज्जननी परमेश्वरी समझी जाय और मनमें तनिक भी कामविकार न आवे। मन एकाग्र, विकार और मलरहित और शान्त हो जाय। यह अर्पण हृदयस्थ श्रीभगवान्‌के प्रति होगा। अतएव काम, क्रोध, लोभ, मत्सर, अभिमान, ईर्ष्या इत्यादि विकारोंसे हृदयकी शुद्धि सर्वप्रथम अत्यन्त आवश्यक है। इसके बाद यह परमावश्यक है कि साधक परमकारण श्रीभगवान्‌को सब प्राणियोंमें वर्तमान देखे, जैसा कि गीताका वाक्य है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(६। २९)

श्रीभगवान्‌का यह विश्वभाव केवल कथनमात्र नहीं होना चाहिये, बल्कि कार्यमें उसका पूरा व्यवहार होना चाहिये। और इसके लिये आवश्यक है कि दूसरेके दुःखको अपना दुःख जानकर उसकी निवृत्ति-की यथासाध्य चेष्टा करनी चाहिये और दूसरेके सुखको अपना सुख मानकर दूसरोंको सुखी बनाने-की चेष्टा करनी चाहिये; जैसा कि गीताका वचन है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥
(६। ३२)

चूँकि दुःखकी यथार्थ निवृत्ति और सच्चे सुखकी प्राप्ति ईश्वरोन्मुख होनेसे होती है, अतएव स्वयं ईश्वरो-न्मुख होनेका यत्न करते हुए दूसरोंको भी ईश्वरोन्मुख करनेका यत्न करना परम भगवत्सेवा है। अन्तिम, सर्वव्यापी, मुख्य और परमोच्च साधना वही है जिसे श्रीनारदने अपने सूत्रमें कहा है—

तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति

इसका भाव यह है— अपने बाह्याभ्यन्तरके सर्वस्वको अर्थात् आभ्यन्तरिक शरीर, इन्द्रिय, मन, वचन, प्राण, बुद्धि, विद्या, ज्ञान, आत्मा आदिको और बाह्यस्थ धन, सम्पत्ति, परिवार, कलत्र, सम्बन्धी आदिको अपना न मान अर्थात् इनमें ममत्व त्यागकर इनको श्रीभगवान्‌की सम्पत्ति जानकर आसक्तिरहित हो निष्कामभावसे निरहंकारबुद्धि रखकर भगवत्सेवा-की दृष्टिसे श्रीभगवान्‌के कार्यमें नियुक्त करना और अपने सांसारिक तथा पारमार्थिक दोनों कर्तव्योंको भगवत्सेवा समझकर केवल श्रीभगवान्‌के निमित्त सम्पादन करना और उनके फलाफलमें आसक्ति न रखकर समान रहना और यह समझना कि जो कुछ युक्त कार्य किये जाते हैं वे सब श्रीभगवान्‌की शक्ति-द्वारा होते हैं और उसका श्रेय केवल श्रीभगवान्‌को है तथा जो अयुक्त कार्य हुए वे अहंभाव और ममताके कारण प्रकृतिके गुणोंसे प्रेरित होकर किये जाते हैं और उनका दायित्व कर्त्तापर है—यही श्रीभगवान्‌में सर्वकर्मार्पण है, जिसका विधान ऊपरके नारद-सूत्रमें है। सूत्रका दूसरा भाग है, श्रीभगवान्‌का क्षणभर भी विस्मरण होनेपर परम व्याकुल होना। यह भाव भी परम प्रेमका भाव है। जबतक हमलोग सब प्राणियों-में सर्वत्र सर्वदा श्रीभगवान्‌को विराजमान नहीं देखेंगे और प्रेमके कारण सब प्रकारके कर्म उनके कर्म समझकर न करेंगे तबतक यह सदा-सर्वदा स्मरण रखनेका भाव नहीं आ सकता। इस भावके निमित्त यह नितान्त आवश्यक है कि प्रातःसन्ध्या श्रीभगवान्-के मन्त्रका जप और उनकी दिव्य मूर्तिका ध्यान हृदयमें नियमसे प्रेमके साथ किया जाय और उसके बाद किसी गौण नामका मानसिक चिन्तन निरन्तर किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक जपका हजारगुना फल

(लेखक—परमहंस स्वामी नारायणदासजी महाराज)

ह बात तो प्रसिद्ध ही है कि इस कलियुगके वर्तमान समयमें भगवत्प्राप्तिके लिये नामस्मरणसे उत्तम योग, क्रिया इत्यादि दूसरा कोई साधन नहीं है। सबने यही बतलाया है कि भगवन्नामका जितनी ज्यादा संख्यामें जप किया जाय उतना ही उत्तम है।

जप करनेके कई तरीके हमारे ऋषि-मुनियोंने अनुभव करके बतलाये हैं और सनातनसे उनके कथनानुसार साधक करते चले आये हैं।

अब इस बातको बतलानेकी आवश्यकता है कि सबसे ऊँचे दरजेका और सबसे अधिक फल देनेवाला कौन-सा जप है।

कोई कहते हैं कि जोरसे ऊँचे स्वरके साथ नाम-स्मरण करना चाहिये, कोई कहते हैं कि हृदयसे करना चाहिये।

इस विषयमें इस दासने जो कुछ अनुभव किया है उसे वह सूक्ष्मरूपसे बतलाना चाहता है। वर्तमान समयमें नीचे लिखे हुए पाँच प्रकारसे जप होता देखनेमें आ रहा है। इन पाँचोंमेंसे कौन-सा साधन श्रेष्ठ और अधिक फल देनेवाला है ?

जितने भी साधन बतलाये गये हैं वे सब मनको दमन करनेके लिये हैं।

(१) ऊँचे स्वरसे जोर-जोरसे नाम-जप करना।

(२) ओंठ और जिह्वा चलाकर जप करना।

(३) ओंठ बन्द करके या जिह्वासे अन्दर-ही-अन्दर जप करना।

(४) मानसिक जप अथवा ओंठ-जिह्वा बन्द करके मनसे मालाके साथ भजन करना।

(५) श्वासके आने-जानेके साथ मनको लगाकर बिना मालाके नामस्मरण करना।

ऊपर लिखे हुए पाँचों साधनोंकी जुदा-जुदा व्याख्या

(१) ऊँचे स्वरसे नामस्मरण करना यह साधन शुरूका और कम फल देनेवाला है। अगर यह कहा जाय कि श्रीगणेशाय नमः इसी साधनसे होता है तो ठीक होगा।

श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी श्रीरामनामको ऊँचे स्वरसे जोरके साथ उच्चारण करनेको सबसे श्रेष्ठ और अधिक फल देनेवाला कहीं नहीं लिखा। मेरे देखने और सुननेमें तो आया नहीं।

उस समयपर जब बहुत-से भक्तजन मिलकर हारमोनियम या झाँझ इत्यादि बाजोंपर अथवा बिना किसी बाजेके कीर्तनद्वारा नामोच्चारण करते हैं, वह उत्तम है, जो आजकल ज्यादा देखनेमें आता है। परन्तु वह नामकीर्तन है। कीर्तन नवविधा भक्तिमें शामिल है। उसे जप नहीं कहा जा सकता।

दूसरे भारतवर्षमें कई जगह भजनाश्रम खोले गये हैं। यह तरीका भजन करानेका बहुत अच्छा है। भजन करानेवालोंको फल मिलता है। जिस नगरमें भजन होता है वह नगर पवित्र होता है। गरीब मनुष्योंका पालन होता है। एक प्रकारका अच्छा परमार्थी काम है।

कीर्तन करनेसे प्रेम बढ़ता है। बहुत-से मनुष्य जो भजन नहीं करते उनको भी कीर्तनमें शामिल होनेसे लाभ मिल जाता है। मनमें भजनका उत्साह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़नेपर वे मालासे भजन करने लगते हैं और माला वैकुण्ठधाम जानेके लिये निसेनी अथवा सीढ़ी बनायी गयी है। ऊपर चढ़नेके लिये यह सीधा रास्ता है।

ऊँचे स्वरसे नामस्मरण करनेमें जो त्रुटि है वह नीचे लिखी जाती है।

(१) ऊँची आवाजके साथ भजन करनेसे दूसरे साधनोंके मुकाबलेमें मन कम लगता है। जैसे ग्रामोफोनके प्लेटमें आवाज भर दी जाती है और वह निकलती रहती है परन्तु गानेवाला वहाँ नहीं होता, इसी तरह जबानसे जप होता रहता है और मन दूसरी जगह काम करता रहता है। फिर ऐसे जपसे थोड़ा ही लाभ होता है।

(२) ऊँचे स्वरसे भजन करनेमें ध्यान नहीं हो सकता, क्योंकि मनको रोककर लगानेका कोई आधार ही नहीं है। श्रीभगवद्गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनको मन रोककर ध्यान लगानेका तरीका बतलाया है। अगर भजनके साथ ध्यान जरूरी नहीं होता तो क्यों बतलाया जाता ?

(३) जोरसे ऊँचे स्वरके साथ भजन करनेमें मालाकी जरूरत नहीं होती। तुलसी और रुद्राक्षकी मालाका इतना बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है कि एक दाना भी शरीरमें बँधा हुआ हो तो अन्तसमय यमके दूत उस शरीरको नहीं छू सकते। जोरसे ऊँचे स्वरके साथ नामस्मरणमें माला नहीं रहती, यह भी एक नुकसान है।

(४) ऊँचे स्वरके साथ नामस्मरण करनेसे मुखके द्वारा भगवन्नामका प्रभाव बाहर निकल जाता है, शरीरके अन्दर प्रवेश नहीं करता। वह जितनी बाहरकी शुद्धि करता है उतनी अन्दरकी नहीं।

दुनियाके लोगोंके कानोंमें भजनकी आवाज पहुँचनेसे आकर्षण होता है। वे जल्दी जान जाते हैं कि यह भगवान्‌का भक्त है, बहुत भजन करनेवाला है; उसकी मान-बड़ाई करने लगते हैं, मायाका लोभ देते हैं। इस कारण भजन करनेवालेकी तरक्की प्रायः रुक जाती है और उसके नीचे गिरनेका बहुत भय रहता है।

महात्माओंके लिये तो ऊँचे स्वरसे जप करना मेरी समझसे उचित नहीं है। यह मेरे अनुभवमें आ चुका है। जप तो गुप्त रीतिसे ही करना ठीक है।

श्रीमद्भागवतमें एक राजाका उदाहरण देकर लिखा है कि जप, तप और शुभ कर्म इत्यादि जो किये जाते हैं उनको जिह्वासे (गुरुको छोड़कर) किसीके सामने कहना नहीं चाहिये। कहनेसे उसका फल जिह्वाके द्वारा नष्ट हो जाता है।

इस दासके कहनेका तात्पर्य यह है कि केवल कीर्तन या ऊँचे स्वरके साथ जोरसे नामस्मरण करनेको ही सर्वोत्तम न मानें, क्रम-क्रमसे ऊपरको चढ़ते रहें।

(२) जिह्वा और ओंठ चलाकर जो जप किया जाता है उसका फल नम्बर १ से अधिक बतलाया गया है। इस कारण शुरूमें थोड़े समयतक यह साधन करना ठीक होगा।

(३) ओंठ बन्द करके जिह्वासे जप करनेसे नम्बर २ से अधिक फल होता है। नम्बर २ के बाद कुछ समयतक यह भी करना चाहिये।

(४) मानसिक जप ओंठ और जिह्वा दोनोंको बन्द करके मालाके साथ मनसे किया जाता है। चलते-फिरते तो होता ही रहता है, परन्तु बैठकर जप करते वक्त नामका उच्चारण और ध्यान करना बहुत जरूरी है। एक तरफसे माला मनको खींचेगी, दूसरी तरफसे मूर्तिका ध्यान मनको खींचेगा। धीरे-धीरे मनसे लड़ाई करते-करते मन लगने लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर लिखे हुए तीनों प्रकारके साधन करनेसे जब अभ्यास बढ़ जाय तब यह साधन शुरू करना चाहिये । यह कुछ कठिन नहीं है । जल्दी अभ्यास हो जाता है । थोड़े समयतक जबतक अभ्यास अच्छी तरह नहीं होता, वक्त कुछ ज्यादा लगता है; फिर धीरे-धीरे जल्दी होने लगता है ।

मानसिक जप सबसे श्रेष्ठ और अधिक फल देनेवाला बतलाया गया है । इस सम्बन्धमें उदाहरण भी बहुत-से दिये जा सकते हैं । इस वक्त यहाँपर सिर्फ एक उदाहरण श्रीमनुजी महाराजका, जिन्होंने सनातन-धर्मकी नीतिको बनाया है, दिया जाता है, जो हर तरहसे मानने ही योग्य है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥
(मनु० २ । ८५)

(अमावस्या और पूर्णिमादि) विधियज्ञसे प्रणव आदिका जपयज्ञ दसगुणा अधिक फल देनेवाला है । यह जपयज्ञ पास बैठनेवाले मनुष्यको ओंठ और जिह्वा चलते हुए आवाज न सुनायी दे इस तरह करनेसे सौगुना अधिक फल देनेवाला है, और जिह्वा-ओंठ स्वल्प भी न हिलाते मानसिक किया जाय तो उसका फल एक हजारगुना अधिक होता है ।

श्रीमनुजी महाराज एक हजारगुना अधिक फल मानसिक जापका बतला रहे हैं ।

ऐसे कौन भजन करनेवाले प्रेमी भक्तजन हैं जो मानसिक जपसे हजारगुना अधिक फलका लाभ उठानेके लिये प्रयत्न न करेंगे । यह कोई मामूली लाभ नहीं है । बहुत अधिक लाभ देनेवाली बात है ।

मानसिक जप होता हुआ बहुत देखनेमें आता है, अतः सबको करना ही चाहिये ।

मानसिक जप श्वासके साथ करनेका तरीका

यह साधन ऊपर लिखे हुए चार साधनोंसे कठिन है । इस जपका सम्बन्ध केवल मनसे ही है । जब मन दूसरी जगह चला जाता है तब जप बन्द हो जाता है । जैसे कि मानसिक ठाकुर-सेवा उसी समयतक होती है जबतक उसमें मन लगा रहता है । जिस वक्त मन जरा भी हटता है, सेवा तत्काल बन्द हो जाती है । जब मानसिक जपका अभ्यास अच्छी तरह हो जाय तब यह साधन आरम्भ करना चाहिये । कोई-कोई भक्तजन ऐसे भी देखनेमें आये हैं कि चलते-फिरते श्वासके साथ भजन करना शुरूसे ही आरम्भ कर देते हैं और ऊपर लिखे हुए साधन मालासे नहीं करते । यह उनकी भूल है । क्रम-क्रमसे ही करनेसे जल्दी तरक्की होती है और नीचे नहीं गिरते ।

(५) पहले मनको श्वासके आने-जानेपर लगावे, फिर श्वासके छोटे-छोटे टुकड़े करके नामका जप करे । शरीरमें कोई प्रकारकी थकावट नहीं होती जब चलते-फिरते बैठते-उठते हर समय भजन होता रहता है; परन्तु चलते और लेटतेमें श्वास ज्यादा चलते हैं, इस कारण कम-ज्यादा होता रहता है । यह विचार रहे कि बड़े मन्त्रका जप श्वासके साथ ठीक नहीं होगा । होगा भी तो थोड़ी संख्यामें होगा । छोटे-छोटे मन्त्र जैसे सीताराम, ॐ नारायण, राधेश्याम, ॐ नमः शिवाय, श्रीकृष्णः शरणं मम, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इत्यादि हो सकते हैं । जप करते-करते जब अभ्यास परिपक्व हो जाता है तब वह अखण्ड जप अथवा अजपा जापके दरजेतक पहुँच जाता है । फिर वह घड़ीकी सेकण्डकी सुईके समान हर समय चलता रहता है । श्रीकबीरदासजी महाराजने भी कहा है—

होठ कंठ चाले नहीं, जिभ्या रटै न नाम ।
राम हमारा जप करै, हम बैठे आराम ॥

रग-रग राम बोलती है, रोम-रोमकी शुद्धि होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायण समा जाते हैं। इस अवस्थामें मालाकी आवश्यकता नहीं रहती। मन ही माला हो जाता है। यह भक्ति-विषयका बहुत ऊँचा दरजा है, इससे साक्षात्कार होता है अथवा नारायण सम्मुख आकर दर्शन देते हैं—

हाथ चले ना मुख चले, भजन करे दिन रात।
प्रगट करै भगवानको, 'नारायण' यह जाप॥

बोलो नारायण नारायण!

बाबाके वचनामृत

(सं० और प्रे०—श्रीनकुलेश्वर मजूमदार, 'विद्यानिधि', बी०ए०)

[श्रीश्रीभार्गव शिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजीके उपदेश]

प्र०—भगवान्‌में भक्ति कैसे हो?

उ०—भगवान्‌के विशेष अनुग्रहसे।

प्र०—भगवान्‌का यह अनुग्रह किसके प्रति होता है?

उ०—बिना कारण कोई भी कभी भगवान्‌का विशेष अनुग्रह प्राप्त नहीं कर सकता। संसारमें भी देखा जाता है कि जो सब प्रकारसे हमारे अनुगत होते हैं, जो सदा-सर्वदा हमारी आज्ञाका पालन करते हैं, उनके प्रति हम प्रसन्न होते हैं और उन्हींपर अनुग्रह करते हैं। इसी प्रकार जो लोग सदा भगवान्‌के अनुगत हैं, जो सदा भगवान्‌के वचनोंका पालन करते हैं, उनके प्रति भगवान् विशेष अनुग्रह करते हैं। अब यह प्रश्न है कि भगवान्‌के वचन कौन-से हैं? वेद ही भगवान्‌के वचन हैं, अतएव जो सदा-सर्वदा वेद-की आज्ञाका पालन करते हैं, कदापि वेदविरुद्ध कार्य नहीं करते, भगवान् उनके प्रति प्रसन्न होते हैं और उन्हींपर विशेष अनुग्रह करते हैं। 'अनुग्रह' शब्दपर विचार करो, तब तुम और भी अच्छी तरह समझ सकोगे। 'अनु' का अर्थ है पश्चात् और 'ग्रह' का अर्थ है ग्रहण। अतएव अनुग्रहका अर्थ हुआ पश्चात्‌से ग्रहण करना। अर्थात् तुम यदि भगवान्‌को पहले ग्रहण करोगे तो भगवान् तुमको ग्रहण करेंगे। तुम्हें भक्ति देंगे और दर्शन भी देंगे। इसीका नाम अनुग्रह है।

प्र०—भगवान् जब दयाके सागर हैं, तब यदि हम उन्हें ग्रहण नहीं करें, तपस्या नहीं करें, उनको नहीं पुकारें, तो भी उनको स्वयं आकर हमें दर्शन क्यों नहीं देना चाहिये?

उ०—भगवान्‌का आना-जाना क्या है? भगवान् तो सदा तुम्हारे अन्दर ही हैं। तुमने अनेकों मलिनताओं-के आवरणोंसे अपनेको ढक रक्खा है, इसीलिये अपनेको पहचान नहीं सकते। इस मलिनताके पर्देको फाड़ डालना ही गुरुका कार्य होता है। यही गुरुका गुरुत्व है। इस पर्देको फाड़नेके लिये ही तपस्वी तप करते हैं, जापक जप करते हैं और योगीलोग योगाभ्यास किया करते हैं। जिस दिन तुम्हारा यह मलिनताका पर्दा फट जायगा उसी दिन तुम भी शङ्कराचार्यके समान आनन्दमें निमग्न होकर पुकार उठोगे 'शिवोऽहम्' 'शिवोऽहम्'। अतएव यदि तुम भगवान्‌के दर्शन करना चाहते हो तो धीरे-धीरे इस मलिनताके पर्देको फाड़ो। जिस दिन यह पूर्णरूपसे फट जायगा, उसी दिन तुम भीतर-बाहर सर्वत्र केवल एक भगवान्‌को ही देखोगे। भगवान्‌में अनन्त शक्ति और अनन्त दया है। उनसे मनुष्य जो कुछ माँगता है वही उसको मिल जाता है। तुमने उनसे विषयसुख चाहा, इसलिये तुम्हें विषय-सुख मिल गया। जब तुमने उनका दर्शन चाहा ही नहीं, तब वह तुम्हें क्यों दर्शन देने लगे?

कभी-कभी भगवान् अपने भक्तपर कृपा या अनुग्रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेके लिये शरीर धारण करके भक्तको दर्शन दिया करते हैं। परन्तु जबतक तुमपर मलिनताका आवरण रहेगा तबतक शरीर धारण करके तुम्हारे समीप आनेपर भी तुम भगवान्‌को नहीं देख सकोगे। तुलसीदासजी-को भगवान्‌ने 'श्रीसीताराम' रूपसे तीन बार दर्शन दिये; परन्तु वे उनको नहीं पहचान सके, मनुष्य समझकर उन्होंने भगवान्‌की उपेक्षा की। पीछे जब महावीरजीकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने स्वयं तुलसीदासजीके आवरणको हटा दिया और उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की तब उन्होंने भगवान्‌को पहचाना। तभी वह 'सीताराम, सीताराम' पुकारकर सीतारामजीके चरणोंमें लोट सके। भगवान् दयाके सागर हैं। वह तुम्हारे अन्दर ही मौजूद हैं, वह तुमसे दूर नहीं हैं; परन्तु तुम्हींने जब आँखें मींच रक्खी हैं तब भगवान्‌का क्या दोष है? आँखें खोलो, मलिनताके पर्देको हटाओ, फिर भगवान्‌-को देख सकोगे।

भगवान् तो सदा ही हमलोगोंको दर्शन देना चाहते हैं, इतनेपर भी हमलोगोंको उनके दर्शन क्यों नहीं होते इसका कारण जानते हो? चुम्बक तो सदा ही लोहेको आकर्षण करता है; परन्तु लोहा यदि जंगसे ढक गया हो तो वह जाकर चुम्बकसे नहीं मिल सकता, इसमें चुम्बकका क्या दोष है? जंग हटा दो; बस, उसी समय लोहे-चुम्बकका मिलन हो जायगा। इसी प्रकार करुणामय भगवान् तो हमारे पास रहकर नित्य ही हमें पुकारा करते हैं, परन्तु हम उनसे इसी कारण नहीं मिल सकते कि हम चारों ओरसे जंग (मल) से ढके हुए हैं। इसमें चुम्बकरूपी भगवान्‌का क्या दोष है? इस जंगको अर्थात् मलको हटा दो, फिर उसी समय लौह-चुम्बककी भाँति भगवान्‌के साथ तुम्हारा मिलन हो जायगा।

प्र०—मलिनताके आवरण कौन-कौन-से हैं?

उ०—मल, मूत्र, राग, द्वेष और अभिमान आदि हमारे मल हैं। इनमें मलमूत्रादि बाहरके मल हैं, और राग-द्वेष तथा अभिमान आदि भीतरके। इन मलोंने ही हमको मलिन कर रक्खा है, इन्होंने ही हमें ढक रक्खा है। जो इन दोनों प्रकारके मलोंको नष्ट कर सकते हैं, वही निर्मल हैं, उन्हींको भगवान्‌के दर्शन होते हैं।

प्र०—यह मल कैसे दूर हो सकते हैं?

उ०—बाहरका मल स्नानादिसे दूर होता है, और भीतरका ध्यानादि करनेसे।

प्र०—भीतरका मल दूर करनेके लिये किसका ध्यान करना चाहिये?

उ०—जो अपनी सारी मलिनताको धोकर स्वच्छ हो गये हैं, ऐसे भगवान्‌के परम भक्त साधु महापुरुषोंका ध्यान करनेसे भीतरका मल सहज ही दूर हो सकता है। गंगाजी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य जितना पवित्र होता है, साधुसङ्ग और साधु महापुरुषका ध्यान करनेसे उसकी अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र होता है। गंगा आदि तीर्थोंमें स्नानकी अपेक्षा साधु-सङ्ग और साधु-ध्यानका माहात्म्य बहुत ज्यादा है। पापी मनुष्यके गंगाजीमें स्नान करनेपर उसी समय सब पाप दूर हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु वह फिर भी पाप कर सकता है। लेकिन पापी यदि किसी महापुरुषका सङ्ग या उनका ध्यान करता है तो वह महापुरुष कृपा करके उसे ज्ञान-गंगामें नहला देते हैं। जिस अज्ञानके वशमें होकर वह पाप करता था, उस अज्ञानको दूर कर देते हैं, उसकी पापप्रवृत्तिको सदाके लिये मिटा देते हैं। इसीलिये महापुरुषकी कृपासे नरकका कीड़ा भी स्वर्गके देवताके रूपमें परिणत हो जाता है।

प्र०—भगवान्‌का ध्यान न करके उनके भक्तका ध्यान करनेकी बात क्यों कही जाती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ०—भगवान्‌का ध्यान करनेसे जो फल होता है, भगवान्‌के असली भक्तका ध्यान करनेसे भी वही फल होता है, इसका यही कारण है कि असली भक्तमें और भगवान्‌में अभेद है। नित्य-निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करते-करते 'तद्भावसे भावित' होकर भक्त भगवान्‌के समान हो जाता है। इसीसे देवर्षि नारदजी-ने कहा है कि 'तन्मय होनेके कारण भक्तमें और भगवान्‌में अभेद है।' इसीलिये भक्तका ध्यान करनेमें भगवान्‌का ही ध्यान होता है। फिर साधु महापुरुषों-को तो हम अपनी आँखों देखते हैं इससे उनका ध्यान करना है भी सहज। भगवान्‌को हमने कभी देखा नहीं, इसलिये उनका ध्यान कठिन है। जिसको हमने कभी नहीं देखा उनका ध्यान कैसे कर सकते हैं? यदि कोई करे भी तो भगवान्‌का ध्यान आरम्भ करनेपर ठीक ध्यान हुआ कि नहीं यह समझनेका क्या उपाय है? तुमने अपने मनमें भगवान्‌के जिस रूपकी कल्पना की है, तुम उसीका ध्यान कर रहे हो। वह ध्यान भगवान्‌के ही रूपका ध्यान है या नहीं, इस बातका पता तो तुम्हें तभी लग सकेगा जब तुम भगवान्‌के असली रूपके साथ तुम्हारे ध्यान-के रूपका मिलान करोगे। और वह असली रूप तुमने कभी देखा नहीं, अतएव ध्यान ठीक हुआ कि नहीं यह जाननेका कोई उपाय नहीं है। परन्तु महापुरुष-को तुमने प्रत्यक्ष देखा है, उसकी पवित्र मूर्तिका ध्यान शुरू करते ही तुम यह जान सकते हो कि तुम्हारे चित्तमें उनका रूप ठीक-ठीक आ रहा है या नहीं? इसीसे महापुरुषका ध्यान करना सहज है। और महापुरुषकी कृपासे सहज ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

प्र०—अच्छा, जिसको कभी किसी साधु, भक्त, महापुरुषके दर्शन नहीं हुए, उसके लिये भी भगवान्‌के दर्शनका कोई सहज उपाय है?

उ०—हाँ, है। उसे दिन-रात भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। भगवान्‌का नाम लेते-लेते, नाम-के साथ ही उसके अर्थका चिन्तन करते-करते और रात-दिन 'नमो नमः' करते-करते यदि एक बार भी मनुष्य ठीक शुद्धभावसे भगवान्‌का नाम ले लेगा तो वह कृतकृत्य हो जायगा, सिद्ध हो जायगा और भगवद्दर्शन प्राप्त कर सकेगा। अतएव जो रात-दिन भगवान्‌का नामजप करता है वह महान् तपस्या करता है, वह प्राणायाम और ध्यानादि योग ही करता है। सदा भगवान्‌के नामका जप करना ही तो परम तपस्या है। हाँ, एक बात है, भगवान्‌का नामजप करना चाहिये सरलताके साथ—तन-मन-वचनसे।

प्र०—तन-मन-वचनसे नामजप करना किसको कहते हैं?

उ०—मुँहसे भगवान्‌का नाम लिया जाता है और मनमें विषयोंका चिन्तन चल रहा है, ऐसे नामजपसे पूर्ण फल नहीं मिलता। मनसे सम्भवतः नामजप होता हैं और हाथ विषय-कार्यमें लगे हैं, परन्तु उस कार्यमें भगवद्भाव नहीं है तो ऐसे नामजपसे भी पूर्ण फल नहीं होता; इसी तरह दिनभर मनमें विषयोंका चिन्तन चलता है और दो-चार मिनट भगवान्‌का नाम ले लिया जाता है, इससे भी पूरा फल नहीं मिलेगा। अतएव मुखसे नामजपके साथ-ही-साथ मनमें नामके अर्थका चिन्तन होना चाहिये, और यदि विषय-कार्य करने हों तो वे भी भगवद्भावसे करने चाहिये; इस प्रकार दिनभर भगवद्भावसे भावित रहना चाहिये। ठीक-ठीक नामजप यही है। इसीके साथ सदा 'नमो नमः' करना चाहिये, सदा भगवान्‌के प्रति आत्म-समर्पण करना चाहिये। 'हे करुणामय! मैं तुम्हारा हूँ, इसीलिये मेरी कहलानेवाली जो कुछ भी वस्तुएँ हैं, सभी तुम्हारी हैं। मेरे समस्त जन्मोंके जो कुछ भी कर्म हैं, सब तुम्हारे हैं, मैं दिनभर जो कुछ सोचता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या करता हूँ वह सब भी तुम्हारा ही है। इस प्रकार सदा-सर्वदा भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण करना चाहिये और समय मिलते ही जितना अधिक हो सके एक मनसे भगवान्‌का नामजप करना चाहिये। ऐसा नामजप ही तन-मन-वचनसे किया कहलाता है। यह एक परम तप है। यही प्राणायाम है। यही ध्यान है और यही योग है।'

प्र०—तन-मन-वचनसे भगवान्‌का नाम जपनेसे क्या फल होता है?

उ०—तन-मन-वचनसे एक बार भगवान्‌का नाम स्मरण करनेसे इतने पापोंका नाश हो जाता है कि जितने पाप मनुष्य कर ही नहीं सकता। अतएव तन-मन-वचनसे सदा-सर्वदा भगवान्‌का नाम लेनेपर मनुष्य परम पवित्र होकर पवित्रतम भगवान्‌के दर्शन प्राप्त करे तो इसमें सन्देह ही क्या है?

प्र०—भगवान्‌के तो शिव, राम आदि बहुतेरे नाम-रूप हैं, इनमेंसे किस नामका जप करनेसे शीघ्र फल होता है?

उ०—शिव, राम आदि सभी समान हैं, इनमें किसीका भी तन-मन-वचनसे नामजप करनेपर शीघ्र फल प्राप्त होगा।

प्र०—अच्छा, शिव और राम यदि समान हैं तो फिर क्यों शिवने रामकी पूजा की, और क्यों रामने ही शिवका पूजन किया?

उ०—ऐसा करनेमें विशेष कारण है, भगवान्‌की दया है। एक परब्रह्मने ही शिव और राम दो स्वरूप धारण किये हैं। अतएव जो शिव हैं वही राम हैं, और जो राम हैं वही शिव हैं। राम ही शिव सजकर आप ही अपनी पूजा करके राममय होकर रामकी पूजा किस तरह की जाती है इस बातकी जगत्‌को शिक्षा दे रहे हैं। इसी प्रकार शिव ही राम बनकर आप ही अपनी पूजा करके शिवमय होकर शिवकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये इस बातकी शिक्षा दे रहे हैं। भगवान् स्वयं पुजारी बनकर यदि अपनी पूजा जीवको न सिखाते तो जीव क्या कभी उनकी पूजा करना सीख सकता? रामने दुर्गाकी पूजा की, और दुर्गाने रामको पूजा। इसका भी यही तत्त्व है। शिव राममय हुए और राम शिवमय। इसका मर्म यही है कि यदि तुम शिव-पूजा करना चाहते हो तो तुम्हें रामकी भाँति शिवमय बन जाना पड़ेगा, नहीं तो ठीक-ठीक शिव-पूजा नहीं होगी। इसी प्रकार यदि तुम रामकी पूजा करना चाहते हो तो तुम्हें पहले शिवकी तरह राममय होना पड़ेगा, नहीं तो राम-पूजा ठीक-ठीक नहीं होगी। जीवको इस अमूल्य पूजाकी शिक्षा देनेके लिये ही करुणामय भगवान्‌ने शिव-रामादि भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण किये हैं। आहा! करुणामयकी कितनी करुणा है! वस्तुतः जो शिव हैं वही राम हैं। दोनों एक ही हैं; इनमें किसी प्रकार-का भेद मत समझो।

प्र०—शिव और रामके नाम भी अलग-अलग हैं, और रूप भी भिन्न-भिन्न हैं। इस हालतमें इन दोनोंको एक कैसे समझा जाय?

उ०—मान लो, मिट्टीकी एक पतैली है और एक मिट्टीका घड़ा है। पतैली और घड़ेके नाम भी भिन्न हैं, और रूप भी भिन्न हैं, परन्तु इन दोनोंके मूलमें एक ही वस्तु है। वह वस्तु है 'मिट्टी'। पतैली और घड़ा दोनोंके टूट जानेपर क्या होगा? इनके भिन्न-भिन्न नामरूप नहीं रहेंगे, पतैलीका पतैलीपना और घड़ेका घड़ापना नहीं रहेगा, वे दोनों ही एक मिट्टी हो जायँगे। इसी प्रकार शिव और रामके नाम और रूपको हटाकर देखो तो क्या बच रहता है। तुम शायद कहोगे कि 'कुछ भी नहीं रहता।' परन्तु ऐसी बात नहीं है। कुछ रहता है; वह 'कुछ' ही 'परमात्मा' है, वही बद्ध जीवपर दया करके भिन्न-भिन्न नामरूपोंको धारणकर शिव और रामके नामसे अभिहित होते हैं। इस परमात्म-तत्त्वको जिस दिन भलीभाँति जान लोगे उसी दिन तुम ठीक-ठीक समझ सकोगे कि शिव और राममें अभेद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरकाशीके स्वामी कैवल्याश्रम

(लेखक—स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती)

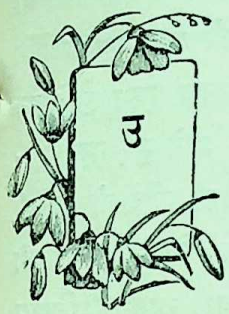

उत्तराखण्ड श्रीगङ्गाजीकी उस क्रीडा-स्थलीका शुभ नाम है जहाँ देवाधिदेव महादेव श्रीविश्वनाथकी महिमाका ज्वलन्त आभास दिखानेके लिये हिमाच्छादित पर्वतोंका परस्पर कलह हो रहा है—कोई पर्वत अपने उत्तान शृङ्गको चमका-चमकाकर कह रहा है कि मैं सबसे ऊँचा हूँ, कोई अपनी सघन वनमालापर फूला नहीं समाता, किसीको अपनी गुफाओं और कन्दराओंपर गर्व है, कोई अपने गुप्त स्थानोंपर प्रसन्न होकर विरक्त तपस्वियोंपर अभिमान कर रहा है, किसीको अपने गर्भमें छिपी हुई हीरा, सुवर्ण तथा अन्य खनिज पदार्थोंकी सुरक्षित खानोंका खयाल है, कोई अपनी छातीपर इतस्ततः निवास करनेवाली निर्धन भोली प्रजापर इतरा रहा है और कोई अपने दुर्लभ दृश्योंकी दुहाई मचा रहा है, तथा कोई अपने विकट मार्गों और सिंह, चीता आदि भयानक हिंस्र जीवोंका भय दिखा रहा है।

इस उत्तराखण्डके गढ़वाल राज्यमें एक अत्यन्त रमणीक स्थान है जिसको उत्तरकाशी कहा जाता है। उत्तरकाशी श्रीविश्वनाथकी छोटी-सी नगरी है। श्री-भागीरथी पतितपावनीका प्रवाह है। हिमालयका गर्भ है और शीतल जलवायुका अधिष्ठान है। यह स्थान अपनी महिमाके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है। साधु, महात्मा और एकान्तवासके अभिलाषी इस पुण्यतीर्थका महत्त्व भली प्रकार जानते हैं। यह स्थान विरक्त महात्माओंकी शान्त तपोभूमि है, अतएव इसको संसार उत्तराखण्डके तपस्वियोंका केन्द्र समझता है। यहाँ अनेक महात्माओंका निवास है और प्रत्येक महात्मामें कुछ-न-कुछ विशेषता और विलक्षणता है—कोई श्रुति-श्रवणमें तत्पर है, कोई मौनावलम्बनकर मनन कर रहा है, कोई उपेक्षा करता है तो कोई तितिक्षा करता है, किसीको सत्संगसे प्रेम है तो किसीको जनसमाजसे ही वैराग्य है, कोई योगाभ्यासमें लगा है तो कोई पठन-पाठनमें दत्तचित्त है। अस्तु।

स्वामी कैवल्याश्रम उत्तरकाशीके प्रसिद्ध प्राचीन महात्मा थे। आपमें वे सभी गुण थे जो किसी ब्रह्मनिष्ठ पुरुषमें होने चाहिये। गत मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीको आप असार संसारको त्यागकर सदैवके लिये अपना स्थान रिक्त कर गये हैं। आप उत्तरकाशीके साधुसमाजमें माननीय और पूजनीय समझे जाते थे। आप बालब्रह्मचारी और योगी थे। स्वामीजीके सदाचारकी उनके विरोधियोंपर भी धाक बैठी हुई थी। एक निर्भीक सत्यवक्ताके रूपमें आप साधुसमाजके नेता थे। वृद्ध होकर भी आप बालक-स्वभाव थे। ऐसे ज्ञाननिष्ठ महात्माके ब्रह्मलीन हो जानेसे उत्तरकाशीके साधुसमाजको बड़ा ही धक्का लगा है।

पंजाब प्रान्तके जालन्धर जिलेमें फराला नामक एक बड़ा ग्राम है। यह ग्राम तहसील नवाँशहरमें 'बंगा' के पास है, यही ग्राम स्वामीजी महाराजकी जन्मभूमि है। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पितामह पं० काहनचंदजी और पिता पं० रलियारामजी थे। सुना गया है कि आपके भाईका नाम पं० बाबूरामजी था। स्वामीजी छोटी अवस्थामें ही घरसे निकल आये थे और ब्रह्मचारी बनकर गङ्गा-तटपर विचरा करते थे। आप गङ्गाके किनारे-किनारे महात्माओंका दर्शन लाभ करते और विद्याध्ययन करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए श्रीजगन्नाथजीतक जा पहुँचे थे और वहाँसे रामेश्वरम् तथा अन्य तीर्थस्थानों और देवमन्दिरोंकी यात्रा करते हुए द्वारकाजी होकर हरिद्वार आ गये थे। उन दिनों स्वामी हीरादासजी अजातभिक्षु बड़े प्रसिद्ध महात्मा भी हरिद्वारमें पधारे हुए थे। ब्रह्मचारीजी उनकी सेवामें प्रायः जाया करते थे और उनके लोकोत्तर अनुभवोंसे लाभ उठाया करते थे।

एक दिन ब्रह्मचारीजीने अजातभिक्षुजीसे दीक्षाके सम्बन्धमें बात की तो भिक्षुजीने संन्यासीजीवनकी भयङ्कर कठिनाइयोंका दिग्दर्शन कराकर कहा कि आप अभी संन्यास-आश्रमका विचार मत करें। स्वामीजी बालकपनसे ही दृढ़ विश्वासी थे। आपने कहा—भगवन्! कुछ भी क्यों न हो, मैं संन्यासीजीवनका निश्चय कर चुका हूँ, मैं अपना निश्चय बदल नहीं सकता। कृपा करके आप मुझे अपनी शरणमें ले लें। आपकी अँगुली पकड़कर मैं भी भवसागरसे पार हो जाऊँगा।

अजातभिक्षुजीने आपादमस्तक एक गम्भीर दृष्टिसे ब्रह्मचारीजीको देखा और कहा कि पूर्वकाशीको चले जाओ और विज्ञानमठके स्वामी अनन्ताश्रमका सहारा लो। यह सुनकर भिक्षुजीका आशीर्वाद ले ब्रह्मचारीजी पूर्वकाशी पहुँचे और दण्डी स्वामी अनन्ताश्रमजीकी सेवामें रहने लगे। कालान्तरमें आप स्वामीजीके शिष्य हुए और दण्ड ग्रहण करके स्वामी कैवल्याश्रमके नामसे प्रख्यात हुए। काशीमें कुछ काल रहकर आपने गुरुसेवाद्वारा योग और वेदान्तके रहस्योंका अनुशीलन किया। एक दिन शान्त जलवायुकी खोजमें पूर्वकाशीको नमस्कार करके उत्तर दिशाको चल पड़े और मार्गमें दण्डके विषयमें अड़चन देखकर निश्चय कर लिया कि दण्डका विसर्जन कर देना ही श्रेयस्कर है। तदनुसार तिथि-वारकी अनुकूलता विचारकर दण्ड त्याग कर दिया गया। अब स्वामीजी त्यक्तदण्डी होकर उत्तराखण्डको चल पड़े। उन दिनों संवत् १९४८ का कुम्भका मेला था और हरिद्वारमें साधु-महात्माओंका खूब समारोह था। स्वामीजी भी कुम्भस्नानपर हरिद्वार पहुँच गये और महात्माओंके सदुपदेशोंसे लाभ उठाने लगे। जब कुम्भ हो चुका तो आप हृषीकेश आदि स्थानोंसे होते हुए गङ्गोत्तरीकी ओर चल पड़े। जब उत्तरकाशी पहुँचे तो यहाँकी स्थानिक सुन्दरता और शान्तिको देखकर स्वामीजी ऐसे मुग्ध हुए कि जीवनपर्यन्त यहीं रहना ही निश्चय कर लिया। तबसे लेकर मृत्युपर्यन्त आप यहीं रहे। कभी-कभी आप गङ्गोत्तरीतक घूमने चले जाया करते थे, परन्तु उत्तरकाशीसे नीचे नहीं उतरते थे। यदि कोई साधु नीचे देश जानेका विचार करता तो आप कहा करते थे कि—'बड़े भाग्यसे यहाँ आये हो, अब नीचे मत जाना।' इस प्रकार स्वामीजी ४३ वर्षसे लगातार उत्तरकाशीमें निवास करते थे।

स्वामी मुक्तिनाथजी वरुणासङ्गमपर ३० वर्षसे लगातार रहकर काशीवास कर रहे हैं। आप स्वामीजीके अनन्य कृपापात्र रहे हैं। एक दिन आपने माण्डूक्यकारिका शाङ्करभाष्यसहित मोटे अक्षरोंमें स्वहस्तलिखित तैयार करके स्वामीजी महाराजको भेंट की और कहा, 'स्वामीजी, कुछ परमार्थका उपदेश दीजिये।'

स्वामीजीने कहा—सुनो, मुक्तिनाथजी! गौड़पादने कहा है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

अर्थात् 'न किसीकी उत्पत्ति है, न किसीका निरोध है; न कोई बद्ध है और न कोई साधक है; न कोई मुमुक्षु ही है, न कोई मुक्त ही है। यही परमार्थता है।' इसीको वास्तविकता कहना चाहिये। मुक्तिनाथजी! यह बन्धन और मोक्ष तथा उत्पत्ति और विनाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पर सापेक्ष हैं और यह आप जानते ही हैं कि अपेक्षा द्वैत—दो वस्तुओंमें ही होती है, एक—अद्वैतमें कभी नहीं। अतः मेरी तो यही प्रार्थना है कि अद्वैतमें निष्ठा रक्खो—यही परमार्थ है।

स्वामीजी हठयोगके अच्छे जानकार थे, आप प्रायः कहा करते थे कि स्वामी रामतीर्थ और स्वामी सियाराम हमारे पास रहकर कुछ ले गये हैं।

स्वामीजी माण्डूक्यकारिकाके बड़े प्रशंसक थे। एक दिन मुझसे कहने लगे—नित्यानन्दजी! मैं वृद्ध हो गया हूँ, अब यह इच्छा है कि शाङ्करभाष्यसहित माण्डूक्योपनिषत्कारिका सुन लूँ। सौभाग्यसे तुम यहाँ आ गये हो—हमको कारिका सुना दो। मैंने कहा—भगवन्, यह ग्रन्थ तो आपने बीसों बार सुना और मनन किया है। किसी और ग्रन्थके विषयमें कहिये तो विचार करें। कहने लगे—यह ग्रन्थ अद्वैतवादका मूल आधार है—इसको जितना सुनो उतना ही निश्चय कराता है।

स्वामीजीके आग्रहसे कारिकाकी कथा होने लगी। वक्ता (लेखक) और श्रोताओंको बड़ा आश्चर्य होता था जब स्वामीजी प्रत्येक श्लोकको विचारपूर्वक सुनते और शङ्का उत्थापन करते थे। बीच-बीचमें विशेष-विशेष श्लोकोंपर विचारधारा सुनकर तो बहुत ही प्रसन्न होते और वक्ताको अनेक शुभ वचनोंसे स्मरण किया करते थे।

एक दिन रायबहादुर पं० कुलानन्दजी, रिटायर्ड एसिस्टैण्ट इञ्जिनीयर, स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। राय साहिब एक सात्त्विक ब्राह्मण हैं, चार-पाँच वर्षसे उत्तरकाशीमें निवास कर रहे हैं। आप ८५ वर्षके वृद्ध होते हुए भी स्वामीजीकी कुटियापर जाया करते रहे हैं। आपने स्वामीजीसे मन्त्रदीक्षा ली है और तन-मन-धनसे गुरु-सेवा करते आये हैं और आजकल भजन-पूजनपूर्वक काशीवास कर रहे हैं। राय साहिबने कहा—स्वामीजी, कोई उपदेश दीजिये, जिससे चित्त शान्त हो। स्वामीजीने कहा—राय साहिब, इस श्लोकको याद कर लो और इसके अर्थका चिन्तन किया करो। श्लोक यह है—

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा।
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः॥

अर्थात् न तो साकार है न निराकार है, न यह है न वह है, न संसारसे भिन्न ही है न अभिन्न ही है—वह तो केवल, खालिस है; वही शिव है। और अच्छी तरह समझना हो तो ऐसा समझ लो कि—

हरिरेव जगज्जगदेव हरि-
र्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरो भवसागरमुत्तरति॥

अर्थात् 'हरि ही जगत् है, जगत् ही हरि है, जगत्से या हरिसे शरीर भिन्न नहीं है।' जिस पुरुषका ऐसा निश्चय हो गया है वही परमार्थका रहस्य समझ सकता है और भवसागरको पार कर सकता है।

स्वामीजी स्वाध्यायके बड़े प्रेमी थे। आपके यहाँ आत्मपुराण, योगवासिष्ठ, गीता आदिकी बराबर कथा होती रहती थी। एक दिन लेखकने 'स्वाराज्यसिद्धि' की प्रशंसा कर दी तो इसी बातके पीछे पड़ गये और उसकी कथा सुननेपर आग्रह प्रकट किया। मैं उन दिनों इस दार्शनिक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद कर रहा था, परन्तु कार्य रोककर कथा सुनानी पड़ी।

तीन वर्ष हुए प्रसिद्ध योगी श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती जब अपनी गङ्गोत्तरीकी गुफाको प्रस्थान करने लगे तो स्वामीजीके दर्शनोंको पधारे। स्वामीजीने कहा—शिवानन्दजी, आप प्रतिष्ठित महात्मा हो, विचारशील विद्वान् भी हो, आपको देखकर मैं बड़ा प्रसन्न होता हूँ। आप-जैसे योग्य महात्माओंके निवासके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये ही उत्तराखण्ड है। आप निश्चिन्त होकर आराधना करें।

स्वामी शिवानन्दजीने कहा—सुनिये स्वामीजी! आप हमारे सबके पूजनीय हैं। आपके चरणचिह्नों-पर चलकर ही हमलोगोंका कल्याण होगा। परन्तु यह क्या बात है कि आजकल कुछ दण्डी साधु स्त्री रखने लगे हैं जिससे सभी साधुओंकी, विशेषतः दण्डियोंकी बड़ी निन्दा फैल रही है। आप इसका प्रतिकार क्यों नहीं करते?

स्वामीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया—भगवन्! आप यथार्थ कह रहे हैं। यहाँ अच्छे-अच्छे महात्मा हैं, दो-चारके दुराचारसे सारा उत्तराखण्ड दूषित नहीं कहा जा सकता। यहाँ ऐसे-ऐसे विद्वान्, विरक्त, जितेन्द्रिय और मर्यादारक्षक महात्मा निवास करते हैं जिनकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि एक मछली भी तालाबको गन्दा कर देती है। आप निराश मत हों, आप महानुभावोंके पुरुषार्थ और भगवान्‌की कृपासे उत्तराखण्डकी पवित्रता बराबर सुरक्षित रहेगी।

शिवानन्दजीने पूछा, 'स्वामीजी, स्त्री रखनेके विषयमें आपकी क्या सम्मति है—साधुको स्त्रीसम्बन्ध रखना उचित है कि नहीं?'

स्वामीजीने कहा, 'हमारी सम्मति कोई अलग अपने घरकी तो है नहीं। हाँ, जैसा शास्त्रका सिद्धान्त है—वही हमारी भी सम्मति है। आप जानते ही हैं कि विष्णुपुराणमें कहा है—

निःसङ्गता मुक्तिपदं यतीनां
सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः।
आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः
सङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धिः॥

अर्थात् 'साधुका कर्तव्य है कि सङ्गदोषसे परे रहे। निःसङ्गता मोक्षका सच्चा मार्ग है। सब दुष्ट व्यसनों और दोषोंका कारण 'सङ्ग' ही है। आरूढ़ योगी भी सङ्गदोषके कारण पतित हो जाते हैं—साधारण तपस्वियोंकी तो गिनती ही क्या है।' आप विचार करके देखें—विश्वामित्र और पराशर जैसे महर्षि भी सङ्गदोषसे ही पतित हुए। क्या भगवान्‌ने गीतामें जो कहा है—'सङ्गात्सञ्जायते कामः'—सो क्या व्यर्थ ही कहा है? और स्मृतियोंमें यह कथन किया है कि 'न पश्येल्लिखितामपि'—स्त्रीकी तसवीर भी मत देखो, सो क्या प्रलापमात्र है? नहीं-नहीं कदापि नहीं। शिवानन्दजी, मेरी तो सब साधु-महात्माओंसे हाथ जोड़कर यही प्रार्थना है कि स्त्रीका सङ्ग मत करना! यह मर्यादाका उल्लङ्घन है। ऐसा करना ठीक नहीं! याद रक्खो, 'अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः'—यह कथन स्त्री-पुरुषोंके स्वभावपर दीर्घ कालतक मनन करनेके पश्चात् ही निश्चित किया गया है।'

स्वामी शिवानन्दजी यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—स्वामीजी, आप-जैसा निर्भीक सत्यवक्ता महात्मा हमारा नेता रहे तो साधुसमाजका बड़ा हितसाधन हो।

स्वामीजी गतवर्ष चैत्र मासमें जब अर्धाङ्गसे बीमार हो गये तो वैद्यराज श्रीस्वामी प्रद्युम्नानन्द तीर्थजीके द्वारा चिकित्सा होने लगी। एक दिन वृद्ध वैद्य स्वामीजीने पूछा—स्वामीजी, शरीरका क्या हाल है?

स्वामीजी बोले—भगवन्, शरीरका क्या पूछते हो? जिसका नाम ही शरीर है—जिसका काम ही जीर्ण-शीर्ण होकर नष्ट होना है, उसका पूछना किस कामका! शरीरका खयाल करो तो शोक-मोह आ जाते हैं और आत्माका विचार करो तो शोक-मोह ठहर नहीं सकते। उपनिषद्‌में कहा है—

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यह आत्मा शरीरोंमें रहकर उनके सुख-दुःखसे सर्वथा पृथक् है, नाशवान् पदार्थोंसे सम्बन्ध रखता हुआ भी अविनाशी है, महान् शक्तिशाली है और व्यापक है—ऐसा जो जान लेता है और जान करके फिर धैर्यसे सुख-दुःखको सहन करता है उस पुरुषको शोक नहीं होता। शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्।

एक दिन स्वामीजीकी नाडी मन्द हो गयी, मालूम होता था कि कफके अत्यधिक होनेसे गला भी रुक गया है और हृदयपर आघात होना चाहता है। वैद्य स्वामीजीने समीप बैठकर देखा तो मालूम हुआ कि आप 'शिवोऽहम्' का जप कर रहे हैं।

पंजाबके स्वनामधन्य गोस्वामी गणेशदत्तजी श्रीस्वामीजीके श्रद्धालु प्रेमी हैं। आप जब गत वर्ष उत्तरकाशी पधारे तो स्वामीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। प्रसङ्गवश आप बोले—स्वामीजी, मुझको तो गीताका 'प्रवृत्तिमें निवृत्ति' वाला सिद्धान्त बहुत अच्छा लगता है। साधुलोग भी यदि ज्ञाननिष्ठा रखते हुए लोकोपकार करें तो बहुत अच्छा हो।

स्वामीजीने कहा—सुनिये गोस्वामीजी, प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों परस्पर विरोधी हैं। एकमें दूसरी न तो साधक होकर ही रह सकती है, न बाधक होकर। हाँ, यह ठीक है कि गीतामें निष्काम कर्मयोग-का साधनरूपमें वर्णन किया गया है जो कि सर्वथा मान्य ही है। आप-जैसे सम्भावित व्यक्ति यदि चित्तशुद्धिके लिये तथा लोकोपकारके लिये इस मार्गमें प्रवृत्त हों तो यह बहुत ही सौभाग्यकी बात है। बाकी, रहा साधुओंका लोकसंग्रहके निमित्त कर्ममार्गमें प्रवृत्त होना, सो यदि कोई व्यक्तिगत रूपसे चाहे तो प्रवृत्त हो सकता है। परन्तु उसको यह स्मरण रखना चाहिये कि—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

अर्थात् जो अन्तर्मुख होकर आत्मामें रमण करता हुआ अपने स्वरूपसे ही सन्तुष्ट है और उसीमें तृप्त है—ऐसे आत्मनिष्ठके लिये कोई भी कार्य कर्तव्यरूपसे नहीं है।

स्वामीजी यद्यपि दण्डी थे तथापि पन्थका दुराग्रह आपमें लेशमात्र भी नहीं था, आप सभी सम्प्रदायके साधुओंका सम्मान करते और समानरूपसे व्यवहार करते थे। उनकी कुटियामें निर्मला, दशनाम संन्यासी, उदासी, गरीबदासी आदि सभी विरक्त महात्मा स्थान पाते थे।

स्वामीजीमें एक और विशेषता थी—आप वृद्ध होकर भी बालकस्वभाव थे। एक दिन एक महात्माने कहा—स्वामीजी, अब तो आप वृद्ध हो गये हैं, अब तो बालकपन छोड़ें!

आपने कहा—वाह, बालक और वृद्धका तो एक ही स्वभाव होता है। और देखो, उपनिषद्में लिखा है कि 'पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्'—अर्थात् ज्ञानी होकर बालक बन जाओ।

स्वामीजी कोई बात अपने दिलमें नहीं रखते थे। आप पहले ही कह देते थे कि हमारे साथ सोच-समझकर बात करना। एक दिन राय साहिबने कहीं किसीसे कह दिया कि हमारे स्वामीजीका स्वभाव हलका है। स्वामीजीको यह बात मालूम हो गयी, स्वामीजीने कहा—नित्यानन्दजी, राय साहिबको समझा देना कि तूँबा हलका होता है—हलकी वस्तु पानीमें नहीं डूबती, भवसागरसे तरनेके लिये 'हलका' होना परमावश्यक है।

हृषीकेशमें स्थित बाबा काली कमलीवाले क्षेत्रके अधिष्ठाता श्रीमान् बाबा मानीरामजी स्वामीजीके बड़े श्रद्धालु हैं। आपको जब मालूम हुआ कि स्वामीजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्धाङ्गसे पीडित हैं तो आपने ओषधि, अनुपान, वस्त्र, नौकर आदिका पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया और स्वयं उत्तरकाशी पधारे। एक दिन जब खराब हालत देखी तो बाबाजीने कहा—स्वामीजी, यहाँ इस रोगकी चिकित्साके साधन नहीं हो सकते, आप मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करें तो मैं आपको देहरादून वा हृषीकेश ले चलनेका प्रबन्ध करूँ ! वहाँ डाक्टरों और हकीमोंकी भी सलाह ली जा सकती है।

स्वामीजीने कहा—बाबाजी, आपका प्रेम सराहनीय है। आप इस शरीरकी चिन्ता न करें और देखें। मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि मुझसे उत्तरकाशी मत छुड़ाओ। शरीरका कुछ पता नहीं, आप आग्रह न करें।

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

हम ओषधि नहीं खाना चाहते, परन्तु ये लोग मानते नहीं। अब इतनी तो अवश्य कृपा करें कि उत्तरकाशीसे न ले जावें।

और भी कई महात्माओंने कहा कि नीचे चले जाइये परन्तु स्वामीजीने अपना विचार न बदला और अन्तकालतक यहीं रहे।

स्वामीजी महाराजसे संन्यासकी दीक्षा दो व्यक्तियोंको ही प्राप्त हुई है—एक स्वामी शिवारण्यजी, दूसरे स्वामी पूर्णाश्रमजीको। स्वामी पूर्णाश्रमजी विरक्त महात्मा हैं। आप प्रायः बद्रीनारायणकी तरफ़ विचरते हैं। स्वामी शिवारण्यजी लगातार सोलह-सतरह वर्षोंसे स्वामीजीकी सेवामें रहे हैं और सच तो यह है कि स्वयं वृद्ध और रोगी होते हुए भी जिस उत्साह, जिस श्रद्धा और जिस भक्तिसे आपने गत दस मासमें गुरुसेवा की है वह बहुत ही कम देखनेमें आयी है।

भगवान् कृपा करें कि जैसी आत्मनिष्ठा और निर्भीक सत्यवादिता स्वामी कैवल्याश्रमजीने अपने जीवनकालमें दिखायी है प्रत्येक साधु उसको धारण करे और अपने तथा लोगोंके सच्चे कल्याणका कारण बने।

प्रार्थना

(लेखक—महात्मा जयगौरीशङ्कर सीतारामजी)

झुकै मस्तक कमल-चरणों पै बृन्दाबन बिहारीके।
दनुज-कुल-नाशकारीके, मदनमोहन मुरारीके॥
तुम्हीं बासी हो मन मन्दिरके मेरे लूटते निसिदिन।
बली लोभादि रणनायक जो माया नृत्यकारीके॥
इन्हैं कर दूर दीजै नाथ! भक्ती अपने चरणोंकी।
पुनः हम नेत्र भर देखैं छटा यह चक्रधारीके॥
अधर पै रखके मुरली टेरते हो ज्ञान गीताका।
खड़े छहियाँ कदमकी कूल यमुना तापहारीके।
निकट राधे जगत-जननी खड़ी हों और सन्मुख मैं।
खड़ा 'कवलबास' कर जोरे मदन-छबि-रूप-हारीके॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक या रूहानी जीवनका तत्त्व क्या है ?

(लेखक—आर० आर० खन्ना, रजिस्ट्रार, लखनऊ यूनिवर्सिटी)

यह जीवन मानवसमाज तथा ईश्वरके साथ परस्पर सम्बद्ध है। अथवा यों कहिये कि आत्मा और परमात्माका नित्य सम्बन्ध है। वास्तविक धार्मिक जीवन अथवा आध्यात्मिक जीवन ईश्वरीय सत्ताको पहलेसे ही मानता है। उसे तर्कद्वारा सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं होती। वास्तविक आध्यात्मिक जीवनके जिज्ञासुओंको ईश्वरसत्तापर लेशमात्र भी सन्देह नहीं होता। उनकी उत्कट अभिलाषा तथा उनका निरन्तर परिश्रम ईश्वरके अधिकाधिक निकट जानेके लिये ही होता है। उनके जीवनका लक्ष्य ईश्वरत्वमें लीन होना अर्थात् ईश्वरीय जीवनसे संयुक्त होना होता है, जिसके फलस्वरूप चिरस्थायी परमशान्ति, आनन्द तथा मुक्ति होती है। वे अन्य व्यक्तियोंको भी उसी मार्गपर प्रेरित करते हैं।

बहुतेरे ऐसे मनुष्य भी हैं जिनके पास या तो समय ही नहीं है या उनका ध्यान धार्मिक जीवन बितानेकी ओर नहीं होता। वे दुनियावी जीवन, सांसारिक पदार्थ और धन, एवं शक्ति तथा मान-प्रतिष्ठामें ही सन्तुष्ट रहते हैं। उनकी शक्तियाँ विद्या और धनके उपार्जित करनेमें ही लगी रहती हैं, क्योंकि वे आशा करते हैं कि इससे उनको सुख और शान्ति मिल सकेगी। कुछ मनुष्य धनके अतिरिक्त मान और सामाजिक प्रतिष्ठा चाहते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो दूसरोंपर शासन करनेके लिये अधिकारके इच्छुक हैं। और वे इस अधिकारमें ही अपना महत्त्व समझते हैं। यही लोग हैं जो अपने लिये जीवित रहते हैं और सांसारिक जीवनमें डूबे रहते हैं। ये लोग धार्मिक जीवनको व्यर्थ समझते हैं। कुछ लोग तो साफ़-साफ़ कहते हैं कि धर्म धोखा या जाल है और इस जालमें चतुर मनुष्य भोले-भाले मनुष्योंको फँसाते हैं। उनके विचारमें अवतार, पैगम्बर, साधु-सन्तका जीवन—जो प्रेम, विश्वास, और सेवासे परिपूर्ण है—केवल कहानी अथवा कल्पनामात्र है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनका कार्य ऊपरसे देखनेमें धनोपार्जन दीखता है परन्तु जो हृदयसे ईश्वरनिष्ठ हैं। पर उनकी ईश्वरनिष्ठाका ज्ञान उनके घनिष्ठ मित्रोंको भी नहीं रहता। उनके विचारसे अपने अन्तःकरणको लोगोंकी दृष्टिसे बचाना उत्तम है। वे ईश्वरकी पूजा और उसका ध्यान एकान्तमें करते हैं। वे अपने कार्य-को आरम्भ करनेके पहले उसकी सफलताके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं। दिनमें काममें लगे रहने की हालतमें भी और सन्ध्याको फिर उसका ध्यान करते हैं। साधारण पुरुष उनका बाहरी जीवन तथा व्यवहार देखकर आश्चर्यान्वित होता है कि इनके जीवनमें कुछ धार्मिकता भी है? परन्तु उनके कार्य, सहानुभूति, दयालुता आदि उनकी वास्तविक स्थितिको स्वयं प्रकट कर देते हैं।

साधारण व्यक्ति दो प्रकारके स्वभाववाले मनुष्यों-को एक साथ रहते देखता है—(१) वह जो दुनियावी चीज़ोंको समेटना चाहता है—(२) वह जो उसके अपने पास जो कुछ है उसीमें सन्तोष करता है। इसी प्रकार उस साधारण व्यक्तिको यह पता नहीं कि साथ-साथ रहनेवाले मनुष्योंमें एक तो ईश्वरकी सत्ता और अस्तित्वको मानता है और दूसरा नहीं मानता, वास्तवमें इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

हममेंसे बहुतोंने यह अनुभव किया होगा कि जब कोई मर जाता है तब एक मुसीबत-सी आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है और वह हमको विवश कर देती है। जैसे भूकम्पमें हमारे कमज़ोर नींवके मकान गिर जाते हैं तब हमें अपनी निःसारता और निर्बलताका परिचय मिलता है और तब हमें यह कथन ठीक ज्ञात होता है—

हर शाख़पर है बाग़में सय्यादकी निगाह।
मतलब यह कि, कहीं न मेरा आशियां रहे॥

अर्थात् उस शिकारी (ईश्वर) की दृष्टि हर डालपर है, उसका भाव यह है कि मेरा घोंसला उसके अतिरिक्त और कहीं न हो।

हम सब जानते हैं कि उन अवसरोंपर जब कि हमें मृत्यु, पीड़ा, क्षुधा आदिका सामना पड़ता है, सिवा ईश्वरके और कोई रक्षा नहीं कर सकता। पक्का नास्तिक भी जो समृद्धिमें बहुत दृढ़ताके साथ कहता है कि मैं ईश्वरमें विश्वास नहीं करता, ऐसा समय उपस्थित होनेपर प्रकटरूपमें या छिपे तौरसे अपने दिलमें 'हे ईश्वर!' 'हे ईश्वर!' ही पुकारता है। तब वह सजग होकर कहता है कि क्या कोई शक्ति है जो मुझे इस समय मृत्यु, पीड़ा, या रोगसे बचा सके? ऐसा हो तो वह मेरी मदद करे।

दयानिधि प्रेममय परमपिता उन आँसुओंपर जो एकान्तमें व्याकुल होकर बहाये गये हैं, रहम खाता है और दया करता है। पीड़ित पुरुषकी पीड़ा दूर हो जाती है और उसे नवीन जीवन तथा शक्ति मिलती है। भगवान् बुद्धको एक ही लाशने उनके राजसी जीवनसे हटाकर धार्मिक जीवनमें परिवर्तित कर दिया। इसी प्रकार कुछ आत्माओंको थोड़ा-सा ही धक्का उनकी जागृतिके लिये काफी होता है। परन्तु मेरे जैसे मनुष्य सच्ची प्रार्थना करनेसे कठिन समयके निकल जानेपर उसको भूल जाते हैं और उससे मिलनेवाली शिक्षाओंकी ओर ध्यानतक नहीं देते। उनको ईश्वरमें फिर अविश्वास आरम्भ हो जाता है। उन्नत आत्माएँ एक बार अपनी बेबसी देखकर ईश्वरसे चिरस्थायी नाता जोड़नेका उद्योग करती हैं। हमारे जीवनमें अनेकों घटनायें होनेपर भी हम सचेत नहीं होते, इसीसे हम पूछते हैं कि क्या जगत्को बनानेवाला कोई है? क्या उसकी सत्ता तर्कसे सिद्ध की जा सकती है? हम इसकी क्यों चिन्ता करें? यथार्थमें हमें और भी अधिक ठोकर खानेकी आवश्यकता है। यह उसकी दया है कि वह जल्दी-जल्दी ठोकरें खानेसे बचाता है, क्योंकि दयालु पिता अपने बालकों को दुखी नहीं देख सकता। परन्तु हम बिना धक्का खाये सजग नहीं होते। ईश्वरके न माननेवालोंसे मेरे कुछ प्रश्न हैं। उनके मुझे उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे केवल अपने उत्तरोंका विचार अपने हृदयमें करके देखें कि उनमें ईश्वरकी सत्ताका प्रभाव है या नहीं। (१—क) क्या यह सम्भव है कि ब्रह्माण्ड जिसमें सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी आदि नियमानुसार नित्य अपना-अपना कार्य करते हैं, बिना किसी सञ्चालन या नियन्त्रणके स्थित हैं? ख—क्या विज्ञानके नियम यह नहीं बताते कि इन नियमोंको बनाने तथा चलानेवाली कोई बड़ी शक्ति है? क्या विज्ञान स्वयं प्रकृतिके नियम बनाता है? अथवा वह उन नियमोंको केवल खोज निकालता है? संसार-के विज्ञानी लोग प्रकृतिके नियम बनानेका दावा नहीं करते, वे किसी महान् शक्तिद्वारा बनाये हुये नियमों-को केवल खोज निकालते हैं।

(२)—क्या रसायनशास्त्र प्राणिशास्त्र आदि के अस्तित्वको केवल इसलिये न मानना उचित है कि हमने उपर्युक्त विषयोंको नहीं पढ़ा है?

(३)—क्या नास्तिक मनुष्योंने ईश्वरकी अच्छी तरह खोज की है? और खोज करनेपर भी उसे नहीं पाया है? क्या वे लोग उन लोगोंकी आज्ञानुसार चले हैं जो उसे जानते हैं?

मेरी प्रार्थना है कि इन प्रश्नोंपर वे विचार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान समयमें तर्कपर (जिससे भले बुरेकी पहचान हो सके) बहुत जोर दिया जाता है, परन्तु हर चीज़की एक सीमा होती है। तर्कशक्ति भी सीमित ही है। मनुष्यकी दृष्टि लाल किरणके बादका और नीली किरणके पहलेका भाग नहीं देख सकती, परन्तु यन्त्र इनके देखनेमें समर्थ है। मनुष्यके कान एक हदतक सुन सकते हैं। बिना तारके तार (Wireless) से ज्ञात होता है कि इस हदके अतिरिक्त भी सुननेका साधन है। इसी प्रकार तर्ककी भी सीमा है। प्रेमके मन्दिरमें तर्कके लिये स्थान नहीं, इसीसे प्रेम अन्धा कहा जाता है। इसी कारण यह आश्चर्यकी बात नहीं कि तर्क विश्वासको नहीं समझ सकता।

तर्कका आधार बड़ा निर्बल है। चार मनुष्य जिनमें तर्कशक्ति अधिक नहीं बढ़ी है शान्तिसे विवाद करते हैं; परन्तु दूसरे बेचारे जिनमें शरीरशक्ति बढ़ी हुई है, थोड़ी देर बाद लड़ने लगेंगे। हर एक अपनेको ठीक बताता है, इनमेंसे हम किसे ठीक मानें। इसी कारण हमें अपना घर ऐसी कमजोर नींवपर नहीं उठाना चाहिये।

उन सज्जनोंसे, जिन्होंने अभी धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं किया है, मेरी प्रार्थना है कि वे ईश्वर की सत्ताको मान लें, और यह विश्वास कर लें कि वह हमारे अति निकट है। वह सर्वशक्तिमान् है, और वह हम सबसे प्रेम करता है। पिता पुत्रसे प्रेम करता है, यह साधारण बात है। हममेंसे हर एकको नित्य किसी-न-किसी कठिनाईका सामना करना पड़ता है और जो बोझ हमारे ऊपर आता है वह हमें असह्य ज्ञात होता है। अतएव हमलोगोंको अपने पितासे या स्वामीसे प्रार्थना करनी चाहिये। और ऐसा विश्वास करके करनी चाहिये कि वह हमारे सम्मुख मनुष्यवेषमें उपस्थित होकर हमारी प्रार्थना सुन रहा है। साथ ही यह भी विश्वास हो कि वह सर्वशक्तिमान् है, प्रेमसे परिपूर्ण है, और हम जब चाहें तभी हमारी सहायता करनेके लिये प्रस्तुत है।

एक शक्तिशाली मनुष्यसे भी सब मित्रता करना चाहते हैं, फिर ईश्वरकी सहायताके बिना तो कोई कार्य ही नहीं हो सकता। हमें अपनी दशाको देखकर तो ईश्वरके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये, क्योंकि बहुत-से हमारे ही जैसे जीव हमसे कहीं अधिक गिरी हुई दशामें हैं। यदि हमारी कर्मेन्द्रियों या ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे एक भी अपना कार्य करना छोड़ दे तो उस समय हमें उसका मूल्य ज्ञात होता है। हमें सच्चे दिलसे उसका कृतज्ञ होना चाहिये कि उसने हमें सब शक्तियाँ दी हैं। हमें नित्य-प्रति कार्य करनेके पहले उससे प्रार्थना करनी चाहिये। कार्यमें सफलता केवल सच्चे हृदयकी आराधनासे प्राप्त होती है। मुझे प्रतीत हुआ है कि जब-जब मैंने सच्चे हृदयसे ईश्वरकी सहायता चाही है तब-ही-तब प्रत्येक अवसरपर मैंने उसे पाया है। आप भी इसकी परीक्षा कीजिये और सफल होइये। यदि आप यह रास्ता अख़्तियार करें तो आप अवश्य सफलीभूत होंगे। मुश्किल काम भी आपके लिये आसान बन जायँगे, परन्तु यदि सफलता न हो तो किसी उपयुक्त अनुभवी पात्रसे बात कीजिये। आपको वह अवश्य सहायता करेगा और उचित मार्ग बतायेगा।

ईश्वरप्रार्थनामें किसी ख़ास भाषाकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भगवान् सब भाषाएँ जानते हैं। सच्चे मनसे और शान्तचित्तसे प्रार्थना करनेपर अवश्य सुनायी होगी। ईश्वर सर्वव्यापक है। आप अपना धर्म पालन कीजिये, ईश्वरके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन कीजिये। वह प्रत्येकको और प्रत्येक समय मिल सकता है। जिस धर्म अथवा मतके आप मानने वाले हैं, उसी मतके सिद्धान्तोंको आप सच्चे हृदय और श्रद्धासे मानते रहिये; परन्तु याद रखिये कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको उस धर्मके मूल सिद्धान्तोंसे विचलित नहीं होना है। फिर किसीको अपना धर्म बदलनेकी आवश्यकता नहीं है।

यहाँ मैं किसी वास्तविक पुरुष या स्त्रीके हृदयका वर्णन करता हूँ। मेरा अनुभव है कि अविश्वासी पुरुष दुनियामें सबसे अधिक कमजोर होता है। वह सहमा हुआ रहता है और अपनी परेशानियोंको बढ़ाता है, तथा सदा दुखी रहता है। उसके बाहरी बनाव, चुनाव या बहादुरीकी बातोंपर विश्वास मत कीजिये। उसकी परीक्षा उस समय होती है जब उसके जीवनमें कोई बड़ी घटना घटती है, और जब वह उसके प्रभावको सह नहीं सकता। उसकी गति उस जहाज़के सदृश होती है जो बिना लंगर डाले ही ख़तरनाक तूफ़ानका मुक़ाबिला करने जा रहा है। उस समय उसकी तर्कशक्ति काम नहीं देती, वह उस समय स्वार्थी मित्रोंकी भाँति आपत्ति पड़नेपर साथ न देकर उससे अलग हो जाती है। जब उसका कोई प्रिय मर जाता है तब वह तर्कका आश्रय लेता है, परन्तु उस समय उससे वह सहायता नहीं पाता। क्या हृदयको मस्तिष्कसे सहायता मिल सकती है? इसके विरुद्ध आस्तिक या विश्वासी पुरुषको ईश्वराराधना करनेसे शान्ति मिलती है। उसका दुखी हृदय ईश्वरके चरणोंमें नत होता है और प्रेम तथा दयाकी याचना करता है। उसे अन्दरूनी सहायता मिलती है और फिर वह नयी शक्तिसे उस आपत्तिका सामना करता है।

वास्तविक धार्मिक जीवन मनुष्य तथा ईश्वरका पारस्परिक सम्बन्ध है। उसे किसी नामसे पुकारिये, किसी प्रकारसे उनकी पूजा कीजिये। अपना हृदय किसी भाषामें किसी समय उसके सामने खोलकर रखिये। वह सच्ची प्रार्थना अवश्य सुनेगा। यह सम्बन्ध विश्वासपर ही निर्भर है। हम देखते हैं कि सूर्य, चाँद, पृथ्वी, हवा, जल आदि सभी प्राकृतिक पदार्थ हमारे लिये हैं। इसी प्रकार ईश्वर भी हम सबका है। वह किसी एक मतका नहीं हो सकता। वह उनका भी है जो उसे नहीं खोजते। वह उनसे भी प्रेम करता है जो उसे नहीं चाहते। पिता अपने बच्चोंको, चाहे वे दुष्ट ही क्यों न हों या आज्ञाकारी न हों तो भी, अवश्य प्रेम करता है। वह सबको प्रसन्न देखना चाहता है। और चाहता है कि सब उसके प्रेमपात्र बनें। जो उसका प्रेमी और प्रेमपात्र है उसका मुख सर्वदा उज्ज्वल और प्रसन्नतासे चमकता रहता है।

यही मेरे स्वामी प्रभु श्रीस्वामी भोलानाथजीका सन्देश है जिनके प्रेम-प्रभावने मेरे जीवनको बदल दिया है, जिनके ऋणसे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।

ईश-वन्दना

गज जो करे तो कर वसुदेवजूको मुझे, रज जो करे तो कर वृन्दावन-थानकी।
डारी जो करे तो कर कलित कदम्बनकी, सारी जो करे तो कर द्रुपद-सुतानकी॥ १॥
सारिका करे तो कर मंजु मधु काननकी, तारिका करे तो कर राधा-अँखियानकी।
भ्रुकुटि करे तो कर गोपिनके लोचनकी, लुकुटि करे तो कर गोविंदके पानकी॥ २॥

जगदीश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलदेव पखावजी

(लेखक—श्रीगोपीवल्लभजी कटिहा)

(१)

श्रीबलदेव पखावजीका जन्म बरेलीके मोहल्ला ब्राह्मण-पुरीमें हुआ था। इनका पखावज बजानेमें बड़ा नाम था। यह हर साल रजवाड़ोंसे दो तीन हजार रुपये अपने कला-चातुर्यसे ले आते थे और उसीसे जीवन-निर्वाह होता था।

इनका अधिक समय भगवान्‌के भजन-पूजनमें ही व्यतीत होता था। रुपया जमा करना यह पाप समझते थे। दान, पुण्य, तीर्थ, व्रत और साधुसेवामें यह अपनी सब आय खर्च कर देते थे। सूरदासके पद गाते समय तो यह प्रेमकी मूर्ति बन जाते थे। दर्शक भी इनके स्नेहसने गीतोंको सुनकर बेसुध हो जाते थे।

बिना कृष्णके इन्हें एक पग चलना भी कठिन था। इनके छातेमें आँखोंके सामने कृष्णभगवान्‌की तसवीर लगी हुई थी—यह उसी तसवीरमें अपने प्रभुकी छबि निहारते चलते थे। श्रीबलदेवजी बड़े सरल, सीधे, प्रेमी और उदार भक्त थे। पर इनमें एक दोष था, वह था अपने गुणपर अभिमान। यह समझते थे कि उनके जोड़का पखावजी और गायनशास्त्रका जाननेवाला संसारमें कोई नहीं है। बात ऐसी ही थी! यह जहाँ भी गये इन्हें अपने टक्करका पखावजी कोई न मिला। इनके बजानेमें जादू था, चमत्कार था। पशु-पक्षी भी इनके वाद्यसे मोहित हो जाते थे, फिर मनुष्योंका तो कहना ही क्या? यह बड़े हँसमुख थे। बात-बातमें हास्यधाराएँ उनके प्रसन्न वदनसे स्रावित होने लगती थीं।

(२)

भगवान् अपने भक्तका अभिमान नहीं रखते। श्रीबलदेवजी खुदागंज गये हुए थे। गायकोंका जमघट था। दर्शक एकके ऊपर एक गिर रहे थे। बहुत-से गायनाचार्योंको बलदेवजीने बात-की-बातमें तालसे अलग कर दिया। जब गायक तालसे अलग हो जाते थे तो यह हुँकारकर उनको गानेसे रोक देते थे। विजयगर्वसे बलदेवजीका मुख खिला हुआ था।

अब खिलाड़ीबाबाने (एक बड़े महात्मा तथा योगी थे) गाना प्रारम्भ किया। बलदेवजीने बहुत चालें चलीं, पर बाबा टस-से-मस न हुए। दो एक चीजें गानेके बाद बाबाने ऐसा गीत प्रारम्भ किया कि बलदेवजी बजाना भूल गये। इनका मुँह फक् पड़ गया! यह इनकी हारका पहला अवसर था। बलदेवजीको तब तो और भी लज्जा मालूम हुई जब एक साधारण-से व्यक्तिने उसी गीतपर ठीक-ठीक पखावज बजायी। बाबाने कहा—बलदेव! अभिमान अच्छा नहीं होता। बलदेवजी बाबाके चरणोंपर गिर पड़े। तबसे बलदेवजीका अभिमान जाता रहा।

(३)

उन दिनों न अधिक गरमी थी, न सरदी। बलदेवजीने अपनी स्त्रीसे कहा, 'आज जल्दी भोजनसे निबट जाना, आज हमारी यात्रा है।'

स्त्रीने पूछा—'कैसी यात्रा?'

पखावजी—'उस लोककी।'

स्त्री—'ऐसी हँसी मुझे अच्छी नहीं लगती।'

पखावजी—'हँसी नहीं, सच्ची बात है।'

बलदेवजी मसखरे प्रसिद्ध थे। इनकी स्त्रीने कुछ ध्यान न दिया। बलदेवजीने घर-घर जाकर मुहल्लेमें अपनी महायात्राका सन्देश सुनाया, पर किसीने विश्वास न किया। दोपहरका समय था, बलदेवजीने अपनी स्त्रीसे घर लीपनेको कहा।

स्त्रीने पूछा—'क्यों?'

बलदेवजी—'अब समय निकट आ गया है।' तबतक मुहल्लेके कई व्यक्ति इनके घर इनके मरनेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाँग देखनेको एकत्रित हो गये थे । स्त्रीने जब न लीपा तब बलदेवजीने स्वयं स्थानको गोबरसे लीपा— उसपर कुशासन बिछाया । तुलसी और गङ्गाजल अपने मुखमें डाला और उस स्थानपर दक्षिणको पैर करके लेट गये । उनकी स्त्री उनके इस कृत्यपर बहुत झुँझलायी, पर इन्होंने कुछ ध्यान न दिया । मुहल्लेके आदमी खड़े हँस रहे थे । तत्पश्चात् इन्होंने भगवान्‌की मूर्ति अपने वक्षःस्थलपर रक्खी और एक रेशमी चद्दर ओढ़कर लेट गये । कुछ देर तो सब लोग इनको देखकर हँसते रहे, फिर इन्हें आवाज दी । पर बलदेवजीने कोई उत्तर न दिया । एकने इनका मुख उघाड़कर देखा तो उस समय बलदेवजी भगवान्‌के निकट पहुँच चुके थे । सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । भक्तोंके कार्य बड़े आश्चर्यजनक होते हैं । उस समय बलदेवजीकी आयु लगभग ५० या ५५ वर्षकी थी । इनको शरीरत्याग किये हुए ३० सालके लगभग हो गये ।

प्रेमयोगाञ्जलि

मधुर सुधामय किरण विभूषित पूर्णचन्द्र लोचन अभिराम ।
देख, तरङ्गित औ उद्वेलित होता समुद समुद्र ललाम ॥ १ ॥
अरुणोदय होते ही दिनमणि की कोमल किरणें स्वच्छन्द ।
ले निज अन्तस्तलमें, होती रुचिर सरोजराजि सानन्द ॥ २ ॥
नयनमनोज्ञ सजल जलदोंके दर्शनसे सुख पाते मोर ।
युगल पक्ष फैलाकर नर्तन करते हो आनन्दविभोर ॥ ३ ॥
चारु चन्द्रकी चञ्चल किरणोंका कुमोदिनी करके स्पर्श ।
अल्प सरोवरमें खिल उठती, करने लगती नृत्य सहर्ष ॥ ४ ॥
मधुर सुरभि मकरन्द प्रपूरित पद्मावली जहाँ रमणीय ।
ऐसे मानस सरका सेवन करता सदा हंस कमनीय ॥ ५ ॥
मधुऋतु आगमसे जब होता मञ्जुमञ्जरीयुक्त रसाल ।
पञ्चमस्वर अलापिका कोकिल भी आ जाती है तत्काल ॥ ६ ॥
करते रहते समयप्रतीक्षा वनवासी दोनों ही धीर ।
चातक सीप तृप्त होते हैं पीते जब स्वातीका नीर ॥ ७ ॥
मधुकर, विकच कमल-मधु पीकर, करता मन्द-मन्द गुञ्जार ।
निज प्रिय करसंपुटमें अर्पण कर देता जीवन निःसार ॥ ८ ॥
सरस मनोहर और कर्णप्रिय सुनकर वीणाका कलनाद ।
परवश हो अचिन्त्य बन्धनमें पड़ता हरिण स्वयं साह्लाद ॥ ९ ॥
अति उज्ज्वल आलोक प्रपूरित दीपशिखापर मुग्ध पतङ्ग ।
स्वाभाविक रुचिसे करता है अवश समर्पित अपने अङ्ग ॥ १० ॥
कभी नहीं रह सकता जीवित उत्तम फणी शिरोमणिहीन ।
विना नीरके कभी नहीं कर सकती जीवन धारण मीन ॥ ११ ॥
रजनीनायकपर चकोरकी होती ही है शुचि अनुरक्ति ।
और दिवसमें चक्रयुग्मकी दर्शनीय है अनुपम भक्ति ॥ १२ ॥
ललित प्रकृतिसौन्दर्य देखकर मनुज स्वत्व क्यों जाता भूल ।
निश्चय और सत्य-शिव-सुन्दर प्रेमयोग इन सबका मूल ॥ १३ ॥

विनायकराव भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी दासी है या रानी ?

धा रानी थी, दासी नहीं। राधा देहसे रानी, हृदयसे रानी, मानमें रानी, ज्ञानमें रानी, और आनन्दमें रानी थी; राधा व्रजकी अधीश्वरी थी। परन्तु श्रीमती राधाको रानी होनेके लिये क्या श्रीकृष्णके साथ प्रतिद्वन्द्विता करके श्रीकृष्णके हाथोंसे यह अधिकार छीनकर अपने देहके क्षेत्रमें लानेके लिये कोई चेष्टा करनी पड़ी थी ? राधा तो स्वाधीन थी, नहीं तो रानी कैसे बनती ? वह तो स्वाधीनभर्तृका थी। परन्तु उसकी स्वाधीनताका अर्थ क्या देहके राज्यमें पुरुषके साथ समान अधिकार पाना था ? क्या श्रीकृष्णकी भाँति मथुरा जाकर ऐश्वर्यके सिंहासनपर आरोहण करना था ? क्या मथुराके कालेजमें पण्डिता या विदुषी होकर मथुराके हावभावोंसे मथुराके आचरणसे श्रीकृष्णकी प्रेयसी बननेकी चेष्टा करना था ? क्या मथुराकी विलाससामग्रियोंसे शरीरको सजाकर मथुराके राजमार्गमें चाँदनी फैलाते हुए मथुरावासिनी बनना था ? नहीं ! राधारानी तो व्रजकी ही रानी थी, व्रजको छोड़कर बाहर वह एक पैंड भी नहीं गयी। व्रजमें वह श्रीकृष्णके विरहमें देह त्याग करनेमें भी प्रसन्न थी, परन्तु मथुरा जाकर मथुरानाथकी बायीं ओर बैठकर, मथुरामें समान ऐश्वर्यकी अधिकारिणी होकर नारीधर्मकी हत्या करना उसे कभी मंजूर न था। वह जानती थी—'मैं व्रजकी अधिष्ठात्री देवी हूँ, मैं यदि व्रजको छोड़कर चली जाऊँगी तो फिर यह व्रज व्रज नहीं रह जायगा; श्रीकृष्ण यदि कभी आना भी चाहेंगे तो फिर उनका यहाँ आना नहीं होगा। व्रज ही तो श्रीकृष्णका धाम है; मौतको मेहमान बनाकर भी मुझे उनके धामको बचाना पड़ेगा।' व्रजमें ही राधा अच्युता रानी है; वह वनकी भी रानी है और मनकी भी। मथुरामें मन तो है परन्तु वन नहीं है, इसीलिये तो राधा वृन्दावनको नहीं छोड़ सकती। जहाँ मन और वनका एकत्र राज्य है, वहीं राधाका राज्य है, वहीं श्रीकृष्ण दरबानी करते हैं। परन्तु राधाका यह रानी होना और श्रीकृष्णका दरबानी करना क्या राधाकी शारीरिक शक्तिके, राधाके पाण्डित्यके, या मनुष्य होनेके नाते स्त्री-पुरुषके समान अधिकारके विचारपर थोड़े ही अवलम्बित था ? राधा रानी हुई थी त्यागके पथसे—मरणके पथसे। अपनी इन्द्रियोंकी समस्त प्रीति-इच्छा श्रीकृष्णकी प्रीतिमें निर्वाण कर डालनेकी सफल चेष्टासे ! राधाने आत्मरक्षा करनेकी चेष्टा करके आत्मरक्षा नहीं की। राधाने आत्मसमर्पणके द्वारा आत्माको खोजा और पाया था। राधा मरकर बची थी, और मथुराकी शिक्षा-सभ्यताका प्रवर्तक कंस बचना चाहते हुए मर गया था। राधाने स्वयं मरण-साधनाको सिर चढ़ाकर व्रजको मृत्युहीन राज्यमें परिणत कर दिया, परन्तु कंस स्वयं बचनेकी चेष्टा करता हुआ ही मथुराको मृत्युसरिताके मँझधारमें छोड़ चला। मरणको वरण करके उसे सुखा देनेकी शक्ति राधामें थी, इसीसे राधा रानी थी, राधा व्रजेश्वरी थी। व्रज-गोपियोंने श्रीकृष्णकेसाथ जो मथुरा जाना चाहा था वह भी राधाको मरण-दशासे बचानेके लिये ही, मथुरा नगरीमें श्रीकृष्णके दरबानोंकी झिड़कियाँ खानेके लिये ही चाहा था, मथुरामें जाकर कुब्जा बननेके लिये नहीं। राधा रानीके सङ्गी मथुरा क्यों जाने लगे ? सत्य कृष्ण, पूर्ण कृष्ण, प्रेममय श्रीकृष्ण तो 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'। श्रीकृष्णको व्रज छोड़कर एक पैर भी कहीं न जानेमें कोई प्रलोभन था तो वह राजाके भावसे रहित सहज सरल स्वक्षेत्रमें—इस व्रजकी धूलिमें श्रीमतीको पानेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही था। श्रीव्रजगोपीगण व्रज छोड़कर जा सकती हैं श्रीकृष्णको व्रजमें लौटानेके लिये, मथुरामें बन्दी हुए कृष्णचन्द्रको छुड़ानेके लिये और ऐसा करते हुए मथुराके कृष्ण-दरवानोंके हाथों बेंत खानेके लिये! आरामके लिये व्रजगोपियाँ कभी भूलकर भी व्रज छोड़कर मथुरा नहीं जा सकतीं। मथुरामें हृदय नहीं है; वहाँ है काम, वहाँ है इन्द्रियप्रीति।

× × × ×

परन्तु आज उसी राधाकी जाति यह क्या करने लगी है? वे आज रानी न होकर दासी बननेके लिये ही व्याकुल हैं। स्वाधीनभर्तृका होनेके लालचमें आज वे धीरे-धीरे दासीत्वको ही ग्रहण कर रही हैं, यह बात वे अभी नहीं समझ सकी हैं। इसीसे आज भारतीय नारी चाहती है धन कमानेमें स्वाधीन होना, स्वतन्त्र होकर वोटका अधिकार पाना, स्वाधीनताके साथ नारीजातिको जगाना! इस अर्थोपार्जनके पथमें वह नौकरानी ही बन रही है। जो शरीर पवित्र सेवाके लिये ही था, उसे आज सेवाव्रतसे वञ्चितकर दूसरोंकी प्रयोजनसिद्धिके कार्यमें नियुक्त किया जा रहा है (घरकी स्वतन्त्रता छोड़कर आफिसकी परतन्त्र नौकरीमें यही तो हो रहा है)। 'नारीका पवित्र स्वाधीन शरीर जगत्में किसीके स्वार्थसाधनका यन्त्र नहीं हो सकता।' यह बात क्या व्रजेश्वरी राधाकी जातिमें जन्म लेनेवाली हिन्दू ललनाएँ भूल गयीं? नारी आज स्वाधीन होने जाकर स्वाधीनताके साथ स्वाधीनताके पथको त्यागकर पुरुषकी भाँति गुलामी करनेके लिये मानो पागल हो उठी है। नारी आज ऐश्वर्यके सहयोगकी कामनासे कौंसिलकी मेम्बर, म्युनिसिपैलिटीकी सदस्या, अदालतोंमें वकील, बैरिष्टर, जज, और स्कूल-कालेजोंमें मास्टर-प्रोफेसर बननेके लिये अत्यन्त व्यग्र है। हाय! हाय! माँ! क्या तुम भी पवित्र व्रजधामको छोड़ चली? तुम भी क्या मथुरा पहुँचकर कुब्जा बनोगी। फिर व्रजका क्या होगा? गाँवोंका क्या होगा? घरका क्या होगा? गाँवोंकी वृक्ष-बेलों, गावोंके नदी-तालाबों और गाँवोंके पशु-पक्षियोंकी क्या दशा होगी? गाँव ही—घर ही तो नारीका नित्य आसन है। उस आसनको ही छोड़ दोगी तो फिर तुम्हारे पास रह ही क्या जायगा? फिर खराट् कृष्ण जिस दिन भारतको लौट आना चाहेंगे, उस दिन वे कहाँ आवेंगे? आकर कहाँ रहेंगे? तुम्हारा तुमपना और श्रीकृष्णका कृष्णपना तो व्रजमें ही सम्भव है। तुम्हारे माधुर्यका आस्वादन तो ऐश्वर्यके राज्य इन शहरोंके हृदयपर हो ही नहीं सकता। तुम जो स्वाधीनभर्तृका होने चली हो, वह तो व्रजमें ही—गाँवमें ही हो सकोगी। चरण पकड़वानेकी सम्भावना तो व्रजमें ही है। शहरमें जाकर पैर पुजवाना चाहोगी तो वह तो कामका पथ होगा, प्रेमका नहीं। और यह नारीहरण, नारी-निर्यातन जो हो रहा है सो कामके ही पथपर हो रहा है। हा दुर्दैव! आज राधारानीकी जाति इस मोहपूर्ण नारीजागरणके पथपर चलकर नारीनिर्यातनकी धाराको और भी पुष्ट बनानेके लिये प्राणपणसे लग गयी है। आज वह व्रजतत्त्वको पददलितकर मथुराकी उपासना करनेमें लग गयी है। आज वह व्रजत्यागकी व्यथाको भूलकर (घर-घरकी—गाँवोंकी दशाको भूलकर) कृष्ण-के (पुरुषोंके) साथ मथुराकी (बाजारकी—शहरकी) निवासिनी होनेको निकल पड़ी है। हा, आज वह उन्मादिनी व्रजकी राधा नहीं है।

× × × ×

व्रजगोपियोंने कृष्णको खोकर एक बार फिर कुरु-क्षेत्रमें उन्हें पाया था, परन्तु उनको वह मिलनानन्द नहीं प्राप्त हुआ जो यमुनापुलिनपर व्रजमें हुआ था। बात भी यही है, व्रजको छोड़कर उन कृष्णको पानेकी और कहीं जगह ही नहीं है। उन्हें पाना है तो याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खो, वे व्रजमें ही मिलेंगे, गाँवके—घरके सरल प्रेममें ही उनकी प्राप्ति होगी। कुरुक्षेत्रमें तो उनके पानेमें बहुत बड़ा 'व्यवधान' है। वहाँ वृक्ष-लता, नद-नदी और पशु-पक्षीका साथ कहाँ मिलता है? वहाँके पानेमें 'अंग-अंगके लिये रो रहा मेरा प्रति अँग-अंग' इस भावकी सिद्धि कहाँ है? सब अङ्गोंका रुदन निवृत्त करना हो तो वह व्रजधाममें ही होगा। आज नारीकूल व्रजधामको तोड़कर चला है मथुरामें बसने! मथुरामें भी नारी हैं और रहेंगी; परन्तु वहाँ नारीकी सार्थकता नहीं है, वहाँ नारीके 'स्वाधीनभर्तृका' होनेकी कोई सम्भावना नहीं है; वहाँ नारी है पुरुषोंके हाथकी कठपुतली, वहाँ नारी है कौंसिलकी मेम्बर, वहाँ है कोर्टकी वकील, बारिष्टर और जज, अथवा है स्कूल-कालेजकी मास्टर-प्रोफेसर! वह पैर पुजवानेका सरल सहज प्रेमयोगका मार्ग नहीं है, वहाँ तो कामके द्वारा पैर पुजवानेकी चेष्टा चलती है। श्रीकृष्ण व्रजधाम छोड़ गये, इससे राधा पगली हो गयी, मरणासन्न हो गयी, सारी प्रकृतिके विनाशका सामान जुट गया, सखियोंने व्याकुल होकर राधाको बचानेके लिये जाना चाहा मथुराके राजमार्गकी ओर, ऐश्वर्यके दरवाजेपर दरवानोंकी झिड़कियाँ खाने और लाञ्छित होनेको; उद्देश्य था कि किसी प्रकार व्रजेश्वर व्रजमें लौट आवें। परन्तु राधाने व्रजका त्याग नहीं किया! एक दिन वह था, और एक आज है! आज गाँवोंको छोड़कर पुरुषोंका दल धधकती हुई आगमें पड़कर जल मरनेवाले पतङ्गोंकी भाँति शहरोंकी आगमें भुन जानेको दौड़ रहा है, परन्तु एक भी राधा पगली नहीं होती! पथ-घाट, राह-घर, गौ-बछड़े और पशु-पक्षियोंकी बात तो दूर रही, गाँवके व्यथित, क्षुधित, अन्न और वस्त्रहीन नर-नारियोंके क्रन्दनकी मूर्ति बनकर एक नारी भी तो मरणको वरण नहीं करती। कहाँ तो वह स्थिति कि गाँवकी क्रन्दनध्वनिको थमानेके लिये पुरुषगण शहर छोड़कर फिर गाँवमें जाते, और कहाँ आज गाँवोंकी नारियाँ ही पुरुषोंका आदर्श सामने रखकर अपने घर, अपने स्वाधीनताके क्षेत्र, अपने 'स्वाधीनभर्तृका' होनेके एकमात्र स्थान, और सहज सरल प्रकृतिके देहसे प्राप्त विलास-वस्तुओंसे सुसज्जित होनेके उपयुक्त क्षेत्र पवित्र गाँवोंको त्यागकर छद्म और कृत्रिमतापूर्ण, विविध कलङ्क-कलुषित शहरोंकी छातीपर कुब्जा-सङ्गिनी बननेके लिये पागल हो रही हैं। अरी राधे, राधे! एक बार तुम्हारा वह करुण क्रन्दन गाँवोंके हृदय, गाँवोंके आकाश-वायु, गाँवोंकी जल-वायु और गाँवोंके पेड़-पत्तोंके हृदयको भेदकर फिर शहरोंपर आक्रमण करे, तुम्हारी मरणदशा शहरको व्याकुल कर डाले, तुम्हारी क्रन्दनध्वनि गाँवोंके श्मशान-रूपको मिटाकर फिर वहाँ व्रजकी शोभा फैला दे!

ओ नारी! ओ सती माता, सती स्त्री, सती बहिन, सती कन्या! तुम्हारी स्वतन्त्रताका क्षेत्र गाँव—घर है। उसे छोड़कर कहाँ चली हो कामके राज्य बाजार—शहरकी ओर? पुरुषोंके स्थान-त्यागमें कोई बुराई नहीं थी, बुराई नहीं होती यदि तुम अपने स्थानको स्वयं ही अपने पैरोंसे दलित न करती। क्या भूल गयी 'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते'? तुम ही तो घर हो, तुम्हीं तो स्वरूपसे गाँव हो। इसीलिये तो प्रकृति शब्दका अर्थ प्रजा, नारी, वृक्ष-लता और नद-नदी किया गया है। उन वृक्ष-लता और नद-नदीके क्षेत्रको छोड़कर इस अन्दरसे गन्दे लुभावने कृत्रिम सजे बाजारमें क्या तुम अपनेको पहचान सकोगी? पा सकोगी? स्वाधीन कर सकोगी? नारीकी स्वाधीनताको भूलसे व्यभिचारकी अपावन पंक्तिमें न बैठाओ! उसे उच्छृङ्खलताके साथ शामिल मत करो। नारी मूर्तिमती शृङ्खला है। नारी मूर्तिमती गृहस्थाली है। आज जो देशमें किसी प्रतिष्ठानकी सुप्रतिष्ठा नहीं होती इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण यही है कि नारी गृहस्थालीको भूल रही है, उसकी थाली आज थाली है। तेल, नमक, सभी कुछ बाजारसे आता है। नारी जबतक इस बाजारकी छातीपर पदाघात कर घरमें स्वाधीन नहीं होगी तबतक उसके चरण कभी पूजित नहीं होंगे। ओ माँ! तुम्हारे श्रीचरण तभी बाबा भोलानाथके वक्षःस्थलपर स्थान पायेंगे, जब वे समस्त ऐश्वर्य, समस्त विलासिता और समस्त नागरिकताके दर्पको चूर्ण कर डालेंगे। नहीं तो सिर्फ जबर्दस्ती करके या बुद्धिका कौशल दिखाकर नारी कभी 'स्वाधीनभर्तृका' नहीं बन सकती। हृदयके द्वारा नहीं जानेपर तुम पुरुषके क्षेत्रमें—संग्राममें पुरुषसे नहीं जीत सकोगी। इस व्यर्थ संग्रामका परित्याग करो। उन्मादिनी राधारानीके जीवनकी सब दिशाओंपर विचार करो और उसके प्रिय व्रजधामको दृढ़तासे पकड़े रहो—उसके आत्म-समर्पण-व्रतको जीवनका व्रत समझो और उसकी योगिनी मूर्तिके अनुगत होकर अपनी स्थितिपर विचार करो। फिर देखो! 'देहि मे पदपल्लवमुदारम्' पुकारती हुई पुरुषजाति तुम्हारी शरण आती है या नहीं? पुरुषका प्रेम तो तुम्हारे ही आश्रित है। ऐश्वर्यका गौरव कहाँ है? ईश्वरोंको प्रेमकी भूख बुझानेके लिये तुम्हारे पास आना ही पड़ेगा! तुम यदि पुरुषके समस्त अङ्गोंकी क्षुधा वास्तविक प्राणखाद्य लेकर दूर करना जानती तो पुरुषकी क्या मजाल थी कि वह तुम्हारी ओरसे तनिक भी लापरवाह होता? तुम हृदयके द्वारा पुरुषोंपर आक्रमण करो, इससे तुम धन्य होओगी, पुरुष भी धन्य होंगे, नर-नारीके मिलनसे प्रेमानन्दका समुद्र लहरा उठेगा। तुम आज चल रही हो उलटे मार्गपर, यहाँ आग धधक रही है, तुम जल मरोगी! पुरुष तो मरणासन्न बैठा ही है। तुम्हारा युगोंका राधाका सजाया हुआ ग्राम्यसंसार—यह सोने-का घर जलकर खाक हो जायगा। क्यों तुम इस व्यवसायके देश शहरमें आकर देने-पावनेकी बातोंमें, आदान-प्रदान करनेवाले नीरस व्यवसायियोंके बीचमें पड़ती हो? जो प्रदान जानती थी, आदान नहीं; जो समर्पण जानती थी, ग्रहण नहीं; जो मरना जानती थी, बचना नहीं; और इसी मार्गपर चलकर जिसने अपनी स्वाधीनताको स्वाधीनताकी शेष सीमातक पहुँचाकर उसका उपभोग किया था। दृष्टान्तके लिये राधाके चरणोंमें कृष्ण और कालीके चरणोंतले शिव मौजूद हैं। आज वही क्यों अपने इस पवित्र मार्गको परित्यागकर आत्मघात करने चली है? ओ माँ! अब भी लौट चलो, अब भी व्रजका सब कुछ तुम्हारे चरणोंके स्पर्शसे नवजीवन प्राप्त करनेके लिये प्राणमात्र लिये बैठा है। घर ही तुम्हारी देह है, घर मर गया तो नारी मर गयी। घरकी अधिष्ठात्री देवी, ओ नारियो! तुम अपने योग्य स्थानपर जाकर रानी होकर बैठो। पुरुष तो गुलाम है, स्वाधीन तो तुम्हीं हो। तुम्हारा शरीर सेवाके सिवा कभी तुच्छ आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिये काममें नहीं लिया गया। फिर आज तुम क्यों गुलाम बनोगी? पैसेके लिये या मानके लिये?

जननि! व्रजधाम यदि पुनः प्रतिष्ठित हो गया, तो व्रजमें नारीके चरणोंमें विश्वका सकल ऐश्वर्य, सकल वीर्य, समस्त यश, समस्त श्री, समस्त ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य घन हो उठेगा। भारतका सच्चा स्वरूप व्रज ही है। व्रज माधुर्यकी खान है, समस्त आकुलता-व्याकुलता वहाँ जाकर समाप्त हो जाती है। व्रजमें तुम रानी हो, पुरुष दरवान है। आज उस दरवानके शासनाधीन शहरमें आकर क्यों तुम अपनी रानीमूर्तिको त्यागकर दरवानकी कठपुतली बनना चाहती हो? क्यों तुम नौकरकी स्त्री नौकरानी बनने जा रही हो? ओ रानी! भारतके प्राणस्वरूप ग्राम्यरानी, अपनी अन्नपूर्णामूर्तिसे, अपने राजराजेश्वरीस्वरूपसे गाँवमें निर्मल प्रकाश फैलाकर अपने घरमें विराजो! घरमें यदि तुम्हारी गर्वभरी मूर्ति अचल होकर विराज जायगी, यदि भारतका अन्तःपुर वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभासम्पन्न हो जायगा तो देखोगी, पुरुषदल तुम्हारे चरणोंमें लोटेगा। अपनी प्रतिष्ठा चाहती हो? मा! पहले घरमें प्रतिष्ठित होओ, गाँवकी देवी बनकर बैठो; पहले पुरुषको ग्रामकी कुञ्जमें प्रेमदीक्षासे दीक्षित करो, फिर देखोगी पुरुष तुम्हारा ऋण उतारनेके लिये, बाहरके कर्मक्षेत्रमें तुम्हारे नाम और रूपकी मादकतासे पागल होकर घरके साँचेमें बाहरको भी ढाल देनेके लिये नदियाके पगले निमाई बन जायँगे। इससे बढ़कर तुम और क्या चाहती हो? तुम अपनी बात क्यों कहने लगी? वह क्या अच्छी लगेगी? उसमें तो कामगन्ध होगी। तुम अपनी मरण-साधनासे भारतके गाँवोंके मरणको मिटा दो, तुम्हारा नाम-यशगान करनेके लिये पुरुषोंका दल अवश्य ही बंसरी हाथोंमें ले लेगा। स्वामीके मुखसे स्त्रीकी प्रशंसा, पुत्रके मुँहसे माँकी प्रशंसा, भाईके मुँहसे बहिनकी प्रशंसा, पिताके मुखसे कन्याकी प्रशंसा और शहरके मुखसे गाँवकी प्रशंसा सुनकर स्त्री, माता, बहिन, कन्या और गाँवको कितना अपार आनन्द होगा? भारतकी स्त्रियोंने अपने मुँहसे अपने यशका ढोल कभी नहीं पीटा। तुम्हीं तो भागवतमें और वेदान्तमें अपने नामको छिपाकर स्वप्रकाशसे प्रकाशित हो रही हो। फिर, आज क्यों शहरके प्रकाशक्षेत्रमें प्रकाशित होनेके लिये पुरुषके सामने प्रतिद्वन्द्विनी बनकर खड़ी हो? ओ राधे! ओ राधारानीकी जाति! हमें अपने चरणोंकी शरण दो, एक बार भारतको पुनः व्रजधाम बना दो! वन्दे राधाराज्ञीम्।

('उज्ज्वल भारत')

आत्म-विचार

(लेखक—श्रीसूर्यभानुजी जैन)

आँखोंको काटकर हाथपर रख दिया जाय तो वे देख नहीं सकतीं। कानोंको काटकर फेंक दिया जाय तो वे भी नहीं सुन सकते। यह सब क्यों? आत्मासे भिन्न हैं, यों। आत्मा अरूपी है और रूपवाले सब पदार्थ आत्मासे भिन्न हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे भी वह सूक्ष्म है।

× × ×

सुनो, आत्माकी क़ीमत। धनको क़ीमती समझनेवाले भी यह जानते हैं कि यदि वे किसी अंगसे दूषित हैं तो उनका धन व्यर्थ है। धनसे अंग-प्रत्यंगोंकी बहुमूल्यताका वे अनुभव करते हैं। परन्तु वे अंग-प्रत्यंग भी जिसके बिना निस्सार हैं उसकी क़ीमतका भी अनुभव करो। विनाशी शरीरके लिये चौबीस घण्टा परिश्रम करते हो तो उसके लिये भी, जो अनन्त कालका साथी है, घड़ी-दो-घड़ी यत्न करो। या सम्पूर्ण कर्म उसके अर्पण करो।

× × ×

जैसे आजीविकाके लिये व्यापारादि विभिन्न साधनोंमेंसे किसी एकको चुनते हो वैसे ही शान्तिके लिये—कल्याणके लिये किसी भी सम्प्रदायको चुनो। भगवान्‌के किसी भी नामको चुनो। या जैसे बाप-दादोंके धन्धेको आजीविकाके लिये पकड़ते हो वैसे ही सुखके लिये बाप-दादोंके धर्मपर दृढ़ रहो। पर जैसे व्यापारी बनकर नौकरीका विरोध नहीं करते उसी तरह हिन्दू बनकर बौद्धोंका विरोध मत करो, शैव बनकर वैष्णवका विरोध मत करो। क्योंकि—

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

बस, इत्यलम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधिनिष्ठ

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो
जागर्ति को वा सदसद्विवेकी।

श्यामा—हे बहिन ! जब शिष्यने यह प्रश्न किया कि सुखसे कौन सोता है, तब पूज्यपाद भाष्यकारने यह उत्तर दिया कि समाधिनिष्ठ सुखसे सोता है। और जब शिष्यने यह प्रश्न किया कि जागता कौन है, तो पूज्यपादने यह उत्तर दिया कि सत् और असत्का विवेकी जागता है। मैं तुमसे यह पूछना चाहती हूँ कि समाधिनिष्ठ और सत्-असत्का विवेकी दोनों एक ही हैं अथवा भिन्न-भिन्न हैं ? यदि दोनों एक ही हैं, तो दो शब्दोंके कहनेकी क्या आवश्यकता थी—एक ही कह देनेसे काम चल सकता था ? दो शब्द कहे हैं, इससे यह प्रतीत होता है कि दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

कोकिला—नहीं बहिन, ऐसा नहीं है। समाधिनिष्ठ और सत्-असत्का विवेकी दोनों एक ही हैं। जो समाधिनिष्ठ है वही सत्-असत्का विवेकी है, और जो सत्-असत्का विवेकी है वही समाधिनिष्ठ है। यानी शब्द दो हैं, परन्तु दोनों शब्दोंका अर्थ एक है। सम बुद्धिवालेका नाम समाधिनिष्ठ है, यानी जिसकी बुद्धि सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वोंमें समान रहती है, विषम नहीं होती, उसका नाम समाधिनिष्ठ है। जिसको सत्-असत्का विवेक है, अर्थात् जो ब्रह्मरूप आत्मा सत् है और जगत्रूप अनात्मा असत् है—ऐसा जानता है, उसका नाम सत्-असत्का विवेकी है। सत्-असत्के विवेक बिना समबुद्धि नहीं होती और समबुद्धि हुए बिना सत्-असत्का विवेक नहीं होता, इसलिये समाधिनिष्ठ और सत्-असत्का विवेकी दोनों एक ही हैं।

हे बहिन ! जैसे लौकिक विद्यामें पुनरुक्ति करना—एक ही बातको बार-बार कहना दूषण है, इस प्रकार ब्रह्मविद्यामें नहीं है। प्रत्युत ब्रह्मविद्यामें पुनरुक्ति भूषण है। इसलिये भाष्यकारने दो शब्द कहे हैं। जैसे योगी और ज्ञानी दोनों एक ही हैं—जो ज्ञानी है वह योगी है, और जो योगी है वही ज्ञानी है। योगकी परिभाषामें ज्ञानीको योगी कहते हैं और वेदान्तकी परिभाषामें योगीको ज्ञानी कहते हैं। हैं दोनों एक ही। इसी प्रकार योगकी परिभाषामें सत् और असत्के विवेकीको समाधिनिष्ठ कहते हैं। और वेदान्तकी परिभाषामें समाधिनिष्ठको सत्-असत्का विवेकी कहते हैं। हैं दोनों एक ही।

श्यामा—हे बहिन ! समाधिस्थ पुरुष तो इन्द्रिय और मनके उपराम होनेसे ठूँठ-सा बैठा रहता है, कुछ व्यापार नहीं करता। क्या सत्-असत्का विवेकी भी ऐसे ही बैठा रहता है ? यदि ऐसा ही है तब तो समाधिस्थ और सत्-असत्का विवेकी एक हुए। और यदि सत्-असत्का विवेकी कुछ व्यापार करता है तो वह समाधिस्थ नहीं हुआ।

कोकिला—हे बहिन ! समाधिस्थ और समाधिनिष्ठमें भेद है, समाधिस्थकी समाधि ध्यानकी होती है, और समाधिनिष्ठकी समाधि ज्ञानसे होती है। ध्यानकी समाधिवाला भले ही कुछ व्यापार न करे, परन्तु ज्ञानकी समाधिवाला समाधिमें होते हुए भी सारे व्यापार कर सकता है। इसलिये उसे ठूँठ-से बैठे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसकी मौज है—वह चाहे तो ठूँठ-सा बनकर बैठ जाय, चाहे तो व्यापार करे; उसके लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सत्-असत्का विवेकी भी ऐसा ही कर सकता है। इसलिये दोनों एक ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे बहिन ! दो शब्द अलग-अलग कहनेसे भाष्यकारका यही अभिप्राय है कि योगशास्त्रवाले समाधिनिष्ठको सत्-असत्के विवेकीसे भिन्न न समझ लें और वेदान्तवाले समाधिनिष्ठ सत्-असत्के विवेकीको समाधिनिष्ठसे भिन्न न समझ लें। जैसे ब्रह्मके प्रतिपादक बहुत-से शब्दोंसे मुमुक्षुकी बुद्धिका विकास होता है, इसी प्रकार ब्रह्मनिष्ठको अनेक शब्दोंसे कहनेसे मुमुक्षुकी बुद्धिका विकास होता है। विकसित बुद्धिवाला ब्रह्मकी और आत्माकी एकताको शीघ्र ही समझ लेता है, इसलिये पुनरुक्ति दूषण नहीं है।

हे बहिन ! गीतामें भगवान्के वचन हैं कि सांख्य और योगको अविद्वान् अलग-अलग जानते हैं, और पण्डित नहीं जानते। वे एक ही जानते हैं। एकका भली प्रकार सम्पादन करनेवाला दोनोंके फलको प्राप्त होता है। जो तत्त्व सांख्यवालोंको प्राप्त होता है वही योगियोंको प्राप्त होता है। जो सांख्य और योगको एक जानता है, वही यथार्थ जानता है। यहाँ योगका अर्थ कर्मयोग न लेकर योग ही लिया जाय तो भगवान्के इन वचनोंके अनुसार यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधिद्वारा जो तत्त्वका साक्षात्कार करता है वह समाधिनिष्ठ कहाता है। और जो विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और तत्-त्वं-पदार्थके शोधनद्वारा तत्त्वका साक्षात्कार करता है, उसको वेदवेत्ता सत्-असत्का विवेकी कहते हैं। जैसे कोई तो दिल्लीसे रेवाड़ी, बाँदीकुई, और फुलेरा होकर अजमेर पहुँचता है और कोई सीधा रिवाड़ीसे फुलेरा होकर अजमेर पहुँच जाता है, दोनों पहुँचते एक ही स्थानपर हैं। इसी प्रकार समाधिनिष्ठ और सत्-असत्का विवेकी दोनों एक ही ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार करते हैं। इसलिये दोनों एक ही हैं, भिन्न नहीं हैं।

श्यामा—हे बहिन ! तेरी समझानेकी शैली बहुत ही अच्छी है, तेरे समझानेसे मैं समझ गयी कि दोनोंका स्वरूप एक ही है। फिर भी तेरे मधुर और मनोरञ्जक वचनोंको सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती, यही जी चाहता है कि सुना ही करूँ। जैसे वेदमन्त्रोंको भगवत्का स्वरूप वर्णन करनेमें आलस्य नहीं है, इसी प्रकार तेरे मन और वाणी भी जनार्दनका तत्त्व वर्णन करनेमें आलस्य नहीं करते। इसलिये हे बहिन ! कोई ऐसा रोचक दृष्टान्त सुना कि जिससे मन्दबुद्धिवालोंकी समझमें भी इन दोनोंका स्वरूप दृढ़ होकर बैठ जाय।

कोकिला—(प्रसन्न होकर) हे बहिन ! एक कम सौ वर्षकी एक बुढ़िया थी। शिष्ट पुरुषोंका कथन है कि चटोरी एक घर खोती है, और बतोरी दो घर खोती है। भगवान्की पूरी इस बुढ़ियामें यह दोनों थे और तीसरा दोष यह था कि कोई अच्छे-से-अच्छा काम भी करे, उसमें भी यह कुछ-न-कुछ दोष निकाल ही देती थी। चुपकी तो कभी बैठती ही न थी। पहले यह पुण्यबलसे स्वर्गमें पहुँच गयी थी, परन्तु इसी दोषके कारण स्वर्गसे मृत्युलोकमें पटक दी गयी। जिस सुखका कोई प्राणी एक बार अनुभव कर लेता है, उसको वह भूलता नहीं है; बेचारी स्वर्गके नन्दनवन, कल्पवृक्ष, कामधेनु आदि दिव्य पदार्थोंकी याद किया करती और रोया करती। परन्तु स्वभाववश बतोड़पना नहीं छोड़ती थी। एक बार जब यह बहुत रोयी तो भगवान्की प्रेरणासे देवर्षि नारदजी आकर उससे इस प्रकार कहने लगे—

नारद—हे कल्याणी ! यदि तू बतोड़पना और दूसरेके काममें दोष निकालना, इन दोनों दोषोंको छोड़नेकी प्रतिज्ञा कर ले तो मैं तुझे अपने साथ स्वर्गमें ले जा सकता हूँ। यदि तूने वहाँ जाकर भी किसी वस्तुमें दोष निकाला, तो वहाँसे फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाल दी जायगी और फिर वहाँ कभी न जा सकेगी। यदि इस बातपर राजी हो तो अभी मेरे साथ चल।

हे बहिन! बुढ़िया राजी हो गयी और नारदजीके साथ स्वर्गमें जा पहुँची। जीवका स्वभाव बड़ी कठिनाईसे बदलता है, वह बहुत कालतक चुपकी रही। एक दिन उसने देखा कि एक गाड़ी जा रही है। गाड़ीके पीछे बैल जुता हुआ है। बैलके पीछे गाड़ीवाला है जो बैलोंको हाँक रहा है और गाड़ीवालेके पीछे गाड़ीका मालिक बैठा हुआ है। ऐसा आश्चर्य बुढ़ियाने कभी नहीं देखा था। उसे याद था कि यदि बोली तो यहाँसे गिरा दी जाऊँगी। न बोलनेका बहुत ही प्रयत्न किया। परन्तु जैसे विषयी मनुष्योंका मन बहुत रोकनेपर भी नहीं रुकता, इसी प्रकार प्रयत्न करनेपर भी उसकी वाणी न रुकी। वह बोल ही उठी।

बुढ़िया—ओहो, यहाँके रहनेवाले कैसे मूर्ख हैं! गाड़ी आगे-आगे जा रही है, गाड़ीके पीछे बैल हैं, बैलके पीछे हाँकनेवाला है और उसके पीछे मालिक चल रहा है। लोकमें ऐसी रीति है कि बैल गाड़ीके आगे जोड़ा जाता है, गाड़ीके अगले भागपर बैठकर गाड़ीवान बैलको हाँकता है, तब गाड़ी चलती है। गाड़ीके भीतर मालिक बैठता है। यहाँ सब उलटे चल रहे हैं, जो आगे चाहिये वह पीछे है। और जो पीछे रहना चाहिये वह आगे है, इन मूर्खोंको कौन समझावे।

हे बहिन! इतना कहते ही, जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर इच्छा न होते हुए भी अनुशयी जीव स्वर्गसे मृत्युलोकमें ढकेल दिया जाता है, इसी प्रकार बुढ़िया स्वर्गमेंसे मनुष्यलोकमें गिरा दी गयी। कष्ट पाये बिना मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध नहीं होती। जैसे राम-राम जपना अथवा रामायण आदि भगवान्‌की कथाएँ सुनना सुखकी प्राप्तिका सरल उपाय है, फिर भी बहुत-से मनुष्योंका इसके ऊपर विश्वास नहीं होता। जबतक बहुत दिनोंतक धूपमें तपना, जलमें गलना, वर्षामें भीगना, दूर-दूर तीर्थोंमें जाकर कष्ट उठाना, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत रखना इत्यादि तप करके कष्ट नहीं उठा लेते तबतक यह बात समझमें नहीं आती कि भगवन्नाम जपनेसे और भगवत्-कथा सुननेमात्रसे ही कल्याण हो सकता है। कष्ट पानेके बाद ही यह बात समझमें आती है। स्वर्गमेंसे गिरनेके कष्टसे बुढ़िया समझ गयी कि बहुत बोलना और दूसरोंका दोष देखना अच्छा नहीं है, उस दिनसे बुढ़िया मौन रहने लगी और ईश्वरसे इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—

हे मायानाथ! आपकी माया बड़ी बलवती है। वह ब्रह्मा आदि देवताओंको भी मोहित कर देती है, तब मैं स्त्रीजाति तो मायाकी ही बनी हुई हूँ। मैं मोहित हो गयी तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। आजसे मैं न तो किसीका दोष देखूँगी, और न कुछ बोलूँगी। अब सर्वदा मौन रहूँगी। आजसे मैं आपकी शरण हूँ।

जब बहुत दिनतक बुढ़िया मौन रही, तो भगवान्‌ने उसके ऊपर करुणा करके नारदजीको उसे ज्ञानका उपदेश देनेके लिये आज्ञा की। नारदजीने आकर स्वर्गकी बैलगाड़ीका रहस्य बताकर बुढ़ियाको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया, जिसके प्रतापसे बुढ़िया पुनः स्वर्गमें पहुँच गयी और सदाके लिये वहाँ स्थित हो गयी।

हे बहिन! यह बुद्धि ही बुढ़िया है। जबतक यह बुद्धि अपनेको चतुर और सच्ची समझती है, तबतक उछला-कूदा करती है। तत्त्व-ज्ञानसे जब यह जान जाती है कि मैं झूठी हूँ और एक परमात्मा ही सच्चा है, तब इसका गर्व जाता रहता है। नारदजी सद्गुरु हैं, वे गाड़ीका रहस्य इस प्रकार समझाते हैं—

गाड़ी देह है, देहके पीछे बुद्धि यानी बुढ़िया बैल है। बुद्धिके पीछे बुद्धिरूप बैलका हाँकनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहङ्कार गाड़ीवान है। अहङ्कारके पीछे अथवा इन सबके पीछे चेतन आत्मा गाड़ीका मालिक है, जो सबके पीछे रहता है, वही सबको चला सकता है। सबका चलानेवाला चेतन आत्मा सर्वदा रहनेसे सत्य है। अहङ्कार, बुद्धि और देह तीनों मिथ्या हैं। इतना जानते ही बुद्धि सम हो जाती है। और बुद्धि सम हो जानेसे बुद्धिका अभिमानी जीव समाधि-निष्ठ हो जाता है और सत्-असत्का विवेकी भी हो जाता है। पश्चात् वह न शोक करता है, न मोह करता है और न किसीसे भय करता है। तत्त्वमें सर्वदा जागा हुआ रहता है और संसारकी तरफसे सोया हुआ रहता है। इसलिये कहा है कि समाधिनिष्ठ सुखसे सोता है और सत्-असत्का विवेकी जागता है। नीचेकी कुंडलिया भी इसी आधारपर है।

सम बुद्धी जिसकी हुई, सो ही सन्त महन्त।
वही विवेकी जानिये, होवे अन्त अनन्त॥

होवे अन्त अनन्त, विश्वभरमें भर जावे।
अजर-अमर पद पाय, लौट ना जगमें आवे॥
जयदेवी सो धन्य, त्याग देवे दुर्बुद्धी।
सबको जाने एक, रखे सबमें सम बुद्धी॥

सुधातरङ्ग

(लेखक—श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी)

(१)

गर्वपूर्ण शैलशृङ्ग रत्नमय परिधानके अभिमानमदमें भरकर चरणप्रान्त-स्थित पिपीलिकाकी ओर जब क्षुद्र एवं अवहेलाभरी दृष्टि निक्षेप करता है तब वह उसके मूक अपमानकी अन्तरदाहिनी ज्वाल-मालासे विदग्ध होकर असहाय अवस्थामें शून्यकी ओर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे निहारने लगती है; इतनेहीमें सहसा अनन्तकी ओरसे बल, उत्साह तथा विश्वासकी त्रिवेणी प्रवाहित होकर उसके हृदयातपको शान्त करती हुई नूतन जीवनी शक्ति प्रदान करके पुनः अनन्तमें अन्तर्हित हो जाती है।

(२)

अविनाशी कुशल कारीगरकी मायाका अनुमान विद्या-बुद्धिके मानदण्डसे कहीं हो सकता है? कृतान्त-कार्यालयकी लेखा-पुस्तकका ऋणशोध केवल उसकी चरणशरणजन्य मयाहीसे होता है।

(३)

सत्यके सच्चे सेवककी सुकृति, सरस्वतीद्वारा स्वीकृत होकर, समाजके सङ्कुचित मार्गको सुविस्तृत बनाकर, सदा-सर्वदा, सबको, सम्मानके साथ, समानरूपसे मान्य होती है।

(४)

नभोमण्डलस्थित नील नीरदके नेत्रोंसे, नक्षत्र-विशेषमें, निर्गत अश्रुबिन्दु ही तो, नीरनिधिके हृदयके अभ्यन्तरमें निवास करनेवाली सीपियोंके अन्तरमें, मुक्तारूप धारण करता है। नारीके कातर नेत्रोंसे निरन्तर टपकते हुए नीरबिन्दु ही तो, नरसिंहके हृदयमें, प्रतिहिंसाकी ज्वाला बनकर, अवनीतलपर नारकीय दृश्यकी सृष्टि करते हैं। हठीली माताकी मोदभरी गोदसे मुक्त होकर वस्तुविशेषके लिये मचलनेवाले मौजी बालकके मनोहर नेत्रोंसे मोचित मुक्ताकण ही अपार ममता बनकर उससे सब कुछ करवा लेते हैं। लाड़िलीके ललित लोल लोचनयुगलके अश्रुबिन्दु ही तो, पुरुषसिंहको, उसके पाषाण-पुष्ट हृदयमें, करुणा बनकर, पूर्ण पराजित करते हैं। पुरन्दरकी पुनीत अश्रुमाला ही, पृथ्वीके पृष्ठभागपर, प्रकृतिका परम मनोहर रूप दिखाकर प्राणियोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनदात्री बन जाती है। तब क्या कलिकल्मषकी निवृत्ति तथा परमपुरुषकी प्रीतिको प्राप्त करनेके निमित्त यह पुनीत प्रयोग असफल हो सकता है? कदापि नहीं।

(५)

घनघोर तम परिव्याप्त है। मेघकी गोदमें रह-रहकर दामिनी किलक उठती है। उसी क्षणिक आलोकमें, मधुर मुसक्यानद्वारा, मधुकी दो-एक बूँदें दान करके, कोई चितचोर अन्तर्हित हो जाता है। मधुकी मधुर मस्ती रहतेतक, मैं मस्त रहता हूँ, फिर पट-परिवर्तन। घनघोर अन्धकार। पुनः दामिनी दमकी—मुसक्यानने मुग्ध कर डाला। मधुने मस्त कर दिया। फिर अन्धकार। आह! हृदयकी शान्ति कहाँ है? विस्मृतिमें अथवा मधुर मिलनमें? मैं तड़पनेमें ही धन्य हूँ, क्योंकि वह 'तड़प' भी तेरे ही लिये है। क्या तड़प शैशव तथा पूर्णोन्माद प्रेमकी तरुणता है?

(६)

दरिद्रियोंके दीनताभरे डबडबाते हुए नेत्रोंसे निर्गत मुक्ताकणोंसे, कच्ची कलिकाओंके विफल अधखिले सौन्दर्यसे, रमणीरत्नोंके उदरसिन्धुमें वास करनेवाले बड़वानलके अदृष्ट स्फुलिङ्गोंसे, नाथ! आज, मैं आपका स्वागत करता हूँ। पधारिये।

(७)

ऐ सम्मोहन! कोमल कुटीरके कपाटोंको हटाकर तिरछी चितवनसे, अपनी मन्द-मन्द मीठी मुसक्यानकी ज्योत्स्नामें, सम्मोहन-मधुकी मन्द-मन्द बूँदोंकी जब तू वृष्टि करता है तब दलित दरिद्री उसमें नहा लेते हैं और उनकी जीर्ण धोतीसे, टप-टप टपकती हुई बूँदें, संसारमें सारकी सृष्टि करके, प्राणियोंके हृदयोंमें अलौकिक रसधारा बहा देती हैं, जिसमें डूबकर प्रकृतिके नियम भी अपना स्वरूप खो देते हैं।

राम

(लेखक—सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार)

उँचाई और बुलन्दीपर है आस्मांको नाज़।
रुखकी चमकपर है चान्द जा फिशांको नाज़॥
गुल मस्ते रंगो बू, तो है बुलबुल फिदाये लहन।
और खुशनुमाईपर चमने गुलिस्ताको नाज़॥
हातिमको फख फैज़पर-रुस्तमको जोरपर।
इन्साफ़ परवरीपर है नोशेरवाको नाज़॥
अल मुख्तसर यह देखा-जहाँतक भी गौरसे।
होता कमालियतपर है सब खुदी कलाको नाज़॥
लेकिन इसी जहांनमें था दशरथका लाल भी।
था जिसके दस्त व बाजूपर तीरों कमाका नाज़॥
रखता था गर्चे जोश-ज़र, मुल्क़, तख्त, ताज।
लेकिन न था किसीपर भी-उस नौज़वाको नाज़॥
हाँ! पितृभक्तिपर था फख रामको।
क्यों 'अली' उसपर न हो फिर हिन्दोस्तांको नाज़॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीकृत रामायणमें करुणरस

(लेखक—श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०)

भरत और हैमलेट

(भाग ९, संख्या ९, पृ० १२२७ से आगे)

एक और प्रश्न

मैं भरतके साथ हैमलेटकी तुलना ही क्यों करता हूँ ? कल्याण-सम्पादकके पत्र और चैत्र-संख्याके सम्पादकीय नोटसे विदित होता है कि भगवान् रामके कुछ पूज्य भक्तोंने उपर्युक्त तुलनाके विषयमें शङ्का प्रकट की है। उनकी धारणा है कि भरत-जैसे आध्यात्मिक एवं आवतारिक व्यक्तिकी तुलना किसी मानवी चरित्रके साथ करनी ही न चाहिये थी। मैं ऐसी प्रगाढ़ भक्तिका आदर करता हूँ और मानता हूँ कि अधिकांशमें यह धारणा सत्य ही है। मैंने इसके मुख्य कारणोंको इस लेखमालाके प्रारम्भमें ही प्रकट कर दिया है, परन्तु अब प्रश्न उठनेपर यह अनुचित न होगा कि संक्षेपमें उन कारणोंको अन्य कारणोंसहित उनकी सेवामें पुनः रख दूँ। कितना सुन्दर और अनन्य है वह प्रेम, जो अपने प्रेमपात्रसे किसीकी तुलनाका सहन नहीं कर सकता। पुष्पवाटिकासम्बन्धी दृश्यमें भी तो जब चन्द्रमा अपनी पूर्ण छटाके साथ 'प्राची-दिशि' से उदय हुआ था, मानो सीताके प्रकाशपूर्ण मुखके साथ बराबरीका दावा करना चाहता था, तब भगवान् रामके प्रेम-प्रभावित हृदयसे भी यही शब्द निकले थे—

सिय-मुख-समता पाव किमि चंद बापुरो रंक ॥

परन्तु वह मर्यादापुरुषोत्तम थे और इसीलिये उन्होंने वैसा कहनेके पूर्व अनेक कारणोंको भी प्रकट कर दिया था। हमें भी उसी मर्यादाका पालन करते हुए भरत और हैमलेट-की तुलनासम्बन्धी व्याख्यामें अपनी धारणाके पोषक कारणोंको अवश्य प्रकट कर देना चाहिये, विशेषतः इसलिये भी कि वर्तमान युग तर्कप्रधान है। कारण ये हैं—

(१) शॉ महोदयका सिद्धान्त है और ठीक ही है कि संसारका साहित्य सदैव ही दो प्रमुख चरित्रोंके चित्रणमें लगा रहा है—हैमलेट (आदर्शवादी) या डान जुआन (भोगवादी)। उनका यह भी कहना है कि कविताकी सबसे बड़ी परख दुःखान्त कवितामें ही होती है। इसी कारण मैंने भरतसे तुलना करनेके लिये हैमलेटको ही चुना है और अपनी व्याख्यासे यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि हैमलेटको आदर्शवादी कहना ही बहुधा अनुचित है। विशेषतः इस कारण कि अब संसार रामायणके सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक नीर-क्षीर-विवेकवाले भरतरूपी राजहंससे परिचित हो चुका है। मैं यह भी दिखला चुका हूँ कि महाकवि तुलसीदासने अपनी काव्यकलाद्वारा पाश्चात्य दुःखान्तकवितासम्बन्धी धारणाओंकी कमियोंको किस प्रकार पूरा किया है।

(२) मेरी व्याख्यासे अधिकांशमें भरत और हैमलेटके चरित्रोंमें दिखनेवाला विरोधाभास ही प्रकट होता है—समानता तो कम ही है। वस्तुतः मैं भी तुलसीदासके इस सिद्धान्तसे सहमत हूँ कि भरतकी तुलना किसीके साथ उसी प्रकार नहीं हो सकती जैसी 'सुमेरु' की 'सेर' से।

(३) यह कहना गलत है कि हैमलेट ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि महाकवि शेक्सपियरने अपने कौशलसे ऐतिहासिक हैमलेटको सुधार-कर एक संस्कृत और अत्यानुयायी व्यक्ति बना दिया है—पौर्वात्य रीतिपर न सही तो पाश्चात्य रीतिपर। दूसरी ओर, क्योंकि भरत दैवी सत्ताके वह अंश हैं जिसे तुलसीदासजीने 'विश्व भरण पोषण कर जोई' में व्यक्त किया है, अतः उनतक किसी काव्यकल्पनाकी पहुँच ही नहीं हो सकती। इसीलिये तुलसीदासजीने भी स्वयं स्वीकार किया है, कि मेरा वर्णन केवल 'यथामति' ही है। क्या हम इस बातका दावा उचित गौरवके साथ नहीं कर सकते कि महाकवि शेक्सपियरके काव्य-कौशलद्वारा संशोधित हैमलेट भी महाकवि तुलसीदासजीके चित्रित भरतसे लग्गा नहीं खाता। यद्यपि वैसा चित्रित भरत भी ऐतिहासिक एवं आवतारिक भरतसे कहीं कम है ? शेक्सपियरने हैमलेटके लिखनेमें कई वर्ष लगाये और इधर हमारे तुलसी भी भरतके चरित्रपर सबसे अधिक मुग्ध थे। यह भरतके चरित्र-के ही अध्ययनका परिणाम था कि तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामभक्त बन सके, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है कि—यदि भरतका जन्म न होता तो—

'तुलसीसे सठहि हठि राम सनमुख करत को ?'

यहाँतक कि अयोध्याकाण्डके अन्तमें भरतके स्वसङ्कल्पित तपकी तुलना यों की गयी है—

लषन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तन कसहीं॥
दुइ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

क्या संसारके दो सर्वश्रेष्ठ महाकवियोंके ऐसे दो चरित्रोंके तुलनात्मक अध्ययनका फल यह न होगा कि हमारे आत्माका उत्थान एवं कल्याण हो ?

(४) पाश्चात्य जगत्की दुःखान्त कवितासम्बन्धी धारणा और शेक्सपियरके हैमलेट और ब्रूटस-जैसे आदर्शवादियोंके चरित्र-चित्रणका संसारके विचारोंपर कोई उत्तम प्रभाव नहीं पड़ा। जिन व्यक्तियोंके मानसिक विचारोंपर पाश्चात्य जगत्का प्रभाव पड़ा है उनकी धारणा सी बन गयी है कि आदर्शवाद सफल हो ही नहीं सकता। 'अन्तरात्मा हम सबको कायर बना देता है'*—शेक्सपियरके ये शब्द नवीन जगत्के सिद्धान्तका आवश्यक अंश बन चुके हैं। आदर्शवादी शब्द तो मानो अप्रशंसासूचक ही बन गया है। यहाँतक कि बर्नर्ड शॉ महोदय भी अपनी कल्पनाशक्तिको आगे न बढ़ा सके। उनका विकसित मनुष्यरूपी† चरित्र जो यथार्थमें क्रान्तिवादी है और जो पाश्चात्य जगत्के सिद्धान्तानुसार ही आदर्शवादी कहा जा सकता है, अपने सारे सिद्धान्तोंको मानवी प्रेम एवं विवाहकी आकस्मिक चट्टानकी ठोकरसे चकनाचूर कर देता है। आह, कितना करुणामय दृश्य है कि वह (चरित्र) तो विवाहके बाद भी आदर्शकी बातें करता है परन्तु उसकी प्रेमिका, जो प्रकृत संसारकी मूर्तिरूप है, अपनी सखीसे केवल इतना ही कहती है कि 'उन्हें बकने दो'‡—और सब हँस पड़ते हैं। आह, इस मखौलने आदर्शवादका उससे अधिक खून किया है जितना शेक्सपियरके नाटकोंकी खूनी घटनाओंने। शोक यह है कि हमारा हिन्दी साहित्य भी पाश्चात्य जगत्की इन धारणाओंकी नकलसे बच नहीं रहा। परिणामतः संसारमें निराशावाद एवं आत्महत्याकी घटनाएँ बढ़ रही हैं।

क्या यह बात संसारके आत्मोत्थानमें सहायक न होगी एवं पृथिवीपर आशाकी नवीन धुन न लायेगी, यदि हम हैमलेट और भरत तथा उनकी परिस्थितियोंकी तुलनाद्वारा यह दिखला सकें कि आदर्शवादकी सफलतामें किन-किन भीतरी और बाहरी साधनोंकी ज़रूरत होती है ? इस दृष्टिकोणसे अयोध्या और डेन्मार्ककी तुलना संसारके लिये कल्याणकारक ही बनेगी।

(५) डेन्मार्कमें लगभग चारों ओर नैतिक सड़न दीखती है, यद्यपि शेक्सपियरने उसे नरम शब्दोंमें यों लिखा है कि 'डेन्मार्कके राज्यमें कुछ नैतिक सड़न है'।$ शेक्सपियरके नाटकमें डेन्मार्क ठोस और पाशविक भौतिकवादका चिह्नस्वरूप है। इधर अयोध्या वैदिक शब्द है जिसका यौगिक अर्थ 'शान्तिनगर' होता है। इस प्रकार क्या अयोध्या स्थायी शान्तिकी द्योतक नहीं है जिसका 'सकल लोक दायक अभिरामा' रामका निवासस्थान होना उचित ही है ? रामायण, और विशेषतः अयोध्याकाण्डके अध्ययनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि नैतिक विषके प्रभावसे ऐसे शान्त स्थानमें भी कैसी हलचल पैदा हो जाती है मानो सारा राज्यरूपी शरीर ही रुग्ण हो। भरत मानो उस शरीरके लिये स्वास्थ्य-शक्तिके रूपमें हैं जो स्वाभाविकतः विषनाशक होती है। जैसे यदि हमारे शरीरमें जीवन-शक्तिका प्राबल्य होता है तो रोगकी उथल-पुथलके बाद एक बार फिर शरीर नीरोग हो जाता है, वैसे ही अयोध्यारूपी शरीरमें भरतरूपी जीवन-शक्तिके प्राबल्यद्वारा नैतिक विषका दूरीकरण होकर रामराज्य पुनः स्थापित हो जाता है। परन्तु भरतकी नीति पूर्वकी ही शान्ति एवं त्यागपूर्ण नीति है, न कि डेन्मार्कवाली अशान्तिमयी पश्चिमी नीति।

मेरी रायमें तो डेन्मार्ककी तुलनाके लिये लङ्का ही अधिक उपयुक्त है; परन्तु शोक ! कि हैमलेटमें तो आदर्शवादकी शक्ति उतनी भी न थी जितनी विभीषणमें। विभीषणमें इतना नैतिक साहस अवश्य था कि वह समयानुसार रावणसे असहयोग कर रामसे सहयोग कर सके; परन्तु बेचारे हैमलेटके मस्तिष्कमें, एक अवकाश आनेपर भी, इंगलैण्डसे मदद लेनेका खयाल न पैदा हुआ, यद्यपि वह इतना पाशविक अवश्य बन सका कि राजतन्त्रको बदलकर उन लोगोंके मृत्युका कारण बना जो उसे बहकाकर मारनेके

* 'Conscience makes cowards of us all.'
† Superman.
‡ "Let him talk".
$ "There is something rotten in the State of Denmark."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये ले जा रहे थे। यह बात विचारणीय है कि भगवान् रामको धनुष-बाणका सहारा लेना पड़ा, परन्तु ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार माता अपनी सन्तानके व्रणको धैर्यपूर्वक चिराती है। इसीसे तो भगवान् रामने रावणके आत्माको उसके भौतिक शरीरसे पृथक् होनेपर अपनेमें लीन कर लिया था और साथ ही विभीषणको मृतकसंस्कारकी आज्ञा देते हुए साफ कह दिया था, 'अब हमारा और रावणका विरोध समाप्त हो गया।' रावण शान्तिनगर अयोध्याके प्रति बाहरी शत्रुके रूपमें था और अब उसकी पराजय होनेसे मानो वह बाह्य अशान्ति भी जाती रही जो रामराज्यकी स्थापनामें बाधक हो रही थी।

(६) महाकवि शेक्सपियरके नाटकीय सिद्धान्तके अनुसार कवि अपने व्यक्तित्वको प्रकट नहीं करता। परिणाम यह कि बहुधा नाटकीय ध्येयके समझनेमें गलतफहमी हो जाती है। मैंने हैमलेटको दस-बारह बार पढ़ा होगा और ज्यों-ज्यों उसका अध्ययन करता हूँ, मेरी यह धारणा पुष्ट होती जाती है कि महाकविका अभिप्राय आदर्शवादकी निन्दाका न था प्रत्युत उस पाशविक एवं भौतिक सभ्यताकी निन्दाका, जिसने आदर्शवादका खून कर दिया था। इसीसे तो हैमलेटके प्रति इतनी करुणा हमारे हृदयमें उत्पन्न की है। परन्तु क्योंकि कवि स्वयं स्पष्टरूपमें हमारे सामने नहीं है, हममेंसे बहुत-से लोग नाटकीय ध्येयके समझनेमें गलती करते हैं और उलटा यह समझ बैठते हैं कि आदर्शवाद सफल हो ही नहीं सकता। इसके विरुद्ध तुलसीदासजीकी कवितामें ऐसा कोई भय नहीं है। वह हमारे लिये सर्वोत्तम दार्शनिक मित्र और पथप्रदर्शक बन जाता है। पर यह याद रहे कि वह नाटकके इस ध्येयको कभी नहीं भूलता कि संसारकी सच्ची तसवीर, जिसमें नेकी और बदी दोनों साथ-साथ हैं, हमारे समीप रख दे। हाँ, वह करता यह है कि भरत, राम और विभीषणके रूपोंमें ऐसी व्यक्तियाँ हमारे सामने लाता है जो नेकीके दूधको बदीके पानीसे अलग कर दें। फिर कभी-कभी समयानुसार कवि स्वयं भी हमारे सामने आता रहता है। ऐसी परिस्थितिके होते हुए नाटकीय ध्येयके समझनेमें कभी भूल हो ही नहीं सकती—यह दूसरी बात है कि हम कविसे सहमत हों या न हों। हमें अपनी स्वतन्त्र राय कायम करनेमें कविका खींचा हुआ सांसारिक चित्र अवश्य सहायता देता है।

(७) उदारमना रामभक्तोंसे मेरी अन्तिम प्रार्थना यह है कि वह हमारे प्रति पर्याप्त उदारतासे काम लें। हम ऐसे वातावरणमें हैं जिसमें पाश्चात्य विचारोंका साम्राज्य है और यह ठीक है कि पाश्चात्य जगत्में तार्किक तथा भौतिक दृष्टिकोणका ही प्राधान्य है। चूँकि मैं भी इसी युगका आदमी हूँ, इसलिये स्वयं अनुभव करता हूँ कि आध्यात्मिक दृष्टिसे उपर्युक्त वातावरण हमारे पतनका कारण है। मगर इस मरज़की दवा क्या है? क्या हम नवयुवकोंको आध्यात्मिक अन्त्यज समझकर छोड़ दें? मेरी रायमें कोई समझदार मनुष्य तो यही उत्तर देगा कि ऐसा कदापि न होना चाहिये। फिर तो हमारे लिये कोई और मार्ग ही नहीं रह जाता, सिवा इसके कि हम अपने आध्यात्मिक विचारोंको उन्हींकी तर्कपूर्ण भाषामें व्यक्त करें। साहित्य-क्षेत्रमें भी यदि हम अपने हिन्दी साहित्यकी विजय चाहते हैं तो हमें यही दिखाना होगा कि पाश्चात्य जगत्के साहित्यिक सिद्धान्तोंकी कसौटीपर भी हमारा साहित्य खरा उतरता है। इतना ही नहीं, मैंने तो यह भी दिखानेकी चेष्टा की है कि तुलसी-जैसे महाकवियोंने साहित्य-संसारकी कितनी ही अपूर्तियोंकी पूर्ति की है। यहाँपर एक उदाहरण भक्तजनोंके लिये बहुत उपयुक्त होगा। जब गरुड़जीको भगवान् रामके आध्यात्मिक व्यक्तित्वपर शंका हुई और वह उसके निवारणार्थ भगवान् शिवकी शरणमें गये तो शिवजीने उन्हें काकभुशुण्डिजीके पास भेज दिया और इस भेजनेका कम-से-कम एक कारण यह बताया कि—'खग जाने खगहीकै भाषा॥'

ऐसा ही समझकर प्रिय रामभक्तोंको मेरे इन लेखोंके बारेमें यही खयाल कर लेना चाहिये कि वे नवीन युगके लिये केवल उपयुक्त ही नहीं प्रत्युत आवश्यक भी हैं। पूज्यवर आचार्य द्विवेदीजीने भी अपने ३० जून सन् १९२७ ई०के कृपापत्रद्वारा आशीर्वाद देते हुए मुझे यह लिखा था—

'.....आप अपनी व्याख्याओंसे रामायणका महत्त्व बढ़ा रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनसे यह भी होगा कि शेक्सपियर, मिल्टन, शेली और बाइरन आदिके भक्तोंको भी मालूम हो जायगा कि संस्कृत कवियोंको जाने दीजिये, भाषाकवि तुलसीदासके भी काव्यमें बहुत कुछ ऐसा है जो अंगरेज कवियोंके काव्यमें भी नहीं।.....'

(आ) अस्थिरता

हैमलेटके आलोचकोंने यह ठीक ही कहा है कि उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखान्त घटनाका मुख्य कारण यही था कि वह वस्तुतः बिल्कुल पागल न था, बल्कि उसका कुछ-न-कुछ पागलपन चालके तौरपर बनावटी था। उसका आदर्शवादी स्वभाव पाशविक परिस्थितियोंमें पड़कर उसकी स्नायविक निर्बलता-का कारण बने बिना न रहा। परिणाम मालीखूलिया* नामी रोग था। यह सब एक घूमते हुए चक्रकी तरह अस्थिरतासे आरम्भ होकर अस्थिरतामें ही समाप्त होता है। उसे अपने पिताकी छाया स्वयं दृष्टिगोचर होती है और उसे पिताकी मृत्युका कारण मालूम हो जाता है और साथ ही यह भी कि हैमलेटके चचा और उसकी माताका विवाह चचाकी ही दुराचारपूर्ण नीतिका परिणाम था। इतना जाननेपर भी हैमलेट अपने कर्तव्यका निश्चय न कर सका और अकर्मण्य बना रहा। उसकी अस्थिरताका यह परिणाम हुआ कि उसके विवेकरूपी कुतुबनुमा (दिशा-सूचक यन्त्र) की सुई सदा काँपती ही रही, जैसा कि उसके इस वाक्यसे प्रकट होता है कि 'संसारमें न कोई चीज भली है न बुरी, अपितु हमारा विचार ही उसे भली या बुरी बना देता है।'† उसे अवसर मिलता है कि यदि वह चाहे तो अपने पिताके खूनका बदला अपने चचाको मारकर ले ले। परन्तु उस समय उसका चचा ईश-वन्दनामें लगा था जिससे हैमलेटके अस्थिर स्वभावको उसे न मारनेका एक बहाना मिल जाता है। वह सोचने लगता है कि चचाको वन्दना-समयमें मारनेसे स्वर्ग प्राप्त होगा और बदलेकी बात पूरी न होगी।

जैसे शराबी अपनेको कभी नशेमें नहीं समझता और किसीके कहनेपर, यह कहता हुआ कि 'क्या मैं वाक़ई नशेमें हूँ', अपनी होशमन्दीको साबित करना चाहता है, ठीक उसी प्रकार अस्थिर स्वभावका मनुष्य अपनेको वैसा नहीं समझता और अपनी अकर्मण्यताके लिये तरह-तरहके हीले ढूँढ़ लेता है। हैमलेटको चचाके पापपूर्ण आचरणका पूरा पता है; इसीलिये, जब उसे अभिनेताओंके आनेकी ख़बर मिलती है तो वह उनसे ऐसा खेल कराना चाहता है जिसे देखते हुए चचाका पाप स्वयं ही बोल उठे। परन्तु जब पाप बोल उठता है तब भी उसका हाथ नहीं उठता। इसी अस्थिरताको ब्रैडली महोदय स्वाभाविक अस्थिरता‡ कहते हैं। परिणाम यह होता है कि उसका सारा मस्तिष्क सन्देहवादसे परिपूर्ण हो जाता है और वह यह भी निश्चय नहीं कर सकता कि उसे जीते रहना चाहिये या नहीं*। यह तो भला बड़े ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तकी बात है; उसे तो स्वयं अपने पिताकी छायापर भी, जिसे उसने अपनी आँखों देखा है, अविश्वास होने लगता है। जब उसे अपनी इस कमज़ोरीका पता लगता है, तो वह विवेक एवं सावधानीसे काम लेनेके बजाय ठीक दूसरी ओरकी अन्तिम सीमापर पहुँच जाता है। वह भाग्यवादी बन आकस्मिक कर्म करने लगता है, जो वस्तुतः अस्थिरताके छिपानेका प्रयत्नमात्र ही है। आह, कैसा पतन है कि आदर्शवादके स्थानमें धूर्तता और निर्दयता आ जाती है! परन्तु शेक्सपियरका चित्रण ऐसा सुन्दर है कि पाठकके हृदयमें करुण और भयानक रसोंकी तो उत्पत्ति होती है, पर उसमें हैमलेटके प्रति घृणा कभी नहीं उपजती। इसीलिये श्लेगेल महोदयने 'हैमलेट' को 'विचारोंकी दुःखान्त कृति'† ही माना है और ब्रैडली महोदयने उसे 'दार्शनिकताकी असफलता'‡ कहा है, और जर्मिनस महोदयने हैमलेटके पतनकी आलोचना करते हुए ठीक ही कहा है कि 'वह चाल-फेरका टेढ़ा रास्ता पकड़ते हुए धोखा देनेवाला स्वाँग रचता है।'§

हमारा सिर गौरवसे ऊँचा हो जाता है जब हम सोचते हैं कि यह हमारे महाकवि तुलसीदासजीका ही सौभाग्य था कि वह आदर्शवादकी सफलताका चित्रण कर सके। परन्तु इस कार्यमें भी एक भय था कि कहीं आदर्शवादका मार्ग नितान्त सुगम न दिखने लगे। वस्तुतः वह मार्ग कठिन परीक्षाका मार्ग है और उसमें फूलोंके स्थानमें बहुधा काँटे ही मिलते हैं। फिर दुःखान्त नाटकका लिखना और उसमें आदर्शवादकी सफलता दिखलाना भी एक ऐसी कठिन समस्या थी जिसे हमारे महाकविको हल करना था। आदर्शवादके लिये यह आवश्यक है कि परिस्थितिके साधक और बाधक अङ्गोंपर सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया जाय और काममें जल्दी न की जाय। उसकी सफलताके लिये यह भी आवश्यक है कि अन्ततः

* Melancholy. (नैराश्यपूर्ण विक्षिप्तता)।

† "There is nothing good or bad in this world, but thinking makes it so."

‡ 'Nervous instability.'

* "To be or not to be, that is the question."

† 'Tragedy of thought'.

‡ 'Philosophical failure'.

§ "He takes the crooked way of cunning circumlocution and deceiving dissimulation."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित निर्णयपर पहुँचकर तदनुसार ही कार्य किया जाय। यदि निश्चय एवं निर्णयकी शक्तियोंमें पर्याप्त प्रबलता हो तो आदर्शवादमें छल-कपट और निर्दयताकी गुंजाइश नहीं। देखिये, भरतकी विवेकबुद्धि कितनी सूक्ष्म है कि जहाँ शत्रुघ्नजी अपने क्रोधका लक्ष्य मन्थराको बनाते हैं वहाँ भरतजीका सारा रोष अपनी माता कैकेयीके प्रति प्रकट होता है। सूक्ष्म विचारदृष्टिसे यह बिल्कुल ठीक ही है। मन्थरा फिर भी दासी ही है और उसकी बुद्धिका दूषित होना कोई अचरजकी बात नहीं, परन्तु कैकेयीका राजमहिषी और माता होते हुए मन्थराके कुविचारोंसे प्रभावित होना सर्वथा दोषपूर्ण है। दूसरी बात यह है कि ऐसे शोक और क्रोधकी अवस्थामें भी भरतजीमें दयाका अंश बना ही रहता है और जब शत्रुघ्नजी मन्थराको मारने लगते हैं तो भरत उसे छुड़ा देते हैं। इसके प्रतिकूल, हैमलेट जब अपनी मातासे अप्रसन्न होता है तो उसका विवेक पूर्णतः विलुप्त हो जाता है और वह समस्त स्त्री-जगत्से घृणा करता हुआ अपनी प्रेमिका ओफेलियासे भी बुरा बर्ताव करता है।

तुलसीदासजीकी अनुपम काव्य-कलामें अस्थिरता दोषके स्थानमें गुण बन जाती है। कारण, भरतकी अस्थिरतासे हमारे हृदयमें करुणरसका सञ्चार होने लगता है, परन्तु वह इतना प्रबल नहीं होने पाता कि उनकी निर्णयशक्तिपर विजयी हो सके। महाकविने भरतकी इस गतिकी उपमा 'जल-अलि' से ठीक ही दी है जो भँवर और लहरके साथ आगे-पीछे होते हुए जाते ही आते रहते हैं। भरतके चित्रणमें भी विचारोंकी अस्थिरता एवं चञ्चलता अत्यन्त सकरुण रीतिपर व्यक्त की गयी है, यहाँतक कि कभी ऐसा मालूम होने लगता है कि मानो भरतका आत्मविश्वास ही विदा होना चाहता है। परन्तु उनमें रामके प्रति विश्वास एवं विवेककी मात्रा फिर भी इतनी शेष रह जाती है कि उपर्युक्त करुणरस दुःखान्त घटनामें समाप्त नहीं होता और अन्तिम विजय भरतकी ही होती है।

आइये, अब हम ऊपरके तुलनात्मक विचारोंको कतिपय उदाहरणोंसे सुस्पष्ट करनेका प्रयत्न करें। तुलसीदासजी लिखते हैं—

चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषाद नाथ लघु भाई॥
समुझि मातु-करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मनमाहीं॥

किसीने ठीक ही कहा है कि 'वर्तमान भय आगेकी भयानक कल्पनाओंसे बेहतर है।'* 'कोटि कुतरक' से महाकविने भरतकी मानसिक अस्थिरताकी वेदनाओंका कितना सकरुण होना दिखलाया है। फिर इन शब्दोंका संकेतात्मक वर्णन भी विचारणीय है। मानो अस्थिरता इतनी वेगपूर्ण है, और एक कुतर्क दूसरेके बाद इतनी शीघ्रतासे उठ रहा है कि कविकी वर्णनशक्ति भी उसके समूचे चित्रणमें असमर्थ है। अतः 'कोटि कुतरक' से संकेत करते हुए कुछ उदाहरण नीचे दे दिये हैं। महाकवि शेक्सपियरकी तरह स्वगत वार्ताकी कृत्रिम शैलीका प्रयोग नहीं है, प्रत्युत तुलसी स्वयं हमारे सामने आकर उन अवस्थाओं एवं विचारोंको प्रकट कर देता है जिनके प्रकटीकरणमें स्वयं अभिनेताकी वाक्शक्ति काम नहीं देती। कुतर्कका उदाहरण देते हुए कवि लिखता है—

राम लषन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

कितना वेदनापूर्ण कुतर्क है, परन्तु कितना स्वाभाविक। साधारणतः भरत ही राम-वनवासका मूल कारण हैं और साधारण रीतिपर भरतका आगमन सुन रामके हट जानेकी कल्पना असङ्गत नहीं जान पड़ती। परन्तु हम तो यह कहेंगे कि इतनी कल्पना कम-से-कम है। अन्यथा लक्ष्मण-जैसा वीर और क्रोधी योद्धा तो भरतको 'समर सिखावन' देनेपर उद्यत था। तुलसीजी रामके विचारोंसे अवगत हैं, और हम भी 'समर सिखावन' वाली वार्ताके उत्तरको जानते हुए रामके स्वभाव और उनके उस स्नेहकी जानकारी रखते हैं जो उन्हें भरतके प्रति था। इसीलिये 'तर्क' के स्थानमें 'कुतर्क' शब्दका प्रयोग है।

आगे फिर तुलसीदासजी कहते हैं—

मातु-मते महँ जानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥

विचारोंके इस ज्वारभाटेमें कितनी करुणा है, परन्तु साथ ही कितना विवेक और कैसी झिलमिलाती हुई आशाकी झलक मौजूद है। उसी ज्वारभाटेकी लहरोंका वर्णन एक बार फिर इस प्रकार होता है—

जो परिहरहिं मलिनमन जानी। जो सनमानहिं सेवक मानी॥

'कुतर्क' और 'सुतर्क' का कैसा सुन्दर संघर्षण है। कुतर्कने तो 'मातुमते' के दोषको 'मलिनमन' के दोषकी

* "Present fears are better than horrible imaginings".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेणीपर पहुँचा दिया। परन्तु 'सुतर्क' भी पीछे नहीं, और वह भी 'छमा' के भावको 'सम्मान' के भावकी उच्चतापर पहुँचाकर ही रहता है! भरतका अन्तिम विचार भी, जिसे सेवाधर्मका मूलमन्त्र कहना चाहिये, कितना सुन्दर है और कविने उसे निम्न चौपाईमें कितनी सुन्दरतासे व्यक्त किया है—

मोरे सरन रामकी पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं॥

आदर्शवादी सेवक कितनी ही सेवा करते हुए भी अपनी सेवामें त्रुटि ही देखता है। और अपने मालिकके सुस्वामित्वपर लाञ्छनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार भक्त भी चाहे जितनी उच्चतापर पहुँच जाय, यही कहता है—

जो तन दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी। (सूर)

आह, एक विजयके मिलते ही भरतका आदर्शवाद उनके मस्तिष्कमें दूसरी करुणाजनक कल्पना उत्पन्न कर देता है और वह सोचते हैं—

जग यशभाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुन प्रबीना॥

सच है, भरत-जैसे प्रेमी सेवकके लिये दुःखकी बात यही है कि वह अपने 'नेम और प्रेम' को 'चातक और मीन' से कम समझता है और सोचता है कि 'आह! मैं मनुष्य होता हुआ भी इन तुच्छ प्राणियोंकी बराबरी न कर सका।' उन्हें पता नहीं कि यही 'नेम और प्रेम' चुम्बकीय शक्ति बनकर उन्हें रामकी ओर खींचे लिये जा रहे हैं और जो अन्ततः उन्हें 'जग यशभाजन' बनाकर ही रहेंगे। तुलसीजीकी नाटकीय कलामें व्यञ्जना-शक्तिका कितना करुणाजनक उदाहरण है कि 'नेम और प्रेम' का आधिक्य ही करुणाका कारण बन रहा है। वह फिर आगे लिखते हैं—

अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥

'सकुच' और 'सनेह' की खींचतान दर्शनीय है और 'सिथिल सब गाता' में भरतका करुणाजनक चित्र ही हमारे सामने आ जाता है। हमें पता लगता है कि अभी संघर्ष जारी है और किसी भावकी भी पूरी विजय नहीं हुई, परन्तु अवस्था 'सिथिल' है। फिर लिखते हैं—

फेरत मनहुँ मात कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥

माताकी करतूत उनके पावोंको पीछे हटाती है; परन्तु स्नेह अब भक्तिमें बदल चुका है जो उन्हें बराबर आगे बढ़ाये लिये जाता है। इसी भावका अधिक स्पष्टीकरण यों हुआ है—

जब समुझत रघुनाथ-सुभाऊ। तब पथ परत उताउल पाऊ॥

भक्तिके साथ अपने कुलनाथ रामके स्वभावकी जानकारी पैरोंको और भी आगे बढ़ा रही है। आशाकी विजय शनैः-शनैः कैसी स्पष्ट होती जाती है, परन्तु वह आशा अस्थिर विचारोंकी ओटमें ऐसा धीरे-धीरे लाई जाती है कि करुणरसमें कमी न हो। तुलसीने अस्थिर विचारोंकी लहरोंकी हिलोरमें पड़े हुए भरतका वर्णन निम्न चौपाईमें किस भावुकतासे किया है—

भरत-दसा तेहि अवसर कैसी। जल-प्रवाह जल-अलि गति जैसी॥

हमने इस उपमाकी ओर पहले भी सङ्केत किया है, परन्तु यहाँ उसके पूर्ण वर्णनसे पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति होती है। भरतकी इस दशाका प्रभाव निषादपर भी पड़े बिना न रहा और जो काम भरतकी वाक्शक्ति न कर सकी उसे उनकी उसी दशाने कर दिखाया। तुलसीदासजी लिखते हैं—

देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

मानो 'सोच और सनेह' का प्रवाह भरतके हृदयसे निकलकर चारों ओर फैल गया, जिसने निषादको 'विदेह' बनाकर छोड़ा और उसका 'अपान' भुला दिया। [इसीलिये तो आध्यात्मिक विचारदृष्टिमें ज्ञान और श्रद्धा दोनोंका मार्ग एक ही प्रकार लाभदायक कहा जाता है। बल्कि श्रद्धाका मार्ग तो अधिक सुगम है। देखिये न, भरतके सत्सङ्गसे श्रद्धालु निषाद भी ब्रह्मज्ञानी जनककी अवस्थामें पहुँच गया]।

दूसरा उदाहरण और भी विचारणीय है। चित्रकूट पहुँचकर और सब लोग तो आनन्द-मग्न हो जाते हैं, परन्तु भरतकी दशाका वर्णन महाकवि यों करता है—

निसि न नीद नहि भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच॥

यह वेदना आदर्शवादके दण्डरूपमें है। जहाँ दूसरे लोग आनन्दमें हैं, वहाँ भरतके शोककी सीमा नहीं। वह सोचते हैं—

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति-भीति जस पाकत साली॥

आह, कराल कालने माता कैकेयीकी ओरसे कैसा भीषण आघात किया है। माता ही पुत्रके दुःखका कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बने, यह कैसी शोचनीय बात है। परन्तु इस अवस्थामें भी तुलसीदासजीकी काव्यकलाका सूक्ष्म सङ्केत विचारणीय है। रामजी माता कैकेयीकी कृतिकी उदार व्याख्या कर चुके हैं, जिसका प्रभाव भरतपर पड़े बिना नहीं रहा, और ऊपरके दोहेमें उसका परिणाम मौजूद है। अब अधिकांशरूपमें दोषका भागी कराल काल है और कैकेयी केवल नैमित्तिक कारण है। फिर भी, दोष चाहे जिसका हो, परिस्थितियोंके दुःखपूर्ण होनेमें तो कोई कमी नहीं। रामजीका वनवास ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। इसीसे तो भरतको न नींद है, न भूख। परिस्थितिकी उपमा पकते हुए धानपर ईति-भीतिके आघातसे दी गयी है, जिससे करुणरसमें और आधिक्य हो जाता है। मानो उर्दूकविके शब्दोंमें—

किस्मत तो देखिये कि कहाँ टूटी है कमन्द,
दो-चार हाथ जब कि लबे-बाम* रह गया।

भरत सोचते हैं—

कहि बिधि होइ राम-अभिषेकू। मो कहँ फुरत उपाय न एकू॥

हम पहले ही देख चुके हैं कि भरतजी राज्यको विषतुल्य समझते हैं, क्योंकि उससे रामका वञ्चित किया जाना अन्यायपूर्ण था। इसीलिये भरतके आदर्शवादकी प्रेरणा यही थी कि राज्य रामको वापस किया जाय। परन्तु वही आदर्शवाद भरतकी वेदनामयी अशान्तिका कारण बन रहा है, क्योंकि रामके उस राज्यके वापस लेनेकी समस्या भी कम जटिल नहीं है। इसीसे तो वह सोचते हैं—'मो कहँ फुरत उपाय न एकू।' तुलसीदासजीने समस्याके अनेक हल और उनकी कठिनाइयाँ आगे रक्खी हैं और यह दिखाया है कि भरतके विचाररूपी ज्वारभाटेकी लहरें किस तरह चढ़ती-उतरती हैं। भरत सोचते हैं—

अवसि फिरहिं गुर-आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम-रुख जानी॥

आह! आशा आती है और चली जाती है। गुरुकी आज्ञाको रामजी अवश्य मानेंगे, परन्तु गुरु आज्ञा देने ही क्यों लगे। सत्य रामकी ओर है, अतः राम-रुखके बिना गुरुजी आदेश देनेमें असमर्थ हैं। दूसरी युक्ति भरतने यह सोची है—

मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ। राम-जननि हठ करब कि काऊ॥

सच है, रामजी माता कौशल्याके कहनेपर अवश्य ही लौट चलेंगे, परन्तु माता कौशल्या भी हठ क्यों करने लगी। यह वही माता कौशल्या तो है जिसके सूक्ष्म एवं सुन्दर विवेकका परिचय महाकविके शब्दोंमें पूर्व ही मिल चुका है—

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधु-बिरोधू॥

यह कहा जा सकता है कि 'बन्धु-विरोध' की सम्भावना अब न थी, परन्तु 'धरम जाइ' वाली बात तो अब भी बनी हुई थी। तुलसीदासजीकी कवितामें कितनी सूक्ष्मता है कि यह ऊपरवाली बहस उनके अन्तरात्मामें है, परन्तु प्रकटरूपमें उनके विचारमें भी नहीं। प्रकटरूपमें तो केवल इतना ही है—

'राम जननि हठ करब कि काऊ।'

अब भरतकी तीसरी युक्ति देखिये—

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमय बाम बिधाता॥
जो हठ करउँ तो निपट कुकरमू। हर-गिरितें गुरु सेवक धरमू॥

आह! इस युक्तिमें तो आशाकी झलक पहलेहीसे नदारद है और कठिनाइयाँ-ही-कठिनाइयाँ हैं। आदर्श अनुचरके लिये हठ करना 'निपट कुकर्म' है। उसे तो अपने व्यक्तित्वको स्वामीके चरणोंपर बलिदान कर देना होता है। आह, आदर्श सेवाधर्म वस्तुतः हर-गिरिसे ज्यादा भारी है। सारांश यह कि भरतकी एक भी युक्ति काम न आयी। महाकविके शब्दोंमें—

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥

कैसी अस्थिरता और कैसी निराशा! रात यों ही बीत गयी और कोई युक्ति मनमें ठहरीतक नहीं। इस समय भरतकी अवस्था लगभग वैसी ही है जैसी हैमलेटकी, और कदाचित् परिणाम भी वही होता—नैराश्यपूर्ण विक्षिप्तता और स्नायविक निर्बलता। परन्तु आगे हम देखेंगे कि भरतके रामपर होनेवाले अटल विश्वासने और स्वयं रामके समस्यासम्बन्धी हलने परिस्थितिको किस प्रकार सँभाल लिया और परिणामस्वरूप आदर्शवादकी विजय हुई। आह! बदनसीब हैमलेटको कोई ऐसा सहारा न मिला था।

* कोठेका किनारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनग्रन्थि तथा कर्म

(लेखक—पं० श्रीलालजी राम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी०)

अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ स ह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥
(ईशावास्योपनिषद्)

हमारा जीवन एक ग्रन्थि है; जो इसको सुलझा लेता है वह शान्तिलाभ करता है, और जो नहीं सुलझा सकता वह सदा भवरोगसे पीड़ित रहता है। जो इस संसारमें आता है वह एक ऐसी उलझनमें पड़ जाता है कि जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती जाती है वह संस्काररूपी बन्धनोंसे जकड़ता हुआ चला जाता है। हमारे संस्कार या प्रसुप्त वासनाएँ ही हमें सदा कर्ममें प्रवृत्त करती हैं और फिर ये कर्म नये संस्कार पैदा कर देते हैं। यही संसारका कारण-कार्यचक्र है। इसका ही उल्लेख बौद्धग्रन्थोंमें प्रतीत्य समुत्पादवादमें किया है। इससे मुक्त होनेकी चेष्टा ही अध्यात्मता है।

जीवनग्रन्थि सुलझानेमें कर्म और ज्ञानका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे ज्ञानसे वासनाओंका विचार करके क्षय होता है वैसे ही कर्मसे वासनाओंका भोग करके क्षय होता है। हमारे दर्शनशास्त्रोंने मुक्ति या शान्तिलाभमें प्रायः ज्ञानको ही प्रधानता दी है। आचार्य शङ्करसे लेकर आज दिनतक जो वेदान्तिक सिद्धान्तोंका प्रचार इस देशमें हुआ उसमें नैष्कर्म्यकी ही प्रधानता है। भगवान् शङ्करने गीतामें भी नैष्कर्म्य-की ही सिद्धि की है। स्वामी विद्यारण्य तथा दूसरे आचार्योंने इस नैष्कर्म्यका प्रतिपादन पूरी तरहसे अपने ग्रन्थोंमें किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त भारतवर्ष कर्म-उपासनाको छोड़ ज्ञानवादी बन गया। शायद यही कारण है कि हम आज कर्म-उपासकोंके दास हैं। इस लेखका उद्देश्य यह बताना है कि कोरे ज्ञानसे न तो वैयक्तिक शान्तिलाभ हो सकती है और न सामाजिक जीवन सुखी हो सकता है।

प्रत्येक व्यक्तिका वैयक्तिक जीवन उसकी वासनाओंसे बना है। हम अपनी वासनाओंके वशीभूत होकर संसारके अनेक कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं तथा सुख और दुःखका उपभोग करते हैं। संसारकी परिस्थितियाँ भी हमारी प्रसुप्त और जाग्रत् वासनाओंके सापेक्ष हैं। वेदान्त-शास्त्रका यह परम सिद्धान्त है कि यह संसार हमारी कल्पनाका रचा हुआ है। हमारी आन्तरिक इच्छाएँ ही संसारी पदार्थोंमें स्फुरित हो जाती हैं। योगवासिष्ठमें संसारकी स्वप्नसे तुलना की है। जैसे स्वप्नपदार्थ हमारी दबी वासनाओंके सापेक्ष हैं वैसे ही संसारके पदार्थ भी हमारी जाग्रत् वासनाओंके सापेक्ष हैं। प्रोफेसर जेम्स तथा ड्यूईका प्रेगमेटिज़्म एक तरहसे इस सिद्धान्तको पुष्ट करता है। प्रेगमेटिज़्मके अनुसार संसारका अनुभव हमारी मानसिक प्रवृत्तियोंपर ही निर्भर है। हमारी भोगेच्छा ही हमारे संसारका निर्माण करती है। तथा वास्तविकता और अवास्तविकता-की कसौटी भी वही है।

आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्रने आज यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा स्वप्न हमारी वासनाओंका स्फुरण-मात्र है। हमारी दबी हुई वासनाएँ हमारे जाग्रत् जीवनमें जब परितृप्ति नहीं पातीं तब स्वप्न-संसारको रचती हैं। पर यह एक ऐसी रचना होती है जो हमारे जाग्रत् मनकी समझमें नहीं आती। वास्तवमें जाग्रत् मनकी नैतिकताके शासनसे बचनेके लिये ही हमारी वासनाएँ अनेक प्रकारके विचित्र रूप धारण करती हैं। डाक्टर फाइडने स्वप्नसंसारकी रचनाका भलीभाँति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन किया है। हमारे व्यक्त मनके सेंसर ऑफ़िससे बचनेके लिये नैतिकतासे दबी हुई वासनाएँ स्वप्नमें प्रकट होते समय वेष बदल लेती हैं और हमको कुछ-का-कुछ दिखायी देता है। हमारा स्पष्ट स्वप्न (Manifest Dream) वास्तविक स्वप्नभावना (Latent Dream) से बिल्कुल भिन्न होता है। और बड़े प्रयाससे ही हम स्पष्ट स्वप्नसे वास्तविक स्वप्नभावनाका पता चला सकते हैं। स्वप्नमें कई एक ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं जिनसे भोक्ताको सुख होता है। और कई एक ऐसी होती हैं कि उनसे भोक्ताको दुःख होता है। कभी-कभी भोक्ता अपनी मृत्युका भी अनुभव स्वप्नमें करता है।

अब शायद यह प्रश्न उठे कि अपनी मृत्युकी इच्छा भला कौन कर सकता है। अपनी मृत्युका स्वप्नमें अनुभव करना तो बिल्कुल अनहोनी घटना है। पर चित्तविश्लेषणशास्त्र (Psychology) बताता है कि मृत्युकी इच्छा भी हमारा अव्यक्त मन कभी-कभी किया करता है। वास्तवमें मृत्यु-इच्छा हमारे अव्यक्त मनकी एक बड़ी उत्कृष्ट इच्छा है। ऐसे ही बीमारियोंसे पीडित होनेकी, दूसरोंद्वारा त्रस्त होनेकी तथा अंगभंगका दुःख सहनेकी इच्छाएँ वैसी ही प्रबल हैं जैसी कि इन्द्रियोंकी तृप्ति, दूसरोंपर अधिकार जमाना या स्वस्थ रहनेकी इच्छाएँ हैं। जबतक हमारी अति संवेगवाली इच्छाओंकी तृप्ति स्वप्नद्वारा नहीं होती तबतक हम सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सकते। डाक्टर फ्राइडका कहना है कि स्वप्न हमारी निद्राको भंग नहीं करता है वरं उसकी रक्षा करता है। जबतक हमारी प्रबल वासनाएँ, स्वप्नमें अपनी आंशिक तृप्ति नहीं पा लेतीं तबतक द्रष्टा निद्राका आनन्द अनुभव नहीं कर सकता। वास्तवमें द्रष्टाकी निद्राकी विश्राम-प्रवृत्ति ही स्वप्नका कारण है।

अब यदि हम इस स्वप्नस्फुरणसिद्धान्तको जाग्रत् जीवके अनुभवके समझनेमें काममें लावें तो निश्चित होता है कि हमारा जाग्रत् जीवन भी स्वप्न-सदृश हमारी प्रसुप्त वासनाओंद्वारा निर्मित है। जैसे द्रष्टाकी प्रवृत्ति सुषुप्तिके आनन्दलाभकी रहती है वैसे ही उसकी प्रवृत्ति तुरीयावस्थाके आनन्दलाभकी भी रहती है और जैसे पहले प्रकारकी प्रवृत्ति स्वप्न-अनुभवका कारण है वैसे ही दूसरे प्रकारकी प्रवृत्ति संसार-अनुभवका कारण है। जैसे स्वप्नके सुख, दुःख तथा मृत्यु हमारी वासनाओंपर ही निर्भर हैं इसी तरहसे जाग्रत् संसारके सुख, दुःख और मृत्यु भी हमारी अव्यक्त वासनाओंपर निर्भर हैं। और जैसे कि स्पष्ट स्वप्न वास्तविक स्वप्नभावनासे भिन्न रहता है वैसे ही हमारे जाग्रत् जीवनका स्पष्ट अनुभव आन्तरिक वासनाओंसे भिन्न है। जैसे डाक्टर फ्राइडने अपनी नयी युक्तिसे स्वप्न-अनुभवका विश्लेषण किया है वैसे ही हमारे महर्षियोंने अध्यात्मशास्त्रसे जाग्रत् जीवनके अनुभवका विश्लेषण कर जाग्रत् जीवनके सिद्धान्त बनाये हैं। दोनोंकी समानता बहुत ही भारी है और इसलिये जीवनग्रन्थि सुलझानेके लिये आधुनिक चित्तविश्लेषणशास्त्रका अध्ययन अति आवश्यक है।

हमारी आत्मा सदा शान्तिमें रहना चाहती है। यही उसकी शान्तिकी लालसा अशान्तिका कारण है। जैसे कि यदि समुद्रमें एक तरंग उठ जाय तो वह दूसरी तरंगके उठानेमें कारण बनती है वैसे ही एक वासना दूसरी वासनाके उठानेमें कारण होती है। पर जैसे कि समुद्रकी शान्त रहनेकी प्रवृत्ति अनेक पर्वताकार तरंगोंकी कारण है वैसे ही आत्माकी शान्त रहनेकी प्रवृत्ति संसारतरंगका कारण है। भौतिकशास्त्रका सिद्धान्त है कि हर एक संसारकी क्रिया अपने बराबरीकी प्रतिक्रिया पैदा करती है। यही कारण है कि एक तरंग यदि समुद्रमें उठे तो फिर वह अनेक तरंग उठा देती है। वैसे ही मनमें एक वासना अनेक वासनाओंका कारण बनती है। अब प्रश्न यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिलाभ कैसे हो। जबतक वासनाओंका वेग प्रबल होता है तबतक चित्त स्थिर नहीं रह सकता और चित्तकी स्थिरता बिना सत्यासत्यविचारके होना असम्भव है।

तब क्या वासनाओंको दबाना ही भवरोग मिटानेका उपाय है ? नहीं। वासनाओंका दबाया जाना सम्भव नहीं। दबी हुई वासना अनेक प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक व्याधि पैदा करती है। यह बात आधुनिक चित्तविश्लेषणशास्त्रने स्थिर की है। जिस व्यक्तिकी संवेगपूर्ण वासनाएँ दबा दी जाती हैं वह विक्षिप्त हो जाता है। उसको उचित-अनुचितका विचार भी नहीं रहता। तब उसका सत्यान्वेषण करना या आत्मज्ञान-लाभ करना कैसे सम्भव है। वासनाओंका प्रतिबन्ध ही हमें ज्ञानोपार्जनमें बाधक होता है। बिना वासनाओंका प्रतिबन्ध हटे आत्मज्ञानप्रकाश होना कठिन है। यदि प्रगाढ़ वासनाओंवाला व्यक्ति तत्त्व-ज्ञान भी कहे तो वह तत्त्वज्ञान भी उसके भोगकी सामग्री हो जाती है। क्या हम नहीं देखते कि जो व्यक्ति वेदान्तसिद्धान्तोंको संसारको भलीभाँति समझा सकता है उसीका हृदय संसारकी छोटी-छोटी घटनाओंसे क्षुब्ध हो जाता है। शोपनहावरने दो प्रकारके तत्त्व-चर्चा करनेवाले बताये हैं—एक तो पोथीपण्डित, दूसरे सत्यान्वेषी। जब हमारी भोगवासनाएँ दबायी जाती हैं तो वे फिर तत्त्वज्ञानको भी अपनी तृप्तिका साधन बनानेकी चेष्टा करती हैं। इस हालतमें हम सिर्फ अपने-आपको धोखा देनेमें ही समर्थ होते हैं, और घोर अन्धकारमें पड़ते हैं। तत्त्वज्ञान-मन्दिरोंमें रहनेपर मेरा अनुभव है कि इन मन्दिरोंके पुजारी भी वैसे ही ईर्ष्या-द्वेष तथा अनेक मानसिक क्लेशोंसे पीड़ित रहते हैं जैसे कि संसारका दूसरा कोई व्यक्ति। इतना ही नहीं, बल्कि उनका पाण्डित्य, उनका रोग और भी असाध्य कर देता है।

भारतवर्षने कर्मकी उपासना छोड़कर जब ज्ञानका अनुशीलन किया तो जड़ताकी प्रबल धारा चल पड़ी। ज्ञानचर्चा-अधिकारी कोई बिरला ही होता है। वैराग्य-के बिना ज्ञानचर्चा बन्धनका कारण बन जाती है। मनुष्य अपने-आपको महात्मा समझने लग जाता है। यह अभिमानी-दम्भी होकर अपने-आपका हनन करता है। इसका चित्त कभी शान्त नहीं रह सकता। यही कारण है कि श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनको गीतामें संसारचक्रसे बाहर निकलनेके लिये कर्मका उपदेश दिया था। और हमारे ऋषियोंके उपनिषदोंमें कर्मकी निन्दा न कर स्तुति की है।

कर्मसे कर्मबन्धन कठिन भी होता है और शिथिल भी होता है। जैसे स्वास्थ्य-उपार्जनमें हम एक विषके हटानेके लिये दूसरे विषका प्रयोग करते हैं वैसे ही आत्मशान्तिलाभ करनेमें कर्मसंस्कारनाश करनेके लिये कर्म करना आवश्यक है। भोग बन्धनका कारण भी है और मुक्तिका भी कारण है। जो भोग जिस उद्देश्यसे होता है उसका फल भी वही होता है। तन्त्रशास्त्रमें इसलिये भोग ही योग-प्राप्तिका उपाय बताया है। तथा योगवासिष्ठमें कर्म और ज्ञान जीवरूपी पक्षीके दो पंख माने हैं। जैसे एक पंखसे पक्षी नहीं उड़ सकता ऐसे ही न तो अकेले ज्ञानसे और न कर्मसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है। हम संसारमें रहकर ही अपनी दबी हुई वासनाओंको जान सकते हैं। जो संसारकी विभूतियोंसे अलग रहकर आत्मलाभ करना चाहता है वह अपने-आपकी कमजोरियाँ जाननेसे वञ्चित रहता है। यदि कोई व्यक्ति अकेले जंगलमें पर्णकुटीमें रहकर यह कहे कि उसने काम, क्रोध, लोभ इत्यादिको जीत लिया है तो यह उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृष्टतामात्र है। हमारी विषय-निर्लिप्तिकी परीक्षा तो उनके सामने रहनेपर ही हो सकती है। ऐसा अभिमान नारद मुनि, शृंगी ऋषि तथा पराशर ऋषिको हुआ था और भगवान्‌ने उनको परिस्थितियोंमें लाकर दिखा दिया कि उनका अभिमान कितना झूठा है।

वास्तवमें संसार हमारी वासनाओंका व्यक्त रूप है। यदि हम संसारसे मुक्त होना चाहते हैं तो वासनाओंसे मुक्त होना चाहिये, न कि कर्मसे। कर्म तो वासनाओंका प्रतिफल है। जो कर्म हमारे सामने आते हैं उन्हें स्वीकार करके ही हम उनसे मुक्ति पा सकते हैं तभी ज्ञानलाभ हो सकता है। हमने दूसरोंसे अनेक प्रकारके लाभ उठाये हैं उनका ऋण चुकाना हमारा परम कर्तव्य है। अपना कर्तव्य किये बिना न तो ज्ञान ही लाभ हो सकता है और न शान्ति प्राप्त हो सकती है। तथा जीवनग्रन्थि सुलझ नहीं सकती। भारतवर्षने कर्मकी अवहेलना की है, इसका ही फल है कि हमारे समाजमें अनेक प्रकारकी कमजोरियाँ आ गयीं और हम पशुवत् हो दूसरोंद्वारा नियन्त्रित हो गये। हमारा तत्त्वज्ञान मिथ्या समझा जाने लगा और हमें न तो अपरोक्षता ही लाभ हुई और न सांसारिक सुख। इतने अनुभवके बाद भी यदि हम कर्त्तव्य-बुद्धि दृढ़ करें तो सुख और शान्तिको प्राप्त हों।

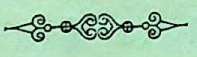

अन्तिम सन्देश

(गीत)

आज भी तुम, श्याम ! सबके
कण्ठके कल-हार हो।
प्रेमियोंके प्राण-मन हो,
प्रेमके उद्गार हो॥
श्याम ! तुमसे क्या कहूँ मैं
आज व्रजकी दुर्दशा।
देख लो चलकर स्वयं ही
जो न अब इतबार हो॥
श्याम ! तुम मानो न मानो
आज मेरी यह कथा।
दृष्टि उनकी बह रही है
अन्ध आँसू-धार हो॥
नाथ ! व्रजको गोपियोंने
भस्म-सा है कर दिया।
अब डुबाना चाहते हैं
अश्रु पारावार हो॥
एक पल भी छोड़ व्रजको
तुम न रहते थे कभी।
आज कैसे छोड़ आये
नाथ ! फिर घर-द्वार हो॥
नाथ ! तुम आये यहाँ थे
विश्वजनको तारने।
आज फिर कैसे उठाये
हाथमें तलवार हो॥
प्रेमका प्रण भूल अपना
आज हो रणमें रमे।
हाय, तुम तो प्रेम-धन हो
विष्णुके अवतार हो॥
कुञ्ज-बन सब छोड़ अपना
आज आये हो कहाँ।
कर्म-रत कबतक रहोगे
प्राणमें जो प्यार हो॥
नाथ ! उनसे क्या कहूँगा
शीघ्र उत्तर दो मुझे।
हाय, कैसे चुप खड़े हो
नाव जब मझधार हो॥

—काजी अशरफ महमूद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमोंका रहस्य

(लेखक—पं० श्रीप्रयागदत्तजी शुक्ल)

उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक—इन चार आश्रमोंके सोलह भेद हैं। उनमें गायत्र, प्राजापत्य, ब्राह्मण और बृहन ये चार ब्रह्मचारी हैं। उपनयन होनेके उपरान्त तीन रात्रि क्षार और लवणरहित भोजन करते हुए गायत्रीमन्त्रका जाप करे। वह 'गायत्र ब्रह्मचारी' है, जो ४८ वर्षोंतक या जबतक तीन वेदोंका अध्ययन समाप्त न करे तबतक वेदाध्ययनके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो ब्रह्मचारी २४ वर्षोंतक गुरु-गृहपर निवास करे वह 'ब्राह्मण ब्रह्मचारी' कहलाता है। 'प्राजापत्य ब्रह्मचारी' वही है जो सदैव ऋतुकालके समयमें स्त्रीगमन करे—परस्त्रीका त्याग करे या ४८ वर्षोंतक गुरु-गृहपर निवास करे। जो ब्रह्मचारी जीवनपर्यन्त गुरुका परित्याग नहीं करता है वह 'नैष्ठिक बृहन ब्रह्मचारी' है।

ब्रह्मचारियोंकी भाँति गृहस्थ भी चार प्रकारके होते हैं—(१) वार्ताकवृत्तिवाला, (२) शालीनवृत्ति, (३) यायावरी और (४) घोर संन्यासी। वार्ताक-वृत्तिवाले गृहस्थका कर्तव्य यही है कि वह अनिन्दित कार्योंको करते हुए पशुपालन, व्यापार और आजीवन परमात्माका यजन एवं उपासना करे। शालीन-वृत्तिका गृहस्थ यज्ञ करता है पर कराता नहीं, अध्ययन करता है पर कराता नहीं, दान देता है पर लेता नहीं। इस प्रकार जीवनपर्यन्त परमात्माका यजन या प्रार्थना करता है। यायावरी गृहस्थ यज्ञ करता है और कराता है, अध्ययन करता है और कराता है, दान देता है पर लेता भी है और जीवन-पर्यन्त परमात्माका यजन और प्रार्थना करता है। घोर संन्यासी गृहस्थ जो प्रतिदिन उञ्छवृत्ति (मार्गमें या बाजारमें बिखरे अन्नोंको चुन करके) द्वारा आजीविका करता है। इसी प्रकार जीवनपर्यन्त परमात्माका यजन या प्रार्थना करता है।

गृहस्थ

इसके पश्चात् वानप्रस्थ भी चार प्रकारके होते हैं—(१) वैखानस, (२) उदुम्बर, (३) बालखिल्य और (४) फेनप। वैखानस वानप्रस्थका कर्तव्य यही है कि अग्निकी परिचर्या करते हुए पञ्चमहायज्ञ करे और ईश्वर-चिन्तनमें काल व्यतीत करे। उदुम्बर वानप्रस्थी प्रातःकाल उठकर दिशाओंको देखते हुए—उन्हीं दिशाओंमें चुने हुए ऊमर, बेर आदि फलोंसे पञ्चमहायज्ञ करते हुए ईश्वरचिन्तन करे। बालखिल्य वानप्रस्थी जटाधारण, वस्त्र, चर्म या वल्कलसे आच्छादित, कार्तिकी पौर्णिमामें शेष रहे पुष्प-फलोंको त्याग देनेवाला, बाकीके ८ मासोंके लिये पुष्पफल सम्पादन करनेवाला, अग्निकी परिचर्या करनेवाला, पञ्चमहायज्ञोंको करते हुए प्रार्थना करता रहता है। फेनपका लक्षण यही है कि उन्मत्तके समान सूखे हुए पत्र या फलोंका भोजन करता है। वह भी अग्निकी परिचर्या, पञ्चमहायज्ञ और ईश्वरचिन्तन करता है।

वानप्रस्थ

इसी भाँति परिव्राजक भी चार प्रकारके हैं—(१) कुटीचक, (२) बहूदक, (३) हंस और (४) परमहंस। प्रथम परिव्राजक अपने पुत्रके घरसे भिक्षा माँगकर परमात्माकी प्रार्थना करता है। द्वितीय श्रेणीके परिव्राजक वे हैं जो त्रिदण्ड, कमण्डलु, कौपीन, पादुका, आसन, शिखा, यज्ञोपवीत धारण करते हैं

परिव्राजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सदाचारी ब्राह्मणोंके गृहमें भोजन करते हैं। हंस परिव्राजक एक दण्डधारी, कमण्डलु हाथमें धारण करनेवाले, ग्रामोंमें एक रात्रि तथा नगर या तीर्थोंमें पञ्च रात्रि वास करते हैं। वे उपवास, चान्द्रायणादि कर्मोंको करते हुए परमात्माका चिन्तन करते हैं। इतना सब हो चुकनेपर वे योगी उस अवस्थामें पहुँचते हैं जो परमहंस कहलाते हैं। अर्थात् इसका सर्वसाधारण नियम यही है कि द्विज ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। गृहस्थका कर्तव्य पालन करनेपर वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करे।

परमहंस

इतना हो जानेपर या करनेपर वह जीव स्वाभाविक ही उस अवस्थामें पहुँच जाता है जिसे परमहंस परिव्राजक कहते हैं। यह जगत्के आश्रमोंकी अन्तिम सीढ़ी है। वह सद्गुरुके दर्शित मार्गद्वारा *'तत्त्वमसि'* इस महावाक्यका चिन्तन करता है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, दम्भ, दर्प, ममता, असूया, द्वेष और हर्षको हटा देता है। ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा और सत्यकी रक्षामें सदैव तत्पर रहता है। शरीर धारण करनेके निमित्त केवल त्रिवर्णोंके यहाँसे एक स्थानमें माँगी हुई मधुकरीपर निर्वाह करता है। कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड, कमण्डलु आदि जलमें फेंककर नग्न होकर विचरता है।

परमहंसका आत्मज्ञान ही यज्ञोपवीत है। ध्यान-निष्ठा ही शिखा है। वे ब्राह्मण, ब्रह्मनिष्ठापरायण, देवऋषि, तपस्वी, श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ, परमहंस ही जगद्गुरु हैं। अन्तमें यही परमहंस 'पूर्णानन्द ब्रह्म' हो जाता है। भगवान् शङ्कराचार्यने सारे उपनिषदोंका सार निम्नलिखित वाक्यमें कह डाला है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः॥

अर्थात् 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव और ब्रह्म भिन्न नहीं हैं—यही बात सत्शास्त्र भी कहते हैं। यही सब उपनिषदोंका सार है।'

है भूतका-सा डेरा

उठ जाग रे मुसाफिर ! अब हो गया सबेरा।
गल्तीको देखते ही, गफलतने आन घेरा॥

जिसको कहे तू मेरा, कोई नहीं है तेरा।
ये है सरायफानी, चिड़िया है घर बसेरा॥

भाई कुटुँब कबीला, झूठा है सब घनेरा।
मैं-मैंके गर्वमें ही, मेरा रहा न तेरा॥

यौवनपर और धनपर, करना गुमान नाहक।
है चाँदनी ये दो दिन, आखिरको फिर अँधेरा॥

कर-करके काम दोजख, भरता फिरा है हरदम।
जितनी भभूत तेरी, है भूतका-सा डेरा॥

—सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त-गाथा

जोग परमानन्द

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

मुखजितशरदिन्दुः केलिलावण्यसिन्धुः करविनिहितकन्दुर्वल्लवीप्राणबन्धुः।
वपुरुपसृतरेणुः कक्षनिक्षिप्तवेणुर्वचनवशगधेनुः पातु मां नन्दसूनुः॥

सन्त-महात्मा परमात्माके व्यक्तस्वरूप हैं। संसारमें सन्त-महात्माओंके द्वारा अपना दिव्य सन्देश परमात्मा सुनाया करते हैं। सन्त मायातीत होते हैं, मुक्त होते हैं। जगत्‌की कोई ममता, कोई सम्बन्ध उन्हें बाँध नहीं सकता। संसारमें रहते हुए भी वे संसारसे परे होते हैं। प्रभु दयाकर संसारमें सन्त-महात्माओंको इसलिये भेजते हैं कि हम उनकी वाणी सुनकर अपने जीवनको धन्य बनावें, उनके पावन चरणोंका दर्शनकर कृतार्थ हों। सन्त-महात्माओंकी यह अपार अहैतुकी दया ही है कि वे हम संसारी जनोंके हितकी चिन्ता रखते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने सन्त-हृदयकी नवनीतसे तुलना करके पीछे बतलाया है कि मक्खन तो स्वयं तप्त होनेपर पिघलता है, परन्तु सन्तजन परदुःखसे दुखी होते हैं। संसारके प्राणियोंको भवतापतापित देखकर सन्तजनोंका हृदय पिघल जाता है और वे अपने आचरण, वाणी, उपदेशसे लोगोंको संसारकी ज्वालासे बचानेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे निरपेक्ष, शान्त, निर्वैर और समदर्शी सन्तकी प्रशंसामें भगवान्‌ने भक्त उद्धवसे कहा है—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम॥

'ऐसे किसी वस्तुकी इच्छा न रखनेवाले, शान्त-चित्त, निर्वैर, सर्वत्र समभावसे मुझको देखनेवाले और निरन्तर मेरा मनन करनेवाले प्रेमी भक्तोंकी चरणरज-से अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं सदा-सर्वदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ। मुझमें चित्तको अनुरक्त कर रखनेवाले, सर्वस्व मुझको अर्पण करके अकिञ्चन बने हुए ऐसे शान्त, और मेरे नाते सब जीवोंके प्रति स्नेह करनेवाले तथा सब प्रकारकी कामनाओंसे शून्य हृदयवाले महात्मा जिस परम सुखका अनुभव करते हैं उस निरपेक्ष परमानन्दको दूसरे लोग नहीं जानते।'

दक्षिण भारतके बरसी नामके एक गाँवमें भक्त परमानन्दका जन्म हुआ था। बहुत बचपनसे ही प्रभुके गुण-श्रवण, नाम-स्मरण-कीर्त्तनमें इनका चित्त लगने लगा था। जब ये छोटे बालक थे, इनके गाँवमें हरिकथा और हरि-संकीर्त्तन हुआ करता था, जिसमें ये नित्य नियमपूर्वक शामिल होते थे। इन्हें हरिकथा तथा कीर्तनका एक प्रकारका चसका लग गया था। कभी-कभी रातको देरतक जब कथा और कीर्त्तन होता रहता तो ये भूख-प्यास भुलाकर मन्त्रमुग्ध-से होकर सुना करते थे। प्रभु जिसपर दया करते हैं उसे ही अपनी भक्तिका वरदान देते हैं।

एक दिनकी बात है। रात बहुत बीत चुकी थी फिर भी कथा चल रही थी। भक्तजन प्रेम-विमुग्ध होकर रसपान कर रहे थे। परमानन्द भी आँख मूँदे ध्यानमें मस्त हो रहे थे। त्रिभुवनमोहन श्यामसुन्दरकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलोनी साँवरी सूरतकी छविका वर्णन हो रहा था तथा व्यासजी महाराज प्रेम-विभोर होकर श्रोताओं-के हृदयमें अमृत बरसा रहे थे। वर्णन करते-करते वे उस रूपके जादूपर मुग्ध होकर आनन्दप्लुत होकर गा उठे—

मैं अपनों मन हरिसों जोरयो।
हरिसों जोर सबनसों तोरयो मैं अपनों मन हरिसों जोरयो॥
नाच नच्यो तब घूँघट कैसो लोकलाज डर पटक पिछोरयो।
कहनो होय सो कहो सखी री कहा भयो काहू मुख मोरयो॥
नवललाल गिरिधरन पियासँग प्रेम-रंगमें यह तन बोरयो।
.....प्रभु लोग हसन दे लोक-बेद तिनका ज्यों तोरयो॥

आज परमानन्दके आनन्दका क्या ठिकाना! आनन्दमें उनका हृदय झूम उठा। एक बार उन्होंने जब आँखें खोलीं तो सामने देखा कि वही अलौकिक छवि परमानन्दको अपनेमें मिला लेनेके लिये मधुर-मधुर सङ्केत दे रही है। आँखें रूपका मधु पीकर झँप गयीं और भीतर पुनः वही रासका महामिलन! आज जोग परमानन्दके घूँघटका पट हट गया है—वे भीतर-ही-भीतर प्रभुके मिलनके रसमें सराबोर हैं। वे प्रत्यक्ष देख रहे हैं, दृढ़तापूर्वक अनुभव कर रहे हैं कि प्रभुजी आये हुए हैं और परमानन्दको अपनी छातीमें सटाकर आँसुओंसे नहला रहे हैं—करकमलोंसे धीरे-धीरे सहला रहे हैं। प्रभुजीके आँसू परमानन्दके मस्तकको भिगोकर कृतार्थ कर रहे हैं और परमानन्दकी अश्रु-धारा अविरलरूपसे प्रवाहित होकर प्रभुजीके चरणोंको पखार रही है। इस आनन्दका क्या कहना? भीतर-बाहर समानरूपसे प्रभुके मधुर-मधुर स्पर्शकी दिव्य अनुभूति हो रही है। ऐसे सुन्दर अवसरपर प्रभुकी आरती करनेके लिये परमानन्दका मन ललचा उठा। फिर क्या था—

आरती जुगलकिशोरकी कीजै।
तन-मन-धन न्यौछावर दीजै॥
गौर स्याम मुख निरखत जीजै।
प्रेम-सरूप नैन भर पीजै॥
रबि ससि कोटि बदनकी सोभा।
ताहि देखि मेरो मन लोभा॥
नंद नँदन वृषभानुकिसोरी।
.....प्रभु अविचल जोरी॥

जोग परमानन्दको लोग अब पागल कहने लगे। जगत्‌की दृष्टिमें तो भक्त पागल है ही। परन्तु इस पागलपनका स्वाद जिसे एक क्षणके लिये भी मिल गया फिर वह इसे छोड़कर होशमें आने ही क्यों लगा? संसारकी दृष्टिमें जो कुशल-चतुर है उसे ही संसार चाहता है। संग्रह-परिग्रहका भूखा संसार संग्रही-परिग्रहीकी ही पूजा करता है! परमानन्दको जगत्‌की मान-बड़ाईसे क्या मतलब था? संसारने उनकी ओरसे आँखें फेर लीं, यह उनके लिये कल्याणकारी ही हुआ। प्रभु जिसपर दया करते हैं उसे ही संसार-की दृष्टिमें पागल बना देते हैं। संसार ऐसे पागलों-की ओरसे आँखें फेर लेता है और पागल भक्त एक-निष्ठ होकर संसारकी विघ्न-बाधाओंसे मुक्त होकर एकान्तभावसे अपने प्रियतम परमात्माकी परिचर्या करता है। परमानन्दका भी, बस, अब एक ही काम रहा—संसारकी ओरसे आँखें मूँदकर सर्वान्तःकरणसे प्रभुकी पूजा-अर्चा करना। राम, कृष्ण, नारायणके सिवा वे जिह्वापर एक भी शब्द आने नहीं देते थे। परमात्माकी मूर्तिके सिवा मनमें कुछ आता ही नहीं था। नाम-स्मरण, हरि-कीर्तन और अहर्निश भजन—बस, यही उनका एकमात्र काम था। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस, प्रभुका स्मरण, प्रभुका चिन्तन और प्रभुका गुणगान। सदैव प्रभुकी मधुर मूर्ति सामने रहती थी और एकोन्मुखी होकर सारी वृत्तियाँ प्रभुके चरणोंमें प्रवाहित हो रही थीं।

नाम-स्मरणका चसका लगना बड़ा ही कठिन है, पर जहाँ एक बार यह चसका लगा फिर एक पल भी नामसे खाली नहीं जाता। श्रीतुकारामजी महाराज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने नाम-स्मरणकी बड़ी ही मधुर व्याख्या की है। वे कहते हैं—नाम-स्मरण यह है कि चित्तमें रूपका ध्यान हो और मुखमें नामका जप हो। अन्तःकरणमें ध्यान जमता जाय, ध्यानमें चित्त रँगता जाय, चित्त-की तन्मयता होती जाय, यही वाणीमें नामके बैठ जानेका लक्षण है। परमानन्दको नाम-स्मरणका ऐसा चसका लगा कि एक क्षणके लिये भी वे नाम-रसपान करनेसे हटते न थे। भजनका वियोग भक्तके लिये कैसे सह्य हो? श्रीमद्भागवतमें कहा है—

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥

'यदि भगवान्‌के भक्तसे कहा जाय कि तुम आधे क्षण या आधे निमेषके लिये भी भगवच्चरणोंका चिन्तन छोड़ दो और त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवको ले लो तो वह इस बातको भी स्वीकार नहीं करता। उसका चित्तरूपी भ्रमर तो अचञ्चलरूपसे भगवान्‌के उन चारु चरण-कमलोंमें ही लगा रहता है जिनको निरन्तर ध्यानपूर्वक खोजनेपर भी देवता नहीं पा सकते। ऐसा वह भक्त कुछ भी नहीं चाहता।'

जोग परमानन्द प्रभुका षोडशोपचार पूजन करते तथा नित्य-नियमपूर्वक मूर्तिके सम्मुख सात सौ बार साष्टाङ्ग नमस्कार करते। यही उनका नियम था। आँखोंसे दिव्य भगवद्विग्रह देखना और उसके जलसे उसे नहलाना, कानोंसे भगवद्गुण सुनना, जिह्वासे भगवद्-गुणोंको गाना, नाकसे भगवान्‌के दिव्य गन्धको लेना, हाथोंसे प्रभुकी अर्चा करना, पैरोंसे कीर्त्तन-स्थान तथा कथाओं और तीर्थोंमें जाना, मस्तकसे प्रभुके चरणोंमें प्रणिपात करना—यही परमानन्दकी एकमात्र दैनिक चर्या थी! उनका यह नियम था कि श्रीमद्भगवद्गीता-के एक श्लोकका उच्चारण करना और देवताके चरणों-में साष्टाङ्ग प्रणिपात करना। इस प्रकार अठारहों अध्यायके कुल सात सौ श्लोकोंको वे उच्चारण करते जाते थे और परमात्माके दिव्य विग्रहके सम्मुख साष्टाङ्ग प्रणाम करते जाते थे। ये सात सौ नमस्कार कर चुकने-पर ही वे भिक्षामें प्राप्त अन्नको ग्रहण करते थे। धर्म-ग्रन्थोंमें यह बात आती है कि पूजन और यज्ञ किये बिना ही जो अन्न-जल ग्रहण करता है वह पाप खाता है और वह व्यक्ति शूकरके समान है।

इस कलिकालमें प्रभुके नामस्मरणके सिवा और कोई साधन है ही नहीं। शरीरसे संसारका कार्य करते हुए भी मनको प्रभुमें लगाये रखना तथा मनसे परमात्माका स्मरण-चिन्तन करते रहना यही हम संसारी पुरुषोंके लिये साधन है—ऐसा जोग परमानन्द-ने बतलाया है। इसे ही गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

करसों करम करिय बिधि नाना। मन राखिय जहँ कृपानिधाना॥

मन यदि पूर्णतया प्रभुके रंगमें रँग जाय, यदि सर्वान्तःकरणसे हरिमें एकरूपता स्थापित हो जाय तो सारे कर्म और व्यापार यज्ञके रूपमें परिणत हो जाते हैं और वे स्वतः श्रीकृष्णार्पण होते जाते हैं, उन्हें श्रीकृष्णार्पण करना नहीं पड़ता। इसका मुख्य हेतु यह है कि बुद्धि जब श्रीकृष्णार्पण हो गयी तो सारे व्यापार प्रभुकी उपासनाके रूपमें ही व्यक्त होंगे। संसारमें मन न बसाकर प्रभुमें इसे बसाना और प्रभुकी पूजा समझकर समग्र कर्मको योगस्थ होकर निर्लिप्तभावसे करते जाना—यही परमानन्दजीका उपदेश है और यही उपदेश हमारे ऋषि-मुनियोंके भी हैं।

सात सौ बार साष्टाङ्ग प्रणिपात करना और गीताजीके सात सौ श्लोकोंका पारायण करना साधारण बात नहीं है। भक्त तो चाहता है कि वह बराबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभुका रूप निरखा करे और उसका मस्तक सदैव प्रभुके चरणोंमें लोटता रहे। उसे इसीमें आनन्द आता है। एक समयकी बात है। सावन-भादोंका महीना था। पानी अभी खूब ज़ोरसे बरस चुका था। आकाशमें अब भी मेघ छाये हुए थे। पृथ्वीपर कीचड़ हो गया था। परन्तु परमानन्द श्रीपाण्डुरङ्गजीके मन्दिरके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते जा रहे थे और उनका सारा शरीर कीचड़से लथपथ हो गया था, शरीरकी ओर तो उनका ध्यान ही न था। वे नमस्कार करने तथा गीताके श्लोकोंको उच्चारण करनेमें इतने व्यस्त थे कि कहाँ क्या हो रहा है, इसका उन्हें पतातक न था और उनका शरीर तथा कपड़े कीचड़में गन्दे हो रहे हैं इसका भी उन्हें ध्यान नहीं हुआ।

एक साहूकार उसी दिन वहाँ बाजार करने आया था। परमानन्दकी तितिक्षा और वैराग्य देखकर उसे उनपर बड़ी श्रद्धा हुई। रेशमी कपड़ेका एक थान लेकर वह जोग परमानन्दजीकी सेवामें उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर विनय और आदरके साथ प्रार्थना करने लगा—'महात्मन्! यह मेरी तुच्छ सेवा स्वीकार कर लें तो मुझपर बड़ा अनुग्रह हो।' जोग परनानन्दने कोमल शब्दोंमें जिससे उस व्यापारीके चित्तको व्यथा न हो, कहा—मुझे इन सुन्दर वस्त्रोंसे क्या काम? मेरे लिये तो फटे चिथड़े ही पर्याप्त हैं। इस बहुमूल्य वस्त्रको भगवान् श्रीपाण्डुरङ्गके चरणोंमें चढ़ा आओ। सारे आनन्द और सौन्दर्यके वे ही भोक्ता हैं। उनकी सेवा करके जीवन कृतार्थ करो। मेरे लिये तो भिक्षाका अन्न और रास्तेमें पड़े हुए फटे चिथड़े ही प्रभुकी दयासे बहुत सुखदायक हैं। सुन्दर वस्तुएँ तो श्रीरुक्मिणीवल्लभकी सेवामें समर्पित होनी चाहिये। जोग परमानन्दजीने व्यापारीको लाख समझाया, परन्तु उसने तो हठ कर ली थी कि रेशमी थान वह परमानन्दकी सेवामें ही अर्पित करेगा। भक्त किसीके चित्तको दुखी नहीं करते, क्योंकि समग्र सृष्टिमें उनकी भगवद्बुद्धि रहती है और समस्त संसार के चर-अचरको वे अपने प्रियतम प्राणनाथकी प्रतिमूर्त्ति मानते हैं। इसी कारण बाध्य होकर परमानन्दने रेशमी थान स्वीकार कर लिये।

आज परमानन्दने रेशमी वस्त्र धारण किये हैं। आज भी जोरोंकी वर्षा हो रही है और श्रीपाण्डुरङ्गजीके मन्दिरके सामनेकी जमीन कीचड़से भरी पड़ी है। मेघ अब भी झमाझम बरस रहे हैं। आज परमानन्दने अपने वस्त्र नीचेसे समेट लिये जिसमें साष्टाङ्ग नमस्कार करते समय कीचड़में पड़कर वस्त्र गन्दा न हो जाय। आजसे पूर्व परमानन्दको इस प्रकारका सङ्कोच कभी नहीं हुआ था। संसारके स्पर्शमें जो भी आया उसे संसारने अपने पंजेमें ले लिया। बड़े-बड़े सन्त-महात्मा, साधु-संन्यासी, ऋषि-मुनि जैसे ही संसारका संग्रह करने लगे वैसे ही संसारने उनके मुँहपर कालिख पोती।

काजलकी कोठरीमें कितनोहू सयानो जाय।
एक लीक काजलकी लागिहै पै लागिहै॥

यह संसार तो काजलकी कोठरी है। कितना भी चतुर कोई क्यों न हो इसमें जानेवालेको कालिख कहीं-न-कहीं अवश्य लगेगी। परमानन्द-जैसे वैराग्यसम्पन्न महात्माको भी रेशमी वस्त्रकी बहुमूल्यता आज मुग्ध कर रही है और खुलकर नमस्कार करनेमें उन्हें सङ्कोच हो रहा है। भोगोंकी गन्धमात्रसे ही मनुष्य पतित हो जाता है!

परमानन्द नमस्कार करते जा रहे थे, परन्तु आज उनका ध्यान श्रीपाण्डुरङ्गकी मनोहर मूर्तिपर न था—आज बार-बार उनकी आँखें रेशमी वस्त्र पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चली जाती थीं कि कहीं कपड़ा गन्दा तो नहीं हो रहा है ! भगवान् भक्तकी परीक्षा भी लेते हैं और उस परीक्षामें सफल होनेकी उसे शक्ति भी देते हैं। भक्तने रेशमी वस्त्रमें छिपे हुए अपने शत्रुको परख ही तो लिया ! जब शत्रु परखमें आ गया तब तो आधा काम हो गया। आज यह रेशमी वस्त्र मेरी निष्ठाको भङ्ग करनेपर तुला हुआ है, इसलिये इसका ही पहले अन्त कर देना होगा। साधक, जो सच्चे हृदयसे प्रभुकी खोज कर रहे हैं, बड़े-से-बड़े प्रलोभन और आकर्षणको ठुकरा देते हैं और आँख फेरकर उस ओर देखतेतक नहीं। अस्तु

परमानन्दको अपनी भूलपर भारी-दुःख हुआ। इसके प्रायश्चित्तस्वरूप उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने शरीरको यथेष्ट दण्ड दिये बिना न मानेंगे। उन्होंने अपने रेशमी कपड़ेके टूक-टूक करके फेंक दिये तथा दो बैलोंको जुतवाकर अपनेको सर्वथा नग्नकर उसमें बाँध दिया। बैल परमानन्दके शरीरको जङ्गलके कण्टकमय मार्गकी ओर लेकर भागे। परमानन्दका सारा शरीर काँटोंसे बिंध गया तथा खूनकी धारा बहने लगी। वे 'हरि-हरि' कहते जाते थे। शरीरको जितना ही कष्ट होता था उतने ही प्रेमसे वे प्रभुके नामका स्मरण करते जाते थे। कष्टकी पराकाष्ठा हो चुकी थी। जो भक्त प्रभुको प्राणोंसे भी प्यारे हैं, उनके कष्टको प्रभु भला, कैसे सहन कर सकते हैं। जिन्होंने डूबते हुए गजराजको उबारा, द्रौपदीकी लाज रक्खी, प्रह्लादकी रक्षा की; वही भक्तवत्सल भगवान् आज परमानन्दको कैसे बिसारते ? भगवान् सब कुछ सहन कर सकते हैं, परन्तु भक्तोंका कष्ट उनसे नहीं सहा जाता ! उनका नाम ही भक्तवत्सल है। भक्तोंको कष्टमें देखकर प्रभुका हृदय द्रवित हो जाता है और वे एक क्षणका विलम्ब भी सह नहीं सकते ! अस्तु, ग्वालेके रूपमें प्रभु प्रकट हुए। उन्होंने बैलोंके जूएमें बँधे हुए परमानन्दके रक्तप्लावित शरीरको पहले खोल दिया और पुनः अपने कोमल करोंसे उसे सहलाया। सारे शरीरको अपने दिव्य स्पर्शके द्वारा दिव्य कर दिया। जोग परमानन्दका सारा शरीर देवताका हो गया। प्रभु अपने भक्तके पूर्व कष्टका स्मरण कर उसे पुचकारने लगे। वे बार-बार परमानन्दसे कहने लगे—'अरे, तुमने इतना भीषण कष्ट क्यों मोल लिया ? भला तुम्हारा अपराध ही कौन-सा था कि इस प्रकार अपने शरीरको कष्ट दिया। तुम तो मेरे परमप्रिय भक्त हो। तुम जो कुछ भी खाते-पीते हो वह मेरे ही मुखमें जाता है। तुम जो पद-सञ्चरण करते हो वह मेरी ही प्रदिक्षणा होती है। तुम जो भी बातें करते हो वह मेरी स्तुति-प्रार्थना है। जब तुम सुखसे लेट जाते हो तो मेरे चरणोंमें तुम्हारा साष्टाङ्ग हो जाता है। इस भीषण कष्टका वरण कर तुमने मेरे हृदयको रुला दिया।' प्रभु भक्तकी विह्वलतापर कातर हो रहे थे। आज परमानन्दकी तपस्या सफल हुई। प्रभुने उन्हें उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। इस भाग्यका क्या कहना ? आज परमानन्द प्रभुसे मिलकर प्रभुमें मिल गये—प्रभुमें एकाकार हो गये। प्रभुने अपने हृदयके भीतर अपने भक्तको छिपा लिया !!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखकी खोजमें

(लेखक—पं० श्रीभैरवदत्तजी)

'अशान्तस्य कुतः सुखम्'

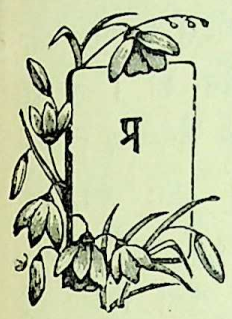

प्रत्येक मनुष्यका ध्येय चाहे वह पण्डित हो वा मूर्ख, धनी हो वा निर्धन, राजा हो वा रङ्क, दानी हो वा भिक्षुक, विरागी हो वा रागी सुख-अन्वेषण करना है। सभी चाहते हैं कि हम और हमारे परिजन सुखी रहें। इसी सुखकी खोजमें अपनी बुद्धि-प्रतिभानुसार सभी प्रयत्नशील रहते हैं। इसी सुखकी प्राप्तिके लिये तपस्वी तप करता है, दानी दान देता है, यात्रीगण तीर्थयात्रा करते हैं, वीर वीरता दिखाता है। इसी सुखकी प्राप्तिके लिये राजा दिग्विजय करता है। संसारके सभी आदान-प्रदान इसी सुखकी खोजमें होते हैं। इसी सुखकी खोजमें चोर चोरी करता है, व्यभिचारी व्यभिचार करता है। दुखी मनुष्य इसी सुखकी आकाङ्क्षासे गरलपान करता है और सुखी व्यक्ति इसीको चाहनेके लिये अमरत्व चाहता है। संक्षेपतः दुनियाके सारे पाप और पुण्य इसी सुखकी खोजमें होते रहते हैं। जो व्यक्ति वस्तुतः इसे पा लेता है, उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। जो इसे नहीं पाता वह विश्वके वैभवमें रहते हुए भी तड़पता रहता है। अतः एक दूसरेकी दृष्टिमें सब अपेक्षाकृत सुखी होते हुए भी दुःखी प्रतीत होते हैं। सुखकी समुचित सामग्री रहते हुए भी तृष्णाकी भीषण ज्वालासे सबका अन्तःकरण एक ही समानुपातमें झुलस रहा है। तृष्णाकी परिधि क्षितिजकी भाँति सबसे तुल्य दूरीपर होनेके कारण तज्जन्य दुःखकी धीमी गहरी वेदना सबके हृदयमें तुल्यरूपसे विद्यमान रहती है। जैसे किसी समाधिस्थलमें स्त्री-पुरुष, शत्रु-मित्र, योगी-भोगी, राजा-रङ्क तथा वीर-कायर, सब मिले-गुँथे बिना किसी भेद-भावके एक ही प्रकारकी मिट्टीके ढेरमें अवशेषित रहते हैं और सौन्दर्य, शक्ति तथा यौवन जराजर्जरित जीर्णता, दुर्बलता और अङ्ग-भङ्गताके साथ सम्मिलित होकर बिना भेदके उसी मिट्टीमें समाविष्ट हो जाती हैं। और जैसे सभी प्रकारके वैभव तथा सौन्दर्यसे पोषित शरीर चिताकी ज्वालामें बिना किसी वैषम्यके सौन्दर्यहीन टूटे-सूखे शरीरकी तरह जलकर राख हो जाता है, ठीक इसी प्रकार ऊँच-नीच, वैभव और वैभव-हीनताका खयाल न करते हुए तृष्णाकी भीषण ज्वाला सबके शरीरमें उसी समानुपातसे जल रही है। तपस्वी-को प्रखर तपकी, दानीको दानाधिक्यकी, चोरको क्षणिक सुखकी, दुखीको दुःखमुक्तिकी और क्षणिक सुखीको उसे चिरस्थायी रखनेकी तृष्णा तुल्यरूपसे ही कष्ट दे रही है। अभिलाषाका आधिक्य चाहे वह किसी प्रकारका क्यों न हो तृष्णाका ही वर्धन करना है। इससे दुःख घटनेके बजाय बढ़ता ही रहता है। जैसे दीपकरागसे झुलसे हुए मनुष्यको विश्वके सब कृत्रिम शीतप्रतिकार दुःखवर्धन ही करते हैं, उसे तो केवल मलाररागके ही आलापसे शान्ति सम्भव है, ऐसे ही तृष्णासन्तप्त शरीर भी अन्य उपचारोंसे शान्ति नहीं पाता, उसे तो सन्तोषसरिताके पावन सलिलके ही अवगाहनसे शान्ति मिल सकती है। अब विचारणीय प्रश्न यही है कि सन्तोष कैसे लब्ध हो। इसी सन्तोषको प्राप्त करनेके लिये तपस्वी तप करता है, दानी दान देता है, राजा दिग्विजय प्राप्त करता है। यही विद्वानोंकी विद्वत्ता है, वेदोंका सार है। इसीको पानेसे चोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोरीका, व्यभिचारी व्यभिचारका प्रायश्चित्त करता है। यही ऋषि-मुनियोंकी तपस्याका फल है। जो इस सन्तोषको प्राप्त कर लेता है वह सुखके साम्राज्यको खरीद लेता है। उसके पाससे दुःख उसी प्रकार भागता है जैसे अन्धकार प्रकाशसे, अविवेक ज्ञानसे और छल-छद्म सत्यसे। उसी सन्तोषरूपी रामको प्राप्त करना विश्वकी निधि प्राप्त करना है। यह कैसे लब्ध हो यही आगे प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया जायगा।

जैसे अभिनयकुशल आचार्य नाटकमें पात्रोंका समावेश उनकी योग्यताके आधारपर, निर्धारित करता है तथा किसी विशेष महोत्सवके अधिनायक स्वयंसेवकोंका चुनाव उनकी योग्यताके आधारपर निर्धारित करता है ठीक इसी प्रकार इस संसारके क्रीडाक्षेत्रमें इस विश्वकी लीलाभूमिमें इसका अधिनायक नियन्ता ईश्वर वा इसकी अधिष्ठातृदेवी, नियामिका प्रकृतिदेवी भी संसारके पात्रोंका समावेश उनकी बुद्धि-प्रतिभा, कर्तव्याकर्तव्यके ही आधारपर निर्धारित करती है। आचार्य, सेनानायक तथा अधिनायक मनुष्य होनेके कारण अदूरदर्शी, अल्पज्ञ, रागद्वेषयुक्त हो सकते हैं तथा अपने पात्रविन्यासमें भूल और गलती कर सकते हैं। परन्तु ईश्वर वा प्रकृतिसे यह भूल सम्भव नहीं। अतः जैसे विज्ञ पात्र, गुणी सैनिक और सच्चा स्वयंसेवक अपने अधिनायकोंके निर्धारणमें तनिक भी अड़चन न डालकर तन-मन-धन (मनसा-वाचा-कर्मणा) से आज्ञापालनमें संलग्न रहते हैं; ऐसे ही इस संसारक्षेत्रके विवेकी ज्ञानी पात्र जैसे जिस परिस्थितिमें आ गिरते हैं उसे सम्यग् बिना किसी रागद्वेषके निभाते चले जाते हैं। उससे जो असन्तोष करता है वह अपने कर्तव्यको भूलता है। जैसे नाटक तभी नाटक कहलाता है जब उसमें जीवनकी अथवा समाजकी किसी भी घटनाका सच्चा चित्रण हो। ऐसा होनेपर अवश्य ही वह वैषम्ययुक्त होगा। इस वैषम्यके हटानेसे एक ही पात्रकी पात्रताके चित्रणसे नाटकका नाटकत्व ही लुप्त हो जाता है। आप-हम कभी ऐसे नाटककी प्रशंसा नहीं कर सकते जिसमें आदिसे अन्ततक एक व्यक्तिका, एक ही अवस्थाका वर्णन हो। उसकी विभिन्न पात्रता तथा उसमें जीवनके वैषम्यका चित्रण ही हमारे आकर्षणका कारण है। अतः जब यह नियत है कि नाटकमें विभिन्न पात्र हों, उसमें जीवनकी वा समाजकी विषमताका सच्चा चित्रण हो तब यह भी नियत है कि सब स्थानोंकी पूर्तिके लिये तत्तत्पात्र होने चाहिये। अतः यदि पात्र आपसमें लड़ने लगें कि मैं राजा ही बनूँगा, मैं रानी ही बनूँगी, दास-दासीका पार्ट हम नहीं लेंगे तो नाटक वहीं समाप्त हो जायगा क्योंकि यह सम्भव नहीं। प्रथम तो राजा वा रानीका पार्ट एक ही व्यक्ति कर सकता है; दूसरेमें प्रत्येक पात्रके विभिन्न प्रकारकी योग्यता आवश्यक है जो सबमें सम्भव नहीं। ऐसी परिस्थितिमें योग्य आचार्यका कर्तव्य होता है कि पात्रकी योग्यता आदिका भलीभाँति निरीक्षण कर उसे उसके योग्य पात्रका स्थान दिया जाय। ऐसा करनेसे ही नाटक सफल होगा और पात्रका उपहास भी नहीं हो सकता। अतएव पात्रोंका भी कर्तव्य यह है कि बिना किसी ऊहापोह अपनेको योग्य आचार्यके अर्पण कर दें और आचार्य जैसे वा जिस स्थानपर उनका नियोग करें उसे तर्कके बिना ही निभाते चले जायँ, उसीमें उनका कल्याण सम्भव है अन्यथा नहीं। अतएव कालिदासने कहा भी है—

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया।

ठीक इसी प्रकार इस संसारके रङ्गमञ्चपर भाँति-भाँतिके विभिन्न पात्र आते हैं और अपना पार्ट खेलकर चले जाते हैं। संसारका तात्पर्य ही संसरण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील (परिवर्तनशील) है। इस प्रकारकी विविधता—विभिन्नताका नाम 'संसार' है। जबतक यह परिवर्तन विद्यमान है तभीतक संसार संसार कहलायेगा, और जब हमें संसारके इस वैचित्र्यमें ही आनन्द है, इसको चाहते हैं, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रका होना नितान्त आवश्यक है। पाचक-पाठकका रहना भी अनिवार्य है। तब ईश्वर वा प्रकृतिको भी सबका समावेश करना ही होगा। वह कैसे हो, किसको ब्राह्मण और किसको शूद्र बनाया जाय। यह सब पात्रोंकी पात्रतासे ही निर्धारित होगा। जैसे जिसका कर्म वा संयोग होगा वैसे ही उसे स्थान, जन्म, देश, कालमें अवतरित होना होगा। उसमें दुखी-सुखी होनेकी आवश्यकता ही नहीं। मनुष्यसे पक्षपात सम्भव है पर प्रकृतिके क्षेत्रमें, ईश्वरके आधिपत्यमें यह अंशतः सम्भव नहीं। वहाँ तो जैसी जिसकी योग्यता होगी वह प्रकृतिकी अनुभूतितुलासे ही तोलकर रखी गयी है। अतः जैसे सच्चा स्वयंसेवक जब सेवाके लिये अपना नाम स्वयंसेवकोंकी नामावलीमें लिखा देता है, तो वह उसी समय अपनेको अधिनायकके अर्पण कर देता है। साथ ही निकृष्ट-से-निकृष्ट कार्य करनेको तत्पर रहता है। यही नहीं प्रत्युत जिस कार्यको कोई न करे उसे भी करनेको उद्यत रहता है। वही सच्चा स्वयं सुखी और औरोंको सुख देनेवाला स्वयंसेवक कहलाता है। जो अपनी ही इच्छासे अपनी नियुक्ति चाहता है और यदि उसे वह स्थान नहीं लब्ध होता तो वह दुखी और उद्विग्न रहता है, न वह स्वयं सुखी हो सकता न औरोंको ही सुखी कर सकता है। वह उस क्षेत्रमें पापाचारका आरम्भ करता है। और यदि रागादिवश उसे अधिनायकने वह स्थान दे भी दिया जिसे वह चाहता है तो कई एक अनर्थोंके अतिरिक्त उस स्थानकी योग्यता न होनेसे उसे वहाँ भी शान्ति और सुख नहीं मिल सकता है। वह अपने उपहासके साथ-साथ स्वतः दुखी और औरोंको भी दुखी करता है। अतएव विज्ञ मनुष्य अधिनायकके स्थान-विन्यासमें कभी भी बाधक नहीं होते।

इसी प्रकार ईश्वरके वा प्रकृतिके पात्रविन्यासमें भी बाधा देना वा असन्तोष करना अविवेक है। ईश्वरने उसको परिस्थिति, कर्तव्याकर्तव्यके ही अधीन होकर उसका स्थान निश्चित कर उसे उत्पन्न किया है। उसमें किसी प्रकार गलती है ही नहीं। जो मनुष्य इस बातपर विश्वास नहीं करता वह ईश्वरकी दूरदर्शिता, न्यायप्रियता और सर्वज्ञताका उपहास करता है। वह प्रकृतिके वास्तविक स्वरूपकी अवहेलना करता है। वही अशान्त और सदा दुखी है। उसीको नास्तिक कहते हैं। ईश्वर वा प्रकृतिने जिस स्थानपर उसे नियुक्त किया है उसपर वह असन्तोष करता है। ऐसे ही व्यक्ति रागद्वेषके वशीभूत होकर पापाचार, मिथ्याचारका संसारमें प्रसार करते हैं। वही नाना प्रकारके आडम्बरोंसे संसारमें दुःखकी स्रोतस्वी बहाकर स्वतः दुःखमें प्लावित होते हुए औरोंको भी दुःखमग्न करते हैं।

अतः विवेकी व्यक्तिका कर्तव्य है कि ईश्वरने उसे जैसी बुद्धि, जैसा स्थान, जैसा देश, जैसा जन्म प्रदान किया है उसीमें सन्तुष्ट होकर उन्हीं उपकरणोंसे उच्चताके लिये तरस न दिखाते हुए नीचताके आँसू न बहाते हुए कार्य करता चला जाय क्योंकि उसके लिये उच्च-नीच कुछ है ही नहीं, वह तो ईश्वरीय विन्यासके आधारपर सब कुछ करनेको राजी रहता है।

सब स्थान नाटकके पात्रोंकी भाँति योग्यतानुसार तुल्य मूल्य रखते हैं। अतः पात्रभेदके लिये सुख-दुःखकी आवश्यकता ही नहीं। जो इस प्रकार रहता है वही सुखी है। यही सुखका मूल मन्त्र है। यही शास्त्रोंका तत्त्व है। यही मोक्षका आरम्भसूत्र है। अतएव भगवान् व्यासने कहा भी है—

अशान्तस्य कुतः सुखम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-वाटिका

जिसमें द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणोंके सहित मन ओतप्रोत है उस एक आत्माको ही जानो, और सब बातोंको छोड़ दो; यही अमृत (मोक्षप्राप्ति) का सेतु (साधन) है। —उपनिषद्

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ। न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं वे मुझमें और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

—श्रीमद्भगवद्गीता

प्रकृति और पुरुषका नियन्ता, सकल प्राणियोंका अन्तर्यामी और षड्गुण ऐश्वर्ययुक्त परमात्माके चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी संसारभय दूर नहीं होता।

—श्रीमद्भागवत

जो व्यक्ति निर्मलचित्त, मात्सर्यरहित, प्रशान्त, शुद्ध-चरित्र, समस्त जीवोंका सुहृद्, प्रिय और हितवादी तथा अभिमान एवं मायासे रहित होता है उसके हृदयमें भगवान् वासुदेव सर्वदा विराजमान रहते हैं। —श्रीविष्णुपुराण

जिसने इच्छाका त्याग किया उसको घर छोड़नेकी क्या आवश्यकता और जो इच्छाका बँधुआ है उसको वनमें रहनेसे क्या लाभ हो सकता है? सच्चा त्यागी जहाँ रहे वही वन और वही भजन कन्दरा है। —श्रीमहाभारत

न जीनेकी इच्छा रक्खो न मरनेकी, वरं हर बातके लिये ऐसे तैयार रहो जैसे नौकर मालिकके हुक्मके लिये।

—मनुस्मृति

भगवान् विष्णुका आश्रय ही संसारासक्त मनवाले लोगोंके लिये संसार-चक्रका नाश करनेवाला है। इसीको बुद्धिमान् लोग ब्रह्मनिर्वाणसुख कहते हैं, अतएव तुमलोग अपने-अपने हृदयमें हृदीश्वर भगवान्का भजन करो।

—प्रह्लाद

रागके समान आग नहीं, द्वेषके समान भूत-पिशाच नहीं, मोहके समान जल नहीं और तृष्णाके समान नदी नहीं। —भगवान् बुद्धदेव

कौन तेरी स्त्री है? कौन तेरा पुत्र है? यह संसार अतीव विचित्र है। तू कौन है? कहाँसे आया है? हे भाई! इस तत्त्वपर विचार करो। —श्रीशङ्कराचार्य

महादेव ही हमारा एक देव हो, जाह्नवी ही हमारी नदी हो, एक गुफा ही हमारा घर हो, दिशा ही हमारे वस्त्र हों, समय ही हमारा मित्र हो, किसीके सामने दीन न होना ही हमारा सखा हो, अधिक क्या कहें, वटवृक्ष ही हमारी अर्द्धाङ्गिनी हो। —भर्तृहरि

कोमल और दीन हृदय जो विरहसे विकल है—वहीं भगवान्का निवास है। —ईसामसीह

बन्दगी जो सम्पूर्ण हृदयके साथ न हो, निष्फल है।

—मुहम्मद

अचेत आदमीके लिये संसार भोग-विलासका स्थल है, परन्तु विचारवान्के लिये युद्धक्षेत्र है जहाँ जीवनपर्यन्त मन और इन्द्रियोंसे संग्राम करना पड़ता है। —सहजोबाई

सच्चा खोज करनेवाला वही है जो जबतक आप न खो जाय मालिकको खोजता रहे। —कबीर

जो गये हुएका स्मरण नहीं करता, मिले हुएकी इच्छा नहीं रखता, अन्तःकरणमें मेरुके समान अचल रहता है, और जिसका अन्तःकरण 'मैं-मेरा' भूला रहता है वही निरन्तर संन्यासी है। —ज्ञानेश्वर

जिसने एक बार श्रीकृष्णरूपको देखा उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं, अधिकाधिक उसी रूपको आलिङ्गन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं। —श्रीएकनाथ

परद्रव्य और परनारीका अभिलाष जहाँ हुआ वहींसे भाग्यका ह्रास आरम्भ हुआ। बड़े-बड़े इनके चक्करमें मटियामेट हो गये। इसलिये इन दोनोंको छोड़ दे, इसीसे अन्तमें सुख पायेगा। —श्रीतुकाराम

जलमें नाव रहे तो कोई हानि नहीं, पर नावमें जल नहीं रहना चाहिये। साधक संसारमें रहे तो कोई हानि नहीं, परन्तु साधकके भीतर संसार नहीं रहना चाहिये।

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

जिस ओर हम दौड़े वह सब दिशाएँ तेरी ही देखीं—सब ओर तू ही था। जिस स्थानपर हम पहुँचे वह सब तेरी ही गलीका सिरा देखा—सर्वत्र तुझे ही पाया।

—स्वामी रामतीर्थ

अगर गिरो तो अपने कुकर्मोंको दोष दो, अगर ऊँचे चढ़ो तो मालिकका गुन गाओ। —राधास्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवृत्तिपर अधिकार

(लेखक—महात्मा श्रीबालकरामजी विनायक)

सहजोबाईसे किसी सुकृतीने पूछा—'माताजी! आध्यात्मिक उन्नतिका मूल मन्त्र क्या है?' देवीने उत्तरस्वरूप कहा—'सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वामी, समस्त व्यापारका कर्त्ता और एक साथ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूपी तीनों पुरियोंमें विहार करनेवाला मन है। उसको वशमें कर लेनेसे ही आध्यात्मिक उन्नतिका द्वार खुल जाता है।'

ज्योत्स्ना जिनके वदनपर छा रही।
शान्तिकी अद्भुत छटा लहरा रही॥
छन रहा हो जिनकी आँखोंमें सरूर।
जानना वे मनके मालिक हैं ज़रूर॥ १॥

कैसे होवे, कैसे होवे वशमें मन?
जीतना मनको बड़ा ही है कठिन॥
बात क्या ही सच किसीने है कही।
मन महा उन्मत्त मर्कट है सही॥ २॥

जान पड़ता भी नहीं, प्यारे सुजन!
ऐसे चुपकेसे खिसिक जाता है मन॥
रोकिये, रुकता नहीं स्वच्छन्द है।
मन जो वशमें हो तभी आनन्द है॥ ३॥

मन स्वतः चञ्चल हठी है औ बली।
दृढ़, दबंग औ दुष्ट दानव है छली॥
बस कठिन है, भाई! इसका साधना।
वायुको मुट्ठीमें कसकर बाँधना॥ ४॥

जैसे मक्खी पीबपर टुक बैठती।
फिर तुरत नैवेद्यपर जा ऐंठती॥
वैसे ही विषयीका मन हर आनमें।
भोगमें लगता कभी भगवान्‌में॥ ५॥

जबतक नियन्त्रित वश्य मन उद्दण्ड है।
द्वन्द्वमें रत घूमता स्वच्छन्द है॥
हो नहीं सकता भजन तबतक अभंग।
चाहे सद्‌गुरुसंग हो या साधुसंग॥ ६॥

मन है उस रथकी तरह हे विश्वर!
वन्य पशु जिसमें जुते हों बाँधकर॥
थामना हे ज्ञानियो, दृढ़ता-सहित।
बागडोरी युक्तिसे आलस-रहित॥ ७॥

जाय जब-जब मन विषय-उद्यानमें।
झट पकड़ लाओ उसे उस आनमें॥
डाँटकर रखिये न फिर जाये कहीं।
जो कहें सोई करै तब तो सही॥ ८॥

चोर भौतिक धन हरै घर-फोड़कर।
राजगण ले लेते कर सिर तोड़कर॥
है उभयसे भी भयंकर दुष्ट भाव।
धर्म-धन झट छीन लेता पाके दाव॥ ९॥

सुनते हैं सर्वत्र इस संसारमें।
लोग सिखलाते हैं घर-बाज़ारमें॥
'नेक बनकर प्यारे! नेकी कर चलो।
नेक करनीसे सदा फूलो-फलो॥'
इस जगतमें कोइ भी बालक नहीं।
जिसको सिखलाता हो परिपालक नहीं॥ १०॥

'झूठ मत बोलो न चोरी तुम करो।
पाप-कर्मोंसे सदा मनमें डरो॥'
पर, यह शिक्षा है भला किस कामकी।
जिससे लिप्सा ही बढ़ै धन-धामकी॥
उनका हित जो सच्चे दिलसे चाहिये।
मनका निग्रह बस उन्हें बतलाइये॥ ११॥

फूटकर कोंपल विटप होता बड़ा।
चार ईंटोंसे महल होता खड़ा॥
चलके पग-पग तीर्थ करते हैं अटन।
थामते ही थामते थमता है मन॥
मनकी गतिपर प्यारे प्रतिक्षण ध्यान दो।
उसकी कथनीपर कभी मत कान दो॥
यह यतन जप-यज्ञ-वेदी-खम्भ है।
मोक्ष-साधनका यही आरम्भ है॥ १२॥

वासना औ कामना संसारकी।
मन्त्रणा औ यन्त्रणा परिवारकी॥
कर सकें कथमपि नहीं निज शान्ति-भंग।
देखना बेढब न छिड़ जाये प्रसंग॥ १३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियोंके देवता विषयी सही।
ज्ञान-चर्चा कुछ उन्हें भाती नहीं॥
इन्द्रियोंके द्वारपर पट दीजिये।
मन्द भावोंका न चिन्तन कीजिये॥१४॥

जगमें जो कुछ सत्य और पवित्र है।
न्याय्य औ विश्वस्त और विचित्र है॥
वस्तु जो प्यारी है औ आरोग्य है।
जिसमें गुण है औ प्रशंसायोग्य है॥
ध्यान देना है तो उनपर दीजिये।
सार गुण उनका ग्रहण कर लीजिये॥१५॥

क्रोध, निर्दयता सरीखे मन्द भाव।
जब कभी हृदि-क्षेत्रमें डालें पड़ाव॥
झट निकालो उनको तुम मुस्तैद हो।
अपने मनमें एक क्षण रहने न दो॥१६॥

नीच वृत्ती जब उदय मानसमें हो।
राग-द्वेष, प्रमाद-चय मानसमें हो॥
तब तुरत मन फेर उनसे लीजिये।
भव्य भावोंपर एकत्रित कीजिये॥
अथवा उन दोषोंकी पूरी जाँचकर।
सोचना उनके दुखद परिणामपर॥
या विचारो युक्तिसे होकर सजग।
उनके दृढ़ परमाणुओंको कर अलग॥
या लगाकर शक्ति पूरी दाबकर।
पीस ही डालो उन्हें मनमें रगड़॥
इस तरह मन द्वन्द्वसे होता रहित।
शान्त औ एकाग्र हो जाता त्वरित॥१७॥

कह नहीं सकते हैं हम हे विश्वर!
द्विज[1] न मड़रायें हमारे शीशपर॥
इतना कह सकते हैं तौ भी हम ज़रूर।
'घोंसला याँ मत बना रह दूर-दूर॥'
बस इसी ही न्यायसे, यद्यपि सही।
दुरित-द्विज-सञ्चार रुक सकता नहीं॥
पर सदा है यह मेरे अधिकारमें।
उनको टिकने दें न चित्तागारमें॥

१ द्विज=पक्षी।

नीड़ किल्बिष-करट क्यों मनमें बनें।
क्यों वे पेशी[2]-पाक दुष्कृतके जनें!
इसलिये सब ओरसे मन खींच लें।
भावको विकृत कभी होने न दें॥१८॥

मन प भाई! दृष्टि रक्खो अष्टयाम।
सर्वदा जारी रहे भी रोक-थाम॥
साँपका है पालना जैसा कठिन।
मनका भी है चालना वैसा कठिन॥१९॥

जब किसी भी भावका उद्रेक हो।
तब तुरत ही उसकी गतिपर छेंक हो॥
ताड़ लो क्या है भरा इस चालमें।
जड़ जमी है इसकी क्या पातालमें॥२०॥

सत्यकी सूलीपै चढ़ना चाहिये।
मनके घोड़ेपर अकड़ना चाहिये॥
ऐसा फिर होने न पावे, सावधान।
पाप पामर आक्रमण विजयी महान॥
भूलना सिद्धान्त यह हरगिज़ नहीं।
'जैसा हम बोवेंगे, काटेंगे सही'॥२१॥

यत्नपूर्वक स्वच्छ मनको कीजिये।
उसका प्रतिफल भी अभी सुन लीजिये॥
है नहीं दुर्भाव जब मनमें कहीं।
पाप कोई आप कर सकते नहीं॥२२॥

जब हृदय निष्पाप हो जाता है धीर।
वास करते उसमें हैं रघुवंश-वीर॥
भक्तियुत तब हरिका अर्चन कीजिये।
अपने जीवनका विशद फल लीजिये॥२३॥

आप तरिये अन्यको भी तारिये।
काम आदिक शत्रुको फटकारिये॥
जिन, कुमार[3], औ मञ्जुश्री औ औलिया[4]।
करके सब लोगोंको यों दिखला दिया॥२४॥

दोहा

हिय-मन्दिरसे अनत कहुँ पग मत बाहर धारु।
उभय लोककी सम्पदा मानस-कोश-मँझारु॥

२ पाक-पेशी=अण्डे-बच्चे।
३ कुमार=स्वामिकार्त्तिक
४ औलिया=आचार्यदेव मुरारीजीके शिष्य मकसूदाबादके प्रसिद्ध सिद्ध सन्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* श्रीहरिः *

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र]

वर्ष ९

सं० १९९१ । ९२ की

निबन्ध-सूची,

कविता-सूची

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रकाशक—घनश्यामदास जालान

कल्याण-कार्यालय

गोरखपुर ।

वार्षिक मूल्य ४=)
विदेशोंके लिये ६॥=)

प्रति संख्या ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगाङ्कमें बहुत चित्र होंगे

जो सुन्दर, शिक्षाप्रद, संग्रहणीय होंगे

योगके, आसनोंके, मेस्मेरिज़्मके, सिद्धोंके, महात्माओंके, आश्रमोंके, अवस्थाओंके, भूमिकाओंके, देशके, विदेशके, भक्तोंके और भगवान्‌के—

चित्र शायद ३०० से भी बढ़ जायँ

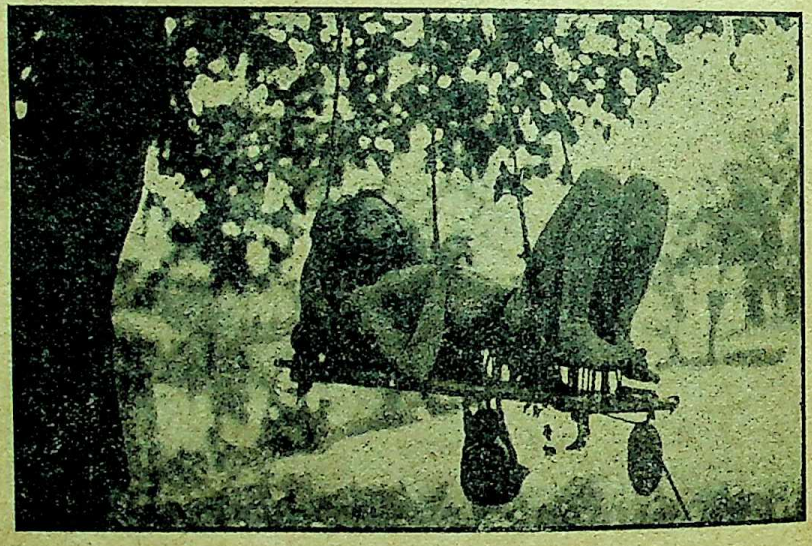

अनेक विषयोंपर सबके कामके सुन्दर लेख तो रहेंगे ही। यदि आप ग्राहक बनना चाहें तो ४॥) मनिआर्डरद्वारा भेज दें, या हमें आपकी सेवामें वी० पी० भेजनेकी आज्ञा दें।

व्यवस्थापक,

'कल्याण', गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याणके नवें वर्षकी लेख-सूची

क्रम-संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१	अनन्यता और दुर्गाराधना	गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी	४६३
२	अन्तर्याग और बहिर्याग		५०४
३	अम्बिकास्थान	श्रीगौरीशङ्करजी गनेड़ीवाला	६८०
४	अर्जुनकी शक्ति-उपासना		
	(१) विजयके लिये	(महाभारत भीष्मपर्वसे)	२१८
	(२) गुह्यतम प्रेमलीला-दर्शनके लिये	(पद्मपुराणसे)	२१९
५	अस्पष्ट नामोच्चारणसे भी देवी प्रसन्न होती हैं	ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्णजी कामत	२४९
६	आत्मबोध	बहिन श्रीजयदेवीजी	१०६९
७	आत्म-विचार	श्रीसूर्यभानुजी जैन	१४७५
८	आत्म-शक्तिकी उपासना	पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी	४९१
९	आदिकवि महर्षि वाल्मीकि	पं० श्रीमायादत्तजी पाण्डेय शास्त्री	१३२६
१०	आध्यात्मिक जीवन	श्रीअनिलवरण राय	१४०२
११	आध्यात्मिक या रूहानी जीवनका तत्त्व क्या है ?	श्री आर० आर० खन्ना, रजिष्ट्रार, लखनऊ यूनिवर्सिटी	१४६५
१२	आश्रमोंका रहस्य	पं० श्रीप्रयागदत्तजी शुक्ल	१४९२
१३	ईश्वर और स्वेच्छाचार	श्रीहरिकोशलजी	१३१७
१४	ईश्वरका अनुभव	स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज	११७१, १२३६, १३२१, १३७२
१५	ईश्वरकी दयाका ज्वलन्त प्रमाण	एक 'दीन'	१०७२
१६	ईश्वर-भजन	पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०	१०९६
१७	उत्तरकाशीके स्वामी कैवल्याश्रम	स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती	१४५९
१८	उत्तराखण्डका देवीस्थान	चतुर्वेदी डॉ० पं० श्रीविशालमणिजी शर्मा, उपाध्याय	६७१
१९	उपनिषद्गाथा	(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)	७९४, ९२२, ९७०
२०	उपनिषदोंमें शक्ति-तत्त्व	श्री श्रीधरजी मजूमदार, एम० ए०	२७०
२१	,,	पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा, सांख्ययोगाचार्य	२७२
२२	एक महात्माके सदाचारसम्बन्धी विचार और उनके जीवनकी कुछ घटनाएँ	उनके एक सत्सङ्गीसे प्राप्त	११३४
२३	एक राजाकी दो रानियाँ	बहिन श्रीजयदेवीजी	७४८
२४	एक सती	पं० श्रीलालारामजी शुक्ल	१०६६
२५	एक सन्तके अमृतवचन	सं०—श्रीदेवीचरणजी निगम एम० ए०	९९३
२६	कबीरका हृदय	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०	१०१४
२७	कर्तव्य	श्रीनोखेलालजी शर्मा बी० ए०, काव्यतीर्थ	८२५
२८	कर्मयोग-रहस्य	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	७०८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९ कल्याण	...	'शिव'	७१, ७१२, ७९१, ८६७, ९४७, १०३७, ११८७, १२६९, १४३०
३० कल्याणकारी स्वप्न	...	एक सज्जन	९११
३१ कात्यायनीजी (कहानी)	...	म० श्रीबालकरामजी विनायक	२२८
३२ काली-तत्त्व	...	डॉ० श्रीप्रभातचन्द्रजी चक्रवर्ती काव्यतीर्थ, एम० ए०, पी० आर० एस०, पी-एच० डी० ...	५३१
३३ काशीमें देवियोंके मन्दिर और उनकी यात्रा	...	पं० श्रीशालिग्रामजी शर्मा	६५५
३४ कुटुम्बप्रेम, विश्वप्रेम और ईश्वरप्रेम	...	श्रीमती सावित्रीदेवीजी अग्निहोत्री	८२९
३५ कुण्डलिनी	...	प्रो० श्रीशङ्करराव बी० दाण्डेकर एम० ए० ...	४७२
३६ कुण्डलिनी-जागरणकी विधि	...	स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी	४५५
३७ कृपालु लेखकों, चित्रकारों और पाठकोंसे प्रार्थना	...	हनुमानप्रसाद पोद्दार	११८०
३८ कंकालीदेवी	...	श्रीराधाकृष्णजी भार्गव	६८०
३९ क्या विज्ञानके रूपमें धर्मका अध्ययन हो सकता है ?	...	श्रीरामरतनजी खन्ना	११५५
४० गायत्री-तत्त्व	...	परिव्राजक ब्रह्मचारी श्रीगोपालचैतन्यदेवजी ...	३१३
४१ ,,	...	श्रीप्रेमी महाशय	३१८
४२ गायत्री-मीमांसा	...	श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्र-पुरीजी महाराज	३०२
४३ गीताका दिव्य सन्देश	...	श्रीमथुरादत्तजी ज्योतिर्विद् बी० ए०	११४३
४४ गीताके शक्ति-मन्त्रमें शक्तियाँ	...	पं० श्रीबाबूरामजी शुक्ल, कविसम्राट्, पद्यार्थवाचस्पति	६७७
४५ गीतामें शक्ति-तत्त्व	...	दीवानबहादुर श्री के० एस० रामस्वामी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०, भूतपूर्व जज, सम्पादक 'धर्मराज्य' ...	२८९
४६ गुजरातमें शक्तिके तीन महापीठ	...	... ...	६४७
४७ गुजराती साहित्यमें शक्ति-पूजा	...	अध्यापक श्रीसाँधलजी नागर	४२०
४८ गृहस्थके साधारण धर्म	...	पं० श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा, दाधीच, बी० ए० ...	१२१०
४९ गोरखपुरके मौनीबाबा	...	म० श्रीबालकरामजी विनायक	७५६
५० गोस्वामी तुलसीदासजीका एक अपूर्व दोहा	...	श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी	१०४९
५१ चित्रकूटधामकी यात्राके विचित्र अनुभव (सच्ची घटना)	...	श्री 'शील'	१३६८
५२ चित्र-परिचय	...	... ...	७००
५३ जगज्जननी जगदम्बिके	...	श्रीनित्यानन्दजी जोशी, साहित्यशास्त्राचार्य ...	५०२
५४ जगदम्बाकी दीपोत्सवी	...	श्रीजयेन्द्रराव भगवानलाल दूरकाल, एम० ए० ...	४९३
५५ जगदम्बा श्रीकरणीदेवी	...	... ...	६६५
५६ जायसीकी प्रेमानुभूति	...	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ...	९३४
५७ जालन्धरपीठ	...	स्वामी श्रीतारानन्दजी तीर्थ	६७५
५८ जीवनग्रन्थि तथा कर्म	...	पं० श्रीलालजीराम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी० ...	१४८८
५९ जैन-धर्ममें शक्तिपूजा	...	श्रीपूर्णचन्द्रजी नाहर, एम० ए०, बी० एल० ...	५६५
६० तत्त्व	...	श्रीसर जॉन वुडरफ ...	६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६१ तन्त्र	... पं० श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल	८४, ७६७, ८२६, ९२५, ९८४, १०७४
६२ तन्त्र और वेदान्त	... श्रीअरविन्द, प्रेषक—श्रीनलिनीकान्त गुप्त ...	३२
६३ तन्त्रमें यन्त्र और मन्त्र	... श्रीदेवराजजी विद्यावाचस्पति ...	३८७
६४ तारा-रहस्य	... डॉ० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०, डी० लिट्०	२२५
६५ ,,	... राजावहादुर श्रीलक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव विद्यावाचस्पति, पुरातत्त्वविशारद, राजासाहब टेक्काली	४०४
६६ तुम धन्य हो प्रभो !	... श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम' ...	१३९०
६७ तुलसीकृत रामायणमें करुणरस	... श्रीराजवहादुरजी लमगोड़ा, एम०ए०, एल-एल० बी० ...	१२१९, १४८१
६८ दयाकी भीख	... दयाका पात्र एक अबोध बालक ...	१३७७
६९ दयामयी माँ लक्ष्मी	... श्री ति० पे० रङ्गाचार्य 'रा० विशारद' ...	५७८
७० दर्शनचर्चा	... विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री ...	११२६, १२०७, १३१०, १३६६
७१ दश महाविद्या	... पं०श्रीमोतीलालजी शर्मा गौड़, सम्पादक 'शतपथ ब्राह्मण' ...	८९
७२ दिल्लीके दो प्रसिद्ध शक्तिपीठ	... पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज एम० ए०, आचार्य, शास्त्री ...	६६०
७३ दिव्य पथ	... श्रीब्रह्मदत्तजी शर्मा 'शिशु'	९१४
७४ दीक्षारहस्य, कुमारीपूजा और आम्नायभेद	... सङ्कलनकर्ता—पं० श्रीमेघराजजी गोस्वामी मन्त्रशास्त्री, साहित्यविशारद	३९८
७५ देवी कनकावती (करेडीमाता)	... श्रीउत्सवलालजी तिवारी विशारद ...	६७७
७६ देवीका विराट् स्वरूप	... (देवीभागवतके आधारपर)	४९३
७७ देवीभागवतमें शक्तिका स्वरूप	... पं० श्रीमाधवरजी तर्कपञ्चानन	२९५
७८ देश-काल-तत्त्व	... श्रीजयदयालजी गोयन्दका	१०२९
७९ धर्मका यथार्थ तत्त्व	... सि० म० श्रीसतीशदेवजी गोस्वामी ...	१२५०
८० धर्मसे लाभ और अधर्मसे हानि	... श्रीजयदयालजी गोयन्दका	११०७
८१ नरक और स्वर्ग	... बहिन श्रीजयदेवीजी	१००७
८२ नरक और स्वर्गका द्वार	... बहिन श्रीजयदेवीजी	११६२
८३ नव दुर्गा और दश महाविद्याके ध्यान	... ...	६१५
८४ नाद, विन्दु और कला	... पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी, साहित्यरत्न ...	४४६
८५ नामजपका प्रभाव	... स्वामी श्रीसत्यानन्दजी	११९९
८६ नारदकृत राधास्तवन	... (पद्मपुराणसे)	२४१
८७ नारी दासी है या रानी ?	... उज्ज्वल भारतसे	१४७१
८८ परमहंस-विवेकमाला	... स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी	८०१ ७२९, ८८१, ९६१, १०४१, ११२१, १२९८, १३६१ १४४१
८९ परमहंस स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूतके उपदेश	... प्रेषक—श्रीरामसरनदासजी	७१८
९० परमार्थपत्रावली	... श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र ...	११८९, १२७०
९१ परा और अपरा शक्ति	... श्रीरामचन्द्र शङ्कर टकी महाराज, बी० ए० ...	४७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९२ परात्परा शक्ति श्रीसीता ... श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादासजी महाराज ...
९३ पराशक्ति प्रकृति ... ज्यो० पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी ... २११
९४ पिता-पुत्र-संवाद ... (महाभारत शान्तिपर्वसे) ३७५
९५ पुण्य और पाप ... श्रीजयदयालजी गोयन्दका १०२३
९६ पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ७०६, ७८६, ८६६, १०२६, ११०६, ११८६
९७ ,, ... प्रेषक—श्रीरामसरनदासजी ९४६
९८ ,, ... प्रेषक—डॉ श्रीमोहनजी १२६८
९९ पंच मकारका आध्यात्मिक रहस्य ... कवि श्रीदयाशङ्कर रविशङ्कर २५३
१०० प्रत्यक्ष घटनाएँ ... एक जानकार ४६६
१०१ प्राचीन आचार ९२८
१०२ प्राचीन मूर्ति और यन्त्र ... श्रीपूर्णचन्द्रजी नाहर एम० ए०, बी० एल० ... ६५९
१०३ प्रेम ... एक प्रेमका भिखारी १४३८
१०४ प्रेम-दर्शन ... (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ७२१, ८०७, ८८९, ९७१, १०३३, १११२, ११९२, १२८१

१०५ बड़ौदेकी श्रीअम्बामाता ... श्रीहिम्मतलाल व्रजभूषणदास, मन्त्री श्रीत्रिम्बकनाथ सेवामण्डल ६७१
१०६ बद्ध और मुक्त ... बहिन श्रीजयदेवीजी ९१८
१०७ बन्धन क्या है ? ... श्रीशक्तिचरणजी विशारद १२०१
१०८ बलदेव पखावजी ... श्रीगोपीवल्लभजी कटिहा १४६९
१०९ बलिदानरहस्य ... स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज १६१
११० ,, ... एक सेवक १६२
१११ ,, ... पं० श्रीबालचन्द्रजी शास्त्री विद्यावाचस्पति ... १६४
११२ बाबाके वचनामृत ... सं० तथा प्रेषक—श्रीनकुलेश्वरजी मजूमदार, विद्यानिधि बी० ए० ए० टी० सी० ... १२६६ १४५५

११३ बोल्शेविज्म और धर्म ... श्रीबसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम० ए० ... ... १२०४
११४ बौद्ध और जैन-धर्ममें शक्ति-उपासना ... दीवानबहादुर श्रीनर्मदाशङ्कर देवशङ्कर मेहता बी० ए० ५४४
११५ बङ्गालके कतिपय शाक्त साधक ... पं० श्रीचन्द्रदीपनारायणजी त्रिपाठी ... ६२९
११६ ब्रह्मविद्या ... वेदान्ताचार्य श्रीकृष्णलालजी भगवानजी महाराज ... ४११
११७ ,, ... पं० श्रीहरिदत्तजी शास्त्री वेदादितीर्थ ... ४८७
११८ ब्रह्मविद्या और उसके साधन ... स्वामी श्रीनित्यानन्दजी भारती ८७४
११९ ब्रह्मसूत्रमें जगन्माताका स्वरूप ... पण्डित श्रीहाराणचन्द्रजी शास्त्री, भट्टाचार्य ... ५२५
१२० ब्रह्मसूत्रमें शक्ति-तत्त्व ... पण्डितप्रवर श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न २८३
१२१ ब्रह्मज्ञानदीपिका ... परमहंस श्रीकृष्णवियोगी योगिराज १०३९
१२२ ब्रह्माण्ड-विस्तार परमात्मशक्ति माताका विलास है ... ...
१२३ ब्रह्मानन्द ... श्रीविनायक नारायणजी जोशी, 'साखरे' महाराज ... ४०८
१२४ भक्त-गाथा ... कृष्णवियोगी योगिराज परमहंस श्रीब्रह्मानन्दजी ... ७१६
(क) गोदा-अम्बा ७६३
(ख) भक्त श्रीनिवास आचार्य ८४४
(ग) निर्लोभी भक्त तुलाधार शूद्र ९३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) दानवराज वृत्रासुर ९५४
(ङ) भक्त राजा चित्रकेतु १०८२
(च) भक्त लोचनदास ११७७
(छ) भक्त मनकोजी वोधला पटेल १२४१
(ज) भक्त गणेशनाथ श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ... १३३३
(झ) भक्त जलारामजी शास्त्री श्रीमङ्गलजी उद्धवजी पुरोहित १४०८
(ञ) जोग परमानन्द श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ... १४९४
१२५ भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज ... एक भक्त १३३९
१२६ भक्त बलदेवदास ... श्रीहनूमान्‌जी शर्मा १३८२
१२७ भक्तरत्न प्रह्लादकी आदर्श शिक्षाप्रणाली ... भि० ना० विश्वनाथ अय्यर एम० ए०, एल० टी० ... १३९५
१२८ भगवती बगलामुखी, होशंगाबाद ... श्री पी० एन० कालेलकर ६८४
१२९ भगवती शक्तिका ही भजन करता हूँ ... स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी ३५
१३० भगवत्प्रार्थना ... बीकानेरनरेश महाराजा रायसिंहजीके भ्राता इतिहासप्रसिद्ध श्रीपृथ्वीराज जीकृत, संग्राहक तथा सम्पादक—श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी विशारद तथा श्रीफकीरचन्दजी पुरोहित १२३०
१३१ भगवद्गीतामें प्रकृति और पुरुष श्री एस० एन० ताडपत्रीकर एम० ए० ... ५१३
१३२ भगवान्‌के लिये काम कैसे किया जाय ? ... श्रीजयदयालजी गोयन्दका ७८९
१३३ भण्डासुर-युद्धका रहस्य ... चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी ४८०
१३४ भद्रकालीदेवी ... डॉ० वैंकट सुब्बैया एम० ए०, पी-एच० डी० ... ४९४
१३५ भारतकी नारीशक्ति ४६७
१३६ भारतमें विद्युत्-शक्तिका उपयोग ... पं० श्रीदयाशङ्करजी दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० ... ५८८
१३७ भारतवर्षके प्रधान शक्तिपीठ ... श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए० ... ... ६३७
१३८ भाव और आचार ... श्रीयुत अटलविहारी घोष एम० ए०, बी० एल० ... ४२५
१३९ भावनाशक्ति ... श्रीजयदयालजी गोयन्दका ६९३
१४० महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती ... पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी काव्य-सांख्य-स्मृतितीर्थ ... ५६९
१४१ महात्मा चरनदासजी ... पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ... ११३०
१४२ महात्मा धरमदासजी ... पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ... १२५२
१४३ महादेवी आद्याशक्ति ... श्रीसूर्यनारायणसिंहजी ६८२
१४४ महाराष्ट्रकी शक्ति-उपासना ... पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पाङ्गारकर बी० ए० ... ४१६
१४५ महाशक्ति ... विद्यामार्तण्ड पं० श्रीसीतारामजी शास्त्री ... १६५
१४६ ,, ... स्वामी श्रीरामदासजी १६६
१४७ ,, ... डॉ० एच० डब्ल्यू० बी० मॉरेनो एम० ए०, पी एच० डी० ३२२
१४८ महाशक्ति सावित्रीका मन्त्रयुद्धमें उपयोग ... श्रीसुन्दरलाल नाथालालजी जोशी ४९५
१४९ महासरस्वती-तत्त्व ... पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजी स्वामीके उपदेश ३५९
१५० माता ... श्रीमती इन्दुमतीजी तिवारी बी० ए० ... ... ५०९
१५१ माताकी दया ... श्रीअरविन्द ६१८
१५२ माता शक्तिकी पूजा ... स्वामी श्रीअभेदानन्दजी पी-एच० डी० ... ४७
१५३ मातृशक्ति ... बहिन कुमारी हरदेवीजी मलकानी ५११
१५४ मातृशक्ति-चरण ... पं० श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे ५०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५५	मातेश्वरी ब्रह्मविद्याके पुजारी	स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती	६१०
१५६	मानसिक जपका हजार गुना फल	परमहंस स्वामी श्रीनारायणदासजी महाराज	१४५२
१५७	मिल और नीलसे हानि	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	१४२६
१५८	मुक्ति, निर्वाण और भगवत्प्राप्ति	एक दीन	१४४९
१५९	मृत्यु क्या है ?	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०	७५२
१६०	मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है ?	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	१०११
१६१	मोरवी-प्रान्तान्तर्गत श्रीत्रिपुरसुन्दरीका प्राचीन मन्दिर	दवे पं० श्रीकन्हैयालाल जयशङ्कर शर्मा	६८८
१६२	माँ ! ओ माँ !!	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०	२३५
१६३	माँकी कृपा		३३२
१६४	माँकी झाँकी	श्री पी० एन० शङ्करनारायण अय्यर, बी० ए०, बी० एल०	३६६
१६५	माँ दुर्गे ! तेरी जय हो !!	श्री 'अज्ञात'	२४५
१६६	मांसाहारसे पाप	साधु तिरुवल्लुवर	८४३
१६७	यन्त्र-प्रसङ्ग	एक माता-सेवक	५१४
१६८	यह संसार	श्रीविद्यानन्दजी श्रीवास्तव एम० ए०, एल० टी०	१३३१
१६९	योगवासिष्ठमें शक्तिका स्वरूप	श्रीभीखनलालजी आत्रेय एम० ए०, डी० लिट्०	२९८
१७०	योगवासिष्ठ-सार	श्रीकन्हैयालालजी मास्टर	१२१५
१७१	राम प्रणवका एक रूप है		१०२१
१७२	राष्ट्र-शक्ति	पं० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम० ए०	४९७
१७३	रासलीला	एक महात्मा	११६५
१७४	लक्ष्मी-पार्वती संवाद	बहिन श्रीजयदेवीजी	५४१
१७५	लाखकी चूड़ियाँ अपवित्र हैं		१०२८
१७६	वह शक्ति कहाँ चली गयी ?	श्रीरूपरानीजी 'श्यामा'	५०६
१७७	वाममार्गका यथार्थ स्वरूप	स्वामी श्रीतारानन्दजी तीर्थ, तारापुर	१४९
१७८	वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति	साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न	७४२, ८१४, ९०५, ९९७, १०५४
१७९	वाह प्रेम	श्री 'प्रेम'	१३९०
१८०	विचार-तरङ्ग	श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी विशारद	१०४०, १२७९
१८१	विद्या-शक्ति	पं० श्रीबटुकनाथजी शर्मा, एम० ए०, साहित्योपाध्याय	३२०
१८२	विनाशके पथपर !	हनुमानप्रसाद पोद्दार	१४१७
१८३	विवेक-वाटिका	७८४, ८६४, ८८८, ११८४, १२००,	१५०२
१८४	विश्वेश-शरण	बहिन श्रीजयदेवीजी	८२०
१८५	विषयसुखकी असारता	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	९४९
१८६	विष्णुप्रियाजीको संन्यासी स्वामीके दर्शन	श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी	८३२
१८७	विज्ञान, शक्ति और पवित्रता	डॉ० श्रीराधाकमलजी मुकर्जी, एम० ए०, पी-एच० डी०	३२४
१८८	वेद, चण्डी और गीतामें शक्ति-तत्त्व	श्रीनलिनीमोहनजी सान्याल एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न	२६४
१८९	शक्ति	श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयंकर मठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज	२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९०	शक्ति अथवा सक्रिय ब्रह्म	स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती	२५७
१९१	शक्ति-उपासना	श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया	८१
१९२	शक्ति-उपासना और उसका रूप-स्वरूप	श्रीजुगलकिशोरजी 'विमल', सी० एडवोकेट	५८०
१९३	शक्ति-उपासनाका तात्पर्य	एक दीन	४५९
१९४	शक्ति-उपासनाकी सर्वव्यापकता	चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी	१४१
१९५	शक्ति और ब्रह्मकी समानता अर्थात् जानकी-विजय	श्रीसूरजमलजी गट्टानी	९३८
१९६	शक्ति और शक्तिमान्का अभेद	प्रो० श्री एस० एस० सूर्यनारायण शास्त्री, एम० ए०	१६७
१९७	शक्ति और शक्तिमान्की अभिन्नता	श्रीआनन्दस्वरूपजी, साहेबजी महाराज, दयालबाग	७०
१९८	शक्ति क्या है ?	गोस्वामी पं० श्रीमदनगोपालजी दीक्षित मन्त्रशास्त्री	५००
१९९	शक्तिका तात्त्विक रूप	श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या	५०५
२००	शक्तिका रहस्य	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	४०
२०१	,,	डॉ० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर	२३३
२०२	शक्तिका स्वरूप	डॉ० श्रीविनयतोष भट्टाचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०	२६१
२०३	शक्तिका स्वरूप	पं० श्रीदामोदरजी उपाध्याय	२९४
२०४	शक्तिका सच्चा स्वरूप और उसका विकास	दण्डिस्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वती	४८२
२०५	शक्तिके विभिन्न वाहनोंका रहस्य	श्रीपरमानन्दजी शास्त्री 'आनन्द'	५६६
२०६	शक्ति-तत्त्व	पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके विचार	२९
२०७	,,	श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम साहित्य-दर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न, गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री	३३
२०८	,,	डॉ० श्रीभगवानदासजी एम० ए०, डी० लिट्	१२१
२०९	,,	भारतधर्ममहामण्डलके एक महात्मा	१२६
२१०	,,	स्वामी श्रीमाधवानन्दजी महाराज	१३९
२११	,,	पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज एम० ए०, आचार्य, शास्त्री	३७३
२१२	,,	परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी हरिनामदासजी उदासीन	४६५
२१३	,,	पं० श्रीगिरिजादत्तजी त्रिपाठी व्याकरण-न्यायाचार्य	७५९
२१४	,,	मण्डलेश्वर स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दगिरिजी महाराज	१३८४
२१५	शक्ति-तत्त्व अथवा श्रीदुर्गा-तत्त्व	पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा काव्य-सांख्य-व्याकरणतीर्थ	१३४
२१६	शक्ति-तत्त्वका आर्यग्रन्थोंमें स्थान	वामकौलप्रवर्तकाचार्य पं०श्रीहरिदत्तजी शर्मा	५२२
२१७	शक्ति-तत्त्व-रहस्य	आचार्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी	१३०
२१८	शक्ति-पीठ		६४४
२१९	शक्ति-पूजा	श्रीभगवानदासजी केला	५६८
२२०	शक्तिपूजा और प्रस्तरकला	पं० श्रीवासुदेवजी उपाध्याय एम० ए०	५७३
२२१	शक्ति-रहस्य	पं० श्रीदुर्गादत्तजी शर्मा	२१७
२२२	शक्तिवादके कुछ प्रचलित अर्थ	बहिन श्रीकमलाजी विशारद	५०८
२२३	शक्ति-विज्ञान	श्रीमती सुब्बलक्ष्मी अम्मल बी० ए०, एल० टी०	४१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२४	शक्तिविज्ञान ही विज्ञान है	... श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०	४३३
२२५	शक्ति शक्तिमान्‌से पृथक् नहीं है	... स्वामी श्रीतपोवनजी महाराज	५०
२२६	शक्तिसञ्चयसे महाशक्तिपूजा	... 'शिव'	६५६
२२७	शक्ति-सन्दर्भ	... श्रीविनायकरावजी भट्ट	५२०
२२८	शक्ति-सम्प्रदाय	... प्रो० श्री वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम० ए०	२४३
२२९	शक्ति-सम्बन्धी साहित्य	... दीवानबहादुर श्रीनर्मदाशङ्कर देवशङ्करजी मेहता बी० ए०	६१९
२३०	शक्ति-साधना	... महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस	५५
२३१	शक्ति-सामर्थ्य	... स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज, गीतामन्दिर, करनाली	४५
२३२	शक्ति-स्वरूप-निरूपण	... पं०श्रीबालकृष्णजी मिश्र	१४४
२३३	शक्ति ही ब्रह्म है	... ठाकुर श्रीसूर्यनारायणसिंहजी	६१३
२३४	शङ्कर और शक्तिवाद	... श्रीबाई० सुब्रह्मण्य शर्मा, सम्पादक 'अध्यात्मप्रकाश'	३३३
२३५	शङ्करकृत भवानी-स्तुति	... पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए०, शास्त्री	२
२३६	शाक्त-धर्म	... श्रीचिन्ताहरण चक्रवर्ती एम० ए०	५१६
२३७	शाक्ताद्वैतवाद	... पं० श्रीवीरमणिप्रसादजी उपाध्याय एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्याचार्य, न्यायशास्त्री	३३८
२३८	शिव और शक्ति	... स्वामी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती	५३
२३९	,,	... श्रीअनन्तशङ्करजी कोल्हटकर, बी० ए०	२३२
२४०	शिवजीका राधावतार	... (महाभागवतके आधारपर)	४२४
२४१	शैव और वैष्णवोंके झगड़ोंका मूल आधार क्या है ?	... पं० श्रीमहेशानन्दजी ओझा न्यायसांख्ययोग वेदान्तशास्त्री	८५२
२४२	श्रद्धाशक्ति	... पं० श्रीवशिष्ठनारायणजी त्रिपाठी	५२१
२४३	श्रीआरासुरी माता	... श्रीहेमचन्द्र शर्मा भट्ट, वैद्य	६६२
२४४	श्रीउग्रतारा-स्थान	... श्रीहरिनन्दनजी ठाकुर	६६९
२४५	श्रीओसम मातृमाता	...	६६१
२४६	श्रीकामाख्या महापीठ	... पं० श्रीपद्मनाथ भट्टाचार्य, विद्याविनोद, एम० ए०	६५७
२४७	श्रीकूलकुल्यादेवी	... पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेय, व्याकरणशास्त्री, 'राम'	६८५
२४८	श्रीकृष्णकी शक्ति श्रीराधिका	... देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी भट्ट	१७५
२४९	श्रीकेदारमण्डल शक्तिपीठ	... पं०श्रीमहिमानन्दजी शर्मा, शास्त्री, मैठाणी	६७३
२५०	श्रीगीता-जयन्ती	...	९४४
२५१	श्रीज्वालामुखीक्षेत्र	... श्रीभैरवदत्तजी शर्मा	६९३
२५२	श्रीतारा-रहस्य-निरूपण	... चतुर्वेदी पं०श्रीकेशवदेवजी शास्त्री	२२४
२५३	श्रीतारा-शक्ति	... श्रीमोतीलाल रविशङ्कर घोड़ा बी० ए०, एल-एल० बी०	४०७
२५४	श्रीदुर्गामन्दिर, रामनगर	... पं०श्रीलक्ष्मीदत्तजी मिश्र, रामनगर	६८१
२५५	श्रीदुर्गासप्तशती	...	दो पृष्ठोंमें
२५६	,,	... महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाई हरिशंकरजी शास्त्री	१५२
२५७	,,	... बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजी	१५५
२५८	,,	... पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०	१५८
२५९	श्रीदुर्गासप्तशती और श्रीमद्भगवद्गीता	... पं०श्रीकलाधरजी त्रिपाठी	५५३
२६०	श्रीदेव्यथर्वशीर्ष, उसका महत्त्व और अर्थ	... अनु०—पं०श्रीअनन्तयज्ञेश्वरजी शास्त्री धुपकर, विद्यालङ्कार	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६१	श्रीदेवीमन्दिर, बेरी	श्रीबुद्धरामजी छारिया	६८४
२६२	श्रीदेवीजीका मन्दिर, महीदपुर	श्रीराधाकृष्णजी गान्धी, 'सन्तोषी'	६७९
२६३	श्रीपूर्णागिरिपीठ	श्रीदुर्गाशङ्करजी शुक्ल	६७२
२६४	श्रीभगवन्नाम	श्रीनाम-जप-विभाग, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर	१०१९
२६५	श्रीभगवन्नामजप	नाम-जप-विभाग	१२८०
२६६	श्रीमती विष्णुप्रियादेवी	श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी	१४३३
२६७	श्रीमन्मध्वसम्प्रदायमें शक्ति-तत्त्व	'पण्डितभूषण' श्रीनारायणाचार्यजी बरखेडकर	१६९
२६८	श्रीमानस-शङ्का-समाधान	श्रीजयरामदासजी 'दीन', रामायणी	७३४, ११५९
२६९	श्रीयन्त्र	श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०	३७९
२७०	श्रीयन्त्रका स्वरूप	श्रीललिताप्रसादजी डब्राल, व्याकरणाचार्य	५९२
२७१	श्रीराधाजी कौन थीं ?	हनुमानप्रसाद पोद्दार	१२३२
२७२	श्रीराधा-तत्त्व	महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगङ्गानाथजी झा एम० ए०, डी० लिट्, एल-एल० डी०	१८८
२७३	,,	पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजी स्वामीके उपदेश	१८९
२७४	,,	कवीन्द्र श्री 'दिल दरियाव'	१९२
२७५	श्रीरामचरितमानसमें श्रीसीता-तत्त्व	श्रीजयरामदासजी 'दीन', रामायणी	२१४
२७६	श्रीरामचरितमानसमें श्रीराम-नामका महत्त्व	श्रीजयरामदासजी 'दीन', रामायणी	१०८९
२७७	श्रीरूपकलाजीका वचनामृतसार	श्रीराघवेन्द्रदेवनारायण बी० ए० द्वारा सङ्कलित	७४०
२७८	श्रीलयराईदेवी	श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत	६८३
२७९	श्रीवरदायिनी	श्रीनटवरलाल मणिशङ्कर द्विवेदी	६६२
२८०	श्रीविद्या	पं० श्रीनारायण शास्त्रीजी खिस्ते	११३
२८१	श्रीशक्ति	पं० श्रीहनूमान्‌जी शर्मा	१७२
२८२	श्रीशक्ति-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव	श्रीमाताका एक भक्त	३३६
२८३	श्रीशक्ति-तत्त्व	पं० श्रीसीताराम जयरामजी जोशी एम० ए०, साहित्य-शास्त्राचार्य	२३७
२८४	श्रीशतचण्डी-विधि और सप्तशती-महामन्त्र	'माता-सेवक'	५५०
२८५	श्रीशान्तादुर्गा (कैवल्यपुर)	श्रीनारायण भास्कर नाईक गोमन्तक	६९२
२८६	श्रीश्रीजगद्धात्री-तत्त्व	पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजी स्वामीके उपदेश	३५३
२८७	श्रीश्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्यामन्दिर	पं० श्रीभगवतीप्रसादजी शुक्ल	६७०
२८८	श्रीश्रीराधातत्त्व	श्रीशङ्कर दण्डी स्वामीजी शङ्करानन्दतीर्थजी	८५६
२८९	श्रीश्रीराधासहस्रनाम		८९९
२९०	श्रीसदाशिवेन्द्र सरस्वती	शास्त्रवाचस्पति पं० श्रीहरिहरस्वरूपजी शर्मा शास्त्री, बी० ए०	९७८
२९१	श्रीसप्तशृङ्गीदेवी	प्रेषक—श्रीडालचन्दजी चौथमल	६९१
२९२	श्रीसीताजीका महाकाली-रूप	रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी०ए०	३८३
२९३	श्रीसीता-तत्त्व	पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजी स्वामीके उपदेश	१९६
२९४	,,	पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार एम० ए०	२०५
२९५	श्रीसीतारामनामकी महिमा	श्रीरणधीरप्रसादसिंहजी	१२७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९६ श्रीस्वामी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूतके उपदेश	प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी	१०३१
२९७ श्रीहरसिद्धिदेवी	श्रीहरीसिंहजी हाड़ा	६७६
२९८ षट्चक्र और कुण्डलिनी-शक्ति	श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टीकलेक्टर	४५१
२९९ षट्शक्ति	पं० श्रीभवानीशङ्करजी	६८
३०० षडध्व	सर जॉन वुडरफ, भूतपूर्व न्यायाधीश कलकत्ता हाईकोर्ट	५८३
३०१. सगुणब्रह्म और त्रिशक्तितत्त्वस्वरूपमीमांसा	श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थ स्वामीजी महाराज	१२
३०२ सत्पुरुषोंके लक्षण	(महाभारत शान्तिपर्वसे)	७९९
३०३ सन्त-चरणोंका प्रभाव और उसका प्रत्यक्ष अनुभव	श्रीदेवीचरणजी निगम, एम०ए०	१२२७
३०४ समाधिनिष्ठ	बहिन श्रीजयदेवीजी	१४७६
३०५ सर्वोपरि महाशक्ति	श्रीस्वामी पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज श्रीजानकीघाट, अयोध्याजी	३८
३०६ ,,	साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'	४०१
३०७ ,,	तान्त्रिक पं० श्रीविदुरदत्तजी शर्मा चतुर्वेदी	४३१
३०८ सहज साधनामें महाशक्ति या माँ	श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी० ए०, बी० एल०, बी-एस० सी०, एम० आर० ई० ई०, एम० आई० ई०	५३७
३०९ सहारनपुरमें दो पौराणिक शक्तिपीठ	पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र 'प्रभाकर', 'विद्यालंकार', एम० आर० ए० एस०	६८६
३१० सङ्घशक्ति	पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ	४९०
३११ सङ्घशक्ति और जप	श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी	१२४७
३१२ साधन-मार्गमें शक्ति-तत्त्व	महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण	१३५
३१३ सुखकी खोजमें	पं० श्रीभैरवदत्तजी	१४९९
३१४ सुगम साधन-पथ	गङ्गोत्तरीनिवासी दण्डिस्वामी श्रीशिवानन्दजी सरस्वती	१२७३,१४१४
३१५ सुधातरङ्ग	श्रीमुरलीधरजी व्यास लालाणी	१४७९
३१६ सूरदासका अन्तिम पद	अज्ञात	१०६२
३१७ सूरसाहित्यमें भ्रमरगीत	श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न	७७१
३१८ संन्यासधर्मकी कठोरता	,,	१२५९
३१९ संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन	एक साधु	१३१४
३२० संस्कृत-साहित्यमें शक्ति	साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट,कविरत्न	३४८
३२१ स्त्रीधर्म	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	१३४६
३२२ स्पर्श	श्रीउदयानन्दजी सरस्वती	१३३०
३२३ स्वामी रामतीर्थकी आध्यात्मिक मस्ती	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०	१३९१
३२२ स्वार्थी असुर	अनुवादक—श्रीबालमुकुन्दजी वर्मा	९८९
३२५ हमारे विश्वविद्यालय और धार्मिक शिक्षा	बाबा श्रीराघवदासजी	१०८०
३२६ हिन्दी-साहित्यमें उपासनाका स्वरूप	डॉ० श्रीपीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, डी०लिट्	८३६
३२७ हिन्दूशास्त्रके कुछ सार सिद्धान्त	श्रीशक्तिचरणजी विशारद, राजवैद्य	१३०४
३२८ हृदयकी प्यास	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०	८११
३२९ क्षमा-याचना	सम्पादक	६९७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्य-सूची

क्रम-संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१	अध्यात्मकी ओर	श्रीदयालगिरिजी गोस्वामी	९९२
२	अनन्यभजन	श्रीसूरदासजी	११०५
३	अनिर्वचनीय शक्ति	श्रीब्रह्मदत्तजी शर्मा 'शिशु'	३७२
४	अन्तर्दृष्टि	पं० श्रीरमाशङ्करजी मिश्र 'श्रीपति'	१२७२
५	अन्तिम सन्देश	काजी अशरफमहमूद	१४९१
६	अभिलाषा	श्रीव्रजभूषणजी गोस्वामी	८२४
७	अमित महिमा (सं०)	श्रीगदाधरजी	१९५
८	अम्ब-अनुकम्पा	स्व० पं० श्रीकृष्णशङ्करजी तिवारी बी० ए०	१२९
९	अम्बे !	श्रीकपिलदेवनारायणसिंहजी 'सुहृद्'	३८२
१०	अम्बे !	श्रीनन्दकिशोरजी झा 'किशोर' काव्यतीर्थ	४३०
११	अलकैं	श्रीजगन्नाथप्रसादजी	४००
१२	आकांक्षा	पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र	९२१
१३	आदिशक्ति	कुँ० श्रीविश्वनाथसिंहजी समथर	६७४
१४	आराधना	पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम'	५८७
१५	ईश-वन्दना	श्रीजगदीशजी	१४६८
१६	ईश्वरकी दीनबन्धुता	श्रीरहीमजी	८२५
१७	उपदेश (सं०)	श्रीसवाईप्रतापसिंहजी महाराज 'व्रजनिधि'	३१२
१८	एक बार	श्रीमनमोहनस्वरूपजी 'सदाशिव' एम० ए०	१२३१
१९	करुणामय	पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम'	११९१
२०	कोटिशः प्रणाम हैं	श्रीविनायकरावजी भट्ट	१२४०
२१	खोज	पं० श्रीगौरीशङ्करजी मिश्र 'द्विजेन्द्र'	१०७९
२२	गीता-गुणगान	राय श्रीदेवीप्रसादजी 'पूर्ण'	९४३
२३	गुणोंका आडम्बर	पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र	१४०७
२४	गोपियोंके आँसू	श्रीतोष	१०६८
२५	गोविन्द-गुण-गान	साह मोहनराज	७३४
२६	गौरीशङ्कर	श्रीराधागोविन्दजी मिश्र	१२३५
२७	चेतावनी	श्रीविद्यावतीदेवीजी	८७३
२८	चेतावनी	स्व० महाराजसाहब चतुरसिंहजी उदयपुर, मेवाड़, प्रे० श्रीजगदीशजी	१३३८
		स्व० सेठ श्रीअर्जुनदासजी केडिया कविरत्न	२७८
२९	जयशक्ति (सं०)	पं० श्रीगङ्गाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु'	१०७३
३०	जय हो श्रीरघुनाथकी	पं० श्रीब्रह्मानन्दजी शुक्ल शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, कविरत्न	१२५८
३१	जीवनझोली	श्रीपजनेश	७५१
३२	झाँकी	चन्दबरदाई	६६४
३३	तू ही (सं०)		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४ दया-भिक्षा	पं० श्रीसूर्यनारायणजी मिश्र 'सूरज'	७७०
३५ दर्शनकी उत्कण्ठा	श्रीतुलसीदासजी	१२६५
३६ दिव्य दर्शन	पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी साहित्यरत्न	४०६
३७ दीनता	म० श्रीबालकरामजी विनायक	१२२९
३८ देवीस्तुति (सं०)		६१७
३९. नाथ	श्रीमधुरप्रसादजी कविरत्न	९०४
४० निर्गुण ज्योतिका सगुण दर्शन	श्रीनागरीदासजी	७८५
४१ पतिव्रता-लक्षण	श्रीपतिदासीजी	८६३
४२ परमधन (सं०)	श्रीव्यासजी	४७९
४३ प्रणयाञ्जलिः	श्रीयुत पं० श्यामनाथजी शुक्ल 'द्विजश्याम'	३२३
४४ प्रार्थना	महात्मा श्रीजयगौरीशङ्कर सीतारामजी	३०१, १४६४
४५ 'प्रियतम' से	मधुकर	११६१
४६ प्रेमयोगाञ्जलि	श्रीविनायक रावजी भट्ट	१४७०
४७ प्रेमियोंकी चाह	भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र	७२८
४८ भगवान्‌की प्रतिज्ञा	श्रीसूरदासजी	१४२५
४९ भोली भवानी	'कुमार'	३४७
५० मनोवृत्तिपर अधिकार	म० श्रीबालकरामजी विनायक	१५०३
५१ मम ओर	श्रीमती राजकुमारीजी 'रमा'	१२६९
५२ मयूरशिखा	श्रीमन्नूलालजी झुड़ेले	१२९७
५३ महामाया	पं० श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डेय	१४८
५४ महास्वप्न	पं० श्रीरूपनारायणजी त्रिपाठी 'मृदु'	५९०
५५ मातृ-आरती	प्रे० श्रीकालीचरणजी विशारद	७६२
५६ माया	कु० श्रीहिम्मतसिंहजी साहित्यरञ्जन, भैंसरोडगढ़	४५८
५७ मायाकी मधुशाला	महाकवि पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी, जयपुर	४७१
५८ मेरा लक्ष्य	श्रीसुखरामजी चौबे 'गुणाकर'	१४१३
५९ मौतका सन्देश	श्रीसुन्दरदासजी	७८०
६० माँ	श्रीगङ्गाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु'	३७८
६१ यदि तुझे पा जाऊँ	पं० श्रीबलदेवप्रसादजी 'मिश्र'	११५४
६२ रघुनाथाष्टक	पं० श्रीगङ्गाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु'	१२६३
६३ राम	श्रीब्रह्मदत्तजी दीक्षित 'ललाम' बी० ए०, सी० टी०	८३१
६४ राम	सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार	१४८०
६५ रामकी रीति	पं० श्रीविश्वनाथजी मिश्र	९८८
६६ रामचरण-अनुराग	श्रीमञ्जुकेशीजी	९४५
६७ रामदर्शन	सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालंकार	१३८९
६८ रामनाम सार है	श्रीगोविन्दप्रसादजी द्विवेदी बी० ए०, एल० टी०	१२६४
६९ राम-फगुआ	महात्मा श्रीजयगौरीशङ्कर सीतारामजी	११११
७० राम-भक्तकी शक्ति, अहल्या-उद्धार	स्व० लाला श्रीभगवानदीनजी 'दीन'	८८७
७१ रंगभूमिमें कलाधर कृष्ण	श्रीविनायकरावजी भट्ट	८८०
७२ वर-याचना	पं० श्रीमदनगोपालजी गोस्वामी बी० ए० 'अरविन्द'	४८९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७३	विजयावाहन	श्रीईशदत्तजी पाण्डेय 'श्रीश' शास्त्री, साहित्यरत्न	५१०
७४	विजयिनी शक्ति, कोमलतम शक्ति	कविसम्राट् श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'	८८
७५	विनय	'श्रीसूरदासजी'	७०५
७६	विनोद	म० श्रीबालकरामजी विनायक	९९६
७७	विरह	श्रीपरमानन्ददासजी	१३४५
७८	विवश वन्दी	श्री 'माधव'	१२७८
७९	विश्वास	श्रीरहीमजी	७४१
८०	व्रजका टोना	श्रीमीराबाईजी	१०२५
८१	शक्ति-चालीसी	स्व० लाला श्रीशङ्करदयालजी 'खुश्तर' प्रेषक—वैद्यभूषण श्रीहनुमानप्रसादजी गुप्त विशारद, 'प्रेमयोगी मान'	६८७
८२	शक्ति-तत्त्व	श्रीजगदीशजी झा 'विमल'	४१५
८३	शक्तितत्त्वाख्यानम्	पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री	४४५
८४	शक्ति-महिमा	साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'	२३४
८५	शक्तिशतकम्	पं० श्रीकुञ्जविहारीजी मिश्र महाराज, (शक्तिशतकसे)	५२८
८६	शक्तिस्तवन	आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी	२९
८७	शक्तिस्तवन	पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम'	२६०
८८	शक्तिस्तवन	पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी शुक्ल 'शङ्कर', अडिशनल सबजज गोंडा	५२९
८९	शक्ति-स्तुति	स० र० उपनिषद्से	१
९०	शरण (सं०)		५७२
९१	श्रान्तपथिक	'चातक'	९१७
९२	शिव-स्तव	श्रीजगन्नाथजी मिश्र गौड़ 'कमल'	१३६०
९३	श्रीकृष्ण-स्तुति	लाला श्रीकण्ठनाथसिंहजी शर्मा 'व्रजदेव'	९४२
९४	श्रीजगदम्बिकादिव्याष्टोत्तरशताभिनवनामावली	प्रे० श्रीदिगम्बरदासजी	१०
९५	श्रीदेव्यपराधक्षमापनस्तोत्र	पं० श्रीरमाशङ्करजी मिश्र 'श्रीपति'	३९
९६	श्रीराम-नाम-महिमा	श्रीसुखरामजी चौबे 'गुणाकर'	१४२४
९७	श्रीरामाष्टक	श्रीरामपदाम्बुजानुरागी 'बेकल'	८००
९८	श्रीराम-सहस्रनाम	श्रीरामचरणाचार्यजी लिखित ९५० वर्ष प्राचीन प्रतिसे	७८१
९९	श्रीराधावन्दना (सं०)		५५२
१००	श्रीसीतास्तुति	साह मोहनराजजी	१६०
१०१	सन्तका स्वभाव	महात्मा श्रीजयगौरीशङ्कर सीतारामजी	८६३
१०२	सन्त कौन है	श्रीभगवतरसिकजी	११८५
१०३	सफल जन्म	सन्त दयालुदासजी	१३०३
१०४	समता, विषमता	श्रीशिवकुमारजी केडिया, 'कुमार'	१३३
१०५	सेवककी कसौटी	श्रीदादूजी महाराज	८६५
१०६	सोरठा	ठाकुर श्रीबाघसिंहजी, नवलगढ़	४५०
१०७	स्वरूपशक्ति	श्रीबिन्दु ब्रह्मचारीजी	३०
१०८	स्वागत	श्रीसत्याचरणजी 'सत्य' विशारद एम० ए०, बी० टी०	७९३
१०९	हे भगवन् !	श्रीघनूसिंहजी 'वीरेन्द्र'	९६९
११०	है भूतका-सा डेरा	सैयद कासिमअली विशारद, साहित्यालङ्कार	१४९३
१११	ज्ञानगुदड़ी		७३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

पृष्ठ-संख्या

बहुरङ्गे

१–अनाहतचक्र (श्रीधनुषराम) ... ४५४
२–आज्ञाचक्र (,,) ... ४५५
३–ऊखल-बन्धन (श्री बी० के० मित्र) ... ११०५
४–कमला (श्रीविनयकुमार मित्र) ... ३३६
५–कालियदमन (प्राचीन, मियाँ बसन्तसिंहजी जागीरदारद्वारा प्राप्त) ... ८६५
६–कुण्डलिनी और चक्रचित्र नं० ३ (श्री-भगवतीप्रसादसिंहजी) ... ४५३
७–गोकुल-गमन (श्रीघासीराम, नाथद्वारा) ९४५
८–जर्मनविद्वान् गिखतेलकृत चक्रचित्र (श्री-भगवतीप्रसादसिंहजी) ... ४५३
९–दुर्गा [सुनहरी] (प्राचीन, मियाँ बसन्त-सिंहजी जागीरदारद्वारा प्राप्त) ... ४८
१०–देवी कात्यायनी (श्री बी० के० मित्र) ... १७६
११–देवी कालरात्रि (श्री बी० के० मित्र) ... १९२
१२–देवी कूष्माण्डा (श्रीपरमेश राय) ... १४४
१३–देवी चन्द्रघण्टा (श्री बी० के० मित्र) १२८
१४–देवी ब्रह्मचारिणी (श्रीपरमेश राय) ... ११३
१५–देवी सिद्धिदात्री (श्री बी० के० मित्र ... २३३
१६–देवी स्कन्दमाता (श्रीपरमेश राय) ... १६१
१७–ध्यानस्थ पुरुष (श्रीधनुषराम) ... ४५५
१८–नारदकृत श्रीराधास्तवन (श्री द० देव-लालीकर) ... २४१
१९–नारी-शक्ति—श्रीअनसूया (,,) ... ५५३
२०–नारी-शक्ति—श्रीदमयन्ती (,,) ... ५६८
२१–नारी-शक्ति—श्रीशाण्डिली (,,) ... ५९२
२२–नारी-शक्ति—श्रीसावित्री (,,) ... ५२८
२३–नारी-शक्ति—श्रीसीता (,,) ... ४६८
२४–पुष्पवाटिकामें श्रीसीताराम (प्रेमनरेन्द्र घासीराम शर्मा, नाथद्वारा) ... १०२५
२५–भगवती कालिका (प्राचीन, मियाँ बसन्त-सिंहजी जागीरदारद्वारा प्राप्त) ... ६४
२६–मणिपूरकचक्र (श्रीधनुषराम) ... ४५४
२७–मत्स्यावतार (प्राचीन, मियाँ बसन्तसिंहजी जागीरदारद्वारा प्राप्त) ... ७८५
२८–महागौरी (श्री बी० के० मित्र) ... २१७
२९–महासंकीर्तन (,,) ... ७०५
३०–मातङ्गी [सुनहरी] (प्राचीन, मियाँ बसन्तसिंहजी जागीरदारद्वारा प्राप्त) ८१
३१–मूलाधारचक्र (श्रीधनुषराम) ... ४५४
३२–योद्धा श्रीकृष्ण (श्री बी० के० मित्र) ... १४२५
३३–विभीषण-हनूमान्-मिलन (श्रीब्रजेन्द्र) ... १३४५
३४–विशुद्धचक्र (श्रीधनुषराम) ... ४५५
३५–व्रजराज (श्रीजगन्नाथ) ... १२६५
३६–शैलपुत्री (श्रीपरमेश राय) ... ९६
३७–श्रीकाली (श्री बी० के० मित्र) ... २५७
३८–श्रीगायत्रीप्रातर्ध्यान ... ३०४
३९–श्रीगायत्रीमध्याह्नध्यान ... ३०४
४०–श्रीगायत्रीसायाह्नध्यान ... ३०४
४१–श्रीगौरीशङ्कर (श्रीभूरालाल नाथद्वारा) ४०८
४२–श्रीछिन्नमस्ता (श्रीविनयकुमार मित्र) ... २८८
४३–श्रीतारा (श्रीपरमेश राय) ... २५७
४४–श्रीत्रिपुरभैरवी (,,) ... २८८
४५–श्रीदुर्गा—दशभुजा (श्रीज्योतिरिन्द्र राय) ३३
४६–श्रीदुर्गासप्तशती महायन्त्रम् (श्रीमाता-सेवकजी) ... ५५०
४७–श्रीधूमावती (श्रीविनयकुमार मित्र) ... ३२०
४८–श्रीबगला (श्रीपरमेश राय) ... ३२०
४९–श्रीभुवनेश्वरी (श्रीविनयकुमार मित्र) २७२
५०–श्रीमहाकाली (चित्रकार श्रीदत्तात्रेय दामोदर देवलालीकर) ... १७
५१–श्रीमहालक्ष्मी (,,) श्रीशक्ति-अङ्कके ऊपरका मुखपृष्ठ
५२–श्रीमहासरस्वती (,,) ... १
५३–श्रीमातङ्गी (श्रीपरमेश राय) ... ३३६
५४–श्रीयन्त्र नं० ३ (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी) ३८१
५५–श्रीराधाकृष्ण (श्री द० देवलालीकर) ४३३
५६–श्रीलक्ष्मीनारायण (श्रीविनयकुमार मित्र) ३८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५७–श्रीषोडशी (श्रीपरमेश राय) ... २७२
५८–श्रीसावित्री-ब्रह्मा (श्रीविनयकुमार मित्र) ५०४
५९–श्रीसीताराम (श्रीज्योतिरिन्द्र राय) ... ४८८
६०–षोडशमाता ... ६१७
६१–समुद्र-मन्थन (प्राचीन-मियाँ बसन्तसिंहजी जागीरदारद्वारा प्राप्त) ... ११८५

इकरङ्गे

६२–सहस्रारचक्र (श्रीधनुपराम) ... ४५५
६३–स्वाधिष्ठानचक्र (,,) ... ४५४

दुरङ्गे

६४–करालवदना काली (श्रीकनू देसाई) ... ५३२
६५–वीणापाणि सरस्वती (,,) ... ३६०

इकरङ्गे-सादे चित्र

६६–अजाई माता ... ६५०
६७–आरासुरी अम्बाजी—सूरत ... ६६२
६८–उमाके सामने शिवका प्रदोष-नृत्य ... ६२६
६९–कङ्कालीदेवी—प्रयाग ... ६८१
७०–काँगड़ादेवीका मन्दिर—काँगड़ा ... ६३८
७१–कालपुरुष (श्रीव्रजेन्द्र) ... ४५१
७२–कालीखोह—विन्ध्याचल ... ६३८
७३–कालीमठ ... ६७३
७४–कुम्भारियाजी जैनमन्दिर ... ६४९
७५–कृष्णज्वारा ... ६५१
७६–कोटेश्वरकुण्ड ... ६५०
७७–गब्बरगढ़ ... ६५१
७८–गिरनारपर दत्तात्रेयका स्थान ... ६३४
७९–गौरीकुण्ड ... ६७४
८०–चतुर्दश भुवन (श्रीव्रजेन्द्र) ... ४५२
८१–चामुण्डाकी टेकरी ... ६५१
८२–चामुण्डाजीका द्वार ... ६५१
८३–जालन्धरपीठ ... ६७५
८४–तान्त्रिक ताम्रयन्त्र (पृष्ठभाग) ... ६५९
८५–तान्त्रिक ताम्रयन्त्र (सम्मुखभाग) ... ६५९
८६–तान्त्रिकीदेवी ... ६५९
८७–दसभुजा दुर्गा ... ६६४
८८–दुर्गाकुण्ड और मन्दिर—काशी ... ६३८
८९–देवकृत देवीस्तुति (भाद्रपदके अङ्कका मुखपृष्ठ)
९०–देवी कनकावती—मालवा ... ६७७
९१–देवीकुण्डका सिंहावलोकन ... ६८७
९२–धूम्रलोचनवध ... ६३४
९३–नवरात्र-उत्सव कुतियाना—जूनागढ़ ... ६४१
९४–पं० बटुकनाथजी भट्ट ... ६५५
९५–पाण्डवोंका किला ... ६५८
९६–पावागढ़ पहाड़ ... ६४९
९७–पृथ्वीराजमन्दिर ... ६५८
९८–भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज ... १३३९
९९–भगवती बगलामुखी—होशङ्गाबाद ... ६८४
१००–भवानीमन्दिर—प्रतापगढ़ ... ६४३
१०१–भारतवर्षके प्रधान शक्तिपीठोंका नक़शा (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी) ... ६३७
१०२–भैरव ... ६५९
१०३–महिषमर्दिनी आदि छः देवियाँ ... ६६९
(१) महिषमर्दिनी दुर्गा
(२) काली
(३) नील सरस्वती
(४) उग्रतारा
(५) एकजटा
(६) त्रिपुरसुन्दरी
१०४–माईगृहद्वार ... ६५१
१०५–माईजीका त्रिशूल ... ६५१
१०६–माता श्रीउमाजी (श्रीव्रजेन्द्र) ... ३६९
१०७–माता श्रीराधाजी (,,) ... १८५
१०८–माता श्रीसीताजी (,,) ... २०५
१०९–मानसरोवरके दाहिने भागका दृश्य ... ६५०
११०–मानसरोवर—बायें भागका दृश्य ... ६५०
१११–लक्कड़पुल पावागढ़ दरवाजा ... ६४९
११२–वानरीदेवी ... ६५९
११३–शक्तिसेवकमण्डल, श्रीअम्बिकाजीका उत्सव ६५१
११४–शिवाजीपर भवानीकी कृपा ... ६५४
११५–श्रीअम्बाजी भवानी—आरासुर ... ६४८
११६–श्रीअम्बाजी माताजीका मुख्य मन्दिर—खेडब्रह्मा ... ६६२
११७–श्रीअम्बाजी माताजी—खेडब्रह्मा ... ६६३
११८–श्रीअम्बाजी माता—बड़ौदा ... ६७१
११९–श्रीअम्बिकाजीके मन्दिरका शिखर ... ६५०
१२०–श्रीअम्बिकादेवी—सूरत ... ६७१
१२१–श्रीअम्बिकामन्दिर—सूरत ... ६७१
१२२–श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्रीलक्ष्मीजी और श्रीसरस्वतीजी—काशी ... ६५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२३-श्रीअन्नपूर्णाजी—सक्खर ... ६६९
१२४-श्रीअखैराम सेठकी डूबती हुई जहाजका अम्बाजीद्वारा बचाया जाना ... ६४८
१२५-श्रीआदिकालीमन्दिर—कलकत्ता ... ६४४
१२६-श्रीएकलवीर्य देवीजी ... ६६८
१२७-श्रीओसम मातृमाता ... ६६२
१२८-श्रीकरणीजीका मन्दिर, बीकानेर ... ६६५
१२९-श्रीकरणीजीके मन्दिरका अग्रभाग ... ६६५
१३०-श्रीकरवीरनिवासी श्रीमहाकाली, कोल्हापुर ६३४
१३१-श्रीकामाक्षीमन्दिर—कांची ... ६९९
१३२-श्रीकामाख्यामन्दिर—गौहाटी ... ६३९
१३३-श्रीकालकादेवी—बम्बई ... ६४२
१३४-श्रीकालिकाजी—उज्जैन ... ६७७
१३५-श्रीकालिकाजी—धार ... ६६८
१३६-श्रीकालिकामन्दिर—दिल्ली ... ६५८
१३७-श्रीकालीजी—कलकत्ता ... ६३८
१३८-श्रीकालीमन्दिर—कालीघाट—कलकत्ता ६४४
१३९-श्रीकुबेरनाथ महादेव ... ६५५
१४०-श्रीकूलकुल्यादेवीकी मृन्मयी मूर्ति ... ६८५
१४१-श्रीकूलकुल्येश्वर महादेव ... ६८५
१४२-श्रीक्षीरभवानी—काश्मीर ... ६४०
१४३-श्रीकृष्णकाली ... ६६४
१४४-श्रीगङ्गा—खजुराहो ... ६६८
१४५-श्रीगणेशजननी ... ६६४
१४६-श्रीगुह्येश्वरीमन्दिर—नेपाल ... ६३९
१४७-श्रीचण्डीदेवीमन्दिर—हरिद्वार ... ६४१
१४८-श्रीचामुण्डाजीके मन्दिरके समीप विशालकाय नन्दीमूर्ति—मैसूर ... ६३८
१४९-श्रीचामुण्डामन्दिर—मैसूर ... ६३८
१५०-श्रीचिन्तपूर्णीजी देवी—होशियारपुर ... ६४१
१५१-श्रीजगद्धात्री (श्रीपरमेश राय) ... ३५३
१५२-श्रीजानकीमन्दिर—जनकपुर ... ६४१
१५३-श्रीज्वालाजीका आँगन, ज्वालामुखी ... ६९२
१५४-श्रीज्वालाजी, ज्वालामुखी ... ६४०
१५५-श्रीज्वालामुखीजीका आदिस्थान ... ६९३
१५६-श्रीतारासुन्दरीदेवी—कलकत्ता ... ६४५
१५७-श्रीतारासुन्दरीमन्दिर—कलकत्ता ... ६४५
१५८-श्रीतुलजाभवानीजी, तुलजापुर ... ६३५
१५९-श्रीतुलजाभवानीमन्दिर, तुलजापुर ... ६३५
१६०-श्रीत्रिपुरासुन्दरी—तिरवा ... ६३८
१६१-श्रीदक्षिणेश्वरी काली (परमहंस रामकृष्णकी इष्टदेवी) कलकत्ता ... ६४५
१६२-श्रीदधिमथी देवी ... ६६५
१६३-श्रीदुर्गाजी—काशी ... ६५७
१६४-श्रीदुर्गामन्दिर—रामनगर ... ६८२
१६५-श्रीदेवीजीका मन्दिर—महिदपुर ... ६७९
१६६-श्रीदेवीजी—मनीयर ... ६८३
१६७-श्रीदेवीमन्दिर—बेरी ... ६८४
१६८-श्रीनयनीदेवीमन्दिर—नैनीताल ... ६४१
१६९-श्रीनेड़ीजीका मन्दिर ... ६६५
१७०-श्रीपार्वतीमन्दिर—पूना ... ६४३
१७१-श्रीपूर्णागिरिपीठ ... ६७२
१७२-श्रीबालाका मानसरोवर ... ६४९
१७३-श्रीबाला त्रिपुरसुन्दरी—चुवाळपीठ ... ६५४
१७४-श्रीबाला बहुचराजीका मन्दिर ... ६५४
१७५-श्रीभद्रकालीमन्दिर—थानेश्वर ... ६६९
१७६-श्रीमहाकालीमन्दिर—पावागढ़ ... ६४९
१७७-श्रीमहादुर्गा और सिंहशार्दूल ... ६८१
१७८-श्रीमहालक्ष्मीजी—मालेगाँव ... ६९१
१७९-श्रीमहालक्ष्मी (Bandivde Goa) ... ६४१
१८०-श्रीमहालक्ष्मीमन्दिर—बम्बई ... ६४२
१८१-श्रीमहालसादेवी—महादल गोवा ... ६९०
१८२-श्रीमहिषमर्दिनी—खजुराहो ... ६६८
१८३-श्रीमहिषासुरमर्दिनी ... ६९९
१८४-श्रीमहिषासुरमर्दिनी और श्रीब्रह्माणीजी—खेडब्रह्मा ... ६६३
१८५-श्रीमहिषासुरमर्दिनी गुफा महाबलीपुरम् ... ६९९
१८६-श्रीमहीमयी ... ६८०
१८७-श्रीमीनाक्षीमन्दिरका द्वार—मदुरा ... ६४३
१८८-श्रीमीनाक्षी-मन्दिर—गोपुर—मदुरा ... ६४३
१८९-श्रीमीनाक्षी-स्वर्णकमल-सरोवर—मदुरा ... ६४३
१९०-श्रीयन्त्र चित्र नं० १ (श्रीभगवतीप्रसाद-सिंहजी) ... ३८०
१९१-श्रीयन्त्र चित्र नं०२ (,,) ... ३८०
१९२-श्रीयन्त्रम् (श्रीधनुषराम) ... ६०४
१९३-श्रीयोगमायामन्दिर—दिल्ली ... ६५८
१९४-श्रीराजराजेश्वरीजी—ललिताघाट, काशी ६५७
१९५-श्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्या—बाँगरामऊ ... ६७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९६–श्रीराजराजेश्वरी श्रीविद्यामन्दिर—बाँगरामऊ ६७०
१९७–श्रीराधिका-मन्दिर—बरसाना ... ६४१
१९८–श्रीरेणुकादेवी ... ६५५
१९९–श्रीलयराई देवी—शिरोग्राम ... ६९०
२००–श्रीवरदायिनीजी—रूपाल ... ६६३
२०१–श्रीविठोबा और श्रीरुक्मिणीमन्दिर—पण्ढरपुर ६४३
२०२–श्रीविशालाक्षीजी—काशी ... ६५७
२०३–श्रीशान्तादुर्गा—कैवल्यपुर, गोवा ... ६९०
२०४–श्रीशारदाम्बा, शिवगङ्गा, मैसूरराज्य ... ६९८
२०५–श्रीशारदाम्बा शृङ्गेरी ... ६९८
२०६–श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द स्वामी ... ६५५
२०७–श्रीशिव-शक्ति.....शक्तिअङ्कका टाइटल-पेज
२०८–श्रीश्रीअन्नपूर्णाजी—काशी ... ६५६
२०९–श्रीसङ्कटाजी—काशी ... ६५७
२१०–श्रीसतीमन्दिर—कनखल ... ६३८
२११–श्रीसप्तशृङ्गीदेवीजीका पहाड़ ... ६९१
२१२–श्रीसप्तशृङ्गीदेवी—नासिक ... ६९१
२१३–श्रीसरस्वतीदेवी ... ६२७
२१४–श्रीसरस्वतीदेवीकी झाँकी—बीकानेर ... ६२७
२१५–श्रीसर्वमङ्गलादेवीमन्दिर—काशीपुर, कलकत्ता ... ६४४
२१६–श्रीसारिकाचक्रेश्वर—हरिप्रभात (काश्मीर) ६४१
२१७–श्रीसिंहवाहिनी देवी (मल्लिक घरानेकी) कलकत्ता ... ६४५
२१८–श्रीहजारभुजाकालीमन्दिर—शिवपुर, कलकत्ता ६४४
२१९–श्रीहरसिद्धिदेवी—उज्जैन ... ६७६
२२०–श्रीहादिविद्यायुतं श्रीचक्रम् (श्रीयन्त्रम्) ६०८
२२१–सरस्वती गङ्गाके ऊपर सेतुसहित भगवती-मन्दिर ... ६७१

इनके सिवा यन्त्रोंके अनेकों छोटे-बड़े चित्र और हैं।

११०३२५

"Kalyana-Kalpataru"

or

"The Bliss"

An illustrated English monthly for the propagation of spiritual ideas and love of God. Besides thought-provoking articles it contains spiritual instructions of immense practical value. It is devoted mainly to Universal Religion in all its aspects and discusses topics of Indian Culture, Philosophy, education, etc. It has been equally appreciated and patronised by people embracing different faiths such as Hinduism, Islam, Christianity, Zoroastrianism and so on. The profusely illustrated Special Numbers—the "God Number" and the "Gita Number" have been very highly spoken of by eminent scholars and representative journals here and abroad. Scholars and sages of light and leading have always been showering their blessings and have appreciated our humble work.

If you are in need of a friend, philosopher and guide in your Godward march, you should subscribe to this journal of spiritual revelations.

Annual Subscription.
Inland Rs. 4/8-
Foreign 10Sh.

Manager,
"Kalyana-Kalpataru"
Gorakhpur.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110324
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम

(१) यह हर एक महीनेकी कृष्णा एकादशीके लगभग प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांकसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≋) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अङ्कसे १२ वें अङ्कतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क-तक नहीं बनाये जाते। कल्याणका वर्ष श्रावणसे आरम्भ होकर आषाढ़में समाप्त होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहलेतक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले-पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेप-रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) **ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डरद्वारा भेजना चाहिये** क्योंकि वी० पी० के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी-कभी तो डेढ़-दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलनेतक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। खर्च दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधाका है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजने चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि **'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे भेजने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीहरिः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* कल्याण *

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र ।

76147

गोरखपुर

ग्राहक-संख्या———

प्रिय ग्राहक महोदय !

सप्रेम हरिस्मरण ।

इससे पहले वैशाख और ज्येष्ठके "कल्याण" द्वारा दो बार आपकी सेवामें नये वर्षका मूल्य भेजनेकी सूचना दी जा चुकी है । आपने अबतक इस सालका मूल्य नहीं भेजा हो तो अब तुरन्त भेज दें । क्योंकि जिनका मूल्य कार्यालयमें आ जायगा उनकी सेवामें कल्याण पहले भेजा जायगा ।

यदि आप वी० पी० से मँगवाना चाहते हों तो आपको कोई सूचना भेजनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है । क्योंकि जिन ग्राहकोंका मूल्य नहीं आवेगा और मनाही भी नहीं आवेगी उनकी "कल्याण" मँगवानेमें सम्मति समझकर समयपर योगांककी ४≡) की वी० पी० भेज दी जायगी ।

यदि इस वी० पी० के साथ "कल्याण" की कोई फाइल या अंकविशेष मँगवाना हो तो लिखनेसे भेजा जा सकता है ।

जो सज्जन किसी कारणवश इस वर्ष ग्राहक न रहना चाहते हों वे हमपर कृपा करके इस अङ्कके पाते ही इसी कागजके साथका कार्ड काटकर हमें ग्राहक न रहनेकी सूचना दे दें ताकि उनको वी० पी० नहीं भेजें और उनको एवं अपनेको कष्ट और हानिसे बचा सकें । आपके तीन पैसेके खर्चसे "कल्याण" की सात आनेकी बचत होगी ।

यदि कार्यालयकी भूलसे आपके रुपया भेज देनेपर भी, या मनाही कर देनेपर भी, या पहले वी० पी० छुड़ा चुकनेपर भी, वी० पी० चली जाय तो कृपया उसे यथासाध्य प्रयत्न करके किसीको ग्राहक बनाकर रख लें । इस थोड़े-से परिश्रमसे कार्यालय कुछ हानिसे बच जायगा ।

वी० पी० डाकघरमें सिर्फ ७ दिन रुकती है । उसके छुड़ानेमें देर करनेसे वी० पी० लौट आवेगी और कल्याण-कार्यालयको बेमतलब नुकसान पहुँचेगा, साथ ही आप योगके रहस्य और अद्भुत वर्णन पढ़ने और उसके चित्रोंके दर्शन करनेसे वञ्चित होंगे । इसलिये वी० पी० पहुँचते ही छुड़ा लेनी चाहिये ।

वी० पी० के विषयमें कुछ पूछना हो तो ग्राहक-नम्बर-सहित तुरन्त ही लिखें । नम्बर न लिखनेसे गोलमाल होनेका भय है ।

आपका कृपाभिलाषी—

व्यवस्थापक.

सूचना

(१) वी० पी० के रुपये हमें मिलनेपर ही आपका नाम ग्राहक-श्रेणीमें लिखा जाकर अगले अङ्क यथासमय प्रतिमास भेजे जा सकेंगे ।

(२) कल्याणके ऊपरके पतेमें किसी भी प्रकारकी भूल हो तो तुरन्त सूचना देनी चाहिये । अन्यथा भविष्यमें अङ्क पहुँचनेमें गड़बड़ी हो सकती है ।

(३) कृपया ग्राहक-नम्बर नोट कर लें और पत्र देते समय अवश्य लिखें ।

(४) वी० पी० के ऊपरका कवर सँभालकर रक्खें ।

यहाँसे काटिये ।

श्रीहरिः

ग्राहक नं०——— **अवश्य लिखिये !**

मैनेजर कल्याण !

सप्रेम राम राम । कल्याण वी० पी० से भेजनेकी सूचना मिली ।

हम इस वर्ष कल्याणके ग्राहक $\frac{\text{अवश्य}}{\text{नहीं}}$ रहेंगे । कल्याण वी० पी० द्वारा नहीं भेजें । वार्षिक मू० ४≡) मनीआर्डरद्वारा भेजते हैं ।

भवदीय—

नाम———

पता———

P. O. ( )

नोट—यदि आपको वी० पी० मँगाना स्वीकार हो, तो कार्ड लौटानेकी आवश्यकता नहीं है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीहरिः

अद्वितीय ग्रन्थ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर संग्रह

कल्याणके अमूल्य विशेषांक और फाइलें

(कल्याणका वार्षिक मूल्य ४≡) है)

१—दूसरे वर्षके कुछ अंक—प्रति अंक ≡) तीन आने। (भगवन्नामांक नहीं है)।

२—तीसरे वर्षकी फाइल (श्रीभक्तांकसहित) मू० ४≡), सजिल्द ४।।।≡); भक्तांक अलग नहीं मिलता।

३—चौथे वर्षके कुछ अंक—प्रति अंक ।) चार आने।

४—श्रीरामायणांक पृष्ठ ५००, चित्र १६०, दूसरा नया संस्करण, मू० २।।≡) सजिल्द ३≡)

५—सातवें वर्षके कुछ साधारण अंक—प्रति अंक ।) चार आने।

६—आठवें वर्षकी फाइल (श्रीशिवांकसहित) मूल्य ४≡); सजिल्द दो जिल्दोंमें ५।-)

७—श्रीशिवांक सपरिशिष्टांक (श्रावण और भाद्रके अंक एक साथ) पृष्ठ ६६६, चित्र २८७ मूल्य ३)

8. 'Kalyana-Kalpataru', (English Edition of 'Kalyan') Annual Subscription Rs. 4/8.

9. God-Number (Illustrated Pages 307) Rs. 2/8.

10. Gita-Number (Illustrated Pages 251) Rs. 2/8.

डाकखर्च सबमें हमारा लगता है।

यहाँसे काटिये।

तीन पैसेका टिकट लगाइये

POST CARD

Kalyan Karyalaya

GORAKHPUR.

U. P.

नाम _____ P.O. ( )

पता _____

नाम _____ P.O. ( )

पता _____

ग्राहकके बनाकर भेजता हूँ। इनका एक वर्षका मूल्य वी० पी० द्वारा वसूल कर लें।

मनीआर्डरद्वारा भेजता हूँ।

यदि योगांककी वी० पी० के साथ "कल्याण" के ऊपर लिखे अंकोंमेंसे कोई मँगवाना हो तो हमें सूचित करनेसे सेवामें भेजा जा सकता है।

कल्याण, गोरखपुर।

पुनः मनीआर्डर फार्म

आपका चन्दा और आपके मित्रोंको ग्राहक बनाकर उनका चन्दा भेजनेके लिये इस बार इस अङ्कके साथ पुनः छपा हुआ मनीआर्डर फार्म भेजा जा रहा है ताकि आप सुविधासे इसे भरकर हमें भेज दें।

विनीत व्यवस्थापक

बार बार विनय

ग्राहक नम्बर

साल समाप्त होता है। आप नये वर्षका चन्दा भेजेंगे या किसी कारण ग्राहक रहना न चाहें तो 'कल्याण' के यागांककी वी० पी० आपकी सेवामें न भेजनेकी सूचना हमें देंगे—दोनों ही बातोंमें आपके पूरे पतेसहित आपका ग्राहक नम्बर लिखना जरूरी है जो आपके पतेके साथ छपा हुआ है। ग्राहक नम्बर कृपया नोट कर लें।

व्यवस्थापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri